वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी

'श्रीधरमुखोल्लासिनी' हिन्दीव्याख्यासमन्विता

तद्धित प्रकरण



व्याख्याकारः
श्री गोविन्दाचार्यः

सम्पादिका
लक्ष्मी शर्मा

© **सर्वाधिकार सुरक्षित** । इस प्रकाशन के किसी भी अंश का किसी भी रूप में पुनर्मुद्रण या किसी भी विधि (जैसे- इलेक्ट्रोनिक, यांत्रिक, फोटो-प्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग या कोई अन्य विधि) से प्रयोग या किसी ऐसे यंत्र में भंडारण, जिससे इसे पुनः प्राप्त किया जा सकता हो, प्रकाशक की पूर्वलिखित अनुमति के बिना नहीं किया जा सकता है।

वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी (भाग-3) - गोविन्दाचार्य

ISBN : 978-93-83721-85-6

प्रकाशक :

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के 37/117 गोपाल मन्दिर लेन, पोस्ट बॉक्स न. 1129
वाराणसी 221001
दूरभाष : (0542) 2335263
e-mail : csp_naveen@yahoo.co.in
website : www.chaukhamba.co.in

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

चौखम्बा सुरभारती
वाराणसी-221001
मूल्य : 400/-

वितरक :

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस

4697/2 ग्राउण्ड फ्लोर, गली न. 21-ए
अंसारी रोड़, दरियागंज
नई दिल्ली 110002
दूरभाष : (011) 32996391, टेलीफैक्स : 23286537
e-mail : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

*

अन्य प्राप्तिस्थान :

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

38 यू. ए. बंगलो रोड़, जवाहर नगर
पोस्ट बॉक्स न. 2113
दिल्ली 110007

*

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)
पोस्ट बॉक्स न. 1069
वाराणसी 221001

मुद्रक :
डीलक्स ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली.

प्राक्कथन

संसार में भाषाएँ असंख्य हैं परन्तु सभी भाषाओं में समयानुसार परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है जबकि संस्कृत एक ऐसी अमरभाषा है जिसके स्वरूप में अद्यावधि कोई परिवर्तन या अपभ्रंश नहीं देखा जाता है और इसका श्रेय जाता है इसके व्याकरण को। यूँ तो कई हैं संस्कृतव्याकरण परन्तु उन सबमें पाणिनीय व्याकरण का स्थान सर्वोपरि है, इसी का अपरनाम है त्रिमुनि व्याकरण। अष्टाध्यायी नामक ग्रन्थ में सूत्रों के रूप में प्रतिष्ठित इस व्याकरण में लौकिक, वैदिक उभयविध शब्दों का निरूपण संज्ञा, परिभाषा, विधि, नियम, अतिदेश और अधिकार के रूप में छह प्रकार से विभक्त सूत्रों के माध्यम से किया है। तदन्तर्गत विधि सूत्र प्रत्यय, आगम, आदेश, निपातन आदि के विधायक हैं। उनमें से जो प्रत्यय हैं, वे सुप्, तिङ्, कृत्, तद्धित एवं विकरण आदि के रूप में जाने जाते हैं। एतदन्तर्गत तद्धितप्रत्यय-विधायक सूत्रों का वर्गीकरण करके श्री भट्टोजिदीक्षित जी ने तद्धितप्रकरण का निर्माण किया जिससे कि तद्धितप्रत्ययान्त शब्दों का बोध सरलतया हो सके। अन्यथा इतस्ततः विद्यमान् सूत्रों के द्वारा एकीकृत रूप में तद्धितान्त शब्दों का ज्ञान सम्भव नहीं था। किञ्च सुकोमलमति छात्रों के लिए अत्यन्त सरलतया इसका अवगमन हो सके एतदर्थ प्रकृत ग्रन्थ के रूप में इसकी हिन्दी व्याख्या (श्रीधरमुखोल्लासिनी) का लेखन किया गया है।

अपदं न प्रयुञ्जीत इस भाष्यकथनानुसार सुप् एवं तिङ् का महत्त्व सर्वगम्य है क्योंकि सुप् एवं तिङ् प्रत्यय ही पद का निर्माण करते हैं, जैसा कि **सुप्तिङन्तं पदम्** यह पाणिनीय सूत्र स्पष्ट बताता है। इनमें से तिङन्त पदों के निर्माण के लिए शप्, श्यन् आदि विकरणों की भी आवश्यकता स्वतः सिद्ध है।

जब हम बात करते हैं तद्धित प्रत्ययों की तो यह निश्चयेन ध्यातव्य है कि ये प्रत्यय केवल सुबन्तों से ही होते हैं। किस सुबन्त से कौन प्रत्यय हो, इसका निर्धारण अर्थानुसार होता है। यथा **तस्य अपत्यम्** अर्थ में षष्ठ्यन्त से प्रत्यय होगा तो **तत्र जातः** में सप्तम्यन्त से। इसी प्रकार अन्यत्र भी समझना चाहिए। सभी तद्धित प्रत्यय अर्थ पर आधारित हैं। एक ही प्रत्यय भिन्न भिन्न अर्थों में किया जाता है। जैसे कि **प्राग्दीव्यतोऽण्** से प्रारब्ध अण् प्रत्यय **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** तक के सभी सामान्य सूत्रों के द्वारा विभिन्न अर्थों में विहित होता है। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि तद्धित प्रत्ययों के मूल में अर्थ ही हैं। इनमें से कुछ अर्थ सामान्य हैं तो कुछ विशिष्ट। विशेष अर्थ केवल किन्हीं शब्दों के निर्माण तक सीमित रहते हैं, यथा- **तेन रक्तं रागात्, नक्षत्रेण युक्तः कालः** इत्यादि परन्तु सामान्य अर्थों में अनेक शब्दों का निर्माण हो सकता है। यथा- **तस्यापत्यम्, तत्र जातः, तत्र भवनः, तेन निर्वृत्तम्** इत्यादि।

यद्यपि **तद्धिताः** सूत्र का अधिकार कुछ स्त्रीप्रत्ययों (ति, ष्यङ्) में भी है किन्तु इनका स्त्रीप्रत्यय में ही पाठ है तद्धितप्रकरण में नहीं। वास्तविक तद्धित प्रकरण **समर्थानां प्रथमाद्वा** (४.१.८२) सूत्र से प्रारम्भ होता है और तद्धित प्रत्ययों का प्रारम्भ **प्राग्दीव्यतोऽण्** सूत्र से। इस प्रकरण में अनेकों प्रत्यय हैं किन्तु उनमें सर्वसामान्य प्रत्यय के रूप में, अण्- **प्राग्दीव्यतोऽण्**, ठक्- **प्राग्वहतेष्ठक्**, यत्- **प्राग्घिताद्यत्**, छ- **प्राक्क्रीताच्छः**, ठञ्- **प्राग्वतेष्ठञ्** जाने जाते हैं। इन्हीं को ही भाष्यकार ने पञ्च महोत्सर्ग नाम दिया है। इन प्रत्ययों के अधिकार में अनेक अर्थ पठित हैं, ऐसा भी कहा जा सकता है। जैसे कि- **अण्** प्रत्यय का अधिकार **तस्यापत्यम्** अर्थ से लेकर **अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः** तक ४४ अर्थों पर है। **ठक्** प्रत्यय का अधिकार **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** अर्थ से लेकर **निकटे वसति** तक ३६ अर्थों पर है। छ-प्रत्यय का अधिकार **तस्मै हितम्** अर्थ से लेकर **भावे च** तक ३१ अर्थों पर है। ठञ् प्रत्यय का अधिकार **तेन क्रीतम्** अर्थ से लेकर **तदस्य तदस्मिन् स्यादिति** तक ३ अर्थों पर है।

यह ध्यातव्य है कि दीक्षित जी ने तद्धित प्रकरणों का नामकरण कहीं तो अर्थाधिकार के रूप में किया है और कहीं प्रत्ययाधिकार के रूप में। अर्थाधिकार में यथा- अपत्याधिकारप्रकरणम्, रक्ताद्यर्थकप्रकरणम्, चातुरर्थिकप्रकरणम्, प्राग्वहतीयप्रकरणम्, आर्हीयप्रकरणम् इत्यादि। प्रत्ययाधिकार में यथा- छयद्विधिप्रकरणम् इत्यादि।

तद्धितप्रकरण के विषय में हम सब की परमपूज्या गुरुकल्पा **श्रीमती पुष्पा दीक्षित जी** ने अपने **अष्टाध्यायी सहजबोध** नामक ग्रन्थ में वैज्ञानिक ढंग से परिशीलन किया है। हम समझते हैं कि कौमुदी के साथ उक्त ग्रन्थ का परिशीलन छात्रों के लिये बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगा। इस व्याख्याग्रन्थ के सम्पादन से हमें ऐसा लगा कि प्रकृत व्याख्याकार ने उक्त ग्रन्थ का बहुत्र आधार लिया है।

हमारे पूज्य पिताजी एवं मेरे आचार्य **श्री गोविन्दाचार्य जी** ने समग्र सिद्धान्तकौमुदी पर छात्रों के लिये बहुत उपयोगी श्रीधरमुखोल्लासिनी नामक व्याख्या लिखने के बाद सम्पादन का अधिभार मुझे सौंपकर मेरा बहुत बड़ा उपकार किया है। इस व्याख्याग्रन्थ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि श्री गुरुदेव ने अपने अध्यापन काल (३३ वर्षों) में छात्रों को अध्यापन कराते समय ग्रन्थस्थ जिन विषयों में छात्रों के लिए काठिन्य का अनुभव किया, तत्तत् विषयों को सरलता से समझाने के लिये जो प्रयोगात्मक शैली अपनायी एवं जिससे उन्हें भारी सफलता भी मिली, उसी शैली को श्री गुरुदेव जी ने यहाँ लिखित रूप में परिणत किया है। तात्पर्य यह है कि आज के इस वैज्ञानिक युग में प्रत्येक विषयों को वैज्ञानिक ढंग से समझाने से ही कठिन से कठिन विषय भी छात्र शीघ्र ग्रहण कर सकता है। अतः परम्परा से कठिन रूप में ग्रहण किए जाने वाले इस संस्कृत-व्याकरण को इन्होंने युगसापेक्ष अत्यन्त सरल एवं सुबोध

बनाया है। इसमें मुझे नहीं लगता कि विद्यार्थियों के समझने के लिए इससे भी सरल, सुबोध और सारगर्भित किसी अन्य व्याख्या की आवश्यकता पड़ेगी क्योंकि इस व्याख्या में गुरुदेव ने विशेषकर आज के छात्र एवं अध्यापकों का ध्यान रखते हुए कभी भी कहीं भी पाण्डित्य-प्रदर्शन नहीं किया है। इसीलिए कहीं-कहीं कठिन विषयों को बार-बार या अतिविस्तृत रूप से समझाया है तो कहीं-कहीं सरल विषयों को अतिसंक्षेप में बताया गया है। उन छात्रों के लिए तो यह ग्रन्थ वरदान सिद्ध हो सकता है, जो गुरुकुलीय शिक्षा ग्रहण न करके विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में जाकर अध्यापकों से केवल एक बार श्रवण कर पाते हैं।

इसी प्रकार श्री गुरु जी के अन्य भी अनेक व्याख्याग्रन्थ और मौलिकग्रन्थ अध्येताओं को ध्यान में रखकर ही बने हुए हैं, जिसमें उल्लेखनीय है उनकी मौलिक कृति **ऋजुसिद्धान्तकौमुदी** एवं उसकी हिन्दी व्याख्या। इस ग्रन्थ की रचना के पीछे भी श्री गुरु जी का ध्येय यही था कि जो लघुकौमुदी आदि ग्रन्थों को भी कठिन मानकर संस्कृत का अध्ययन नहीं कर पाते हैं किन्तु अध्ययन करना चाहते हैं, उन्हें हताश न होना पड़े, एतदर्थ उन्हीं छात्रों के लिए अत्यन्त सरल एवं सुबोध भाषा में व्याख्यासहित अष्टाध्यायी के मात्र ६०० सूत्रों का संग्रह करके इसकी रचना की। जिसके अध्ययन से छात्र सामान्यतः व्याकरणसम्बन्धी अत्यावश्यक सभी विषयों का ज्ञान कर सकता है। इसके अतिरिक्त **सारसिद्धान्तकौमुदी** एवं **लघुसिद्धान्तकौमुदी** पर आपकी विस्तृत हिन्दी व्याख्या उपलब्ध है जिसको व्याकरणजगत् में बहुत सम्मान मिला है। सच कहें तो लघुसिद्धान्तकौमुदी में लिखी गयी श्रीधरमुखोल्लासिनी व्याख्या की बढ़ती लोकप्रियता ने ही गुरुदेव को इस बृहद् ग्रन्थ के सरलीकरण के लिये प्रेरित किया, जिससे कि संस्कृत व्याकरण की अध्ययन-अध्यापन-परम्परा निर्बाध गति से अधिक से अधिक संख्या में बढ़ती रहे और संस्कृत की रक्षा हो सके।

जब आप अपने तपोमय जीवन में **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी** की व्याख्या लिख रहे थे तब मैं आपकी ही छात्रा थी। छात्रों को पढ़ाते हुये एवं छात्रों की जिज्ञासा शान्त करते हुये एकसाथ आपने उक्त कौमुदी पर व्याख्या लिखी है। अध्यापन और लेखन साथ-साथ चलता रहा। जब से आपने लिखना प्रारम्भ किया तब से व्याख्या की पूर्णता होने तक इस व्याख्या का मैंने आद्योपान्त पारायण किया, जिससे मेरी सारी संशयरूप ग्रन्थियों के उच्छेदन के साथ-साथ अनेक विषयों को समझने का भी लाभ मिला। यह तो पूज्य गुरुदेव की उदारता, महत्ता एवं मेरे प्रति अत्यन्त ही स्नेहमयी भावना है, जो उन्होंने मेरे उपर्युक्त कार्य को ही ग्रन्थसम्पादन का नाम दिया। इसमें थोड़े बहुत संशोधन के अतिरिक्त मेरा ज्यादा कोई योगदान नहीं है। हाँ, प्रूफ संशोधन का दायित्व गुरुदेव ने मुझे सौंपा था, जिसके फलस्वरूप मुझे वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी का पुनः अक्षरशः अनेकानेक व्याख्याओं सहित अध्ययन करने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ। वस्तुतः लेखन और सम्पादन दोनों कार्य गुरुदेव ने ही किए हैं।

गुरुदेव के लेखन आदि कार्य के साथ-साथ संशोधन आदि सभी कार्यों में पूर्णरूप से सहयोग किया है मेरे भ्रातृद्वय **जीवन शर्मा** एवं यशःशेष **कृष्ण शर्मा** तथा भगिनी **सुभद्रा शर्मा** ने। पूज्या माता **श्रीमती इन्दिरा देवी** जी के प्रति भी नतमस्तक हूँ जिन्होंने आशीर्वाद के साथ मुझे हमेशा पठन-पाठन के लिये अभिप्रेरित किया।

इस सुकार्य को पूर्ण करने के लिए अन्य जनों का भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्षरूप से सहयोग रहा है। मेरे अन्य पूज्य गुरुवर संस्कृतजगत् के मूर्धन्य-विद्वान् आचार्य **श्री रामसलाही द्विवेदी जी, श्री जयकान्त शर्मा जी, डॉ. कमला भारद्वाज, डॉ. सुजाता त्रिपाठी जी** तथा **श्री दयाल सिंह जी** के प्रति संविनय एवं सप्रणति आभार व्यक्त करना चाहती हूँ, जो **श्री लालबहादुरशास्त्री राष्ट्रिय संस्कृतविद्यापीठ, दिल्ली** में व्याकरण, न्याय, वाक्यपदीयम्, व्युत्पत्तिवाद आदि दुरूह ग्रन्थों का सरल शैली में अध्यापन कराते हुये अपनी ज्ञानगंगा से हम सभी छात्रों को आप्लावित कर रहे हैं और उन्हीं के आशीर्वाद तथा मेरे प्रति किए गए परिश्रम के फलस्वरूप ही मैं श्री गुरुदेव को प्रकृत व्याख्या के प्रूफसंशोधिका के रूप में योग्य प्रतीत हुई। मैं उन विद्वानों को प्रणाम करती हूँ, जिनके सान्निध्य में मैंने दर्शन आदि विषयों का यत्किञ्चित् अध्ययन बाल्य-अवस्था में ही किया। ऐसे विद्वान् हैं- **श्री स्वामी प्रसाद मिश्र जी** (व्याकरणाचार्य), **श्री केशव शरण अर्याल जी** (न्याय-व्याकरण-दर्शनाचार्य), **श्री रघुनाथ शास्त्री जी** (न्याय-व्याकरणाचार्य) एवं **श्री विष्णु प्रसाद शर्मा** (व्याकरणाचार्य)।

इस ग्रन्थ को सर्वजनहिताय बनाने के लिए उपर्युक्त सभी महानुभावों के आशीर्वाद एवं सहयोग के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ और अत्यन्त स्नेह के साथ मेरे भविष्य को उज्ज्वल बनाने के लिए मुझे ग्रन्थ-सम्पादन, पठन-पाठन आदि कार्यों में प्रवृत्त कराने वाले परमपूज्य गुरुदेव एवं पिताश्री **श्री गोविन्दाचार्य जी** के प्रति हार्दिक भावरूपी पुष्पाञ्जली समर्पित करती हूँ कि वे मुझे मंगलाशासन से अभिसिञ्चित करें, मैं इसी तरह आपके हर प्रयास में, हर कार्य में आपके साथ कार्य कर सकूँ।

गुरुकृपाकांक्षिणी

लक्ष्मी शर्मा

दिनांक- दीपावलि 2014

दिल्ली

विषयानुक्रमणिका

१.	तद्धिताधिकारप्रकरणम्	००१-०१४
२.	अपत्याधिकारप्रकरणम्	०१५-१७४
३.	रक्ताद्यर्थकाः	१७५-२६७
४.	चातुरर्थिकाः	२६८-३०३
५.	शैषिकप्रकरणम्	३०४-४९७
६.	प्राग्दीव्यतीयप्रकरणम्	४९८-५२८
७.	प्राग्वहतीयप्रकरणम्	५२९-५९४
८	प्राग्घतीयप्रकरणम्	५९५-६२०
९.	छयद्विधिप्रकरणम्	६२१-६४३
१०.	आर्हीयप्रकरणम्	६४४-७०६
११.	ठजधिकारे कालाधिकारप्रकरणम्	७०७-७२९
१२.	ठञ्विधिप्रकरणम्	७३०-७४१
१३.	तद्धितेषु भावकर्मार्थाः	७४२-७७१
१४.	तद्धितेषु पाञ्चमिकप्रकरणम्	७७२-८१३
१५.	मत्वर्थीयप्रकरणम्	८१४-९०९
१६.	प्राग्दिशीयप्रकरणम्	९१०-९३०
१७.	प्रागिवीयप्रकरणम्	९३१-१००३
१८.	स्वार्थिकप्रकरणम्	१००४-१०२
१९.	द्विरुक्तप्रकरणम्	१०८३-११०४
२०.	अकारादिक्रमेण सूत्रानुक्रमणिका	११०५-११२०
२१.	अकारादिक्रमेण वार्तिकानुक्रमणिका	११२१-११२४

अथ तद्धिताधिकारप्रकरणम्

तत्रादौ अपत्यादिविकारान्तार्थसाधारणाः प्रत्ययाः

यहाँ से **तद्धितप्रकरण** का प्रारम्भ होता है। तद्धित प्रत्यय हैं। सूत्रसंख्या **४।१।७६** (**तद्धिताः**) से लेकर पाँचवें अध्याय के चतुर्थपाद की समाप्ति तक जितने भी प्रत्यय होते हैं, उन सब की **तद्धिताः** से तद्धितसंज्ञा होती है। **तेभ्यः प्रयोगेभ्य हिताः** अर्थात् उन प्रयोगों की निष्पत्ति में हितकर सिद्ध होने के कारण जो प्रत्यय हैं, उन्हें तद्धित कहा जाता है। तद्धित प्रत्यय सुबन्त प्रातिपदिकों से होते हैं, धातुओं से नहीं। ये प्रायः किसी अर्थविशेष को लेकर होते हैं। **अण्, ठक्, ठञ्, णिनि, मतुप्, घञ्, मयट्** आदि अनेकों प्रकार के होते हैं। इन प्रत्ययों के लगने से लोक से लौकिक, वेद से वैदिक, धर्म से धार्मिक, पाणिनि से पाणिनीय, ग्राम से ग्रामीण, राष्ट्र से राष्ट्रिय, मेधा से मेधाविन्, नर से नरत्व, मनुष्य से मनुष्यत्व आदि रूप बनते हैं। तद्धित प्रत्यय करने के बाद समास की तरह तद्धितान्त की भी प्रातिपदिकसंज्ञा होती है और उसके बीच में विद्यमान सुप् का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हो जाता है। उसके बाद उस प्रत्यय के परे रहते किए जाने वाले गुण, वृद्धि आदि कार्य होते हैं और **एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक** मानकर सु आदि विभक्तियाँ आती हैं।

समासप्रकरण के आरम्भ में यह कहा जा चुका है कि शब्दों में सामर्थ्य (परिनिष्ठित होना, अभिव्यक्ति की योग्यता का होना) रहने पर ही एकार्थीभावरूप वैशिष्ट्य सम्पन्न हो सकता है, अन्यथा नहीं। इस प्रकार पद-विधान में समस्त कार्य एकार्थीभाव रूप सामर्थ्य में ही होते हैं। अब समासानन्तर तद्धितवृत्ति के आरम्भ-स्वरूप अपत्यादि-विकारान्तार्थोपयोगी साधारण प्रत्ययों का निर्वचन इस प्रकरण में किया जा रहा है। अतः इस प्रकरण का नाम **अपत्यादिविकारान्तार्थसाधारणप्रत्ययाः** रखा गया है।

१०७२. समर्थानां प्रथमाद्वा ४।१।८२॥

इदं पदत्रयमधिक्रियते। 'प्राग्दिशः-'(सू.१९४७) इति यावत्। सामर्थ्यं परिनिष्ठितत्वम्। कृतसन्धिकार्यत्वमिति यावत्।

समर्थानां प्रथमाद्वा। समर्थानां षष्ठ्यन्तं, प्रथमाद् पञ्चम्यन्तं, वा अव्ययपदं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

प्राग्दिशो विभक्तिः (५।३।१) तक समर्थानां, प्रथमाद्, वा इन तीनों पदों का अधिकार है।

अधिकार होने से इन पदों का अपने स्थल पर कोई उपयोग नहीं है किन्तु आगे के विधिसूत्रों में उपस्थित होकर इनकी चरितार्थता सिद्ध होती है। तद्धितविधि भी पदसम्बन्धी विधि है। अतः **समर्थः पदविधिः** सूत्र के अनुसार सामर्थ्य होने पर ही तद्धित प्रत्यय हो सकते हैं।

समर्थः पदविधिः और **समर्थानां प्रथमाद्वा** इन दो सूत्रों में पठित **समर्थ** शब्द के अर्थ में अन्तर-

समर्थः पदविधिः सूत्र का सामर्थ्य एकार्थीभाव रूप है। इसीलिए असमर्थ होने पर तद्धित प्रत्यय किये नहीं जा सकते। जैसे- **कम्बलम् उपगोरपत्यं देवदत्तस्य**(कम्बल तो उपगु नामक व्यक्ति का है और सन्तान देवदत्त की) में **उपगु** शब्द से अपत्यार्थ में अण् प्रत्यय नहीं हो सकता, क्योंकि **उपगु** का सम्बन्ध **कम्बल** से है, **अपत्य** के साथ में नहीं। अतः सामर्थ्य न होने से प्रत्यय भी नहीं होगा।

समर्थानां प्रथमाद्वा में पठित **सामर्थ्य** का अर्थ **प्रयोग की योग्यता** है अर्थात् अर्थबोध कराने में सामर्थ्य वाला ही समर्थ माना जाता है जिसमें तत्तत् सन्धिकार्य हो चुके हों, वही पद अर्थबोध कराने में समर्थ हो सकता है, अकृतसन्धिकार्य पद नहीं। **समर्थः, पटुः, शक्तः** ये पर्यायवाची शब्द हैं। शक्ति से युक्त **शक्त** होता है। कार्य-उत्पादन करने में समर्थ को **शक्त** कहा जाता है। शब्द का कार्य अर्थप्रतिपादन करना ही है। वह शक्तत्व सन्धिकार्य होने पर ही सम्भव है। इसी को मूलकार ने इस तरह स्पष्ट किया है-

सामर्थ्यं परिनिष्ठितत्वम्। कृतसन्धिकार्यत्वमिति यावत्। अर्थात् यहाँ पर सामर्थ्य का अर्थ परिनिष्ठितत्व से है। **परिनिष्ठित** का लक्षण है- **अप्रवृत्तनित्यविध्युद्देश्यता-वच्छेकानाक्रान्तत्वम्।** तात्पर्य है कि जो पद उस शास्त्र (सूत्र या वार्तिक) की प्रवृत्ति विषय न बने, जो कि उस पद के लिये अप्रवृत्त नित्यविधि हो तो उस पद को परिनिष्ठित कहते हैं। अर्थात् शब्द की निष्पत्ति जब पूर्णतः हो जाय, तभी वह परिनिष्ठित कहलाता है। यदि ऐसा सामर्थ्य न लिया जाता तो **सु+उत्थितस्य अपत्यम्** इस विग्रह में **अत इञ्** सूत्र से **इञ्** प्रत्यय होने पर **सु+उत्थित+इ** इस अवस्था में **तद्धितेष्वचामादेः** से आदि अच् **सु** के उकार की वृद्धि करके **सौ+उत्थित+इ** में आव् आदेश करके **सावुत्थित+इ**, अकार का लोप, वर्णसम्मेलन आदि करके **सावुत्थिति** ऐसा अनिष्ट रूप सिद्ध होने लगता परन्तु जब समर्थ अर्थात् कृतसन्धिकार्य से ही प्रत्यय का विधान करेंगे तो **सु+उत्थितस्य अपत्यम्** इस विग्रह में **इञ्** प्रत्यय के पहले ही **सु+उत्थित** में दीर्घ होकर **सूत्थित** बनने के बाद ही अपत्यार्थ में प्रत्यय होकर आदि अच् **सू** के ऊकार की वृद्धि होने पर **सौत्थित+इ=सौत्थितिः** ऐसा शुद्ध रूप बन सकेगा। अतः इस भ्रम में नहीं रहना चाहिए कि **समर्थः पदविधिः** से ही **सामर्थ्य** अर्थ प्राप्त होते हुए **समर्थानां प्रथमाद्वा** में **समर्थ** पढ़ना व्यर्थ है, क्योकि इसकी व्यर्थता से ही **सामर्थ्यं नाम परिनिष्ठितत्वम्** यह तात्पर्य निकलता है।

इस तरह **समर्थः पदविधिः** के **समर्थः** का अर्थ- **एकार्थीभाव** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** के **समर्थ** का अर्थ- **कृत-सन्धिकार्य** (कृतं सन्धिकार्यं यस्मिन्) समझना चाहिए। **समर्थानाम्** यह निर्धारण में षष्ठी है। जिन दो पदों के मध्य सम्बद्धता हो, वह समर्थ हो जाता है और यह सम्बद्धता, आकांक्षा, योग्यता और सन्निधि के माध्यम से होती है।

समर्थानां प्रथमाद्वा इन तीन पदों के अधिकार का फल यह होता है कि **समर्थ** अर्थात् प्रयोग के योग्य(कृतसन्धिकार्य) और तद्धितप्रत्ययविधायक सूत्रों में प्रथमोच्चरित पद से जिसका बोध होता है, ऐसे समर्थ शब्दों से प्रत्यय हों, विकल्प से, इस अर्थ की उपस्थिति। जैसे कि **तस्यापत्यम्** इस सूत्र में प्रथमोच्चरित पद **तस्य** है और उससे **उपगोरपत्यम्** इत्यादि में **उपगोः** आदि षष्ठ्यन्त का बोध होता है। अतः इसी(षष्ठ्यन्त) से अण् प्रत्यय होता है, न कि **अपत्य** शब्द से। **वा** शब्द के कारण **उपगोरपत्यम्** ऐसा वाक्य का भी प्रयोग किया जा सकता है अर्थात् सम्पूर्ण तद्धित में एकपक्ष में वाक्य भी हो सकता है क्योकि स्वार्थिकों में अनेक समर्थ होना सम्भव नही और जब अनेक समर्थ न हो तो **समर्थानां प्रथमात्** कहने की आवश्यकता ही नहीं है।

समर्थानां प्रथमाद्वा के साथ ही **ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, तद्धिताः** का भी प्रायः सभी सूत्रों में अधिकार रहेगा। इस तरह पूरे तद्धित-प्रत्ययविधायक सूत्रों में **ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च** इन सभी पदों का अधिकार रहता है किन्तु **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार **प्राग्दिशो विभक्तिः** के पहले तक रहता है, आगे नहीं।

अब यहाँ पर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि समर्थ तो सुबन्त ही हो सकता है, किन्तु सुबन्त प्रातिपदिक नहीं होता। सुप् के आने के पहले ही प्रातिपदिक है किन्तु सुप् के लगने के बाद वह प्रातिपदिक न होकर सुबन्त बन जाता है। अतः किस प्रकार आगे सूत्रार्थ करने में **समर्थ** और **प्रातिपदिक** इन दोनों पदों का सम्बन्ध स्थापित किया जायेगा? इसका समाधान यह है कि आगे **तस्यापत्यम्** आदि सूत्रों में **षष्ठी-समर्थ-प्रातिपदिक से प्रत्यय हो** ऐसा कहने से **षष्ठीविभक्तियुक्त प्रातिपदिक** ऐसा तात्पर्य समझा जाता है। इस तरह उस षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से प्रत्यय हुआ करेंगे। अतः **समर्थ** एवं **प्रातिपदिक** इन दोनों अधिकारों का समन्वयात्मक प्रभाव रहता है। केवल प्रातिपदिक से प्रत्यय न हों अपितु सुप्-युक्त समर्थ प्रातिपदिकों से प्रत्यय हों।

१०७३. प्राग्दीव्यतोऽण् ४।१।८३॥

'तेन दीव्यति-' (सू.१५५०) इत्यतः प्रागणधिक्रियते।

प्राग्दीव्यतोऽण्। प्राक् प्रथमान्तं, दीव्यतः पञ्चम्यन्तम्, अण् प्रथमान्तम्। **प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

इस सूत्र से लेकर 'तेन दीव्यति खनति जयति जितम्' (४.४.२) से पहले तक अण् का अधिकार है।

यहाँ **एकदेशविकृतमनन्यवत्** के नियम से **दीव्यत्** पद **दीव्यति** अर्थ का बोध क है। अतः दीव्यत्यर्थ इस अणधिकार की अवधि है। तथा यहाँ से वहाँ तक के बीच में आने वाले अर्थ **अवधिमान्** हो जायेंगे। इसके फलस्वरूप सभी अर्थनिर्देश वाले सूत्रों में **तस्यापत्यम्, तत्र जातः** आदि इसका उत्सर्गतः सम्बन्ध होगा किन्तु **अत इञ्** इत्यादि प्रत्ययविधायक सूत्रों में नहीं। तात्पर्य हुआ कि अष्टाध्यायीक्रम में इस सूत्र से लेकर उक्त सूत्र तक सामान्यतया अण् प्रत्यय का ही विधान समझा जायेगा, किन्तु यदि इस बीच में किसी विशेष सूत्र से विशेष प्रत्यय का विधान किया जाता है तो उक्त प्रत्यय से इस प्रत्यय का बाध हो जाता है। यह अण् औत्सर्गिक (सामान्य) प्रत्यय है, अतः इसका विशेष-प्रत्यय से बाध होना स्वाभाविक है। **दीव्यति** अर्थ से पहले तक होने के कारण **प्राग्दीव्यतीय** कहा जाता है।

तद्धित प्रत्ययों के लिये यह समझना आवश्यक है कि लोक में अनेक अर्थ हैं और उन्हें तद्धित प्रत्यय से जानने के लिये पाणिनि जी ने इनको पञ्च-महोत्सर्ग में बाँट दिया है। वे हैं- १. **प्राग्दीव्यतोऽण्**, २. **प्राग्वहतेष्ठक्**, ३. **प्राग्घिताद्यत्**, ४. **प्राक्क्रीताच्छः**, ५, **प्राग्वतेष्ठञ्**। इनके अतिरिक्त अन्य अर्थों को **शेषे** सूत्र के अधिकार में समझना चाहिये। प्रत्येक महोत्सर्ग में अनेक-अनेक अर्थ हैं। इसका स्पष्टीकरण आगे जाकर किया जायेगा। यहाँ प्रथम महोत्सर्ग **प्राग्दीव्यतोऽण्** है।

१०७४. अश्वपत्यादिभ्यश्च ४।१।८४॥

एभ्योऽण् स्यात् प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु। वक्ष्यमाणस्य ण्यस्यापवादः।

अश्वपत्यादिभ्यश्च। अश्वपतिरादिर्येषां ते अश्वपत्यादयस्तेभ्योऽश्वपत्यादिभ्यः, बहुव्रीहिः। अश्वपत्यादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद् वा** का अधिकार है। **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** का भी अधिकार है।

प्राग्दिव्यतीय अर्थों में अश्वपति आदि गणपठित समर्थ प्रातिपदिकों से परे अण् प्रत्यय होता है।

सूत्र में अर्थनिर्देश नहीं है, अतः प्राग्दीव्यतीय सभी अर्थों में **अण्** प्रत्यय प्राप्त होता है। **अण्** में णकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होती है। णित् होने के कारण वृद्धि आदि होंगे। आगे **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** सूत्र कहा गया है, उससे पहले तक के सूत्रों में जो जो भी अर्थ बताये गये हैं, उन अर्थों को **प्राग्दीव्यतीय** अर्थ कहा गया है।

अश्वपत्यादिगणः- अश्वपति, ज्ञानपति, शतपति, धनपति, गणपति, स्थानपति,

यज्ञपति, राष्ट्रपति, कुलपति, गृहपति, पशुपति, धान्यपति, बन्धुपति, धर्मपति, सभापति, प्राणपति, क्षेत्रपति।

अण् में णकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होती है। णित् होने के कारण आदिवृद्धि होगी।

इस प्रकरण के सभी प्रत्यय प्राग्दीव्यतीय अर्थों में कहे गये हैं। **प्राग्दीव्यतोऽण्** से लेकर **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** तक **अपत्य, गोत्रापत्य, युवापत्य, सास्य देवता, तस्य समूहः, तदधीते तद्वेद, तत्र जातः, प्रायःभवः, सम्भूत, उप्त, तत्र भवः, तस्य व्याख्यानः, तत आगतः, प्रभवति, सोऽस्य निवासः, अभिजन, भक्ति, तेन प्रोक्तम्, तस्येदम्, तस्य विकारः, तस्यावयवः** इत्यादि अनेक अर्थ आते हैं। इन अर्थों में प्रायः अण् प्रत्यय का ही विधान ये सूत्र करते हैं। जहाँ विशेष प्रत्यय अपेक्षित होता है वहाँ उस प्रत्यय के लिए अपवाद सूत्र बने हुए हैं। उक्त सभी अर्थ तत्तत् प्रकरणों में स्पष्ट हो जायेंगे।

वक्ष्यमाणस्य ण्यस्यापवादः। प्रकृतसूत्र आगे वक्ष्यमाण **दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः** का अपवाद है। अर्थात् **अश्वपति** आदि शब्दों में पति-शब्द के उत्तरपद रहते उक्त सूत्र की प्राप्ति होती है किन्तु अश्वपत्यादिगण में विशेष पाठ होने के कारण यह सूत्र बलवान् हो जाता है।

१०७५. तद्धितेष्वचामादेः ७।२।११७॥

ञिति णिति च तद्धिते परेऽचामादेरचो वृद्धिः स्यात्।

तद्धितेष्वचामादेः। तद्धितेषु सप्तम्यन्तम्, अचाम् षष्ठ्यन्तम्, आदेः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अचो ञ्णिति** से **अचः, ञ्णिति** और **मृजेर्वृद्धिः** से **वृद्धिः** की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** का अधिकार है। **वृद्धिः** पद का उच्चारण करके वृद्धि किये जाने के कारण **इको गुणवृद्धी** से **इकः** पद की उपस्थिति होती है।

ञित् या णित् तद्धित प्रत्ययों के परे होने पर अङ्ग के अचों में आदि अच् की वृद्धि होती है।

तद्धितप्रकरण में यह सूत्र बहुत्र उपयोगी है। अधिकृत **अङ्गस्य** का अन्वय **अचाम्** के साथ रहता है। अनुवृत्त **ञ्णिति** का सम्बन्ध **तद्धितेषु** के साथ रहता है। **अचः** का सम्बन्ध **आदेः** के साथ है। इस तरह यह अर्थ निकलता है कि जिन तद्धित प्रत्ययों में ञकार या णकार की इत्संज्ञा हुयी हो, उनके परे रहते जो अङ्ग, उसमें विद्यमान अचों के मध्य में जो आदि अच्, उसकी वृद्धि होती है। **अचाम्** में निर्धारणार्थक षष्ठी होने के कारण अचों में आदि अच् को खोजना होगा। अतः आदिवर्ण हल् होने पर भी इस सूत्र की प्रवृत्ति सम्भव होती है। इसके उदाहरण आगे दिये जा रहे हैं।

१०७६. किति च ७।२।११८॥

किति तद्धिते च तथा।

अश्वपतेरपत्याद्याश्वपतम्। गाणपतम्।

'गाणपत्यो मन्त्रः' इति तु प्रामादिकमेव।

किति च। क् इत् यस्य स कित्, तस्मिन् किति। किति सप्तम्यन्तम्, चाव्ययम्। **तद्धितेष्वचामादेः** के सभी पदों की और **अचो ञ्णिति** से **अचः**, **ञ्णिति** और **मृजेर्वृद्धिः** से **वृद्धिः** की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

कित् तद्धित प्रत्ययों के परे होने पर अङ्ग के अचों में आदि अच् की वृद्धि होती है।

पूर्वसूत्र का यह पूरक सूत्र है। वह ञित् और णित् तद्धित प्रत्ययों के परे रहते लगता है और यह कित्-तद्धित प्रत्ययों के परे रहते।

अश्वपतेः अपत्यादि आश्वपतम्। अश्वपति की सन्तान आदि। **अश्वपतेरपत्यादि** लौकिक विग्रह है। **अश्वपति ङस्** इस अलौकिक विग्रह में **अश्वपत्यादिभ्यश्च** से अण् प्रत्यय हुआ- **अश्वपति ङस् अण्** बना। अण् में णकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा और उसका **तस्य लोपः** से लोप हुआ- **अश्वपति ङस् अ** बना। **अश्वपति ङस्+अ** की तद्धितान्त होने के कारण **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई और **ङस्** का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ, **अश्वपति+अ** बना। **अ** णित् है, अतः उसके परे होने पर अचों में आदि अच् **अश्वपति** के **अकार** की **तद्धितेष्वचामादेः** से वृद्धि हुई, **आश्वपति+अ** बना। अण् के **अकार** रूप अजादि-प्रत्यय के परे होने पर पूर्व की **यचि भम्** से भसंज्ञा हुई और उसके इकार का **यस्येति च** से लोप हुआ- **आश्वपत्+अ** बना। **आश्वपत्+अ** में वर्णसम्मेलन होकर **आश्वपत** बना। जब इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा हुई थी तब इसका स्वरूप **अश्वपति ङस् अ** था, अब **आश्वपत** बन गया है तो भी **एकदेशविकृतन्याय** से **आश्वपत** को प्रातिपदिक मान लिया गया। इसलिए **आश्वपत** से सु विभक्ति आई और **अपत्यम्** विशेष्य को देखते हुये नपुंसक मानकर प्रथमा के एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय, उसके स्थान पर **अतोऽम्** से **अम्** आदेश और **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप होकर **आश्वपतम्** सिद्ध हुआ। इसके रूप सातों विभक्तियों में ज्ञानम् की तरह **आश्वपतम्, आश्वपते, आश्वपतानि** आदि बनेंगे। यदि विशेष्य पुँल्लिङ्ग का होगा तो **रामः** की तरह **आश्वपतः, आश्वपतौ, आश्वपताः** आदि बनेंगे। विशेष्य के स्त्रीलिङ्ग में होने पर स्त्रीत्वविवक्षा में **टिड्ढाणञ्०** सूत्र से ङीप् होकर **आश्वपती** बनेगा और इसके रूप **नदी** शब्द की तरह **आश्वपती, आश्वपत्यौ, आश्वपत्यः** आदि बनेंगे।

गाणपतम्। गणपति की सन्तान आदि। गणपति शब्द अश्वपत्यादिगण में आता है। **गणपतेरपत्यादि** लौकिक विग्रह है। **गणपति ङस्** इस अलौकिक विग्रह में **अश्वपत्यादिभ्यश्च** से अण् प्रत्यय हुआ- **गणपति ङस् अण्** बना। अण् में णकार की

हलन्त्यम् से इत्संज्ञा और उसका **तस्य लोपः** से लोप हुआ- **गणपति ङस् अ** बना। **गणपति ङस्+अ** की तद्धितान्त होने के कारण **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई और ङस् का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ, **गणपति+अ** बना। अ णित् है, अतः उसके परे होने पर अचों में आदि अच् **गणपति** के गकारोत्तरवर्ती अकार की **तद्धितेष्वचामादेः** से वृद्धि हुई, **गाणपति+अ** बना। **अ** रूप अजादि-प्रत्यय के परे होने पर पूर्व की **यचि भम्** से भसंज्ञा हुई और उसके इकार का **यस्येति च** से लोप हुआ- **गाणपत्+अ** बना। **गाणपत्+अ** में वर्णसम्मेलन होकर **गाणपत** बना। जब इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा हुई थी तब इसका स्वरूप **गाणपति ङस् अ** था, अब **गाणपत** बन गया है तो भी **एकदेशविकृतन्याय** से **गाणपत** को प्रातिपदिक मान लिया गया। इसलिए **गाणपत** से सु विभक्ति आई और **अपत्यम्** विशेष्य को देखते हुए नपुंसक मान कर प्रथमा के एकवचन की विवक्षा में सु प्रत्यय, उसके स्थान पर **अतोऽम्** से अम् आदेश और **अमि पूर्वः** से पूर्वरूप होकर **गाणपतम्** सिद्ध हुआ। इसके रूप सातों विभक्तियों में **ज्ञानम्** की तरह **गाणपतम्, गाणपते, गाणपतानि** आदि बनेंगे। यदि विशेष्य पुँल्लिङ्ग का होगा तो रामः की तरह **गाणपतः, गाणपतौ, गाणपताः** आदि बनेंगे। विशेष्य के स्त्रीलिङ्ग में होने पर स्त्रीत्वविवक्षा में **टिड्ढाणञ्०** सूत्र से ङीप् होकर **गाणपती** बनेगा और इसके रूप **नदी** शब्द की तरह **गाणपती, गाणपत्यौ, गाणपत्यः** आदि बनेंगे।

'गाणपत्यो मन्त्रः' इति तु प्रामादिकमेव। अर्थात् **गाणपत्यो मन्त्रः** ऐसा ण्य-प्रत्ययान्त प्रयोग प्रमादवश किया गया है। तात्पर्य यह है कि **गणपति, क्षेत्रपति** आदि शब्दों का अश्वपत्यादिगण में पाठ होने के कारण अण्-प्रत्यय ही होता है। अतः **दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः** सूत्र से ण्य-प्रत्यय करके **गाणपत्यः** बनाया जाना प्रामादिक (बिना विचारे प्रमादवश किया गया कार्य) है। विशेष विधान होने के कारण अण्-प्रत्यय ण्य-प्रत्यय का बाधक है। इसके अतिरिक्त **क्षेत्रपत्यं चरुं निर्वपेत्** आदि प्रयोगों में ण्यान्त प्रयोग तो छान्दस है, अतः इसमें कोई आपत्ति नहीं है।

१०७७. दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः ४।१।८५॥

दित्यादिभ्यः पत्युत्तरपदाच्च प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु ण्यः स्यादणोऽपवादः। दैत्यः।
अदितेरादित्यस्य वा आदित्यः। प्राजापत्यः।
'यमाच्च' इति काशिकायाम्। याम्यः।
'पृथिव्या ञञौ' (वा.२५५४)। पार्थिवा, पार्थिवी।
'देवाद्यञञौ' (वा.२५५५)। दैव्यम्, दैवम्।
'बहिषष्टिलोपो यञ् च' (वा.२५५६) बाह्यः।
'ईकक्च' (वा.२५५७)। बाहीकः।
'स्थाम्नोऽकारः' (वा.२५५९)। अश्वत्थामः। पृषोदरादित्वात् सस्य तः।

'भवार्थे तु लुग्वाच्यः'(वा.२८८२)। अश्वत्थामा।
'लोम्नोऽपत्येषु बहुष्वकारः-'(वा.२५६०)। बाह्वादीञोऽपवादः। उडुलोमाः। उडुलोमान्। **बहुषु किम्?** औडुलोमिः।
'सर्वत्र गोरजादिप्रसङ्गेषु यत्'(वा.२५६१)। गव्यम्। अजादिप्रसङ्गे **किम्?** गोभ्यो हेतुभ्यो आगतं गोरूप्यम्, गोमयम्।

दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः। पतिरुत्तरपदं यस्य स पत्युत्तरपदः(शब्दः), दितिश्च अदितिश्च आदित्यश्च पत्युत्तरपदश्च एतेषां समाहारो द्वन्द्वो दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदम्, तस्मात्। दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदात् पञ्चम्यन्तं, ण्यः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार है साथ ही **प्राग्दिव्यतोऽण्** से **अण्** का भी अधिकार है।

प्राग्दिव्यतीय अर्थों में दिति, अदिति, आदित्य शब्द और पति उत्तरपद में हो ऐसे शब्दों से 'ण्य' प्रत्यय होता है।

णकार चुटू से इत्संज्ञक है, **य** बचता है।

यहाँ पर **पत्युत्तरपद** की अपेक्षा **पत्यन्त** शब्द रखने पर यद्यपि उच्चारण में लाघव तो होता है तथापि वैसा न होने पर **परमप्रजापति** आदि में भी पत्यन्त मानकर **ण्य** प्रत्यय की आपत्ति बनती। **पत्युत्तरपद** कहने तो आपत्ति नहीं है, क्योंकि उक्त शब्द के उत्तरपद **प्रजापति** है, न कि केवल **पति**शब्द, परन्तु पत्यन्त तो यह है ही।

दैत्यः दिति की सन्तान। **दितेरपत्यम्** लौकिक विग्रह है। **दिति ङस्** इस अलौकिक विग्रह में **दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः** से **ण्य** प्रत्यय हुआ- **दिति ङस् ण्य** बना। **ण्य** में णकार की **चुटू** से इत्संज्ञा और उसका **तस्य लोपः** से लोप हुआ- **दिति ङस् य** बना। **दिति ङस्+य** की तद्धितान्त होने के कारण **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई और **ङस्** का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ, **दिति+य** बना। **य** णित् है, अतः उसके परे होने पर अचों में आदि अच् दिति के दकारोत्तरवर्ती इकार की **तद्धितेष्वचामादेः** से वृद्धि हुई, इकार की वृद्धि ऐकार होकर **दैति+य** बना। यकारादि-प्रत्यय के परे होने पर पूर्व की **यचि भम्** से भसंज्ञा हुई और उसके इकार का **यस्येति च** से लोप हुआ- **दैत्+य** बना। **दैत्+य** में वर्णसम्मेलन होकर **दैत्य** बना। जब इसकी प्रातिपदिकसंज्ञा हुई थी तब इसका स्वरूप **दिति ङस् य** था, अब **दैत्य** बन गया है तो भी **एकदेशविकृतन्याय** से **दैत्य** को भी प्रातिपदिक मान लिया गया। इसलिए **दैत्य** से **सु** विभक्ति आई और पुँल्लिङ्ग में **रामः** की तरह **दैत्यः** सिद्ध हुआ।

कोशग्रन्थों में **दैतेय** शब्द भी **दिति की सन्तान** अर्थ में मिलता है। प्रकृत सूत्र के अनुसार तो ण्य प्रत्यय होकर **दैत्यः** ही बनना चाहिये, न कि **ढक्** प्रत्यय। अमरकोश की रामाश्रमी टीका में भानुदीक्षित जी ने **दिती** ऐसा ङीष्-प्रत्ययान्त शब्द मानकर **स्त्रीभ्यो**

ढक् सूत्र के द्वारा ढक्-प्रत्यय करके **दैतेयः** की साधना की है तथा बालमनोरमाकार ने इसे पृषोदरादिगणीय मानकर कथंचित् इसकी सिद्धि दिखायी है।

आदित्यः। अदिति की सन्तान। **अदितेरपत्यम्** लौकिक विग्रह है। **अदिति ङस्** इस अलौकिक विग्रह में **दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः** से ण्य प्रत्यय हुआ- **अदिति ङस् ण्य** बना। ण्य में णकार की **चुटू** से इत्संज्ञा और उसका **तस्य लोपः** से लोप हुआ- **अदिति ङस् य** बना। **अदिति ङस्+य** की तद्धितान्त होने के कारण **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो गई और ङस् का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ, **अदिति+य** बना। य णित् है अतः उसके परे होने पर अचों में आदि अच् अदिति के अकार की **तद्धितेष्वचामादेः** से वृद्धि हुई, **आदिति+य** बना। यकारादि-प्रत्यय के परे होने परे पूर्व की **यचि भम्** से भसंज्ञा हुई और उसके इकार का **यस्येति च** से लोप हुआ- **आदित्+य** बना। **आदित्+य** में वर्णसम्मेलन होकर **आदित्य** बना। सु विभक्ति आई और पुँल्लिङ्ग में **रामः** की तरह **आदित्यः** सिद्ध हुआ।

यहाँ अब अगले प्रयोग के लिये **हलो यमां यमि लोपः** सूत्र का स्मरण कर लेना चाहिये। इसकी व्याख्या अच्सन्धिप्रकरण में की जा चुकी है। सूत्रार्थ है- **हल् से परे यम् का विकल्प से लोप होता है यम् के परे होने पर।** यम् प्रत्याहार में **य्, व्, र्, ल्, ञ्, म्, ङ्, ण्, न्** ये वर्ण आते हैं। **यम् के परे रहते यम्** के लोप का विधान हुआ है। अतः संख्या की समानता होने के कारण **यथासङ्ख्यमनुदेशः समानाम्** के अनुसार **यथासङ्ख्य** नियम प्रवृत्त होगा, जिससे यकार के परे रहते यकार का ही लोप, वकार के परे रहते वकार का ही लोप आदि होगा। ध्यान रहे कि जिसका लोप किया जा रहा है, उससे पूर्व में झल् प्रत्याहार का वर्ण होना चाहिए। यह कार्य वैकल्पिक है।

आदित्यः। आदित्य की सन्तान। **आदित्यस्य अपत्यम्** लौकिक विग्रह है। **आदित्य ङस्** इस अलौकिक विग्रह में **दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः** से **ण्य** प्रत्यय के बाद अनुबन्धलोप करके प्रातिपदिकसंज्ञा, **ङस्** का लुक् होकर **आदित्य+य** बना। आकार के स्थान पर आकार ही आदिवृद्धि हुई। भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** से लोप हुआ- **आदित्य्+य** बना। यकार से यकार परे होने पर **हलो यमां यमि लोपः** से प्रथम यकार का वैकल्पिक लोप हुआ। हल् है त्, उससे परे **यम्** है प्रथम यकार और **यम्** परे है द्वितीय यकार। अब **आदित्+य** बना, वर्णसम्मेलन होकर **आदित्य** बना। सु, रुत्व और विसर्ग करके **आदित्यः** सिद्ध हुआ। लोप न होने के पक्ष में **आदित्य्यः** बना। यहाँ पर एक पक्ष में प्रत्यय होने के बाद भी रूप में अन्तर नहीं आया है।

प्राजापत्यः। प्रजापति की सन्तान। **प्रजापतेरपत्यम्** लौकिक विग्रह है। **प्रजापति ङस्** इस अलौकिक विग्रह में **पति**-शब्द उत्तरपद में होने के कारण **दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः** से **ण्य** प्रत्यय हुआ- **प्रजापति ङस् ण्य** बना। **ण्य** में **णकार** की **चुटू** से इत्संज्ञा और उसका **तस्य लोपः** से लोप हुआ- **प्रजापति ङस् य** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **प्रजापति+य** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** से

प्र में **अकार** की वृद्धि हुई, **प्राजापति+य** बना। भसंज्ञक इकार का **यस्येति च** से लोप करके **प्राजापत्+य**, वर्णसम्मेलन करके **प्राजापत्य** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **प्राजापत्यः** सिद्ध हुआ।

'यमाच्च' इति काशिकायाम्। याम्यः। मूलकार कहते हैं कि काशिका में **यमाच्च** यह वार्तिक अधिक है। इसका अर्थ है- **यम**-शब्द से भी ण्य-प्रत्यय होता है। यह वार्तिक **प्राग्दीव्यतोऽण्** से प्राप्त औत्सर्गिक अण् का अपवाद है। तदनुसार **यम+य** बनने के बाद **तद्धितेष्वचामादेः** सूत्र से आदिवृद्धि और **यस्येति च** सूत्र से अकार का लोप होकर **याम्यः** सिद्ध होता है। यह काशिकाकार के मत में समीचीन है किन्तु महाभाष्य में यह वार्तिक नहीं है।

पृथिव्या ञाञौ। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- पृथिवी-शब्द से प्राग्दीव्यतीय अर्थों में **ञ** और **अञ्** ये दो प्रत्यय होते हैं। दोनों प्रत्ययों में ञकार की इत्संज्ञा होकर **अ** ही बचता है किन्तु स्त्रीत्वविवक्षा में अञन्त-शब्द से **टिड्ढाणञ्०** सूत्र से ङीप् प्रत्यय होता है और ञान्त-शब्द से वह नहीं होता, यह अन्तर है।

पार्थिवा, पार्थिवी। पृथिवी के अपत्य आदि। **पृथिव्या अपत्यं स्त्री** लौकिक विग्रह और **पृथिवी+ङस्** इस अलौकिक विग्रह में **पृथिव्या ञाञौ** वार्तिक से **ञ** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **पृथिवी+अ** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** से **पृ** में **ऋकार** की वृद्धि होने पर **उरण् रपरः** से रपर होकर **आर्** हो जाता है। अतः **पार्थिवी+अ** बना है। भसंज्ञक ईकार का **यस्येति च** से लोप करके **पार्थिव** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पार्थिवः** सिद्ध हो जाता है। स्त्रीत्वविवक्षा में **पार्थिव** शब्द से टाप् होकर **पार्थिवा** सिद्ध हो जाता है। **अञ्** प्रत्यय होने पर भी पुंल्लिंग में तो **पार्थिवः** ही बनता है किन्तु स्त्रीलिंग में **टिड्ढाणञ्०** सूत्र से ङीप् होने पर **पार्थिवी** शब्द बन जाता है। स्वादिकार्य होने पर **पार्थिवी, पार्थिव्यौ, पार्थिव्यः** इत्यादि रूप बनते हैं।

देवाद्यञञौ। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- देव शब्द से प्राग्दीव्यतीय अर्थों में यञ् और अञ् प्रत्यय होते हैं। दोनों प्रत्ययों में **ञकार** की इत्संज्ञा होती है। क्रमशः **य** और **अ** शेष रह जाते हैं। ञित् का प्रयोजन वृद्धि है। यह वार्तिक **प्राग्दीव्यतोऽण्** से प्राप्त औत्सर्गिक अण् का अपवाद है।

दैव्यम्, दैवम्। देव की सन्तान। **देवस्य अपत्यम्। देव+ङस्** से अण् प्राप्त था, उसे बाधकर के **देवाद्यञञौ** से पहले **यञ्** प्रत्यय, ञकार का लोप करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **देव+य** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि होने पर एकार के स्थान पर ऐकार आदेश होकर **दैव+य** बना। **यस्येति च** से वकारोत्तरवर्ती अकार का लोप, वर्णसम्मेलन करके **दैव्य** बना। सु, अम् आदेश, पूर्वरूप करके **दैव्यम्** बना। **अञ्** होने के पक्ष में भी यही प्रक्रिया होकर **दैव्+अ=दैव, दैवम्** सिद्ध होता है।

बहिषष्टिलोपो यञ्च। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- बहिस् से यञ् प्रत्यय और उसके संनियोग में टि का लोप भी होता है।

बाह्यः। बाहर होने वाला। **बहिर्भवः** अर्थ में **बहिस्** से **बहिषष्टिलोपो यञ्च** से यञ् प्रत्यय के साथ **बहिस्** में टि **इस्** का लोप हो गया। **बह्+य** बना। **य** ञित् है, अतः **तद्धितेष्वचामादेः** से आदि अच् **अकार** की वृद्धि हुई, **बाह्+य** बना। वर्णसम्मेलन होकर **बाह्य** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **बाह्यः** सिद्ध हुआ।

ईकक् च। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- बहिस् शब्द से ईकक् भी होता है, साथ ही टि का लोप भी होता है। अन्त्य ककार की इत्संज्ञा होकर **ईक** शेष रहता है। कित् का फल **किति च** की प्रवृत्ति है।

बाहीकः। बाहर होने वाला या बाहरी। **बहिर्भवः, बहिस्** से **ईकक् च** वार्तिक के द्वारा **ईकक्** प्रत्यय के साथ **बहिस्** में टि **इस्** का लोप हो गया। **बह्+ईक** बना। **य** कित् है, अतः **किति च** से आदि अच् अकार की वृद्धि हुई, **बाह्+ईक** बना। वर्णसम्मेलन होकर **बाहीक** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **बाहीकः** सिद्ध हुआ।

स्थाम्नोऽकारः। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- स्थामन्-शब्दान्त शब्द से प्राग्दीव्यतीय अर्थों में **अ** प्रत्यय होता है। अण् का अपवाद है।

अश्वत्थामः। अश्वत्थामा की सन्तान अथवा तत्सम्बन्धी। **अश्वत्थाम्नोऽपत्यादि** अर्थ में **अश्वत्थामन्+ङस्** में **स्थाम्नोऽकारः** वार्तिक के द्वारा **अ** प्रत्यय होने पर तद्धितप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **अश्वत्थामन्+अ** बना हुआ है। **नस्तद्धिते** सूत्र के द्वारा टिसंज्ञक भाग **अन्** का लोप होकर **अश्वत्थाम्+अ=अश्वत्थाम** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **अश्वत्थामः** सिद्ध हो जाता है।

पृषोदरादित्वात् सस्य तः। वैसे **अश्वत्थामन्** शब्द की सिद्धि की चर्चा करते हुये कह रहे हैं कि **अश्वस्य इव स्थामा (स्थितिः) यस्य** अर्थ में बहुव्रीहिसमासादि होने के बाद **अश्वस्थामन्** बना है। **पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्** सूत्र के द्वारा सकार के स्थान पर तकार आदेश होकर **अश्वत्थामन्** शब्द बनता है और स्वादिकार्य होकर **अश्वत्थामा** सिद्ध हो जाता है।

भवार्थे तु लुग्वाच्यः। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- अश्वत्थामन्-शब्द से भव अर्थ में अ-प्रत्यय होने पर तो उसका लुक् कहना चाहिये।

अश्वत्थामा। अश्वत्थामा में होने वाला। **अश्वत्थाम्नि भवः** अर्थ में **अश्वत्थामन्+ङस्** में **स्थाम्नोऽकारः** वार्तिक के द्वारा **अ** प्रत्यय होने पर उसका **भवार्थे तु लुग्वाच्यः** वार्तिक से लुक् हो जाता है। अतः **अश्वत्थामन्** ही बना हुआ है। स्वादिकार्य होकर **अश्वत्थामा, अश्वत्थामानौ, अश्वत्थामानः** आदि रूप सिद्ध हो जाते हैं।

लोम्नोऽपत्येषु बहुष्वकारो वक्तव्यः। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- अपत्य अर्थ में लोमन् शब्द से बहुवचन में अकार प्रत्यय होता है। यहाँ **लोमन्** से लोमन्नन्त शब्द का ग्रहण होगा, क्योंकि केवल **लोमन्** का अपत्य से अन्वय सम्भव नहीं है।

बाह्वादीञोऽपवादः। यह वार्तिक **बाह्वादिभ्यश्च** सूत्र से होने वाले **इञ्** का अपवाद है। एकवचन और द्विवचन की विवक्षा में **बाह्वादिभ्यश्च** सूत्र से इञ् प्रत्यय और बहुवचन की विवक्षा में **लोम्नोऽपत्येषु बहुष्वकारो वक्तव्यः** वार्तिक से **अ** प्रत्यय होता है।

औडुलोमिः। उडुलोमन् नामक व्यक्ति की सन्तान। **उडुलोम्नः अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **उडुलोमन् ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **बाह्वादिभ्यश्च** से इञ् प्रत्यय हुआ- **उडुलोमन् ङस् इञ्** बना। **ञकार** की इत्संज्ञा हुई- **उडुलोमन् ङस् इ** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **उडुलोमन्+इ** बना। **ञित्** होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर **उकार** के स्थान पर **औकार** आदेश हुआ। **औडुलोमन्+इ** बना। **नस्तद्धिते** से टिसंज्ञक **अन्** का लोप हुआ- **औडुलोम्+इ** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **औडुलोमि** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **औडुलोमिः** सिद्ध हुआ। बहुवचन में **बाह्वादिभ्यश्च** को बाधकर **लोम्नोऽपत्येषु बहुष्वकारो वक्तव्यः** इस वार्तिक से **अ-प्रत्यय** होकर **उडुलोमाः** बनेगा। **इञ्** होने पर ञित् होने के कारण वृद्धि होती है और **अ** होने पर वृद्धि नहीं होती। अतः **उडुलोमाः** ही बनता है। यह शब्द बहुवचन में अकारान्त और अन्यत्र इकारान्त होता है। इस तरह इसके रूप बनते हैं- **औडुलोमिः, औडुलोमी, उडुलोमाः। औडुलोमिम्, औडुलोमी, उडुलोमान्। औडुलोमिना, औडुलोमिभ्याम्, उडुलोमैः** इत्यादि।

बहुषु किम्? औडुलोमिः। प्रकृत वार्तिक में **बहुषु** पद का निवेश होने से बहुवचन की विवक्षा में ही अकार प्रत्यय होता है, एकवचन और द्विवचन में नहीं होता। अतः एकवचन में **बाह्वादिभ्यश्च** से इञ् प्रत्यय होकर **औडुलोमिः** बनता है, जैसा कि ऊपर दिखाया गया है।

सर्वत्र गोरजादिप्रसङ्गे यत्। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- अजादि प्रत्ययों के प्रसंग में गो-शब्द से यत् प्रत्यय होता है, सर्वत्र=सभी प्राग्दीव्यतीय अर्थों में। तात्पर्य यह है कि **प्राग्दीव्यतीय** अर्थों में **गो** से यदि कोई **अजादि** प्रत्यय प्राप्त हो तो वह न होकर **यत्** प्रत्यय हो जाय।

गव्यम्। गौ की सन्तान आदि। **गोरपत्यादि। गो+ङस्** में **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** प्राप्त था। यह अजादि प्रत्यय है। अतः उस सूत्र को बाधकर के **गोरजादिप्रसङ्गे यत्** से यत् प्रत्यय, तकार का लोप करके **गो+य** बना। **वान्तो यि प्रत्यये** से अव् आदेश होकर **गव्य** बना। तद्धित प्रत्यय करने के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होता है। प्रातिपदिकत्वेन सु, उसके स्थान में नपुंसकीय अम् आदेश करके पूर्वरूप करने पर **गव्यम्** सिद्ध हुआ।

अजादिप्रसङ्गे किम्? गोभ्यो हेतुभ्य आगतं गोरूप्यम्। गोमयम्। प्रकृत वार्तिक में **अजादिप्रसङ्गे** पद का निवेश होने से जहाँ पर गो-शब्द से अजादि प्रत्यय की प्राप्ति होती हैं, वहाँ यत् ही होता है किन्तु हलादिप्रत्यय की प्राप्ति होने पर यत् प्रत्यय नहीं होता। फलतः **गोभ्यो हेतुभ्यो आगतम्** अर्थ में **हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः** सूत्र से से **रूप्य** प्रत्यय और **मयड् वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः** सूत्र से **मयट्** प्रत्यय प्राप्त होने पर उन्हें बाधकर प्रकृत वार्तिक से यत् प्रत्यय नहीं होता, क्योंकि उक्त प्रत्यय अजादि न होकर हलादि हैं। अतः **गोरूप्यम्, गोमयम्** आदि प्रयोग बनते हैं।

१०७८. उत्सादिभ्योऽञ् ४।१।८६॥

औत्सः।

'अग्निकलिभ्यां ढग्वक्तव्यः' (वा२६८९)। अग्नेरपत्यादि आग्नेयम्। कालेयम्।

॥ इत्यपत्यादिविकारार्थसाधारणाः प्रत्ययाः॥

उत्सादिभ्योऽञ्। उत्स आदिर्येषां ते उत्सादयस्तेभ्यः। उत्सादिभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अञ् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार है। **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **प्राक्** और **दीव्यतः** की अनुवृत्ति आती है। **अञ्** को देखकर **अण्** निवृत्त होता है। **उत्सादिभ्योऽञ् स्यात् प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु** यह वृत्ति बनती है।

प्राग्दीव्यतीय अर्थों में उत्स आदि शब्दों से अञ् प्रत्यय होता है।

ञकार की इत्संज्ञा होती है। ञित् होने से आदिवृद्धि होती है।

उत्सादिगणः- उत्स, उदपान, विकर, विनद, महानद, महानस, महाप्राण, तरुण, तलुन, पृथिवी इत्यादि।

औत्सः। उत्स अर्थात् झरने में होने वाला मण्डूक आदि। **उत्से भवः** लौकिक विग्रह और **उत्स ङि** अलौकिक विग्रह में **उत्सादिभ्योऽञ्** से **अञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप करके **उत्स+ङि+अ** की प्रातिपदिकसंज्ञा करके प्रातिपदिक के अवयव सुप् विभक्ति **ङि** का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हुआ। **उत्स+अ** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर **उकार** के स्थान पर **औकार** हो गया- **औत्स+अ** बना। **यस्येति च** से सकारोत्तरवर्ती **अकार** का लोप हुआ, **औत्स्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **औत्स** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् सु, रुत्व, विसर्ग करके **औत्सः** सिद्ध हुआ।

अग्निकलिभ्यां ढग्वक्तव्यः। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- अग्नि और कलि शब्दों से प्राग्दीव्यतीय अर्थों में अण् का अपवाद ढक् प्रत्यय होता है। **ढक्** में ककार इत्संज्ञक है और ढकार की **चुटू** से इत्संज्ञा प्राप्त होती है, उसे बाधकर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र से **एय्** आदेश होता है। **ढ** में अवशिष्ट अकार से मिलकर **एय** हो जाता है।

अग्नेरपत्यादि आग्नेयम्। अग्नि की सन्तान आदि। **अग्नेः अपत्यादि** अर्थ में **अग्नि+ङस्** में **अग्निकलिभ्यां ढग्वक्तव्यः** वार्तिक से **ढक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, ढकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र से **एय्** आदेश होने पर तद्धितप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अग्नि+एय** बना हुआ है। **किति च** सूत्र से आदिवृद्धि करने पर **आग्नि+एय** बना। **यस्येति च** से **इकार** का लोप होकर **आग्नेय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात्, सु, अम्, पूर्वरूप होकर **आग्नेयम्** सिद्ध हो जाता है।

कालेयम्। कलि की सन्तान अथवा कलि-सम्बन्धी। **कलेः अपत्यादि** अर्थ में **कलि+ङस्** में **अग्निकलिभ्यां ढग्वक्तव्यः** वार्तिक से **ढक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, ढकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र से **एय्** आदेश होने पर तद्धितप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **कलि+एय** बना हुआ है। **किति च** सूत्र से आदिवृद्धि करने पर **कालि+एय** बना। **यस्येति च** से **इकार** का लोप होकर **कालेय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात्, सु, अम्, पूर्वरूप होकर **कालेयम्** सिद्ध हो जाता है।

श्री भट्टोजिदीक्षित द्वारा विरचित वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का तद्धितीय अपत्यादिविकारान्त साधारण प्रत्ययों का प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथापत्याधिकारप्रकरणम्

अब तद्धितप्रकरण में **अपत्याधिकारप्रकरण** का प्रारम्भ होता है। इनमें प्रायः अपत्य-अर्थ में प्रत्ययों का विधान किया जायेगा। **तद्धिताः, समर्थानां, प्रथमाद्, वा** का अधिकार प्रत्ययविधायक सूत्रों में रहेगा ही। पहले की तरह प्रत्यय करने के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और प्रत्ययों के परे होने वाले गुण, वृद्धि, इवर्ण-अवर्ण का लोप आदि कार्य भी होंगे। अपत्यार्थ में लौकिक विग्रह में पुँल्लिङ्ग के साथ **पुमान्** और स्त्रीलिङ्ग के साथ **स्त्री** जोड़ने का प्रचलन है, जैसे- **दितेः अपत्यं पुमान्- दैत्यः** एवं **दितेः अपत्यं स्त्री- दैत्या** आदि। स्मरण रहे कि समास की तरह तद्धित में भी अलौकिक विग्रह से ही प्रत्यय होते हैं।

१०७९. स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात् ४।१।८७॥

'धान्यानां भवने-' (सू.१८०२) इत्यतः प्रागर्थेषु स्त्रीपुंसाभ्यां क्रमान्नञ्स्नञौ स्तः। स्त्रैणः। पौंस्नः। वत्यर्थे न, 'स्त्री पुंवच्च' (सू.९३२) इति ज्ञापकात्। स्त्रीवत्। पुंवत्।

स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्। स्त्री च पुमान् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः स्त्रीपुमांसौ, ताभ्याम्। नञ् च स्नञ् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो नञ्स्नञौ। **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **प्राक्, दीव्यतः** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ् इस सूत्र से पहले के अर्थों में स्त्री और पुंस् प्रातिपदिकों से तद्धितसंज्ञक क्रमशः नञ् और स्नञ् प्रत्यय होते हैं।

भवनात् शब्द का अभिप्राय **धान्यायां भवने क्षेत्रे खञ्** सूत्र से है। **प्राक्** शब्द का **भवनात्** के साथ अन्वय है। **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** सूत्र की उपस्थिति से क्रमशः **स्त्री**-शब्द से **नञ्** और **पुंस्** शब्द से **स्नञ्** प्रत्यय होंगे। सूत्र का तात्पर्य है कि यहाँ से लेकर **धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्** तक जितने अर्थ बताये गये हैं, उन सभी (अपत्य, भव, समूह आदि) अर्थों में **स्त्री**-शब्द से **नञ्** और **पुंस्**-शब्द से **स्नञ्** प्रत्यय होंगे। दोनों में **ञकार** इत्संज्ञक हैं। अतः क्रमशः **न** और **स्न** शेष बचते हैं। इनके ञित्

होने के कारण इनके परे रहते अङ्ग में **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि होगी। सूत्रस्थ **स्त्रीपुंसाभ्याम्** पद में **स्त्री** और **पुम्स्** शब्द में द्वन्द्वसमास के बाद **अचतुरविचतुरसुचतुर०** (५.४.७७) सूत्र से समासान्त **अच्** प्रत्यय किया गया है।

स्त्रैणः। स्त्री की सन्तान आदि। **स्त्रिया अपत्यम्** लौकिक विग्रह है। **स्त्री ङस्** से **स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्** से **नञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **स्त्री+न** बना। ञित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि होने पर ईकार के स्थान पर ऐकार हो गया, **स्त्रै+न** बना। **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से प्रत्यय के नकार के स्थान पर णकार आदेश होकर **स्त्रैण** बना। विभक्तिकार्य करके **स्त्रैणः** सिद्ध हो जाता है। प्राग्भवनादि अर्थों में इस प्रत्यय के होने के कारण **स्त्रियाः अपत्यं, स्त्रीषु भवः, स्त्रीणां समूहः** आदि विग्रहों में यही प्रत्यय होता है।

पौंस्नः। पुरुष की सन्तान आदि। **पुंसः अपत्यम्** लौकिक विग्रह है। **पुंस् ङस्** से **स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्** से **स्नञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **पुंस्+स्न** बना। ञित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि होने पर उकार के स्थान पर औकार हो गया, **पौंस्+स्न** बना। **पौंस्** में विभक्ति के लुक् हो जाने पर भी पूर्व विभक्ति को मान कर पदत्व होने से **पौंस्** के सकार का संयोगान्त लोप करके **पौंस्न** बना। विभक्तिकार्य करके **पौंस्नः** सिद्ध हो जाता है। **पुंसु भवः, पुंसां समूहः** अर्थ में भी यही प्रत्यय होता है। यहाँ पर यह प्रश्न हो सकता है कि **पुंस्**-शब्द से **स्नञ्** प्रत्यय की जगह **नञ्** प्रत्यय करके भी **पौंस्नः** बन सकता है, क्योंकि सकार प्रकृति में ही विद्यमान है? इसका समाधान यह है कि प्रकृति का सकार पदान्त में विद्यमान है, अतः उसका संयोगान्तलोप हो जाने के कारण सकारयुक्त **पौंस्नः** रूप नहीं बन पाता। इस लिये अलग से **स्नञ्** प्रत्यय का विधान है।

वत्यर्थे न, 'स्त्री पुंवच्च' इति ज्ञापकात्। स्त्रीवत्। पुंवत्। वत्यर्थ (सादृश्यबोधक) में **स्त्री** और **पुंस्** शब्दों से **नञ्** और **स्नञ्** प्रत्यय नहीं होते हैं। उसका कारण यह है कि पाणिनि जी ने **स्त्री पुंवच्च** ऐसा सूत्रपाठ किया है और उन्होंने **पुंस्** शब्द से **वति** प्रत्यय वाला **पुंवत्** शब्द का प्रयोग किया है किन्तु **स्नञ्** प्रत्यय का प्रयोग नहीं किया है। यहाँ पर यह प्रश्न हो सकता है कि पाणिनि जी का निर्देश तो केवल **पुंस्** शब्द के लिये है, अतः **स्त्री** शब्द से वत्यर्थ में **नञ्** प्रत्यय क्यों न हो जाय? इसका समाधान यह है कि **नञ्** और **स्नञ्** ये दोनों प्रत्यय एक सूत्र से विहित होने के कारण उन दोनों के अभाव का ज्ञापक पाणिनि जी का उक्त प्रयोग माना गया है। महाभाष्य में जगह-जगह कहा गया है कि **योगापेक्षं ज्ञापकम्** अर्थात् ज्ञापक केवल एक शब्द के लिये नहीं हुआ करता अपितु एकयोग में पठित सभी शब्दों में होता है।

अब विशेष परिस्थितियों में तद्धित प्रत्यय का लुक् बताया जा रहा है-

१०८०. द्विगोर्लुगनपत्ये ४।१।८८॥

द्विगोर्निमित्तं यस्तद्धितोऽजादिरनपत्यार्थः प्राग्दीव्यतीयस्तस्य लुक् स्यात्। पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पुरोडाशः पञ्चकपालः। द्विगोर्निमित्तम् इति किम्? पञ्चकपालस्येदं खण्डं पाञ्चकपालम्। अजादिः किम्? पञ्चगर्गरूप्यम्। अनपत्ये किम्? द्वयोर्मित्रयोरपत्यं द्वैमित्रिः।

द्विगोर्लुगनपत्ये। न अपत्यम् अनपत्यं, तस्मिन् अनपत्ये, नञ्तत्पुरुषः। द्विगोः षष्ठ्यन्तं, लुक् प्रथमान्तम्, अनपत्ये सप्तम्यन्तम्। **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **प्राक्, दीव्यतः** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है। उत्तरसूत्र **गोत्रेऽलुगचि** से **अचि** पद का अपकर्षण किया जाता है और उसका **यस्मिन् विधिस्तदादावल्ग्रहणे** के नियम से **अजादेः** अर्थ बना लिया जाता है।

प्राग्दीव्यतीय अर्थों में विहित, अपत्य-अर्थ से भिन्न और द्विगु-समास का निमित्तक जो अजादि तद्धित प्रत्यय, उसका लुक् होता है।

लुक् प्रत्यय अदर्शन की संज्ञा है, अर्थात् प्रत्यय का अदर्शन (लोप) किया जाता है किन्तु **लोप** शब्द का प्रयोग न करके **लुक्** शब्द का प्रयोग किया गया है और इसका फल है **न लुमताङ्गस्य**। संख्यावाची शब्द पूर्वपद रहने पर किया गया समानाधिकरण कर्मधारयसमास द्विगुसंज्ञक होता है- **संख्यापूर्वो द्विगुः**। तद्धितार्थ का विषय उपस्थित होने पर **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** सूत्र के द्वारा समास किया जाता है।

यहाँ पर यह समस्या उपस्थित होती है कि पहले तद्धित प्रत्यय किया जाय या द्विगुसमास। यदि **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** सूत्र से पहले समास किया जाय तो प्रातिपदिकसंज्ञा होकर तद्धित प्रत्यय की उत्पत्ति होगी। इसके साथ ही यह भी विचारणीय है कि तद्धितार्थ में समास का विधान होने के कारण समास की प्राप्ति तब तक नहीं हो सकेगी, जब तक तद्धित प्रत्यय की उत्पत्ति नहीं मानी जायेगी। इस तरह **इतरेतराश्रयदोष** उपस्थित होता है। इसका निवारण करने के लिये आचार्यों ने समासविधायक उक्त सूत्र के **तद्धितार्थे** अंश में विषय-सप्तमी माना है और **तद्धितार्थ का विषय उपस्थित होने पर** ऐसे अर्थ की कल्पना करके पहले समास कर दिया जाता है, उसके पश्चात् तद्धित प्रत्यय किया जाता है। यह बात हम **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** सूत्र में कह चुके हैं।

पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पुरोडाशः पञ्चकपालः। पाँच कपालों (मिट्टी के पात्रविशेष) में संस्कार किया गया (पकाया हुआ) पुरोडाश (हविविशेष)। **पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः** लौकिक विग्रह और **पञ्चन्+सुप् कपाल+सुप्** अलौकिक विग्रह में तद्धित के लिए तैयार किये गये वाक्य होने के कारण तद्धितार्थ विषय मान कर **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** से समास हुआ। दोनों पदों में समानविभक्ति **सुप्** ही है।

समास के बाद **पञ्चन्+सुप्+कपाल+सुप्** की समासप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से दोनों प्रत्ययों का लुक् होकर **पञ्चन्+कपाल** बना है। **नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य** सूत्र से नकारलोप होकर **पञ्चकपाल** यह द्विगुसंज्ञक शब्द बना हुआ है। इसके बाद **पञ्चकपाल+सुप्** इस सप्तम्यन्त प्रातिपदिक से **संस्कृतं भक्षाः** (४.२.१५) सूत्र के द्वारा **अण्** होने पर तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **पञ्चकपाल+अ** बना है। यह प्रत्यय अपत्य अर्थ में विहित नहीं है। अतः **द्विगोर्लुगनपत्ये** सूत्र से **अण्** प्रत्यय का लुक् हो जाता है। लुक्-शब्द के द्वारा प्रत्यय का अदर्शन हुआ है, अतः **न लुमताङ्गस्य** से निषेध होने के कारण प्रत्ययलक्षण भी नहीं हो सकता। फलतः **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि भी नहीं होती और लुक् के कारण ही अजादि प्रत्यय के परे न मिलने के कारण **यचि भम्** से भसंज्ञा भी नहीं हो पाती। फलतः **यस्येति च** से अकार का लोप भी नहीं हो पाता। इस तरह **पञ्चकपाल** शब्द बना हुआ है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर स्वादिकार्य होकर **पञ्चकपालः** सिद्ध हो जाता है।

द्विगोर्निमित्तम् इति किम्? पञ्चकपालस्येदं खण्डं पाञ्चकपालम्। प्रकृत सूत्र में **द्विगोः** पद का **द्विगोर्निमित्तस्य** अर्थ किया गया है। यहाँ पर यह प्रश्न किया जा रहा है कि **द्विगोः** पद की उपयोगिता क्या है? उसका प्रयोजन है **पाञ्चकपालम्** अर्थ में तद्धित प्रत्यय का लुक् न हो अर्थात् द्विगु-समास के अतिरिक्त अर्थ की विवक्षा में तद्धित प्रत्यय न हो। यहाँ पर **पञ्चकपालस्य इदं खण्डम्** अर्थ में तद्धितप्रत्यय **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** से समास के लिये निमित्त नहीं है। अर्थात् पहले **पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः** अर्थ में विहित तद्धितप्रत्यय का लुक् होकर **पञ्चकपाल** बन जाने के बाद पुनः **तस्येदम्** अर्थ में अण् प्रत्यय है। इस तरह पूर्वप्रत्यय तो तद्धितार्थविषय था किन्तु द्वितीयप्रत्यय द्विगुसमास का निमित्त नहीं है। अतः द्वितीय अण् प्रत्यय का लुक् नहीं हुआ। फलतः **पञ्चकपाल+अ** में आदिवृद्धि, **यस्येति च** से अकारलोप होकर **पाञ्चकपाल** और स्वादिकार्य होकर **पाञ्चकपालम्** सिद्ध हो जाता है।

अजादिः किम्? पञ्चगर्गरूप्यम्। पहले यह कहा गया था कि उत्तरसूत्र **गोत्रेऽलुगचि** से प्रकृतसूत्र में **अचि** पद का अपकर्षण किया जाता है। ऐसा करने का प्रयोजन यह है कि अजादि-प्रत्यय का ही लुक् हो, हलादि-प्रत्यय का लुक् न हो। अतः **पञ्चगर्गरूप्यम्** में **रूप्य**-प्रत्यय का लुक् नहीं होता। यहाँ पर **पञ्चभ्यो गर्गेभ्यः आगतम्** अर्थ में तद्धितार्थविषयक मानकर समासादि करके **पञ्चगर्ग** शब्द बन जाने पर **हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः** सूत्र से **रूप्य** प्रत्यय हुआ है और यह अजादि न होकर हलादि है। अतः तद्धितार्थद्विगुसमास का निमित्तक होने पर भी प्रकृतसूत्र से उसका लुक् नहीं होता। फलतः **पञ्चगर्गरूप्यम्** सिद्ध हो जाता है।

अनपत्ये किम्? द्वयोर्मित्रयोरपत्यं द्वैमित्रिः। प्रकृतसूत्र में **अनपत्ये** शब्द के

द्वारा अपत्यार्थक प्रत्यय के लुक् का निषेध किया गया है, उसका प्रयोजन यह है कि **द्वैमित्रिः** (दो मित्रों की सन्तान) आदि की सिद्धि हो सके। यहाँ पर **द्वयोर्मित्रयोः अपत्यं पुमान्** अर्थ में तद्धितार्थविषय में द्विगुसमासादि होकर **द्विमित्र** शब्द बना है और उससे **अत इञ्** सूत्र से **इञ् (इ)** प्रत्यय होने पर **द्विमित्र+इ** बना है। अपत्यार्थ में ही विहित अजादि प्रत्यय **इ** होने के कारण प्रकृतसूत्र से लुक् नहीं होता। अतः **तद्धितेष्वचामादेः** सूत्र से आदिवृद्धि और **यस्येति च** से अकारलोप होकर **द्वैमित्रि** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **द्वैमित्रिः** सिद्ध हो जाता है।

बालमनोरमाकार ने यहाँ पर एक प्रत्युदाहरण दिया है- **प्राग्दीव्यतीयस्येति किम्? पञ्चकपालीयम्।** अर्थात् प्रकृतसूत्र में **प्राग्दीव्यतीय** का आधिकारिक प्रभाव होने के कारण **पञ्चकपाल+छ**, **पञ्चकपाल+ईय** में अजादि और अनपत्यार्थक **इय** का लुक् नहीं होता, क्योंकि यहाँ पर प्राग्दीव्यतीय से बहिर्भूत **तस्मै हितम्** सूत्र के द्वारा छ-प्रत्यय किया गया है। यह सूत्र प्राग्दीव्यतीय अर्थ के पश्चात् का सूत्र है तथा प्रकृतसूत्र से जो लुक् होता है, वह प्राग्दीव्यतीय प्रत्ययों का ही है, अन्य प्रत्ययों का नहीं होता। अतः **पञ्चकपालीयम्** बन जाता है।

१०८१. गोत्रेऽलुगचि ४।१।८९॥

अजादौ प्राग्दीव्यतीये विवक्षिते गोत्रप्रत्ययस्यालुक् स्यात्।
गर्गाणां छात्राः, 'वृद्धाच्छः' (सू.१३३७)।

गोत्रेऽलुगचि। न लुक् अलुक्। गोत्रे सप्तम्यन्तम्, अलुक् प्रथमान्तम्, अचि सप्तम्यन्तम्। प्राग्दीव्यतोऽण् से **प्राक्, दीव्यतः** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, तद्धिताः** आदि का अधिकार आ रहा है।

अजादि प्राग्दीव्यतीय प्रत्यय विवक्षित होने पर गोत्र प्रत्यय का लुक् नहीं होता।

अचि में विषयसप्तमी होने के कारण अजादिप्रत्यय की विवक्षा में, ऐसा अर्थ बना लिया जाता है। सामान्यतया **यञ्** और **अञ्** इन गोत्रप्रत्ययों का बहुवचन में **यञञोश्च** सूत्र के द्वारा लुक् किया जाता है किन्तु अजादि प्राग्दीव्यतीय तद्धित प्रत्यय की विवक्षा होने पर गोत्र-प्रत्यय के लोप न होने का निर्देश प्रकृतसूत्र से दिया गया है। गोत्रप्रत्यय के बाद भी पुनः प्राग्दीव्यतीय प्रत्यय की विवक्षा होने पर प्रकृतसूत्र की उपयोगिता है। प्रकृतसूत्र का उदाहरण अगले सूत्र में दिया गया है- **गार्गीयाः**।

गोत्रसंज्ञक-प्रत्यय के विषय में आगे वक्ष्यमाण **अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्** सूत्र की व्याख्या देखनी चाहिये।

गर्गाणां छात्राः, 'वृद्धाच्छः'। अर्थात् **गर्गाणां छात्राः** विग्रह में **वृद्धाच्छः** सूत्र के द्वारा **छ** प्रत्यय किया जाता है। इसके पूर्व **गर्गस्य गोत्रापत्यम्** अर्थ में **गर्गादिभ्यो यञ्**

सूत्र के द्वारा **यञ्** प्रत्यय होकर **गार्ग्य** शब्द बनता है। इसके बाद **यञञोश्च** सूत्र के द्वारा उक्त प्रत्यय का लुक् होकर **गर्ग** शब्द ही बनता है, जिसका बहुवचन में **गर्गाः** बन जाता है। यहाँ तो **गार्ग्य-आम्** से ही छ-प्रत्यय किया जाता है। छ-प्रत्यय के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र के द्वारा ईय् आदेश होकर **गार्ग्य+ईय** बन जाता है। तादृश अजादिप्रत्यय की विवक्षा रहते ही **यञञोश्च** सूत्र से **यञ्** प्रत्यय का लुक् प्राप्त होने पर **गोत्रेऽलुगचि** सूत्र के द्वारा उसका अलुक् कर दिया जाता है। इसके बाद छ-प्रत्यय करके **गार्ग्य+ईय** बना ही है। यकार से परवर्ती अकार का **यस्येति च** सूत्र के द्वारा लोप होने पर **गार्ग्य्+ईय** बन जाता है। अब यकार का लोप करने के लिये अगले सूत्र को उपस्थापित करते हैं-

१०८२. आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति ६।४।१५१॥

हलः परस्यापत्ययकारस्य लोपः स्यात् तद्धिते परे, न त्वाकारे।
गार्गीयाः। प्राग्दीव्यतीये किम्? गर्गेभ्यो हितं गर्गीयम्।
अचि किम्? गर्गेभ्य आगतं गर्गरूप्यम्।

आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति। अपत्यस्य इदम् आपत्यं, तस्य आपत्यस्य। न आत् अनात्, तस्मिन् अनाति। आपत्यस्य षष्ठ्यन्तं, चाव्ययं, तद्धिते सप्तम्यन्तम्, अनाति सप्तम्यन्तम्। **अङ्गस्य** और **भस्य** का अधिकार है। **हलस्तद्धितस्य** से **हलः** तथा **सूर्यातिष्यागस्त्यमत्स्यानां य उपधायाः** से **यः** और **ढे लोपोऽकद्र्वाः** से **लोपः** की अनुवृत्ति आती है।

हल् से परे अपत्य प्रत्यय के यकार का लोप होता है तद्धित के परे रहते किन्तु आकार के परे रहते लोप नहीं होता।

गार्गीयाः। गर्गगोत्रजों के छात्रगण। **गर्गस्य गोत्रापत्यम्** अर्थ में **गर्गादिभ्यो यञ्** सूत्र के द्वारा **यञ्** प्रत्यय होकर **गार्ग्य** शब्द बनता है। इसके बाद **गार्ग्यस्य छात्राः** अर्थ में **वृद्धाच्छः** सूत्र के द्वारा **छ** प्रत्यय की विवक्षा है। ऐसी स्थिति में **यञञोश्च** सूत्र के द्वारा **यञ्** प्रत्यय का लुक् प्राप्त था, उसका **गोत्रेऽलुगचि** सूत्र के द्वारा उसका अलुक् कर दिया जाता है। इसके बाद छ-प्रत्यय करने पर तो **गार्ग्य+ईय** बना है। यकार से परवर्ती अकार का **यस्येति च** सूत्र के द्वारा लोप होने पर **गार्ग्य्+ईय** बन जाता है। **आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति** सूत्र के द्वारा यकार का लोप कर दिया जाता है। यहाँ आकार परे नहीं है और अपत्यार्थक प्रत्यय भी है और वह हल् गकार से परे है। अतः **गार्ग्+ईय=गार्गीय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **गार्गीयाः** सिद्ध हो जाता है। यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि यञ् का लुक् करो या अकार और यकार का एक-एक करके लुक् करो, बात तो एक ही है। तब फिर यञ् का अलुक् क्यों किया गया? इसका उत्तर यह है कि यञ् का लुक् करने पर आदिवृद्धि नहीं हो पायेगी किन्तु

लोप करने पर तो स्थानिवद्भाव से ञित् परे मानकर आदिवृद्धि होकर **गार्गीयाः** बनता है। यञ् का लुक् करने पर तो **गर्गीयाः** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता।

प्राग्दीव्यतीये किम्? गर्गेभ्यो हितं गर्गीयम्। प्रकृतसूत्र में **प्राग्दीव्यतीये** पद की अनुवृत्ति का प्रयोजन यह है कि प्राग्दीव्यतीय प्रत्ययों का ही अलुक् होता है और उससे बहिर्भूत प्रत्ययों का तो लुक् हो जाता है। अतः **गर्गेभ्यो हितम्** अर्थ में विहित छ-प्रत्यय के परे रहते **यञ्** प्रत्यय का लुक् हो गया है। फलतः आदिवृद्धि भी नहीं हुयी और **गर्गीयम्** बन जाता है।

अचि किम्? गर्गेभ्य आगतं गर्गरूप्यम्। पूर्वसूत्र **गोत्रेऽलुगचि** सूत्र में पठित **अचि** पद का प्रयोजन यह है कि अजादि-प्रत्यय का ही लुक् हो, हलादि-प्रत्यय का लुक् न हो। अतः **गर्गेभ्य आगतम्** अर्थ में विहित हलादि **रूप्य**-प्रत्यय का लुक् नहीं होता। यहाँ पर **गर्गेभ्यः आगतम्** अर्थ में **हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः** सूत्र से **रूप्य** प्रत्यय हुआ है और यह अजादि न होकर हलादि है। अतः **गर्ग+य** में प्रत्यय का लुक् हो जाता है, जिससे ञित् प्रत्यय के अभाव में आदिवृद्धि नहीं होती। बाद में विहित **रूप्य** प्रत्यय तो ञित् है नहीं। अतः उसके परे रहते भी आदिवृद्धि नहीं होती। फलतः **गर्गरूप्यम्** सिद्ध हो जाता है। ध्यान रहे कि पहले **गर्गाणां गोत्रापत्यम्** में **यञ्** प्रत्यय करके **गार्ग्य**-शब्द बनता है, उसके बाद **हित** आदि अर्थ में **रूप्य** प्रत्यय किया जाता है। उक्त प्रत्यय की विवक्षा मात्र में **यञञोश्च** सूत्र से **यञ्** का लुक् होकर **गर्ग** ही बनता है और रूप्य-प्रत्यय करते समय **गार्ग्य** से **गर्ग** बना हुआ है। इसी प्रकार यहाँ **आपत्यस्य** कहने के कारण एतदतिरिक्त अन्य अर्थ में विहित प्रत्यय के यकार का लोप नहीं होता। जैसे कि **साङ्काश्यकः**। यहाँ पर **सङ्काश** शब्द से **वुञ्छण्कठजिलसेनिरढ०** (४.२.८०) सूत्र के **सङ्काशादिभ्यो ण्यः** अर्थ के अनुसार **ण्य** प्रत्यय होने के बाद अनुबन्धलोप होकर **साङ्काश्य** बनता है। यदि प्रकृत सूत्र में **आपत्यस्य** न कहते तो हलः परत्वात् इस **य्** का भी लोप हो जाता।

एवमेव **अनाति** कहने का भी फल यह है कि **गार्ग्यायणः** आदि में **गार्ग्य्+आयन** की अवस्था में आकार परे रहते **य्** प्रत्यय का लोप न हो।

१०८३. यूनि लुक् ४।१।९०॥

अजादौ प्राग्दीव्यतीये प्रत्यये विवक्षिते युवप्रत्ययस्य लुक् स्यात्।
ग्लुचुकस्य गोत्रापत्यं ग्लुचुकायनिः।
वक्ष्यमाणः फिन्। ततो यून्यण्- ग्लौचुकायनः।
तस्य च्छात्रोऽपि ग्लौचुकायनः। अणो लुकि वृद्धत्वाभावाच्छो न।

यूनि लुक्। युवन्-शब्दस्य सप्तम्यन्तं रूपं यूनि, लुक् प्रथमान्तम्। **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **प्राक्, दीव्यतः** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

अजादि प्राग्दीव्यतीय प्रत्ययों की विवक्षा में युव-संज्ञक प्रत्यय का लुक् होता है।

युवसंज्ञक-प्रत्ययों के ज्ञानार्थ आगे वक्ष्यमाण **जीवति तु वंश्ये युवा** (१०९०) सूत्र की व्याख्या देखनी चाहिये।

ग्लुचुकस्य गोत्रापत्यं ग्लुचुकायनिः। वक्ष्यमाणः फिन्। ततो यून्यण्, ग्लौचुकायनः। तस्य च्छात्रोऽपि ग्लौचुकायनः। ग्लुचुक नामक व्यक्ति की युवसंज्ञक सन्तान को **ग्लौचुकायनः** कहा जाता है और उक्त सन्तान के छात्र को भी **ग्लौचुकायनः** कहा जाता है। **ग्लुचुकस्य गोत्रापत्यं पुमान्** अर्थ में ग्लुचुक+ङस् इस षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से वक्ष्यमाण सूत्र **प्राचामवृद्धात् फिन् बहुलम्** से **फिन्** प्रत्यय होने पर नकार की इत्संज्ञा होकर लोप, फकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र से **आयन्** आदेश होकर **ग्लुचुक+ङस्+आयनि** बना है। तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **ग्लुचुकायनि** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होने पर **ग्लुचुकायनिः** सिद्ध होता है। इसके बाद **ग्लुचुकायनेः अपत्यम्** अर्थ में वक्ष्यमाण **तस्यापत्यम्** सूत्र के द्वारा **अण्** प्रत्यय होने पर **ग्लुचुकायनि+ङस्+अ** बना है। पुनः तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा होकर सुप् लुक् होने पर **ग्लुचुकायनि+अ** बन जाता है। अण्-प्रत्यय के णित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** सूत्र से आदिवृद्धि होने पर उकार को औकार होकर **ग्लौचुकायनि+अ** बन जाता है। **यस्येति च** से इकार का लोप होकर **ग्लौचुकायन** और स्वादिकार्य होकर **ग्लौचुकायनः** सिद्ध होता है। इस बीच में हमें **ग्लौचुकायनस्य छात्राः** अर्थ में **तस्येदम्** सूत्र के द्वारा अजादि अण्-प्रत्यय की विवक्षा होने के कारण **तस्यापत्यम्** सूत्र से विहित युवसंज्ञक **अण्** प्रत्यय का लुक् किया जाता है। निमित्त का लोप होने पर नैमित्तिक वृद्धि भी निवृत्त हो जाती है- **निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः।** अतः **ग्लुचुकायनि** रह जाता है। अब **तस्येदम्** सूत्र से अण् प्रत्यय करने पर पुनः वृद्धि और इकार का लोप होकर **ग्लौचुकायन** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **ग्लौचुकायनः** सिद्ध हो जाता है।

अब प्रश्न होता है कि छात्रार्थ में अण् करने के बाद युवापत्य अर्थ में विहित अण् का **यस्येति च** सूत्र से लोप करने पर भी छात्रार्थ में **ग्लौचुकायनः** ही बनता है तो तत्सिद्धि के लिये युवप्रत्यय के लुक् करने का क्लेश क्यों किया गया? इसका समाधान मूलकार दे रहे हैं-

अणो लुकि वृद्धत्वाभावाच्छो न। युवापत्यार्थक अण् का लुक् करने से तन्निमित्तक वृद्धि की भी निवृत्ति हो जाती है। अतः **ग्लुचुकायन** के रूप में आने पर **छात्रार्थक** अण् प्रत्यय किया जाता है। यदि ऐसा न किया जाता अर्थात् **ग्लौचुकायन** शब्द से ही छात्रार्थक प्रत्यय किया जाता तो तादृश वृद्धियुक्त **ग्लौचुकायन** शब्द की **वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद् वृद्धम्** सूत्र से वृद्धसंज्ञा हो जाती और वृद्धप्रयुक्त **वृद्धाच्छः** सूत्र

से छ प्रत्यय होने की आपत्ति होती। अण् के लुक् से वृद्धि की निवृत्ति हो जाने के कारण **ग्लुचुकायन**-शब्द वृद्धसंज्ञक नहीं है, फलतः उक्त छ-प्रत्यय नहीं होता। यही युवप्रत्यय के लुक् का लाभ है।

१०८४. पैलादिभ्यश्च २।४।५९॥

एभ्यो युवप्रत्ययस्य लुक्।

'पीलाया वा' (सू.११२१) इत्यण्। तस्माद् 'अणो द्व्यचः' (सू.११८०) इति फिञ्। तस्य लुक्। पैलः पिता पुत्रश्च। 'तद्राजाच्चाणः' (ग.सू.२१)। 'द्व्यञ्मगध-' इत्यण्णन्तादाङ्गशब्दाद् 'अणो द्व्यचः-' (सू.११८०) इति फिञो लुक्। आङ्गः पिता पुत्रश्च।

पैलादिभ्यश्च। पैलः आदिर्येषां ते पैलादयस्तेभ्यः पैलादिभ्यः, बहुव्रीहिः। पैलादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः** सूत्र से **यूनि लुक्** की अनुवृत्ति आती है।

गोत्रवाची पैल आदि गणपठित शब्दों से भी युवार्थक प्रत्यय का लुक् होता है।

अजादि प्रत्यय से भिन्न प्रत्ययों की विवक्षा में लुक् के लिये प्रकृतसूत्र की सार्थकता है।

पैलादिगणः- पैल, शालङ्कि, सात्यकि, सात्यङ्कामि, राहवि, रावणि, औदञ्चि, औरव्रजि, औदमेधि, औदवज्रि (औदमज्जि), औदभृज्जि, दैवस्थानि, पैङ्गलोदायनि, राहक्षति, भौलिङ्गि, राणि, औदन्यि, औद्गाहमानि, औज्जिहानि, औदशुद्धि, तद्राजाच्चाणः-तद्राज। यह आकृतिगण है।

'पीलाया वा' इत्यण्। तस्माद् 'अणो द्व्यचः' इति फिञ्। तस्य लुक्। आगे **पैलः** की सिद्धि में **पीलाया वा** वार्तिक से अण् प्रत्यय होता है और उसके बाद वक्ष्यमाण **अणो द्व्यचः** सूत्र से **फिञ्** प्रत्यय होता है और उसी प्रत्यय का प्रकृतसूत्र से लुक् किया जाता है।

पैलः पिता पुत्रश्च। पीला के गोत्र में उत्पन्न सन्तान और उसके अनन्तर युवापत्य। **पीलायाः गोत्रापत्यम्** अर्थ में **पीला+ङस्** में **स्त्रीभ्यो ढक्** सूत्र से प्राप्त ढक् प्रत्यय को बाधकर **पीलाया वा** वार्तिक के द्वारा अण् प्रत्यय होने पर तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **पीला+अ** बना है। **तद्धितेष्वचामादेः** सूत्र से ईकार की वृद्धि ऐकार और **यस्येति च** से आकार का लोप होकर **पैल** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पैलः** सिद्ध हो जाता है। पुनः **पैलस्य अपत्यं युवा** अर्थ में **अणो द्व्यचः** सूत्र से **फिन्** प्रत्यय, आयन् आदेश होकर **पैल+आयनि** बनने के बाद उसका **पैलादिभ्यश्च** सूत्र के द्वारा लुक् होकर **पैल** ही बनता

है। स्वादिकार्य होकर **पैलः** सिद्ध हो जाता है। इस तरह **पीला** की सन्तानों में पिता भी पैल और उसकी सन्तान भी पैल हो जाते हैं।

'तद्राजाच्चाणः'। यह पैलादिगण का अन्तर्गण सूत्र है। सूत्रार्थः- तद्राजसंज्ञक अण्-प्रत्ययान्त शब्द से युवापत्य अर्थ में विहित प्रत्यय का लुक् होता है। **तद्राज** एक संज्ञा है और वह **ते तद्राजाः** सूत्र से तद्राजसंज्ञा की जाती है। अष्टाध्यायीक्रम में **जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्** (४.१.१६३) से लेकर **साल्वावयवप्रत्यग्रथकलकूटाश्मकादिञ्** (४.१.१७३) तक के सूत्रों से विहित अञ्, अण्, ञ्यङ् आदि प्रत्ययों की तद्राजसंज्ञा होती है। तद्राजसंज्ञक प्रत्ययों का बहुवचन की विवक्षा में **तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्** (२.४.६२) सूत्र से लुक् किया जाता है। यहाँ पर प्रकृत में अणन्त शब्दों से विहित युवार्थक प्रत्यय का लुक् किया जा रहा है।

'द्व्यञ्मगध-' इत्यण्णन्तादाङ्गशब्दाद् 'अणो द्व्यचः-' इति फिञो लुक्। आगे वक्ष्यमाण उदाहरण **आङ्गः**-शब्द में **द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसादण्** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर उस अणन्त शब्द से पुनः **अणो द्व्यचः** सूत्र के द्वारा **फिञ्** प्रत्यय होता है, उसी का प्रकृत गणसूत्र **तद्राजाच्चाणः** से लुक् किया जाता है।

आङ्गः पिता पुत्रश्च। अङ्गदेश के राजा के गोत्र में उत्पन्न वृद्ध और युवा (पिता, पुत्र)। अङ्ग-शब्द देशविशेष का वाचक है। उस देश के राजा एवं उस राजा का गोत्रापत्य दोनों **आङ्ग** कहलाते हैं। **अङ्गस्य राजा** अर्थ में **द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसादण्** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि और अकारलोप होकर **आङ्ग** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आङ्गः** सिद्ध हो जाता है। पुनः **आङ्गस्य गोत्रापत्यम्** अर्थ में अणन्त **आङ्ग**-शब्द से **अणो द्व्यचः** सूत्र के द्वारा **फिन्** प्रत्यय होता है, उसी का प्रकृत गणसूत्र **तद्राजाच्चाणः** से लुक् होने पर **आङ्गः** ही बनता है। इस तरह पिता भी **आङ्गः** और पुत्र भी **आङ्गः** ही कहलाता है।

१०८५. इञः प्राचाम् २।४।६०॥

गोत्रे य इञ् तदन्ताद् युवप्रत्ययस्य लुक् स्यात् तच्चेद् गोत्रं प्राचां भवति। पन्नागारस्य अपत्यम्, 'अत इञ्' (सू.१०९५),'यञिञोश्च' (सू.११०३) इति फक्, पान्नागारिः पिता पुत्रश्च। प्राचां किम्? दाक्षिः पिता, दाक्षायणः पुत्रः।

इञः प्राचाम्। इञः पञ्चम्यन्तं, प्राचां षष्ठ्यन्तम्। **ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः** सूत्र से **यूनि लुक्** की अनुवृत्ति आती है। अर्थतः इञ्-प्रत्यय गोत्रार्थक माना जाता है।

गोत्र-अर्थ में जो इञ्-प्रत्यय, तदन्त से विहित युवप्रत्यय का लुक् होता है, यदि वह गोत्र पूर्वदेशीय लोगों का हो तो।

सूत्रस्थ **प्राचाम्** पद देशवाची है, न कि विकल्पार्थक। वह देश प्राच्य होना चाहिये। यह **प्राचाम्** पद **गोत्र** का विशेषण बन जाता है।

पन्नागारस्य अपत्यम्, 'अत इञ्' 'यञिञोश्च' इति फक्, पान्नागारिः पिता पुत्रश्च। प्राग्देश में **पन्नागार** नामक कोई व्यक्ति था, उसके गोत्रापत्य अर्थ में **पन्नागारस्य गोत्रापत्यम्** विग्रह करके **पन्नागार+ङस्** में **अत इञ्** सूत्र से **इञ्** प्रत्यय करने पर तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **पन्नागार+इ** बना है। **तद्धितेष्वचामादेः** सूत्र से आदिवृद्धि और **यस्येति च** सूत्र से अकारलोप होकर **पान्नागारि** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पान्नागारिः** सिद्ध हो जाता है। **पान्नागारेः युवापत्यम्** अर्थ में इञन्त **पान्नागारि**-शब्द से **यञिञोश्च** सूत्र के द्वारा फक् प्रत्यय होने पर उसका **इञः प्राचाम्** सूत्र के द्वारा लुक् हो जाने से **पान्नागारिः** ही बनता हैं। इस तरह पिता भी **पान्नागारिः** और पुत्र भी **पान्नागारिः** हो जाते हैं।

प्राचां किम्? दाक्षिः पिता, दाक्षायणः पुत्रः। प्रकृतसूत्र में **प्राचाम्** पद का यह प्रयोजन है कि प्राग्देशवाची होने पर ही यह लुक् होता है किन्तु उदीच्य आदि देशवासी होने पर नहीं होता। अतः **दाक्षिः पिता, दाक्षायणः पुत्रः** में फक् प्रत्यय का लुक् नहीं हुआ है। यहाँ पर **दक्षस्य गोत्रापत्यम्** विग्रह करके **दक्ष+ङस्** में अत इञ् सूत्र से **इञ्** प्रत्यय करने पर तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **दक्ष+इ** बना है। **तद्धितेष्वचामादेः** सूत्र से आदिवृद्धि और **यस्येति च** सूत्र से अकारलोप होकर **दाक्षि** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **दाक्षिः** सिद्ध हो जाता है। यह पिता का वाचक है। अतः **दाक्षेः युवापत्यम्** अर्थ में इञन्त **दाक्षि**-शब्द से **यञिञोश्च** सूत्र के द्वारा फक् प्रत्यय होने पर उसका **इञः प्राचाम्** सूत्र के द्वारा लुक् नहीं होता, क्योंकि **दाक्षि** और **दाक्षायण** प्राग्देशवासी नहीं हैं। फलतः फकार के स्थान पर आयन् आदेश होकर **दाक्षि+आयन** बनता है। इकार का **यस्येति च** से लोप होकर **दाक्षायन** तथा नकार को णत्व होकर **दाक्षायण**, एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **दाक्षायणः** सिद्ध हो जाता है। यह **दाक्षि** के पुत्र का वाचक शब्द है।

१०८६. न तौल्वलिभ्यः २।४।६१॥

तौल्वल्यादिभ्यः परस्य युवप्रत्ययस्य लुक् न स्यात्। पूर्वेण प्राप्तः। तुल्वलः, तत इञि फक्-तौल्वलिः पिता, तौल्वलायनः पुत्रः।

न तौल्वलिभ्यः। नाव्ययं, तौल्वलिभ्यः पञ्चम्यन्तम्। **ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः** सूत्र से **यूनि लुक्** की अनुवृत्ति आती है।

गोत्रवाची तौल्वलि आदि शब्दों से गोत्र-अर्थ में विहित युवप्रत्यय का लुक् नहीं होता।

पूर्वेण प्राप्तः। पूर्वसूत्र **इञः प्राचाम्** से प्राप्त लुक् का निषेध किया गया है। **तौल्वलिभ्यः** में बहुवचन गणपाठ का सूचक है।

तुल्वलः, तत इञि फक्- तौल्वलिः पिता, तौल्वलायनः पुत्रः। तुल्वल नामक कोई प्राचीन व्यक्ति, उनकी युवा सन्तान **तौल्वलिः** और तौल्वलि की युवा सन्तान **तौल्वलायनः**। **तुल्वलस्य गोत्रापत्यम्** अर्थ में **तुल्वल+ङस्** षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से **अत इञ्** सूत्र से इञ् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकार का लोप होकर **तौल्वलि** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **तौल्वलिः** सिद्ध हो जाता है। अब **तौल्वलेः युवापत्यम्** अर्थ में **तौल्वलि+ङस्** षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से **यञिञोश्च** सूत्र के द्वारा **फक्** प्रत्यय होने पर **इञः प्राचाम्** से उसका लुक् प्राप्त था, उसका **न तौल्वलिभ्यः** से निषेध होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, फकार के स्थान पर **आयन्** आदेश, इकार का लोप करके **तौल्वलायन** शब्द बनता है तथा एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **तौल्वलायनः** सिद्ध हो जाता है। इस तरह पिता को **तौल्वलिः** और उनके पुत्र को **तौल्वलायनः** कहा जाता है।

तौल्वल्यादिगणः- तौल्वलि धारणि पारणि रावणि दैलीपि दैवति वार्कलि नैवति(नैवकि) दैवमित्रि (दैवमति) दैवयज्ञि चाफट्टकि बैल्वकि वैकि (वैङ्कि) आनुहारति (आनुराहति) पौष्करसादि आनुरोहति आनुति नैमिश्रि प्राडाहति बान्धकि वैशीति आसिनासि आहिंकस आसुरि आसिबन्धकि पौष्पिकारेणुपालि वैकर्णि वैरकि वैहति।

१०८७. फक्फिञोरन्यतरस्याम् ४।१।९१॥

'यूनि लुक्' (सू.१०८३) इति नित्ये लुकि प्राप्ते विकल्पार्थं सूत्रम्। कात्यायनस्य छात्राः कातीयाः, कात्यायनीयाः। यस्कस्यापत्यं यास्कः, शिवाद्यण्, तस्यापत्यं युवा यास्कायनिः। 'अणो द्व्यचः-' (सू.११८०) इति फिञ्। तस्य छात्रा यास्कीया यास्कायनीयाः।

फक्फिञोरन्यतरस्याम्। फक् च फिञ् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः फक्फिञौ, तयोः फक्फिञोः। फक्फिञोः षष्ठ्यन्तम्, अन्यतरस्यां विभक्तिप्रतिरूपकमव्ययम्। **यूनि लुक्** की अनुवृत्ति आती है।

प्राग्दीव्यतीय अजादि प्रत्यय की विवक्षा में युवार्थक फक् और फिञ् प्रत्ययों का विकल्प से लुक् होता है।

'यूनि लुक्' इति नित्ये लुकि प्राप्ते विकल्पार्थं सूत्रम्। अर्थात् **यूनि लुक्** सूत्र से युवार्थक प्रत्यय का नित्य से लुक् प्राप्त होने पर प्रकृतसूत्र से विकल्प से किया जा रहा है।

कात्यायनस्य छात्राः- कातीयाः, कात्यायनीयाः। कात्यायन के छात्र **कातीय** और **कात्यायनीय** दोनों कहलाते हैं। **कतस्य गोत्रापत्यम्** अर्थ में **कत+ङस्** षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से **गर्गादिभ्यो यञ्** सूत्र से यञ्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **कात्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कात्यः** सिद्ध हो जाता है। इसके बाद **कात्यस्य युवापत्यम्** अर्थ में **कात्य+ङस्** षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से **यञिञोश्च** सूत्र से फक्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, फकार के स्थान पर **आयन्** आदेश, अकारलोप होकर **कात्यायन** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कात्यायनः** सिद्ध हो जाता है। इसके बाद **कात्यायनस्य छात्राः** विग्रह में **तस्येदम्** अर्थ में **वृद्धाच्छः** सूत्र से **छ**-प्रत्यय की विवक्षा है। अतः अजादिप्रत्यय की विवक्षा में युवप्रत्यय **फक् (आयन)** का **यूनि लुक्** सूत्र से नित्य से लुक् प्राप्त होने पर उसे बाधकर **फक्फिञोरन्यतरस्याम्** सूत्र के द्वारा विकल्प से लुक् करने पर आयन्-प्रत्यय की निवृत्ति हो जाती है और **वृद्धाच्छः** से **छ**-प्रत्यय, उसके स्थान पर **ईय्** आदेश होकर **कात्य+ईय** बना है। अकार का **यस्येति च** से लोप और **यकार** का **आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति** सूत्र से लोप होकर **कात्+ईय=कातीय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होने पर प्रथमाबहुवचन में **कातीयाः** सिद्ध हो जाता है। फक् का लुक् न होने पर **कात्यायन+ईय** में अकार का **यस्येति च** से लोप होकर **कात्यायनीय** और स्वादिकार्य होकर **कात्यायनीयाः** रूप सिद्ध हो जाता है। इस तरह **कातीयाः** और **कात्यायनीयाः** ये दो रूप बनते हैं।

यस्कस्यापत्यं यास्कः, शिवाद्यण्, तस्यापत्यं युवा यास्कायनिः। 'अणो द्व्यचः-' इति फिञ्। तस्य छात्रा यास्कीया यास्कायनीयाः। यस्क के छात्र **यास्कीय** और **यास्कायनीय** कहलाते हैं। **यस्कस्य अपत्यम्** अर्थ में **यस्क+ङस्** षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से **शिवादिभ्योऽण्** सूत्र से अण्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **यास्क** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **यास्कः** सिद्ध हो जाता है। इसके बाद **यास्कस्य युवापत्यम्** अर्थ में **यास्क+ङस्** षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से **अणो द्व्यचः** सूत्र से फिञ्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, फकार के स्थान पर **आयन्** आदेश, अकारलोप होकर **यास्कायनि** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **यास्कायनिः** सिद्ध हो जाता है। इसके बाद **यास्कायनेः छात्राः** विग्रह में **तस्येदम्** अर्थ में **वृद्धाच्छः** सूत्र से **छ**-प्रत्यय की विवक्षा है। अतः अजादिप्रत्यय की विवक्षा में युवप्रत्यय **फिञ् (आयनि)** का **यूनि लुक्** सूत्र से नित्य से लुक् प्राप्त होने पर उसे बाधकर **फक्फिञोरन्यतरस्याम्** सूत्र के

द्वारा विकल्प से लुक् करने पर आयन्-प्रत्यय की निवृत्ति हो जाती है और **वृद्धाच्छः** से **छ**-प्रत्यय, उसके स्थान पर **ईय्** आदेश होकर **यास्क+ईय** बना है। अकार का **यस्येति च** से लोप **यास्कीय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होने पर प्रथमाबहुवचन में **यास्कीयाः** सिद्ध हो जाता है। फिञ् का लुक् न होने पर **यास्कायनि+ईय** में इकार का **यस्येति च** से लोप होकर **यास्कायनीय** और स्वादिकार्य होकर **यास्कायनीयाः** रूप सिद्ध हो जाता है। इस तरह **यास्कीयाः** और **यास्कायनीयाः** ये दो रूप बनते हैं।

१०८८. तस्यापत्यम् ४।१।९२॥

षष्ठ्यन्तात् कृतसन्धेः समर्थादपत्येऽर्थे उक्ता वक्ष्यमाणाश्च प्रत्यया वा स्युः।

उपगोरपत्यमौपगवः। आदिवृद्धिरन्त्योपधावृद्धी बाधते।

'तस्येदमित्यपत्येऽपि बाधनार्थं कृतं भवेत्।

उत्सर्गः शेष एवासौ वृद्धान्यस्य प्रयोजनम्॥' (वा. २५८१-२५८४)।

योगविभागस्तु- भानोरपत्यं भानवः। कृतसन्धेः किम्? सौत्थितिः, अकृतव्यूहपरिभाषया सावुत्थितिर्मा भूत्। समर्थपरिभाषया नेह- वस्त्रमुपगोरपत्यं चैत्रस्य। प्रथमात् किम्? अपत्यवाचकात् षष्ठ्यर्थे मा भूत्। वाग्रहणाद् वाक्यमपि। 'दैवयज्ञि-' (सू.१२०१) **इति सूत्राद् 'अन्यतरस्यां' ग्रहणानुवृत्तेः समासोऽपि। उपगवपत्यम्। जातित्वान्ङीष्- औपगवी। आश्वपतः। दैत्यः। औत्सः। स्त्रैणः। पौंस्नः।**

तस्यापत्यम्। तस्य षष्ठ्यन्तम्, अपत्यं प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। पदविधि होने के कारण **समर्थः पदविधिः** से **समर्थः** का लाभ है। **प्रत्ययः, परश्च ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद् वा** का अधिकार आ रहा है। **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है। यहाँ पर **तस्य** यह अनुकरण है अर्थात् समस्त षष्ठ्यन्त पदों का बोधक है। उससे पञ्चमी आती है परन्तु उसका सौत्रत्वात् लुक् हो जाता है। यह तत्त्वबोधिनीकार का कथन है।

षष्ठ्यन्त कृतसन्धिकार्य समर्थ प्रातिपदिक से अपत्य (सन्तान) अर्थ में इस सूत्र के पहले कहे गये प्रत्यय और आगे आने वाले प्रत्यय होते हैं।

प्रकृत सूत्र में **तस्य** एवं **अपत्यम्** ये दोनों पद स्वरूप-परक नहीं हैं, किन्तु अर्थबोधक हैं। **तस्य** का अर्थ है- कोई भी षष्ठ्यन्त पद तथा **अपत्यम्** का अभिप्राय है- अपत्य अर्थ और तद्बोधक प्रत्यय। **विशेषः**- इस तद्धितप्रकरण में कई प्रकार के सूत्र हैं। कुछ सूत्र **प्रत्यय के विधान** के लिए हैं तो कुछ सूत्र **अर्थविशेष को बताने** के लिए और कुछ सूत्र **प्रकृतिविशेष को बताने** के लिए।

उक्त तीनों के क्रमशः उदाहरण- **दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः** सूत्र दिति आदि शब्दों से ण्य प्रत्ययविशेष के विधान के लिए है तो **तस्यापत्यम्** अपत्य-अर्थविशेष को बताने के लिए है। इसी तरह **यञिञोश्च** प्रकृतिविशेष को बताने के लिए।

कुछ सूत्र प्रकृति, प्रत्यय और अर्थ तीनों को भी बताते हैं- जैसे **किंयत्तदोर्निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच्** और कुछ सूत्र केवल प्रकृति-प्रत्यय मात्र को बताते हैं- जैसे **उत्सादिभ्योऽञ्**। केवल अर्थ और प्रत्यय को बताने वाले कुछ सूत्र होते हैं, जैसे- **ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः**। कुछ सूत्र समर्थ सुबन्त के निर्देश के साथ-साथ अर्थविशेष को बताने के लिए भी बनाये गये हैं, जैसे- **तस्यापत्यम्, तत्र भवः, तेन प्रोक्तम्, तत आगतः** आदि। केवल तत्तत् कार्य का ही इनसे विधान मानेंगे तो सूत्रार्थ पूर्ण नहीं होगा। इस लिए आवश्यकता के अनुसार सूत्रों की एकवाक्यता करके अर्थ करना चाहिए जिससे एक महावाक्य बनकर इष्टरूपों की सिद्धि हो सके।

यह सूत्र केवल **षष्ठ्यन्त समर्थ प्रकृति** और **अपत्य-रूप अर्थविशेष** का निर्देश करता है, प्रत्यय तो पीछे कहे गये या आगे कहे जाने वाले तत्तत् सूत्रों से होंगे। प्रत्ययविधायकसूत्र और अर्थनिर्देशकसूत्रों की आपस में एकवाक्यता होती है। **तस्यापत्यम्** यह अधिकारसूत्र भी है विधिसूत्र भी, अतः आगे के सूत्रों में इसका अधिकार भी जाता है।

समर्थानां प्रथमाद्वा सूत्र के नियम से **समर्थानाम्** का अर्थ **कृतसन्धेः** किया गया है। सन्धियोग्य स्थलों पर सन्धि हो चुकी हो, तब इस सूत्र की प्रवृत्ति मानी जाय।

अगले उदाहरण की सिद्धि के लिये पूर्वव्याख्यात **ओर्गुणः** सूत्र का स्मरण करना होगा। यह सूत्र **तद्धित प्रत्यय के परे होने पर भसंज्ञक उवर्णान्त को गुण करता है**। भसंज्ञा अजादि या यकारादि प्रत्यय के परे रहते पूर्व की होती है, अतः यह मान लेना चाहिए कि अजादि या यकारादि के परे रहने पर ही यह सूत्र लगता है।

उपगोः अपत्यम् औपगवः। उपगु नामक व्यक्ति की सन्तान। **उपगोः अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **उपगु ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक वाला अलौकिक विग्रह है। **तस्यापत्यम्** से अण् प्रत्यय हुआ- **उपगु ङस् अण्** बना। णकार की इत्संज्ञा हुई **उपगु ङस् अ** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **उपगु+अ** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर उ के स्थान पर **औकार** आदेश होकर **ओर्गुणः** से अन्त्य अच् उकार को गुण करने पर ओकार होकर **औपगो+अ** बना। ओकार के स्थान पर अव् आदेश होकर **औपग्+अव्+अ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **औपगव** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **औपगवः** सिद्ध हुआ। **उपगु**-शब्द में **उपगताः गावः यस्य** इस अर्थ में बहुव्रीहिसमास है।

आदिवृद्धिरन्त्योपधावृद्धी बाधते। आदिवृद्धि जो है वह अन्त्यवृद्धि और उपधावृद्धि को परत्वात् बाधती है। यहाँ **उपगु**-शब्द से **अण्** प्रत्यय करने पर **तद्धितेष्वचामादेः** सूत्र से अचों में आदि अच् उकार की वृद्धि और **अचो ञ्णिति** से अन्त्य उकार की वृद्धि

एक साथ प्राप्त होती है किन्तु सूत्रक्रम में परवर्ती होने के कारण आदिवृद्धि अन्त्यवृद्धि की बाधिका है। अतः **औपगु** बन जाता है और अन्त्य उकार को **ओर्गुणः** से गुण कर दिया जाता है। इसी तरह यह उपधावृद्धि की भी बाधिका है। जैसे कि **उपगोः अपत्यं स्त्री** अर्थ में अण्-प्रत्यय होने पर **औपगव** बनने के बाद स्त्रीत्वविवक्षा में **टिड्ढाणञ्०** से ङीप् और **यस्येति च** से अकारलोप होकर **औपगव्+ई** बनने पर लुप्त अकार को स्थानिवद्भावेन णित् परे मानकर गकारोत्तरवर्ती अकार को **अत उपधायाः** से वृद्धि प्राप्त होती है, उसको भी आदिवृद्धि बाध देता है। अतः **औपगवी** बनता है।

इस सूत्र के सम्बन्ध में पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष को उपस्थापित करने वाला एक श्लोकवार्तिक प्रस्तुत कर रहे हैं-

तस्येदमित्यपत्येऽपि बाधनार्थं कृतं भवेत्।
उत्सर्गः शेष एवासौ वृद्धान्यस्य प्रयोजनम्।। वार्तिकार्थः- यद्यपि तस्य-इदम् अर्थ में अपत्य अर्थ के समावेश होने मात्र से तदर्थ में अण् प्रत्यय सिद्ध था तथापि छ-आदि विशेष प्रत्ययों को **तस्य अपत्यम्** अर्थ में बाधने के लिये प्रकृतसूत्र की आवश्यकता है। यह सूत्र उत्सर्ग और शेष है और वृद्धसंज्ञक शब्दों से भिन्न शब्दों में अण् प्रत्यय करना इसका प्रयोजन है।

तात्पर्य यह है कि **तस्येदम्** सूत्र के द्वारा **इदम्** के अर्थ में अपत्य अर्थ भी समाविष्ट हो जाता है, अतः **तस्येदम्** सूत्र के द्वारा ही अपत्य अर्थ में अण् प्रत्यय सम्भव है। अतः यह सूत्र व्यर्थ है। यह प्रश्न है। इसका समाधान यह है कि **अत इञ्** इत्यादि सूत्रों में अपत्य-अर्थ की अभिव्यक्ति के लिये उसके पूर्व **तस्यापत्यम्** सूत्र आवश्यक है। तब फिर प्रश्न होता है कि यदि ऐसा है तो **तस्यापत्यमत इञ्** ऐसा एक ही सूत्र बना देते? पृथक् सूत्र क्यों पढ़ा गया? इस प्रकार पूर्वपक्ष को दृढ़ करते हुये उसका उत्तर आगे दिया जा रहा है कि इस सूत्र के अभाव में वृद्धसंज्ञक (**आ, ऐ, औ** ये वर्ण आदि अच् हों, ऐसे) शब्दों में **वृद्धाच्छः** सूत्र **तस्येदम्** सूत्र का बाधक होगा, तब छ-प्रत्यय होकर अनिष्ट रूप बनने लगेंगे, उसका बाध करने के लिये **तस्यापत्यम्** यह पृथक् सूत्र आवश्यक है।

इस प्रसंग में पुनः अवान्तर प्रश्न होता है कि **वृद्धाच्छः** सूत्र तो **शेषे** (४.२.९२) के अधिकार के अन्तर्गत है और **शेषे** का अधिकार तद्धितप्रकरणस्थ अपत्य, देश, निवास, निर्वृत्त, अदूरभव इन पाँच अर्थों से भिन्न अर्थों में बतलाया गया है। शेष-शब्द का अर्थ ही है कि कथन से बाकी बचा हुआ- **उक्तादन्यः शेषः**। जब अपत्य अर्थ में **छ** प्रत्यय की प्राप्ति ही नहीं है, तब उसके द्वारा करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। ऐसी स्थिति में **तस्यापत्यम्** पृथक् सूत्र क्यों पढ़ा? इसका समाधान यह दिया जाता है कि **तस्यापत्यमत इञ्** ऐसा संयुक्त रूप में रखने पर अपत्य-सम्बन्ध से ह्रस्व अकारान्त शब्द सम्बद्ध अपत्यरूप अर्थ उक्त होने पर भी इकारान्त एवम् उकारान्त शब्द-सम्बद्ध

अपत्यरूप अर्थ उक्त न होने के कारण उसे **शेष** ही माना जायेगा। तब **उपगोः अपत्यम्** में भी छ-प्रत्यय की प्राप्ति होने लगेगी। उसे रोकने के लिये पृथक् सूत्र किया गया। इस प्रकार पृथक् सूत्र होने पर तो सर्वविधप्रकृतिसम्बद्ध अपत्यार्थ से शेष बहिर्भूत हो जाने से उक्त आपत्ति नहीं रहेगी। फिर कहते हैं कि यदि **उपगोरपत्यम्** आदि स्थलों में छ-प्रत्यय को रोकने के लिये ही यह सूत्र पृथक् किया गया है तो उसके लिये इसकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि छ-प्रत्यय वृद्धसंज्ञक से ही होता है और **उपगु** शब्द वृद्धसंज्ञक नहीं है। इसका समाधान देते हैं कि जो वृद्ध है **भानु** आदि, उनके लिये सूत्र का पृथक्करण आवश्यक ही है। इसी लिये लिखते हैं कि **वृद्धान्यस्य प्रयोजनम्।** इस प्रकार सिद्ध हुआ कि **भानु** आदि शब्दों से अपत्यार्थ में छ-प्रत्यय होकर **भानवीयः** आदि अनिष्ट रूप के निवारणार्थ अण् प्रत्यय होने में **तस्यापत्यम्** सूत्र की सार्थकता है।

योगविभागस्तु- भानोरपत्यं भानवः। अर्थात् **तस्यापत्यमत इञ्** एक सूत्र बनाने की अपेक्षा योगविभाग जो किया गया है, वह **भानोपरत्यम्** अर्थ में छ-प्रत्यय न होकर अण् प्रत्यय ही हो, एतदर्थ है।

कृतसन्धेः किम्? सौत्थितिः। अर्थात् प्रकृतसूत्र में **समर्थानाम्** पद की उपस्थिति से **कृतसन्धेः** अर्थ की उपस्थिति होती है। इसका प्रयोजन यह है कि यदि सन्धि योग्य स्थल है तो पहले सन्धि हो जाय, उसके बाद ही तद्धितीय प्रत्यय हो। इसके कारण जब समर्थ अर्थात् कृतसन्धिकार्य से ही प्रत्यय का विधान करेंगे तो **सु+उत्थितस्य** अपत्यम् इस विग्रह में **इञ्** प्रत्यय के पहले ही **सु+उत्थित** में दीर्घ होकर **सूत्थित** बनने के बाद ही अपत्यार्थ में प्रत्यय होकर आदि अच् **सू** के ऊकार की वृद्धि होने पर सौत्थित+इ=सौत्थितिः ऐसा शुद्ध रूप बन सकेगा। अतः इस भ्रम में नहीं रहना चाहिए कि **समर्थः पदविधिः** से ही **सामर्थ्य** अर्थ प्राप्त होते हुए **समर्थानां प्रथमाद्वा** में **समर्थ** पढ़ना व्यर्थ है, क्योंकि इसके व्यर्थ होने से उक्त अर्थ ज्ञापित होता है कि यदि **सु+उत्थितस्य अपत्यम्** इस विग्रह में सन्धि किये बिना ही **अत इञ्** सूत्र से **इञ्** प्रत्यय करने पर तो सु+उत्थित+इ इस अवस्था में **तद्धितेष्वचामादेः** से आदि अच् **सु** के उकार की वृद्धि करके **सौ+उत्थित+इ** में आव् आदेश करके **सावुत्थित+इ,** अकार का लोप, वर्णसम्मेलन आदि करके **सावुत्थिति** ऐसा अनिष्ट रूप सिद्ध होने लगता।

अकृतव्यूहपरिभाषया सावुत्थितिर्मा भूत्। अर्थात् यदि **समर्थानां प्रथमाद्वा** सूत्र में समर्थ-पद न हो **सौत्थितिः** की जगह **सावुत्थितिः** ऐसा अनिष्ट रूप सिद्ध होता **अकृतव्यूहाः पाणिनीयाः** परिभाषा के द्वारा। तात्पर्य यह है कि उक्त परिभाषा **असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे** इस अन्तरंग परिभाषा की बाधिका है। यदि **समर्थानाम्** सूत्र के समर्थ-पद का **कृतसन्धिकार्य** अर्थ न हो तो **सु+उत्थित+सु** से अण् प्रत्यय होकर के **सु+उत्थित+अ** में अण् हो मानकर आदिवृद्धि प्राप्त होती है तथा **सु+उ** में सवर्णदीर्घ। इस दीर्घ की अपेक्षा वृद्धि बहिरंग है, अतः **असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे** के अनुसार दीर्घ

की प्राप्ति होती है परन्तु उक्त परिभाषा को **अकृतव्यूहाः** परिभाषा बाध देती है, जिसका अर्थ है- पाणिनीय लोग उस कार्य को करते ही नहीं है जिसका तुरन्त ही लोप आदि या आदेशादि के द्वारा नाश हो जाय। इस परिभाषा के अनुसार यहाँ दीर्घ नहीं किया जा सकता क्योंकि **सु+उत्थित** में यदि दीर्घ हो भी जाय तो बाद में अण्-निमित्तक वृद्धि के द्वारा उसका नाश हो ही जायेगा। अतः **सु+उत्थित+अ** में दीर्घ न करके सीधे आदि अच् सु के उकार की वृद्धि होकर **सौ** तथा आवादेश करने पर **सावुत्थितिः** ऐसा अनिष्ट रूप बनने लगता। उसे रोकने के लिये **समर्थानां प्रथमाद्वा** में समर्थ-पद ग्रहण करके उसका अर्थ **कृतसन्धिकार्य** किया गया।

भाष्यकार ने **अकृतव्यूहाः पाणिनीयाः** परिभाषा का प्रत्याख्यान कर दिया है। उन्होंने **विप्रतिषेधे परं कार्यम्** सूत्र के भाष्य में प्रकृत सन्दर्भ को उद्धृत कर यह निर्णय दिया है कि **पर** और **अन्तरङ्ग** कार्यों में सूत्रक्रम के कारण विहित परवर्ती विधान की प्रमुखता नहीं रहती। वहाँ अल्पनिमित्तों की अपेक्षा के कारण अन्तरंग कार्य की ही प्राथमिकता दी जानी चाहिये। अतः **सौत्थितिः** में दीर्घसन्धि ही पहले होती है।

समर्थपरिभाषया नेह- वस्त्रमुपगोरपत्यं चैत्रस्य। समर्थपरिभाषा के कारण **वस्त्रम् उपगोः अपत्यं चैत्रस्य** में अण् प्रत्यय नहीं होता। तद्धितप्रकरण के प्रारम्भ में यह कहा गया था कि **समर्थः पदविधिः** परिभाषा की उपस्थिति से जहाँ पर परस्पर अन्वयरूप सामर्थ्य नहीं है, वहाँ पर तद्धितीय अणादि प्रत्यय नहीं होते किन्तु वाक्य ही रह जाता है। उक्त परिभाषा प्रकृतसूत्र में भी उपस्थित होने के कारण **वस्त्रम् उपगोः अपत्यं चैत्रस्य** (उपगु का वस्त्र तथा चैत्र की सन्तान) दो वाक्यों के बीच **उपगोः अपत्यम्** में अण् नहीं होता, क्योंकि **उपगु** का अन्वय **वस्त्र** के साथ और **अपत्यम्** का अन्वय **चैत्र** के साथ है। **समर्थः पदविधिः** का अधिकार होने के फलस्वरूप एकार्थीभाव सामर्थ्य के रहने पर ही अणादि प्रत्यय हुआ करते हैं। प्रकृत में **उपगोः अपत्यम्** में परस्पर अन्वय न होने के कारण सामर्थ्य नहीं है।

प्रथमात् किम्? अपत्यवाचकात् षष्ठ्यर्थे मा भूत्। प्रकृतसूत्र में **समर्थानां प्रथमाद्वा** सूत्र से **प्रथमात्** पद का अधिकार है। इसके फलस्वरूप प्रत्ययविधायक सूत्र में **प्रथम उच्चारित पद** से ही प्रत्यय की उत्पत्ति होती है। **तस्यापत्यम्** सूत्र में प्रथम-उच्चारित पद है **तस्य** और यह षष्ठ्यन्त-प्रातिपदिक का सूचक है। अतः षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से ही अण् प्रत्यय होता है। इसके फलस्वरूप अपत्यवाचक शब्द से षष्ठी के अर्थ में तद्धित प्रत्यय नहीं होगा। किञ्च **उपगुः अपत्यं यस्य** विग्रह में प्रयुक्त बहुव्रीहिपरक प्रथमान्त **उपगु** शब्द से अण् प्रत्यय नहीं होता, अन्यथा यहाँ भी **औपगवः** प्रयोग होने लगता।

वाग्रहणाद् वाक्यमपि। अर्थात् **समर्थानां प्रथमाद् वा** से **वा**-शब्द के अधिकार के कारण तद्धितीय प्रत्यय विकल्प से हुआ करते हैं। अतः एकपक्ष में वाक्य ही रह जाता है- **उपगोः अपत्यम्।**

अब प्रसंगप्राप्त **पारे मध्ये षष्ठ्या वा** सूत्र में प्रयुक्त **वा** पद की निष्फलता के फलस्वरूप **अपवादेन मुक्ते उत्सर्गो न प्रवर्तते** (अपवाद से मुक्त होने पर उत्सर्गशास्त्र की प्रवृत्ति नहीं होती) इस ज्ञापक की सार्थकता दिखलायी जा रही है-

'दैवयज्ञि-' इति सूत्राद् 'अन्यतरस्यां' ग्रहणानुवृत्तेः समासोऽपि। उपग्वपत्यम्। अर्थात् **दैवयज्ञिशौचिवृक्षिसात्यमुग्रिकाण्डेविद्धिभ्योऽन्यतरस्याम्** (८.१.८१) सूत्र से **अन्यतरस्याम्** पद की अनुवृत्ति करने पर पक्ष में समास भी हो जाता है। अतः **उपगोः अपत्यम्** में जिस तरह पहले अण् प्रत्यय करके **औपगवः** बनाया गया था, उसके विपरीत समास होकर **उपग्वपत्यम्** भी बनता है। **उपगोः अपत्यम्** लौकिक विग्रह और **उपगु+ङस् अपत्य+सु** अलौकिक विग्रह में षष्ठीतत्पुरुषसमास होने पर समासप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **उपगु+अपत्य** बना है। समास में सन्धि नित्य होती है। अतः **इको यणचि** से यण् होकर **उपग्वपत्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **उपग्वपत्यम्** सिद्ध हो जाता है। इस तरह षष्ठीसमासयुक्त **उपग्वपत्यम्** प्रयोग भी साधु ही है। यहाँ पर यह शंका थी कि तद्धितप्रत्यय तो समास का बाधक होता है। ऐसी स्थिति में षष्ठीसमास कैसे हो सकता है? यदि यह कहा जाय कि **वा** ग्रहण होने से तद्धितप्रत्यय पाक्षिक है अर्थात् तद्धित प्रत्यय न होने के पक्ष में वाक्य ही रह जाता है, समास नहीं होता तो इसके विषय में उपर्युक्त ज्ञापन से अपवाद के द्वारा मुक्त होने के पश्चात् पुनः उत्सर्गशास्त्र (समास) की प्रवृत्ति न होने के कारण समासयुक्त **उपग्वपत्यम्** की साधुता के लिये **अन्यतरस्याम्** की अनुवृत्ति करना अपेक्षित है। उक्त पद की अनुवृत्ति से अर्थात् **वा, अन्यतरस्याम्** दो-दो विकल्पार्थक शब्दों के सामर्थ्य से तद्धितीयप्रत्यय, वाक्य और समास ये तीनों प्रकार की स्थिति सम्भव हो जाती है।

जातित्वान्ङीष्- औपगवी। यद्यपि औपगव-शब्द से स्त्रीत्वविवक्षा होने पर अणन्त होने के कारण **टिड्ढाणञ्०** सूत्र से ङीप् की प्राप्ति है तथापि इस शब्द के जातिवाचक होने के कारण **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** सूत्र से ङीष् प्रत्यय होकर **औपगवी** बनता है। यद्यपि दोनों प्रत्ययों से **औपगवी** यह समान ही रूप बनता है तथापि पित् और षित् में स्वरभेद होगा।

आश्वपतः। अश्वपति की सन्तान। **अश्वपतेः अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **अश्वपति ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक तथा अलौकिक विग्रह है। **तस्यापत्यम्** के अर्थ में **अश्वपत्यादिभ्यश्च** से अण् प्रत्यय हुआ- **अश्वपति ङस् अण्** बना। णकार की इत्संज्ञा हुई **अश्वपति ङस् अ** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **अश्वपति+अ** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर अकार के स्थान पर आकार आदेश और भसंज्ञक इकार का **यस्येति च** से लोप करने पर **आश्वपत्+अ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **आश्वपत** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **आश्वपतः** सिद्ध हुआ। वैसे पूर्वप्रकरण में **आश्वपतम्** बना ही चुके हैं।

दैत्यः। दिति की सन्तान। **दितेः अपत्यं पुमान्** ऐसे अलौकिक विग्रह और **दिति ङस्** अलौकिक विग्रह वाले षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से **तस्यापत्यम्** के अर्थ में **दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः** से ण्य प्रत्यय हुआ- **दिति ङस् ण्य** बना। णकार की इत्संज्ञा हुई **दिति ङस् य** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **दिति+य** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर **इकार** के स्थान पर **ऐकार** आदेश और भसंज्ञक इकार का **यस्येति च** से लोप करने पर **दैत्+य** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **दैत्य** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **दैत्यः** सिद्ध हुआ। पूर्वप्रकरण में भी आप **दैत्यः** बना चुके हैं। इसी प्रकार **प्राजापत्यः** भी बनाइये।

स्त्रैणः। स्त्री की सन्तान आदि। **स्त्रिया अपत्यम्** लौकिक विग्रह है। **स्त्री ङस्** से **स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्** के अनुसार **तस्यापत्यम्** से **नञ्** प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **स्त्री+न** बना। ञित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि होने पर ईकार के स्थान पर ऐकार हो गया, **स्त्रै+न** बना। **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से प्रत्यय के नकार के स्थान पर णकार आदेश होकर **स्त्रैण** बना। विभक्तिकार्य करके **स्त्रैणः** सिद्ध हुआ।

पौंस्नः। पुरुष की सन्तान आदि। **पुंसः अपत्यम्** लौकिक विग्रह है। **पुंस् ङस्** से **स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्** के अनुसार **तस्यापत्यम्** से **स्नञ्** प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **पुंस्+स्न** बना। ञित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि होने पर उकार के स्थान पर औकार हो गया, **पौंस्+स्न** बना। **पौंस्** के सकार का विभक्ति के लुक् हो जाने पर भी पूर्व विभक्ति को मान कर पदत्व होने से संयोगान्त लोप करके **पौंस्न** बना। विभक्तिकार्य करके **पौंस्नः** सिद्ध हुआ।

यद्यपि उपर्युक्त उदहारण पहले भी दिखाये जा चुके थे तथापि अपत्य अर्थ में भी **तस्यापत्यम्** सूत्र के अनुसार यथाप्राप्त प्रत्यय होते हैं, यह दिखाने के लिये मूलकार ने पुनः इन उदाहरणों को दिखाया है।

अपत्य-शब्द के सम्बन्ध में-

आत्मजस्तनयः सूनुः सुतः पुत्रः स्त्रियां त्वमी।

आहुर्दुहितरं सर्वेऽपत्यं तोकं तयोः समे।। इस कोशवचन के अनुसार यद्यपि केवल पुत्र अर्थ में **अपत्य** शब्द रूढ है, तथापि **अपत्य**-शब्द का यौगिक अर्थ ग्रहण करने पर **सन्तान** अर्थ भी गृहीत होता है। भाष्यकार ने **पङ्क्तिविंशति०** सूत्र में **न पतन्ति नरके पितरो येन तदपत्यम्** ऐसी व्युत्पत्ति दिखायी है। इसका तात्पर्य यह है कि सन्तति-धारा निरन्तर चलते रहने से पिण्डदान आदि की प्रक्रिया बनी रहती है, जिसके कारण उस वंश के पितरों का नरक में पतन नहीं होता। इस तरह **अपत्य**-शब्द सन्तान मात्र का वाचक हो सकता है। पौत्र, प्रपौत्र आदि भी अपने पितामह, प्रपितामह के लिये तर्पणादि करते हैं। अतः उनका पतन नहीं होता।

१०८९. अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम् ४।१।१६२॥

अपत्यत्वेन विवक्षितं पौत्रादि गोत्रसञ्ज्ञं स्यात्।

अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्। पौत्रः प्रभृतिर्यस्य तत् प्रौत्रप्रभृति। अपत्यं प्रथमान्तं, पौत्रप्रभृति प्रथमान्तं, गोत्रं प्रथमान्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्।

जब पौत्र (पुत्र के पुत्र) को अपत्य अर्थात् सन्तान के रूप में कहना अभीष्ट हो तो उसकी गोत्रसंज्ञा होती है।

तात्पर्य यह है कि जब पौत्र, प्रपौत्र आदि पीढ़ियों को अपत्य अर्थात् सन्तान के रूप में कहने की अपेक्षा हो तो उनकी गोत्रसंज्ञा की जाती है। इस तरह पौत्र आदि गोत्रापत्य हो जाते हैं और गोत्रापत्य अर्थ में आगे प्रत्यय आदि हो जायेंगे। यद्यपि कोश में गोत्र-शब्द पुत्र के पर्यायवाची के रूप में पठित है तथापि यहाँ शास्त्र में पुत्र की गोत्रसंज्ञा नहीं होती है, क्योंकि वह अपत्यत्वेन विवक्षित पौत्र नहीं है। **अपत्य**-शब्द का प्रयोग पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र आदि सबों में होता है किन्तु **गोत्रापत्य** पौत्र आदि ही होते हैं। यदि पौत्र, प्रपौत्र अर्थात् तीसरी, चौथी पीढ़ी की सन्तान को भी अपत्य कहना अभीष्ट हो तो उसकी **गोत्र**-संज्ञा की जाती है। इस तरह व्याकरणशास्त्र में **गोत्र** एक पारिभाषिक शब्द है। लोक में तो गोत्र-शब्द केवल वंश के लिये प्रयुक्त होता है और वह ऋषि आदि के नाम से प्रचलित है।

१०९०. जीवति तु वंश्ये युवा ४।१।६३॥

वंश्ये पित्रादौ जीवति पौत्रादेर्यदपत्यं चतुर्थादि तद्युवसञ्ज्ञमेव, न तु गोत्रसञ्ज्ञम्।

जीवति तु वंश्ये युवा। वंशे भवो वंश्यस्तस्मिन् वंश्ये। जीवति सप्तम्यन्तं, तु अव्ययपदं, वंश्ये सप्तम्यन्तं, युवा प्रथमान्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्** से विभक्तिविपरिणाम करके **पौत्रप्रभृतेः** तथा **तस्यापत्यम्** से **अपत्यम्** की अनुवृत्ति आती है।

वंश में होने वाले पिता, पितामह आदि के जीवित रहते पौत्र आदि का अपत्य चतुर्थ आदि पीढ़ी स्थित हो तो उसकी युवन्-संज्ञा अर्थात् युवा (युवन्) संज्ञा ही होती है, न कि गोत्रसंज्ञा भी।

यह गोत्रसंज्ञा का अपवाद है। वंश में मूलपुरुष अर्थात् जिससे हम पीढ़ियों की गणना कर रहे हैं, उसका पुत्र दूसरी पीढ़ी अपत्य मात्र, उसका पुत्र तीसरी पीढ़ी गोत्रापत्य, उसका भी पुत्र चौथी पीढ़ी युवापत्य हो जाता है किन्तु युवापत्य में मूलपुरुष अर्थात् प्रथम पीढ़ी का जीवित होना आवश्यक है। तात्पर्य यह हुआ कि मूलपुरुष के रहते चौथी, पाँचवीं आदि पीढ़ियों की युवन्-संज्ञा मानी जाती है। युवसंज्ञा का फल वक्ष्यमाण सूत्र

गोत्राद्यून्यस्त्रियाम् से स्पष्ट हो जायेगा। सूत्र का **वंश्य**-शब्द सन्तति के नैरन्तर्य का सूचक है। उस वंश में होने वाले जो पिता एवं चाचा आदि हैं, वे **वंश्य** कहलाते हैं। दीक्षित ने सूत्र की वृत्ति में **एव** का प्रयोग करके यह तात्पर्य व्यञ्जित किया है कि यद्यपि यह सूत्र एकसंज्ञाधिकार में नहीं आता तथापि युवसंज्ञा और गोत्रसंज्ञा के युगपत् प्राप्त होने पर युवसंज्ञा ही होती है, न कि गोत्रसंज्ञा भी।

विशेषः- उपर्युक्त **गोत्रसंज्ञा** और **युवसंज्ञा** शास्त्रीयप्रक्रिया के निर्वाह के लिये पाणिनि जी ने कल्पित की है। पाणिनि जी ने **अपत्य** शब्द का भी व्यापक अर्थ लिया है- सन्तान। श्राद्धादि में तीन पुरुष पर्यन्त पूर्वजों को तर्पणादि द्वारा तृप्त करने वाली युवा पीढ़ी को भी अपत्य-शब्द से अभिहित किया जा सकता है। इसी मत को पाणिनि जी ने मुख्य माना है। अतः अपत्य शब्द के इस पार्थक्य को सूचित करने के लिये उदाहरण में तीन प्रकार के विग्रह किये जाते है। १. साक्षात् पुत्र के लिये केवल **अपत्य**, २. पौत्र-प्रपौत्र आदि के लिये **गोत्रापत्य** और ३. तृतीय पुरुष के अनन्तर पित्रादि के जीवित रहने पर चतुर्थ पुरुष के लिये **युवापत्य**। इस प्रकार विशेष स्थिति में प्रपौत्र को **युवापत्य** कहा जाता है। इन भेदों के द्वारा पाणिनि ने **एको गोत्रे** सूत्र के नियम से उत्तरोत्तर अपत्यों की विवक्षा में यथाप्राप्त तद्धित प्रत्ययों का निरूपण कर अनिष्ट रूपों एवं गौरव से बचाव किया है। अन्यथा चौथी, पाँचवी, छठी, सातवीं, आठवीं आदि जितनी भी पीढ़ी आगे बतायी जायेगी, मूलपुरुष से उतने ही प्रत्यय होने लगेंगे।

१०९१. भ्रातरि च ज्यायसि ४।१।१६४॥

ज्येष्ठे भ्रातरि जीवति कनीयांश्चतुर्थादिर्युवसञ्ज्ञश्च स्यात्।

भ्रातरि च ज्यायसि। भ्रातरि सप्तम्यन्तं, चाव्ययं, ज्यायसि सप्तम्यन्तम्। **जीवति तु वंश्ये युवा** से **जीवति, युवा** की, **अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्** से विभक्तिविपरिणाम करके **पौत्रप्रभृतेः** तथा **तस्यापत्यम्** से **अपत्यम्** की अनुवृत्ति आती है।

बड़े भाई के जीवित रहते जो चौथे क्रम के भाई है, उसकी भी युव-संज्ञा होती है।

विशेष अवस्था में पूर्वसूत्र से अप्राप्त युवा-संज्ञा का विधान किया जा रहा है, क्योंकि पूर्वसूत्र से वंश्य के जीवित होने पर ही युवसंज्ञा होती है जबकि भाई तो वंश्य नहीं है। अनुवृत्त **जीवति** में **ज्यायसि भ्रातरि** का अन्वय है। **पिता** आदि को **वंश्य** कहा जाता है किन्तु भाई वंश्य नहीं होता। अवंश्य होने के कारण पिता आदि के मर जाने पर पूर्वसूत्र से बड़े भाई के जीवित रहते छोटे भाई की युवा संज्ञा प्राप्त नहीं थी किन्तु गोत्रसंज्ञा प्राप्त थी। अतः उसका विधान प्रकृतसूत्र से किया गया है। इस तरह सूत्र का तात्पर्य यह होगा कि पित्रादिकों के मर जाने पर भी बड़े भाई के जीवित रहते पौत्रप्रभृति का जो अपत्य जो छोटा भाई, उसकी युवसंज्ञा हो। जैसे कि यदि **गार्ग्य** अर्थात् गर्ग के पौत्र के दो पुत्र

हों, उसमें **गर्ग** की मृत्यु हो चुकी हो किन्तु दोनों भाई जीवित हों तो उनमें से छोटे भाई की युव-संज्ञा होगी और उससे **फक्** प्रत्यय होकर **गार्ग्यायणः** प्रयोग बनेगा। इसमें यदि बड़े भाई को गोत्रसंज्ञा ही होगी और वह **गार्ग्य** ही कहलाता है। **युवन्** शब्द से **युवा** बनता है। अतः संज्ञा तो केवल **युवा** ही है किन्तु इसका **संज्ञा**-शब्द के साथ समास करके कहना विवक्षित हो तो **युव-संज्ञा** कहा जायेगा, क्योंकि **युवा चासौ संज्ञा** विग्रह में **युवन्+सु संज्ञा+सु** में समास होकर नकार का लोप हो जाता है, अतः **युवसंज्ञा** बन जाता है। इस सूत्र के उदाहरण आगे दिये जायेंगे।

१०९२. वान्यस्मिन्सपिण्डे स्थविरतरे जीवति ४।१।१६५॥

भ्रातुरन्यस्मिन्सपिण्डे स्थविरतरे जीवति पौत्रप्रभृतेरपत्यं जीवदेव युवसञ्ज्ञं वा स्यात्। एकं जीवतिग्रहणमपत्यस्य विशेषणम्, द्वितीयं सपिण्डस्य। तरब्निर्देश उभयोरुत्कर्षार्थः। स्थानेन वयसा चोत्कृष्टे पितृव्ये मातामहे भ्रातरि वा जीवति। गार्ग्यस्यापत्यं गार्ग्यायणः गार्ग्यो वा। स्थविर इति किम्? स्थानवयोन्यूने गार्ग्य एव। जीवति इति किम्? मृते मृतो वा गार्ग्य एव।

'वृद्धस्य च पूजायामिति वाच्यम्'(वा.२६५४)। गोत्रस्यैव वृद्धसञ्ज्ञा प्राचाम्। गोत्रस्य युवसञ्ज्ञा पूजायां गम्यमानायाम्। तत्रभवान् गार्ग्यायणः। पूजा इति किम्? गार्ग्यः।

'यूनश्च कुत्सायां गोत्रसञ्ज्ञेति वाच्यम्'(वा.२६५१)। गार्ग्यो जाल्मः। कुत्सा इति किम्? गार्ग्यायणः।

वान्यस्मिन्सपिण्डे स्थविरतरे जीवति। समानं पिण्डं यस्य स सपिण्डस्तस्मिन् सपिण्डे, बहुव्रीहिः। अयमनयोरतिशयेन स्थविरः स्थविरतरस्तस्मिन् स्थविरतरे। वाव्ययम्, अन्यस्मिन् सप्तम्यन्तं, सपिण्डे सप्तम्यन्तं, स्थविरतरि सप्तम्यन्तं, जीवति तिङन्तम्। **जीवति तु वंश्ये** युवा से **जीवति**, युवा की, **अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्** से विभक्तिविपरिणाम करके **पौत्रप्रभृतेः** तथा **तस्यापत्यम्** से **अपत्यम्** की अनुवृत्ति आती है।

भाई से भिन्न सात पीढ़ियों में से कोई भी और जो आयु में वृद्धतर व्यक्ति हो और वह जीवित हो तो पौत्रप्रभृति का जो अपत्य अर्थात् जीवित चौथे की विकल्प से युव-संज्ञा होती है।

पूर्वसूत्र के **भ्रातरि ज्यायसि** से पृथक् करने के लिये **अन्यस्मिन्** शब्द का प्रयोग किया गया है। अनुवृत्त सप्तम्यन्त **जीवति** पद सूत्रस्थ **सपिण्डे** मे अन्वित होता है। सूत्रस्थ तिङन्त **जीवति** पद अनुवृत्त **अपत्यम्** के साथ सम्बद्ध होता है। **स्थविर**-शब्द से **तरप्** प्रत्यय लगाने से यह अर्थ निकलता है कि जो पद और आयु में बूढ़ा हो। धर्मशास्त्रों में सात पीढ़ी के व्यक्तियों को **सपिण्ड** कहा गया है। जैसे कि १. स्वयम्, २. उसके पिता,

३. उसके पितामह, ४. उसके प्रपितामह, ५. उसके प्रपितामह के पिता, ६. उसके प्रपितामह के पितामह और ७. उसके प्रपितामह के प्रपितामह। इस तरह मूलपुरुष से सप्तम-पुरुष पर्यन्त की सन्तति सपिण्ड कहलाती है। मातृपक्ष में तो मूलपुरुष से पञ्चमपुरुष पर्यन्त की सन्तति **सपिण्ड** कहलाती है। जब दो गोत्र में विवाह होता है तो सपण्डि के अन्दर नहीं होना चाहिये, ऐसी व्यवस्था धर्मशास्त्रों में की गयी है। प्रकृतसूत्र का यह तात्पर्य है कि यदि सपिण्ड (सात पीढ़ियों) में से भ्राता से भिन्न कोई पद तथा आयु में वृद्ध व्यक्ति जीवित हो तो पौत्रप्रभृति का जो अपत्य अर्थात् मूलपुरुष से जो चतुर्थ हो तथा जीवित हो तो उसकी विकल्प से युवसंज्ञा होती है। युवसंज्ञा न होने के पक्ष में यथाप्राप्त गोत्रसंज्ञा हो जाती है। इस विवेचन का सार यह है कि पितृ-स्थानीय होने के कारण पितृव्य तथा मातामह स्थानतः एवं आयु में उत्कृष्ट होते ही हैं। इनमें से किसी के जीवित रहते हुये पौत्रादि के जीवित अपत्य को विकल्प से युवा कहा जाता है। इस तरह तीन सूत्रों के द्वारा पारिभाषिक **युवा** संज्ञा का विवेचन किया गया है।

एकं जीवतिग्रहणमपत्यस्य विशेषणम्, द्वितीयं सपिण्डस्य। सूत्र में पठित तिङन्त **जीवति** शब्द और अनुवृत्त सप्तम्यन्त **जीवित** शब्दों में से सूत्रस्थ **जीवति** शब्द **अपत्य**-शब्द का विशेषण और अनुवृत्त **जीवति** शब्द **सपिण्ड**-शब्द का विशेषण है।

तरब्निर्देश उभयोरुत्कर्षार्थः। स्थानेन वयसा चोत्कृष्टे पितृव्ये मातामहे भ्रातरि वा जीवति। अर्थात् **स्थविरतर**-शब्द में **स्थविर**-शब्द से तरप्-प्रत्यय जोड़कर निर्देश करने का तात्पर्य यह है कि जीवित सपिण्ड को **स्थान** (पद) और **वयस्** (आयु) दोनों से उत्कृष्ट होना चाहिये! सूत्र में **च** शब्द का पाठ है, उससे **भ्रातरि** का भी अनुकर्षण किया जाता है। इस तरह यह तात्पर्य निकलता है कि स्थान (पद) और वयस् (आयु) उत्कृष्ट पितृव्य, मातामह और भाई के जीवित रहते प्रकृतसूत्र की प्रवृत्ति होगी। कुछ लोग यह मानते हैं कि प्रकृतसूत्र में **अन्यस्मिन्** शब्द से भाई से भिन्न स्थविर का ग्रहण किया गया है। अतः मूलोक्त **भ्रातरि** शब्द का अर्थ **मातामह का भाई** अर्थ लेना चाहिये।

गार्ग्यस्यापत्यं गार्ग्यायणः गार्ग्यो वा। गर्ग-कुल का युवा सदस्य। **गर्गस्य गोत्रापत्यम्** अर्थ में **गर्गादिभ्यो यञ्** सूत्र के द्वारा **यञ्** प्रत्यय होकर **गार्ग्य** शब्द बनता है। **वान्यस्मिन् सपिण्डे स्थवितरतरे जीवति** सूत्र से युव-संज्ञा होने के पक्ष में **गार्ग्य**-शब्द से **यञिञोश्च** सूत्र के द्वारा **फक्** प्रत्यय होने पर आयन् आदेश होकर **गार्ग्यायण** शब्द बनता है। युवसंज्ञा न होने के पक्ष में गोत्रसंज्ञा तो है और गोत्रनिमित्त यञ्-प्रत्यय भी। अतः **गार्ग्य** शब्द बना हुआ है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **गार्ग्यायणः** और **गार्ग्यः** ये रूप बनते हैं।

स्थविर इति किम्? स्थानवयोन्यूने गार्ग्य एव। प्रकृतसूत्र में **स्थविरतरे** पद का निवेश करने के कारण पद और आयु से वृद्धतर होने पर ही युवा-संज्ञा होती है, अन्यथा नहीं होती। अतः स्थान और वयस् से न्यून (अल्प, कम) होने पर युवा-संज्ञा

नहीं होती, फलतः फक् प्रत्यय भी नहीं होता किन्तु केवल गोत्रार्थक **यञ्** होकर **गार्ग्यः** मात्र बनता है।

जीवति इति किम्? मृते मृतो वा गार्ग्य एव। प्रकृतसूत्र में **जीवति** पद का निवेश करने और एक अन्य **जीवति** पद की अनुवृत्ति करने के कारण किसी स्थविर सपिण्ड के जीवित रहते हुये भी जिसकी युवसंज्ञा करनी है वह जीवित न हो तो उसकी युवसंज्ञा नहीं होती। फलतः फक् प्रत्यय भी नहीं होता किन्तु गोत्रार्थक **यञ्** होकर **गार्ग्यः** मात्र बनता है।

वृद्धस्य च पूजायामिति वाच्यम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- पूजार्थक गोत्र की ही प्राचीन मत में युवा-संज्ञा होती है।

गोत्रस्यैव वृद्धसञ्ज्ञा प्राचाम्। गोत्रस्य युवसञ्ज्ञा पूजायां गम्यमानायाम्। प्राचीन आचार्यों के मत में गोत्र की वृद्धसंज्ञा होती है किन्तु गोत्र की युव-संज्ञा पूजा, सम्मान अर्थ गम्यमान होने पर ही होती है।

तत्रभवान् गार्ग्यायणः। गर्गकुल का आदरणीय युवा सदस्य। यहाँ पर **तत्रभवान्** शब्द के प्रयोग से पूजार्थ गम्यमान हो रहा है। **वृद्धस्य च पूजायामिति वाच्यम्** वार्तिक के द्वारा **गार्ग्य** की युवसंज्ञा किये जाने से **यञिञोश्च** सूत्र के द्वारा **फक्** प्रत्यय होने पर फकार के स्थान पर **आयन्** आदेश होकर **गार्ग्यायण** और स्वादिकार्य से **गार्ग्यायणः** सिद्ध हो जाता है। यहाँ पर **तत्रभवान्** शब्द से पूजार्थक सूचित है। युवसंज्ञकों को अल्पवयस्क होने एवं वृद्धों के अधीन होने से सुखी रहने के कारण उनमें आदर की भावना प्रदर्शित की गयी है- **तत्रभवान् गार्ग्यायणः।** तादृश पूज्यभावना गम्यमान रहने पर मूलपुरुष से तृतीय (पौत्र) में भी पूज्यता आ जाती है। ऐसी स्थिति में युव-संज्ञा के प्रभाव से स्वार्थ में ही युव-प्रत्यय फक् की कल्पना की जाती है।

पूजा इति किम्? गार्ग्यः। प्रकृत वार्तिक में **पूजायाम्** पद के कारण पूजार्थ गम्य होने पर ही युवसंज्ञा होती है, अन्यथा नहीं होती। अतः फक् भी नहीं होता- **गार्ग्यः।** यहाँ पर आदर की भावना प्रदर्शित नहीं की गयी है।

यूनश्च कुत्सायां गोत्रसञ्ज्ञेति वाच्यम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- निन्दा अर्थ गम्यमान होने पर युव-संज्ञक भी गोत्रसंज्ञा को प्राप्त होता है अर्थात् युवा नहीं कहलाता है।

गार्ग्यो जाल्मः। गर्गकुल की नीच युवा सन्तान। यहाँ पर सामान्यतया **गार्ग्यायणः** होना चाहिये था किन्तु **जाल्म**-शब्द के प्रयोग से निन्दा अर्थ के गम्य होने के कारण युवसंज्ञक की भी **यूनश्च कुत्सायां गोत्रसंज्ञेति वाच्यम्** वार्तिक से गोत्रसंज्ञा हो जाने से **यञिञोश्च** सूत्र के द्वारा **फक्** प्रत्यय नहीं होता। अतः **गार्ग्यः** बनता है।

कुत्सा इति किम्? गार्ग्यायणः। प्रकृत वार्तिक में **कुत्सायाम्** पद के कारण निन्दार्थ गम्य होने पर ही गोत्रसंज्ञा होती है, अन्यथा नहीं होती। अतः फक् हो जाता

है-**गार्ग्यायणः**। यहाँ पर निन्दार्थक शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है, अतः निन्दार्थ की प्रतीति नहीं हो रही है।

१०९३. एको गोत्रे ४।१।९३॥

गोत्रे एक एवापत्यप्रत्ययः स्यात्।

उपगोर्गोत्रापत्यमौपगवः। गार्ग्यः। नाडायनः।

'गोत्रे स्वैकोनसंख्यानां प्रत्ययानां परम्परा।
यद्वा स्वद्व्यूनसंख्येभ्योऽनिष्टोत्पत्तिः प्रसज्यते॥
अपत्यं पितुरेव स्यात्ततः प्राचामपीति च।
मतभेदेन तद्ब्रान्यै सूत्रमेतत्तथोत्तरम्॥'

पितुरेवापत्यमिति पक्षे ह्युपगोस्तृतीये वाच्ये औपगवादिञ् स्यात्। चतुर्थे त्वजीवज्ज्येष्ठे मृतवंश्ये वा औपगवेः फक्। इत्थं फगिञोः परम्परायां मूलाच्छततमे गोत्रे एकोनशतं प्रत्ययाः स्युः। पितामहादीनामपीति मुख्यपक्षे तु तृतीये वाच्य उपगोरणा इष्टे सिद्धेऽप्यण्णन्तादिञपि स्यात्। ततश्चतुर्थे फगिति फ़गिञोः परम्परायां शततमे गोत्रेऽष्टनवतेरनिष्टप्रत्ययाः स्युः, अतो नियमार्थमिदं सूत्रम्। एवमुत्तरसूत्रेऽप्यूह्यम्।

एको गोत्रे। एकः प्रथमान्तं, गोत्रे सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

गोत्र अर्थ में एक ही अपत्य-प्रत्यय होता है।

यह नियमसूत्र है। इससे यह तात्पर्य निकलता है- जिस प्रकार से **उपगोर्गोत्रापत्यम्** विग्रह करने पर **उपगु** से **गोत्रापत्य** (पौत्र) अर्थ में **अण्** प्रत्यय होकर **औपगवः** बनता है, उसी प्रकार चौथी पीढ़ी वाले या पाँचवीं पीढ़ी वाले को कहना हो तो भी **उपगु** से ही **अण्** प्रत्यय होकर **औपगवः** ही रूप बनेगा, न कि **औपगव** बनने के बाद फिर दूसरी, तीसरी बार कोई प्रत्यय आयेगा। कहने का तात्पर्य यह है कि एक ही **अण्** प्रत्यय से उस परम्परा में आयी हुई किसी भी पीढ़ी के पुरुष का बोध हो जायेगा। अतः उसके लिए बार-बार प्रत्यय करने की जरूरत होती नहीं है।

तात्पर्य यह है कि **उपगोरपत्यम् औपगवः, तस्य औपगवस्यापि अपत्यम् औपगवः, तस्यापि अपत्यम् औपगवः** इत्यादि। इस प्रकार से एक ही अपत्य प्रत्यय अण् आदि प्रत्यय होता है जो मूलपुरुष से किया जाता है और सब पीढ़ियों का बोध होता है, चाहे तीसरी, चौथी, पाँचवीं छठी पीढ़ियाँ क्यों न हो। इस तरह यह सूत्र एक नियम बनाता है। अर्थात् उपगु की सन्तान औपगव, औपगव की सन्तान, उनकी भी सन्तान औपगव ही होती है। गोत्र अर्थ में प्रत्यय करने पर **तस्य गोत्रापत्यम्** ऐसा विग्रह किया जायेगा।

औपगवः। उपगु नामक व्यक्ति का पोता सन्तान। **उपगोर्गोत्रापत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **उपगु ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **एको गोत्रे** के नियमानुसार **तस्यापत्यम्** से ही **गोत्र-अपत्य** अर्थ में अण् प्रत्यय हुआ- **उपगु ङस् अण्** बना। णकार की इत्संज्ञा हुई **उपगु ङस् अ** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **उपगु+अ** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर उ के स्थान पर औकार आदेश **ओर्गुणः** से अन्त्य अच् उकार को गुण करने पर ओकार होकर **औपगो+अ** बना। ओकार के स्थान पर अव् आदेश होकर **औपग्+अव्+अ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **औपगव** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **औपगवः** सिद्ध हुआ।

गार्ग्यः। गर्ग का पौत्र। उक्त नियम के अनुसार यहाँ पर भी केवल **गर्गादिभ्यो यञ्** सूत्र से यञ् प्रत्यय मात्र होता है।

नाडायनः। नड का पौत्र। यहाँ पर **नडस्य गोत्रापत्यम्** अर्थ में नड-शब्द से **नडादिभ्यः फक्** सूत्र से फक् प्रत्यय, आयन् आदेश होकर **नाडायनः** सिद्ध होता है। यहाँ पर भी प्रकृतसूत्र **एको गोत्रे** सूत्र की नियामकता सिद्ध होती है। इस सूत्र में दो नियम बनते है- १. प्रत्यय नियम और २. प्रकृति नियम। **नडादिभ्यः फक्** सूत्र प्रकृति और प्रत्यय दोनों के सम्बन्ध मे चरितार्थ होता है। प्रत्ययनियम पक्ष की संगति सूत्रार्थ द्वारा अभिव्यक्त की जा चुकी है तो प्रत्ययनियम द्वारा यह अभिव्यञ्जित होता है कि गोत्रापत्य विवक्षित होने पर प्रथम प्रकृति अर्थात् मूलप्रकृति से ही प्रत्यय होगी, दूसरी, तीसरी प्रत्ययान्त प्रकृतियों से नहीं होता।

गार्ग्यः में गर्ग-शब्द मूलप्रकृति है, उससे ही गोत्रापत्य विवक्षित होने पर यञ् प्रत्यय होगा। यही यञ्-प्रत्ययान्त शब्द आगे के सम्पूर्ण गोत्रापत्यों का ज्ञान करायेगा। वस्तुतः प्रत्यय-नियम करें या प्रकृति-नियम करें, तात्पर्य एक ही रहता है। इस बात का ध्यान अवश्य रहे कि **गर्गस्य अपत्यं गार्गिः** (गर्ग का पुत्र) और **गार्गेः अपत्यं गार्ग्यः** (गार्गि का पुत्र) इन विग्रहों को देखकर यह नहीं समझना चाहिये कि **गार्गि** से यञ् प्रत्यय हुआ है, क्योंकि गार्गि प्रथम-प्रकृति नहीं है। अतः प्रथम प्रकृति से ही यञ् प्रत्यय होगा। **गार्गेः अपत्यम्** यह विग्रह मात्र अर्थ की अभिव्यक्ति के लिये किया जाता है।

अब सूत्र का उपर्युक्त प्रयोजन सिद्ध करने के लिये यहाँ दो कारिकाओं को उपस्थापित किया गया है।

गोत्रे स्वैकोनसंख्यानां प्रत्ययानां परम्परा।
यद्वा स्वद्व्यूनसंख्येभ्योऽनिष्टोत्पत्तिः प्रसज्यते॥१॥
अपत्यं पितुरेव स्यात्ततः प्राचामपीति च।
मतभेदेन तद्धान्यै सूत्रमेतत्तथोत्तरम्॥२॥ कारिकार्थः- (प्रकृतसूत्र के अभाव में) पुत्र की अपेक्षा से एक कम (न्यून, ऊन) संख्या के प्रत्ययों की परम्परा प्रसक्त हो जाती। अथवा गोत्र की अपेक्षा से दो न्यून-संख्यक प्रातिपदिकों से अनिष्ट

प्रत्ययों की प्रसक्ति होने लगती।।१।। पुत्र ही अपत्य है- इस पक्ष में तदनन्तर पौत्रादि भी अपत्य हैं- इन दोनों मतों को लेकर अनिष्ट के निवारणार्थ यह तथा आगे के का सूत्र, ये दोनों आवश्यक हैं। **तद्+हान्यै=तद्धान्यै।** तात्पर्यार्थः- अपत्य शब्द के दो अर्थों को लेकर उत्पन्न होने वाले मतभेद एवं मूलपुरुष से सौवीं पीढ़ी पर्यन्त सन्तति का कथन होने पर अनिष्ट प्रत्ययमाला की आशंका को दिखाते हुये उसके निवारणार्थ सिद्धान्तपक्ष की स्वीकृति हेतु प्रकृत कारिकाओं से सूत्र की उपयोगिता बतलायी गयी है। उन दो मतों में से प्रथम लौकिक मत कोषादि ग्रन्थों का आश्रय लेकर उद्धृत किया गया है। तदनुसार मूलपुरुष की प्रथम जनिष्यमाण सन्तान पुत्र ही अपत्य कहलाती है। द्वितीय मत प्रकृत शास्त्र का है। तदनुसार **अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्** सूत्र सैद्धान्तिक मत का प्रतिपादक है। मूलपुरुष से तृतीय एवं उसके आगे की सन्तान का बोध भी अपत्य अर्थात् गोत्रापत्य अर्थ से ही किया जाता है। इन दोनों मतों के मध्यनजर यहाँ पर दो उपर्युक्त कारिकायें प्रस्तुत की गयी हैं। इन दोनों कारिकाओं में उपर्युक्त दोनों मतों के अनुसार क्रमशः मूलपुरुष से आगे सौ पीढ़ी तक की सन्तान की विवक्षा में किस प्रकार प्रत्ययों एवं प्रातिपदिकों की परम्परा लग जायेगी, उस गौरव को दूर करने के लिये ही **एको गोत्रे** सूत्र की उपयोगिता पर सैद्धान्तिक विचार किया गया है।

पितुरेवापत्यमिति पक्षे ह्युपगोस्तृतीये वाच्ये औपगवादिञ् स्यात्। अर्थात् केवल साक्षात् पुत्र ही अपत्य है, इस पक्ष में उपगु-शब्द से तृतीय पुरुष वाच्य होने पर **औपगव**-शब्द से इञ्-प्रत्यय होगा अर्थात् **उपगु** की प्रथम सन्तान **औपगवः** और उसकी भी सन्तान अर्थात् तृतीय पुरुष **औपगविः** कहलायेगी। प्रथमपुरुष के वाचक **उपगु**-शब्द से **अपत्य** अर्थ में **अण्** प्रत्यय होकर **औपगवः** बनेगा और **उपगु** से लेकर तृतीयपुरुष के लिये **औपगव**-शब्द से इञ् किया जायेगा। उपगु का पुत्र **औपगवः** और औपगव का पुत्र **औपगविः** होगा।

चतुर्थे त्वजीवञ्ज्येष्ठे मृतवंश्ये वा औपगवेः फक्। इत्थं फगिञोः परम्परायां मूलाच्छततमे गोत्रे एकोनशतं प्रत्ययाः स्युः। ज्येष्ठ के अजीवित रहते और वंश्य के मृत होने पर चतुर्थ पीढ़ी के लिये **औपगवि**-शब्द से फक् प्रत्यय प्राप्त होगा, जिससे **औपगवायनः** बनने लगेगा। पुनः औपगवायन के पुत्र के लिये **इञ्** प्रत्यय होकर **औपगवायनिः** बनेगा। पुनः औपगवायनि के पुत्र के लिये फक् प्रत्यय होकर **औपगवायनायनः** बनने लगेगा। पुनः औपगवायनायन के पुत्र के लिये **इञ्** प्रत्यय होकर **औपगवायनायनिः** बनने लगेगा। यही फक् और इञ् प्रत्ययों की परम्परा निन्नान्नबी पीढ़ी तक चलती रहेगी। इस क्रम से सौंवें पुरुष में ९९ प्रत्यय संलग्न हो जायेंगे।

पितामहादीनामपीति मुख्यपक्षे तु तृतीये वाच्य उपगोरणा इष्टे सिद्धेऽप्यण्णन्तादिञ्यि स्यात्। ततश्चतुर्थे फगिति फगिञोः परम्परायां शततमे गोत्रेऽष्टनवतेरनिष्टप्रत्ययाः स्युः। उपर्युक्त रीति से **पितामह** आदि के सम्बन्ध में भी

मुख्यपक्ष में तृतीय पीढ़ी के अभिधेय होने पर **उपगु**-शब्द से **अण्** प्रत्यय करके इष्टसिद्धि होने पर भी अणन्त से पुनः इञ् आदि की परम्परा चल पड़ेगी। उसके बाद चतुर्थ पीढ़ी के लिये फक्, पुनः पञ्चम पीढ़ी के लिये इञ्, तदन्त से षष्ठ पीढ़ी के लिये फक्, इस तरह की प्रत्ययमाला चल पड़ेगी और सौवें गोत्रवाचन में अठ्ठान्नवे अनिष्ट प्रत्ययों की प्रसक्ति हो जायेगी।

प्रथम कारिका द्वारा यह अभिव्यञ्जित किया जाता है कि **गोत्र** (पुत्ररूप अपत्य) की उत्तरोत्तर क्रमशः अपेक्षा होने पर अपने मूलपुरुष की अपेक्षा केवल एक कम प्रत्यय की परम्परा प्रसक्त होगी। तदनन्तर द्वितीय कारिका द्वारा अपत्य को गोत्र (पौत्र प्रभृति) के रूप में अभिव्यञ्जित किया जाय तो मूलपुरुष से तृतीयपुरुष भी अपत्य शब्द से अभिहित होगा। उस स्थिति में प्रथम प्रत्यय द्वितीय पुरुष-रूप प्रकृति में नहीं लगेगा, किन्तु तृतीय पुरुष में संयुक्त होगा। इस प्रकार प्रथम प्रत्यय पुत्र के रूप में संयुक्त न होकर किन्तु पौत्र अर्थ में संयुक्त होकर **औपगव** प्रातिपदिक निष्पन्न होगा। अतः मूल पुरुष एवं पुत्ररूपापत्य अपेक्षित न होने से उनमें भी कोई प्रत्यय नहीं लगेगा। इस तरह आगे सौ पीढियों में ९८ प्रकृतिस्वरूप प्रातिपदिकों से ९८ प्रत्ययों की प्रसक्ति होगी।

अतो नियमार्थमिदं सूत्रम्। उक्त प्रत्ययमालारूप अनिष्टों को रोकने के लिये प्रकृत **एको गोत्रे** सूत्र को नियमार्थ माना जाता है।

एवमुत्तरसूत्रेऽप्यूह्यम्। इसी तरह अगले सूत्र **गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्** को भी नियमार्थ ही मानना चाहिये।

निष्कर्षः- यद्यपि उपर्युक्त दोनों पक्षों में अनिष्ट प्रत्यय-परम्परा एवं अनेक रूपों की अर्थाभिव्यक्ति की आशंका बतलायी गयी है तथापि द्वितीयपक्ष को सैद्धान्तिक रूप से स्वीकार किया गया है। उसमें यह लाघव है कि पौत्र को अपत्य मानकर तदनन्तर आगे आने वाली सन्तति भी अपत्य अर्थात् गोत्रापत्य ही कहलायेगी। अतः **अपत्य** को विवक्षित कर मूलपुरुष से केवल एक प्रत्यय करने पर **उपगु** के पौत्र के साथ ही प्रपौत्र आदि सभी गोत्रापत्य होने से **औपगव** शब्द से ही कहे जा सकेंगे। इस तरह प्रत्ययमाला की परम्परा का इस नियम के द्वारा निवारण किया जा सकता है। द्वितीय मत में यद्यपि अपत्य शब्द का व्यापक अर्थ स्वीकार कर **उपगु** से सर्वप्रथम अभीष्ट प्रत्यय तो **तस्यापत्यम्** सूत्र से निर्बाध रूप से होता ही है किन्तु **औपगव**-रूप प्रकृति के अकारान्त होने पर **अत इञ्** से विधीयमान इञ्-प्रत्यय भी सम्भावित है, उसकी निवृत्ति के लिये **एको गोत्रे** सूत्र से सम्पाद्य नियम सार्थक हो जाता है। उक्त नियम के अनुसार गोत्र वाच्य होने पर एक ही शब्द प्रत्यय की प्रकृति बन सकता है, अनेक शब्द नहीं। अथवा एक शब्द से प्रथम अर्थ लिया जाय। इस प्रकार का अर्थ स्वीकार करने पर प्रथम मूल-शब्द शब्द ही गोत्रार्थ में प्रत्ययोत्पादक हो सकता है।

१०९४. गोत्राद्यून्यस्त्रियाम् ४।१।९४॥

यून्यपत्ये गोत्रप्रत्ययान्तादेवापत्यप्रत्ययः स्यात्, स्त्रियां तु न युवसञ्ज्ञा। गर्गस्य युवापत्यं गार्ग्यायणः। स्त्रियां गोत्रत्वादेक एव प्रत्ययः।

गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्। गोत्रात् पञ्चम्यन्तं, यूनि सप्तम्यन्तम्, अस्त्रियाम् सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

युवापत्य विवक्षित होने पर गोत्रप्रत्ययान्त से ही प्रत्यय हो परन्तु स्त्रीलिङ्ग में युवसंज्ञा नहीं होती।

यह भी नियम सूत्र है। यदि युवापत्य अर्थ में प्रत्यय करना हो तो वह गोत्रप्रत्ययान्त से ही हो, मूलप्रकृति से न हो। **जीवति तु वंश्ये युवा** सूत्र से विशेष परिस्थिति में गोत्रापत्य की युवसंज्ञा बतलायी गयी थी। उसी अर्थ प्रत्ययोत्पत्ति का यह नियमसूत्र है। अन्यथा पूर्ववत् मूलपुरुष से १०० युवार्थ में ९९ या ९८ अनिष्ट प्रत्ययमाला की उपस्थिति होने लगेगी। उक्त दोषवारण के लिये प्रकृतसूत्र से यह नियम किया गया कि 'युवापत्य की विवक्षा होने पर गोत्रप्रत्ययान्त से ही युवापत्यार्थक प्रत्यय हो, अनन्तरापत्य या प्रथम-प्रकृति से न हो।' दूसरा नियम यह भी बनाया गया कि 'स्त्री-वाच्य होने पर युवसंज्ञा को बाहर रखा जाय।' इसके फलस्वरूप वहाँ गोत्रसंज्ञा के कारण एक ही प्रत्यय होगा।

गर्गस्य युवापत्यं गार्ग्यायणः। गर्ग का प्रपौत्र-पुत्र। पहले **गर्गस्य गोत्रापत्यम्** अर्थ में **गर्गादिभ्यो यञ्** सूत्र से यञ् प्रत्यय करके **गार्ग्य** बना लिया जाय, उसके बाद पुनः **गर्गस्य युवापत्यम्** अर्थ में गोत्रप्रत्ययान्त **गार्ग्य**-शब्द से ही **यञिञोश्च** सूत्र के द्वारा फक् प्रत्यय करके आयन् आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, अकार का लोप, यकार का लोप करके **गार्ग्यायणः** बना लेना चाहिये। इसी तरह पञ्चम, षष्ठ, सप्तम आदि सभी पुरुषों में गोत्रप्रत्ययान्त **गार्ग्य**-शब्द से ही फक् होगा किन्तु जितने पुरुष होंगे, उतने प्रत्यय नहीं होंगे।

प्रकृतसूत्र का भाष्य में योगविभाग किया गया है। **गोत्राद्यूनि** प्रथमांश और **अस्त्रियाम्** द्वितीयांश है। पूर्व अंश से **यूनि** की अनुवृत्ति आती है। **अस्त्रियाम्** और **यूनि** दोनों पद प्रथमान्त में विपरिणत हो जाते हैं- **अस्त्री युवा।** इसका अर्थ हो जाता है- **स्त्रियां युवा न** अर्थात् स्त्रीलिंग में युव-संज्ञा नहीं होती। अतः मूल पुरुष गर्ग से पञ्चमादि युवतियों के अभिधान होने पर युवसंज्ञा न होने से यथाप्राप्त गोत्रसंज्ञा के कारण **एको गोत्रे** सूत्र के नियम से यञ्-प्रत्यय होकर **गार्ग्य** और उससे **यञश्च** सूत्र से ङीष् होकर **गार्ग्य+ई,** अकार का **यस्येति च** से लोप और यकार का **हलस्तद्धितस्य** से लोप होकर **गार्गी** ही रूप बनता है।

स्त्रियां गोत्रत्वादेक एव प्रत्ययः। इस तरह स्त्रीलिंग में गोत्रत्व मात्र रहने से अर्थात् युवत्व न रहने से एक ही प्रत्यय होगा।

विशेषः- प्रकृतसूत्र में **अपत्य** शब्द पुत्रपौत्रादि का वाचक है। तब तो गर्ग-शब्द से तृतीय-पुरुष (पौत्र) **गार्ग्य** कहलायेगा, इसके बाद मूलपुरुष से पञ्चमादि पुरुष भी अपत्य वाच्य होने के कारण अनन्तर युवासंज्ञा की विवक्षा में फक् प्रत्यय होकर यद्यपि अभीष्ट रूप सिद्ध हो सकता है तो भी गर्ग से पाँचवें पुरुष युवा की विवक्षा में मूल प्रकृति **गर्ग** से इञ् प्रत्यय सम्भावित है। फिर **गार्गि** के अपत्यरूप की विवक्षा में **गर्ग** के पाँचवें युवा पुरुष में **गार्गि** से फक् होकर **गार्गायणः** यह रूप भी निष्पन्न होने लगेगा। वैसे ही गर्ग से चतुर्थ युवापत्य में गोत्रसंज्ञा न होने से यञ्-प्रत्यय के न होने पर इञ् होकर **गार्गिः** रूप होगा। गार्गि से आगे अपत्यों में गर्ग के पञ्चमादि युवापत्य की विवक्षा में इञ्-प्रत्ययान्त **गार्गि** से फक् प्रत्यय होने पर **गार्गायणः** रूप निष्पन्न होगा। गोत्रप्रत्ययान्त **गार्ग्य**-शब्द से गर्ग के पञ्चमादि युवा की अपेक्षा में **गार्ग्यायणः** ही होगा। इस वैषम्य का निवारण करने के लिये प्रकृतसूत्र से यह नियम किया गया कि **गोत्रप्रत्ययान्त से ही युवसंज्ञक प्रत्यय हो, न कि मूलप्रकृति से और उसके अनन्तर-अपत्यप्रत्ययान्त से अथवा युवप्रत्ययान्त से।** यदि **अपत्य** शब्द को केवल **पुत्र** अर्थ में रूढ माना जाय तो पञ्चमादि युवापत्य की विवक्षा में चतुर्थादि अपत्यप्रत्ययान्त से प्रत्यय होगा, न कि तृतीयवाची गोत्रप्रत्ययान्त से। अतः उसका विधान करने में प्रकृत सूत्र की चरितार्थता क्यों न मानी जाय? इसका समाधान यह है कि भाष्यकार को पुत्रपौत्रादि साधारण अर्थ में ही अपत्य शब्द का प्रयोग अभीष्ट है। इस लिये प्रत्यय के सम्बन्ध में यह सूत्र भी पूर्वसूत्र की तरह ही नियामक है। अत एव दीक्षित जी ने पूर्वसूत्र के अन्त में लिखा है- एवमुत्तरसूत्रेऽप्यूह्यम्।

१०९५. अत इञ् ४।१।९५॥

अदन्तं यत्प्रातिपदिकं तत्प्रकृतिकात् पष्ठ्यन्तादिञ् स्यादपत्येऽर्थे।

दाक्षिः।

अत इञ्। अतः पञ्चम्यन्तम्, इञ् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद् वा** का अधिकार आ रहा है और **तस्यापत्यम्** इस पूरे सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है।

अपत्य अर्थ में ह्रस्व अकारान्त षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से इञ् प्रत्यय होता है।

अतः पद **प्रातिपदिकात्** का विशेषण है। अतः तदन्तविधि होकर **अदन्तात्** अर्थ होता है। जैसा कि मूलकार ने लिखा है- **अदन्तं यत्प्रातिपदिकं, तत्प्रकृतिकात् षष्ठ्यन्तात्।** विधेय **इञ्** प्रत्यय में **ञकार** इत्संज्ञक है, **इकार** ही शेष रहता है। ञित् होने से ञित्व-प्रयुक्त वृद्धि आदि कार्य होते हैं। यह सूत्र तथा आगे के स्वतन्त्र प्रत्ययविधायक सूत्र पूर्वपठित उत्सर्गसूत्र **तस्यापत्यम्** के अपवाद हैं।

दाक्षिः। दक्ष की सन्तान। **दक्षस्य अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **दक्ष ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **अत इञ्** से **इञ्** प्रत्यय हुआ- **दक्ष ङस् इञ्** बना। ञकार की इत्संज्ञा हुई- **दक्ष ङस् इ** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **दक्ष+इ** बना। **ञित्** होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर दकारोत्तरवर्ती **अकार** के स्थान पर **आकार** आदेश और **भसंज्ञक अकार** का **यस्येति च** से लोप करने पर **दाक्ष्+इ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **दाक्षि** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **दाक्षिः** सिद्ध हुआ।

इसी तरह आगे और प्रयोग भी बनते हैं।

दाशरथिः। दशरथ की सन्तान। **दशरथस्य अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **दशरथ ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **अत इञ्** से इञ् प्रत्यय हुआ- **दशरथ ङस् इञ्** बना। ञकार की इत्संज्ञा हुई- **दशरथ ङस् इ** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **दशरथ+इ** बना। ञित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर दकारोत्तरवर्ती **अकार** के स्थान पर **आकार** आदेश और भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** से लोप करने पर **दाशरथ्+इ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **दाशिरथि** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु विभक्ति, उसका रुत्वविसर्ग करके **दाशरथिः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **अर्जुनस्यापत्यम् आर्जुनिः, युधिष्ठिरस्यापत्यं यौधिष्ठिरिः, कृष्णस्यापत्यं कार्ष्णिः** आदि अनेक अपत्यप्रत्ययान्त शब्द बनाये जा सकते हैं।

स्मरणीयः- तद्धित में मूलपुरुष से द्वितीय को केवल अपत्य या अनन्तरापत्य कहते हैं। मूलपुरुष से तृतीयपुरुष गोत्रसंज्ञक और मूलपुरुषादि के जीवित रहते चतुर्थादि पुरुष युवापत्य हो जाते हैं। इस अपत्याधिकार में जिस सूत्र से सामान्य रूप में प्रत्यय का विधान किया गया हो अर्थात् यह कहा हो कि अनन्तरापत्य में या गोत्रापत्य में अथवा युवापत्य में प्रत्यय होता है, वहाँ वह प्रत्यय सामान्यतया सभी उपर्युक्त तीनों अपत्यों में हुआ करेगा।

१०९६. बाह्वादिभ्यश्च ४।१।९६॥

बाहविः। औडुलोमिः। आकृतिगणोऽयम्।

बाह्वादिभ्यश्च। बाहुः आदिर्येषां ते बाह्वादयस्तेभ्यो बाह्वादिभ्यः। बाह्वादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **तस्यापत्यम्** इस पूरे सूत्र की तथा **अत इञ्** से **इञ्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद् वा** का अधिकार आ रहा है।

बाहु आदि गणपठित शब्दों से अपत्य अर्थ में इञ् प्रत्यय होता है।

बाहविः। बाहु नामक व्यक्ति की सन्तान। **बाहोः अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **बाहु ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है।

बाह्वादिभ्यश्च से इञ् प्रत्यय हुआ- **बाहु ङस् इञ्** बना। **ञकार** की इत्संज्ञा हुई- **बाहु ङस् इ** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **बाहु+इ** बना। ञित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर बकारोत्तरवर्ती **आकार** के स्थान पर **आकार** ही आदेश हुआ। **ओर्गुणः** से **बाहु** के **उकार** को गुण करके **अव्** आदेश करने पर **बाहवि** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **बाहविः** सिद्ध हुआ।

इस सूत्र में **लोम्नोऽपत्येषु बहुष्वकारो वक्तव्यः** यह वार्तिक पठित है। इसकी व्याख्या पहले की जा चुकी है। वार्तिकार्थः- **अपत्य अर्थ में लोमन् शब्द से बहुवचन में अकार प्रत्यय होता है।** यह **बाह्वादिभ्यश्च** का अपवाद है।

औडुलोमिः। उडुलोमन् नामक व्यक्ति की सन्तान। **उडुलोम्नः अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **उडुलोमन् ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **बाह्वादिभ्यश्च** से इञ् प्रत्यय हुआ- **उडुलोमन् ङस् इञ्** बना। **ञकार** की इत्संज्ञा हुई- **उडुलोमन् ङस् इ** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **उडुलोमन्+इ** बना। ञित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर **उकार** के स्थान पर **औकार** आदेश हुआ। **औडुलोमन्+इ** बना। **नस्तद्धिते** से टिसंज्ञक **अन्** का लोप हुआ- **औडुलोम्+इ** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **औडुलोमि** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **औडुलोमिः** सिद्ध हुआ। बहुवचन में **बाह्वादिभ्यश्च** को बाधकर **लोम्नोऽपत्येषु बहुष्वकारो वक्तव्यः** इस वार्तिक से **अ-प्रत्यय** होकर **उडुलोमाः** बनेगा। अन्तर इतना है कि **इञ्** होने पर ञित् होने के कारण वृद्धि होती है और **अ** होने पर वृद्धि नहीं होती। अतः **उडुलोमाः** ही बनता है। यह शब्द बहुवचन में अकारान्त और अन्यत्र इकारान्त होता है। इस तरह इसके रूप बनते हैं- **औडुलोमिः, औडुलोमी, उडुलोमाः**। औडुलोमिम्, औडुलोमी, उडुलोमान्। **औडुलोमिना, औडुलोमिभ्याम्, उडुलोमैः** इत्यादि।

आकृतिगणोऽयम्। यद्यपि बाह्वादि आकृतिगण है तथापि कुछ शब्द दिखाये गये हैं। जैसे- बाहु, उपबाहु, उपवाकु, निवाकु, शिवाकु, वटाकु, उपनिन्दु, (उपविन्दु), वृषली, वृकला, चूडा, बलका, मूषिका, कुशला, भगला (छगला), ध्रुवका, [धुवका] कुनामन्, (सुनामन्), पञ्चन्, सप्तन्, अष्टन्। अतितौजसः सलोपश्च। सुधावत्, उदञ्चु, शिरस्, माष, शराविन्, मरीचि, क्षेमवृद्धिन्, शूङखलतोदिन्, नगरमर्दिन्, प्राकारमर्दिन्, लोमन्, अजीगर्त, कृष्ण, युधिष्ठिर, अर्जुन, साम्ब, गद, प्रद्युम्न, राम, (उदङ्क)। उदकः संज्ञायाम्। संभूयोम्भसोः सलोपश्च। **आकृतिगणोऽयम्**। तेन सात्त्विकिः, जाङ्घ्रिः, ऐन्दशर्मिः आजधेनविः इत्यादि।

बाह्वादिगणपठित अनेक शब्दों के अकारान्त न होने के कारण **अत इञ्** से प्राप्ति सम्भव न होने के कारण प्रकृतसूत्र की उपयोगिता सिद्ध होती है।

१०९७. सुधातुरकङ् च ४।१।९७॥

चादिञ्। सुधातुरपत्यं सौधातकिः।

'व्यासवरुडनिषादचण्डालबिम्बानां चेति वक्तव्यम्' (वा.२६११)।

सुधातुरकङ् च। सुधातुः पञ्चम्यन्तम्, अकङ् प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **अत इञ्** से **इञ्** की और **तस्यापत्यम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है साथ ही **ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** आदि का अधिकार है।

षष्ठ्यन्त सुधातृ-प्रातिपदिक से अपत्यार्थ में इञ्-प्रत्यय होता है और सुधातृ-शब्द को अकङ् आदेश भी होता है।

चादिञ्। प्रकृतसूत्र अकङ् आदेश के लिये है किन्तु च-शब्द से इञ्-प्रत्यय का ग्रहण किया जाता है। **अकङ्** में ङकार इत्संज्ञक और ककारोत्तरवर्ती अकार उच्चारणार्थ है, **अक्** बचता है। आदेश के ङित् होने के कारण **ङिच्च** सूत्र के नियम से **सुधातृ**-शब्द के अन्त्य वर्ण ऋकार के स्थान पर यह आदेश हो जाता है।

सूत्रस्थ **सुधातुः** शब्द की आवृत्ति की जाती है और एक **सुधातुः** को पञ्चम्यन्त और एक **सुधातुः** को षष्ठ्यन्त माना जाता है। पञ्चम्यन्त से प्रत्यय का विधान और षष्ठ्यन्त से आदेश का विधान किया जाता है।

सुधातुरपत्यं सौधातकिः। सुधातृ की सन्तान। **सुधातुः अपत्यम्** अर्थ में **सुधातृ+ङस्** षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से **सुधातुरकङ् च** सूत्र के द्वारा इञ् प्रत्यय और अकङ् आदेश होने पर **सुधातक्+ङस्+इ** बना है। तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **सुधातक्+इ** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** सूत्र से आदिवृद्धि होने पर उकार को औकार होकर **सौधातकि** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सौधातकिः** सिद्ध हो जाता है।

व्यासवरुडनिषादचण्डालबिम्बानां चेति वक्तव्यम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- व्यास, वरुड, निषाद, चण्डाल, बिम्ब शब्दों से भी इञ् प्रत्यय के साथ प्रकृति के अन्त्य वर्ण के स्थान पर अकङ् आदेश होता है। इसके उदाहरण आगे दिये जायेंगे।

१०९८. न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच् ७।३।३॥

पदान्ताभ्यां यकारवकाराभ्यां परस्य न वृद्धिः, किन्तु ताभ्यां पूर्वौ क्रमादैचावागमौ स्तः। वैयासकिः। वारुडकिरित्यादि।

न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्। न अव्ययपदं, य्वाभ्यां पञ्चम्यन्तं, पदान्ताभ्यां पञ्चम्यन्तं, पूर्वौ प्रथमान्तं, तु अव्ययपदं, ताभ्यां पञ्चम्यन्तं, ऐच् प्रथमान्तम् अनेकपदमिदं सूत्रम्। **मृजेर्वृद्धिः** से **वृद्धिः** की, **अचो ञ्णिति** की, **तद्धितेष्वचामादेः, किति** की अनुवृत्ति आती है।

ञित् णित् कित् तद्धित प्रत्ययों के परे रहने पर पदान्त यकार वकार से परे आदि अच् की वृद्धि नहीं होती किन्तु उनसे पूर्व के वर्णों को ऐच् अर्थात् ऐ, औ का क्रमशः आगम होता है।

यह सूत्र **तद्धितेष्वचामादेः** आदि से प्राप्त वृद्धि का निषेध करके ऐच् आगम का विधान करता है। सूत्रस्थ **न** शब्द निषेधार्थक है। **ताभ्याम्** का अभिप्राय **य्वाभ्याम्** से है। **पूर्वौ** का अर्थ है- पूर्वावयव। **ऐच्** प्रत्याहार है, जिसमें ऐ, औ ये दो वर्ण आते हैं। यथासंख्य होने से यकार से पूर्व **ऐ** और वकार से पूर्व **औ** होता है। ध्यान रहे कि ये आगम हैं आदेश नहीं और यकार तथा वकार से पूर्व में ही होंगे। शब्द के आदि में पदसंज्ञा समास होने पर ही सम्भव है। समास में पूर्वपद में वि, नि, सु इन उपसर्गसंज्ञक या निपातसंज्ञक शब्दों के इक् के स्थान पर यणादेश हुआ हो तो अन्तर्वर्तिनी विभक्ति को प्रत्ययलक्षण से मानकर कृतयणादेश य्, व् की पदसंज्ञा मान ली जाती है। वैसे आगम की स्थिति का निर्धारण करने के लिये उसके साथ टकार, ककार या मकार अनुबन्ध जोड़ा जाता है परन्तु **ऐच्** के साथ कोई अनुबन्ध न जोड़कर आचार्य ने **पूर्वौ** पद का योग किया है ताकि आगम वृद्धिनिषेध-विषयक अच् से पूर्व हो जाय।

वैयासकिः। व्यास के पुत्र, व्यास की सन्तति। **व्यासस्य अपत्यम्** अर्थ में **व्यास+ङस्** इस षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से **व्यासवरुडनिषादचण्डालबिम्बानां चेति वक्तव्यम्** वार्तिक के द्वारा **इञ्** प्रत्यय और अन्त्य वर्ण सकारोत्तरवर्ती अकार के स्थान पर **अकङ्** आदेश होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **व्यासक्+इ** बना। यहाँ आदि अच् आकार की **तद्धितेष्वचामादेः** से वृद्धि प्राप्त थी, उसे **न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्** से निषेध करके **य** से पहले **ऐ** का आगम हुआ- **व्+ऐ+यासकि** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वैयासकिः** सिद्ध हो जाता है।

यहाँ **व्यास**-शब्द मात्र न होकर **वेदव्यास** शब्द है। पूर्वपद वेद-शब्द का **ठाजादावूर्ध्वं द्वितीयादचः** (५.३.८३) सूत्र में पठित **विनापि प्रत्ययं पूर्वोत्तरपदयोर्वा लोपो वाच्यः** वार्तिक से लोप हुआ है। जैसे कि **सत्यभामा** में **सत्या, भामा** और **देवदत्त** मे **देव, दत्त** आदि हुआ करता है। अतः **वेद+व्यास** में केवल **व्यास** शब्द का प्रयोग किया गया है। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है- **वेदान् व्यस्यति** (वेदों का विस्तार करता है) अर्थ में **वेद+शस्** के उपपद रहते **वि**-उपसर्ग पूर्वक **अस्** धातु से **कर्मण्यण्** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर उपधावृद्धि होकर **आस** शब्द बना है। **वि+आस** में **वि** शब्द एक अव्ययपद है। प्रादिसमास होने पर सन्धि होकर **व्यास** शब्द बनता है। **वेदस्य व्यास** विग्रह में उपपदसमास होकर **वेदव्यास** शब्द बनता है। पूर्वपद का लोप होने पर **व्यास** बन गया है। अतः **वि** शब्द पद है और यण् होने पर भी **यकार** को पदान्त ही माना जाता है। फलतः **न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्** की प्रवृत्ति हो जाती है।

यहाँ पर यह शंका होती है कि प्रकृतसूत्र से विधीयमान ऐच्-आगम से ही वृद्धि का अपवाद सिद्ध रहा तो पुनः वृद्धि-निषेध करने की क्या आवश्यकता रही? इस सम्बन्ध

में यह कहा जाता है कि **जहाँ यकार और वकार से परवर्ती अच् की वृद्धि की सम्भावना हो, वहीं आदिवृद्धि का निषेध होगा किन्तु जहाँ पर ऐसा न हो, वहाँ पर केवल ऐच् आगम मात्र होगा।** इस तरह वृद्धि के निषेध द्वारा विषय का निर्देश कराया गया है। तदनुसार **दाध्यश्विः** में वृद्धिनिषेध नहीं होता और ऐच् आगम भी नहीं। इसी तरह **द्व्याशीतिकः** (१६० वर्ष या मास के लिये) में **द्वे अशीती** भृतः विग्रह में **तमधीष्टो भृतो भूतो भावी** सूत्र के द्वारा **ठञ्** प्रत्यय, इकादेश होने पर उत्तरपद **अशीतिक** शब्द के अकार की वृद्धि होती है, अन्यथा **संख्यायाः संवत्सरसंख्यस्य च** सूत्र से प्राप्त वृद्धि होने लगती।

वारुडकिः। वरुड की सन्तति। **वरुडस्य अपत्यम्** अर्थ में **वरुड+ङस्** इस षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से **व्यासवरुडनिषादचण्डालबिम्बानां चेति वक्तव्यम्** वार्तिक के द्वारा **इञ्** प्रत्यय और अन्त्य वर्ण डकारोत्तरवर्ती अकार के स्थान पर **अकङ्** आदेश होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **वरुडक्+इ** बना। यहाँ पर पदान्त वकार न होने के कारण **न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्** की प्राप्ति नहीं है। अतः **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि होकर **वारुडकि** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वारुडकिः** सिद्ध हो जाता है।

इसी तरह–

निषादस्य अपत्यं नैषादकिः (निषाद की सन्तान),

चण्डालस्य अपत्यं चाण्डालकिः (चण्डाल की सन्तान)

बिम्बस्य अपत्यं बैम्बकिः (बिम्ब की सन्तान) प्रयोगों में भी इञ् प्रत्यय और अकङ् आदेश करके आदिवृद्धि से उक्त रूपों की सिद्धि कर लेनी चाहिये।

न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच् सूत्र के अन्य उदाहरणः–

वैयाकरणः। व्याकरण पढ़ने या जानने वाला। **व्याकरणम् अधीते वेद वा** लौकिक विग्रह और **व्याकरण अम्** अलौकिक विग्रह है। **तदधीते तद्वेद** से अण् प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **व्याकरण+अ** बना। यहाँ आदि अच् आकार की **तद्धितेष्वचामादेः** से वृद्धि प्राप्त थी उसे **न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्** से निषेध करके य से पहले **ऐ** का आगम हुआ– **व्+ऐ+याकरण+अ** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन होने पर **वैयाकरण** बन गया, सु, रुत्वविसर्ग करके **वैयाकरणः** सिद्ध हुआ।

वैयाघ्रिः। व्याघ्र की सन्तान। **व्याघ्रस्य अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह और **व्याघ्र ङस्** अलौकिक विग्रह है। **अत इञ्** से इञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **व्याघ्र+इ** बना है। अब यहाँ आदि अच् आकार की **तद्धितेष्वचामादेः** से वृद्धि प्राप्त थी उसे **न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्** से निषेध करके य से पहले **ऐ** का आगम हुआ– **व्+ऐ+याघ्र+इ** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके

वर्णसम्मेलन होने पर **वैयाघ्रि** बन गया, सु, रुत्वविसर्ग करके **वैयाघ्रिः** सिद्ध हुआ। ये ऐकारागम के उदाहरण हैं।

सौवश्विः। स्वश्व की सन्तान। **सु शोभनोऽश्वोऽस्य** विग्रह में समासादि होकर **स्वश्व** शब्द बना है। **स्वश्वस्य अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह और **स्वश्व+ङस्** अलौकिक विग्रह है। **अत इञ्** से इञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **स्वश्व+इ** बना है। अब यहाँ आदि अच् अकार की **तद्धितेष्वचामादेः** से वृद्धि प्राप्त थी, उसे **न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्** से निषेध करके **व्** से पहले **औ** का आगम हुआ- **स्+औ+वश्व+इ** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन होने पर **सौवश्वि** बन गया है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सौवश्विः** सिद्ध हो जाता है। यह औकारागम का उदाहरण है।

१०९९. गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्चफञ् ४।१।९८॥

गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्चफञ्। कुञ्जम् आदिर्येषां ते कुञ्जादयस्तेभ्यः कुञ्जादिभ्यः, बहुव्रीहिः। गोत्रे सप्तम्यन्तं, कुञ्जादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, च्फञ् प्रथमान्तम्। **तस्यापत्यम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है साथ ही **ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** आदि का अधिकार है। कुञ्जादिप्रकृतिकेभ्यः षष्ठ्यन्तेभ्यो गोत्रापत्येऽर्थे च्फञ् प्रत्ययो भवति।

षष्ठ्यन्त कुञ्ज-आदिगणपठित प्रातिपदिकों से गोत्रापत्यार्थ में च्फञ्-प्रत्यय होता है।

यह **इञ्** प्रत्यय का अपवाद है। **च्फञ्** में चकार और ञकार इत्संज्ञक हैं, फ मात्र बचता है। उसके स्थान पर **आयनेयीनीयियः०** सूत्र से आयन् आदेश होने पर **आयन** बन जाता है। इसके उदाहरण अगले सूत्र में दिये गये हैं।

कुञ्जादिगणः- कुञ्ज, ब्रध्न, शङ्ख, भस्मन्, गण, लोमन्, शठ, शाक, शुण्डा, शुभ, विपाश्, स्कन्द, स्कम्भ।

११००. व्रातच्फञोरस्त्रियाम् ५।३।११३॥

व्रातवाचिभ्यः च्फञन्तेभ्यश्च स्वार्थे ञ्यः स्यात्, न तु स्त्रियाम्। कौञ्जायन्यः। बहुत्वे तद्राजत्वाल्लुग्वक्ष्यते। ब्राध्नायन्यः। स्त्रियां कौञ्जायनी। गोत्रत्वेन जातित्वान्ङीष्। अनन्तरापत्ये कौञ्जिः।

व्रातच्फञोरस्त्रियाम्। व्रातश्च च्फञ् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो व्रातच्फञौ, तयोर्व्रातच्फञोः। न स्त्री अस्त्री, तस्यामस्त्रियाम्, नञ्तत्पुरुषः। व्रातच्फञोः षष्ठीद्विवचनान्तम्, अस्त्रियां सप्तम्यन्तम्। **पूगाञ्ञ्योऽग्रामणीपूर्वात्** सूत्र से **ञ्यः** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

व्रातवाची और च्फञ्-प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से स्वार्थ में ञ्य-प्रत्यय होता है किन्तु स्त्रीलिंग में नहीं होता।

जो लोग जीवों को मार-मार कर जीविका करें=शस्त्रोपजीवी हों, उनके संघ को **व्रात** कहते हैं। पूर्वसूत्र के सम्बन्ध में प्रकृतसूत्र की प्रस्तुति है। च्फञ्-प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से स्त्रीलिंग के अतिरिक्त अन्य लिंगों की विवक्षा में एक दूसरे प्रत्यय का विधान किया जा रहा है। सूत्रस्थ **व्रातच्फञोः** षष्ठ्यन्त पद पञ्चमी के अर्थ में प्रयुक्त है। प्रकृतसूत्र से विधीयमान **ञ्य** प्रत्यय स्वार्थ में विहित है। **अनिर्दिष्टार्थाः प्रत्ययाः स्वार्थे भवन्ति।** स्वार्थिक इस लिये कहा जा रहा है कि गोत्रापत्य अर्थ में तो पूर्वसूत्र **गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फञ्** सूत्र से ही च्फञ् प्रत्यय किया जा चुका है। यह तादृशप्रत्ययान्त से पुनः प्रत्यय कर रहा है। अतः इस प्रत्यय का अर्थ निर्दिष्ट नहीं है। फलतः स्वार्थिक प्रत्यय हो जाता है। **ञ्य** प्रत्यय में ञकार इत्संज्ञक है, **य** मात्र बचता है। च्फञ्-प्रत्ययान्त शब्द के लिये पुनः ञित्करण की आवश्यकता नहीं थी किन्तु व्रातवाची शब्दों के लिये ञित्करण की सार्थकता है।

कौञ्जायन्यः। कुञ्ज का गोत्रापत्य। **कुञ्जस्य गोत्रापत्यम्** अर्थ में **गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फञ्** सूत्र से **च्फञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, फकार के स्थान पर **आयन्** आदेश, आदिवृद्धि, अकार का लोप करके **कौञ्जायन** शब्द बन चुका है। अब **व्रातच्फञोरस्त्रियाम्** सूत्र से **ञ्य** प्रत्यय होने पर **यस्येति च** से अकारलोप करके **कौञ्जायन्य** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कौञ्जायन्यः** सिद्ध हो जाता है। द्विवचन में **कौञ्जायन्यौ** बनता है। बहुवचन में-

बहुत्वे तद्राजत्वाल्लुग्वक्ष्यते। बहुवचन में **ते तद्राजाः** सूत्र से तद्राजसंज्ञा होने पर **तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्** सूत्र से **ञ्य** प्रत्यय का लुक् बताया जायेगा। अतः बहुवचन में **कौञ्जायनाः** रूप बनता है।

ब्राध्नायन्यः। ब्रध्न का गोत्रापत्य। **ब्रध्नस्य गोत्रापत्यम्** अर्थ में **गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फञ्** सूत्र से **च्फञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, फकार के स्थान पर **आयन्** आदेश, आदिवृद्धि, अकार का लोप करके **ब्राध्नायन** शब्द बन चुका है। अब **व्रातच्फञोरस्त्रियाम्** सूत्र से **ञ्य** प्रत्यय होने पर **यस्येति च** से अकारलोप करके **ब्राध्नायन्य** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **ब्राध्नायन्यः** सिद्ध हो जाता है। द्विवचन में **ब्राध्नायन्यौ** बनता है। बहुवचन में **ते तद्राजाः** सूत्र से तद्राजसंज्ञा होने पर **तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्** सूत्र से **ञ्य** प्रत्यय का लुक् होकर **ब्राध्नायनाः** रूप बनता है।

स्त्रियां कौञ्जायनी। गोत्रत्वेन जातित्वान्ङीष्। स्त्रीलिंग में **ञ्य** प्रत्यय नहीं होगा, क्योंकि **व्रातच्फञोरस्त्रियाम्** सूत्र से निषेध किया गया है। अतः **कौञ्जायन** शब्द ही बना हुआ है। उससे स्त्रीत्वविवक्षा में गोत्रप्रत्ययान्त होने के कारण जातिवाचक मानकर

जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् सूत्र के द्वारा ङीष् प्रत्यय होकर **कौञ्जायनी** शब्द बन जाता है। यहाँ कहीं टाप् सर अन्य स्त्रीप्रत्यय की आशंका न हो, एतदर्थ मूलकार ने लिख दिया है- **गोत्रत्वेन जातित्वान्ङीष्।**

अनन्तरापत्ये कौञ्जिः। पूर्वसूत्र गोत्रापत्य अर्थ में ही च्फञ् प्रत्यय करता है। अतः अनन्तरापत्य अर्थ में उक्त प्रत्यय नहीं होगा अपितु **अत इञ्** सूत्र से **कुञ्ज** शब्द से इञ् प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **कौञ्जि** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कौञ्जिः** सिद्ध हो जाता है।

११०१. नडादिभ्यः फक् ४।१।९९॥
गोत्र इत्येव। नाडायनः। चारायणः। अनन्तरो नाडिः।

नडादिभ्यः फक्। नड आदिर्येषां ते नडादयस्तेभ्यो नडादिभ्यः, बहुव्रीहिः। नडादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, फक् प्रथमान्तम्। **गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्चफञ्** से **गोत्रे** और **तस्यापत्यम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** आदि का अधिकार है। नडादिगणपठितेभ्यः षष्ठ्यन्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो गोत्रापत्येऽर्थे फक् प्रत्ययो भवति।

षष्ठ्यन्त नडादि-गणपठित प्रातिपदिकों से गोत्रापत्यार्थ में फक्-प्रत्यय होता है।

अत इञ् का यह अपवाद है। कित्करण **किति च** से आदिवृद्धि के लिये है।

नाडायनः। नड का पौत्र। **नडस्य गोत्रापत्यम्** अर्थ में **नड+ङस्** षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से **अत इञ्** से प्राप्त प्रत्यय को बाधकर **नडादिभ्यः फक्** सूत्र से फक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, फकार को आयन् आदेश होकर **नड+आयन** बना है। **किति च** सूत्र से आदिवृद्धि और **यस्येति च** से भसंज्ञक अकार का लोप होकर **नाडायन** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **नाडायनः** सिद्ध हो जाता है।

चारायणः। चर का पौत्र। **चरस्य गोत्रापत्यम्** अर्थ में **चर+ङस्** षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से **अत इञ्** से प्राप्त प्रत्यय को बाधकर **नडादिभ्यः फक्** सूत्र से फक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, फकार को आयन् आदेश होकर **चर+आयन** बना है। **किति च** सूत्र से आदिवृद्धि और **यस्येति च** से भसंज्ञक अकार का लोप, रेफ से परे नकार को **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** सूत्र से णत्व होकर **चारायण** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **चारायणः** सिद्ध हो जाता है।

अनन्तरो नाडिः। यदि गोत्रापत्य अर्थ न होकर अनन्तरापत्य अर्थ विवक्षित हो तो उक्त फक् प्रत्यय नहीं होता, क्योंकि प्रकृतसूत्र में **गोत्रे** पद की अनुवृत्ति से गोत्रापत्य

में ही फक् किया जाता है। अतः **नडस्य अपत्यम्** (नड का पुत्र) अर्थ में **अत इञ्** सूत्र से इञ् प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि, अकार का लोप, स्वादिकार्य होकर **नाडिः** सिद्ध हो जाता है।

नडादिगणः- नड, चर, (वर) बक, मुञ्ज, इतिक, इतिश, उपक, (एक) लमक। शलङ्कं च। सप्तल, वाजप्य, तिक। अग्निशर्मन्वृषगणे। प्राण, नर, सायक, दास, मित्र, द्विप, पिङ्गर, पिङ्गल, किङ्कल, (कातर), फातल, काश्यप, (कुश्यप), काश्य, काल्य, (काव्य), अज, अमुष्म, (अमुष्य), कृष्णरणौ ब्राह्मणवासिष्ठे। अमित्र, लिगु, चित्र, कुमार। क्रोष्टु क्रोष्टं च। लोह, दुर्ग, स्तम्भ, शिंशपा, अग्र, तृण, शकट, सुमनस्, सुमत, मिमत, ऋच्, जलंधर, युगंधर, हंसक, दण्डिन्, हस्तिन्, [पिण्ड] पञ्चाल, चमसिन्, सुकृत्य, स्थिरक, ब्राह्मण, चटक, बदर, अश्वल, खरप, लङ्क, इन्ध, अस्त्र, कामुक, ब्रह्मदत्त, उदुम्बर, शोण, अलोह दण्डप।

११०२. हरितादिभ्योऽञः ४।१।१००॥

एभ्योऽञन्तेभ्यो यूनि फक्। हारितायनः। इह गोत्राधिकारेऽपि सामर्थ्याद्यून्ययम्। न हि गोत्रादपरो गोत्रप्रत्ययः। बिदाद्यन्तर्गणो हरितादिः।

हरितादिभ्योऽञः। हरित आदिर्येषां ते हरितादयस्तेभ्यो हरितादिभ्यः। हरितादिभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अञः पञ्चम्यन्तम्। **नडादिभ्यः फक्** से **फक्** की और **तस्यापत्यम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक हरितादिगण में पठित अञ्-प्रत्ययान्त शब्दों से युवापत्य अर्थ में फक् प्रत्यय होता है।

विधेय **फक्** है। सूत्र के **अञः** पद में तदन्तविधि होकर **अञन्तेभ्यः** बना लिया जाता है। अञन्त होने पर ही फक् का विधान किया गया है। अतः पहले **अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्** (४.१.१०४) सूत्र से अण् प्रत्यय किया जाता है।

हारितायनः। हरित का प्रपौत्र। **हरितस्य युवापत्यम्** अर्थ में **हरित+ङस्** षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से **अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्** से **अञ्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **हारित** शब्द बना है। इसके बाद **हरितादिभ्योऽञ्** सूत्र से फक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, फकार को आयन् आदेश होकर **हारित+आयन** बना है। **यस्येति च** से भसंज्ञक अकार का लोप होकर **हारितायन** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **हारितायनः** सिद्ध हो जाता है।

इह गोत्राधिकारेऽपि सामर्थ्याद्यून्ययम्। न हि गोत्रादपरो **गोत्रप्रत्ययः।** प्रकृतसूत्र में यद्यपि **गोत्रे** का अधिकार है तथापि हरितादि शब्दों से पहले होने वाला अञ् प्रत्यय भी गोत्रार्थ की विवक्षा में ही हुआ है। अतः यहाँ पर **एको गोत्रे** सूत्र के नियम से पुनः गोत्र में फक् प्रत्यय नहीं हो सकता। इस प्रकार विधान-सामर्थ्य से यह प्रत्यय युवापत्य में होगा। अत एव प्रकृतसूत्र में **गोत्रे** की अनुवृत्ति नहीं दिखायी गयी है।

बिदाद्यन्तर्गणो हरितादिः। हरितादिगण बिदादिगण का अन्तर्गण है। अतः **अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्** से अञ् प्रत्यय किया जाता है।

हरितादिगणः- हरित, किंदास, वह्यस्क, अर्कजूष, (अर्कलूष), बध्योग, विष्णुवृद्ध, प्रतिबोध, रचित, (रथीतर), रथन्तर, गविष्ठिर, निषाद, (शबर, अलस), मठर, (मृडाकु), सृपाकु, मृदु, पुनर्भू, पुत्र, दुहितृ, ननान्दृ। परस्त्री परशुं च।

११०३. यञिञोश्च ४।१।१०१॥

गोत्रे यौ यञिञौ तदन्तात् फक् स्यात्। 'अनाति' इत्युक्ते 'आपत्यस्य-' (सू.१०८२) इति यलोपो न। गार्ग्यायणः। दाक्षायणः।

यञिञोश्च। यञ्च इञ्च तयोरितरेतरद्वन्द्वो यञिञौ, तयोः। यञिञोः पञ्चम्यर्थे षष्ठी, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्चफञ्** से **गोत्रे** तथा **नडादिभ्यः फक्** से **फक्** और **तस्यापत्यम्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद् वा** का अधिकार आ रहा है।

गोत्रार्थ में जो **यञ्** और **तथा** प्रत्यय, तदन्त से युवापत्य अर्थ में तद्धितसंज्ञक फक् प्रत्यय होता है।

यञ् और अञ् प्रत्यय हैं और ये **प्रातिपदिकात्** के विशेषण हैं। फलतः तदन्तविधि होकर यञन्तात्, अञन्तात् **प्रातिपदिकात्** अर्थ बना लिया जाता है। विशेष ध्यान देने की बात यह है कि यहाँ पर भी **गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्** सूत्र के नियम से फक् प्रत्यय युवापत्य में ही होगा, गोत्रापत्य में नहीं होगा।

'अनाति' इत्युक्ते 'आपत्यस्य-' इति यलोपो न। अर्थात् **आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति** सूत्र में **अनाति** पद के द्वारा आकारादि प्रत्यय के परे रहते यकारलोप का निषेध किया गया है। फक् प्रत्यय होने पर आयन् आदेश हो जाने से **आयन** आकारादि प्रत्यय है। अतः **गार्ग्य्** के यकार का लोप उक्त सूत्र से नहीं होता।

गार्ग्यायणः। गर्ग का गोत्रापत्य। **गर्गस्य गोत्रापत्यम्। गर्ग ङस्** से **गर्गादिभ्यो यञ्** से **यञ्** करके **गार्ग्य** बना है। अब **गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्** के नियमानुसार **यञिञोश्च** से **फक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से केवल **फ्** के स्थान पर **आयन्** आदेश होकर **गार्ग्य+आयन्+अ** बना। **यस्येति च** से **गार्ग्य** के अकार का लोप करके **गार्ग्य्+आयन्+अ** बना। वर्णसम्मेलन

करने पर **गार्ग्यायन** बना। रेफ से परे नकार को **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से णत्व करने पर **गार्ग्यायण** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् सु, रुत्वविसर्ग करके **गार्ग्यायणः** सिद्ध हुआ।

दाक्षायणः। दक्ष का गोत्रापत्य। **दक्षस्य गोत्रापत्यम्। दक्ष+ङस्** से **अत इञ्** सूत्र से **इञ्** करके **दाक्षि** बना है। अब **गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्** के नियमानुसार **यञिञोश्च** से **फक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से केवल **फ्** के स्थान पर **आयन्** आदेश होकर **दाक्षि+आयन्+अ** बना। **यस्येति च** से इकारलोप करके **दाक्ष्+आयन्+अ** बना। वर्णसम्मेलन करने पर **दाक्षायन** बना। षकार से परे नकार को **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** णत्व करने पर **दाक्षायण** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् सु, रुत्वविसर्ग करके **दाक्षायणः** सिद्ध हो जाता है।

वात्स्यायनः। वत्स का गोत्रापत्य। **वत्सस्य गोत्रापत्यम्। वत्स ङस्** से **गर्गादिभ्यो यञ्** से **यञ्** करके **वात्स्य** बना है। अब **गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्** के नियमानुसार **यञिञोश्च** से **फक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से केवल **फ्** के स्थान पर **आयन्** आदेश होकर **वात्स्य+आयन्+अ** बना। **यस्येति च** से **वात्स्य** के अकार का लोप करके **वात्स्य्+आयन्+अ** बना। वर्णसम्मेलन करने पर **वात्स्यायन** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् सु, रुत्वविसर्ग करके **वात्स्यायनः** सिद्ध हो जाता है।

११०४. शरद्वच्छुनकदर्भाद् भृगुवत्साग्रायणेषु ४।१।१०२॥

गोत्रे फक्। अञिञोरपवादः। आद्यौ बिदादी। शारद्वतायनो भार्गवश्चेत्, शारद्वतोऽन्यः। शौनकायनो वात्स्यश्चेत्, शौनकोऽन्यः। दार्भायण आग्रायणश्चेत्, दार्भिरन्यः।

शरद्वच्छुनकदर्भाद्भृगुवत्साग्रायणेषु। शरद्वान् च शुनकश्च दर्भश्च तेषां समाहारद्वन्द्वः शरद्वच्छुनकदर्भम्, तस्मात् शरद्वच्छुनकदर्भात्। भृगुश्च वत्सश्च आग्रायणश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो भृगुवत्साग्रायणास्तेषु भृगुवत्साग्रायणेषु। शरद्वच्छुनकदर्भात् पञ्चम्यन्तं, भृगुवत्साग्रायणेषु सप्तम्यन्तम्। **गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्चफञ्** से **गोत्रे** तथा **नडादिभ्यः फक्** से **फक्** और **तस्यापत्यम्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद् वा** का अधिकार आ रहा है।

शरद्वत्, शुनक, दर्भ इन षष्ठ्यन्त प्रातिपदिकों से क्रमशः भृगु, वत्स और आग्रायण गोत्रीय अपत्यर्थ वाच्य होने पर तद्धितसंज्ञक फक् प्रत्यय होता है।

अञिञोरपवादः। यह सूत्र **अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्** से प्राप्त अञ्-प्रत्यय और **अत इञ्** से प्राप्त इञ्-प्रत्यय का अपवाद है।

आद्यौ बिदादी। प्रथम दो शब्द शरद्वत् और शुनक बिदादि हैं, अतः अञ् प्रत्यय प्राप्त था किन्तु तृतीय शब्द के अदन्त होने के कारण इञ् प्राप्त था।

शारद्वतायनो भार्गवश्चेत्, शारद्वतोऽन्यः। शरद्वान् के पौत्र आदि वंशज जो भार्गव हों। **शरद्वतो गोत्रापत्यम्** लौकिक विग्रह और **शरद्वत्+ङस्** अलौकिक विग्रह में **अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्** को बाधकर **शरद्वच्छुनकदर्भाद् भृगुवत्साग्रायणेषु** सूत्र से फक् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, फकार के स्थान पर **आयन्** आदेश होकर **शरद्वत्+आयन** बना है। आदिवृद्धि होकर **शारद्वतायन** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **शारद्वतायनः** सिद्ध हो जाता है। **भार्गव** नामक एक ऋषि थे। यदि भार्गव न हों तो प्रकृतसूत्र से फक् नहीं होता अपितु **अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्** से **अञ्** होने पर आदिवृद्धि होकर **शारद्वत** तथा स्वादिकार्य से **शारद्वतः** सिद्ध हो जाता है।

शौनकायनो वात्स्यश्चेत्, शौनकोऽन्यः। शौनक के पौत्र आदि वंशज जो वात्स्य हों। **शुनकस्य गोत्रापत्यम्** अर्थ में **शुनक+ङस्** षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से **अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्** को बाधकर **शरद्वच्छुनकदर्भाद् भृगुवत्साग्रायणेषु** सूत्र से फक् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, फकार के स्थान पर **आयन्** आदेश होकर **शुनक+आयन** बना है। आदिवृद्धि और **यस्येति च** से अकारलोप होकर **शौनकायन** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **शौनकायनः** सिद्ध हो जाता है। **वात्स्य** नामक एक ऋषि थे। यदि वात्स्य अर्थ न हो तो प्रकृतसूत्र से फक् नहीं होता अपितु **अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्** से **अञ्** होने पर आदिवृद्धि होकर **शौनक** तथा स्वादिकार्य से **शौनकः** सिद्ध हो जाता है।

दार्भायण आग्रायणश्चेत्, दार्भिरन्यः। दर्भ के पौत्र आदि वंशज जो आग्रायण हों। **दर्भस्य गोत्रापत्यम्** अर्थ में **शरद्वत्+ङस्** षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से **अत इञ्** को बाधकर **शरद्वच्छुनकदर्भाद् भृगुवत्साग्रायणेषु** सूत्र से फक् प्रत्यय होने पर अनुबन्ध लोप, फकार के स्थान पर **आयन्** आदेश होकर **दर्भ+आयन** बना है। आदिवृद्धि और अकारलोप, नकार को णत्व होकर **दार्भायण** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **दार्भायणः** सिद्ध हो जाता है। यदि दार्भायण न हों तो प्रकृतसूत्र से फक् नहीं होता अपितु **अत इञ्** से **इञ्** होने पर आदिवृद्धि होकर **दार्भि** तथा स्वादिकार्य से **दार्भिः** सिद्ध हो जाता है।

११०५. द्रोणपर्वतजीवन्तादन्यतरस्याम् ४।१।१०३॥

एभ्यो गोत्रे फग् वा। द्रौणायनः, द्रौणिः। पार्वतायनः, पार्वतिः। जैवन्तायनः, जैवन्तिः। अनादिरिह द्रोणः। अश्वत्थाम्न्यनन्तरे तूपचारात्।

द्रोणपर्वतजीवन्तादन्यतरस्याम्। द्रोणश्च पर्वतश्च जीवन्तश्च तेषां समाहारद्वन्द्वो

द्रोणपर्वतजीवन्तम्, तस्माद् द्रोणपर्वतजीवन्तात् पञ्चम्यन्तम्, अन्यतरस्यां विभक्तिप्रतिरूपकमव्ययम्। **गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्चफञ्** से **गोत्रे** तथा **नडादिभ्यः फक्** से **फक्** और **तस्यापत्यम्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च डयाप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद् वा** का अधिकार आ रहा है।

षष्ठीसमर्थ द्रोण, पर्वत, जीवन्त प्रातिपदिकों से गोत्रापत्य अर्थ में तद्धितसंज्ञक फक् प्रत्यय विकल्प से होता है।

यह सूत्र **अत इञ्** का अपवाद है।

द्रौणायनः, द्रौणिः। द्रोण का गोत्रापत्य वंशज। **द्रोणस्य गोत्रापत्यम्** अर्थ में **द्रोण+ङस्** षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से **अत इञ्** को बाधकर **द्रोणपर्वतजीवन्तादन्यतरस्याम्** सूत्र से विकल्प से फक् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, फकार के स्थान पर **आयन्** आदेश होकर **द्रोण+आयन** बना है। आदिवृद्धि और अकारलोप होकर **द्रौणायन** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **द्रौणायनः** सिद्ध हो जाता है। फक् न होने के पक्ष में **अत इञ्** से **इञ्** होने पर आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **द्रौणिः** सिद्ध हो जाता है।

पार्वतायनः, पार्वतिः। पर्वत का गोत्रापत्य वंशज। **पर्वतस्य गोत्रापत्यम्** अर्थ में **पर्वत+ङस्** षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से **अत इञ्** को बाधकर **द्रोणपर्वतजीवन्तादन्यतरस्याम्** सूत्र से विकल्प से फक् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, फकार के स्थान पर **आयन्** आदेश होकर **पर्वत+आयन** बना है। आदिवृद्धि और अकारलोप होकर **पार्वतायन** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पार्वतायनः** सिद्ध हो जाता है। फक् न होने के पक्ष में तो **अत इञ्** से **इञ्** होने पर आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **पार्वतिः** सिद्ध हो जाता है।

जैवन्तायनः, जैवन्तिः। जीवन्त का गोत्रापत्य वंशज। **जीवन्तस्य गोत्रापत्यम्** में **जीवन्त+ङस्** षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से **अत इञ्** को बाधकर **द्रोणपर्वतजीवन्तादन्यतरस्याम्** सूत्र से विकल्प से फक् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, फकार के स्थान पर **आयन्** आदेश होकर **जीवन्त+आयन** बना है। आदिवृद्धि और अकारलोप होकर **जैवन्तायन** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **जैवन्तायनः** सिद्ध हो जाता है। फक् न होने के पक्ष में **अत इञ्** से **इञ्** होने पर आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **जैवन्तिः** सिद्ध हो जाता है।

अनादिरिह द्रोणः। अश्वत्थाम्न्यनन्तरे तूपचारात्। सूत्रोक्त द्रोण-शब्द अनादि द्रोण का वाचक है अर्थात् महाभारत में प्रसिद्ध द्रोण नहीं हैं। यदि ऐसा है तो द्रोण के पुत्र अश्वत्थामा के लिये **द्रोण**-शब्द से **अत इञ्** से इञ् होकर **द्रौणिः** ऐसा प्रयोग मिलता है, फिर उसके लिये प्रकृत **द्रौणायनः** का प्रयोग कैसे हो सकता है? इसका समाधान यह है कि अश्वत्थामा के लिये तो **द्रौणिः, द्रौणायन** शब्दों का प्रयोग **उपचारात्**=लाक्षणिक प्रयोग समझना चाहिये। यह बात **बाह्वादिभ्यश्च** सूत्र के भाष्य में कही गयी है।

११०६. अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ् ४।१।१०४॥

एभ्योऽञ् गोत्रे, ये त्वत्रानृषयः पुत्रादयस्तेभ्य आनन्तर्ये। सूत्रे स्वार्थे ष्यञ्। बिदस्य गोत्रापत्यं बैदः। अनन्तरो बैदिः। बाह्वादेराकृतिगणत्वादिञ्। पुत्रस्यापत्यं पौत्रः। दौहित्रः।

अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्। न ऋषिः अनृषिः। अनन्तरमेव आनन्तर्यं, तस्मिन्, आनन्तर्ये। बिद आदिर्येषां ते बिदादयस्तेभ्यः। अनृषि लुप्तपञ्चमीकं पदम्, आनन्तर्ये सप्तम्यन्तं, बिदादिभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अञ् प्रथमान्तम्, अनेकपदं सूत्रम्। लुप्तपञ्चमीक **अनृषि** शब्द को पञ्चम्यन्त करने पर **अनृषिभ्यः** हो जाता है। यह **बिदादिभ्यः** का विशेषण है। **गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्चफञ्** से **गोत्रे** की और **तस्यापत्यम्** पूरे सूत्र की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद् वा** का अधिकार आ ही रहा है। सूत्रस्थ **बिदादिभ्यः** की आवृत्ति की जाती है और इसके दो वाक्य बनाये जाते हैं। प्रथमवाक्य होगा- **अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ् स्यात्।** द्वितीयवाक्य होगा- **बिदादिभ्योऽञ् गोत्रे।**

भाष्यानुसारिणी वृत्ति तो इस प्रकार है- **बिदादिभ्य आनन्तर्ये अर्थे अञ् परम् ऋषिभ्यो न।** ऐसा करने पर बिदादि होते हुये ऋषिवाचक भी जो हैं, उनके लिये **गोत्रे** का अन्वय करते हैं। तात्पर्य यह है कि ऋषिवाचकों से आनन्तार्यार्थ में निषेध करने के कारण ही उनसे गोत्रापत्यार्थ सम्बद्ध हो पाता है, नहीं तो न होता। यह कहें कि आनन्तर्यार्थ के अभाव में जब किसी और का आश्रयण लेना था तो युवापत्यार्थ भी ले सकते थे, केवल गोत्रापत्यार्थ मे क्या विनिगमना है? इसका समाधान यह है कि युवापत्यार्थ प्रत्यय केवल गोत्रप्रत्ययान्त से ही हो सकते हैं और इसका नियामक सूत्र है- **गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्।**

समष्टिगत अर्थः- **षष्ठीसमर्थ बिदादिगणपठित शब्दों से गोत्रापत्य अर्थ में तद्धितसंज्ञक अञ् प्रत्यय होता है परन्तु इनमें जो शब्द ऋषिवाचक नहीं हैं, उनसे अनन्तरापत्य अर्थ में ही हो।**

सूत्रे स्वार्थे ष्यञ्। अर्थात् सूत्र में **आनन्तर्य**-शब्द का प्रयोग किया गया है, उसमें अनन्तर-शब्द से स्वार्थ में **ष्यञ्** प्रत्यय होकर सिद्ध हुआ है। अर्थात् **आनन्तर्य**-शब्द में में ष्यञ्-प्रत्यय अवश्य है किन्तु प्रत्ययार्थ का बोध अपेक्षित नहीं है। अतः वहाँ ष्यञ् प्रत्यय केवल अपने प्रकृतिभूत शब्द अनन्तर अर्थात् अनन्तरापत्य का ही बोधक है। सूत्र का तात्पर्य यह है कि बिदादि-प्रातिपदिकों से गोत्रापत्य अर्थ में अञ्-प्रत्यय होता है किन्तु इसी गण में पठित जो शब्द ऋषिवाचक नहीं हैं, उनसे अनन्तरापत्य अर्थ में ही हो। इस कथन से यह निष्कर्ष निकलता है कि बिदादिगण के अन्तर्गत ऋषिवाचक और अनृषिवाचक दोनों प्रकार के शब्द हैं। सूत्र में प्रयुक्त पदों के सन्दर्भ में ऋषिभिन्नवाचकों

से साक्षात् पुत्र, पुत्री अर्थ को विदित कराने में ही अञ् प्रत्यय होगा, गोत्रापत्य में नहीं। इस प्रकार कहने पर अर्थापत्ति द्वारा दूसरा अर्थ यह निकला कि बिदादि गण के अन्तर्गत ऋषिवाचक शब्दों से गोत्रापत्य अर्थ तके अञ् प्रत्यय होगा, अनन्तरापत्य अर्थ में नहीं। फलितार्थः- दूसरी पीढ़ी **अनन्तरापत्य** होती है। **बिदादि** एक गण है। इसमे कुछ ऋषियों के नाम और कुछ पुत्र, दुहितृ आदि ऐसे प्रातिपदिक भी पढ़े गये हैं जो ऋषिवाचक नहीं हैं। इस सूत्र से **बिदादिगण** में पढ़े गये **ऋषिवाचक** शब्दों से गोत्रापत्य अर्थ में और **अनृषिवाचक** शब्दों से अनन्तरापत्य अर्थ में प्रत्यय का विधान किया जाता है।

बैदः। बिद नामक ऋषि की पौत्र आदि सन्तान। **बिदस्य गोत्रापत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **बिद ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्** से **अञ्** प्रत्यय हुआ- **बिद ङस् अञ्** बना। ञकार की इत्संज्ञा हुई- **बिद ङस् अ** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **बिद+अ** बना। ञित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर बकारोत्तरवर्ती **इकार** के स्थान पर **ऐकार** आदेश और भसंज्ञक **अकार** का **यस्येति च** से लोप करने पर **बैद्+अ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **बैद** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **बैदः** सिद्ध हुआ। द्विवचन में **बैदौ** बनता है। बहुवचन की विवक्षा में **यञञोश्च** से **अञ्** का लुक् होता है। अतः वृद्धि भी नहीं हो सकेगी। जिससे **बिदाः** ऐसा रूप बन जाता है।

अनन्तरो बैदिः, बाह्वादेराकृतिगणत्वादिञ्। उपर्युक्त नियम के अनुसार साक्षात् पुत्र आदि अर्थ वाच्य होने पर अञ् प्रत्यय नहीं होगा। फलतः **बिद**-शब्द के बाह्वादिगणीय होने के कारण **बाह्वादिभ्यश्च** सूत्र के द्वारा **इञ्** प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **बैदि** शब्द बन जाता है और स्वादिकार्य होकर **बैदिः** सिद्ध हो जाता है। **बिद** के ऋषिवाचक शब्द होने के कारण प्रकृतसूत्र में विधीयमान अञ् **ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च** (४.१.११४) से प्राप्त अण् प्रत्यय का अपवाद है।

यह तो ऋषिवाचक शब्दों का उदाहरण है। अनृषिवाचक **पुत्र** आदि शब्दों के **अनन्तरापत्य** में उदाहरण नीचे देखें।

पौत्रः। पुत्र की सन्तान पोता आदि। **पुत्रस्यानन्तरापत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **पुत्र+ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्** से **अनन्तरापत्य** अर्थ में **अञ्** प्रत्यय हुआ- **पुत्र ङस् अञ्** बना। ञकार की इत्संज्ञा हुई- **पुत्र ङस् अ** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **पुत्र+अ** बना। ञित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर पकारोत्तरवर्ती **उकार** के स्थान पर **औकार** आदेश और भसंज्ञक **अकार** का **यस्येति च** से लोप करने पर **पौत्र्+अ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **पौत्र** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **पौत्रः** सिद्ध हुआ। **पौत्रः, पौत्रौ, पौत्राः** आदि।

दौहित्र। लड़की की सन्तान। **दुहितुः अपत्यं पुमान्** अर्थ में **दुहितृ+ङस्** षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से **अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्** से **अनन्तरापत्य** अर्थ में **अञ्** प्रत्यय होने पर तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **दुहितृ+अ** बना। ञित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर दकारोत्तरवर्ती **उकार** के स्थान पर **औकार** आदेश होकर **दौहितृ+अ** बना है। **यस्येति च** सूत्र अकार और इकार का लोप करता है किन्तु यहाँ पर ऋकार है। अतः लोप नहीं होगा। फलतः **इको यणचि** से ऋकार को यण् रेफ होकर **दौहितर्+अ=दौहित्र** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर स्वादिकार्य होने पर **दौहित्रः, दौहित्रौ, दौहित्राः** आदि रूप बन जाते हैं।

पौत्रः तथा **दौहित्रः** में प्रकृतसूत्र से विहित अञ्-प्रत्यय क्रमशः **अत इञ्** से प्राप्त इञ्-प्रत्यय और और **तस्यापत्यम्** से प्राप्त अण्-प्रत्यय का बाधक है। **अण्** और **अञ्** प्रत्ययों में यद्यपि रूपसाम्य है तथापि स्वर में भिन्नता आती है। ञिदन्त होने पर **ञ्नित्यादिर्नित्यम्** सूत्र से आद्युदात्त हो जाता है।

बिदादिगणः- बिद, उर्व, कश्यप, कुशिक, भरद्वाज, उपमन्यु, किलात, कन्दर्प, (किन्दर्भ), विश्वानर, ऋषिषेण, (ऋष्टिषेण), ऋतभाग, हर्यश्व, प्रियक, आपस्तम्ब, कुचवार, शरद्वत्, शुनक, (शुनक्), धेनु, गोपवन, शिग्रु, बिन्दु, [भोगक] भाजन, (शमिक), अश्ववतान, श्यामाक, श्यामक, (श्यावलि), श्यापर्ण, हरित, किन्दास, वह्यस्क, अर्कजूष, (अर्कलूष), बध्योग, विष्णुवृद्ध, प्रतिबोध, रचित, (रथीतर), रथन्तर, गविष्ठिर, निषाद, (शबर, अलस), मठर, (मृडाकु), सृपाकु, सृदु, पुनर्भू, पुत्र, दुहितृ, ननान्दृ। **परस्त्री परशुं च**।।

११०७. गर्गादिभ्यो यञ् ४।१।१०५।।

गोत्र इत्येव। गार्ग्यः। वात्स्यः।

गर्गादिभ्यो यञ्। गर्गादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, यञ् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। पदविधि होने के कारण **समर्थः पदविधिः** से **समर्थः** का लाभ है। **गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्चफञ्** सूत्र से **गोत्रे** की और **तस्यापत्यम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

षष्ठी-समर्थ गर्ग आदि गणपठित शब्दों से गोत्रापत्य अर्थ में यञ्-प्रत्यय होता है।

यञ् में **ञकार** इत्संज्ञक है, **य** शेष रह जाता है। ञित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आद्यच् की वृद्धि होती है। यद्यपि सूत्र का अर्थ बनाते समय अनुवृत्त **ङ्याप्प्रातिपदिकात्** में **ङ्याप्** का अर्थ नहीं दिखाया गया है तथापि सभी सूत्रों में यह समझना चाहिये कि यदि प्रातिपदिक से अतिरिक्त प्रकृति होने पर भी वह ङ्यन्त और आबन्त से ही हो, ङी और आप् से पूर्व प्रत्यय न हो।

गोत्रे इत्येव। पहले से **गोत्रे** पद की अनुवृत्ति चली आ रही है। अतः यह प्रत्यय भी गोत्रापत्य अर्थ में ही होता है।

गार्ग्यः। गर्ग का गोत्रापत्य अर्थात् पौत्र आदि सन्तान। **गर्गस्य गोत्रापत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **गर्ग ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **गर्गादिभ्यो यञ्** से यञ् प्रत्यय, **गर्ग ङस् यञ्** बना। ञकार की इत्संज्ञा, **गर्ग ङस् य** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **गर्ग+य** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर गकारोत्तरवर्ती **अकार** के स्थान पर **आकार** आदेश और भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** से लोप करने पर **गार्ग्+य** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **गार्ग्य** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **गार्ग्यः** सिद्ध हुआ।

वात्स्यः। वत्स का गोत्रापत्य अर्थात् पौत्र आदि सन्तान। **वत्सस्य गोत्रापत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **वत्स ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **गर्गादिभ्यो यञ्** से यञ् प्रत्यय हुआ- **वत्स ङस् यञ्** बना। ञकार की इत्संज्ञा हुई **वत्स ङस् य** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **वत्स+य** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर वकारोत्तरवर्ती अकार के स्थान पर आकार आदेश और भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** से लोप करने पर **वात्स्+य** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **वात्स्य** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **वात्स्यः** सिद्ध हुआ।

गर्गादिगण- गर्ग, वत्स। वाजासे। संकृति, अज ,व्याघ्रपात्, विदभृत्, प्राचीनयोग, (अगस्ति), पुलस्ति, चमस, रेभ, अग्निवेश, शङ्ख, शट, शक, एक, धूम, अवट, मनस्, धनञ्जय, वृक्ष, विश्वासु, जरमाण, लोहित, शंसित, बभ्रु, वल्गु, मण्डु, गण्डु, शङ्ख, लिगु, पुहलु, मन्तु, मङ्क्षु, आलिगु, जिगीषु, मनु, तन्तु, मनायी, सूनु, कथक, मन्थक, ऋक्ष, तृक्ष, (वृक्ष), [तनु] तरुक्ष, तलुक्ष, तण्ड, वतण्ड, कपिकत, (कपि, कत) कुरुकत, अनडुह्, कण्व, शकल, गोकक्ष, अगस्त्य, कण्डिनी, यज्ञवल्क, पर्णवल्क, अभयजात, विरोहित, वृषगण, रहूगण, शण्डिल, वर्णक, (चणक), चुलुक, मुद्गल, मुसल, जमदग्नि, पराशर, जतूकर्ण [जातूकर्ण], महित, मन्त्रित, अश्मरथ, शर्कराक्ष, पूतिमाष, स्थूरा, अदरक, [अररक] एकाल, पिङ्गल, कृष्ण, गोलन्द, उलूक, तितिक्ष, भिषज, [भिषज्], [भिष्णज्], भडित, भण्डित, दल्भ, चेकित, चिकित्सित, देवहू, इन्द्रहू, एकलु, पिप्पलु, बृहदग्नि, [सुलोहिन्], सुलाभिन्, उक्थ, कुटीगु।

११०८. यञञोश्च २।४।६४॥

गोत्रे यद्यञन्तमञन्तं च तदवयवयोर्लुक् स्यात् तत्कृते बहुत्वे, न तु स्त्रियाम्। गर्गाः। वत्साः। बिदाः। उर्वाः। तत्कृते इति किम्? प्रियगार्ग्याः। स्त्रियां तु गार्ग्यः स्त्रियः। गोत्रे किम्? द्वैप्याः, औत्साः। प्रवराध्यायप्रसिद्धमिह गोत्रम्, तेनेह न- पौत्राः, दौहित्राः।

यञञोश्च। यञ् च अञ् च तयोरितरेतरद्वन्द्वो यञञौ, तयोर्यञञोः। यञञोः षष्ठ्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः** से **लुक्** तथा **यस्कादिभ्यो गोत्रे** से **गोत्रे** एवं **तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्** से **बहुषु तेन एव अस्त्रियाम्** की अनुवृत्ति आती है। द्वितीयाध्याय के चतुर्थपाद में लुक्प्रकरण का यह सूत्र है।

गोत्र अर्थ में जो यञन्त और अञन्त शब्द, उनके अवयव यञ् और अञ् प्रत्ययों का लुक् हो जाता है यदि उन प्रत्ययों के अर्थ का बहुत्व बताना अभीष्ट हो, परन्तु स्त्रीलिङ्ग में यह लुक् प्रवृत्त नहीं होता।

लुक् विधेय (आदेश) और यञ्-अञ्-प्रत्यय स्थानी (उद्देश्य) हैं। सूत्र में प्रयुक्त यञ् और अञ् दोनों शब्द प्रत्यय के बोधक हैं। **यञ्** प्रत्यय का विधान **गर्गादिभ्यो यञ्** सूत्र से और **अञ्** प्रत्यय का विधान **अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्** सूत्र से किया जाता है। **प्रत्ययग्रहणे तदन्ता ग्राह्याः** इस परिभाषा के अनुसार तदन्तविधि होती है। अतः यञ्प्रत्ययान्त और अञ्प्रत्ययान्त शब्दों का ग्रहण किया जाता है। सूत्र का तात्पर्य यह है कि **बहुवचन** में **गोत्रापत्य** अर्थ में हुए **यञ्** और **अञ्** प्रत्ययों का लुक् हो जाता है परन्तु यह लुक् तभी होता है जब वह बहुवचन गोत्रापत्य के बहुत्व को ही बताता हो। किञ्च स्त्रीलिङ्ग में यह लुक् प्रवृत्त नहीं होता। यद्यपि यह लुक् यञ्-प्रत्ययान्त और अञ्-प्रत्ययान्त शब्दों को प्राप्त है तथापि **निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति** (निर्दिष्ट किये गये शब्दों के स्थान पर ही आदेश होता है) के नियम से केवल प्रत्ययों का लोप होता है, प्रत्ययान्त शब्दों का नहीं होता।

गर्गाः। गर्ग के बहुत गोत्रापत्य। **गर्गस्य गोत्रापत्यानि** लौकिक विग्रह है। **गर्ग ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **गर्गादिभ्यो यञ्** से यञ् प्रत्यय करके- **गार्ग्य** बना है। इस यञन्त शब्द से प्रथमा के बहुवचन की विवक्षा में **जस्** प्रत्यय लाने पर **यञञोश्च** से **यञ्** प्रत्यय का लुक् होकर **निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः** इस न्याय के अनुसार उसके आदिवृद्धि आदि कार्यों के भी निवृत्त हो जाने से शुद्ध **गर्ग** शब्द रह जाता है। इस तरह **गर्ग+अस्** में पूर्वसवर्णदीर्घ, सकार को रुत्वविसर्ग होकर **गर्गाः** सिद्ध हुआ। यह कार्य बहुवचन में ही होता है। इस तरह इसके रूप बनेंगे **गार्ग्यः, गार्ग्यौ, गर्गाः। गार्ग्यम्, गार्ग्यौ, गर्गान्। गार्ग्येण, गार्ग्याभ्याम्, गर्गैः** आदि।

वत्साः। वत्स के बहुत गोत्रापत्य। **वत्सस्य गोत्रापत्यानि** लौकिक विग्रह है। **वत्स ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **गर्गादिभ्यो यञ्** से यञ् प्रत्यय करके- **वात्स्य** बना है। इस यञन्त शब्द से प्रथमा के बहुवचन की विवक्षा में जस् प्रत्यय लाने पर **यञञोश्च** से **यञ्** प्रत्यय का लुक् होकर **निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः** इस न्याय के अनुसार उसके आदिवृद्धि आदि कार्यों के भी निवृत्त हो जाने से शुद्ध **वत्स**-शब्द रह जाता है। इस तरह **वत्स+अस्** में पूर्वसवर्णदीर्घ, सकार

को रुत्वविसर्ग होकर **वत्साः** सिद्ध हुआ। यह कार्य बहुवचन में ही होता है। इस तरह इसके रूप बनेंगे **वात्स्यः, वात्स्यौ, वत्साः। वात्स्यम्, वात्स्यौ, वत्सान्। वात्स्येन, वात्स्याभ्याम्, वत्सैः** आदि।

बिदाः। बिद के बहुत गोत्रापत्य। **बिदस्य गोत्रापत्यानि** अर्थ में **बिद+ङस्** षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से **अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्** से यञ् प्रत्यय करके- **बैद** शब्द बना है। इस अञन्त शब्द से प्रथमा के बहुवचन की विवक्षा में जस् प्रत्यय लाने पर **अञ्** प्रत्यय का लुक् होकर **निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः** इस न्याय के अनुसार उसके आदिवृद्धि आदि कार्यों के भी निवृत्त हो जाने से शुद्ध **बिद**-शब्द रह जाता है। स्वादिकार्य होने पर **बिदाः** सिद्ध हो जाता है। एकवचन और द्विवचन में **बैदः, बैदौ** ही बने रहते हैं।

उर्वाः। उर्व के बहुत गोत्रापत्य। **उर्वस्य गोत्रापत्यानि** अर्थ में **उर्व+ङस्** षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से **अनृष्यानन्तये बिदादिभ्योऽञ्** से यञ् प्रत्यय, आदिवृद्धि आदि करके **और्व** शब्द बना है। इस यञन्त शब्द से प्रथमा के बहुवचन की विवक्षा में जस् प्रत्यय लाने पर **अञ्** प्रत्यय का लुक् होकर **निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः** इस न्याय के अनुसार उसके आदिवृद्धि आदि कार्यों के भी निवृत्त हो जाने से शुद्ध **उर्व**-शब्द रह जाता है। स्वादिकार्य होने पर **उर्वाः** सिद्ध हो जाता है। एकवचन और द्विवचन में **और्वः, और्वौ** ही बने रहते हैं।

ध्यान रहे कि यह लुक् केवल प्रथमा के लिये नहीं है अपितु सभी विभक्तियों के बहुवचन में समझना चाहिये। अतः **उर्वाः, उर्वान्, उर्वैः, उर्वेभ्यः, उर्वाणाम्, उर्वेषु** इसी तरह **बिदाः, बिदान्, बिदैः, बिदेभ्यः, बिदानाम्, बिदेषु** इत्यादि स्थलों पर भी लुक् का रूप ही प्रयुक्त होना चाहिये।

तत्कृते इति किम्? प्रियगार्ग्याः। प्रकृतसूत्र में अनुवृत्त पदों के द्वारा **तत्कृते बहुत्वे** अर्थ किया गया है। उक्त अनुवृत्ति का प्रयोजन यह है कि बहुवचन द्वारा गोत्रापत्य का बहुत्व कथन इष्ट हो तो यञ् और अञ् का लुक् हो, अन्यथा न हो। भाव यह है कि यदि किसी अन्य का बहुत्व कथन इष्ट हो तो प्रत्यय का लुक् नहीं होता। जैसे कि **प्रियगार्ग्याः** में बहुवचन होने पर भी **गार्ग्य**-शब्द के अवयव यञ् का लुक् नहीं हुआ। यहाँ पर **प्रियो गार्ग्यो येषाम्** लौकिक विग्रह और **प्रिय+सु गार्ग्य+सु** अलौकिक विग्रह में **अनेकमन्यपदार्थे** सूत्र के द्वारा बहुव्रीहिसमास, समासप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **प्रियगार्ग्य** शब्द बना है। यहाँ पर बहुत्व का कथन तो है परन्तु अन्यपदार्थ का बहुत्व कथन है, तत्कृत अर्थात् यञ्प्रत्ययार्थकृत बहुत्व नहीं है, लौकिक विग्रह में **गार्ग्यः** एकवचनान्त ही है। अतः लुक् नहीं हुआ। फलतः स्वादिकार्य होकर बहुवचन में **प्रियगार्ग्याः** सिद्ध हो जाता है। यदि **प्रियाः गार्ग्याः येषाम्** ऐसा विग्रह हो तो **प्रियगर्गाः** ही बनेगा।

स्त्रियां तु गार्ग्यः स्त्रियः। प्रकृतसूत्र में अनुवृत्त **अस्त्रियाम्** पद के कारण स्त्रीलिंग में अपत्यकृत बहुत्व के बोध होने पर भी यञ् प्रत्यय का लुक् नहीं होता- **गार्ग्यः स्त्रियः**। गर्ग की पोती आदि। यहाँ पर गोत्रापत्य कन्या के रूप में लिया गया है। **गर्गस्य गोत्रापत्यानि स्त्रियः** विग्रह करके **गर्ग+ङस्** में **गर्गादिभ्यो यञ्** सूत्र से **यञ्** प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि, अकारलोप करके **गार्ग्य** बन जाने के बाद स्त्रीत्वविवक्षा में **यञश्च** सूत्र से ङीप् प्रत्यय, **यस्येति च** से **गार्ग्य**-शब्द के अकार का लोप, यकार का **हलस्तद्धितस्य** से लोप होकर **गार्गी** शब्द बनता है और उसके बहुवचन में यण् होकर **गार्ग्यः** सिद्ध हो जाता है।

गोत्रे किम्? द्वैप्याः, औत्साः। अधिकृत **गोत्रे** पद का यह प्रयोजन है कि गोत्रापत्य अर्थ में विहित यञ् और अञ् का लोप हो, अन्य अर्थों में विहित होने पर लोप न हो। अतः **द्वैप्याः, औत्साः** आदि में उक्त प्रत्ययों का लोप नहीं होता।

द्वैप्याः। द्वीप में होने वाले। **द्वीपे भवाः** अर्थ में **द्वीप+ङि** सप्तम्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से **द्विपादनुसमुद्रं यञ्** सूत्र से यञ्-प्रत्यय, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **द्वैप्य** शब्द बना। गोत्रार्थक प्रत्यय न होने के कारण **यञञोश्च** सूत्र से प्रत्यय का लुक् नहीं हुआ। स्वादिकार्य होकर **द्वैप्यः, द्वैप्यौ, द्वैप्याः** आदि रूप सिद्ध हो जाते हैं।

औत्साः। झरने में होने वाले। **उत्से भवाः** अर्थ में **उत्स+ङि** सप्तम्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से **उत्सादिभ्योऽञ्** सूत्र से अञ्-प्रत्यय, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **औत्स** शब्द बना। गोत्रार्थक प्रत्यय न होने के कारण **यञञोश्च** सूत्र से प्रत्यय का लुक् नहीं हुआ। स्वादिकार्य होकर **औत्सः, औत्सौ, औत्साः** आदि रूप सिद्ध हो जाते हैं।

प्रवराध्यायप्रसिद्धमिह गोत्रम्, तेनेह न- पौत्राः, दौहित्राः। प्रकृतसूत्र में **गोत्र** शब्द से व्याकरणशास्त्र में प्रसिद्ध पारिभाषिक गोत्र का ग्रहण न होकर लौकिक प्रवर, अध्याय से प्रसिद्ध कौण्डिन्य, काश्यप, अत्रि, वशिष्ठ आदि गोत्र का ग्रहण है। अतः **पौत्राः, दौहित्राः** आदि में प्रत्ययकृत बहुत्व का बोध होने पर भी अञ् प्रत्यय का लुक् नहीं होता। **पुत्रस्य गोत्रापत्यम्, दुहितुः गोत्रापत्यम्** में पारिभाषिक गोत्र है, न कि लोकप्रसिद्ध।

११०९. मधुबभ्रोर्ब्राह्मणकौशिकयोः ४।१।१०६॥

यञ्। माधव्यो ब्राह्मणः, माधवोऽन्यः। बाभ्रव्यः कौशिकर्षिः, बाभ्रवोऽन्यः। बभ्रुशब्दस्य गर्गादिपाठात् सिद्धेऽपि नियमार्थमिदम्। गर्गादिपाठफलं तु लोहितादिकार्यम्। बाभ्रव्यायणी।

मधुबभ्रोर्ब्राह्मणकौशिकयोः। मधुश्च बभ्रुश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो मधुबभ्रू, तयोर्मधुबभ्रोः। ब्राह्मणश्च कौशिकश्च ब्राह्मणकौशिकौ, तयोर्ब्राह्मणकौशिकयोः। पदविधि होने के कारण **समर्थः पदविधिः** से **समर्थः** का लाभ है। **गर्गादिभ्यो यञ्** से **यञ्** की

गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्चफञ् सूत्र से **गोत्रे** की और **तस्यापत्यम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

षष्ठी-समर्थ मधु और बभ्रु प्रातिपदिकों से शब्दों से क्रमशः ब्राह्मण और कौशिक गोत्रापत्य वाच्य होने पर यञ्-प्रत्यय होता है।

माधव्यो ब्राह्मणः, माधवोऽन्यः। मधु का गोत्रापत्य ब्राह्मण। **मधोः गोत्रापत्यं पुमान्** अर्थ में **मधु+ङस्** षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से **मधुबभ्रूवोर्ब्राह्मणकौशिकयोः** सूत्र से यञ् प्रत्यय होने पर तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **मधु+य** बना है। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर मकारोत्तरवर्ती अकार के स्थान पर आकार आदेश और **ओर्गुणः** सूत्र से उकार को गुण ओकार होने पर **माधो+य** बना है। **वान्तो यि प्रत्यये** सूत्र से ओकार के स्थान पर अव् आदेश होकर **माधव्य** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **माधव्यः** सिद्ध हो जाता है। यदि ब्राह्मण गोत्रापत्य वाच्य न हो तो उक्त यञ् नहीं होता किन्तु **तस्यापत्यम्** से अण् प्रत्यय होने पर **माधवः** सिद्ध हो जाता है।

बाभ्रव्यः कौशिकर्षिः, बाभ्रवोऽन्यः। बभ्रु-नामक ऋषि का गोत्रापत्य कौशिक ऋषि। **बभ्रोः गोत्रापत्यं पुमान्** अर्थ में **बभ्रु+ङस्** षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से **मधुबभ्रूवोर्ब्राह्मणकौशिकयोः** सूत्र से यञ् प्रत्यय होने पर तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **बभ्रु+य** बना है। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर बकारोत्तरवर्ती अकार के स्थान पर आकार आदेश और **ओर्गुणः** सूत्र से उकार को गुण ओकार होने पर **बाभ्रो+य** और **वान्तो यि प्रत्यये** सूत्र से अव् आदेश होकर **बाभ्रव्य** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **बाभ्रव्यः** सिद्ध हो जाता है। यदि कौशिक ऋषि वाच्य न हो तो उक्त यञ् नहीं होता किन्तु **तस्यापत्यम्** से अण् प्रत्यय होने पर **बाभ्रवः** सिद्ध हो जाता है।

बभ्रुशब्दस्य गर्गादिपाठात् सिद्धेऽपि नियमार्थमिदम्। अर्थात् **बभ्रु**-शब्द का गर्गादिगण में पाठ है। अतः **गर्गादिभ्यो यञ्** सूत्र से ही यञ्-प्रत्यय सिद्ध रहा तो पुनः प्रकृतसूत्र में **बभ्रु** शब्द के ग्रहण का क्या प्रयोजन है? इस प्रश्न का समाधान करते हुये दीक्षित जी कहते हैं कि नियमार्थ ग्रहण किया गया है। **सिद्धे सत्यारभ्यमाणो विधिर्नियमाय भवति**। वह नियम इस प्रकार का होगा- **बभ्रु-शब्द से कौशिक ऋषि वाच्य होने पर ही यञ् प्रत्यय होता है, अन्य अर्थ के रहने पर नहीं होता**। इस प्रकार के नियमन से अन्य अर्थ में अण् ही प्रत्यय होता है- **बाभ्रवः**।

गर्गादिपाठफलं तु लोहितादिकार्यम्। बाभ्रव्यायणी। यदि **बभ्रु** शब्द से कौशिकर्षि अर्थ गम्य होने पर ही यञ् होता है तो प्रकृतसूत्र में ही पाठ रखा जाय, गर्गादिगण में पाठ की क्या आवश्यकता है? इस प्रश्न का समाधान करते हुये दीक्षित जी कहते हैं कि गर्गादि में पाठ होना आवश्यक है। उसका फल यह है कि लोहितादिगणीय

कार्य हो सके। गर्गादि के अन्तर्गत लोहितादिगण भी है। लोहितादि में बभ्रु-शब्द का समावेश होने से स्त्रीत्वविवक्षा में **बाभ्रव्य**-शब्द से **सर्वत्र लोहितादिकतन्तेभ्यः** सूत्र से **ष्फ** प्रत्यय हो जाता है, जिससे **बाभ्रव्यायणी** (बभ्रु की पोती) रूप की सिद्धि हो जाती है। यद्यपि यहाँ पर **ष्फ** प्रत्यय में स्त्रीत्वरूप अर्थ उक्त है तथापि **षिद्गौरादिभ्यश्च** सूत्र में विशेषतया षकार इत्संज्ञक प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से ङीष् का विधान किये जाने के कारण उक्त रूप **बाभ्रव्यायणी** रूप निष्पन्न होता है।

१११०. कपिबोधादाङ्गिरसे ४।१।१०७॥
गोत्रे यञ् स्यात्।
काप्यः। बौध्यः। आङ्गिरसे किम्? कापेयः। बौधिः।

कपिबोधादाङ्गिरसे। कपिश्च बोधश्च तयोः समाहारद्वन्द्वः कपिबोधम्, तस्मात् कपिबोधात्। कपिबोधात् पञ्चम्यन्तम्, आङ्गिरसे सप्तम्यन्तम्। **समर्थः पदविधिः** से **समर्थः** का लाभ है। **गर्गादिभ्यो यञ्** से **यञ्** की **गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्चफञ्** सूत्र से **गोत्रे** की और **तस्यापत्यम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

षष्ठी-समर्थ कपि और बोध प्रातिपदिकों से आङ्गिरस-गोत्रापत्य वाच्य होने पर यञ्-प्रत्यय होता है।

काप्यः। कपि नामक ऋषि का गोत्रापत्य आङ्गिरस। **कपेः गोत्रापत्यम्** अर्थ में **कपि+ङस्** षष्ठ्यन्त समर्थ से **कपिबोधादाङ्गिरसे** सूत्र से यञ् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **काप्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **काप्यः** सिद्ध हो जाता है।

बौध्यः। बोध नामक ऋषि का गोत्रापत्य आङ्गिरस। **बोधस्य गोत्रापत्यम्** अर्थ में **बोध+ङस्** षष्ठ्यन्त समर्थ से **कपिबोधादाङ्गिरसे** सूत्र से यञ् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **बौध्य** शब्द बनता है और एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **बौध्यः** सिद्ध हो जाता है।

आङ्गिरसे किम्? कापेयः। बौधिः। प्रकृत सूत्र में **आङ्गिरसे** पद का निवेश होने के कारण आङ्गिरस-गोत्रापत्य का अभिधान होने पर ही यञ् प्रत्यय होता है, अन्यथा नहीं होता। अतः **कपेः गोत्रापत्यम्** में आङ्गिरस अर्थ विवक्षित न होने के कारण यञ् नहीं हुआ अपितु **इतश्चानिञः** सूत्र से **ढक्** प्रत्यय हो जाता है। ककार की इत्संज्ञा और ढकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र के द्वारा **एय्** आदेश होकर **कपि+एय** बन जाता है। **किति च** से आदिवृद्धि और **यस्येति च** से इकारलोप होकर **कापेय** तथा स्वादिकार्य होकर **कापेयः** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **बोध**-शब्द

से भी **बाह्वादिभ्यश्च** से इञ् होने पर आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **बौधि** तथा स्वादिकार्य होकर **बौधिः** सिद्ध हो जाता है।

यद्यपि **कपि** शब्द का पाठ गर्गादिगण में है तथापि आङ्गिरस गोत्र में ही यञ् प्रत्यय की नियामकता के लिये प्रकृतसूत्र में पाठ है किन्तु **बोध**-शब्द से स्वतन्त्र विधान के लिये पाठ मानना चाहिये।

१११९. वतण्डाच्च ४।१।१०८॥

आङ्गिरस इत्येव। वातण्ड्यः। अनाङ्गिरसे तु गर्गादौ शिवादौ च पाठाद्यञणौ। वातण्ड्यः, वातण्डः।

वतण्डाच्च। वतण्डात् पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **समर्थः पदविधिः** से **समर्थः** का लाभ है। **कपिबोधादाङ्गिरसे** से **आङ्गिरसे** की **गर्गादिभ्यो यञ्** से **यञ्** की **गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्चफञ्** सूत्र से **गोत्रे** की और **तस्यापत्यम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

षष्ठी-समर्थ वतण्ड-प्रातिपदिक से भी आङ्गिरस-गोत्रापत्य वाच्य होने पर यञ्-प्रत्यय होता है।

वातण्ड्यः। वतण्ड नामक ऋषि का गोत्रापत्य आङ्गिरस। **वतण्डस्य गोत्रापत्यम्** अर्थ में **वतण्ड+ङस्** षष्ठ्यन्त समर्थ से **वतण्डाच्च** सूत्र से यञ् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **वातण्ड्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वातण्ड्यः** सिद्ध हो जाता है।

अनाङ्गिरसे तु गर्गादौ शिवादौ च पाठाद्यञणौ। वातण्ड्यः, वातण्डः। आङ्गिरस-गोत्र से भिन्न अर्थ वाच्य होने पर तो **वतण्ड**-शब्द का गर्गादिगण में पाठ होने के कारण यञ् होकर **वातण्ड्यः** और शिवादिगण में पाठ होने के कारण अण्-प्रत्यय होकर **वातण्डः** ये दो रूप बनते हैं।

१११२. लुक् स्त्रियाम् ४।१।१०९॥

'वतण्डाच्च' इति विहितस्य लुक् स्यात् स्त्रियाम्। शार्ङ्गरवादित्वान्ङीन्। वतण्डी। अनाङ्गिरसे तु वातण्ड्यायनी। लोहितादित्वात् फ्फः। अणि तु वातण्डी। ऋषित्वाद्वृक्ष्यमाणः ष्यङ् न।

लुक् स्त्रियाम्। लुक् प्रथमान्तं, स्त्रियां सप्तम्यन्तम्। **वतण्डाच्च** से **वतण्डात्** **कपिबोधादाङ्गिरसे** से **आङ्गिरसे** की **गर्गादिभ्यो यञ्** से **यञ्** की, **गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्चफञ्** सूत्र से **गोत्रे** की और **तस्यापत्यम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** आदि का अधिकार आ रहा है।

षष्ठी-समर्थ वतण्ड-प्रातिपदिक से आङ्गिरस-गोत्रापत्य अर्थ में विहित यञ्-प्रत्यय का लुक् होता है, स्त्रीलिंग में।

स्त्रीगोत्रापत्य अर्थ में विहित यञ् का लुक् किया जाता है, पुमान् गोत्रापत्य का लुक् नहीं होता। यहाँ पर स्त्री-गोत्रापत्य का अभिप्राय पौत्रीप्रभृति कन्यासन्तति से है।

शार्ङ्गरवादित्वान्ङीन्। वतण्डी। अङ्गिरस-गोत्र में उत्पन्न बतण्ड नामक पुरुष की पौत्री। **वतण्डस्य गोत्रापत्यं स्त्री** अर्थ में **वतण्ड+ङस्** षष्ठ्यन्त समर्थ से **वतण्डाच्च** सूत्र से यञ् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **वतण्ड+य** बना हुआ है। **लुक् स्त्रियाम्** सूत्र के द्वारा उक्त प्रत्यय का लुक् होने पर स्त्रीत्वविवक्षा में इस शब्द के शार्ङ्गरवादिगण में पठित होने के कारण **शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन्** सूत्र से ङीन् प्रत्यय, अकार का **यस्येति च** से लोप होकर **वतण्डी** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **वतण्डी, वतण्ड्यौ, वतण्ड्यः** आदि रूप सिद्ध हो जाते हैं।

अनाङ्गिरसे तु वातण्ड्यायनी। लोहितादित्वात् ष्फः। आङ्गिरस-गोत्र से सम्बन्ध न होने पर तो **वतण्डाच्च** से यञ् नहीं होता, फलतः लुक् का भी प्रसंग नहीं है किन्तु गर्गादिपाठ के कारण निष्पन्न यञ् के कारण **वातण्ड्य** बनने पर गर्गादिगणान्तर्गत लोहितादिगणीय होने से **सर्वत्र लोहितादिकतन्तेभ्यः** सूत्र से ष्फ-प्रत्यय, षकार् की इत्संज्ञा होकर लोप, फकार को आयन् आदेश होकर **वातण्ड्य+आयन** बना। अकार का **यस्येति च** से लोप हो जाता है किन्तु यकार का लोप नहीं होता, क्योंकि **आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति** सूत्र में आकार के परे रहते लोप का निषेध किया गया है। इस तरह **वातण्ड्यायन** शब्द बनता है। षित् होने के कारण **षिद्गौरादिभ्यश्च** से ङीष् होकर **वातण्ड्यायनी** सिद्ध हो जाता है।

अणि तु वातण्डी। ऋषित्वाद्वक्ष्यमाणः ष्यङ् न। शिवादिगणीय **वतण्ड**-शब्द से तो अण् प्रत्यय होकर **वातण्ड** बन जाने पर स्त्रीत्वविवक्षा में **टिड्ढाणञ्०** से ङीप् होकर **वातण्डी** बन जाता है। यहाँ पर **वतण्ड** शब्द के ऋषिवाचक होने के कारण वक्ष्यमाण **अणिञोरनार्षयोर्गुरूपोत्तमयोः ष्यङ् गोत्रे** सूत्र के द्वारा ष्यङ् नहीं होता, क्योंकि उक्त सूत्र में **अनार्षयोः** पद के द्वारा ऋषिवाचक शब्द से उक्त प्रत्यय का निषेध किया गया है।

१११३. अश्वादिभ्यः फञ् ४।१।११०॥

गोत्रे। आश्वायनः। 'पुंसि जाते'(ग.सू.६९) पुंसीति तु प्रकृतिविशेषणम्। जातस्य गोत्रापत्यं जातायनः। पुंसि इति किम्? जाताया अपत्यं जातेयः।

अश्वादिभ्यः फञ्। अश्व आदिर्येषां ते अश्वादयस्तेभ्योऽश्वादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, फञ् प्रथमान्तम्। **समर्थः पदविधिः** से **समर्थः** का लाभ है। **गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्चफञ्** सूत्र से **गोत्रे** की और **तस्यापत्यम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। तद्धित में **प्रत्ययः,**

परश्च ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा आदि का अधिकार रहता ही है।

षष्ठी-समर्थ अश्व-आदि गणपठित प्रातिपदिकों से गोत्रापत्य अर्थ में फञ्-प्रत्यय होता है।

यह **अत इञ्** का अपवाद है। **आश्वायनः**। अश्व-नामक व्यक्ति का पौत्रादि। **अश्वस्य गोत्रापत्यम्** अर्थ में **अश्व+ङस्** से **अश्वादिभ्यः फञ्** सूत्र से फञ् प्रत्यय, अनुबन्ध का लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, फकार के स्थान पर आयन् आदेश, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **आश्वायन** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन स्वादिकार्य होकर **आश्वायनः** सिद्ध हो जाता है।

अश्वादिगणः- अश्व, अश्मन्, शङ्ख, शूद्रक, विद, पुट, रोहिण, खर्जूर, (खजूर) [खञ्जार, वस्त] पिञ्जूल, भडिल, भण्डिल, भडित, भण्डित [प्रकृत, रामोद] क्षान्त, [काश, तीक्ष्ण, गोलाङ्क, अर्क, स्वर, स्फुट, चक्र, श्रविष्ठ] पविन्द, पवित्र, गोमिन्, श्याम, धूम, वाग्मिन्, निश्वानर, कुट। **शप आत्रेये**। जन, जड, खड, ग्रीष्म, अर्ह, कित, विशंप, विशाल, गिरि, चपल, चुप, दासक, वैल्य, (बैल्व) प्राच्य, [धर्म्य] अनडुह्य। **पुंसि जाते**। अर्जुन, [प्रहत] सुमनस्, दुर्मनस्, मन, (मनस्) [प्रान्त] ध्वन। **आत्रेय भरद्वाजे। भरद्वाज आत्रेये**। उत्स, आतव, कितव, [वद, धन्य, पाद] शिव, खदिर।

'पुंसि जाते' पुंसीति तु प्रकृतिविशेषणम्। उपर्युक्त अश्वादिगणपाठ में **पुंसि जाते** गणसूत्र है। उसमें **पुंसि** शब्द का पुंल्लिंग अभिधेय होने पर- ऐसा अर्थ न होकर पुंल्लिंग में विद्यमान **जात**-शब्द से- ऐसा अर्थ है अर्थात् **पुंसि** शब्द प्रकृति का विशेषण है। अतः पुंल्लिंग में विद्यमान जात-शब्द से फञ् होगा किन्तु **जाता** शब्द से नहीं होगा।

जातस्य गोत्रापत्यं जातायनः। जात-नामक पुरुष की पोती आदि। **जातस्य गोत्रापत्यम्** अर्थ में षष्ठ्यन्त-समर्थ **जात**-शब्द स **अश्वादिभ्यः फञ्** सूत्र से फञ् प्रत्यय होने पर अन्य कार्य पूर्ववत् करके **जातायनः** सिद्ध हो जाता है।

पुंसि इति किम्? जाताया अपत्यं जातेयः। उक्त गणसूत्र में **पुंसि** शब्द का उपादान होने के कारण **जातायाः अपत्यम्** में **जाता** शब्द के स्त्रीलिंग होने के कारण फञ् नहीं होता अपितु **स्त्रीभ्यो ढक्** सूत्र से **ढक्** प्रत्यय होने पर ढकार के स्थान पर **एय्** आदेश, आदिवृद्धि, आकारलोप होकर **जातेय** और स्वादिकार्य होकर **जातेयः** सिद्ध हो जाता है।

१११४. भर्गात् त्रैगर्ते ४।१।१११॥
गोत्रे फञ्। भार्गायणस्त्रैगर्तः, भार्गिरन्यः।

भर्गात् त्रैगर्ते। भर्गात् पञ्चम्यन्तं, त्रैगर्ते सप्तम्यन्तम्। **समर्थः पदविधिः** से **समर्थः** का लाभ है। **अश्वादिभ्यः फञ्** से **फञ्** की **गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्चफञ्** सूत्र से

गोत्रे की और **तस्यापत्यम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च डयाप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

षष्ठी-समर्थ भर्ग-रूप प्रातिपदिक से गोत्रापत्य अर्थ में त्रिगर्त-देश में उत्पन्न अर्थ वाच्य होने पर फञ्-प्रत्यय होता है।

सूत्र में **त्रैगर्त** शब्द का प्रयोग किया गया है। त्रिगर्त-शब्द देश का वाचक है और त्रिगर्त में उत्पन्न वस्तु को त्रैगर्त कहते हैं। रावी, सतलज और व्यास इन तीन नदियों के बीच-भाग को त्रिगर्त कहा जाता था। सम्भवतः इसी का पुराना नाम जालन्धरायण भी है और इस शब्द का राजन्यादिगण में पाठ भी है। बालमनोरमाकार ने तो भर्ग ऋषि के पुत्र को त्रिगर्त माना है। तदनुसार त्रिगर्त का पुत्र त्रैगर्त कहलायेगा। त्रैगर्त-शब्द को अण्-प्रत्ययान्त भी माना है। **ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च** सूत्र से अण् प्रत्यय हुआ है। यहाँ प्रकृत में ऋषि होने के कारण उससे गोत्रप्रत्यय की विवक्षा में फञ् प्रत्यय माना है और **इदमपि गणसूत्रम्** शब्द से यह भी सूचित किया है कि यह **भर्गात् त्रैगर्ते** स्वतन्त्र सूत्र नहीं है अपितु **अश्वादिगण** का अन्तर्गणसूत्र है।

भार्गायणस्त्रैगर्तः, भार्गिरन्यः। त्रिगर्त-देशीय भर्ग का पौत्र आदि। **भर्गस्य गोत्रापत्यम्** अर्थ में षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक **भर्ग**-शब्द से **भर्गात् त्रैगर्ते** सूत्र के द्वारा फञ् प्रत्यय होने पर आयन् आदेशादि होकर **भार्गायणः** सिद्ध हो जाता है। बालमनोरमाकार के मत में **अश्वादिभ्यः फञ्** से ही प्रत्यय होगा। यदि त्रैगर्त-अर्थ अभिधेय न होने पर फञ् नहीं होता अपितु **अत इञ्** से इञ्-प्रत्यय, आदिवृद्धि, अकारलोप, स्वादिकार्य होकर भार्गिः सिद्ध हो जाता है।

११९५. शिवादिभ्योऽण् ४।१।११२॥

गोत्रे इति निवृत्तम्। शिवस्यापत्यं शैवः। गाङ्गः।
पक्षे तिकादित्वात् फिञ्- गाङ्गायनिः। शुभ्रादित्वाड्ढक्- गाङ्गेयः।

शिवादिभ्योऽण्। शिव आदिर्येषां ते शिवादयस्तेभ्यः। शिवादिभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अण् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **तस्यापत्यम्** इस पूरे सूत्र की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, डयाप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद् वा** का अधिकार आ ही रहा है।

केवल अपत्य अर्थ में शिवादि-गण में पठित शब्दों से तद्धितसंज्ञक अण् प्रत्यय होता है।

णकार इत्संज्ञक है और **अ** ही शेष रहता है। **णित्** होने से णित् मानकर होने वाले वृद्धि आदि कार्य होंगे।

गोत्रे इति निवृत्तम्। यहाँ पूर्व से चली आ रही **गोत्रे** पद की अनुवृत्ति निवृत्त हो जाती है। अतः केवल अपत्य अर्थ में ही प्रत्यय होता है। काशिकाकार ने भी यहीं

आकर **गोत्र**-शब्द की निवृत्ति मानी है। शब्देन्दुशेखरकार नागेश जी ने लिखा है कि भाष्यकार ने **यूनि लुक्** सूत्र के भाष्य तथा उसके भाष्यटीकाकार कैयट ने यह उल्लेख किया है कि गोत्रसंज्ञासूत्र पर्यन्त ही गोत्रसंज्ञाधिकार है। इस विषय में मतभेद भी है। **यूनि लुक्** सूत्र के भाष्य में कैयेट ने यह कहा है कि **कण्वादिभ्यो गोत्रे** सूत्र में गोत्र-पद का निवेश इस बात का सूचक है कि यह सूत्र कण्वादि-प्रातिपदिकों से गोत्र में विहित प्रत्ययों से युक्त प्रातिपदिकों से शैषिक अणादि प्रत्यय का विधायक है। कण्वादि-शब्द गर्गादिगण में पठित हैं। यञ्-प्रत्यय गोत्र अर्थ में ही होता है। तदन्त प्रातिपदिक गोत्रप्रत्ययान्त ही रहेंगे। अतः **गोत्रे** पद की पुनरुक्ति इस बात का सूचक है कि अपत्याधिकार के बाद गोत्र-पद लौकिक-गोत्र अर्थात् अनन्तरापत्य का सूचक है।

शिवस्यापत्यं शैवः। शिव की सन्तान। **शिवस्य अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **शिव ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **शिवादिभ्योऽण्** से अण् प्रत्यय हुआ- **शिव ङस् अण्** बना। णकार की इत्संज्ञा हुई- **शिव ङस् अ** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **शिव+अ** बना। णित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर शकारोत्तरवर्ती **इकार** के स्थान पर **ऐकार** आदेश और भसंज्ञक **अकार** का **यस्येति च** से लोप करने पर **शैव्+अ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **शैव** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **शैवः** सिद्ध हुआ।

गाङ्गः। गङ्गा की सन्तान, भीष्म आदि। **गङ्गायाः अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **गङ्गा ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **स्त्रीभ्यो ढक्** से ढक् प्रत्यय प्राप्त था, उसे बाधकर **शिवादिभ्योऽण्** से अण् प्रत्यय हुआ- **गङ्गा ङस् अण्** बना। णकार की इत्संज्ञा हुई- **गङ्गा ङस् अ** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **गङ्गा+अ** बना। णित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर गकारोत्तरवर्ती अकार के स्थान पर आकार आदेश और भसंज्ञक आकार का **यस्येति च** से लोप करने पर **गाङ्ग्+अ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **गाङ्ग** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **गाङ्गः** सिद्ध हो जाता है।

पक्षे तिकादित्वात् फिञ्। गाङ्गायनिः। अर्थात् **गङ्गा**-शब्द का तिकादिगण में भी पाठ है। अतः एकपक्ष में **तिकादिभ्यः फिञ्** (४.१.१५४) सूत्र से **फिञ्** प्रत्यय होने पर, फकार को **आयन्** आदेश होकर **गङ्गा+आयनि** बनता है। आदिवृद्धि, आकार का लोप होकर **गाङ्गायनि** शब्द बनता है और स्वादिकार्य होकर **गाङ्गायनिः** सिद्ध हो जाता है।

शुभ्रादित्वाड्ढक्, गाङ्गेयः। इसी तरह **गङ्गा**-शब्द का शुभ्रादिगण में भी पाठ है। अतः एकपक्ष में **शुभ्रादिभ्यश्च** (४.१.१२३) सूत्र से **ढक्** प्रत्यय होने पर, ढकार को **एय्** आदेश होकर **गङ्गा+एय** बनता है। आदिवृद्धि, आकार का लोप होकर **गाङ्गेय** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **गाङ्गेयः** सिद्ध हो जाता है।

शिवादिगणः- शिव, प्रोष्ठ, प्रोष्ठिक, चण्ड, जम्भ, भूरि, दण्ड, कुठार, ककुभ्, (ककुभा) अनभिम्लान, कोहित, मुख, मुनि, ककुत्स्थ, कहोड, कोहड, कहूय, कहय, रोध, कपिञ्जल, (कुपिञ्जल) खञ्जन, वतण्ड, तृणकर्ण, क्षीरह्रद, जलह्रद, परिल, [पथक] पिष्ट, हैहय, [पार्षिका] गोपिका, कपिलिका, जटिलिका, बधिरिका, मञ्जीरक, [मजिरक] वृष्णिक, खञ्जास, खञ्जाह, [कर्मार] रेख, लेख, आलेखन, विश्रवण, रवण, वर्तनाक्ष, ग्रीवाक्ष, [पिटप, विटक] पिटाक, तृक्षाक, नभाक, ऊर्णनाभ, जरत्कारु, [पृथा, उत्क्षेप] पुरोहितिका, सुरोहितिका, आर्यश्वेत, (अर्यश्वेत) सुपिष्ट, मसुरेकर्ण, मयूरकर्ण, (खर्जूरकर्ण) कदूरक, तक्षन्, ऋष्टिषेण, गङ्गा, विपाश, यस्क, लह्य, द्रुह्य अयस्थूण तृणकर्ण (तृण, कर्ण) पर्ण, भलन्द, विरूपाक्ष, भूमि, इला, सपत्नी। **द्व्यचो नद्याः। त्रिवेणी त्रिवणं च।** आकृतिगणः।

१११६. अवृद्धाभ्यो नदीमानुषीभ्यस्तन्नामिकाभ्यः ४।१।११३॥

अवृद्धेभ्यो नदीमानुषीनामभ्योऽण् स्यात्। ढकोऽपवादः।
यामुनः। नार्मदः। चिन्तिताया अपत्यं चैन्तितः।
अवृद्धाभ्यः किम्? वासवदत्तेयः। नदीत्यादि किम्? वैनतेयः।
तन्नामिकाभ्यः किम्? शोभनाया अपत्यं शौभनेयः।

अवृद्धाभ्यो नदीमानुषीभ्यस्तन्नामिकाभ्यः। न वृद्धाः अवृद्धास्ताभ्योऽवृद्धाभ्यः, नञ्तत्पुरुषः। नद्यश्च मानुष्यश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो नदीमानुष्यस्ताभ्यो नदीमानुषीभ्यः। तानि नामानि यासां ता तन्नामिकास्ताभ्यस्तन्नामिकाभ्यः, बहुव्रीहिः। अवृद्धाभ्यः पञ्चम्यन्तं, नदीमानुषीभ्यः पञ्चम्यन्तं, तन्नामिकाभ्यः पञ्चम्यन्तम्। **शिवादिभ्योऽण्** से **अण्** की और **तस्यापत्यम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद् वा** का अधिकार आ ही रहा है। नदीवाचक और मानुषीवाचक शब्दों में विद्यमान स्त्रीत्व की अपेक्षा से उसके विशेषण **अवृद्धा** का भी स्त्रीलिङ्ग में प्रयोग किया गया है।

वृद्धसंज्ञक-भिन्न नदी और मानुषी अर्थ वाले एवं नदी तथा मानुषी नाम वाले षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिकों से अपत्य अर्थ में तद्धितसंज्ञक अण् प्रत्यय होता है।

अण् विधेय है। सूत्रस्थ तीनों पद **प्रातिपदिकात्** के विशेषण हैं। अतः **प्रातिपदिकात्** का वचनविपरिणाम करके **प्रातिपदिकेभ्यः** बनाना होगा। यहाँ पर **नदी** शब्द से नदीसंज्ञक शब्द न लेकर नदी-वाचक शब्द का ग्रहण है। एतदर्थ ही सूत्र में **तन्नामिकाभ्यः** विशेषण दिया गया है। अतः **यमुना, नर्मदा** आदि नामधारी किसी स्त्रीलिंगवृत्ति शब्दों का ग्रहण होगा, न कि शास्त्रीय नदीसंज्ञक शब्द का। अर्थात् जिस स्त्री

का ही नाम नदी के नाम से हो, उसी का ग्रहण होगा। इसी तरह **शिक्षिता, संस्कृता** आदि स्त्रीलिङ्गवाची शब्दों के किसी स्त्री-व्यक्ति के नाम होने पर ही प्रकृत सूत्र से अण् प्रत्यय होगा। यदि **नदी** और **मानुषी** नामधेय यदि दो अच् वाले शब्द होंगे तो उनसे वक्ष्यमाण **द्व्यचः** (४.१.१२१) सूत्र के द्वारा ढक् प्रत्यय होगा। **वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद् वृद्धम्** सूत्र के द्वारा जिस शब्द का आदि अच् वृद्धिसंज्ञक आ, ऐ, औ हो, उस शब्द की वृद्ध-संज्ञा की जाती है। तद्भिन्न शब्द अवृद्ध होगा।

ढकोऽपवादः। केवल अण् प्रत्यय मात्र करना प्रकृत सूत्र का लक्ष्य होता तो **तस्यापत्यम्** से ही वह सिद्ध था, फिर भी प्रकृत सूत्र के विधान की सार्थकता यह है कि **स्त्रीभ्यो ढक्** आदि सूत्रों से विहित ढक् प्रत्यय का बाधन किया जा सके।

यामुनः। यमुना नाम की स्त्री की सन्तति। **यमुनायाः अपत्यं पुमान्** अर्थ में **यमुना+ङस्** इस षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से **स्त्रीभ्यो ढक्** से ढक् प्रत्यय प्राप्त होने पर उसे बाधकर **अवृद्धाभ्यो नदीमानुषीभ्यस्तन्नामिकाभ्यः** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **यमुना+अ** बना है। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि और **यस्येति च** से आकार का लोप होकर **यामुन** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **यामुनः, यामुनौ, यामुनाः** इत्यादि रूप सिद्ध हो जाते हैं।

नार्मदः। नर्मदा नाम की स्त्री की सन्तति। **नर्मदायाः अपत्यं पुमान्** अर्थ में **नर्मदा+ङस्** इस षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से ढक् प्रत्यय को बाधकर **अवृद्धाभ्यो नदीमानुषीभ्यस्तन्नामिकाभ्यः** सूत्र से अण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और आकार का लोप होकर **नार्मद** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **नार्मदः, नार्मदौ, नार्मदाः** इत्यादि रूप सिद्ध हो जाते हैं। ये दो उदाहरण नदी के नाम वाले स्त्रीवाचक शब्द के उदाहरण हैं।

चिन्तिताया अपत्यं चैन्तितः। चिन्तिता नाम की स्त्री की सन्तति। **चिन्तितायाः अपत्यं पुमान्** अर्थ में **चिन्तिता+ङस्** इस षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से **अवृद्धाभ्यो नदीमानुषीभ्यस्तन्नामिकाभ्यः** सूत्र से अण् प्रत्यय, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, आकारलोप होकर **चैन्तित** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **चैन्तितः** सिद्ध हो जाता है। यह केवल मानुषी का उदाहरण है।

अवृद्धाभ्यः किम्? वासवदत्तेयः। प्रकृतसूत्र में **अवृद्धाभ्यः** पद का निवेश किया गया है। अतः वृद्धसंज्ञक शब्द से अण् प्रत्यय नहीं होगा। फलतः **वासवदत्तायाः अपत्यं पुमान्** (वासवदत्ता स्त्री की सन्तति) अर्थ में **वासवदत्ता+ङस्** इस षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से **अवृद्धाभ्यो नदीमानुषीभ्यस्तन्नामिकाभ्यः** सूत्र से अण् प्रत्यय न होकर **स्त्रीभ्यो ढक्** सूत्र से **ढक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप्

का लुक्, ढकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र से **एय्** आदेश होने पर **वासवदत्ता+एय** बना है। **पर्जन्यवल्लक्षणप्रवृत्तिः** न्याय से आकार की भी **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि होती है और **यस्येति च** से आकार का लोप होकर **वासवदत्तेय** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वासवदत्तेयः** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **चन्द्रभागायाः अपत्यं पुमान्** अर्थ में **चान्द्रभागेयः** सिद्ध होता है।

नदीत्यादि किम्? वैनतेयः। प्रकृतसूत्र में **नदीमानुषीभ्यः** पद का निवेश किया गया है। अतः नदीवाची तथा मानुषीवाची शब्दों से ही अण् प्रत्यय होगा। फलतः **विनता**-शब्द से अण् प्रत्यय नहीं होता, क्योंकि यह न तो नदीवाची है और न ही मानुषीवाची। यह तो देवस्त्री है। **विनतायाः अपत्यं पुमान्** (विनता की सन्तान गरुड आदि) अर्थ में **स्त्रीभ्यो ढक्** सूत्र से **ढक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, ढकार के स्थान पर **एय्** आदेश, आदिवृद्धि और आकारलोप होकर **वैनतेय** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वैनतेयः** सिद्ध हो जाता है।

तन्नामिकाभ्यः किम्? शोभनाया अपत्यं शौभनेयः। प्रकृतसूत्र में **तन्नामिकाभ्यः** पद का निवेश किया गया है। अतः उस नाम वाले समर्थ प्रातिपदिकों से ही अण् प्रत्यय नहीं होगा। फलतः **शोभना**-शब्द से अण् प्रत्यय नहीं होता, क्योंकि यह न तो नदी का नाम है और न ही मानुषी का। यह तो विशेषण-शब्द है। सुन्दर स्वभाव तथा आचरण वाली। अतः **शोभनायाः अपत्यं पुमान्** (शोभन-स्त्री की सन्तान) अर्थ में **स्त्रीभ्यो ढक्** सूत्र से **ढक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, ढकार के स्थान पर **एय्** आदेश, आदिवृद्धि और आकारलोप होकर **शौभनेय** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **शौभनेयः** सिद्ध हो जाता है।

११९७. ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च ४।१।१४४॥

ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः। वासिष्ठः। वैश्वामित्रः। अन्धकेभ्यः- श्वाफल्कः। वृष्णिभ्यः- वासुदेवः, आनिरुद्धः। 'शौरिः' इति तु बाह्वादित्वात्। कुरुभ्यः- नाकुलः, साहदेवः। इञ एवायमपवादः, मध्येऽपवादन्यायात्। अत्रिशब्दात्तु परत्वाड्ढक्- आत्रेयः।

ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च। ऋषयश्च अन्धकाश्च वृष्णयश्च कुरवश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्व ऋष्यन्धकवृष्णिकुरवस्तेभ्यः। ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **शिवादिभ्योऽण्** से **अण्** की और **तस्यापत्यम्** इस पूरे सूत्र की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद् वा** का अधिकार आ रहा है।

षष्ठ्यन्त-समर्थ ऋषिवाचकों तथा अन्धक, वृष्णि, कुरु इन तीनों वंशों में उत्पन्न व्यक्ति के वाचक प्रातिपदिकों से अपत्य अर्थ में तद्धितसंज्ञक अण् प्रत्यय होता है।

यह **अत इञ्** का अपवाद है। **अण्** णित् है, अतः इसके परे रहते आदिवृद्धि होगी।

ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः। सूत्रस्थ **ऋषि**-शब्द मन्त्रद्रष्टा वसिष्ठादि ऋषियों का वाचक है। वेद नित्य और अपौरुषेय हैं किन्तु प्रलयावस्था में वे प्रकट नहीं होते। उन्हें ऋषिगण अपने तपोबल और साधना से पुनः प्राप्त करते हैं। अतः नित्य वेदों को पुनः प्राप्त करने के कारण उन्हें मन्त्रद्रष्टा कहा जाता है। **ऋष गतौ** धातु से **ऋषि**-शब्द की निष्पत्ति होती है।

ऋषिवाचक शब्दों के उदाहरण-

वासिष्ठः। वसिष्ठ की सन्तान। **वसिष्ठस्यापत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **वसिष्ठ+ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **अत इञ्** सूत्र से **इञ्** प्राप्त था, उसे बाधकर के **ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च** से अण् प्रत्यय हुआ- **वसिष्ठ ङस् अण्** बना। णकार की इत्संज्ञा हुई- **वसिष्ठ ङस् अ** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **वसिष्ठ+अ** बना। णित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर वकारोत्तरवर्ती **अकार** के स्थान पर **आकार** आदेश और भसंज्ञक **अकार** का **यस्येति च** से लोप करने पर **वासिष्ठ्+अ** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **वासिष्ठ** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **वासिष्ठः** सिद्ध हो जाता है।

वैश्वामित्रः। विश्वामित्र ऋषि की सन्तान। **विश्वामित्रस्य अपत्यं पुमान्** अर्थ में **विश्वामित्र+ङस्** इस षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से **ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च** के द्वारा अण् प्रत्यय, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **वैश्वामित्र** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वैश्वामित्रः** सिद्ध हो जाता है। ये दो ऋषिवाचक शब्दों के उदाहरण हैं।

अन्धकेभ्यः। अन्धकवंशी के वाचक शब्द का उदाहरण दिया जा रहा है-

श्वाफल्कः। श्वफल्क की सन्तान। श्वफल्क अन्धकवंशी है। **श्वफल्कस्यापत्यं पुमान्** अर्थ में **श्वफल्क+ङस्** षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से **ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च** के द्वारा अण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **श्वाफल्क** बना हुआ है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **श्वाफल्कः** सिद्ध हो जाता है।

वृष्णिभ्यः। वृष्णिवंशवाची शब्दों के उदाहरण दिये जा रहे हैं-

वासुदेवः। वसुदेव की सन्तान, श्रीकृष्ण। **वसुदेवस्यापत्यं पुमान्** अर्थ में **वसुदेव+ङस्** षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से **ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च** से अण् प्रत्यय अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकारलोप करके **वासुदेव** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वासुदेवः** सिद्ध हो जाता है।

आनिरुद्धः। अनिरुद्ध की सन्तान। **अनिरुद्धस्यापत्यं पुमान्** अर्थ में **अनिरुद्ध+ङस्** षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से **ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च** से अण् प्रत्यय अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकारलोप करके **आनिरुद्ध** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आनिरुद्धः** सिद्ध हो जाता है। ये दोनों वृष्णिवंशियों के उदाहरण हैं।

'शौरिः' इति तु बाह्वादित्वात्। यदि वृष्णिवंशियों के वाचक शब्दों से अण् प्रत्यय ही होता है तो **शूर** शब्द से भी अण् होकर **शौरः** बनना चाहिये, वह क्यों नहीं हुआ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुये मूलकार कहते हैं कि **शूर** शब्द के बाह्वादिगण में पठित होने के कारण **बाह्वादिभ्यश्च** सूत्र से इञ् प्रत्यय होकर **शौरिः** बनाया जाता है। गणपाठ में साक्षात् पठित होने के कारण वह विशेष हो जाता है, अतः अण् को बाधकर इञ् हो जाता है।

कुरुभ्यः। कुरुवंशवाची शब्दों के उदाहरण दिये जा रहे हैं-

नाकुलः। नकुल की सन्तान। **नकुलस्यापत्यं पुमान्** अर्थ में **नकुल+ङस्** षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से **अत इञ्** से प्राप्त **इञ्** को बाधकर के **ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च** से अण् प्रत्यय अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **नाकुल** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **नाकुलः** सिद्ध हो जाता है।

साहदेवः। सहदेव की सन्तान। **सहदेवस्यापत्यं पुमान्** अर्थ में **सहदेव+ङस्** षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से **ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च** से अण् प्रत्यय अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **साहदेव** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **साहदेवः** सिद्ध हो जाता है। ये दो कुरुवंशियों के उदाहरण हैं।

इञ एवायमपवादः, मध्येऽपवादन्यायात्। यह अपवाद केवल **अत इञ्** से प्राप्त इञ् का ही है, **इतश्चानिञः** सूत्र से विधीयमान ढक् प्रत्यय का बाधक नहीं है। ऐसा होने में क्या कारण है? **मध्येऽपवादन्यायात्** अर्थात् **मध्येऽपवादाः पूर्वान् विधीन् बाधन्ते नोत्तरान्** (सूत्रक्रम में उत्सर्ग और अपवाद के मध्य में पठित अपवादशास्त्र अपने से पूर्ववर्ती सूत्रों को बाधते हैं किन्तु अपने से उत्तरवर्ती सूत्रों को नहीं बाधते। प्रकृत अपवाद सूत्र से **अत इञ्** तो पूर्व है किन्तु **इतश्चानिञः** सूत्र उत्तरवर्ती है। अतः **अत इञ्** का बाधक बन जाता है किन्तु **इतश्चानिञः** आदि का अपवाद नहीं बनता।

अत्रिशब्दात्तु परत्वाड्ढक्- आत्रेयः। उपर्युक्त रीति से प्रकृतसूत्र का अपवाद **इतश्चानिञः** के न बन पाने के कारण प्रकृतसूत्र की अपेक्षा उक्त सूत्र के पर होने से ढक् प्रत्यय होकर **आत्रेयः** बन जाता है। प्रक्रिया- **अत्रेः अपत्यं पुमान्** (अत्रि की सन्तान) अर्थ में **अत्रि+ङस्** षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से **इतश्चानिञः** सूत्र से ढक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, ढकार के स्थान पर **एय्** आदेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक इकार का लोप करके **आत्रेय** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आत्रेयः** सिद्ध हो जाता है।

११११८. मातुरुत्सङ्ख्यासम्भद्रपूर्वायाः ४।१।११५॥

संख्यादिपूर्वस्य मातृशब्दस्योदादेशः स्यादण्प्रत्ययश्च।
द्वैमातुरः। षाण्मातुरः। साम्मातुरः। भाद्रमातुरः। आदेशार्थं वचनम्।
प्रत्ययस्तूत्सर्गेण सिद्धः। स्त्रीलिङ्गनिर्देशोऽर्थापेक्षः, तेन धान्यमातुर्न।
संख्या इति किम्? सौमात्रः। शुभ्रादित्वाद् द्वैमात्रेयः।

मातुरुत्सङ्ख्यासम्भद्रपूर्वायाः। सङ्ख्या च सम् च भद्रश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः सङ्ख्यासम्भद्राः। सङ्ख्यासम्भद्राः पूर्वे यस्याः सा सङ्ख्यासम्भद्रपूर्वा, तस्याः, द्वन्द्वगर्भबहुव्रीहिसमासः। मातुः षष्ठ्यन्तम्, उत् प्रथमान्तं, सङ्ख्यासम्भद्रपूर्वायाः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **शिवादिभ्योऽण्** से **अण्** तथा **तस्यापत्यम्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार भी है।

सङ्ख्यापूर्व, सम्पूर्व तथा भद्रपूर्व मातृशब्द को अपत्य अर्थ में ह्रस्व उकार अन्तादेश होता है और इससे परे तद्धितसंज्ञक अण् प्रत्यय भी होता है।

मातुः शब्द की आवृत्ति की जाती है। एक को पञ्चम्यन्त और एक को षष्ठ्यन्त मान लिया जाता है। पञ्चम्यन्त से प्रत्यय और षष्ठ्यन्त को आदेश किया जाता है। **अलोऽन्त्यस्य** सूत्र की उपस्थिति से अन्तादेश होने के कारण **मातृ-शब्द** के ऋकार के स्थान पर उकार आदेश प्राप्त होता है। ऋकार के स्थान पर अण्-रूप आदेश प्राप्त होने पर **उरण् रपरः** के द्वारा रपर होकर **उर्** हो जाता है।

द्वैमातुरः। दो माताओं की सन्तान। **द्वयोर्मात्रोरपत्यम्** यह लौकिक विग्रह और **द्वि ओस् मातृ ओस्** अलौकिक विग्रह में अपत्यार्थक प्रत्यय की विवक्षा में **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** से समास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **द्विमातृ** बना। **मातुरुत्सङ्ख्यासम्भद्रपूर्वायाः** से **अण्** प्रत्यय और **मातृ** के ऋकार के स्थान पर **उकार** आदेश, रपर, **तद्धितेष्वचामादेः** से **द्वि** के इकार की वृद्धि करके **द्वैमातुर्+अ=द्वैमातुर** बना। स्वादिकार्य करके **द्वैमातुरः** सिद्ध हुआ।

षाण्मातुरः। छ माताओं की सन्तान। **षण्णां मातॄणामपत्यम्** यह लौकिक विग्रह और **षष् आम् मातृ आम्** अलौकिक विग्रह में अपत्यार्थक प्रत्यय की विवक्षा में

तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च से समास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **षष् मातृ** बना। अन्तर्वर्तिनी विभक्ति मान कर के पदत्व के कारण षकार के स्थान पर **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व होकर **डकार**, उसको **यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा** से अनुनासिक आदेश होकर **णकार** हुआ **षण्मातृ** बना। **मातुरुत्सङ्ख्यासम्भद्रपूर्वायाः** से **अण्** प्रत्यय और **मातृ** के ऋकार के स्थान पर **उकार** आदेश, रपर, **तद्धितेष्वचामादेः** से **षष्** के अकार की वृद्धि करके **षाण्मातुर्+अ=षाण्मातुर** बना। स्वादिकार्य करके **षाण्मातुरः** सिद्ध हुआ।

साम्मातुरः। अच्छी माता की सन्तान। **सम्मातुरपत्यं पुमान्** यह लौकिक विग्रह और **सम् मातृ सु** अलौकिक विग्रह में **कुगतिप्रादयः** से समास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **सम् मातृ** बना। **मातुरुत्सङ्ख्यासम्भद्रपूर्वायाः** से **अण्** प्रत्यय और **मातृ** के ऋकार के स्थान पर **उकार** आदेश, रपर, **तद्धितेष्वचामादेः** से **सम्** के अकार की वृद्धि करके **साम्मातुर्+अ=साम्मातुर** बना। स्वादिकार्य करके **साम्मातुरः** सिद्ध हुआ।

भाद्रमातुरः। भली माता की सन्तान। **भद्रमातुरपत्यं पुमान्** यह लौकिक विग्रह और **भद्रा सु मातृ सु** अलौकिक विग्रह में **विशेषणं विशेष्येण बहुलम्** समास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **भद्रा माता** बना। **पुंवत्कर्मधारयजातीयदेशीयेषु** से **भद्रा** को पुंवद्भाव होकर **भद्रमातृ** बना। **मातुरुत्सङ्ख्यासम्भद्रपूर्वायाः** से **अण्** प्रत्यय और मातृ के ऋकार के स्थान पर **उकार** आदेश, रपर, **तद्धितेष्वचामादेः** से **भद्र** के आदि अकार की वृद्धि करके **भाद्रमातुर्+अ=भाद्रमातुर** बना। स्वादिकार्य करके **भाद्रमातुरः** सिद्ध हुआ।

आदेशार्थं वचनम्। प्रत्ययस्तूत्सर्गेण सिद्धः। वास्तव में यह सूत्र **उर्** आदेश के लिए ही बनाया गया है, **अण्** प्रत्यय तो उत्सर्गसूत्र **तस्यापत्यम्** से सिद्ध था।

स्त्रीलिङ्गनिर्देशोऽर्थापेक्षः, तेन धान्यमातुर्न। स्त्रीलिङ्गबोधक (स्त्रीत्वविशिष्टार्थक) निर्देश अर्थ की अपेक्षा से है, अर्थात् **मातृ**-शब्द जहाँ पर जननी का वाचक होगा, वहीं पर ही इस सूत्र की प्रवृत्ति होगी। यह बात सूत्रस्थ **मातृ**-शब्द के **संख्यासम्भद्रपूर्वायाः** पद से ध्वनित होती है। इसके फलस्वरूप जहाँ अन्न को नापने वाला पुरुष का वाचक **धान्यस्य माता (धान्यं मिमीते) धान्यमातृ (धान्यमाता)** शब्द है, उसमें उत् आदेश और अण् प्रत्यय दोनों नहीं होंगे।

संख्या इति किम्? सौमात्रः। प्रकृतसूत्र में **संख्यासम्भद्रपूर्वायाः** पद के निवेश से संख्यापूर्व, सम्पूर्व और भद्र-पूर्व मातृ-शब्द को ही उत् आदेश होता है, अन्यथा नहीं होता। अतः **सुमातुः अपत्यम्** अर्थ में उत् आदेश नहीं हुआ अपितु **तस्यापत्यम्** सूत्र से केवल अण् प्रत्यय होने पर **सुमातृ+अ** बना। आदिवृद्धि और ऋकार को यण् र् होकर **सौमात्रः** सिद्ध हो जाता है। सुमाता की सन्तान।

शुभ्रादित्वाद् द्वैमात्रेयः। यद्यपि **द्विमातृ** शब्द में संख्यापूर्वक मातृ-शब्द है तथापि **मातुरुत्सङ्ख्यासम्भद्रपूर्वायाः** से अण् प्रत्यय नहीं होता, क्योंकि शुभ्रादिगण में

इसका पाठ होने के कारण विशेष हो जाने से **शुभ्रादिभ्यश्च** सूत्र से ढक् प्रत्यय होता है। दो माताओं की सन्तान। **द्वयोः मात्रोः अपत्यं पुमान्** अर्थ में **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** सूत्र से तद्धितार्थ विषय के रहते समास होने पर समासप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **द्विमातृ** शब्द बना है। **शुभ्रादिभ्यश्च** से ढक् प्रत्यय, पुनः तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, ढकार के स्थान पर एयादेश होकर **द्वैमातृ+एय** बना। ऋकार के स्थान पर यण् होकर **द्वैमात्रेय** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **द्वैमात्रेयः** सिद्ध हो जाता है।

१११९. कन्यायाः कनीन च ४।१।११६॥

ढकोऽपवादोऽण्, तत्सन्नियोगेन कनीनादेशश्च।
कानीनो व्यासः कर्णश्च। अनूढाया एवापत्यमित्यर्थः।

कन्यायाः कनीन च। कन्यायाः षष्ठ्यन्तं, कनीन इति लुप्तप्रथमाकं पदं, च अव्ययपदं, त्रिपदं सूत्रम्। **शिवादिभ्योऽण्** से **अण्** और **तस्यापत्यम्** इस पूरे सूत्र की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद् वा** का अधिकार आ रहा है।

अपत्य अर्थ में ढक् का अपवाद अण् प्रत्यय होता है और उसके सन्नियोग में कन्याशब्द के स्थान पर कनीन आदेश भी हो जाता है।

ढकोऽपवादोऽण्। यह सूत्र **स्त्रीभ्यो ढक्** से प्राप्त ढक् प्रत्यय का अपवाद है। आदेश के अनेकाल् होने के कारण **अनेकाल्शित्सर्वस्य** की उपस्थिति से सर्वादेश अर्थात् पूरे **कन्या** शब्द के स्थान पर **कनीन** आदेश होता है।

कानीनो व्यासः कर्णश्च। कन्या अर्थात् अविवाहिता की सन्तान, व्यास या कर्ण आदि। **कन्याया अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **कन्या ङस्** में **कन्यायाः कनीन च** से **कन्या** के स्थान पर **कनीन** आदेश और **अण्** प्रत्यय का विधान हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **कनीन+अ** बना। आदिवृद्धि, भसंज्ञक अवर्ण का लोप करके **कानीन** बना। स्वादिकार्य करके **कानीनः** सिद्ध हुआ।

अनूढायाः एव अपत्यम् इत्यर्थः। व्यास, कर्ण आदि अविवाहित माँ के पुत्र थे। पाणिग्रहण (शास्त्रीय विधि से विवाह) से पूर्व ही जो लड़की पुरुष-संयोग को प्राप्त कर जो पुत्र उत्पन्न करे, वह पुत्र **कानीन** कहलाता है। यहाँ पर प्रश्न होता है कि यदि कन्या है तो उससे पुत्रोत्पत्ति कैसे? अथवा जब उसका पुरुष-संसर्ग हो गया है तो वह कन्या कैसे? इस विरोध ोक्ति के विषय में भाष्यकार ने यहाँ पर यह विवेचन दिया है कि शास्त्रोक्त विवाह होने से पूर्व पुरुष के साथ संसर्ग होने पर भी लोक में पिता की दृष्टि से उसे कन्या ही कहते हैं। कैयट ने इसकी व्याख्या करते हुये यह कहा है कि मुनि एवं देवता के माहात्म्य से पुरुषसंयोग होने पर भी व्यास एवं कर्ण आदि को कन्या को सन्तति के रूप में कहा जाता है।

११२०. विकर्णशुङ्गच्छगलाद्वत्सभरद्वाजात्रिषु ४।१।११७॥

अपत्येऽण्। वैकर्णो वात्स्यः, वैकर्णिरन्यः।
शौङ्गो भारद्वाजः, शौङ्गिरन्यः। छागल आत्रेयः, छागलिरन्यः।
केचित्तु 'शुङ्ग' इत्याबन्तं पठन्ति, तेषां ढक्प्रत्युदाहरणम्, शौङ्गेयः।

विकर्णशुङ्गच्छगलाद्वत्सभरद्वाजात्रिषु। विकर्णश्च शुङ्गश्च छगलश्च तेषां समाहारद्वन्द्वो विकर्णशुङ्गच्छगलम्, तस्माद् विकर्णशुङ्गच्छगलात्। वत्सश्च भरद्वाजश्च अत्रिश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो वत्सभरद्वाजात्रयस्तेषु वत्सभरद्वाजात्रिषु। विकर्णशुङ्गच्छगलात् पञ्चम्यन्तं, वत्सभरद्वाजात्रिषु सप्तम्यन्तम्। **शिवादिभ्योऽण्** से **अण्** तथा **तस्यापत्यम्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार भी है।

वत्स, भरद्वाज और अत्रि सम्बन्धी अपत्य का अभिधान होने पर क्रमशः षष्ठी-समर्थ विगर्ण, शुङ्ग और छगल प्रातिपदिकों से तद्धितसंज्ञक अण् प्रत्यय होता है।

विकर्ण आदि शब्दों से वत्स आदि अर्थ अभिधेय होने पर ही अण् प्रत्यय हो, अन्यथा न हो, इस नियम के लिये यह नियमात्मक विधिसूत्र है। वैसे **अत इञ्** से प्राप्त इञ् का अपवाद तो है ही।

वैकर्णो वात्स्यः, वैकर्णिरन्यः। वत्स-कुलोत्पन्न विकर्ण नामक पुरुष की सन्तान। (**वत्सवंश्यस्य**) **विकर्णस्य अपत्यं पुमान्** अर्थ में **विकर्ण+ङस्** इस षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से प्राप्त इञ् को बाधकर **विकर्णशुङ्गच्छगलाद्वत्सभरद्वाजात्रिषु** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **वैकर्ण** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन स्वादिकार्य होकर **वैकर्णः** सिद्ध हो जाता है। वत्सगोत्रीय अर्थ न होने पर उक्त अण् नहीं होता, फलतः **अत इञ्** से इञ् होने पर अन्य कार्य पूर्ववत् होकर **वैकर्णिः** सिद्ध हो जाता है।

शौङ्गो भारद्वाजः, शौङ्गिरन्यः। भारद्वाज-कुलोत्पन्न शुङ्ग नामक पुरुष की सन्तान। (**भारद्वाजवंश्यस्य**) **शुङ्गस्य अपत्यं पुमान्** अर्थ में **शुङ्ग+ङस्** इस षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से प्राप्त इञ् को बाधकर **विकर्णशुङ्गच्छगलाद्वत्सभरद्वाजात्रिषु** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **शौङ्ग** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन स्वादिकार्य होकर **शौङ्गः** सिद्ध हो जाता है। भारद्वाजगोत्रीय अर्थ न होने पर उक्त अण् नहीं होता, फलतः **अत इञ्** से इञ् होने पर अन्य कार्य पूर्ववत् होकर **शौङ्गिः** सिद्ध हो जाता है।

छागल आत्रेयः, छागलिरन्यः। अत्रि-कुलोत्पन्न छगल नामक पुरुष की सन्तान। (**अत्रिवंश्यस्य**) **छगलस्य अपत्यं पुमान्** अर्थ में **छगल+ङस्** इस षष्ठ्यन्त

प्रातिपदिक से प्राप्त इञ् को बाधकर **विकर्णशुङ्गच्छगलाद्वत्सभरद्वाजात्रिषु** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **छागल** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन स्वादिकार्य होकर **छागलः** सिद्ध हो जाता है। अत्रिगोत्रीय अर्थ न होने पर उक्त अण् नहीं होता, फलतः **अत इञ्** से इञ् होने पर अन्य कार्य पूर्ववत् होकर **छागलिः** सिद्ध हो जाता है।

केचित्तु 'शुङ्गा' इत्याबन्तं पठन्ति, तेषां ढक्प्रत्युदाहरणम्, शौङ्गेयः। कुछ आचार्य प्रकृतसूत्र के **शुङ्ग**-शब्द को **शुङ्गा** शब्द पढ़ते हैं। तदनुसार भरद्वाजवंश्य में अण् प्रत्यय होने पर तो कोई अन्तर नहीं आता अर्थात् **शौङ्गः** ही रूप बनता है किन्तु प्रत्युदाहरण में इञ् प्रत्यय नहीं होगा अपितु **स्त्रीभ्यो ढक्** सूत्र से ढक् प्रत्यय, एयादेश होकर **शौङ्गेयः** रूप बनता है।

११२१. पीलाया वा ४।१।११८॥

तन्नामिकाणं बाधित्वा 'द्व्यचः-' (सू.११२४) इति ढकि प्राप्ते पक्षेऽण् विधीयते। पीलाया अपत्यं पैलः, पैलेयः।

पीलाया वा। पीलायाः पञ्चम्यन्तं, वाव्ययम्। **शिवादिभ्योऽण्** से **अण्** तथा **तस्यापत्यम्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार भी है।

षष्ठ्यन्त-समर्थ पीला प्रातिपदिक से तद्धितसंज्ञक अण् प्रत्यय विकल्प से होता है।

तन्नामिकाणं बाधित्वा 'द्व्यचः-' इति ढकि प्राप्ते पक्षेऽण् विधीयते। अर्थात् **अवृद्धाभ्यो नदीमानुषीभ्यस्तन्नामिकाभ्यः** सूत्र से नित्य अण् प्राप्त होने पर उसे बाधकर **द्व्यचः** सूत्र से ढक् प्राप्त था, उसको भी बाधकर विकल्प से अण् प्रत्यय का विधान किया गया है। बाधने का सामर्थ्य यह है कि प्रकृतसूत्र में **पीला** शब्द का प्रतिपद पाठ है। पक्ष में ढक् प्रत्यय भी होता है।

पीलाया अपत्यं पैलः, पैलेयः। पीला नामक स्त्री की सन्तान। **पीलायाः अपत्यम्** अर्थ में **पीला+ङस्** इस षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से प्राप्त इञ् को बाधकर नित्य से अण् प्रत्यय प्राप्त, उसे बाधकर नित्य से ढक् प्रत्यय प्राप्त, उसे भी बाधकर **पीलाया वा** सूत्र से विकल्प से अण् प्रत्यय होने पर तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पैल** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन स्वादिकार्य होकर **पैलः** सिद्ध हो जाता है। पक्ष में **द्व्यचः** सूत्र से ढक् होने पर ढकार के स्थान पर एयादेश होकर **पैलेय** शब्द बन जाता है। स्वादिकार्य से **पैलेयः** यह दूसरा रूप सिद्ध होता है।

११२२. ढक् च मण्डूकात् ४।१।११९॥

चादण्। पक्षे इञ्। माण्डूकेयः, माण्डूकः, माण्डूकिः।

ढक् च मण्डूकात्। ढक् प्रथमान्तं, चाव्ययं, मण्डूकात् पञ्चम्यन्तम्। **पीलाया वा** से **वा** की, **शिवादिभ्योऽण्** से **अण्** तथा **तस्यापत्यम्** और **पीलाया वा** से **वा** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार भी है। **समर्थः पदविधिः** परिभाषा उपस्थित है।

षष्ठ्यन्त-समर्थ मण्डूक प्रातिपदिक से तद्धितसंज्ञक ढक् प्रत्यय विकल्प से होता है, च-शब्द के कारण पूर्व से चला आ रहा अण् प्रत्यय भी होता है।

पक्षे इञ्। इस सूत्र का विधेय **ढक्** है किन्तु च-शब्द से **अण्** का भी समुच्चय है, साथ ही वैकल्पिक विधान होने के कारण एक पक्ष में **अत इञ्** से **इञ्** प्रत्यय भी होता हैं।

माण्डूकेयः, माण्डूकः, माण्डूकिः। मण्डूक नामक ऋषि का पुत्र। **मण्डूकस्य अपत्यम्** अर्थ में षष्ठीसमर्थ **मण्डूक+ङस्** से **ढक् च मण्डूकात्** सूत्र से ढक्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, ढकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **एय्** आदेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **माण्डूकेय** शब्द बनता है। अण्-प्रत्यय होने पर **माण्डूक** शब्द बनता है और इञ् प्रत्यय होने के पक्ष में **माण्डूकि** शब्द बनता है। तीनों में एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर क्रमशः **माण्डूकेयः, माण्डूकः, माण्डूकिः** ये तीन रूप सिद्ध होते हैं।

११२३. स्त्रीभ्यो ढक् ४।१।१२०॥

स्त्रीप्रत्ययान्तेभ्यो ढक् स्यात्।

वैनतेयः। बाह्वादित्वात् सौमित्रिः। शिवादित्वात् सापत्नः।

स्त्रीभ्यो ढक्। स्त्रीभ्यः पञ्चम्यन्तं, ढक् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **तस्यापत्यम्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार भी है।

अपत्य अर्थ में षष्ठ्यन्त समर्थ स्त्रीप्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से ढक् प्रत्यय होता है।

सूत्र में **स्त्रीभ्यः** यह बहुवचनान्त प्रयोग है। इससे स्त्री-शब्दस्वरूप या स्त्रीवाचक का ग्रहण न होकर स्त्रीप्रत्ययान्त का ही ग्रहण होता है। अतः केवल टाप्-ङीबादि स्त्रीप्रत्ययान्त शब्द यहाँ लिये जायेंगे, न कि उनसे रहित दरद्-प्रभृति स्त्रीलिङ्गी शब्द। प्रकृत प्रत्यय **ढक्** में **ककार** की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होती है। कित् होने के कारण

किति च से आदिवृद्धि होगी। **ढकार** की **चुटू** से इत्संज्ञा प्राप्त होती है किन्तु उसे बाधकर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से उसके स्थान पर **एय्** आदेश का विधान होता है। **ढ** में केवल **ढ्** के स्थान पर ही **एय्** होगा। **ढ** का **अकार** बचा हुआ है। **एय्+अ=एय।**

यह सामान्य सूत्र है। यदि इसका किसी सूत्र से बाध न हो रहा हो तो समस्त स्त्रीप्रत्ययान्त शब्दों से अपत्यार्थ में ढक् ही होता है।

वैनतेयः। विनता की सन्तान। **विनतायाः अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **विनता ङस्** यह षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक और अलौकिक विग्रह है। **स्त्रीभ्यो ढक्** से **ढक्** प्रत्यय हुआ, ककार की इत्संज्ञा हुई और ढकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **एय्** आदेश हुआ। **ढ** में केवल **ढ्** के स्थान पर ही **एय्** हुआ, एय्+अ=एय, **विनता+ङस्+एय** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **विनता+एय** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि करने पर वकारोत्तरवर्ती **इकार** के स्थान पर **ऐकार** आदेश और भसंज्ञक **आकार** का **यस्येति च** से लोप करने पर **वैनत्+एय** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **वैनतेय** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **वैनतेयः** सिद्ध हुआ। इसके अन्य उदाहरण-

कौन्तेयः। कुन्ती की सन्तान। **कुन्त्याः अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह और **कुन्ती ङस्** अलौकिक विग्रह में **स्त्रीभ्यो ढक्** से ढक्, **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से एय् आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **कुन्ती+एय** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि करने पर ककारोत्तरवर्ती उकार के स्थान पर औकार आदेश और भसंज्ञक ईकार का **यस्येति च** से लोप करने पर **कौन्त्+एय** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **कौन्तेय** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **कौन्तेयः** सिद्ध हुआ।

राधेयः। राधा की सन्तान। **राधायाः अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह और **राधा ङस्** अलौकिक विग्रह में **स्त्रीभ्यो ढक्** से ढक्, **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से एय् आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ, **राधा+एय** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि करने पर रेफोत्तरवर्ती आकार के स्थान पर आकार ही आदेश और भसंज्ञक आकार का **यस्येति च** से लोप करने पर **राध्+एय** बना, वर्णसम्मेलन हुआ- **राधेय** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु, रुत्वविसर्ग करके **राधेयः** सिद्ध हुआ।

बाह्वादित्वात् सौमित्रिः। यद्यपि **सुमित्रा** शब्द स्त्रीप्रत्ययान्त है, अतः अपत्यार्थ में प्रकृतसूत्र से ढक् प्रत्यय होकर **सौमित्रेयः** बनना चाहिये था किन्तु इस शब्द के बाह्वादिगण में पाठ होने के कारण प्रकृतसूत्र को बाधकर **बाह्वादिभ्यश्च** सूत्र से वहाँ **इञ्** प्रत्यय होता है। इस प्रकार **सुमित्रायाः अपत्यं पुमान्** अर्थ में **सुमित्रा+ङस्** में

बाह्वादिभ्यश्च से इञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक आकार का लोप होकर **सौमित्रि** शब्द बनता है। स्वादिकार्य से **सौमित्रिः** सिद्ध हो जाता है।

शिवादित्वात् सापत्नः। इसी तरह यद्यपि **सपत्नी** शब्द स्त्रीप्रत्ययान्त है, अतः अपत्यार्थ में प्रकृतसूत्र से ढक् प्रत्यय होकर **सापत्नेयः** बनना चाहिये था किन्तु इस शब्द के शिवादिगण में पाठ होने के कारण प्रकृतसूत्र को बाधकर **शिवादिभ्योऽण्** सूत्र से **अण्** प्रत्यय होता है। **सपत्न्याः अपत्यं पुमान्** अर्थ में **सपत्नी+ङस्** में **शिवादिभ्योऽण्** से अण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक ईकार का लोप होकर **सापत्न** शब्द बनता है। स्वादिकार्य से **सापत्नः** सिद्ध हो जाता है। उपर्युक्त दोनों प्रयोगों में गणपाठप्रयुक्त विशेष विधान होने के कारण सामान्य सूत्र **स्त्रीभ्यो ढक्** का तत्तत् सूत्रों से बाध हुआ है।

११२४. द्व्यचः ४।१।१२१॥

द्व्यचः स्त्रीप्रत्ययान्तादपत्ये ढक्। तन्नामिकाणोऽपवादः। दात्तेयः। पार्थ इत्यत्र तु 'तस्येदम्' (सू.१५००) इत्यण्।

द्व्यचः। द्वौ अचौ यस्मिन् स द्व्यच्, तस्माद् द्व्यचः, बहुव्रीहिः। एकपदमिदं सूत्रम्। **स्त्रीभ्यो ढक्** सूत्र के दोनों पदों की तथा **तस्यापत्यम्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार भी है।

अपत्य अर्थ में षष्ठ्यन्त समर्थ स्त्रीप्रत्ययान्त दो अच् वाले प्रातिपदिक से ढक् प्रत्यय होता है।

तन्नामिकाणोऽपवादः। स्त्रीप्रत्ययान्त शब्दों से पूर्वसूत्र के द्वारा ही ढक् प्रत्यय सिद्ध होते हुये पुनः विशेष सूत्र से विधान करना **अवृद्धाभ्यो नदीमानुषीभ्यस्तन्नामिकाभ्यः** से प्राप्त अण् को बाधने के लिये है। सामान्य सूत्र **स्त्रीभ्यो ढक्** का उक्त विशेष सूत्र से बाध सम्भव था।

दात्तेयः। दत्ता नामक स्त्री की सन्तान। **दत्तायाः अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह और **दत्ता+ङस्** अलौकिक विग्रह में **स्त्रीभ्यो ढक्** से ढक् प्रत्यय प्राप्त होने पर उसे बाधकर **अवृद्धाभ्यो नदीमानुषीभ्यस्तन्नामिकाभ्यः** से अण् प्राप्त हुआ, **दत्ता**-शब्द में दो अच् होने के कारण उसे भी बाध कर **द्व्यचः** सूत्र से **ढक्** प्रत्यय होने पर तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, ढकार को एय् आदेश **दत्ता+एय** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि करने पर दकारोत्तरवर्ती अकार के स्थान पर आकार आदेश और भसंज्ञक आकार का **यस्येति च** से लोप करने पर **दात्त्+एय=दात्तेय** शब्द बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य से **दात्तेयः** सिद्ध हो जाता है।

पार्थ इत्यत्र तु 'तस्येदम्' इत्यण्। यद्यपि **पृथा** शब्द भी स्त्रीप्रत्ययान्त होते हुये दो अच् वाला भी है। अतः **अवृद्धाभ्यो नदीमानुषीभ्यस्तन्नामिकाभ्यः** से प्राप्त अण् को बाधकर **द्व्यचः** सूत्र से ढक् प्रत्यय होकर **पार्थेयः** बनना चाहिये था किन्तु यहाँ पर **तस्येदम् (४.३.१२०)** सूत्र से अण्-प्रत्यय होकर **पार्थः** बन जाता है। यहाँ पर कौमुदीकार का यह मत समीचीन प्रतीत नहीं होता, क्योंकि **तस्येदम्** सूत्र से **इदम्** अर्थ में अण् प्रत्यय होकर **पार्थः** जरूर बनता है किन्तु अपत्यार्थ विवक्षित होने पर तो उक्त सूत्र लग नहीं सकता। अतः अपत्ययार्थ की विवक्षा में अन्य सूत्र की प्रवृत्ति अपेक्षित है। अत एव बालमनोरमाकार ने लिखा है- **शिवादित्यादपत्य एवाण् इत्यन्ये।** अर्थात् **पृथा** शब्द का शिवादिगण में पाठ होने के कारण **शिवादिभ्योऽण्** से अण् प्रत्यय होकर **पार्थः** बनता है। यह कथन ज्यादा समीचीन प्रतीत होता है और नागेश ने भी यही बात स्वीकारी है।

११२५. इतश्चानिञः ४।१।१२२॥

इकारान्ताद् द्व्यचोऽपत्ये ढक् स्यात्, न त्विञन्ताद्।

दौलेयः। नैधेयः। आत्रेयः।

इतश्चानिञः। न इञ् अनिञ्, तस्माद् अनिञः, बहुव्रीहिः। **द्व्यचः, ढक्, तस्यापत्यम्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

अपत्य अर्थ में षष्ठ्यन्त समर्थ दो अच् वाले ह्रस्व इकारान्त प्रातिपदिक से ढक् प्रत्यय होता है किन्तु इञ्-प्रत्ययान्त शब्द से नहीं होता।

यह सूत्र अस्त्रीप्रत्ययान्त शब्दों से ढक् के लिये है। स्त्रीप्रत्ययान्त भिन्न दो अच् वाले शब्दों को भी सीमित किया जा रहा है। यहाँ पर दो अच् वाले शब्द केवल ह्रस्व-इकारान्त ही अपेक्षित हैं और उसमें भी इञ्-प्रत्ययान्त द्व्यच्-शब्दों को अलग कर दिया गया है। **इतः** और **अनिञः** ये **प्रातिपदिकात्** के विशेषण हैं। अतः तदन्तविधि होकर **इदन्तात्** और **अनिञन्तात्** बना लेना चाहिये।

दौलेयः। दुलि नामक व्यक्ति का पुत्र। **दुलेः अपत्यं पुमान्** अर्थ में **दुलि+ङस्** में **इतश्चानिञः** सूत्र से **ढक्** प्रत्यय होने पर तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, ढकार को एय् आदेश **दुलि+एय** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि करने पर लकारोत्तरवर्ती इकार के स्थान पर औकार आदेश और भसंज्ञक इकार का **यस्येति च** से लोप करने पर **दौल्+एय=दौलेय** शब्द बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **दौलेयः** सिद्ध हो जाता है।

नैधेयः। निधि नामक व्यक्ति का पुत्र। **निधेः अपत्यं पुमान्** अर्थ में **निधि+ङस्** में **इतश्चानिञः** सूत्र से **ढक्** प्रत्यय होने पर तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का

लुक्, ढकार को एय् आदेश, आदिवृद्धि ऐकार, भसंज्ञक इकार का लोप होकर **नैधेय** शब्द बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **नैधेयः** सिद्ध हो जाता है। यहाँ **नि**-पूर्वक **धा**-धातु से **उपसर्गे घोः किः** सूत्र से कि-प्रत्यय, आकार का लोप होकर **निधि**-शब्द निष्पन्न हुआ है, अतः इञ् प्रत्ययान्त नहीं है।

आत्रेयः। अत्रि नामक ऋषि का पुत्र। **अत्रेः अपत्यं पुमान्** अर्थ में **अत्रि+ङस्** में **ऋष्यन्धवृष्णिकुरुभ्यश्च** सूत्र से प्राप्त अण् प्रत्यय को परत्वाद् बाधकर **इतश्चानिञः** सूत्र से **ढक्** प्रत्यय होने पर तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, ढकार को एय् आदेश, आदिवृद्धि होकर आकार, भसंज्ञक इकार का लोप होकर **आत्रेय** शब्द बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आत्रेयः** सिद्ध हो जाता है।

काशिकाकार ने इस सूत्र के तीन प्रत्युदाहरण दिये हैं। उपयोगी होने के कारण यहाँ पर दिखाया जा रहा है-

इतः किम्? दाक्षिः। प्रकृत सूत्र में **इतः** पद के निवेश से ह्रस्व इकारान्त प्रातिपदिक से ही **ढक्** प्रत्यय होगा। अतः **दक्षस्य अपत्यं पुमान्** विग्रह में **दक्ष+ङस्** इस स्थिति में प्रकृतसूत्र से ढक् नहीं होगा, क्योंकि **दक्ष**-शब्द इकारान्त नहीं है। अतः **अत इञ्** से इञ् प्रत्यय होकर **दाक्षिः** सिद्ध हो जाता है।

अनिञः किम्? दाक्षायणः। सूत्र में **अनिञः** पद के निवेश से इञ्-प्रत्ययान्त इकारान्त प्रातिपदिक से **ढक्** प्रत्यय नहीं होगा। अतः **दाक्षेः अपत्यं पुमान्** विग्रह में **दाक्षि+ङस्** इस स्थिति में प्रकृतसूत्र से ढक् नहीं होगा, क्योंकि **दाक्षि**-शब्द इञ्-प्रत्ययान्त ही है। अतः **यञिञोश्च** सूत्र से फक् प्रत्यय, आयन्, आदेश आदि होकर **दाक्षायणः** सिद्ध हो जाता है।

द्व्यचः किम्? मारीचः। प्रकृतसूत्र में **द्व्यचः** पद की अनुवृत्ति होने के कारण केवल दो अच् वाले ह्रस्व इकारान्त प्रातिपदिक से ही **ढक्** प्रत्यय होगा। अतः **मरीचेः अपत्यं पुमान्** विग्रह करके **मरीचि+ङस्** इस स्थिति में प्रकृतसूत्र से ढक् नहीं होगा, क्योंकि **मरीचि**-शब्द में तीन अच् हैं। अतः **तस्यापत्यम्** सूत्र से अण् प्रत्यय होकर **मारीचः** सिद्ध हो जाता है।

११२६. शुभ्रादिभ्यश्च ४।१।१२३॥
ढक् स्यात्। शुभ्रस्यापत्यं शौभ्रेयः।

शुभ्रादिभ्यश्च। शुभ्र आदिर्येषां ते शुभ्रादयस्तेभ्यः शुभ्रादिभ्यः, बहुव्रीहिः। शुभ्रादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **स्त्रीभ्यो ढक्** से **ढक्** की और **तस्यापत्यम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

अपत्य अर्थ में शुभ्र-आदिगण में पठित षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिकों से ढक् प्रत्यय होता है।

शुभ्रादिगणपठित शब्दों के स्त्रीप्रत्ययान्त न होने के कारण **स्त्रीभ्यो ढक्** प्राप्त नहीं था तथा इसमें अधिकतर शब्दों के इकारान्त न होने से **इतश्चानिञः** सूत्र से प्राप्त नहीं था। इस कारण प्रकृति सूत्र की सार्थकता है।

शुभ्रस्यापत्यं शौभ्रेयः। शुभ्र नामक व्यक्ति का पुत्र। **शुभ्रस्य अपत्यं पुमान्** अर्थ में **शुभ्र+ङस्** में **अत इञ्** से प्राप्त इञ् प्रत्यय को बाधकर **शुभ्रादिभ्यश्च** सूत्र से **ढक्** प्रत्यय होने पर तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, ढकार को एय् आदेश **शुभ्र+एय** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि करने पर भकारोत्तरवर्ती उकार के स्थान पर औकार आदेश और भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** से लोप करने पर **शौभ्र्+एय=शौभ्रेय** शब्द बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **शौभ्रेयः** सिद्ध हो जाता है।

शुभ्रादिगणः- शुभ्र, विष्ट, पुर, (विष्टपुर), ब्रह्मकृत, शतद्वार, शलाथल, शलाकाभ्रू, लेखाभ्रू, (लेखाभ्र), विकंसा, (विकास), रोहिणी, रुहिणी, धर्मिणी, दिश्, शालूक, अजबस्ति, शकन्धि, विमातृ, विधवा, शुक, विश, देवतर, शकुनि, शुक्र, उग्र, ज्ञातल, (शतल), बन्धकी, सृकण्डु, विस्रि, अतिथि, गोदन्त, कुशाम्ब, मकष्ट, शाताहर, पवष्टुरिक, सुनामन्। **लक्ष्मणश्यामयोर्वासिष्ठे**। गोधा, कृकलास, अणीव, प्रवाहण, भरत, (भारत), भरम, मृकण्डु, कर्पूर, इतर, अन्यतर, आलीढ, सुदन्त, सुदक्ष, सुवक्षस्, सुदामन्, कद्रुतुद, अकशाय, कुमारिका, कुठारिका, किशोरिका, अम्बिका, जिह्माशिन्, परिधि, वायुदत्त, शकल, शलाका, खड्र, कुबेरिका, अशोका, गन्धपिङ्गला, खडोन्मत्ता, अनुदृष्टिन्, (अनुदृष्टि), जरतिन्, बलीवर्दिन्, विग्न, बीज, जीव, श्वन्, अश्मन्, अश्व, अजिर। **आकृतिगणः।**

११२७. विकर्णकुषीतकात् काश्यपे ४।१।१२४॥

अपत्ये ढक्।

वैकर्णेयः। कौषीतकेयः। अन्यो वैकर्णिः। कौषीतकिः।

विकर्णकुषीतकात् काश्यपे। विकर्णश्च कुषीतकश्च तयोः समाहारद्वन्द्वो विकर्णकुषीतकम्, तस्मात् विकर्णकुषीतकात्। विकर्णकुषीतकात् पञ्चम्यन्तं, काश्यपे सप्तम्यन्तम्। **स्त्रीभ्यो ढक्** से **ढक्** की और **तस्यापत्यम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

अपत्य अर्थ में विकर्ण और कुषीतक इन षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिकों से ढक् प्रत्यय होता है, यदि काश्यप रूप अपत्य गम्य हो तो।

कश्यप के अपत्य-विशेष में ही हो, इस नियम के लिये प्रकृतसूत्र को पृथक् पढ़ा गया है, अन्यथा शुभ्रादिगण में ही विकर्ण, कुषीतक शब्दों का पाठ कर देने से उक्त दोनों शब्दों से ढक् प्रत्यय सिद्ध हो जाता।

वैकर्णेयः। (काश्यप) विकर्ण नामक व्यक्ति का पुत्र। **(काश्यपस्य) विकर्णस्य अपत्यं पुमान्** अर्थ में **विकर्ण**+ङस् से **अत इञ्** सूत्र से प्राप्त इञ् प्रत्यय को बाधकर **विकर्णकुषीतकात् काश्यपे** सूत्र से **ढक्** प्रत्यय होने पर तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, ढकार को एय् आदेश होकर **विकर्ण+एय** बना है। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि करने पर वकारोत्तरवर्ती इकार के स्थान पर ऐकार आदेश और भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** से लोप करने पर **वैकर्ण्+एय=वैकर्णेय** शब्द बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वैकर्णेयः** सिद्ध हो जाता है।

कौषीतकेयः। काश्यप कुषीतक नामक व्यक्ति का पुत्र। **(काश्यपस्य) कुषीतकस्य अपत्यं पुमान्** अर्थ में **कुषीतक**+ङस् से प्राप्त इञ् प्रत्यय को बाधकर **विकर्णकुषीतकात् काश्यपे** सूत्र से **ढक्** प्रत्यय होने पर तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, ढकार को एय् आदेश, आदिवृद्धि औकार, भसंज्ञक अकार का लोप करके **कौषीतकेय** शब्द बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कौषीतकेयः** सिद्ध हो जाता है।

अन्यो वैकर्णिः। कौषीतकिः। यदि काश्यप गोत्र से भिन्न विकर्ण और कुषीतक नामक व्यक्ति का वाचक हो तो प्रकृतसूत्र से ढक् प्रत्यय नहीं होता किन्तु **अत इञ्** से इञ् प्रत्यय होकर **वैकर्णिः** और **कौषीतकिः** सिद्ध हो जाते हैं। इञ्-प्रत्यय होने पर भी आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप ये दो कार्य होते ही हैं।

११२८. भ्रुवो वुक् च ४।१।१२५॥
चाङ्ढक्। भ्रौवेयः।

भ्रुवो वुक् च। भ्रुवः पञ्चम्यन्तं, वुक् प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **स्त्रीभ्यो ढक्** से ढक् की और **तस्यापत्यम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

भ्रू-शब्द को वुक् आगम होता है और षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक भ्रू-शब्द से ढक् प्रत्यय भी होता है, अपत्य अर्थ में।

चाङ्ढक्। सूत्र का मुख्य विधेय तो वुक् आगम ही है किन्तु सूत्र में पठित च-शब्द से ढक् प्रत्यय का भी समुच्चय किया जाता है। अथवा यूँ कहा जा सकता है कि भ्रू-शब्द को ढक्-प्रत्यय-सन्नियोगशिष्ट वुक् आगम होता है। **भ्रुवः** शब्द की आवृत्ति की जाती है और एक को पञ्चम्यन्त और दूसरे को षष्ठ्यन्त माना जाता है। आगमविधि के लिये षष्ठ्यन्त और प्रत्ययविधि के लिये पञ्चम्यन्त मान लेना चाहिये। **वुक्** में ककार

इत्संज्ञक और उकार उच्चारणार्थ है, **व्** मात्र बचता है। इसके कित् होने के कारण **आद्यन्तौ टकितौ** के नियम से भ्रू-शब्द का अन्तावयव होकर बैठता है।

भ्रौवेयः। भ्रू नाम की स्त्री का पुत्र। **भ्रुवः अपत्यं पुमान्** अर्थ में **भ्रू+ङस्** से **भ्रुवो वुक् च** सूत्र से **ढक्** प्रत्यय और प्रकृति को वुक् आगम, अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, ढकार को एय् आदेश होकर **भ्रूव्+एय** बना है। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि करने पर ऊकार को औकार होकर **भ्रौवेय** शब्द बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **भ्रौवेयः** सिद्ध हो जाता है। वुक् आगम का विधान न होता तो **स्त्रीभ्यो ढक्** से ढक् होने पर ऊकार की वृद्धि औकार और आवादेश होकर **भ्रावेयः** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता।

११२९. प्रवाहणस्य ढे ७।३।२८॥

प्रवाहणशब्दस्योत्तरपदस्याचामादेरचो वृद्धिः, पूर्वपदस्य तु वा ढे परे। प्रवाहणस्यापत्यं प्रावाहणेयः, प्रवाहणेयः।

प्रवाहणस्य ढे। प्रवाहणस्य षष्ठ्यन्तं, ढे सप्तम्यन्तम्। **उत्तरपदस्य** और **अङ्गस्य** का अधिकार है। **अर्धात् परिमाणस्य पूर्वस्य तु वा** से **पूर्वस्य तु वा** की, **तद्धितेष्वचामादेः** के सभी पदों की **अचो ञ्णिति** से **अचः** की तथा **मृजेर्वृद्धिः** से **वृद्धिः** की अनुवृत्ति आती है।

प्रवाहण-शब्दावयव उत्तरपदस्थ के अचों में आदि अच् की नित्य से वृद्धि होती है और पूर्वपद के अचों में आदि अच् की विकल्प से वृद्धि होती है।

वृद्धि का प्रकरण होने के कारण अष्टाध्यायी, सप्तमाध्याय के तृतीयपाद के सूत्रों का परिशीलन करना होगा। वहाँ पर आदिवृद्धि, पूर्वपद के अचों में में आदि अच् और उत्तरपद के अचों में आदि अच् की वृद्धि का प्रसंग है। प्रकृतसूत्र प्रवाहण-शब्द के पूर्वपद के आदि अच् की तो विकल्प से और उत्तरपद के अचों में आदि अच् की नित्य से वृद्धि कर रहा है। ढ-प्रत्यय का परे होना अपेक्षित है।

प्रवाहणस्यापत्यं प्रावाहणेयः, प्रवाहणेयः। प्रवाहण का पुत्र। **प्रवाहणस्य अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह और **प्रवाहण+ङस्** अलौकिक विग्रह है। यहाँ पर **प्र+वाहन** इन दो पदों में प्रादिसमास हुआ है और पूर्वपद तथा उत्तरपद की व्यवस्था समास में ही मानी गयी है। तदनुसार पूर्वपद **प्र** और उत्तरपद **वाहन** है। **प्र**-पूर्वक **वह**-धातु से णिच्, ल्युट् प्रत्यय, अनादेश, णिलोप, उपधावृद्धि होने के बाद **णेर्विभाषा** सूत्र से वैकल्पिक णत्व होकर **प्रवाहण** शब्द बना है। **प्रवाहण+ङस्** में **शुभ्रादिभ्यश्च** सूत्र के द्वारा **ढक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, ढकार को एय् आदेश होकर **प्र+वाहण्+एय** बना है। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि प्राप्त होने पर **प्रवाहणस्य ढे** सूत्र के द्वारा पूर्वपद **प्र** के अकार की विकल्प

से वृद्धि और उत्तरपद **वाहण** के आकार की पर्जन्यवल्लक्षणप्रवृत्तिन्याय से नित्य से वृद्धि होकर **प्रावाहणेय** और **प्रवाहणेय** ये दो शब्द बने हैं। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **प्रावाहणेयः** और **प्रवाहणेयः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

११३०. तत्प्रत्ययस्य च ७।३।२९॥

ढप्रत्ययान्तस्य प्रवाहणस्योत्तरपदस्यादेरचो वृद्धिः पूर्वपदस्य तु वा।

प्रवाहणेयस्यापत्यं प्रावाहणेयिः, प्रवाहणेयिः।

बाह्यतद्धितनिमित्ता वृद्धिर्ढाश्रयेण विकल्पेन बाधितुं न शक्यत इति सूत्रारम्भः।

तत्प्रत्ययस्य च। सः ढः प्रत्ययो यस्मिन् स तत्प्रत्ययस्तस्य ढ-प्रत्ययस्य। तत्-शब्द से पूर्वसूत्र के ढ-प्रत्यय का परामर्श किया गया है। तत्प्रत्ययस्य षष्ठ्यन्तं, चाव्ययम्। **उत्तरपदस्य** और **अङ्गस्य** का अधिकार है। **अर्धात् परिमाणस्य पूर्वस्य तु वा** से **पूर्वस्य तु वा** की, **तद्धितेष्वचामादेः** के सभी पदों की **अचो ञ्णिति** से **अचः** की, **मृजेर्वृद्धिः** से **वृद्धिः** की और **प्रवाहणस्य ढे** से **प्रवाहणस्य** की अनुवृत्ति आती है।

ढ-प्रत्ययान्त प्रवाहण-शब्दावयव उत्तरपदस्थके अचों में आदि अच् की नित्य से वृद्धि होती है और पूर्वपद के अचों में आदि अच् की विकल्प से वृद्धि होती है।

पूर्वसूत्र का ही विस्तार किया गया है।

प्रवाहणेयस्यापत्यं प्रावाहणेयिः, प्रवाहणेयिः। प्रवाहणेय का पुत्र। **प्रवाहणेयस्य अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह और **प्रवाहणेय+ङस्** अलौकिक विग्रह है। यहाँ पर **ढक्** प्रत्यय होकर **प्रवाहणेय** बन चुका है। अतः उसके अपत्यार्थ में **अत इञ्** सूत्र के द्वारा **इञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **प्रवाहणेय+इ** बना है। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि प्राप्त होने पर **तत्प्रत्ययस्य** सूत्र के द्वारा पूर्वपद **प्र** के अकार की विकल्प से वृद्धि और उत्तरपद **वाहणेय** के आकार की पर्जन्यवल्लक्षणप्रवृत्तिन्याय से नित्य से वृद्धि होकर **प्रावाहणेय+इ** और **प्रवाहणेय+इ** ये दो शब्द बने हैं। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **प्रावाहणेयिः** और **प्रवाहणेयिः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

बाह्यतद्धितनिमित्ता वृद्धिर्ढाश्रयेण विकल्पेन बाधितुं न शक्यत इति सूत्रारम्भः। यहाँ पर **प्रवाहण** शब्द में वृद्धि पूर्वसूत्र से ही सम्भावित थी, पुनः इस सूत्र से विधान इस लिये किया गया है, क्योंकि पूर्व सूत्र तो केवल ढ-प्रत्यय को अभिलक्षित करके ढ-प्रत्ययनिमित्तक आदिवृद्धि का बाधक हो सकता है किन्तु ढप्रत्ययान्त शब्द के बाद पुनः बाह्य इञ्-प्रत्यय को निमित्त मानकर नित्य आदिवृद्धि का बाधक नहीं हो सकता, अतः उसके भी बाधनार्थ प्रकृत सूत्र की सार्थकता है। ये पूर्व के दो सूत्र नित्य से प्राप्त वृद्धि को बाधकर पूर्वपद में विकल्प से और उत्तरपद में नित्य से वृद्धि के लिये उपयोगी हैं।

११३१. कल्याण्यादीनामिनङ् ४।१।१२६॥

एषामिनङादेशः स्यात्, ढक् च। काल्याणिनेयः, बान्धकिनेयः।

कल्याण्यादीनामिनङ्। कल्याणी आदिर्येषां ते कल्याण्यादयस्तेषां कल्याणादीनाम्। **स्त्रीभ्यो ढक्** से **ढक्** की और **तस्यापत्यम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

कल्याणी आदि गण में पठित षष्ठ्यन्त प्रातिपदिकों से ढक् प्रत्यय होता है और तत्सन्नियोगशिष्ट कल्याणी आदि शब्दों को इनङ् आदेश भी होता है, अपत्य अर्थ में।

कल्याण्यादिगण में केवल स्त्रीप्रत्ययान्त शब्द ही पढ़े गये हैं। अतः यहाँ ढक्-प्रत्यय तो **स्त्रीभ्यो ढक्** से ही सिद्ध है, प्रकृतसूत्र से उसका अनुवाद मात्र किया गया है। अतः सूत्र का मुख्य विधेय (अपूर्व विधेय) तो इनङ् आगम ही है। इस तरह कल्याणी आदि शब्दों को ढक्-प्रत्यय-सन्नियोगशिष्ट इनङ् आदेश सिद्ध होता है। **कल्याण्यादीनाम्** शब्द की आवृत्ति की जाती है और एक को पञ्चम्यन्त **कल्याणादिभ्यः** और दूसरे को षष्ठ्यन्त माना जाता है। आदेशविधि के लिये षष्ठ्यन्त और प्रत्ययविधि के लिये पञ्चम्यन्त मान लेना चाहिये। **इनङ्** में ङकार इत्संज्ञक और अकार उच्चारणार्थ है, **इन्** मात्र बचता है। इसके ङित् होने के कारण **ङिच्च** परिभाषासूत्र की उपस्थिति से कल्याणी-आदि शब्दों के अन्त्य अल् के स्थान पर यह आदेश हो जाता है।

काल्याणिनेयः। कल्याणी नाम की स्त्री का पुत्र। **कल्याण्याः अपत्यं पुमान्** अर्थ में **कल्याणी+ङस्** से **कल्याण्यादीनामिनङ् च** सूत्र से **ढक्** प्रत्यय और प्रकृति के अन्त्य वर्ण इकार के स्थान पर **इनङ् (इन्)** आदेश, अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, ढकार को एय् आदेश होकर **कल्याण्+इन्++एय** बना है। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि होकर **काल्याणिनेय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **काल्याणिनेयः** सिद्ध हो जाता है।

बान्धकिनेयः। बन्धकी नाम की स्त्री का पुत्र। **बन्धक्याः अपत्यं पुमान्** अर्थ में **बन्धकी+ङस्** इस स्थिति में बन्धकी-शब्द के कल्याणादिगण में पाठ होने के कारण **कल्याण्यादीनामिनङ् च** सूत्र से **ढक्** प्रत्यय और प्रकृति के अन्त्य वर्ण इकार के स्थान पर **इनङ् (इन्)** आदेश, अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, ढकार को एय् आदेश होकर **बन्धक्+इन्++एय** बना है। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि होकर **बान्धकिनेय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **बान्धकिनेयः** सिद्ध हो जाता है।

कल्याण्यादिगणः- कल्याणी सुभगा दुर्भगा बन्धकी अनुदृष्टि अनुसृति (अनुसृष्टि) जरती बलीवर्दी ज्येष्ठा कनिष्ठा मध्यमा परस्त्री।

११३२. कुलटाया वा ४।१।१२७॥

इनङ्मात्रं विकल्प्यते। ढक्तु नित्यः पूर्वेणैव। कौलटिनेयः, कौलटेयः। सती भिक्षुक्यत्र कुलटा। या तु व्यभिचारार्थं कुलान्यटति तस्याः 'क्षुद्राभ्यो वा' (सू.११३७) इति पक्षे ढ्रक्। कौलटेरः।

कुलटाया वा। कुलटायाः षष्ठ्यन्तं, वा अव्ययम्। **कल्याण्यादीनामिनङ्** से **इनङ्** की अनुवृत्ति आती है। वैसे **स्त्रीभ्यो ढक्** से **ढक्** की और **तस्यापत्यम्** के दोनों पदों की भी अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

षष्ठ्यन्त कुलटा से ढक् प्रत्यय होता है और तत्सन्नियोगशिष्ट इनङ् आदेश भी विकल्प से होता है, अपत्य अर्थ में।

इनङ्मात्रं विकल्प्यते। ढक्तु नित्यः पूर्वेणैव। वास्तव में यह सूत्र वैकल्पिक इनङ् आदेश मात्र के लिये है, ढक् प्रत्यय तो पूर्वसूत्र से ही सिद्ध है। अनुवृत्तियों का प्रवाह रहने के कारण अर्थ तो पूरा बना लेना चाहिये।

कौलटिनेयः, कौलटेयः। कुलटा का पुत्र। **कुलटायाः अपत्यं पुमान्** अर्थ में **कुलटा+ङस्** से **कल्याण्यादीनामिनङ् च** सूत्र से **ढक्** प्रत्यय और **कुलटाया वा** सूत्र से प्रकृति के अन्त्य वर्ण आकार के स्थान पर विकल्प से **इनङ्** (**इन्**) आदेश, अनुबन्ध लोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, ढकार को एय् आदेश होकर **कुलट्+इन्++एय** बना है। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि होकर **कौलटिनेय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कौलटिनेयः** सिद्ध हो जाता है। इनङ् आदेश न होने के पक्ष में केवल ढक् प्रत्यय मात्र हुआ है। तदनन्तर एय् आदेश, आदिवृद्धि, आकारलोप, स्वादिकार्य से **कौलटेयः** बन जाता है। इस तरह दो रूप बनते हैं।

सती भिक्षुक्यत्र कुलटा। या तु व्यभिचारार्थं कुलान्यटति तस्याः 'वृद्धाभ्यो वा' इति पक्षे ढ्रक्। कौलटेरः। अर्थात् **कुलटा**-शब्द के दो अर्थ होते हैं- १. सती सदाचारिणी भिक्षुकी और २. व्यभिचारिणी स्त्री। जो सदाचारिणी स्त्री भिक्षा के लिये दूसरे घरों में जाती है (**कुलानि अटति**), तादृश कुलटा-शब्द से ढक् और इनङ् किये जाते हैं किन्तु जो स्त्री दुराचरणवश व्यभिचार के लिये **कुलानि अटति** (दूसरों के घरों में जाती है, उससे तो वक्ष्यमाण **क्षुद्राभ्यो वा** सूत्र से विकल्प से **ढ्रक्** प्रत्यय होने पर अनुबन्ध लोप, ढकार के स्थान पर एय् आदेश होकर **कुलटा+एय्+र** बन जाता है। आदिवृद्धि, आकार का लोप, यकार का **लोपो व्योर्वलि** से लोप होकर **कौलटेर** शब्द बन जाता है। स्वादिकार्य से **कौलटेरः** सिद्ध हो जाता है।

ढक्-प्रत्यय का प्रकरण पूरा हो जाता है। अब पुनः प्रसंगवश वृद्धिविधायक सूत्र प्रस्तुत किया जा रहा है-

११३३. हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च ७।३।१९॥

हृदाद्यन्ते पूर्वोत्तरपदयोरचामादेरचो वृद्धिर्ञिति णिति किति च।

सुहृदोऽपत्यं सौहार्दः। सुभगाया अपत्यं सौभागिनेयः।

सक्तुप्रधानाः सिन्धवः सक्तुसिन्धवः, तेषु भवः साक्तुसैन्धवः।

हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च। हृत् च भगश्च सिन्धुश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो हृद्भगसिन्धवस्ते अन्ते यस्य स हृद्भगविन्धन्तस्तस्मिन् हृद्भगसिन्ध्वन्ते सप्तम्यन्तं, पूर्वपदस्य षष्ठ्यन्तं, चाव्ययम्। **उत्तरपदस्य** और **अङ्गस्य** का अधिकार है। **तद्धितेष्वचामादेः** के सभी पदों की, **किति च** से **किति** की, **अचो ञ्णिति** से दोनों पदों की और **मृजेर्वृद्धिः** से **वृद्धिः** की अनुवृत्ति आती है।

तद्धितीय ञित्, णित्, कित् प्रत्ययों के परे रहते हृत्, भग, सिन्धु शब्दान्त (समासयुक्त) शब्दों के पूर्वपदस्थ एवम् उत्तरपदस्थ अचों में से आदि अच् की वृद्धि होती है।

उभयपदवृद्धि के लिये प्रकृत सूत्र की सार्थकता है। दोनों पदों में अलग-अलग जितने अच् हैं, उनमें से जो आदिभूत अच्, उन्हीं की वृद्धि होगी।

सुहृदोऽपत्यं सौहार्दः। मित्र का पुत्र। **सुहृदः अपत्यं पुमान्** अर्थ में **सुहृद्+ङस्** में **तस्यापत्यम्** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **सुहृद्+अ** बना है। यहाँ पर पूर्वपद **सु** और उत्तरपद **हृद्** है। समास हो चुका है और **हृद्** शब्द अन्त में है। अतः **हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च** सूत्र से उभयपदवृद्धि होने पर **सु** को **सौ** और **हृद्** के ऋकार को रपर-सहित **आर्** होकर **सौहार्द** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सौहार्दः** सिद्ध हो जाता है।

सुभगाया अपत्यं सौभागिनेयः। सुभगा नाम की स्त्री का पुत्र। **सुभगायाः अपत्यं पुमान्** अर्थ में **सुभगा+ङस्** में **कल्याण्यादीनामिनङ् च** सूत्र से ढक् प्रत्यय और प्रकृति के स्थान पर इनङ् अन्तादेश होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, ढकार के स्थान पर एयादेश होकर **सुभग्+इन्+एय** बना है। यहाँ पर पूर्वपद **सु** और उत्तरपद **भगिन्** है। समास हो चुका है और **भग** शब्द अन्त में है। अतः **हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च** सूत्र से उभयपदवृद्धि होने पर **सु** को **सौ** और **भगिन्** के आदि अच् अकार को आकार होकर **सौभागिनेय** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सौभागिनेयः** सिद्ध हो जाता है।

सक्तुप्रधानाः सिन्धवः सक्तुसिन्धवः, तेषु भवः साक्तुसैन्धवः। सत्तू को प्रधानता देने वाला सिन्धुदेश **सक्तुसिन्धु** कहलाता है और उक्त देश में होने वाले घोड़े आदि को **साक्तुसिन्धवः** कहा जाता है। पहले समासादि करके **सक्तुसिन्धु** बना लेने के बाद **सक्तुसिन्धौ भवः** अर्थ में **सक्तुसिन्धु+ङि** में **तत्र भवः** सूत्र से अण् प्रत्यय होने

पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **सक्तुसिन्धु+अ** बना है। यहाँ पर पूर्वपद **सक्तु** और उत्तरपद **सिन्धु** है। **सिन्धु** शब्द अन्त में है। अतः **हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च** सूत्र से उभयपदवृद्धि होने पर **स** को **सा** और **सि** को **सौ** होकर **साक्तुसैन्धु+अ** बन जाता है। **ओर्गुणः** सूत्र से अन्य उकार को गुण ओकार और उसको अवादेश होकर **साक्तसैन्धव** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **साक्तुसिन्धवः** सिद्ध हो जाता है।

११३४. चटकाया ऐरक् ४।१।१२८॥

'चटकादिति वाच्यम्' (वा.२६२४)।

लिङ्गविशिष्टपरिभाषया स्त्रिया अपि। चटकस्य चटकाया वा अपत्यं चाटकैरः। 'स्त्रियामपत्ये लुग्वक्तव्यः'(वा.२६२५)। तयोरेव स्त्र्यपत्यं चटका। अजादित्वाट्टाप्।

चटकाया ऐरक्। चटकायाः पञ्चम्यन्तम्, ऐरक् प्रथमान्तम्। **तस्यापत्यम्** के दोनों पदों की भी अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

षष्ठ्यन्त समर्थ चटका-प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में तद्धितीय ऐरक् प्रत्यय होता है।

ऐरक् में ककार वृद्ध्यर्थ इत्संज्ञक है, **ऐर** मात्र बचता है।

चटकादिति वाच्यम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- सूत्र के **चटकायाः** पद के स्थान पर **चटकात्** कहना चाहिये। तात्पर्य यह है कि सूत्र से स्त्रीलिङ्गविशिष्ट **चटका** शब्द से प्रत्यय का विधान होने से पुंल्लिंगविशिष्ट **चटक** शब्द से प्रत्यय प्राप्त नहीं हो रहा था। अतः वार्तिककार ने निर्देश दिया कि **चटकायाः** के स्थान पर **चटकात्** होना चाहिये।

अब प्रश्न होता है कि यदि **चटकायाः** के स्थान पर **चटकात्** का पाठ हो तो चटक-शब्द से तो ऐरक् प्रत्यय होगा किन्तु स्त्रीलिंगविशिष्ट चटका-शब्द से उक्त प्रत्यय कैसे प्राप्त होगा? इस प्रश्न का समाधान कर रहे हैं-

लिङ्गविशिष्टपरिभाषया स्त्रिया अपि। अर्थात् लिङ्गविशिष्ट परिभाषा **प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम्** के बल पर चटक-रूप प्रातिपदिक के ग्रहण में चटका-शब्द का भी ग्रहण हो जाता है।

चटकस्य चटकाया वा अपत्यं चाटकैरः। चटक (नर चिड़िया) का पुत्र और चटका (मादा चिड़िया) का पुत्र। **चटकस्य अपत्यं पुमान्** अर्थ में **चटक+ङस्** में **चटकादिति वाच्यम्** की सहायता से **चटकाया ऐरक्** सूत्र से **ऐरक्** प्रत्यय होने पर तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् **चटक्+ऐर** बना है। **किति च** सूत्र

से आदिवृद्धि और **यस्येति च** सूत्र से आकारलोप होकर **चाटकैर** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **चाटकैरः** सिद्ध हो जाता है। स्त्रीलिंगविशिष्ट **चटका** शब्द से भी यही रूप बनता है। विग्रह तो **चटकायाः अपत्यं पुमान्** किया जाता है।

स्त्रियामपत्ये लुग्वक्तव्यः। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- यदि चटक और चटका की सन्तान स्त्री (मादा) हो तो अपत्यार्थ ऐरक्-प्रत्यय का लुक् होता है।

तयोरेव स्त्र्यपत्यं चटका। अजादित्वाट्टाप्। चटक (नर चिड़िया) की स्त्री (मादा) सन्तान। **चटकस्य अपत्यं स्त्री** अर्थ में चटक+ङस् में **चटकादिति वाच्यम्** की सहायता से **चटकाया ऐरक्** सूत्र से **ऐरक्** प्रत्यय होने पर तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् **चटक+ऐर** बना है। **स्त्रियामपत्ये लुग्वक्तव्यः** वार्तिक से उक्त प्रत्यय के लुक् होने पर **चटक** शब्द ही बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होता है किन्तु स्त्रीत्वविवक्षा में **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** सूत्र से प्राप्त ङीष् को चटक-शब्द के अजादि में पाठ होने के कारण बाधकर **अजाद्यतष्टाप्** सूत्र से टाप् प्रत्यय होने पर **चटका** सिद्ध हो जाता है।

स्त्रीलिंगवाची **चटका** शब्द से ऐरक् प्रत्यय का विधान ढक् प्रत्यय का अपवाद है किन्तु पुंल्लिंगवाची **चटक** शब्द से तो अपूर्वविधान है।

११३५. गोधाया ढ्रक् ४।१।१२९॥
गौधेरः। शुभ्रादित्वात् पक्षे ढक्। गौधेयः।

गोधाया ढ्रक्। गोधायाः पञ्चम्यन्तं, ढ्रक् प्रथमान्तम्। **तस्यापत्यम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

षष्ठ्यन्त समर्थ गोधा-प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में तद्धितीय ढ्रक् प्रत्यय होता है।

ढ्रक् में ककार इत्संज्ञक है। ढकार की भी **चुटू** से इत्संज्ञा प्राप्त होती है किन्तु **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **एय्** आदेश हो जाता है। **एय्+र** बनने पर यकार का **लोपो व्योर्वलि** सूत्र से लोप होकर **एर** प्रत्यय सिद्ध हो जाता है।

गौधेरः। शुभ्रादित्वात् पक्षे ढक्। गौधेयः। गोह का बच्चा। **गोधायाः अपत्यं पुमान्** अर्थ में **गोधा+ङस्** में **स्त्रीभ्यो ढक्** सूत्र से प्राप्त ढक् प्रत्यय को बाधकर **गोधाया ढ्रक्** सूत्र से **ढ्रक्** प्रत्यय होने पर तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, ढकार को एयादेश, यकार का लोप होकर **गोधा+एर** बना है। **किति च** सूत्र से आदिवृद्धि और **यस्येति च** सूत्र से भसंज्ञक आकार का लोप होकर **गौधेर** शब्द बनता है। **गोधा** शब्द का पाठ शुभ्रादिगण में होने के कारण **शुभ्रादिभ्यश्च** सूत्र के द्वारा पक्ष में **ढक्**

प्रत्यय भी होता है, अतः **गौधेय** भी बनता है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **गौधेरः** और **गौधेयः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं। ध्यान रहे कि यकार का वल् प्रत्याहार वाले वर्ण के परे रहते ही **लोपो व्योर्वलि** से लोप होता है।

११३६. आरगुदीचाम् ४।१।१३०॥

गौधारः। रका सिद्धे आकारोच्चारणमन्यतो विधानार्थम्। जडस्यापत्यं जाडारः। पण्डस्यापत्यं पाण्डारः।

आरगुदीचाम्। आरक् प्रथमान्तम्, उदीचां षष्ठ्यन्तम्। **गोधाया ढ्रक्** सूत्र से **गोधायाः** की और **तस्यापत्यम्** के दोनों पदों की भी अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

षष्ठ्यन्त समर्थ गोधा-प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में तद्धितीय आरक् प्रत्यय होता है उदीच्य आचार्यों के मत में।

आरक् में ककार इत्संज्ञक है, **आर** बचता है।

गौधारः। गोह का बच्चा। **गोधायाः अपत्यं पुमान्** अर्थ में **गोधा+ङस्** में **स्त्रीभ्यो ढक्** सूत्र से प्राप्त ढक् प्रत्यय को बाधकर **आरगुदीचाम्** सूत्र से **आरक्** प्रत्यय होने पर तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **गोधा+आर** बना है। **किति च** सूत्र से आदिवृद्धि और **यस्येति च** सूत्र से भसंज्ञक आकार का लोप होकर **गौधार** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **गौधारः** सिद्ध हो जाता है। यह उदीच्य आचार्यों के मत में है। पाणिनि जी के मत में पूर्वसूत्र में ही **गौधेरः, गौधेयः** ये दो रूप बनाये जा चुके हैं।

रका सिद्धे आकारोच्चारणमन्यतो विधानार्थम्। अर्थात् प्रकृतसूत्र से विहित **आरक्** प्रत्यय की जगह केवल **रक्** प्रत्यय किया जाता तो दो मात्राओं का लाघव हो जाता, क्योंकि रक्-प्रत्यय के परे रहते **यचि भम्** से भसंज्ञा सम्भव न होने के कारण **यस्येति च** सूत्र से **गोधा** शब्द के आकार का लोप भी प्राप्त नहीं है। फलतः **गौधारः** की सिद्धि हो जाती। इस तरह से लाघव होते हुये भी आकार सहित **आरक्** का पाणिनि जी द्वारा उच्चारण करना कुछ विशेष व्यवस्था की ओर संकेत करता है। वह यह कि यद्यपि सूत्र में केवल **गोधा** शब्द से **आरक्** प्रत्यय किया गया है तथापि अन्य शब्दों से भी यह प्रत्यय हो सकता है। अन्य शब्द यदि आकारान्त न हों तो केवल **रक्** प्रत्यय से कार्य नहीं चलता। उदाहरण आगे दिये जा रहे हैं।

जडस्यापत्यं जाडारः। जड़ (मूर्ख) का पुत्र। **जडस्य अपत्यं पुमान्** अर्थ में **जड+ङस्** में **आरगुदीचाम्** सूत्र में आकारोच्चारण के ज्ञापन से **आरक्** प्रत्यय होने पर तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **जड+आर** बना है। **किति च** सूत्र से आदिवृद्धि और **यस्येति च** सूत्र से भसंज्ञक आकार का लोप होकर **जाडार** शब्द बनता

है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **जाडारः** सिद्ध हो जाता है।

पण्डस्यापत्यं पाण्डारः। हिजड़े की सन्तान। **पण्डस्य अपत्यं पुमान्** अर्थ में **पण्ड+ङस्** में **आरगुदीचाम्** सूत्र में आकारोच्चारण के ज्ञापन से **आरक्** प्रत्यय होने पर तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **पण्ड+आर** बना है। **किति च** सूत्र से आदिवृद्धि और **यस्येति च** सूत्र से भसंज्ञक आकार का लोप होकर **पाण्डार** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पाण्डारः** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **षण्डस्यापत्यं षाण्डारः** भी बन सकता है। कुछ पुस्तकों में **पण्डस्यापत्यं पाण्डारः** के स्थान पर **षण्डस्यापत्यं षाण्डारः** लिखा है।

११३७. क्षुद्राभ्यो वा ४।१।१३१॥

अङ्गहीनाः शीलहीनाश्च क्षुद्राः, ताभ्यो वा ढ्रक्।
पक्षे ढक्। काणेरः, काणेयः। दासेरः, दासेयः।

क्षुद्राभ्यो वा। क्षुद्राभ्यः पञ्चम्यन्तं, वाव्ययम्। **गोधाया ढ्रक्** से **ढ्रक्** की और **तस्यापत्यम्** के दोनों पदों की भी अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

षष्ठ्यन्त समर्थ क्षुद्रावाची प्रातिपदिकों से अपत्य अर्थ में तद्धितीय ढ्रक् प्रत्यय विकल्प से होता है।

अङ्गहीनाः शीलहीनाश्च क्षुद्राः, ताभ्यो वा ढ्रक्। पक्षे ढक्। क्षुद्रा उसे कहते हैं जो अंगहीन और शीलहीन (धर्महीन) हों, तद्वाचक शब्दों से विकल्प से ढ्रक् किया गया है और पक्ष में **स्त्रीभ्यो ढक्** सूत्र से ढक् प्रत्यय होता है।

काणेरः, काणेयः। कानी स्त्री की सन्तान। **काणायाः अपत्यं पुमान्** अर्थ में **काणा+ङस्** में **क्षुद्राभ्यो वा** सूत्र से **ढ्रक्** प्रत्यय होने पर तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, ढकार के स्थान पर एयादेश, रेफ के परे रहते यकार का **लोपो व्योर्वलि** सूत्र से लोप होकर **काणा+एर** बना है। पर्जन्यवल्लक्षणन्याय से **किति च** सूत्र के द्वारा आदिवृद्धि और **यस्येति च** सूत्र से भसंज्ञक आकार का लोप होकर **काणेर** शब्द बनता है। ढक् होने के पक्ष में तो **काणेय** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **काणेरः** और **काणेयः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं। यह अंगहीन क्षुद्रा का उदाहरण है।

दासेरः, दासेयः। दासी की सन्तान। **दास्याः अपत्यं पुमान्** अर्थ में **दासी+ङस्** में **क्षुद्राभ्यो वा** सूत्र से **ढ्रक्** प्रत्यय होने पर तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, ढकार के स्थान पर एयादेश, रेफ के परे रहते यकार का **लोपो व्योर्वलि** सूत्र से लोप होकर **दासी+एर** बना है। पर्जन्यवल्लक्षणन्याय से **किति च** सूत्र के द्वारा आदिवृद्धि और **यस्येति च** सूत्र से भसंज्ञक ईकार का लोप होकर **दासेर** शब्द बनता है। ढक् होने

के पक्ष में तो **दासेय** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **दासेरः** और **दासेयः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं। यह शीलहीन (धर्महीन) क्षुद्रा का उदाहरण है। असद् आचरण होने के कारण दासी को भी क्षुद्रा कहा गया है।

११३८. पितृष्वसुश्छण् ४।१।१३२॥
अणोपवादः। पैतृष्वस्रीयः।

पितृष्वसुश्छण्। पितृष्वसुः पञ्चम्यन्तं, छण् प्रथमान्तम्। **तस्यापत्यम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

षष्ठ्यन्त समर्थ पितृष्वसृ-प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में तद्धितीय छण् प्रत्यय होता है।

अणोपवादः। इस सूत्र से विहित प्रत्यय **तस्यापत्यम्** सूत्र से प्राप्त अण् प्रत्यय का अपवाद है। **छण्** में णकार की इत्संज्ञा होती है। **छ** मात्र बचता है। णित्करण वृद्धि के लिये है। शिष्ट छकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र के द्वारा **ईय्** आदेश होता है।

पैतृष्वस्रीयः। बुआ का पुत्र। **पितुष्वसुः अपत्यं पुमान्** अर्थ में **पितृष्वसृ+ङस्** में **पितृष्वसुश्छण्** सूत्र से **छण्** प्रत्यय होने पर तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, छकार के स्थान पर ईयादेश होकर **पितृष्वसृ+ईय** बना है। **तद्धितेष्वचामादेः** सूत्र के द्वारा आदिवृद्धि होने पर ऐकार हो जाता है और ऋकार को **इको यणचि** से यण् र् होकर **पैतृष्वस्रीय** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पैतृष्वस्रीयः** सिद्ध हो जाता है।

११३९. ढकि लोपः ४।१।१३३॥
पितृष्वसुरन्त्यस्य लोपः स्याद्ढकि।
अत एव ज्ञापकाद्ढक्। पैतृष्वसेयः।

ढकि लोपः। ढकि सप्तम्यन्तं, लोपः प्रथमान्तम्। **पितृष्वसुश्छण्** सूत्र से **पितृष्वसुः** की अनुवृत्ति आती है और उसका षष्ठ्यन्त में विपरिणाम किया जाता है। **तस्यापत्यम्** के दोनों पदों की भी अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

षष्ठ्यन्त समर्थ पितृष्वसृ-प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में विहित ढक्-प्रत्यय के परे रहते पितृष्वसृ-शब्द के अन्त्य का लोप होता है।

अलोऽन्त्यस्य सूत्र की उपस्थिति से **पितृष्वसृ** के अन्त्य वर्ण ऋकार का लोप हो जाता है।

यहाँ पर प्रश्न आता है कि **पितृष्वसृ**-शब्द भले ही स्त्री का वाचक हो किन्तु उसमें स्त्रीबोधक प्रत्यय हुआ नहीं है और **स्त्रीभ्यो ढक्** सूत्र स्त्रीप्रत्ययान्त शब्दों से ढक् प्रत्यय करता है। ऐसी स्थिति में **पितृष्वसृ**-शब्द में किससे ढक् प्रत्यय होता है, जिसके परे रहते अन्त्यवर्ण का लोप किया जा रहा है? इसका समाधान दे रहे हैं-

अत एव ज्ञापकाड्ढक्। पैतृष्वसेयः। अर्थात् पाणिनि जी ने ढक् के परे रहते लोप का विधान किया है। यदि ढक् प्रत्यय ही न होता तो लोपविधान व्यर्थ हो जाता। लोपविधान सामर्थ्य से बिना सूत्र के ही ढक् प्रत्यय मान लिया जाता है, तभी लोपविधान सार्थक हो जाता है। **पितुष्वसुः अपत्यं पुमान्** अर्थ में **पितृष्वसृ+ङस्** में ज्ञापकात् ढक् प्रत्यय, एयादेश होकर **पितृष्वसृ+एय** बना है। **तद्धितेष्वचामादेः** सूत्र के द्वारा आदिवृद्धि होने पर ऐकार हो जाता है और **ढकि लोपः** सूत्र से प्रकृति के अन्त्य वर्ण ऋकार का लोप होकर **पैतृष्वसेय** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पैतृष्वसेयः** सिद्ध हो जाता है।

११४०. मातृष्वसुश्च ४।१।१३४॥
पितृष्वसुर्यदुक्तं तदस्यापि स्यात्।
मातृष्वस्रीयः, मातृष्वसेयः।

मातृष्वसुश्च। मातृष्वसुः पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **पितृष्वसुश्छण्** से **छण्** की, **ढकि लोपः** के दोनों पदों की और **तस्यापत्यम्** के दोनों पदों की भी अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

षष्ठ्यन्त समर्थ मातृष्वसृ-प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में छण् और ठक् प्रत्यय परे रहते अन्त्यलोप आदि कार्य होते हैं जो कि पितृष्वसृ-शब्द से भी हुए हैं।

पितृष्वसुर्यदुक्तं तदस्यापि स्यात्। अर्थात् पितृष्वसृ-शब्द से छण् और ढक् परे रहते अन्त्य वर्ण का लोप किया गया था, उन दोनों कार्यों का इस सूत्र में पठित **च** शब्द से परामर्श किया गया है।

मातृष्वस्रीयः,-मातृष्वसेयः। मौसी का पुत्र। **मातृष्वसुः अपत्यं पुमान्** अर्थ में **मातृष्वसृ+ङस्** में **मातृष्वसुश्च** सूत्र से **छण्** प्रत्यय होने पर तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, छकार के स्थान पर ईयादेश होकर **मातृष्वसृ+ईय** बना है। **तद्धितेष्वचामादेः** सूत्र के द्वारा पर्जन्यवल्लक्षणन्यायेन आदिवृद्धि होने पर ऋकार को **इको यणचि** से यण् र् होकर **मातृष्वस्रीय** शब्द बनता है। ज्ञापकात् ढक् प्रत्यय, एयादेश होने पर **ढकि लोपः** सूत्र से प्रकृति के अन्त्य वर्ण ऋकार का लोप होकर **मातृष्वसेय** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **मातृष्वस्रीयः** और **मातृष्वसेयः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

११४१. चतुष्पाद्भ्यो ढञ् ४।१।१३५॥

चतुष्पाद्भ्यो ढञ्। चतुष्पाद्-शब्दस्य पञ्चमीबहुवचनान्तं रूपं चतुष्पाद्भ्यः। ढञ् प्रथमान्तम्। **तस्यापत्यम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

षष्ठ्यन्त समर्थ चौपाया पशुवाची प्रातिपदिकों से अपत्य अर्थ में तद्धितीय ढञ् प्रत्यय होता है।

जिनके चार पैर होते हैं, उन्हें चतुष्पात् कहा जाता है। प्रायः पशु ही चतुष्पाद हुआ करते हैं। **ढञ्** में ञकार की इत्संज्ञा होती है और ढकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र से एय् आदेश होता है। इस तरह **ढञ्** प्रत्यय होने पर **एय** प्रत्यय निष्पन्न हो जाता है। ञित्करण आदिवृद्ध्यर्थ और स्वरार्थ है। इस सूत्र का उदाहरण अगले सूत्र में दिया गया है।

११४२. ढे लोपोऽकद्र्वाः ६।४।१४७॥

कद्रूभिन्नस्योवर्णान्तस्य भस्य लोपः स्याद् ढे परे।
कामण्डलेयः। कमण्डलुशब्दश्चतुष्पाञ्जातिविशेषे।

ढे लोपोऽकद्र्वाः। न कद्रूः अकद्रूः, तस्या अकद्र्वाः। ढे सप्तम्यन्तं, लोपः प्रथमान्तम्, अकद्र्वाः षष्ठ्यन्तम्। **भस्य** और **अङ्गस्य** का अधिकार है। **ओर्गुणः** से **ओः** की तथा **नस्तद्धिते** से **तद्धिते** की अनुवृत्ति आ रही है।

कद्रू-शब्द से भिन्न अन्य सभी उवर्णान्त भसंज्ञक अंगों का लोप होता है, तद्धितीय ढ-प्रत्यय के परे रहते।

अलोऽन्त्यस्य परिभाषा सूत्र की उपस्थिति से अन्त्यवर्ण उकार का लोप हो जाता है। यह **ओर्गुणः** से प्राप्त गुण का अपवाद है।

कामण्डलेयः। कमण्डलु-शब्दश्चतुष्पाञ्जातिविशेषे। चौपाया पशुविशेष का बच्चा। यद्यपि **कमण्डलु** शब्द जलपात्र के अर्थ में प्रसिद्ध है तथापि ऋक्-शाखा के ब्राह्मणग्रन्थों में चौपाया पशु अर्थ में भी इसका व्यवहार हुआ है। तादृशपशुवाची **कमण्डलु** शब्द से ढञ्-प्रत्यय प्रत्यय किया जाता है, जलपात्रवाचक से नहीं किया जाता। **कमण्डलोः अपत्यं पुमान्** अर्थ में **कमण्डलु+ङस्** में **चतुष्पाद्भ्यो ढञ्** सूत्र से **ढञ्** प्रत्यय होने पर तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, ढकार के स्थान पर एयादेश होकर **कमण्डलु+एय** बना है। **तद्धितेष्वचामादेः** सूत्र के द्वारा आदिवृद्धि होने पर प्रकृति के उकार का **ढे लोपोऽकद्र्वाः** सूत्र से लोप होकर **कामण्डलेय** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कामण्डलेयः** सिद्ध हो जाता है।

११४३. गृष्ट्यादिभ्यश्च ४।१।१३६॥

एभ्यो ढञ् स्यात्। अण्ढकोरपवादः।
गार्ष्टेयः। मित्रयोरपत्यम्, ऋष्यणि प्राप्ते ढञ्।

गृष्ट्यादिभ्यश्च। गृष्टिः आदिर्येषां ते गृष्ट्यादयस्तेभ्यो गृष्ट्यादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **चतुष्पाद्भ्यो ढञ्** से **ढञ्** की और **तस्यापत्यम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

षष्ठ्यन्त समर्थ गृष्टि आदि गणपठित प्रातिपदिकों से अपत्य अर्थ में तद्धितीय ढञ् प्रत्यय होता है।

अण्ढकोरपवादः। यह प्रत्यय **तस्यापत्यम्, ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च** आदि से प्राप्त अण् और **इतश्चानिञः** सूत्र से प्राप्त ढक् प्रत्यय का अपवाद है। अगस्ति, मित्रयु आदि शब्दों के ऋषिवाची होने के कारण इन से अण् प्राप्त होता है।

गार्ष्टेयः। पहली बार प्रसव करने वाले पशु को **गृष्टि** कहते हैं और गृष्टि का बच्चा **गार्ष्टेयः** कहलाता है। **गृष्टेः अपत्यं पुमान्** अर्थ में **गृष्टि+ङस्** में **गृष्ट्यादिभ्यश्च** सूत्र से **ढञ्** प्रत्यय होने पर तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, ढकार के स्थान पर एयादेश होकर **गृष्टि+एय** बना है। **तद्धितेष्वचामादेः** सूत्र के द्वारा आदिवृद्धि, रपर होने पर भसंज्ञक इकार का लोप होकर **गार्ष्टेय** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **गार्ष्टेयः** सिद्ध हो जाता है।

मित्रयोरपत्यम्, ऋष्यणि प्राप्ते ढञ्। मित्रयु की सन्तान अर्थ में **मित्रयोः अपत्यम्** अर्थ में **ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च** सूत्र से अण् प्रत्यय प्राप्त होने पर उसे बाधकर **गृष्ट्यादिभ्यश्च** सूत्र से **ढञ्** प्रत्यय किया जाता है। शेष कार्य अगले सूत्रों के बाद सम्पन्न किये जाते हैं।

गृष्ट्यादिगणः- गृष्टि, हृष्टि, बलि, हलि, विश्रि, कुद्रि, अजबस्ति, मित्रयु।

११४४. केकयमित्रयुप्रलयानां यादेरियः ७।३।२॥

एषां यकारादेरियादेशः स्याद् ञिति णिति किति च तद्धिते परे।
इति इयादेशे प्राप्ते-

केकयमित्रयुप्रलयानां यादेरियः। केकयश्च मित्रयुश्च प्रलयश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः केकयमित्रयुप्रलयास्तेषां केकयमित्रयुप्रलयानाम्। **तद्धितेष्वचामादेः, किति, ञ्णिति** की अनुवृत्ति आती है।

तद्धितीय ञित्, णित्, कित् प्रत्ययों के परे रहते केकय, मित्रयु और प्रलय शब्दों के यकारादि भाग के स्थान पर इय् आदेश होता है।

इस तरह क्रमशः **य, यु, य** अंश के स्थान पर **इय्** आदेश प्राप्त होता है।

इति इयादेशे प्राप्ते। अर्थात् **मित्रयु+एय** में प्रकृतसूत्र से इयादेश प्राप्त होने पर उसे बाधकर अगला सूत्र लगता है।

११४५. दाण्डिनायनहास्तिनायनाथर्वणिकजैह्माशिनेयवाशिनायनि-भ्रौणहत्यधैवत्यसारवैक्ष्वाकमैत्रेयहिरण्मयानि ६।४।१७४॥

एतानि निपात्यन्ते। इति युलोपः। मैत्रेयः। मैत्रेयी।

दाण्डिनायनहास्तिनायनाथर्वणिक०। दाण्डिनायनश्च हास्तिनायनश्च आथर्वणिकश्च जैह्माशिनेयश्च वाशिनायनिश्च भ्रौणहत्यश्च धैवत्यश्च सारवश्च ऐक्ष्वाकश्च मैत्रेयश्च हिरण्मयं च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो दाण्डिनायनहास्तिनायनाथर्वणिकजैह्माशिनेय-वाशिनायनिभ्रौणहत्यधैवत्यसारवैक्ष्वाकमैत्रेयहिरण्मयानि।

दाण्डिनायन, हास्तिनायन, आथर्वणिक, जैह्माशिनेय, वाशिनायनि, भ्रौणहत्य, धैवत्य, सारव, ऐक्ष्वाक, मैत्रेय, हिरण्मय इन शब्दों का निपातन किया जाता है।

पूर्वसूत्र के अनुसार मुख्य विषय **मैत्रेयः** की सिद्धि है, किन्तु सूत्र से अन्य शब्दों का भी निपातन किया गया है। इस सूत्र से अनेक कार्यों का निष्पादन होता है। अतः पहले उनकी सिद्धि करते हैं-

दाण्डिनायनः। दण्डी का गोत्रापत्य। **दण्डिन्**-शब्द का नडादिगण में पाठ है। **दण्डिनो गोत्रापत्यम्** विग्रह करके **दण्डिन्+ङस्** से **नडादिभ्यः फक्** सूत्र के द्वारा फक् प्रत्यय, आयन् आदेश, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **दण्डिन्+आयन** बना है। कित् के परे रहते तो आदिवृद्धि होती है किन्तु **नस्तिद्धिते** से टिसंज्ञक-भाग **इन्** का लोप प्राप्त था उसका **दाण्डिनायनहास्तिनायनाथर्वणिकजैह्माशिनेयवाशिनायनि-भ्रौणहत्यधैवत्यसारवैक्ष्वाकमैत्रेयहिरण्मयानि** सूत्र से अभाव अर्थात् टिलोपाभाव निपातन किया जाता है। अतः **दाण्डिनायन** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य करके **दाण्डिनायनः** सिद्ध हो जाता है।

हास्तिनायनः। हस्ती का गोत्रापत्य। **हस्तिन्**-शब्द का भी नडादिगण में पाठ है। **हस्तिनो गोत्रापत्यम्** विग्रह करके **हस्तिन्+ङस्** से **नडादिभ्यः फक्** सूत्र के द्वारा फक् प्रत्यय, आयन् आदेश, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **हस्तिन्+आयन** बना है। कित् के परे रहते तो आदिवृद्धि होती है किन्तु **नस्तिद्धिते** से टिसंज्ञक-भाग **इन्** का लोप प्राप्त था उसका प्रकृतसूत्र से लोपाभाव निपातन किया जाता है। अतः **हास्तिनायन** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य करके **हास्तिनायनः** सिद्ध हो जाता है।

आथर्वणिकः। अथर्व के द्वारा प्रोक्त ग्रन्थ का अध्ययन करने वाला। **अथर्वाणम् अधीते** विग्रह करके **अथर्वन्+अम्** में **वसन्तादिभ्यष्ठक्** (१२७३) सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय, इक् आदेश, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **अथर्वन्+इक** बना है। कित् के परे रहते तो आदिवृद्धि होती है किन्तु **नस्तिद्धिते** से टिसंज्ञक-भाग **इन्** का लोप प्राप्त था उसका प्रकृतसूत्र से निषेधात्मक निपातन किया जाता है। नकार को णत्व होकर **आथर्वणिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य करके **आथर्वणिकः** सिद्ध हो जाता है। अथर्वा ऋषि के द्वारा प्रोक्त को उपचारवश **अथर्वन्** कहा जाता है।

जैह्माशिनेयः। जिह्माशी का पुत्र। **जिह्माशिनोऽपत्यं पुमान्** विग्रह करके **जिह्माशिन्+ङस्** में **शुभ्रादिभ्यश्च** सूत्र के द्वारा ढक् प्रत्यय, एय् आदेश, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **जिह्माशिन्+एय** बना है। कित् के परे रहते आदिवृद्धि होकर ऐकार बनता है किन्तु **नस्तिद्धिते** से टिसंज्ञक-भाग **इन्** का लोप प्राप्त था उसका प्रकृतसूत्र से निषेधात्मक निपातन किया जाता है। इस तरह **जैह्माशनिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य करके **जैह्माशनिकः** सिद्ध हो जाता है।

वाशनायनिः। वाशी की सन्तति। **वाशिनोऽपत्यं पुमान्** विग्रह करके **वाशिन्+ङस्** में **उदीचां वृद्धादगोत्रात्** (११८१) सूत्र के द्वारा फिञ् प्रत्यय, फकार को आयन् आदेश होकर **आयनि**, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **वाशिन्+आयनि** बना है। ञित् के परे रहते आदिवृद्धि होती है किन्तु **नस्तिद्धिते** से टिसंज्ञक-भाग **इन्** का लोप प्राप्त था उसका प्रकृतसूत्र से निषेधात्मक निपातन किया जाता है। इस तरह **वाशिनायनि** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य करके **वाशिनायनिः** सिद्ध हो जाता है।

भ्रौणहत्यः। भ्रूणहत्या का भाव। क्विप्-प्रत्ययान्त **भ्रूणहन्** शब्द है। **भ्रूणघ्नो भावः** विग्रह करके **भ्रूणहन्+ङस्** में ब्राह्मणादि के आकृतिगण होने के कारण **भ्रूणहन्** शब्द को भी ब्राह्मणादि मानकर **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** (१७८८) सूत्र के द्वारा **ष्यञ्** (**य**) प्रत्यय, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **भ्रूणहन्+य** बना है। ञित् के परे रहते आदिवृद्धि होकर औकार बनता है किन्तु **नस्तिद्धिते** से टिसंज्ञक-भाग **अन्** का लोप प्राप्त था उसका प्रकृतसूत्र से निषेधात्मक निपातन किया जाता है साथ ही नकार के स्थान पर निपातन से ही तकारादेश हो जाता है। इस तरह **भ्रौणहत्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य करके **भ्रौणहत्यः** सिद्ध हो जाता है। यहाँ पर यह शंका नहीं करनी चाहिये कि प्रकृतसूत्र से टिलोपाभाव मात्र निपातित हो जाय किन्तु नकार के स्थान पर तकारादेश **हनस्तोऽचिण्णलोः** सूत्र के द्वारा किया जाय, क्योंकि **धातोरुच्यमानं कार्यं तत्प्रत्यये भवति** (धातु से या धातु में

किये जाने वाले कार्य धातु से विहित प्रत्यय के परे रहते ही होते हैं, प्रातिपदिक से विहित प्रत्ययों के परे रहते नहीं होते) इस नियम के अनुसार तद्धित ष्यञ् प्रत्यय के परे रहते उक्त सूत्र से नकारादेश प्राप्त नहीं होता। अतः टिलोपाभाव तथा नत्वादेश दोनों प्रकृतसूत्र से ही निपातित होते हैं।

धैवत्यः। धीवा का भाव। **धीव्नो भावः** विग्रह करके **धीवन्+ङस्** में ब्राह्मणादि आकृतिगण होने के कारण **धीवन्** शब्द को ब्राह्मणादि मानकर **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** (१७८८) सूत्र के द्वारा **ष्यञ्** (**य**) प्रत्यय, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **धीवन्+य** बना है। ञित् के परे रहते आदिवृद्धि होकर ऐकार बनता है किन्तु **नस्तिद्धिते** से टिसंज्ञक-भाग **अन्** का लोप प्राप्त था उसका प्रकृतसूत्र से निषेधात्मक निपातन किया जाता है साथ ही नकार के स्थान पर निपातन से ही तकारादेश हो जाता है। इस तरह **धैवत्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य करके **धैवत्यः** सिद्ध हो जाता है।

सारवम्। सरयू नदी का जल। **सरय्वां भवम्** विग्रह करके **सरयू+ङि** में **तत्र भवः** सूत्र से **अण्** (**अ**) प्रत्यय, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **सरयू+अ** बना है। ञित् के परे रहते आदिवृद्धि होती है। **यू**-शब्द के स्थान पर प्रकृतसूत्र से **व** आदेश का निपातन किया जाता है। वकारोत्तरवर्ती अकार का **यस्येति च** सूत्र से लोप करके **सारव** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य करके **सारवः** सिद्ध हो जाता है।

ऐक्ष्वाकः। इक्ष्वाकु का पुत्र। **इक्ष्वाकोरपत्यम्** विग्रह करके **इक्ष्वाकु+ङस्** में **जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्** (११८६) सूत्र से **अञ्** (**अ**) प्रत्यय, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **इक्ष्वाकु+अ** बना है। ञित् के परे रहते आदिवृद्धि होती है। ककारोत्तरवर्ती उकार को **ओर्गुणः** से गुण प्राप्त था, उसका प्रकृतसूत्र से अभावनिपातनपूर्वक लोपनिपातन किया गया है। इस तरह **ऐक्ष्वाक** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य करके **ऐक्ष्वाकः** सिद्ध हो जाता है। बहुवचन में तद्राजसंज्ञा होने के कारण तद्धितप्रत्यय का लोप होकर **इक्ष्वाकवः** बन जाता है। यह बात आगे भी बतायी जायेगी। **इक्ष्वाकु**-शब्द क्षत्रिय और जनपद इन दो अर्थों का वाचक है। यद्यपि क्षत्रियार्थ में यह निरूपण किया गया है तथापि **इक्ष्वाकु** शब्द के जनपदवाची (इक्ष्वाकुषु जनपदेषु भवः) होने के कारण उससे अण् प्रत्यय होने पर भी बहुवचन **ऐक्ष्वाकः** ही बनेगा। अर्थात् इस अर्थ में बहुवचन की विवक्षा में अण् का लोप नहीं होगा। अतः वहाँ **ऐक्ष्वाकाः, ऐक्ष्वाकान्, ऐक्ष्वाकैः** आदि रूप बनते हैं। यह दोनों में अन्तर है। तदनुसार ही दोनों प्रकार के प्रयोग भी मिलते हैं।

अब जो पूर्वसूत्र **केकयमित्रयुप्रलयानां यादेरियः** सूत्र से **इय्** आदेश प्राप्त होने पर अगला सूत्र लगता है, ऐसा कहा गया था, उसका विषय उपस्थित हो रहा है-

युलोपः। प्रकृतसूत्र से **मित्रयु** शब्द के यु-अंश का लोप किया जाता है।

मैत्रेयः। **मैत्रेयी**। मित्रयु की सन्तति। **मित्रयोः अपत्यम्** अर्थ में **ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च** सूत्र से अण् प्रत्यय प्राप्त होने पर उसे बाधकर **गृष्ट्यादिभ्यश्च** सूत्र से **ढञ्** प्रत्यय किया जाता है। अनुबन्धलोप, ढकार के स्थान पर **एय्** आदेश, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **मित्रयु+एय** बना हुआ है। **केकयमित्रयुप्रलयानां यादेरियः** सूत्र के द्वारा **यु**-शब्द के स्थान पर **इय्** आदेश प्राप्त होने पर **दाण्डिनायनहास्तिनायनाथर्वणिकजैह्याशिनेयवाशिनायनिभ्रौणहत्यधैवत्य-सारवैक्ष्वाकमैत्रेयहिरण्मयानि** सूत्र से **यु** शब्द का लोप निपातन किया जाता है। अतः **मित्र+एय** बना है। आदिवृद्धि और अकारलोप होकर **मैत्रेय** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य करके **मैत्रेयः** सिद्ध हो जाता है। द्विवचन में **मैत्रेयौ** बन जाता है। बहुवचन में तद्धित प्रत्यय का लुक् विधान अगले सूत्र से किया जा रहा है। स्त्रीत्वविवक्षा में **मैत्रेय**-शब्द से **टिड्ढाणञ्द्वयसज्०** सूत्र से ङीप् होकर **मैत्रेयी** बन जाता है।

हिरण्मयः (हिरण्मयम्)। हिरण्य (सुवर्ण) का विकार, आभूषण आदि। **हिरण्यस्य विकारः** अर्थ में **हिरण्य+ङस्** से **मयड् वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः** सूत्र से विकल्प से **मयट् (मय)** प्रत्यय, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **हिरण्य+मय** बना हुआ है। अजादिप्रत्यय के परे न होने के कारण भसंज्ञा की प्राप्ति नहीं थी अतः **यस्येति च** से अकारलोप भी प्राप्त नहीं था सो **दाण्डिनायनहास्तिनायना-थर्वणिकजैह्याशिनेयवाशिनायनिभ्रौणहत्यधैवत्यसारवैक्ष्वाकमैत्रेयहिरण्मयानि** सूत्र से यकारोत्तरवर्ती अकार का लोप निपातन किया जाता है। अतः **हिरण्मय** बना है। आदिवृद्धि प्राप्त नहीं है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य करके **हिरण्मयः** सिद्ध हो जाता है। मयट्-प्रत्यय न होने के पक्ष में तो अण् प्रत्यय होकर **हैरण्यम्** सिद्ध होता है।

११४६. यस्कादिभ्यो गोत्रे २।४।६३॥

एभ्योऽपत्यप्रत्ययस्य लुक् स्यात्तत्कृते बहुत्वे, न तु स्त्रियाम्।

मित्रयवः।

यस्कादिभ्यो गोत्रे। यस्क आदिर्येषां ते यस्कादयस्तेभ्यो यस्कादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, गोत्रे सप्तम्यन्तम्। **ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः** सूत्र से **लुक्** की और **तद्राजस्य बहुषे तेनैवास्त्रियाम्** से **बहुषु तेन एव अस्त्रियाम्** की अनुवृत्ति आती है।

यस्क आदि गणपठित शब्दों से गोत्रापत्य अर्थ में विहित प्रत्यय का लुक् होता है, यदि प्रत्ययकृत बहुत्व का बोध हो रहा हो तो, स्त्रीलिंग को छोड़कर।

पूर्वसूत्र से **मित्रयु** शब्द से **मैत्रेय** शब्द का निपातन होने के बाद बहुवचन की विवक्षा में प्रसंगप्राप्त प्रत्यय के लोप का निर्देश किया गया है। यह द्वितीयाध्याय का सूत्र है, तद्धिताधिकार का नहीं है।

मित्रयवः। मित्रयु की बहुत सी सन्तानें। **मित्रयोः अपत्यानि पुमांसः** अर्थ में **ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च** सूत्र से अण् प्रत्यय प्राप्त होने पर उसे बाधकर **गृष्ट्यादिभ्यश्च** सूत्र से **ढञ्** प्रत्यय किया जाता है। तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **मित्रयु+एय** बना हुआ है। उक्त तद्धित प्रत्यय का **यस्कादिभ्यो गोत्रे** सूत्र से लुक् होने के कारण **मित्रयु** मात्र बना है। ऐसी स्थिति में **केकयमित्रयुप्रलयानां यादेरियः** सूत्र की प्राप्ति ही नहीं है और **दाण्डिनायनहास्तिनायनाथर्वणिकजैह्माशिनेयवाशिनायनि-भ्रौणहत्यधैवत्यसारवैक्ष्वाकमैत्रेयहिरण्मयानि** सूत्र की भी आवश्यकता नहीं है। अतः **मित्रयु** बना हुआ है। तद्धितप्रत्यय के अभाव में आदिवृद्धि भी नहीं होगी और उकार को **ओर्गुणः** से गुण भी नहीं होगा। तद्धितान्त मानकर प्रातिपदिकत्व तो अक्षुण्ण ही रहता है। अतः एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य करने पर बहुवचन में **भानवः** की तरह **मित्रयवः** सिद्ध हो जाता है। स्मरण रहे कि एकवचन और द्विवचन में **मैत्रेयः**, **मैत्रेयौ** बन चुके हैं।

यस्कादिगणः- यस्क, लह्य, द्रुह्य, अयस्थूण (अयःस्थूण), तृणकर्ण, सदामत्त, कम्बलहार, बहिर्योग, कर्णाढक, पर्णाढक, पिण्डीजङ्घ, वकसक्थ, (वकसक्थ), विश्रि, कुद्रि, अजवस्ति, मित्रयु, रक्षोमुख, जङ्घारथ, उत्कास, कटुक, मथन (मन्थक), पुष्करट्, (पुष्करद्), विषपुट, उपरिमेखल, क्रोष्टुकमान, (क्रोष्टुपाद), कोष्टुपाद, क्रोष्टुमाय, शीर्षमाय, खरप, पदक, वर्षुक, भलन्दन, भडिल, भण्डिल, भडित भण्डित।

११४७. अत्रिभृगुकुत्सवसिष्ठगोतमाङ्गिरोभ्यश्च २।४।६४॥

एभ्यो गोत्रप्रत्ययस्य लुक् स्यात् तत्कृते बहुत्वे, न तु स्त्रियाम्।

अत्रयः। भृगवः। कुत्साः। वसिष्ठाः। गोतमाः। अङ्गिरसः।

अत्रिभृगुकुत्सवसिष्ठगोतमाङ्गिरोभ्यश्च। अत्रिश्च भृगुश्च कुत्सश्च वसिष्ठश्च गोतमश्च अङ्गिरा च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वोऽत्रिभृगुकुत्सवसिष्ठगोतमाङ्गिरसस्तेभ्योऽत्रि-भृगुकुत्सवसिष्ठगोतमाङ्गिरोभ्यः पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **यस्कादिभ्यो गोत्रे** से **गोत्रे** की, **ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः** सूत्र से **लुक्** की और **तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्** से **बहुषु तेन एव अस्त्रियाम्** की अनुवृत्ति आती है।

अत्रि, भृगु, कुत्स, वसिष्ठ, गोतम, अङ्गिरस् शब्दों से गोत्रापत्य अर्थ में विहित प्रत्यय का लुक् होता है, यदि प्रत्ययकृत बहुत्व का बोध हो रहा हो तो, स्त्रीलिंग को छोड़कर।

अत्रयः। अत्रि ऋषि की बहुत सी सन्तान पौत्र आदि। **अत्रेः गोत्रापत्यानि** विग्रह में **अत्रि+ङस्** से **इतश्चानिञः** सूत्रे के द्वारा ढक् प्रत्यय होने पर यहाँ बहुत्वविवक्षा होने और स्त्रीलिंग के न होने के कारण **अत्रिभृगुकुत्सवसिष्ठगोतमाङ्गिरोभ्यश्च** सूत्र से ढक् का लुक् हो जाता है। अतः **अत्रि** मात्र बना हुआ है। यद्यपि प्रत्यय का लुक् हुआ है तथापि प्रत्ययान्त तो माना ही जाता है। अतः तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा होकर स्वादिकार्य होने पर **अत्रि** शब्द के बहुवचन में **अत्रयः** रूप बन जाता है। बहुवचन की विवक्षा न होने पर उक्त प्रत्यय का लुक् नहीं होता। अतः ढकार के स्थान पर एयादेश, आदिवृद्धि, इकारलोप होकर **आत्रेय** शब्द बनता है। स्वादिकार्य से **आत्रेयः, आत्रेयौ** रूप बनते हैं। इस तरह बहुवचन की विवक्षा में सभी विभक्तियों में लुक् होकर **अत्रयः, अत्रीन्, अत्रिभिः, अत्रिभ्यः, अत्रीणाम्, अत्रिषु** बनाये जाते हैं और एकवचन और द्विवचन में **आत्रेय** शब्द के रूप राम-शब्द के समान ही होते हैं।

भृगवः। भृगु ऋषि की बहुत सी सन्तान पौत्र आदि। **भृगोः गोत्रापत्यानि** विग्रह में **भृगु+ङस्** से **ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर यहाँ बहुत्वविवक्षा होने और स्त्रीलिंग के न होने के कारण **अत्रिभृगुकुत्सवसिष्ठगोतमाङ्गिरोभ्यश्च** सूत्र से अण् का लुक् हो जाता है। अतः **भृगु** मात्र बना हुआ है। प्रत्यय के लुक् होने पर तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा होती है। स्वादिकार्य होने पर **भृगु** शब्द के बहुवचन में **भृगवः** रूप बन जाता है। बहुवचन की विवक्षा न होने पर उक्त प्रत्यय का लुक् नहीं होता। अतः आदिवृद्धि होने पर रपर होकर ऋकार को आर् आदेश, उकार को **ओर्गुणः** से गुण ओकार और उसके स्थान पर अवादेश होकर **भार्गव** शब्द बनता है। स्वादिकार्य से **भार्गवः, भार्गवौ** आदि रूप बनते हैं।

कुत्साः। कुत्स ऋषि की बहुत सी सन्तान पौत्र आदि। **कुत्सस्य गोत्रापत्यानि** विग्रह में **कुत्स+ङस्** से **ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च** सूत्र स अण् प्रत्यय होने पर यहाँ बहुत्वविवक्षा होने और स्त्रीलिंग के न होने के कारण **अत्रिभृगुकुत्सवसिष्ठगोतमाङ्गिरोभ्यश्च** सूत्र से अण् का लुक् हो जाता है। अतः **कुत्स** मात्र बना हुआ है। तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा होकर स्वादिकार्य होने पर **कुत्स** शब्द के बहुवचन में **कुत्साः** रूप बन जाता है। बहुवचन की विवक्षा न होने पर उक्त प्रत्यय का लुक् नहीं होता। अतः आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **कौत्स** शब्द बनता है। स्वादिकार्य से **कौत्सः, कौत्सौ** आदि रूप बनते हैं।

वसिष्ठाः। वसिष्ठ ऋषि की बहुत सी सन्तान पौत्र आदि। **वसिष्ठस्य गोत्रापत्यानि** विग्रह में **वसिष्ठ+ङस्** से **ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर यहाँ बहुत्वविवक्षा होने और स्त्रीलिंग के न होने के कारण **अत्रिभृगुकुत्सवसिष्ठगोतमाङ्गिरोभ्यश्च** सूत्र से अण् का लुक् हो जाता है। अतः **वसिष्ठ** मात्र बना हुआ है। तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा होकर स्वादिकार्य होने पर **वसिष्ठ** शब्द के बहुवचन में

वसिष्ठाः रूप बन जाता है। बहुवचन की विवक्षा न होने पर उक्त प्रत्यय का लुक् नहीं होता। अतः आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **वासिष्ठ** शब्द बनता है। स्वादिकार्य से **वासिष्ठः, वासिष्ठौ** आदि रूप बनते हैं।

गोतमाः। गोतम ऋषि की बहुत सी सन्तान पौत्र आदि। **गोतमस्य गोत्रापत्यानि** विग्रह में **गोतम+ङस्** से **ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर **अत्रिभृगुकुत्सवसिष्ठगोतमाङ्गिरोभ्यश्च** सूत्र से अण् का लुक् होकर **गोतम** मात्र बना हुआ है। तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा होकर स्वादिकार्य होने पर बहुवचन में **गोतमाः** रूप बन जाता है। बहुवचन की विवक्षा न होने पर उक्त प्रत्यय का लुक् नहीं होता। अतः आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **गौतम** शब्द बनता है। स्वादिकार्य से **गौतमः, गौतमौ** आदि रूप बनते हैं।

अङ्गिरसः। अङ्गिरस ऋषि की बहुत सी सन्तान पौत्र आदि। **अङ्गिरसः गोत्रापत्यानि** विग्रह में **अङ्गिरस्+ङस्** से **ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर यहाँ बहुत्वविवक्षा होने पर **अत्रिभृगुकुत्सवसिष्ठगोतमाङ्गिरोभ्यश्च** सूत्र से अण् का लुक् होकर **अङ्गिरस्** मात्र बना हुआ है। तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा होकर स्वादिकार्य होने पर **अङ्गिरस्** शब्द के बहुवचन में **अङ्गिरसः** रूप बन जाता है। बहुवचन की विवक्षा न होने पर उक्त प्रत्यय का लुक् नहीं होता। अतः आदिवृद्धि होकर **आङ्गिरस** शब्द बनता है। स्वादिकार्य से **आङ्गिरसः, आङ्गिरसौ** आदि रूप बनते हैं।

११४८. बह्वच इञः प्राच्यभरतेषु २।४।६६॥

बह्वचः परो य इञ् प्राच्यगोत्रे भरतगोत्रे च वर्तमानस्तस्य लुक् स्यात्।
पन्नागाराः। युधिष्ठिराः।

बह्वच इञः प्राच्यभरतेषु। बहवोऽचो यस्मिन् स बह्वच्, तस्माद् बह्वचः। प्राक्षु भवाः प्राच्याः, प्राच्याश्च भरताश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः प्राच्यभरतास्तेषु प्राच्यभरतेषु। बह्वचः पञ्चम्यन्तम्, इञः षष्ठ्यन्तं, प्राच्यभरतेषु सप्तम्यन्तम्। **यस्कादिभ्यो गोत्रे** से **गोत्रे** की, **ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः** सूत्र से **लुक्** की और **तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्** से **बहुषु** की अनुवृत्ति आती है।

अनेक अच् वाले शब्दों से प्राच्य-गोत्रापत्य और भरत-गोत्रापत्य अर्थ में विहित तद्धित प्रत्यय का लुक् होता है, यदि प्रत्ययकृत बहुत्व का बोध हो रहा हो तो।

पन्नागाराः। प्राचीन पन्नागार नामक व्यक्ति की बहुत सी सन्तान पौत्र आदि। **पन्नागारस्य गोत्रापत्यानि** विग्रह में **पन्नागार+ङस्** से **अत इञ्** सूत्र से इञ् प्रत्यय होने पर बहुवचन की विवक्षा में **बह्वच इञः प्राच्यभरतेषु** सूत्र से इञ् का लुक् होकर **पन्नागार** ही बना हुआ है। तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा होकर स्वादिकार्य होने पर

बहुवचन में **पन्नागाराः** रूप बन जाता है। बहुवचन की विवक्षा न होने पर उक्त प्रत्यय का लुक् नहीं होता। अतः आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **पान्नागारि** शब्द बनता है। स्वादिकार्य से **पान्नागारिः, पान्नागारी** आदि रूप बनते हैं। यह प्राच्य गोत्रापत्य का उदाहरण है।

युधिष्ठिराः। युधिष्ठिर की बहुत सी सन्तान पौत्र आदि। **युधिष्ठिरस्य गोत्रापत्यानि** विग्रह में **युधिष्ठिर+ङस्** से **ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च** से प्राप्त अण्-प्रत्यय को बाधकर **बाह्वादिभ्यश्च** सूत्र से **इञ्** प्रत्यय होने पर बहुवचन की विवक्षा में **बह्वच इञः प्राच्यभरतेषु** सूत्र से इञ् का लुक् होकर **युधिष्ठिर** ही बना हुआ है। तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा होकर स्वादिकार्य होने पर बहुवचन में **युधिष्ठिराः** रूप बन जाता है। बहुवचन की विवक्षा न होने पर उक्त प्रत्यय का लुक् नहीं होता। अतः आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **यौधिष्ठिरि** शब्द बनता है। स्वादिकार्य से **यौधिष्ठिरिः, यौधिष्ठिरी** आदि रूप बनते हैं।

अब एक सूत्र से लुक् का निषेध किया जा रहा है-

११४९. न गोपवनादिभ्यः २।४।६७॥

एभ्यो गोत्रप्रत्ययस्य लुक् न स्यात्। बिदाद्यन्तर्गणोऽयम्।

गौपवनाः। शैग्रवाः।

न गोपवनादिभ्यः। गोपवन आदिर्येषां ते गोपवनादयस्तेभ्यो गोपवनादिभ्यः। नाव्ययं, गोपवनादिभ्यः पञ्चम्यन्तम्। **यस्कादिभ्यो गोत्रे** से **गोत्रे** की, **ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः** सूत्र से **लुक्** की और **तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्** से **बहुषु** की अनुवृत्ति आती है।

गोपवन आदि गणपठित शब्दों से गोत्रापत्य अर्थ में विहित तद्धित प्रत्यय का लुक् नहीं होता है, यदि प्रत्ययकृत बहुत्व का बोध हो रहा हो तो भी।

बिदाद्यन्तर्गणोऽयम्। गोपवनादि के रूप में अलग से गणपाठ न होकर यह बिदादिगण का अन्तर्गण है। तदनुसार **गोपवनादि** में २८ शब्द हैं। ये हैं- गोपवन, शिग्रु, बिन्दु, [भोगक] भाजन, (शमिक), अश्ववतान, श्यामाक, श्यामक, (श्यावलि), श्यापर्ण, हरित, किन्दास, वह्यस्क, अर्कजूष, (अर्कलूष), बध्योग, विष्णुवृद्ध, प्रतिबोध, रचित, (रथीतर), रथन्तर, गविष्ठिर, निषाद, (शबर, अलस), मठर, (मृडाकु), सृपाकु, सृदु, पुनर्भू, पुत्र, दुहितृ, ननान्दृ। **परस्त्री परशुं च**। कुछ मतभेद से अधिक शब्द भी हैं।

गौपवनाः। गोपवन की बहुत सी सन्तान पौत्र आदि। **गोपवनस्य गोत्रापत्यानि** विग्रह में **गोपवन+ङस्** से **अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्** सूत्र के द्वारा अञ् प्रत्यय होने पर बहुवचन की विवक्षा में **यञञोश्च** सूत्र से उक्त प्रत्यय का लुक् प्राप्त था, उसका **न गोपवनादिभ्यः** सूत्र से निषेध होने के कारण **गोपवन+अ** बना हुआ है। आदिवृद्धि,

अकारलोप होकर **गौपवन** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य से **गौपवनः, गौपवनौ, गौपवनाः** आदि रूप बनते हैं। तीनों वचनों में अञ्-प्रत्ययान्तता विद्यमान रहती है।

शैग्रवाः। शिग्रु नामक व्यक्ति की बहुत सी सन्तान पौत्र आदि। **शिग्रोः गोत्रापत्यानि** विग्रह में **शिग्रु+ङस्** से **अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्** सूत्र के द्वारा अञ् प्रत्यय होने पर बहुवचन की विवक्षा में **यञञोश्च** सूत्र से उक्त प्रत्यय का लुक् प्राप्त था, उसका **न गोपवनादिभ्यः** सूत्र से निषेध होने के कारण **शिग्रु+अ** बना हुआ है। आदिवृद्धि, अन्त्य अकार को **ओर्गुणः** से गुण ओकार और उसको अवादेश होकर **शैग्रव** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य से **शैग्रवः, शैग्रवौ, शैग्रवाः** आदि रूप बनते हैं। तीनों वचनों में अञ्-प्रत्ययान्तता विद्यमान रहती है।

११५०. तिककितवादिभ्यो द्वन्द्वे २।४।६८॥

एभ्यो गोत्रप्रत्ययस्य बहुत्वे लुक् स्याद् द्वन्द्वे।

तैकायनयश्च कैतवायनयश्च, 'तिकादिभ्यः फिञ्' (सू.११७८) तस्य लुक्, तिककितवाः।

तिककितवादिभ्यो द्वन्द्वे। तिकश्च कितवश्च तिककितवौ, आदिश्च आदिश्च आदी, तौ आदी येषां ते तिककितवादयस्तेभ्यः, द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः। तिककितवादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, द्वन्द्वे सप्तम्यन्तम्। **यस्कादिभ्यो गोत्रे** से **गोत्रे** की, **ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः** सूत्र से लुक् की और **तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्** से **बहुषु** की अनुवृत्ति आती है।

तिकादि और कितवादि गणपठित शब्दों में यदि द्वन्द्वसमास हुआ हो तो उनसे विहित गोत्रापत्य अर्थ में विहित तद्धित प्रत्यय का लुक् होता है, यदि प्रत्ययकृत बहुत्व का बोध हो रहा हो तो।

तिककितवादिगण समष्टिगणपाठः- तिककितवाः, वङ्गभण्डीरथाः, उपकलमकाः, पफकनरकाः, बकनखगुदपरिणद्धाः, उञ्जककुभाः, लङ्कशान्तमुखाः, उत्तरशलङ्कटाः, कृष्णाजिनकृष्णसुन्दराः, भ्राष्ट्रककपिष्ठलाः, अग्निवेशदशेरूकाः। गणपाठ में बहुवचन के रूप दिये गये हैं, जिनमें बहुत्व की विवक्षा में तद्धित प्रत्यय का लुक् किया गया है।

तैकायनयश्च कैतवायनयश्च, 'तिकादिभ्यः फिञ्' तस्य लुक्, तिककितवाः। तिक और कितव की बहुत सन्तान पौत्र आदि। **तिकस्य गोत्रापत्यानि** और **कितवस्य गोत्रापत्यानि** विग्रह में क्रमशः **तिक+ङस्** और **कितव+ङस्** से **तिकादिभ्यः फिञ्** सूत्र के द्वारा **फिञ्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, फकार को आयन् आदेश, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **तिक+आयनि, कितव+आयनि**

बने हुये हैं। उभयत्र आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर क्रमशः **तैकायनि** और **कैतवायनि** शब्द बने हैं। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **तैकायनिः, तैकायनी, तैकायनयः** और **कैतवायनिः, कैतवायनी, कैतवायनयः** आदि रूप बनते है। अब **तैकायनयश्च कैतवायनयश्च** लौकिक विग्रह और **तैकायनि+जस् कैतवायनि+जस्** अलौकिक विग्रह में **चार्थे द्वन्द्वः** सूत्र से द्वन्द्वसमास करने पर समासप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **तैकायनि+कैतवायनि** बना हुआ है। **तिककितवादिभ्यो द्वन्द्वे** सूत्र से पूर्वपद और उत्तरपद में विद्यमान फिञ् प्रत्यय (आयनि) का लुक् हो जाता है। निमित्त ञित् के अपाय होने से नैमित्तिक वृद्धि का भी अपाय हो जाता है- **निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः**। अतः **तिककितव** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर बहुवचन में **तिककितवाः** सिद्ध हो जाता है। **वङ्ग+भण्डीरथाः** में **अत इञ्** से इञ् होकर **वाङ्ग, भाण्डीरथि** शब्द बना हुआ है। पूर्ववत् प्रत्यय का लुक् करके **वङ्गभण्डीरथाः** बनता है। तिककितवादिगणपठित शब्दों में यथायोग्य प्रत्यय लगाकर उनका लुक् इसी प्रकार से किया जाता है।

११५१. उपकादिभ्योऽन्यतस्यामद्वन्द्वे २।४।६९॥

एभ्यो गोत्रप्रत्ययस्य बहुत्वे लुग्वा स्याद् द्वन्द्वे चाद्वन्द्वे च।

औपकायनाश्च लामकायनाश्च, 'नडादिभ्यः फक्' (सू.११०१), तस्य लुक्, उपकलमकाः, औपकायनलामकायनाः। भ्राष्ट्रककपिष्ठलाः, भ्राष्ट्रकिकापिष्ठलयः। उपकाः, औपकायनाः। लमकाः, लामकायनाः।

उपकादिभ्योऽन्यतस्याम्। उपक आदिर्येषां ते उपकादयस्तेभ्य उपकादिभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अन्यतरस्यां सप्तमीप्रतिरूपकमव्ययम्, अद्वन्द्वे सप्तम्यन्तम्। **तिककितवादिभ्यो द्वन्द्वे** से **द्वन्द्वे** की, **यस्कादिभ्यो गोत्रे** से **गोत्रे** की, **ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः** सूत्र से **लुक्** की और **तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्** से **बहुषु** की अनुवृत्ति आती है।

उपक आदि गणपठित शब्दों में यदि द्वन्द्वसमास हुआ हो या न भी हुआ हो तो उनसे गोत्रापत्य अर्थ में विहित तद्धित प्रत्यय का विकल्प से लुक् होता है, यदि प्रत्ययकृत बहुत्व का बोध हो रहा हो तो।

यद्यपि यहाँ पर **अद्वन्द्वे** सूत्र का पाठ न करते और पूर्वसूत्र के **द्वन्द्वे** पद में स्वरितत्वप्रतिज्ञा का अभाव मानकर उसकी अनुवृत्ति भी न लाते तो भी काम चल सकता था तथापि सूत्रकार ने उक्त दोनों कार्य किया है ताकि द्वन्द्वसमास में होने की और अद्वन्द्व में न होने की आशंका उत्पन्न न हो। इस तरह **अद्वन्द्वे** पद को स्पष्टार्थ मानना चाहिये, न कि **द्वन्द्वे** की निवृत्ति के लिये। इस लिये यह सूत्र द्वन्द्व और अद्वन्द्व उभयत्र कार्य करता है।

उपकादिगणः- उपक, लमक, भ्राष्टक, कपिष्ठल, कृष्णाजिन, कृष्णासुन्दर, चूडारक, आडारक, गडुक, उदङ्क, सुधायुक, अबन्धक, पिङ्गलक, पिष्ट, (सुपिष्ट), मयूरकर्णा, खरीजङ्घ, शलाथल, पतञ्जल, कठेरणि, कुषीतक, कशकृत्स्न, (काशकृत्स्न), निदाघ, कलशीकण्ठ, दामकण्ठ, कृष्णपिङ्गल, कर्णक, पर्णक, जटिरक, बधिरक, जन्तुक, अनुलोम, अनुपद, प्रतिलोम, जपजग्ध, प्रतान, अनभिहित, कमक, बराटक, लेखाभ्र, कमन्दक, पिञ्जूल, वर्णक, मसूरकर्ण, मदाघ, कवन्तक, कमन्तक, कदामत, दामकण्ठ।

औपकायनाश्च लामकायनाश्च, 'नडादिभ्यः फक्' तस्य लुक्, उपकलमकाः, औपकायनलामकायनाः। उपक और लमक की बहुत सन्तान पौत्र आदि। **उपकस्य गोत्रापत्यानि** और **लमकस्य गोत्रापत्यानि** विग्रह में क्रमशः **उपक+ङस्** और **लमक+ङस्** से **नडादिभ्यः फक्** सूत्र से फक् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, फकार को आयन् आदेश, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **उपक+आयन, लमक+आयन** बने हुये हैं। उभयत्र आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर क्रमशः **औपकायन** और **लामकायन** शब्द बने हैं। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर बहुवचन में **औपकायनाः** और **लामकायनाः** आदि रूप बनते हैं। अब **औपकायनाश्च लामकायनाश्च** लौकिक विग्रह और **औपकायन+जस् लामकायन+जस्** अलौकिक विग्रह में **चार्थे द्वन्द्वः** सूत्र से द्वन्द्वसमास करने पर समासप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **औपकायन+लामकायन** बना हुआ है। **उपकादिभ्योऽन्यतरस्यामद्वन्द्वे** सूत्र से पूर्वपद और उत्तरपद में विद्यमान फक् प्रत्यय (आयन) का विकल्प से लुक् हो जाता है। निमित्त कित् के अपाय होने से नैमित्तिक वृद्धि का भी अपाय हो जाता है- **निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः।** अतः **उपकलमक** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर बहुवचन में **उपकलमकाः** सिद्ध हो जाता है। लुक् न होने के पक्ष में वृद्धियुक्त **औपकायनलामकायनाः** रूप बनता है।

भ्राष्ट्रककपिष्ठलाः, भ्राष्ट्रकिकापिष्ठलयः। भ्राष्टकि और कापिष्ठलि। **भ्राष्टकस्य गोत्रापत्यानि** और **कपिष्ठलस्य गोत्रापत्यानि** विग्रह में क्रमशः **अत इञ्** सूत्र से **इञ्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, उभयत्र आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर क्रमशः **भ्राष्टकि** और **कापिष्ठलि** शब्द बने हैं। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर बहुवचन में **भ्राष्टकयः** और **कापिष्ठलयः** आदि रूप बनते हैं। अब **भ्राष्टकयश्च कापिष्ठलयश्च** लौकिक विग्रह में **चार्थे द्वन्द्वः** सूत्र से द्वन्द्वसमास करने पर समासप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होने पर **उपकादिभ्योऽन्यतरस्यामद्वन्द्वे** सूत्र से पूर्वपद और उत्तरपद में विद्यमान इञ् प्रत्यय का विकल्प से लुक् हो जाता है। निमित्त ञित् के अपाय होने से नैमित्तिक वृद्धि का भी अपाय हो जाता है। अतः **भ्राष्टककपिष्ठल** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन

प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर बहुवचन में **भ्राष्टककपिष्ठलाः** सिद्ध हो जाता है। लुक् न होने के पक्ष में वृद्धियुक्त **भ्राष्टकिकापिष्ठलयः** सिद्ध हो जाता है। ये दोनों उदाहरण द्वन्द्व के थे। अब अद्वन्द्व का उदाहरण दे रहे हैं।

उपकाः, औपकायनाः। द्वन्द्वरहित केवल **उपक**-शब्द से फक् होकर **औपकायनाः** बना है। फक् के लुक् होने के पक्ष में बहुवचन में **उपकाः** ही बनता है और लुक् न होने के पक्ष में **औपकायनाः** बनता है।

लमकाः, लामकायनाः। द्वन्द्वरहित केवल **लमक**-शब्द से फक् होकर **लामकायनाः** बना है। फक् के लुक् होने के पक्ष में बहुवचन में **लमकाः** ही बनता है और लुक् न होने के पक्ष में **लामकायनाः** बनता है। इसी तरह **भ्रष्टकाः, भ्राष्टकयः**, और **कपिष्ठलाः, कापिष्ठलयः** में भी समझना चाहिये।

शेष गणपठित शब्दों में भी इसी तरह समझना चाहिये।

११५२. आगस्त्यकौण्डिन्ययोरगस्तिकुण्डिनच् २।४।७०॥

एतयोरवयवस्य गोत्रप्रत्ययस्याणो यञश्च लुक् स्यात्, अवशिष्टस्य प्रकृतिभागस्य यथासंख्यम् अगस्ति कुण्डिनच् एतावादेशौ स्तः। अगस्तयः। कुण्डिनाः।

आगस्त्यकौण्डिन्ययोरगस्तिकुण्डिनच्। आगस्त्यश्च कौण्डिन्यश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्व आगस्त्यकौण्डिन्यौ, तयोरागस्त्यकौण्डिन्ययोः। अगस्तिश्च कुण्डिनश्च तयोः समाहारद्वन्द्वोऽगस्तिकुण्डिनच्। **यस्कादिभ्यो गोत्रे** से **गोत्रे** की, **ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः** सूत्र से **लुक्** की और **तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्** से **बहुषु** की अनुवृत्ति आती है।

आगस्त्य और कौण्डिन्य शब्दों से गोत्रार्थ में विहित अण् और यञ् प्रत्यय का नित्य से लुक् होता है तथा अवशिष्ट प्रकृतिभाग के स्थान पर क्रमशः अगस्ति और कुण्डिनच् आदेश भी होता है, यदि प्रत्ययकृत बहुत्व का बोध हो रहा हो तो।

सूत्र में **अगस्त्य** शब्द का अणन्त रूप **आगस्त्य** और **कुण्डिन** में यञन्त रूप **कौण्डिन्य** इन शब्दों का प्रयोग हुआ है। उक्त दोनों प्रत्यय गोत्रार्थ में हुये हैं। **अगस्ति** और **कुण्डिनच्** ये प्रकृतिभाग के आदेश हैं। **कुण्डिनच्** में चकार इत्संज्ञक है, **कुण्डिन** बचता है। चित्करण स्वरार्थ है।

अगस्तयः। अगस्त्य ऋषि की बहुत सी सन्तान पौत्र आदि। **अगस्त्यस्य गोत्रापत्यानि** अर्थ में **अगस्त्य+ङस्** से **ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **आगस्त्य** शब्द बनता है। **आगस्त्यकौण्डिन्ययोरगस्तिकुण्डिनच्** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय

का लुक् और प्रकृतिभाग **आगस्त्य** शब्द के स्थान पर **अगस्ति** आदेश होने पर **अगस्ति** मात्र बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर बहुवचन में **अगस्तयः** सिद्ध हो जाता है। एकवचन और द्विवचन में तो क्रमशः **आगस्त्यः** और **आगस्त्यौ** का प्रयोग होता है अर्थात् प्रत्यय का लुक् और आदेश ये दोनों कार्य नहीं होते।

कुण्डिनाः। कौण्डिन्य ऋषि की बहुत सी सन्तान पौत्र आदि। **कुण्डिनस्य गोत्रापत्यानि** अर्थ में **कुण्डिन+ङस्** से **ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च** सूत्र के द्वारा प्राप्त अण् प्रत्यय को बाधकर **गर्गादिभ्यो यञ्** सूत्र से **यञ्** प्रत्यय, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **कौण्डिन्य** शब्द बनता है। **आगस्त्यकौण्डिन्ययोरगस्तिकुण्डिनच्** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय का लुक् और प्रकृतिभाग **कौण्डिन्य** शब्द के स्थान पर **कुण्डिनच्** (**कुण्डिन**) आदेश होने पर **कुण्डिन** मात्र बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर बहुवचन में **कुण्डिनाः** सिद्ध हो जाता है। एकवचन और द्विवचन में तो क्रमशः **कौण्डिन्यः** और **कौण्डिन्यौ** का प्रयोग होता है अर्थात् प्रत्यय का लुक् और आदेश ये दोनों कार्य नहीं होते।

लुक् प्रकरण को समाप्त करके पुनः तद्धितीय प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है-

११५३. राजश्वशुराद्यत् ४।४।१३७॥
राज्ञो जातावेवेति वाच्यम् (वा.२६२७)।

राजश्वशुराद्यत्। राजा च श्वशुरश्च तयोः समाहारद्वन्द्वो राजश्वशुरम्, तस्मात्। राजश्वशुरात् पञ्चम्यन्तं, यत् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तस्यापत्यम्** की अनुवृत्ति और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार चल रहा है।

राजन् और श्वशुर शब्दों से अपत्य अर्थ में यत् प्रत्यय होता है।

तकार की इत्संज्ञा होती है, **य** शेष रहता है। तित् होने का फल स्वरप्रकरण में **तित्स्वरितम्** की प्रवृत्ति है।

राज्ञो जातावेवेति वाच्यम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- राजन् शब्द से जाति वाच्य होने पर ही यत् प्रत्यय कहना चाहिए। तात्पर्य यह है कि **राजन्** शब्द से यत् प्रत्यय किये जाने पर भी उसमें **जाति** अर्थ की विशेषता होनी चाहिए अर्थात् इस शब्द से अपत्यार्थ में **यत्** प्रत्यय तभी होगा जब प्रकृतिप्रत्ययसमुदाय से **जाति** अर्थ की प्रतीति होगी।

राजन् शब्द के अन्त में नकार होने के कारण **नस्तद्धिते** सूत्र से टिलोप प्राप्त है, उसके निवारणार्थ प्रकृतिभाव का आश्रय लिया जा रहा है-

११५४. ये चाभावकर्मणोः ६।४।१६६

यादौ तद्धिते परेऽन् प्रकृत्या स्यान्न तु भावकर्मणोः।
राजन्यः। श्वशुर्यः। जातिग्रहणाच्छूद्रादावुत्पन्नो राजनः।

ये चाभावकर्मणोः। भावश्च कर्म च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो भावकर्मणी, न भावकर्मणी अभावकर्मणी। तयोः। ये सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदम्, अभावकर्मणोः सप्तम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **अन्** सूत्र की, **आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति** से **तद्धिते** और **प्रकृत्यैकाच्** से **प्रकृत्या** की अनुवृत्ति आती है। **भस्य** और **अङ्गस्य** का अधिकार है।

यकारादि तद्धित प्रत्यय के परे रहते भसंज्ञक अंग के अन्-भाग का प्रकृतिभाव होता है, यदि तद्धित प्रत्यय भाव और कर्म अर्थ में न हुआ हो तो।

अष्टाध्यायी में प्रकृतिभाव का प्रकरण छठे अध्याय में है। अतः प्राकरणिक अनुवृत्ति भी वहीं से प्राप्त होगी। सूत्रस्थ **ये** पद **तद्धिते** का विशेषण है। अतः **यस्मिन् विधिस्तदादावल्ग्रहणे** परिभाषा के द्वारा तदादिविधि होकर **यकारादि तद्धित के परे** ऐसा अर्थ बनता है। यह सूत्र **नस्तद्धिते** से प्राप्त टिलोप का बाधक है। स्मरण रहे कि **प्रकृतिरूपेणावस्थानं प्रकृतिभावः** अर्थात् यथावत् बने रहना ही प्रकृतिभाव है। **अन्** का लोप न होकर वह यथावत् बना रहे, यही प्रकृतिभाव है। जो यकारादि प्रत्यय है, वह भाव और कर्म अर्थ में विहित न हो, यह भी आवश्यक है।

राजन्यः। राजा का क्षत्रिया में उत्पन्न पुत्र। **राज्ञः (क्षत्रियायाम् उत्पन्नम्) अपत्यम्** लौकिक विग्रह है। **राजन्+ङस्** से **तस्यापत्यम्** से सामान्य अपत्य अर्थ में अण् प्राप्त, उसे बाधकर के **राज्ञो जातावेवेति वाच्यम्** के निर्देशन में जाति सहित अपत्य अर्थ में **राजश्वशुराद्यत्** से **यत्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **राजन्+य** बना। अब **नस्तद्धिते** से **अन्** का लोप प्राप्त था, उसे बाधकर के **ये चाभावकर्मणोः** से प्रकृतिभाव हुआ अर्थात् **अन्** का लोप नहीं हुआ। वर्णसम्मेलन होकर **राजन्य** बना, स्वादिकार्य करके **राजन्यः** सिद्ध हुआ। यह क्षत्रिय जाति अर्थ में बना है।

श्वशुर्यः। ससुर की सन्तान, साला। **श्वशुरस्यापत्यम्** लौकिक विग्रह है। **श्वशुर ङस्** से **तस्यापत्यम्** से अण् प्राप्त, उसे बाधकर के **राजश्वशुराद्यत्** से **यत्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **श्वशुर+य** बना। **यस्येति च** से रेफोत्तरवर्ती अकार का लोप करके **श्वशुर्+य** बना। **रेफ** का ऊर्ध्वगमन होकर **श्वशुर्य** बना, स्वादिकार्य करके **श्वशुर्यः** सिद्ध हो जाता है।

जातिग्रहणाच्छूद्रादावुत्पन्नो राजनः। अर्थात् **राजश्वशुराद्यत्** सूत्र में **राज्ञो जातावेवेति वाच्यम्** वार्तिक के कारण क्षत्रियजातित्व बोध न होने पर अर्थात् राजा से शूद्रा स्त्री में उत्पन्न सन्तान के लिये यत् नहीं होगा किन्तु **तस्यापत्यम्** सूत्र से अण्-प्रत्यय होने के बाद अगले सूत्र **अन्** से प्रकृतिभाव करके **राजनः** बनाया जाता है।

११५५. अन् ६।४।१६७॥

अणि अन् प्रकृत्या स्यात्। इति टिलोपो न।
अभावकर्मणोः किम्? राज्ञः कर्म भावो वा राज्यम्।

अन्। अन् प्रथमान्तम्, एकपदं सूत्रम्। **इनण्यनपत्ये** से **अणि** और **प्रकृत्यैकाच्** से **प्रकृत्या** की अनुवृत्ति आती है।

अण् प्रत्यय के परे होने पर अन् को प्रकृतिभाव होता है।

यह भी **नस्तद्धिते** का बाधक है। सामान्य अण् परे रहते चाहे वह अपत्यार्थक हो या उससे भिन्न अन्य किसी अर्थ में विहित हो, **अन्** का प्रकृतिभाव होता है।

राजनः। राजा की सन्तान जो क्षत्रिय जाति की नहीं है। इसके पहले **राजन्यः** बनाया गया था, जाति अर्थ में यत् प्रत्यय करके। अब जाति से भिन्न अर्थ में **तस्यापत्यम्** से औत्सर्गिक **अण्** प्रत्यय होगा। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि करके आकार के स्थान पर आकार ही आदेश होता है। इस तरह **राजन्+अ** बना। यहाँ पर **नस्तद्धिते** से **अन्** का लोप प्राप्त था, उसको बाधकर **अन्** सूत्र से प्रकृतिभाव हुआ अर्थात् लोप नहीं हुआ। **राजन्+अ** में वर्णसम्मेलन होकर **राजनः** सिद्ध हुआ। अपत्यात्मक जाति अर्थ में **राजन्यः** बनता है और जाति से भिन्न केवल राजा की अन्य जाति की स्त्री में उत्पन्न अपत्य अर्थ में **राजनः** बन जाता है।

अभावकर्मणोः किम्? राज्ञः कर्म भावो वा राज्यम्। यह **ये चाभावकर्मणोः** सूत्र का पदकृत्य (प्रत्युदाहरण) है। उक्त सूत्र में **अभावकर्मणोः** पद के निवेश से भाव और कर्म अर्थ में विहित प्रत्यय के परे रहते प्रकृतिभाव नहीं होता अर्थात् टिसंज्ञक भाग **अन्** का **नस्तद्धिते** सूत्र के द्वारा लोप हो जाता है। जैसे कि **राज्ञः भावः, राज्ञः कर्म** विग्रह में राजन्+ङस् से गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः **कर्मणि च** सूत्र से **ष्यञ् (य)** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् आदि होकर **राजन्+य** बना हुआ है। भाव और कर्म अर्थ में विहित प्रत्यय होने के कारण **ये चाभावकर्मणोः** सूत्र के द्वारा प्रकृतिभाव नहीं होता। फलतः **नस्तद्धिते** सूत्र से टिसंज्ञक भाग **अन्** का लोप होकर **राज्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **राज्यम्** सिद्ध हो जाता है।

११५६. संयोगादिश्च ६।४।१६६॥

इन् प्रकृत्या स्यादणि परे। चक्रिणोऽपत्यं चाक्रिणः।

संयोगादिश्च। संगोग आदिर्यस्य स संयोगादिः प्रथमान्तम्, अणि सप्तम्यन्तम्। **इनण्यनपत्ये** से **इन्, अणि** और **प्रकृत्यैकाच्** से **प्रकृत्या** की अनुवृत्ति आती है। **भस्य** और **अङ्गस्य** का अधिकार है।

संयोगादि प्रकृति होने पर इन् को प्रकृतिभाव होता है, तद्धितीय अण् प्रत्यय के परे रहते।

यह भी **नस्तद्धिते** का बाधक है। सामान्य अण् परे रहते चाहे वह अपत्यार्थक हो या उससे भिन्न अन्य किसी अर्थ में विहित हो, यदि प्रकृति में **इन्** से पूर्व का भाग संयोग (संयोगसंज्ञक वर्ण) हो तो उस **इन्** का प्रकृतिभाव होता है।

चक्रिणोऽपत्यं चाक्रिणः। चक्रधारी की सन्तान। **चक्रिणः अपत्यम्** अर्थ में **तस्यापत्यम्** सूत्र से औत्सर्गिक **अण्** प्रत्यय होकर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि करके **चाक्रिन्+अ** बना है। यहाँ पर **नस्तद्धिते** से टिसंज्ञक **इन्**-भाग का लोप प्राप्त था किन्तु **इन्** से पूर्व के भाग **क्र** में संयोग होने के कारण उसको बाधकरके **संयोगादिश्च** सूत्र से प्रकृतिभाव हुआ अर्थात् लोप नहीं हुआ। **चाक्रिन्+अ** में वर्णसम्मेलन और रेफ से परे नकार को णत्व होकर **चाक्रिण** शब्द बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **चाक्रिणः** सिद्ध हो जाता है। आगे **चाक्रिणौ, चाक्रिणः** आदि रूप बनते हैं।

इनण्यनपत्ये सूत्र में अपत्य से भिन्न अनपत्य अर्थ विवक्षित होने से अपत्य अर्थ में विहित प्रत्यय के परे रहते **इन्** का प्रकृतिभाव प्राप्त नहीं था। अतः प्रकृतसूत्र की सार्थकता सिद्ध होती है।

अब एक सूत्र से प्रकृतिभाव का निषेध किया जा रहा है-

११५७. न मपूर्वोऽपत्येऽवर्मणः ६।४।१७०॥

मपूर्वोऽन् प्रकृत्या न स्यादपत्येऽणि।

भाद्रसामः। मपूर्वः किम्? सौत्वनः। अपत्ये किम्? चर्मणा परिवृतश्चार्मणो रथः। अवर्मणः किम्? चक्रवर्मणोऽपत्यं चाक्रवर्मणः।

'वा हितनाम्न इति वाच्यम्'(वा.४२१५)। हितनाम्नोऽपत्यं हैतनामः, हैतनामनः।

न मपूर्वोऽपत्येऽवर्मणः। मकारः पूर्वो यस्य स मपूर्वः, बहुव्रीहिः। न वर्मा अवर्मा, तस्य अवर्मणः, नञ्तत्पुरुषः। **अन्** की, **इनण्यनपत्ये** से **अणि** और **प्रकृत्यैकाच्** से **प्रकृत्या** की अनुवृत्ति आती है। **भस्य** और **अङ्गस्य** का अधिकार है।

मकार पूर्व में हो ऐसे अन् को प्रकृतिभाव नहीं होता है, तद्धितीय अण् प्रत्यय के परे रहते किन्तु वर्मन् के अन् को छोड़कर।

वर्मन् शब्द में मकार पूर्व होने पर भी प्रकृतिभाव का निषेध नहीं किया गया है।

भाद्रसामः। भद्रसामन् की सन्तति। **भद्रसाम्नोऽपत्यं पुमान्** अर्थ में **भद्रसामन्+ङस्** से **तस्यापत्यम्** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **भद्रसामन्+अ** बना है। **नस्तद्धिते** सूत्र से प्राप्त टिलोप का **अन्** सूत्र के द्वारा निषेध प्राप्त

था, उसका **न मपूर्वोऽपत्येऽवर्मणः** सूत्र के द्वारा अनिषेध हो जाने से टिसंज्ञक अन्-भाग का लोप हो जाता है। यहाँ मकारपूर्व भी है और वर्मन्-शब्द का अभाव भी। इस तरह **भद्रसाम्+अ** बना है। आदिवृद्धि होकर **भाद्रसाम** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **भाद्रसामः** सिद्ध हो जाता है।

मपूर्वः किम्? सौत्वनः। प्रकृतसूत्र में **मपूर्वः** शब्द का निवेश होने के कारण अन् से पूर्व मकार होने पर ही प्रकृतिभाव का निषेध होगा, अन्यथा नहीं होगा। अतः **सौत्वनः** में प्रकृतिभाव का निषेध नहीं होता अर्थात् टिलोपाभाव रूप प्रकृतिभाव हो जाता है। यहाँ **सुत्वनोऽपत्यं पुमान्** (सुत्वा की सन्तान) अर्थ में **सुत्वन्+ङस्** से **तस्यापत्यम्** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **सुत्वन्+अ** बना है। आदिवृद्धि होकर **सौत्वन्+अ** बन जाता है। मपूर्व न होने के कारण प्रकृतसूत्र से प्रकृतिभाव का निषेध नहीं होता। अतः **नस्तद्धिते** सूत्र से प्राप्त टिलोप का **अन्** सूत्र के द्वारा प्रकृतिभाव होने से **सौत्वन** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सौत्वनः** सिद्ध हो जाता है।

अपत्ये किम्? चर्मणा परिवृतश्चार्मणो रथः। प्रकृतसूत्र में **अपत्ये** शब्द का निवेश होने के कारण अपत्यार्थ अण् प्रत्यय के परे रहते ही प्रकृतिभाव का निषेध होगा, अन्यथा नहीं होगा। अतः **चार्मणः** में प्रकृतिभाव का निषेध नहीं होता अर्थात् टिलोपाभाव रूप प्रकृतिभाव हो जाता है। यहाँ **चर्मणा परिवृतः** (चमड़े से लिपटा हुआ रथ) में परिवृत अर्थ होने के कारण अपत्यार्थ नहीं है अर्थात् अपत्यार्थ में प्रत्यय नहीं हुआ है अपितु चर्मन्+टा से **परिवृतो रथः** सूत्र से परिवृत अर्थ में अण् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि होकर **चार्मन्+अ** बन जाता है। अपत्य अर्थ न होने के कारण प्रकृतसूत्र से प्रकृतिभाव का निषेध नहीं हुआ। अतः **नस्तद्धिते** सूत्र से प्राप्त टिलोप का अन् सूत्र के द्वारा प्रकृतिभाव होने से **चार्मन** शब्द बनता है। रेफ से परे नकार को णत्व होकर **चार्मण** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **चार्मणः** सिद्ध हो जाता है।

अवर्मणः किम्? चक्रवर्मणोऽपत्यं चाक्रवर्मणः। प्रकृतसूत्र में **अवर्मणः** पद के द्वारा **वर्मन्** शब्द में प्रकृतिभाव का निषेध किया गया है। अतः **चाक्रवर्मणः** में प्रकृतिभाव हो जाता है। यहाँ **चक्रवर्मणोऽपत्यं पुमान्** (चक्रवर्मा की सन्तान) अर्थ में **चक्रवर्मन्+ङस्** से **तस्यापत्यम्** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि होकर **चाक्रवर्मन्+अ** बन जाता है। वर्मन्-शब्द होने के कारण प्रकृतसूत्र से प्रकृतिभाव का निषेध नहीं होता। अतः **नस्तद्धिते** सूत्र से प्राप्त टिलोप का **अन्** सूत्र के द्वारा प्रकृतिभाव होने से **चाक्रवर्मन** शब्द बनता है। रेफ से परे नकार को णत्व होकर **चाक्रवर्मण** बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **चाक्रवर्मणः** सिद्ध हो जाता है।

वा हितनाम्न इति वाच्यम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- हितनामन्-शब्द का विकल्प से प्रकृतिभाव कहा जाय, अपत्यार्थ प्रत्यय के परे रहते।

हितनाम्नोऽपत्यं हैतनामः, हैतनामनः। हितनामा की सन्तान। **हितनाम्नोऽपत्यं पुमान्** अर्थ में **हितनामन्+ङस्** से **तस्यापत्यम्** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि होकर **हैतनामन्+अ** बन जाता है। **नस्तद्धिते** सूत्र से प्राप्त टिलोप का **अन्** सूत्र के द्वारा नित्य से प्रकृतिभाव प्राप्त होने पर **वा हितनाम्न इति वाच्यम्** वार्तिक से विकल्प से प्रकृतिभाव होने पर तत्पक्ष में **हैतनामन** और प्रकृतिभावाभावपक्ष में **नस्तद्धिते** सूत्र से टिसंज्ञक-भाग **अन्** का लोप होकर **हैतनाम** ये दो शब्द बने हैं। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **हैतनामनः** और **हैतनामः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

११५८. ब्राह्मो जातौ ६।४।१७१॥

योगविभागोऽत्र कर्तव्यः। ब्राह्म इति निपात्यतेऽनपत्येऽणि। ब्राह्मं हविः। ततो जातौ। अपत्ये जातावणि ब्रह्मणष्टिलोपो न स्यात्। ब्रह्मणोऽपत्यं ब्राह्मणः। अपत्ये किम्? ब्राह्मी ओषधिः।

ब्राह्मो जातौ। ब्राह्मः प्रथमान्तं, जातौ सप्तम्यन्तम्।

योगविभागोऽत्र कर्तव्यः। ब्राह्म इति निपात्यतेऽनपत्येऽणि। भाष्यकार ने प्रकृतसूत्र का योगविभाग करने का निर्देश दिया है। सूत्र का प्रथम अंश होगा- **ब्राह्मः** और द्वितीय अंश होगा- **जातौ।** प्रथम अंश का सूत्रार्थ होगा- **अपत्य या अनपत्य जाति या अजाति किसी अर्थ में विहित अण् प्रत्यय के परे रहते ब्रह्मन्-शब्द में टिलोपरूप निपातन करके 'ब्राह्म' शब्द का साधुत्व किया जाता है।**

योगविभाग करने की आवश्यकता इस लिये पड़ी कि अजाति अर्थ में भी प्रकृतिभाव का निषेध होकर **ब्राह्म** शब्द बन सके। पूर्वसूत्र **न मपूर्वोऽपत्येऽवर्मणः** सूत्र के द्वारा प्रकृतिभाव का निषेध जाति अर्थ में ही फलित होता है और प्रकृतसूत्र में भी **जातौ** शब्द के निवेश से जाति अर्थ की गम्यमानता में ही प्रकृतिभाव किया जा रहा है जबकि अजाति अर्थ में भी प्रकृतिभाव आवश्यक था।

ब्राह्मं हविः। जिस हवि के देवता ब्रह्मा हों। **ब्रह्मा देवता अस्य** अर्थ में **ब्रह्मन्+सु** से **सास्य देवता** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **ब्रह्मन्+अ** बना है। णित् के परे रहते आदिवृद्धि होती है और **नस्तद्धिते** सूत्र से टिलोप प्राप्त होता है किन्तु अण् के परे रहने के कारण प्रकृतसूत्र के योगविभक्त प्रथम भाग **ब्राह्मः** सूत्र से प्रकृतिभावनिषेधात्मक टिलोप निपातन होने के कारण **ब्रह्मन्** शब्द के **अन्** का लोप हो जाता है, जिससे **ब्रह्म्+अ** बना है। आदिवृद्धि होकर **ब्राह्म** और स्वादिकार्य होने पर नपुंसकलिंग **हविस्** का विशेषण होने के कारण इसमें भी नपुंसकलिंग होकर **ब्राह्मम्** सिद्ध हो जाता है।

ततो जातौ- अपत्ये जातावणि ब्रह्मणष्टिलोपो न स्यात्। इसके बाद योगविभक्त द्वितीय अंश **जातौ** का अर्थ बनाया जाता है। **न मपूर्वोऽपत्येऽवर्मणः** से **अपत्ये** की, **अन्** सूत्र की तथा **प्रकृत्यैकाच्** से **प्रकृत्या** की अनुवृत्ति आती है। **भस्य** और **अङ्गस्य** का अधिकार है। इस तरह द्वितीय-सूत्रार्थ होगा- **जाति अर्थ गम्य होने पर तद्धितीय अपत्यार्थक अण् प्रत्यय के परे रहते ब्रह्मन्-शब्द में टिलोपाभाव रूप प्रकृतिभाव होता है।**

ब्रह्मणोऽपत्यं ब्राह्मणः। ब्रह्मा की सन्तति। **ब्रह्मणोऽपत्यम्** अर्थ में **ब्रह्मन्+ङस्** से **तस्यापत्यम्** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि होकर **ब्राह्मन्+अ** बना है। **नस्तद्धिते** सूत्र से टिलोप प्राप्त होने पर योगविभक्त द्वितीय अंश **जातौ** सूत्र से प्रकृतिभाव होने के कारण **ब्राह्मन** शब्द बनता है। रेफ से परे नकार को णत्व और एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **ब्राह्मणः** सिद्ध हो जाता है।

अपत्ये किम्? ब्राह्मी ओषधिः। योगविभक्त सूत्र में **अपत्ये** पद की अनुवृत्ति किये जाने के कारण अपत्यार्थक अण् प्रत्यय के परे रहते ही प्रकृतिभाव होता है, अन्यथा नहीं होता। अतः ओषधि-वाचक **ब्राह्मी** शब्द में टिलोप का प्रकृतिभाव नहीं होता, अर्थात् टिलोप होकर **ब्राह्म** शब्द बनता है और स्त्रीत्वविवक्षा में ङीप् होकर **ब्राह्मी** शब्द सिद्ध हो जाता है।

ब्राह्मो जातौ सूत्र के विषय में सन्देह उपस्थित होता कि सूत्र का द्वितीय अंश **जातौ** है या **अजातौ?** सन्देह होने का कारण यह है कि संहितापाठ में **ब्राह्मो+जातौ** और **ब्राह्मो+अजातौ** में समान ही रूप बनते हैं। पूर्वरूप एकादेश होने और न होने पर समान रूप से लिखा जायेगा। **अजातौ** होने पर पूर्वरूप होता है, अन्यथा उसका प्रसंग नहीं है। यहाँ पर भाष्यकार ने इस सूत्र की व्याख्या करते समय यह पूर्वपक्ष उपस्थापित किया है कि अजाति अर्थ में ब्रह्मन्-शब्द में टिसंज्ञक अन्-लोप का स्वतन्त्र विधान करने के लिये प्रकृत सूत्र है या नियम करने के लिये? तदनुसार द्वितीय अंश **अजातौ** माना जायेगा। उस स्थिति में **अजाति** शब्द में प्रसज्यप्रतिषेधार्थक नञ्-शब्द के साथ समास मानना पड़ेगा। तदनुसार उक्त पद का अर्थ होगा- जातिवाच्य होने पर न हो। इस द्वितीय अंश में पूर्वसूत्र से **अपत्ये** पद की अनुवृत्ति मानी जाती है। इस तरह योगविभक्त अंश **अजातौ** का अर्थ होगा- अपत्यार्थ में जाति अभिधेय होने पर अण् प्रत्यय के परे रहते ब्रह्मन्-शब्द में टिलोप नहीं होता अपितु प्रकृतिभाव होता है। तदनुसार **ब्राह्मणः** की सिद्धि होगी किन्तु इसका अर्थ ब्राह्मणजाति न होकर ब्रह्मा से उत्पन्न अन्य कोई व्यक्ति होगा। सूत्रस्थ पूर्व अंश **ब्राह्मः** में सूत्र में प्रयुक्त शब्दानुसार सामर्थ्यवश **अपत्ये** की अनुवृत्ति नहीं होगी, क्योंकि अपत्यार्थ में तो टिलोप **नस्तद्धिते** सूत्र से स्वतः सिद्ध है ही, निपातन की आवश्यकता ही नहीं थी। अतः अपत्य और अनपत्य तथा जाति तथा अजाति अर्थ अभिधेय होने पर उक्त **ब्राह्मः** का निपातन किया गया है।

११५९. औक्षमनपत्ये ६।४।१७३॥

अणि टिलोपो निपात्यते। औक्षं पदम्।
अनपत्ये किम्? उक्ष्णोऽपत्यमौक्ष्णः।

औक्षमनपत्ये। न अपत्यमनपत्यं, तस्मिन् अनपत्ये। औक्षं प्रथमान्तम्, अनपत्ये सप्तम्यन्तम्।

अपत्यभिन्न अर्थ में विहित अण् प्रत्यय के परे रहते औक्ष-शब्द का निपातन किया जाता है।

अणि टिलोपो निपात्यते। अण् प्रत्यय के परे रहते टिलोप का निपातन है।

औक्षं पदम्। बैल का पदचिह्न। **उक्ष्णः इदम्** अर्थ में **उक्षन्+ङस्** में **तस्येदम्** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हो जाता है। यह प्रत्यय अपत्य अर्थ में विहित नहीं है। अतः **औक्षमनपत्ये** सूत्र के द्वारा टिसंज्ञक भाग **अन्** का लोप-निपातन किया जाता है। आदिवृद्धि होकर **औक्ष** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर नपुंसकलिंग के प्रथमा एकवचन में **औक्षम्** सिद्ध हो जाता है।

अनपत्ये किम्? उक्ष्णोऽपत्यमौक्ष्णः। प्रकृतसूत्र में **अनपत्ये** पद का निवेश होने के कारण अपत्य अर्थ में अण् प्रत्यय हुआ हो तो उक्त टिलोप का निपातन नहीं किया जाता। अतः **उक्ष्णः अपत्यम्** (बैल का बछड़ा) अर्थ में **उक्षन्+ङस्** में **तस्यापत्यम्** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हो जाता है। आदिवृद्धि करके **औक्षन्+अ** बना हुआ है। यह प्रत्यय अपत्य अर्थ में विहित है। अतः **औक्षमनपत्ये** सूत्र के द्वारा टिसंज्ञक भाग **अन्** का लोप-निपातन नहीं होगा किन्तु वक्ष्यमाण **षपूर्वहन्धृतराज्ञामणि** सूत्र से **क्ष** में विद्यमान अकार का लोप किया है, जिससे **औक्ष्+न्+अ** बना है। षकार से परवर्ती नकार को णत्व होकर **औक्ष्ण** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **औक्ष्णः** सिद्ध हो जाता है।

११६०. षपूर्वहन्धृतराज्ञामणि ६।४।१३५॥

षपूर्वो योऽन् तस्य हनादेश्च भस्यातो लोपोऽणि।
औक्ष्णः। ताक्ष्णः। भ्रौणघ्नः। धृतराज्ञोऽपत्यं धार्तराज्ञः।
षपूर्व इति किम्? साम्नोऽपत्यं सामनः। अणि किम्? ताक्ष्ण्यः।

षपूर्वहन्धृतराज्ञामणि। षकारः पूर्वो यस्य स षपूर्वः, बहुव्रीहिः। षपूर्वश्च हन् च धृतराजा च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः षपूर्वहन्धृतराजानस्तेषां षपूर्वहन्धृतराज्ञां षष्ठ्यन्तम्, अणि सप्तम्यन्तम्। असन्देहार्थ **धृतराजाम्** में टच् नहीं हुआ है। **अल्लोपोऽनः** इस पूरे सूत्र की अनुवृत्ति आती है और **भस्य** तथा **अङ्गस्य** का अधिकार है।

षकार-पूर्वक अन्नन्त और हन् एवं धृतराजन् शब्दों के अवयव भसंज्ञक अङ्ग के ह्रस्व अकार का लोप होता है, अण् प्रत्यय के परे रहते।

अल्लोपोऽनः से प्राप्त अकारलोप का **अन्** सूत्र से प्रकृतिभाव प्राप्त था, उसका यह अपवाद है।

औक्षणः। बैल का बछड़ा। **उक्षन्+ङस्** में **तस्यापत्यम्** सूत्र से अण् प्रत्यय, आदिवृद्धि करके **औक्षन्+अ** बना हुआ है। अपत्यार्थ में विहित होने के कारण पूर्वसूत्र **औक्षमनपत्ये** सूत्र से टिलोप निपातन नहीं हुआ अपितु **षपूर्वहन्धृतराज्ञामणि** सूत्र से **क्ष** में विद्यमान अकार का लोप किया है, जिससे **औक्ष्+न्+अ** बना है। षकार से परवर्ती नकार को णत्व होकर **औक्षण** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **औक्षणः** सिद्ध हो जाता है। यह षपूर्व का उदाहरण है।

ताक्षणः। बढ़ई की सन्तान। **तक्षणोऽपत्यम्** विग्रह में **तक्षन्+ङस्** में **तस्यापत्यम्** सूत्र से अण् प्रत्यय, आदिवृद्धि करके **ताक्षन्+अ** बना हुआ है। षपूर्व होने के कारण **षपूर्वहन्धृतराज्ञामणि** सूत्र से **क्ष** में विद्यमान अकार का लोप किया है, जिससे **ताक्ष्+न्+अ** बना है। षकार से परवर्ती नकार को णत्व होकर **ताक्षण** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **ताक्षणः** सिद्ध हो जाता है। यह भी षपूर्व का उदाहरण है।

भ्रौणघ्नः। भ्रूणहत्या करने वाले का पुत्र। **भ्रूणं हन्ति** अर्थ में **भ्रूण+अम्** पूर्वक हन् धातु से **ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप्** सूत्र से कृत्संज्ञक क्विप् प्रत्यय, सर्वापहारलोप, उपपदसमास, कृदन्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **भ्रूणहन्** बना है। स्वादिकार्य होने पर **भ्रूणहा, भ्रूणहनौ, भ्रूणहनः** इत्यादि रूप बनते हैं। **भ्रूणघ्नोऽपत्यम्** अर्थ में भ्रूणहन्+ङस् में **तस्यापत्यम्** सूत्र से अण् प्रत्यय, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और आदिवृद्धि करके **भ्रौणहन्+अ** बना हुआ है। ह में विद्यमान अकार का **षपूर्वहन्धृतराज्ञामणि** सूत्र से लोप किया है और हकार को **हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु** सूत्र से कुत्व होने पर घकार बन जाता है, जिससे **भ्रौणघ्न** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **भ्रौणघ्नः** सिद्ध हो जाता है। यह हन्-धातु का उदाहरण है।

धृतराज्ञोऽपत्यं धार्तराज्ञः। धृतराज का पुत्र। **धृतराज्ञोऽपत्यम्** विग्रह में **धृतराजन्+ङस्** में **तस्यापत्यम्** सूत्र से अण् प्रत्यय, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, रपर करके **धार्तराजन्+अ** बना हुआ है। **षपूर्वहन्धृतराज्ञामणि** सूत्र से **ज** में विद्यमान अकार का लोप किया है, जिससे **धार्तराज्+न्+अ** बना है। जकार से परे नकार को **स्तोः श्चुना श्चुः** से चुत्व ञकार होने पर (**ज्ञोर्ज्ञः**) जकार और ञकार के संयोग में **ज्ञ्** वर्ण बन जाता है। अतः **धार्तराज्ञ** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **धार्तराज्ञः** सिद्ध हो जाता है। यह धृतराजन् का उदाहरण है।

षपूर्व इति किम्? साम्नोऽपत्यं सामनः। प्रकृतसूत्र में षपूर्व-हन्-धृतराज्ञाम् पद का निवेश होने के कारण षपूर्व, हन्, धृतराजन् शब्दों में ही अकार का लोप होता है, अन्यथा नहीं होता। अतः **साम्नोऽपत्यम्** (साम का पुत्र) में अण् प्रत्यय होने पर प्रकृतसूत्र से अकार का लोप नहीं हुआ। **नस्तद्धिते** से प्राप्त टिलोप का **अन्** सूत्र से प्रकृतिभाव होकर **सामन्+अ=सामन** बना हुआ है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सामनः** सिद्ध हो जाता है।

अणि किम्? ताक्षण्यः। प्रकृतसूत्र में **अणि** पद का निवेश होने के कारण अण् प्रत्यय के परे रहते ही अकार का लोप होता है, अन्यथा नहीं होता। अतः **ताक्षण्यः** में षपूर्व होते हुये भी अकार का लोप नहीं हुआ। यहाँ **तक्ष्णोऽपत्यम्** (बढ़ई का पुत्र) में वक्ष्यमाण **सेनान्तलक्षणकारिभ्यश्च** सूत्र से **ण्य** प्रत्यय होने पर प्रकृतसूत्र से अकार का लोप नहीं हुआ। **नस्तद्धिते** से प्राप्त टिलोप का **ये चाभावकर्मणोः** सूत्र से प्रकृतिभाव और **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** सूत्र से षकार से परे नकार को णत्व होकर **ताक्षण्य** बना हुआ है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **ताक्षण्यः** सिद्ध हो जाता है। काशिकाकार के अनुसार **तक्षन्** शब्द का पाठ शिवादिगण में है। अतः **शिवादिभ्योऽण्** से अण् प्रत्यय होकर पूर्वरूप **ताक्ष्णः** बना है। यह अण् ण्य-प्रत्यय का अपवाद नहीं है। अतः अण्, ण्य दोनों प्रत्यय होते हैं और अण् प्रत्यय के पक्ष में अकारलोप और ण्य-प्रत्यय में प्रकृतिभाव ये दो कार्य होते हैं। शिवादिगण में तक्षन्-शब्द के पाठ का कारिलक्षण इञ्-प्रत्यय के बाध के लिये है।

११६१. क्षत्राद् घः ४।४।१३८॥
क्षत्रियः। जातौ इत्येव, क्षात्रिरन्यः।

क्षत्राद् घः। क्षत्रात् पञ्चम्यन्तं, घः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तस्यापत्यम्** की अनुवृत्ति और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार चल रहा है।

क्षत्र प्रातिपदिक से अपत्य जाति अर्थ में घ प्रत्यय होता है।

घ में केवल **घ्** के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **इय्** आदेश होता है। **घ** में **अ** बचा हुआ था। इस तरह **इय्+अ=इय** बन जाता है।

क्षत्रियः। क्षत्र जाति के व्यक्ति की सन्तान। **क्षत्रस्यापत्यम्** लौकिक विग्रह है। **क्षत्र ङस्** से अपत्यार्थ में **तस्यापत्यम्** के अधिकार में **अत इञ्** से औत्सर्गिक **इञ्** प्राप्त था, उसे बाधकर के **क्षत्राद् घः** से **घ** प्रत्यय हुआ। उसके स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **इय्** आदेश होकर **इय** बन गया। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **क्षत्र+इय** बना। आदिवृद्धि के लिए ञित्, णित्, कित् आदि कोई निमित्त नहीं

है। अन्त्य अकार का **यस्येति च** से लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **क्षत्रिय** बना। स्वादिकार्य करके **क्षत्रियः** सिद्ध हो जाता है।

जातौ इत्येव, क्षात्रिरन्यः। इस सूत्र में यहाँ पर समान-जातीय सन्तान ही अभीष्ट होने के कारण **अन्य**=समानजाति से भिन्न (क्षत्र से शूद्रा में उत्पन्न सन्तान) अर्थ विवक्षित होने से घ-प्रत्यय नहीं होता, अपितु **अत इञ्** से **इञ्** प्रत्यय होकर **दाक्षिः, दाशरथिः** की तरह **क्षात्रिः** बनता है।

११६२. कुलात् खः ४।४।१३९॥

कुलीनः।

तदन्तादपि, उत्तरसूत्रे अपूर्वपदाद् इति लिङ्गात्। आढ्यकुलीनः।

कुलात् खः। कुलात् पञ्चम्यन्तं, खः प्रथमान्तम्। **तस्यापत्यम्** की अनुवृत्ति और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार चल रहा है।

षष्ठ्यन्त कुल प्रातिपदिक से अपत्य जाति अर्थ में ख प्रत्यय होता है।

ख में केवल **ख्** के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **ईन्** आदेश होता है। **ख** में **अ** बचा हुआ था। इस तरह **ईन्+अ=ईन** बन जाता है।

कुलीनः। अच्छे कुल में उत्पन्न सन्तान। **कुलस्यापत्यम्** लौकिक विग्रह है। कुल+ङस् से अपत्यार्थ में **तस्यापत्यम्** के अधिकार में **अत इञ्** से औत्सर्गिक **इञ्** प्राप्त था, उसे बाधकर के **कुलात् खः** से **ख** प्रत्यय हुआ। उसके स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **ईन्** आदेश होकर **ईन** बन गया। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके कुल+ईन बना। आदिवृद्धि के लिए ञित्, णित्, कित् आदि कोई निमित्त नहीं है। अन्त्य अकार का **यस्येति च** से लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **कुलीन** बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य करके **कुलीनः** सिद्ध हो जाता है।

तदन्तादपि, उत्तरसूत्रे अपूर्वपदाद् इति लिङ्गात्। इस कुल-शब्द से होने वाला ख-प्रत्यय कुल-शब्दान्त प्रातिपदिक से भी होता है। इसमें क्या प्रमाण है? बताते हैं कि उत्तरसूत्र **अपूर्वपदादन्यतरस्यां यड्ढकञौ** सूत्र से कुल-शब्द यदि पूर्वपद वाला न हो, अर्थात् कुल-शब्द से कोई पूर्वपद में विद्यमान न हो तो यत् और ढकञ् प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है। यदि प्रकृतसूत्र भी अपूर्वपद कुल-शब्द मात्र से करता तो उत्तरसूत्र में **अपूर्वपदात्** की कोई आवश्यकता नहीं थी। उत्तरसूत्र में **अपूर्वपदात्** पद से यह ज्ञापन (प्रमाण) मिलता है कि प्रकृतसूत्र पूर्वपद (कुलशब्दान्त) या अपूर्वपद (केवल कुल-शब्द) दोनों स्थितियों में कुल-शब्द से ख-प्रत्यय करता है। इस तरह तदन्तविधि का प्रमाण उपलब्ध है।

आढ्यकुलीनः। धनी कुल में उत्पन्न सन्तान। **आढ्यं च तत्कुलम्** विग्रह में **विशेषणं विशेष्येण बहुलम्** सूत्र से समास होने पर सुप् लुक् होकर **आढ्यकुल** शब्द बना है। अब **आढ्यकुलस्यापत्यम्** लौकिक विग्रह है। **आढ्यकुल+ङस्** से अपत्यार्थ में **तस्यापत्यम्** के अधिकार में **अत इञ्** से औत्सर्गिक **इञ्** प्राप्त था, उसे बाधकर के **कुलात् खः** से **ख** प्रत्यय हुआ। उसके स्थान पर **ईन्** आदेश होकर **ईन** बन गया। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **आढ्यकुल+ईन** बना। अन्त्य अकार का **यस्येति च** से लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **आढ्यकुलीन** बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य करके **आढ्यकुलीनः** सिद्ध हो जाता है।

बालमनोरमाकार ने यहाँ पर एक शंका उपस्थापित करके उसका समाधान किया है। यदि प्रकृतसूत्र में तदन्तविधि न भी की जाय तो **कुल** शब्द से ख-प्रत्यय करके **कुलीन** शब्द बन जाने के बाद **आढ्यश्चासौ कुलीनश्च** विग्रह करके कर्मधारय समास होने पर भी तो **आढ्यकुलीनः** शब्द की सिद्धि हो जाती है। ऐसे में तदन्तविधि मानने की क्या आवश्यकता है? इसका समाधान यह है कि तादृश कल्पना में इष्टसिद्धि नहीं होगी, क्योंकि हमें **आढ्यकुल का पुत्र** यह अर्थ अपेक्षित है न कि **आढ्य जो कुलीन पुत्र। कुलीन**-शब्द के साथ कर्मधारय समास करने पर **आढ्य**-शब्द **कुलीन** शब्द का विशेषण बन जायेगा। तब कुलगत धनी का पुत्र अर्थ की प्रतीति नहीं होगी अपितु स्वयं **आढ्य** होते हुये **कुलीन** अर्थ की प्रतीति होने लगेगी। अतः ख-प्रत्यय के आने के पूर्व ही कर्मधारयसमास करना होगा और तत्पश्चात् ख-प्रत्यय करना होगा। यदि स्वयं आढ्य और कुलीन अर्थ विवक्षित हो तो वैसा करने में कोई आपत्ति नहीं है। अर्थविवक्षा को ध्यान में रखकर कार्य किया जाता है।

११६३. अपूर्वपदादन्यतरस्यां यड्ढकञौ ४।१।१४०॥

कुलाद् इत्येव। पक्षे खः। कुल्यः, कौलेयकः, कुलीनः।
पदग्रहणं किम्? बहुकुल्यः, बाहुकुलेयकः, बहुकुलीनः।

अपूर्वपदादन्यतरस्यां यड्ढकञौ। पूर्वं च तत्पदं पूर्वपदम, अविद्यमानं पूर्वपदं यस्य तदपूर्वपदम्, तस्मादपूर्वपदात्, कर्मधारयगर्भबहुव्रीहिः। यत् च ढकञ् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो यड्ढकञौ। अपूर्वपदात् पञ्चम्यन्तम्, अन्यतरस्यां विभक्तिप्रतिरूपकमव्ययं, यकञौ प्रथमान्तम्। **कुलात् खः** से **कुलात्** की और **तस्यापत्यम्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

अविद्यमान पूर्वपद (पूर्वपद-रहित) वाले षष्ठ्यन्त कुल प्रातिपदिक से अपत्य जाति अर्थ में विकल्प से यत् और ढकञ् प्रत्यय होते हैं।

कुलाद् इत्येव। पक्षे खः। कुल-शब्द से होता है, अन्य शब्दों से नहीं। उक्त दोनों प्रत्यय वैकल्पिक हैं, अतः पक्ष में पूर्वसूत्र से ख-प्रत्यय भी होता है। यह पूर्वसूत्र

का विस्तार है। **यत्** में तकार इत्संज्ञक है, **य** बचता है। **ढकञ्** में ञकार इत्संज्ञक है, **ढक** बचता है। केवल **ढ्** के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **एय्** आदेश होने पर प्रत्यय का रूप **एयक** बन जाता है।

कुल्यः, कौलेयकः, कुलीनः। अच्छे कुल में उत्पन्न सन्तान। **कुलस्यापत्यम्** लौकिक विग्रह अर्थ में **कुल+ङस्** से अपत्यार्थ में **अपूर्वपदादन्यतरस्यां यड्ढकञौ** सूत्र से **यत्** प्रत्यय होने के पक्ष में तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **कुल+य** बना हुआ है। आदिवृद्धि के लिए ञित्, णित्, कित् आदि कोई निमित्त नहीं है। अन्त्य अकार का **यस्येति च** से लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **कुल्य** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य करके **कुल्य** यह प्रथम रूप सिद्ध हो जाता है। **ढकञ्** प्रत्यय होने के पक्ष में अनुबन्धलोप, एयादेश होकर **कुल+एयक** बनने के बाद ञित्त्वप्रयुक्त आदिवृद्धि होने पर अकारलोप होकर **कौल्+एयक=कौलेयक** शब्द बना है। स्वादिकार्य से **कौलेयकः** यह द्वितीय रूप सिद्ध हो जाता है। ये दोनों प्रत्यय वैकल्पिक हैं, इनके न होने के पक्ष में पूर्वसूत्र **कुलात् खः** से ख-प्रत्यय करके **कुलीनः** बनाया जा चुका है। इस तरह तीन रूप बनते हैं।

पदग्रहणं किम्? बहुकुल्यः, बाहुकुलेयकः, बहुकुलीनः। प्रकृतसूत्र में **अपूर्वपदात्** की जगह यदि **अपूर्वात्** मात्र रखते तो और एक समस्या होती। तब कुल-शब्द के पहले पूर्वपद न हो, ऐसा अर्थ न होकर कुल-शब्द से पूर्व कुछ भी न हो, ऐसा अर्थ बन जाता। फलतः **बहुकुल** शब्द से भी उक्त दोनों प्रत्ययों का अभाव हो जाता है। पद-शब्द के निवेश से **बहुकुल**-शब्द से भी अपत्यार्थ में उक्त दोनों प्रत्यय हो जाते हैं, कारण कि **बहुकुल** शब्द में कुल-शब्द से पूर्व में विद्यमान **बहु** शब्द पद न होकर ईषत्-असमाप्ति अर्थ में विहित **बहुच्** प्रत्यय है। प्रत्यय पद नहीं होता। अतः **बहुकुल** शब्द से उक्त दोनों प्रत्यय हो जाते हैं। यत्-प्रत्यय होने पर **बहुकुल्यः** सिद्ध होता है। **ढकञ्** प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि हो जाती है। यहाँ अचों के मध्य में आदि अच् बकारोत्तरवर्ती अकार है। अतः उसी की वृद्धि होकर **बाहुकुलेयकः** बनता है। पूर्वसूत्र से ख-प्रत्यय तो उभयावस्था में ही प्राप्त है, अतः **बहुकुलीनः** भी बन जाता है। पद-शब्द के ग्रहण से कुल-शब्दान्त का पूर्वावयव कोई पद नहीं होना चाहिये, किन्तु प्रत्यय होने पर तो कोई आपत्ति नहीं है।

११६४. महाकुलादञ्खञौ ४।४।१४१॥
अन्यतरस्याम् इत्यनुवर्तते। पक्षे खः।
माहाकुलः, माहाकुलीनः, महाकुलीनः।

महाकुलादञ्खञौ। अञ् च खञ् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः- अञ्खञौ। महाकुलात् पञ्चम्यन्तम्, अञ्खञौ प्रथमान्तम्। **अपूर्वपदादन्यतरस्यां यड्ढकञौ** से **अन्यतरस्याम्**

की, **कुलात् खः** से **कुलात्** की और **तस्यापत्यम्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

षष्ठ्यन्त महाकुल प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में विकल्प से अञ् और खञ् प्रत्यय होते हैं।

अन्यतरस्याम् इत्यनुवर्तते। पक्षे खः। अर्थात् पूर्वसूत्र से **अन्यतरस्याम्** की अनुवृत्ति होने के कारण उक्त दो प्रत्यय न होने के पक्ष में **कुलात् खः** से ख प्रत्यय होगा। पूर्वसूत्र से **अन्यतरस्याम्** पद की अनुवृत्ति न होती तो **समर्थानां प्रथमाद्वा** से **वा**-पद रूप महाविभाषा के अधिकृत रहने से पक्ष में ख-प्रत्यय न हो पाता।

यह सूत्र भी **कुलात् खः** का विस्तार ही है। दोनों प्रत्ययों के अकार इत्संज्ञक हैं, **अ** और **ख** बचते हैं। द्वितीय प्रत्यय के केवल **ख्** के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **ईन्** आदेश होने पर प्रत्यय का रूप **ईन** बन जाता है। **खञ्** और **ख** प्रत्ययों में ञित्त्व का अन्तर है। अतः ख-प्रत्यय के परे रहते आदिवृद्धि नहीं होगी किन्तु **खञ्** प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि होगी। ञित्त्वप्रयुक्त स्वरभेद भी है।

माहाकुलः, माहाकुलीनः, महाकुलीनः। महान् कुल में उत्पन्न सन्तान। **महत् च तत्कुलम्** विग्रह में कर्मधारयसमास, सुप् का लुक् होने पर तकार के स्थान पर **आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः** सूत्र से आकार आदेश होने पर सर्वणदीर्घ होकर **महाकुल** शब्द बनता है। **महाकुलस्यापत्यम्** लौकिक विग्रह में **महाकुल+ङस्** से **महाकुलादञ्खञौ** सूत्र से **अञ्** प्रत्यय होने के पक्ष में तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **महाकुल+अ** बना हुआ है। आदिवृद्धि और अकार का लोप होकर **माहाकुल** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य करके **माहाकुलः** यह प्रथम रूप सिद्ध हो जाता है। **खञ्** प्रत्यय होने के पक्ष में अनुबन्धलोप, ईनादेश, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **माहाकुलीन** शब्द बना है। स्वादिकार्य से **माहाकुलीनः** यह द्वितीय रूप सिद्ध हो जाता है। ये दोनों प्रत्यय वैकल्पिक हैं, इनके न होने के पक्ष में पूर्वसूत्र **कुलात् खः** से ख-प्रत्यय करके **महाकुलीनः** बन जाता है। तृतीय रूप में आदिवृद्धि प्राप्त नहीं है।

११६५. दुष्कुलाड्ढक् ४।१।१४२॥

पूर्ववत् पक्षे खः। दौष्कुलेयः, दुष्कुलीनः।

दुष्कुलाड्ढक्। दुष्कुलात् पञ्चम्यन्तं, ढक् प्रथमान्तम्। **अपूर्वपदादन्यतरस्यां यड्ढकञौ** से **अन्यतरस्याम्** की और **तस्यापत्यम्** सूत्र की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

षष्ठ्यन्त दुष्कुल प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में विकल्प से ढक् प्रत्यय होता है।

पूर्ववत् पक्षे खः। ढक् न होने के पक्ष में पूर्ववत् **कुलात् खः** सूत्र से ख-प्रत्यय होता है। स्मरण रहे कि उक्त सूत्र केवल कुल-शब्द और कुलान्तशब्द से ख-प्रत्यय करता है।

दौष्कुलेयः, दुष्कुलीनः। हीन कुल वाले की सन्तान। **दुष्टं कुलं यस्य स दुष्कुलः**। **दुष्कुलस्यापत्यम्** अर्थ में **दुष्कुल+ङस्** से अपत्यार्थ में **दुष्कुलाड्ढक्** सूत्र से **ढक्** प्रत्यय होने के पक्ष में तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, ढकार के स्थान पर एय्-आदेश होकर **दुष्कुल+एय** बना हुआ है। आदिवृद्धि और अकार का लोप होकर **दौष्कुलेय** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य करके **दौष्कुलेयः** यह प्रथम रूप सिद्ध हो जाता है। **ढक्** प्रत्यय न होने के पक्ष में **कुलात् खः** से ख-प्रत्यय, ईन् आदेश करके **दुष्कुलीनः** बन जाता है। इस तरह दो रूप बनते हैं।

११६६. स्वसुश्छः ४।१।१४३॥
स्वस्रीयः।

स्वसुश्छः। स्वसृ-शब्दस्य स्वसुः इति पञ्चम्यन्तं रूपं, छः प्रथमान्तम्। **तस्यापत्यम्** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

षष्ठ्यन्त स्वसृ प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में छ प्रत्यय होता है।

इस प्रत्यय में अनुबन्ध नहीं है, छकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **ईय्** आदेश होकर प्रत्यय का रूप **ईय** बन जाता है।

स्वस्रीयः। बहन की सन्तान, भानजा। **स्वसुः अपत्यं पुमान्** अर्थ में **स्वसृ+ङस्** से अपत्यार्थ में **स्वसुश्छः** सूत्र से **छ** प्रत्यय होने पर तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, छकार के स्थान पर ईय्-आदेश होकर **स्वसृ+ईय** बना हुआ है। **इको यणचि** से ऋकार को यण् होकर **स्वस्रीय** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य करके **स्वस्रीयः** सिद्ध हो जाता है।

११६७. भ्रातुर्व्यच्च ४।१।१४४॥
चाच्छः। अणोऽपवादः। भ्रातृव्यः, भ्रात्रीयः।

भ्रातुर्व्यच्च। भ्रातुः पञ्चम्यन्तं, व्यत् प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **तस्यापत्यम्** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है। च-शब्द से पूर्वसूत्र के **छः** का अनुकर्षण किया जाता है।

षष्ठ्यन्त भ्रातृ प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में व्यत् प्रत्यय होता है और चकारात् छ प्रत्यय भी होता है।

चाच्छः। अणोऽपवादः। च-शब्द से छ-प्रत्यय भी होता है यह **तस्यापत्यम्** से प्राप्त अण् प्रत्यय का अपवाद है। **व्यत्** में तकार इत्संज्ञक है, **व्य** बचता है। तित्करण **तित्स्वरितम्** से स्वरितस्वर के विधानार्थ है।

भ्रातृव्यः, भ्रात्रीयः। भाई का पुत्र, भतीजा। **भ्रातुरपत्यं पुमान्** अर्थ में **भ्रातृ+ङस्** में **भ्रातुर्व्यच्च** सूत्र से व्यत्-प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **भ्रातृव्य** शब्द बन जाता है। स्वादिकार्य से **भ्रातृव्यः** सिद्ध हो जाता है। छ-प्रत्यय होने के पक्ष में छकार के स्थान पर **ईय्** आदेश होकर **भ्रातृ+ईय** बना है। ऋकार को यण् होकर **भात्रीय** और स्वादिकार्य से **भ्रात्रीयः** सिद्ध हो जाता है।

११६८. व्यन्सपत्ने ४।१।१४५॥

भ्रातुर्व्यन् स्यादपत्ये, प्रकृतिप्रत्ययसमुदायेन शत्रौ वाच्ये।
भ्रातृव्यः शत्रुः। 'पाप्मना भ्रातृव्येण' इति तूपचारात्।

व्यन्सपत्ने। व्यन् प्रथमान्तं, सपत्ने सप्तम्यन्तम्। **भ्रातुर्व्यच्च** से **भ्रातुः** और **तस्यापत्यम्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है। सूत्र में **व्यन्+सपत्ने** में **नश्च** सूत्र से तुक् आगम होकर **व्यन्सपत्ने** बना है।

षष्ठ्यन्त भातृ प्रातिपदिक से अपत्य अर्थ में व्यन् प्रत्यय होता है, प्रकृतिप्रत्यय के समुदाय से शत्रु अर्थ वाच्य हो तो।

व्यत् और **व्यन्** में अनुबन्ध का अन्तर है। नित् होने पर **ञ्नित्यादिर्नित्यम्** सूत्र से आद्युदात्त होता है और तित् होने पर **तित्स्वरितम्** से स्वरित होता है। केवल भतीजा अर्थ गम्य होने पर पूर्वसूत्र से व्यत् प्रत्यय और शत्रु-भतीजा अर्थ गम्य होने पर प्रकृत सूत्र से **व्यन्** प्रत्यय होता है। यद्यपि दोनों प्रत्ययों से समान ही रूप बनते हैं, तथापि स्वर के द्वारा अर्थ का निर्णय किया जाता है।

भ्रातृव्यः शत्रुः। शत्रु भतीजा। **भ्रातुरपत्यं पुमान्** अर्थ में **भ्रातृ+ङस्** में **व्यन्सपत्ने** सूत्र से व्यन्-प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **भ्रातृव्य** शब्द बन जाता है। स्वादिकार्य से **भ्रातृव्यः** सिद्ध हो जाता है। इस तरह यहाँ व्यन्-प्रत्यय का अर्थ ही शत्रु है। शत्रु अर्थ में व्यन् ही होता है अर्थात् व्यन् एवं छ दोनों पर्याय से नहीं होते। भाष्यकार ने तो इस प्रत्यय का अपत्यार्थ में अनभिधान माना है।

'पाप्मना भ्रातृव्येण' इति तूपचारात्। श्रुतियों में **पाप्मना भ्रातृव्येण** (पाप-स्वरूप भतीजे से) ऐसा प्रयोग मिलता है। पाप-वाचक पाप्मन्-शब्द का पुंल्लिंग में प्रयोग किया गया है। देखा जाय तो भ्राता का पुत्र भतीजा पाप नहीं हो सकता किन्तु पापी हो सकता

है। ऐसी परिस्थिति में **पाप्मना भ्रातृव्येण** यह प्रयोग कैसे सम्भव है? इसका समाधान यह है कि भ्रातृ-पुत्र में पापरूपी धर्म आरोपित है- वह भतीजा पाप का ही अवतार हो। पाप ही भ्रातृपुत्र के रूप में मूर्त हो गया हो। इस प्रकार अर्थ में लक्षणा का आश्रयण करने से उक्त प्रयोग हो सकता है।

दूसरी शंका यह होती है कि स्त्रीलिंगप्रकरण में **नित्यं सपत्न्यादिषु** सूत्र से **सपत्नी** शब्द की निष्पत्ति की गयी है। वह स्त्रीलिंग में है तो यहाँ सूत्र में पुंल्लिंग **सपत्ने** शब्द का प्रयोग कैसे हुआ? इसका भी समाधान लक्षणा ही है। लक्षणाशक्ति से उपचारवश सपत्नी की तरह शत्रु भी दु:खदायी होता है, अत: उसे **सपत्न** कहा जा सकता है।

११६९. रेवत्यादिभ्यष्ठक् ४।१।१४६॥

रेवत्यादिभ्यष्ठक्। रेवती आदिर्येषां ते रेवत्यादयस्तेभ्य:। रेवत्यादिभ्य: पञ्चम्यन्तं, ठक् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तस्यापत्यम्** की अनुवृत्ति और **प्रत्यय:, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिता:, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार चल रहा है।

रेवती आदि गण में पठित प्रातिपदिकों से अपत्य अर्थ में तद्धितसंज्ञक ठक् प्रत्यय होता है।

ककार की इत्संज्ञा होती है। कित् होने से **किति च** की प्रवृत्ति हो सकेगी, जो वृद्धि करता है। ठकारोत्तरवर्ती अकार उच्चारणार्थ है, दूसरे मत में उच्चारणार्थ नहीं है अपितु ठ ऐसा पूरा अदन्त ही है। यह सूत्र भी अण् और ढक् आदि का अपवाद है। ठ के स्थान पर अगले सूत्र से इक आदेश किया जाता है।

रेवत्यादिगण:- रेवती, अश्वपाली, मणिपाली, द्वारपाली, वृकवञ्चिन्, वृकबन्धु, वृकग्राह, कर्णग्राह, दण्डग्राह, कुक्कुटाक्ष, (ककुदाक्ष), चामरग्राह।

११७०. ठस्येक: ७।३।५०॥

अङ्गात् परस्य ठस्येकादेश: स्यात्। रैवतिक:।

ठस्येक:। ठस्य षष्ठ्यन्तम्, इक: प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

अङ्ग से परे ठ् के स्थान पर इक आदेश होता है।

इक यह आदेश अदन्त है। यदि पूर्वसूत्र से विहित **ठक्** प्रत्यय में अकार उच्चारणार्थ माना जाता है तो केवल ठ् के स्थान पर **इक** आदेश होगा और यदि **ठ** पूरा है तो पूरे ठ के स्थान पर **इक** आदेश होगा। इक आदेश के अदन्त होने का प्रमाण यह है कि यदि इक् आदेश होता तो सूत्रकार **ठस्येक्** पढ़ते। अदन्त के स्थान पर अदन्त आदेश ही मानना उचित है। यदि हल् ठ् के स्थान पर आदेश विवक्षित होता तो सूत्रकार **ठ इक:** ऐसा पढ़ते। अत: ठकारोत्तरवर्ती अकार उच्चारणार्थ भी नहीं है और इत्संज्ञक भी नहीं,

अपितु अनुबन्ध ककार की इत्संज्ञा होने पर ठ पूरा ही शेष रहता है। भाष्यकार ने भी कहा है- **ठस्येति सङ्घातग्रहणम्** अर्थात् **ठस्येकः** सूत्र के ठ-शब्द से ठकार और अकार के समुदाय का ग्रहण किया गया है।

रैवतिकः। रेवती की सन्तान। **रेवत्या अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **रेवती+ङस्** से अपत्यार्थ में **तस्यापत्यम्** से अण् प्राप्त था, उसे बाधकर **स्त्रीभ्यो ढक्** से ढक् प्राप्त था, उसे भी बाधकर **रेवत्यादिभ्यष्ठक्** से ठक् प्रत्यय होकर उसका अनुबन्धलोप लोप करके **ठ** के स्थान पर **ठस्येकः** से **इक** आदेश होकर **रेवती+इक** बन गया है। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि करके **रैवती+इक** बना। अन्त्य ईकार का **यस्येति च** से लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **रैवतिक** बना। स्वादिकार्य करके **रैवतिकः** सिद्ध हो जाता है।

११७१. गोत्रस्त्रियाः कुत्सने ण च ४।१।१४७॥

गोत्रं या स्त्री तद्वाचकाच्छब्दाण्णठकौ स्तः कुत्सायाम्। सामर्थ्याद्यूनि। गार्ग्या अपत्यं गार्गः। गार्गिको वा जाल्मः। 'भस्याढे तद्धिते' इति पुंवद्भावाद् गार्ग्यशब्दाण्णठकौ। 'यस्य-' (सू.३११) इति लोपः। 'आपत्यस्य-' (सू. १०८२) इति यलोपः।

गोत्रस्त्रियाः कुत्सने ण च। गोत्रं च सा स्त्री गोत्रस्त्री, तस्याः गोत्रस्त्रियाः, पञ्चम्यन्तं, कुत्सने सप्तम्यन्तं, ण इति लुप्तप्रथमाकं पदं, चाव्ययम्। **रेवत्यादिभ्यष्ठक्** से **ठक्** की तथा **तस्यापत्यम्** सूत्र की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार चल रहा है।

गोत्र अर्थ में विद्यमान स्त्रीवाची प्रातिपदिकों से अपत्य अर्थ में तद्धितसंज्ञक ण और ठक् प्रत्यय होते हैं, यदि निन्दा गम्यमान हो तो।

सामर्थ्याद्यूनि। यह प्रत्यय सामर्थ्यवश युवापत्य अर्थ में ही होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि गोत्र-पद साक्षात् पुत्र अथवा पुत्री का वाचक नहीं है, किन्तु पौत्रप्रभृति अपत्य का द्योतक है। ऐसी स्थिति में एक गोत्रार्थक प्रत्यय से दूसरे गोत्रार्थक प्रत्यय का प्रतिषेध **एको गोत्रे** सूत्र के नियम से किया गया है। अतः प्रकृत सूत्र व्यर्थ हो जायेगा, उसके सामर्थ्य से युवापत्य में इस सूत्र की प्रवृत्ति मानी जाती है।

गार्ग्या अपत्यं गार्गः, गार्गिको वा जाल्मः। गार्गी का कुत्सित प्रपौत्र। **गर्गस्य गोत्रपत्यं कन्या** अर्थ में पहले **गर्गादिभ्यो यञ्** सूत्र से यञ्-प्रत्यय होने पर **गार्ग्य** शब्द बनता है और स्त्रीत्वविवक्षा में ङीप्-प्रत्यय होने पर अकार, यकार का लोप होकर **गार्गी** शब्द बनता है। **गार्ग्याः अपत्यं युवा** अर्थ में अब प्रत्यय करना है किन्तु **भस्याढे तद्धिते** से पुंवद्भाव होने पर पुनः **गार्ग्य**-शब्द ही बन जाता है। तब **गोत्रस्त्रियाः कुत्सने ण च** सूत्र से **ण** प्रत्यय होने के पक्ष में अनुबन्धलोप, सुप् का लुक् आदि होकर **गार्ग्य+अ** बन

जाता है। **यस्येति च** सूत्र से अकारलोप और **आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति** से यकारलोप होकर **गार्ग** शब्द बनता है। इसी तरह **ठक्** प्रत्यय होने के पक्ष में **ठस्येकः** सूत्र से **इक** आदेश, ईकारलोप होकर **गार्गिक** शब्द बन जाता है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **गार्गः, गार्गिकः** ये दो रूप बनते हैं।

'भस्याढे तद्धिते' इति पुंवद्भावाद् गार्ग्यशब्दाण्णठकौ। 'यस्य-' इति लोपः। 'आपत्यस्य-' इति यलोपः। अर्थात् **भस्याढे तद्धिते** से पुंवद्भाव होने के कारण **गार्ग्य**-शब्द से ही ण और ठक् प्रत्यय किये जाते हैं। बाद में **यस्येति च** सूत्र से अकारलोप और **आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति** से यकारलोप किया जाता है। जैसा कि ऊपर प्रक्रिया में दिखाया जा चुका है।

११७२. वृद्धाट्ठक् सौवीरेषु बहुलम् ४।१।१४८॥

सुवीरदेशोद्भवाः सौवीराः।
वृद्धात् सौवीरगोत्राद्यूनि बहुलं ठक् स्यात् कुत्सायाम्।
भागवित्तेः, भागवित्तिकः। पक्षे फक्। भागवित्तायनः।

वृद्धाट्ठक् सौवीरेषु बहुलम्। वृद्धात् पञ्चम्यन्तं, ठक् प्रथमान्तं, सौवीरेषु सप्तम्यन्तं, बहुलं प्रथमान्तम्। **गोत्रस्त्रियाः कुत्सने ण च** से **कुत्सने** और एकदेश **गोत्रे** की तथा **तस्यापत्यम्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार चल रहा है।

सुवीररदेशोद्भवाः **सौवीराः**। सूत्रस्थ **सौवीर**-शब्द का अर्थ है- सौवीर-देश मे उत्पन्न लोग।

सौवीर-गोत्र के बोधक **वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिकों से युवापत्य अर्थ में** बहुल से ठक् प्रत्यय होता है **कुत्सा अर्थ गम्य हो तो।**

पूर्वसूत्र से ठक् की अनुवृत्ति सम्भव होने पर भी पुनः ठक् का ग्रहण ण-प्रत्यय की निवृत्ति के लिये है।

भागवित्तेः, भागवित्तिकः। पक्षे फक्। भागवित्तायनः। व्यास जी के शिष्य भागवित्ति का निन्दित प्रपौत्र आदि वंशज। पहले **भगवित्तस्य सौवीरं गोत्रापत्यम्** विग्रह करके **इञ्** प्रत्यय, आदिवृद्धि, अकारलोप करके **भागवित्ति** शब्द बन जाने के बाद **वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद् वृद्धम्** सूत्र से वृद्धसंज्ञा होने पर **भागवित्ति**-शब्द से **वृद्धाट्ठक् सौवीरेषु बहुलम्** सूत्र से विकल्प से ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से इकादेश, इकारलोप करके **भागवित्तिक** शब्द बनता है और एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **भागवित्तिकः** सिद्ध हो जाता है। पक्ष में **यञिञोश्च** सूत्र के द्वारा **फक्** प्रत्यय होने पर आयन् आदेश होकर **भागवित्तायन**, स्वादिकार्य से **भागवित्तायनः** सिद्ध हो जाता है।

११७३. फेश्छ च ४।१।१४९॥

फिञन्तात् सौवीरगोत्रादपत्ये छः ठक् च कुत्सने गम्ये।

यमुन्दस्यापत्यं यामुन्दायनिः, तिकादित्वात् फिञ्। तस्यापत्यं यामुन्दायनीयः, यामुन्दायनिकः। कुत्सने किम्? यामुन्दायनिः। औत्सर्गिकस्याणो 'ण्यक्षत्रिय-' (सू.१२७६) इति लुक्। सौवीर इति किम्? तैकायनिः।

फेश्छ च। फेः पञ्चम्यन्तं, छ इति लुप्तप्रथमाकं पदं, चाव्ययम्। **वृद्धाट्ठक् सौवीरेषु बहुलम्** के सभी पदों की **गोत्रस्त्रियाः कुत्सने ण च** से **कुत्सने** और एकदेश **गोत्रे** की तथा **तस्यापत्यम्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार चल रहा है।

फिञ्प्रत्ययान्त सौवीर-गोत्र के बोधक वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिकों से कुत्सित युवापत्य अर्थ में बहुल से छ-प्रत्यय तथा ठक् प्रत्यय होते हैं।

यद्यपि सूत्रस्थ पञ्चम्यन्त **फेः** (फि) से **फिञ्** और **फिन्** प्रत्ययों का ग्रहण हो सकता है, तथापि **वृद्धात्** पद के कारण केवल फिञ् का ही ग्रहण किया जाता है, फिन् का नहीं, क्योंकि फिञ् प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि होती है, जिससे शब्द वृद्धसंज्ञक हो जाता है किन्तु फिन् प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि का निमित्ती नहीं बनता।

यमुन्दस्यापत्यं यामुन्दायनिः, तिकादित्वात् फिञ्। तस्यापत्यं यामुन्दायनीयः, यामुन्दायनिकः। यमुन्द का अपत्य **यामुन्दायनिः** और उसका अपत्य **यामुन्दायनीयः, यामुन्दायनिकः**। पहले **यमुन्दस्य गोत्रापत्यम्** अर्थ में **यमुन्द+ङस्** से **तिकादिभ्यः फिञ्** सूत्र से फिञ् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, फकार के स्थान पर **आयन्** आदेश होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **यामुन्दायनि** शब्द बनता है। अब **यामुन्दायनेः कुत्सितम् अपत्यम्** अर्थ में **फेश्छ च** सूत्र से **छ** प्रत्यय होने पर उसके स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र से **ईय्** आदेश होने पर **यामुन्दायनि+ईय** बना हुआ है। इकार का **यस्येति च** से लोप होकर **यामुन्दायनीय** बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **यामुन्दायनीयः** सिद्ध हो जाता है। ठक् प्रत्यय होने के पक्ष में इकादेश और अन्य कार्य पूर्ववत् करके **यामुन्दायनिकः** सिद्ध हो जाता है।

जितनी बार तद्धित प्रत्यय होगा, उतनी बार प्रकृति विभक्तियुक्त होगी और प्रत्यय के बाद तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् किया जायेगा और एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर स्वादिकार्य होंगे।

कुत्सने किम्? यामुन्दायनिः। औत्सर्गिकस्याणो 'ण्यक्षत्रिय-'इति लुक्। प्रकृतसूत्र में पूर्वसूत्र से **कुत्सने** की अनुवृत्ति की गयी है, अतः कुत्सायुक्त गोत्रापत्य अर्थ गम्य होने पर ही ये दो प्रत्यय किये जाते हैं, अन्यथा नहीं होते। इसके फलस्वरूप कुत्सार्थ

गम्य न होने पर **यामुन्दायनिः** ही रह जाता है। यद्यपि **यामुन्दायनि** में **तस्यापत्यम्** सूत्र से औत्सर्गिक अण् प्रत्यय तो होता है किन्तु उसका **ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः** सूत्र से लुक् होने के कारण **यामुन्दायनि** ही बनता है। स्वादिकार्य से **यामुन्दायनिः** सिद्ध हो जाता है।

सौवीर इति किम्? तैकायनिः। प्रकृतसूत्र में **सौवीरेषु** की अनुवृत्ति आने के कारण सौवीर से अतिरिक्त गोत्रस्थल में **छ** और **ठक्** प्रत्यय नहीं होते, किन्तु पूर्ववत् अण् प्रत्यय होकर उसका लुक् हो जाता है। **तिकस्य गोत्रापत्यं तैकायनिः, तस्यापत्यमपि च तैकायनिः।**

११७४. फाण्टाहृतिमिमताभ्यां णफिञौ ४।१।१५०॥

सौवीरेषु। नेह यथासंख्यम्, अल्पाच्तरस्य परनिपातात्लिङ्गाद् इति वृत्तिकारः। भाष्ये तु 'यथासंख्यमेव' इति स्थितम्। फाण्टाहृतः, फाण्टाहृतायनिः। मैमतः, मैमतायनिः।

फाण्टाहृतिमिमताभ्यां णफिञौ। फाण्टाहृतिश्च मिमतश्च फाण्टाहृतिमिमतौ, ताभ्यां फाण्टाहृतिमिमताभ्याम्, इतरेतरयोगद्वन्द्वः। णश्च फिञ् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो णफिञौ। **वृद्धाट्ठक् सौवीरेषु बहुलम्** से **सौवीरेषु** की तथा **तस्यापत्यम्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार चल रहा है। **कुत्सने** की निवृत्ति हो गयी है।

सौवीर-देश वाले फाण्टाहृति और मिमत शब्दों से अपत्यार्थ में ण और फिञ् प्रत्यय होते हैं।

सौवीरेषु। प्रकृतसूत्र में **सौवीरेषु** की अनुवृत्ति आती है।

नेह यथासंख्यम्, अल्पाच्तरस्य परनिपातात्लिङ्गाद् इति वृत्तिकारः। यहाँ पर प्रकृति भी दो हैं और प्रत्यय भी दो ही हैं। अतः यथासंख्य होना चाहिये अर्थात् फाण्टाहृति-शब्द से ण-प्रत्यय और मिमत-शब्द से फिञ्-प्रत्यय होना चाहिथे था किन्तु यथासंख्य नहीं होता, क्योंकि **अल्पाच्तरम्** सूत्र के नियम से **फाण्टाहृति** और **मिमत** शब्दों में द्वन्द्व हो जाने से **मिमत** शब्द का पूर्वनिपात होना चाहिये था किन्तु सूत्रकार ने ऐसा न करके अधिक अच् वाले **फाण्टाहृति** शब्द का पूर्वनिपात और अल्पाच्तर **मिमत** शब्द का परनिपात किया है, उससे यह ज्ञापन देना चाहते हैं कि यहाँ यथासंख्य न होकर दोनों शब्दों से दोनों प्रत्यय हो सकते हैं।

भाष्ये तु 'यथासंख्यमेव' इति स्थितम्। कौमुदीकार का कथन है कि भाष्य में यथासंख्य को ही स्वीकार किया गया है। वस्तुतः कैयट ने पूर्वनिपात प्रकरण की अनित्यता सूचित की है। फलतः केवल पूर्वनिपात व्यवथा के अतिक्रमण से यथासंख्य का बाध नहीं मानना चाहये। अतः यथासंख्य से ही **फाण्टाहृति** शब्द से **ण** और **मिमत**

शब्द से **फिञ्** प्रत्यय ही मानना चाहिये। कौमुदीकार ने तो काशिकाकार का ही मत मानकर दोनों उदाहरण दिये हैं।

दोनों प्रत्ययों में ण-प्रत्यय में णकार की इत्संज्ञा का फल केवल **मिमत** शब्द में आदिवृद्धि करना है, क्योंकि **फाण्टाहृति** शब्द में तो पूर्वत आकार विद्यमान है। यदि यह कहा जाय कि **फाण्टाहृता भार्या यस्य सः** विग्रह में बहुव्रीहिसमास होने की स्थिति में **वृद्धि**-शब्द से विहित वृद्धिवर्णान्त शब्द को पुंवद्भाव सार्थक होता है तो वह भी आवश्यक नहीं है, क्योंकि वहाँ **एको गोत्रे** सूत्र के नियम से गोत्रार्थक फिञ्प्रत्ययान्त से दूसरा अपत्यार्थक प्रत्यय नहीं होगा। किञ्च दूसरे युवार्थक प्रत्यय की सम्भावना भी नहीं है, क्योंकि स्त्रीलिङ्ग में **गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्** सूत्र के नियम से युवार्थक प्रत्यय की प्रसक्ति नहीं होती है। अतः **फाण्टाहृता** शब्द समीचीन नहीं है, क्योंकि इञन्त **फाण्टाहृति** शब्द से दूसरा गोत्रार्थक प्रत्यय अण् नहीं आ सकता। इस विवेचन से यह साफ हो जाता है कि यहाँ पर यथासंख्य भी नहीं है। अगर यथासंख्य होता तो **ण** प्रत्यय को णित्करण करने की कोई आवश्यकता ही नहीं थी। णित्करण आदिवृद्धि के लिये होता है और **फाण्टाहृत** शब्द में वृद्धिसंज्ञक आकार पहले से ही विद्यमान है। **मिमत**-शब्द में आदिवृद्धि के लिये ही णित्करण है। इस तरह **फाण्टाहृत** और **मिमत** शब्दों से दोनों ही प्रत्यय किये जाते हैं। यहाँ पर कैयट का मत चिन्त्य है।

फाण्टाहृतः, फाण्टाहृतायनिः। फाण्टाहृति की सन्तान। **फाण्टाहृतेरपत्यम्** अर्थ में **फाण्टाहृति+ङस्** से **फाण्टाहृतिमिमताभ्यां णफिञौ** सूत्र से **ण**-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, इकारलोप होकर **फाण्टाहृत** बनता है। स्वादिकार्य से **फाण्टाहृतः** सिद्ध हो जाता है। **फिञ्** होने के पक्ष में फकार के स्थान पर **आयन्** आदेश होने पर प्रत्यय का स्वरूप **आयनि** होता है और अन्यकार्य पूर्ववत् करके **फाण्टाहृतायनिः** सिद्ध हो जाता है।

मैमतः, मैमतायनिः। मिमत की सन्तान। **मिमतस्यापत्यम्** अर्थ में **मिमत+ङस्** से **फाण्टाहृतिमिमताभ्यां णफिञौ** सूत्र से **ण**-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **मैमत** बनता है। स्वादिकार्य से **मैमतः** सिद्ध हो जाता है। **फिञ्** होने के पक्ष में फकार के स्थान पर **आयन्** आदेश होने पर प्रत्यय का स्वरूप **आयनि** होता है और अन्यकार्य पूर्ववत् करके **मैमतायनिः** सिद्ध हो जाता है।

११७५. कुर्वादिभ्यो ण्यः ४।१।१५१॥

अपत्ये। कौरव्या ब्राह्मणाः। वावदूक्याः।
'सम्राजः क्षत्रिये' (ग.सू.७५)। साम्राज्यः। साम्राजोऽन्यः।

कुर्वादिभ्यो ण्यः। कुरुरादिर्येषां ते कुर्वादयस्तेभ्यः कुर्वादिभ्यः, बहुव्रीहिः। कुर्वादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, ण्यः प्रथमान्तम्। **तस्यापत्यम्** की अनुवृत्ति और **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

कुरु-आदि गणपठित षष्ठ्यन्त प्रातिपदिकों से ण्य प्रत्यय होता है, अपत्य अर्थ में।

ण्य में णकार इत्संज्ञक है, **य** बचता है। णित्करण आदिवृद्धि के लिये है।

कौरव्या ब्राह्मणाः। कुरु नामक ब्राह्मण के अनेक पुत्र। **कुरोः अपत्यानि पुमांसः** विग्रह में **कुरु+ङस्** से **कुर्वादिभ्यो ण्यः** सूत्र से ण्य-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **कुरु+य** बना है। णित्त्वप्रयुक्त आदिवृद्धि होकर **कौरु+य** बना है। **ओर्गुणः** सूत्र से रेफोत्तरवर्ती उकार को गुण ओकार होने पर उसके स्थान पर **वान्तो यि प्रत्यये** सूत्र के द्वारा अवादेश होकर **कौरव्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य करने पर बहुवचन में **कौरव्याः** सिद्ध हो जाता है।

वावदूक्याः। वावदूक के अनेक पुत्र। **वावदूकस्य अपत्यानि पुमांसः** विग्रह में **वावदूक+ङस्** से **कुर्वादिभ्यो ण्यः** सूत्र से ण्य-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके, पर्जन्यवल्लक्षणप्रवृत्तिन्याय से णित्त्वप्रयुक्त आदिवृद्धि और **यस्येति च** से अकार का लोप करके **वावदूक्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य करने पर बहुवचन में **वावदूक्याः** सिद्ध हो जाता है।

'सम्राजः क्षत्रिये'। यह कुर्वादिगण का अन्तर्गणसूत्र है। गणसूत्रार्थः- सम्राज्-शब्द से क्षत्रिया से उत्पन्न अर्थ की ही विवक्षा में ण्य प्रत्यय होता है, अन्यथा नहीं होता।

साम्राज्यः। सम्राट् का क्षत्रिया से उत्पन्न पुत्र। **सम्राजोऽपत्यम्** अर्थ में **समाज्+ङस्** से **सम्राजः क्षत्रिये** गणसूत्र के नियमानुसार **कुर्वादिभ्यो ण्यः** सूत्र से **ण्य** प्रत्यय होने पर तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि होकर **साम्राज्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **साम्राज्यः** सिद्ध हो जाता है।

साम्राजोऽन्यः। क्षत्रियेतर में उत्पन्न सम्राट् का पुत्र। **सम्राजः क्षत्रिये** गणसूत्र के नियमानुसार क्षत्रिया से इतर स्त्रियों में उत्पन्न सन्तान के लिये ण्य प्रत्यय नहीं होता। फलतः **तस्यापत्यम्** सूत्र से अण् प्रत्यय होकर **साम्राजः** बनता है।

कुर्वादिगणः- कुरु, गर्गर, मङ्कुष, अजमार, रथकार, वावदूक। **सम्राजः क्षत्रिये।** कवि, मति, (विमति), कापिञ्जलादि, वाक्, वामरथ, पितृमत्, इन्द्रजाली, एजि, वातकि, दामोष्णीषि, गणकारि, कैशोरि, कुट, शालाका, (शलाका), मुर, पुर, एरका, शुभ्र, अभ्र, दर्भ, केशिनी। **वेनाच्छन्दसि।** शूर्पणाय, श्यावनाय, श्यावरथ, शावपुत्र, सत्यंकार, वडभीकार, पथिकार, मूढ, शकन्धु, शङ्कु, शाक, शालिन्, शालीन, कर्तृ, हर्तृ, इन, पिण्डी, तक्षन्, वामरथस्य, कण्वादिवत्स्वरवर्जम्।

११७६. सेनान्तलक्षणकारिभ्यश्च ४।१।१५२॥

एभ्यो ण्यः। 'एति सञ्ज्ञायाम्-' (सू.१०२३) इति सस्य षः। हारिषेण्यः। लाक्षण्यः। कारिः शिल्पी, तस्मात् तान्तुवाय्यः। कौम्भकार्यः। नापित्यः।

सेनान्तलक्षणकारिभ्यश्च। सेनोऽन्ते यस्य स सेनान्तः, बहुव्रीहिः। सेनान्तश्च लक्षणं च कारिश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः सेनान्तलक्षणकारयस्तेभ्यः सेनान्तलक्षणकारिभ्यः। **कुर्वादिभ्यो ण्यः** से **ण्यः** की और **तस्यापत्यम्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

सेन-शब्दान्त, लक्षण-शब्द तथा कारि (शिल्पी) वाची षष्ठ्यन्त प्रातिपदिकों से ण्य प्रत्यय होता है, अपत्य अर्थ में।

'एति सञ्ज्ञायाम्-' इति सस्य षः। आगे वक्ष्यमाण **हारिषेण्यः** प्रयोग में **एति संज्ञायामगात्** सूत्र से **सेन** शब्द के सकार को षत्व किया जाता है। काशिका में यह सूत्र **सुषामादिषु च** (८.३.९८) का गणसूत्र माना गया है किन्तु कौमुदी में यह स्वतन्त्र सूत्र के रूप में स्वीकृत है।

लक्षण-शब्द का स्वरूप ग्रहण किया गया है। अतः लक्षणवाची अन्य शब्दों का ग्रहण नहीं होता। **कारि**-शब्द का अर्थ है **शिल्पी**।

हारिषेण्यः। हरिषेण नामक व्यक्ति का पुत्र। **हरिषेणस्यापत्यम्** अर्थ में **हरिषेण+ङस्** से **सेनान्तलक्षणकारिभ्यश्च** सूत्र से **ण्य** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि; अकारलोप होकर **हारिषेण्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **हारिषेण्यः** सिद्ध हो जाता है। **हरिषेणः** में षत्व से पूर्व **हरिसेन** था। अतः षत्व को असिद्ध मानते हुए **सेनान्त** शब्द यह बन जाता है।

लाक्षण्यः। लक्षण का पुत्र। **लक्षणमस्यास्ति** अर्थ में **अर्शआदिभ्योऽच्** सूत्र से मतुबर्थ में अच्-प्रत्यय होकर **लक्षणः** बना है। **लक्षणस्यापत्यम्** अर्थ में **लक्षण+ङस्** से **सेनान्तलक्षणकारिभ्यश्च** सूत्र से **ण्य** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **लाक्षण्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **लाक्षण्यः** सिद्ध हो जाता है।

कारिः शिल्पी, तस्मात् तान्तुवाय्यः। शिल्पी को **कारि** कहते हैं, उससे ण्य प्रत्यय होता है। **तान्तुवाय्यः।** तन्तुवाय का पुत्र। **तन्तुवायस्यापत्यम्** अर्थ में **तन्तुवाय+ङस्** से **सेनान्तलक्षणकारिभ्यश्च** सूत्र से **ण्य** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **तान्तुवाय्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **तान्तुवाय्यः** सिद्ध हो जाता है।

इसी तरह **कुम्भकार** और **नापित** भी **कारि=शिल्पी** कहलाते हैं। अतः उनसे भी अपत्य अर्थ में ण्य-प्रत्यय किया जायेगा।

कौम्भकार्यः। कुम्भकार का पुत्र। **कुम्भकारस्यापत्यम्** अर्थ में **कुम्भकार+ङस्** से **सेनान्तलक्षणकारिभ्यश्च** सूत्र से **ण्य** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **कौम्भकार्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कौम्भकार्यः** सिद्ध हो जाता है।

नापित्यः। नाई का पुत्र। **नापितस्यापत्यम्** अर्थ में **नापित+ङस्** से **सेनान्तलक्षणकारिभ्यश्च** सूत्र से **ण्य** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **नापित्य** और स्वादिकार्य से **नापित्यः** सिद्ध हो जाता है।

११७७. उदीचामिञ् ४।१।१५३॥

हारिषेणिः। लाक्षणिः। तान्तुवायिः। कौम्भकारिः।
नापितात्तु परत्वात् फिञेव। नापितायनिः।
'तक्ष्णोऽण उपसंख्यानम्'(वा.२५४०)। 'षपूर्व-'(सू.११६०) इत्यनोऽकारलोपः।
ताक्ष्णः। पक्षे ताक्षण्यः।

उदीचामिञ्। उदीचां षष्ठ्यन्तम्, इञ् प्रथमान्तम्। **सेनान्तलक्षणकारिभ्यश्च** से **सेनान्तलक्षणकारिभ्यः** की और **तस्यापत्यम्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

उदीच्य आचार्यों के मत में सेन-शब्दान्त, लक्षण-शब्द तथा कारि (शिल्पी) वाची षष्ठ्यन्त प्रातिपदिकों से इञ् प्रत्यय होता है, अपत्य अर्थ में।

इस तरह प्राच्य आचार्यों के मत में सेनान्त, लक्षण, कारि शब्दों से ण्य-प्रत्यय और उदीच्य आचार्यों के मत में इञ्-प्रत्यय होता है।

हारिषेणिः। हरिषेण नामक व्यक्ति का पुत्र। **हरिषेणस्यापत्यम्** अर्थ में **हरिषेण+ङस्** से **उदीचामिञ्** सूत्र से **इञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **हारिषेणि** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **हारिषेणिः** सिद्ध हो जाता है।

लाक्षणिः। लक्षण का पुत्र। **लक्षणस्यापत्यम्** अर्थ में **लक्षण+ङस्** से **उदीचामिञ्** सूत्र से **इञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **लाक्षणि** और स्वादिकार्य से **लाक्षणिः** सिद्ध हो जाता है।

तान्तुवायिः। तन्तुवाय का पुत्र। **तन्तुवायस्यापत्यम्** अर्थ में **तन्तुवाय+ङस्** से **उदीचामिञ्** सूत्र से **इञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **तान्तुवायि** और स्वादिकार्य से **तान्तुवायिः** सिद्ध हो जाता है।

कौम्भकारिः। कुम्भकार का पुत्र। **कुम्भकारस्यापत्यम्** अर्थ में **कुम्भकार+ङस्** से **उदीचामिञ्** सूत्र से **इञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **कौम्भकारि** और स्वादिकार्य से **कौम्भकारिः** सिद्ध हो जाता है।

नापितात्तु परत्वात् फिञेव। नापितायनिः। नाई का पुत्र। **नापितस्यापत्यम्** अर्थ में **नापित+ङस्** से **उदीचामिञ्** सूत्र से प्राप्त इञ् को परत्वात् बाधकर वक्ष्यमाण **तिकादिभ्यः फिञ्** सूत्र से फिञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, फकार के स्थान पर आयन् आदेश, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **नापित्+आयनि=नापितायनि** और स्वादिकार्य से **नापितायनिः** सिद्ध हो जाता है।

'तक्ष्णोऽण उपसंख्यानम्'। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- उदीच्य आचार्यों के मत में तक्षन्-शब्द से अपत्यार्थ में अण्-प्रत्यय होता है।

'षपूर्व-' इत्यनोऽकारलोपः। अर्थात् **तक्षन्**-शब्द से अण् प्रत्यय होने पर प्रकृतिस्थ **अन्** के अकार का **षपूर्वहन्धृतराज्ञामणि** सूत्र से लोप किया जाता है।

ताक्ष्णः। बढ़ई का पुत्र। **तक्ष्णोऽपत्यम्** अर्थ में **तक्षन्+ङस्** से **तक्ष्णोऽण उपसंख्यानम्** वार्तिक से उदीच्य आचार्यों के मत में **अण्** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **तक्षन्+अ** बना हुआ है। आदिवृद्धि होने के बाद प्रकृति के अन् के अकार का **षपूर्वहन्धृतराज्ञामणि** सूत्र से लोप करके **ताक्ष्ण** शब्द बनता है। स्वादिकार्य से **ताक्ष्णः** सिद्ध हो जाता है।

पक्षे ताक्षण्यः। प्राच्य आचार्यों के मत में अण् नहीं होता, अपितु **सेनान्तलक्षणकारिभ्यश्च** सूत्र से ही **ण्य** प्रत्यय होने पर **ये चाभावकर्मणोः** सूत्र के द्वारा प्रकृतिभाव हो जाने से टिलोप का अभाव हो जाता है, जिससे **ताक्षण्य** शब्द बनता है और स्वादिकार्य से **ताक्षण्यः** सिद्ध हो जाता है।

११७८. तिकादिभ्यः फिञ् ४।१।१५४॥

तैकायनिः।

तिकादिभ्यः फिञ्। तिक आदिर्येषां ते तिकादयस्तेभ्यस्तिकादिभ्यः। तिकादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, फिञ् प्रथमान्तम्। **तस्यापत्यम्** की अनुवृत्ति और **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

तिकादिगणपठित षष्ठी-समर्थ प्रातिपदिकों से अपत्य अर्थ में फिञ् प्रत्यय होता है।

फिञ् में ञकार इत्संज्ञक है, फकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र से **आयन्** आदेश होने पर प्रत्यय का स्वरूप **आयनि** बन जाता है।

तैकायनिः। तिक का पुत्र। **तिकस्यापत्यम्** अर्थ में **तिक+ङस्** में **तिकादिभ्यो फिञ्** सूत्र से फिञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, आयनादेश, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **तिक+आयनि** बना है। आदिवृद्धि और अकारलोप होकर **तैकायनि** तथा स्वादिकार्य से **तैकायनिः** सिद्ध हो जाता है।

तिकादिगणः- तिक, कितव, संज्ञाबालशिख, (संज्ञा, बाला, शिखा), उरस्, शाट्य, सैन्धव, यमुन्द, रूप्य, ग्राम्य, नील, अमित्र, गोकक्ष, कुरु, देवरथ, तैतिल, औरस, कौरव्य, भौरिकि, भौलिकि, चौपयत, चैटयत, शीकयत, क्षैतयत, वाजवत, चन्द्रमस्, शुभ, गङ्गा, वरेण्य, सुपामन्, आरब्ध, बाह्यक, स्वल्पक, वृष, लोमक, उदन्य, यज्ञ।

११७९. कौसल्यकार्मार्याभ्यां च ४।१।१५५॥

अपत्ये फिञ्। इञोऽपवादः। परमप्रकृतेरेवायमिष्यते। प्रत्ययसन्नियोगेन प्रकृतिरूपं निपात्यते। कोसलस्यापत्यं कौसल्यायनिः। कर्मारस्यापत्यं कार्मार्यायणिः। 'छागवृषयोरपि' (वा.२६४३)। छाग्यायनिः। वार्ष्यायणिः।

कौसल्यकार्मार्याभ्यां च। कौसल्यश्च कार्मार्यश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः कौसल्यकार्मार्यौ, ताभ्यां कौसल्यकार्मार्याभ्यां पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **तिकादिभ्यः फिञ्** से **फिञ्** की और **तस्यापत्यम्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

कौसल्य और कार्माय इन षष्ठी-समर्थ प्रातिपदिकों से अपत्य अर्थ में फिञ् प्रत्यय होता है।

इञोऽपवादः। यह **अत इञ्** से प्राप्त इञ् प्रत्यय का अपवाद है।

परमप्रकृतेरेवायमिष्यते। भाष्यकार की इष्टि है कि यह फिञ् परमप्रकृति से ही हो। सूत्र में **कौसल्य** और **कार्मार्य** ये प्रकृति निर्दिष्ट हैं किन्तु इनमें भी क्रमशः **ञ्य** तथा **ण्य** प्रत्यय हो चुका है। उक्त प्रत्ययों की भी प्रकृति को परमप्रकृति कहा जायेगा। वर्तमान में विधीयमान प्रकृति से पूर्व की प्रकृति परमप्रकृति होती है। इस तरह परमप्रकृति **कोसल** और **कर्मार** शब्द होंगें। यद्यपि सूत्र में **कोसल्य** और **कार्मार्य** शब्द का ग्रहण किया गया है तथापि भाष्यकार की इष्टि के अनुसार परमप्रकृति **कोसल** और **कर्मार** शब्दों से ही यह फिञ् प्रत्यय किया जायेगा।

प्रत्ययसन्नियोगेन प्रकृतिरूपं निपात्यते। फिञ् प्रत्यय के सन्नियोग में **कोसल**-शब्द के स्थान पर **कोसल्य** और **कर्मार**-शब्द के स्थान पर **कार्मार्य** आदेशों का निपातन भी प्रकृत सूत्र से ही किया जाता है। उक्त **कोसल्य**-शब्द और **कार्मार्य** शब्द के लिये भाष्यकार ने तो प्रत्यय को युट् आगम का निर्देश दिया है। युट् में टित् होने के

कारण प्रत्यय के आदि में बैठेगा। उकार उच्चारणार्थ है। इस तरह **फिञ्** होने पर **आयनि** बनता है और उसको युट् आगम करने पर **यायनि** बनेगा।

कोसलस्यापत्यं कौसल्यायनिः। कोसल का अपत्य। **कोसलस्य युवापत्यम्** अर्थ में **कोसल+ङस्** से **कौसल्यकार्मार्याभ्यां च** सूत्र के द्वारा **फिञ्** प्रत्यय और उसको **युट्** आगम करने पर फकार के स्थान पर आयन् आदेश, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **कोसल+यायनि** बन जाता है। आदिवृद्धि और अकारलोप करके **कौसल्यायनि** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कौसल्यायनिः** सिद्ध हो जाता है।

कर्मारस्यापत्यं कार्मार्यायणिः। कर्मार का अपत्य। **कर्मारस्य अपत्यम्** अर्थ में **कर्मार+ङस्** से **कौसल्यकार्मार्याभ्यां च** सूत्र के द्वारा **फिञ्** प्रत्यय और उसको **युट्** आगम करने पर फकार के स्थान पर आयन् आदेश, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **कर्मार+यायनि** बन जाता है। आदिवृद्धि और अकारलोप करके **कार्मार्यायनि,** रेफ से परे नकार को णत्व होकर **कार्मार्यायणि** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कामार्यायणिः** सिद्ध हो जाता है।

यद्यपि **ञ्य** और **ण्य** प्रत्ययान्त **कौसल्य** और **कार्मार्य** शब्दों से **फिञ्** प्रत्यय करने पर उक्त दोनों इष्ट रूपों की सिद्धि हो सकती है तथापि परमप्रकृति **कोसल, कर्मार** शब्दों से ही यह प्रत्यय किया जाता है, क्योंकि **ञ्य** और **ण्य** प्रत्यय के अपत्यार्थ में होने के बाद युवार्थ में ही पुनः प्रत्यय हो सकेंगे, न कि अपत्यार्थ में। अतः प्रत्यय की निष्पत्ति परम-प्रकृति से ही की जाय, ऐसा भाष्यकार का आशय है।

'छागवृषयोरपि'। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- छाग और वृष शब्दों से अपत्य अर्थ में फिञ् प्रत्यय और उसको युट् आगम होता है।

छाग्यायनिः। बकरे का बच्चा। **छागस्यापत्यम्** अर्थ में **छाग+ङस्** से **छागवृषयोरपि** वार्तिक के द्वारा **फिञ्** प्रत्यय और उसको **युट्** आगम करने पर फकार के स्थान पर आयन् आदेश, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **छाग+यायनि** बन जाता है। आदिवृद्धि और अकारलोप करके **छाग्यायनि** शब्द बनता है। एंकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **छाग्यायनिः** सिद्ध हो जाता है।

वार्ष्यायणिः। बैल का बच्चा। **वृषस्यापत्यम्** अर्थ में **वृष+ङस्** से **छागवृषयोरपि** वार्तिक के द्वारा **फिञ्** प्रत्यय और उसको **युट्** आगम करने पर फकार के स्थान पर आयन् आदेश, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **वृष+यायनि** बन जाता है। आदिवृद्धि और अकारलोप, षकार से परे नकार को णत्व होकर **वार्ष्यायणि** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वार्ष्यायणिः** सिद्ध हो जाता है।

११८०. अणो द्व्यचः ४।१।१५६॥

अपत्ये फिञ्। इञोऽपवादः। कार्त्रायणिः।

अण इति किम्? दाक्षायणः। द्व्यचः किम्? औपगविः।

'त्यदादीनां फिञ्वा वाच्यः' (वा.५०५०)। **त्यादायनिः, त्यादः।**

अणो द्व्यचः। द्वौ अचौ यस्मिन् स द्व्यच्, तस्माद् द्व्यचः। अणः पञ्चम्यन्तं, द्व्यचः पञ्चम्यन्तम्। **तिकादिभ्यः फिञ्** से **फिञ्** की और **तस्यापत्यम्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

अण्-प्रत्ययान्त दो अच् वाले प्रातिपदिकों से अपत्य अर्थ में फिञ् प्रत्यय होता है।

इञोऽपवादः। यह सूत्र **अत इञ्** का अपवाद है।

कार्त्रायणिः। कार्त्र का पुत्र। **कर्तुः छात्रः** विग्रह में **तस्येदम्** सूत्र से अण् प्रत्यय, आदिवृद्धि, ऋकार को यण् होकर **कार्त्र** शब्द बना है। इस तरह यह अण्-प्रत्ययान्त शब्द है। **कार्त्रस्य अपत्यम्** अर्थ में **कार्त्र+ङस्** इस स्थिति में **अणो द्व्यचः** सूत्र के द्वारा **फिञ्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, आयन् आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् आदि करके **कार्त्र+आयनि** बना है। पर्जन्यवल्लक्षणन्यायेन आदिवृद्धि होने पर अकार का **यस्येति च** से लोप, रेफ से नकार को णत्व होकर **कार्त्रायणि** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य से **कार्त्रायणिः** सिद्ध हो जाता है।

अण इति किम्? दाक्षायणः। प्रकृतसूत्र में **अणः** पद का निवेश होने से अणन्त से यह प्रत्यय होगा। अतः **दाक्षेः अपत्यम्** में इञ्प्रत्ययान्त **दाक्षि** शब्द से फिञ् प्रत्यय नहीं होता, अपितु **यञिञोश्च** से फक् प्रत्यय होने पर फकार के स्थान पर **आयन्** आदेश होकर **दाक्षायणः** बनता है।

द्व्यचः किम्? औपगविः। प्रकृतसूत्र में **द्व्यचः** पद का निवेश होने से दो अच् वाली प्रकृति से ही यह प्रत्यय होगा। अतः **औपगवस्य अपत्यम्** में अणन्त होने पर भी **औपगव** शब्द से फिञ् प्रत्यय नहीं होता, क्योंकि इसमें दो अच् न होकर चार अच् है। अतः **अत इञ्** सूत्र से **इञ्** प्रत्यय होने पर **औपगविः** बनता है।

त्यदादीनां फिञ्वा वाच्यः। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- त्यदादिगणपठित शब्दों से अपत्य अर्थ में विकल्प से फिञ् प्रत्यय होता है।

त्यादायनिः, त्यादः। उसका पुत्र। **त्यस्यापत्यम्** अर्थ में **त्यद्+ङस्** इस स्थिति में **त्यदादीनां फिञ् वा वाच्यः** वार्तिक से विकल्प से फिञ् प्रत्यय होने पर आयन् आदेश, आदिवृद्धि होकर **त्यादायनि** शब्द बनता है। फिञ् न होने के पक्ष में **तस्यापत्यम्** से अण्, आदिवृद्धि होकर **त्याद** शब्द बनता है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **त्यादायनिः** और **त्यादः** ये दो रूप बनते हैं।

११८१. उदीचां वृद्धादगोत्रात् ४।१।१५७॥

आम्रगुप्तायनिः। प्राचां तु आम्रगुप्तिः।

वृद्धात् किम्? दाक्षिः। अगोत्रात् किम्? औपगविः।

उदीचां वृद्धादगोत्रात्। न गोत्रम् अगोत्रं तस्मादगोत्रात्। उदीचां षष्ठ्यन्तं, वृद्धात् पञ्चम्यन्तम्, अगोत्रात् पञ्चम्यन्तम्। **तिकादिभ्यः** फिञ् से **फिञ्** की और **तस्यापत्यम्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

उदीच्य आचार्यों के मत में गोत्रप्रत्ययान्त से भिन्न वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिकों से अपत्य अर्थ में फिञ् प्रत्यय होता है।

आम्रगुप्तायनिः। प्राचां तु आम्रगुप्तिः। आम्रगुप्त का पुत्र। **आम्रगुप्तस्यापत्यम्** अर्थ में **आम्रगुप्त+ङस्** से **उदीचां वृद्धादगोत्रात्** सूत्र से **फिञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, फकार को आयन् आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **आम्रगुप्त+आयनि** बना है। पर्जन्यवल्लक्षणन्यायेन आदिवृद्धि होने पर अकारलोप होकर **आम्रगुप्तायनि** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आम्रगुप्तायनिः** सिद्ध हो जाता है। यह रूप उदीच्य आचार्यों मत में होता है। प्राच्य आचार्यों के मत तो **अत इञ्** से **इञ्** प्रत्यय होकर **आम्रगुप्तिः** सिद्ध होता है।

वृद्धात् किम्? दाक्षिः। सूत्र में **वृद्धात्** पद के निवेश से वृद्धसंज्ञक शब्दों से ही फिञ् होगा किन्तु अवृद्ध से नहीं होगा। अतः **दक्षस्यापत्यम्** अर्थ में **दक्ष** शब्द से फिञ् नहीं हुआ, क्योंकि आदि अच् वृद्धि वाला न होने के कारण **दक्ष**-शब्द की वृद्धसंज्ञा नहीं है। अतः **तस्यापत्यम्** से इञ् प्रत्यय होकर **दाक्षिः** सिद्ध हो जाता है।

अगोत्रात् किम्? औपगविः। सूत्र में **अगोत्रात्** पद के निवेश से गोत्रसंज्ञक शब्दों से ही फिञ् नहीं होगा। अतः **उपगोः गोत्रापत्यम्** (उपगु का गोत्रापत्य) अर्थ होने के कारण **औपगव** शब्द से फिञ् नहीं हुआ। पहले **उपगु**-शब्द से अपत्यार्थ में अण् प्रत्यय होकर **औपगव** शब्द बन गया है और अब गोत्रापत्य में प्रत्यय किया जा रहा है, अतः वृद्धसंज्ञक होते हुये भी फिञ् नहीं हुआ, अपितु **इञ्** प्रत्यय होकर **औपगविः** सिद्ध हो जाता है।

११८२. वाकिनादीनां कुक् च ४।१।१५८॥

अपत्ये फिञ् वा। वाकिनस्यापत्यं वाकिनकायनिः, वाकिनिः।

वाकिनादीनां कुक् च। वाकिन आदिर्येषां ते वाकिनादयस्तेषां वाकिनादीनाम्, बहुव्रीहिः। वाकिनादीनां षष्ठ्यन्तं, कुक् प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **उदीचां वृद्धादगोत्रात्** से **उदीचाम्** की, **तिकादिभ्यः फिञ्** से **फिञ्** की और **तस्यापत्यम्** की अनुवृत्ति है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

उदीच्य आचार्यों के मत में वाकिन आदि प्रातिपदिकों से अपत्य अर्थ में फिञ् प्रत्यय विकल्प से होता है और प्रातिपदिक को कुक् आगम भी होता है।

उदीचाम् पद की अनुवृत्ति से वैकल्पिक प्रत्यय का बोध होता है। सूत्रस्थ **वाकिनादीनाम्** पद की आवृत्ति की जाती है और उसे पञ्चम्यन्त बनाया जाता है। प्रत्ययविधि के लिये पञ्चम्यन्त **वाकिनादिभ्यः** और आगमविधि के लिये षष्ठ्यन्त **वाकिनादीनाम्** ऐसा समझना चाहिये। **कुक्** में ककार इत्संज्ञक और उकार उच्चारणार्थक है, केवल **क्** बचता है। इसके कित् होने के कारण **आद्यन्तौ टकितौ** के नियम से वाकिन आदि प्रकृति का अन्तावयव होकर बैठता है।

वाकिनस्यापत्यं वाकिनकायनिः, वाकिनिः। वाकिन का पुत्र। **वाकिनस्यापत्यम्** अर्थ में **वाकिन+ङस्** से **वाकिनादीनां कुक् च** सूत्र से **फिञ्** प्रत्यय के साथ कुक् आगम, अनुबन्धलोप, फकार को आयन् आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर उदीच्य आचार्यों के मत में **वाकिनक्+आयनि=वाकिनकायनि** शब्द बनता है। प्राच्य आचार्यों के मत में तो केवल **इञ्** प्रत्यय होकर **वाकिनि** शब्द बनता है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वाकिनकायनिः** और **वाकिनिः** सिद्ध हो जाते हैं।

वाकिनादिगणः- वाकिन, गौधेर, कार्कश, काक, लङ्का। **चर्मिवर्मिणोर्नलोपश्च**। यह गणसूत्र है। इसका तात्पर्य यह है कि चर्मिन् और वर्मिन् शब्द भी वाकिनादिगण में पठित हैं, किन्तु प्रत्यय के परे रहते इनके नकार का लोप भी होता है।

११८३. पुत्रान्तादन्यतरस्याम् ४।१।१५९॥

अस्माद्वा फिञ् सिद्धः, तस्मिन् परे पुत्रान्तस्य वा कुग्विधीयते।

गार्गीपुत्रकायणिः, गार्गीपुत्रायणिः, गार्गीपुत्रिः।

पुत्रान्तादन्यतरस्याम्। पुत्र-शब्दोऽन्ते यस्य स पुत्रान्तस्तस्मात् पुत्रान्तात्, बहुव्रीहिः। पुत्रान्तात् पञ्चम्यन्तम्, अन्यतरस्यां विभक्तिप्रतिरूपकमव्ययम्। **वाकिनादीनां कुक् च** से **कुक्** की, **तिकादिभ्यः फिञ्** से **फिञ्** की और **तस्यापत्यम्** की अनुवृत्ति आती है। **फिञ्** और **अपत्यम्** का सप्तम्यन्त में विपरिणाम किया जाता है।

अपत्यार्थ में विहित फिञ् प्रत्यय के परे रहते पुत्र-शब्दान्त प्रातिपदिक को विकल्प से कुक् आगम किया जाता है।

अस्माद्वा फिञ् सिद्धः। पुत्रशब्दान्त **गार्गीपुत्र** आदि शब्दों से **अणो द्व्यचः, उदीचां वृद्धादगोत्रात्** आदि सूत्रों से उदीच्य और प्राच्य आचार्यों के मतानुसार **फिञ्** प्रत्यय सिद्ध है, प्रकृतसूत्र तो फिञ् प्रत्यय के परे रहते विकल्प से कुक् आगम के लिये है।

गार्गीपुत्रकायणिः, गार्गीपुत्रायणिः, गार्गीपुत्रिः। गार्गीपुत्र की सन्तान। **गार्ग्याः पुत्रः** विग्रह में षष्ठीतत्पुरुषसमास होकर **गार्गीपुत्र** शब्द बना है। **गार्गीपुत्रस्यापत्यम्** अर्थ में **गार्गीपुत्र+ङस्** से **उदीचां वृद्धादगोत्रात्** सूत्र से **फिञ्** प्रत्यय होने के पक्ष में **पुत्रान्तादन्यतरस्याम्** सूत्र से विकल्प से कुक् आगम, अनुबन्धलोप, फकार को आयन् आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर उदीच्य आचार्यों के मत में **गार्गीपुत्रक्+आयनि=गार्गीपुत्रकायनि** शब्द बनता है। कुक् न होने के पक्ष में **गार्गीपुत्रायनि** बना है। उभयत्र रेफ से परे नकार को णत्व होकर **गार्गीपुत्रकायणि** और **गार्गीपुत्रायणि** शब्द बने हैं। प्राच्य आचार्यों के मत में तो केवल **इञ्** प्रत्यय होकर **गार्गीपुत्रि** शब्द बनता है। तीनों जगह एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **गार्गीपुत्रकायणिः, गार्गीपुत्रायणिः** और **गार्गीपुत्रिः** ये तीन रूप सिद्ध हो जाते हैं।

११८४. प्राचामवृद्धात् फिन् बहुलम् ४।१।१६०॥
ग्लुचुकायनिः।

प्राचामवृद्धात् फिन् बहुलम्। न वृद्धमवृद्धं तस्मादवृद्धात्। प्राचां षष्ठ्यन्तम्, अवृद्धात् पञ्चम्यन्तं, फिन् प्रथमान्तं, बहुलं प्रथमान्तम्। **तस्यापत्यम्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

प्राच्य आचार्यों के मत में वृद्धसंज्ञक-भिन्न प्रातिपदिकों से अपत्य अर्थ में बहुलता से फिन् प्रत्यय होता है।

प्रकृतसूत्र में **प्राचाम्** और **बहुलम्** की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है। भाष्यकार ने भी इस विषय में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया है। काशिकाकार का मत है कि इन दोनों पदों की आवश्यकता नहीं है। उनके अनुसार **प्राचाम्, बहुलम्** आदि विकल्पार्थ का लाभ कराते हैं। वह तो पूर्वसूत्र से **अन्यतरस्याम्** की अनुवृत्ति से भी सम्भव है। अतः **प्राचाम्** पद को प्राच्य आचार्यों के सम्माननार्थ मान लेना चाहिये। यद्यपि **बहुलम्** पद के अनेकार्थ होने के कारण विकल्पार्थ भी बनता है, तथापि **क्वचिदप्रवृत्तिः** अर्थ के लाभार्थ इस पद को सार्थक माना जा सकता है। अतः **दाक्षिः** में फिन् न होकर इञ् सिद्ध हो सकता है। बालमनोरमाकार ने भी लिखा है- **बहुलग्रहणान्नेह- दाक्षिः**। उन्होंने भी **प्राचाम्** पद को पूजार्थक ही माना है। **फिन्** में नकार इत्संज्ञक है। फकार के स्थान पर **आयन्** आदेश होने पर प्रत्यय का स्वरूप **आयनि** बन जाता है। ञित्, णित् और कित् न होने के कारण इस प्रत्यय के परे रहते आदिवृद्धि नहीं होती।

ग्लुचुकायनिः। ग्लुचुकायन का पुत्र। यह शब्द वृद्धसंज्ञक नहीं है। **ग्लुचकायनस्य अपत्यम्** अर्थ में **ग्लुचुकायन+ङस्** से **प्राचामवृद्धात् फिन् बहुलम्** सूत्र से **फिन्** प्रत्यय फकार को आयन् आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर, अकारलोप होकर

ग्लुचुकायनि शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **ग्लुचुकायनिः** सिद्ध हो जाता है।

११८५. मनोर्जातावञ्यतौ षुक् च ४।१।१६१॥

समुदायार्थो जातिः। मानुषः, मनुष्यः।

मनोर्जातावञ्यतौ षुक् च। अञ् च यत् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वोऽञ्यतौ। मनोः पञ्चम्यन्तं, जातौ सप्तम्यन्तम्, अञ्यतौ प्रथमान्तं, षुक् प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **तस्यापत्यम्** की अनुवृत्ति है और **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार तो है ही।

षष्ठी-समर्थ मनु-शब्द से जाति अर्थ गम्य होने पर अञ् और यत् प्रत्यय होते हैं साथ ही प्रकृति को षुक् आगम भी होता है।

समुदायार्थो जातिः। यहाँ पर **जाति**-शब्द से प्रकृतिप्रत्यय का समुदायार्थ गृहीत है अर्थात् यदि प्रकृति और प्रत्यय के समुदाय से जाति का बोध होता हो तो ये प्रत्यय और आगम किये जाते हैं। यद्यपि **तस्यापत्यम्** का अधिकार है और अपत्य अर्थ से केवल पुत्र मात्र का ग्रहण न होकर पूरे वंशजों का भी ग्रहण हो सकता है तथापि जाति अर्थ की विशेषता होने के कारण अपत्यार्थ गौण हो जाता है। मानव-समुदाय इतना व्यापक है कि मनु से उत्पन्न होकर आगे बढ़ी सृष्टिमात्र को मानव, मानुष, मनुष्य कहा जाता है। जाति अर्थ में प्रत्यय किये जाने के कारण **अञ्** और **यत्** का अर्थ भी जाति ही है। जैसे अन्यत्र कुत्सादिविशिष्ट अर्थ गम्यमान होने पर अपत्यार्थ में तत्तत् प्रत्ययों का विधान किया गया था उसी प्रकार यहाँ भी जातिविशिष्ट अर्थ गम्यमान होने पर **मनु** शब्द से अपत्यार्थ में ही उक्त प्रत्यय होते हैं। ऐसा करने से अपत्यार्थ का परित्याग करने की कल्पना नहीं करनी पड़ती। अन्यथा अपत्यार्थप्रकरण में प्रकृतसूत्र का पाठ भी अन्यथासिद्ध होने लगेगा। इस तरह दोनों का सामञ्जस्य स्थापित किया जाता है।

सूत्रस्थ **मनोः** शब्द की आवृत्ति की जाती है और एक को पञ्चम्यन्त तथा एक को षष्ठ्यन्त माना जायेगा। प्रत्ययविधि के लिये पञ्चम्यन्त और आगमविधि के लिये षष्ठ्यन्त। **षुक्** में ककार इत्संज्ञक है और उकार उच्चारणार्थ। ष् मात्र बचता है। इसके कित् होने के कारण **आद्यन्तौ टकितौ** के नियम से प्रकृति का अन्तावयव होकर बैठता है। **अञ्** में ञकार और **यत्** में तकार इत्संज्ञक हैं।

मानुषः, मनुष्यः। मानव-समुदाय। **मनोरपत्यं जातिः** विग्रह करके **मनु+ङस्** से **मनोर्जातावञ्यतौ षुक् च** सूत्र के द्वारा **अञ्** प्रत्यय होने के पक्ष में षुक् आगम, सुप् का लुक् होकर **मनुष्+अ** बन जाता है। आदिवृद्धि करके **मानुष** शब्द बन जाता है। **यत्** प्रत्यय होने के पक्ष में षुक् आगम होकर **मनुष्य** शब्द बन जाता है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **मानुषः** और **मनुष्यः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

अब अगले सूत्र से लेकर ते तद्राजाः सूत्र के पहले तक के सूत्रों से विहित प्रत्ययों की **तद्राजसंज्ञा** की जाती है। निम्नलिखितसूत्र के प्रत्यय तद्राजसंज्ञक होते हैं-

१. जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ् ४.१.१६८
२. साल्वेयगान्धारिभ्यां च ४.१.१६९
३. द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसादण् ४.१.१७०
४. वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ् ४.१.१७१
५. कुरुनादिभ्यो ण्यः ४.१.१७२
६. साल्वावयवप्रत्यग्रथकलकूटाश्मकादिञ् ४.१.१७३

तद्राजसंज्ञा का फल है बहुवचन में तद्धितप्रत्यय का लुक् करना।

११८६. जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ् ४।१।१६८॥

जनपदक्षत्रिययोर्वाचकादञ् स्यादपत्ये।

'दाण्डिनायन-' (सू.११४५) इति सूत्रे निपातनाट्टिलोपः। ऐक्ष्वाकः। ऐक्ष्वाकौ। 'क्षत्रियसमानशब्दाञ्जनपदात्तस्य राजन्यपत्ययवत्' (वा.२६६९)। तद्राजमाचक्षाणस्तद्राज इत्यन्वर्थसञ्ज्ञासामर्थ्यात्। पञ्चालानां राजा पाञ्चालः। 'पूरोरण्वक्तव्यः' (वा.२६७०)। पौरवः।
'पाण्डोर्ड्यण्' (वा.२६७१)। पाण्ड्यः।

जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्। जनपदवाचकः शब्दो जनपदशब्दः (मध्यमपदलोपिसमास), तस्मात्। जनपदशब्दात् पञ्चम्यन्तं, क्षत्रियात् पञ्चम्यन्तम्, अञ् प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **तस्यापत्यम्** की अनुवृत्ति और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार चल रहा है।

जनपदविशेष का वाचक शब्द यदि उस नाम वाले क्षत्रियविशेष का भी वाचक हो तो उससे अपत्य अर्थ में तद्धितसंज्ञक अञ् प्रत्यय होता है।

जनपद का अर्थ है **देश, प्रदेश, देश का एकभाग, जिला** आदि। **अञ्** में ञकार इत्संज्ञक है, **अ** बचता है। ञित् का फल वृद्धि एवं स्वरविधान है साथ ही **अञ्** होने से स्त्रीत्वविवक्षा में **टिड्ढाणञ्०** सूत्र से **ङीप्** का विधान भी हो जाता है। इस सूत्र से विहित प्रत्यय तद्राजसंज्ञक होता है।

दाण्डिनायन० इति सूत्रे निपातनात् टिलोपः। आगे सिद्ध किये जाने वाले **ऐक्ष्वाकः** प्रयोग की प्रकृति **इक्ष्वाकु** शब्द है। अञ् प्रत्यय के परे रहते प्रकृति के उकार को **ओर्गुणः** से गुण हो जाना चाहिये था किन्तु (११४५) **दाण्डिनायनहास्तिनायनाथर्वणिकजैह्याशिनेयवाशिनायनिभ्रौणहत्यधैवत्यसारवैक्ष्वाकमैत्रेयहिरण्मयानि** सूत्र में **ऐक्ष्वाक** शब्द का प्रयोग देखते हुये टिलोप का निपातन माना जाता है। **इक्ष्वाकु** शब्द में टिसंज्ञक भाग **उ** मात्र है, उसी का निपातनात् लोप हो जाता है।

ऐक्षाकः। ऐक्ष्वाकौ। इक्ष्वाकु का पुत्र। **इक्ष्वाकु** शब्द एक देश या प्रदेश का भी वाचक है और राजा का भी अर्थात् **इक्ष्वाकु** नामक राजा और **इक्ष्वाकु** नामक देश। **इक्ष्वाकोः अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **इक्ष्वाकु+ङस्** से औत्सर्गिक अण् को बाधकर के **जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्** से **अञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, निपातनात् उकारलोप, वर्णसम्मेलन करके **ऐक्ष्वाक** बना है। स्वादिकार्य करके **ऐक्ष्वाकः** सिद्ध हुआ। द्विवचन में **ऐक्ष्वाकौ** बनता है। बहुवचन में **तद्राज**-संज्ञा होने के कारण बहुत्वविवक्षा में तद्धितीय इस **अञ्** प्रत्यय का लुक् हो जाता है, जिससे **इक्ष्वाकु** शब्द ही बना रहता है और उसके बहुवचन में **भानवः** की तरह **इक्ष्वाकवः** सिद्ध हो जाता है।

पाञ्चालः। पञ्चाल राजा की सन्तान। **पञ्चाल** शब्द एक देश या प्रदेश का भी वाचक है और राजा का भी अर्थात् पञ्चाल नामक राजा और पञ्चाल नामक देश। **पञ्चालस्यापत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह है। **पञ्चाल ङस्** से औत्सर्गिक अण् को बाधकर के **जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्** से **अञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप, वर्णसम्मेलन करके **पाञ्चाल** बना। स्वादिकार्य करके **पाञ्चालः** सिद्ध हुआ।

क्षत्रियसमानशब्दाञ्जनपदात्तस्य राजन्यपत्यवत्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- क्षत्रियवाचक शब्द के समान जो जनपदवाचक शब्द, उससे अपत्यार्थ के समान ही 'उस देश का राजा' इस अर्थ में तद्धित प्रत्यय होते हैं।

देश का राजा इस अर्थ में अपत्यार्थ की तरह प्रत्यय का विधान इससे होता है। जिस तरह से **पञ्चालस्यापत्यम्** में **पाञ्चालः** बना उसी तरह **पञ्चालानां राजा** इस अर्थ में इस वार्तिक से ही **अञ्** प्रत्यय होकर पूर्ववत् **पाञ्चालः** ही बनता है। देशवाची शब्द नित्य बहुवचनान्त माना गया है। अतः **पञ्चालस्य (देशस्य) राजा** विग्रह न करके **पञ्चालानां राजा** ऐसा विग्रह किया जाता है।

तद्राजमाचक्षाणस्तद्राज इत्यन्वर्थसंज्ञासामर्थ्यात्। (तस्य राजा तद्राजः, तद्राजम् आचक्षाणः) व्युत्पत्ति से निष्पन्न सार्थक तद्राज-संज्ञा के सामर्थ्य से उक्त वार्तिक का अर्थ निष्पन्न होता है और तद्राज को बताने वाला भी तद्राज ही कहलाता है। उपर्युक्त वार्तिक का मूल आधार **ते तद्राजाः** सूत्रस्थ तद्राजसंज्ञा का अन्वर्थ होना है। तद्राजसंज्ञा घु, टि, भ आदि की तरह कृत्रिम संज्ञा नहीं है जो किसी वर्णविशेष को सूचित करती हो, अपितु वह **अन्वर्थसंज्ञा** है। व्युत्पत्ति के अनुसार सार्थक (अन्वर्थक) संज्ञा होने के कारण तद्राज के अभिधायी अञ् आदि प्रत्यय गौण समझे जाते हैं। अतः तद्राजसंज्ञक अञादिप्रत्ययों को राजबोधक माना गया है। इस तरह राजा को अभिलक्षित करके भी उन प्रत्ययों का विधान सार्थक हो जाता है।

पूरोरण् वक्तव्यः। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- पूरु शब्द से अपत्य अर्थ में

अण् प्रत्यय हो ऐसा कहना चाहिए। पूरु-शब्द के जनपदवाची न होने के कारण प्राग्दीव्यतीय अण् प्रत्यय के सिद्ध रहने पर भी तद्राजसंज्ञार्थ इस वार्तिक से पुनः विधान किया गया है।

पौरवः। पूरु की सन्तान। **पूरोरपत्यं पुमान्** अर्थ में पूरु+ङस् से **पूरोरण् वक्तव्यः** वार्तिक से अण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके आदिवृद्धि हो जाने पर **पौरु+अ** बना। **ओर्गुणः** से अन्त्य उकार को गुण होकर **पौरो+अ** बना। अवादेश, वर्णसम्मेलन, स्वादिकार्य करके **पौरवः** सिद्ध हो जाता है।

पाण्डोर्ड्यण्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- पाण्डु शब्द से अपत्य अर्थ में ड्यण् प्रत्यय होता है। डकार की **चुटू** से इत्संज्ञा होती है तो अन्त्य णकार **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञक है ही। डित् का प्रयोजन **टेः** से टि का लोप करना है।

पाण्ड्यः। पाण्डु नामक देश के राजा की सन्तान। **पाण्डोरपत्यं पुमान्** अथवा **पाण्डोः देशस्य राजा** अर्थ में **पाण्डु+ङस्** में **पाण्डोर्ड्यण्** वार्तिक से **ड्यण्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, आदिवृद्धि, डित् परे होने कारण **टेः** से टिसंज्ञक उकार का लोप करके **पाण्ड्य** बनता है। स्वादिकार्य करके **पाण्ड्यः** सिद्ध हो जाता है। यहाँ श्वेत-गुणवाची और युधिष्ठिर के पिता के वाचक **पाण्डु** शब्द से ड्यण् प्रत्यय नहीं होता, क्योंकि तादृश अर्थ वाला **पाण्डु** शब्द यद्यपि क्षत्रियवाची तो है किन्तु देशवाची नहीं है। अतः **पाण्डोः अपत्यम्** (पाण्डु नामक राजा की सन्तान) अर्थ में **तस्यापत्यम्** सूत्र से ही अण् प्रत्यय होने पर उकार को गुण, अवादेश होकर **पाण्डवः** बनता है।

बालमनोरमाकार ने इस सूत्र के प्रत्युदाहरण दिये हैं- **जनपदशब्दादिति किम्? द्रुह्योरपत्यं द्रौह्येयः**। सूत्र में जनपद-शब्द का निवेश होने के कारण **द्रुह्यु का पुत्र** अर्थ अभीष्ट होने पर अञ् प्रत्यय न होकर **तस्यापत्यम्** सूत्र से अण् प्रत्यय ही होगा। उसका फल यह होगा कि बहुवचन की विवक्षा में प्रत्यय की तद्राज-संज्ञा नहीं होगी, फलतः उसका लुक् भी नहीं होगा। अतः **द्रुह्योरपत्यम्** अर्थ में अण् प्रत्यय होने पर **द्रुह्यु+अ** बनने के बाद आदिवृद्धि, उकार को **ओर्गुणः** से गुण ओकार और उसको अवादेश होने पर **द्रौह्यव** शब्द बनता है और स्वादिकार्य से **द्रौह्यवः, द्रौह्यवौ, द्रौह्यवाः** इत्यादि रूप बनते हैं। यदि कथंचित् प्रकृतसूत्र से **अञ्** प्रत्यय होता तो बहुवचन की विवक्षा में उसकी तद्राजसंज्ञा हो जाने से प्रत्यय का लुक् होकर **द्रुह्यवः** ऐसा अनिष्ट रूप बनने लगता।

क्षत्रियादिति किम्? पञ्चालो नाम कश्चिद् ब्राह्मणस्तस्यापत्यं पाञ्चालिः। सूत्र में **क्षत्रियाद्** पद के निवेश से **पञ्चाल नामक ब्राह्मण का पुत्र** अर्थ में क्षत्रिय का वाचक न होने से प्रकृतसूत्र से अञ् प्रत्यय नहीं होगा, अपितु **अत इञ्** सूत्र से **इञ्** प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **पाञ्चालिः** शब्द बनता है। इसी तरह **विदेहस्य ब्राह्मणस्यापत्यम्** अर्थ में **विदेह**-शब्द से **इञ्** प्रत्यय होकर **वैदेहिः** रूप बनता है।

११८७. साल्वेयगान्धारिभ्यां च ४।१।१६९॥

आभ्यामपत्येऽञ्। 'वृद्धेत्-' (सू.११८९) इति ञ्यङोऽपवादः। साल्वेयः। गान्धारः। तस्य राजन्यप्येवम्।

साल्वेयगान्धारिभ्यां च। साल्वेयश्च गान्धारिश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः साल्वेयगान्धारी, ताभ्यां साल्वेयगान्धारिभ्यां पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्** तथा **तस्यापत्यम्** इन दोनों सूत्रों के सभी पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

जनपदवाची क्षत्रियाभिधायी साल्वेय और गान्धारि शब्दों से भी अपत्य अर्थ में तद्धितसंज्ञक अञ् प्रत्यय होता है।

वृद्धेत्० इति ञ्यङोऽपवादः। पूर्वसूत्र का ही विषय होने के कारण पूर्वसूत्र से अञ् प्रत्यय प्राप्त ही था किन्तु उसे बाधकर वक्ष्यमाण **वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ्** सूत्र से जो ञ्यङ् प्राप्त था, उसका बाध करने के लिये इस सूत्र की सार्थकता है। **साल्वेय** और **गान्धारि** ये दो शब्द अव्युत्पन्न प्रातिपदिक हैं।

साल्वेयः। साल्वेय देश के राजा अथवा साल्वेय की सन्तान। **साल्वेयानां राजा तस्य अपत्यं वा** अर्थ में **साल्वेय+आम्** से **जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्** से अञ् प्रत्यय प्राप्त होने पर उसे बाधकर **वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ्** सूत्र से ञ्यङ् प्राप्त हुआ, उसे भी बाधकर **साल्वेयगान्धारिभ्यां च** सूत्र के द्वारा **अञ्** प्रत्यय होने पर पर्जन्यवल्लक्षणन्यायेन आदिवृद्धि, भसंज्ञक अन्त्य अकार का लोप करके **साल्वेय** शब्द ही बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **साल्वेयः** सिद्ध हो जाता है।

गान्धारः। गान्धारि देश के राजा और गान्धारि नामक क्षत्रिय की सन्तान। **गान्धारीणां राजा तस्य अपत्यं वा** अर्थ में **गान्धारि+आम्** से **साल्वेयगान्धारिभ्यां च** सूत्र के द्वारा **अञ्** प्रत्यय होने पर पर्जन्यवल्लक्षणन्यायेन आदिवृद्धि, भसंज्ञक अन्त्य इकार का लोप करके **गान्धार** शब्द ही बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **गान्धारः** सिद्ध हो जाता है।

तस्य राजन्यप्येवम्। जिस तरह से अपत्य अर्थ में ऊपर अञ् प्रत्यय किया गया, उसी तरह **उक्त देशों के राजा** अर्थ में अञ् प्रत्यय होकर समान ही रूप बनते हैं।

११८८. द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसादण् ४।१।१७०॥

अञोऽपवादः। द्व्यच्- आङ्गः, वाङ्गः, सौह्मः। मागधः। कालिङ्गः। सौरमसः। तस्य राजन्यप्येवम्।

द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसादण्। द्वौ अचौ यस्मिन् स द्व्यच्, बहुव्रीहिः। द्व्यच् चं मगधश्च कलिङ्गश्च सूरमसश्च तेषां समाहारद्वन्द्व द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसम्, तस्माद्

द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसात् पञ्चम्यन्तम्, अण् प्रथमान्तम्। **जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्** तथा **तस्यापत्यम्** इन दोनों सूत्रों के सभी पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

जनपदवाची क्षत्रियाभिधायी दो अच् वाले शब्द और मगध, कलिङ्ग, सूरमस प्रातिपदिकों से अपत्य अर्थ में तद्धितसंज्ञक अण् प्रत्यय होता है।

अञोऽपवादः। यह अण् प्रत्यय **जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्** से प्राप्त अञ् प्रत्यय का अपवाद है। **अण्** और **अञ्** में स्वर का ही भेद है। इस सूत्र से विहित प्रत्यय भी तद्राज-संज्ञक है।

द्व्यच्। पहले दो अच् वाले शब्दों के तीन उदाहरण दिये जा रहे हैं-

आङ्गः। अङ्ग देश के राजा और अङ्ग नामक क्षत्रिय की सन्तान। **अङ्ग** शब्द में दो अच् हैं। **अङ्गानां राजा अपत्यं वा** अर्थ में **अङ्ग+आम्** से **द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसादण्** सूत्र के द्वारा **अण्** प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि, भसंज्ञक अन्त्य अकार का लोप करके **आङ्ग** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आङ्गः** सिद्ध हो जाता है।

वाङ्गः। वङ्ग देश के राजा और वङ्ग नामक क्षत्रिय की सन्तान। **वङ्ग** शब्द में भी दो अच् हैं। **वङ्गानां राजा अपत्यं वा** अर्थ में **वङ्ग+आम्** इस स्थिति में **द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसादण्** सूत्र के द्वारा **अण्** प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि, भसंज्ञक अन्त्य अकार का लोप करके **वाङ्ग** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वाङ्गः** सिद्ध हो जाता है।

सौह्यः। सुह्म देश के राजा और सुह्म नामक क्षत्रिय की सन्तान। सुह्म-शब्द में भी दो अच् हैं। **सुह्मानां राजा अपत्यं वा** अर्थ में **सुह्म+आम्** से **द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसादण्** सूत्र के द्वारा **अण्** प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि, भसंज्ञक अन्त्य अकार का लोप करके **सौह्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सौह्यः** सिद्ध हो जाता है।

मागधः। मगध देश के राजा और मगध नामक क्षत्रिय की सन्तान। **मगधानां राजा अपत्यं वा** अर्थ में **मगध+आम्** से **द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसादण्** सूत्र के द्वारा **अण्** प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि, भसंज्ञक अन्त्य अकार का लोप करके **मागध** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **मागधः** सिद्ध हो जाता है।

कालिङ्गः। कलिङ्ग देश के राजा और कलिङ्ग नामक क्षत्रिय की सन्तान। **कलिङ्गानां राजा अपत्यं वा** अर्थ में **कलिङ्ग+आम्** इस स्थिति में **द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसादण्** सूत्र के द्वारा **अण्** प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि, भसंज्ञक अन्त्य अकार का लोप करके **कालिङ्ग** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कालिङ्गः** सिद्ध हो जाता है।

सौरमसः। सूरमस देश के राजा और सूरमस नामक क्षत्रिय की सन्तान। **सूरमसानां राजा अपत्यं वा** अर्थ में **सूरमस+आम्** इस स्थिति में **द्व्यञ्मगधकलिङ्ग-सूरमसादण्** सूत्र के द्वारा **अण्** प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि, भसंज्ञक अन्त्य अकार का लोप करके **सौरमस** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सौरमसः** सिद्ध हो जाता है।

तस्य राजन्यप्येवम्। जिस तरह से अपत्य अर्थ में ऊपर प्रत्यय किये गये, उसी तरह से उक्त शब्दों से राजा अर्थ में भी उक्त अण् प्रत्यय ही होता है। यहाँ हमने तो दोनों की सिद्धि साथ में ही कर दी है। केवल विग्रह में ही भेद है।

११८९. वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ् ४।१।१७१॥

वृद्धात्- आम्बष्ठ्यः, सौवीर्यः। इत्- आवन्त्यः, कौन्त्यः। कौसल्यः। अजादस्यापत्यमाजाद्यः।

वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ्। वृद्धं च इत् च कोसलश्च अजादश्च तेषां समाहारद्वन्द्वो वृद्धेत्कोसलाजादम्, तस्माद् वृद्धेत्कोसलाजादात्, पञ्चम्यन्तं, ञ्यङ् प्रथमान्तम्। **जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्** तथा **तस्यापत्यम्** इन दोनों सूत्रों के सभी पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

जनपदवाची क्षत्रियाभिधायी **वृद्धसंज्ञक, ह्रस्व-इकारान्त, कोसल और अजाद** इन षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिकों से अपत्य अर्थ में **तद्धितसंज्ञक ञ्यङ् प्रत्यय** होता है।

वृद्ध-शब्द से **वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद् वृद्धम्** सूत्र से विहित वृद्धसंज्ञक शब्दों का ग्रहण किया जाता है, जिसका आदि अच् वृद्धि (आ, ऐ, औ) होता है। **इत्**-शब्द से ह्रस्व इकारान्त शब्दों का ग्रहण है। शेष **कोसल** और **अजाद** शब्दों का स्वरूपग्रहण है। **ञ्यङ्** में ञकार और ङकार इत्संज्ञक हैं, **य** बचता है।

यहाँ पर ध्यान देने की बात यह है कि इस सूत्र से भी देशों का राजा या तन्नामक क्षत्रिय का पुत्र अर्थ में यह प्रत्यय किया जाता है और राजा के लिये बहुवचन का विग्रह **आम्बष्ठानां राजा** और पुत्र के एकवचन का विग्रह **आम्बष्ठस्य पुत्रः** होता है। इसी तरह अन्य प्रयोगों में भी समझना चाहिये।

वृद्धात्- वृद्धसंज्ञक शब्द के दो उदाहरण दिये जा रहे हैं-

आम्बष्ठ्यः। आम्बष्ठ देश का राजा अथवा सन्तान। **आम्बष्ठानां राजा अपत्यं वा** अर्थ में **अम्बष्ठ+ङस्** इस षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से **वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ्** सूत्र से **ञ्यङ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **आम्बष्ठ+य** बना। पर्जन्यवल्लक्षणन्याय से आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आम्बष्ठ्य** शब्द बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आम्बष्ठ्यः** सिद्ध हो जाता है।

पाणिनि जी ने षत्वप्रकरण के **अम्बाम्बगोभूमि०** (८.३.९७) सूत्र में **अम्ब+स्थ** और **आम्ब+स्थ** इन दो शब्दों का निर्देश किया है। अतः **अम्बष्ठ, आम्बष्ठ** ये दोनों शब्द साधु हैं। इस सूत्र में तो केवल **आम्बष्ठ** शब्द का ग्रहण है। यह जनपद राजाधीन था और इसके निवासी **आम्बष्ठ्य** कहलाते थे।

सौवीर्यः। सौवीर देश का राजा अथवा सन्तान। **सौवीराणां राजा अपत्यं वा** अर्थ में **सौवीर+ङस्** से **वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ्** सूत्र से **ञ्यङ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, अकारलोप होकर **सौवीर्य** बनने के बाद स्वादिकार्य होकर **सौवीर्यः** सिद्ध हो जाता है।

इत्। अब ह्रस्व इकारान्त शब्दों के दो उदाहरण दिये जा रहे हैं-

आवन्त्यः। अवन्ति देश का राजा अथवा सन्तान। **अवन्तीनां राजा अपत्यं वा** अर्थ में **अवन्ति+ङस्** से **वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ्** सूत्र से **ञ्यङ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक इकारलोप होकर **आवन्त्य** बनने के बाद स्वादिकार्य होकर **आवन्त्यः** सिद्ध हो जाता है।

कौन्त्यः। कुन्ति देश का राजा अथवा सन्तान। **कुन्तीनां राजा अपत्यं वा** अर्थ में **कुन्ति+ङस्** से **वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ्** सूत्र से **ञ्यङ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक इकारलोप होकर **कौन्त्य** बनने के बाद स्वादिकार्य होकर **कौन्त्यः** सिद्ध हो जाता है।

कौसल्यः। कोसल देश का राजा अथवा सन्तान। **कोसलानां राजा अपत्यं वा** अर्थ में **कोसल+ङस्** से **वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ्** सूत्र से **ञ्यङ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकारलोप होकर **कौसल्य** बनने के बाद स्वादिकार्य होकर **कौसल्यः** सिद्ध हो जाता है।

अजादस्यापत्यमाजाद्यः। अजाद देश का राजा अथवा अजाद नामक क्षत्रिय की सन्तान। **अजादानां राजा अपत्यं वा** अर्थ में **अजाद+ङस्** से **वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ्**सूत्र से **ञ्यङ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आजाद्य** बनने के बाद स्वादिकार्य होकर **आजाद्यः** सिद्ध हो जाता है।

११९०. कुरुनादिभ्यो ण्यः ४।१।१७२॥

कौरव्यः। नैषध्यः। 'स नैषधस्यार्थपतेः' इत्यादौ तु शैषिकोऽण्।

कुरुनादिभ्यो ण्यः। न आदिर्येषां ते नादयः। कुरुश्च नादयश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः कुरुनादयस्तेभ्यः। कुरुनादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, ण्यः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **जनपदाशब्दात् क्षत्रियादञ्** से वचनविपरिणाम के द्वारा **जनपदेभ्यः, क्षत्रियेभ्यः** एवं **तस्यापत्यम्** इस सूत्र की अनुवृत्ति है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार चल रहा है।

कुरुशब्द या नकारादिशब्द जब जनपद और क्षत्रिय दोनों के वाचक हों तो उनसे अपत्य अर्थ में तद्धितसंज्ञक ण्य प्रत्यय होता है।

चुटू से **णकार** की इत्संज्ञा करके **य** शेष रहता है। **कुरु** से **द्व्यञ्मगध-लिङ्गसूरमसादण्** से अण् और नकारादिशब्दों से **जनपदाशब्दात् क्षत्रियादञ्** से अञ् प्राप्त था। उनका यह अपवाद है।

कौरव्यः। कुरु की सन्तान। **कुरु** शब्द जनपदविशेष और क्षत्रियविशेष दोनों का वाचक है। **कुरोरपत्यं पुमान्। कुरु ङस्** में **कुरुनादिभ्यो ण्यः** से **ण्य** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, आदिवृद्धि, **ओर्गुणः** से रेफोत्तरवर्ती उकार को गुण करके **कौरो+य** बना। **वान्तो यि प्रत्यये** से **अव्** आदेश होने पर **कौरव्य** बनता है। स्वादिकार्य करके **कौरव्यः** सिद्ध होता है। इसी तरह **कुरूणां राजा** विग्रह में भी समझना चाहिये।

नैषध्यः। निषध की सन्तान। **निषध** शब्द भी जनपदविशेष और क्षत्रियविशेष दोनों का वाचक है। **निषधस्यापत्यं पुमान्। निषध ङस्** में **नकारादि** होने के कारण **कुरुनादिभ्यो ण्यः** से **ण्य** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, आदिवृद्धि करके **यस्येति च** से भसंज्ञक अकार का लोप करके **नैषध्य** बनता है। स्वादिकार्य करके **नैषध्यः** सिद्ध होता है। इसी तरह **निषधानां राजा** विग्रह में भी समझना चाहिये।

काव्यादि में प्रयुक्त **नैषध**-शब्द की साधुता बतायी जा रही है।

'स नैषधस्यार्थपतेः' इत्यादौ तु शैषिकोऽण्। उक्त काव्यप्रयोग में **निषध** शब्द सें शैषिकप्रकरण के **तस्येदम्** सूत्र से अण् प्रत्यय होकर **नैषध** शब्द बना है।

११९०. साल्वावयवप्रत्यग्रथकलकूटाश्मकादिञ् ४।१।१७३॥

साल्वो जनपदस्तदवयवा उदुम्बरादयस्तेभ्यः प्रत्यग्रथादिभ्यस्त्रिभ्यश्च इञ्। अञोऽपवादः। औदुम्बरिः। प्रात्यग्रथिः। कालकूटिः। आश्मकिः। राजन्यप्येवम्।

साल्वावयवप्रत्यग्रथकलकूटाश्मकादिञ्। साल्वस्यावयवाः साल्वायवाः, षष्ठीतत्पुरुषः। साल्वावयवाश्च प्रत्यग्रथश्च कलकूटश्च अश्मकश्च तेषां समाहारद्वन्द्वः साल्वावयवप्रत्यग्रथकलकूटाश्मकम्, तस्मात्साल्वावयवप्रत्यग्रथकलकूटाश्मकात् पञ्चम्यन्तम्, इञ् प्रथमान्तम्। **जनपदाशब्दात् क्षत्रियादञ्** से वचनविपरिणाम के द्वारा **जनपदेभ्यः, क्षत्रियेभ्यः** एवं **तस्यापत्यम्** इस सूत्र की अनुवृत्ति और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार चल रहा है।

क्षत्रियाभिधायी जनपदवाची साल्व के अवयववाची उदुम्बर आदि शब्द और प्रत्यग्रथ, कलकूट, अश्मक इन तीन प्रातिपदिकों से अपत्य अर्थ में तद्धितसंज्ञक इञ् प्रत्यय होता है।

अञोऽपवादः। यह सूत्र **जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्** सूत्र का अपवाद है।

साल्वो जनपदस्तदवयवा उदुम्बरादयः। साल्व नाम का जनपद है और उसके

अवयव हैं- उदुम्बर आदि। यहाँ पर साल्व-जनपद के अवयववाची शब्दों का ग्रहण है। इस सम्बन्ध में काशिका में एक पद्य उद्धृत किया गया है-

उदुम्बरास्तिलखला मद्रकारा युगन्धराः।

भूलिङ्गाः शरदण्डाश्च साल्वावयवसंज्ञिताः। तदनुसार उदुम्बर, तिलखल, मद्रकार, युगन्धर, भूलिङ्ग, शरदण्ड ये पाँच देश साल्व देश के अवयव हैं।

उदुम्बर- गुरुदासपुर के आसपास का भाग कहलाता है।

तिलखल- होशियारपुर के आसपास का भाग।

मद्रकार- वर्तमान में बीकानेर के उत्तरपूर्वी भाग।

युगन्धर- अम्बाला के आसपास का भाग।

भूलिङ्ग- वर्तमान में अरावली के उत्तर-पश्चिम का भाग।

शरदण्ड- कुरुक्षेत्र के आसपास का भाग।

महाभाष्यकार ने तो **द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसादण्** सूत्र में **बुध, अजमीढ, अजक्रन्द** इन तीनों भूभागों को भी साल्व-देश के खण्ड के रूप में स्वीकार किया है। इससे यह प्रतीत होता है कि साल्वों ने अपना एक समूह बनाया था और उनका विस्तार दूर-दूर तक हो गया था।

औदुम्बरिः। उदुम्बर-देश का राजा अथवा उदुम्बर-नामक क्षत्रिय की सन्तान। **उदुम्बर** शब्द भी जनपदविशेष और क्षत्रियविशेष दोनों का वाचक है। **उदुम्बराणां राजा, उदम्बरस्यापत्यं पुमान्** अर्थ में **उदुम्बर+आम् (उदुम्बर+ङस्)** में **साल्वावयवप्रत्यग्रथ-कलकूटाश्मकादिञ्** सूत्र से **इञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, आदिवृद्धि करके **यस्येति च** से भसंज्ञक अकार का लोप करके **औदुम्बरि** बनता है। स्वादिकार्य करके **औदुम्बरिः** सिद्ध होता है। शेष साल्वावयववाची शब्दों से भी इसी तरह इञ्-प्रत्यय करके **तैलखलिः, माद्रकरिः, यौगन्धरिः, भौलिङ्गिः, शारदण्डिः, बौधिः, आजमीढिः** आदि की सिद्धि कर लेनी चाहिये।

प्रात्यग्रथिः। प्रत्यग्रथ-देश का राजा अथवा प्रत्यग्रथ-नामक क्षत्रिय की सन्तान। **उदुम्बराणां राजा अपत्यं वा** अर्थ में षष्ठ्यन्त **उदुम्बर**-शब्द से **साल्वावयवप्रत्यग्रथ-कलकूटाश्मकादिञ्** सूत्र से **इञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **प्रात्यग्रथि** और स्वादिकार्य करके **प्रात्यग्रथिः** सिद्ध होता है। कुछ कोषों के अनुसार **पञ्चाल** का दूसरा नाम **प्रत्यग्रथ** भी था।

कालकूटिः। कलकूट-देश का राजा अथवा कलकूट-नामक क्षत्रिय की सन्तान। **कलकूटानां राजा अपत्यं वा** अर्थ में षष्ठ्यन्त **कलकूट**-शब्द से **साल्वावयवप्रत्यग्रथकलकूटाश्मकादिञ्** सूत्र से **इञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **कालकूटि** और स्वादिकार्य करके **कालकूटिः** सिद्ध हो जाता है।

आश्मकिः। अश्मक-देश का राजा अथवा अश्मक-नामक क्षत्रिय की सन्तान। **अश्मकानां राजा अपत्यं वा** अर्थ में षष्ठ्यन्त **अश्मक**-शब्द से **साल्वावयवप्रत्यग्रथ-कलकूटाश्मकादिञ्** सूत्र से **इञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **आश्मकि** और स्वादिकार्य करके **आश्मकिः** सिद्ध होता है।

राजन्यप्येवम्। जिस तरह से अपत्य अर्थ में **औदुम्बरिः** आदि प्रयोग बनाये गये, उसी तरह से तत्तत् देशों के राजा अर्थ में भी ये प्रत्यय किये जाते हैं, जैसा कि ऊपर एक साथ दिखाया जा चुका है।

११९२. ते तद्राजाः ४।१।१७४॥

अञादय एतत्सञ्ज्ञाः स्युः।

ते तद्राजाः। ते प्रथमान्तं, तद्राजाः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्।

पूर्वोक्त अञ् आदि प्रत्यय तद्राजसंज्ञक होते हैं।

इस सूत्र में पठित **ते** शब्द का अर्थ है- पूर्वसूत्र **जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्** आदि सूत्रों से विहित **अञ्** आदि प्रत्यय। उस प्रकरण में **अञ्, अण्, ड्यण्, ण्य, ञ्य, इञ्** ये प्रत्यय आते हैं। इन सब की **तद्राज** संज्ञा की जाती है और इसका फल **तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्** की प्रवृत्ति है। **पुनश्च**- इन प्रत्ययों की तद्राजसंज्ञा इस लिए होती है क्योंकि ये प्रत्यय उन-उन जनपदों के राजा के भी बोधक हैं। इस प्रकार यह संज्ञा अन्वर्थक है।

११९३. तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम् २।४।६२॥

बहुष्वर्थेषु तद्राजस्य लुक् स्यात् तदर्थकृतबहुत्वे, न तु स्त्रियाम्। इक्ष्वाकवः, पञ्चाला इत्यादि। कथं तार्हि 'कौरव्याः पशवः' 'तस्यामेव रघोः पाण्ड्याः' इति च? कौरव्ये पाण्ड्ये च साधव इति समाधेयम्। 'रघूणामन्वयं वक्ष्ये' 'निरुध्यमाना यदुभिः कथञ्चित्' इति तु रघुयदुशब्दयो- स्तदपत्ये लक्षणया।

तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्। तद्राजस्य षष्ठ्यन्तं, बहुषु सप्तम्यन्तं, तेन तृतीयान्तम्, एव अव्ययम्, अस्त्रियां सप्तम्यन्तम्, अनेकपदं सूत्रम्। **ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः** से **लुक्** की अनुवृत्ति आती है।

बहुवचन में तद्राजसंज्ञक प्रत्यय का लुक् होता है, यदि बहुत्व तद्राज प्रत्यय के अर्थद्वारा ही किया गया हो तो किन्तु स्त्रीलिङ्ग में लुक् नहीं होता।

सूत्रस्थ **बहुषु** पद का अन्वय **तद्राजस्य** तथा **तेनैव** इन पदों के साथ है। **तेन** इस सर्वनामपद से **तद्राज** का ही परामर्श होता है। **तेन बहुषु** से **तद्राज बहुत्व** अर्थ की अभिव्यक्ति होती है। **अस्त्रियाम्** पद स्त्रीलिंग में निषेध के लिये है। इस तरह यह

अभिव्यञ्जित होता है कि स्त्रीलिङ्ग के अतिरिक्त अन्य लिङ्गों में बहुत्व अर्थ में तद्राज-संज्ञक प्रत्यय का लुक् (लोप) होता है किन्तु बहुत्व तद्राज-प्रत्यय द्वारा प्राप्त अर्थ का ही होना चाहिये।

इक्ष्वाकवः। इक्ष्वाकुओं की बहुत सन्तानें। इक्ष्वाकु शब्द जनपद और क्षत्रिय दोनों का वाचक है। **इक्ष्वाकोरपत्यम्** लौकिक विग्रह और **इक्ष्वाकु+ङस्** अलौकिक विग्रह है। **जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्** से **अञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि करके **ऐक्ष्वाकु+अ** बना। यहाँ पर **ओर्गुणः** से गुण होना था किन्तु **दाण्डिनायनहास्तिनायनाथर्वणिक०** से टिलोप निपातन होने से **ऐक्ष्वाक** और सु, रुत्व, विसर्ग करके **ऐक्ष्वाकः** बनता है। द्विवचन में **ऐक्ष्वाकौ** बनता है। इससे जब बहुवचन **जस्** आता है तो **तद्रासंज्ञक अञ्** प्रत्यय का **तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्** से लुक् हो जाता है। **निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः** के नियमानुसार **अञ्** प्रत्यय को निमित्त मान कर की गई आदिवृद्धि और **टिलोप** का निपातन आदि भी स्वतः निवृत्त हो जाते हैं, जिससे मूल शब्द ही **इक्ष्वाकु** के रूप में आ जाता है। इससे बहुवचन में **भानु** शब्द की तरह **इक्ष्वाकवः** ही रूप बनता है। इस तरह रूप बनते हैं- **ऐक्ष्वाकः, ऐक्ष्वाकौ, इक्ष्वाकवः, ऐक्ष्वाकम्, ऐक्ष्वाकौ, इक्ष्वाकून्** आदि। इसी तरह सभी विभक्तियों में करना चाहिये। **इक्ष्वाकूणां राजा** विग्रह में यही कार्य होता है।

पञ्चालाः। पञ्चालों की सन्तानें। **पञ्चाल** शब्द जनपद और क्षत्रिय दोनों का वाचक है। **पञ्चालस्यापत्यानि** लौकिक विग्रह और **पञ्चाल+ङस्** अलौकिक विग्रह है। **जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्** से **अञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकार का लोप करके **पाञ्चाल**। इससे जब बहुवचन **जस्** आता है तो **तद्रासंज्ञक अञ्** प्रत्यय का **तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्** से लुक् हो जाता है। **निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः** के नियमानुसार **अञ्** प्रत्यय को निमित्त मान कर की गई आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप आदि स्वतः निवृत्त हो जाते हैं जिससे कि मूल शब्द ही **पञ्चाल** के रूप में आ जाता है। इससे बहुवचन में वृद्धि आदिरहित **पञ्चालाः** ही रूप बनता है। इसके एकवचन का रूप **जनपदशब्दात्क्षत्रियादञ्** सूत्र में बना चुके हैं। इस तरह इसके रूप होते हैं- **पाञ्चालः, पाञ्चालौ, पञ्चालाः, पाञ्चालम्, पाञ्चालौ, पञ्चालान्** आदि।

कथं तर्हि 'कौरव्याः पशवः' 'तस्यामेव रघोः पाण्ड्याः' इति च? कौरव्ये पाण्ड्ये च साधव इति समाधेयम्। यह प्रश्न किया जाता हैं कि यदि क्षत्रियाभिधायी जनपदवाची शब्दों से विहित **तद्राज** प्रत्यय का बहुत्व में लुक् होता है तो **कौरव्याः, पाण्ड्याः** कैसे बना, क्योंकि इन काव्यप्रयोगों में **कुरु**-शब्द से **कुरुनादिभ्यो ण्यः** से तद्राजसंज्ञक ण्य प्रत्यय होकर **कौरव्य** बना है और **पाण्डु**-शब्द से **पाण्डोर्ड्यण्** वार्तिक से ड्यण् प्रत्यय होकर **पाण्ड्य** शब्द बने हैं। इनके बहुवचन में उक्त प्रत्ययों का लुक् होना चाहिये। इस प्रश्न का समाधान देते हुये कहते हैं कि एकवचन में **कौरव्यः,**

पाण्ड्यः बनने के बाद पुनः दूसरा तद्धित प्रत्यय किया जाता है। जैसे कि **कौरव्ये साधवः** (कौरववंशियों के लिये साधु, ठीक, अच्छा) विग्रह करके **तत्र साधुः** सूत्र से शैषिक अण् प्रत्यय करने पर भसंज्ञक अकार का लोप होकर **कौरव्य** ही बनता है और उसके बहुवचन में **कौरव्याः** रूप सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **पाण्ड्ये साधवः** विग्रह करके शैषिक अण् प्रत्यय के बाद स्वादिकार्य से बहुवचन में **पाण्ड्याः** सिद्ध हो सकता है। तद्राजसंज्ञक प्रत्यय बहुत्व की विवक्षा में नहीं है और शैषिक प्रत्यय तद्राजसंज्ञक नहीं हैं। इस तरह प्रत्यय का लोप नहीं हुआ है, ऐसा समाधान निकालना चाहिये। तद्राजसंज्ञक प्रत्ययकृत बहुत्व के बोध होने पर उक्त प्रत्यय का लुक् किया जाता है। अत एव **प्रियो वाङ्गो येषां ते प्रियवाङ्गाः** (जिसे वंगदेशवासी प्रिय हैं) में **वाङ्ग**-शब्द में विद्यमान **अञ्** प्रत्यय का लुक् नहीं होता, क्योंकि यहाँ तद्राजसंज्ञकप्रत्ययकृत बहुत्व न होकर समासकृत बहुत्व का बोध हो रहा है।

'रघूणामन्वयं वक्ष्ये' 'निरुध्यमाना यदुभिः कथञ्चित्' इति तु रघुयदुशब्दयोस्तदपत्ये लक्षणया। पुनरपि यह शंका होती है कि महाकवि कालिदास ने रघुवंशमहाकाव्य के आरम्भ में **रघूणामन्वयं वक्ष्ये** (रघुवंशियों के वंश का वर्णन करता हूँ) का प्रयोग किया है। यहाँ **राघवाणामन्वयं वक्ष्ये** होना चाहिये था। इसी तरह अन्य प्रयोग में **यदुभिः** का प्रयोग हुआ है। उक्त दोनों वाक्यों में **रघु** और **यदु** क्षत्रिय तो हैं किन्तु जनपदवाची नहीं हैं। क्षत्रियाभिधायी जनपदवाची शब्दों से ही तद्राजसंज्ञक प्रत्यय किये जाते हैं। उक्त दोनों प्रयोगों में तद्राजसंज्ञक प्रत्यय की सम्भावना ही नहीं है। अतः अपत्यार्थ में प्राग्दीव्यतीय अण्-प्रत्यय होकर **राघव** और **यादव** शब्द बनते हैं और उनके षष्ठीबहुवचन तथा तृतीयाबहुवचन में क्रमशः **राघवाणाम्** तथा **यादवैः** प्रयोग करना चाहिये था, क्योंकि तद्राजसंज्ञक प्रत्यय न होने के कारण तादृश प्रत्ययों का लुक् नहीं होना चाहिये था। इस प्रश्न का भी समाधान करते हुये मूलकार कहते हैं- **रघु** और **यदु** शब्दों से अपत्यार्थ में प्रत्यय नहीं किया गया है किन्तु अपत्यार्थ में लक्षणा करके बिना प्रत्यय ही राघव और यादव अर्थ का बोध किया जाता है। लक्षणा के द्वारा अनेक कार्य सिद्ध किये जाते हैं। अतः **रघूणाम्** और **यदुभिः** ये प्रयोग असाधु नहीं माने जा सकते।

११९४. कम्बोजाल्लुक् ४।१।१७५॥

अस्मात् तद्राजस्य लुक्। कम्बोजः। कम्बोजौ।

'कम्बोजादिभ्य इति वक्तव्यम्' (वा२६७४)। चोलः। शकः। द्व्यञ्लक्षणस्याणो लुक्। केरलः। यवनः। अजो लुक्। 'कम्बोजाः समरे' इति पाठः सुगमः। दीर्घपाठे तु कम्बोजोऽभिजनो येषामित्यर्थः। सिन्धुतक्षशिला- दिभ्योऽणञौ' (सू.१४७३) इत्यण्।

कम्बोजाल्लुक्। कम्बोजात् प्रथमान्तं, लुक् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **ते तद्राजाः** से विभक्तिविपरिणाम करके **तद्राजस्य** की अनुवृत्ति आती है। **जनपदशब्दात् क्षत्रियात्, प्रत्ययः, परश्च** की अनुवृत्ति और अधिकार करके **प्रत्ययः** को षष्ठ्यन्त में विपरिणाम करके अर्थ की संगति बिठानी चाहिये।

क्षत्रियाभिधायी जनपदवाची कम्बोज शब्द से परे तद्राजसंज्ञक प्रत्यय का लुक् होता है।

तद्धित को मान कर के होने वाले जितने भी कार्य हैं **आदिवृद्धि, भसंज्ञक वर्ण का लोप** आदि, उसके **लुक्** हो जाने से नहीं होंगे। यद्यपि बहुत्वविवक्षा में तद्राजसंज्ञक प्रत्यय का पूर्वसूत्र **तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्** से लुक् सिद्ध था तथापि सभी वचनों में लुक् करने के लिये प्रकृत सूत्र की सार्थकता है। कम्बोज-शब्द से विहित तद्राजसंज्ञक प्रत्ययों का सभी वचनों में लुक् होता है।

कम्बोजः। कम्बोजौ। कम्बोज की सन्तान अथवा कम्बोज का राजा। **कम्बोज** शब्द भी जनपदवाची और क्षत्रियविशेषवाची है। **कम्बोजस्यापत्यं राजा वा** लौकिक विग्रह और **कम्बोज ङस्** अलौकिक विग्रह है। **जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्** से **अञ्** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर के आदिवृद्धि प्राप्त थी किन्तु **कम्बोजाल्लुक्** से तद्राजसंज्ञक **अञ्** प्रत्यय के लुक् हो जाने के कारण आदिवृद्धि आदि कार्य नहीं हुए। स्वादिकार्य करके **कम्बोजः, कम्बोजौ, कम्बोजाः** आदि सामान्य ही रूप होंगे। **कम्बोज** शब्द के तद्धितान्त और अतद्धितान्त रूप समान ही होंगे अर्थात् देखने में शब्दरूप एक जैसे लगेंगे किन्तु अर्थ को प्रसंगानुसार तद्धितान्त या अतद्धितान्त समझना चाहिए।

कम्बोजादिभ्य इति वक्तव्यम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- प्रकृतसूत्र में **कम्बोजात्** की जगह **कम्बोजादिभ्यः** कहना चाहिये। वार्तिककार का कहना है कि **कम्बोलाल्लुक्** यह सूत्र न्यून है। इसके स्थान पर **कम्बोजादिभ्यो लुक्** ऐसा कहना चाहिए। ऐसा करने से केवल **कम्बोज** शब्द से ही नहीं अपितु **कम्बोजादि** अनेक शब्दों से तद्राजसंज्ञक प्रत्ययों का लुक् किया जा सकेगा। जिससे **चोलः, यवनः** आदि शब्दों में भी तद्राजसंज्ञक प्रत्ययों का लुक् हो सकेगा। **चोलस्यापत्यम्** चोलदेश की सन्तान आदि अर्थ में प्राप्त अण् आदि प्रत्ययों के लुक् हो जाने से **चोल** से **चोल** ही बनता है अर्थात् आदिवृद्धि आदि कार्य नहीं होते। अन्यथा **चौलः** बनने लगता।

कम्बोजादिगण- कम्बोज, चोल, केरल, शक, यवन।

इस वार्तिक से अण् आदि का लुक् करके निम्नलिखित रूप बनते हैं-

चोलस्यापत्यम्- (चोल राजा की सन्तान) **चोलः, चोलौ, चोलाः।**

शकस्यापत्यम् (शक राजा की सन्तान) **शकः, शकौ, शकाः।**

द्व्यञ्लक्षणस्याणो लुक्। उक्त दो **चोल** और **शक** शब्दों से द्व्यच्-लक्षण **द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसादण्** सूत्र से विहित **अण्** प्रत्यय का लुक् किया गया है।

केरलस्यापत्यम् (केरल जनपद का राजा) **केरलः, केरलौ, केरलाः।**
यवनस्यापत्यम् (यवन की सन्तान) **यवनः, यवनौ, यवनाः** आदि।

अञो लुक्। अर्थात् **केरल** और **यवन** शब्द देशवाची और राजावाची दोनों हैं। अतः **जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्** सूत्र से विहित प्रत्यय का प्रकृत वार्तिक की सहायता से लुक् किया जाता है।

'कम्बोजाः समरे' इति पाठः सुगमः। दीर्घपाठे तु कम्बोजोऽभिजनो येषामित्यर्थः। सिन्धुतक्षशिलादिभ्योऽणञौ' इत्यण्। रघुवंश में **कम्बोजाः समरे** ऐसा प्रयोग ही समीचीन माना गया है अर्थात् तद्राजसंज्ञक प्रत्यय का लुक् किया गया है। कहीं-कहीं **काम्बोजाः** ऐसा दीर्घवर्णयुक्त पाठ भी मिलता है, उस स्थिति में **कम्बोज** शब्द तद्राजसंज्ञक प्रत्यय न होकर **कम्बोजोऽभिजनो येषाम्** (कम्बोज जनपद अभिजन है, जिनका) ऐसा विग्रह करके अभिजन अर्थ में शैषिक **सिन्धुतक्षशिलादिभ्योऽणञौ** सूत्र से अण् प्रत्यय करने पर **काम्बोज** शब्द बन जाता है। उस अवस्था में उक्त प्रत्यय के तद्राजसंज्ञक न होने के कारण लुक् नहीं होगा। फलतः प्रत्यय के परे रहते आदिवृद्धि, अकारलोप करके **काम्बोज** शब्द बना लिया जाता है। जिनके पूर्वज जहाँ रहा करते थे, उसे **अभिजन** कहा जाता है- **यत्र पूर्वैरुषितं सोऽभिजनः** यह बात शैषिक प्रकरण में कहने वाले हैं।

उक्त स्थलों पर **चोल, शक, केरल** और **यवन** शब्द जनपदक्षत्रियवाची हैं।

पञ्चाल आदि ऊपर बताये गये सभी शब्द जनपद और उस जनपद के राजा दोनों को कहते हैं। अतः इन सभी शब्दों से जब **उस देश का राजा** ऐसा विग्रह होगा तो भी **क्षत्रियसमानशब्दाञ्जनपदात्तस्य राजन्यपत्यवत्** वार्तिक से अपत्यार्थ के समान अण् आदि प्रत्यय और **चोल, कम्बोज** आदि में लुक् होकर **पञ्चालः, चोलः, कम्बोजः,** आदि ही रूप बनते हैं। अतः **पाञ्चालः** से **पञ्चाल राजा के पुत्र** अथवा **पञ्चाल देश** का राजा आदि अर्थ को प्रसंगतः समझना चाहिए।

११९५. स्त्रियामवन्तिकुन्तिकुरुभ्यश्च ४।१।१७६॥
तद्राजस्य लुक् स्यात्। अवन्ती। कुन्ती। कुरूः।

स्त्रियामवन्तिकुन्तिकुरुभ्यश्च। अवन्तिश्च कुन्तिश्च कुरुश्च तेषामितरेतर-योगद्वन्द्वः- अवन्तिकुन्तिकुरवस्तेभ्योऽवन्तिकुन्तिकुरुभ्यः। स्त्रियां सप्तम्यन्तम्, अवन्तिकुन्तिकुरुभ्यः पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **ते तद्राजाः** से विभक्तिविपरिणाम करके **तद्राजस्य** की अनुवृत्ति आती है। **जनपदशब्दात् क्षत्रियात्, प्रत्ययः, परश्च** की अनुवृत्ति और अधिकार करके **प्रत्ययः** को षष्ठ्यन्त में विपरिणाम करने से अर्थ की संगति बैठती है।

क्षत्रियाभिधायी जनपदवाची जो अवन्ति, कुन्ति और कुरु शब्द, उनसे **उत्पन्न तद्राजसंज्ञक प्रत्यय का भी लुक्** होता है, स्त्रीलिङ्ग के विषय में।

अवन्ती। अवन्ति देश की राजकुमारी। **अवन्तेः अपत्यं स्त्री** विग्रह करके **अवन्ति+ङस्** में **वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ्** सूत्र से ह्रस्व-इकारान्तलक्षण ञ्यङ् प्रत्यय होने पर **आवन्त्यः, आवन्त्यौ, अवन्तयः** आदि रूप पुंल्लिंग में बनते हैं किन्तु स्त्रीत्वविवक्षा में **स्त्रियामवन्तिकुन्तिकुरुभ्यश्च** सूत्र से उक्त प्रत्यय का लुक् कर दिया जाता है। अतः **अवन्ति** शब्द ही बना हुआ है। स्त्रीत्वविवक्षा में **इतो मनुष्यजातेः** (४.१.६५) सूत्र से ङीष् होने पर सवर्णदीर्घ होकर **अवन्ती** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **अवन्ती** सिद्ध हो जाता है। यह एकवचन का रूप है। द्विवचन और बहुवचन में **नदी** शब्द की तरह ही **अवन्त्यौ, अवन्त्यः** आदि रूप बन जाते हैं।

कुन्ती। कुन्ति देश की राजकुमारी। **कुन्तेः अपत्यं स्त्री** विग्रह करके **कुन्ति+ङस्** में **वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ्** सूत्र से ह्रस्व-इकारान्तलक्षण ञ्यङ् प्रत्यय होने पर **कौन्त्यः, कौन्त्यौ, कुन्तयः** आदि रूप पुंल्लिंग में बनते हैं किन्तु स्त्रीत्वविवक्षा में **स्त्रियामवन्तिकुन्तिकुरुभ्यश्च** सूत्र से उक्त प्रत्यय का लुक् कर दिया जाता है। अतः **कुन्ति** शब्द ही बना हुआ है। स्त्रीत्वविवक्षा में **इतो मनुष्यजातेः** (४.१.६५) सूत्र से ङीष् होने पर सवर्णदीर्घ होकर **कुन्ती** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कुन्ती** सिद्ध हो जाता है।

कुरूः। कुरु देश की राजकुमारी। **कुरोः अपत्यं स्त्री** विग्रह करके **कुरु+ङस्** में **कुरुनादिभ्यो ण्यः** सूत्र से **ण्य** प्रत्यय होने पर **कौरव्य, कौरव्यौ, कुरवः** आदि रूप पुंल्लिंग में बनते हैं किन्तु स्त्रीत्वविवक्षा में **स्त्रियामवन्तिकुन्तिकुरुभ्यश्च** सूत्र से उक्त प्रत्यय का लुक् कर दिया जाता है। अतः **कुरु** शब्द ही बना हुआ है। स्त्रीत्वविवक्षा में **ऊङुतः** (४.१.६६) सूत्र से ऊङ् प्रत्यय होने पर सवर्णदीर्घ होकर **कुरू** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कुरूः** सिद्ध हो जाता है। यहाँ ङ्यन्त या आबन्त न होने के कारण हल्ङ्यादिलोप नहीं होता।

११९६. अतश्च ४।१।१७७॥

तद्राजस्याकारस्य स्त्रियां लुक् स्यात्।

शूरसेनी। मद्री। कथं 'माद्रीसुतौ' इति? 'ह्रस्व एव पाठः' इति हरदत्तः। भर्गादित्वं वा कल्प्यम्।

अतश्च। अतः षष्ठ्यन्तं, चाव्ययम्। **स्त्रियामवन्तिकुन्तिकुरुभ्यश्च** से **स्त्रियाम्** की, **ते तद्राजाः** से विभक्तिविपरिणाम करके **तद्राजस्य** की **जनपदशब्दात् क्षत्रियात्, प्रत्ययः, परश्च** की अनुवृत्ति और अधिकार है।

स्त्रीलिङ्ग अभिधेय हो तो क्षत्रियाभिधायी जनपदवाची शब्दों के तद्राजसंज्ञक ह्रस्व-अकार प्रत्यय का लुक् होता है।

स्त्रीलिंग में तद्राज-प्रत्यय के लोप का विस्तार किया गया है। **अतः** पद **तद्राजस्य** का विशेषण है।

शूरसेनी। शूरसेन देश की राजकुमारी। **शूरसेनानामपत्यं राजकुमारी वा** अर्थ में **शूरसेन+आम्** से **जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्** सूत्र से अञ् प्रत्यय होने पर उसका **अतश्च** सूत्र से लोप होकर **शूरसेन** ही बना है। प्रत्ययलक्षण से अपत्यप्रत्ययान्त मानकर **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** सूत्र से ङीष् होने पर **यस्येति च** से अकारलोप होकर **शूरसेनी** शब्द बनता है। स्वादिकार्य से **शूरसेनी** सिद्ध हो जाता है।

मद्री। मद्रदेश की राजकुमारी। **मद्राणामपत्यं राजकुमारी वा** अर्थ में **मद्र+आम्** से **द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसादण्** सूत्र से अञ् प्रत्यय होने पर उसका **अतश्च** सूत्र से लोप होकर **मद्र** ही बना है। प्रत्ययलक्षण से अपत्यप्रत्ययान्त मानकर **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** सूत्र से ङीष् होने पर **यस्येति च** से अकारलोप होकर **मद्री** शब्द बनता है। स्वादिकार्य से **मद्री** सिद्ध हो जाता है।

इन दोनों प्रयोगों में **न लुमताङ्गस्य** सूत्र से प्रत्ययलक्षण का निषेध नहीं होता, क्योंकि ङीप् की विधि अङ्गाश्रित विधि नहीं है। लुमान् शब्दों से प्रत्यय का अदर्शन होने पर तन्निमित्तक अङ्गकार्य नहीं होता, यह सूत्रार्थ है। इस लिये प्रत्ययलक्षण से अपत्यप्रत्ययान्त मान लिया जाता है किन्तु आदिवृद्धि अङ्गाश्रित कार्य है, अतः प्रत्ययलक्षण का निषेध होने से आदिवृद्धि नहीं होती।

कथं 'माद्रीसुतौ' इति? 'ह्रस्व एव पाठः' इति हरदत्तः। भर्गादित्वं वा कल्प्यम्। अब प्रश्न आता है कि यदि **अतश्च** सूत्र से स्त्रीलिंग में विहित तद्राजसंज्ञक अकाररूप प्रत्यय का लोप किया जाता है तो **माद्रीसुतौ** यह प्रयोग कैसे सम्भव है? क्योंकि **मद्राणाम् अपत्यं स्त्री** अर्थ में **मद्र+आम्** में **द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसादण्** सूत्र से द्व्यच्लक्षण अण् प्रत्यय होने पर उसका **अतश्च** सूत्र से लुक् होने के कारण आदिवृद्धि नहीं हो पाती। अतः **मद्री** ऐसा रूप बनना चाहिये। बाद में समासादि से **मद्रीसुतौ** प्रयोग होना चाहिये। इस प्रश्न पर काशिका के व्याख्याता पदमञ्जरीकार कहते हैं कि उक्त **माद्रीसुतौ** अपपाठ है, वास्तव में ह्रस्वयुक्त **मद्रीसुतौ** ही प्रयोग होना चाहिये। दीक्षित जी वैकल्पिक समाधान देते हैं कि **मद्र**-शब्द का भर्गादिगण में पाठ माना जाय और वक्ष्यमाण **न प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः** से तद्राज-संज्ञक ह्रस्व-अकार प्रत्यय के लुक् का निषेध कर दिया जाय तो **माद्री** शब्द बन सकता है और उससे **माद्रीसुतौ** शब्द की साधुता हो जायेगी।

११९७. न प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः ४।१।१७८॥

एभ्यस्तद्राजस्य न लुक्।

पाञ्चाली। वैदर्भी। आङ्गी। वाङ्गी। मागधी। एते प्राच्याः। भार्गी। कारूशी। कैकेयी। केकयीत्यत्र तु जन्यजनकभावलक्षणे पुंयोगे ङीष्। युधा शुक्रा आभ्यां 'द्व्यचः' (सू.११२४) इति ढक्। ततः स्वार्थे 'पश्वादियौधेयादिभ्योऽणञौ' (सू.२०७०) इत्यञ्। शार्ङ्गरवाद्यञः-' (सू.५२७) इति ङीन्। 'अतश्च' (सू.११९६) इति लुकि तु ढगन्तत्वान्ङीष्युदात्तनिवृत्तिस्वरः स्यात्। यौधेयी। शौक्रेयी।

न प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः। भर्ग आदिर्येषां ते भर्गादयः। यौधेय आदिर्येषां ते यौधेयादयः, उभयत्र बहुव्रीहिः। प्राच्याश्च भर्गादयश्च यौधेयादयश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः प्राच्यभर्गादियौधेयादयस्तेभ्यः प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, नाव्ययम्। **स्त्रियामवन्तिकुन्तिकुरुभ्यश्च** से **स्त्रियाम्** की, **ते तद्राजाः** से विभक्तिविपरिणाम करके **तद्राजस्य** की **जनपदशब्दात् क्षत्रियात्, प्रत्ययः, परश्च** की अनुवृत्ति और अधिकार है।

स्त्रीलिङ्ग अभिधेय होने पर क्षत्रियाभिधायी जनपदवाची प्राग्देशीय शब्द, भर्गादि और यौधेयादि शब्दों से विहित तद्राजसंज्ञक प्रत्यय का लुक् नहीं होता।

पूर्वसूत्र से प्राप्त अकाररूपी तद्राजसंज्ञक प्रत्यय के लोप का स्थलविशेष में निषेध किया जा रहा है। निषेध्यस्थल की सीमा निर्धारित की गयी है। एतदर्थ सूत्र में भौगोलिक आधार का ग्रहण किया गया है। अतः सूत्रार्थ की निष्पत्ति के लिये उन प्रदेशों का नामोच्चारण किया गया है। **प्राच्य** शब्द से प्राग्देशीय जनपदों का ग्रहण है। **भर्गादि** और **यौधेयादि** गण हैं और इसमें भी जनपद और क्षत्रियवाचक शब्दों का ग्रहण है। दीक्षित जी ने प्राच्यदेशों में **पञ्चाल, विदर्भ, अङ्ग, वङ्ग** और **मगध** देशों का नाम लिया है।

पाञ्चाली। पञ्चालदेश की राजकुमारी। **पञ्चालानामपत्यं स्त्री (राजकुमारी)** अर्थ में **पञ्चाल+आम्** से **जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर उसका **अतश्च** सूत्र से लुक् प्राप्त था, उसका **न प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः** सूत्र से प्राच्यदेशीय मानकर निषेध किया जाता है। तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **पञ्चाल+अ** बना। आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **पाञ्चाल** शब्द बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् **टिड्ढाणञ्०** सूत्र से प्राप्त ङीप् को बाधकर **शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन्** सूत्र से ङीन् प्रत्यय, अकारलोप होकर **पाञ्चाली** बना। स्वादिकार्य करने पर **पाञ्चाली, पाञ्चाल्यौ, पाञ्चाल्यः** आदि रूप बनते हैं।

वैदर्भी। विदर्भ-देश की राजकुमारी। **विदर्भाणामपत्यं स्त्री (राजकुमारी)** अर्थ में **विदर्भ+आम्** से पूर्ववत् अण् प्रत्यय, उसका लुक् प्राप्त होने पर **न प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः** सूत्र से निषेध, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **वैदर्भ** बना। स्त्रीत्वविवक्षा में ङीप् आदि होकर **वैदर्भी** बनने के बाद स्वादिकार्य से **वैदर्भी** सिद्ध हो जाता है।

आङ्गी। अङ्ग-देश की राजकुमारी। **अङ्गानामपत्यं स्त्री (राजकुमारी)** अर्थ में **अङ्ग+आम्** से पूर्ववत् अण् प्रत्यय, उसका लुक् प्राप्त होने पर **न प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः** सूत्र से निषेध, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **आङ्ग** बना। उससे स्त्रीत्वविवक्षा में ङीप् आदि होकर **आङ्गी** बनने के बाद स्वादिकार्य होता है।

वाङ्गी। वङ्ग-देश की राजकुमारी। **वङ्गानामपत्यं स्त्री (राजकुमारी)** अर्थ में **वङ्ग+आम्** से पूर्ववत् अण् प्रत्यय, उसका लुक् प्राप्त होने पर **न प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः** सूत्र से निषेध, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **वाङ्ग** बना। उससे स्त्रीत्वविवक्षा में ङीप् आदि होकर **वाङ्गी** बनने के बाद स्वादिकार्य होता है।

मागधी। मगध-देश की राजकुमारी। **मगधानामपत्यं स्त्री (राजकुमारी)** अर्थ में **मगध+आम्** से **द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसादण्** से अण् प्रत्यय, उसका लुक् प्राप्त होने पर **न प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः** सूत्र से निषेध, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **मागध** बना। उससे स्त्रीत्वविवक्षा में **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** सूत्र से ङीष् आदि होकर **मागधी** बनने के बाद स्वादिकार्य होता है।

एते प्राच्याः। ये उपर्युक्त उदाहरण प्राच्य देश के हैं। अब भर्गादि के उदाहरण दिये जा रहे हैं-

भार्गी। भर्ग-देश की राजकुमारी। **भर्गाणामपत्यं स्त्री (राजकुमारी)** अर्थ में **भर्ग+आम्** से पूर्ववत् अण् प्रत्यय, उसका लुक् प्राप्त होने पर **न प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः** सूत्र से निषेध, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप, तत्पश्चात् स्त्रीत्वविवक्षा में ङीप् आदि होकर **भार्गी** बनने के बाद स्वादिकार्य होता है।

कारूशी। करूश की राजकुमारी। **करूशस्य अपत्यं स्त्री (राजकुमारी)** अर्थ में **करूश+आम्** से पूर्ववत् अण् प्रत्यय, उसका लुक् प्राप्त होने पर **न प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः** सूत्र से निषेध, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **कारूश** बना। उससे स्त्रीत्वविवक्षा में ङीप् आदि होकर **करूशी** बनने के बाद स्वादिकार्य होता है।

कैकेयी। केकय-देश की राजकुमारी। **कैकयानामपत्यं स्त्री (राजकुमारी)** अर्थ में **केकय+आम्** से पूर्ववत् अण् प्रत्यय, उसका लुक् प्राप्त होने पर **न प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः** सूत्र से निषेध, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होने के बाद **कैकेय** से स्त्रीत्वविवक्षा में ङीप् आदि होकर **कैकेयी** बनने के बाद स्वादिकार्य होता है।

केकयीत्यत्र तु जन्यजनकभावलक्षणे पुंयोगे ङीष्। अर्थात् ऊपर **कैकेयी** शब्द की सिद्धि की गयी थी किन्तु कहीं-कहीं **केकयी** शब्द का प्रयोग मिलता है। ऐसी स्थिति में उसकी सिद्धि दिखाने का प्रयास मूलकार ने किया है कि **केकयस्य अपत्यं कन्या** (केकय नामक क्षत्रिय की कन्या सन्तति)' अर्थ विवक्षित है। यहाँ पर **केकय** देश की राजकुमारी यह अर्थ विवक्षित न होने के कारण **पुंयोगादाख्यायाम्** सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हो सकती। अतः तद्धित प्रत्यय के बिना ही गौरादिगण में पाठ मानकर जन्यजनकभावसम्बन्ध (पिता-पुत्री-सम्बन्ध) में ङीष् प्रत्यय करके **केकयी** शब्द की सिद्धि करनी चाहिये। यद्यपि भाष्यकार के अनुसार यहाँ दाम्पत्यभाव सम्बन्ध अर्थ ही अभीष्ट है तथापि पिता के साथ साक्षात् अपत्यार्थ में **पुंयोगादाख्यायाम्** सूत्र से ङीष् प्रत्यय किया गया है, ऐसा समझना चाहिये। **पुंयोग** का तात्पर्य केवल पतिपत्नी के बीच ही नहीं होता अपितु माता-पुत्र, भ्रातृ-भगिनी, पिता-पुत्री के साथ भी होता है। अमुक की स्त्री, अमुक की माता, अमुक की बहन, अमुक की पुत्री इत्यादि। यह ध्यातव्य है कि जन्यजनकभाव आदि सम्बन्ध में **पुंयोगादाख्यायाम्** की प्रवृत्ति केवल दीक्षित जी के मत में है। बालमनोरमाकार तथा भट्टनागेश जी तो **अकुर्वती पापं भर्तृकृतान् वधबन्धादीन् यथा लभते तथा तच्छब्दमपि** इस भाष्यकथनानुसार केवल दाम्पत्य सम्बन्ध में ही **पुंयोगादाख्यायाम्** की प्रवृत्ति मानते हैं। ऐसे में इनके अनुसार **केकयी** आदि स्थलों में गौरादित्वात् **षिद्गौरादिभ्यश्च** से ही ङीष् माना जाता है।

यौधेयी। यौधेय की राजकुमारी। **यौधेयानामपत्यं स्त्री (राजकुमारी)** अर्थ में **यौधेय+आम्** से पूर्ववत् अञ् प्रत्यय, उसका लुक् प्राप्त, उसका निषेध, स्त्रीत्वविवक्षा में ङीन् आदि होकर **यौधेयी** बनने के बाद स्वादिकार्य होता है।

शौक्रेयी। शौक्रेय की राजकुमारी। **शौक्रेयानामपत्यं स्त्री (राजकुमारी)** अर्थ में **शौक्रेय+आम्** से पूर्ववत् अञ् प्रत्यय, उसका लुक् प्राप्त, उसका निषेध, स्त्रीत्वविवक्षा में ङीन् आदि होकर **शौक्रेयी** बनने के बाद स्वादिकार्य होता है।

युधा शुक्रा आभ्यां 'द्व्यचः' इति ढक्। ततः स्वार्थे 'पश्वादियौधेयादिभ्योऽणञौ' इत्यञ्। शार्ङ्गरवाद्यञः-' इति ङीन्। प्रसंगवश **यौधेय** और **शौक्रेय** शब्दों की सिद्धि बतायी जा रही है। **युधा** और **शुक्रा** शब्दों से **द्व्यचः (११२४)** सूत्र से **ढक्** प्रत्यय होने पर ढकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र से **एय्** आदेश, आदिवृद्धि, आकारलोप आदि होकर **यौधेय, शौक्रेय** शब्द बन जाते हैं। उनसे स्वार्थ में **पश्वादियौधेयादिभ्योऽणञौ (२०७०)** सूत्र से **अञ्** प्रत्यय, उसकी

ञ्यादयस्तद्राजाः सूत्र से तद्राजसंज्ञा होने के कारण प्राप्त लोप का प्रकृत सूत्र से निषेध होने पर **यौधेय, शौक्रेय** शब्दों से स्त्रीत्वविवक्षा में **शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन्** सूत्र से ङीन् प्रत्यय होकर **यौधेयी, शौक्रेयी** सिद्ध हो जाते हैं। यहाँ **यौधेयी, शौक्रेयी** शब्दों में स्वार्थ में विहित अञ् प्रत्यय का लोप करने पर भी पूर्वविहित ढक्-प्रत्यय का आश्रय लेकर **टिड्ढाणञ्०** सूत्र से ङीप् प्रत्यय होकर उक्त रूपों की सिद्धि थी, अञ् का लोप नहीं किया गया। उसका फल यह हुआ कि ञित्त्वप्रयुक्त **ञ्नित्यादिर्नित्यम्** सूत्र से आद्युदात्त स्वर हो जाता है। यही फल है। अन्यथा-

'अतश्च' इति लुकि तु ढगन्तत्वान्ङीप्युदात्तनिवृत्तिस्वरः स्यात्। यदि अञ् का लुक् हुआ होता तो **यौधेय** और **शौक्रेय** शब्दों के ढगन्त होने के कारण पुनः ङीप् प्रत्यय से पूर्ववर्ती अकार का भी **अतश्च** सूत्र से लोप हो जाने से ढक्-प्रत्ययान्त समुदाय **यौधेय, शौक्रेय** के अन्तोदात्त होने के कारण **अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः** सूत्र से ङीप्-सम्बन्धी ईकार को उदात्त होता, तब अवशिष्ट पूर्वस्थ दानों स्वरवर्ण उदात्तनिवृत्तिपूर्वक अनुदात्त हो जाते। वस्तुतस्तु ङीन् प्रत्ययान्त शब्द के आद्युदात्त होने पर अग्रिम वर्ण अनुदात्त होते हैं। यह अन्तर समझ लेना चाहिये।

पूर्वसूत्र **अतश्च** केवल समीपस्थ (चतुर्थाध्याय में पठित) अकाररूप प्रत्यय का ही लोप नहीं करता प्रत्युत पञ्चमाध्याय में पठित स्वार्थिक अकाररूप प्रत्यय का भी लोप करता है। अत एव **यौधेयादि** पद की सार्थकता सिद्ध होती है। उस पद से यह ज्ञापित होता है कि **अतश्च** सूत्र से विधीयमान तद्धित प्रकरण में सर्वत्र प्राप्त होता है।

भर्गादिगणः- भर्ग, करूश, केकय, कश्मीर, साल्व, सुस्थाल, उरस्, कौरव्य।

यौधेयादिगणः- यौधेय, शौक्रेय, शौभ्रेय, ज्यावाणेय, धार्तेय, त्रिगर्त, भरत, उशीनर।

११९८. अणिञोरनार्षयोर्गुरूपोत्तमयोः ष्यङ् गोत्रे ४।१।७८॥

ञ्यादीनामन्त्यमुत्तमम्, तस्य समीपमुपोत्तमम्। गोत्रे यावणिञौ विहितावनार्षौ तदन्तयोर्गुरूपोत्तमयोः प्रातिपदिकयोः स्त्रियां ष्यङादेशः स्यात्। 'निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति'(प.१३) इत्यणिञोरेव। षङावितौ। 'यङश्चाप्' (सू.५२८)। कुमुदगन्धेरपत्यं स्त्री कौमुदगन्ध्या। वाराह्या। अनार्षयोः किम्? वासिष्ठी। वैश्वामित्री। गुरूपोत्तमयोः किम्? औपगवी। जातिलक्षणो ङीष्। गोत्रे किम्? अहिच्छत्रे जाता आहिच्छत्री।

अणिञोरनार्षयोर्गुरूपोत्तमयोः ष्यङ् गोत्रे। अण् च इञ् च अणिञौ, तयोः अणिञोः। न आर्षौ अनार्षौ तयोरनार्षयोः। गुरु उपोत्तमं उत्तमसमीपवर्ति ययोस्तौ गुरूपोत्तमौ, तयोर्गुरूपोत्तमयोः। **तद्धिताः, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्** का अधिकार है। **प्रातिपदिकात्** का विभक्ति और वचनविपरिणाम करके **प्रातिपदिकयोः** बनाया जाता है।

त्र्यादीनामन्त्यमुत्तमम्, तस्य समीपमुपोत्तमम्। तीन या तीन से अधिक वर्णों वाले शब्दों के अन्तिम वर्ण की **उत्तमसंज्ञा** मानी जाती है और उत्तमसंज्ञक वर्ण के समीपवर्ती वर्ण को **उपोत्तम** कहा जाता है। **प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणम्** परिभाषा के बल पर **अण्** और **इञ्** से अणन्त और इञन्त का ग्रहण किया जाता है।

सूत्रार्थः- गोत्र अर्थ में विहित ऋषिवाची अपत्य से भिन्न जो अण् और इञ् प्रत्यय, तदन्त उपोत्तम-गुरुवर्णयुक्त प्रातिपदिकों को स्त्रीलिङ्ग में ष्यङ् आदेश होता है।

सूत्र में **ष्यङ्** यह आदेश के रूप में विहित है, अतः सभी षष्ठ्यन्त पदों में स्थानषष्ठी समझना चाहिये। उपोत्तम गुरुवर्ण के होने पर ही इस सूत्र की प्रवृत्ति होगी। इसका अभिप्राय यह हुआ कि जिस प्रातिपदिक में कम से कम तीन वर्ण हों, वहीं यह सूत्र लगेगा। यहाँ पर वर्णों की गणना केवल अच् वर्णों को लेकर हो रही है। जैसे कि **वाराही** में तीन अच् हैं- आ, आ, ई। हलों को जोड़ दें तो छह वर्ण हो जाते हैं किन्तु प्रकृतसूत्र में हलों की गणना नहीं की जायेगी।

यहाँ **अणिञोः** यह षष्ठीनिर्देश होने से **ष्यङ्** यह आदेश है यह बात सिद्ध होती है। उसके बाद प्रश्न उपस्थित होता है कि इसे ङित् आदेश माने या अनेकाल्? इस सम्बन्ध में बताया जाता है कि **ष्यङ्** के ङ् का प्रयोजन **यङश्चाप्** आदि सूत्रों में उसके ग्रहण के लिये है। अतः यह ङित्करण चरितार्थ हो जाने से इस स्थल में **ङिच्च** सूत्र की मन्थर प्रवृत्ति (धीरे-धीरे बढ़ता है प्रवृत्त होने के लिये) प्राप्त होती है। अतः उसे बाधकर उससे पूर्व ही झटिति **अनेकाल् शित्सर्वस्य** से सर्वादेश प्राप्त होता है। इस पर कहते हैं-

'निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति' इत्यणिञोरेव। यहाँ पर **निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति** (आदेश निर्दिष्ट स्थान पर ही होते हैं) इस परिभाषा के नियम से अन्त्य के स्थान पर न होकर **अणन्त** और **इञन्त** शब्दों में **अण्** और **इञ्** ही स्थानी के रूप में निर्दिष्ट होने के कारण इनके स्थान पर यही ष्यङ् आदेश होगा।

यद्यपि महाभाष्य में इस सूत्र के सम्बन्ध में प्रत्ययविधि तथा आदेशविधि को लेकर लम्बा शास्त्रार्थ है और अन्त में प्रत्ययविधि को ही सिद्धान्तित किया है तथापि कुछ उपयोगिताओं को देखते हुये मूलकार ने इसे आदेशविधि ही माना है।

षङावितौ। उक्त ष्यङ् आदेश में षकार और ङकार इत्संज्ञक हैं, **य** मात्र बचता है।

'यङश्चाप्'। आगे सिद्ध किये जाने प्रयोग **कुमुदगन्ध्या** में **यङश्चाप्** सूत्र से **चाप्** प्रत्यय होता है।

कुमुदगन्धेरपत्यं स्त्री कौमुदगन्ध्या। कुमुदगन्धि की पौत्री आदि। **कुमुदस्य गन्ध इति कुमुदगन्धः, कुमुदगन्ध इव गन्धो यस्य** ऐसा लौकिक विग्रह करकें **सप्तम्युपमानपूर्वपदस्योत्तरपलोपश्च** वार्तिक से समास और उत्तरपद **गन्ध** शब्द का

लोप होकर **कुमुदगन्ध** शब्द बनता है। **उपमानाच्च** (८७६) सूत्र से अन्त्यवर्ण अकार के स्थान पर **इकार** आदेश होकर **कुमदगन्धि** शब्द बन जाता है। **कुमुदगन्धेः गोत्रापत्यं स्त्री** विग्रह में **कुमुदगन्धि+ङस्** से **तस्यापत्यम्** सूत्र से **अण्** प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि और इकारलोप होकर **कौमुदगन्ध** शब्द बना है। यहाँ तीन से अधिक वर्ण हैं और अन्त्य वर्ण धकारोत्तरवर्ती अकार से पूर्ववर्ण गकारोत्तरवर्ती अकार गुरुसंज्ञक है, क्योंकि उस वर्ण से आगे नकार और धकार का संयोग है। संयोग के परे रहते लघु (ह्रस्व वर्ण) भी **संयोगे गुरु** सूत्र से गुरुसंज्ञक हो जाता है। इस तरह **कौमुदगन्ध** शब्द में उपोत्तम वर्ण हुआ **ग**। अतः **अणिञोरनार्षयोर्गुरूपोत्तमयोः ष्यङ् गोत्रे** सूत्र से अण् प्रत्यय वाले अकार के स्थान पर **ष्यङ्** आदेश होने पर **कौमुदगन्ध्य** शब्द बन जाता है। स्त्रीत्वविवक्षा में **यङश्चाप्** सूत्र से **चाप्** (**आ**) प्रत्यय होने पर सवर्णदीर्घ होकर **कौमुदगन्ध्या** बना। स्वादिकार्य होकर **कौमुदगन्ध्या** सिद्ध हो जाता है।

वाराह्या। वराह की पौत्री आदि। **वराहस्य गोत्रापत्यं स्त्री** अर्थ में **वराह+ङस्** से **अत इञ्** सूत्र से **इञ्** प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि और अकारलोप होकर **वाराहि** शब्द बना है। यहाँ तीन से अधिक वर्ण हैं और अन्त्य वर्ण इकार से पूर्ववर्ण रेफोत्तरवर्ती आकार स्वतः दीर्घ होने के कारण गुरुसंज्ञक है। इस तरह **वाराहि** शब्द में उपोत्तम वर्ण हुआ **रा**। अतः **अणिञोरनार्षयोर्गुरूपोत्तमयोः ष्यङ् गोत्रे** सूत्र से इञ् प्रत्यय वाले इकार के स्थान पर ष्यङ् आदेश होने पर **वाराह्य** शब्द बनता है। स्त्रीत्वविवक्षा में **यङश्चाप्** सूत्र से चाप् (आ) प्रत्यय होने पर सवर्णदीर्घ होकर **वाराह्या** बना। स्वादिकार्य होकर वाराह्या सिद्ध हो जाता है।

अनार्षयोः किम्? **वासिष्ठी**। **वैश्वामित्री**। प्रकृतसूत्र में **अनार्षयोः** पद के निवेश से ऋषिवाची शब्द होने पर ष्यङ् आदेश का निषेध किया गया है। अतः ऋषिवाची **वासिष्ठ** शब्द में ष्यङादेश नहीं हुआ। **वसिष्ठस्य गोत्रापत्यं स्त्री** विग्रह में **ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च** सूत्र से अण्, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **वासिष्ठ** शब्द बनता है और स्त्रीत्वविवक्षा में **टिड्ढाणञ्०** से ङीप् होकर **वासिष्ठी** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **विश्वामित्रस्य गोत्रापत्यं स्त्री** विग्रह में भी **ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च** सूत्र से अण्, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **वैश्वामित्र** शब्द बनता है और स्त्रीत्वविवक्षा में **टिड्ढाणञ्०** से ङीप् होकर **वैश्वामित्री** सिद्ध हो जाता है।

गुरूपोत्तमयोः किम्? औपगवी। जातिलक्षणो ङीष्। प्रकृतसूत्र में **गुरूपोत्तमयोः** पद के निवेश से गुरुसंज्ञक उपोत्तम होने पर ही ष्यङ् आदेश होता है। अतः **औपगव** शब्द में ष्यङादेश नहीं हुआ। यहाँ पर **उपगोः गोत्रापत्यं स्त्री** विग्रह में अण्, आदिवृद्धि, उकार को गुण ओकार, उसके स्थान पर अवादेश होकर **औपगव** बनने के बाद उपोत्तम वर्ण **ग** के गुरुसंज्ञक न होने के कारण ष्यङ् आदेश नहीं हुआ किन्तु **टिड्ढाणञ्०** से ङीप् होकर **औपगवी** सिद्ध हो जाता है।

गोत्रे किम्? अहिच्छत्रे जाता आहिच्छत्री। प्रकृतसूत्र में **गोत्रे** पद के निवेश से गोत्रापत्य में विहित अण् होने पर ही ष्यङ् आदेश किया जाता है। **अच्छिच्छत्रे जाता** अर्थ में **तत्र जातः** सूत्र से विहित अण्-प्रत्ययान्त **आहिच्छत्र** शब्द में ष्यङादेश नहीं हुआ। फलतः यङन्त न होने के कारण चाप् भी नहीं हुआ, किन्तु **टिड्ढाणञ्०** से ङीप् होकर **आहिच्छत्री** सिद्ध हो जाता है।

११९९. गोत्रावयवात् ४।१।७९॥

गोत्रावयवा गोत्राभिमताः कुलाख्याः, ततो गोत्रे विहितयोरणिञोः स्त्रियां ष्यङादेशः स्यात्। अगुरूपोत्तमार्थ आरम्भः। पौणिक्या। भौणिक्या।

गोत्रावयवात्। गोत्रं च तदवयवश्च गोत्रावयवस्तस्माद् गोत्रावयवात्। **अणिञोरनार्षयोर्गुरूपोत्तमयोः ष्यङ् गोत्रे** सूत्र से **अणिञोः, ष्यङ्, गोत्रे** पदों की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्** का अधिकार है।

कुलसूचक लौकिक गोत्र के रूप में अभिमत जो गोत्र, उस अर्थ में विहित अण् और इञ् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों को स्त्रीलिङ्ग में ष्यङ् आदेश होता है।

गोत्रावयवा गोत्राभिमताः कुलाख्याः। सूत्रस्थ गोत्र-शब्द गोत्ररूप से लोक में स्वीकृत कुल का वाचक है। **गोत्रं कुलम् अभिप्रेतं प्रख्यातं याभिस्ता गोत्राभिमताः। कुलम् आख्यायते व्यपदिश्यते आभिरिति कुलाख्याः**। जिनके नाम से सम्पूर्ण कुल का बोध होता हे, वे **कुलाख्या** होती है ऐसा भाव है। आगे **पौणिक्या, भौणिक्या** आदि उदाहरण दिये जा रहे हैं। यहाँ पर **पुणिकाः वयम्, भुणिकाः वयम्** (हम पुणिक कुल के हैं, हम भुणिक कुल के हैं) इत्यादि लोकप्रचलित कुल का आख्यान किये जाने के कारण प्रकृत सूत्र की प्रवृत्ति होती है।

अगुरूपोत्तमार्थ आरम्भः। पूर्वसूत्र गुरूपोत्तम होने पर ही लगता था, प्रकृतसूत्र गुरूपोत्तम न होने पर भी विशेष परिस्थितियों में ष्यङादेश के लिये है। इस तरह यह फलितार्थ बनता है कि शास्त्रीय गोत्र से भिन्न लौकिक गोत्र कुल आदि के पौत्रप्रभृति अपत्य के वाचक होने पर भी जिन्हें लोक में गोत्र मान लिया गया हो, जैसा कि श्रेष्ठतम भरत आदि शब्दों से स्त्रीत्वाभिधायी अण् एवं अञ् प्रत्यय ही ष्यङ् आदेश के स्थानी होते हैं।

पौणिक्या। पुणिक कुल में उत्पन्न स्त्री। **पुणिकस्यापत्यं स्त्री** अर्थ में **पुणिक+ङस्** में **अत इञ्** सूत्र से इञ् प्रत्यय होने पर तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकारलोप करके **पौणिकि** शब्द बना है। **गोत्रावयवात्** सूत्र से अकार के स्थान पर ष्यङ् आदेश होने पर **पौणिक्य** शब्द बना है। स्त्रीत्वविवक्षा में **यङश्चाप्** सूत्र से चाप् प्रत्यय होकर **पौणिक्या** सिद्ध हो जाता है।

भौणिक्या। भुणिक कुल में उत्पन्न स्त्री। **भुणिकस्यापत्यं स्त्री** अर्थ में **भुणिक+ङस्** में **अवृद्धाभ्यो नदीमानुषीभ्यस्तन्नामिकाभ्यः** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकारलोप करके **भौणिक** शब्द बना है। तदनन्तर **गोत्रावयवात्** सूत्र से अकार के स्थान पर ष्यङ् आदेश होने पर **भौणिक्य** शब्द बना। स्त्रीत्वविवक्षा में **यङश्चाप्** सूत्र से चाप् प्रत्यय होकर **भौणिक्या** सिद्ध हो जाता है।

१२००. क्रौड्यादिभ्यश्च ४।१।८०॥

स्त्रियां ष्यङ्-प्रत्ययः स्यात्।

अगुरूपोत्तमार्थोऽनणिञन्तार्थश्चारम्भः। क्रौड्या। व्याड्या। गौकक्ष्या।

'सूत युवत्याम्'(ग.सू.५५) सूत्या।

'भोज क्षत्रिये'(ग.सू.५६)। भोज्या।

क्रौड्यादिभ्यश्च। क्रौडी आदिर्येषां ते क्रौड्यादयस्तेभ्यः क्रौड्यादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **अणिञोरनार्षयोर्गुरूपोत्तमयोः ष्यङ् गोत्रे** सूत्र से **ष्यङ्, गोत्रे** पदों की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

गोत्र अर्थ में विद्यमान क्रौडि आदि शब्दों से स्त्रीत्वार्थ में ष्यङ् प्रत्यय होता है।

अगुरूपोत्तमार्थोऽनणिञन्तार्थश्चारम्भः। इस सूत्र की सार्थकता यह है कि पूर्वसूत्रद्वय में प्रथम सूत्र से गुरूपोत्तम तथा अणन्त, इञन्त होने पर और द्वितीय सूत्र से केवल अणन्त, इञन्त होने पर ही कार्य होता था किन्तु यह सूत्र अगुरूपोत्तम होने पर और अणन्त तथा अञन्त न होने पर भी लगता है। एतदर्थ इस सूत्र का आरम्भ है। क्रौड्यादिगण में पठित शब्द कुछ इञन्त और अणन्त होते हुये भी गुरूपोत्तम नहीं है। पूर्वसूत्रों से ष्यङ् आदेश किया गया था किन्तु प्रकृतसूत्र से ष्यङ् प्रत्यय किया जा रहा है। एक ही शब्द भी लक्ष्यभेद से कहीं आदेश के रूप में और कहीं प्रत्यय के रूप में व्यवहृत हो जाता है। यद्यपि पूर्व के दो सूत्रों में आदेशविधि मानकर कार्य किया था किन्तु महाभाष्यस्थ प्रत्ययविधिपक्ष को लेकर मूलकार ने इस सूत्र में **ष्यङ्-प्रत्ययः** लिखा है।

क्रौड्यादिगणः- क्रौडि, लाडि, व्याडि, आपिशलि, आपक्षिति, चौटयत, चैपयत, (वैटयत), सैकयत, बैल्वयत, सौधातकि। **सूत युवत्याम्। भोज क्षत्रिये।** यौतकि, कौटि, भौरिकि, भौलिकि, [शाल्मलि], शालास्थलि, कापिष्ठली, गौरक्ष्य।

क्रौड्या। क्रौडि की पुत्री। **क्रोडस्य गोत्रापत्यम्** अर्थ में **क्रोड+ङस्** से **अत इञ्** सूत्र के द्वारा इञ् प्रत्यय होने पर तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्,

आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **क्रौडि** शब्द बना है। उससे **क्रौड्यादिभ्यश्च** सूत्र के द्वारा **ष्यङ्** प्रत्यय होने पर भसंज्ञक इकार का लोप करके **क्रौड्य** शब्द बनता है। **यङश्चाप्** सूत्र के द्वारा स्त्रीत्वविवक्षा में चाप् प्रत्यय होकर **क्रौड्या** सिद्ध हो जाता है।

व्याड्या। व्याडि की पुत्री। **व्यडस्य गोत्रापत्यम्** अर्थ में **व्यड+ङस्** से **अत इञ्** सूत्र के द्वारा इञ् प्रत्यय होने पर तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **व्याडि** शब्द बना है। उससे **क्रौड्यादिभ्यश्च** सूत्र के द्वारा **ष्यङ्** प्रत्यय होने पर भसंज्ञक इकार का लोप करके **व्याड्य** शब्द बनता है। **यङश्चाप्** सूत्र के द्वारा स्त्रीत्वविवक्षा में चाप् प्रत्यय होकर **व्याड्या** सिद्ध हो जाता है। उक्त दोनों उदाहरणों में अन्त्य अच् से पूर्व का अच् भले ही गुरुसंज्ञक हो किन्तु तीन समग्र अच् न होने के कारण उपोत्तम नहीं हैं।

गौकक्ष्या। गोकक्ष्य की पुत्री। **गौकक्ष्यस्य गोत्रापत्यम्** अर्थ में **गोकक्ष+ङस्** से **गर्गादिभ्यो यञ्** सूत्र के द्वारा यञ् प्रत्यय होने पर तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **गौकक्ष्य** शब्द बना है। उससे **क्रौड्यादिभ्यश्च** सूत्र के द्वारा **ष्यङ्** प्रत्यय होने पर भसंज्ञक अकार का लोप, यकार का **हलस्तद्धितस्य** से लोप होकर **गौकक्ष्य** शब्द बनता है। **यङश्चाप्** सूत्र के द्वारा स्त्रीत्वविवक्षा में चाप् प्रत्यय होकर **गौकक्ष्या** सिद्ध हो जाता है।

अब क्रौड्यादिगण के अन्तर्गत पठित दो गणसूत्रों का विवेचन कर रहे हैं-

सूत युवत्याम्। यह गणसूत्र है। सूत्रार्थः- युवति अर्थ वाच्य होने पर सूत-शब्द से ष्यङ् प्रत्यय होता है।

सूत्या। सूत की युवति कन्या। **सूतस्य अपत्यं युवतिः** अर्थ में **सूत+ङस्** से ष्यङ् प्रत्यय, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, अकार का **यस्येति च** से लोप होकर **सूत्य** शब्द बनता है। **यङश्चाप्** सूत्र के द्वारा स्त्रीत्वविवक्षा में चाप् प्रत्यय होकर **सूत्या** सिद्ध हो जाता है। युवति अर्थ न होकर सूत-जाति की स्त्री अर्थ गम्य होने पर तो ष्यङ् नहीं होता, अतः **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** सूत्र से ङीष् होकर **सूती** शब्द बनता है।

भोज क्षत्रिये। यह भी गणसूत्र है। सूत्रार्थः- भोज-सम्बन्धी क्षत्रिय युवति अर्थ गम्य होने पर भी भोज-शब्द से ष्यङ् प्रत्यय होता है।

भोज्या। भोज-क्षत्रियों की युवति कन्या। **भोजानाम् अपत्यं युवतिः** अर्थ में **भोज+ङस्** से ष्यङ् प्रत्यय, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, अकार का **यस्येति च** से लोप होकर **भोज्य** शब्द बनता है। **यङश्चाप्** सूत्र के द्वारा स्त्रीत्वविवक्षा में चाप् प्रत्यय होकर **भोज्या** सिद्ध हो जाता है।

१२०१. दैवयज्ञिशौचिवृक्षिसात्यमुग्रिकाण्डेविद्धिभ्योऽन्यतरस्याम् ४।१।८१॥

एभ्यश्चतुर्भ्यः ष्यङ् वा। अगोत्रार्थमिदं गोत्रेऽपि परत्वात् प्रवर्तते। पक्षे 'इतो मनुष्य-' (सू.५२०) इति ङीष्। दैवयज्ञ्या, दैवयज्ञी इत्यादि।

॥ इत्यपत्याधिकारप्रकरणम्॥

दैवयज्ञिशौचिवृक्षिसात्यमुग्रिकाण्डेविद्धिभ्योऽन्यतरस्याम्। दैवयज्ञिश्च शौचिवृक्षिश्च सात्यमुग्रिश्च काण्डेविद्धिश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो दैवयज्ञिशौचिवृक्षिसात्यमुग्रि-काण्डेविद्धयस्तेभ्यो दैवयज्ञिशौचिवृक्षिसात्यमुग्रिकाण्डेविद्धिभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अन्यतरस्यां विभक्तिप्रतिरूपकमव्ययम्। **अणिञोरनार्षयोर्गुरूपोत्तमयोः ष्यङ् गोत्रे** सूत्र से **ष्यङ्, गोत्रे** पदों की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, स्त्रियाम्, प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

दैवयज्ञि, शौचिवृक्षि, सात्यमुग्रि और काण्डेविद्धि इन प्रातिपदिकों से गोत्र अथवा अगोत्र उभयार्थ में स्त्रीलिङ्ग वाच्य होने पर विकल्प से ष्यङ् प्रत्यय होता है।

अगोत्रार्थमिदं गोत्रेऽपि परत्वात् प्रवर्तते। यद्यपि यह सूत्र अगोत्रार्थ के लिये पृथक् पठित है, तथापि परसूत्र होने के कारण आवश्यकतानुसार गोत्रार्थ (अनन्तरापत्य अर्थ) में भी प्रवृत्त होता है। दैवयज्ञि, शौचिवृक्षि, सात्यमुग्रि और काण्डेविद्धि ये इञन्त प्रातिपदिक हैं। अतः **अणिञोरनार्षयोर्गुरूपोत्तमयोः ष्यङ् गोत्रे** सूत्र से नित्य से ष्यङ् आदेश प्राप्त होने पर प्रकृतसूत्र से विकल्प से उक्त प्रत्यय किया गया है। साक्षात् सन्तान (अनन्तरापत्य) की विवक्षा में यदि इञ् प्रत्यय होगा तो यह अप्राप्त विभाषा होगी। इस तरह यह प्राप्ताप्राप्त (उभयत्र) विभाषा सिद्ध होती है।

पक्षे 'इतो मनुष्य-' इति ङीष्। प्रकृतसूत्र से ष्यङ् न होने के पक्ष में **चाप्** नहीं होगा किन्तु **इतो मनुष्यजातेः** सूत्र से ङीष् होगा।

सत्य+उग्र में मुमागम का निपातन करके **सत्यमुग्र** और **काण्ड+विद्ध** के पूर्वपद में एकारान्तता का निपातन करके **काण्डेविद्ध** समझना चाहिये।

दैवयज्ञ्या, दैवयज्ञी। देवयज्ञ की पुत्री, पौत्री आदि। **देवयज्ञस्य अपत्यम्** अर्थ में **देवयज्ञ+ङस्** से **अत इञ्** से इञ् प्रत्यय, आदिवृद्धि, अकारलोप करके **दैवयज्ञि** शब्द बनने के बाद **दैवयज्ञिशौचिवृक्षिसात्यमुग्रिकाण्डेविद्धिभ्योऽन्यतरस्याम्** सूत्र के द्वारा ष्यङ् प्रत्यय होने पर इकारलोप होकर **दैवयज्ञ्य** शब्द बनता है। **यङश्चाप्** सूत्र से चाप् प्रत्यय होने पर **दैवयज्ञ्या** सिद्ध हो जाता है। ष्यङ् न होने के पक्ष में **इतो मनुष्यजातेः** से ङीष् प्रत्यय होने पर सवर्णदीर्घ होकर **दैवयज्ञी** सिद्ध हो जाता है।

इत्यादि। इत्यादि-शब्द से सूत्रोक्त तीन और शब्दों से भी वैकल्पिक ष्यङ् प्रत्यय करके प्रयोग बनाने का संकेत किया गया है। जैसे-

शौचिवृक्ष्या, शौचिवृक्षी। शुचिवृक्ष की पुत्री, पौत्री आदि।
सात्यमुग्र्या, सात्यमुग्री। सत्यमुग्र की पुत्री, पौत्री आदि।
काण्डेविध्या, काण्डेविद्धी। कण्डविद्ध की पुत्री, पौत्री आदि।

श्री भट्टोजिदीक्षित द्वारा विरचित वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का तद्धितीय अपत्याधिकार-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ रक्ताद्यर्थकाः

अब **रक्ताद्यर्थक प्रकरण** का आरम्भ होता है। **रक्त** आदि अर्थों में प्रत्ययों का विधान होता है, इस लिए इस प्रकरण को **रक्ताद्यर्थक प्रकरण** कहा गया। प्राग्दीव्यतीय अर्थों में अण् का ही अधिकार चल रहा है- **प्राग्दीव्यतोऽण्।** प्राग्दीव्यतीय अर्थों में से प्रथम **अपत्यार्थ** का प्रकरण पूरा करके अब रक्तादि अर्थों में विविध प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है।

१२०२. तेन रक्तं रागात् ४।२।१॥

रज्यतेऽनेन इति रागः, कषायेण रक्तं वस्त्रं काषायम्। माञ्जिष्ठम्। रागात् किम्? देवदत्तेन रक्तं वस्त्रम्।

तेन रक्तं रागात्। तेन इति तृतीयान्तानुकरणं लुप्तपञ्चम्यन्तं, रक्तं प्रथमान्तं, रागात् पञ्चम्यन्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्। **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार पूर्ववत् है ही।

'उससे रंगा हुआ' इस अर्थ में तृतीयान्त रंगवाचक समर्थ-प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय होता है।

रज्यतेऽनेनेति रागः। सूत्रस्थ **राग** शब्द की व्युत्पत्ति करके अर्थ बताया जा रहा है कि **रंगा जाता है इससे, वह** अर्थात् रंगने का जो साधन नील, पीत आदि **रंग।** जिससे कोई वस्तु किसी दूसरे रूप में बदल जाय, वह **राग** कहलाता है। **रञ्ज्** धातु से करण अर्थ में **अकर्तरि च कारके सञ्ज्ञायाम्** से **घञ्** प्रत्यय होने पर **घञि च भावकरणयोः** से नलोप के बाद **चजोः कु घिण्ण्यतोः** से जकार को कुत्व करके गकार होने पर उपधावृद्धि करके **रागः** यह कृदन्त रूप सिद्ध होता है।

प्रकृतसूत्र में जो प्रथम उच्चारित सुबन्त पद **तेन** है, यह तृतीयान्त है। अतः समर्थ पदों के मध्य में जो तृतीयान्त पद होंगे, वे ही इस अर्थ में कहे जाने वाले प्रत्ययों की प्रकृति बनेंगे। **रागात्** पञ्चम्यन्त होने के कारण **प्रातिपदिकात्** का विशेषण बनेगा।

सूत्र की वृत्ति मूल में लिखी नहीं गयी है। अनुवृत्ति और अधिकारों की एकवाक्यता करने पर इसकी वृत्ति बनती है- **समर्थानां मध्ये यत् प्रथमं तृतीयान्तसमर्थं रागवाचि प्रातिपदिकं तस्मात् रक्तम् इत्येतस्मिन्नर्थे अणाद्यः स्युः**। तदनुसार यहाँ पर **रक्त** अर्थ में अण् प्रत्यय होगा।

प्राग्दीव्यतीय अर्थक्रम में **तेन रक्तम्** दूसरा अर्थ है।

कषायेण रक्तं वस्त्रं काषायम्। गेरुए रंग से रंगा हुआ वस्त्र। **कषायेण रक्तम्** लौकिक विग्रह और **कषाय+टा** अलौकिक विग्रह में **तेन रक्तं रागात्** से अण् प्रत्यय, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करने पर **काषाय्+अ**, वर्णसम्मेलन करके **काषाय** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् सु विभक्ति, नपुंसकलिंग होने के कारण अम् आदेश और पूर्वरूप करके **काषायम्** सिद्ध हो जाता है। विशेष्य **वस्त्रम्** के नपुंसक होने के कारण यह भी नपुंसक हो गया। विशेष्य पुंल्लिंग हो तो **काषायः** और स्त्रीलिङ्ग हो तो **काषायी** बनता है।

माञ्जिष्ठम्। मँजीठ से रंगा हुआ कपड़ा आदि। **मञ्जिष्ठेन रक्तम्** लौकिक विग्रह और **मञ्जिष्ठ+टा** अलौकिक विग्रह में **तेन रक्तं रागात्** से अण् प्रत्यय, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करके **माञ्जिष्ठ** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **माञ्जिष्ठम्** सिद्ध हो जाता है।

रागात् किम्? देवदत्तेन रक्तं वस्त्रम्। प्रकृत सूत्र में **रागात्** पद के निवेश होने से जिस रंग से रंगा जाय, रंगी जाने वाली वस्तु, तद्वाचक शब्द से ही यह प्रत्यय होता है, कर्तृवाचक शब्द से नहीं होता। अतः **देवदत्तेन रक्तं वस्त्रम्** (कर्ता देवदत्त के द्वारा रंगा हुआ वस्त्र) अर्थ में **देवदत्त**-शब्द से अण् प्रत्यय नहीं हुआ, वाक्य ही रह जाता है।

आपने देखा कि अपत्याधिकार में समर्थविभक्ति षष्ठी थी और रक्तार्थ में तृतीया है। समर्थ-विभक्तियों का निर्देश करने के लिये सूत्रकार प्रायः **तद्** शब्द का प्रयोग करते हैं। प्रथमा के लिये **सः, सा**, द्वितीया के लिये **तम्**, तृतीया के लिये **तेन**, चतुर्थी के लिये **तस्मै**, पञ्चमी के लिये **तस्मात्**, षष्ठी के लिये **तस्य** और सप्तमी के लिये **तस्मिन्**। सूत्रनिर्दिष्ट विभक्ति के अनुसार ही प्रातिपदिक में तत्तत् **सु, अम्, टा, ङे, ङसि, ङस्, ङि** और आवश्यकतानुसार इनके द्विवचन तथा बहुवचन की समर्थ विभक्तियाँ लगाकर लौकिक और अलौकिक विग्रह बना लेना चाहिये। तद्धित प्रत्यय के आते ही **कृत्तद्धितसमासाश्च** से प्रातिपदिकसंज्ञा और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से अन्तर्वर्तिनी विभक्ति का लुक्, यथाप्राप्त आदिवृद्धि, भसंज्ञक वर्ण का लोप आदि करके पुनः एकदेशविकृतन्यायेन पूर्वकृत प्रातिपदिकत्व को अक्षुण्ण मानकर सु आदि विभक्तियाँ आती हैं। पहले प्रथमान्त का रूप बना लिया जाता है और उसके बाद अन्य विभक्तियाँ

आवश्यकतानुसार लग जाती हैं। प्रत्ययों में अनुबन्ध लगे हुये हैं, उनका कुछ न कुछ हेतु है। प्रत्ययों के स्थान पर विविध आदेश भी होते हैं, उनका भी ध्यान रखना होगा।

१२०३. लाक्षारोचनाट्टक् ४।२।२॥

लाक्षिकः। रौचनिकः।

'शकलकर्दमाभ्यामुपसंख्यानम्' (वा.२६७९)। शाकलिकः। कार्दमिकः।

'आभ्यामणपि' इति वृत्तिः। शाकलः। कार्दमः।

'नील्या अन्' (वा.२६८०)। नील्या रक्तं नीलम्।

'पीतात्कन्' (वा.२६८१)। पीतकम्।

'हरिद्रामहारजनाभ्यामञ्' (वा.२६८२)। हारिद्रम्। माहारजनम्।

लाक्षारोचनाट्टक्। लाक्षा च रोचना च तयोः समाहारद्वन्द्वो लाक्षारोचनम्, तस्माल्लाक्षारोचनात्। लाक्षारोचनात् पञ्चम्यन्तं, ठक् प्रथमान्तम्। **तेन रक्तं रागात्** के तीनों पदों की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

तृतीयासमर्थ राग-विशेषवाची लाक्षा और रोचना इन प्रातिपदिकों से 'उससे रंगा हुआ' इस अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है।

यह सूत्र **तेन रक्तं रागात्** का अपवाद है। ठक् का विशेष विधान होने के कारण **प्राग्दीव्यतोऽण्** से आगत **अण्** का सम्बन्ध नहीं होता। **ठक्** में ककार इत्संज्ञक है, **ठ** बचता है, उसके स्थान पर **ठस्येकः** सूत्र से **इक** आदेश हो जाता है। कित्करण **किति च** सूत्र से आदिवृद्धि के लिये है।

लाक्षिकः। लाख से रंगा हुआ पदार्थ। **लाक्षया रक्तः** अर्थ में **लाक्षा+टा** से **तेन रक्तं रागात्** से प्राप्त अण् को बाधकर **लाक्षारोचनाट् ठक्** सूत्र से ठक् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, इकादेश, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक आकार का लोप, एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **लाक्षिकः** सिद्ध हो जाता है।

रौचनिकः। गोरोचन से रंगा हुआ पदार्थ। **रोचनया रक्तः** अर्थ में **रोचना+टा** में **लाक्षारोचनाट् ठक्** सूत्र से ठक् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, इकादेश, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक आकार का लोप, एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **रौचनिकः** सिद्ध हो जाता है।

अब इस सूत्र से सम्बद्ध चार वार्तिकों को प्रस्तुत कर रहे हैं-

शकलकर्दमाभ्यामुपसंख्यानम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- तृतीयासमर्थ शकल और कर्दम प्रातिपदिकों से **तेन रक्तम्** अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है।

शाकलिकः। शकल-नामक पदार्थ से रंगा हुआ पदार्थ। **शकलेन रक्तः** अर्थ में **शकल+टा** में **शकलकर्दमाभ्यामुपसंख्यानम्** वार्तिक से ठक् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, इकादेश, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक आकार का लोप, एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **शाकलिकः** सिद्ध हो जाता है।

कार्दमिकः। कीचड़ से रंगा हुआ पदार्थ। **कर्दमेन रक्तः** अर्थ में **कर्दम+टा** में **शकलकर्दमाभ्यामुपसंख्यानम्** वार्तिक से ठक् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, इकादेश, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक आकार का लोप, एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कार्दमिकः** सिद्ध हो जाता है।

आभ्यामणपि' इति वृत्तिः। शाकलः। कार्दमः। काशिकावृत्ति में उपर्युक्त वार्तिक के स्थान पर **शकलकर्दमाभ्यामणपीष्यते** ऐसा वार्तिक उपलब्ध होता है। तदनुसार शकल और कर्दम शब्दों से अण् प्रत्यय की भी सूचना दी गयी है। अतः अण् प्रत्यय होकर **शाकलः, कार्दमः** ये रूप भी बन जाते हैं। महाभाष्य में तो अण्-प्रत्यय की सूचना नहीं है।

नील्या अन्। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- तृतीयासमर्थ नीली-शब्द से **तेन रक्तम्** अर्थ में अन् प्रत्यय होता है। नकार इत्संज्ञक है, अकार मात्र बचता है। ञित्, णित् या कित् तीनों न होने से अन्-प्रत्यय परे रहते आदिवृद्धि नहीं होगी।

नील्या रक्तं नीलम्। नीली-नामक ओषधिविशेष से रंगा हुआ पदार्थ। **नील्या रक्तम्** अर्थ में **नीली+टा** में **नील्या अन्** वार्तिक से अन् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप के बाद **नील+टा+अ** की तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक ईकार का लोप, एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **नीलम्** सिद्ध हो जाता है।

पीतात् कन्। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- तृतीयासमर्थ पीत-शब्द से **तेन रक्तम्** अर्थ में कन् प्रत्यय होता है। नकार इत्संज्ञक है, **क** बचता है। ञित्, णित् या कित् तीनों न होने से कन्-प्रत्यय परे रहते भी आदिवृद्धि नहीं होगी।

पीतकम्। पीले रंग या हरताल से रंगा हुआ पदार्थ। (हरताल एक प्रकार से प्राचीन काल की लेखनी भी है) **पीतेन रक्तम्** अर्थ में **पीत+टा** में **पीतात् कन्** वार्तिक से कन् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, इकादेश, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप, एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पीतकम्** सिद्ध हो जाता है।

हरिद्रामहारजनाभ्यामञ्। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- तृतीयासमर्थ हरिद्रा-शब्द और महारजन-शब्द से **तेन रक्तम्** अर्थ में अञ् प्रत्यय होता है। ञकार इत्संज्ञक है, अकार मात्र बचता है। ञित् होने के कारण आदिवृद्धि होगी।

हारिद्रम्। हल्दी से रंगा हुआ पदार्थ। **हरिद्रया रक्तम्** अर्थ में **हरिद्रा+टा** में **हरिद्रामहारजनाभ्यामञ्** वार्तिक से अञ् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप के पश्चात् तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक आकार का लोप, एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **हारिद्रम्** सिद्ध हो जाता है।

माहारजनम्। केसर से रंगा हुआ पदार्थ। **महारजनेन रक्तम्** अर्थ में **महारजन+टा** में **हरिद्रामहारजनाभ्यामञ्** वार्तिक से अञ् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप के पश्चात् तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप, एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **माहारजनम्** सिद्ध हो जाता है।

तेन रक्तम् का अर्थ पूरा हो गया है। अब आगे केवल **तेन** की अनुवृत्ति जायेगी।

१२०४. नक्षत्रेण युक्तः कालः ४।२।३॥

पुष्येण युक्तं पौषमहः। पौषी रात्रिः।

नक्षत्रेण युक्तः कालः। नक्षत्रेण तृतीयान्तानुकरणं लुप्तपञ्चम्यन्तं, युक्तः प्रथमान्तं, कालः प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **तेन रक्तं रागात्** से **तेन** और **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार पूर्ववत् है ही।

नक्षत्रवाचक तृतीयान्त प्रातिपदिक से 'उससे युक्त' अर्थ में तद्धितसंज्ञक अण् प्रत्यय होता है, यदि वह युक्त काल अर्थात् समय हो तो।

सूत्र में **नक्षत्र**-शब्द से नक्षत्रयुक्त चन्द्रमा का बोध होता है।

यहाँ पर **तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राणि यलोप इति वाच्यम्** इस वार्तिक की आवश्यकता होती है। महाभाष्य में यह वार्तिक **सूर्यतिष्यागस्त्यमत्स्यानां य उपधायाः (६.४.१४९)** सूत्र में **तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राणि** के रूप में पठित है। वार्तिकार्थः- 'नक्षत्रसम्बन्धी अर्थात् नक्षत्र से युक्त काल अर्थ में नक्षत्रवाचक शब्द से विहित अण् प्रत्यय के परे रहते **तिष्य** और पुष्य शब्दों के यकार का लोप होता है।

पुष्येण युक्तं पौषमहः। पुष्य नक्षत्र से युक्त दिन अर्थात् ऐसा दिन जिसमें चन्द्रमा पुष्यनक्षत्र में चल रहे हों। **पुष्येण युक्तः कालः** विग्रह है। **पुष्य टा** से **नक्षत्रेण युक्तः कालः** सूत्र के द्वारा **अण्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि करके **यस्येति च** से अकार के लोप होने के बाद **पौष्य्+अ** बना है। **तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राणि यलोप इति वाच्यम्** से **यकार** का भी लोप होने पर वर्णसम्मेलन होकर **पौष** बना। विशेष्य **अहः** के अनुसार नपुंसकलिङ्ग में स्वादिकार्य करके **पौषम्** बन जाता है।

पौषी रात्रिः। पुष्यनक्षत्र से युक्त रात। रात्रि-शब्द के स्त्रीलिङ्ग होने के कारण उसके विशेषण उपर्युक्त रीति से निष्पन्न **पौष**-शब्द से **टिड्ढाणञ्०** सूत्र से ङीप् प्रत्यय होकर **पौषी** शब्द सिद्ध होता है।

चैत्रमहः। चित्रा नक्षत्र से युक्त दिन अर्थात् चित्रा नक्षत्र में जिस दिन चन्द्रमा भ्रमण कर रहे हैं, वह दिन। **दिन**-शब्द काल अर्थात् समय का वाचक है। **चित्रया युक्तमहः** लौकिक विग्रह और **चित्रा+टा** अलौकिक विग्रह है। ऐसी स्थिति में **नक्षत्रेण युक्तः कालः** से **अण्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक आकार का लोप करके **चैत्र** बना। विशेष्यपद **अहः** नपुंसकलिङ्ग का है, अतः इसमें नपुंसकलिङ्ग ही हुआ। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य करके **चैत्रम्** सिद्ध हो जाता है।

१२०५. लुबविशेषे ४।२।४॥

पूर्वेण विहितस्य लुप् स्यात् षष्टिदण्डात्मककालस्यावान्तरविशेषश्चेन्न गम्यते। अद्य पुष्यः। कथं तर्हि 'पुष्ययुक्ता पौर्णमासी पौषी' इति? 'विभाषा फाल्गुनीश्रवणाकार्तिकीचैत्रीभ्यः' (सू.१२२५) इति निर्देशेन पौर्णमास्यामयं लुब्नेति ज्ञापितत्वात्। श्रवणशब्दात्तु अत एव लुब् युक्तवद्भावाभावश्च। अबाधकान्यपि निपातनानि। श्रावणी।

लुबविशेषे। न विशेषः अविशेषस्तस्मिन्। लुप् प्रथमान्तम्, अविशेषे सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तेन, नक्षत्रेण युक्तः कालः** की अनुवृत्ति तो है ही साथ ही **प्राग्दीव्यतोऽण्** से विभक्तिविपरिणाम करके **अणः** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च** आदि का भी अधिकार रहता है।

'नक्षत्रेण युक्तः कालः' अर्थ में विहित तद्धितीय अण् प्रत्यय का लुप् हो जाता है, यदि साठ घटी वाले काल अर्थात् अहोरात्र का अवान्तरभेद अर्थ गम्यमान न हो रहा हो तो।

एक **अहोरात्र** अर्थात् **दिनरात** में साठ घटियाँ होती हैं। आज के व्यावहारिक समय के अनुसार एक घण्टे में ढाई घटियाँ होती है अर्थात् साठ घटियों का एक अहोरात्र होता है। एक अहोरात्र में अवान्तर काल दिन, रात, प्रातः, सायम्, दोपहर आदि माने जाते हैं। यदि अहोरात्र का अवान्तर भेद गम्यमान न हो रहा हो तो यह सूत्र प्रवृत्त होता है। जैसे कि **आज** कहने से अहोरात्र का अवान्तर भेद का पता नहीं चलता। हाँ, यदि आज दिन में या आज रात को अथवा आज दोपहर को आदि होता तो अहोरात्र के अवान्तर कालभेद की प्रतीति होती है। **अविशेष**-शब्द से यही बताया गया है। विशेष का विपरीत सामान्य।

लुप् भी एक लोप जैसा ही है जैसे कि लुक्। इस सम्बन्ध में **प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः** का स्मरण करें।

अद्य पुष्यः। आज पुष्य नक्षत्र है अर्थात् आज चन्द्रमा पुष्य नक्षत्र में भ्रमण कर रहे हैं। यहाँ पर यह नहीं बताया गया कि २४ घण्टात्मक अहोरात्र में कितनी अवधि तक (रात्रि या दिन में) पुष्य-नक्षत्रयुक्त चन्द्रमा हैं। इस प्रकार यहाँ पर कालघटित अवान्तर विभागों की विवक्षा नहीं है। अतः **पुष्येण युक्तः कालोऽद्य** अर्थ में **पुष्य+टा** में **नक्षत्रेण युक्तः कालः** से **अण्** प्रत्यय हुआ। उसका **लुबविशेषे** से लुप् हुआ। लुमान् शब्द के द्वारा प्रत्यय का अदर्शन होने के कारण **न लुमताङ्गस्य** से प्रत्ययलक्षण का निषेध किया जाता है। फलतः आदिवृद्धि आदि कुछ भी नहीं हुआ जिससे कि **पुष्य** से **पुष्य** ही बना रह गया। स्वादिकार्य करके **पुष्यः** बनता है। इसका अर्थ हुआ- **पुष्य नक्षत्र से युक्त समय (आज)**।

कथं तर्हि 'पुष्ययुक्ता पौर्णमासी पौष़ी' इति? अब यह प्रश्न किया जा रहा है कि यदि कालसामान्य नक्षत्र से युत हो तो नक्षत्रवाचक शब्द से विहित प्रत्यय का लुप् किया जाता है तो फिर पुष्य-नक्षत्र से युक्त पूर्णिमा के लिये **पौषी** शब्द का प्रयोग कैसे किया जाता है, क्योंकि यहाँ पौर्णमासी २४ दण्डात्मक काल का अवान्तरभेद नहीं है। अतः अण् प्रत्यय का लुप् हो जाने पर टाप् प्रत्यय होकर **पुष्या पौर्णमासी** होना चाहिये था? इसका समाधान मूलकार निम्ननिखित रूप से दे रहे हैं-

'विभाषा फाल्गुनीश्रवणाकार्तिकीचैत्रीभ्यः' इति निर्देशेन पौर्णमास्यामयं लुब्नेति ज्ञापितत्वात्। अर्थात् **'विभाषा फाल्गुनीश्रवणाकार्तिकीचैत्रीभ्यः (४.३.२३)** सूत्र में पाणिनि जी ने **फाल्गुनी, कार्तिकी, चैत्री** शब्दों का प्रयोग करके यह ज्ञापित किया है कि पौर्णमासी अर्थ में अण् प्रत्यय का लुप् नहीं किया जाता। इस तरह निपातनवश अलोप माना जाता है। पाणिनि जी का व्यवहार ही निपातन है। अतः **पुष्ययुक्ता पौर्णमासी पौषी** को साधु ही मान लेना चाहिये।

श्रवणशब्दात्तु अत एव लुब् युक्तवद्भावाभावश्च। उक्त ज्ञापन में **श्रवणा** शब्द का भी प्रयोग किया गया है। यहाँ तात्पर्य यह है कि- यह बात बतायी गई कि **विभाषा फाल्गुनी०** के निर्देश से ज्ञापित होता है कि **पौर्णमासी** अर्थ गम्य होने पर **नक्षत्रेण युक्तः कालः** अर्थ में विहित अण् का लुप् नहीं होता। अतः यह नियम **श्रवणेन युक्त पौर्णमासी श्रवणा** के सन्दर्भ में भी लगना चाहिये। वहाँ कैसे अण्-प्रत्यय का लुप् हुआ? यह प्रश्न उदित होता है। इसके समाधान के लिये कहते हैं **विभाषा फाल्गुनीश्रवणाकार्तिकी०** में **श्रवणा** ऐसा निपातन होने के कारण इसमें अण् का लुप् हो जाता है। यहाँ पर भी **श्रवणयुक्ता पौर्णमासी श्रावणी** होना चाहिये था अर्थात् **नक्षत्रेण युक्तः कालः** से विहित अण् प्रत्यय का लुप् होकर **फाल्गुनी, कार्तिकी, चैत्री** की तरह ही **श्रावणी** होना चाहिये था किन्तु उक्त प्रयोग में तो अण् के लुप् हो जाने से लुमान्-शब्द के द्वारा प्रत्ययादर्शन किये जाने के कारण प्रत्ययलक्षणाभावेन अणन्त न होने से ङीप् प्रत्यय नहीं हो सका, यह कैसे? उसका समाधान देते हुये मूलकार कहते हैं- **अत एव लुब्**। यद्यपि **फाल्गुनी, कार्तिकी, चैत्री** आदि शब्दों का प्रयोग करके

पौर्णमासी के विषय में लुप् के अभाव का ज्ञापन दिया गया तो तथापि **श्रवणा** शब्द का प्रयोग करके यह भी ज्ञापन दिया गया है कि **श्रवण**-नक्षत्र से युक्त पौर्णमासी अर्थ होने पर लुप् हो जाता है। अर्थात् यह भी निपातन से ही लुप् है, ऐसा मानना चाहिये। पाणिनीय निपातन से ही **युक्तवद्भाव** का अभाव भी समझना चाहिये। युक्तवद्भाव का तात्पर्य यह है कि काल, फल इत्यादि अर्थ में प्रत्यय होने के बाद यदि उसका लुप् हो जाता है तो फिर प्रकृति के अनुसार ही लुप्तप्रत्ययान्त के भी लिङ्ग और वचन होते हैं। एतदर्थ पाणिनीयसूत्र है- **लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने (१.२.५१)**। सूत्रार्थः- प्रत्यय के लुप् हो जाने पर उस प्रत्यय की उत्पत्ति से पूर्व जो प्रकृत्यर्थ के व्यक्ति (लिङ्ग) तथा वचन (संख्या) हैं, वही लिङ्ग-संख्या यथावत् स्थित रहे। यह अतिदेश सूत्र है। इसके अनुसार **श्रवण** शब्द के पुंल्लिंग होने पर उससे काल अर्थ में आगत प्रत्यय का लुप् होने पर भी **लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने** से युक्तवद्भाव अर्थात् प्रथम प्रकृति का लिङ्ग नहीं हुआ अपितु स्त्रीलिंग में **श्रवणा** बन गया है, क्योंकि **विभाषा फाल्गुनीश्रवणा०** में **श्रवणा** ऐसा स्त्रीलिङ्ग ही निपातन है।

उक्त **श्रवणा** शब्द के निपातनात्मक प्रयोग से तो यह सिद्ध हुआ कि **श्रवणा** शब्द साधु है और **श्रावणी** असाधु। किन्तु **श्रावणी** शब्द का बहुधा प्रयोग देखा जाता है तो वह कैसे सिद्ध होगा? इस प्रश्न का समाधान दे रहे हैं-

अबाधकान्यपि निपातनानि। श्रावणी। निपातन अबाधक भी होते हैं। तात्पर्य यह है कि निपातन बाधक भी होते हैं और अबाधक (अन्य कार्यों को न बाधने वाले) भी होते हैं। कौमुदीकार ने निपातन के विषय में दो पक्ष रखा है- **१. अबाधकानि निपातनानि** और **२. बाधकान्यपि निपातनानि**। लक्ष्यानुसार निपातन बाधक भी होते हैं और अबाधक भी। तात्पर्य यह है कि अन्यकार्यों का बाध किये बिना ही निपातन होते हैं और अन्य कार्यों का बाध करके ही निपातन होते हैं, ये दोनों पक्ष हैं। इनमें से निपातनप्रथम मतानुसार **श्रवणेन युक्ता पौर्णमासी श्रावणी** प्रयोग भी साधु माना जाता है, क्योंकि यहाँ अण् प्रत्यय का लुप् नहीं हुआ है, तभी तो अणन्त मान कर **टिड्ढाणञ्०** सूत्र से ङीप् प्रत्यय होकर **श्रावणी** शब्द बन जाता है। दूसरे पक्ष में **श्रवणा** शब्द का प्रयोग **विभाषा फाल्गुनीश्रवणाकार्तिकीचैत्रीभ्यः** सूत्र के अनुसार **फाल्गुनी** आदि अन्य प्रयोगों के कारण **पौर्णमासी** के योग में सामान्यतया नहीं होना चाहिये था, किन्तु वहीं पर ही **श्रवणा** का निवेश होने से उस निपातन का बाध किया जाता है।

वस्तुतः भाष्यमतानुसार **श्रवणा** में लुप् का विधान निपातन से न करके उक्त ज्ञापन की अनित्यता का आश्रयण लेते हुये किया जाना चाहिये, जिससे **सर्वादीनि सर्वनामानि** सूत्र के भाष्य में वर्णित **बाधकान्येव निपातनानि** इस सिद्धान्त की प्रामाणिकता बनी रहे। वास्तव में तो **बाधकान्येव निपातनानि** है किन्तु दीक्षित जी ने वृत्तिकारों के मतानुसार **अबाधकान्यपि निपातनानि** को उद्धृत किया है।

१२०६. सञ्ज्ञायां श्रवणाश्वत्थाभ्याम् ४।२।५॥

विशेषार्थोऽयमारम्भः। श्रवणा रात्रिः। अश्वत्थो मुहूर्तः।
सञ्ज्ञायां किम्? श्रावणी। आश्वत्थी।

सञ्ज्ञायां श्रवणाश्वत्थाभ्याम्। श्रवणश्च अश्वत्थश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः श्रवणाश्वत्थौ ताभ्यां श्रवणाश्वत्थाभ्याम्। संज्ञायां सप्तम्यन्तं, श्रवणाश्वत्थाभ्यां पञ्चम्यन्तम्। **तेन, नक्षत्रेण युक्तः कालः** के साथ **लुबविशेषे** से **लुप्** की, तथा **प्राग्दीव्यतोऽण्** से विभक्तिविपरिणाम करके **अणः** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, तद्धिताः** आदि का अधिकार चल ही रहा है।

तृतीया-समर्थ नक्षत्रवाची श्रवण-शब्द तथा अश्वत्थ-शब्द से 'युक्तः कालः' अर्थ में विहित अण् प्रत्यय का संज्ञा के विषय में सर्वत्र (विशेष अथवा अविशेष दोनों के कथन में) लुप् हो जाता है।

विशेषार्थोऽयमारम्भः। पूर्वसूत्र **लुबविशेषे** से केवल अविशेष अर्थ में ही लुप् प्राप्त था, अतः शब्द-विशेष में विशेषार्थ (अवान्तरभेदवाची काल) के लिये इस सूत्र का पृथक् आरम्भ किया गया है।

श्रवणा रात्रिः। श्रवण-नक्षत्र से युक्त चन्द्रमा वाली रात्रि। **श्रवणेन युक्ता रात्रिः** अर्थ में **श्रवण+टा** इस तृतीयान्त समर्थ प्रातिपदिक से **नक्षत्रेण युक्तः कालः** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय होने पर उसका **संज्ञायां श्रवणाश्वत्थाभ्याम्** सूत्र से लुप् हो जाने पर **श्रवण** ही बना। स्त्रीत्वविवक्षा में **टाप्** प्रत्यय होकर **श्रवणा** सिद्ध हो जाता है। यद्यपि **लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने** सूत्र के द्वारा युक्तवद्भाव होकर प्रकृति के अनुसार लिंग होने से **श्रवणः** बनना चाहिये था तथापि **विभाषा फाल्गुनीश्रवणाकार्तिकीचैत्रीभ्यः** सूत्र में **श्रवणा** शब्द के प्रयोग के ज्ञापन से युक्तवद्भाव नहीं होता। उक्त ज्ञापन सामान्यापेक्ष है अर्थात् केवल पौर्णमासी के लिये न होकर काल-मात्र के लिये है। अतः **श्रवणा** यह श्रवणयुक्त रात की भी संज्ञा है।

अश्वत्थो मुहूर्तः। अश्वत्थ (अश्विनी) नक्षत्र से युक्त मुहूर्त। अश्वत्थ-शब्द अश्विनी-नक्षत्र का पर्यायवाची है। **अश्वत्थेन युक्तो मुहूर्तः** अर्थ में **अश्वत्थ+टा** इस तृतीयान्त समर्थ प्रातिपदिक से **नक्षत्रेण युक्तः कालः** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय होने पर उसका **संज्ञायां श्रवणाश्वत्थाभ्याम्** सूत्र से लुप् हो जाने पर **अश्वत्थ** ही बना। तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा और स्वादिकार्य तो होते ही हैं- **अश्वत्थः।** यह भी अश्विनीनक्षत्रयुक्त मुहूर्त की संज्ञा है।

सञ्ज्ञायां किम्? श्रावणी। आश्वत्थी। प्रकृतसूत्र में **संज्ञायाम्** पद के निवेश होने के कारण संज्ञा अर्थ विवक्षित होने पर ही अण् प्रत्यय का लुप् होगा, असंज्ञा में नहीं होगा। अतः संज्ञार्थ अविवक्षित **श्रावणी, आश्वत्थी** में अण् प्रत्यय का लुप् नहीं

हुआ। फलतः अणन्त होने के कारण स्त्रीत्वविवक्षा में **टिड्ढाणञ्०** सूत्र से ङीप् प्रत्यय होकर **श्रावणी, आश्वत्थी** रूप बनते हैं।

१२०७. द्वन्द्वाच्छः ४।२।६॥

नक्षत्रद्वन्द्वाद्युक्ते काले छः स्याद्विशेषे सत्यसति च।
तिष्यपुनर्वसवीयमहः। राधानुराधीया रात्रिः।

द्वन्द्वाच्छः। द्वन्द्वात् पञ्चम्यन्तं, छः प्रथमान्तम्। **तेन रक्तं रागात्** से **तेन** और **नक्षत्रेण युक्तः कालः** के तीनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार पूर्ववत् है।

नक्षत्रवाची शब्दों में द्वन्द्वसमास हो तो उनसे 'नक्षत्र से युक्त काल' अर्थ में छ-प्रत्यय होता है, चाहे विशेष हो या न हो।

छ-प्रत्यय होने पर केवल **छ्** के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र से **ईय्** आदेश होता है। इस तरह प्रत्यय का स्वरूप बन जाता है- **ईय**। यहाँ **मध्येऽपवादाः पूर्वान् विधीन् बाधन्ते नोत्तरान्** परिभाषा के नियम से **लुबविशेषे** सूत्र अण् प्रत्यय का ही लुप् करता है, छ-प्रत्यय का नहीं।

तिष्यपुनर्वसवीयमहः। तिष्य (पुष्य) और पुनर्वसु नक्षत्रों से युक्त दिन। एक अहोरात्र के अन्दर दो-दो नक्षत्रों का भी भोगकाल हो सकता है। **तिष्यश्च पुनर्वसुश्च** लौकिक विग्रह और **तिष्य+सु पुनर्वसु+सु** अलौकिक विग्रह में **चार्थे द्वन्द्वः** सूत्र से इतरेतरयोगद्वन्द्वसमास होने के बादं समासप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर द्विवचन में **तिष्यपुनर्वसू** सिद्ध होता है। **तिष्यपुनर्वसुभ्यां युक्तः अहः (कालः)** अर्थ में **तिष्यपुनर्वसु+भ्याम्** इस तृतीयासमर्थ से **द्वन्द्वाच्छः** सूत्र से छ-प्रत्यय, ईयादेश, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **तिष्यपुनर्वसु+ईय** बना। छ-प्रत्यय आदिवृद्धि के लिये निमित्तक नहीं है, अतः **ओर्गुणः** से उकार को गुण ओकार और उसको अवादेश होकर **तिष्यपुनर्वसवीय** शब्द बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **तिष्यपुनर्वसवीयम्** सिद्ध हो जाता है।

राधानुराधीया रात्रिः। विशाखा और अनुराधा नक्षत्रों से युक्त रात। **राधा** शब्द **विशाखा**-नक्षत्र का वाचक है। राधा के बाद का नक्षत्र होने के कारण विशाखा-नक्षत्र को अनुराधा कहा जाता है। **राधा च अनुराधा च** लौकिक विग्रह और **राधा+सु अनुराधा+सु** अलौकिक विग्रह में इतरेतरयोगद्वन्द्वसमास होकर **राधानुराधाः** सिद्ध होता है। **तिष्यपुनर्वसुभ्यां युक्ता रात्रिः (कालः)** अर्थ में **राधानुराधा+भिस्** इस तृतीयासमर्थ से **द्वन्द्वाच्छः** सूत्र से छ-प्रत्यय, ईयादेश, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक आकार का लोप होकर **राधानुराधीय** शब्द बना। रात्रि-शब्द का विशेषण होने

के कारण स्त्रीत्वविवक्षा में टाप् प्रत्यय होकर **राधानुराधीय** और स्वादिकार्य होकर **राधानुराधीया** सिद्ध हो जाता है।

यहाँ पर प्राग्दीव्यतीय का तीसरा अर्थक्रम **नक्षत्रेण युक्तः कालः** का प्रकरण पूरा हो जाता है। अब आगे **तेन दृष्टम्** का प्रकरण चलेगा।

१२०८. दृष्टं साम ४।२।७॥

तेनेत्येव। वसिष्ठेन दृष्टं वासिष्ठं साम।

'अस्मिन्नर्थेऽण् डिद्वा वक्तव्यः' (वा.२६९०)। उशनसा दृष्टमौशनम्, औशनसम्।

दृष्टं साम। दृष्टं प्रथमान्तं, साम प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तेन रक्तं रागात्** से **तेन** और **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है साथ ही **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार पूर्ववत् है ही।

'देखा गया साम' अर्थात् ज्ञान रूप में प्राप्त किया गया साम' इस अर्थ में तृतीयान्त समर्थ प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय होता है।

वैदिकमन्त्रों का अध्ययन, साक्षात्कार, सिद्धि जिन ऋषियों ने की थी, मन्त्र के विनियोग में उनका नाम लिया जाता है। **तेन दृष्टं साम** अर्थात् **उस ऋषिविशेष के द्वारा प्राप्त सामवेद की ऋचाएँ** इस अर्थ में प्रत्यय का विधान किया गया। अनुवृत्त **तेन** पद से तृतीया-समर्थविभक्ति का बोध हो रहा है। **दृष्टम्** अर्थ में प्रत्यय है किन्तु जो दृष्ट है, वह साम ही होना चाहिये, इसके लिये **साम** शब्द का प्रयोग किया गया है।

वासिष्ठं साम। वसिष्ठ के द्वारा देखे गये अर्थात् जाने हुए साम के मन्त्र। **वसिष्ठेन दृष्टम्** लौकिक विग्रह और **वसिष्ठ+टा** अलौकिक विग्रह में **दृष्टं साम** से अण् प्रत्यय, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करने पर **वासिष्ठ** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वासिष्ठम्** सिद्ध हो जाता है। विशेष्य शब्द **साम** के नपुंसक होने के कारण यह भी नपुंसक हो गया है।

अस्मिन्नर्थेऽण् डिद्वा वक्तव्यः। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- **तेन दृष्टम्** अर्थ में विहित प्रत्यय विकल्प से डिद्वद्भाव को प्राप्त होता है। डित् होने के पक्ष में **टेः** सूत्र से टिसंज्ञक भाग का लोप हो जाता है।

उशनसा दृष्टमौशनम्, औशनसम्। उशनस् (शुक्राचार्य) के द्वारा देखे गये अर्थात् जाने हुए साम के मन्त्र। **उशनसा दृष्टम्** लौकिक विग्रह और **उशनस्+टा** अलौकिक विग्रह में **दृष्टं साम** से अण् प्रत्यय, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि होकर **औशनस्+अ** बना है। **अस्मिन्नर्थेऽण् डिद्वा वक्तव्यः** वार्तिक से प्रत्यय को डिद्वद्भाव होने के पक्ष में **टेः** सूत्र से टिसंज्ञक भाग **अस्** का लोप होकर **औशन** शब्द बनता है और डिद्वद्भाव न होने के पक्ष में **औशनस** शब्द बनता है। उभयत्र

एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **औशनसम्** और **औशनम्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

१२०९. कलेर्ढक् ४।२।८॥
कलिना दृष्टं कालेयं साम।

कलेर्ढक्। कलेः पञ्चम्यन्तं, ढक् प्रथमान्तम्। **दृष्टं साम** के दोनों पदों की, **तेन रक्तं रागात्** से **तेन** और **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है साथ ही **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार पूर्ववत् है ही।

'देखा गया साम' अर्थ में तृतीया-समर्थ कलि-शब्दरूप प्रातिपदिक से ढक् प्रत्यय होता है।

ढक् में ककार इत्संज्ञक है और ढकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र से **एय्** आदेश होकर प्रत्यय का स्वरूप **एय** बन जाता है।

कलिना दृष्टं कालेयं साम। कलि-नामक व्यक्ति के द्वारा देखा गया सामवेद का भाग। **कलिना दृष्टम्** लौकिक विग्रह और **कलि+टा** अलौकिक विग्रह में **कलेर्ढक्** सूत्र से ढक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, एय् आदेश, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि होकर **कालेय** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कालेयम्** सिद्ध हो जाता है।

महाभाष्य में यह सूत्र के रूप में नहीं है किन्तु **दृष्टं साम** सूत्र में **दृष्टं साम कलेर्ढक्** यह वार्तिक पठित है तथा **सर्वत्राग्निकलिभ्यां ढक्** वार्तिक से यह बताया गया है कि प्राग्दीव्यतीय सभी अर्थों में अनि-शब्द तथा कलि-शब्द से ढक् प्रत्यय ही होता है। किन्तु कौमुदीकार और काशिकाकार ने इसे मूल सूत्र के रूप में ही दिखाया है। यह स्वतन्त्र सूत्र है तो उक्त प्रथम वार्तिक की व्यर्थता होती है। बालमनोरमाकार ने इस सूत्र की व्याख्या ही नहीं की है। नागेश जी ने भी इसे वार्तिक ही माना है। इसी प्रकार अन्यत्र भी बहुत जगहों पर कौमुदी, काशिका आदि ग्रन्थों में सूत्र का वार्तिक और वार्तिक का सूत्र तथा वार्तिक के एक अंश को सूत्र में जोड़ना इत्यादि कार्य हुये हैं। यथार्थता के लिये शोध की आवश्यकता है।

१२१०. वामदेवाड् ड्यड्ड्यौ ४।२।९॥
वामदेवेन दृष्टं साम वामदेव्यम्।
'सिद्धे यस्येति लोपेन किमर्थं ययतौ डितौ।
ग्रहणं माऽतदर्थे भूद्वामदेव्यस्य नञ्स्वरे॥' इति भाष्यम्।

वामदेवाड्ड्यड्ड्यौ। ड्यच्च ड्यश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो ड्यड्ड्यौ। वामेदवात् पञ्चम्यन्तं, ड्यड्ड्यौ प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तेन रक्तं रागात्** से **तेन** और **दृष्टं साम** इस पूरे सूत्र की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ रहा है।

'देखा गया साम' इस अर्थ में तृतीयान्त समर्थ वामदेव इस प्रातिपदिक से तद्धितसंज्ञक ड्यत् और ड्य प्रत्यय होते हैं।

सामान्य अण् प्रत्यय का अपवाद है। **डकार** की **चुटू** से इत्संज्ञा होती है और तकार **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञक है, **य** शेष रहता है। डित्करण का प्रयोजन स्वरविधान के लिए है। तित्करण का फल भी **तित्स्वरितम्** सूत्र से स्वरित स्वर का विधान ही है। दो प्रत्ययों में एक तित् है और एक तित् नहीं है। रूपों में कोई अन्तर नहीं आयेगा। यह सूत्र **दृष्टं साम** का अपवाद है।

वामदेव्यम्। वामदेव के द्वारा देखे गये साम के मन्त्र। **वामदेवेन दृष्टम्** लौकिक विग्रह और **वामदेव+टा** अलौकिक विग्रह में **दृष्टं साम** से अण् प्राप्त था, उसे बाधकर के **वामदेवाड्ड्यड्ड्ययौ** से **ड्यत्** या **ड्य** प्रत्यय हुआ। **ड्यत्** के पक्ष में डकार और तकार का अनुबन्धलोप हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और डित् के परे रहते टिसंज्ञक अकार का **टेः** से लोप करने पर **वामदेव्य** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वामदेव्यम्** सिद्ध हो जाता है। विशेष्य **साम**-शब्द के नपुंसक होने के कारण यह भी नपुंसक हो गया है।

महाभाष्य में इस सूत्र के द्वारा विहित प्रत्ययों के डित्करण के सम्बन्ध में एक पद्य पढ़ा गया है, उसे मूलकार ने यहाँ उद्धृत किया है-

'सिद्धे यस्येति लोपेन किमर्थं ययतौ डितौ।
ग्रहणं माऽतदर्थे भूद्वामदेव्यस्य नञ्स्वरे।। अर्थात् प्रकृतसूत्र से विधीयमान ड्य और ड्यत् प्रत्ययों के स्थान पर **यत्** और **य** प्रत्ययों का विधान किया जाय तो भी इष्ट रूपों की सिद्धि हो जायेगी, क्योंकि **यस्येति च** सूत्र से अकारलोप हो जाने से डित्करण का फल टिलोप अपने आप ही सिद्ध हो जाता है। पूर्वार्ध से प्रश्न करके उत्तरार्ध से उत्तर देते हैं कि **वामदेव्य** शब्द के **नञ्स्वरे**=नञ् का आश्रयण करके होने वाली स्वरविधि और **अतदर्थे**=**ययतोश्चातदर्थे** सूत्र से विधीयमान स्वरविधि में **ड्यत्, ड्य** प्रत्ययान्त शब्दों का ग्रहण न होवे। तात्पर्य यह है कि यद्यपि य, यत् प्रत्ययों से उक्त रूपों की सिद्धि होती है तथापि किया गया डित्करण व्यर्थ होकर निम्नलिखित दो परिभाषायें ज्ञापित करता है-

१. निरनुबन्धकग्रहणे न सानुबन्धकस्य ग्रहणम्। अनुबन्धरहित वर्ण के ग्रहण में सानुबन्धक का ग्रहण नहीं होता।

२. एकानुबन्धकस्य ग्रहणे न द्व्यनुबन्धकस्य ग्रहणम्। एक अनुबन्ध वाले के ग्रहण में दो अनुबन्ध वाले का ग्रहण नहीं होता।

उक्त ज्ञापन से उत्तरपद के अन्त में उदात्त-विधान करने वाले सूत्र **ययतोश्चातदर्थे** में **य** एवं **यत्** के कथन से रूपसाम्य होने पर भी उक्त दोनों परिभाषाओं के सहयोग से **ङ्य** और **ङ्यत्** प्रत्ययों का ग्रहण नहीं होता। अतः नञ्पूर्व **अवामदेव्यम्** में **ययतोश्चातदर्थे** सूत्र से विधीयमान नञ् से परे **य** एवं **यत्** प्रत्ययान्त उत्तरपद को अन्तोदात्त्व नहीं होगा, क्योंकि सूत्र में निरनुबन्धक का ग्रहण है। तदनुसार **अवामदेव्य** में नञ् को निपात मानकर **निपाता आद्युदात्ताः** सूत्र से आद्युदात्त होगा। अन्यथा यहाँ भी सामान्यतः उत्तरपद में विधीयमान अन्तोदात्त होने की आपत्ति होती।

तेन दृष्टम् अर्थ का प्रकरण पूरा हो गया, अब **तेन परिवृतम्** का प्रकरण चलेगा। यह प्राग्दीव्यतीय का चतुर्थ अर्थक्रम होगा।

१२११. परिवृतो रथः ४।२।१०॥

वस्त्रैः परिवृतो वास्त्रो रथः। रथः किम्? वस्त्रेण परिवृतः कायः। समन्ताद्वेष्टितः परिवृत उच्यते। तेनेह न- छात्रैः परिवृतो रथः।

परिवृतो रथः। परिवृतः प्रथमान्तं, रथः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तेन रक्तं रागात्** से **तेन** और **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ रहा है।

'उससे परिवृत अर्थात् लिपटा हुआ, घिरा हुआ रथ' इस अर्थ में तृतीयान्त समर्थ प्रातिपदिक से तद्धितसंज्ञक अण् प्रत्यय होता है।

जो परिवृत हो वह रथ ही हो, अन्य नहीं। इसीलिए सूत्र में **रथः** भी पढ़ा गया है।

वास्त्रो रथः। वस्त्र से लिपटा हुआ, ढका हुआ रथ। **वस्त्रेण परिवृतः**। **वस्त्र+टा** में **परिवृतो रथः** से **अण्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **वास्त्र** बना। इससे स्वादि कार्य करके **वास्त्रः** बनता है किन्तु आगे **रथः** परे है, अतः **सु** को रुत्व, उत्व, गुण होकर **वास्त्रो रथः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **कम्बलेन परिवृतः काम्बलो रथः, रजसा परिवृतो राजसो रथः** आदि भी बनाये जा सकते हैं।

रथः किम्? वस्त्रेण परिवृतः कायः। सूत्र में **रथः** शब्द का निवेश होने से जो परिवृत हो वह रथ ही हो, तभी यह अण् प्रत्यय होगा, अन्यथा नहीं होगा। इसीलिए सूत्र में **रथः** भी पढ़ा गया है। फलतः **वस्त्रेण परिवृतः कायः** (कपड़े से लिपटा हुआ शरीर) अर्थ में रथ अर्थ न होने के कारण अण् नहीं होता अर्थात् **वास्त्रः कायः** नहीं बनता।

समन्ताद्वेष्टितः परिवृत उच्यते। तेनेह न- छात्रैः परिवृतो रथः। सूत्रोक्त **परिवृतः** शब्द का अर्थ है- चारों ओर से ठीक से ढका हुआ होना। अतः **छात्रैः परिवृतो**

रथः (छात्रों से घिरा हुआ रथ) में **छात्र**-शब्द से अण् प्रत्यय नहीं हो सकता, क्योंकि छात्रों से पूरा रथ ढक नहीं सकता।

इस सूत्र के भाष्य में **परिवृतो रथ इति तदेकान्तग्रहणम्** वार्तिक पढ़ा गया है। **एकान्त** शब्द का अर्थ है- अवयव। जिससे रथ ढका जा रहा है, वह रथ का ही एक अंग (अवयव) होना चाहिये। इस तरह कपड़े से परिवेष्टित रथ के अवयव के रूप में समाविष्ट होता है। इस तरह रथ के निर्माण में जहाँ पर वस्त्र का उपयोग किया जायेगा, वहाँ ही अण् होगा, ऐसा प्रतीत होता है।

१२१२. पाण्डुकम्बलादिनिः ४।२।११॥

पाण्डुकम्बलेन परिवृतः पाण्डुकम्बली।
पाण्डुकम्बलशब्दो राजास्तरणवर्णकम्बलस्य वाचकः।
मत्वर्थीयेनैव सिद्धे वचनमणो निवृत्त्यर्थम्।

पाण्डुकम्बलादिनिः। पाण्डुकम्बलात् पञ्चम्यन्तम्, इनिः प्रथमान्तम्। **परिवृतो रथः** के दोनों पदों की और **तेन रक्तं रागात्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ रहा है।

तृतीयान्त-समर्थ पाण्डुकम्बल-प्रातिपदिक से परिवृत अर्थात् लिपटा हुआ रथ अर्थ में तद्धितसंज्ञक इनि-प्रत्यय होता है।

यहाँ पर भी जो परिवृत हो वह रथ ही हो, अन्य नहीं। इसीलिए सूत्र में **रथः** की अनुवृत्ति की गयी है। यह सूत्र औत्सर्गिक अण् का अपवाद है। **इनि** में अन्त्य इकार इत्संज्ञक है, **इन्** बचता है।

पाण्डुकम्बलेन परिवृतः पाण्डुकम्बली। श्वेत कम्बल से लिपटा हुआ, ढका हुआ रथ। **पाण्डुकम्बलेन परिवृतः** अर्थ में **पाण्डुकम्बल+टा** में **परिवृतो रथः** से **अण्** प्रत्यय प्राप्त होने पर उसे बाधकर **पाण्डुकम्बलादिनिः** सूत्र से **इनि** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **पाण्डुकम्बलिन्** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पाण्डुकम्बली** सिद्ध हो जाता है। आगे **पाण्डुकम्बलिनौ, पाण्डुकम्बलिनः** इत्यादि रूप बनते हैं।

पाण्डुकम्बलशब्दो राजास्तरणवर्णकम्बलस्य वाचकः। यहाँ पाण्डुकम्बल शब्द का अर्थ है- श्वेत कम्बल जो राजाओं के आसन के ऊपर बिछाया जाता था। इस तरह राजास्तरण होने के कारण रथ की महत्ता बढ़ती थी कि यह सामान्य रथ नहीं है, किन्तु राजाओं के लिये है।

मत्वर्थीयेनैव सिद्धे वचनमणो निवृत्त्यर्थम्। यहाँ यद्यपि प्रकृतसूत्र से इनि-प्रत्यय न करके **मतुप्** प्रत्यय के अर्थ में **अत इनिठनौ** सूत्र से इनि-प्रत्यय करके भी उक्त **पाण्डुकम्बली** रूप की सिद्धि होती तथापि औत्सर्गिक अण् (**परिवृतो रथः**) की निवृत्ति के लिये प्रकृत सूत्र का पृथक् ग्रहण किया गया है। अन्यथा **पाण्डुकम्बलः** ऐसा अनिष्ट रूप ही बनता।

१२१३. द्वैपवैयाघ्रादञ् ४।२।१२॥

द्वीपिनो विकारो द्वैपम्, तेन परिवृतो द्वैपो रथः। एवं वैयाघ्रः।

द्वैपवैयाघ्रादञ्। द्वैपश्च वैयाघ्रश्च तयोः समाहारद्वन्द्वो द्वैपवैयाघ्रम्, तस्माद् द्वैपवैयाघ्रात् पञ्चम्यन्तम्, अञ् प्रथमान्तम्। **परिवृतो रथः** के दोनों पदों की और **तेन रक्तं रागात्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ रहा है।

यह नैसर्गिक अण् का अपवाद है। **अण्** और **अञ्** में स्वर का भेद है।

द्वीपिनो विकारो द्वैपम्, तेन परिवृतो द्वैपो रथः। चीते के चमड़े से आच्छादित रथ। **द्वीपी** के विकार को **द्वैप** कहते हैं। एतदर्थ **द्विपिन्**-शब्द से **तस्य विकारः** अर्थ में **प्राणिरजतादिभ्योऽञ्** सूत्र से अञ् प्रत्यय, आदिवृद्धि और **नस्तद्धिते** से टिसंज्ञक भाग **इन्** का लोप होकर **द्वैप** शब्द बनता है। यहाँ प्रकृत में **द्वैपेन परिवृतो रथः** अर्थ में **द्विप+टा** में **द्वैपवैयाघ्रादञ्** सूत्र से **अञ्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **द्वैप** शब्द ही बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **द्वैपः** सिद्ध हो जाता है।

वैयाघ्रः। व्याघ्रचर्म (बाघ के चमड़े) से आच्छादित रथ। **व्याघ्र** के विकार चमड़े आदि को **वैयाघ्र** कहते हैं। एतदर्थ **व्याघ्र**-शब्द से **तस्य विकारः** अर्थ में **प्राणिरजतादिभ्योऽञ्** सूत्र से अञ् प्रत्यय, आदिवृद्धि प्राप्त, उसे बाधकर **न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्** (७.३.३) सूत्र से ऐच् (ऐ) आगम और **यस्येति च** से भसंज्ञक अकार का लोप करके **वैयाघ्र** शब्द बनता है। यहाँ प्रकृत में **वैयाघ्रेण परिवृतो रथः** अर्थ में **वैयाघ्र+टा** में **द्वैपवैयाघ्रादञ्** सूत्र से **अञ्** प्रत्यय होने पर अनुबन्ध लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **वैयाघ्र** शब्द ही बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वैयाघ्रः** सिद्ध हो जाता है।

तेन परिवृतो रथः का प्रकरण पूरा हो जाता है। अब अगले एक सूत्र से विशेष निपातन कर रहे हैं।

१२१४. कौमारापूर्ववचने ४।२।१३॥

कौमार इत्यविभक्तिको निर्देशः। अपूर्वत्वे निपातनमिदम्।
अपूर्वपतिं कुमारीं पतिरुपपन्नः कौमारः।
यद्वा- अपूर्वपतिः कुमारी पतिमुपपन्ना कौमारी भार्या।

कौमारापूर्ववचने। न पूर्वोऽपूर्वस्तस्य वचनम् अपूर्ववचनं, तस्मिन् अपूर्ववचने। नञ्तत्पुरुषगर्भषष्ठीतत्पुरुषः। कौमार इति लुप्तविभक्तिकं पदम्, अपूर्ववचने सप्तम्यन्तम्।

कौमार इत्यविभक्तिको निर्देशः। अर्थात् सूत्र में **कौमार** शब्द अविभक्तिक निर्दिष्ट है। इसके प्रथमा में **कौमारः** होना चाहिये।

अपूर्वत्वे निपातनमिदम्। अपूर्वत्व अर्थ में **कौमारः** का यह निपातन है।

सूत्रार्थः- अपूर्ववचन द्योतित हो रहा हो तो अण्-प्रत्ययान्त कौमार-शब्द का निपातन किया जाता है।

अपूर्ववचने पद से अर्थनिर्देश किया गया है। जिसका पाणिग्रहण न हुआ हो, वह यहाँ अपूर्ववचन-शब्द से अभिहित किया जा रहा है। यह अपूर्ववचन कुमारी को अभिलक्षित कर समझा जाय, पति को अभिलक्षित कर नहीं। पुरुष अपूर्व भार्यायुक्त रहे या न रहे। अपूर्व-शब्द भावार्थ का बोधक है, अतः **कुमार**-शब्दार्थगत ही लिया जाता है, न कि **पति**-शब्दार्थगत। इस प्रकार योग्यतावश द्वितीयान्त अथवा प्रथमान्त कुमार-शब्द से अण् प्रत्यय का निपातन करने पर **कौमारः** शब्द की सिद्धि मानी जाती है। अतः यह शब्द पुंल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग दोनों में स्त्री के अपूर्वत्वकथन में ही होगा। यहाँ पर कौमुदीकार ने पहले पुंल्लिङ्ग का और **यद्वा** शब्द के द्वारा पुनः स्त्रीलिङ्ग का उदाहरण दिया है।

अपूर्वपतिं कुमारीं पतिरुपपन्नः कौमारः। जिसका पति पहले प्राप्त नहीं था, ऐसी कुमारी को प्राप्त हुआ पति। यहाँ पर **कुमारी+अम्** इस द्वितीयान्त से **उपयन्ता पतिः** अर्थ में **कौमारापूर्ववचने** सूत्र से अण् प्रत्यय का निपातन, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, ईकार का **यस्येति च** से लोप होकर **कौमार** शब्द बनता है और एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कौमारः** सिद्ध हो जाता है। यह पुंल्लिङ्ग का उदाहरण है।

यद्वा। अथवा स्त्रीलिंग का उदाहरण भी बनाया जाता है। वह देखें-

अपूर्वपतिः कुमारी पतिमुपपन्ना कौमारी भार्या। जिसका पति पहले प्राप्त नहीं था, ऐसी कुमारी पति को प्राप्त हुयी। यहाँ पर **कुमारी+सु** इस प्रथमान्त से स्वार्थ में **कौमारापूर्ववचने** सूत्र से अण् प्रत्यय का निपातन, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, ईकार का **यस्येति च** से लोप होकर **कौमार** शब्द बनता है स्त्रीत्वविवक्षा में **टिड्ढाणञ्०** सूत्र से ङीप् होकर **कौमारी** शब्द बनता है। उसका विशेष्य पद है- **भार्या।**

उपर्युक्त दोनों उदाहरणों में हमने देखा कि पुंल्लिङ्ग **कौमारः** के लिये द्वितीयान्त **कुमारी+अम्** से उपयन्ता पति अर्थ में निपातन हुआ और स्त्रीलिङ्ग **कौमारी** के लिये प्रथमान्त **कुमारी+सु** से स्वार्थ में प्रत्ययादि का निपातन हुआ।

अब प्राग्दीव्यतीय अर्थक्रम में छठे अर्थ **तत्र उद्धृतम्** का प्रकरण प्रारम्भ करते हैं-

१२१५. तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः ४।२।१४॥

शरावे उद्धृतः, शाराव ओदनः।

उद्धरतिरिहोद्धरणपूर्वके निधाने वर्तते। तेन सप्तमी। उद्धृत्य निहित इत्यर्थः।

तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः। तत्र इति सप्तम्यन्तानुकरणं लुप्तपञ्चम्यन्तं, उद्धृतम् इति प्रथमान्तम्, अमत्रेभ्यः पञ्चम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ रहा है। मूल में सूत्र की वृत्ति नहीं लिखी गई है फिर भी इसकी वृत्ति इस तरह हो सकती है- **पात्रविशेषवाचिभ्यः सप्तम्यन्तेभ्यः समर्थ-प्रातिपदिकेभ्यस्तत्र उद्धृतम् इत्यर्थे अण् प्रत्ययो भवति।**

'उसमें निकाल कर रखा हुआ' इस अर्थ में सप्तम्यन्त समर्थ पात्रविशेष के वाचक प्रातिपदिकों से तद्धितसंज्ञक अण् प्रत्यय होता है।

अमत्र पात्रविशेष को कहते हैं। **तत्र** यह पद सप्तम्यन्त के लिए निर्देश है। अतः सप्तम्यन्त प्रातिपदिक से ही प्रत्यय होगा।

शाराव ओदनः। शराव में निकाल कर रखा गया भात। **शरावे उद्धृतः**। **शराव ङि** में **तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः** से **अण्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **शाराव** बना। इससे स्वादि कार्य करके **शारावः** बनता है किन्तु आगे **ओदनः** परे है, अतः **सु** को रुत्व, उसको **भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि** से यत्व, **हलि सर्वेषाम्** से उस यकार का लोप होकर **शाराव ओदनः** सिद्ध हुआ।

यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि **उद्धृतम्** (उधेड़ना) अर्थ है तो उसके अपादान होने से समर्थविभक्ति पञ्चमी होनी चाहिये किन्तु सूत्र में सप्तम्यन्त का सूचक **तत्र** का ग्रहण किया गया है, ऐसा क्यों? इसका समाधान निम्नलिखित रूप से दे रहे हैं-

उद्धरतिरिहोद्धरणपूर्वके निधाने वर्तते। तेन सप्तमी। उद्धृत्य निहित इत्यर्थः। अर्थात् प्रकृतसूत्र में **उद्धरतिः**=उद्धरण केवल निकालना, उधेड़ना अर्थ में न होकर निकाल करके किसी में स्थापित करना अर्थ में है। इस तरह उद्धरण-पूर्वक निधान अर्थ होने के कारण अधिकरण होने से सप्तमी को समर्थ विभक्ति मानने में कोई असंगति नहीं है। **शारावः** का अर्थ हुआ- शराव (परोई) में निकाल कर रखा गया।

१२१६. स्थण्डिलाच्छयितरि व्रते ४।२।१५॥

तत्र इत्येव। समुदायेन चेद् व्रतं गम्यते।

स्थण्डिले शेते स्थाण्डिलो भिक्षुः।

स्थण्डिलाच्छयितरि व्रते। स्थण्डिलात् पञ्चम्यन्तं, शयितृ-शब्दस्य सप्तम्यन्तं रूपं शयितरि इति, व्रते सप्तम्यन्तम्। **तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः** से **तत्र** की और **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ रहा है।

तत्र इत्येव। अर्थात् इस सूत्र के विषय में भी समर्थ-विभक्ति सप्तमी ही है।

समुदायेन चेद् व्रतं गम्यते। यदि प्रकृति-प्रत्यय के समुदाय से **व्रत** अर्थ का बोध होता हो, तभी यह सूत्र लगता है।

सूत्रार्थः- सप्तम्यन्त समर्थ स्थण्डिल-प्रातिपदिक से 'शयन करने वाला' अर्थ में तद्धितसंज्ञक अण् प्रत्यय होता है, यदि प्रकृतिप्रत्यय के समुदाय से व्रत अर्थ का बोध हो रहा हो तो।

स्थण्डिले शेते स्थाण्डिलो भिक्षुः। चबूतरे पर सोने का व्रती भिक्षुक आदि। **स्थण्डिले शेते=शयितुं व्रतमस्य** अर्थ में **स्थण्डिल+ङि** से **स्थण्डिलाच्छयितरि व्रते** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **स्थाण्डिल** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **स्थाण्डिलः** सिद्ध हो जाता है। यहाँ पर प्रकृति-प्रत्यय के समुदाय से व्रत अर्थ का बोध हो रहा है।

अब प्राग्दीव्यतीय अर्थक्रम में सप्तम अर्थ **तस्मिन् संस्कृतम्** का प्रारम्भ हो रहा है।

१२१७. संस्कृतं भक्षाः ४।२।१६॥

सप्तम्यन्तादण् स्यात् संस्कृतेऽर्थे, यत्संस्कृतं भक्षाश्चेत्ते स्युः।

भ्राष्ट्रे संस्कृता भाष्ट्रा यवाः। अष्टसु कपालेषु संस्कृतोऽष्टाकपालः पुरोडाशः।

संस्कृतं भक्षाः। संस्कृतं प्रथमान्तं, भक्षाः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः** से **तत्र** और **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ रहा है।

सप्तम्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से 'उसमें संस्कार किया गया' इस अर्थ में तद्धितसंज्ञक अण् प्रत्यय होता है परन्तु संस्कृत पदार्थ भक्ष अर्थात् खाने की वस्तु होनी चाहिए।

किसी भोज्य वस्तु को पकाने अथवा अन्य वस्तु मिलाकर उसे स्वादिष्ट बनाने के लिये **संस्कृत** शब्द का प्रयोग किया गया है। सूत्र में **संस्कृतम्** में एकवचन का प्रयोग

और **भक्षाः** में बहुवचन का प्रयोग किया गया है। यह प्रयोग सामान्यापेक्ष है अर्थात् जाति के कथन में एकवचन तथा वस्तु के कथन में बहुवचन का प्रयोग समझना चाहिये। **भक्षाः** में बहुवचन होने से बहुवचन के विषय में ही यह प्रत्यय होता है, ऐसा नहीं मानना चाहिये।

भ्राष्ट्रा यवाः। भट्ठी (भाड़) में भूनकर संस्कृत किये गये खाने योग्य जौ। **भ्राष्ट्रेषु संस्कृताः भक्षाः**। **भ्राष्ट्र+सुप्** से **संस्कृतं भक्षाः** से **अण्** प्रत्यय अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, णित् होने से आदिवृद्धि, **यस्येति च** से अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन, एकदेशविकृतन्यायेन स्वादिकार्य होने पर बहुत्वविवक्षा में जस्, दीर्घ, सकार को रुत्वविसर्ग आदि होने पर **भ्राष्ट्राः (यवाः)** सिद्ध हो जाता है।

अष्टसु कपालेषु संस्कृतोऽष्टाकपालः पुरोडाशः। आठ कपालों में पकाया हुआ हवनीय पुरोडाश। **अष्टसु कपालेषु संस्कृतः** अर्थ में **अष्ट+सुप् कपाल+सुप्** में प्रकृत तद्धित प्रत्यय की विवक्षा में **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** सूत्र से समास होने के बाद समासप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **अष्टन्+कपाल** बना है। **अष्टनः कपाले हविषि** वार्तिक के द्वारा नकार के स्थान पर आकार आदेश होने पर सवर्णदीर्घ होकर **अष्टाकपाल** शब्द बन जाता है। संख्यावाची शब्द पूर्वपद होने के कारण इसकी **संख्यापूर्वो द्विगुः** सूत्र से द्विगुसंज्ञा हो जाती है। इसके बाद **संस्कृतं भक्षाः** सूत्र से **अण्** प्रत्यय होने पर उसका **द्विगोर्लुगनपत्ये** सूत्र से लुक् हो जाता है। अतः **अष्टाकपाल** ही बना है। प्रत्यय के लुक् होने के कारण अंगकार्य के सम्बन्ध में प्रत्ययलक्षण न होने से आदिवृद्धि और अकारलोप ये दोनों कार्य नहीं होते। एकदेशविकृतन्यायेन स्वादिकार्य होने पर **अष्टाकपालः** सिद्ध हो जाता है।

प्रकृतसूत्र में **भक्षाः** पद के निवेश से संस्कार किये जाने वाले पदार्थ के खाद्य वस्तु होने पर ही अण् प्रत्यय होता है, अन्यथा नहीं होता। अतः **पुष्यपुटे संस्कृतं वस्त्रम्** में **पुष्यपुट**-शब्द से अण् प्रत्यय नहीं हुआ, क्योंकि **वस्त्र** भक्ष्य पदार्थ नहीं है।

१२१८. शूलोखाद्यत् ४।२।१७॥

अणोऽपवादः। शूले संस्कृतं शूल्यं मांसम्।
उखा पात्रविशेषः। तस्यां संस्कृतमुख्यम्।

शूलोखाद्यत्। शूलं च उखा च तयोः समाहारद्वन्द्वः शूलोखं, तस्मात् शूलोखात्। शूलोखात् पञ्चम्यन्तं, यत् प्रथमान्तम्। **संस्कृतं भक्षाः** के दोनों पदों की और **तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः** से **तत्र** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ रहा है।

सप्तम्यन्त समर्थ शूल और उखा प्रातिपदिकों से 'उसमें संस्कार किया गया' इस अर्थ में तद्धितसंज्ञक यत् प्रत्यय होता है परन्तु संस्कृत पदार्थ भक्ष अर्थात् खाने की वस्तु होनी चाहिए।

अणोऽपवादः। यह सूत्र पूर्वसूत्र से प्राप्त औत्सर्गिक अण् का अपवाद है। **यत्** में तकार इत्संज्ञक है, **य** बचता है। तित्करण स्वरार्थ है। इसके परे रहते आदिवृद्धि नहीं होती किन्तु यकारादि प्रत्यय के परे रहते भसंज्ञा होने के कारण भसंज्ञक अकार का लोप हो जाता है।

शूले संस्कृतं शूल्यं मांसम्। लोहे की छड़ में भूना हुआ मांस। जो लोग मांस खाते हैं, उनके लिय मांस खाद्य वस्तु ही है और उसको स्वादिष्ट बनाने के लिये अपने हिसाब से संस्कार भी करते हैं। **शूले संस्कृतम्** अर्थ में **शूल+ङि** में **संस्कृतं भक्षाः** से प्राप्त अण् को बाधकर **शूलोखाद्यत्** सूत्र से यत् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **शूल्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **शूल्यम्** सिद्ध हो जाता है।

उखा पात्रविशेषः। **तस्यां संस्कृतम् उख्यम्**। पात्रविशेष को **उखा** कहते हैं उखा में संस्कार किये गये खाद्य पदार्थ को **उख्य** कहा जाता है। **उखायां संस्कृतम्** अर्थ में **उखा+ङि** में **संस्कृतं भक्षाः** से प्राप्त अण् को बाधकर **शूलोखाद्यत्** सूत्र से यत् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक आकार का लोप होकर **उख्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **उख्यम्** सिद्ध हो जाता है।

१२१९. दध्नष्ठक् ४।२।१८॥
दध्नि संस्कृतं दाधिकम्।

दध्नष्ठक्। दध्नः इति दधि-शब्दस्य पञ्चम्यन्तं रूपं, ठक् प्रथमान्तम्। **संस्कृतं भक्षाः** के दोनों पदों की और **तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः** से **तत्र** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ रहा है।

सप्तम्यन्त समर्थ दधि-शब्द रूप प्रातिपदिक से 'उसमें संस्कार किया गया भक्ष्य' अर्थ में तद्धितसंज्ञक ठक् प्रत्यय होता है।

ठक् में ककार इत्संज्ञक है, **ठ** बचता है और उसके स्थान पर **ठस्येकः** सूत्र से **इक** आदेश हो जाता है। कित्करण **किति च** सूत्र से आदिवृद्धि के लिये है।

दध्नि संस्कृतं दाधिकम्। दही में बनायी गयी है। **दध्नि संस्कृतम्** अर्थ में **दधि+ङि** में **संस्कृतं भक्षाः** से प्राप्त अण् को बाधकर **दध्नष्ठक्** सूत्र से ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, ठ के स्थान पर इकादेश, **किति च** से आदिवृद्धि और भसंज्ञक इकार का लोप होकर **दाधिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **दाधिकम्** सिद्ध हो जाता है।

१२२०. उदश्वितोऽन्यतरस्याम् ४।२।१९॥
ठक् स्यात्। पक्षेऽण्।

उदश्वितोऽन्यतरस्याम्। उदश्वितः इति उदश्वित्-शब्दस्य पञ्चम्यन्तं रूपम्, अन्यतरस्यां विभक्तिप्रतिरूपकमव्ययम्। **दध्नष्ठक्** से **ठक्** की, **संस्कृतं भक्षाः** के दोनों पदों की और **तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः** से **तत्र** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ रहा है।

सप्तम्यन्त समर्थ उदश्वित्-शब्द रूप प्रातिपदिक से 'उसमें संस्कार किया गया भक्ष्य' अर्थ में विकल्प से तद्धितसंज्ञक ठक् प्रत्यय होता है।

पक्षेऽण्। ठक् न होने के पक्ष में यथाप्राप्त अण् प्रत्यय होगा। इसके उदाहरण अगले सूत्र में दिये गये हैं।

१२२१. इसुसुक्तान्तात् कः ७।३।५१॥
इस् उस् उक् त एतदन्तात् परस्य ठस्य कः स्यात्।

उदकेन श्वयति वर्धते इत्युदश्वित्। तत्र संस्कृतः, औदश्वित्कः औदश्वितः। इसुसोः प्रतिपदोक्तयोर्ग्रहणान्नेह। आशिषा चरत्याशिषिकः। उषा चरति औषिकः।
'दोष उपसंख्यानम्' (वा.५०५१)। दोर्भ्यां चरति दौष्कः।

इसुसुक्तान्तात् कः। इस् च उस् च उक् च तश्च तेषां समाहारद्वन्द्व इसुसुक्ताः, ते अन्ते यस्य स इसुसुक्तान्तः, तस्मात्। इसुसुक्तान्तात् पञ्चम्यन्तं, कः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अङ्गस्य** का अधिकार है और उसका पञ्चमी में विपरिणाम करके **अङ्गात्** बना लिया जाता है। वह **इसुसुक्तान्तात्** का विशेष्य बन जाता है। **ठस्येकः** से **ठस्य** की अनुवृत्ति आती है।

इस्, उस्, उक् और त् अन्त में हो ऐसे अंग से परे ठ के स्थान पर क आदेश होता है।

यह **ठस्येकः** सूत्र का अपवाद है। अन्यत्र ठ-प्रत्यय के स्थान पर इक आदेश होता है किन्तु वह ठ यदि इस्, उस्, उक्, त् से परे हो तो **क** आदेश होता है। क के अनेकाल् होने के कारण **अनेकाल्शित्सर्वस्य** के नियम से सर्वादेश होता है अर्थात् ठ्+अ दोनों वर्णों के स्थान पर यह आदेश होता है। यहाँ पर **उक्** शब्द से उक्-प्रत्याहार का ग्रहण है। उक् में उ, ऋ, ऌ ये तीन वर्ण आते हैं।

उदकेन श्वयति वर्धते इत्युदश्वित्। तत्र संस्कृतः, औदश्वित्कः, औदश्वितः। जो उदक, उद=जल के डालने से बढ़ जाता है, उसे **उदश्वित्** कहते हैं, वह है- छाछ, मठठा। **उदश्विति संस्कृतम्** अर्थ में **उदश्वित्+ङि** से **उदश्वितोऽन्यतरस्याम्** सूत्र से

विकल्प से **ठक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप करके **इसुसुक्तान्तात्कः** से ठ के स्थान पर **क** आदेश करने के बाद तदन्त की प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **उदश्वित्क** बना। ठक् के कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि करके **औदश्वित्क** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य से **औदश्वित्कम्** सिद्ध हो जाता है। ठक् प्रत्यय न होने के पक्ष में **संस्कृतं भक्षाः** से अण् प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि होकर **औदश्वितः** बनता है। **उदश्वित्** शब्द भी **उदेन श्वियते** अर्थ में **उद्+टा श्वि** (धातु) से क्विप् प्रत्यय होने पर सर्वापहारलोप, ह्रस्व इकार को तुक् आगम होकर बना है।

इसुसोः प्रतिपदोक्तयोर्ग्रहणान्नेह। आशिषा चरत्याशिषिकः। उषा चरति औषिकः। अर्थात् **इसुसुक्तान्तात् कः** सूत्र में **इस्** और **उस्** प्रतिपदोक्त ही गृहीत होते हैं। तात्पर्य यह है कि उणादि प्रत्यय जो **इस्, उस्** हैं, उनका ही ग्रहण है। अतः किसी शब्द के अवयव इस्, उस् होने पर उनसे पर ठ-शब्द को कादेश नहीं होता। फलतः **आशिषा चरति** अर्थ में **आशिष्+टा** में **चरति** सूत्र से ठक् प्रत्यय होने पर उसके स्थान पर कादेश नहीं हुआ, क्योंकि **आङ्**-पूर्वक **शास्** धातु से क्विप् प्रत्यय, सर्वापहारलोप और **आशासः क्वावुपधाया इत्त्वं वाच्यम्** वार्तिक से धातु के आकार को इकारादेश होकर **आशिस्** शब्द बना है। यह प्रतिपदोक्त **इस्** न होकर **आशिस्**-शब्दावयव है। अतः ठ के स्थान पर **ठस्येकः** सूत्र से **इक** आदेश होकर **आशिषिकः** बन जाता है। इसी तरह **उषा चरति** अर्थ में **उस्+टा** से ठक् प्रत्यय होने पर भी कादेश नहीं होता, क्योंकि यहाँ **वस्** धातु से क्विप् प्रत्यय, सर्वापहारलोप, धातु के वकार को सम्प्रसारण उकार होकर उस् शब्द बना है। अतः यह प्रतिपदोक्त न होकर लाक्षणिक **उस्** है। उसके तृतीयान्त में **उषा** बन जाता है। फलतः ठ के स्थान पर इकादेश होकर **औषिकः** रूप बन जाता है।

दोष उपसंख्यानम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- दोष्-शब्द के परवर्ती ठ-प्रत्यय के स्थान पर क आदेश का उपसंख्यान करना चाहिये। उस् आदि के अन्त में न होने के कारण **इसुसुक्तान्तात् कः** सूत्र से प्राप्त नहीं था, अतः वार्तिक की सार्थकता है।

दोर्भ्यां चरति दौष्कः। भुजाओं से चलने वाला। **दोर्भ्यां चरति** अर्थ में **दोस्+भ्याम्** से ठक् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **दोस्+ठ** बना है। **दोष उपसंख्यानम्** वार्तिक के द्वारा ठ के स्थान पर **क** आदेश होने पर **किति च** से आदिवृद्धि, सकार को षत्व आदि होकर **दौष्क** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **दौष्कः** सिद्ध हो जाता है।

१२२२. क्षीराड् ढञ् ४।२।२०॥

अत्र संस्कृतम् इत्येव संबध्यते, न तु भक्षा इति।
तेन यवाग्वामपि भवति। क्षैरेयी।

क्षीराड् ढञ्। क्षीरात् पञ्चम्यन्तं, ढञ् प्रथमान्तम्। **संस्कृतं भक्षाः** से **संस्कृतम्** और **तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः** से **तत्र** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ रहा है।

सप्तम्यन्त समर्थ क्षीर-शब्द रूप प्रातिपदिक से 'उसमें संस्कार किया गया' अर्थ में तद्धितसंज्ञक ढञ् प्रत्यय होता है।

ढञ् में ञकार इत्संज्ञक है, और शिष्ट ढकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र से **एय्** आदेश होकर **एय** ऐसा प्रत्यय का स्वरूप बन जाता है। ञित् होने के कारण इसके परे रहते आदिवृद्धि होगी।

अत्र संस्कृतम् इत्येव संबध्यते, न तु भक्षा इति। तेन यवाग्वामपि भवति। अर्थात् यहाँ **संस्कृतं भक्षाः** सूत्र से केवल **संस्कृतम्** की अनुवृत्ति मानी जाती है किन्तु **भक्षाः** की नहीं। अतः **यवागू** अर्थ में भी यह ढञ् प्रत्यय हो जाता है। तात्पर्य यह है कि **यवागू** (चावलों का मांड़, चावलों के मांड़ की काँजी या जौ आदि कसी और अन्न की काँजी) के पेय पदार्थ होने के कारण **भक्ष्य** पदार्थ नहीं है। यदि उक्त पद की भी अनुवृत्ति आती तो यवागू अर्थ वाच्य होने पर ढञ् प्रत्यय न हो पाता।

क्षैरेयी। दूध में संस्कृत यवागू, पीने योग्य दलिया आदि। **क्षीरे संस्कृतम्** अर्थ में **क्षीर+ङि** में **क्षीराड् ढञ्** सूत्र से ढञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, एयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकारलोप करके **क्षैरेय** शब्द बना है। विशेष्य शब्द **यवागू** के स्त्रीलिंग होने के कारण क्षौरेय-शब्द से भी स्त्रीत्वविवक्षा में **टिड्ढाणञ्०** से ङीप् होकर **क्षैरेयी** बनने के बाद स्वादिकार्य होता है।

तत्र संस्कृतम् अर्थ का प्रकरण पूरा हो जाता है, अब **सा अस्मिन् इति** का अर्थक्रम शुरू होता है। यह प्राग्दीव्यतीय अष्टम अर्थक्रम है।

१२२३. सास्मिन् पौर्णमासीति ४।२।२१॥

इतिशब्दात् 'सञ्ज्ञायाम्' इति लभ्यते।
पौषी पौर्णमास्यस्मिन् पौषो मासः।

सास्मिन् पौर्णमासीति। सा प्रथमान्तम्, अस्मिन् सप्तम्यन्तं, पौर्णमासी प्रथमान्तम्, इति इत्यव्ययम्। **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ रहा है।

प्रथमान्त समर्थ पौर्णमासी विशेषवाची प्रातिपदिक से अधिकरण अभिधेय होने पर तद्धितसंज्ञक अण् प्रत्यय होता है।

इतिशब्दात् 'सञ्ज्ञायाम्' इति लभ्यते। प्रकृत सूत्र के **इति** शब्द से संज्ञा अर्थ का बोध किया जाता है, अर्थात् यह प्रत्यय संज्ञा में ही हुआ करता है। **अस्मिन्** शब्द के द्वारा अधिकरण का बोध होता है। **सा** शब्द से समर्थ विभक्ति **प्रथमा** का संकेत है।

पौर्णमासी शब्द की निष्पत्ति पर विचार करें तो इसके दो विग्रह सम्भव होते हैं- **पूर्णो भवति मासो यस्यां तिथौ सा पौर्णमासी तिथिः**। अथवा **पूर्णो माः चन्द्रमाः पूर्णमाः, पूर्णमसः इयं तिथिः पौर्णमासी**।

पौषी पौर्णमास्यस्मिन् पौषो मासः। पुष्य-नक्षत्र से युक्त पूर्णिमा को **पौषी** कहते हैं और जिस महीने में पौषी हो, उस मास को **पौष** कहा जाता है, पूस का महीना। इस तरह इसका विग्रह किया जाता है- **पुष्ययुक्ता पौर्णमासी पौषी, सा यस्मिन् मासे भवति स पौषो मासः। पुष्य+टा** से **नक्षत्रेण युक्तः कालः** सूत्र के द्वारा **अण्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि करके **यस्येति च** से अकार के लोप होने के बाद **पौष्य्+अ** बना है। **तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राणि यलोप इति वाच्यम्** से **यकार** के भी लोप होने पर वर्णसम्मेलन होकर **पौष** शब्द बना है। स्त्रीत्वविवक्षा में **टिड्ढाणञ्०** से ङीप् होकर **पौषी** शब्द बनता है। उसके बाद **पौषी+सु** में **सास्मिन् पौर्णमासीति** सूत्र से अण् प्रत्यय, भसंज्ञक ईकार का लोप आदि होकर **पौष** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पौषः** सिद्ध हो जाता है।

पौष-शब्द की निष्पत्ति के द्वारा इस इसी प्रकार से प्रत्येक मास का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ विदित होता है। तदनुसार **चैत्रः** आदि शब्द भी इसी प्रकार निष्पन्न होंगे। मासवाच शब्द योगरूढ हैं। प्रायः प्रत्येक मास की पौर्णमासी को उन्हीं नक्षत्रों का चन्द्रमा के साथ संयोग रहता है परन्तु मास में दिनों की संख्या ३० तथा नक्षत्रों की संख्या २७ होने के कारण सामञ्जस्य स्थापित करने के लिये पूर्वापर नक्षत्रों के साथ संयोग होने पर भी मास की संज्ञा निर्दिष्ट नक्षत्र नाम के नाम पर ही रहती है।

इस तरह प्रायः पूर्णिमा में तत्तत् नक्षत्रों के संयोग से मासों के नाम आधारित हैं। जैसे-

१. चित्रायुक्ता पौर्णमासी चैत्री, सा यस्मिन् मासे स चैत्रो मासः।
२. विशाखायुक्ता पौर्णमासी वैशाखी, सा यस्मिन् मासे स वैशाखो मासः।
३. ज्येष्ठायुक्ता पौर्णमासी ज्येष्ठी, सा यस्मिन् मासे स ज्येष्ठो मासः।
४. अषाढायुक्ता पौर्णमासी आषाढी, सा यस्मिन् मासे स आषाढो मासः।
५. श्रवणयुक्ता पौर्णमासी श्रावणी, सा यस्मिन् मासे स श्रावणो मासः।
६. भद्रपदायुक्ता पौर्णमासी भाद्री, सा यस्मिन् मासे स भाद्रो मासः।
७. अश्विनीयुक्ता पौर्णमासी आश्विनी, सा यस्मिन् मासे स आश्विनो मासः।
८. कृत्तिकायुक्ता पौर्णमासी कार्तिकी, सा यस्मिन् मासे स कार्तिको मासः।
९. मृगशीर्षयुक्ता पौर्णमासी मार्गशीर्षी, सा यस्मिन् मासे स मार्गशीर्षो मासः।
१०. पुष्ययुक्ता पौर्णमासी पौषी, सा यस्मिन् मासे स पौषो मासः।
११. मघायुक्ता पौर्णमासी माघी, सा यस्मिन् मासे स माघो मासः।
१२. फल्गुनीयुक्ता पौर्णमासी फाल्गुनी, सा यस्मिन् मासे स फाल्गुनो मासः।

ये उदाहरण सामान्यतया अण् प्रत्यय के हैं। आगे इनके विषय में वैकल्पिक व्यवस्था भी है।

१२२४. आग्रहायण्यश्वत्थाट्ठक् ४।२।२२॥

अग्रे हायनमस्या इत्याग्रहायणी। प्रज्ञादेराकृतिगणत्वादण्। 'पूर्वपदात् सञ्ज्ञायाम्-'(सू.८५७) इति णत्वम्। आग्रहायणी पौर्णमास्यस्मिन्नाग्रहायणिको मासः। अश्वत्थेन युक्ता पौर्णमास्यश्वत्थः। निपातनात् पौर्णमास्यामपि लुप्। आश्वत्थिकः।

आग्रहायण्यश्वत्थाट्ठक्। आग्रहायणी च अश्वत्थश्च तयोः समाहारद्वन्द्व आग्रहायण्यश्वत्थम्, तस्माद् आग्रहायण्यश्वत्थात् पञ्चम्यन्तं, ठक् प्रथमान्तम्। **सा अस्मिन् पौर्णमासी इति** की अनुवृत्ति है और **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

प्रथमान्त-समर्थ पौर्णमासी-शब्द के साथ सामानाधिकरण्य वाले आग्रहायणी और अश्वत्थ शब्दों से सप्तम्यर्थ में ठक् प्रत्यय होता है।

अग्रे हायनमस्या इत्याग्रहायणी। प्रज्ञादेराकृतिगणत्वादण्। 'पूर्वपदात् सञ्ज्ञायाम्-' इति णत्वम्। इस पूर्णमासी के बाद अगला वर्ष है, इस अर्थ में **अग्रे हायनमस्याः** विग्रह में समास होकर **अग्रहायन** शब्द बनता है। **अग्रहायन** में **प्रज्ञादिभ्योऽण्** सूत्र के द्वारा स्वार्थ में अण् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होने पर **पूर्वपदात्संज्ञायामगः** सूत्र से रेफ से परे नकार को णत्व होकर **आग्रहायण** शब्द बनता है और स्त्रीत्वविवक्षा में ङीप् प्रत्यय होकर **आग्रहायणी** (पौर्णमासी) सिद्ध हो जाता है। उसके बाद प्रकृतसूत्र की प्रक्रिया होती है-

आग्रहायणी पौर्णमास्यस्मिन्नाग्रहायणिको मासः। जिस महीने में **आग्रहायणी** पौणमासी होती है, वह मास **आग्रहायणिकः** होता है। **आग्रहायणी+सु** में **आग्रहायण्यश्वत्थाट्ठक्** सूत्र से ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, ठ के स्थान पर इक आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक ईकार का लोप होकर **आग्रहायणिक** शब्द बनता है और एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आग्रहायणिकः** सिद्ध हो जाता है।

प्राचीन काल में किसी संवत्सर में **पौष** से अर्थात् मार्गशीर्ष के अन्त से नूतन वर्ष का प्रारम्भ होता रहा होगा। हो सकता है कि यह पुरातन वसन्त-सम्पात का सूचक हो।

अश्वत्थेन युक्ता पौर्णमास्यश्वत्थः। निपातनात् पौर्णमास्यामपि लुप्। आश्वत्थिकः। जिस पौर्णमासी में **अश्वत्थ** (अश्विनी नक्षत्र) हो उसे **अश्वत्थः** कहा जाता है। यहाँ पर **नक्षत्रेण युक्त कालः** सूत्र से विहित अण् प्रत्यय का प्रकृतसूत्र से

निपातनात् लुप् मान लिया जाता है। उसके बाद **अश्वत्थ+सु** में **आग्रहायण्यश्वत्थाट्ठक्** सूत्र से ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, ठ के स्थान पर इक आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आश्वत्थिक** शब्द बनता है और एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आश्वत्थिकः** सिद्ध हो जाता है। कुछ विद्वान् **अश्वत्थ** शब्द का अर्थ **श्रवण**-नक्षत्र मानते हैं तो काशिका के अनुसार पीपल के पेड़ की पीपली पकने का काल **अश्वत्थ** होता है।

१२२५. विभाषा फाल्गुनीश्रवणाकार्तिकीचैत्रीभ्यः ४।२।२३॥

एभ्यष्ठग्वा। पक्षेऽण्। फाल्गुनिकः, फाल्गुनो वा मासः। श्रावणिकः, श्रावणः। कार्तिकिकः, कार्तिकः। चैत्रिकः, चैत्रः।

विभाषा फाल्गुनीश्रवणाकार्तिकीचैत्रीभ्यः। फाल्गुनी च श्रवणा च कार्तिकी च चैत्री च तासामितरेतरयोगद्वन्द्वः फाल्गुनीश्रवणाकार्तिकीचैत्र्यस्ताभ्यः फाल्गुनीश्रवणा-कार्तिकीचैत्रीभ्यः। **आग्रहायण्यश्वत्थाट्ठक्** से **ठक्** और **सा अस्मिन् पौर्णमासी इति** की अनुवृत्ति है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

प्रथमान्त-समर्थ पौर्णमासी-शब्द के साथ सामानाधिकरण्य वाले फाल्गुनी, श्रवणा, कार्तिकी और चैत्री शब्दों से सप्तम्यर्थ में विकल्प से ठक् प्रत्यय होता है।

पक्षेऽण्। ठक् न होने के पक्ष में **सास्मिन् पौर्णमासीति** सूत्र से नैसर्गिक अण् प्रत्यय होता है।

फाल्गुनिकः, फाल्गुनो वा मासः। पूर्वाफाल्गुनी या उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र वाली पौर्णमासी जिस मास में हो, वह मास **फाल्गुनिकः, फाल्गुनः**। यहाँ पर **फल्गुनी+सु** में **नक्षत्रेण युक्त कालः** सूत्र से विहित अण् प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि, अकारलोप, स्त्रीत्वविवक्षा में ङीप् होकर **फाल्गुनी** शब्द बना है। उससे **सा पौर्णमासी यस्मिन् मासे** अर्थ में **सास्मिन् पौर्णमासीति** सूत्र से प्राप्त अण् को बाधकर **विभाषा फाल्गुनीश्रवणाकार्तिकीचैत्रीभ्यः** सूत्र से विकल्प से ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, ठ के स्थान पर इक आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक ईकार का लोप होकर **फाल्गुनिक** शब्द बनता है और एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **फाल्गुनिकः** सिद्ध हो जाता है। ठक् न होने के पक्ष में यथाप्राप्त अण् प्रत्यय होने पर **फाल्गुनः** शब्द सिद्ध हो जाता है। इस तरह दो रूप बनते हैं।

श्रावणिकः, श्रावणः। श्रवण-नक्षत्र से युक्त पौर्णमासी वाला मास। यहाँ पर **श्रवण+टा** में **नक्षत्रेण युक्त कालः** सूत्र से विहित अण् प्रत्यय प्राप्त होने पर प्रकृतसूत्र में **श्रवणा** शब्द के पाठ से अण् नहीं होता या होने पर उसका लुप् हो जाता है। टाप्

होकर **श्रवणा** शब्द बना है। इस तरह **श्रवणा पौर्णमासी यस्मिन् मासे** अर्थ में **सास्मिन् पौर्णमासीति** सूत्र से प्राप्त अण् को बाधकर **विभाषा फाल्गुनीश्रवणाकार्तिकीचैत्रीभ्यः** सूत्र से विकल्प से ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, ठ के स्थान पर इक आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक आकार का लोप होकर **श्रावणिक** शब्द बनता है और एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **श्रावणिकः** सिद्ध हो जाता है। ठक् न होने के पक्ष में यथाप्राप्त अण् प्रत्यय होने पर **श्रावणः** शब्द सिद्ध हो जाता है।

कार्तिकिकः, कार्तिकः। कृत्तिका-नक्षत्र से युक्त पौर्णमासी वाला मास। यहाँ पर **कृत्तिका+टा** में **नक्षत्रेण युक्त कालः** सूत्र से विहित अण् प्रत्यय, आदिवृद्धि, आकारलोप, स्त्रीत्वविवक्षा में ङीप् होकर **कार्तिकी** शब्द बना है। **कार्तिकी पौर्णमासी यस्मिन् मासे** अर्थ में **सास्मिन् पौर्णमासीति** सूत्र से प्राप्त अण् को बाधकर **विभाषा फाल्गुनीश्रवणाकार्तिकीचैत्रीभ्यः** सूत्र से विकल्प से ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, ठ के स्थान पर इक आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक आकार का लोप होकर **कार्तिकिक** शब्द बनता है और एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कार्तिकिकः** सिद्ध हो जाता है। ठक् न होने के पक्ष में यथाप्राप्त अण् प्रत्यय होने पर **कार्तिकः** शब्द सिद्ध हो जाता है।

चैत्रिकः, चैत्रः। चित्रा-नक्षत्र से युक्त पूर्णमासी वाला मास। यहाँ पर **चित्रा+टा** में **नक्षत्रेण युक्त कालः** सूत्र से विहित अण् प्रत्यय, आदिवृद्धि, आकारलोप, स्त्रीत्वविवक्षा में ङीप् होकर **चैत्री** शब्द बना है। **चैत्री पौर्णमासी यस्मिन् मासे** अर्थ में **सास्मिन् पौर्णमासीति** सूत्र से प्राप्त अण् को बाधकर **विभाषा फाल्गुनीश्रवणाकार्तिकीचैत्रीभ्यः** सूत्र से विकल्प से ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, ठ के स्थान पर इक आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक आकार का लोप होकर **चैत्रिक** शब्द बनता है और एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **चैत्रिकः** सिद्ध हो जाता है। ठक् न होने के पक्ष में यथाप्राप्त अण् प्रत्यय होने पर **चैत्रः** शब्द सिद्ध हो जाता है।

सा अस्मिन् पौर्णमासी अर्थ का प्रकरण पूरा हो गया है। अब **सा अस्य देवता** अर्थ में प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है। प्राग्दीव्यतीयों में **सास्य देवता** नवम अर्थक्रम है।

१२२६. साऽस्य देवता ४।२।२४॥

इन्द्रो देवता अस्येति ऐन्द्रं हविः। पाशुपतम्। बार्हस्पत्यम्। त्यज्यमानद्रव्ये उद्देश्यविशेषो देवता, मन्त्रस्तुत्या च। ऐन्द्रो मन्त्रः। 'आग्नेयो वै ब्राह्मणो देवतया' इति तु शैषिकेऽर्थे 'सर्वत्राग्नि-' (वा.२६८९) इति ढक्।

साऽस्य देवता। सा इति प्रथमान्तानुकरणं लुप्तपञ्चम्यन्तम्, अस्य षष्ठ्यन्तं, देवता प्रथमान्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती

है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ रहा है।

देवतावाचक प्रथमान्त समर्थ प्रातिपदिक से 'वह इसका देवता है' इस अर्थ में अण् प्रत्यय होता है।

सा अस्य देवता इन तीनों पदों की अनुवृत्ति ४.२.३५ तक जायेगी।

इन्द्रो देवता अस्येति ऐन्द्रं हविः। इन्द्र देवता हैं इस हवनीय पदार्थ के। **इन्द्रो देवता अस्य** लौकिक विग्रह और **इन्द्र+सु** अलौकिक विग्रह में **सास्य देवता** से अण्, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि करके ऐकार आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करने पर **ऐन्द्र्+अ,** वर्णसम्मेलन करके **ऐन्द्र** बना है। **हविः** इस नपुंसक शब्द के विशेषण होने से सु होकर उसके स्थान पर **अम्** आदेश और पूर्वरूप करके **ऐन्द्रम्** यह नपुंसक शब्द सिद्ध हो जाता है।

पाशुपतम्। पशुपति देवता हैं इस हवनीय पदार्थ के। **पशुपतिर्देवता अस्य** लौकिक विग्रह और **पशुपति+सु** अलौकिक विग्रह में **सास्य देवता** के अर्थ में **पति** उत्तरपद वाला होने के कारण **दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः** से **ण्य** प्रत्यय प्राप्त था किन्तु **पशुपति** शब्द के अश्वपत्यादि गण में होने के कारण **अश्वपत्यादिभ्यश्च** से अण् प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि करके भसंज्ञक इकार का लोप, **पाशुपत्+अ,** वर्णसम्मेलन, **पाशुपत,** सु, नपुंसक में अम् आदेश और पूर्वरूप, **पााशुपतम्** सिद्ध हुआ।

बार्हस्पत्यम्। बृहस्पति देवता हैं इस पदार्थ के। **बृहस्पतिर्देवता अस्य** लौकिक विग्रह और **बृहस्पति+सु** अलौकिक विग्रह में **सास्य देवता** के अर्थ में **पति** उत्तरपद वाला होने के कारण **दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः** से **ण्य** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि करके **बार्हस्पति+य** बना। रेफ का ऊर्ध्वगमन होकर भसंज्ञक इकार का लोप होने पर **बार्हस्पत्+य,** वर्णसम्मेलन, **बार्हस्पत्य** बना। सु, नपुंसक में अम् आदेश और पूर्वरूप, **बार्हस्पत्यम्** सिद्ध हुआ।

त्यज्यमानद्रव्ये उद्देश्यविशेषो देवता, मन्त्रस्तुत्या च। ऐन्द्रो मन्त्रः। यज्ञ में अग्निकुण्ड में आहुति के रूप में त्याग किये जाने वाला द्रव्य जिस देवता को उद्देश्य करके दिया जाता है, उसे देवता कहते हैं। यहाँ प्रकृत सूत्र में सामान्यतया देवता उसे कहा गया है, जो यज्ञादि में देवता को उद्दिष्ट कर दिया जाने वाला हवनीय द्रव्य हो। तदनुसार **सूर्याय स्वाहा, इन्द्राय स्वाहा** आदि का उच्चारण कर अग्नि के माध्यम से सूर्य, इन्द्र आदि को अभिलक्षित करके दिये जाने वाले हवनीय पदार्थ से सूर्यादि का स्वत्व बोधित कराने के लिये **न मम** शब्द द्वारा हवनीय पदार्थ का अग्नि में आधान किया जाता है। देवता-शब्द का दूसरा अर्थ भी है- जिस मन्त्र के द्वारा देवता को **हविः** का अर्पण किया जाता है, वह स्तुत्यात्मक मन्त्र भी देवता कहलाता है। अतः **ऐन्द्रो मन्त्रः** में इन्द्रदेवता की स्तुति

वाला मन्त्र अर्थ में अण् प्रत्यय होकर **ऐन्द्रः** सिद्ध हो जाता है। इस तरह हवनीय पदार्थ और स्तुतिपरक मन्त्र जिस देवता का है, उस देवता के नाम-वाची शब्द से अण् प्रत्यय किया जाता है। इसी तरह आगे के प्रत्ययों में भी समझना चाहिये।

'आग्नेयो वै ब्राह्मणो देवतया' इति तु शैषिकेऽर्थे 'सर्वत्राग्नि-' इति ढक्। यद्यपि प्रकृतसूत्र के अनुसार देवता अर्थ में अण् प्रत्यय ही होता है तथापि **आग्नेयः** में अग्नि-शब्द से शैषिक (**शेषे** सूत्रोक्त) अर्थ में **सर्वत्राग्निकलिभ्यां ढग् वक्तव्यः** वार्तिक के द्वारा ढक् प्रत्यय हो जाता है। अतः **आग्नेयः** रूप अनिष्ट नहीं है। भाष्यकार के उक्त वार्तिक द्वारा यह स्पष्ट किया जा चुका है कि **अग्नि** और **कलि** शब्दों से सभी अर्थों में ढक् प्रत्यय ही होता है। इसलिये **आग्नं हविः, आग्नो मन्त्रः** आदि प्रयोग असाधु माने जाते हैं।

१२२७. कस्येत् ४।२।२५॥

कशब्दस्येदादेशः स्यात् प्रत्ययसंनियोगेन।
'यस्य-'(सू.३११) इति लोपात् परत्वादादिवृद्धिः।
को ब्रह्मा देवता अस्य कायं हविः। श्रीर्देवता अस्य श्रायम्।

कस्येत्। कस्य षष्ठ्यन्तम्, इत् प्रथमान्तम्। **सास्य देवता, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** आदि की अनुवृत्ति और अधिकार है।

सास्य देवता के अर्थ में विहित प्रत्यय के परे रहते क-शब्द को ह्रस्व इकार आदेश होता है।

यह प्रत्ययविधि न होकर आदेश विधि है। **क** उद्देश्य और **इत्** विधेय है। अण् प्रत्यय तो **सास्य देवता** सूत्र से ही सिद्ध है, उसके सन्नियोग में इत् आदेश मात्र इस सूत्र से किया गया है। अतः मूलकार ने लिखा है- **प्रत्ययसंनियोगेन।** यहाँ पर **अलोऽन्त्यस्य** की उपस्थिति से अन्त्य वर्ण अकार के स्थान पर इकार आदेश हो जाता है।

'यस्य-' इति लोपात् परत्वादादिवृद्धिः। अर्थात् **यस्येति च** और **तद्धितेष्वचामादेः** दोनों सूत्रों की युगपत् उपस्थिति होने पर परसूत्र होने के कारण इकारलोप को बाधकर आदिवृद्धि ही होती है।

को ब्रह्मा देवता अस्य कायं हविः। क=ब्रह्मा हैं देवता जिसके वह हवि। **को देवता अस्य** अर्थ में **क+सु** इस स्थिति में **सास्य देवता** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **क+अ** बना है। **कस्येत्** सूत्र के द्वारा ककारोत्तरवर्ती अकार के स्थान पर इकार आदेश होने पर **कि+अ** बना है। इस स्थिति में इकार को **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि और **यस्येति च** से लोप ये दो कार्य एक साथ प्राप्त हैं किन्तु लोपविधायक सूत्र की अपेक्षा वृद्धिविधायक सूत्र के पर होने के कारण **परनित्यान्तरङ्गापवादानामुत्तरोत्तरं बलीयः** इस नियम के अनुसार परकार्य आदिवृद्धि

ही हो जाती है। इकार की वृद्धि ऐकार होकर **कै+अ** बना। आयादेश होकर **काय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कायम्** सिद्ध हो जाता है।

श्रीर्देवता अस्य श्रायम्। श्री=लक्ष्मी हैं देवता जिसके वह हवि। **श्रीः देवता अस्य** अर्थ में **श्री+सु** इस स्थिति में **सास्य देवता** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **श्री+अ** बना है। यहाँ पर ईकार की वृद्धि और लोप इन दोनों के एक साथ प्राप्त होने पर लोपविधायक सूत्र की अपेक्षा वृद्धिविधायक सूत्र के पर होने के कारण आदिवृद्धि ही हो जाती है। ईकार की वृद्धि ऐकार और उसके स्थान पर आयादेश होकर **श्राय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **श्रायम्** सिद्ध हो जाता है।

यद्यपि **कायम्** में इकारादेशविधानसामर्थ्य से ही लोपाभाव सिद्ध हो सकता है तथापि **कस्येत्** का विषय न होने के कारण **श्रायम्** में ही लोपविधि की अपेक्षा आदिवृद्धि के पर होने के कारण लोप को बाधकर आदिवृद्धि होती है, ऐसा मानना चाहिये। भाष्यकार का भी यही अभिमत है।

क शब्द सर्वनामवाची भी है और असर्वनामवाची भी। असर्वनामवाची क-शब्द के ब्रह्मा, आत्मा, सुख, जल आदि अनेक अर्थ हैं। प्रकृतसूत्र में **कस्य** यह षष्ठीविभक्तियुक्त पद है। इसमें यह सन्देह होता है कि यह प्रजापतिवची क-शब्द की विभक्ति है अथवा सर्वनामसंज्ञक किम्-शब्द की? किम्-शब्द के स्थान पर विभक्ति के परे रहते **क** आदेश होकर षष्ठी में **क** ही बनता है। वैदिक प्रयोगों में **काय अनब्रूहि** और **कस्मै देवाय हविषा विधेम** ऐसे दोनों प्रकार के प्रयोग मिलते हैं। इस पर शास्त्रकारों का मत है कि यदि **किम्** शब्द केवल ब्रह्मा आदि अर्थ में प्रयुक्त होता है तो उसे सर्वनामसंज्ञक नहीं माना जाता किन्तु विश्वात्मा परब्रह्म का वाचक होता है तो वह सर्वनामसंज्ञक हो सकता है। अतः विष्णुसहस्रनाम के नामों में विद्वान् लोग **विश्वस्मै नमः, विश्वाय नमः** ये दोनों प्रयोग किया करते हैं। इसी तरह **एक, नै, कः, किम्, यत्, तद्** इत्यादि शब्दों के विषय में समझना चाहिये।

१२२८. शुक्राद् घन् ४।२।२६॥

शुक्रियम्।

शुक्राद् घन्। शुक्रात् पञ्चम्यन्तं, घन् प्रथमान्तम्। **सास्य देवता, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि की अनुवृत्ति और अधिकार है।

'सा अस्य देवता' इस षष्ठी के अर्थ में प्रथमा-समर्थ शुक्र-शब्द से घन् प्रत्यय होता है।

घन् में नकार इत्संज्ञक है और घकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र से **इय्** आदेश होकर **इय** ऐसा प्रत्यय का स्वरूप बन जाता है।

शुक्रियम्। शुक्र हैं देवता जिसके, वह हवि। **शुक्रो देवता अस्य** अर्थ में **शुक्र+सु** इस स्थिति में **शुक्राद् घन्** सूत्र से घन् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, इयादेश होकर **शुक्र+इय** बना है। यहाँ पर आदिवृद्धि का प्रसंग नहीं है किन्तु अकार का **यस्येति च** से लोप हो जाता है। अतः **शुक्रिय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **शुक्रियम्** सिद्ध हो जाता है।

अगले सूत्र से घ-प्रत्यय के साथ प्रकृतिभाग में भी कुछ परिवर्तनात्मक निपातन किया जा रहा है। अर्थ **सा अस्य देवता** ही है।

१२२९. अपोनप्त्रपांनप्तृभ्यां घः ४।२।२७॥

अपोनप्त्रियम्, अपांनप्त्रियम्। अपोनपात्, अपांनपाच्च देवता। प्रत्ययसंनियोगेन तूक्तं रूपं निपात्यते। अत एव 'अपोनपाते अपांनपातेऽनुब्रूहि' इति प्रैषः।

अपोनप्त्रपांनप्तृभ्यां घः। अपोनप्तृ च अपांनप्तृ च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वात् पञ्चमीद्विवचनम्- अपोनप्त्रपांनप्तृभ्याम्। घः प्रथमान्तम्। **सास्य देवता, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि की अनुवृत्ति और अधिकार है।

'अस्य देवता' इस षष्ठी के अर्थ में प्रथमा-समर्थ देवतावाची अपोनपात्, अपांनपात् शब्दों से घ-प्रत्यय होता है और उसके सन्निधान में प्रकृति के स्थान पर क्रमशः अपोनप्तृ और अपांनप्तृ आदेशों का निपातन भी होता है।

यह लौकिक प्रयोग न होकर वैदिक प्रयोग है।

अपोनप्त्रियम्, अपांनप्त्रियम्। अपोनपात् और अपांनपात् देवता हैं जिनके लिये, वह हवि इत्यादि। **अपोनपात्+सु** और **अपांनपात्+सु** से **अपोनप्त्रपांनप्तृभ्यां घः** सूत्र के द्वारा घ-प्रत्यय और क्रमशः प्रकृतिभाग के स्थान पर **अपोनप्तृ** और **अपांनप्तृ** आदेश निपातन, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, घकार के स्थान पर इय् आदेश होकर **अपोनप्तृ+इय** और **अपांनप्तृ+इय** बने हैं। उभयत्र **इको यणचि** से यण् होकर **अपोनप्त्रिय** और **अपांनप्त्रिय** शब्द बनते हैं। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **अपोनप्त्रियम्** और **अपांनप्त्रियम्** ये रूप सिद्ध हो जाते हैं।

अपोनपात्, अपांनपाच्च देवता। प्रत्ययसंनियोगेन तूक्तं रूपं निपात्यते। अर्थात् **अपोनपात्** और **अपांनपात्** ये दो देवता हैं तथा और घ-प्रत्यय के सन्नियोग में उक्त रूपों का निपातन किया गया है, जैसा कि ऊपर प्रयोग में दिखाया गया है।

अत एव **'अपोनपाते अपांनपातेऽनुब्रूहि' इति प्रैषः**। घ-प्रत्यय के संनियोग में ही **अपोनप्तृ** और **अपांनप्तृ** आदेश होने के कारण घ-प्रत्ययाभाव में उक्त आदेश नहीं होते। अतः उक्त स्थिति में प्रैषवाक्य में चतुर्थी के एकवचन में **अपोनपाते** और **अपांनपाते** ये प्रयोग बने हैं, अन्यथा **अपोनप्त्रे, अपांनप्त्रे** ऐसे अनिष्ट प्रयोग बनने लगते। **अपोनपाते अपांनपातेऽनुब्रूहि**=अग्नि अथवा जल के अधिष्ठाता देवता का आवाहन करने वाले मन्त्र को बोलो।

१२३०. छ च ४।२।२८॥

योगविभागो यथासंख्यनिवृत्यर्थः। अपोनप्त्रीयम्। अपांनप्त्रीयम्। छप्रकरणे पैङ्गाक्षीपुत्रादिभ्य उपसंख्यानम्'(वा.२७०१)। पैङ्गाक्षीपुत्रीयम्। तार्णबिन्दवीयम्।

'शतरुद्राद् घश्च' (वा.२७०२)। चाच्छः। शतं रुद्रा देवता अस्य शतरुद्रियम्, शतरुद्रीयम्। घच्छयोर्विधानसमर्थ्याद् 'द्विगोर्लुगनपत्ये' (सू.१०८०) इति न लुक्।

छ च। छ इति लुप्तप्रथमाकं पदं, चाव्ययम्। **अपोनप्त्रपांनप्तृभ्यां घः** से अपोनप्त्रपांनप्तृभ्याम् और **सास्य देवता** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः**, **ङ्याप्प्रातिपदिकात्**, **प्रत्ययः**, **परश्च**, **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

अस्य देवता इस षष्ठी के अर्थ में प्रथमा-समर्थ देवतावाची अपोनपात्, अपांनपात् शब्दों से छ-प्रत्यय भी होता है और उसके सन्निधान में प्रकृति के स्थान पर क्रमशः अपोनप्तृ और अपांनप्तृ आदेशों का निपातन भी होता है।

यहाँ पर यह शंका होती है कि एक प्रकार की प्रकृति से समान ही निपातन और घ तथा छ प्रत्यय का विधान है तो **अपोनप्त्रपांनप्तृभ्यां घछौ** ऐसा पढ़ देते तो लाघव भी होता, पृथक् सूत्र पढ़ने की क्या आवश्यकता है? इसका समाधान निम्न प्रकार से कर रहे हैं-

योगविभागो यथासंख्यनिवृत्यर्थः। यदि दो प्रकृतियों का निर्देश करके दो आदेशों का विधान एक ही सूत्र में करते तो **यथासङ्ख्यमनुदेशः समानाम्** परिभाषासूत्र की उपस्थिति से **अपोनपात्** शब्द से घ-प्रत्यय और **अपांनपात्** शब्द से छ-प्रत्यय का विधान समझा जाता अर्थात् यथासंख्य हो जाता। तादृश यथासंख्य की निवृत्ति के लिये पृथक् सूत्र करना सार्थक हो जाता है।

अपोनप्त्रीयम्, अपांनप्त्रीयम्। अपोनपात् और अपांनपात् देवता है जिसके, वह हवि इत्यादि। **अपोनपात्+सु** और **अपांनपात्+सु** से **छ च** सूत्र के द्वारा छ-प्रत्यय और क्रमशः प्रकृतिभाग के स्थान पर **अपोनप्तृ** और **अपांनप्तृ** आदेश निपातन, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, छकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां**

प्रत्ययादीनाम् सूत्र से ईय् आदेश होकर **अपोनप्तृ+ईय** और **अपांनप्तृ+ईय** बने हैं। उभयत्र **इको यणचि** से यण् होकर **अपोनप्त्रीय** और **अपांनप्त्रीय** शब्द बनते हैं। तत्पश्चात् उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **अपोनप्त्रीयम्** और **अपांनप्त्रीयम्** ये रूप सिद्ध हो जाते हैं।

अब प्रसंगवश **साऽस्य देवता** अर्थ में अन्य शब्दों से भी छ प्रत्यय का विधान करने के लिये दो वार्तिकों को उपस्थापित कर रहे हैं-

छप्रकरणे पैङ्गाक्षीपुत्रादिभ्य उपसंख्यानम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- छ-प्रत्यय के प्रकरण में पैङ्गाक्षीपुत्र आदि शब्दों को भी प्रकृति मान लेनी चाहिये अर्थात् पैङ्गाक्षीपुत्र आदि शब्दों से भी छ-प्रत्यय होता है, ऐसा मानना चाहिये। इसका गणपाठ उपलब्ध नहीं है किन्तु मूलकार और काशिकाकार ने **पैङ्गाक्षीपुत्रीयम्** और **तार्णबिन्दवीयम्** ये दो उदाहरण दिये हैं।

पैङ्गाक्षीपुत्रीयम्। पिङ्गाक्षीपुत्र देवता हैं जिस हवि के। **पिङ्गाक्षीपुत्रो देवता अस्य** अर्थ में **पिङ्गाक्षीपुत्र+सु** में **छप्रकरणे पैङ्गाक्षीपुत्रादिभ्य उपसंख्यानम्** वार्तिक से छ-प्रत्यय होने पर ईयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप आदि होकर **पैङ्गाक्षीपुत्रीय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पैङ्गाक्षीपुत्रीयम्** सिद्ध हो जाता है।

तार्णबिन्दवीयम्। तृणबिन्दु देवता हैं जिस हवि के। **तृणबिन्दुः देवता अस्य** अर्थ में **तृणबिन्दु+सु** में **छप्रकरणे पैङ्गाक्षीपुत्रादिभ्य उपसंख्यानम्** वार्तिक से छ-प्रत्यय होने पर ईयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, ऋकार की आदिवृद्धि, रपर, **ओर्गुणः** से उकार को गुण ओकार, उसको अवादेश होकर **तार्णबिन्दवीय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **तार्णबिन्दवीयम्** सिद्ध हो जाता है।

शतरुद्राद् घश्च। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- शतरुद्र-शब्द से सांस्य देवता अर्थ में घ प्रत्यय भी होता है।

चाच्छः। उपर्युक्त वार्तिक में च-शब्द है, उससे छ-प्रत्यय का भी समुच्चय है।

शतं रुद्रा देवता अस्य शतरुद्रियम्, शतरुद्रीयम्। जिस हवि के देवता शतरुद्र हों। **शतं रुद्रा देवता अस्य** विग्रह में तद्धितार्थविषय होने पर **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** सूत्र से द्विगुसमास होने पर समासप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **शतरुद्र** शब्द बन जाता है और **शतरुद्राद् घश्च** वार्तिक से घ-प्रत्यय होने के पक्ष में घकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र से **इय्** आदेश, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **शतरुद्रिय** शब्द बना है। छ-प्रत्यय होने के पक्ष में छकार के स्थान पर **ईय्** आदेश होकर **शतरुद्रीय** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **शतरुद्रियम्** और **शतरुद्रीयम्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

घच्छयोर्विधानसमर्थ्याद् 'द्विगोर्लुगनपत्ये' इति न लुक्। यद्यपि **शतरुद्रिय** और **शतरुद्रीय** में द्विगुसंज्ञक होने के कारण **द्विगोर्लुगनपत्ये** सूत्र के द्वारा तद्धितप्रत्यय का लुक् प्राप्त होता है तथापि नहीं किया जाता, क्योंकि यदि लुक् ही करना होता तो घ और छ प्रत्यय का विधान ही व्यर्थ हो जाता, नैसर्गिक अण् करके ही लुक् करना उचित होता।

१२३१. महेन्द्राद् घाणौ च ४।२।२९॥
चाच्छः। महेन्द्रियं हविः, माहेन्द्रम्, महेन्द्रीयम्।

महेन्द्राद् घाणौ च। घश्च अण् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो घाणौ प्रथमाद्विवचनान्तम्, महेन्द्राद् पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **साऽस्य देवता** की अनुवृत्ति आती है **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ रहा है। च-शब्द के द्वारा पूर्वसूत्र से विहित **छ** प्रत्यय का भी समुच्चय है।

देवतावाचक प्रथमान्त समर्थ महेन्द्र प्रातिपदिक से 'वह इसका देवता है' इस अर्थ में घ और अण् प्रत्यय होते हैं तथा च-शब्द से छ-प्रत्यय भी होता है।

महेन्द्रियम् हविः, माहेन्द्रम्, महेन्द्रीयम्। महेन्द्र=इन्द्र देवता हैं जिसके, वह हवि। **महेन्द्रो देवता अस्य** विग्रह में **महेन्द्र+सु** से **महेन्द्राद् घाणौ च** सूत्र से घ-प्रत्यय होने के पक्ष में घकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र से **इय्** आदेश, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **महेन्द्रिय** शब्द बना है। **अण्**-प्रत्यय होने के पक्ष में आदिवृद्धि और अकारलोप होकर **माहेन्द्र** शब्द बना है। छ-प्रत्यय होने के पक्ष में छकार के स्थान पर **ईय्** आदेश, अकारलोप होकर **महेन्द्रीय** शब्द बना है। तीनों जगह एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **महेन्द्रियम्, माहेन्द्रम्, महेन्द्रीयम्।** ये तीन रूप सिद्ध हो जाते हैं।

१२३२. सोमाट्ट्यण् ४।२।३०॥
सौम्यम्। टित्त्वान्ङीप्, सौमी ऋक्।

सोमाट् ट्यण्। सोमात् पञ्चम्यन्तं, ट्यण् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **सास्य देवता** यह पूरा सूत्र अनुवृत्त होकर आता है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ रहा है।

प्रथमान्त समर्थ प्रातिपदिक सोम से 'वह इसका देवता है' इस अर्थ में ट्यण् प्रत्यय होता है।

चुटू से टकार और **हलन्त्यम्** से णकार इत्संज्ञक हैं, **य** बचता है। टित्करण का प्रयोजन स्त्रीत्वविवक्षा में **टिड्ढाण०** से **ङीप्** करना है। णित् का प्रयोजन आदिवृद्धि है।

सौम्यम्। सोम देवता हैं इस पदार्थ के। **सोमो देवता अस्य** लौकिक विग्रह और **सोम सु** अलौकिक विग्रह में **सास्य देवता** से प्राप्त अण् को बाधकर के **सोमाट् ट्यण्** से **ट्यण्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **सोम+य** बना। आदिवृद्धि, **यस्येति च** से **भसंज्ञक अकार** का लोप करके **सौम्य** बना। सु, नपुंसक में अम् आदेश और पूर्वरूप, **सौम्यम्** सिद्ध हुआ।

टित्त्वान्ङीप्, सौमी ऋक्। ऋचा वाच्य होने पर उक्त सौम्य-शब्द को भी स्त्रीलिंग बनाया जाता है। ऐसी स्थिति में प्रत्यय के टित् होने के कारण टित्त्वात् **टिड्ढाणञ्०** सूत्र से ङीप् प्रत्यय होने पर अकार का **यस्येति च** से लोप और यकार का **हलस्तद्धितस्य** से लोप होकर **सौमी** शब्द बनता है। स्वादिकार्य।

१२३३. वाय्वृतुपित्रुषसो यत् ४।२।३१॥
वायव्यम्। एवम् ऋतव्यम्।

वाय्वृतुपित्रुषसो यत्। वायुश्च ऋतुश्च पिता च उषस् च तेषां समाहारद्वन्द्वो वाय्वृतुपित्रुषस्, तस्मात्। वाय्वृतुपित्रुषसः पञ्चम्यन्तं, यत् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **सास्य देवता** यह पूरा सूत्र अनुवृत्त होकर आता है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ रहा है।

वायु, ऋतु, पितृ और उषस् इन प्रथमान्त समर्थ प्रातिपदिकों से 'वह इसका देवता है' इस अर्थ में यत् प्रत्यय होता है।

यत् में तकार इत्संज्ञक है, **य** मात्र बचता है। तित्करण स्वरार्थ है।

वायव्यम्। वायु देवता हैं इस हवि पदार्थ के। **वायुर्देवता अस्य** लौकिक विग्रह और **वायु+सु** अलौकिक विग्रह में **सास्य देवता** के अर्थ में **वाय्वृतुपित्रुषसो यत्** से यत् प्रत्यय, अनुबन्धलोप करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **वायु+य** बना। **ओर्गुणः** से **उकार** को गुण करके **वायो+य** बना। **वान्तो यि प्रत्यये** से अव् आदेश होकर **वायव्य** बना। सु, नपुंसक में अम् आदेश और पूर्वरूप, **वायव्यम्** सिद्ध हुआ।

ऋतव्यम्। ऋतु देवता हैं इस हवि पदार्थ के। **ऋतुर्देवता अस्य** लौकिक विग्रह और **ऋतु सु** अलौकिक विग्रह में **सास्य देवता** से प्राप्त अण् को बाधकर **वाय्वृतुपित्रुषसो यत्** से **यत्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **ऋतु+य** बना। **ओर्गुणः** से **उकार** को गुण करके **ऋतो+य** बना। **वान्तो यि प्रत्यये** से अव् आदेश होकर **ऋतव्य** बना। सु, नपुंसक में अम् आदेश और पूर्वरूप, **ऋतव्यम्** सिद्ध हुआ।

सूत्रोक्त **पितृ** और **उषस्** शब्दों के उदाहरण अगले सूत्र के बाद दिये गये हैं।

१२३४. रीङृतः ७।४।२७॥

अकृद्यकारेऽसार्वधातुके यकारे च्वौ च परे ऋदन्ताङ्गस्य रीङादेशः स्यात्। 'यस्येति च' (सू.३११)। पित्र्यम्। उषस्यम्।

रीङ् ऋतः। रीङ् प्रथमान्तं, ऋतः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः** से **अकृत्सार्वधातुकयोः** एवं **अयङ् यि क्ङिति** से **यि** तथा **च्वौ च** से **च्वौ** की अनुवृत्ति आती है और **अङ्गस्य** का अधिकार है।

कृत् से भिन्न का जो यकार अथवा असार्वधातुक यकार, उसके परे रहते और च्वि प्रत्यय के परे होने पर ऋदन्त अङ्ग के स्थान पर रीङ् आदेश होता है।

अङ्ग का विशेषण होने के कारण **ऋतः** में तदन्तविधि होकर **ऋदन्तात्** बनता है। **ऋत्** स्थानी (उद्देश्य) और **रीङ्** आदेश (विधेय) है। **रीङ्** में **ङकार** की इत्संज्ञा होती है, **री** मात्र बचता है। ङित् होने के कारण **ङिच्च** की सहायता से अन्त्य वर्ण **ऋकार** के स्थान पर ही होता है।

यस्येति च। रीङ् होने के बाद ईकारलोप करने वाले सूत्र का स्मरण कराया गया है।

पित्र्यम्। पितर देवता हैं इस हवि पदार्थ के। **पितरो देवता अस्य** लौकिक विग्रह और **पितृ+जस्** अलौकिक विग्रह में **सास्य देवता** के अर्थ में **वाय्वृतुपित्रुषसो यत्** से **यत्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **पितृ+य** बना। **रीङ् ऋतः** से **ङिच्च** की सहायता से अन्त्य अल् **ऋकार** के स्थान पर अनुबन्धविनिर्मुक्त **री** आदेश हो गया। **पित्री+य** बना। **ईकार** का **यस्येति च** से लोप हुआ तो **पित्र्+य** बना। वर्णसम्मेलन, सु, नपुंसक में अम् आदेश और पूर्वरूप करके **पित्र्यम्** सिद्ध हुआ।

उषस्यम्। उषा देवता हैं इस हवि पदार्थ के। **उषा देवता अस्य** लौकिक विग्रह और **उषस् सु** अलौकिक विग्रह में **सास्य देवता** से प्राप्त अण् को बाधकर **वाय्वृतुपित्रुषसो यत्** से **यत्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **उषस्+य** बना। वर्णसम्मेलन, सु, नपुंसक में अम् आदेश और पूर्वरूप करके **उषस्यम्** सिद्ध हुआ।

१२३५. द्यावापृथिवीशुनासीरमरुत्वदग्नीषोमवास्तोष्पतिगृहमेधाच्छ च ४।२।३२॥

चाद्यत्। द्यावापृथिवीयम्, द्यावापृथिव्यम्। शुनासीरीयम्, शुनासीर्यम्।

द्यावापृथिवीसुनासीर०। द्यावापृथिव्यौ च शुनासीरौ च मरुत्वत् च अग्नीषोमौ वास्तोष्पतिश्च गृहमेधश्च तेषां समाहारद्वन्द्वो द्यावापृथिवीशुनासीरमरुत्वदग्नीषोम-वास्तोष्पतिगृहमेधम्, तस्मात् द्यावापृथिवीशुनासीरमरुत्वदग्नीषोमवास्तोष्पतिगृहमेधात् पञ्चम्यन्तं, छ इति लुप्तप्रथमाकं पदं, चाव्ययम्। **सास्य देवता** यह पूरा सूत्र अनुवृत्त होकर आता है।

प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा आदि का अधिकार आ रहा है।

प्रथमा-समर्थ द्यावापृथिवी, शुनासीर, मरुत्वत्, अग्नीषोम, वास्तोष्पति और गृहमेध इन प्रथमान्त समर्थ प्रातिपदिकों से 'वह इसका देवता है' इस अर्थ में छ प्रत्यय होता है और च-ग्रहण से यत्-प्रत्यय भी।

चाद्यत्। च-शब्द से **वाय्वृतुपित्रुषसो यत्** से यत् प्रत्यय का अनुकर्षण करके **यत्** का समुच्चय माना जाता है। प्रकृत विधान औत्सर्गिक अण् और **दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः** का अपवाद है।

द्यावापृथिवीयम्, द्यावापृथिव्यम्। जिसके देवता द्यौ और पृथिवी हों, वह हवि आदि। **द्यौश्च पृथिवी च** विग्रह में द्वन्द्वसमास होने के बाद **दिवो द्यावा** सूत्र के द्वारा **दिव्** शब्द के स्थान पर **द्यावा** आदेश होकर **द्यावापृथिवी** शब्द बना है। **द्यावापृथिव्यौ देवते अस्य** अर्थ में **द्यावापृथिवी+औ** इस स्थिति में **सास्य देवता** सूत्र से प्राप्त अण् को बाधकर **द्यावापृथिवीशुनासीरमरुत्वदग्नीषोमवास्तोष्पतिगृहमेधाच्छ च** से **छ** प्रत्यय होने पर **ईय्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक ईकार का लोप करके **द्यावापृथिवीय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **द्यावापृथिवीयम्** सिद्ध हो जाता है। यत्-प्रत्यय होने के पक्ष में ईकार का लोप होकर **द्यावापृथिव्यम्** सिद्ध होता है।

शुनासीरीयम्, शुनासीर्यम्। जिसके देवता शुन=वायु और सीर=सूर्य हों, वह हवि आदि। **शुनश्च सीरश्च** विग्रह में द्वन्द्वसमास होने के बाद **देवताद्वन्द्वे च** सूत्र के द्वारा **शुन** शब्द के अकार के स्थान पर आनङ् आदेश, नकार का **नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप होकर **शुनासीर** शब्द बना है। **शुनासीरौ देवते अस्य** अर्थ में **शुनासीर+औ** इस स्थिति में **सास्य देवता** सूत्र से प्राप्त नैसर्गिक अण्-प्रत्यय को बाधकर **द्यावापृथिवीशुनासीरमरुत्वदग्नीषोमवास्तोष्पतिगृहमेधाच्छ च** से **छ** प्रत्यय होने पर **ईय्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप करके **शुनासीरीय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **शुनासीरीयम्** सिद्ध हो जाता है। यत्-प्रत्यय होने के पक्ष में अकार का लोप होकर **शुनासीर्यम्** सिद्ध होता है।

कौमुदीकार ने सूत्र के शेष उदाहरण नहीं दिये हैं, वे हमें स्वयं बनाने हैं।

मरुत्वतीयम्, मरुत्वत्यम्। जिसके देवता मरुत्=वायु हों, वह हवि आदि। **मरुत्वान् देवता अस्य** अर्थ में **मरुत्वत्+सु** इस स्थिति में नैसर्गिक अण् को बाधकर **द्यावापृथिवीशुनासीरमरुत्वदग्नीषोमवास्तोष्पतिगृहमेधाच्छ च** से **छ** प्रत्यय होने पर **ईय्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **मरुत्वतीय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **मरुत्वतीयम्** सिद्ध हो जाता है। यत्-प्रत्यय होने के पक्ष में **मरुत्वत्यम्** बनता है।

अग्नीषोमीयम्, अग्नीषोम्यम्। जिसके देवता अग्नि और सोम हों, वह हवि आदि। **अग्निश्च सोमश्च** विग्रह में द्वन्द्वसमास होने के बाद **ईदग्नेः सोमवरुणयोः** सूत्र के द्वारा **अग्नि**-शब्द के इकार के स्थान पर ईकार आदेश और सोम के सकार को **अग्नेः स्तुत्स्तोमसोमाः** सूत्र के द्वारा षकारादेश होकर **अग्नीषोम** शब्द बना है। **अग्नीषोमौ देवते अस्य** अर्थ में **अग्नीषोम+औ** इस स्थिति में नैसर्गिक अण्-प्रत्यय को बाधकर **द्यावापृथिवीशुनासीरमरुत्वदग्नीषोमवास्तोष्पतिगृहमेधाच्छ च** से **छ** प्रत्यय होने पर **ईय्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप करके **अग्नीषोमीय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **अग्नीषोमीयम्** सिद्ध हो जाता है। यत्-प्रत्यय होने के पक्ष में अकार का लोप होकर **अग्नीषोम्यम्** सिद्ध होता है।

वास्तोष्पतीयम्, वास्तोष्पत्यम्। जिसके देवता वास्तोष्पति हों, वह हवि आदि। **वास्तुनः पतः** विग्रह में षष्ठीतत्पुरुषसमास होने के बाद षष्ठी का अलुक्, पुंल्लिङ्गत्व और विभक्ति के सकार को षत्व ये तीन कार्य निपातनात् होकर **वास्तोष्पति** शब्द बना है। **वास्तोष्पतिः देवता अस्य** अर्थ में **वास्तोष्पति+सु** इस स्थिति में **द्यावापृथिवीशुनासीरमरुत्वदग्नीषोमवास्तोष्पतिगृहमेधाच्छ च** से **छ** प्रत्यय होने पर **ईय्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक इकार का लोप करके **वास्तोष्पतीय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वास्तोष्पतीयम्** सिद्ध हो जाता है। यत्-प्रत्यय होने के पक्ष में इकार का लोप होकर **वास्तोष्पत्यम्** सिद्ध होता है।

गृहमेधीयम्, गृहमेध्यम्। जिसके देवता गृहमेध हों, वह हवि आदि। **गृहमेधो देवता अस्य** अर्थ में **गृहमेध+सु** इस स्थिति में **सास्य देवता** सूत्र से प्राप्त नैसर्गिक अण्-प्रत्यय को बाधकर **द्यावापृथिवीशुनासीरमरुत्वदग्नीषोमवास्तोष्पतिगृहमेधाच्छ** च से छ प्रत्यय होने पर **ईय्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप करके **गृहमेधीय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **गृहमेधीयम्** सिद्ध हो जाता है। यत्-प्रत्यय होने के पक्ष में अकार का लोप होकर **गृहमेध्यम्** सिद्ध होता है।

१२३६. अग्नेर्ढक् ४।२।३३॥

आग्नेयम्।

अग्नेर्ढक्। अग्नेः पञ्चम्यन्तं, ढक् प्रथमान्तम्। **सास्य देवता** की अनुवृत्ति और **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

प्रथमा-समर्थ अग्नि-शब्द से वह इसके देवता अर्थ में ढक् प्रत्यय होता है।

ढक् में ककार इत्संज्ञक है और ढकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र के द्वारा **एय्** आदेश होकर **एय** ऐसा प्रत्यय का स्वरूप बन जाता है। कित्करण आदिवृद्धि के लिये है। यह **सास्य देवता** से प्राप्त अण् का अपवाद है।

आग्नेयम्। जिसके देवता अग्नि हो, वह हवि आदि। **अग्निः देवता अस्य** अर्थ में **अग्नि+सु** इस स्थिति में **सास्य देवता** सूत्र से प्राप्त नैसर्गिक अण्-प्रत्यय को बाधकर **अग्नेर्ढक्** सूत्र से **ढक्** प्रत्यय होने पर **एय्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक इकार का लोप करके **आग्नेय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आग्नेयम्** सिद्ध हो जाता है।

पहले **कलेर्ढक्** (१२३६) सूत्र के प्रसंग में यह सूचित किया जा चुका है कि **कलि** शब्द के समान ही **अग्नि**-शब्द से भी समस्त प्राग्दीव्यतीय अर्थों में ढक् प्रत्यय होता है, न कि केवल एक अर्थ विशेष में ही।

१२३७. कालेभ्यो भववत् ४।२।३४॥
मासिकम्। प्रावृषेण्यम्।

कालेभ्यो भववत्। भवः इव (भवे इव) भववत्। कालेभ्यः पञ्चम्यन्तं, भववत् अव्ययम्। **सास्य देवता** की अनुवृत्ति और **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

प्रथमा-समर्थ काल-वाची प्रातिपदिकों से 'वह इसके देवता' अर्थ में भवार्थ में होने वाले सभी प्रत्यय होते हैं।

शैषिक प्रकरण में **तत्र भवः** अर्थ में ठञ् आदि प्रत्यय हुआ करते हैं। उन प्रत्ययों का कालवाची शब्दों से **सास्य देवता** अर्थ में भी अतिदेश किया गया है। अतः यह अतिदेश सूत्र है।

मासिकम्। जिस हविस् का देवता मास हो। **मासो देवता अस्य** अर्थ में **मास+सु** इस स्थिति में **कालेभ्यो भववत्** सूत्र से **ठञ्** प्रत्यय होता है, क्योंकि **तत्र भवः** अर्थ में **कालाट्ठञ्** सूत्र से भी यही प्रत्यय होता है। अनुबन्धलोप, इकादेश, आदिवृद्धि, अकारलोप आदि होकर **मासिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **मासिकम्** सिद्ध हो जाता है।

प्रावृषेण्यम्। जिस हविस् का देवता वर्षा हो। **प्रावृड् देवता अस्य** अर्थ में **प्रावृष्+सु** इस स्थिति में **कालेभ्यो भववत्** सूत्र से **एण्य** प्रत्यय होता है, क्योंकि **तत्र भवः** अर्थ में **प्रावृष एण्यः** सूत्र से भी यही प्रत्यय होता है। अनुबन्धलोप, आदिवृद्धि, होकर **प्रावृषेण्य** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **प्रावृषेण्यम्** सिद्ध हो जाता है।

विशेषः- सूत्र में **भव**-शब्द से वति-प्रत्यय जोड़कर **भववत्** शब्द का प्रयोग करके अतिदेश करने से शैषिक प्रकरण में **तत्र भव** (४.३.५३) से लेकर **अणृगयनादिभ्यः** (४.३.७३) तक के में कालवाची जिन शब्दों से जिस विशेषण को लेकर जिन प्रत्ययों का विधान किया गया है, उन्हीं विशेषणों सहित उन्हीं प्रकृतियों से वही प्रत्यय **सास्य देवता** अर्थ में होंगे, यह बात सूचित होती है। अतः **तत्र भवः** अर्थ में कालवाची शब्दों से तत्तत् प्रकृति के अनुसार ठञ्, अण्, एण्य आदि प्रत्यय भी **सास्य देवता** अर्थ में किये जाते हैं।

१२३८. महाराजप्रोष्ठपदाट्ठञ् ४।२।३५॥

माहाराजिकम्। प्रौष्ठपदिकम्।

महाराजप्रोष्ठपदाट्ठञ्। महाराजश्च प्रोष्ठपदश्च तयोः समाहारद्वन्द्वो महाराजप्रोष्ठपदम्, तस्माद् महाराजप्रोष्ठपदात् पञ्चम्यन्तं, ठञ् प्रथमान्तम्। **सास्य देवता** की अनुवृत्ति और **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

प्रथमा-समर्थ देवतावाची महाराज और प्रोष्ठपद प्रातिपदिकों से 'वह इसके देवता' अर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है।

माहाराजिकम्। कुबेर हैं देवता जिस हवि के। **महाराजो देवता अस्य** अर्थ में महाराज+सु से नैसर्गिक अण् को बाधकर **महाराजप्रोष्ठपदाट्ठञ्** सूत्र से ठञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, ठ के स्थान पर इक आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **माहाराजिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **माहाराजिकम्** सिद्ध हो जाता है।

प्रौष्ठपदिकम्। प्रोष्ठपदा=पूर्वा भाद्रपदा हैं देवता जिस हवि के। **प्रोष्ठपदो देवता अस्य** अर्थ में **प्रोष्ठपद**+सु से नैसर्गिक अण् को बाधकर **महाराजप्रोष्ठपदाट्ठञ्** सूत्र से ठञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, ठ के स्थान पर इक आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **प्रौष्ठपदिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **प्रौष्ठपदिकम्** सिद्ध हो जाता है।

अभी तक ञित्, णित् और कित् तद्धित प्रत्यय के परे रहते आदि अच् की वृद्धि की जा रही थी। अब समस्त पद के पूर्वपद और उत्तरपद में जो-जो आदि अच् हो, उन दोनों की वृद्धि के लिये सप्तमाध्यायस्थ सूत्र को अवतारित कर रहे हैं-

१२३९. देवताद्वन्द्वे च ७।३।२१॥

अत्र पूर्वोत्तरपदयोराद्यचो वृद्धिः स्याद् ञिति णिति किति च परे।

आग्निमारुतम्।

देवताद्वन्द्वे च। देवतानां द्वन्द्वो देवताद्वन्द्वस्तस्मिन् देवताद्वन्द्वे, षष्ठीतत्पुरुषः। देवताद्वन्द्वे सप्तम्यन्तं, चाव्ययम्। **हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च** से **पूर्वपदस्य** की, **अचो ञ्णिति** के दोनों पदों की, **किति च** से **किति** की, **मृजेर्वृद्धिः** से **वृद्धिः** की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** और **उत्तरपदस्य** का अधिकार है।

देवतावाची शब्दों में द्वन्द्वसमास होने पर ञित्, णित् और कित् तद्धित प्रत्यय के परे रहते पूर्वपद और उत्तरपद में जो आदि अच्, उसकी वृद्धि होती है।

उभयपद की वृद्धि के लिये यह सूत्र है। अतः **तद्धितेष्वचामादेः** और **किति च** को बाधकर प्रवृत्त होता है।

आग्निमारुतम्। अग्नि और मरुत् देवता हैं, जिस हवि के, वह। यहाँ **अग्निश्च मरुत् च** विग्रह में द्वन्द्वसमास होने के बाद आनङ्-विधायक **देवताद्वन्द्वे च** सूत्र के द्वारा **अग्नि**-शब्द के इकार के स्थान पर आनङ् आदेश प्राप्त होने पर **इद् वृद्धौ** सूत्र के द्वारा इकार के स्थान पर इकार ही आदेश होकर **अग्निमरुत्** और स्वादिकार्य होकर **अग्निमरुतौ** शब्द बना है। **अग्निमरुतौ देवते अस्य** अर्थ में **अग्निमरुत्+औ** इस स्थिति में **सास्य देवता** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर केवल आदिवृद्धि को बाधकर **देवताद्वन्द्वे च** सूत्र से उभयपद की आदिवृद्धि होती है। समास होने के कारण पूर्वपद और उत्तरपद की व्यवस्था है। पूर्वपद है- **अग्ना** और उत्तरपद है- **मरुत्।** उभयत्र आदि अच् अकार ही है। अतः दोनों की वृद्धि होकर **आग्नामारुत** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य से **आग्निमारुतम्** सिद्ध हो जाता है।

१२४०. नेन्द्रस्य परस्य ७।३।२२॥

परस्येन्द्रस्य वृद्धिर्न स्यात्। सौमेन्द्रः। परस्य किम्? ऐन्द्राग्नः।

नेन्द्रस्य परस्य। न अव्ययम्, इन्द्रस्य षष्ठ्यन्तं, परस्य षष्ठ्यन्तम्। **देवताद्वन्द्वे च** से **देवताद्वन्द्वे** की, **हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च** से **पूर्वपदस्य** की, **अचो ञ्णिति** के दोनों पदों की, **किति च** से **किति** की और **मृजेर्वृद्धिः** से **वृद्धिः** की अनुवृत्ति आती है। साथ ही **अङ्गस्य** और **उत्तरपदस्य** का अधिकार है।

देवतावाची शब्दों में द्वन्द्वसमास होने पर ञित्, णित् और कित् तद्धित प्रत्यय के परे रहते परपद में विद्यमान इन्द्र शब्द की आदिवृद्धि नहीं होती।

पूर्वसूत्र से प्राप्त उभयपदवृद्धि का यह निषेधक सूत्र है। अतः पूर्वपद की **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि हो जाती है।

सौमेन्द्रः। सोम और इन्द्र हैं देवता जिस हवि के। **सोमश्च इन्द्रश्च** विग्रह में समास होकर **सोमेन्द्रौ** बनता है। **सोमेन्द्रौ देवते अस्य** विग्रह में **सोमेन्द्र+औ** में **सास्य देवता** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि को बाधकर **देवताद्वन्द्वे च** सूत्र से उभयपद की वृद्धि प्राप्त थी किन्तु इन्द्र-शब्द के परवर्ती होने के कारण **नेन्द्रस्य परस्य**

सूत्र से उभयपदवृद्धि का निषेध किया जाता है, फलतः **तद्धितेष्वचामादेः** से पूर्वपद के आदि अच् ओकार की ही वृद्धि होकर **सौमेन्द्र** शब्द बनता है। स्वादिकार्य से **सौमेन्द्रः** सिद्ध हो जाता है। इस तरह उत्तरपद **इन्द्र** शब्द में आदिवृद्धि नहीं हुयी।

परस्य किम्? ऐन्द्राग्नः। प्रकृतसूत्र में **परस्य** शब्द के निवेश से पर में विद्यमान **इन्द्र** शब्द में ही वृद्धिनिषेध होता है किन्तु पूर्वपदस्थ होने पर निषेध नहीं होता। फलतः **इन्द्रश्च अग्निश्च** विग्रह में समासादि करके अण् प्रत्यय होने पर **इन्द्र** और **अग्नि** दोनों पदों के आदि अच् की वृद्धि होने पर सवर्णदीर्घ होकर **ऐन्द्राग्नः** सिद्ध हो जाता है। यहाँ पर **इ** और **अ** दोनों की वृद्धि हो गयी है।

१२४१. दीर्घाच्च वरुणस्य ७।३।२३॥

दीर्घात् परस्य वरुणस्य न वृद्धिः। ऐन्द्रावरुणम्।
दीर्घात् किम्? आग्निवारुणीम्। आग्निवारुणमनड्वाहीमालभेत।
'तदस्मिन् वर्तत इति नवयज्ञादिभ्य उपसंख्यानम्'(वा.२७०६)।
नावयज्ञिकः कालः। पाकयज्ञिकः।
'पूर्णमासादण्वक्तव्यः' (वा.२७०७)।
पूर्णो मासोऽस्यां वर्तत इति पौर्णमासी तिथिः।

दीर्घाच्च वरुणस्य। दीर्घात् पञ्चम्यन्तं, चाव्ययं, वरुणस्य षष्ठ्यन्तम्। **नेन्द्रस्य** परस्य से **न** की, **देवताद्वन्द्वे च** से **देवताद्वन्द्वे** की, **हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च** से **पूर्वपदस्य** की, **अचो ञ्णिति** के दोनों पदों की, **किति च** से **किति** की तथा **मृजेर्वृद्धिः** से **वृद्धिः** की अनुवृत्ति आती है। साथ ही **अङ्गस्य** और **उत्तरपदस्य** का अधिकार है।

देवतावाची शब्दों में द्वन्द्वसमास होने पर ञित्, णित् और कित् तद्धित प्रत्यय के परे रहते दीर्घान्त शब्द से परे वरुण-शब्द की आदिवृद्धि नहीं होती।

यह भी उभयपदवृद्धि का बाधक है।

ऐन्द्रावरुणम्। इन्द्र और वरुण हैं देवता जिस हवि के। **इन्द्रश्च वरुणश्च** विग्रह में समास होकर **देवताद्वन्द्वे च** सूत्र के द्वारा **इन्द्र** शब्द के अकार के स्थान पर आनङ् आदेश होने पर नकारलोप होकर **इन्द्रावरुणौ** बनता है। **इन्द्रावरुणौ देवते अस्य** विग्रह में **इन्द्रावरुण+औ** में **सास्य देवता** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि को बाधकर **देवताद्वन्द्वे च** सूत्र से उभयपद की वृद्धि प्राप्त थी किन्तु **दीर्घाच्च वरुणस्य** सूत्र से उभयपदवृद्धि का निषेध किया जाता है, फलतः **तद्धितेष्वचामादेः** से पूर्वपद के आदि अच् इकार की ही वृद्धि होकर **ऐन्द्रावरुण** शब्द बनता है। स्वादिकार्य से **ऐन्द्रावरुणम्** सिद्ध हो जाता है।

दीर्घात् किम्? आग्निवारुणम्। आग्निवारुणीमनड्वाहीमालभेत। प्रकृतसूत्र में **दीर्घात्** पद के निवेश से दीर्घ से परे वरुण-शब्द की आदिवृद्धि का निषेध किया जाता

है, यदि ह्रस्व से परे हो तो निषेध नहीं होगा। जैसे कि **अग्निश्च वरुणश्च** में समास होकर **अग्निवरुणौ** बनने के बाद **अग्निवरुणौ देवते अस्याः** अर्थ में **सास्य देवता** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर ह्रस्व इकार से परे वरुण-शब्द के होने के कारण उभयपदवृद्धि का निषेध नहीं हुआ, अर्थात् **देवताद्वन्द्वे च** से **अग्नि** के अकार और **वरुण** के आदि अच् अकार की वृद्धि होकर **आग्निवारुण** शब्द बना। उसके बाद स्वादिकार्य से **आग्निवारुणम्** बनता है। यहीं पर स्त्रीत्वविवक्षा में **टिड्ढाणञ्०** सूत्र से ङीप् प्रत्यय होकर **आग्निवारुणी** शब्द बनता है और प्रथमा में **आग्निवारुणी, आग्निवारुण्यौ, आग्निवारुण्यः, आग्निवारुणीम्** आदि रूप बनते हैं। नपुंसकलिङ्ग **आग्निवारुणम्** ही बनता है। **आग्निवारुणीम् अनड्वाहीम् आलभेत।** यह कहीं यज्ञ के प्रयोग का वाक्य है।

तदस्मिन् वर्तत इति नवयज्ञादिभ्य उपसंख्यानम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- 'इसमें विद्यमान है' इस अर्थ में नवयज्ञ आदि शब्दों से भी ठञ् प्रत्यय का विधान करना चाहिये। यह प्रकृतसूत्र का वार्तिक न होकर **महाराजप्रोष्ठपदाट्ठञ्** सूत्र में पठित है। अतः ठञ् का ही विधान हुआ है।

नावयज्ञिकः कालः। नवीन अन्न से यज्ञ करने का समय अर्थात् आग्रहायण काल। **नवयज्ञो यस्मिन् काले सः** अर्थ में **नवयज्ञ+सु** इस स्थिति में **तदस्मिन् वर्तत इति नवयज्ञादिभ्य उपसंख्यानम्** वार्तिक से ठञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, ठ के स्थान पर इक आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **नावयज्ञिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **नावयज्ञिकः** सिद्ध हो जाता है।

पाकयज्ञिकः। पाक-यज्ञ करने का समय। जिस समय अग्निहोत्र की अग्नि से पकाये हुये अन्न से यज्ञ किया जाय। **पाकयज्ञो यस्मिन् काले सः** अर्थ में **पाकयज्ञ+सु** इस स्थिति में **तदस्मिन् वर्तत इति नवयज्ञादिभ्य उपसंख्यानम्** वार्तिक से ठञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, ठ के स्थान पर इक आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **पाकयज्ञिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पाकयज्ञिकः** सिद्ध हो जाता है।

पूर्णमासादण् वक्तव्यः। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- पूर्णमास-शब्द से **तद् अस्मिन् वर्तते** अर्थ में अण् प्रत्यय कहना चाहिये।

पूर्णो मासोऽस्यां वर्तत इति पौर्णमासी तिथिः। मास जिस तिथि को पूर्ण हो। **पूर्णमासः अस्यां तिथौ वर्तते सा** अर्थ में **पूर्णमास+सु** से **पूर्णमासादण् वक्तव्यः** वार्तिक के द्वारा अण् प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **पौर्णमास** शब्द बनता है। उससे स्त्रीत्वविवक्षा में ङीप् होकर **पौर्णमासी तिथिः** सिद्ध हो जाता है।

प्राग्दीव्यतीय अर्थों में **सास्य देवता** अर्थ का प्रकरण पूरा हो जाता है। अब एक सूत्र और कुछ वार्तिकों से विशेष शब्दों का निपातन किया जा रहा है-

१२४२. पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः ४।२।३६॥

एते निपात्यन्ते।

'पितुर्भ्रातरि व्यत्'(वा.२७०८)। पितुर्भ्राता पितृव्यः।

'मातुर्डुलच्'(वा.१७०८)। मातुर्भ्राता मातुलः।

'मातृपितृभ्यां पितरि डामहच्'(वा.२७०९)। मातुः पिता मातामहः।

पितुः पिता पितामहः।

'मातरि षिच्च'(वा.२७१०)। मातामही। पितामही।

'अवेर्दुग्धे सोढदूसमरीसचो वक्तव्याः'(वा.२७१२)।

सकारपाठसामर्थ्यान्न सः। अविसोढम्। अविदूसम्। अविमरीसम्।

'तिलान्निष्फलात् पिञ्जपेजौ' (वा.२७१३)।

तिलपिञ्जः। तिलपेजः। वन्ध्यस्तिल इत्यर्थः।

'पिञ्जश्छन्दसि डिच्च'(वा.२७१४)। तिल्पिञ्जः।

पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः। पितृव्यश्च मातुलश्च मातामहश्च पितामहश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः। पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः प्रथमान्तम् एकपदमिदं सूत्रम्।

पिता के भ्राता अर्थात् चाचा अर्थ में पितृव्य, माता के भ्राता अर्थात् मामा अर्थ में मातुल, माता के पिता अर्थात् नाना अर्थ में मातामह और पिता के पिता अर्थात् दादा अर्थ में पितामह का निपातन किया जाता है।

बने बनाये शब्दों को प्रकृति और प्रत्यय दिखाये विना सूत्रों में पढ़ देना निपातन कहलाता है। सूत्रकार पाणिनि जी ने इन चार शब्दों की प्रक्रिया न दिखाकर सीधे सूत्र में ही इनको पढ़ दिया। अब हम स्वयं इनमें प्रैकृति, प्रत्यय, समर्थ विभक्ति और अनुबन्ध आदि की कल्पना कर सकते हैं। वार्तिककार ने निपातन के स्वरूप को वार्तिकों के द्वारा भी दिखाया है। जैसे-

पितुर्भ्रातरि व्यत्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- पितृ-शब्द से पिता के भाई (ताउ, चाचा) अर्थ में व्यत् प्रत्यय का निपातन होता है।

पितुर्भ्राता पितृव्यः। पिता के भाई अर्थात् चाचा, ताऊ। पितृ शब्द से **पिता के भ्राता** अर्थ में **पितुर्भ्रातरि व्यत्** वार्तिक की सहायता से **पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः** सूत्र से **व्यत्** प्रत्यय का निपातन करके **पितृव्य** बनता है और सु, रुत्व और विसर्ग करके **पितृव्यः** बन जाता है।

मातुर्डुलच्। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- मातृ-शब्द से माता के भाई (मामा) अर्थ में डुलच् प्रत्यय का निपातन होता है।

मातुर्भ्राता मातुलः। मातुलः। माता के भाई अर्थात् मामा। मातृ शब्द से **भ्राता** अर्थ में **मातुर्डुलच्** वार्तिक की सहायता से **पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः** सूत्र से **डुलच्** प्रत्यय का निपातन करके अनुबन्धलोप करने पर **उल** बचता है। टित् मानकर **टेः** इस सूत्र से टिसंज्ञक ऋकार का लोप करके **मात्+उल=मातुल** बनता है और सु, रुत्व और विसर्ग करके **मातुलः** बन जाता है।

मातृपितृभ्यां पितरि डामहच्। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- मातृ और पितृ शब्द से उनके पिता अर्थ में डामहच् प्रत्यय होता है। **डामहच्** में डकार और चकार इत्संज्ञक हैं, **आमह** बचता है।

मातुः पिता मातामहः। माता के पिता अर्थात् नाना। मातृ शब्द से उनके पिता अर्थ में **मातृपितृभ्यां पितरि डामहच्** वार्तिक की सहायता से **पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः** सूत्र से **डामहच्** प्रत्यय का निपातन करने पर अनुबन्धलोप करके **आमह** बचता है। डित् मान कर **टेः** इस सूत्र से टिसंज्ञक ऋकार का लोप करके **मात्+आमह=मातामह** बनता है और सु, रुत्व-विसर्ग करके **मातामहः** सिद्ध हो जाता है।

पितुः पिता पितामहः। पिता के पिता अर्थात् दादा। पितृ शब्द से उनके पिता अर्थ में **मातृपितृभ्यां पितरि डामहच्** वार्तिक की सहायता से **पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः** सूत्र से **डामहच्** प्रत्यय का निपातन करने पर अनुबन्धलोप करके **आमह** बचता है। डित् मानकर **टेः** इस सूत्र से टिसंज्ञक ऋकार का लोप करके **पित्+आमह=पितामह** बनता है और सु, रुत्व-विसर्ग करके **पितामहः** बन जाता है।

इन शब्दों से स्त्रीलिङ्ग में ङीष् करके **मातुली, मातुलानी, मातामही, पितामही** और टाप् करके **पितृव्या** आदि रूप बनते हैं। **मातामही** और **पितामही** की सिद्धि के लिये अगला वार्तिक आता है।

मातरि षिच्च। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- मातृ-शब्द से विहित डामहच् प्रत्यय को षिद्वद्भाव भी होता है। षित्करण का फल है- **षिद्गौरादिभ्यश्च** सूत्र से स्त्रीत्वविवक्षा में ङीष् प्रत्यय का विधान करना।

मातामही। नानी। उपर्युक्त रीति से **मातामह** बनाने के बाद **मातरि षिच्च** से प्रत्यय को षिद्वद्भाव हो जाने से षित्त्वात् ङीष् होकर **मातामही** सिद्ध हो जाता है।

पितामही। दादी। उपर्युक्त रीति से ही **पितामह** बनाने के बाद **मातरि षिच्च** से प्रत्यय को षिद्वद्भाव हो जाने से षित्त्वात् ङीष् होकर **पितामही** सिद्ध हो जाता है।

अवेर्दुग्धे सोढदूसमरीसचो वक्तव्याः। यह भी वार्तिक है। 'भेंड़ का दूध' अर्थ में अवि-शब्द से सोढ, दूस तथा मरीसच् प्रत्यय कहना चाहिये। **अवि**-शब्द भेंड़ का वाचक है।

सकारपाठसामर्थ्यान्न सः। अवि+सोढ में सकार को **आदेशप्रत्यययोः** सूत्र से षत्व इस लिये नहीं होता कि यदि षत्व करना होता तो **षोढ** प्रत्यय ही करते। वार्तिककार ने सकारयुक्त पाठ किया है। अतः षत्व नहीं होता।

अविसोढम्। भेंड़ का दूध। **अवेर्दुग्धम्** अर्थ में **अवि+ङस्** से **अवेर्दुग्धे सोढदूसमरीसचो वक्तव्याः** वार्तिक से **सोढ** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **अविसोढ** बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **अविसोढम्** सिद्ध हो जाता है।

अविदूसम्। भेंड़ का दूध। **अवेर्दुग्धम्** अर्थ में **अवि+ङस्** से **अवेर्दुग्धे सोढदूसमरीसचो वक्तव्याः** वार्तिक से **दूस** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **अविदूस** बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **अविदूसम्** सिद्ध हो जाता है।

अविमरीसम्। भेंड़ का दूध। **अवेर्दुग्धम्** अर्थ में **अवि+ङस्** से **अवेर्दुग्धे सोढदूसमरीसचो वक्तव्याः** वार्तिक से **मरीसच्** प्रत्यय होने पर चकार की इत्संज्ञा, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **अविमरीस** बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **अविमरीसम्** सिद्ध हो जाता है।

तिलान्निष्फलात् पिञ्जपेजौ। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- निष्फलात्=बिना तेल अर्थ वाले तिल-शब्द से स्वार्थ में पिञ्ज और पेज प्रत्यय होते हैं।

तिलपिञ्जः। तिलपेजः। वन्ध्यस्तिल इत्यर्थः। बिना तेल वाला तिल। **निष्फलः तिलः एव** अर्थ में **तिल+सु** से **तिलान्निष्फलात् पिञ्जपेजौ** वार्तिक से **पिञ्ज** प्रत्यय होने पर **तिलपिञ्ज** और **पेज** प्रत्यय होने पर **तिलपेज** शब्द बनते हैं। उभयत्र स्वादिकार्य होने पर **तिलपिञ्जः** और **तिलपेजः** ये रूप सिद्ध हो जाते हैं।

पिञ्जश्छन्दसि डिच्च। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- तिल-शब्द से विहित पिञ्ज प्रत्यय को वेद के विषय में विकल्प से डिद्वद्भाव होता है। डिद्वद्भाव होने से **टेः** सूत्र से टिसंज्ञक भाग अकार का लोप हो जायेगा।

तिल्पिञ्जः। उपर्युक्त रीति से **तिल+पिञ्ज** बनने के बाद वैदिक प्रयोग के लिये **पिञ्जश्छन्दसि डिच्च** सूत्र के द्वारा पिञ्ज-प्रत्यय को डिद्वद्भाव होने पर लकारोत्तरवर्ती टिसंज्ञक अकार का लोप होकर **तिल्पिञ्ज** और स्वादिकार्य से **तिल्पिञ्जः** सिद्ध हो जाता है।

अब प्राग्दीव्यतीयों के अर्थक्रम में दसवें अर्थ **तस्य समूहः** (समूह) में प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है।

१२४३. तस्य समूहः ४।२।३७॥

काकानां समूहः काकम्। बाकम्।

तस्य समूहः। तस्य षष्ठ्यन्तानुकरणं लुप्तपञ्चम्यन्तं, समूहः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार चलता आ रहा है।

षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से 'उसका समूह' अर्थ में तद्धितसंज्ञक अण् प्रत्यय होता है।

यहाँ पर **तस्य** पद से षष्ठी समर्थविभक्ति की सूचना है और अर्थ है- **समूहः**। समूहार्थक प्रत्ययों का विधान **इनित्रकट्यचश्च** (४.२.५०) सूत्र तक समाविष्ट है।

काकः। कौओं का समूह। **काकानां समूहः**। **काक+आम्** से **तस्य समूहः** के द्वारा अण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, णित् होने के कारण आकार के स्थान पर आकार-रूप आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **काक** ही बनता है। समूह अर्थ को बताने के कारण एकवचन सु, अम् आदेश, पूर्वरूप होकर **काकम्** बनता है।

बाकम्। बगुलों का समूह। **बकानां समूहः** अर्थ में **बक+आम्** से **तस्य समूहः** के द्वारा अण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, णित् होने के कारण आकार के स्थान पर आकार-रूप आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **बाक** ही बनता है। समूह अर्थ को बताने के कारण एकवचन सु, अम् आदेश, पूर्वरूप होकर **बाकम्** बनता है।

इसी तरह **वृकाणां समूहो वार्कम्** आदि बनाये जा सकते हैं।

प्रकृतसूत्र से केवल अण्-प्रत्यय मात्र न होकर अण् आदि प्रत्यय किये जाते हैं। प्राग्दीव्यतीय अर्थों में पहले जिन-जिन प्रकृतियों से जो-जो प्रत्यय बताये गये थे, वे प्रत्यय समूह अर्थ में भी किये जाते हैं। अतः **अश्वपतीनां समूहः आश्वपतम्, स्त्रीणां समूहः स्त्रैणम्, पुंसां समूहः पौंस्नम्** इत्यादि भी बनाये जाते हैं।

१२४४. भिक्षादिभ्योऽण् ४।२।३८॥

भिक्षाणां समूहो भैक्षम्। गर्भिणीनां समूहो गार्भिणम्।
इह 'भस्याढे-' इति पुंवद्भावे कृते-

भिक्षादिभ्योऽण्। भिक्षा आदिर्येषां ते भिक्षादयस्तेभ्यः। भिक्षादिभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अण् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तस्य समूहः** का अनुवर्तन है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

षष्ठ्यन्त समर्थ भिक्षादि गणपठित प्रातिपदिकों से 'उसका समूह' अर्थ में तद्धितसंज्ञक अण् प्रत्यय होता है।

आगे कहे जाने वाले **अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्** से विहित **ठक्** आदि प्रत्ययों को बाधने के लिए इस सूत्र का अवतरण है।

भिक्षादिगणः- भिक्षा, गर्भिणी, क्षेत्र, करीष, अङ्गार, चर्मिन् धर्मिन्, सहस्र, युवति, पदाति, पद्धति, अथर्वन्, दक्षिणा, भरत, विषय, श्रोत्र।

भैक्षम्। भिक्षाओं का समूह। **भिक्षाणां समूहः**। **भिक्षा आम्** से **अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्** से **ठक्** प्रत्यय प्राप्त था, उसे बाधकर **भिक्षादिभ्योऽण्** से **अण्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **भिक्षा+अ** बना है। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि और **यस्येति च** से आकार का लोप, वर्णसम्मेलन करके **भैक्ष** बना। स्वादिकार्य करके **भैक्षम्** सिद्ध हुआ।

गार्भिणम्। गर्भवती स्त्रियों का समूह। **गर्भिणीनां समूहः**। **गर्भिणी आम्** से **अनुदात्तादेरञ्** से **अञ्** प्रत्यय प्राप्त था, भिक्षादिगण में **गर्भिणी** शब्द का पाठ होने से उसे बाधकर **भिक्षादिभ्योऽण्** से **अण्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **गर्भिणी+अ** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करके **गार्भिणी+अ** बना। यहाँ पर **यस्येति च** से ईकार का लोप प्राप्त था किन्तु **भस्याढे तद्धिते** (**ढ**-भिन्न तद्धित के परे रहते भसंज्ञक अङ्ग को पुंवद्भाव होता है)से **पुंवद्भाव** हो जाने से स्त्रीत्वबोधक **ङीष्** की निवृत्ति होकर **गार्भिण्** बना। अब **नस्तद्धिते** से टि का लोप प्राप्त था किन्तु **इनण्यनपत्ये** (अपत्यार्थ से भिन्न अर्थ के अण् प्रत्यय के परे रहते **इन्** को प्रकृतिभाव हो) से **प्रकृतिभाव** हुआ अर्थात् टि का लोप नहीं हुआ। अब वर्णसम्मेलन होने पर **गार्भिण** बना। स्वादिकार्य करके **गार्भिणम्** सिद्ध हुआ।

इह 'भस्याढे-' इति पुंवद्भावे कृते। अर्थात् **गार्भिन्+अ** इस स्थिति में **भस्याढे तद्धिते** वार्तिक से पुंवद्भाव होने पर **नस्तद्धिते** सूत्र से टिलोप प्राप्त होता है, उसका अगले सूत्र से प्रकृतिभाव हो जाता है, जैसा कि ऊपर प्रक्रिया में दिखाया जा चुका है।

१२४५. इनण्यनपत्ये ६।४।१६४॥

अनपत्यार्थेऽणि परे इन् प्रकृत्या स्यात्।
तेन 'नस्तद्धिते' (सू.६७९) इति टिलोपो न।
युवतीनां समूहो यौवनम्। शत्रन्तादनुदात्तादेरञि यौवतम्।

इनण्यनपत्ये। न अपत्यम् अनपत्यं, तस्मिन्। इन् प्रथमान्तम्, अणि सप्तम्यन्तम्, अनपत्ये सप्तम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **प्रकृत्यैकाच्** से **प्रकृत्या** की अनुवृत्ति आती है।

अपत्यार्थ से भिन्न अर्थ में विहित अण् प्रत्यय के परे रहते इन् को प्रकृतिभाव होता है।

तेन 'नस्तद्धिते' इति टिलोपो न। इस सूत्र से प्रकृतिभाव होने के कारण **गार्भिण्+अ** में टिलोप नहीं होता। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है। अगले प्रयोग में तो **अन्** सूत्र से प्रकृतिभाव होता है।

यौवनम्। युवतियों का समूह। **युवतीनां समूहः।** युवति आम् से **अनुदात्तादेरञ्** से **अञ्** प्रत्यय प्राप्त था, उसे बाधकर **भिक्षादिभ्योऽण्** से **अण्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **युवति+अ** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करके **यौवति+अ** बना। यहाँ पर **यस्येति च** से इकार का लोप प्राप्त था किन्तु **भस्याढे तद्धिते** से **पुंवद्भाव** हो जाने से स्त्रीत्वबोधक **ङीष्** की निवृत्ति होकर युवन् बना। आदिवृद्धि होकर अब **नस्तद्धिते** से टि का लोप प्राप्त था किन्तु **अन्** सूत्र से **प्रकृतिभाव** हुआ अर्थात् टि का लोप नहीं हुआ। अब वर्णसम्मेलन होने पर **यौवन** बना। स्वादिकार्य करके **यौवनम्** सिद्ध हुआ।

यद्यपि **अञ्** प्रत्यय करने पर **अन्** सूत्र की प्रवृत्ति न होने से प्रकृतिभाव प्राप्त नहीं होता, तब टिलोप होने से अनिष्ट रूप की सम्भावना रहती है फिर भी भाष्यकार ने भिक्षादिगण में **युवति** शब्द का प्रत्याख्यान किया है। भाष्यकार कहते हैं कि **यु**-धातु से उणादि **कनिन्** (**अन्**) प्रत्यय करने पर **युवन्** बनता है, उससे स्त्रीलिङ्ग में **यूनस्तिः** सूत्र से **ति** प्रत्यय संयुक्त हो जाने पर निष्पन्न **युवति** शब्द में तद्धितप्रत्यय मात्र की विवक्षा में **भस्याढे तद्धिते** वार्तिक की प्रवृत्ति होने के फलस्वरूप पुंवद्भाव हो जायेगा। इस प्रकार कनिन्-प्रत्ययान्त **युवन्** शब्द के नित्-प्रत्ययान्त होने के कारण **अनुदात्तादेरञ्** सूत्र की प्रवृत्ति न होने से अञ् प्रत्यय की सम्भावना ही नहीं होगी। इसके फलस्वरूप **तस्य समूहः** इस नैसर्गिक सूत्र से ही अण् प्रत्यय होने पर उपर्युक्त प्रकार से **यौवनम्** रूप की सिद्धि हो जाती है। अतः भिक्षादिगण में **युवति** शब्द के पाठ की कोई आवश्यकता नहीं है।

शत्रन्तादनुदात्तादेरञि यौवतम्। अर्थात् **यु** धातु से **शतृ** (**अत्**) प्रत्यय होने की स्थिति में उकार को उवङ् आदेश होकर **युवत्** शब्द बन जाता है। यह प्रत्ययस्वर के कारण मध्योदात्त होने से अनुदात्तादि है। उससे स्त्रीत्वविवक्षा में **उगितश्च** सूत्र के द्वारा ङीप् प्रत्यय होकर **युवती** शब्द बन जाता है। उस शब्द से **अनुदात्तादेरञ्** सूत्र से अञ्-प्रत्यय करने पर पुंवद्भाव होकर ङीप् की निवृत्ति होने पर **युवत्+अ** बनता है। आदिवृद्धि करके **यौवत** और स्वादिकार्य से **यौवतम्** यह रूप सिद्ध हो जाता है।

१२४६. गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजराजन्यराजपुत्रवत्समनुष्याजाद् वुञ् ४।२।३९॥

एभ्यः समूहे वुञ् स्यात्। लौकिकमिह गोत्रम्, तच्चापत्यमात्रम्।

गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजराजन्यराजपुत्र०। गोत्रं च उक्षन् च उष्ट्रश्च उरभ्रश्च राजन् च राजन्यश्च राजपुत्रश्च वत्सश्च मनुष्यश्च, अजश्च तेषां समाहारद्वन्द्वो गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराज-राजन्यराजपुत्रवत्समनुष्याजम्, तस्माद् गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजराजन्यराजपुत्रवत्समनुष्याजाद् पञ्चम्यन्तं, वुञ् प्रथमान्तम्। **तस्य समूहः** की अनुवृत्ति है और **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार है।

षष्ठी-समर्थ गोत्रवाची प्रातिपदिक और उक्षन्, उष्ट्र, उरभ्र, राजन्, राजन्य, राजपुत्र, वत्स, मनुष्य एवं अज इन प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में वुञ् प्रत्यय होता है।

वुञ् में ञकार इत्संज्ञक है और शिष्ट **वु** शब्द के स्थान पर वक्ष्यमाण **युवोरनाकौ** सूत्र से **अक** आदेश होता है। ञित्करण आदिवृद्धि के लिये है।

लौकिकमिह गोत्रम्, तच्चापत्यमात्रम्। प्रकृतसूत्र में **गोत्र**-शब्द से शास्त्रीय गोत्र (पारिभाषिक गोत्रसंज्ञा वाला) अर्थात् पौत्रप्रभृति सन्तति का ग्रहण नहीं है अपितु प्रवर, अध्याय में परिगणित लौकिक कौण्डिन्य, वत्स, अत्रि आदि लौकिक गोत्र (केवल पुत्र एवं पुत्री) लिया गया है। **लौकिकं गोत्रं, तच्च अपत्यमात्रम्।** इसके नियामक भाष्यकार ही हैं। उन्होंने अपत्याधिकार से बहिर्भूत लौकिक गोत्र के रूप में ही प्रकृतसूत्र के गोत्र-शब्द को सीमित कर दिया है।

१२४७. युवोरनाकौ ७।१।१॥

यु वु एतयोरनुनासिकयोः क्रमाद् अन अक एतावादेशौ स्तः।
ग्लुचुकायनीनां समूहो ग्लौचुकायनकम्। औक्षकमित्यादि।
'आपत्यस्य च-' (सू.१०८२) इति यलोपे प्राप्ते-
'प्रकृत्याऽके राजन्यमनुष्ययुवानः' (वा.४२१४)। राजन्यकम्। मानुष्यकम्।
'वृद्धाच्चेति वक्तव्यम्' (वा.२७१६)। वार्द्धकम्।

युवोरनाकौ। युश्च वुश्च तयोः समाहारद्वन्द्वो युवुः, सौत्रं पुंस्त्वम्, तस्य युवोः। अनश्च अकश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः- अनाकौ। **अनुनासिकयोरिष्यते** वार्तिक से **अनुनासिकयोः** का अर्थलाभ होता है। उद्देश्य (स्थानी) यु और वु ये दो हैं और आदेश भी अन, अक ये दो हैं, अतः **यथासङ्ख्यमनुदेशः समानाम्** सूत्र से **यथासङ्ख्यम्** की उपस्थिति होने से **क्रमात्** अर्थ का लाभ होता है।

अनुनासिक **'यु'** और **'वु'** के स्थान पर क्रमशः **'अन'** और **'अक'** आदेश होते हैं।

अनुनासिकयोः पद के कारण **उर्णायुः** आदि शब्दों के **यु** के स्थान पर **अन** आदेश नहीं होता। यथासङ्ख्य से कार्य होने के कारण **यु** के स्थान पर **अन** आदेश और **वु** के स्थान पर **अक** आदेश सिद्ध हो जाता है।

ग्लुचुकायनीनां समूहो ग्लौचुकायनकम्। ग्लुचुकायनियों का समूह। **ग्लुचुकस्य अपत्यानि स्त्रियः** अर्थ में **ग्लुचुक+ङस्** इस स्थिति में अपत्य अर्थ में **प्राचां फिन् बहुलम्** सूत्र के द्वारा फिन् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, फकार के स्थान पर आयन् आदेश आदि होकर **ग्लुचुकायनि** शब्द बना है। स्त्रीत्वविवक्षा में **इतो मनुष्यजातेः** सूत्र से ङीष् प्रत्यय, सवर्णदीर्घ होकर **ग्लुचुकायनी** शब्द बनता है। **ग्लुचुकायनीनां समूहः** अर्थ में **ग्लुचुकायनी+आम्** इस स्थिति में गोत्रवाची उक्त शब्द से **गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्राजराज़न्यराजपुत्रवत्समनुष्याजाद् वुञ्** सूत्र से वुञ् प्रत्यय होने पर

अनुबन्धलोप, **वु** के स्थान पर **युवोरनाकौ** सूत्र से **अक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक ईकार का लोप होकर **ग्लौचुकायनक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **ग्लौचुकायनकम्** सिद्ध हो जाता है।

औक्षकम्। बैलों का समूह। **उक्ष्णां समूहः** अर्थ में **उक्षन्+आम्** इस स्थिति में **गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजराजन्यराजपुत्रवत्समनुष्याजाद् वुञ्** सूत्र से वुञ् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, **वु** के स्थान पर **युवोरनाकौ** सूत्र से **अक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, **नस्तद्धिते** सूत्र के द्वारा टिसंज्ञक भाग **अन्** का लोप होकर **औक्षक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **औक्षकम्** सिद्ध हो जाता है।

इत्यादि। इस शब्द से सूत्रोक्त शेष शब्दों के प्रयोग बनाने की सूचना है।

औरभ्रकम्। भेंड़ों का समूह। **उरभ्राणां समूहः** अर्थ में **उरभ्र+आम्** इस स्थिति में **गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजराजन्यराजपुत्रवत्समनुष्याजाद् वुञ्** सूत्र से वुञ् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, **वु** के स्थान पर **युवोरनाकौ** सूत्र से **अक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **औरभ्र** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **औरभ्रकम्** सिद्ध हो जाता है।

राजकम्। राजाओं का समूह। **राज्ञां समूहः** अर्थ में **राजन्+आम्** इस स्थिति में **गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजराजन्यराजपुत्रवत्समनुष्याजाद् वुञ्** सूत्र से वुञ् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, **वु** के स्थान पर **युवोरनाकौ** सूत्र से **अक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, पर्जन्यवल्लक्षणप्रवृत्तिन्यायेन आदिवृद्धि, **नस्तद्धिते** सूत्र के द्वारा टिसंज्ञक भाग **अन्** का लोप होकर **राजक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **राजकम्** सिद्ध हो जाता है।

'आपत्यस्य च-' इति यलोपे प्राप्ते। आगे **राजन्य** आदि शब्दों में **आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति** सूत्र के द्वारा यकारलोप प्राप्त होने पर उसके निवारण के लिये अगला वार्तिक पठित है-

प्रकृत्याऽके राजन्यमनुष्ययुवानः। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- राजन्य, मनुष्य और युवन् शब्द अक-प्रत्यय के परे रहते प्रकृतिभाव को प्राप्त होते हैं। यहाँ पर प्रकृतिभाव का तात्पर्य यकारलोप और टिलोप न होने से है।

राजन्यकम्। राजकुमारों का समूह। **राजन्यानां समूहः** अर्थ में **राजन्य+आम्** इस स्थिति में **गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजराजन्यराजपुत्रवत्समनुष्याजाद् वुञ्** सूत्र से वुञ् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, **वु** के स्थान पर **युवोरनाकौ** सूत्र से **अक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होने पर यकार का **आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति** सूत्र से लोप प्राप्त था, उसका **प्रकृत्याऽके राजन्यमनुष्ययुवानः** वार्तिक से

प्रकृतिभाव हो जाने से **राजन्यक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **राजन्यकम्** सिद्ध हो जाता है।

मानुष्यकम्। मनुष्यों का समूह। **मनुष्याणां समूहः** अर्थ में **मनुष्य+आम्** इस स्थिति में **गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजराजन्यराजपुत्रवत्समनुष्याजाद् वुञ्** सूत्र से वुञ् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, **वु** के स्थान पर **युवोरनाकौ** सूत्र से **अक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होने पर यकार का **आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति** सूत्र से लोप प्राप्त था, उसका **प्रकृत्याऽके राजन्यमनुष्ययुवानः** वार्तिक से प्रकृतिभाव हो जाने से **मानुष्यक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **मानुष्यकम्** सिद्ध हो जाता है।

शङ्का और समाधानः- प्रकृतिभाव-विधायक प्रकृत वार्तिक में **राजन्य** और **मनुष्य** शब्दों का ग्रहण किस लिये? क्योंकि **राजन्य** एवं **मनुष्य** शब्द क्रमशः क्षत्रिय और मानव-जाति अर्थ में रूढ़ हैं। यहाँ अपत्यार्थक प्रत्यय न होने से **आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति** सूत्र से यकारलोप की प्राप्ति ही नहीं है तो उसके निवारणार्थ प्रकृतिभाव करने की आवश्यकता क्यों पड़ी? अत एव **गोत्रोक्षोष्ट्र०** सूत्र में इन दोनों शब्दों का पृथक् निर्देश सार्थक है, अन्यथा गोत्रप्रत्ययान्त से ही वुञ् विधान सम्भव ही था। इस प्रश्न का समाधान कौमुदी में तो नहीं है किन्तु काशिका के न्यास टीका में यह समाधान है कि कुछ आचार्य अपत्यप्रत्ययान्त **राजन्य, मनुष्य** शब्द स्वीकार करते हैं। उनके मत में यलोप के निवारणार्थ प्रकृतिभाव सार्थक है। इसके बाद भी उनके मत में सूत्रस्थ **राजन्य** और **मनुष्य** शब्द की कोई उपयोगिता न रहने की शंका पुनः उपस्थित हो जाती है। उन दोनों के ग्रहण करने से यह ज्ञापित होता है कि **राजन्य** और **मनुष्य** शब्द-सम्बन्धी यकार को कोई अपत्याश्रित कार्य नहीं होता। इसके फलस्वरूप इन दोनों शब्दों के यकार का लोप नहीं होगा। इस प्रकार **राजन्य** और **मनुष्य** शब्द के सम्बन्ध में ज्ञापित यलोपाभाव का ही प्रकृत वार्तिक से अनुवाद किया गया है। अतः उक्त वार्तिक अनुवादार्थ है।

वार्तिकस्थ युवन्-शब्द का उदाहरण- **यौवनकम्।** युवापन का भाव। **यूनः भावः** अर्थ में **युवन्+ङस्** इस स्थिति में **मनोज्ञादि** होने के कारण वुञ् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, **वु** के स्थान पर **युवोरनाकौ** सूत्र से **अक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, **नस्तद्धिते** सूत्र से टिलोप प्राप्त होने पर उसका **प्रकृत्याऽके राजन्यमनुष्ययुवानः** वार्तिक से प्रकृतिभाव हो जाने से **यौवनक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **यौवनकम्** सिद्ध हो जाता है।

वृद्धाच्चेति वक्तव्यम्। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- वृद्ध-शब्द से भी समूह-अर्थ में वुञ् प्रत्यय का विधान होना चाहिये।

वार्द्धकम्। वृद्धों का समूह। **वृद्धाणां समूहः** अर्थ में **वृद्ध+आम्** इस स्थिति में **वृद्धाच्चेति वक्तव्यम्** वार्तिक से वुञ् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, **वु** के स्थान पर

युवोरनाकौ सूत्र से **अक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होने पर **वार्द्धक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वार्द्धकम्** सिद्ध हो जाता है।

१२४८. केदाराद्यञ्च ४।२।४०॥

चाद् वुञ्। कैदार्यम्, कैदारकम्।

'गणिकाया यञिति वक्तव्यम्' (वा.२७१९)। गाणिक्यम्।

केदाराद्यञ्च। केदारात् पञ्चम्यन्तं, वुञ् प्रथमान्तम्। च-शब्द से पूर्वसूत्र के **वुञ्** का समुच्चय किया जाता है। **तस्य समूहः, तद्धिता, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि की अनुवृत्ति और अधिकार है।

षष्ठी-समर्थ केदार-शब्द से तस्य समूहः अर्थ में यञ् और वुञ् प्रत्यय होते हैं।

कैदार्यम्, कैदारकम्। खेतों का समूह। **केदाराणां समूहः** अर्थ में **केदार+आम्** इस स्थिति में **केदाराद्यञ्च** सूत्र से **यञ्** प्रत्यय होने के पक्ष में अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **कैदार्य** शब्द बना है। **वुञ्** प्रत्यय होने के पक्ष में अनुबन्धलोप के बाद **सु** के स्थान पर **युवोरनाकौ** सूत्र से **अक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होने पर **कैदारक** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कैदार्यम्, कैदारकम्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

गणिकाया यञिति वक्तव्यम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- षष्ठी-समर्थ गणिका शब्द से समूहार्थ में यञ् प्रत्यय का विधान करना चाहिये।

गाणिक्यम्। गणिकाओं (वेश्याओं) का समूह। **गणिकानां समूहः** अर्थ में **गणिका+आम्** इस स्थिति में **गणिकाया यञिति वक्तव्यम्** वार्तिक से यञ्-प्रत्यय होने के पक्ष में अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, आकारलोप होकर **गाणिक्य** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **गाणिक्यम्** सिद्ध हो जाता है।

१२४९. ठञ् कवचिनश्च ४।२।४१॥

चात् केदारादपि। कवचिनां समूहः कावचिकम्। कैदारिकम्।

ठञ् कवचिनश्च। ठञ् प्रथमान्तं, कवचिनः पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। प्रकृतसूत्र के च-शब्द से **केदाराद्यञ्च** में पठित **केदार** शब्द का भी समुच्चय है। **तस्य समूहः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि की अनुवृत्ति और अधिकार है।

षष्ठी-समर्थ कवचिन् और केदार शब्दों से समूह अर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है।

चात् केदारादपि। प्रकृतसूत्र में च-शब्द के द्वारा केदार-शब्द से भी ठञ् प्रत्यय का विधान समझना चाहिये।

कवचिनां समूहः कावचिकम्। कवचधारियों का समूहः। **कवचम् एषाम् अस्तीति कवचिनः।** कवच-शब्द से **अत इनिठनौ** सूत्र के द्वारा मत्वर्थीय **इनि** प्रत्यय होकर **कवचिन्** शब्द बनता है और **कवची, कवचिनौ, कवचिनः** इत्यादि रूप बनते हैं। **कवचिनां समूहः** अर्थ में **कवचिन्+आम्** इस स्थिति में **ठञ् कवचिनश्च** सूत्र के द्वारा ठञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **ठस्येकः** से **इक** आदेश, आदिवृद्धि, टिसंज्ञक भाग **इन्** का **नस्तद्धिते** सूत्र से लोप होकर **कावचिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कावचिकम्** सिद्ध हो जाता है। **कवचिन्** शब्द के मत्वर्थीय इनि-प्रत्ययान्त होने के कारण प्रत्यय-स्वर के द्वारा अन्तोदात्त होने से अनुदात्तादि बन जाता है। इसके फलस्वरूप **अनुदात्तादेरञ्** सूत्र से अञ् प्रत्यय प्राप्त था, उसके निवारणार्थ प्रकृतसूत्र की सार्थकता सिद्ध होती है।

कैदारिकम्। खेतों का समूहः। **केदाराणां समूहः** अर्थ में **केदार+आम्** इस स्थिति में **ठञ् कवचिनश्च** सूत्र के द्वारा ठञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **ठस्येकः** से **इक** आदेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **कैदारिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कैदारिकम्** सिद्ध हो जाता है।

१२५०. ब्राह्मणमाणववाडवाद्यन् ४।२।४२॥

ब्राह्मण्यम्। माणव्यम्। वाडव्यम्।

'पृष्ठादुपसंख्यानम्'(वा.२७२०)। पृष्ठ्यः षडहः।

ब्राह्मणमाणववाडवाद्यन्। ब्राह्मणश्च माणवश्च वाडवश्च तेषां समाहारद्वन्द्वो ब्राह्मणमाणववाडवम्, तस्माद् ब्राह्मणमाणववाडवात् पञ्चम्यन्तं, यन् प्रथमान्तम्। **तस्य समूहः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि की अनुवृत्ति और अधिकार है।

षष्ठी-समर्थ ब्राह्मण, माणव और वाडव शब्दों से समूह अर्थ में यन् प्रत्यय होता है।

यन् में नकार इत्संज्ञक है, **य** बचता है। नित्करण के सम्बन्ध में आगे बताया जा रहा है।

ब्राह्मण्यम्। ब्राह्मणों का समूह। **ब्राह्मणानां समूहः** अर्थ में **ब्राह्मण+आम्** इस स्थिति में **ब्राह्मणमाणववाडवाद्यन्** सूत्र के द्वारा यन् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा,

सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **ब्राह्मण्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **ब्राह्मण्यम्** सिद्ध हो जाता है।

माणव्यम्। माणव=ब्रह्मचारियों का समूह। **माणवानां समूहः** अर्थ में **माणव+आम्** इस स्थिति में **ब्राह्मणमाणववाडवाद्यन्** सूत्र के द्वारा यन् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **माणव्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **माणव्यम्** सिद्ध हो जाता है।

वाडव्यम्। बछड़ों का समूह। **वाडवानां समूहः** अर्थ में **वाडव+आम्** इस स्थिति में **ब्राह्मणमाणववाडवाद्यन्** सूत्र के द्वारा यन् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **वाडव्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वाडव्यम्** सिद्ध हो जाता है।

यद्यपि पूर्वसूत्र से **यञ्** की अनुवृत्ति से **यञ्** प्रत्यय करने पर भी उक्त रूप सिद्ध हो जाते और ञित् होने के कारण आदिवृद्धि होने पर भी कोई अन्तर नहीं आता, क्योंकि उक्त तीनों शब्दों का आदिवर्ण पूर्वतः आकार ही है। ञित्, और नित् का स्वर भी **ञ्नित्यादिर्नित्यम्** से समान आद्युदात्त ही है फिर भी इस तरह यन्-प्रत्यय के पृथक् विधान से यह ज्ञापित होता है कि सूत्रोक्त शब्दों के अतिरिक्त अन्य शब्दों से भी यह प्रत्यय हुआ करता है।

पृष्ठादुपसंख्यानम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- षष्ठी-समर्थ पृष्ठ-शब्द से समूह अर्थ में यन् प्रत्यय का कथन करना चाहिये। सामवेद में पृष्ठ-नामक छह स्तोत्र हैं- रथन्तर, बृहद्, वैरूप, वैराज, शाक्वर, रैवत। उनसे सम्बद्ध दिनों को भी लक्षणा द्वारा पृष्ठ ही कहा जाता है। अतः छह दिनों सें सम्पन्न होने वाले इन स्तोत्र-विशेषों का समूह पृष्ठ्य कहलाता है।

पृष्ठ्यः षडहः। पृष्ठसंज्ञक स्तोत्रों का समूह, जो छह दिनों का होता है। **पृष्ठानां समूहः** अर्थ में **पृष्ठ+आम्** इस स्थिति में **पृष्ठादुपसंख्यानम्** वार्तिक के द्वारा यन् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पृष्ठ्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य से **पृष्ठ्यः** सिद्ध हो जाता है।

१२५१. ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल् ४।२।४३॥

ग्रामता। जनता। बन्धुता।

'गजसहायाभ्यां चेति वक्तव्यम्' (वा.२७२१)। **गजता। सहायता।**

'अह्नः खः क्रतौ' (वा.२७२२-२७२३)। **अहीनः। अहर्गणसाध्यसुत्याकः क्रतुरित्यर्थः। क्रतौ किम्? आह्नः। इह खण्डिकादित्वादञ्।**

'अह्नष्टखोरेव' (सू.७८९) **इति नियमाट्टिलोपो न।**

'पर्श्वा णस् वक्तव्यः' (वा.२७२४)।

ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल्। ग्रामश्च जनश्च बन्धुश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो ग्रामजनबन्धवस्तेभ्यः। ग्रामजनबन्धुभ्यः पञ्चम्यन्तं, तल् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तस्य समूहः** का अनुवर्तन है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

ग्राम, जन और बन्धु इन षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में तद्धितसंज्ञक तल् प्रत्यय होता है।

लकार इत्संज्ञक है, **त** बचता है। लिङ्गानुशासन के **तलन्तं स्त्रियाम्** सूत्र के अनुसार तल् प्रत्ययान्त शब्द का प्रयोग स्त्रीलिङ्ग में ही होता है। अतः तल्-प्रत्यय होने के बाद स्त्रीबोधक टाप् प्रत्यय अवश्य होता है।

ग्रामता। गावों का समूह। **ग्रामाणां समूहः** अर्थ में **ग्राम+आम्** से **ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल्** से **तल्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **ग्रामत** बना है। **तलन्त** होने के कारण स्त्रीलिङ्ग में **अजाद्यतष्टाप्** से **टाप्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, सवर्णदीर्घ करके **ग्रामता** बन जाता है। इससे सु एवं उसका हल्ङ्यादिलोप होकर **ग्रामता** सिद्ध हो जाता है।

जनता। जनों का समूह। **जनानां समूहः** अर्थ में **जन+आम्** से **ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल्** से **तल्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **जनत** बना है। **तलन्त** होने के कारण स्त्रीलिङ्ग में **अजाद्यतष्टाप्** से **टाप्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, सवर्णदीर्घ करके जनता बन जाता है। इससे सु एवं उसका हल्ङ्यादिलोप होकर **जनता** सिद्ध हो जाता है।

गजसहायाभ्यां चेति वक्तव्यम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- गज और सहाय इन षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिकों से भी समूह अर्थ में तल् प्रत्यय हो, ऐसा कहना चाहिए। तात्पर्य यह है कि ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल् सूत्र में जो केवल तीन शब्दों से तल् का विधान किया गया है, वह कम है, न्यून है। उसमें **गज** और **सहाय** शब्दों को जोड़ देना चाहिए।

गजता। हाथियों का समूह। **गजानां समूहः। गज आम्** से **गजसहायाभ्यां चेति वक्तव्यम्** से तल् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **टाप्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, सवर्णदीर्घ, स्वादिकार्य करके **जनता** सिद्ध हो जाता है।

सहायता। सहायकों का समूह। **सहायानां समूहः। सहाय आम्** से **गजसहायाभ्यां चेति वक्तव्यम्** से **तल्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **टाप्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, सवर्णदीर्घ, स्वादिकार्य करके **सहायता** सिद्ध हो जाता है।

अह्नः खः क्रतौ। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- यज्ञ अर्थ गम्यमान हो ता षष्ठ्यन्त अहन् प्रातिपदिक से समूह अर्थ में ख प्रत्यय होता है। **ख** में से केवल **ख्** के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **ईन्** आदेश होकर **ईन** बन जाता है।

अहीनः। अहर्गणसाध्यसुत्याकः क्रतुरित्यर्थः। कुछ यज्ञक्रियाविशेष का समूह, जो अनेक दिनों के समूह से साध्य **सुत्याक** नाम से व्यवहृत है। **अह्नां समूहेन साध्यः क्रतुः** अर्थ में **अहन्+आम्** में **अह्नः खः क्रतौ** वार्तिक से **ख** प्रत्यय, खकार के स्थान पर **ईन्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अहन्+ईन** बना। **नस्तद्धिते** से भसंज्ञक टि का लोप करके **अह्+ईन** बना। वर्णसम्मेलन, स्वादिकार्य करके **अहीनः** सिद्ध हो जाता है।

क्रतौ किम्? आह्नः। अर्थात् **अह्नः खः क्रतौ** वार्तिक में **क्रतौ** पद के निवेश से क्रतु-वाच्य होने पर ही यह ख-प्रत्यय होता है, अन्यथा नहीं होता। अतः **आह्नः** (दिनों का समूह) में क्रतु-अर्थ न होने के कारण ख-प्रत्यय नहीं हुआ है।

इह खण्डिकादित्वादञ्। 'अह्नष्टखोरेव' इति नियमाट्टिलोपो न। अर्थात् **अह्नां समूहः** अर्थ में क्रतु वाच्य न होने के कारण ख-प्रत्यय नहीं हुआ किन्तु **खण्डिकादिभ्यश्च** सूत्र से अञ् प्रत्यय होने पर **अह्नष्टखोरेव** सूत्र के नियम से अहन्-शब्द में ट और ख प्रत्ययों के परे रहते ही टिलोप होता है। अतः प्रकृत में उक्त दोनों प्रत्ययों के न होने से टिलोप तो नहीं हुआ किन्तु **अल्लोपोऽनः** सूत्र से हकार से परवर्ती अकार का लोप होकर **अहन्+अ** बना है। आदिवृद्धि और वर्णसम्मेलन होकर **आह्न** शब्द बनता है। स्वादिकार्य से **आह्नः** सिद्ध हो जाता है।

पर्श्वा णस् वक्तव्यः। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- पर्शू-शब्द से समूह अर्थ में णस् प्रत्यय कहना चाहिये। णस् में णकार और सकार इत्संज्ञक हैं, अकार मात्र बचता है। णित्करण आदिवृद्धि के लिये है तो सित्करण अगले सूत्र की प्रवृत्ति के लिये है।

१२५२. सिति च १।४।१६॥

सिति परे पूर्वं पदसञ्ज्ञं स्यात्। अभत्वादोर्गुणो न।
पर्शूनां समूहः पार्श्वम्।

सिति च। सकार इत् यस्य स सित्, तस्मिन् सिति। सिति सप्तम्यन्तं, चाव्ययम्। **सुप्तिङन्तं पदम्** से **पदम्** की अनुवृत्ति आती है।

सित् प्रत्यय के परे रहते पूर्व की पदसञ्ज्ञा होती है।

अभत्वादोर्गुणो न। यहाँ प्रथमाध्याय के चतुर्थपाद में **आ कडारादेका संज्ञा** से एकसंज्ञाधिकार होने के कारण प्रकृतसूत्र से पदसंज्ञा हो जाने पर **यचि भम्** सूत्र से प्राप्त भसंज्ञा का बाध हो जाता है। फलतः भसंज्ञाभाव में **ओर्गुणः** से ऊकार को गुण नहीं होता। वैसे **स्वादिष्वसर्वनामस्थाने** सूत्र के द्वारा भी पदसंज्ञा सिद्ध है, तथापि **यचि भम्** से प्राप्त भसंज्ञा का बाध करने के लिये प्रकृत सूत्र की उपयोगिता सिद्ध होती है।

पर्शूनां समूहः पार्श्वम्। पसली की हड्डियों का समूह। **पर्शूनां समूहः** अर्थ में **पर्शू+आम्** इस स्थिति में **पर्श्वा णस् वक्तव्यः** सूत्र से णस् प्रत्यय होने पर

अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **पर्शू+अ** बना है। आदिवृद्धि होती है और **सिति च** से पदसंज्ञा हो जाने से भसंज्ञा का अभाव रहता है, अतः **ओर्गुणः** सूत्र से ऊकार को गुण नहीं होता। फलतः **इको यणचि** सूत्र से ऊकार को यण् वकार होकर **पार्श्व** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पार्श्वम्** सिद्ध हो जाता है।

१२५३. अनुदात्तादेरञ् ४।२।४४॥

कापोतम्। मायूरम्।

अनुदात्तादेरञ्। अनुदात्त आदिर्यस्य सः- अनुदात्तादिस्तस्य अनुदात्तादेः पञ्चम्यन्तम्, अञ् प्रथमान्तम्। **तस्य समूहः** का अनुवर्तन है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

जिस शब्द का आदि अच् अनुदात्त हो, ऐसे षष्ठी-समर्थ प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में अञ् प्रत्यय होता है।

ञकार इत्संज्ञक है, **अ** बचता है।

कापोतम्। कबूतरों का समूह। **कपोतानां समूहः** अर्थ में **कपोत+आम्** इस स्थिति में **अनुदात्तादेरञ्** सूत्र से अञ् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **कापोत** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कापोतम्** सिद्ध हो जाता है।

मायूरम्। मयूरों का समूह। **मयूराणां समूहः** अर्थ में **मयूर+आम्** इस स्थिति में **अनुदात्तादेरञ्** सूत्र से अञ् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **मायूर** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **मायूरम्** सिद्ध हो जाता है।

कपोत और **मयूर** शब्द **लघावन्ते द्वयोश्च बह्वषो गुरुः** (फिट्सूत्र-४२) से मध्योदात्त है, अतः शेष वर्ण **अनुदात्तं पदमेकवर्जम्** परिभाषात्मक विधिसूत्र से अनुदात्त हो जाते हैं। फलतः अनुदात्तादि बन जाने के कारण प्रकृतसूत्र की प्रवृत्ति होती है।

१२५४. खण्डिकादिभ्यश्च ४।२।४५॥

अञ् स्यात्। खण्डिकानां समूहः खाण्डिकम्।

खण्डिकादिभ्यश्च। खण्डिका आदिर्येषां ते खण्डिकादयस्तेभ्यः खण्डिकादिभ्यः, पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। च-शब्द के द्वारा **अनुदात्तादेरञ्** से **अञ्** पद का अनुकर्षण किया जाता है। **तस्य समूहः** के दोनों पदों का अनुवर्तन है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

खण्डिका आदि गणपठित षष्ठी-समर्थ प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में अञ् प्रत्यय होता है।

खण्डिकादिगणपठित शब्दों के अनुदात्तादि न होने के इस पृथक् सूत्र की आवश्यकता है।

खण्डिकानां समूहः खाण्डिकम्। कृष्ण यजुर्वेद के खण्डिक-नाम चरण को पढ़ने वालों का समूह। **खण्डिकानां समूहः** अर्थ में **खण्डिक+आम्** इस स्थिति में **खण्डिकादिभ्यश्च** सूत्र से अञ् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **खाण्डिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **खाण्डिकम्** सिद्ध हो जाता है।

यद्यपि **तस्य समूहः** सूत्र से सामान्यतया अण् प्रत्यय होने पर भी उक्त रूप की सिद्धि हो जाती तथापि स्वरभेद के लिये पृथक् प्रत्यय का विधान किया गया है।

खण्डिकादिगणः- खण्डिका, वडवा। **क्षुद्रकमालवात् सेनासंज्ञायाम्।** भिक्षुक, शुक, उलूक, श्वन्, अहन्, युगवरत्रा, हलबन्धा।

१२५५. चरणेभ्यो धर्मवत् ४।२।४६॥

काठकम्। छान्दोग्यम्।

चरणेभ्यो धर्मवत्। धर्मे इव धर्मवत्। चरणेभ्यः पञ्चम्यन्तं, भववत् अव्ययम्। **तस्य समूहः** की अनुवृत्ति है और **ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

षष्ठी-समर्थ चरणवाची प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में वे सभी प्रत्यय होते हैं, जिन प्रत्ययों का आगे धर्म-अर्थ में विधान किया जायेगा।

धर्मार्थ में जिन चरणवाची शब्दों से जो-जो प्रत्यय किये जाते हैं, वे प्रत्यय समूह अर्थ में भी अतिदिष्ट होते हैं। आगे **गोत्रचरणाद् वुञ्** सूत्र में **चरणधर्माम्नाययोः** वार्तिक पढ़ा गया है। इस वार्तिक में धर्म-अर्थ में चरणवाचियों से प्रत्ययों का विधान किया गया है, उन्हीं का यहाँ अतिदेश है। अर्थात् **गोत्रचरणाद् वुञ्** से लेकर जिस-जिस विशेषण सहित जिन प्रकृतियों से जो प्रत्यय वहाँ विहित हैं, उन सबका यहाँ समूह अर्थ में अतिदेश किया गया है।

काठकम्। कृष्णयजुर्वेदान्तर्गत **कठ** नामक चरण के अध्येताओं का समूह अथवा उनका धर्म। **कठानां समूहो धर्मो वा** अर्थ में **कठ+आम्** इस स्थिति में **गोत्रचरणाद् वुञ्** से विधीयमान **वुञ्** प्रत्यय **चरणेभ्यो धर्मवत्** सूत्र से भी हो जाता है। अनुबन्धलोप, **वु** के स्थान पर **युवोरनाकौ** सूत्र से **अक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **काठक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य से **काठकम्** सिद्ध हो जाता है।

छान्दोग्यम्। सामवेद के मन्त्रों का गान करने वालों का समूह अथवा उनका धर्म। **छन्दोगानां समूहो धर्मो वा** अर्थ में **छन्दोग+आम्** इस स्थिति में **छन्दोगौक्थिकयाज्ञिकबह्वृचनटाञ्ञ्यः** सूत्र से विधीयमान **यञ्** प्रत्यय **चरणेभ्यो धर्मवत्** सूत्र से भी हो जाता है। अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **छान्दोग्य** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य से **छान्दोग्यम्** सिद्ध हो जाता है।

चरण-शब्द शाखा के आद्य प्रवर्तक का वाचक है और उसके निमित्त से उन शाखाओं के अध्येताओं में भी प्रयुक्त होता है।

१२५६. अचित्तहस्तिधेनोष्ठक् ४।२।४७॥
साक्तुकम्। हास्तिकम्। धैनुकम्।

अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्। अविद्यमानं चित्तं येषां ते अचित्ताः। अचित्ताश्च हस्तिनश्च च धेनवश्च तेषां समाहारद्वन्द्वः अचित्तहस्तिधेनुः, सौत्रं पुंस्त्वम्। तस्मात्। अचित्तहस्तिधेनोः पञ्चम्यन्तं, ठक् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तस्य समूहः** का अनुवर्तन है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

चित्त-रहित अर्थात् अप्राणिवाचक षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिकों से एवं हस्तिन्, धेनु इन प्रातिपदिकों से 'उसका समूह' अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है।

ककार इत्संज्ञक है और ठ के स्थान पर **ठस्येकः** से **इक** आदेश होता है। कुछ स्थलों पर **इसुसुक्तान्तात् कः** सूत्र से **क** आदेश भी होता है। **इसुसुक्तान्तात् कः** इस्, उस्, उक् और त् अन्त में हो ऐसे अंग से परे ठ के स्थान पर क आदेश करता है। इसकी व्याख्या हो चुकी है।

साक्तुकम्। सत्तुओं का समूह। **सक्तूनां समूहः। सक्तु आम्** में **अचित्त=अप्राणी** का वाचक सक्तु शब्द है। **अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्** से **ठक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप करके **इसुसुक्तान्तात्कः** से ठ के स्थान पर **क** आदेश के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **सक्तु+क** बना। ठक् के कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि होकर **साक्तुक** बना और स्वादिकार्य से **साक्तुकम्** सिद्ध हुआ।

हास्तिकम्। हाथियों का समूह। **हस्तिनां समूहः। हस्तिन् आम्** में **अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्** से **ठक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप करके **ठ** बचता है। यहाँ **इसुसुक्तान्तात्कः** की प्रवृत्ति न होने से **ठस्येकः** से **इक** आदेश और **किति च** से आदिवृद्धि करके **हास्तिन्+इक** बना। **नस्तद्धिते** से टि का लोप करके **हास्त्+इक** बना। वर्णसम्मेलन करके स्वादिकार्य करने पर **हास्तिकम्** सिद्ध हुआ।

धैनुकम्। गायों का समूह। **धेनूनां समूहः। धेनु आम्** में **अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्** से **ठक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **व इसुसुक्तान्तात्कः** से ठ के स्थान पर **क** आदेश,

प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **धेनु+क** बना। ठक् के कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि करके **धैनुक** बना। स्वादिकार्य से **धैनुकम्** सिद्ध हुआ।

१२५७. केशाश्वाभ्यां यञ्छावन्यतरस्याम् ४।२।४८॥
पक्षे ठगणौ। कैश्यम्, कैशिकम्। अश्वीयम्, आश्वम्।

केशाश्वाभ्यां यञ्छावन्यतरस्याम्। केशश्च अश्वश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः केशाश्वौ, ताभ्यां केशाश्वाभ्याम्, यञ् च छश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो यञ्छौ। केशाश्वाभ्यां पञ्चम्यन्तं, यञ्छौ प्रथमान्तम्, अन्यतरस्यां विभक्तिप्रतिरूपकमव्ययम्। **तस्य समूहः** का अनुवर्तन है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

केश और अश्व इन षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में विकल्प से यञ् और छ प्रत्यय होते हैं।

प्रकृति भी दो हैं और प्रत्यय भी दो। अतः **यथासङ्ख्यमनुदेशः समानाम्** सूत्र की उपस्थिति से यथासङ्ख्य का अर्थलाभ होता है, फलतः **केश**-शब्द से **यञ्** और **अश्व** शब्द से **छ** प्रत्यय होंगे।

पक्षे ठगणौ। उक्त दोनों प्रत्यय वैकल्पिक हैं। अतः एक पक्ष में **केश**-शब्द से **अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्** से ठक् प्रत्यय और **अश्व** शब्द से **तस्य समूहः** से औत्सर्गिक अण् प्रत्यय भी होते हैं।

कैश्यम्, कैशिकम्। केशों का समूह। **केशानां समूहः** अर्थ में **केश+आम्** से **केशाश्वाभ्यां यञ्छावन्यतरस्याम्** सूत्र से विकल्प से **यञ्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **कैश्य** शब्द बना है। उक्त प्रत्यय के न होने पर **अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्** से ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** सूत्र से **ठ** के स्थान पर **इक** आदेश, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **कैशिक** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कैश्यम्** और **कैशिकम्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

अश्वीयम्, आश्वम्। घोड़ों का समूह। **अश्वानां समूहः** अर्थ में **अश्व+आम्** से **केशाश्वाभ्यां यञ्छावन्यतरस्याम्** सूत्र से विकल्प से **छ**-प्रत्यय होने पर उसके छकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **ईय्** आदेश, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् तथा अकारलोप होकर **अश्वीय** शब्द बना है। उक्त प्रत्यय के न होने पर **तस्य समूहः** से अण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **आश्व** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **अश्वीयम्** और **आश्वम्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

१२५८. पाशादिभ्यो यः ४।२।४९॥

पाश्या। तृण्या। धूम्या। वन्या। वात्या।

पाशादिभ्यो यः। पाश आदिर्येषां ते पाशादयस्तेभ्यः पाशादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, यः प्रथमान्तम्। **तस्य समूहः** का अनुवर्तन है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

षष्ठी-समर्थ पाशादिगणपठित प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में य-प्रत्यय होता है।

पाशादि-शब्द अचित्त-वाची हैं, अतः **अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्** से ठक् प्रत्यय प्राप्त था, उसे बाधकर य-प्रत्यय किया गया है। लोकव्यवहार में इन शब्दों का स्त्रीलिंग में प्रयोग देखा जाता है, अतः लोकात् स्त्रीलिंग माने जाते हैं। फलतः इनका नपुंसकलिंग में प्रयोग नहीं होता।

पाश्या। पाश=जालों का समूह। **पाशानां समूहः** अर्थ में **पाश+आम्** से **पाशादिभ्यो यः** सूत्र से **य** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पाश्य** बन जाता है। स्त्रीत्व में टाप् होकर **पाश्या** बन जाता है। स्वादिकार्य से **पाश्या** सिद्ध हो जाता है।

तृण्या। तृणों का समूह। **तृणानां समूहः** अर्थ में **तृण+आम्** से **पाशादिभ्यो यः** सूत्र से **य** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञादि कार्य करके स्त्रीत्व में टाप् होकर **तृण्या** और स्वादिकार्य से **तृण्या** सिद्ध हो जाता है।

धूम्या। धूमों का समूह। **धूमानां समूहः** अर्थ में **धूम+आम्** से **पाशादिभ्यो यः** सूत्र से **य** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञादि कार्य करके स्त्रीत्व में टाप् होकर **धूम्या** और स्वादिकार्य से **धूम्या** सिद्ध हो जाता है।

वन्या। वनों का समूह। **वनानां समूहः** अर्थ में **वन+आम्** से **पाशादिभ्यो यः** सूत्र से **य** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञादि कार्य करके स्त्रीत्व में टाप् होकर **वन्या** और स्वादिकार्य से **वन्या** सिद्ध हो जाता है।

वात्या। आँधी-बवंडरों का समूह। **वातानां समूहः** अर्थ में **वात+आम्** से **पाशादिभ्यो यः** सूत्र से **य** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञादि कार्य करके स्त्रीत्व में टाप् होकर **वात्या** और स्वादिकार्य से **वात्या** सिद्ध हो जाता है।

पाशादिगणः- पाश, तृण, धूम, वात, अङ्गार, पाटल, पोटगल, पिटक, पिटाक, हल, नट, वन।

१२५९. खलगोरथात् ४।२।५०॥

खल्या। गव्या। रथ्या।

खलगोरथात्। खलश्च गौश्च रथश्च तेषां समाहारद्वन्द्वः खलगोरथम्, तस्मात् खलगोरथात्। **पाशादिभ्यो यः** से **यः** और **तस्य समूहः** का अनुवर्तन है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

षष्ठी-समर्थ खल, गो, रथ इन प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में य-प्रत्यय होता है।

रथ-शब्द अचित्त-वाची है, अतः **अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्** से ठक् प्रत्यय प्राप्त था किन्तु शेष दो शब्दों से **तस्य समूहः** से औत्सर्गिक अण् प्राप्त था। दोनों का अपवाद य-प्रत्यय का विधान किया गया है। य-प्रत्ययान्त शब्द लोकव्यवहार में स्त्रीलिंग माने जाते हैं। फलतः इनका नपुंसकलिंग में प्रयोग नहीं होता। यद्यपि इन तीन शब्दों का पाठ पाशादिगण में कर देने से अलग सूत्र की आवश्यकता न होती तथापि उत्तरसूत्र में **खलगोरथात्** की अनुवृत्ति के लिये पृथक् सूत्र की आवश्यकता है।

खल्या। खलिहानों का समूह। **खलानां समूहः** अर्थ में **खल+आम्** से **खलगोरथात्** सूत्र से **य** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञादि कार्य करके स्त्रीत्व में टाप् होकर **खल्या** और स्वादिकार्य से **खल्या** सिद्ध हो जाता है।

गव्या। गायों का समूह। **गवां समूहः** अर्थ में **गो+आम्** से **खलगोरथात्** सूत्र से **य** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञादि कार्य करके **वान्तो यि प्रत्यये** से ओकार के स्थान पर **अव्** आदेश होकर **गव्य** और स्त्रीत्व में टाप् होकर **गव्या** बनने पर स्वादिकार्य से **गव्या** सिद्ध हो जाता है।

रथ्या। रथों का समूह। **रथानां समूहः** अर्थ में **रथ+आम्** से **खलगोरथात्** सूत्र से **य** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञादि कार्य करके स्त्रीत्व में टाप् होकर **रथ्या** और स्वादिकार्य से **रथ्या** सिद्ध हो जाता है।

१२६०. इनित्रकट्यचश्च ४।२।५१॥

खलादिभ्यः क्रमात् स्युः। खलिनी। गोत्रा। रथकट्या।
'खलादिभ्य इनिर्वक्तव्यः' (वा.२७३५)।
डाकिनी। कुटुम्बिनी। आकृतिगणोऽयम्।

इनित्रकट्यचश्च। इनिश्च त्रश्च कट्यच् च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्व इनित्रकट्यचः प्रथमान्तं, चाव्ययम्। पूर्वसूत्र **खलगोरथात्** का और **तस्य समूहः** का अनुवर्तन है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

षष्ठी-समर्थ खल, गो, रथ इन प्रातिपदिकों से समूह अर्थ में क्रमशः इनि, त्र और कट्यच् ये प्रत्यय भी होते हैं।

प्रकृति भी तीन हैं और प्रत्यय भी तीन। अतः **यथासङ्ख्यमनुदेशः समानाम्** की उपस्थिति से क्रमशः विहित होते हैं। अतः **खल**-शब्द से **इनि** प्रत्यय, **गो**-शब्द से **त्र**

प्रत्यय और **रथ**-शब्द से **कट्यच्** प्रत्यय हो जाते हैं। **इनि** का अन्त्य इकार इत्संज्ञक है, **इन्** बचता है और **कट्यच्** में चकार इत्संज्ञक है। इन प्रत्ययों से युक्त शब्द भी लोक में स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होते हैं।

खलिनी। खलिहानों का समूह। **खलानां समूहः** अर्थ में **खल+आम्** से **इनित्रकट्यचश्च** सूत्र से **इनि** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, अकारलोप होकर **खलिन्** शब्द बनने पर स्त्रीत्व में **ऋन्नेभ्यो ङीप्** से ङीप् प्रत्यय होकर **खलिनी** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **खलिनी** सिद्ध हो जाता है।

गोत्रा। गायों का समूह। **गवां समूहः** अर्थ में **गो+आम्** से **इनित्रकट्यचश्च** सूत्र से **त्र** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञादि कार्य करके **गोत्र** और त्रीत्व में टाप् होकर **गोत्रा** बनने पर स्वादिकार्य से **गोत्रा** सिद्ध हो जाता है।

रथकट्या। रथों का समूह। **रथानां समूहः** अर्थ में **रथ+आम्** से **इनित्रकट्यचश्च** सूत्र से **कट्यच्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञादि कार्य करके **रथकट्य** शब्द बना है। स्त्रीत्व में टाप् होकर **रथकट्या** और स्वादिकार्य से **रथकट्या** सिद्ध हो जाता है।

खलादिभ्य इनिर्वक्तव्यः। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- खलादिगणपठित शब्दों से समूह अर्थ में इनि-प्रत्यय कहना चाहिये। अर्थात् वार्तिककार सूत्रकार को यह सुझाव दे रहे हैं कि **इनित्रकट्यचश्च** सूत्र का स्वरूप **गोरथात्रकट्यचौ** रखा जाय और दूसरा सूत्र **खलादिभ्य इनिः** ऐसा रखा जाय। इससे खलादिगण की कल्पना करके अन्य शब्दों से भी इनि-प्रत्यय हो सकेगा। यही तात्पर्य है वार्तिक का। उदाहरण आगे दिये जा रहे हैं।

डाकिनी। काली देवी के अनुचर डाक-नाम्नी राक्षसियों का समूह। **डाकानां समूहः** अर्थ में **डाक+आम्** से **खलादिभ्य इनिर्वक्तव्यः** वार्तिक से **इनि** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, अकारलोप होकर **डाकिन्** शब्द बनने पर स्त्रीत्व में **ऋन्नेभ्यो ङीप्** से ङीप् प्रत्यय होकर **डाकिनी** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **डाकिनी** सिद्ध हो जाता है।

कुटुम्बिनी। कुटुम्बों का समुदाय। **कुटुम्बानां समूहः** अर्थ में **कुटुम्ब+आम्** से **खलादिभ्य इनिर्वक्तव्यः** वार्तिक से **इनि** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, अकारलोप होकर **कुटुम्बिन्** शब्द बनने पर स्त्रीत्व में **ऋन्नेभ्यो ङीप्** से ङीप् प्रत्यय होकर **कुटुम्बिनी** शब्द बनता है। स्वादिकार्य।

आकृतिगणोऽयम्। यद्यपि खलादि आकृतिगण है तथापि कुछ शब्द दिखाये गये हैं। जैसे- खल, डाक, कुटुम्ब, शाक, कुण्डलिनी इत्यादि।

तस्य समूहः का प्रकरण पूरा हो जाता है। अब आगे **तस्य विषयः** का प्रकरण प्रारम्भ हो रहा है। उन सूत्रों में **तस्य समूहः** से **तस्य** की अनुवृत्ति मानी जाती है, जिससे समर्थ विभक्ति **षष्ठी** ही होगी। प्राग्दीव्यतीयों में यह ग्यारहवाँ अर्थक्रम है।

१२६१. विषयो देशे ४।२।५२॥

षष्ठ्यन्तादणादयः स्युरत्यन्तपरिशीलितेऽर्थे स चेद्देशः।
शिबीनां विषयो देशः शैबः। देशे किम्? देवदत्तस्य विषयोऽनुवाकः।

विषयो देशे। विषयः प्रथमान्तं, देशे सप्तम्यन्तम्। प्राग्दीव्यतोऽण् से **अण्** का और **तस्य समूहः** सूत्र से **तस्य** का अनुवर्तन है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

षष्ठी-समर्थ प्रातिपदिकों से अत्यन्त परिशीलित (प्रसिद्ध) विषय अर्थ में (यथाविहित) अण् (आदि) प्रत्यय हों, यदि उससे देश अर्थ गम्यमान हो तो।

सूत्रस्थ **विषय**-शब्द से यहाँ अत्यन्त प्रसिद्ध रूप अर्थ विवक्षित है अर्थात् उस शब्द की प्रसिद्धि निश्चित रूप में देशवाची होनी चाहिये। इतने विवेचन की आवश्यकता इस लिये हुयी कि **विषय** शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। जैसे कि जनपद, इन्द्रियग्राह्य वस्तु, निश्चित स्थान। हर वस्तु का अपना एक विषय होता है। ज्ञान भी किसी विषय को लेकर होता है। आँख का विषय रूप, जिह्वा का विषय रस, घ्राण का विषय गन्ध, मछलियों का विषय जल इत्यादि। प्रकृतसूत्र में तो **विषय** शब्द से देशाभिधान में प्रसिद्ध, ऐसा अर्थ ही गृहीत है। इस लिये मूलकार ने लिखा है- **अत्यन्तपरिशीलितेऽर्थे स चेद्देशः।**

शिबीनां विषयो देशः शैबः। उशीनर देश के राजा शिबियों का देश। **शिबीनां विषयो देशः** अर्थ में **शिबि+आम्** से **विषयो देशे** सूत्र से अण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **शिबि+अ** बना है। आदिवृद्धि और भसंज्ञक इकार का लोप होकर **शैब** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **शैबः** सिद्ध हो जाता है।

देशे किम्? देवदत्तस्य विषयोऽनुवाकः। प्रकृतसूत्र में **देशे** पद का यह प्रयोजन है कि जो विषय हो, वह देश ही हो, तभी अण् हो, अन्यथा न हो। यहाँ **देवदत्तस्य विषयः अनुवाकः** में विषय देश न होकर अनुवाक (वेद के अध्याय का अवान्तर भेद) है। यह यद्यपि अत्यन्त परिशीलित है किन्तु वह देश नहीं है। अतः अण् प्रत्यय नहीं हुआ अपितु वाक्य ही रह गया है। इसी तरह सूत्र में **विषयः** शब्द का निवेश होने से **देवदत्तस्य कदाचिद् गन्तव्यो मार्गः** में मार्ग-शब्द के देशवाची होने पर भी **देवदत्त** से अण् नहीं हुआ, क्योंकि वह उस में मार्ग में कभी-कभी जाता है, अतः मार्ग देवदत्त का अत्यन्त परिशीलित नहीं है।

१२६२. राजन्यादिभ्यो वुञ् ४।२।५३॥

राजन्यकः।

राजन्यादिभ्यो वुञ्। राजन्य आदिर्येषां ते राजन्यादयस्तेभ्यो राजन्यादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, वुञ् प्रथमान्तम्। **विषयो देशे** के दोनों पदों का और **तस्य समूहः** सूत्र से **तस्य** का

अनुवर्तन है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

षष्ठी-समर्थ राजन्य आदि गणपठित प्रातिपदिकों से अत्यन्त परिशीलित (प्रसिद्ध) विषय-अर्थ में वुञ् प्रत्यय होता है, यदि वह अर्थ देश हो तो।

पूर्वसूत्र का अपवाद है।

राजन्यकः। राजकुमारों का प्रसिद्ध देश। **राजन्यानां विषयो देशः** अर्थ में **राजन्य+आम्** से **राजन्यादिभ्यो वुञ्** सूत्र से वुञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **युवोरनाकौ** से **वु** के स्थान पर **अक** आदेश, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **राजन्य+अक** बना है। पर्जन्यवल्लक्षणप्रवृत्तिन्यायेन आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **राजन्यक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **राजन्यकः** सिद्ध हो जाता है।

राजन्यादिगणः- राजन्य, आमृत, बाभ्रव्य, शालङ्कायन, दैवयातव, (देवयात), [अव्रीड, वरत्रा] जालन्धरायण ,[राजायन], तेलु, आत्मकामेय, अम्बरीषपुत्र, वसाति, बैल्ववन, शैलूष, उदुम्बर, तीव्र, बैल्वल, आर्जुनायन, संप्रिय, दाक्षि, ऊर्णनाभ। **राजन्यादिराकृतिगणः**।

१२६३. भौरक्याद्यैषुकार्यादिभ्यो विधल्भक्तलौ ४।२।५४॥

भौरिकीणां विषयो देशो भौरिकिविधम्। भौलिकिविधम्।
ऐषुकारिभक्तम्। सारसायनभक्तम्।

भौरक्याद्यैषुकार्यादिभ्यो विधल्भक्तलौ। भौरिकी आदिर्येषां ते भौरिक्यादयः, बहुव्रीहिः। ऐषुकारि आदिर्येषां ते ऐषुकार्यादयः, बहुव्रीहिः। भौरिक्यादयश्च ऐषुकार्यादयश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो भौरिक्याद्यैषुकार्यादयस्तेभ्यो भैरिक्याद्यैषुकार्यादिभ्यः पञ्चम्यन्तम्। विधल् च भक्तल् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो विधल्भक्तलौ। **विषयो देशे** के दोनों पदों का और **तस्य समूहः** सूत्र से **तस्य** का अनुवर्तन है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

षष्ठी-समर्थ भौरिकी आदि गणपठित प्रातिपदिकों से विधल्-प्रत्यय और ऐषुकारि आदि गणपठित प्रातिपदिकों से भक्तल् प्रत्यय होते हैं, विषयो देशे अर्थ में।

यथासङ्ख्यमनुदेशः समानाम् की उपस्थिति से भौरिक्यादि से विधल् प्रत्यय और ऐषुकार्यादि से भक्तल्-प्रत्यय होता है। उक्त दोनों प्रत्ययों में लकार इत्संज्ञक है, **विध** और **भक्त** बचते हैं। लित्करण स्वरार्थ है।

भौरिकीणां विषयो देशो भौरिकिविधम्। भौरिकी लोगों का प्रसिद्ध देश। **भौरिकाणां विषयो देशः** अर्थ में **भौरिकि+आम्** से **भौरक्याद्यैषुकार्यादिभ्यो विधल्भक्तलौ**

सूत्र से विधल्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **भौरिकिविध** बना है। आदिवृद्धि का विषय नहीं है और भसंज्ञा न होने के इकारलोप का भी विषय नहीं है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **भौरिकिविधम्** सिद्ध हो जाता है।

भौलिकिविधम्। भौलिकी लोगों का प्रसिद्ध देश। **भौलिकानां विषयो देशः** अर्थ में **भौलिकि+आम्** से भौरिक्यादिगणीय मानकर **भौरक्याद्यैषुकार्यादिभ्यो विधल्भक्तलौ** सूत्र से विधल्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **भौलिकिविध** बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **भौलिकिविधम्** सिद्ध हो जाता है।

ऐषुकारिभक्तम्। ऐषुकारी लोगों का प्रसिद्ध देश। **ऐषुकारीणां विषयो देशः** अर्थ में **ऐषुकारि+आम्** से **भौरक्याद्यैषुकार्यादिभ्यो विधल्भक्तलौ** सूत्र से भक्तल्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **ऐषुकारिभक्त** बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **ऐषुकारिभक्तम्** सिद्ध हो जाता है।

सारसायनभक्तम्। सारसायन लोगों का प्रसिद्ध देश। **सारसायनानां विषयो देशः** अर्थ में **सारसायन+आम्** से **भौरक्याद्यैषुकार्यादिभ्यो विधल्भक्तलौ** सूत्र से भक्तल्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **सारसायनभक्त** बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सारसायनभक्तम्** सिद्ध हो जाता है।

भौरिक्यादिगणः- भौरिकी, भौलिकी, चौपयत, चौपटत, (चैटयत), काणेय, वाणिजक, वाणिकाज्य, (वालिकाज्य), सैकयत, वेकयत।

ऐषुकार्यादिगणः- ऐषुकारि, सारस्यायन, (सारसायन), चान्द्रायण, द्व्याक्षायण, त्र्याक्षायण, औडायन, जौलायन, खाडायन, दासमित्रि, दासमित्रायण, शौद्रायण, दाक्षायण, शपण्डायन, (शायण्डायन), तार्क्ष्यायण, शौभ्रायण, शौभ्रायण, सौवीर, [सौवीरायण], शपण्ड, (शयण्ड), शौण्ड, शयाण्डि, (शयाण्ड), वैश्वमानव, वैश्वमानव, वैश्वध्येनव, (वैश्वधेनव), नड, तुण्डदेव, विश्वदेव, [सापिण्डि]।

यहाँ पर **विषयो देशः** का प्रकरण पूरा हो जाता है। अब आगे **सः अस्य आदिः** अर्थ में प्रत्यय किये जायेंगे। **सः** शब्द से समर्थविभक्ति प्रथमा का ज्ञात होता है। प्राग्दीव्यतीयों में बारहवाँ अर्थक्रम है।

१२६४. सोऽस्यादिरितिच्छन्दसः प्रगाथेषु ४।२।५५॥

अण्। पङ्क्तिरादिरस्येति पाङ्क्तः प्रगाथः।

'स्वार्थ उपसंख्यानम्'(वा.२७४४)। त्रिष्टुबेव त्रैष्टुभम्।

सोऽस्यादिरितिच्छन्दसः प्रगाथेषु। सः प्रथमान्तम्, अस्य षष्ठ्यन्तम्, आदिः प्रथमान्तम्, इति अव्ययं, छन्दसः षष्ठ्यन्तं, प्रगाथेषु सप्तम्यन्तम्। **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

प्रथमा-समर्थ छन्दोवाची प्रातिपदिकों से षष्ठ्यर्थ में प्रगाथों के अभिधेय होने पर यथाविहित अण् आदि प्रत्यय होते हैं, यदि वह प्रथमा-समर्थ छन्दस् प्रगाथ के आरम्भ हो तो।

सूत्र में **सः** पद प्रथमासमर्थ का बोधक है। **आदिः** पद प्रकृति का विशेषण है। **इति** शब्द विवक्षार्थक है। **छन्दस्** शब्द से **गायत्री, पंक्ति** आदि वैदिक छन्द लिये जाते हैं।

पङ्क्तिरादिरस्येति पाङ्क्तः प्रगाथः। जिस प्रगाथ का आरम्भ **पङ्क्ति** अर्थात् ४० अक्षरों वाले छन्दस् से हो। **पङ्क्तिः ऋक् आदिर्यस्य प्रगाथस्य** अर्थ में **पङ्क्ति+सु** में **सोऽस्यादिरितिच्छन्दसः प्रगाथेषु** सूत्र से अण् प्रत्यय, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **पङ्क्ति+अ** बना है। आदिवृद्धि और भसंज्ञक इकार का लोप करके **पाङ्क्त** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पाङ्क्तः (प्रगाथः)** सिद्ध हो जाता है।

स्वार्थ उपसंख्यानम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- प्रथमा-समर्थ छन्दोवाची प्रातिपदिकों से स्वार्थ में भी अण् प्रत्यय होता है। स्वार्थ का तात्पर्य है कि अर्थविशेष विवक्षित न होना।

त्रिष्टुबेव त्रैष्टुभम्। त्रिष्टुप् छन्द ही। यहाँ अर्थविशेष की कल्पना न करके त्रिष्टुप् को त्रैष्टुभम् कहा गया है। अतः **त्रिष्टुप् एव** अर्थ में **त्रिष्टुभ्+सु** में **स्वार्थ उपसंख्यानम्** वार्तिक से अण् प्रत्यय, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि होकर **त्रैष्टुभ** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **त्रैष्टुभम्** सिद्ध हो जाता है।

ध्यातव्यः- वैदिक छन्दः अक्षरों की गणना पर आधारित होते हैं। वैदिक छन्दः के लिये मात्राओं के लघु और गुरु का विचार नहीं किया जाता। **प्रगाथ** विशेष प्रकार के छन्दों का ग्रथन है अर्थात् जहाँ विभिन्न छन्दों की दो वा तीन ऋचाओं का समावेश किया जाता है, उसे **प्रगाथ** कहते हैं। उस प्रगाथ का नामग्रहण प्रायः आदि-मन्त्र के छन्दोनाम से हुआ करता है। जब दो ऋचाओं के प्रगाथों में किसी समा का गान करना होता है तो दो ऋचाओं के किन्हीं अंशों का पुनः पाठ कर उसे तीन बना कर उस साम का गान किया जाता है तो विशिष्ट छन्दःसंकलन **प्रगाथ** कहलाता है। पाणिनि के प्रत्यय-सम्बन्धी इस नियम में विभिन्न छन्दों का मिश्रणरूपी प्रगाथ है, न कि सामगान विशेष का ही।

१२६५. संग्रामे प्रयोजनयोद्धृभ्यः ४।२।५६॥

'सोऽस्य' इत्यनुवर्तते। सुभद्रा प्रयोजनमस्य संग्रामस्येति सौभद्रः। भरता योद्धारोऽस्य संग्रामस्य भारतः।

संग्रामे प्रयोजनयोद्धृभ्यः। प्रयोजनं च योद्धारश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः प्रयोजनयोद्धारस्तेभ्यः प्रयोजनयोद्धृभ्यः पञ्चम्यन्तं, संग्रामे सप्तम्यन्तम्। **सोऽस्यादिरितिच्छन्दसः प्रगाथेषु** से **सः**, **अस्य** की और **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

प्रयोजन और योद्धृ अर्थ के साथ समान अधिकरण वाले प्रथमान्त समर्थ प्रातिपदिकों से षष्ठ्यर्थ में यदि संग्राम अभिधेय हो तो अण् प्रत्यय होता है।

'सोऽस्य' इत्यनुवर्तते। पूर्वसूत्र से **सः, अस्य** की अनुवृत्ति है, अन्य पदों की नहीं है। सप्तम्यन्त **संग्रामे** को विभक्तिविपरिणाम करके षष्ठ्यन्त **संग्रामस्य** बना लिया जाता है तथा अनुवृत्त **अस्य** पद के साथ **संग्रामस्य** का अन्वय किया जाता है।

सुभद्रा प्रयोजनमस्य संग्रामस्येति सौभद्रः। सुभद्रा है प्रयोजन जिस युद्ध का। **सुभद्रा प्रयोजनम् अस्य संग्रामस्य** अर्थ में **सुभद्रा+सु** से **संग्रामे प्रयोजनयोद्धृभ्यः** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक आकार का लोप होकर **सौभद्र** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सौभद्रः** सिद्ध हो जाता है।

भरता योद्धारोऽस्य संग्रामस्य भारतः। भरतवंशी आदि योद्धा प्रयोजन हैं जिस युद्ध के। **भरताः प्रयोजनम् अस्य संग्रामस्य** अर्थ में **भरत+सु** से **संग्रामे प्रयोजनयोद्धृभ्यः** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **भारत** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **भारतः** सिद्ध हो जाता है।

सोऽस्य का प्रकरण पूरा हो जाता है। अतः अब **तदस्य प्रहरणम्** अर्थ का क्रम चलेगा। प्राग्दीव्यतीय अर्थों में यह तेरहवाँ है।

१२६६. तदस्यां प्रहरणमिति क्रीडायां णः ४।२।५७॥

दण्डः प्रहरणमस्यां क्रीडायां दाण्डा। मौष्टा।

तदस्यां प्रहरणमिति क्रीडायां णः। तत् प्रथमान्तम्, अस्यां सप्तम्यन्तं, प्रहरणं प्रथमान्तम्, इति अव्ययं, क्रीडायां सप्तम्यन्तं, णः प्रथमान्तम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

प्रथमा-समर्थ प्रहरण (आयुध, प्रहार) समानाधिकरण वाले प्रातिपदिकों से सप्तम्यर्थ में ण-प्रत्यय होता है, अस्याम्-पद से क्रीडा निर्दिष्ट हो तो।

णकार इत्संज्ञक है, अकार बचता है। णित्करण आदिवृद्धि के लिये है। नैसर्गिक अण् प्रत्यय न करके ण-प्रत्यय इस लिये किया गया है कि स्त्रीलिंग में ङीप् न हो, क्योंकि अणन्त शब्दों से स्त्रीत्वविवक्षा में **टिड्ढाणञ्०** सूत्र से ङीप् होता है किन्तु ण-प्रत्ययान्त होने पर नहीं होगा, फलतः **अजाद्यतष्टाप्** से टाप् हो जाता है।

दण्डः प्रहरणमस्यां क्रीडायां दाण्डा। डण्डे का प्रहार या आयुध है, जिस क्रिया में। **दण्डः प्रहरणम् अस्यां क्रीडायाम्** अर्थ में **दण्ड+सु** से **तदस्यां प्रहरणमिति क्रीडायां णः** सूत्र से ण-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **दाण्ड** शब्द बना है। क्रीडा-शब्द का विशेषण होने के कारण इस शब्द से भी स्त्रीत्वविवक्षा में **टाप्** होकर **दण्डा** बन जाता है। स्वादिकार्य होकर **दाण्डा** सिद्ध हो जाता है।

मौष्टा। मुष्टी (मुठ्ठी) का प्रहार या आयुध है, जिस क्रिया में। **मुष्टिः प्रहरणम् अस्यां क्रीडायाम्** अर्थ में **मुष्टि+सु** से **तदस्यां प्रहरणमिति क्रीडायां णः** सूत्र से ण-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक इकार का लोप होकर **मौष्ट** शब्द बना है। क्रीडा-शब्द का विशेषण होने के कारण इस शब्द से भी स्त्रीत्वविवक्षा में **टाप्** होकर **मौष्टा** बन जाता है। स्वादिकार्य होकर **मौष्टा** सिद्ध हो जाता है।

सूत्र में **क्रीडायाम्** पद का निवेश होने से **अस्याम्** पद के द्वारा **क्रीडा** अर्थ निर्दिष्ट होने पर ही ण-प्रत्यय होता है, अन्यथा नहीं होता। फलतः **दण्डः प्रहरणम् अस्यां सेनायाम्** में क्रीडा वाच्य होने पर तो ण-प्रत्यय नहीं होगा। अतः **दाण्डः** नहीं बनेगा, वाक्य ही रहेगा।

१२६७. घञः सास्यां क्रियेति ञः ४।२।५८॥

घञन्तात् क्रियावाचिनः प्रथमान्तादस्यामिति सप्तम्यर्थे स्त्रीलिङ्गे ञ-प्रत्ययः स्यात्। घञ इति कृद्ग्रहणाद् गतिकारकपूर्वस्यापि ग्रहणम्।

घञः सास्यां क्रियेति ञः। घञः पञ्चम्यन्तं, सा प्रथमान्तम्, अस्यां सप्तम्यन्तं, क्रिया प्रथमान्तम्, इति अव्ययं, ञः प्रथमान्तम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

घञ्प्रत्ययान्त क्रियावाची प्रथमान्त प्रातिपदिक से सप्तम्यर्थ में स्त्रीलिङ्ग वाच्य हो तो ञ-प्रत्यय होता है।

ञकार इत्संज्ञक है, अकार बचता है। ञित्करण आदिवृद्धि, स्वर और अगले सूत्र की प्रवृत्ति के लिये है। ञ-प्रत्ययान्त होने पर ङीप् न होकर **अजाद्यतष्टाप्** से टाप् हो जाता है।

घञ इति कृद्ग्रहणाद् गतिकारकपूर्वस्यापि ग्रहणम्। सूत्र में **घञः** पद से

कृदन्त का ग्रहण किया गया है और इसमें गतिसंज्ञक शब्द और कारक-शब्द पूर्वपद होने पर भी उसका ग्रहण किया जाता है। इसका स्पष्टीकरण आगे किया जायेगा और प्रकृतसूत्र के उदाहरण भी आगे बताये जा रहे हैं।

१२६८. श्येनतिलस्य पाते ञे ६।३।७१॥

श्येन तिल एतयोर्मुमागमः स्याद् ञप्रत्यये परे पातशब्दे उत्तरपदे। श्येनपातोऽस्यां वर्तते श्यैनम्पाता मृगया। तिलपातोऽस्यां वर्तते तैलम्पाता स्वधा। श्येनतिलस्य किम्? दण्डपातोऽस्यां तिथौ वर्तते दाण्डपाता तिथिः।

श्येनतिलस्य पाते ञे। श्येनश्च तिलश्च तयोः समाहारद्वन्द्वः श्येनतिलम्, तस्य श्येनतिलस्य षष्ठ्यन्तं, पाते सप्तम्यन्तं, ञे सप्तम्यन्तम्। **अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्** सूत्र से **मुम्** की अनुवृत्ति आती है।

श्येन और तिल शब्दों को मुम् आगम होता है, ञ-प्रत्ययान्त पात-शब्द के उत्तरपद में रहते।

मुम् आगम है। इसमें मकार इत्संज्ञक और उकार उच्चारणार्थ है। मकार मात्र बचता है। उसके मित् होने के कारण **मिदचोऽन्त्यात् परः** सूत्र के नियम से जिसको विहित है, उसका अन्तावयव होकर बैठता है।

श्येनपातोऽस्यां वर्तते श्यैनम्पाता मृगया। जिस शिकार आदि क्रिया में आक्रमण करने वाला बाज पक्षी छोड़ा जाय। यहाँ पर **पत्** धातु से कृदन्तप्रकरण में घञ् प्रत्यय होने पर उपधादीर्घ होकर **पात** शब्द बना है। **श्येनस्य पातः** विग्रह में **कृद्योगा षष्ठी समस्यते** वार्तिक के द्वारा समास, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **श्येनपात** शब्द बना है। **श्येनपातोऽस्यां वर्तते** अर्थ में **श्येनपात+सु** में **घञः सास्यां क्रियेति ञः** सूत्र से ञ-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **श्येन+पात+अ** बना हुआ है। **श्येनतिलस्य पाते ञे** सूत्र से मुम् आगम, अनुबन्धलोप होकर **श्येनम्+पात+अ** बना है। मकार को **नश्चापदान्तस्य झलि** से अनुस्वार और उसको परसवर्ण मकार होकर **श्येनम्पात+अ** बना है। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि होने पर एकार को ऐकार तथा **यस्येति च** से भसंज्ञक अकार का लोप होकर **श्यैनम्पात** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन स्वादिकार्य होता है। स्त्रीत्वविवक्षा में ही ञ-प्रत्यय हुआ है, अतः टाप् होकर **श्यैनम्पाता** सिद्ध हो जाता है।

सूत्र में यद्यपि घञ्-प्रत्ययान्त **पात** शब्द का ही ग्रहण है तथापि **कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि ग्रहणम्** (कृत् के ग्रहण में गति और कारक पूर्व में हो तो भी ग्रहण होता है) इस परिभाषा के नियम से **श्येन** इस कारक पूर्वक **श्येनपात** शब्द का ग्रहण हो जाता है।

तिलपातोऽस्यां वर्तते तैलम्पाता स्वधा। जिस पितृकार्य में तिल गिराया जाता

है। यहाँ पर भी **पत्** धातु से घञ् प्रत्यय, समासादि होकर **तिलपात** शब्द बना है। **तिलपातोऽस्यां वर्तते** अर्थ में **तिलपात+सु** में **घञः सास्यां क्रियेति ञः** सूत्र से ञ-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक्, मुम् आगम, मकार को अनुस्वार और उसको परसवर्ण मकार, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **तैलम्पात** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन स्वादिकार्य होता है। स्त्रीत्वविवक्षा में ही ञ-प्रत्यय हुआ है, अतः टाप् होकर **तैलम्पाता** सिद्ध हो जाता है।

श्येनतिलस्य किम्? दण्डपातोऽस्यां तिथौ वर्तते दाण्डपाता तिथिः। प्रकृतसूत्र में **श्येनतिलस्य** पद का समावेश होने से श्येन और तिल शब्दों को ही मुम् आगम होता है, अन्य शब्दों को नहीं होता। **दण्डपातोऽस्यां वर्तते दण्डपाता तिथिः** (जिस तिथि में दण्ड=घटी की हानि हो) में मुम् आगम नहीं होता। अन्यकार्य **घञः सास्यां क्रियेति ञः** सूत्र से ञ-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकारलोप आदि होकर **दाण्डपात** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन स्वादिकार्य होता है। स्त्रीत्वविवक्षा में ही ञ-प्रत्यय हुआ है, अतः टाप् होकर **दाण्डपाता** सिद्ध हो जाता है।

अब प्राग्दीव्यतीयों के चौदहवें अर्थक्रम **तदधीते तद्वेद** अर्थ में प्रत्यय किया जा रहा है-

१२६९. तदधीते तद्वेद ४।२।५९॥
व्याकरणमधीते वेद वा वैयाकरणः।

तदधीते तद्वेद। तद् द्वितीयान्तानुकरणं लुप्तपञ्चम्यन्तम्, अधीते तिङन्तं क्रियापदं, तद् द्वितीयान्तानुकरणं लुप्तपञ्चम्यन्तं, वेद इति तिङन्तं क्रियापदम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** आदि का अधिकार तो चल ही रहा है। **प्रातिपदिकात्** से अन्वय करने के लिये द्वितीयान्त **तद्** शब्दों को पञ्चम्यन्त बना लेना चाहिये। **तद्** शब्द से समर्थविभक्ति द्वितीया का बोध होता है।

'उसे पढ़ता है' या 'उसे जानता है' इन अर्थों में द्वितीयान्त समर्थ प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय होता है।

इस सूत्र के कुछ उदाहरणों के लिये **न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्** की आवश्यकता होती है। यह सूत्र पदान्त यकार वकार से परे अच् की वृद्धि का निषेध करते हुये उनसे पूर्व के वर्णों को ऐच् अर्थात् ऐ, औ का क्रमशः करता है। यह **तद्धितेष्वचामादेः** आदि से प्राप्त वृद्धि का निषेध करके ऐच् आगम का विधान करता है। यथासंख्य होने से यकार से पूर्व **ऐ** और वकार से पूर्व **औ** होता है। ध्यान रहे कि ये आगम हैं आदेश नहीं और यकार तथा वकार से पूर्व में ही होंगे।

वैयाकरणः। व्याकरण पढ़ने या जानने वाला। व्याकरण-शब्द का अर्थ है-

शब्दों का विश्लेषण करने वाला शास्त्र अर्थात् शब्दसाधुत्व-प्रतिपादक शास्त्र। **व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते अनेन शब्दा इति व्याकरणम्।** प्रकृत में **व्याकरणम् अधीते वेद वा** लौकिक विग्रह और **व्याकरण अम्** अलौकिक विग्रह है। **तदधीते तद्वेद** से अण् प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **व्याकरण+अ** बना। यहाँ आदि अच् आकार की **तद्धितेष्वचामादेः** से वृद्धि प्राप्त थी उसे **न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्** से निषेध करके य से पहले **ऐ** का आगम हुआ- **व्+ऐ+याकरण+अ** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन होने पर **वैयाकरण** बन गया, सु, रुत्वविसर्ग करके **वैयाकरणः** सिद्ध हुआ।

ऐच् आगम का दूसरा उदाहरण- **वैयाघ्रिः**। व्याघ्र की सन्तान। **व्याघ्रस्य अपत्यं पुमान्** लौकिक विग्रह और **व्याघ्र ङस्** अलौकिक विग्रह है। **अत इञ्** से इञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **व्याघ्र+इ** बना है। अब यहाँ आदि अच् आकार की **तद्धितेष्वचामादेः** से वृद्धि प्राप्त थी उसे **न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्** से निषेध करके य से पहले **ऐ** का आगम हुआ- **व्+ऐ+याघ्र+इ** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन होने पर **वैयाघ्रि** बन गया, सु, रुत्वविसर्ग करके **वैयाघ्रिः** सिद्ध हो जाता है। यह उदाहरण रक्ताद्यर्थक प्रकरण का न होकर अपत्याधिकार प्रकरण का है। ऐज् आगम दिखाने के लिये दिया गया है। औकारागम का उदाहरण है- **स्वश्वस्यापत्यं सौवश्वः** इत्यादि।

तदधीते तद्वेद सूत्र में दो द्वितीयान्त **तद्** पद हैं तथा दो अर्थसूत्रक क्रियावाची पद **अधीते** और **वेद** हैं। इस प्रकार एक **तद्** पद **अधीते** के साथ और दूसरा **तद्** पद **वेद** के साथ अन्वित होता है। तदनुसार अध्ययन करने वाला और वेत्ता (जानकार) दोनों ही पृथक् लिये जाते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि वह अध्ययन कर रहा हो तो वह उसका ज्ञाता भी बन चुका हो। इस कारण सूत्र का स्वरूप **तदधीते वेद** नहीं रखा गया है। अतः **तत्** पद का दो बार निवेश करने से वाक्यभेद से अध्येता तथा विद्वान् अर्थ में प्रत्येक के साथ अलग-अलग पदों का अन्वय संगत हो जाता है।

आगे पाणिनि जी ने **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** (४.४.२) सूत्र पढ़ा है। उक्त सूत्र में तृतीयासमर्थविभक्ति का सूचक **तेन** यह एक पद ही रखा है और उसका अन्वय **दीव्यति, खनति, जयति, जितम्** इन चारों के साथ पृथक्-पृथक् किया है। अब यहाँ पर एक शंका होती है कि प्रकृतसूत्र में भी ऐसा क्यों नहीं किया जा सकता? इसका समाधान यह है कि यद्यपि इस सूत्र में ऐसा करने से काम चल सकता है तथापि अगले दो सूत्रों **क्रतूक्थादिसूत्रान्ताट्ठक्** और **वसन्तादिभ्यष्ठक्** में भी इन पदों की अनुवृत्ति जाती है। वहाँ गौणार्थक **क्रतु** और **वसन्त** आदि शब्दों से ठक् प्रत्यय किया जाता है। अन्यथा यज्ञस्वरूप अध्येता अर्थ में क्रतु की उपस्थिति असम्भव होने से ठक् प्रत्यय कैसे होगा? क्योंकि अध्ययन तो शब्द-विषयक है। यद्यपि यज्ञ के साहचर्य से क्रतु-विषयक ग्रन्थ का अध्ययन गौणार्थ में सम्भव हो सकता है, तथापि **गौणमुख्ययोर्मुख्ये कार्यसम्प्रत्ययः** इस

परिभाषा के बल पर मुख्य में कार्य की प्रवृत्ति होने के कारण **ज्ञाता** अर्थ में ही प्रत्यय हो सकेगा न कि अध्येता अर्थ में। एवमेव **वसन्तादिभ्यष्ठक्** सूत्र में वसन्त शब्द भी वसन्त-ऋतु का वर्णन करने वाले ग्रन्थों के रूप में अपेक्षित है, क्योंकि ऋतुवाची वसन्त-शब्द से अध्ययन अर्थ में प्रत्यय होना सम्भव नहीं है। अतः केवल मुख्य ज्ञाता अर्थ में ही सम्भव हो पायेगा। अतः प्रकृतसूत्र में द्वितीय **तद्** शब्द के ग्रहण से गौण अर्थ में प्रत्यय हो जायेगा। **अधिकस्याधिकं फलम्** अर्थात् एक शब्द के काम चलने पर अधिक शब्दों का पाठ करना कुछ अधिक कार्य को ओर सूचित करता है। इस तरह दो **तद्** शब्दों के द्वारा अध्येता अर्थ में प्रत्यय सम्भव होगा।

१२७०. क्रतूक्थादिसूत्रान्ताट्ठक् ४।२।६०॥

क्रतुविशेषवाचिनामेवेह ग्रहणम्। तेभ्यो मुख्यार्थेभ्यो वेदितरि, तत्प्रतिपादकग्रन्थपरेभ्यस्त्वध्येतरि। आग्निष्टोमिकः। वाजपेयिकः। उक्थं सामविशेषः, तल्लक्षणपरो ग्रन्थविशेषो लक्षणयोक्थम्, तदधीते वेद वा औक्थिकः। 'मुख्यार्थात्तूक्थशब्दाट्ठगणौ नेष्येते'। न्यायम्- नैयायिकः। वृत्तिम्- वार्तिकः। लोकायतम्- लौकायतिक इत्यादि।

'सूत्रान्तात्त्वकल्पादेरेवेष्यते' (वा.२७४४)। सांग्रहसूत्रिकः।

अकल्पादेः किम्? काल्पसूत्रः।

'विद्यालक्षणकल्पान्ताच्चेति वक्तव्यम्'(वा.२७४४)। वायसविद्यिकः।

गौलक्षणिकः। आश्वलक्षणिकः। पाराशरकल्पिकः।

'अङ्गक्षत्रधर्मत्रिपूर्वाद्विद्यान्ताच्चेति वक्तव्यम्'(वा.२७४५)।

आङ्गविद्यः। क्षात्रविद्यः। धर्मविद्यः। त्रिविधा विद्या त्रिविद्या, तामधीते वेद वा त्रैविद्यः।

'आख्यानाख्यायिकेतिहासपुराणेभ्यश्च' (वा.२७४६)। यवक्रीतमधिकृत्य कृतमाख्यानमुपचाराद्यवक्रीतम्, तदधीते वेत्ति वा यावक्रीतिकः। वासवदत्तामधिकृत्य कृता आख्यायिका वासवदत्ता। 'अधिकृत्य कृते ग्रन्थे '(सू.१४६७) इत्यर्थे 'वृद्धाच्छः' (सू.१३३७)।

तस्य 'लुबाख्यायिकाभ्यो बहुलम्' इति लुप्। ततोऽनेन ठक्। वासवदत्तिकः। ऐतिहासिकः। पौराणिकः।

'सर्वादेः सादेश्च लुग्वक्तव्यः'(वा.२७४८)। सर्ववेदानधीते सर्ववेदः। सर्वतन्त्रः। सवार्तिकः। 'द्विगोर्लुक्-'(सू.१०८०) इति लुक्। द्वितन्त्रः।

'इकन्-पदोत्तरपदाच्छतषष्टेः षिकन् पथः'(वा.२७४९-२७५०) पूर्वपदिकः। उत्तरपदिकः। शतपथिकः, शतपथिकी। षष्टिपथिकः, षष्टिपथिकी।

क्रतूक्थादिसूत्रान्ताड्ढक्। उक्थ आदिर्येषां ते उक्थादयः, बहुव्रीहिः। सूत्र-शब्दोऽन्ते यस्य स सूत्रान्तः, बहुव्रीहिः। क्रतुश्च उक्थादयश्च सूत्रान्तश्च तेषां समाहारद्वन्द्वः क्रतूक्थादिसूत्रान्तं, तस्मात् क्रतूक्थादिसूत्रान्तात् पञ्चम्यन्तं, ठक् प्रथमान्तम्। **तदधीते तद्वेद** के चारों पदों की अनुवृत्ति आती है। **ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार यथावत् है।

द्वितीया-समर्थ क्रतुवाचक शब्द, उक्थादिगणपठित शब्द और सूत्रान्त शब्दों से 'वह पढ़ता है' और 'वह जानता है' अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है।

यह **तदधीते तद्वेद** से प्राप्त अण् प्रत्यय का अपवाद है।

क्रतुविशेषवाचिनामेवेह ग्रहणम्। सूत्रोक्त **क्रतु** शब्द से केवल यज्ञ का ग्रहण न होकर यज्ञ-विशेष अर्थ का ग्रहण किया जाता है। यद्यपि लोक में क्रतु-शब्द यज्ञसामान्य के लिये प्रयुक्त होता है, तथापि प्रकृतसूत्र में वैदिक वाङ्मय में प्रयुक्त होम-हवि वाले यज्ञों का ही ग्रहण किया जाता है।

तेभ्यो मुख्यार्थेभ्यो वेदितरि, तत्प्रतिपादकग्रन्थपरेभ्यस्त्वध्येतरि। अर्थात् **तेभ्यः**=द्वितीयासमर्थ मुख्यार्थवाचक यज्ञविशेषवाची क्रतु-वाचक शब्दों से **वेदितरि**=ज्ञाता अर्थ में और **तत्प्रतिपादकग्रन्थपरेभ्यः**=तादृश यज्ञविशेष के प्रतिपादक ग्रन्थपरक क्रतुवाची शब्दों से **अध्येतरि**=अध्येता अर्थ में ठक् प्रत्यय किया जाता है।

आग्निष्टोमिकः। अग्निष्टोम यज्ञ का ज्ञाता अथवा उसकी विधि बतलाने वाले ग्रन्थ का अध्येता। **अग्निष्टोम** यज्ञविशेष है। **अग्निष्टोममधीते वेत्ति वा** अर्थ में **अग्निष्टोम+अम्** से **क्रतूक्थादिसूत्रान्ताड्ढक्** सूत्र से ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से **ठ** के स्थान पर **इक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आग्निष्टोमिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आग्निष्टोमिकः** सिद्ध हो जाता है।

वाजपेयिकः। वाजपेय यज्ञ का ज्ञाता अथवा उसकी विधि बतलाने वाले ग्रन्थ का अध्येता। **वाजपेय** यज्ञविशेष है। **वाजपेयम् अधीते वेत्ति वा** अर्थ में **वाजपेय+अम्** से **क्रतूक्थादिसूत्रान्ताड्ढक्** सूत्र से ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से **ठ** के स्थान पर **इक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **वाजपेयिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वाजपेयिकः** सिद्ध हो जाता है।

उक्थं सामविशेषः, तल्लक्षणपरो ग्रन्थविशेषो लक्षणयोक्थम्, तदधीते वेद वा औक्थिकः। साम तथा सामविशेष की **उक्थ** संज्ञा है। **उक्थ** के सम्बन्ध में भी लक्षणा का आश्रयण करके **प्रातिशाख्य ग्रन्थ** अर्थ ही भाष्यकार को अभीष्ट है, अर्थात्

मुख्यार्थ **उक्थ** न लेकर **उक्थ** का विवेचक प्रातिशाख्यरूप गौण अर्थ का ग्रहण किया है। अतः उक्थग्रन्थ के अध्येता एवं ज्ञाता अर्थों में ही ठक् प्रत्यय होगा। अतः **औक्थिकः** का अर्थ होगा- सामवेद के प्रातिशाख्य का अध्येता या ज्ञाता। **उक्थम् अधीते वेत्ति वा** अर्थ में **उक्थ+अम्** से **क्रतूक्थादिसूत्रान्ताट्ठक्** सूत्र से ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से **ठ** के स्थान पर **इक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **औक्थिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **औक्थिकः** सिद्ध हो जाता है।

मुख्यार्थात्तूक्थशब्दाट्ठगणौ नेष्यते। यह भाष्यकार का वचन है। इसका अर्थ है- मुख्यार्थ का वाचक उक्थ-शब्द से ठक् और अण् दोनों प्रत्यय इष्ट नहीं हैं। अतः लक्षणया उक्थ के प्रातिशाख्य का ग्रहण किया गया है।

उक्थादिगणः- उक्थ, लोकायत, न्यास, न्याय, पुनरुक्त, निरुक्त, निमित्त, द्विपदा, ज्योतिष, अनुपद, अनुकल्प, यज्ञ, धर्म, चर्चा, क्रमेतर, श्लक्ष, (श्लक्ष्ण), संहिता, पदक्रम, संघट, (संघट्ट), वृत्ति, परिषद्, संग्रह, गण, [गुण], आयुर्देव, (आयुर्वेद)।

अब आगे उक्थादिगणपठित तीन शब्दों के उदाहरण दिये जा रहे हैं-

न्यायम्। यह अगले **नैयायिकः** प्रयोग के लिये विग्रह प्रदर्शन है। इसमें **अधीते वेद वा** जोड़ना चाहिये।

नैयायिकः। न्यायशास्त्र का अध्येता या ज्ञाता। **न्यायम् अधीते वेत्ति वा** अर्थ में **न्याय+अम्** से **क्रतूक्थादिसूत्रान्ताट्ठक्** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से **ठ** के स्थान पर **इक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **न्याय+इक** बना है। **न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्** से ऐकारागम होकर **नैयाय+इक** बना है। भसंज्ञक अकार का लोप होकर **नैयायिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **नैयायिकः** सिद्ध हो जाता है।

वृत्तिम्- **वार्तिकः।** वृत्तिग्रन्थ का अध्येता या ज्ञाता। **वृत्तिम् अधीते वेत्ति वा** अर्थ में **वृत्ति+अम्** से **क्रतूक्थादिसूत्रान्ताट्ठक्** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से **ठ** के स्थान पर **इक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, ऋकार की आदिवृद्धि, रपर, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **वार्त्तिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वार्त्तिकः** सिद्ध हो जाता है।

लोकायतम्- लौकायतिक इत्यादि। लोकायत का अध्येता या ज्ञाता। **लोकायतम् अधीते वेत्ति वा** अर्थ में **लोकायत+अम्** से **क्रतूक्थादिसूत्रान्ताट्ठक्** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से **ठ** के स्थान पर **इक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, रपर, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **लौकायतिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **लौकायतिकः** सिद्ध हो जाता है। भूतवाद और उच्छेदवाद को लोकायत कहते हैं। **इत्यादि**-शब्द से उक्थादिगणीय अन्य

शब्दों से भी प्रत्यय करके रूपसिद्धि करनी चाहिये, यह निर्देश दिया गया है।

उक्थादिगणीय तीन शब्दों का उदाहरण देकर अब सूत्रान्त शब्दों की चर्चा कर रहे हैं, उसमें एक विशेष वार्तिक का उल्लेख है-

सूत्रान्तात्त्वकल्पादेरेवेष्यते। सूत्रान्त शब्द के विषय में यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- प्रकृतसूत्र में सूत्रान्त शब्दों से कल्पादि से ही न हो, उसी का ग्रहण करना इष्ट है। तात्पर्य यह है कि **कल्पसूत्र** शब्द से प्रकृतसूत्र द्वारा ठक् नहीं किया जाता। अतः नैसर्गिक अण् प्रत्यय होता है।

सांग्रहसूत्रिकः। संग्रहसूत्र का अध्येता या ज्ञाता। **संग्रहसूत्रम् अधीते वेत्ति वा** अर्थ में **संग्रहसूत्र+अम्** से **क्रतूक्थादिसूत्रान्ताड्ढक्** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से **ठ** के स्थान पर **इक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **सांग्रहसूत्रिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सांग्रहसूत्रिकः** सिद्ध हो जाता है। आचार्य व्याडि के द्वारा रचित लक्षश्लोकात्मक ग्रन्थ **संग्रह** नाम से प्रसिद्ध था किन्तु अब वह उपलब्ध नहीं है।

अकल्पादेः किम्? काल्पसूत्रः। अर्थात् **सूत्रान्तात्त्वकल्पादेरेवेष्यते** वार्तिक के द्वारा **अकल्पादेः** कहने के कारण कल्प-शब्द आदि में हो, ऐसे कल्पसूत्र-शब्द से ठक् नहीं होगा किन्तु **कल्पसूत्रम् अधीते वेत्ति वा** अर्थ में **कल्पसूत्र+अम्** से **तदधीते तद्वेद** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, रपर, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **काल्पसूत्र** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **काल्पसूत्रः** सिद्ध हो जाता है।

भाष्यकार ने तो कल्पसूत्र शब्द को छोड़कर अल्स सूत्रान्त-शब्दों से ठक्-विधान न करके **विद्यालक्षणसूत्रान्तादकल्पादेरिकक् स्मृतः** कह कर कल्पादिभिन्न विद्यालक्षण अन्य सूत्रान्त शब्दों से **इकक्** प्रत्यय का विधान किया है। ऐसा करने पर उक्त तीनों प्रकार की सिद्धि भी हो जाती है और **कल्पसूत्र** में इकक् का निवारण होने से अण् होकर **काल्पसूत्रः** भी बन जाता है।

प्रकृतसूत्र में न समाये हुये कुछ अन्य शब्दों से भी ठक् का विधान करने के लिये कुछ वार्तिक प्रस्तुत किये गये है-

विद्यालक्षणकल्पान्ताच्चेति वक्तव्यम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- विद्या, लक्षण और कल्प इन शब्दों के अन्त में रहने पर भी **तदधीते तद्वेद** अर्थ में ठक् प्रत्यय का विधान करना चाहिये।

वायसविद्यिकः। काकविद्या या पक्षिविद्या का अध्येता या ज्ञाता। **वायसविद्याम् अधीते वेत्ति वा** अर्थ में **वायसविद्या+अम्** से **विद्यालक्षणकल्पान्ताच्चेति वक्तव्यम्** वार्तिक के द्वारा ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **इक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्,

आदिवृद्धि, भसंज्ञक आकार का लोप होकर **वायसविद्यिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वायसविद्यिकः** सिद्ध हो जाता है।

गौलक्षणिकः। गौ के लक्षण बताने वाले ग्रन्थों का अध्येता या ज्ञाता। **गोलक्षणम् अधीते वेत्ति वा** अर्थ में **गोलक्षण+अम्** से **विद्यालक्षणकल्पान्ताच्चेति वक्तव्यम्** वार्तिक के द्वारा ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **इक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **गौलक्षणिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **गौलक्षणिकः** सिद्ध हो जाता है।

आश्वलक्षणिकः। अश्व के लक्षण बताने वाले ग्रन्थों का अध्येता या ज्ञाता। **अश्वलक्षणम् अधीते वेत्ति वा** अर्थ में **अश्वलक्षण+अम्** से **विद्यालक्षणकल्पान्ताच्चेति वक्तव्यम्** वार्तिक के द्वारा ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **इक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक आकार का लोप होकर **आश्वलक्षणिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आश्वलक्षणिकः** सिद्ध हो जाता है।

पाराशरकल्पिकः। पराशर के द्वारा प्रणीत कल्प-ग्रन्थों का अध्येता या ज्ञाता। **पराशरकल्पम् अधीते वेत्ति वा** अर्थ में **पराशरकल्प+अम्** से **विद्यालक्षणकल्पान्ताच्चेति वक्तव्यम्** वार्तिक के द्वारा ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **इक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक आकार का लोप होकर **पाराशरकल्पिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पाराशरकल्पिकः** सिद्ध हो जाता है।

अङ्गक्षत्रधर्मत्रिपूर्वाद्विद्यान्तान्नेति वक्तव्यम्। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- अङ्ग, क्षत्र, धर्म, त्रि इन शब्दों के पूर्व में रहते विद्या-शब्द से ठक् प्रत्यय नहीं होता। पूर्ववार्तिक से प्राप्त विद्यान्तलक्षण ठक् का निषेध है।

आङ्गविद्यः। अङ्गविद्या का अध्येता या ज्ञाता। **अङ्गविद्याम् अधीते वेत्ति वा** अर्थ में **अङ्गविद्या+अम्** से **विद्यालक्षणकल्पान्ताच्चेति वक्तव्यम्** वार्तिक के द्वारा ठक् प्रत्यय प्राप्त होने पर उसका **अङ्गक्षत्रधर्मत्रिपूर्वाद्विद्यान्तान्नेति वक्तव्यम्** वार्तिक से निषेध हो जाता है। फलतः **तदधीते तद्वेद** सूत्र से अण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक आकार का लोप होकर **आङ्गविद्य** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आङ्गविद्यः** सिद्ध हो जाता है।

क्षात्रविद्यः। क्षत्रिय-सम्बन्धी युद्धविद्या का अध्येता या ज्ञाता। **क्षत्रविद्याम् अधीते वेत्ति वा** अर्थ में **क्षत्रविद्या+अम्** से ठक् प्राप्त, निषेध हो जाने से नैसर्गिक अण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक आकार का लोप होकर **क्षात्रविद्य** शब्द बनता और स्वादिकार्य से **क्षात्रविद्यः** सिद्ध हो जाता है।

धार्मविद्यः। धर्मविद्या का अध्येता या ज्ञाता। **धर्मविद्याम् अधीते वेत्ति वा** अर्थ में **धर्मविद्या+अम्** से ठक् प्राप्त, निषेध हो जाने से नैसर्गिक अण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप,

प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक आकार का लोप होकर **धार्मविद्य** शब्द बनता और स्वादिकार्य से **धार्मविद्यः** सिद्ध हो जाता है।

त्रिविधा विद्या त्रिविद्या, तामधीते वेद वा त्रैविद्यः। तीनों वेदों की विद्या का अध्येता या ज्ञाता। **त्रिविधा विद्या** विग्रह में **शाकपार्थिवादीनां सिद्धय उत्तरपदलोपस्योपसंख्यानम्** वार्तिक से समास सहित **विधा** शब्द का लोप, समासप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **त्रिविद्या** शब्द बना है। **त्रिविद्याम् अधीते वेत्ति वा** अर्थ में **त्रिविद्या+अम्** से ठक् प्राप्त, निषेध हो जाने से नैसर्गिक अण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, इकार की आदिवृद्धि ऐकार, भसंज्ञक आकार का लोप होकर **त्रैविद्य** शब्द बनता और स्वादिकार्य से **त्रैविद्यः** सिद्ध हो जाता है।

आख्यानाख्यायिकेतिहासपुराणेभ्यश्च। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- आख्यान, आख्यायिका, इतिहास, पुराण शब्दों से भी **तदधीते तद्वेद** अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है। आख्यान और आख्यायिका शब्दों से अर्थ का ग्रहण किया जाता है और इतिहास तथा पुराण का स्वरूपग्रहण (शब्दग्रहण) है।

यवक्रीतमधिकृत्य कृतमाख्यानमुपचाराद्यवक्रीतम्, तदधीते वेत्ति वा यावक्रीतिकः। जौ के खरीद सम्बन्धी पुस्तक रूप आख्यान को उपचारवश (व्यवहारवश, लक्षणा से) **यवक्रीत** कहते हैं, उसका पढ़ने वाला या जानने वाला। **यवक्रीतम् अधीते वेत्ति वा** अर्थ में **यवक्रीत+अम्** में **आख्यानाख्यायिकेतिहासपुराणेभ्यश्च** वार्तिक से ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इक आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **यावक्रीतिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **यावक्रीतिकः** सिद्ध हो जाता है।

वासवदत्तामधिकृत्य कृता आख्यायिका वासवदत्ता। 'अधिकृत्य कृते ग्रन्थे ' इत्यर्थे 'वृद्धाच्छः', तस्य 'लुबाख्यायिकाभ्यो बहुलम्' इति लुप्। ततोऽनेन ठक्। वासवदत्तिकः। वासवदत्ता नाम की महारानी (नायिका) का आधार लेकर लिखी आख्यायिका को भी उपचारवश (व्यवहारवश, लक्षणा से) **वासवदत्ता** कहते हैं। यहाँ पर **वासवदत्ताम् अधिकृत्य कृता आख्यायिका** अर्थ में **अधिकृत्य कृते ग्रन्थे (४.३. ४७)** के प्रकरण में **वृद्धाच्छः** सूत्र से छ-प्रत्यय होने पर उसका **लुबाख्यायिकाभ्यो बहुलम्** वार्तिक से लुप् (लोप) होता है। इस तरह **वासवदत्ता** ही बना हुआ है। यहाँ प्रकृतप्रकरण में **वासवदत्ताम् अधीते वेत्ति वा** अर्थ में **वासवदत्ता+अम्** में **आख्यानाख्यायिकेतिहासपुराणेभ्यश्च** वार्तिक से ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इक आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक आकार का लोप करके **वासवदत्तिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वासवदत्तिकः** सिद्ध हो जाता है।

ऐतिहासिकः। इतिहास को पढ़ने या जानने वाला। **इतिहासम् अधीते वेत्ति**

वा अर्थ में **इतिहास+अम्** में **आख्यानाख्यायिकेतिहासपुराणेभ्यश्च** वार्तिक से ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इक आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **ऐतिहासिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **ऐतिहासिकः** सिद्ध हो जाता है।

पौराणिकः। पुराणों को पढ़ने या जानने वाला। **पुराणानि अधीते वेत्ति वा** अर्थ में **पुराण+शस्** में **आख्यानाख्यायिकेतिहासपुराणेभ्यश्च** वार्तिक से ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इक आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि होने पर उकार को औकार, भसंज्ञक अकार का लोप करके **पौराणिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पौराणिकः** सिद्ध हो जाता है।

सर्वादेः सादेश्च लुग्वक्तव्यः। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- सर्व-शब्द आदि वाले और स-शब्द आदि वाले शब्दों से **तदधीते तद्वेद** अर्थ में विहित प्रत्यय का लुक् कहना चाहिये। यह लुक् अभी तक विहित सभी प्रत्ययों का है किन्तु वह प्रकृति या तो सर्व-शब्द आदि वाली हो या स-शब्द आदि हो।

सर्ववेदानधीते सर्ववेदः। सभी वेदों का अध्येता या ज्ञाता। यहाँ **सर्ववेद** शब्द में **सर्व** आदि है। **सर्ववेदान् अधीते वेत्ति वा** अर्थ में **सर्ववेद+शस्** में **तदधीते तद्वेद** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर **सर्वादेः सादेश्च लुग्वक्तव्यः** वार्तिक से उसका लुक् हो जाता है। लुक् होने पर भी तद्धितान्तत्व बना रहता है। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सर्ववेदः** सिद्ध हो जाता है।

सर्वतन्त्रः। सभी शास्त्रों का अध्येता या ज्ञाता। **सर्वतन्त्राणि अधीते वेत्ति वा** अर्थ में **सर्ववेद+शस्** में **तदधीते तद्वेद** सूत्र से अण् प्रत्यय, उसका **सर्वादेः सादेश्च लुग्वक्तव्यः** वार्तिक से लुक्, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सर्वतन्त्रः** सिद्ध हो जाता है।

सवार्तिकः। वार्तिक सहित ग्रन्थों का अध्येता या ज्ञाता। यहाँ **सह वार्तिकैः** विग्रह में **तेन सहेति तुल्ययोगे** सूत्र से बहुव्रीहिसमास होने के बाद **वोपसर्जनस्य** सूत्र से **सह**-शब्द के स्थान पर **स** आदेश होने पर **सवार्तिक** शब्द बना है। **सवार्तिकानि सूत्राणि अधीते वेत्ति वा** अर्थ में **सवार्तिक+शस्** में **तदधीते तद्वेद** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर **सादि** शब्द मानकर **सर्वादेः सादेश्च लुग्वक्तव्यः** वार्तिक से उसका लुक् हो जाता है। ततः प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सवार्तिकः** सिद्ध हो जाता है।

द्विगोर्लुक्-' इति लुक्। अगले प्रयोग में **द्विगोर्लुगनपत्ये** सूत्र से तद्धित प्रत्यय का लुक् किया जाता है। यह द्विगुसमास होने पर विहित अपत्यार्थ प्रत्यय से भिन्न तद्धित का लुक् करता है। इसकी व्याख्या पहले हो चुकी है।

द्वितन्त्रः। दो शास्त्रों का अध्येता या ज्ञाता। यहाँ **द्वे तन्त्रे अधीते वेत्ति वा** अर्थ में **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** सूत्र से तद्धितार्थ की विवक्षा में समास, प्रातिपदिकसंज्ञा,

सुप् का लुक्, द्विगुसंज्ञा होकर **द्वितन्त्र** शब्द बना है। अब **तदधीते तद्वेद** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर **द्विगोर्लुगनपत्ये** सूत्र से उसका लुक् हो जाता है। अतः आदिवृद्धि नहीं होती। तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **द्वितन्त्रः** सिद्ध हो जाता है।

इकन्-पदोत्तरपदाच्छतषष्टेः षिकन् पथः। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- **पद**-शब्द उत्तरपद में हो ऐसे द्वितीया-समर्थ शब्द से **तदधीते तद्वेद** अर्थ में **इकन्** प्रत्यय होता है और **शत** और **षष्टि** शब्दों से परे **पथिन्** शब्द से **षिकन्** प्रत्यय होता है। **इकन्** में नकार इत्संक और **षिकन्** में नकार इत्संज्ञक है ही साथ ही षकार की **षः प्रत्ययस्य** सूत्र से इत्संज्ञा होती है, इतः **इक** ही बचता है। यद्यपि दानों प्रत्ययों में अनुबन्धलोप के बाद **इक** ही बचता है तथापि षित्करण से स्त्रीत्वविवक्षा में **षिद्गौरादिभ्यश्च** सूत्र से ङीष् होता है, यह भेद है। इन दोनों प्रत्ययों के परे रहते निमित्ताभाव होने के कारण आदिवृद्धि नहीं होती।

पूर्वपदिकः। पूर्वपद (पूर्वप्रकरण) का अध्येता या ज्ञाता। **पूर्वपदम् अधीते वेत्ति वा** अर्थ में **पूर्वपद+अम्** इस स्थिति में **इकन् पदोत्तरपदाच्छतषष्टेः षिकन् पथः** वार्तिक से इकन्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप करके **पूर्वपदिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पूर्वपदिकः** सिद्ध हो जाता है।

उत्तरपदिकः। उत्तरपद (उत्तरप्रकरण) का अध्येता या ज्ञाता। **उत्तरपदम् अधीते वेत्ति वा** अर्थ में **उत्तरपद+अम्** इस स्थिति में **इकन् पदोत्तरपदाच्छतषष्टेः षिकन् पथः** वार्तिक से इकन्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप, एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **उत्तरपदिकः** सिद्ध हो जाता है।

शतपथिकः, शतपथिकी। शतपथब्राह्मण का का अध्येता या ज्ञाता। यहाँ पर **शत**-शब्द से परे **पथिन्** शब्द में समासादि होकर **शतपथ** शब्द बना है। **शतपथम् अधीते वेत्ति वा** अर्थ में **शतपथ+अम्** इस स्थिति में **इकन् पदोत्तरपदाच्छतषष्टेः षिकन् पथः** वार्तिक से षिकन्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप करके **शतपथिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **शतपथिकः** सिद्ध हो जाता है। स्त्रीत्वविवक्षा में षित्त्वात् ङीष् होकर **शतपथिकी** सिद्ध होता है।

षष्टिपथिकः, षष्टिपथिकी। षष्टिपद भाग का अध्येता या ज्ञाता। यहाँ पर **षष्टि**-शब्द से परे **पथिन्** शब्द में समासादि होकर **षष्टिपथ** शब्द बना है। **षष्टिपथम् अधीते वेत्ति वा** अर्थ में **षष्टिपथ+अम्** इस स्थिति में **इकन् पदोत्तरपदाच्छतषष्टेः षिकन् पथः** वार्तिक से षिकन्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप करके **षष्टिपथिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन

प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **षष्टिपथिकः** सिद्ध हो जाता है। स्त्रीत्वविवक्षा में षित्त्वात् ङीष् होकर **षष्टिपथिकी** सिद्ध होता है।

१२७१. क्रमादिभ्यो वुन् ४।२।६१॥

क्रमकः। क्रम पद शिक्षा मीमांसा क्रमादिः।

क्रमादिभ्यो वुन्। क्रमः आदिर्येषां ते क्रमादयस्तेभ्यः। क्रमादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, वुन् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तदधीते तद्वेद** सूत्र का पूरा अनुवर्तन है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

द्वितीयान्त समर्थ क्रम आदि प्रातिपदिकों से 'पढ़ता है' अथवा 'जानता है' अर्थों में वुन् प्रत्यय होता है।

नकार की इत्संज्ञा होती है, **वु** बचता है। उसके स्थान पर **युवोरनाकौ** से **अक** आदेश हो जाता है।

क्रमकः। वैदिक क्रम पाठ को पढ़ने वाला या जानने वाला। **क्रमम् अधीते** अथवा **क्रमं वेद। क्रम अम्** में **क्रमादिभ्यो वुन्** से **वुन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **क्रम+वु** बना। **युवोरनाकौ** से **वु** के स्थान पर **अक** आदेश होकर **क्रम+अक** बना। **यस्येति च** से मकारोत्तरवर्ती अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन होकर **क्रमक** बना। स्वादिकार्य करके **क्रमकः** सिद्ध हुआ।

क्रमादिगणः- क्रम, पद, शिक्षा, मीमांसा, सामन्।

पदकः। वैदिक पदपाठ को पढ़ने वाला या जानने वाला। **पदम् अधीते** अथवा **पदं वेद। पद अम्** में **क्रमादिभ्यो वुन्** से **वुन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **पद+वु** बना। **युवोरनाकौ** से **वु** के स्थान पर **अक** आदेश होकर **पद+अक** बना। **यस्येति च** से दकारोत्तरवर्ती अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन होकर **पदक** बना। स्वादिकार्य करके **पदकः** सिद्ध हुआ।

शिक्षकः। शिक्षा ग्रन्थ को पढ़ने वाला या जानने वाला। **शिक्षाम् अधीते** अथवा **शिक्षां वेद। शिक्षा अम्** में **क्रमाादिभ्यो वुन्** से **वुन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **शिक्षा+वु** बना। **युवोरनाकौ** से **वु** के स्थान पर **अक** आदेश होकर **शिक्षा+अक** बना। **यस्येति च** से क्षा के उत्तरवर्ती आकार का लोप करके वर्णसम्मेलन होकर **शिक्षक** बना। स्वादिकार्य करके **शिक्षकः** सिद्ध हुआ।

मीमांसकः। मीमांसा शास्त्र को पढ़ने वाला या जानने वाला। **मीमांसाम् अधीते** अथवा **मीमांसां वेद। मीमांसा अम्** से **क्रमाादिभ्यो वुन्** से **वुन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **मीमांसा+वु** बना। **युवोरनाकौ** से **वु**

के स्थान पर **अक** आदेश होकर **मीमांसा+अक** बना। **यस्येति च** से सा के उत्तरवर्ती आकार का लोप करके वर्णसम्मेलन होकर **मीमांसक** बना। स्वादिकार्य करके **मीमांसकः** सिद्ध हुआ।

१२७२. अनुब्राह्मणादिनिः ४।२।६२॥

'तदधीते तद्वेद' (सू.१२६९) इत्यर्थे।

ब्राह्मणसदृशो ग्रन्थोऽनुब्राह्मणम्, तदधीतेऽनुब्राह्मणी।

मत्वर्थीयेनैव सिद्धेऽण्बाधनार्थमिदम्।

अनुब्राह्मणादिनिः। अनुब्राह्मणात् पञ्चम्यन्तम्, इनिः प्रथमान्तम्। **तदधीते तद्वेद** सूत्र का पूरा अनुवर्तन है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

द्वितीयान्त समर्थ अनुब्राह्मण प्रातिपदिक से 'पढ़ता है' अथवा 'जानता है' अर्थों में इनि-प्रत्यय होता है।

'तदधीते तद्वेद' इत्यर्थे। अर्थात् यह सूत्र भी **तदधीते तद्वेद** अर्थ में ही प्रत्यय का विधान करता है। **इनि** में अन्त्य इकार इत्संज्ञक या उच्चारणार्थ है, **इन्** बचता है। इकार को उच्चारणार्थक ही मानना अपेक्षित है, क्योंकि इकार की इत्संज्ञा होने पर भी तत्प्रयुक्त कार्य की प्राप्ति नहीं है।

ब्राह्मणसदृशो ग्रन्थोऽनुब्राह्मणम्, तदधीतेऽनुब्राह्मणी। वेद के ब्राह्मणभाग के समान शास्त्र को **अनुब्राह्मणम्** कहते हैं। उसे पढ़ने वाला या जानने वाला **अनुब्राह्मणी** है। यहाँ **अनुब्राह्मणम् अधीते वेत्ति वा** अर्थ में **अनुब्राह्मण+अम्** से **अनुब्राह्मणादिनिः** सूत्र के द्वारा **इनि** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप करके **अनुब्राह्मणिन्** शब्द बना है। स्वादिकार्य होने पर उपधादीर्घ और सकार का लोप होकर **अनुब्राह्मणी** सिद्ध हो जाता है।

मत्वर्थीयेनैव सिद्धेऽण्बाधनार्थमिदम्। यह कह रहे हैं यद्यपि **अनुब्राह्मणम् अस्यास्ति** अर्थ में **अत इनिठनौ** (५.२.११२) सूत्र के द्वारा मत्वर्थीय **इनि** प्रत्यय करने पर भी उक्त **अनुब्राह्मणी** रूप बन जाता तथापि **तदधीते तद्वेद** सूत्र से प्राप्त अण् का बाधन करने के लिये प्रकृतसूत्र की सार्थकता है। महाभाष्यकार ने अन्य उपायों से इस सूत्र का प्रत्याख्यान ही कर दिया है।

१२७३. वसन्तादिभ्यष्ठक् ४।२।६३॥

वासन्तिकः। अथर्वाणमधीते आथर्वणिकः।

'दण्डिनायन-'(सू.११४५) इति सूत्रे निपातनाट्टिलोपो न।

वसन्तादिभ्यष्ठक्। वसन्त आदिर्येषां ते वसन्तादयस्तेभ्यो वसन्तादिभ्यः पञ्चम्यन्तं,

ठक् प्रथमान्तम्। **तदधीते तद्वेद** सूत्र का पूरा अनुवर्तन है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

द्वितीयान्त समर्थ वसन्तादि-गणपठित प्रातिपदिकों से 'पढ़ता है' अथवा 'जानता है' अर्थों में ठक्-प्रत्यय होता है।

ककार इत्संज्ञक है और शिष्ट **ठ** के स्थान पर **इक** आदेश होता है। वसन्त आदि शब्द ऋतु के वाचक हैं। इन शब्दों से अध्येता या ज्ञाता अर्थ में प्रत्यय होना सम्भव नहीं है, अतः विधान-सामर्थ्य से वसन्त आदि ऋतुवाची शब्द लक्षणावृत्ति के द्वारा वसन्त आदि ऋतु-वर्णन करने वाले ग्रन्थों के बोधक हैं।

वासन्तिकः। वसन्त ऋतु से सम्बद्ध ग्रन्थों का पढ़ने वाला या जानने वाला। **वसन्तम् अधीते वेत्ति वा** अर्थ में **वसन्त+अम्** से **वसन्तादिभ्यष्ठक्** सूत्र के द्वारा **ठक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **इक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **वासन्तिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वासन्तिकः** सिद्ध हो जाता है।

अथर्वाणमधीते आथर्वणिकः। 'दण्डिनायन-' इति सूत्रे निपातनाट्टिलोपो न। अथर्व-वेद को पढ़ने वाला या जानने वाला। **अथर्वाणम् अधीते वेत्ति वा** अर्थ में **अथर्वन्+अम्** से **वसन्तादिभ्यष्ठक्** सूत्र के द्वारा **ठक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **इक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि होकर **आथर्वन्+इक** बना है। **नस्तद्धिते** सूत्र से टिसंज्ञक भाग **इन्** का लोप प्राप्त था किन्तु **दाण्डिनायनहास्तिनायनाथर्वणिक-जैह्माशिनेयवाशिनायनिभ्रौणहत्यधैवत्यसारवैक्ष्वाकमैत्रेयहिरण्मयानि (६.४.१७४)** सूत्र में **आथर्वणिक** शब्द का पाठ होने से निपातनात् टिलोपाभाव माना जाता है। नकार को णत्व होकर **आथर्वणिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आथर्वणिकः** सिद्ध हो जाता है।

वसन्तादिगणः- वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर, प्रथम, गुण, चरम, अनुगुण, अथर्वन्, आथर्वण।

१२७४. प्रोक्ताल्लुक् ४।२।६४॥

प्रोक्तार्थकप्रत्ययात् परस्याध्येतृवेदितृप्रत्ययस्य लुक् स्यात्।
पणनं पणः। 'घञर्थे कविधानम्' इति कः, सोऽस्यास्तीति पणी।
तस्य गोत्रापत्यं पाणिनः।

प्रोक्ताल्लुक्। प्रोक्तात् पञ्चम्यन्तं, लुक् प्रथमान्तम्। **तदधीते तद्वेद** का अनुवर्तन है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

प्रोक्त-प्रत्ययान्त द्वितीयान्त समर्थ प्रातिपदिकों से अध्येतृ और वेदितृ अर्थ में विहित प्रत्यय का लुक् होता है।

यहाँ **पाणिनि**-शब्द की व्युत्पत्ति दिखलाने का प्रयत्न है। **अधीते वेद** का ही विषय है। सूत्रस्थ **प्रोक्त**-शब्द प्रोक्तार्थ में हुये प्रत्यय का बोधक है। अनुवृत्त **अध्येतृ, वेदितृ** अर्थ में हुए प्रत्यय लोपरूपी आदेश के बोधक हैं।

पणनं पणः। 'घञर्थे कविधानम्' इति कः, सोऽस्यास्तीति पणी। तस्य गोत्रापत्यं पाणिनः। पणिन् का पौत्र **पाणिन** कहलाता है। **पण व्यवहारे स्तुतौ च** धातु का ग्रहण है और उसकी स्तुति अर्थ ही यहाँ पर ग्राह्य है। **पण्**-धातु से **घञर्थे क-विधानम्** वार्तिक से कृत्संज्ञक **क** प्रत्यय, अनुबन्धलोप होकर **पण** शब्द बनता है। इसका अर्थ है- **पणनं पणः** अर्थात् स्तुति की क्रिया को **पण** कहते हैं। **पणः अस्य अस्ति** अर्थ में **पण+सु** में **अत इनिठनौ** सूत्र के द्वारा मत्वर्थीय **इनि** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पणिन्** शब्द बन जाता है। **पणिनो गोत्रापत्यम्** अर्थ में **पणिन्**-शब्द से अण्-प्रत्यय, आदिवृद्धि होकर **पाणिन** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **पाणिनः** सिद्ध हो जाता है। अण् प्रत्यय होकर **पाणिन्+अ** बनने पर **नस्तद्धिते** सूत्र से टिलोप प्राप्त था किन्तु अपत्यार्थक अण् प्रत्यय होने के कारण **इनण्यनपत्ये** सूत्र से प्रकृतिभाव प्राप्त नहीं हुआ, अतः वक्ष्यमाण **गाथिविदथि०** सूत्र से प्रकृतिभाव करके **पाणिन** बनने के बाद स्वादिकार्य होकर **पाणिनः** बन जाता है। शेष प्रक्रिया अगले सूत्र में होगी।

१२७५. गाथिविदथिकेशिगणिपणिनश्च ६।४।१६५॥

एतेऽणि प्रकृत्या स्युः। इति टिलोपो न। ततो यून्यपत्ये इञ्। पाणिनिः।

गाथिविदथिकेशिगणिपणिनश्च। गाथी च विदथी च केशी च गणी च पणी च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो गाथिविदथिकेशिगणिपणिनः प्रथमाबहुवचनान्तं, चाव्ययम्। **प्रकृत्यैकाच्** से **प्रकृत्या** की, **इनण्यनपत्ये** से **इन्, अणि** की अनुवृत्ति आती है।

अण् प्रत्यय के परे रहते गाथिन्, विदथिन्, केशिन्, गणिन्, पणिन् इन शब्दों में प्रकृतिभाव होता है।

इति टिलोपो न। प्रकृतिभाव होने से टिलोप नहीं होता।

ततो यून्यपत्ये इञ्। पाणिनिः। अर्थात् ऊपर **पाणिनः** बनाया जा चुका है और प्राप्त टिलोप का **गाथिविदथिकेशिगणिपणिनश्च** सूत्र के द्वारा प्रकृतिभाव करके अभाव किया जा चुका है। अब **पाणिनस्य युवापत्यम्** (पाणिन का प्रपौत्रादि) अर्थ में **पाणिन+ङस्** में **अत इञ्** सूत्र से **इञ्** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पाणिनि** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पाणिनिः** सिद्ध हो जाता है। इस तरह मूलप्रकृति

पणिन् शब्द से गोत्रापत्य और युवापत्य अर्थों में दो-दो प्रत्ययों के करने से **पाणिनिः** की सिद्धि होती है।

पूर्वसूत्र के लिये उदाहरण होगा- **पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयम्** अर्थात् **तेन प्रोक्तम्** के अर्थ में **वृद्धाच्छः** सूत्र से छ-प्रत्यय होने पर उसके स्थान पर **ईय** आदेश, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पाणिनीय** शब्द बनता है। अब **पाणिनीयम् अधीते वेत्ति वा** अर्थ में **तदधीते तद्वेद** से विहित प्रत्यय का **प्रोक्ताल्लुक्** सूत्र से लुक् होकर **पाणिनीय** ही बनता है और स्वादिकार्य से **पाणिनीयः** सिद्ध हो जाता है।

१२७६. ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः २।४।५८॥

ण्यप्रत्ययान्तात् क्षत्रियगोत्रप्रत्ययान्तादृष्यभिधायिनो गोत्रप्रत्ययान्ताद् ञितश्च परयोर्युवाभिधायिनोरणिञोर्लुक् स्यात्। कौरव्यः पिता, कौरव्यः पुत्रः। श्वाफल्कः पिता, श्वाफल्कः पुत्रः। वासिष्ठः पिता, वासिष्ठः पुत्रः। तैकायनिः पिता, तैकायनिः पुत्रः। 'एभ्यः' किम्? शिवाद्यण्। कौहडः पिता। तत इञ्। कौहडिः पुत्रः। 'यूनि' किम्? वामरथ्यस्यच्छात्रा वामरथाः, इत्यणो लुक्तु न भवति, आर्षग्रहणेन प्रतिपदोक्तस्य ऋष्यण एव ग्रहणात्। पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयम्। 'वृद्धाच्छः'(सू.१३३७)। इञश्च (सू.१३३३) इत्यण् तु न, गोत्रे य इञ् तदन्तादिति वक्ष्यमाणत्वात्। ततोऽध्येतृवेदित्रणो लुक्। स्वरे स्त्रियां च विशेषः। पाणिनीयः। पाणिनीया।

ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः। ञ् इत् यस्य स ञित्, बहुव्रीहिः। ण्यश्च क्षत्रियश्च आर्षश्च ञित् च तेषां समाहारद्वन्द्वो ण्यक्षत्रियार्षञित्, तस्मात् ण्यक्षत्रियार्षञितः। अण् च इञ् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वोऽणिञौ, तयोः अणिञोः। ण्यक्षत्रियार्षञितः पच्यम्यन्तं, यूनि सप्तम्यन्तं, लुक् प्रथमान्तम्, अणिञोः षष्ठीद्विवचनान्तम्।

ण्य-प्रत्ययान्त, गोत्रप्रत्ययान्त, क्षत्रियवाची गोत्र-प्रत्ययान्त, ऋषिवाची गोत्रप्रत्ययान्त और ञित् गोत्रप्रत्ययान्त शब्दों से परे युवार्थ के अभिधायी अण् और इञ् प्रत्यय का लुक् होता है।

प्रसंगानुसार लुक् का ही प्रकरण है और युवार्थक अण् और इञ् प्रत्यय का ही लुक् किया जा रहा है।

ण्यप्रत्ययान्त का उदाहरण-

कौरव्यः पिता, कौरव्यः पुत्रः। कुरु का पौत्र और प्रपौत्र। **कुरोः गोत्रापत्यम्** अर्थ में **कुरु+ङस्** में **कुरुनादिभ्यो ण्यः** सूत्र से ण्य-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, **ओर्गुणः** सूत्र से उकार को गुण ओकार और उसको अवादेश

होकर **कौरव्य** शब्द बनता है। **कौरव्यस्य युवापत्यम्** अर्थ में कौरव्य+ङस् में **अत इञ्** सूत्र से इञ् प्रत्यय होने पर उसका **ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः** सूत्र से लुक् हो जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कौरव्यः** ही सिद्ध हो जाता है। इस तरह **कुरु** के पौत्र और प्रपौत्र दोनों के लिये **कौरव्यः** ही प्रयुक्त होता है। पौत्र का पुत्र प्रपौत्र होता है। यद्यपि इस सूत्र का उदाहरण तो **कौरव्यः पुत्रः** ही है किन्तु गोत्रापत्य और युवापत्य में रूप-साम्य होने के कारण मूल में **कौरव्यः पिता, कौरव्यः पुत्रः** यह अर्थभेद दिखाया गया है।

क्षत्रियवाची का उदाहरणः-

श्वाफल्कः पिता, श्वाफल्कः पुत्रः। श्वफल्क का पौत्र और प्रपौत्र। **श्वफल्कस्य गोत्रापत्यम्** अर्थ में **श्वफल्क+ङस्** में **ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च** सूत्र से अण्-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **श्वाफल्क** शब्द बनता है। **श्वाफल्कस्य युवापत्यम्** अर्थ में **श्वाफल्क+ङस्** में **अत इञ्** सूत्र से इञ् प्रत्यय होने पर उसका **ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः** सूत्र से लुक् हो जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **श्वाफल्कः** ही सिद्ध हो जाता है। इस तरह **श्वफल्ककुरु** के पौत्र और प्रपौत्र दोनों के लिये **कौरव्यः** ही प्रयुक्त होता है। प्रकृतसूत्र का मुख्य उदाहरण **श्वाफल्कः पुत्रः** है।

ऋषिवाची गोत्रप्रत्ययान्त का उदाहरण-

वासिष्ठः पिता, वासिष्ठः पुत्रः। वसिष्ठ का पौत्र और प्रपौत्र। **वसिष्ठस्य गोत्रापत्यम्** अर्थ में **वसिष्ठ+ङस्** में **ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च** सूत्र से अण्-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **वासिष्ठ** शब्द बनता है। **वासिष्ठस्य युवापत्यम्** अर्थ में **वासिष्ठ+ङस्** में **अत इञ्** सूत्र से इञ् प्रत्यय होने पर उसका **ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः** सूत्र से लुक् हो जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वासिष्ठः** ही सिद्ध हो जाता है।

ञित् गोत्रप्रत्ययान्त का उदाहरण-

तैकायनिः पिता, तैकायनिः पुत्रः। तिक का पौत्र और प्रपौत्र। **तिकस्य गोत्रापत्यम्** अर्थ में **तिक+ङस्** में **तिकादिभ्यः फिञ्** सूत्र के द्वारा फिञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, फकार के स्थान पर आयन् आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **तैकायनि** शब्द बनता है। **तैकायनेः युवापत्यम्** अर्थ में **तैकायनि+ङस्** में **तस्यापत्यम्** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर उसका **ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः** सूत्र से लुक् हो जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **तैकायनिः** ही सिद्ध हो जाता है। यहाँ भी सूत्र का मूल उदाहरण है- **तैकायनिः पुत्रः**।

अब पदकृत्य और प्रत्युदाहरण बता रहे हैं-

'एभ्यः' किम्? शिवाद्यण्। कौहडः पिता। तत इञ्। कौहडिः पुत्रः। अर्थात् **एभ्यः**=ण्यक्षत्रियार्षञितः पद के निवेश का यह प्रयोजन है कि ण्य, क्षत्रिय, आर्ष और ञित् होने पर युवापत्यार्थ में विहित अण्, इञ् का लोप हो, अन्यत्र न हो। अतः **कुहडस्य गोत्रापत्यम्** अर्थ में **कुहड+ङस्** में **शिवादिभ्योऽण्** से अण्-प्रत्यय होकर **कौहड** शब्द बना है। यहाँ पर उक्त ण्य, क्षत्रिय, आर्ष और ञित् में से कुछ भी नहीं है। फलतः **कौहडस्य युवापत्यम्** अर्थ में **अत इञ्** सूत्र से इञ् प्रत्यय होने पर भी **ण्यक्षत्रियार्षञितो यूनि लुगणिञोः** सूत्र से लुक् नहीं होता। भसंज्ञक अकार का लोप होकर कौहडि शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कौहडिः** पुत्र सिद्ध हो जाता है। यहाँ पिता और पुत्र के लिये अलग-अलग ही शब्द बन गये हैं- **कौहडः पिता, कौहडिः पुत्रः**।

'यूनि' किम्? **वामरथ्यस्यच्छात्रा वामरथाः, इत्यणो लुक्तु न भवति, आर्षग्रहणेन प्रतिपदोक्तस्य ऋष्यण एव ग्रहणात्।** प्रकृतसूत्र में **यूनि** पद के निवेश से युवार्थक अण्, इञ् का ही लुक् होता है, अन्य अर्थ में विहित उक्त प्रत्ययों का लुक् नहीं होता। फलतः **वामरथस्य गोत्रापत्यम्** अर्थ में **वामरथ**-शब्द से **कुर्वादिभ्यो ण्यः** सूत्र से ण्य प्रत्यय होकर **वामरथ्य** शब्द बनता है। इसके बाद **वामरथ्यस्य छात्राः** (वामरथ्य के छात्र) अर्थ में ण्यप्रत्ययान्त **वामरथ्य**-शब्द से अण् प्रत्यय होने पर भी अण् प्रत्यय का लुक् नहीं होता, क्योंकि यहाँ का अण् युवार्थ में न होकर **तस्येदम्** अर्थ में हुआ है। **इत्यणो लुक् तु न भवति**=यहाँ लुक् तो नहीं होता, क्योंकि प्रकृतसूत्र में **आर्ष**-शब्द का ग्रहण करके प्रतिपदोक्त **ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च** सूत्र के द्वारा विहित अण् प्रत्यय का ही ग्रहण है, अन्य का नहीं।

प्रकृतसूत्र में **अणिञोः** पद का यह प्रयोजन है कि युवापत्य अर्थ में विहित जो अण् और इञ् प्रत्यय, उनका ही लुक् हो, अन्य प्रत्ययों का न हो।

पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयम्। 'वृद्धाच्छः'। 'इञश्च' इत्यण् तु न, गोत्रे य इञ् तदन्तादिति वक्ष्यमाणत्वात्। ततोऽध्येतृवेदित्रणो लुक्। स्वरे स्त्रियां च विशेषः। पाणिनीयः। पाणिनीया। यहाँ पूर्वसूत्र का विषय है अर्थात् **प्रोक्ताल्लुक्** का ही विषय है। **पणनं पणः। पणः अस्यास्तीति पणी। तस्य गोत्रापत्यं पाणिनः।** पणिन् का पौत्र **पाणिन** कहलाता है। **पण+सु** में **अत इनिठनौ** सूत्र के द्वारा मत्वर्थीय **इनि** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पणिन्** शब्द बन जाता है। **पणिनो गोत्रापत्यम्** अर्थ में **पणिन्**-शब्द से अण्-प्रत्यय, आदिवृद्धि होकर **पाणिन** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **पाणिनः** सिद्ध हो जाता है। अण् प्रत्यय होकर **पाणिन्+अ** बनने पर **नस्तद्धिते** सूत्र से टिलोप प्राप्त था किन्तु अपत्यार्थक अण् प्रत्यय होने के कारण **इनण्यनपत्ये** सूत्र से प्रकृतिभाव प्राप्त नहीं हुआ, अतः **गाथिविदथिकेशिगणिपणिनश्च** सूत्र के द्वारा प्रकृतिभाव करके अभाव किया जाता है। अब **पाणिनस्य युवापत्यम्** (पाणिन का प्रपौत्रादि) अर्थ में **पाणिन+ङस्** में **अत इञ्**

सूत्र से **इञ्** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पाणिनि** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पाणिनिः** सिद्ध हो जाता है। इस तरह मूलप्रकृति **पणिन्** शब्द से गोत्रापत्य और युवापत्य अर्थों में दो-दो प्रत्ययों के करने से **पाणिनिः** की सिद्धि होती है। अब पुनः **पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयम्** अर्थात् **तेन प्रोक्तम्** के अर्थ में **वृद्धाच्छः** सूत्र से छ-प्रत्यय होने पर उसके स्थान पर **ईय** आदेश, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पाणिनीय** शब्द बनता है। अब **पाणिनीयम् अधीते वेत्ति वा** अर्थ में **तदधीते तद्वेद** के अर्थ में विहित प्रत्यय का **प्रोक्ताल्लुक्** सूत्र से लुक् होकर **पाणिनीय** ही बनता है और स्वादिकार्य से **पाणिनीयः** सिद्ध हो जाता है। स्त्रीत्वविवक्षा में टाप् प्रत्यय होकर **पाणिनीया** सिद्ध हो जाता है।

अब यहाँ पर शंका की जाती है कि **पाणिनि** शब्द से प्रोक्त अर्थ में छ-प्रत्यय न करके **इञश्च** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय करने पर लोप की सम्भावना प्रबल हो जायेगी? इसका समाधान यह है कि वहाँ गोत्रप्रत्ययान्त इञ् से अण् प्रत्यय का विधान विवक्षित है और **पाणिनि** शब्द में इञ् प्रत्यय युवार्थ में है, न कि गोत्रार्थ में। फिर यह शंका की जाती है कि प्रोक्तार्थ में निष्पन्न **पाणिनीय** शब्द से **तदधीते तद्वेद** सूत्र से अध्येतृ-वेदितृ अर्थ में पुनः होने वाला अण् प्रत्यय का **प्रोक्ताल्लुक्** सूत्र से लुक् होने पर भी **पाणिनीयः** ही बनेगा तो लुक् करने और न करने में क्या भेद हुआ? इसका भी समाधान मूलकार ने ही किया है कि लुक् करने व न करने में यद्यपि कोई भेद नहीं है तथापि स्वर और स्त्रीलिङ्ग में भेद की प्रतीति हो जाती है। स्वर में अण्-प्रत्ययाभाव में अन्तोदात्त होगा और स्त्रीत्वविवक्षा में होने अणन्त से **टिड्ढाणञ्०** सूत्र से ङीप् प्रत्यय होगा और अणभाव में **अजाद्यतष्टाप्** से टाप् प्रत्यय होगा, जिससे **पाणिनीया** बन सकेगा। इतना विवेचन पढ़ने के बाद पुनः मूलपंक्ति को लगाया जाय, तो मूलार्थ स्पष्ट हो जायेगा।

१२७७. सूत्राच्च कोपधात् ४।२।६५॥

सूत्रवाचिनः ककारोपधादध्येतृवेदितृप्रत्ययस्य लुक् स्यात्। अप्रोक्तार्थ आरम्भः। अष्टावध्यायाः परिमाणमस्य अष्टकं पाणिनेः सूत्रम्। तदधीयते विदन्ति वा अष्टकाः। 'संख्याप्रकृतिकादिति वाच्यम्'। नेह- माहावार्तिकः। कालापकः।

सूत्राच्च कोपधात्। ककार उपधा यस्य स कोपधस्तस्मात् कोपधात्। सूत्रात् पञ्चम्यन्तं, कोपधात् पञ्चम्यन्तम्। **प्रोक्ताल्लुक्** से **लुक्** का और **तदधीते तद्वेद** के सभी पदों का अनुवर्तन है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

द्वितीयान्त समर्थ ककार-उपधा वाले सूत्रवाची प्रातिपदिकों से परवर्ती अध्येतृ और वेदितृ अर्थ में विहित प्रत्यय का लुक् होता है।

अप्रोक्तार्थ आरम्भः। अर्थात् **प्रोक्ताल्लुक्** सूत्र से प्रोक्त प्रत्यय का लुक् किया जाता था किन्तु प्रकृतसूत्र का आरम्भ अप्रोक्त प्रत्यय के लुक् के लिये है। अप्रोक्तार्थ में लुक् के लिये सूत्रवाची और कोपध शब्द का होना आवश्यक है। सूत्रोक्त **सूत्र** शब्द का सूत्रवाची अर्थ है।

अष्टावध्यायाः परिमाणमस्य अष्टकं पाणिनेः सूत्रम्। तदधीयते विदन्ति वा अष्टकाः। आठ अध्याय परिमाण है जिन सूत्रों का, उसे **अष्टक** कहा जाता है और पाणिनीयसूत्र ही आठ अध्यायों के परिमाण में है, अतः पाणिनीय-सूत्रावली को ही **अष्टक** कहा जा सकता है, तादृश अष्टक के अध्येता और ज्ञाता को भी **अष्टक** ही कहा जाता है। **अष्टौ अध्यायाः परिमाणम् अस्य** अर्थ में **अष्टन्+जस्** से **तदस्य परिमाणम्** (५.१.५७) सूत्र के अधिकार में **संख्यायाः संज्ञासंघसूत्राध्ययनेषु** (५.१.५८) सूत्र के अनुसार **संख्याया अतिशदन्तायाः कन्** (५.१.२२) सूत्र से **कन्** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, नकार का **नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप होकर **अष्टक** शब्द बना है। यह अष्टाध्यायी का पर्यायवाची शब्द है। अब **अष्टकम् अधीयते विदन्ति वा** अर्थ में **अष्टक+अम्** से **तदधीते तद्वेद** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर उसका प्रकृतसूत्र **सूत्राच्च कोपधात्** से लुक् हो जाता है, क्योंकि अष्टक-शब्द कोपध भी है और सूत्रवाची भी। अतः **अष्टक** ही बना हुआ है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर बहुवचन में **अष्टकाः** सिद्ध हो जाता है। इसका अर्थ है- पाणिनीय अष्टक के अध्येता या ज्ञाता लोग।

'संख्याप्रकृतिकादिति वाच्यम्'। यह वार्तिक नहीं है किन्तु **सूत्राच्च कोपधात्** सूत्र में पठित भाष्यवचन का संग्रह है- **संख्याप्रकृतेरिति वक्तव्यम्।** इसका अर्थ है- प्रकृतसूत्र में ककारोपध सूत्रवाची शब्द वे ही लिये जायेंगे जिनकी प्रकृति संख्यावाचक शब्द हो तथा उनसे ही अध्येतृ और वेदितृ प्रत्ययों का विधान किया गया हो।

नेह- माहावार्तिकः, कालापकः। उक्त भाष्यवचन के फलस्वरूप **माहावार्तिकः, कालापकः** आदि में प्रत्यय का लुक् नहीं हुआ है। प्रक्रिया- **महावार्तिकम् अधीते** अर्थ में **महावार्तिक+अम्** में **तदधीते तद्वेद** सूत्र से अण् प्रत्यय हो जाता है। प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **महावार्तिक+अ** बना हुआ है। यहाँ यद्यपि ककारोपध शब्द है किन्तु संख्याप्रकृतिक नहीं है। अतः उक्त भाष्यवचन के अनुसार अध्येतृ-वेदितृ अर्थ में विहित अण् प्रत्यय का **सूत्राच्च कोपधात्** से लुक् नहीं होता। फलतः आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **माहावार्तिक** तथा स्वादिकार्य से **माहावार्तिकः** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **कलापिना प्रोक्तम् अधीते** अर्थ में **कलापिन्+अम्** में **तेन प्रोक्तम्** सूत्र से प्रोक्तार्थ में अण् प्रत्यय हो जाता है। प्रातिपदिकसंज्ञा

और सुप् का लुक् होकर **कलापिन्+अ** बना हुआ है। यहाँ **कलापिनोऽण्** (१४८८) सूत्र में पठित **नान्तस्य टिलोपे सब्रह्मचारिपीठसर्पिकलापि०** वार्तिक से टिलोप होकर **कलाप+अ** बनता है। आदिवृद्धि होकर **कालाप** शब्द बन जाता है। इससके पुनः **कालापम् अधीते** अर्थ में अण् होने के बाद प्रोक्तार्थक अण् का लुक् लुक् होकर (**प्रोक्ताल्लुक्**) **कालाप** ही बना हुआ है। उसके बाद **कालापानामाम्नायः** अर्थ में **गोत्रचरणाद् वुञ्** (४.३.१२६) सूत्र से **वुञ्** प्रत्यय होने पर **वु** के स्थान पर **युवोरनाकौ** सूत्र से **अक** आदेश होने पर भसंज्ञक अकार का लोप होकर **कालापक** शब्द बन जाता है। इसके बाद **कालापकम् अधीते वेत्ति वा** अर्थ में अण् प्रत्यय प्रत्यय होने पर यद्यपि यह ककारोपध शब्द है किन्तु संख्याप्रकृतिक नहीं है। अतः उक्त भाष्यवचन के अनुसार अध्येतृ-वेदितृ अर्थ में विहित अण् प्रत्यय का **सूत्रान्तात्कोपधात्** से लुक् नहीं होता। फलतः आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **कालापक** ही बनता है और स्वादिकार्य से **कालापकः** सिद्ध हो जाता है। यद्यपि लुक् और अलुक् दोनों स्थितियों में रूप में अन्तर नहीं आता तथापि स्वर और स्त्रीलिंग में भेद हो जाता है।

१२७८. छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि ४।२।६६॥

छन्दांसि ब्राह्मणानि च प्रोक्तप्रत्ययान्तानि तद्विषयाणि स्युः। अध्येतृवेदितृप्रत्ययं विना न प्रयोज्यानीत्यर्थः। कठेन प्रोक्तमधीयते कठाः। वैशम्पायनान्तेवासित्वाण्णिनिः। तस्य 'कठचरकात्-'(सू.१४८७) इति लुक्। ततोऽण्। तस्य 'प्रोक्ताल्लुक्'(सू.१२७४)।

छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि। छन्दांसि च ब्राह्मणानि च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः छन्दोब्राह्मणानि। सः=अध्येतृवेदितृप्रत्ययो विषयो येषां तानि तद्विषयाणि, बहुव्रीहिः। **प्रोक्ताल्लुक्** से **प्रोक्तात्** का और **तदधीते तद्वेद** के सभी पदों का अनुवर्तन है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

प्रोक्त-प्रत्ययान्त छन्दस् और ब्राह्मणवाची शब्द अध्येतृ-वेदितृ-विषयक होते हैं।

अनुवृत्त **प्रोक्तात्** पद का प्रथमाबहुवचन में विपरिणाम किया जाता है। सूत्रस्थ **छन्दस्** शब्द मन्त्रार्थक है। ब्राह्मण-शब्द विधिवाक्यग्रन्थ का बोधक है। वेद का भाग ब्राह्मण। तत्-पद से प्रकरण-निर्देशक अध्येतृ-वेदितृ प्रत्यय समझे जाते हैं।

अध्येतृवेदितृप्रत्ययं विना न प्रयोज्यानीत्यर्थः। प्रकृतसूत्र का तात्पर्य यह है कि अध्येतृ-वेदितृ-प्रत्यय के बिना **छन्दस्** और **ब्राह्मण** शब्दों का स्वतन्त्र प्रयोग नहीं होता। निष्कर्ष यह है कि अन्य प्रोक्त प्रत्ययान्त शब्दों का केवल प्रोक्त अर्थ में भी प्रयोग होता है। जैसे- **पाणिनिना प्रोक्तम् पाणिनीयम्** इत्यादि। जिन प्रोक्त प्रत्ययान्तों का स्वतन्त्र प्रयोग होता है, उनका प्रयोग विग्रहवाक्य के रूप में होता है- **पाणिनीयम् अधीते**

इत्यादि। इसी प्रकार **छन्दस्** और **ब्राह्मण** प्रोक्त-प्रत्ययान्त शब्दों का स्वतन्त्र प्रयोग न हो किन्तु अध्येतृ-वेदितृ प्रत्यय-विषयक का ही हो। इस नियम के लिये ही प्रकृतसूत्र का अवतरण है।

कठेन प्रोक्तमधीयते कठाः। वैशम्पायनान्तेवासित्वाण्णिनिः। तस्य 'कठचरकात्-' इति लुक्। ततोऽण्। तस्य 'प्रोक्ताल्लुक्'। कठ से कहे गये मन्त्रों के अध्येता और ज्ञाता को **कठाः** कहा जाता है। **कठेन प्रोक्तम्** अर्थ में सामान्यतः **तेन प्रोक्तम्** सूत्र से प्राप्त अण् के अपवाद में **कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्च (४.३. १०४)** सूत्र से विहित **णिनि (इन्)** प्रत्यय का **कठचरकाल्लुक्** सूत्र से लुक् होने पर **कठेन प्रोक्तमधीयते विदन्ति वा** अर्थ में पुनः **तदधीते तद्वेद** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर उसका **प्रोक्ताल्लुक्** सूत्र से लुक् हो जाता है। फलतः आदिवृद्धि आदि कार्य नहीं होते। इस तरह **कठ** शब्द ही बना हुआ है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर प्रथमाबहुवचन में **कठाः** सिद्ध हो जाता है। यह छन्दस् का उदाहरण है। ब्राह्मण का उदाहरण काशिका में दिया गया है- **ताण्डिनः।**

मूल में इस प्रकरण की समाप्ति की सूचनार्थ कोई पुष्पिका नहीं है।

श्री भट्टोजिदीक्षित द्वारा विरचित वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी में गोविन्दाचार्य की कृति श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी व्याख्या का तद्धितीय रक्ताद्यर्थक-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ चातुरर्थिकाः

अब **चातुरर्थिक प्रकरण** का आरम्भ होता है। इस प्रकरण में चार अर्थों में प्रत्यय का विधान किया गया है, इसलिए **चातुरर्थिक** प्रकरण कहा गया।

ये चार अर्थ हैं-

(१) वह इस में है, ऐसा देश,

(२) उसने बनाया या बसाया- ऐसा नगर,

(३) उसका निवास है, ऐसा देश और

(४) जो उससे दूर नहीं ऐसा देश।

उक्त चारों अर्थ देश के सम्बन्ध में ही होंगे। उनके क्रमशः उदाहरण आगे के सूत्रों से बताये जा रहे हैं। इस तरह विषय-विभाजन की दृष्टि से यह अन्वर्थक प्रकरण है। **चत्वारश्चामी अर्थाः- चतुरर्थाः, तत्र भवः चातुरार्थिकः।** यहाँ पर **चतुरर्थ**-शब्द से ठञ्, इकादेश, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **चातुरर्थिकः** सिद्ध हो जाता है। इस प्रकरण में उक्त चारों अर्थों के अन्तर्गत आने वाले प्रत्ययों का विवेचन है।

अब सर्वप्रथम प्राग्दीव्यतीयों में पन्द्रहवें अर्थक्रम **अस्मिन् अस्ति देशे** का विवेचन किया जा रहा है।

१२७९. तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि ४।२।६७॥
उदुम्बराः सन्त्यस्मिन् देशे औदुम्बरः।

तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि। तस्य नाम तन्नाम, तस्मिन्। तद् प्रथमान्तानुकरणं लुप्तपञ्चम्यन्तम्, अस्मिन् सप्तम्यन्तम्, अस्ति क्रियापदम्, इत्यव्ययपदं, देशे सप्तम्यन्तं, तन्नाम्नि सप्तम्यन्तम् अनेकपदमिदं सूत्रम्। **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आ रही है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का पीछे से ही अधिकार आ रहा है।

यदि प्रकृति और प्रत्यय के समूह से देश का नाम बनता हो तो 'वह इस देश में है' इस अर्थ में प्रथमान्त समर्थ प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय होता है।

प्रथम तत्-शब्द प्रथमाविभक्ति का सूचक है। दूसरे तत्-पद का अभिप्राय प्रत्ययान्त से है। वह **नाम** शब्द से अन्वित होकर विशेषण का कार्य करता है। सूत्र में

इति शब्द विवक्षार्थ है। अर्थात् प्रकृतिप्रत्यय समुदाय से देश का बोध होना चाहिये। तात्पर्य यह है कि जिस शब्द से अण् हो, वह अण्-प्रत्ययान्त शब्द किसी देश की संज्ञा बने। जैसे- **उदुम्बर** अर्थात् गूलर के पेड़ हैं जिस देश में वह देश **औदुम्बर** कहलाता है। उदुम्बर से अण् प्रत्यय करके बनाये गये **औदुम्बर** शब्द से देश का नाम ज्ञात हो रहा है।

औदुम्बरः। उदुम्बर अर्थात् गूलर के पेड़ हैं जिस देश में वह देश। **उदुम्बराः सन्ति अस्मिन् देशे** लौकिक विग्रह और **उदुम्बर जस्** अलौकिक विग्रह। **तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि** से अण् प्रत्यय करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **उदुम्बर+अ** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदि अच् उकार की वृद्धि करके औकार आदेश और भसंज्ञक रेफोत्तरवर्ती अकार का लोप करके **औदुम्बर्+अ=औदुम्बर**, सु आदि करके **औदुम्बरः** बना। इस तरह स्थानीय वस्तु के नाम से उस स्थान की प्रसिद्धि होना सूचित किया गया है। इसी प्रकार **पर्वताः सन्ति अस्मिन् देशे पार्वतो देशः** आदि भी बनाये जा सकते हैं।

यह चातुरर्थिक का पहला अर्थ है। अब प्राग्दीव्यतीयों में सोलहवें अर्थक्रम **तेन निर्वृत्तो देशः** का विवेचन किया जा रहा है। **निर्वृत्त**-शब्द का अर्थ है- बनाया गया, बसाया गया इत्यादि।

१२८०. तेन निर्वृत्तम् ४।२।६८॥
कुशाम्बेन निर्वृत्ता कौशाम्बी नगरी।

तेन निर्वृत्तम्। तेन तृतीयान्तानुकरणं लुप्तपञ्चम्यन्तं, निर्वृत्तं प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि** से **देशे तन्नाम्नि** की और **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आ रही है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

यदि प्रकृति और प्रत्यय के समूह से देश का नाम बनता हो तो 'उसके' द्वारा बनाया गया या बसाया गया' इस अर्थ में तृतीयान्त समर्थ प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय होता है।

तेन पद से तृतीया-समर्थ-विभक्ति का बोध होता है। **कौशाम्बी**। कुशाम्ब नामक राजा से बनाई या बसाई गई नगरी। **कुशाम्बेन निर्वृत्ता** लौकिक विग्रह और **कुशाम्ब+टा** अलौकिक विग्रह। **तेन निर्वृत्तम्** से अण् प्रत्यय करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **कुशाम्ब+अ** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदि अच् ककारोत्तरवर्ती उकार की वृद्धि करके औकार आदेश और भसंज्ञक बकारोत्तरवर्ती अकार का लोप करके **कौशाम्ब्+अ=कौशाम्ब** बना। विशेष्य **नगरी** के स्त्रीलिङ्ग होने के कारण अणन्त **कौशाम्ब** शब्द से **टिड्ढाणञ्०** सूत्र से ङीप् होकर **कौशाम्बी** बना। उससे सु आदि, हल्ङ्यादिलोप होकर **कौशाम्बी** सिद्ध हो जाता है।

१२८१. तस्य निवासः ४।२।६९॥

शिबीनां निवासो देशः शैबः।

तस्य निवासः। तस्य षष्ठ्यन्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं पदं, निवासः प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि** से **देशे तन्नाम्नि** की और **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आ रही है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

यदि प्रकृति और प्रत्यय के समूह से देश का नाम बनता हो तो 'उसका निवास' इस अर्थ में षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय होता है।

तस्य पद से षष्ठी-समर्थ-विभक्ति का बोध होता है।

शैबः। शिबि-नामक क्षत्रियों का निवासस्थान देश। **शिबीनां निवासः** लौकिक विग्रह और **शिबि आम्** अलौकिक विग्रह। **तस्य निवासः** से अण् प्रत्यय के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **शिबि+अ** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदि अच् इकार की वृद्धि करके ऐकार आदेश और भसंज्ञक बकारोत्तरवर्ती इकार का लोप करके **शैब्+अ=शैब**, सु आदि करके **शैबः** बना।

यहाँ पर **निवास** का अर्थ केवल निवास करना न होकर स्वत्व (अपना) अर्थ अभिलक्षित है।

१२८२. अदूरभवश्च ४।२।७०॥

विदिशाया अदूरभवं नगरं वैदिशम्। चकारेण प्रागुक्तास्त्रयोऽर्थाः सन्निधाप्यन्ते, तेन वक्ष्यमाणप्रत्ययानां चातुरर्थिकत्वं सिद्ध्यति।

अदूरभवश्च। भवतीति भवः, न दूरम् अदूरम्, अदूरे(निकटे) भवः- अदूरभवः। अदूरभवः प्रथमान्तं, चाव्ययपदं द्विपदमिदं सूत्रम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार बराबर आ रहा है और **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की, **तस्य निवासः** से **तस्य** की और **तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि** से **देशे तन्नाम्नि** की अनुवृत्ति आती है।

प्रकृति और प्रत्यय के समूह से देश का नाम बनता हो तो 'उसके समीप रहने वाला देश' इस अर्थ में षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय होता है।

वैदिशम्। विदिशा नामक नगरी से समीप वाला नगर, देश। **विदिशाया अदूरभवं नगरम्** लौकिक विग्रह और **विदिशा ङस्** अलौकिक विग्रह। **अदूरभवश्च** से अण् प्रत्यय करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **विदिशा+अ** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदि अच् इकार की वृद्धि करके ऐकार आदेश और भसंज्ञक शकारोत्तरवर्ती आकार का लोप करके **वैदिश्+अ=वैदिश**, सु आदि करके **वैदिशम्** बना।

चकारेण प्रागुक्तास्त्रयोऽर्थाः सन्निधाप्यन्ते, तेन वक्ष्यमाणप्रत्ययानां चातुरर्थिकत्वं सिध्यति। प्रकृतसूत्र में पठित च-शब्द से पूर्वोक्त **तदस्मिन्, तन्नाम्नि देशे, तेन निर्वृत्तम्, तस्य निवासः** इन अर्थों का सन्निधान=उपस्थिति **अदूरभवः** में किया जाता है। इस तरह **च**-शब्द से उक्त चारों अर्थों का समूह आगे के सूत्रों में अनुवृत्ति-रूप में जाता है। अन्यथा अन्तिम सूत्र की अनुवृत्ति होगी और अन्य सूत्रों की अनुवृत्ति नहीं हो पायेगी। इस तरह पाणिनि जी ने बहुत ही सूक्ष्म विचार करके प्रकृत सूत्र में **च** शब्द का पाठ किया है। उक्त चारों सूत्रों का अधिकार शैषिकप्रकरण के **शेषे** सूत्र से पहले तक विद्यमान रहेगा, जिससे चातुरर्थिकप्रकरण नाम भी सार्थक होगा। शेष **ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार तो यथावत् रहता ही है।

१२८३. ओरञ् ४।२।७१॥

अणोऽपवादः। कक्षतु, काक्षतवम्। नद्यास्तु परत्वान्मतुप्। इक्षुमती।

ओरञ्। उ-शब्दस्य पञ्चम्यन्तं रूपम् ओः इति। अञ् प्रथमान्तम्। **तदस्मिन् तन्नाम्नि देशे, तेन निर्वृत्तम्, तस्य निवासः, अदूरभवः** की अनुवृत्ति है और **ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार तो यथावत् है।

प्रथमासमर्थ, तृतीयासमर्थ और षष्ठीसमर्थ उकारान्त प्रातिपदिकों से देशे तन्नाम्नि, निर्वृत्तम्, निवासः, अदूरभवः इन चारों अर्थों में अञ् प्रत्यय होता है, यदि प्रकृतिप्रत्यय के समुदाय से देशाभिधान हो तो।

अणोऽपवादः। यह उक्त चारों सूत्रों से प्राप्त अण् का अपवाद है। अञ् में ञकार इत्संज्ञक है, अकार मात्र बचता है। ञित्करण आदिवृद्धि और स्वर के लिये है।

कक्षतु, काक्षतवम्। जिस देश में कक्षतु-नामक फल बहुत हो, वह देश। **कक्षतुः अस्मिन् अस्ति** अर्थ में **कक्षतु+सु** इस स्थिति में **ओरञ्** सूत्र से अञ् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **कक्षतु+अ** बना है। आदिवृद्धि और **ओर्गुणः** सूत्र से उकार को गुण ओकार और उसको अवादेश होकर **काक्षतव** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **काक्षतवम्** सिद्ध हो जाता है।

नद्यास्तु परत्वान्मतुप्। इक्षुमती। यदि शब्द के उकारान्त होते हुये प्रकृतिप्रत्यय के समुदाय से **नदी** का बोध हो रहा हो तो प्रकृत प्रत्यय न होकर **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** सूत्र से मतुप् होता है। उसका कारण यह है कि जब उक्त दोनों प्रत्यय एक साथ उपस्थिति होते हैं, तब अष्टाध्यायीक्रम में मतुप्-विधायक सूत्र के पर होने के कारण **विप्रतिषेधे परं कार्यम्** के नियम से परसूत्र की प्रवृत्ति होती है। **इक्षवः अस्याः सन्ति** विग्रह करके मतुप् होकर **इक्षुमत्** शब्द बन जाता है और स्त्रीत्वविवक्षा में **उगितश्च** सूत्र से ङीप् प्रत्यय होकर **इक्षुमती** सिद्ध हो जाता है।

१२८४. मतोश्च बह्वजङ्गात् ४।२।७२॥

बह्वच् अङ्गं यस्य मतुपस्तदन्तादञ्, नाण्।
सैध्रकावतम्। 'बह्वच्' इति किम्? आहिमतम्।
अङ्गग्रहणं बह्वच् इति तद्विशेषणं यथा स्याद् मत्वन्तविशेषणं मा भूत्।

मतोश्च बह्वजङ्गात्। बहवोऽचो यस्मिन् स बह्वच्, बहुव्रीहिः, बह्वच् अङ्गं यस्य स बह्वजङ्गस्तस्माद् बह्वजङ्गात्। मतोः पञ्चम्यन्तं, चाव्ययं, बह्वजङ्गात् पञ्चम्यन्तम्। **ओरञ्** से **अञ्** की तथा **तदस्मिन् तन्नाम्नि देशे, तेन निर्वृत्तम्, तस्य निवासः, अदूरभवः** की अनुवृत्ति है और **ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार तो यथावत् है।

बहुत अच् वाला अङ्ग है जिसका, ऐसा जो मतुप्, ऐसे प्रथमासमर्थ, तृतीयासमर्थ और षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिकों से 'अस्मिन् अस्ति देशे तन्नाम्नि, निर्वृत्तम्, निवासः, अदूरभव इन चारों अर्थों में अञ् प्रत्यय होता है, यदि प्रकृतिप्रत्यय के समुदाय से देशाभिधान हो तो।

नाण्। प्रकृतसूत्रोक्त परिस्थिति में अञ् प्रत्यय ही होता है, अण् प्रत्यय नहीं होता।

यद्यपि **अस्मिन् अस्ति, तेन निर्वृत्तम्, तस्य निवासः, अदूरभवः** ये चारों अनुवृत्तियाँ साथ-साथ चलती हैं तथापि किसी प्रयोग में **तद् अस्मिन् अस्ति** का सम्बन्ध, किसी प्रयोग में **तेन निर्वृत्तम्** का सम्बन्ध, किसी प्रयोग में **तस्य निवासः** का सम्बन्ध और किसी में **तस्य अदूरभवः** का सम्बन्ध रहता है। चारों अर्थ एक ही प्रयोग में सम्भव नहीं हैं।

सैध्रकावतम्। सिध्रका=कत्थे की तरह एक वृक्ष का जंगल जहाँ, उस वन के समीप का नगर। पहले **सिध्रका** शब्द से **मतुप्** प्रत्यय करके **सिध्रकावत्** शब्द बनता है। यहाँ मतुप् प्रत्यय के परे रहते बहु-अच् वाला अङ्ग है- **सिध्रका**। अतः प्रकृतसूत्र का विषय है। उसके बाद **सिध्रकावान् अस्मिन् अस्ति** अर्थ में **सिध्रकावत्+सु** से यथाप्राप्त अण् प्रत्यय को बाधकर **मतोश्च बह्वजङ्गात्** सूत्र से अञ् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **सिध्रकावत्+अ** बना है। आदिवृद्धि होने पर **सैध्रकावत** और स्वादिकार्य होने पर **सैध्रकावतम्** सिद्ध हो जाता है। इस तरह यहाँ देशाभिधान है और अदूरभव अर्थ भी है।

'बह्वच्' इति किम्? आहिमतम्। प्रकृतसूत्र में **बह्वच्** शब्द का ग्रहण होने से मतुप् प्रत्यय के परे तीन या उससे अधिक अच् वाले अङ्ग होने पर ही अञ् प्रत्यय होता है, अन्यथा नहीं होता। यहाँ **आहिमतम्** में **अहि**-शब्द से मतुप् प्रत्यय होते समय केवल दो ही अच् हैं और दो अच् होने पर अनेकाच् तो कहा जा सकता है किन्तु बह्वच् नहीं कहा जा सकता। अतः मतुबन्त **अहिमत्** शब्द से **अहिमान् अस्ति अस्मिन्** विग्रह में प्रकृत

अञ् प्रत्यय नहीं हुआ अपितु नैसर्गिक अण् प्रत्यय होकर **आहिमतम्** बनता है। यद्यपि अण् और अञ् इन दोनों प्रत्ययों के समान ही रूप बनते हैं, तथापि स्वरभेद अवश्य होता है।

अङ्गग्रहणं बह्वच् इति तद्विशेषणं यथा स्याद् मत्वन्तविशेषणं मा भूत्। प्रकृतसूत्र में **अङ्गात्** पद का समावेश इस लिये किया गया है कि वह अपने समीपवर्ती शब्द **बह्वच्** का ही विशेषण हो, न कि समानाधिकरण के बल पर मतुबन्त का। अन्यथा **आहिमतम्** में मतुप्-प्रत्यय सहित के अनेकाच् (बह्वच्) होने के कारण अञ् प्रत्यय होने लगेगा, न कि अण्। फलतः अञ्-प्रत्यय होने से आद्युदात्त नहीं होता।

१२८५. बह्वचः कूपेषु ४।२।७३॥

अणोऽपवादः। दीर्घवरत्रेण निवृत्तो दैर्घवरत्रः कूपः।

बह्वचः कूपेषु। बहवोऽञ् यस्मिन् स बह्वच्, तस्माद् बह्वचः, बहुव्रीहिः। बह्वचः पञ्चम्यन्त, कूपेषु सप्तम्यन्तम्। **ओरञ्** से **अञ्** की तथा **तदस्मिन् तन्नाम्नि देशे, तेन निर्वृत्तम्, तस्य निवासः, अदूरभवः** की अनुवृत्ति है और **ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार तो यथावत् है। प्रकृतसूत्र में **कूपेषु** पद के कारण अनुवृत्त होते हुये भी **तन्नाम्नि देशे** का सम्बन्ध नहीं रहता। **बह्वचः** का अन्वय **प्रातिपदिकात्** के साथ है।

बहुत अच् वाले प्रथमासमर्थ, तृतीयासमर्थ और षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिक से चातुरर्थिक अर्थों में अञ् प्रत्यय होता है, यदि प्रकृतिप्रत्यय के समुदाय से कूप (कुआँ) अर्थ गम्यमान हो तो।

अणोऽपवादः। यह भी नैसर्गिक अण् का अपवाद है। ञित् होने से **ञ्नित्यादिर्नित्यम्** से आद्युदात्त होता है।

दीर्घवरत्रेण निवृत्तो दैर्घवरत्रः कूपः। दीर्घवरत्र नामक व्यक्ति के द्वारा बनाया गया कूप। **दीर्घवरत्रेण निर्वृत्तः कूपः** अर्थ में **दीर्घवरत्र+टा** से यथाप्राप्त अण् प्रत्यय को बाधकर **बह्वचः कूपेषु** सूत्र से अञ् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **दैर्घवरत्र** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेप प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **दैर्घवरत्रः** सिद्ध हो जाता है। यहाँ पर देशाभिधान न होकर कूपाभिधान है। सूत्रस्थ **कूपेषु** पद से **देशे** अर्थ बाधित हो जाता है।

१२८६. उदक् च विपाशः ४।२।७४॥

विपाश उत्तरे कूले ये कूपास्तेष्वञ्। अबह्वजर्थ आरम्भः।
दन्तेन निर्वृत्तो दान्तः कूपः। उदक् किम्? दक्षिणतः कूपेष्वणेव।

उदक् च विपाशः। उदक् प्रथमान्तं, चाव्ययं, विपाश्-शब्दस्य षष्ठ्यन्तं रूपं विपाशः। **बह्वचः कूपेषु** से **कूपेषु** की, **ओरञ्** से **अञ्** की तथा प्राकरणिक चातुरर्थिक पदों की अनुवृत्ति है और **ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है। प्रकृतसूत्र में **कूपेषु** पद की अनुवृत्ति होने के कारण **तन्नाम्नि देशे** का सम्बन्ध नहीं रहता।

विपाश्-नदी के उत्तरवर्ती कूल (किनोर) जो कूप हैं, उनके अभिधेय होने पर भी अञ् प्रत्यय होता है।

विपाश् एक नदीविशेष का नाम है। यह शकारान्त शब्द है।

अबह्वजर्थ आरम्भः। शब्द में बहु-अच् न हो, उस अवस्था में भी अञ् का विधान करने के लिये प्रकृत सूत्र का आरम्भ है, अन्यथा पूर्वसूत्र से ही काम चल सकता था। चातुरर्थिक चारों अर्थों में यहाँ पर **तेन निर्वृत्तम्** अर्थ का ही सम्बन्ध है।

दन्तेन निर्वृत्तो दान्तः कूपः। दन्त-नामक व्यक्ति के द्वारा बनाया गया कूप। **दन्तेन निर्वृत्तः कूपः** अर्थ में **दन्त+टा** से यथाप्राप्त अण् प्रत्यय को बाधकर **उदक् च विपाशः** सूत्र से अञ् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **दान्त** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेप प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **दान्तः** सिद्ध हो जाता है। यहाँ पर देशाभिधान न होकर कूपाभिधान है और **दन्त** शब्द बह्वच् न होकर द्व्यच् है। यह कूप विपाश्-नदी के उत्तरवर्ती कूल में स्थित रहा होगा। प्राचीन काल के कूप बहुत प्रसिद्ध भी रहे होंगे। पंजाब की प्रसिद्ध नदी **व्यास** का प्राचीन नाम ही **विपाश्** है।

उदक् किम्? दक्षिणतः कूपेष्वणेव। प्रकृतसूत्र में **उदक्** शब्द के निवेश से उत्तरतटवर्ती कूपों के विषय में ही यह अञ् प्रत्यय होता है। दक्षिणतटवर्ती कूपों में तो अण् ही होगा। इससे पता चलता है कि पाणिनि जी के समय उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वरों का कितना विशेष महत्त्व था! न केवल वैदिक शब्दों के लिये अपितु लौकिक शब्दों के लिये रूप-साम्य होने पर भी अर्धमात्रालाघव के पक्षपाती आचार्य केवल स्वर के लिये अनेक पृथक् सूत्रों की रचना करते हैं। इससे पाणिनि जी की सूक्ष्मदृष्टि का अनुमान लगाया जा सकता है।

१२८७. सङ्कलादिभ्यश्च ४।२।७५॥

कूपेषु इति निवृत्तम्। सङ्कलेन निर्वृत्तं साङ्कलम्। पौष्कलम्।

सङ्कलादिभ्यश्च। सङ्कल आदिर्येषां ते सङ्कलादयस्तेभ्यः सङ्कलादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **ओरञ्** से **अञ्** की तथा प्राकरणिक चातुरर्थिक पदों की अनुवृत्ति है साथ ही और **ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

तृतीयासमर्थ सङ्कुल-आदि गणपठित प्रातिपदिकों से भी अञ् प्रत्यय होता है, यदि देश (नगर) आदि अर्थ गम्य हो तो।

कूपेषु इति निवृत्तम्। यहाँ आचार्यों के व्याख्यान में **कूपेषु** की निवृत्ति मानी जाती है। अतः **नगर (देश)** आदि अभिधेय होने पर यह प्रत्यय होगा। यह प्रत्यय भी औत्सर्गिक अण् का अपवाद है।

सङ्कुलेन निर्वृत्तं साङ्कुलम्। सङ्कुल-नामक व्यक्ति के द्वारा बसाया गया नगर। **सङ्कुलेन निर्वृत्तं नगरम्** अर्थ में **सङ्कुल+टा** से यथाप्राप्त अण् प्रत्यय को बाधकर **सङ्कुलादिभ्यश्च** सूत्र से अञ् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **साङ्कुल** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **साङ्कुलः** सिद्ध हो जाता है।

पौष्कलम्। पुष्कल-नामक व्यक्ति के द्वारा बसाया गया नगर। **पुष्कलेन निर्वृत्तं नगरम्** अर्थ में **पुष्कल+टा** से यथाप्राप्त अण् प्रत्यय को बाधकर **सङ्कुलादिभ्यश्च** सूत्र से अञ् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पौष्कल** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पौष्कलः** सिद्ध हो जाता है।

सङ्कुलादिगणः- सङ्कुल, पुष्कल, उत्तम, उडुप, उद्वेष, उत्पुट, कुम्भ, निधान, सुदक्ष, सुदत्त, सुभूत, सुपूत, सुनेत्र, सुमङ्गल, सुपिङ्गल, सूत, सिकत, पूतिका, (पूतिक), पूलास, कूलास, निवेश, (गवेश), गम्भीर, इतर, आन्, अहन्, लोमन्, वेमन्, चरण, (वरुण), बहुल, सद्योज, अभिषिक्त, गोभृत्, राजभृत्, भल्ल, मल्ल, माल्ल।

१२८८. स्त्रीषु सौवीरसाल्वप्राक्षु ४।२।७६॥

स्त्रीलिङ्गेष्वेषु देशेषु वाच्येष्वञ्।

सौवीरे- दत्तामित्रेण निर्वृत्ता दात्तामित्री नगरी।

साल्वे- वैधूमाग्नी। प्राचि- माकन्दी।

स्त्रीषु सौवीरसाल्वप्राक्षु। सौवीरश्च साल्वश्च प्राङ् च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः सौवीरसाल्वप्राञ्चस्तेषु सौवीरसाल्वप्राक्षु सप्तम्यन्तं, स्त्रीषु सप्तम्यन्तम्। **ओरञ्** से **अञ्** की तथा प्राकरणिक चातुरर्थिक पदों की अनुवृत्ति है और **ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

स्त्रीलिङ्गवाची सौवीर, साल्व तथा पूर्व ये देश अभिधेय होने पर ङ्यन्त, आबन्त तृतीयादि-समर्थ प्रातिपदिकों से चातुरर्थिक अर्थों में अञ् प्रत्यय होता है।

सौवीर, साल्व और **पूर्व** ये देश हैं।

सौवीरे- सौवीर-देश का उदाहरण दिया जा रहा है-

दत्तामित्रेण निर्वृत्ता दात्तामित्री नगरी। दत्तामित्र-नामक व्यक्ति के द्वारा

बसायी गयी नगरी। यहाँ **नगरी** शब्द विशेष्य है। **दत्तामित्रेण निर्वृत्ता नगरी** अर्थ में **दत्तमित्र+टा** से यथाप्राप्त अण् प्रत्यय को बाधकर **स्त्रीषु सौवीरसाल्वप्राक्षु** सूत्र से अञ् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **दात्तामित्र** शब्द बना है। स्त्रीत्वविवक्षा में **टिड्ढाणञ्०** सूत्र से ङीप् होकर **दात्तामित्री** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **दात्तामित्री** सिद्ध हो जाता है।

साल्वे- साल्वदेश की नगरी का उदाहरण दिया जा रहा है-

वैधूमाग्नी। विधूमाग्नि-नामक व्यक्ति के द्वारा बसायी गयी नगरी। **विधूमाग्निना निर्वृत्ता नगरी** अर्थ में **विधूमाग्नि+टा** से यथाप्राप्त अण् प्रत्यय को बाधकर **स्त्रीषु सौवीरसाल्वप्राक्षु** सूत्र से अञ् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक इकार का लोप होकर **वैधूमाग्नि**, स्त्रीत्वविवक्षा में ङीष् होकर **वैधूमाग्नी** और स्वादिकार्य होकर **वैधूमाग्नी** सिद्ध हो जाता है।

प्राचि- प्राग्देश(पूर्वदेश) का उदाहरण दिया जा रहा है-

माकन्दी। माकन्द-नामक व्यक्ति के द्वारा बसायी गयी नगरी। **माकन्देन निर्वृत्ता नगरी** अर्थ में **माकन्द+टा** से **स्त्रीषु सौवीरसाल्वप्राक्षु** सूत्र के द्वारा अञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, पर्जन्यवल्लक्षणन्यायेन आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **माकन्द**, स्त्रीत्वविवक्षा में ङीष् होकर **माकन्दी** और स्वादिकार्य होकर **माकन्दी** सिद्ध हो जाता है।

१२८९. सुवास्त्वादिभ्योऽण् ४।२।७७॥

अञोऽपवादः। सुवास्तोरदूरभवं सौवास्तवम्। वर्णु, वार्णवम्। अण्ग्रहणं नद्यां मतुपो बाधनार्थम्। सौवास्तवी।

सुवास्त्वादिभ्योऽण्। सुवास्तुरादिर्येषां ते सुवास्त्वादयस्तेभ्यः सुवास्त्वादिभ्यः। सुवास्त्वादिभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अण् प्रथमान्तम्। प्राकरणिक चातुरर्थिक पदों की अनुवृत्ति है और **ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

सुवास्तु आदि गण में पठित तृतीयादि-समर्थ प्रातिपदिकों से चातुरर्थिक अर्थों में अण् प्रत्यय होता है।

अञोऽपवादः। उवर्णान्त होने के कारण **ओरञ्** सूत्र से प्राप्त अञ् प्रत्यय का यह अपवाद है।

सुवास्तोरदूरभवं सौवास्तवम्। सुवास्तु (स्वात नदी) का समीपवर्ती नगर। **सुवास्तोः अदूरभवं नगरम्** अर्थ में **सुवास्तु+ङस्** से **सुवास्त्वादिभ्योऽण्** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, उकार को **ओर्गुणः**

सूत्र से गुण ओकार और उसको अवादेश होकर **सौवास्तव** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सौवास्तवम्** सिद्ध हो ज्ञाता है।

वर्णु- वार्णवम्। वर्णु नदी के समीपवर्ती नगर। **वर्णोः अदूरभवं नगरम्** अर्थ में **वर्णु+ङस्** से **सुवास्त्वादिभ्योऽण्** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, उकार को **ओर्गुणः** सूत्र से गुण ओकार और उसको अवादेश होकर **वार्णव** और स्वादिकार्य होकर **वार्णवम्** सिद्ध हो जाता है।

अण्ग्रहणं नद्यां मतुपो बाधनार्थम्। सौवास्तवी। प्रकृत सूत्र में **अण्** का ग्रहण करने से स्त्रीत्व द्योत्य रहने पर अणन्त से ङीप् होकर **सौवास्तवी** बन जाता है। यहाँ पर पूर्वसूत्र से **अञ्** की अनुवृत्ति न करने पर भी औत्सर्गिक अण् स्वतः सिद्ध था तथापि उस अवस्था में **नद्यां मतुप्** (४.२.८५) सूत्र से प्राप्त मतुप् प्रत्यय का बाध करने के लिये अण्-शब्द का ग्रहण सार्थक हो जाता है। अण् के ग्रहण से यह विशेष सूत्र बन जाता है।

सुवास्त्वादिगणः- सुवास्तु, (सुवस्तु), वर्णु, भण्डु, खण्डु, शेवालिन्, कर्पूरिन्, शिखण्डिन्, गर्त, कर्कश, शकटीकर्ण, कृष्णकर्ण, [कर्क], कर्कन्धुमती, गोह, अहिसक्थ।

१२९०. रोणी ४।२।७८॥

रोणीशब्दात् तदन्ताच्चाण्। कूपाञोऽपवादः। रौणः। आजकरौणः।

रोणी। रोणी यह लुप्तपञ्चमी वाला पद है। **सुवास्त्वादिभ्योऽण्** से **अण्** की और प्राकरणिक चातुरर्थिक पदों की अनुवृत्ति है और **ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

रोणी-शब्द और रोणी-शब्दान्त प्रातिपदिक से चातुरर्थिक अर्थों में अण् प्रत्यय होता है।

रोणी के लुप्तपञ्चम्यन्त होने से अर्थ बनाते समय इसे पञ्चम्यन्त बनाकर **रोण्याः** बना लिया जाता है। इसका अन्वय **ङ्यन्तात् प्रातिपदिकात्** के साथ हो जाता है। **येन विधिस्तदन्तस्य** से तदन्तविधि होकर **रोण्यन्त** से भी यह प्रत्यय होता है। अतः मूलकार ने लिखा है- **रोणीशब्दात् तदन्ताच्च।** यद्यपि **समासप्रत्ययविधौ प्रतिषेधः** के नियमानुसार प्रत्ययग्रहण में तदन्तविधि नहीं होनी चाहिये थी और **येन विधिस्तदन्तस्य** सूत्र के भाष्य में आचार्य ने यह भी कहा है कि जहाँ शास्त्र में किसी प्रातिपदिक-स्वरूप का ग्रहण किया हो, वहाँ तदन्तविधि नहीं होती तथापि पाणिनि जी के द्वारा विभक्तिरहित **रोणी** शब्द का पाठ करने से तदन्तविधि मान ली जाती है।

कूपाञोऽपवादः। अर्थात् रोण्यन्त अजकरोणी शब्द से **बह्वचः कूपेषु** सूत्र से प्राप्त अञ् प्रत्यय का यह अपवाद है।

रौणः। रोणी-नगर के समीपवर्ती कूप। **रोण्याः अदूरभवः कूपः** अर्थ में

रोणी+ङस् से **रोणी** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक ईकार का लोप ओकर **रौण** शब्द बना है। स्वादिकार्य होकर **रौणः कूपः** सिद्ध हो जाता है। यह केवल रोणी-शब्द का उदाहरण है। रोण्यन्त का उदाहरण अगला है।

आजकरौणः। अजक-रोणी के द्वारा बनाया गया कूप। **अजकरोण्याः निर्वृत्तः कूपः** अर्थ में **अजकरोणी+टा** से **रोणी** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, अनुशतिकादि मानकर **अनुशतिकादीनां च** सूत्र से उभयपद (**अजक+रोणी**) के आदि अच् की वृद्धि, भसंज्ञक ईकार का लोप होकर **आजकरौण** शब्द बना है। स्वादिकार्य होकर **आजकरौणः कूपः** सिद्ध हो जाता है।

१२९१. कोपधाच्च ४।२।७९॥

अण्। अञोऽपवादः।

कार्णच्छिद्रकः कूपः। कार्कवाकवम्। त्रैशङ्कवम्।

कोपधाच्च। ककार उपधा यस्य स कोपधस्तस्मात् कोपधात् पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **सुवास्त्वादिभ्योऽण्** से **अण्** की और प्राकरणिक चातुरर्थिक पदों की अनुवृत्ति है और **ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

ककार-उपधा वाले प्रातिपदिक से चातुरर्थिक अर्थों में अण् प्रत्यय होता है।

अञोऽपवादः। यह सूत्र **बह्वचः कूपेषु** का अपवाद है।

कार्णच्छिद्रकः कूपः। कर्णच्छिद्रक द्वारा निर्मित कूप। **कर्णच्छिद्रकेण निर्वृत्तः कूपः** अर्थ में **कर्णच्छिद्रक+टा** में **कोपधाच्च** सूत्र से अण् प्रत्यय, आदिवृद्धि, अकारलोप आदि होकर **कार्णच्छिद्रक** और स्वादिकार्य होकर **कार्णच्छिद्रकः** सिद्ध हो जाता है।

कार्कवाकवम्। कृकवाकु द्वारा निर्मित। **कृकवाकुना निर्वृत्तम्** अर्थ में **कृकवाकु+टा** में **कोपधाच्च** सूत्र से अण् प्रत्यय, आदिवृद्धि, रपर, उकार को **ओर्गुणः** से गुण ओकार और उसको अवादेश होकर **कार्कवाकव** और स्वादिकार्य होकर **कार्कवाकवम्** सिद्ध हो जाता है।

त्रैशङ्कवम्। त्रिशङ्कु द्वारा निर्मित। **त्रिशङ्कुना निर्वृत्तम्** अर्थ में **त्रिशङ्कु+टा** इस स्थिति में **कोपधाच्च** सूत्र से अण् प्रत्यय, आदिवृद्धि, उकार को **ओर्गुणः** से गुण ओकार और उसको अवादेश होकर **त्रैशङ्कव** और स्वादिकार्य होकर **त्रैशङ्कवम्** सिद्ध हो जाता है।

१२९२. वुञ्छण्कठजिलसेनिरढञ्यययफक्फिञिञ्यकक्ठकोऽरीहण-कृशाश्वर्श्यकुमुदकाशतृणप्रेक्षाश्मसखिसङ्काशबलपक्षकर्णसुतङ्गम-प्रगदिन्वराहकुमुदादिभ्यः ४।२।८०॥

सप्तदशभ्यो गणेभ्यः सप्तदश क्रमात् स्युश्चतुरर्थ्याम्।
अरीहणादिभ्यो वुञ्, अरीहणेन निर्वृत्तमारीहणकम्।
कृशाश्वादिभ्यश्छण्, कार्शाश्वीयम्।
ऋश्यादिभ्यः कः, ऋश्यकम्।
कुमुदादिभ्यष्ठच्, कुमुदिकम्।
काशादिभ्य इलः। काशिलः।
तृणादिभ्यः सः, तृणसम्।
प्रेक्षादिभ्य इनिः, प्रेक्षी।
अश्मादिभ्यो रः, अश्मरः।
सख्यादिभ्यो ढञ्, साखेयम्।
सङ्काशादिभ्यो ण्यः, साङ्काश्यम्।
बलादिभ्यो यः, बल्यम्।
पक्षादिभ्यः फक्, पाक्षायणः।
'पथः पन्थ च' (ग.सू.७९) पान्थायनः।
कर्णादिभ्यः फिञ्, कार्णायनिः।
सुतङ्गमादिभ्य इञ्, सौतङ्गमिः।
प्रगद्यादिभ्यो ञ्यः, प्रागद्यः।
वराहादिभ्यः कक्, वाराहकः।
कुमुदादिभ्यष्ठक्, कौमुदिकः।

वुञ्छण्कठजिलसेनिरढञ्यय०। वुञ् च् छण् च कश्च ठच् च इलश्च सश्च इनिश्च रश्च ढञ् च ण्यश्च यश्च फक् च फिञ् च ञ्यश्च कक् च ठक् च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः वुञ्छण्कठजिलसेनिरढञ्ययफक्फिञिञ्यकक्ठकः। अरीहणश्च कृशाश्वश्च ऋश्यश्च कुमुदश्च काशश्च तृणश्च प्रेक्षा च अश्मा च सखा च सङ्काशश्च बलं च पक्षश्च कर्णश्च सुतङ्गमश्च प्रगदिन् च वराहश्च कुमुदश्च तेषामितरेतरेयोगद्वन्द्वः अरीहणकृशाश्वर्श्यकुमुदकाशतृणप्रेक्षाश्मसखिसङ्काशबलपक्षकर्णसुतङ्गमप्रगदिन्वराहकुमुदाः, ते आदिर्येषां ते अरीहणकृशाश्वर्श्यकुमुदकाशतृणप्रेक्षाश्मसखिसङ्काशबलपक्षकर्ण-सुतङ्गमप्रगदिन्वराहकुमुदादयः, तेभ्योऽरीहणकृशाश्वर्श्यकुमुदकाशतृणप्रेक्षाश्मसखिसङ्काश-बलपक्षकर्णसुतङ्गमप्रगदिन्वराहकुमुदादिभ्यः। **तदस्मिन् तन्नाम्नि देशे, तेन निर्वृत्तम्, तस्य**

निवासः, अदूरभवः की अनुवृत्ति है और **ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार तो यथावत् है।

चातुरर्थिक अर्थों में अरीहणादिगणादि सत्रह गणों के प्रातिपदिकों से क्रमशः वुञ् आदि प्रत्यय होते हैं।

इस सत्रह गणपाठ हैं और सत्रह ही प्रत्यय हैं। अतः **यथासङ्ख्यमनुदेशः समानाम्** की उपस्थिति होने से प्रकृति के क्रम से प्रत्यय होंगे। जैसे कि अरीहणादि से वुञ्, कृशाश्वादि से छण्, ऋश्यादि से क, कुमुदादि से ठच्, काशादि से इल, तृणादि से स, प्रेक्षादि से इनि, अश्मन् आदि से र, सखि आदि से ढञ्, सङ्काश आदि से ण्य, बलादि से य, पक्षादि से फक्, कर्णादि से फिञ्, सुतङ्गमादि से इञ्, प्रगदिन् आदि से ञ्य, वराह आदि से कक् और कुमुदादि से ठक् प्रत्यय होते हैं।

अरीहणादिभ्यो वुञ्। अरीहणादि गणपठित प्रातिपदिकों से वुञ् प्रत्यय होता है।

अरीहणेन निर्वृत्तमारीहणकम्। अरीहण के द्वारा बसाया गया नगर। **अरीहणेन निर्वृत्तम्** अर्थ में **अरीहण+टा** से **वुञ्छण्कठजिलसेनिरढञ्ययय०** सूत्र से वुञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, वु के स्थान पर **युवोरनाकौ** से अक आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **आरीहणक** और स्वादिकार्य होकर **आरीहणकम्** सिद्ध हो जाता है।

अरीहणादिगणः- अरीहण,(अहीरण), द्रुघण, द्रुहण, भलग, (भगल), उलन्द, किरण, सांपरायण, क्रौष्ट्रायण, औष्ट्रायण, त्रैगर्तायन, मैत्रायण, भास्त्रायण, वैमतायण, (वैमतायन), गौमतायन, सोमतायन, सौसायन, धौमतायन, सौमासन, ऐन्द्रायण, कौन्द्रायण, (कौद्रायण), खाडायन, शाण्डिल्यायन, रायस्पोष, विपथ, विपाश, उद्दण्ड, उदञ्चन, खाण्डवीरण, वीरण, काशकृत्स्न, जाम्बवत, शिंशपा, रैवत, (रेवत), बिल्व, सुयज्ञ, शिरीष, बधिर, जम्बु, खदिर, सुशर्मन्, (सशर्मन्), भलतृ, भलन्दन, खण्डु, कलन, यज्ञदत्त।

कृशाश्वादिभ्यश्छण्। कृशाश्व आदि गणपठित प्रातिपदिकों से छण् प्रत्यय होता है। णित्करण आदिवृद्धि के लिये है। छकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम् से ईय्** आदेश होता है।

कार्शाश्वीयम्। कृशाश्व द्वारा बसाया गया नगर। **कृशाश्वेन निर्वृत्तम्** अर्थ में **कृशाश्व+टा** से **वुञ्छण्कठजिलसेनिरढञ्ययय०** सूत्र से छण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, ईय् आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, रपर, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **कार्शाश्वीय** और स्वादिकार्य होकर **कार्शाश्वीयम्** सिद्ध हो जाता है।

कृशाश्वादिगणः- कृशाश्व, अरिष्ट, अरिश्म, वेश्मन्, विशाल, लोमश, रोमश, रोमक, लोमक, शबल, कूटवर्चल, सुवर्चल, सुकर, सूकर, प्रातर्, (प्रतर), सदृश, पुरग,

पुराग, मुख, धूम, अजिन, विनत, अवनत, कुविद्यास, (कुविट्यास), पराशर, अरुस्, अयस्, मौदद्गत्याकर, (मौद्रल्य, युकर)।

ऋश्यादिभ्यः कः। ऋष्य-आदि गणपठित शब्दों से चातुरर्थिक अर्थ में क-प्रत्यय होता है। फलाभावात् ककार की **चुटू** से इत्संज्ञा नहीं होती। वैसे भी **लशक्वतद्धिते** सूत्र में **अतद्धिते** पद से तद्धित में लकार, शकार, कवर्ग की इत्संज्ञा नहीं होती।

ऋश्यकम्। ऋश्य=बारहसींगे जहाँ बहुत रहते हों, वह नगर, वन। **ऋश्याः सन्ति अस्मिन् देशे** अर्थ में **ऋश्य+जस्** से **वुञ्छण्कठजिलसेनिरढञ्ययय०** सूत्र से क-प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **ऋश्यक** और स्वादिकार्य होकर **ऋश्यकम्** सिद्ध हो जाता है।

ऋश्यादिगणः- ऋश्य, (हृष्य), न्यग्रोध, शर, निलीन, [निवास, निवात], निधान, निबन्धन, (निबन्ध), [विबद्ध], परिगूढ, [उपगूढ], असनि, सित, मत, वेश्मन्, उत्तराश्मन्, अश्मन्, स्थूलबाहु, खदिर, शर्करा, अनडुह, (अनुडुह्), अरडु, परिवंश, वेणु, वीरण, खण्ड, दण्ड, परिवृत्त, कर्दम, अंशु।

कुमुदादिभ्यष्ठच्। कुमुद आदि गणपठित शब्दों से चातुरर्थिक ठच्-प्रत्यय होता है। चकार इत्संज्ञक है, ठ के स्थान पर **ठस्येकः** सूत्र से **इक** आदेश होता है।

कुमुदिकम्। कुमुद द्वारा बसाया गया नगर। **कुमुदेन निर्वृत्तम्** अर्थ में **कुमुद+टा** से **वुञ्छण्कठजिलसेनिरढञ्ययय०** सूत्र से ठच् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इक आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **कुमुदिक** और स्वादिकार्य होकर **कुमुदिकम्** सिद्ध हो जाता है।

कुमुदादिगणः- कुमुद, शर्करा, न्यग्रोध, इङ्कट, संकट, कंकट, गर्त, बीज, परिवाप, निर्यास, शकट, कच, मधु, शिरीष, अश्व, अश्वत्थ, बल्वज, यवास, कूप, विकङ्कट, दशग्राम।

काशादिभ्य इलः। काश-आदि गणपठित प्रातिपदिकों से चातुरर्थिक इल-प्रत्यय होता है। इसमें किसी वर्ण की इत्संज्ञा नहीं होती।

काशिलः। काश से बनाया गया। **काशेन निर्वृत्तः** अर्थ में **काश+टा** से **वुञ्छण्कठजिलसेनिरढञ्ययय०** सूत्र से इल-प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **काशिल** और स्वादिकार्य होकर **काशिलः** सिद्ध हो जाता है।

काशादिगणः- काश, पाश, अश्वत्थ, पलाश, पीयूक्षा, चरण, वास, नड, वन, कर्दम, कच्छूल, कङ्कट, गुह, बिस, तृण, कर्पूर, बर्बर, मधुर, ग्रह, कपित्थ, जतु, सीपाल।

तृणादिभ्यः सः। तृण-आदि गणपठित प्रातिपदिकों से चातुरर्थिक स-प्रत्यय होता है। इसमें किसी वर्ण की इत्संज्ञा नहीं होती।

तृणसम्। तृण का बनाया हुआ। **तृणैः निर्वृत्तम्** अर्थ में **तृण+भिस्** से **वुञ्छण्कठजिलसेनिरढञ्ययय०** सूत्र के द्वारा स-प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **तृणस** और स्वादिकार्य होकर **तृणसम्** सिद्ध हो जाता है। भसंज्ञा के विषय में **यचि भम्** सूत्रार्थ का स्मरण करना चाहिये। भसंज्ञाभाव में अकारलोप भी नहीं होता।

तृणादिगणः- तृण, नड, मूल, वन, पर्ण, वर्ण, वराण, बिल, पुल, फल, अर्जुन, अर्ण, युवर्ण, बल, चरण, बुस।

प्रेक्षादिभ्य इनिः। प्रेक्षा आदि गणपठित प्रातिपदिकों से चातुरर्थिक इनि-प्रत्यय होता है। **इनि** में अन्त्य इकार की इत्संज्ञा होती है, **इन्** बचता है। इससे शब्द इन्नन्त बन जाता है। इसके रूप हलन्त में योगिन्-शब्द के समान होते हैं।

प्रेक्षी। प्रेक्षा के द्वारा निर्मित। **प्रेक्षया निर्वृत्तम्** अर्थ में **प्रेक्षा+टा** से **वुञ्छण्कठजिलसेनिरढञ्ययय०** सूत्र के द्वारा इनि-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर, भसंज्ञक आकार का लोप होकर **प्रेक्षिन्** और स्वादिकार्य होकर **प्रेक्षी** सिद्ध हो जाता है। **प्रेक्षी, प्रेक्षिणौ, प्रेक्षिणः।**

प्रेक्षादिगणः- प्रेक्षा, फलका, (हलका), बन्धुका, ध्रुवका, क्षिपका, न्यग्रोध, इक्कट, कंकट, संकट, कट, कूप, बुक, पुक, पुट, मह, परिवाप, यवाष, धुवका, गर्त्त, कूपक, हिरण्य।

अश्मादिभ्यो रः। अश्मन् आदि गणपठित प्रातिपदिकों से चातुरर्थिक र-प्रत्यय होता है।

अश्मरः। जिस प्रदेश में पत्थर बहुत अधिक हों। **अश्मानः सन्ति अस्मिन् देशे** अर्थ में **अश्मन्+जस्** से **वुञ्छण्कठजिलसेनिरढञ्ययय०** सूत्र के द्वारा र-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, नकार का **नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप होकर **अश्मर** और स्वादिकार्य होकर **अश्मरः** सिद्ध हो जाता है।

अश्मादिगणः- अश्मन्, यूथ, ऊष, मीन, नद, दर्भ, वृन्द, गुद, खण्ड, नग, शिखा, कीट, पाम, कन्द, कान्द, पुल, गौह, गुड, कुण्डल, पीन, गुह।

सख्यादिभ्यो ढञ्। सखि-आदि गणपठित प्रातिपदिकों से चातुरर्थिक ढञ्-प्रत्यय होता है। ञकार की इत्संज्ञा होती है और केवल ढकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र से **एय्** आदेश होकर प्रत्यय का स्वरूप **एय** बन जाता है। ञित्करण आदिवृद्धि और स्वर के लिये है।

साखेयम्। सखि (सखिदत्त) के द्वारा निर्मित कूप आदि। **सख्या (सखिदत्तेन) निर्वृत्तम्** अर्थ में **सखि+टा** से **वुञ्छण्कठजिलसेनिरढञ्ययय०** सूत्र के द्वारा ढञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, एयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर, आदिवृद्धि, भसंज्ञक इकार का लोप होकर **साखेय** और स्वादिकार्य होकर **साखेयः** सिद्ध हो जाता है।

सख्यादिगणः- सखि, अग्निदत्त, वायुदत्त, सखिदत्त, [गोपिल], भल्लपाल,

(भल्ल, पाल), चक्र, चक्रवाक, छगल, अशोक, करवीर, वासव, वीर, पूर, वज्र, कुशीरक, शीहर, (सीहर), सरक, सरस, समर, समल, सुरस, रोह, तमाल, कदल, सप्तल।

सङ्काशादिभ्यो ण्यः। सङ्काश आदि गणपठित प्रातिपदिकों से चातुरर्थिक ण्य-प्रत्यय होता है। णकार इत्संज्ञक है, य बचता है।

साङ्काश्यम्। सङ्काश के द्वारा निर्मित नगर। **सङ्काशेन निर्वृत्तम्** अर्थ में **सङ्काश+टा** से **वुञ्छण्कठजिलसेनिरढञ्ण्यय०** सूत्र के द्वारा ण्य-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **साङ्काश्य** और स्वादिकार्य होकर **साङ्काश्यम्** सिद्ध हो जाता है।

सङ्काशादिगणः- संकाश, कपिल, कश्मीर, [समीर], सूरसेन, सरक, सूर। **सुपथिन् पन्थ च**। यूप, यूथ, अंश, अङ्ग, नासा, पलित, अनुनाश, अश्मन्, कूट, मलिन, दश, कुम्भ, शीर्ष, चिरन्त, (विरत), समल, सीर, पञ्जर, मन्थ, नल, रोमन्, लोमन्, पुलिन, सुपरि, कटिप, सकर्णक, वृष्टि, तीर्थ, अगस्ति, विकर, नासिका।

इस गण के अन्दर एक गणसूत्र भी है- **सुपथिन् पन्थ च**। यह ण्य-प्रत्यय के साथ **पथिन्**-शब्द के स्थान पर **पन्थ** आदेश भी करता है।

बलादिभ्यो यः। बल-आदि गणपठित प्रातिपदिकों से चातुरर्थिक य-प्रत्यय होता है।

बल्यम्। बलराम या बल-नामक दैत्य द्वारा निर्मित। **बलेन निर्वृत्तम्** अर्थ में **बल+टा** से **वुञ्छण्कठजिलसेनिरढञ्ण्यय०** सूत्र के द्वारा य-प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **बल्य** और स्वादिकार्य होकर **बल्यम्** सिद्ध हो जाता है।

बलादिगणः- बल, चुल, नल, दल, वट, लकुल, उरल, पुख, (पुल), मूल, उलडुल, (उल, डुल), वन, कुल।

पक्षादिभ्यः फक्। पक्ष आदि गणपठित प्रातिपदिकों से चातुरर्थिक फक्-प्रत्यय होता है। ककार इत्संज्ञक है और फकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र से **आयन्** आदेश होकर प्रत्यय का स्वरूप **आयन** बन जाता है। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि होती है।

पाक्षायणः। पंखों से निर्मित। **पक्षैः निर्वृत्तम्** अर्थ में **पक्ष+भिस्** से **वुञ्छण्कठजिलसेनिरढञ्ण्यय०** सूत्र के द्वारा फक्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, आयन् आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप, नकार को णत्व होकर **पाक्षायण** और स्वादिकार्य होकर **पाक्षायणः** सिद्ध हो जाता है।

'पथः पन्थ च'। यह पक्षादिगण का अन्तर्गण सूत्र है। सूत्रार्थः- पथिन्-शब्द से फक् प्रत्यय के सन्निधान होने पर पथिन्-शब्द के स्थान पर **पन्थ** आदेश भी होता है।

पान्थायनः। बहुत से मार्ग जिस जनपद (देश) में हों। **पन्थानः अस्मिन् सन्ति** अर्थ में **पथिन्+जस्** से **वुञ्छण्कठजिलसेनिरढञ्यय०** सूत्र के द्वारा फक्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, आयन् आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होने पर **पथः पन्थ च** गणसूत्र से **पन्थ** आदेश होने के बाद आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पान्थायन** और स्वादिकार्य होकर **पान्थायनः** सिद्ध हो जाता है।

पक्षादिगणः- पक्ष, तुक्ष, तुष, कुण्ड, अण्ड, कम्बलिका, वलिक, चित्र, अस्ति। **पथः पन्थ च**। कुम्भ, सीरक, सरक, सकल, सरस, समल, अतिश्वन्, रोमन्, लोमन्, हस्तिन्, मकर, लोमक, शीर्ष, निवात, पाक, सहक, (सिंहक), अङ्कुश, सुवर्णक, हंसक, हिंसक, कुत्स, बिल, खिल, यमल, हस्त, कला, सकर्णक।

कर्णादिभ्यः फिञ्। कर्ण-आदि गणपठित प्रातिपदिकों से चातुरर्थिक फिञ्-प्रत्यय होता है। फिञ् में ञकार इत्संज्ञक है और फकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र से **आयन्** आदेश होकर प्रत्यय का स्वरूप **आयनि** बन जाता है। ञित्करण आदिवृद्धि और स्वरविशेष के लिये है।

कार्णायनिः। कर्ण के द्वारा बसाया जनपद (देश, नगर)। **कर्णेन निर्वृत्तः** अर्थ में **कर्ण+टा** में **वुञ्छण्कठजिलसेनिरढञ्यय०** सूत्र के द्वारा फिञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, आयन् आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **कार्णायनि** और स्वादिकार्य होकर **कार्णायनिः** सिद्ध हो जाता है।

कर्णादिगणः- कर्ण, वसिष्ठ, अर्क, अर्कलूष, द्रुपद, आनडुह्य, पाञ्चजन्य, स्फिग्, (स्फिज्), कुम्भी, कुन्ती, जित्वन्, जीवन्त, कुलिश, आण्डीवत्, (आण्डीवत), जैव, जैत्र, आकन, (आनक)।

सुतङ्गमादिभ्य इञ्। सुतङ्गम आदि प्रातिपदिकों से चातुरर्थिक इञ्-प्रत्यय होता है। ञकार इत्संज्ञक है, **इ** बचता है।

सौतङ्गमिः। सुतङ्गम के द्वारा बसाया जनपद (देश, नगर)। **सुतङ्गमेन निर्वृत्तः** अर्थ में **सुतङ्गम+टा** में **वुञ्छण्कठजिलसेनिरढञ्यय०** सूत्र के द्वारा इञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **सौतङ्गमि** और स्वादिकार्य होकर **सौतङ्गमिः** सिद्ध हो जाता है।

सुतङ्गमादिगणः- सुतङ्गम, मुनिचित, विप्रवचित, महाचित, महापुत्र, स्वन, श्वेत, गडिक, (खडिक), शुक्र, विग्र, बीजवापिन्, (बीज, वापिन्), अर्जुन, श्वन्, अजिर, जीव, खण्डित, कर्ण, विग्रह।

प्रगद्यादिभ्यो ञ्यः। प्रगदिन् आदि प्रातिपदिकों से चातुरर्थिक ञ्य-प्रत्यय होता है। ञकार इत्संज्ञक है, **य** बचता है।

प्रागद्यः। प्रगदिन् (प्रगदी) के द्वारा निर्मित। **प्रगदिना निर्वृत्तः** अर्थ में **प्रगदिन्+टा** में **वुञ्छण्कठजिलसेनिरढञ्यय०** सूत्र के द्वारा ञ्य-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा,

सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, **नस्तद्धिते** सूत्र से टिसंज्ञक भाग **इन्** का लोप **प्रागद्य** और स्वादिकार्य होकर **प्रागद्यः** सिद्ध हो जाता है।

प्रगद्यादिगणः- प्रगदिन्, मगदिन्, मददिन्, कविल, खण्डित, गदित, चूडार, भडार, मन्दार, कोविदार।

वराहादिभ्यः कक्। वराहादिगणपठित प्रातिपदिकों से चातुरर्थिक कक्-प्रत्यय होता है। अन्त्य ककार इत्संज्ञक है, **क** बचता है। कित्करण आदिवृद्धि के लिये है। तद्धितीय प्रत्यय होने के कारण **लशक्वतद्धिते** सूत्र से आदिककार की इत्संज्ञा नहीं होती।

वाराहकः। वराह=सूअर जिस स्थान में हो, वह स्थान। **वराहाः अस्मिन् सन्ति** अर्थ में **वराह+जस्** में **वुञ्छण्कठजिलसेनिरढञ्यय०** सूत्र के द्वारा कक्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि होकर **वाराहक** और स्वादिकार्य होकर **वाराहकः** सिद्ध हो जाता है।

वराहादिगणः- वराह, पलाशा, (पलाश), शेरीष, (शिरीष), पिनद्ध, निबद्ध, बलाह, स्थूल, विदग्ध, [विजग्ध], निमग्न, [निभग्न], बाहु, खदिर, शर्करा।

कुमुदादिभ्यष्ठक्। कुमुदादिगणपठित प्रातिपदिकों से चातुरर्थिक ठक्-प्रत्यय होता है। ककार इत्संज्ञक है और **ठ** के स्थान पर **ठस्येकः** से **इक** आदेश होता है। कित्करण आदिवृद्धि के लिये है।

कुमुदादिगणो द्वितीयः- कुमुद, गोमथ, रथकार, दशग्राम, अश्वत्थ, शाल्मलि, शिरीष, मुनिस्थल, कुण्डल, मधुकर्ण, घासतुन्द, शुचिकर्ण।

कौमुदिकः। जहाँ कुमुद=कमल अधिक हों, वह देश। **कुमुदानि अस्मिन् सन्ति** अर्थ में **कुमुद+जस्** में **वुञ्छण्कठजिलसेनिरढञ्यय०** सूत्र के द्वारा ठक्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **कौमुदिक** और स्वादिकार्य होकर **कौमुदिकः** सिद्ध हो जाता है।

प्रकृतसूत्र में प्रयुक्त प्रत्ययों से निष्पन्न शब्द अधिकतर स्थानवाची हैं। जनपद भी स्थान ही है तथापि जनपद-वाच्य होने पर अगले सूत्र से प्रत्यय का लुप् (लोप) किया जाता है। इस प्रकरण के आरम्भ में कहे गये चारों अर्थों के सूत्रस्थ प्रथम् पद अर्थात् **तत्, तेन, तस्य** इन विभक्त्यन्त शब्दों के अनुसार उदाहरणस्थ प्रातिपदिकों में चारों अर्थों को अभिलक्षित कर तथोक्त का विग्रहार्थ उल्लेख किया जायेगा। सभी शब्दों से चारों अर्थों में प्रत्यय होते हैं, ऐसा नहीं है। जहाँ पर जो अर्थ योग्य हो, उस अर्थ में प्रत्यय समझना चाहिये। उपर्युक्त गणपाठों में एक गण के शब्द दूसरे गण में भी आये हैं। अतः ऐसे में उभयगणों के प्रत्यय समझने चाहिये। एक ही सूत्र में सत्रह गण और सत्रह प्रत्यय बताये गये हैं।

१२९३. जनपदे लुप् ४।२।८१॥

जनपदे वाच्ये चातुरर्थिकस्य लुप् स्यात्।

जनपदे लुप्। जनपदे सप्तम्यन्तं, लुप् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्।

जनपद अर्थ वाच्य होने पर चातुरर्थिक प्रत्यय का लुप् होता है।

प्रकरण से ही **चातुरर्थिक का** अर्थ जाना जाता है क्योंकि अष्टाध्यायी में ही चातुरर्थिक-प्रत्यय-विधायक सूत्रों के बीच में इस सूत्र को पढ़ा गया है। **प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः** के अनुसार **लुक्** की तरह **लुप्** भी प्रत्यय का अदर्शन है। लुप् होने के बाद भी **यः शिष्यते स लुप्यमानार्थाभिधायी** के अनुसार लुप् होने के बाद जो शेष रहता है वह लुप्त हुए प्रत्यय के अर्थ को कह देता है।

१२९४. लुपि युक्तवद्व्यक्तिवचने १।२।५१॥

लुपि सति प्रकृतिवल्लिङ्गवचने स्तः।

पञ्चालानां निवासो जनपदः पञ्चालाः।

कुरवः। अङ्गाः। वङ्गाः। कलिङ्गाः।

लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने। युक्तेन तुल्यं युक्तवत्। व्यक्तिश्च वचनं च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः व्यक्तिवचने। लुपि सप्तम्यन्तं, युक्तवत् अव्ययं, व्यक्तिवचने प्रथमान्तं, त्रिपदम् अतिदेशसूत्रम्।

प्रत्यय के लुप् होने पर शब्द में प्रकृति के समान ही लिङ्ग और वचन होते हैं।

सूत्र में आया हुआ **युक्त** शब्द का **प्रकृति** तथा **व्यक्ति** शब्द का **लिङ्ग** और **वचन** शब्द का **संख्या** अर्थ है। तात्पर्य यह है लुप् किये प्रत्यय जिस प्रकृति से विहित हुए हैं, उनके लुप् के बाद प्रकृति के अनुसार ही लिङ्ग और वचन होना चाहिए, उसके विशेष्य के अनुसार नहीं लगाना चाहिए। इस सूत्र के द्वारा विहित कार्य को **युक्तवद्भाव** कहते हैं। यह अतिदेश सूत्र है।

पञ्चालाः। पञ्चालों के जनपद। **पञ्चालानां निवासो जनपदः पञ्चालाः।** यहाँ पर विशेष्य पद है **जनपदः** और प्रकृति है **पञ्चालाः।** यह प्रथमान्त बहुवचन और पुँल्लिङ्ग है। **पञ्चाल+आम्** से **निवास** और **जनपद** अर्थ में **अण्** का विधान हुआ, उसका **जनपदे लुप्** से लुप् हो गया अर्थात् अदर्शन हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् के लुक् के पश्चात् **लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने** से **युक्तवद्भाव** अर्थात् प्रकृतिवद्भाव हुआ। फलतः **जनपदः** इस विशेष्य के अनुसार लिङ्गवचन न होकर प्रकृति के अनुसार बहुवचन ही हुआ। जिससे कि जस् विभक्ति की उपस्थिति होकर **पञ्चालाः** सिद्ध हुआ।

कुरवः। कुरुदेश के क्षत्रियों का जनपद। **कुरु** शब्द से प्रत्यय, उसका लुप्, युक्तवद्भाव, स्वादिकार्य, प्रथमाबहुवचन में- **कुरवः।**

अङ्गाः। अंगदेश के क्षत्रियों का जनपद। **अङ्ग** शब्द से प्रत्यय, उसका लुप्, युक्तवद्भाव, स्वादिकार्य, प्रथमाबहुवचन में- **अङ्गाः।**

वङ्गाः। वंगदेश के क्षत्रियों का जनपद। **वङ्ग** शब्द से प्रत्यय, उसका लुप्, युक्तवद्भाव, स्वादिकार्य, प्रथमाबहुवचन में- **वङ्गाः**।

कलिङ्गाः। कलिंगदेश के क्षत्रियों का जनपद। **कलिङ्ग** शब्द से प्रत्यय, उसका लुप्, युक्तवद्भाव, स्वादिकार्य, प्रथमाबहुवचन में- **कलिङ्गाः**।

उक्त सभी उदाहरणों में निवासार्थक अण् आदि प्रत्यय करके उसका लुप् किया गया है। सामान्यतया विशेषण के लिङ्ग और वचन विशेष्य के अनुसार होते हैं किन्तु यहाँ उसका अपवाद किया गया है।

युक्तवद्भाव दिखाकर आगे कुछ सूत्रों से इसकी अत्यधिक आवश्यकता का अभाव और लुप् आदि के विषय में भी उनकी अनिवार्यता की अनावश्यकता बता रहे हैं-

१२९५. तदशिष्यं सञ्ज्ञाप्रमाणत्वात् १।२।५३॥
युक्तवद्वचनं न कर्तव्यम्, सञ्ज्ञानां प्रमाणत्वात्।

तदशिष्यं सञ्ज्ञाप्रमाणत्वात्। शासितुं शक्यं शिष्यं, न शिष्यमशिष्यम्, नञ्तत्पुरुषः। संज्ञायाः प्रमाणं संज्ञाप्रमाणम्, षष्ठीतत्पुरुषः। संज्ञाप्रमाणस्य भावः संज्ञाप्रमाणत्वम्, तस्मात् संज्ञाप्रमाणत्वात्।

उपर्युक्त युक्तवद्भाव का पूरा-पूरा शासन=विधान नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह संज्ञाप्रमाण=लौकिक-व्यवहार के अधीन है।

तद्-शब्द से अष्टाध्यायीक्रम के पूर्वसूत्र **लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने** में कथित **युक्तवद्भाव** का परामर्श किया जाता है। **संज्ञाप्रमाण** शब्द का अर्थ है संज्ञा=रूढ अर्थात् लोकव्यवहार को प्रमाण मानना। यहाँ पर युक्तवद्भाव सार्वत्रिक नहीं है, यह बतलाना तात्पर्य है। कारण यह है कि युक्तवद्भाव लोकव्यवहाराधीन है। अतः स्वतःसिद्ध वस्तु के विधान के सम्बन्ध में नियम की आवश्यकता नहीं रहती। जैसै कि **दारा** शब्द स्त्रीवाची होते हुये भी पुंल्लिङ्ग-बहुवचनान्त लोक में प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार **अप्** शब्द भी लोकव्यवहार के कारण नित्य स्त्रीलिङ्ग-बहुवचनान्त ही लोक में प्रयुक्त होता है। अतः इस सम्बन्ध में अकाट्य विधान आवश्यक नहीं है। उसका कारण यह है कि व्याकरण के नियमों को न जानने वाला अवैयाकरण भी **पञ्चालाः** पद की सिद्धि में निवासार्थक अण् प्रत्यय का लोप होने के बाद होने वाली युक्तवद्भाव की प्रक्रिया को न जानते हुये भी बहुवचन **पञ्चालाः** का प्रयोग करता ही है। अतः लिङ्ग और वचन लोकाधीन हैं। इसी बात को महाभाष्यकार ने **लिङ्गमशिष्यं लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्य** कह कर प्रमाणित किया है। यह बात तब रही होगी जब सभी लोग संस्कृत में ही व्यवहार करते होंगे। आज परिस्थिति भिन्न है, फिर भी प्रयोगक्षेत्र वाले शास्त्रों से भी लिङ्गवचन का निर्णय किया जा सकता है।

१२९६. लुब्योगाप्रख्यानात् १।२।५४॥
लुबपि न कर्तव्योऽवयवार्थस्येहाप्रतीतेः।

लुब्योगाप्रख्यानात्। न प्रख्यानमप्रख्यानम्, नञ्तत्पुरुषः। योगस्य अप्रख्यानं योगाप्रख्यानम्, तस्माद् योगाप्रख्यानात्, षष्ठीतत्पुरुषः। तदशिष्यं सञ्ज्ञाप्रमाणत्वात् से **अशिष्यम्** की अनुवृत्ति आती है।

अवयवार्थ की प्रतीति न होने से लुप् का अनुशासन नहीं किया जा सकता।

अनुवृत्त **अशिष्यम्** ही विधेय है। **अप्रख्यान**-शब्द का अर्थ है- अप्रतीति। सूत्र का तात्पर्य यह है कि लिङ्गवचन के लोकप्रसिद्ध होने से तथा निवासादि सम्बन्ध की प्रतीति न होने के कारण लुप्-विधान की भी अत्यन्त आवश्यकता नहीं है, क्योंकि जो व्याकरण नहीं जानते किन्तु भाषा जानते हैं, ऐसे लोग भी लुबर्थ शब्दों का प्रयोग करते ही हैं। वस्तुतः **पञ्चालाः, कुरवः, अङ्गाः, वङ्गाः, कलिङ्गाः** आदि जनपदीय संज्ञाविशेष हैं, न कि निवास के योग से ही **पञ्चालाः** आदि कहा जाता है। पूर्वसूत्र में उपजीवक युक्तवद्भाव का प्रत्याख्यान करने के उपरान्त यहाँ पर उपजीव्य प्रत्यय के लुक् का भी प्रत्याख्यान सूचित किया गया है।

१२९७. योगप्रमाणे च तदभावेऽदर्शनं स्यात् १।२।५५॥
यदि हि योगस्यावयवार्थस्येदं बोधकं स्यात्तदा तदभावे न दृश्येत।

योगप्रमाणे च तदभावेऽदर्शनं स्यात्। योगस्य प्रमाणं योगप्रमाणं, तस्मिन् योगप्रमाणे, षष्ठीतत्पुरुषः। न भावोऽभावः, तस्य अभावस्तदभावस्तस्मिन् तदभावे, नञ्तत्पुरुषः। न दर्शनम् अदर्शनम्, नञ्तत्पुरुषः। योगप्रमाणे सप्तम्यन्तं, चाव्ययं, तदभावे सप्तम्यन्तम्, अदर्शनं प्रथमान्तं, स्यात् क्रियापदम्। **अशिष्यम्** की अनुवृत्ति आती है।

सम्बन्ध को प्रमाण मानकर यदि संज्ञा हो तो भी उस सम्बन्ध के हट जाने पर उस संज्ञा का अदर्शन होना चाहिये।

(पर वह होता नहीं, क्योंकि पाञ्चालादि जनपद-विशेष की संज्ञायें हैं, इन्हें यौगिक नहीं कहा जा सकता)

इससे यह पता लगता है कि पञ्चालादि जनपद-विशेष की संज्ञायें हैं, योगनिमित्तक इन्हें कहना अशक्य है। इस तरह पूर्वसूत्र के कथन को ही यह सूत्र हेतु देकर स्पष्ट करता है। तात्पर्य यह है कि यदि पञ्चालादि शब्द पञ्चालों के निवास करने के कारण ही जनपदविशेष की संज्ञायें पड़ी होतीं तो यदि वहाँ से पञ्चाल क्षत्रिय किसी कारण से सर्वथा चले जायें, तो उस जनपद की पञ्चाल-संज्ञा नहीं रहनी चाहिये, क्योंकि जिस कारण से=सम्बन्ध से जनपद की पञ्चाल-संज्ञा पड़ी थी, वह सम्बन्ध तो रहा नहीं,

फिर भी पञ्चाल का व्यवहार उस जनपद के लिये किया जाता है। इससे पता लगा है कि संज्ञायें योगनिमित्तक=निवासादि अर्थनिमित्तक नहीं हैं, किन्तु संज्ञाविशेष ही हैं।

१२९८. प्रधानप्रत्ययार्थवचनमर्थस्यान्यप्रमाणत्वात् १।२।५६॥

'प्रत्ययार्थः प्रधानम्' इत्येवंरूपं वचनमप्यशिष्यम्। कुतः? अर्थस्य लोकत एव सिद्धेः।

प्रधानप्रत्ययार्थवचनमर्थस्यान्यप्रमाणत्वात्। प्रत्ययस्य अर्थः प्रत्ययार्थः, प्रधानश्चासौ प्रत्ययार्थश्च इति प्रधानप्रत्ययार्थस्तस्य वचनं प्रधानप्रत्ययार्थवचनम्। अन्यच्च तत् प्रमाणम् अन्यप्रमाणम्, कर्मधारयः। अन्यप्रमाणस्य भावोऽन्यप्रमाणत्वम्, तस्माद् अन्यप्रमाणत्वात्। प्रधानप्रत्ययार्थवचनं प्रथमान्तं, अर्थस्य षष्ठ्यन्तम्, अन्यप्रमाणत्वात् पञ्चम्यन्तम्। **अशिष्यम्** की अनुवृत्ति आती है।

'प्रत्ययार्थः प्रधानम्' अर्थात् प्रकृत्यर्थ और प्रत्ययार्थ में प्रत्ययार्थ ही प्रधान होता है, ऐसा यह पूरा-पूरा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अर्थ के अन्यप्रमाणत्वात्=लोक के प्रमाण से सिद्ध होने के कारण।

सूत्र का तात्पर्य सम्यक् रूप से समझना आवश्यक है। पाणिनि के पूर्ववर्ती आचार्य मानते थे कि **प्रधानोपसर्जने सह ब्रूतः**=प्रधान एवं गौण दोनों अर्थों की अभिव्यक्ति साथ ही होती है, तथा **प्रकृतिप्रत्ययौ सहार्थं ब्रूतः**=प्रकृति एवं प्रत्यय भी साथ ही अर्थ की अभिव्यक्ति करते हैं। उक्त प्राचीन मत का आचार्य पाणिनि जी प्रत्याख्यान करते हैं। कारण यह है कि व्याकरणज्ञान से शून्य व्यक्ति भी प्रधानार्थ एवं प्रत्ययार्थ से परिचित रहता है। जैसे कि **राजपुरुषम् आनय** (राजा से सम्बन्धित व्यक्ति को लाओ) कहने पर राजविशिष्ट पुरुष का ही आनयन करता है, न कि केवल राजा को और ना ही केवल पुरुष को। प्रधानार्थ के जानने से युक्त व्यक्ति का लाया जाना सम्भव होता है। इसी प्रकार प्रत्ययार्थ के विषय में भी **औपगवम् आनय** (गायों के समीप रहने वाले को **उपगु** कहते हैं और उपगु की सन्तान को **औपगव** कहते है, ऐसे औपगव को लाओ) कहने पर उपगु के अपत्य को लाया जाता है, न कि केवल उपगु का आनयन होता है और ना ही अन्य किसी अपत्य का। इस प्रकार प्रत्यय के अर्थ का बोध भी स्वाभाविक रूप से लोक से ही हो जाता है। अतः ये सब लोकव्यवहाराधीन हैं। जो कार्य लोकव्यवहार से सिद्ध हैं, उनमें सूत्र के द्वारा नियम बनाना अत्यावश्यक नहीं है अर्थात् उन्हें किसी सीमा में बाँधना उचित नहीं है। इसी के साथ ही सूत्र में मूलतः यह बताया गया है कि प्रकृति के अर्थ और प्रत्यय के अर्थों में दोनों में से प्रत्यय का अर्थ प्रधान अर्थात् विशेष्य ही होता है, ऐसा पूर्णतः नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अर्थ का निर्णय लोकव्यवहाराधीन होता है। अतः मूलकार लिखते हैं- **'प्रत्ययार्थः प्रधानम्' इति वचनमशिष्यम्, कुतः? अर्थस्य लोकत एव सिद्धेः।**

१२९९. कालोपसर्जने च तुल्यम् १।२।५७॥

अतीताया रात्रेः पश्चार्धेनागामिन्याः पूर्वार्धेन च सहितो दिवसोऽद्यतनः, विशेषणमुपसर्जनम् इत्यादि पूर्वाचार्यैः परिभाषितम्, तत्राप्यशिष्यत्वं समानम्, लोकप्रसिद्धेः।

कालोपसर्जने च तुल्यम्। कालश्च उपसर्जनं च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः कालोपसर्जने। कालोपसर्जने प्रथमाद्विवचनं, चाव्ययं, तुल्यं प्रथमान्तम्। **अशिष्यम्** की अनुवृत्ति आती है।

काल तथा उपसर्जन=गौण की परिभाषा भी पूरी-पूरी नहीं कही जा सकती, क्योंकि तुल्य होने से अर्थात् पूर्वसूत्र के कहे हेतु के कारण वे भी लोक से ही सिद्ध होते हैं।

अतीताया रात्रेः पश्चार्धेनागामिन्याः पूर्वार्धेन च सहितो दिवसोऽद्यतनः, विशेषणमुपसर्जनम् इत्यादि पूर्वाचार्यैः परिभाषितम्, तत्राप्यशिष्यत्वं समानम्, लोकप्रसिद्धेः। अर्थात् कुछ आचार्य पूर्व अर्धरात्रि से लेकर दूसरी अर्धरात्रि तक अद्यतनकाल (आज का समय) मानते हैं। इसी प्रकार कुछ आचार्यों ने उपसर्जन (गौण) की परिभाषा की है- **विशेषणम्=अप्रधानम् उपसर्जनम्** (अप्रधान को उपसर्जन कहा जाता है) इत्यादि। किन्तु यह सब कहने की आवश्यकता नहीं है अर्थात् यह सब लोकव्यवहार के अधीन है। कारण यह है कि व्याकरण के ज्ञान के बिना भी **आज मैंने यह कार्य किया, कल मैं नगर जाऊँगा, कल मैं मन्दिर गया था, यह प्रधान है, यह अप्रधान है**- इत्यादि व्यवहार लोग करते आये हैं। अतः लोक से ही काल और उपसर्जन का ज्ञान हो जाता है। अतः व्याकरणशास्त्र में इनकी परिभाषा की जरूरत नहीं है।

१३००. विशेषणानां चाजातेः १।२।५२॥

लुबर्थस्य विशेषणानामपि तद्वल्लिङ्गवचने स्तो जातिं वर्जयित्वा।
पञ्चाला रमणीयाः। गोदौ रमणीयौ।
अजातेः किम्? पञ्चाला जनपदः। गोदौ ग्रामः।
'हरीतक्यादिषु व्यक्तिः'(वा.७१५)। हरीतक्याः फलानि हरीतक्यः।
'खलतिकादिषु वचनम्'(वा.७१६)।
खलतिकस्य पर्वतस्यादूरभवानि खलतिकं वनानि।
'मनुष्यलुपि प्रतिषेधः'(वा.७१७)। मनुष्यलक्षणे लुबर्थे विशेषणानां न।
लुबन्तस्य तु भवतीत्यर्थः। चञ्चा अभिरूपः।

विशेषणानां चाजातेः। विशेषणानां षष्ठ्यन्तं, चाव्ययम्, आ अव्ययं; जातेः पञ्चम्यन्तम्। **लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने** सूत्र के सभी पदों की अनुवृत्ति है। **आ जातेः**=जाति के प्रयोग से पूर्व अर्थात् जाति को छोड़कर।

जातिवाचक शब्दों के अतिरिक्त लुप्-अर्थ के विशेषणों के भी विशेष्य के समान ही लिङ्गवचन होते हैं।

यह भी युक्तवद्भाव से सम्बन्धित विषय है। प्रकृतसूत्र में **विशेषणानाम्** पद साकांक्ष है। किसके विशेषणों के सम्बन्ध में? इस प्रकार की आकांक्षा होने पर अनुवृत्त **लुपि** पद षष्ठीविभक्ति में विपरिणत होकर **विशेषणानाम्** के साथ अन्वित होता है। तदनुसार सूत्र का आशय बनता है- प्रत्यय के लुप् होने पर उस लुबर्थ के जो विशेषण, उनमें भी युक्तवद्भाव होता है, अर्थात् प्रकृत्यर्थ के समान लिङ्ग और वचन हो जाते हैं, जाति के प्रयोग से पूर्व ही अर्थात् जातिवाची कोई शब्द विशेषण के रूप में या विशेष्यरूप में प्रयुक्त हो तो उसे तथा उसके पश्चात् प्रयुक्त होने वाले विशेषणों में युक्तवद्भाव नहीं होता।

पञ्चाला रमणीयाः। पाञ्चालों का जनपद सुन्दर है। यहाँ पर **पञ्चालानां निवासः जनपदः** अर्थ में अण् प्रत्यय होने पर उसका **जनपदे लुप्** सूत्र से लुप् हुआ है। यहाँ लुप्तप्रत्ययार्थ को अभिलक्षित कर **लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने** सूत्र से विशेष्यवाची पद को युक्तवद्भाव किया गया किन्तु लुप्-सम्बन्धी अर्थ के विशेषणों में युक्तवद्भाव की व्यवस्था नहीं की गयी थी। अतः लुबर्थ के विशेषण में भी युक्तवद्भाव किये जाने से **पञ्चालाः** के समान **रमणीयाः** में भी बहुवचन हो गया है।

गोदौ रमणीयौ। गोद के जनपद सुन्दर हैं। यहाँ पर **गोदानां निवासौ जनपदौ** अर्थ में अण् प्रत्यय होने पर उसका **जनपदे लुप्** सूत्र से लुप् हुआ है। यहाँ लुप्तप्रत्ययार्थ को अभिलक्षित कर **लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने** सूत्र से विशेष्यवाची पद को युक्तवद्भाव किया गया किनतु लुप्-सम्बन्धी अर्थ के विशेषणों में युक्तवद्भाव की व्यवस्था नहीं की गयी थी। अतः लुबर्थ के विशेषण में भी युक्तवद्भाव किये जाने से **गौदौ** के समान **रमणीयौ** में भी द्विवचन हो गया है।

अजातेः किम्? पञ्चाला जनपदः। गोदौ ग्रामः। सूत्र में **अजातेः** पद का प्रयोजन यह है कि जातिवाचक शब्द होने पर युक्तवद्भाव न हो। अतः जातिवाची होने के कारण **पञ्चालाः जनपदः** और **गौदौ ग्रामः** में विशेषण विशेष्य के अनुसार न होकर अपनी प्रकृति के अनुसार ही लिङ्ग-वचन के अधिकारी बन जाते हैं। अतः **जनपदः, ग्रामः** ये एकवचन के ही बन गये हैं।

प्रकृत सूत्र में कुछ वार्तिक पढ़े गये हैं-

हरीतक्यादिषु व्यक्तिः। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- हरीतकी आदि शब्दों में प्रत्यय का लोप होने पर केवल व्यक्ति (लिङ्ग) ही प्रकृतिवत् होता है, अर्थात् वचन (संख्या) में परिवर्तन नहीं होता। यहाँ पर हरीतक्यादिगणपाठ उपलब्ध नहीं है।

हरीतक्याः फलानि हरीतक्यः। हरीतकी के फल (हरड़)। **हरीतक्याः फलानि** अर्थ में **हरीतकी+ङस्** इस स्थिति में **अनुदात्तादेरञ्** (४.२.४४) सूत्र से अञ् प्रत्यय होने पर उसका **हरीतक्यादिभ्यश्च** (४.३.१६७) सूत्र से लुप् हो जाता है। अतः

हरीतकी ही बना हुआ है। यहाँ **लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने** सूत्र के द्वारा प्राप्त स्त्रीलिङ्ग और एकवचन इन दोनों में से **हरीतक्यादिषु व्यक्तिः** वार्तिक के द्वारा केवल स्त्रीलिंग का विधान हुआ, जिससे **हरीतकी** ही बना हुआ है किन्तु वचन का युक्तवद्भाव न होने से विशेष्य पद **फलानि** के अनुसार बहुवचन होकर **हरीतक्यः** सिद्ध हो जाता है। संख्या का भी युक्तवद्भाव हो जाता तो एकवचन होकर **हरीतकी** ऐसा अनिष्ट रूप बनता।

खलतिकादिषु वचनम्। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- खलतिक आदि गणपठित शब्दों में केवल वचन अर्थात् संख्या के सम्बन्ध में युक्तवद्भाव होता है। अर्थात् लिङ्ग में परिवर्तन नहीं होता किन्तु वचन (संख्या) में परिवर्तन होता है। यहाँ पर खलतिकादिगणपाठ उपलब्ध नहीं है।

खलतिकस्य पर्वतस्यादूरभवानि खलतिकं वनानि। खलतिक पर्वत के समीपवर्ती जंगल, वन। **खलतिकस्य अदूरभवानि** अर्थ में **खलतिक+ङस्** इस स्थिति में **अदूरभवश्च** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर उसका **वरणादिभ्यश्च** सूत्र के द्वारा लुप् (लोप) हो जाता है। यहाँ **लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने** सूत्र के द्वारा प्राप्त स्त्रीलिङ्ग और एकवचन इन दोनों में से **खलतिकादिषु वचनम्** वार्तिक के द्वारा केवल संख्या के परिवर्तन का विधान हुआ, जिससे **खलतिकम्** एकवचन बन गया है किन्तु लिङ्ग का युक्तवद्भाव न होने से विशेष्य पद **वनानि** के अनुसार नपुंसकलिङ्ग होकर **खलतिकम्** सिद्ध हो जाता है। वचन का भी युक्तवद्भाव हो जाता तो बहुवचन होकर **खलतिकानि** ऐसा अनिष्ट रूप बनता।

मनुष्यलुपि प्रतिषेधः। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- मनुष्य-लक्षणार्थक प्रत्यय के लुप् होने की स्थिति में विशेषणवाची शब्दों में लिङ्ग और वचन का युक्तवद्भाव निषिद्ध रहता है। तात्पर्य यह है कि ऐसा युक्तवद्भाव नहीं होता। मूलकार ने भी प्रकृत वार्तिक का अर्थ लिखा है-

मनुष्यलक्षणे लुबर्थे विशेषणानां न। लुबन्तस्य तु भवतीत्यर्थः। मनुष्यलक्षण लुबर्थ में विशेषणों का युक्तवद्भाव नहीं होता अर्थात् लुबर्थ का नहीं होता किन्तु लुबन्त का तो हो जाता है।

चञ्चा अभिरूपः। घास-फूस की बनी सटीक मूर्ति के समान मनुष्य। **चञ्चा इव मनुष्यः** अर्थ में **इवे प्रतिकृतौ** सूत्र के अधिकार में **संज्ञायाम्** (५.३.९७) सूत्र के द्वारा **कन्** प्रत्यय होने पर उसका **लुम्मनुष्ये** (५.३.९८) सूत्र से लुप् हो जाता है। इसके बाद **लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने** सूत्र की व्यवस्था के अन्तर्गत लुप्त-प्रत्ययान्त **चञ्चा** शब्द के मनुष्यवाची होने के कारण प्रकृतिवाची स्त्रीलिङ्ग तो रहा किन्तु प्रकृत वार्तिक **मनुष्यलुपि प्रतिषेधः** के अनुसार विशेषण **अभिरूप** शब्द में परिवर्तन नहीं हुआ अर्थात् वह अपने ही लिङ्गवचन में विद्यमान रहा- **अभिरूपः।**

यहाँ तक युक्तवद्भाव का प्रकरण चल रहा था, अब पुनः चातुरर्थिक प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है-

१३०१. वरणादिभ्यश्च ४।२।८२॥

अजनपदार्थ आरम्भः। वरणानामदूरभवं नगरं वरणाः।

वरणादिभ्यश्च। वरणा आदिर्येषां ते वरणादयस्तेभ्यः। वरणादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **जनपदे लुप्** से लुप् की अनुवृत्ति आती है। **ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** इत्यादि का भी अधिकार मानना चाहिये।

वरणा आदि गणपठित प्रातिपदिकों से परे चातुरर्थिक प्रत्यय का लुप् होता है।

अजनपदार्थ आरम्भः। जनपद से भिन्न अर्थ में लोप करने के लिए यह सूत्र पढ़ा गया है। प्रकरणवश यह सूत्र भी चातुरर्थिक प्रत्ययों का ही लुप् (लोप) करता है। जनपद अर्थ होने पर तो **जनपदे लुप्** से लुप् होता है।

वरणाः। वरणा नदी के निकटवर्ती प्राचीन नगर। **वरणानामदूरभवं नगरम्। वरणा+आम्** में **अदूरभवश्च** से अण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **वरणादिभ्यश्च** से लुक् होकर **लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने** से युक्तवद्भाव होने पर प्रकृति के अनुसार ही स्त्रीलिङ्ग और बहुवचन ही हुआ- **वरणाः।**

१३०२. शर्कराया वा ४।२।८३॥

अस्माच्चातुरर्थिकस्य वा लुप् स्यात्।

शर्कराया वा। शर्करायाः पञ्चम्यन्तं, वाव्ययम्। **जनपदे लुप्** से लुप् की अनुवृत्ति आती है। **ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** इत्यादि का भी अधिकार मानना चाहिये।

षष्ठीसमर्थ शर्करा-शब्द से विहित चातुरर्थिक प्रत्यय का विकल्प से लुप् होता है।

उदाहरण अगले सूत्र में दिये गये हैं।

१३०३. ठक्छौ च ४।२।८४॥

शर्करायाः एतौ स्तः। कुमुदादौ वराहादौ च पाठसामर्थ्यात् पक्षे ठच्ककौ। वाग्रहणसामर्थ्यात् पक्षे औत्सर्गिकोऽण्। तस्य लुब्विकल्पः। षड् रूपाणि। शर्करा, शार्करम्, शार्करिकम्, शर्करीयम्, शार्करिकम्, शार्करकम्।

ठक्छौ च। ठक् च छश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः ठक्छौ प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **शर्कराया वा** से **शर्करायाः** की अनुवृत्ति आती है। **ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** इत्यादि का भी अधिकार मानना चाहिये।

षष्ठीसमर्थ शर्करा-शब्द से चातुरर्थिक ठक् और छ प्रत्यय होते हैं।

शर्कराया वा। शर्करायाः पञ्चम्यन्तं, वाव्ययम्। **जनपदे लुप्** से **लुप्** की अनुवृत्ति आती है। **ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** इत्यादि का भी अधिकार मानना चाहिये।

षष्ठीसमर्थ शर्करा-शब्द से विहित चातुरर्थिक प्रत्यय का विकल्प से लुप् होता है।

ठक् में ककार इत्संज्ञक है और **ठ** के स्थान पर **ठस्येकः** से **इक** आदेश होता है। **छ** में किसी वर्ण की इत्संज्ञा नहीं होती किन्तु छकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र से **ईय्** आदेश होकर प्रत्यय का स्वरूप **ईय** बन जाता है।

कुमुदादौ वराहादौ च पाठसामर्थ्यात् पक्षे ठच्ककौ। अर्थात् **शर्करा** शब्द का कुमुदादिगण और वराहादिगण में पाठ है। कुमुदादिगण में पाठ होने के कारण **वुञ्छण्कठजिलसेनिरढञ्ययफक्फिञिञ्ञ्यकक्ठकोऽरीहणकृशाश्वर्श्यकुमुद-काशतृणप्रेक्षाश्मसखिसङ्काशबलपक्षकर्णसुतङ्गमप्रगदिन्वराहकुमुदादिभ्यः** (४.२.८०) के द्वारा एक पक्ष में ठक्-प्रत्यय और वराहादिगण में पाठ होने के कारण एक पक्ष में कक्-प्रत्यय होते हैं।

वाग्रहणसामर्थ्यात् पक्षे औत्सर्गिकोऽण्। तस्य लुब्विकल्पः। प्रकृतसूत्र **शर्कराया वा** में **वा**-शब्द के कारण लुप् का विकल्प बताया गया है। अतः एक पक्ष में औत्सर्गिक अण् प्रत्यय भी होता है और एक पक्ष में अण् का लुप्।

षड् रूपाणि। इस तरह **शर्करा** शब्द से चातुरर्थिक प्रत्यय होने पर छह रूप बनते हैं। १. अण् प्रत्यय, २. उसका लुप्, ३. ठक् प्रत्यय, ४. छ-प्रत्यय, ५. ठच्-प्रत्यय और ६. कक्-प्रत्यय। इनसे छह रूप सिद्ध हो जाते हैं।

शर्करा, शार्करम्, शार्करिकम्, शर्करीयम्, शर्करिकम्, शार्करकम्। बहुत शर्करा है जिस देश में, वह। उक्त छहों रूपों का एक ही विग्रह है- **शर्कराः सन्ति अस्मिन् देशे।** यहाँ **शर्करा+जस्** इस अलौकिक विग्रह में **तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर उसका **शर्कराया वा** सूत्र से विकल्प से लुप् होने पर **शर्करा** मात्र पहला रूप बना है। लुप् न होने के पक्ष में **शर्करा+अ** में **तद्धितेष्वचामादेः** सूत्र से आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** से लोप होकर **शार्कर** यह दूसरा शब्द बन जाता है। **ठक्छौ च** सूत्र के द्वारा **ठक्** प्रत्यय होने के पक्ष में **ठ** के स्थान पर इकादेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **शार्करिक** यह तीसरा शब्द बना है। **ठक्छौ च** सूत्र से ही **छ** प्रत्यय होने के पक्ष में **ईय्** आदेश होने पर भसंज्ञक अकार का लोप होकर **शर्करीय** यह चौथा शब्द बना है। कुमुदादिगण में पाठ होने के कारण **वुञ्छण्कठजिलसेनिरढञ्यय०** सूत्र से ठच् प्रत्यय होने पर इकादेश और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **शर्करिक** यह पाँचवाँ शब्द बना है। वराहादिगण में पाठ होने के कारण **वुञ्छण्कठजिलसेनिरढञ्यय०** सूत्र से ही **कक्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप,

इकादेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **शार्करक** यह छठा शब्द बना है। उक्त सभी प्रत्ययों के होने पर एक बार **कृत्तद्धितसमासाश्च** सूत्र से तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा होती है और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** सूत्र से मध्यवर्ती सुप् का लुक् हो जाता है और एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर स्वादिकार्य हो जाने से उक्त **शर्करा, शार्करम्, शार्करिकम्, शर्करीयम्, शर्करिकम्, शार्करकम्** ये छह रूप सिद्ध हो जाते हैं।

१३०४. नद्यां मतुप् ४।२।८५॥
चातुरर्थिकः। इक्षुमती।

नद्यां मतुप्। नद्यां सप्तम्यन्तं, मतुप् प्रथमान्तम्। चातुरर्थिक प्रकरणस्थ पदों का अनुवर्तन है साथ ही **ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार भी है।

यदि नदी अभिधेय हो तो प्रातिपदिकों से चातुरर्थिक मतुप् प्रत्यय होता है।

तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि सूत्र का सम्बन्ध होने के कारण प्रथमा-समर्थ विभक्ति का ज्ञान होता है। **तन्नाम्नि** पद प्रकृतसूत्रस्थ **नद्याम्** का विशेषण है। अतः देशाभिधान न होकर नदी का अभिधान है। **मतुप्** में पकार और उकार इत्संज्ञक हैं, **मत्** बचता है। उकार को उच्चारणार्थक न मानकर इत्संज्ञक इस लिये माना जा रहा है कि स्त्रीत्वविवक्षा में उगित् मानकर **उगितश्च** सूत्र से ङीप् हो सके।

चातुरर्थिकः। मत्वर्थीयप्रकरण में भी **मतुप्** प्रत्यय का विधान है। प्रकृतसूत्र से विहित प्रत्यय उससे भिन्न है, यह दिखाने के लिये मूलकार ने **चातुरर्थिकः** पद दिया है अर्थात् यह मतुप् चातुरर्थिक है, मतुबर्थ नहीं है।

इक्षुमती। जिस नदी के आस-पास बहुत ईख हों। **इक्षवः सन्ति अत्र** अर्थ में **ईक्षु+जस्** से **नद्यां मतुप्** सूत्र के द्वारा मतुप् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **इक्षुमत्** शब्द बनता है। स्त्रीत्व द्योत्य होने के कारण **उगितश्च** सूत्र से ङीप् प्रत्यय और स्वादिकार्य होकर **इक्षुमती** सिद्ध हो जाता है।

१३०५. मध्वादिभ्यश्च ४।२।८६॥
मतुप् स्याच्चातुरर्थिकः। मधुमान्। अनद्यर्थ आरम्भः।

मध्वादिभ्यश्च। मधु आदिर्येषां ते मध्वादयस्तेभ्यो मध्वादिभ्यः। मध्वादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **नद्यां मतुप्** से **मतुप्** के साथ चातुरर्थिक प्रकरणस्थ पदों का अनुवर्तन है। **ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार भी है।

मधु-आदि गणपठित प्रातिपदिकों से चातुरर्थिक मतुप् प्रत्यय होता है।

मधुमान्। जहाँ पर मधु हो, वह देश। **मधूनि सन्ति अत्र** अथवा **मधूनां निवासः** अर्थ में **मधु+जस्** या **मधु+आम्** से **मध्वादिभ्यश्च** सूत्र के द्वारा मतुप् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **मधुमत्** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **मधुमान्** सिद्ध हो जाता है।

अनद्यर्थ आरम्भः। प्रकृतसूत्र का आरम्भ इस लिये किया गया है कि नदीभिन्न अभिधेय होने पर भी मतुप् प्रत्यय हो सके, अन्यथा चातुरर्थिक में **नद्यां मतुप्** सूत्र से भी मतुप् प्रत्यय हो ही जाता।

मध्वादिगणः- मधु, बिस, स्थाणु, वेणु, कर्कन्धु, शमी, करीर, हिम, किशरा, शर्याण, मरुत्, वार्दाली, शर, इष्टका, आसुति, शक्ति, आसन्दी, शकल, शलाका, आमिषी, इक्षु, रोमन्, रुष्टि, रुष्य, तक्षशिला, कड, वट, वेट।

१३०६. कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप् ४।२।८७॥

कुमुद्वान्। नड्वान्। वेतस्वान्। आद्ययोः 'झयः' (सू.१८९८) इति, अन्त्ये 'मादुपधायाः-' (सू.१८९७) इति वक्ष्यमाणेन वः। 'महिषाच्चेति वक्तव्यम्' (वा.२७६१) महिष्मान्नाम देशः।

कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप्। कुमुदश्च नडश्च वेतसश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः कुमुदनडवेतसास्तेभ्यः। कुमुदनडवेतसेभ्यः पञ्चम्यन्तं, ड्मतुप् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का पीछे से ही अधिकार आ रहा है।

कुमुद, नड, वेतस इन तीन समर्थ सुबन्त प्रातिपदिकों से चातुरर्थिक ड्मतुप् प्रत्यय होता है।

डकार, उकार और **पकार** इत्संज्ञक हैं, **मत्** बचता है। **टेः** से **टि** का लोप करने के लिए डित्करण है।

आद्ययोः 'झयः' इति, अन्त्ये मादुपधायाः० इति वक्ष्यमाणेन वः। अर्थात् **कुमुद** और **नड** शब्दों में **झयः** सूत्र की आवश्यकता होती है। यह सूत्र झय् से परे मतुप् के मकार के स्थान पर वकार आदेश करता है। और अन्त्य शब्द **वेतस** में वक्ष्यमाण सूत्र **मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः** से वकार आदेश होता है। यह सूत्र मकारान्त, अकारान्त, मकारोपध, अकारोपध इन चार प्रकार के प्रातिपदिकों से परे मतु के मकार के स्थान पर वकार आदेश करता है किन्तु यवादिगणपठित शब्दों में यह नहीं होता।

कुमुद्वान्। श्वेत कमल वाला देश। **कुमुदाः सन्ति अस्मिन् देशे। कुमुद+जस्** में **कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप्** से **ड्मतुप्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **कुमुद+मत्** बना। डित्त्वसामर्थ्यात् भसंज्ञा न होने पर भी **टेः** से टिसंज्ञक

दकारोत्तरवर्ती अकार का लोप हुआ, **कुमुद्+मत्** बना। अब **झयः** से दकार से परे **मत्** के मकार के स्थान पर **वकार** आदेश होकर **कुमुद्+वत्=कुमुद्वत्** बना। सु, उपधा को दीर्घ, नुम्, हङ्यादिलोप, तकार का संयोगान्तलोप करके हलन्त शब्दों की तरह **कुमद्वान्** सिद्ध हुआ। आगे **कुमुद्वन्तौ, कुमुद्वन्तः, कुमुद्वन्तम्, कुमुद्वन्तौ, कुमुद्वतः** आदि बनाये जा सकते हैं।

नड्वान्। शरकंडे वाला देश। **नडाः सन्ति अस्मिन् देशे।** नड जस् में **कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप्** से **ड्मतुप्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **नड+मत्** बना। डित्त्वसामर्थ्यात् भसंज्ञा न होने पर भी **टेः** से टिसंज्ञक डकारोत्तरवर्ती अकार का लोप हुआ, **नड्+मत्** बना। अब **झयः** के द्वारा डकार से परे **मत्** के मकार के स्थान पर **वकार** आदेश होकर **नड्+वत्=नड्वत्** बना। सु, उपधा को दीर्घ, नुम्, हङ्यादिलोप, तकार का संयोगान्तलोप करके हलन्त की तरह **नड्वान्** सिद्ध हो जाता है।

उपर्युक्त दोनों उदाहरणों में टिलोप (अलोप) के पश्चात् झय् वर्णों दकार तथा डकार के परवर्ती मतुप् के मकार को वकारादेश बतलाया गया है। यहाँ पर यह शंका होती है कि टिलोप का स्थानिवद्भाव होने से अ-बुद्धि होने के कारण झयन्त अंग के अभाव में वकार आदेश कैसे होगा? इसका समाधान यह दिया जाता है कि वकार आदेश अष्टमाध्यायस्थ (त्रिपादी) है तथा टिलोप षष्ठाध्यायस्थ। **पूर्वत्रासिद्धे न स्थानिवत्** (पूर्वत्रासिद्धीय कार्य की कर्तव्यता में स्थानिवद्भाव नहीं होता) इस वार्तिकात्मक परिभाषा के कारण स्थानिवद्भाव नहीं होता अर्थात् अकारान्त-बुद्धि नहीं बनती। अतः वकारादेश सिद्ध हो जाता है। इस पर भी **नड्वान्** प्रयोग के सम्बन्ध में यह शंका उपस्थित होती है कि **नड्+मत्** में अकारोपध पश्चाद्वर्ती मकार के स्थान पर पहले उपस्थित होने के कारण **मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः** सूत्र से वकारादेश क्यों नहीं होता? इसका उत्तर यह है कि यहाँ पर दोनों वकारादेश विधायक सूत्रों में **झयः** पर है। अतः पूर्वसूत्र के प्रति परशास्त्र बलवान् होता है। यदि कहें कि वत्वविधायक दोनों सूत्र त्रिपादी हैं, अतः पर्वू के प्रति पर असिद्ध होने से **मादुपधायाश्च०** सूत्र की ही प्रवृत्ति होनी चाहिये न? तो इसका समाधान देते हैं कि त्रिपादी में भी एक प्रकरण के प्रति दूसरा प्रकरण असिद्ध होता है, न कि एक ही प्रकरण के दो सूत्र आपस में। इसी को तत्त्वबोधिनीकार लिखते हैं- **प्रकरणे प्रकरणमसिद्धम्, न तु योगे योगः।**

वेतस्वान्। बेंतों वाला देश। **वेतसाः सन्ति अस्मिन् देशे। वेतस+जस्** में **कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप्** से **ड्मतुप्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **वेतस+मत्** बना। डित्त्वसामर्थ्यात् भसंज्ञा न होने पर भी **टेः** से टिसंज्ञक सकारोत्तरवर्ती अकार का लोप हुआ, **वेतस्+मत्** बना। अब **मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः** के द्वारा सकार से परे **मत्** के मकार के स्थान पर **वकार** आदेश

होकर **वेतस्+वत्=वेतस्वत्** बना। सु, उपधा को दीर्घ, नुम्, हङ्यादिलोप, तकार का संयोगान्तलोप करके हलन्त की तरह **वेतस्वान्** सिद्ध हो जाता है।

उक्त प्रयोग के विषय में बालमनोरमाकार ने अच्छा चिन्तन किया है। उनका कहना है कि **वेतस्वान्** में वेतस-शब्द सुबन्त है, उससे **ड्मतुप्** प्रत्यय में डकार की इत्संज्ञा होने के सामर्थ्य से टिलोप होने पर भी एकदेशविकृतन्यायेन यद्यपि पदसंज्ञाप्रयुक्त कार्य सकार को रुत्व की सम्भावना है और उसका निराकरण स्थानिवद्भाव से किया जाता है तथापि **पूर्वत्रासिद्धे न स्थानिवत्** के नियम से पुनरपि रुत्व की सम्भावना बनी रहती है। इसका इस तरह से समाधान करना चाहिये- अल्पापेक्ष होने के कारण रुत्व अन्तरंग है और अधिकापेक्ष होने के कारण टिलोप बहिरंग है। अतः **असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे** के नियम से टिलोप के असिद्ध होने के कारण रुत्व नहीं होता।

यहाँ पर एक और शंका होती है कि अन्तरंग-परिभाषा के सपादसप्ताध्यायस्थ होने के कारण यदि यह कहा जाय कि त्रिपादी में इस परिभाषा की प्रवृत्ति नहीं होती तब तो **वेतस्वान्** में रुत्व की सम्भावना बनी ही रहेगी। इसका निवारण कार्यकाल पक्ष का आश्रय लेकर किया जाता है। तदनुसार कार्यकालपक्ष में परिभाषाओं का विधिप्रदेश ही देश हो जाता है। अतः **पूर्वत्रासिद्धम्** सूत्र के पूर्व-शब्द से इस परिभाषा की उपस्थिति नहीं होगी। इस स्थिति में इस परिभाषा के प्रति त्रैपादिक सूत्र सिद्ध ही रहते हैं। पदसंज्ञा में यथोद्देशपक्ष का ही आश्रयण किया जाता है। उक्त सिद्धान्त के अनुसार **पूर्वत्रासिद्धे न स्थानिवत्** इस नियम की प्रवृत्ति न होने पर टिलोप को स्थानिवद्भाव हो जाने से रुत्व की प्राप्ति नहीं होगी।

महिषाच्चेति वक्तव्यम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- महिष-शब्द से भी चातुरर्थिक ड्मतुप् प्रत्यय कहना चाहिये।

महिष्मान्नाम देशः। जिस देश भैंसे अधिक हों। **महिषाः सन्ति अस्मिन् देशे** अर्थ में **महिष+जस्** इस स्थिति में **महिषाच्चेति वक्तव्यम्** वार्तिक के द्वारा ड्मतुप् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **महिष+मत्** बना है। डित् के परे रहते **टेः** सूत्र के द्वारा टिसंज्ञक अकार का लोप करके **महिष्मत्** शब्द बन जाता है। यद्यपि यहाँ पर **प्रत्यये भाषायां नित्यम्** से अनुनासिक प्राप्त होता है किन्तु षकार के अनुनासिक वर्ण न होने के कारण वह हो नहीं पाता। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **महिष्मान्, महिष्मन्तौ, महिष्मन्तः** इत्यादि रूप बन जाते हैं।

१३०७. नडशादाड्ड्वलच् ४।२।८८॥

नड्वलः। 'शादो जम्बलघासयोः' इत्यमरः। शाद्वलः।

नडशादाड्ड्वलच्। नडश्च शादश्च तयोः समाहारद्वन्द्वो नडशादं, तस्मात्। नडशादात् पञ्चम्यन्तं, ड्वलच् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का पीछे से ही अधिकार आ रहा है।

नड और शाद इन समर्थ सुबन्त प्रातिपदिकों से चातुरर्थिक ड्वलच् प्रत्यय होता है।

डकार और **चकार** इत्संज्ञक हैं, **वल** बचता है। डित्करण से भसंज्ञक टि का लोप हो जाता है।

नड्वलः। शरकंडों वाला देश। **नडाः सन्ति अस्मिन् देशे। नड+जस्** में **नडशादाड्ड्वलच्** से **ड्वलच्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **नड+वल** बना। डित्त्वसामर्थ्यात् भसंज्ञा न होने पर भी **टेः** से टिसंज्ञक डकारोत्तरवर्ती अकार का लोप हुआ, **नड्+वल** बना। स्वादिकार्य करके **नड्वलः** सिद्ध हुआ।

शादो जम्बलघासयोः इत्यमरः। अमरकोशानुसार **शाद** शब्द कीचड़ तथा घास अर्थ में है।

शाद्वलः। हरी घास वाला देश। **शादाः सन्ति अस्मिन् देशे। शाद+जस्** में **नडशादाड्ड्वलच्** से **ड्वलच्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **शाद+वल** बना। डित्त्वसामर्थ्यात् भसंज्ञा न होने पर भी **टेः** से टिसंज्ञक दकारोत्तरवर्ती अकार का लोप हुआ, **शाद्+वल** बना। स्वादिकार्य करके **शाद्वलः** सिद्ध हुआ।

१३०८. शिखाया वलच् ४।२।८९॥

शिखावलम्।

शिखाया वलच्। शिखायाः पञ्चम्यन्तं, वलच् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **प्रत्ययः**, **परश्च**, **ङ्याप्प्रातिपदिकात्**, **तद्धिताः**, **समर्थानां प्रथमाद्वा** का पीछे से ही अधिकार आ रहा है।

शिखा इस समर्थ सुबन्त प्रातिपदिक से चातुरर्थिक वलच् प्रत्यय होता है।

चकार इत्संज्ञक है, **वल** शेष रहता है। आगे पञ्चमाध्याय में भी **दन्तशिखात् संज्ञायाम्** (५.२.११३) सूत्र से **वलच्** प्रत्यय का विधान किया जायेगा किन्तु वह देश-भिन्न अर्थ में है। इसके अतिरिक्त प्रकृत सूत्र की उपयोगिता **देशे तन्नाम्नि** अर्थ में अण् प्रत्यय के बाधनार्थ भी है।

शिखावलः। शिखाओं वाला देश। **शिखाः सन्ति अस्मिन् देशे। शिखाःजस्** में **शिखाया वलच्** से **वलच्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **शिखावल** बना। स्वादिकार्य करके **शिखावलः** सिद्ध हुआ। यहाँ पर **शिखा** नामक व्यक्ति के द्वारा बसाया गया देश अर्थ में **शिखादत्तेन निर्वृत्तः** विग्रह करके भी **शिखावलः** बनाया जा सकता है।

१३०९. उत्करादिभ्यश्छः ४।२।९०॥

उत्करीयः।

उत्करादिभ्यश्छः। उत्कर आदिर्येषां ते उत्करादयस्तेभ्य उत्करादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, छः प्रथमान्तम्। चातुरर्थिक से सम्बन्धित पद **तन्नाम्नि देशे, तेन निर्वृत्तम्, तस्य निवासः, अदूरभवः** आदि का यथावत् अनुवर्तन है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

उत्कर आदि गणपठित प्रातिपदिकों से चातुरर्थिक छ-प्रत्यय होता है।

इस गण में पढ़े गये शब्दों से प्रत्यय करते समय चातुरर्थिक प्रत्ययों का यथासम्भव योजन करना चाहिये।

उत्करीयः। धान आदि जहाँ पर फैलाया जाय, उत्कर का बसाया देश, उत्कर का निवास या उत्कर के समीप का नगर इत्यादि अर्थ हो सकते हैं। **उत्कराः सन्ति अस्मिन् देशे, उत्करेण निर्वृत्तः, उत्करस्य निवासः, उत्करस्य अदूरभवः** इत्यादि अर्थों में प्रथमान्त, तृतीयान्त, या षष्ठ्यन्त **उत्कर** शब्द से अण् प्रत्यय को बाधकर **उत्करादिभ्यश्छः** सूत्र के द्वारा छ-प्रत्यय होने पर उसके स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र से **ईय्** आदेश होकर **उत्करीय** शब्द बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **उत्करीयः** सिद्ध हो जाता है।

उत्करादिगणः- उत्कर, संफल, शफर, पिप्पल, पिप्पलीमूल, अश्मन्, सुवर्ण, खलाजिन, तिक, कितव, अणक, त्रैवण, पिचुक, अश्वत्थ, काश, क्षुद्र, भस्त्रा, शाल, जन्या, अजिर, चर्मन्, उत्क्रोश, शान्त, खदिर, शूर्पणाय, श्यावनाय, नैवाकव, तृण, वृक्ष, शाक, पलाश, विजिगीषा, अनेक, आतप, फल, संपर, अर्क, गर्त, अग्नि, वैराणक, इडा, अरण्य, निशान्त, पर्ण, नीचायक, शंकर, अवरोहित, क्षार, विशाल, वेत्र, अरीहण, खण्ड, वातागार, मन्त्रणार्ह, इन्द्रवृक्ष, नितान्तवृक्ष, आर्द्रवृक्ष।

१३१०. नडादीनां कुक् च ४।२।९१॥

नडकीयम्।

'क्रुञ्चा ह्रस्वत्वं च'(ग.सू.८०)। क्रुञ्चकीयः।

'तक्षन्नलोपश्च' (ग.सू.८१)। तक्षकीयः।

नडादीनां कुक्च। नड आदिर्येषां ते नडादयस्तेषां नडादीनां, बहुव्रीहिः। नडादीनां षष्ठ्यन्तं, कुक् प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **उत्करादिभ्यश्छः** से **छः** का और **तन्नाम्नि देशे, तेन निर्वृत्तम्, तस्य निवासः, अदूरभवः** का यथावत् अनुवर्तन है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

नड-आदि गणपठित प्रातिपदिकों से चातुरर्थिक छ-प्रत्यय होता है और उनको कुक् आगम भी होता है।

इस सूत्र से **छ** प्रत्यय के साथ प्रकृति को कुक् का आगम भी किया गया है। अतः **नडादीनाम्** की आवृत्ति करके **नडादिभ्यः** बनाया जाता है। प्रत्ययविधि में पञ्चम्यन्त **नडादिभ्यः** और आगमविधि में षष्ठ्यन्त **नडादीनाम्** का योजन करना चाहिये। **कुक्** में अन्त्य ककार की इत्संज्ञा होती है, उकार उच्चारणार्थ है, **क्** मात्र बचता है। इसके कित् होने से **आद्यन्तौ टकितौ** के नियम से प्रकृति का अन्तावयव होकर बैठता है।

नडकीयम्। नरकुल जहाँ हों, वह स्थान। **नडाः सन्ति अस्मिन्** अर्थ में **नड+जस्** इस स्थिति में **नडादीनां कुक्च** सूत्र के द्वारा छ-प्रत्यय और प्रकृति को कुक् आगम होने पर छकार के स्थान पर **ईय्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **नडंक्+ईय=नडकीय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **नडकीयम्** सिद्ध हो जाता है।

नडादिगणः- नड, प्लक्ष, बिल्व, वेणु, वेत्र, वेतस, इक्षु, काष्ठ, कपोत, तृण।
क्रुञ्चा ह्रस्वत्वं च। तक्षन्नलोपश्च।

ऊपर नडादिगण में दो गणसूत्र पढ़े गये हैं। उनको कौमुदीकार ने मूल में दर्शाया है-

'क्रुञ्चा ह्रस्वत्वं च'। यह गणसूत्र है। गणसूत्रार्थः- क्रुञ्चा-शब्द से छ-प्रत्यय के साथ प्रकृति को ह्रस्व और कुक् आगम भी होता है।

क्रुञ्चकीयः। क्रुञ्चा के द्वारा बनाया गया। **क्रुञ्चया निर्वृत्तः** अर्थ में **क्रुञ्चा+टा** इस स्थिति में **क्रुञ्चा ह्रस्वत्वं च** गणसूत्र के द्वारा छ-प्रत्यय, आकार को ह्रस्व और प्रकृति को कुक् आगम होने पर छकार के स्थान पर **ईय्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **क्रुञ्चकीय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **क्रुञ्चकीयः** सिद्ध हो जाता है।

तक्षन्नलोपश्च। यह भी गणसूत्र है। गणसूत्रार्थः- तक्षन्-शब्द से चातुरर्थिक छ-प्रत्यय के साथ कुक् आगम और प्रकृति के नकार का लोप भी होता है।

तक्षकीयः। बढ़ई के द्वारा बनाया गया। **तक्ष्णा निर्वृत्तः** अर्थ में **तक्षन्+टा** इस स्थिति में **तक्षन्नलोपश्च** गणसूत्र के द्वारा छ-प्रत्यय, नकार का लोप और प्रकृति को कुक् आगम होने पर छकार के स्थान पर **ईय्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **तक्षकीय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **तक्षकीयः** सिद्ध हो जाता है।

१३११. बिल्वकादिभ्यश्छस्य लुक् ६।४।१५३॥

नडाद्यन्तर्गता बिल्वकादयः, तेभ्यश्छस्य लुक् तद्धिते परे। बिल्वा यस्यां सन्ति सा बिल्वकीया। तस्यां भवा बैल्वकाः। वेत्रकीयाः, वैत्रकाः। 'छस्य' किम्? छमात्रस्य लुग्यथा स्यात् कुको निवृत्तिर्मा भूत्। अन्यथा 'संन्नियोगशिष्टानाम्' (प.८७) इति कुगपि निवर्तेत। लुग्ग्रहणं सर्वलोपार्थम्। लोपो हि यमात्रस्य स्यात्।

॥ इति तद्धितचातुरर्थिकप्रकरणम् ॥

बिल्वकादिभ्यश्छस्य लुक्। बिल्वक आदिर्येषां ते बिल्वकादयस्तेभ्यो बिल्वकादिभ्यः, बहुव्रीहिः। बिल्कादिभ्यंभ्यः पञ्चम्यन्तं, छस्य षष्ठ्यन्तं, लुक् प्रथमान्तम्। **आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति** से **तद्धिते** की अनुवृत्ति आती है। **भस्य** और **अङ्गस्य** सूत्रों का अधिकार है।

नडादि-गण के अन्तर्गत पठित बिल्वकादि प्रातिपदिकों से विहित छ-प्रत्यय का लुक् होता है तद्धित प्रत्यय के परे रहते।

बिल्वकादिगणः- बिल्व, वेणु, वेत्र, वेतस, इक्षु, काष्ठ, कपोत, तृण। यह गण **नडादीनां कुक्च** सूत्र के नडादिगण के अन्तर्गत पठित है।

बिल्वा यस्यां सन्ति सा बिल्वकीया। तस्यां भवा बैल्वकाः। बिल्वकीया में होने वाला। **बिल्वाः यस्यां सन्ति सा** अर्थ में **नडादीनां कुक्च** सूत्र से चातुरर्थिक **छ**-प्रत्यय के साथ कुक् आगम होने पर **बिल्वकीय** शब्द बनता है और स्त्रीत्वविवक्षा में टाप् प्रत्यय होकर **बिल्वकीया** शब्द बना हुआ है। अब **बिल्वकीयायां भवाः** अर्थ में **तत्र भवः** (४.३.५३) सूत्र से **अण्** प्रत्यय होने पर **बिल्वकीया+अ** बना है। **बिल्वकादिभ्यश्छस्य लुक्** सूत्र से छ-प्रत्यय वाले **ईय** का लुक् होने पर **बिल्वक्+अ** बन जाता है। आदिवृद्धि होकर **बैल्वक** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **बैल्वकाः** सिद्ध हो जाता है।

वेत्रकीयाः, वैत्रकाः। वेत्रकीया में होने वाला या रहने वाला। **वेत्राणि यस्यां सन्ति सा** अर्थ में **नडादीनां कुक्च** सूत्र से चातुरर्थिक **छ**-प्रत्यय के साथ कुक् आगम होने पर **वेत्रकीय** शब्द बनता है और स्त्रीत्वविवक्षा में टाप् प्रत्यय होकर **वेत्रकीया** शब्द बना हुआ है। अब **वेत्रकीयायां भवाः** अर्थ में **तत्र भवः** (४.३.५३) सूत्र से **अण्** प्रत्यय होने पर **वेत्रकीया+अ** बना है। **बिल्वकादिभ्यश्छस्य लुक्** सूत्र से छ-प्रत्यय वाले **ईय** का लुक् होने पर **वेत्रक्+अ** बन जाता है। आदिवृद्धि होकर **वैत्रक** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वैत्रकाः** सिद्ध हो जाता है।

'छस्य' किम्? छमात्रस्य लुग्यथा स्यात् कुको निवृत्तिर्मा भूत्। अन्यथा 'संन्नियोगशिष्टानाम्' इति कुगपि निवर्तेत। प्रकृतसूत्र में **छस्य** पद का ग्रहण न करके केवल **बिल्वकादिभ्यो लुक्** मात्र से भी छ-प्रत्यय का ही लुक् हो जाता, क्योंकि

बिल्वादि शब्दों से छ-प्रत्यय ही किया जाता है। अतः **छस्य** का ग्रहण क्यों किया गया? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि यदि **छस्य** पद का ग्रहण न होता तो कुक् की निवृत्ति हो जाती अर्थात् छ के लुक् के साथ कुक् आगम का भी लुक् हो जाता। वह न हो अर्थात् छ का लुक् हो और कुक् वाला ककार बना रहे, एतदर्थ प्रकृत सूत्र में पृथक् **छस्य** का ग्रहण किया गया है। **अन्यथा**=यदि वैसा न करते तो **सन्नियोगशिष्टानां सह वा प्रवृत्तिः सह वा निवृत्तिः** (जिनका साथ में विधान हुआ है, उनकी प्रवृत्ति और निवृत्ति साथ-साथ होती है) इस परिभाषा के बल पर छ-प्रत्यय की निवृत्ति होने पर कुक् की भी निवृत्ति होने लगती।

अब शंका होती है कि प्रकृतसूत्र में **लुक्** शब्द का ग्रहण न करके **ढे लोपोऽकद्र्वाः** सूत्र से **लोपः** की अनुवृत्ति करके लोप-शब्द के द्वारा भी छ-प्रत्यय का अदर्शन किया जा सकता था। ऐसी स्थिति में लुक् शब्द का ग्रहण क्यों किया गया? इसका समाधान स्वयं मूलकार ने ही किया है-

लुग्ग्रहणं सर्वलोपार्थम्। लोपो हि यमात्रस्य स्यात्। लुक्-शब्द का ग्रहण **सर्वलोपार्थम्**=सम्पूर्ण **ईय** का लोप करने के लिये है। लुक् से समग्र प्रत्यय का लोप होता है और यदि **लोप**-शब्द का अनुवर्तन करके लोप किया जाता तो या तो **आदेः परस्य** की उपस्थिति से केवल आदिवर्ण ईकार का लोप होता या **सूर्यतिष्यागस्त्य०** (६.४.१४९) सूत्र से **यः, उपधायाः** की अनुवृत्ति होकर **बिल्वक्+ईय** इस दशा में उपधाभूत यकार का लोप होता, जो कि इष्ट नहीं है। लुक् होने पर समग्र प्रत्यय का अदर्शन होता है और लोप करने पर किसी एक भाग का, यह अन्तर है। इस प्रकार समग्र छ (ईय) का लोप करने के लिये **लुक्** पद की सार्थकता है।

श्री भट्टोजिदीक्षित द्वारा विरचित वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी की गोविन्दाचार्य कृत श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी टीका में तद्धित-चातुरर्थिक-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ शैषिकप्रकरणम्

अब **शैषिकप्रकरण** प्रारम्भ होता है। **शेषे** के अधिकार में किये जाने वाले प्रत्ययों को **शैषिक** कहा गया है। इस प्रकरण में अनेक प्रत्ययों का विधान है। **शेष**-शब्द का अर्थ आगे बताया जा रहा है। यह भी प्राग्दीव्यतीय अर्थ के अन्तर्गत ही आता है। इस प्रकरण में भी **ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार यथावत् रहता है। जिससे तद्धित प्रत्यय का विधान किया जाता है, वह प्रकृति किसी न किसी समर्थ-विभक्ति से युक्त होगी। लौकिक विग्रह और अलौकिक विग्रह दोनों होंगे। अलौकिक विग्रह में प्रत्यय का विधान होगा। प्रत्यय होने के बाद **कृत्तद्धितसमासाश्च** सूत्र के द्वारा तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा होती है और तादृश प्रातिपदिक के अन्तर्गत आने वाली विभक्ति का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् होता है। प्रत्यय यदि ञित्, णित्, कित् हो तो उसके परे रहते प्रकृति (अंग) के आदि अच् की वृद्धि होती है। इसी तरह यदि भसंज्ञक अकार या इकार हो तो **यस्येति च** से लोप हो जाता है। तद्धितान्त प्रातिपदिक से भी पुनः सुप् प्रत्यय की आवश्यकता होती है, इसके लिये पूर्वकृत प्रातिपदिकसंज्ञा को ही एकदेशन्यायेन अक्षुण्ण मानकर स्वादि प्रत्यय आते हैं।

१३१२. शेषे ४।२।९२॥

अपत्यादिचतुरर्थ्यन्तादन्योऽर्थः शेषः, तत्राणादयः स्युः। चक्षुषा गृह्यते चाक्षुषं रूपम्। श्रावणः शब्दः। औपनिषदः पुरुषः। दृषदि पिष्टा दार्षदाः सक्तवः। उलूखले क्षुण्ण औलूखलो यावकः। अश्वैरुह्यते आश्वो रथः। चतुर्भिरुह्यते चातुरं शकटम्। चतुर्दश्यां दृश्यते चातुर्दशं रक्षः।

'शेषे' इति लक्षणं चाधिकारश्च। 'तस्य विकारः' इत्यतः प्राक्छेषाधिकारः।

शेषे। शेषे सप्तम्यन्तम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार तथा **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है। यह अधिकार और अनुवर्तन पूरे शैषिक में रहेगा। यहाँ पर शेष शब्द का- अपत्य अर्थ से लेकर चतुरर्थी (चातुरर्थिक) तक के अर्थों से भिन्न ऐसा अर्थ लिया गया है।

शेष अर्थ में समर्थ प्रातिपदिकों से अण् आदि प्रत्यय होते हैं।

अपत्यादिचतुरर्थ्यन्तादन्यः शेषः। शेष बचे हुए को कहा जाता है। तद्धितप्रकरण के प्रारम्भ से अर्थात् अपत्याधिकार से चातुरर्थिकप्रकरण तक जितने अर्थों में प्रत्यय हुआ है, उससे भिन्न अर्थ को शेष कहते हैं। शेष अर्थ में अण् प्रत्यय अथवा यथाप्राप्त प्रत्यय होंगे।

शेषे का अधिकार **तस्य विकारः** सूत्र से पहले तक जाता है। इस बीच में जितने भी अर्थ कहे जायेंगे, उन सब अर्थों में आगे कहे जाने वाले प्रत्यय होंगे। जैसे कि अग्रिम सूत्र के द्वारा **राष्ट्र** शब्द से **घ** प्रत्यय का विधान किया गया है। तदनुसार **राष्ट्रियः** शब्द के **राष्ट्र में होने वाला** तथा **राष्ट्र** में उत्पन्न होने वाला आदि अनेक अर्थ होंगे। एक ही प्रत्यय से अनेक अर्थों का अभिधान करके पाणिनि जी ने लघुभूत उपाय से शब्द-सिद्धि की योजना बनायी है।

चक्षुषा गृह्यते चाक्षुषं रूपम्। नेत्रों के द्वारा जिसका ग्रहण होता है, वह अर्थात् रूप। **चक्षुषा गृह्यते** लौकिक विग्रह और **चक्षुष् टा** अलौकिक विग्रह है। **शेषे** से अण् प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **चक्षुष्+अ** बना। णित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करके **चाक्षुष्+अ=चाक्षुष** बना। सु, नपुंसकलिङ्ग होने के कारण सु के स्थान पर अम् आदेश, पूर्वरूप करके **चाक्षुषम्** सिद्ध हुआ।

श्रावणः शब्दः। कानों के द्वारा जिसका ग्रहण होता है, शब्द। **श्रवणेन गृह्यते** लौकिक विग्रह और **श्रवण टा** अलौकिक विग्रह है। **शेषे** से अण् प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **श्रवण+अ** बना। णित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करके भसंज्ञक अकार का लोप करके **श्रावण्+अ=श्रावण** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **श्रावणः** सिद्ध हुआ।

औपनिषदः पुरुषः। उपनिषद् में जाना गया पुरुष अथवा उपनिषदों के द्वारा प्रतिपादित पुरुष, आत्मा। **उपनिषदि ज्ञातः** अथवा **उपनिषद्भिः प्रतिपादितः** लौकिक विग्रह और **उपनिषद् ङि** अथवा **भिस्** अलौकिक विग्रह है। **शेषे** से अण् प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **उपनिषद्+अ** बना। णित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करके उकार के स्थान पर औकार, **औपनिषद्+अ=औपनिषद** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **औपनिषदः** सिद्ध हुआ। **औपनिषदः पुरुषः।**

दृषदि पिष्टा दार्षदाः। पत्थर, चक्की में पीसे गये, सत्तू आदि। **दृषदि पिष्टाः** लौकिक विग्रह और **दृषद् ङि** अलौकिक विग्रह है। **शेषे** से अण् प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **दृषद्+अ** बना। णित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से रपरसहित आदिवृद्धि करके ऋकार के स्थान पर आर्, **द्+आर्+षद्+अ=दार्षद** बना। जस्, पूर्वसवर्णदीर्घ, रुत्वविसर्ग करके **दार्षदाः** सिद्ध हुआ। सत्तू। **दार्षदाः सक्तवः।**

उलूखले क्षुण्ण औलूखलो यावकः। ओखली में कूटा गया बिना भूसी का जौ। **उलूखले क्षुण्णः** लौकिक विग्रह और **उलूखल+ङि** अलौकिक विग्रह है। **शेषे** से

अण् प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **औलूखल** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **औलूखलः** सिद्ध हो जाता है।

अश्वैरुह्यते आश्वो रथः। घोड़ो से चलाया जाने वाला रथ। **अश्वैः उह्यते** लौकिक विग्रह और **अश्व+भिस्** अलौकिक विग्रह है। **शेषे** से अण् प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **आश्व** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आश्वः** सिद्ध हो जाता है।

चतुर्भिरुह्यते चातुरं शकटम्। चार प्राणियों, घोड़ों या व्यक्तियों के द्वारा खींचा जाने वाला छकड़ा या पालकी। **चतुर्भिः उह्यते** लौकिक विग्रह और **चतुर् भिस्** अलौकिक विग्रह है। **शेषे** से अण् प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **चतुर्+अ** बना। णित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करके अकार के स्थान पर आकार, **चातुर्+अ=चातुर** बना। सु, अम्, **चातुरम्** सिद्ध हुआ। **चातुरं शकटम्**।

चतुर्दश्यां दृश्यते चातुर्दशं रक्षः। चतुर्दशी को दिखाई देने वाला अर्थात् **राक्षस**। **चतुर्दश्यां दृश्यते** लौकिक विग्रह और **चतुर्दशी ङि** अलौकिक विग्रह है। **शेषे** से अण् प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **चतुर्दशी+अ** बना। णित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करके अकार के स्थान पर आकार, भसंज्ञक ईकार का लोप, **चातुर्दश्+अ=चातुर्दश** बना। सु, अम्, **चातुर्दशम्** सिद्ध हुआ। **चातुर्दशं रक्षः**।

शैषिक आदि प्रत्ययों के सम्बन्ध में एक श्लोक प्रसिद्ध है-

शैषिकान्मतुबर्थीयाच्छैषिको मतुबर्थिकः।

सरूपः प्रत्ययो नेष्टः सन्नन्तान्न सनिष्यते।। अर्थात् शैषिक प्रत्ययान्त से पुनः उसी रूप वाला शैषिक प्रत्यय नहीं हुआ करता। इसी तरह मतुबर्थीय प्रत्ययान्त से पुनः उसी रूप वाला मतुबर्थीय प्रत्यय भी नहीं होता। एवं च इच्छा अर्थ में हुए सन् प्रत्ययान्त से दुबारा सन् प्रत्यय नहीं होता।

'शेषे' इति लक्षणं चाधिकारश्च। इस सूत्र को लक्षण=विधिसूत्र और अधिकारसूत्र दोनों माना गया है। विधिसूत्र होने के कारण **चाक्षुषम्** आदि रूपों की सिद्धि होती है और अधिकारसूत्र मानकर आगे के सूत्रों में **शेषे** का अधिकार चला जाता है। इससे यह लाभ होता है कि जिन अर्थों में पाणिनि जी ने साक्षात् प्रत्यय का विधान नहीं किया है, उनमें औत्सर्गिक यथाविहित अण् आदि प्रत्यय इसी सूत्र से होंगे। **प्राग्दीव्यतोऽण्** से अण्-पद की वहाँ पर सर्वत्र उपस्थिति होगी, जहाँ प्रत्यय-विशेष का विधान नहीं किया गया है। अभी ऊपर जो उदाहरण दिये गये, वे सब प्रकृतसूत्र को लक्षणसूत्र (विधिसूत्र) मानकर ही किये गये हैं।

'तस्य विकारः' इत्यतः प्राक्छेषाधिकारः। अर्थात् यहाँ से लेकर अष्टाध्यायीक्रम में **तस्य विकारः (४.३.१३४)** तक **शेषे** का अधिकार है।

शेषे सूत्र पर **विशेषः**- ऊपर यह बतलाया जा चुका है कि प्रकृतसूत्र **लक्षण** (विधिसूत्र) तथा **अधिकार** है। इस सम्बन्ध में यह जिज्ञासा होती है इस विधान के न होने पर भी **चाक्षुषम्, श्रावणः** इत्यादि प्रयोग **तस्येदम्** आदि सूत्रों के द्वारा अणादि प्रत्ययों से सिद्ध हो सकते हैं। इसी प्रकार **दार्षदाः** आदि प्रयोग **संस्कृतं भक्षाः** के अन्तर्गत समाविष्ट किये जा सकते हैं। इस तरह से केवल उक्त प्रयोगों की सिद्धि ही इस सूत्र को विधिसूत्र मानने का प्रयोजन नहीं बनता। इसी प्रकार अधिकार के विषय में यह अन्यथासिद्ध ही लगता है। अधिकारसूत्र मानने में अपत्यादि-चतुर्थ प्रत्ययों को छोड़ना- यह जो हेतु दिया गया है वह भी ठीक प्रतीत नहीं होता, क्योंकि **जात, इदम्** आदि अर्थविशेष का उल्लेख आना ही उक्त अपत्यादि-चतुर्थ से भिन्न होना सिद्ध होता है। इसके अतिरिक्त **आर्द्रका, शाला** आदि वृद्धसंज्ञक शब्दों का उत्करादिगण में पाठ होने से भी यह ज्ञापित होता है कि इनसे प्राग्वर्ती अर्थों में घ आदि प्रत्ययों की प्रवृत्ति नहीं होती, अन्यथा **आर्द्रका** आदि शब्दों से **वृद्धाच्छः** सूत्र से ही छ-प्रत्यय स्वतः सिद्ध रहा। अतः **घः** आदि से ट्यु-ट्युल् प्रत्यय पर्यन्त अपत्यादि अर्थ की निवृत्ति होना भी अधिकार का प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। ऐसा भी नहीं कहा जा सकता कि जात आदि अर्थों की समष्टि ही अधिकार का प्रयोजन है, क्योंकि **तत्र जातः** आदि अधिकारों के पूर्व इस सूत्र का पाठ होने से पाठसामर्थ्यवशात् वहाँ तक इसके अधिकार की अवधि सूचित होती है। यदि **शेषे** का अधिकार अपने समीपस्थित **जात** आदि अर्थों में ही **घ** आदि प्रत्ययों को सीमित करने में उपयोग है तो उसके अनन्तर भवादि अर्थों में **प्राग्दीव्यतोऽण्** से प्रभावित अवधि-पर्यन्त अर्थों में विधीयमान अण् ही होंगे। इस समस्या के समाधान हेतु **तत्र जातः** अधिकार के अनन्तर **प्रावृषष्ठप्** आदि सूत्रों के साथ **राष्ट्रावारपाराद् घखौ** आदि सूत्रों को पढ़ा जाता। अतः **शेषे** सूत्र के अधिकार की व्यर्थता से यह ज्ञापित होता है कि 'एक शैषिक प्रत्यय के बाद दूसरा समान स्वरूप वाला शैषिक प्रत्यय नहीं होता। यह बात ऊपर एक श्लोक से भी बतायी जा चुकी है। इसके फलस्वरूप **शालीयः** इत्यादि में एक बार छ-प्रत्यय होने के बाद पुनः छ-प्रत्यय नहीं होगा। दूसरे असमान=विरूप प्रत्यय तो हो ही सकते हैं। इसके साथ ही अपत्यादि अर्थों में घ आदि प्रत्ययों की निवृत्ति के लिये अधिकार की सार्थकता है। यह जो ऊपर ज्ञापन दिया गया है, वह विशेषापेक्ष है अतः सामान्यापेक्ष घादि प्रत्ययों के निवारण में समर्थ नहीं हो सकेगा। इस अधिकार के फलस्वरूप **आर्द्रका** आदि से छ-प्रत्यय केवल प्रकरण के चारों अर्थों में ही हो, यह बात सूचित होती है।

इसी प्रकार **शेषे** का विधिसूत्रत्व मानने में भी विशेष प्रयोजन है। वह इस तरह की **चाक्षुषम्** इत्यादि उदाहरणों में चक्षुरिन्द्रिय-जन्य गृह्यमाणत्व, तादृश प्रकारक स्वरूप अर्थविशेष्यक शाब्दबोध हो सके। वह इस सूत्र को विधिसूत्र मानने पर ही सम्भव है।

इस विवेचन का यह तात्पर्य है कि **शेषे** के अधिकार में **तत्र जातः** (४.३.३५) से लेकर **तस्येदम्** (४.३.१२०) तक के अर्थ आते हैं अर्थात् उक्त सूत्रों से केवल

अर्थ कहे हैं। ये शैषिक अर्थ हैं- **तत्र जातः, क्रीतलब्धक्रीतकुशलाः, प्रायभवः, सम्भूते, कालात्साधुपुष्यत्यच्यमानेषु, उप्ते, देयमृणे, व्याहरति मृगः, तदस्य सोढम्, तत्र भवः, तस्य व्याख्यानः, तत आगतः, प्रभवति, तद् गच्छति, अभिनिष्क्रामति, अधिकृत्य कृते ग्रन्थे, सोऽस्य निवासः, अभिजनश्च, भक्तिः, तेन प्रोक्तम्, तेनैकदिक्, उपज्ञाते, कृते ग्रन्थे, तस्येदम्।** उक्त सभी अर्थों में औत्सर्गिक प्रत्यय तो **अण्** ही है किन्तु शेषाधिकार में जिन-जिन सूत्रों के द्वारा जिन-जिन शब्दों से जो-जो भी प्रत्यय कहे गये हैं, उन-उन अर्थों में वे ही प्रत्यय होंगे। जहाँ किसी सूत्र विशेष से अर्थ-विशेष का निर्देश नहीं हुआ है, उसे भी शेष माना जा सकता है। जैसे कि **चक्षुषा गृह्यते, अश्वैः उह्यते, दृषदि पिष्टाः** इत्यादि।

१३१३. राष्ट्रावारपाराद्घखौ ४।२।९३॥

आभ्यां क्रमाद् घखौ स्तः शेषे। राष्ट्रियः। अवारपारीणः। 'अवारपाराद् विगृहीतादपि विपरीताच्चेति वक्तव्यम्' (वा.२७७१-२७७२)। अवारीणः। पारीणः। पारावारीणः। इह प्रकृतिविशेषाद् घादयष्ठ्युट्युलन्ताः प्रत्यया उच्यन्ते, तेषां जातादयोऽर्थविशेषाः समर्थविभक्तयश्च वक्ष्यन्ते।

राष्ट्रावारपाराद् घखौ। राष्ट्रञ्च अवारपारञ्च तयोः समाहारद्वन्द्वो राष्ट्रावारपारम्, तस्मात्। घश्च खश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वो घखौ। राष्ट्रावारपाराद् पञ्चम्यन्तं, घखौ प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है। **घखौ** इन प्रत्ययों के कारण **प्राग्दीव्यतोऽण्** से चली आ रही **अण्** की अनुवृत्ति का सम्बन्ध नहीं रहता।

शेष अर्थ में राष्ट्र और अवारपार शब्द से क्रमशः घ और ख प्रत्यय होते हैं।

यथासङ्ख्यमनुदेशः समानाम् की उपस्थिति के फलस्वरूप **राष्ट्र** शब्द से **घ** और **अवारपार** शब्द से **ख** प्रत्यय हो जाते हैं। इन दोनों प्रत्ययों में अनुबन्ध नहीं है। घ के घकार के स्थान पर और ख के खकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से क्रमशः **इय्** और **ईन्** आदेश होंगे जिससे **इय्+अ=इय** और **ईन्+अ=ईन** बनेंगे। **घ** और **ख** में जो अकार है, उसके स्थान पर आदेश नहीं होता है। राष्ट्र शब्द से प्रधानतया घ-प्रत्यय ही होता है, जिससे **राष्ट्रियः** बनता है। बहुत्र प्रायः हिन्दी में **छ** प्रत्यय वाला, दीर्घ ईकार वाला रूप **राष्ट्रीय** भी प्रचलित जो कि **हेमचन्द्रानुशासन** के अनुसार शुद्ध है किन्तु पाणिनीय-व्याकरण में घ-प्रत्यय वाला रूप ही शुद्ध है, छ-प्रत्यय वाला नहीं।

राष्ट्रियः। राष्ट्र में होने वाला या पैदा हुआ। **राष्ट्रे जातादि** लौकिक विग्रह और **राष्ट्र ङि** अलौकिक विग्रह है। **राष्ट्रावारपाराद् घखौ** से **घ** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप्

का लुक् करके **राष्ट्र+घ** बना। **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **घ्** के स्थान पर इय् आदेश होकर भसंज्ञक अकार का लोप होने पर **राष्ट्र्+इय** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **राष्ट्रिय** बना। णित्, कित् आदि न होने के कारण आदिवृद्धि का प्रसंग नहीं है। सु, रुत्व-विसर्ग करके **राष्ट्रियः** सिद्ध हुआ।

अवारपारीणः। इस पार और उस पार होने वाला या पैदा हुआ। **अवारपारे जातादि** लौकिक विग्रह और **अवारपार ङि** अलौकिक विग्रह है। **राष्ट्रावारपाराद् घखौ** से **ख** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अवारपार+ख** बना। **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से ख् के स्थान पर ईन् आदेश होकर भसंज्ञक अकार का लोप होने पर **अवारपार्+ईन**, वर्णसम्मेलन होने पर **अवारपारीन** बना। णित्, कित् आदि न होने के कारण आदिवृद्धि का प्रसंग नहीं है। रेफ से पर नकार को णत्व होकर सु, रुत्व-विसर्ग करके **अवारपारीणः** सिद्ध हुआ।

अवारपाराद्विगृहीतादपि विपरीताच्चेति वक्तव्यम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- अवारपार शब्द के पृथक् होने व विपरीत होने पर भी ख प्रत्यय होता है, ऐसा कहना चाहिए। जैसे **अवारपार** शब्द पृथक् हुआ तो **अवार** और **पार** बनता है एवं विपरीत हुआ तो **पारावार** बनता है। यह वार्तिक **राष्ट्रावारपाराद् घखौ** का सहयोगी है।

अवारीणः। इस ओर हुआ। **अवारे भवः** अर्थ में **अवार+ङि** से **अवारपार** शब्द में विगृहीत (पृथक्) होने पर **अवारपाराद्विगृहीतादपि विपरीताच्चेति वक्तव्यम्** इस वार्तिक की सहायता से **राष्ट्रावारपाराद् घखौ** से ख-प्रत्यय, खकार के स्थान पर **ईन्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप करके **अवारीन** और रेफ से परे नकार को णत्व होकर **अवारीणः**, स्वादिकार्य से **अवारीणः** सिद्ध हो जाता है।

पारीणः। उस पार हुआ। **पारे भवः** अर्थ में **पार+ङि** से **अवारपार** शब्द में पृथक्कृत द्वितीयभाग में **अवारपाराद्विगृहीतादपि विपरीताच्चेति वक्तव्यम्** वार्तिक की सहायता से राष्ट्रावारपाराद् घखौ से ख-प्रत्यय, **ईन्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप करके **पारीन** और नकार को णत्व होकर **पारीणः**, स्वादिकार्य से **पारीणः** सिद्ध हो जाता है।

पारावारीणः। पार और अवार में हुआ। यहाँ पर **अवारपार** शब्द को विपरीत करने पर **पार+अवार=पारावार** शब्द बना है। **पारावारे भवः** अर्थ में **पारावार+ङि** से **अवारपाराद्विगृहीतादपि विपरीताच्चेति वक्तव्यम्** वार्तिक की सहायता से **राष्ट्रावारपाराद् घखौ** से ख-प्रत्यय, **ईन्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप करके **पारावारीन** और नकार को णत्व होकर **पारावारीणः**, स्वादिकार्य से **पारावारीणः** सिद्ध हो जाता है।

इह प्रकृतिविशेषाद् घादयष्ट्युट्युलन्ताः प्रत्यया उच्यन्ते, तेषां जातादयो-

ऽर्थविशेषाः समर्थविभक्तयश्च वक्ष्यन्ते। अर्थात् **इह**=इस शैषिक प्रकरण में **घ** से लेकर **ट्यु-ट्युल्** प्रत्ययों तक जितने प्रत्यय बताये गये हैं वे विशेष-विशेष प्रकृतियों से ही कहे गये हैं और इनके **जातः** आदि अर्थविशेष और उनकी समर्थ विभक्तियाँ भी आगे के सूत्रों से कही जायेंगी। कहीं केवल समर्थविभक्ति बतायी गयी है और कहीं केवल प्रत्यय कहा गया है और समर्थविभक्तिबोधक पद की पूर्वसूत्र से अनुवृत्ति मानी जाती है। जहाँ पर केवल अर्थविशेष ही बताया गया है, वहाँ प्रत्यय और समर्थविभक्ति पूर्वसूत्रों के अनुसार माननी चाहिये।

समर्थानां प्रथमाद्वा का अधिकार है। इसके फलस्वरूप प्रत्ययविधायक सूत्र में प्रथमोच्चारित पद से ही प्रत्यय होगा। जैसे कि **राष्ट्रावारापाराद् घखौ** सूत्र में दो पद हैं और उसमें प्रथमोच्चारित पद **राष्ट्रावारापाराद्** है। फलतः इसी पद से निर्दिष्ट शब्दों से ही प्रत्यय होता है। जहाँ पर केवल समर्थविभक्ति मात्र है, प्रकृति निर्दिष्ट नहीं है, वहाँ **तेन, तत्र, तस्मै** आदि पदों को प्रथमोच्चारित समझा जाता है।

१३१४. ग्रामाद्यखञौ ४।२।९४॥

ग्राम्यः, ग्रामीणः।

ग्रामाद्यखञौ। ग्रामात् पञ्चम्यन्तं, यखञौ प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

ग्राम शब्द से शेष अर्थ में य और खञ् दोनों प्रत्यय होते हैं।

खञ् में ञकार इत्संज्ञक है और खकार के स्थान पर **ईन्** आदेश होकर प्रत्यय का स्वरूप **ईन** बन जाता है।

ग्राम्यः। ग्राम में होने वाला या पैदा हुआ। **ग्रामे जातो भवो वा** लौकिक विग्रह और **ग्राम+ङि** अलौकिक विग्रह है। **ग्रामाद्यखञौ** से **य** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **ग्राम+य** बना। भसंज्ञक अकार का लोप होने पर **ग्राम्य** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **ग्राम्यः** सिद्ध हो जाता है।

ग्रामीणः। ग्राम में होने वाला या पैदा हुआ। **ग्रामे जातादि** लौकिक विग्रह और **ग्राम+ङि** अलौकिक विग्रह है। **ग्रामाद्यखञौ** से **खञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **ग्राम+ख** बना। **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से खकार के स्थान पर ईन् आदेश होकर भसंज्ञक अकार का लोप, रेफ से परे नकार को णत्व होकर **ग्रामीण** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **ग्रामीणः** सिद्ध हो जाता है।

१३१५. कत्र्यादिभ्यो ढकञ् ४।२।९५॥

कुत्सितास्त्रयः कत्रयः, तत्र जातादिः कात्रेयकः।
नागरेयकः। 'ग्रामात्' इत्यनुवृत्तेर्ग्रामेयकः।

कत्र्यादिभ्यो ढकञ्। कत्रिः आदिर्येषां ते कत्र्यादयस्तेभ्यः कत्र्यादिभ्यः, बहुव्रीहिः। कत्र्यादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, ढकञ् प्रथमान्तम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

कत्रि आदि गणपठित प्रातिपदिकों से शेष अर्थ में ढकञ् प्रत्यय होता है।

ढकञ् में ञकार इत्संज्ञक है, **ढक** बचता है और ढकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **एय्** आदेश होकर प्रत्यय का स्वरूप **एयक** बन जाता है।

कुत्सितास्त्रयः कत्रयः, तत्र जातादिः कात्रेयकः। तीन निन्दित स्थानों पर उत्पन्न। **कुत्सिताः त्रयः** अर्थ में **कु** शब्द का **त्रि** शब्द के साथ **कुगतिप्रादयः** सूत्र से समास होने पर **कोः कत्तत्पुरुषेऽचि (६.३.१०१)** में पठित **त्रौ च** वार्तिक के द्वारा **कु** शब्द के स्थान पर **कत्** आदेश होने पर **कत्रि** शब्द बनता है। **कत्रौ जातादिः** विग्रह करके **कत्रि+ङि** में **कत्र्यादिभ्यो ढकञ्** सूत्र से ढकञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, ढकार के स्थान पर **एय्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **कत्रि+एयक** बना है। आदिवृद्धि और भसंज्ञक इकार का लोप करके **कात्रेयक** बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कात्रेयकः** सिद्ध हो जाता है।

नागरेयकः। नगर में उत्पन्न। **नगरे जातादिः** विग्रह करके **नगर+ङि** में **कत्र्यादिभ्यो ढकञ्** सूत्र से ढकञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, ढकार के स्थान पर **एय्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करके **नागरेयक** और स्वादिकार्य होकर **नागरेयकः** सिद्ध हो जाता है।

'ग्रामात्' इत्यनुवृत्तेर्ग्रामेयकः। पूर्वसूत्र **ग्रामाद्यखञौ** सूत्र से **ग्रामात्** पद की अनुवृत्ति करने पर ग्राम शब्द से भी ढकञ् प्रत्यय हो जाता है। **ग्रामे जातादिः** विग्रह में **ग्राम+ङि** से ढकञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, ढकार के स्थान पर **एय्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करके **ग्रामेयक** और स्वादिकार्य होकर **ग्रामेयकः** सिद्ध हो जाता है।

कत्र्यादिगणः- कत्रि, उम्भि, पुष्कर, पुष्कल, मोदन, कुम्भी, कुण्डिन, नगरी, महिष्मती, वर्मती, उख्या, ग्राम। **कुड्याया यलोपश्च।**

१३१६. कुलकुक्षिग्रीवाभ्यः श्वास्यलङ्कारेषु ४।२।९६॥

कौलेयकः श्वा। कौलोऽन्यः। कौक्षेयकोऽसिः। कौक्षोऽन्यः।
ग्रैवेयकोऽलङ्कारः। ग्रैवोऽन्यः।

कुलकुक्षिग्रीवाभ्यः श्वास्यलङ्कारेषु। कुलं च कुक्षि च ग्रीवा च कुलकुक्षिग्रीवास्ताभ्यः कुलकुक्षिग्रीवाभ्यः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः। श्वा च असिश्च अलङ्कारश्च

श्वास्यलङ्कारास्तेषु श्वास्यलङ्कारेषु। **कत्र्यादिभ्यो ढकञ्** से ढकञ् की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

श्वा, असि, अलङ्कार अर्थ अभिधेय होने पर क्रमशः कुल, कुक्षि, ग्रीवा इन प्रातिपदिकों से शेष अर्थ में ढकञ् प्रत्यय होता है।

प्रकृति भी तीन हैं और अभिधेय भी तीन। अतः **यथासङ्ख्यमनुदेशः समानाम्** की उपस्थिति से **श्वा** अर्थ में **कुल** शब्द से, **असि** अभिधेय होने पर **कुक्षि** शब्द से और **अलङ्कार** अभिधेय होने पर **ग्रीवा** शब्द से ढकञ् प्रत्यय होता है।

कौलेयकः श्वा। कौलोऽन्यः। कुल में होने वाला कुत्ता। **कुले भवः** विग्रह में **कुल+ङि** इस स्थिति में **कुलकुक्षिग्रीवाभ्यः श्वास्यलङ्कारेषु** सूत्र के द्वारा ढकञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, एयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **कौलेयक** और स्वादिकार्य से **कौलेयकः** सिद्ध होता है। यह **श्वा**=कुत्ता अभिधेय होने के कारण हुआ है। **अन्यः**=यदि श्वा अभिधेय नहीं है तो उक्त प्रत्यय नहीं होता अपितु **शेषे** सूत्र से अण् प्रत्यय होकर **कौलः** बनता है।

कौक्षेयकोऽसिः। कौक्षोऽन्यः। कुक्षि में रहने वाली तलवार। **कुक्षौ भवः** विग्रह में **कुक्षि+ङि** इस स्थिति में **कुलकुक्षिग्रीवाभ्यः श्वास्यलङ्कारेषु** सूत्र के द्वारा ढकञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, एयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक इकार का लोप होकर **कौक्षेयक** और स्वादिकार्य से **कौक्षेयकः** सिद्ध होता है। यह **असि**=तलवार अभिधेय होने के कारण हुआ है। **अन्यः**=यदि तलवार अभिधेय नहीं है तो उक्त प्रत्यय नहीं होता अपितु **शेषे** सूत्र से अण् प्रत्यय होकर **कौक्षः** बनता है।

ग्रैवेयकोऽलङ्कारः। ग्रैवोऽन्यः। ग्रीवा=गले का अलंकार, आभूषण। **ग्रीवायां भवः** विग्रह में **ग्रीवा+ङि** इस स्थिति में **कुलकुक्षिग्रीवाभ्यः श्वास्यलङ्कारेषु** सूत्र के द्वारा ढकञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, एयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक आकार का लोप होकर **ग्रैवेयक** और स्वादिकार्य से **ग्रैवेयकः** सिद्ध होता है। यह **अलङ्कार**=आभूषण अभिधेय होने के कारण हुआ है। **अन्यः**=यदि आभूषण अभिधेय नहीं है तो उक्त प्रत्यय नहीं होता अपितु **शेषे** सूत्र से अण् प्रत्यय होकर **ग्रैवः** बनता है।

१३१७. नद्यादिभ्यो ढक् ४।२।९७॥
नादेयम्। माहेयम्। वाराणसेयम्।

नद्यादिभ्यो ढक्। नदी आदिर्येषां ते नद्यादयस्तेभ्यो नद्यादिभ्यः, बहुव्रीहिः। नद्यादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, ढक् प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

नदी आदि गणपठित समर्थ सुबन्त प्रातिपदिकों से शेष अर्थ में ढक् प्रत्यय होता है।

ककार इत्संज्ञक है और **ढ** के **ढ्** के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **एय्** आदेश होकर प्रत्यय का स्वरूप **एय** बन जाता है। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि होती है।

नादेयम्। नदी में होने वाला या पैदा हुआ। **नद्यां जातादि** लौकिक विग्रह और **नदी ङि** अलौकिक विग्रह है। **नद्यादिभ्यो ढक्** से **ढक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **नदी+ढ** बना। **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से ढ् के स्थान पर एय् आदेश होकर **नदी+एय** बना। **किति च** से आदिवृद्धि करके भसंज्ञक ईकार का लोप होने पर **नाद्+एय,** वर्णसम्मेलन होने पर **नादेय** बना। सु, अम्, पूर्वरूप करके **नादेयम्** सिद्ध हुआ।

माहेयम्। मही अर्थात् पृथ्वी में होने वाला या पैदा हुआ। **मह्यां जातादि** लौकिक विग्रह और **मही ङि** अलौकिक विग्रह है। **नद्यादिभ्यो ढक्** से **ढक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **मही+ढ** बना। **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से ढ् के स्थान पर एय् आदेश होकर **मही+एय** बना। **किति च** से आदिवृद्धि करके भसंज्ञक ईकार का लोप होने पर **माह्+एय,** वर्णसम्मेलन होने पर **माहेय** बना। सु, अम्, पूर्वरूप करके **माहेयम्** सिद्ध हुआ।

वाराणसेयम्। वाराणसी में होने वाला या पैदा हुआ। **वाराणस्यां जातादि** लौकिक विग्रह और **वाराणसी ङि** अलौकिक विग्रह है। **नद्यादिभ्यो ढक्** से **ढक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **वाराणसी+ढ** बना। **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से ढ् के स्थान पर एय् आदेश होकर **वाराणसी+एय** बना। किति च से आदिवृद्धि करके भसंज्ञक ईकार का लोप होने पर **वाराणस्+एय,** वर्णसम्मेलन होने पर **वाराणसेय** बना। सु, अम्, पूर्वरूप करके **वाराणसेयम्** सिद्ध हुआ।

नद्यादिगणः- नदी, मही, वाराणसी, श्रावस्ती, कौशाम्बी, वनकौशाम्बी, काशपरी, काशफारी, (काशफरी), खादिरि, पूर्वनगरी, पाठा, माया, शाल्वदार्वा, सेतकी। **वाडवाया वृषे।**

१३१८. दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक् ४।२।९८॥

'दक्षिणा' इत्याजन्तमव्ययम्। दाक्षिणात्यः। पाश्चात्त्यः। पौरस्त्यः।

दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक्। दक्षिणा च पश्चात् च पुरस् च दक्षिणापश्चात्पुरः, तस्माद् दक्षिणापश्चात्पुरसः, समाहारद्वन्द्वः। दक्षिणापश्चात्पुरसः पञ्चम्यन्तं, त्यक् प्रथमान्तम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

दक्षिणा, पश्चात्, पुरस् इन समर्थ सुबन्त प्रातिपदिकों से शेष अर्थ में त्यक् प्रत्यय होता है।

त्यक् में ककार इत्संज्ञक है, **त्य** बचता है। कित् होने के कारण आदिवृद्धि होती है।

'दक्षिणा' इत्याजन्तमव्ययम्। सूत्रोक्त **दक्षिणा** शब्द आच्-प्रत्ययान्त अव्यय है अर्थात् **दक्षिण** शब्द से **दक्षिणादाच्** सूत्र के द्वारा आच् प्रत्यय होने पर **दक्षिणा** शब्द बना है और **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** सूत्र से इसकी अव्ययसंज्ञा होती है।

दाक्षिणात्यः। दक्षिण दिशा में उत्पन्न या होने वाला। **दक्षिणा भवः। दक्षिणा** इस अव्यय से **दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक्** से **त्यक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **दक्षिणात्य** बना। आदिवृद्धि करके स्वादिकार्य होने पर **दाक्षिणात्यः** सिद्ध हुआ।

पाश्चात्त्यः। पीछे अर्थात् पश्चिम दिशा में उत्पन्न या होने वाला। **पश्चात् भवः। पश्चात्** इस अव्यय से **दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक्** से **त्यक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **पश्चात्+त्य** बना। आदिवृद्धि करके स्वादिकार्य होने पर **पाश्चात्त्यः** सिद्ध हुआ।

पौरस्त्यः। पहले या पूर्व में उत्पन्न या होने वाला। **पुरो भवः। पुरस्** इस अव्यय से **दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक्** से **त्यक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **पुरस्+त्य** बना। आदिवृद्धि करके स्वादिकार्य होने पर **पौरस्त्यः** सिद्ध हुआ।

१३१९. कापिश्याः ष्फक् ४।२।९९॥

कापिश्यां जातादि कापिशायनं मधु। कापिशायनी द्राक्षा।

कापिश्याः ष्फक्। कापिश्याः पञ्चम्यन्तं, ष्फक् प्रथमान्तम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

कापिशी इस समर्थ सुबन्त प्रातिपदिक से शेष अर्थ में ष्फक् प्रत्यय होता है।

ष्फक् में ककार इत्संज्ञक है और षकार की भी **षः प्रत्ययस्य** सूत्र से इत्संज्ञा होती है। **य** बचता है। कित् होने के कारण आदिवृद्धि होती है षित्करण स्त्रीत्वविवक्षा में **षिद्गौरादिभ्यश्च** से ङीष् के लिये है। फकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र से **आयन्** आदेश होकर प्रत्यय का स्वरूप **आयन** बन जाता है।

कापिश्यां जातादि कापिशायनं मधु। कापिशायनी द्राक्षा। कापिशी में होने वाला मधु और द्राक्षा। **कापिश्यां जातादि** अर्थ में **कापिशी+ङि** में **कापिश्याः ष्फक्** सूत्र से **ष्फक्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, फकार के स्थान पर आयन् आदेश,

प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, पर्जन्यवल्लक्षणन्यायेन आदिवृद्धि, भसंज्ञक ईकार का लोप होकर **कापिशायन** बन जाता है। **मधु** शब्द के विशेषण होने पर नपुंसकलिङ्ग और **द्राक्षा** शब्द के विशेषण होने पर स्त्रीलिङ्ग होने के कारण ङीष् होता है। स्वादिकार्य होने पर **कापिशायनम्** और **कापिशायनी** बनते हैं। यद्यपि **कापिशी** शब्द स्वतः आदि आकार वाला होने के कारण वृद्ध्यर्थ कित्करण की आवश्यकता नहीं है तथापि अगले सूत्र में **ष्फक्** की अनुवृत्ति जाती है और वहाँ **रङ्कु** शब्द में आदिवृद्धि के लिये कित्करण सार्थक है। **कापिशी** किसी देश-विशेष का नाम है। यह **काबुल** के आसपास का स्थान है। वहाँ होने वाली शहद और अंगूर को क्रमशः **कापिशायनम्** और **कापिशायनी** विशेषण दिया गया है।

१३२०. रङ्कोरमनुष्येऽण्च ४।२।१००॥

चात्ष्फक्। राङ्कवो गौः। राङ्कवायणः।
'अमनुष्ये' इति किम्? राङ्कवको मनुष्यः।

रङ्कोरमनुष्येऽण्च। न मनुष्योऽमनुष्यस्तस्मिन् अमनुष्ये, नञ्तत्पुरुषः। रङ्कोः पञ्चम्यन्तम्, अमनुष्ये सप्तम्यन्तम्, अण् प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है। **च**-शब्द से **कापिश्याः ष्फक्** से **ष्फक्** का समुच्चय माना जाता है।

मनुष्य अर्थ अभिधेय न होने पर शेष अर्थ में रङ्कु-शब्द से अण् प्रत्यय होता है और च-शब्द से ष्फक् भी।

राङ्कवो गौः, राङ्कवायणः। रंकु नामक जनपद में होने वाला बैल। **रङ्कौ जातः** अर्थ में रङ्क+ङि में **रङ्कोरमनुष्येऽण्च** सूत्र से अण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, **ओर्गुणः** सूत्र से उकार को गुण ओकार और उसको अवादेश होकर **राङ्कव** शब्द बना है। **ष्फक्** प्रत्यय होने पर फकार के स्थान पर आयन् आदेशादि होकर **राङ्कवायण** बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **राङ्कवः** और **राङ्कवायणः** ये प्रयोग बनते हैं।

'अमनुष्ये' इति किम्? राङ्कवको मनुष्यः। प्रकृत सूत्र में **अमनुष्ये** शब्द के द्वारा मनुष्य अभिधेय होने पर उक्त प्रत्ययों का प्रतिषेध किया गया है। अतः मनुष्यार्थ में **मनुष्यतत्स्थयोर्वुञ्** (४.२.१३४) सूत्र से **वुञ्** प्रत्यय होने पर **वु** के स्थान पर **युवोरनाकौ** सूत्र से **अक** आदेश, आदिवृद्धि, उकार को गुण ओकार और उसको अवादेश, स्वादिकार्य होकर **राङ्कवकः** बन जाता है।

१३२१. द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत् ४।२।१०१॥

दिव्यम्। प्राच्यम्। अवाच्यम्। उदीच्यम्। प्रतीच्यम्।

द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत्। द्यौश्च प्राङ् च अपाङ् च उदङ् च प्रत्यङ् च तेषां समाहारद्वन्द्वो द्युप्रागपागुदक्प्रत्यक्, तस्मात्। द्युप्रागपागुदक्प्रतीचः पञ्चम्यन्तं, यत् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

दिव्, प्राञ्च्, अपाञ्च्, उदञ्च् और प्रत्यञ्च् से शैषिक अर्थों में यत्-प्रत्यय होता है।

तकार इत्संज्ञक है, **य** शेष रहता है। **दिव्** को छोड़कर शेष शब्द क्रमशः प्र, अप, उत् और प्रति उपसर्गपूर्वक **अञ्चु** धातु से बने हैं। नकार के स्थान पर आदिष्ट ञकार का **अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति** सूत्र से लोप और धातु के अकार का **अचः** सूत्र से लोप के बाद **चौ** सूत्र से दीर्घ करने पर ये **प्राच्, अपाच्, उदीच्, प्रत्यच्** ये शब्द बन जाते हैं। इनसे **यत्** का विधान किया गया है।

दिव्यम्। स्वर्ग में होने वाला या पैदा हुआ। **दिवि जातादि** लौकिक विग्रह और **दिव् ङि** अलौकिक विग्रह है। **द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत्** से **यत्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **दिव्+य** बना। ञित्, णित्, कित् न होने के कारण आदिवृद्धि का भी प्रसङ्ग नहीं है और हलन्तशब्द होने के कारण भसंज्ञक इकार, अकार के लोप होने का प्रसंग ही नहीं है। वर्णसम्मेलन होने पर **दिव्य** बना। सु, अम्, पूर्वरूप करके **दिव्यम्** सिद्ध हुआ।

प्राच्यम्। पूर्व दिशा या पूर्व देश में होने वाला या पैदा हुआ। **प्राचि जातादि** लौकिक विग्रह और **प्राञ्च् ङि** अलौकिक विग्रह है। **द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत्** से **यत्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **प्राञ्च्+य** बना। साथ ही **अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति** से न् (ञ्) का लोप होकर **प्राच्+य** बना। ञित्, णित्, कित् न होने के कारण आदिवृद्धि का प्रसंग नहीं है एवं हलन्तशब्द होने के कारण भसंज्ञक इकार और अकार के लोप होने का प्रसङ्ग नहीं है। वर्णसम्मेलन होने पर **प्राच्य** बना। सु, अम्, पूर्वरूप करके **प्राच्यम्** सिद्ध हुआ।

अपाच्यम्। दक्षिण में होने वाला। **अपाचि भवम् अपाच्यम्।**

उदीच्यम्। उत्तर में होने वाला। **उदीचि भवम् उदीच्यम्।** यहाँ य-प्रत्यय भसंज्ञक है, अतः उसके परे रहते **उद्+अच्** में अकार के स्थान पर **उद ईत्** सूत्र से ईकार आदेश होकर **उदीच्** शब्द बनने के बाद यत्-प्रत्यय किया गया है।

प्रतीच्यम्। पश्चिम में होने वाला। **प्रतीचि भवं प्रतीच्यम्।**

१३२२. कन्थायाष्ठक् ४।२।१०२॥

कान्थिकः।

कन्थायाष्ठक्। कन्थायाः पञ्चम्यन्तं, ठक् प्रथमान्तम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

कन्था-प्रातिपदिक से शैषिक अर्थों में ठक्-प्रत्यय होता है।

अनेक वस्त्रखण्डों से टेढ़ा सिले हुए गद्दे को **कन्था** कहते हैं और कुछ लोग किसी देशविशेष का नाम भी मानते हैं। ठक् में ककार इत्संज्ञक है, **ठ** के स्थान पर **ठस्येकः** से **इक** आदेश होता है।

कान्थिकः। गुदड़ी में होने वाले जूँ आदि कीड़े। **कन्थायां जातः** अर्थ में **कन्था+ङि** इस स्थिति में **कन्थायाष्ठक्** सूत्र से ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, ठ के स्थान पर इकादेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक आकार का लोप करके **कान्थिक** और एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कान्थिकः** सिद्ध हो जाता है।

१३२३. वर्णो वुक् ४।२।१०३॥

वर्णुसमीपदेशो वर्णुः। तद्विषयार्थवाचि-कन्था-शब्दाद् वुक् स्यात्।
'यथा हि जातं हिमवत्सु कान्थकम्'।

वर्णो वुक्। वर्णौ सप्तम्यन्तं, वुक् प्रथमान्तम्। **कन्थायाष्ठक्** से **कन्थायाः** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

वर्णुसमीपदेशो वर्णुः। वर्णु-नद के समीपवर्ती देश को भी **वर्णु** कहते है। बालमनोरमाकार लिखते हैं कि **वर्णु** सिन्धुनद है। **वर्णोः अदूरभवो जनपदः** अर्थ में **वर्णु**-शब्द से **सुवास्त्वादिभ्योऽण्** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय होने पर उसका **जनपदे लुप्** सूत्र से लुप् होकर **वर्णुः** ही बनता है।

सूत्रार्थः- **वर्णुदेश के विषयवाची होने पर कन्था-प्रातिपदिक से शैषिक अर्थों में वुक्-प्रत्यय होता है।**

ककार इत्संज्ञक है और **वु** को **युवोरनाकौ** से **अक** आदेश होता है।

'यथा हि जातं हिमवत्सु कान्थकम्'। जिस तरह से हिमालय, पहाडों पर कन्था-आस्तरण में जीव आदि उत्पन्न होते हैं। यह किसी काव्य का अधूरा श्लोक है और हमें **कान्थकम्** बनाने से कार्य है। **कन्थायां जातादि** लौकिक विग्रह और **कन्था+ङि** इस अलौकिक विग्रह में में **वर्णो वुक्** सूत्र के द्वारा **वुक्** प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, **युवोरनाकौ** सूत्र से अकादेश करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक आकार का लोप करके **कान्थक** बनता है। स्वादिकार्य से **कान्थकम्** सिद्ध हो जाता है।

१३२४. अव्ययात्त्यप् ४।२।१०४॥

'अमेहक्वतसित्रेभ्य एव' (वा.२७७९)। **'अमान्तिकसहार्थयोः'**। **अमात्यः**। **इहत्यः**। **क्वत्यः**। **ततस्त्यः**। **तत्रत्यः**। **परिगणनम् किम्?** उपरिष्टाद्भवः **औपरिष्टः**। **'अव्ययानां भमात्रे टिलोपः'** (वा.४१८७)। अनित्योऽयं, बहिषष्टिलोपविधानात्। **तेनेह न-** आरातीयः। शाश्वतीयः।

त्यब्नेर्ध्रुव इति वक्तव्यम्' (वा.२७८०)। नित्यः।

'निसो गते' (वा.२७८१)।

अव्ययात्त्यप्। अव्ययात् पञ्चम्यन्तं, त्यप् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

अव्ययों से परे त्यप् प्रत्यय होता है।

पकार इत्संज्ञक है, **त्य** बचता है। सभी अव्ययों से यह प्रत्यय प्राप्त हो रहा था, अतः अग्रिम वार्तिक से सीमित किया गया है।

अमेहक्वतसित्रेभ्य एव। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- सभी अव्ययों से त्यप् न होकर केवल अमा, इह, क्व, तसिल्-प्रत्ययान्त और त्रल्-प्रत्ययान्त मात्र अव्ययों से त्यप्-प्रत्यय हो। इस तरह त्यप्-प्रत्ययभावी अव्ययों का इस वार्तिक से परिगणन किया गया है।

अमान्तिकसहार्थयोः। कोशानुसार **अमा** शब्द के दो अर्थ हैं- अन्तिक(समीप) और सह (साथ, सहायक)।

अमात्यः। **अमा** इस अव्यय का **साथ** अर्थ लिया गया है। साथ या समीप में होने वाला, मन्त्री आदि। **अमा (सह) वर्तते** लौकिक विग्रह और **अमा**(अव्यय होने के कारण विभक्ति नहीं है) अलौकिक विग्रह है। **अव्ययात्त्यप्** से त्यप् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, **अमा+त्य** बना। ञित्, णित्, कित् न होने के कारण आदिवृद्धि का प्रसंग नहीं है और अजादि या यकारादि प्रत्यय परे न मिलने के कारण भसंज्ञक नहीं है, अतः भसंज्ञक के लोप होने का प्रसङ्ग भी नहीं है। **अमात्य** से सु, रुत्व-विसर्ग करके **अमात्यः** सिद्ध हुआ।

इहत्यः। यहाँ होने वाला। **इह भवः** अर्थ में **इह** से **अव्ययात्त्यप्** सूत्र से त्यप् प्रत्यय होने पर **इहत्य** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **इहत्यः** सिद्ध हो जाता है। यद्यपि **इह** शब्द अव्यय है तथापि तद्धित प्रत्यय होने पर यह विशेष्यानुसार तीनों लिङ्गों में प्रयुक्त होता है- **इहत्यः, इहत्यौ, इहत्याः। इहत्या, इहत्ये, इहत्याः। इहत्यम्, इहत्ये, इहत्यानि** इत्यादि।

क्वत्यः। कहाँ होने वाला। **क्व** इस अव्यय से **अव्ययात्त्यप्** से त्यप् प्रत्यय होने पर स्वादिकार्य होकर **क्वत्यः** सिद्ध हो जाता है।

ततस्त्यः। वहाँ से होने वाला। तसिल्-प्रत्ययान्त अव्यय **ततस्** शब्द से **अव्ययात्त्यप्** से त्यप् प्रत्यय होने पर स्वादिकार्य होकर **ततस्त्यः** सिद्ध हो जाता है।

तत्रत्यः। वहाँ होने वाला या वहाँ रहने वाला। त्रल्-प्रत्ययान्त अव्यय **तत्र** से **अव्ययात्त्यप्** से त्यप् प्रत्यय होने पर स्वादिकार्य होकर **तत्रत्यः** सिद्ध हो जाता है।

परिगणनं किम्? उपरिष्टाद् भवः औपरिष्टः। अर्थात् **अव्ययात्त्यप्** सूत्र से सभी अव्ययों से प्राप्त त्यप् प्रत्यय के विषय में **अमेहक्वतसित्रेभ्य एव** वार्तिक के द्वारा त्यप्-प्रत्ययभावी अव्ययों को सीमित कर दिया गया है। उसका प्रयोजन यह है कि वार्तिकोक्त शब्दों से त्यप् प्रत्यय हो, अन्य अव्ययों से न हो। अतः **उपरिष्टाद् भवः** अर्थ में **उपरिष्टात्** इस अव्यय से त्यप् प्रत्यय नहीं हुआ, अपितु अण् प्रत्यय हो जाता है। इसकी प्रक्रिया आगे बतायी जा रही है।

अव्ययानां भमात्रे टिलोपः। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- भसंज्ञा के विषय में अव्ययों के टिसंज्ञक भाग का लोप होता है। ध्यान रहे कि तद्धित में भी अजादि-प्रत्यय और यकारादि-प्रत्यय के परे रहते प्रकृति की **यचि भम्** से भसंज्ञा होती है।

औपरिष्टः। ऊपर होने वाला। **औपरिष्टाद् भवः** अर्थ में अव्यय **उपरिष्टात्** शब्द से **शेषे** सूत्र के द्वारा या **तत्र भवः** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर **अव्ययानां भमात्रे टिलोपः** वार्तिक से टिसंज्ञक भाग **आत्** का लोप होकर **उपरिष्ट्+अ** बना है। आदिवृद्धि होकर **औपरिष्ट** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **औपरिष्टः** सिद्ध हो जाता है।

अनित्योऽयं बहिषष्टिलोपविधानात्। तेनेह न- आरातीयः। शाश्वतीयः। अर्थात् **अव्ययानां भमात्रे टिलोपः** यह वार्तिक अनित्य है, क्योंकि **बहिस्**-शब्द में टिलोप करने के लिये **बहिषष्टिलोपो यञ्च** वार्तिक पढ़ा गया है। यदि सर्वत्र भमात्र में अव्ययों का नित्य से टिलोप होता तो **बहिस्**-शब्द से यञ्-प्रत्यय होने पर यकारादि प्रत्यय के परे रहते भसंज्ञा होने के कारण **अव्ययानां भमात्रे टिलोपः** वार्तिक से ही टिलोप हो जाता और **बहिषष्टिलोपः** कहने की आवश्यकता न पड़ती। **तेन**=बहिस्-शब्द में टिलोप करने के लिये अलग से वार्तिक पढ़ने के कारण **अव्ययानां भमात्रे टिलोपः** के अनित्य होने से **आरातीयः** में टिलोप नहीं हुआ। यहाँ पर **आराद् भवः** (दूर या समीप में रहने वाला) में **वृद्धाच्छः** से छ-प्रत्यय, ईयादेश, स्वादिकार्य होकर **आरातीयः** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **शाश्वत्+ईय** में भी टिलोप नहीं होता। फलतः **शाश्वतीयः** (सदा रहने वाला) सिद्ध हो जाता है। इस तरह **बहिषष्टिलोपो यञ्च** वार्तिक **अव्ययानां भमात्रे टिलोपः** की अनित्यता का ज्ञापक है।

त्यब्नेर्ध्रुव इति वक्तव्यम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- ध्रुव (स्थिर) अर्थ अभिधेय होने पर **नि** इस अव्यय से परे त्यप् प्रत्यय हो, ऐसा कहना चाहिए।

नित्यः। सदा होने वाला। **नितरां भवः** अर्थ में **नि** उपसर्ग से **त्यब्नेर्ध्रुव इति**

वक्तव्यम् वार्तिक के द्वारा **त्यप्** प्रत्यय होकर **नित्यः** बन जाता है। इसका सर्वकाल, निश्चित और नियत अर्थ लिया जायेगा।

निसो गते। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- अव्यय निस्-शब्द से **गत** अर्थ में त्यप् प्रत्यय होता है। इसका उदाहरण अगले सूत्र में है।

१३२५. ह्रस्वात्तादौ तद्धिते ८।३।१०१॥

ह्रस्वादिणः परस्य सस्य षः स्यात्तादौ तद्धिते।
निर्गतो वर्णाश्रमेभ्यो निष्ठ्यश्चाण्डालादिः।
'अरण्याण्णः'(वा.२७८२) आरण्याः सुमनसः।
'दूरादेत्यः'(वा.२७८३) दूरेत्यः।
'उत्तरादाहञ्'(वा.२७४४)। औत्तराहः।

ह्रस्वात्तादौ तद्धिते। त आदिर्यस्य स तादिस्तस्मिन् तादौ, बहुव्रीहिः। ह्रस्वात् पञ्चम्यन्तं, तादौ सप्तम्यन्तं, तद्धिते सप्तम्यन्तम्। **सहेः साडः सः** से **सः** की **इण्कोः, नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि, अपदान्तस्य मूर्धन्यः, तयोर्य्वावचि संहितायाम्** आदि सूत्रों के आवश्यक पदों का अधिकार है। **अपदान्तस्य** का अधिकार नहीं है।

ह्रस्व इण् से परे सकार को षकार आदेश होता है, तकारादि तद्धित प्रत्यय के परे रहते। (इण् और सकार के बीच नुम्, विसर्जनीय, शर् का व्यवधान होने पर या न होने पर, संहिता के विषय में)।

षत्वविधायक आष्टमिक प्रकरण प्रसंगवश बीच में दिया गया है। स्थानी (उद्देश्य) सकार और आदेश (विधेय) षकार है। इण् प्रत्याहारबोधक शब्द है। यद्यपि इण् में इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ओ, ऐ, औ, य्, व्, र्, ल् ये वर्ण आते हैं तथापि **ह्रस्वात्** पद के **इण्** के विशेषण होने के कारण केवल **इ, उ** ही लिये जायेंगे। **आदेशप्रत्यययोः** में **अपदान्तस्य** का अधिकार होने के कारण अप्राप्त षत्व का प्रकृतसूत्र से विधान किया गया है।

निर्गतो वर्णाश्रमेभ्यो निष्ठ्यश्चाण्डालादिः। वर्णाश्रम धर्म से बाहर हुए चाण्डालादि **निष्ठ्यः** हैं। **निस्** अव्यय से पूर्वोक्त **निसो गते** वार्तिक से **त्यप्** प्रत्यय होने पर **निस्+त्य** बना है। सकार के स्थान पर **ह्रस्वात्तादौ तद्धिते** सूत्र के द्वारा षकार आदेश होने पर उसके योग में **त्य** के तकार को **ष्टुना ष्टुः** से ष्टुत्व टकार होकर **निष्ट्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **निष्ट्यः** सिद्ध हो जाता है।

अब प्रासंगिक कुछ वार्तिकों का अवतरण कर रहे हैं-

अरण्याण्णः। यह वार्तिक है। अरण्य-शब्द से शैषिक अर्थ में ण-प्रत्यय होता है। णकार इत्संज्ञक है, अ बचता है।

आरण्याः सुमनसः। जंगल में होने वाले फूल। **अरण्ये भवाः** अर्थ में **अरण्य+ङि** से **अरण्याण्णः** वार्तिक से ण-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आरण्य** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकात्वात् स्वादिकार्य होकर प्रथमाबहुवचन में **आरण्याः** सिद्ध हो जाता है। **सुमनस्** शब्द स्त्रीलिङ्ग में है, अतः **आरण्याः** भी स्त्रीलिंग का ही रूप है। विशेष्य शब्द पुंल्लिंग या नपुंसकलिंग होने पर **आरण्यः, आरण्यम्** भी बन सकते हैं।

दूरादेत्यः। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- दूर-शब्द से शैषिक अर्थों में **एत्य** प्रत्यय होता है। यहाँ **दूरात्** शब्द पञ्चमी न होकर अव्यय है।

दूरेत्यः। दूर जाने वाला पथिक या दूर में होने वाली वस्तु। **दूरात्** अव्यय से **दूरादेत्यः** वार्तिक से **एत्य** प्रत्यय होने पर **अव्ययानां भमात्रे टिलोपः** वार्तिक से टिसंज्ञक भाग **आत्** का लोप होकर **दूरेत्य** और स्वादिकार्य होकर **दूरेत्यः** सिद्ध हो जाता है।

उत्तरादाहञ्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- उत्तर-शब्द से शैषिक भवादि अर्थों में आहञ्-प्रत्यय होता है। ञकार इत्संज्ञक है, **आह** बचता है। ञित्करण आदिवृद्धि के लिये है।

औत्तराहः। उत्तर में होने वाला या उत्तर से आया हुआ। **उत्तरे भवः** आदि अर्थों में **उत्तर**-शब्द से **उत्तरादाहञ्** सूत्र से आहञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **औत्तराह** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **औत्तराहः** सिद्ध हो जाता है।

१३२६. ऐषमोह्यःश्वसोऽन्यतरस्याम् ४।२।१०५॥

एभ्यस्त्यब्वा। पक्षे वक्ष्यमाणौ ट्युट्युलौ। ऐषमस्त्यम्, ऐषमस्तनम्। ह्यस्त्यम्, ह्यस्तनम्। श्वस्त्यम्, श्वस्तनम्। पक्षे शौवस्तिकं वक्ष्यते।

ऐषमोह्यःश्वसोऽन्यतरस्याम्। ऐषमस् च ह्यस् च श्वस् च तेषां समाहारद्वन्द्वः- ऐषमोह्यःश्वस्, तस्माद् ऐषमोह्यःश्वसः पञ्चम्यन्तम्, अन्यतरस्यां विभक्तिप्रतिरूपकमव्ययम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है साथ ही **अव्ययात् त्यप्** से **त्यप्** की अनुवृत्ति आती है।

ऐषमस्, ह्यस् और श्वस् इन अव्ययों से परे विकल्प से त्यप् प्रत्यय होता है।

पक्षे वक्ष्यमाणौ ट्युट्युलौ। त्यप् न होने के पक्ष में वक्ष्यमाण **सायञ्चिरम्प्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च** (४.३.२३) सूत्र से **ट्यु** और **ट्युल्** प्रत्यय होंगे और उक्त प्रत्ययों को **तुट्** का आगम भी होगा। **तुट्** में अनुबन्धलोप होकर **त्** मात्र बचता है और उसके टित् होने के कारण **आद्यन्तौ टकितौ** के नियम से प्रत्यय के आदि में स्थिति होती है।

ऐषमस्त्यम्, ऐषमस्तनम्। इस वर्ष होने वाला। **ऐषमो भवम्** अर्थ में **ऐषमस्** अव्यय से **ऐषमोह्यःश्वसोऽन्यतरस्याम्** सूत्र से **त्यप्** प्रत्यय होने पर **ऐषमस्त्य** बनता है। ट्यु और ट्युल् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप होकर **यु** बचता है और उसको तुट् आगम होकर **ऐषमस्+त्+यु** बना है। **युवोरनाकौ** सूत्र से **यु** के स्थान पर **अन** आदेश होकर **ऐषमस्तन** शब्द बनता है। उभयत्र स्वादिकार्य होकर **ऐषमस्त्यम्, ऐषमस्तनम्** सिद्ध हो जाते हैं।

ह्यस्त्यम्, ह्यस्तनम्। गत-दिन को हुआ। **ह्यो भवम्** अर्थ में **ह्यस्** अव्यय से **ऐषमोह्यःश्वसोऽन्यतरस्याम्** सूत्र से **त्यप्** प्रत्यय होने पर **ह्यस्त्य** बनता है। पक्ष में ट्यु और ट्युल् प्रत्यय, तुट् आगम, **यु** के स्थान पर **अन** आदेश होकर **ह्यस्तन** शब्द बनता है। उभयत्र स्वादिकार्य होकर **ह्यस्त्यम्, ह्यस्तनम्** सिद्ध हो जाते हैं।

श्वस्त्यम्, श्वस्तनम्। पक्षे शौवस्तिकं वक्ष्यते। आने वाले कल को होने वाला। **श्वो भवम्** अर्थ में **श्वस्** अव्यय से **ऐषमोह्यःश्वसोऽन्यतरस्याम्** सूत्र से **त्यप्** प्रत्यय होने पर **श्वस्त्य** बनता है। पक्ष में ट्यु और ट्युल् प्रत्यय, तुट् आगम, **यु** के स्थान पर **अन** आदेश होकर **श्वस्तन** शब्द बनता है। उभयत्र स्वादिकार्य होकर **श्वस्त्यम्, श्वस्तनम्** सिद्ध हो जाते हैं। एक पक्ष में आगे ठञ् प्रत्यय बताया जायेगा अर्थात् **श्वसस्तुट् च (४.३१५)** सूत्र से ठक् प्रत्यय और उसको तुट् आगम होगा। **ठ** के स्थान पर **इक** आदेश होने पर **श्वस्+तिक** बन जाता है। ञित् परे रहते **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि प्राप्त होती है, उसका निषेध करके **न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्** सूत्र से वकार से पूर्व औकार आगम होकर **शौवस्तिक** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **शौवस्तिकम्** सिद्ध हो जाता है।

१३२७. तीररूपोत्तरपदादञ्ञ्यौ ४।२।१०६॥

यथासङ्ख्येन। काकतीरम्। पाल्वलतीरम्। शैवरूप्यम्।
तीररूप्यान्ताद् इति नोक्तम्। बहुच्पूर्वान्मा भूत्। बाहुरूप्यम्।

तीररूप्योत्तरपदादञ्ञौ। तीरं च रूप्यश्च तीररूप्यं, समाहारद्वन्द्वः। तीररूप्यम् उत्तरपदं यस्य स तीररूप्योत्तरपदं, तस्मात् तीरोत्तरपदात्। अञ् च ञश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः- अञ्ञौ। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

तीर-शब्द और रूप्य-शब्द उत्तरपद वाले प्रातिपदिकों से क्रमशः अञ् और ञ प्रत्यय होते हैं, शैषिक अर्थों में।

यथासङ्ख्येन। यहाँ **तीर**-उत्तरपद वाले सभी शब्दों को एक और **रूप्य**-उत्तरपद वाले सभी शब्दों को एक मान कर दो प्रकृतियाँ हैं और अञ् एवं ञ भी दो प्रत्यय हैं। अतः **यथासङ्ख्यमनुदेशः समानाम्** की उपस्थिति होती है और तीरोत्तरपद-शब्दों से अञ्

और रूप्योत्तरपद-शब्दों से ञ-प्रत्यय होते हैं। स्त्रीत्वविवक्षा में अञन्त से ङीप् होता है और ञान्त से नहीं होता, यह भेद है। दोनों प्रत्ययों ञकार इत्संज्ञक है, **अ** बचता है।

काकतीरम्। काकतीर (वाहीकग्राम) में होने वाला। **काकतीरे भवम्** अर्थ में **काकतीर+ङि** इस स्थिति में **तीररूप्योत्तरपदादञ्ञौ** सूत्र से **अञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, पर्जन्यवल्लक्षणन्यायेन आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **काकतीर** शब्द ही बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **काकतीरम्** सिद्ध हो जाता है।

पाल्वलतीरम्। पल्वलतीर (वाहीकग्राम) में होने वाला। **पल्वलतीरे भवम्** अर्थ में **पल्वलतीर+ङि** इस स्थिति में **अञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पाल्वलतीर** और स्वादिकार्य होकर **पाल्वलतीरम्** सिद्ध हो जाता है।

शैवरूप्यम्। शिवरूप्य (वाहीकग्राम) में होने वाला। **शिवरूप्ये भवम्** अर्थ में **शिवरूप्य+ङि** इस स्थिति में **तीररूप्योत्तरपदादञ्ञौ** सूत्र से **ञ** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **शैवरूप्य** शब्द ही बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **शैवरूप्यम्** सिद्ध हो जाता है।

तीररूप्यान्ताद् इति नोक्तम्। बहुच्पूर्वान्मा भूत्। बाहुरूप्यम्। यह कह रहे हैं कि **तीररूप्योत्तरपदात्** की जगह **तीररूप्यान्ताद्** कहने से भी उक्त उदाहरणों में काम चल सकता था किन्तु आचार्य ने वैसा नहीं कहकर **उत्तरपद** शब्द का प्रयोग किया है। उत्तरपद का तात्पर्य होता है समस्त (समास किये हुये) पद का चरमावयव (अन्तिम) पद। इससे यह ज्ञात होता है कि समस्त पद से ये प्रत्यय होते हैं। उसका कारण यह है कि **बहुच्**-प्रत्यय पूर्वक **रूप्यान्त** शब्द से **ञ** प्रत्यय न हो। **बहुरूप्य** शब्द में समास नहीं हुआ है किन्तु **रूप्य** शब्द से पूर्व **विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात्तु** सूत्र से **बहुच्** प्रत्यय हुआ है। **उत्तरपद** के ग्रहण से **बहुरूप्य** से **ञ** प्रत्यय नहीं हुआ अपितु नैसर्गिक अण् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **बाहुरूप्य** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **बाहुरूप्यम्** सिद्ध हो जाता है। **तीररूप्यान्तात्** पद का पाठ होने पर तो **ञ** प्रत्यय हो जाता।

इस सूत्र के पाठभेद के रूप में **तीररूपोत्तरपदादञ्ञ्यौ** ऐसा कई पुस्तकों में उपलब्ध होता है। तदनुसार इस सूत्र का अर्थ होगा- **तीर-शब्द और रूप-शब्द उत्तरपद वाले प्रातिपदिकों से क्रमशः अञ् और ञ्य प्रत्यय होते हैं, शैषिक अर्थों में।** ऐसा अर्थ होने पर **शिवरूप** आदि शब्दों से **ञ्य** प्रत्यय किया जायेगा। इस तरह दोनों तरह के पाठों से **शिवरूप्यम्** ही बनता है। प्रकृति और प्रत्यय दोनों में भेद होने पर भी रूप समान ही रूप की सिद्धि होती है।

१३२८. दिक्पूर्वपदादसञ्ज्ञायां ञः ४।२।१०७॥

अणोऽपवादः। पौर्वशालः। असञ्ज्ञायां किम्? सञ्ज्ञाभूतायाः प्रकृतेर्मा भूत्। पूर्वेषुकामशम्यां भवः पूर्वैषुकामशमः। 'प्राचां ग्रामनगराणाम्' (सू. १४००) इत्युत्तरपदवृद्धिः।

दिक्पूर्वपदादसञ्ज्ञायां ञः। दिक् पूर्वपदं यस्य तत् दिक्पूर्वपदं तस्माद् दिक्पूर्वपदात्, बहुव्रीहिः। न संज्ञा असंज्ञा, तस्यामसंज्ञायाम्। दिक्पूर्वपदात् पञ्चम्यन्तम्, असंज्ञायां सप्तम्यन्तं, ञः प्रथमान्तम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

दिशा-वाची शब्द पूर्वपद हो, ऐसे असंज्ञा में वर्तमान समर्थ प्रातिपदिकों से ञ प्रत्यय होता है।

असंज्ञायाम् पद **दिक्पूर्वपदात्** का विशेषण है। प्रत्यय में ञकार इत्संज्ञक है, **अ** बचता है।

अणोऽपवादः। यह सूत्र नैसर्गिक अण् का अपवाद है। अणन्त होने से स्त्रीत्वविवक्षा में ङीप् होता है और ञ-प्रत्यय होने से वह नहीं होता साथ ही ञित्प्रयुक्त स्वर भी हो जाता है। पूर्वसूत्र में **अञ्औ** से **ञः** की अनुवृत्ति नहीं आ सकती, क्योंकि **सन्नियोगशिष्टानां सह वा प्रवृत्तिः सह वा निवृत्तिः** के अनुसार दोनों प्रत्ययों की अनुवृत्ति होने लगती।

पौर्वशालः। पूर्व की शाला (कमरे) में होने वाला। **पूर्वस्यां शालायां भवः** अर्थ में **पूर्वा+ङि शाला+ङि** में तद्धितार्थविषय होने के कारण **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** सूत्र से समास होने पर समासप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **पूर्वा+शाला** बना है। **पूर्वा** शब्द को **स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु** से पुंवद्भाव होने पर टाप् (आ) की निवृत्ति होकर **पूर्वशाला** बना है। यह **दिक्पूर्वपद** शब्द है। अतः **पूर्वशालायां भवः** आदि अर्थ में **पूर्वशाला+ङि** इस स्थिति में **दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां ञः** सूत्र से ञ प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक आकार का लोप होकर **पौर्वशाल** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पौर्वशालः** सिद्ध हो जाता है।

असञ्ज्ञायां किम्? सञ्ज्ञाभूतायाः प्रकृतेर्मा भूत्। पूर्वेषुकामशम्यां भवः पूर्वैषुकामशमः। 'प्राचां ग्रामनगराणाम्' इत्युत्तरपदवृद्धिः। प्रकृतसूत्र में **असंज्ञायाम्** पद का निवेश इस लिये किया गया है कि तद्धितप्रत्यय की जो प्रकृति है, वह संज्ञा न हो। यदि तद्धितप्रत्यय की प्रकृति संज्ञा हो तो यह **ञ** प्रत्यय न हो, इस लिये। यहाँ **पूर्वेषुकामशमी** शब्द संज्ञा है, क्योंकि **इषुकामशमी** एक ग्राम का नाम है। फलतः यह

ञ प्रत्यय नहीं हुआ अपितु भवार्थ में अण् प्रत्यय हो जाता है। जैसे कि **पूर्वा चासौ इषुकामशमी** विग्रह में **दिक्सङ्ख्ये संज्ञायाम्** सूत्र से कर्मधारयसमास होने के बाद **पुंवत्कर्मधारयजातीयदेशीयेषु** सूत्र से पुंवद्भाव होकर **पूर्व+इषुकामशमी** बना है। गुण होकर **पूर्वेषुकामशमी** बनता है और अण् प्रत्यय होने पर **प्राचां ग्रामनगराणाम्** सूत्र से उत्तरपद के आदि अच् **इषुकामशमी** के इकार की वृद्धि होकर **पूर्वैषुकामशमी+अ** बना है। भसंज्ञक अकार का लोप, स्वादिकार्य होकर **पूर्वैषुकामशमः** सिद्ध हो जाता है।

१३२९. मद्रेभ्योऽञ् ४।२।१०८॥

'दिक्पूर्वपदात्' इत्येव।

'दिशोऽमद्राणाम्' (सू.१३९९) इति मद्रपर्युदासादादिवृद्धिः। पौर्वमद्रः। आपरमद्रः।

मद्रेभ्योऽञ्। मद्रेभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अञ् प्रथमान्तम्। **दिक्पूर्वपदादसञ्ज्ञायां ञः** से **दिक्पूर्वपदात्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

दिशा-वाची शब्द पूर्वपद में हो, ऐसे मद्रान्त प्रातिपदिकों से अञ् प्रत्यय होता है।

'दिक्पूर्वपदात्' इत्येव। इस सूत्र में पूर्वसूत्र के **दिक्पूर्वपदात्** का सम्बन्ध होने के कारण दिशावाची शब्द पूर्वपद होने पर ही यह सूत्र लगता है।

'दिशोऽमद्राणाम्' इति मद्रपर्युदासादादिवृद्धिः। मद्रान्त-शब्दों से अञ्-प्रत्यय होने पर **दिशोऽमद्राणाम्** (७.३.१२) सूत्र के द्वारा उत्तरपद के आदि-अच् की वृद्धि नहीं होती, क्योंकि उक्त सूत्र में **अमद्राणाम्** सूत्र के द्वारा मद्र-शब्दान्त में उत्तरपदवृद्धि का प्रतिषेध किया गया है। अतः **तद्धितेष्वचामादेः** से ही आदिवृद्धि होती है।

पौर्वमद्रः। पूर्व मद्र-जनपद में होने वाला। **पूर्वेषु मद्रेषु भवः** अर्थ में **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** से समासादि होकर **पूर्वमद्र** बना है। **मद्रेभ्योऽञ्** सूत्र से अञ् प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पौर्वमद्र** बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पौर्वमद्रः** सिद्ध हो जाता है।

आपरमद्रः। पश्चिमी मद्र-जनपद में होने वाला। **अपरेषु मद्रेषु भवः** अर्थ में **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** से समासादि होकर **अपरमद्र** बना है। **मद्रेभ्योऽञ्** सूत्र से अञ् प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आपरमद्र** बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आपरमद्रः** सिद्ध हो जाता है।

उपर्युक्त दोनों उदाहरणों में **दिशोऽमद्राणाम्** सूत्र में **मद्र**-शब्द का पर्युदास होने से उत्तरपद की वृद्धि नहीं हुयी है।

१३३०. उदीच्यग्रामाच्च बह्वचोऽन्तोदात्तात् ४।२।१०९॥
अञ् स्यात्। शैवपुरम्।

उदीच्यग्रामाच्च बह्वचोऽन्तोदात्तात्। उदीचि भव उदीच्यः। उदीच्यश्चासौ ग्रामश्च उदीच्यग्रामस्तस्माद् उदीच्यग्रामात्, कर्मधारयः। बहवोऽचो यस्मिन् स बह्वच्, तस्माद् बह्वचः बहुव्रीहिः। अन्त उदात्त यस्य स अन्तोदात्तस्तस्माद् अन्तोदात्तात्। **मद्रेभ्योऽञ्** से **अञ्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है। यहाँ **दिक्पूर्वपदात्** नहीं आता। **उदीच्यग्राम** शब्द का उदीच्यग्रामवाची अर्थ है। **उदीच्यग्रामात्, बह्वचः, अन्तोदात्तात्** ये तीनों **प्रातिपदिकात्** के विशेषण हैं।

अन्तोदात्त बहुत अच् वाले उत्तर दिशा में होने वाले ग्राम-वाची प्रातिपदिकों से शैषिक अञ् प्रत्यय होता है।

बह्वच् शब्द से तीन या तीन से अधिक अच् वाले शब्दों का ग्रहण होता है, दो अचों में बह्वच् शब्दों का प्रयोग नहीं होता।

शैवपुरम्। शिवपुर में होने वाला। यह ग्राम प्राचीन काल में उदीच्य रहा होगा। **शिवस्य पुरम्** विग्रह में षष्ठीतत्पुरुष समास होने पर **शिवपुरम्** बना है। **समासस्य** सूत्र के द्वारा **शिवपुर** शब्द अन्तोदात्त है। **शिवपुरे भवम्** अर्थ में **शिवपुर+ङि** में **उदीच्यग्रामाच्च बह्वचोऽन्यतोदात्तात्** सूत्र से अञ् प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **शैवपुर** बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **शैवपुरम्** सिद्ध हो जाता है।

प्रकृतसूत्र में **उदीच्यग्रामात्** पद का निवेश होने से **मथुरायां भवः** अर्थ में मथुरा-शब्द से अञ् नहीं होता, क्योंकि यह उदीच्यग्राम नहीं है। अतः औत्सर्गिक अण् प्रत्यय होकर **माथुरः** बनता है।

बह्वचः पद का निवेश होने से **ध्वञ्जी** नामक उदीच्यग्रामवाची शब्द से भी अञ् प्रत्यय नहीं होता।

अन्तोदात्तात् पद का निवेश होने से **शकरीधान** आदि शब्दों से अञ् प्रत्यय नहीं होता, क्योंकि यह मध्योदात्त शब्द है।

१३३१. प्रस्थोत्तरपदपलद्यादिकोपधादण् ४।२।११०॥
माहिकिप्रस्थः। पालदः। नैलीनकः।

प्रस्थोत्तरपदपलद्यादिकोपधादण्। प्रस्थ उत्तरपदं यस्य तत् प्रस्थोत्तरपदं, बहुव्रीहिः। पलदी आदिर्येषां ते पलद्यादयः, बहुव्रीहिः। क् उपधा यस्य स कोपधः, बहुव्रीहिः। प्रस्थोत्तरपदं च पलद्यादयश्च कोपधश्च तेषां समाहारद्वन्द्वः प्रस्थोत्तरपदपलद्यादिकोपधम्,

तस्मात् प्रस्थोत्तरपदपलद्यादिकोपधात् पञ्चम्यन्तम्, अण् प्रथमान्तम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

प्रस्थ-उत्तरपद वाले, पलदी-आदि गणपठित और ककार-उपधा वाले प्रातिपदिकों से शैषिक अण् प्रत्यय होता है।

यह उदीच्यग्रामलक्षण पूर्वसूत्र से प्राप्त अञ् का अपवाद है।

माहिकिप्रस्थः। माहिकिप्रस्थ नामक उदीच्य ग्राम में होने वाला। यहाँ पर प्रस्थ-शब्द उत्तरपद में है। **माहिकिप्रस्थे भवः** अर्थ में **माहिकिप्रस्थ+ङि** में **प्रस्थोत्तरपदपलद्यादिकोपधादण्** सूत्र से अण् प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, पर्जन्यवल्लक्षणन्यायेन आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **माहिकिप्रस्थ** बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **माहिकिप्रस्थः** सिद्ध हो जाता है।

पालदः। पलदी नामक बाहीक ग्राम में होने वाला। **पलद्यां (पलदी-नाम्नि ग्रामे) भवः** अर्थ में **पलदी+ङि** से **प्रस्थोत्तरपदपलद्यादिकोपधादण्** सूत्र से अण् प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक ईकार का लोप होकर **पालद** बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पालदः** सिद्ध हो जाता है।

पलद्यादिगणः- पलदी, परिषद्, रोमक, वाहीक, कलकीट, बहुकीट, जालकीट, कमलकीट, कमलकीकर, कमलभिदा, गौष्ठी, नैकती, परिखा, शूरसेन, गोमती, पटच्चर, उदपान, यकृल्लोम।

नैलीनकः। नीलीनक नामक बाहीक ग्राम में होने वाला। **नीलीनक** शब्द ककारोपध है। **नीलीनके भवः** अर्थ में **नीलीनक+ङि** से **प्रस्थोत्तरपदपलद्यादिकोपधादण्** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **नैलीनक** बना है। एकदेशविकृतन्यायेन स्वादिकार्य होकर **नैलीनकः** सिद्ध हो जाता है।

१३३२. कण्वादिभ्यो गोत्रे ४।२।१११॥

एभ्यो गोत्रप्रत्ययान्तेभ्योऽण् स्यात्।

कण्वो गर्गादिः। काण्व्यस्य छात्राः काण्वाः।

कण्वादिभ्यो गोत्रे। कण्व आदिर्येषां ते कण्वादयस्तेभ्यः कण्वादिभ्यः, बहुव्रीहिः। कण्वादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, गोत्रे सप्तम्यन्तम्। **प्रस्थोत्तरपदपलद्यादिकोपधादण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है। **गोत्रे** शब्द का अन्वय **कण्वादिभ्यः** से है और गोत्र-शब्द शास्त्रीयसंज्ञा वाला है, न कि लौकिक गोत्र। अतः गोत्रप्रत्ययान्त लिया जाता है।

गोत्र-प्रत्ययान्त कण्वादि-गणपठित प्रातिपदिकों से शैषिक अण् प्रत्यय होता है।

कण्वो गर्गादिः। कण्व-शब्द गर्गादिगण के अन्तर्गत आता है। न केवल कण्व-शब्द मात्र, अपितु कण्वादिगण ही गर्गादिगण का अन्तर्गण है।

कण्वस्य छात्राः काण्वाः। काण्व्य के छात्र। **कण्वस्य गोत्रापत्यम्** अर्थ में **कण्व**-शब्द से **गर्गादिभ्यो यञ्** (४.१.१०५) सूत्र से यञ् प्रत्ययादि होकर **काण्व्य** शब्द बना है। यहाँ **काण्व्यस्य छात्राः** अर्थ में **काण्व्य**+ङस् से **कण्वादिभ्यो गोत्रे** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **काण्व्य+अ** बना है। पर्जन्यवल्लक्षणन्यायेन आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **काण्व्य्+अ** बना है। **आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति** (६.४.१५१) सूत्र से यकार का लोप होकर **काण्व** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर बहुवचन में **काण्व्याः** सिद्ध हो जाता है।

कण्वादिगणः- कण्व, शकल, गोकक्ष, अगस्त्य, कण्डिनी, यज्ञवल्क, पर्णवल्क, अभयजात, विरोहित, वृषगण, रहूगण, शण्डिल, वर्णक, (चणक), चुलुक, मुद्गल, मुसल, जमदग्नि, पराशर, जतूकर्ण [जातूकर्ण], महित, मन्त्रित, अश्मरथ, शर्कराक्ष, पूतिमाष, स्थूरा, अदरक, [अररक] एकाल, पिङ्गल, कृष्ण, गोलन्द, उलूक, तितिक्ष, भिषज, [भिषज्], [भिष्णज्], भडित, भण्डित, दल्भ, चेकित, चिकित्सित, देवहू, इन्द्रहू, एकलु, पिप्पलु, बृहदग्नि, [सुलोहिन्], सुलाभिन्, उक्थ, कुटीगु।

१३३३. इञश्च ४।२।११२॥

गोत्रे य इञ् तदन्तादण् स्यात्।

दाक्षाः। गोत्रे किम्? सौतङ्गमेरिदं सौतङ्गमीयम्।

गोत्रमिह शास्त्रीयम्, न तु लौकिकम्। तेनेह न- पाणिनीयम्।

इञश्च। इञः पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **कण्वादिभ्यो गोत्रे** से **गोत्रे** तथा **प्रस्थोत्तरपदपलद्यादिकोपधादण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

गोत्रार्थ में जो इञ् प्रत्यय, तदन्त प्रातिपदिकों से शैषिक अण् प्रत्यय होता है।

यह **वृद्धाच्छः** से प्राप्त छ-प्रत्यय का अपवाद है।

दाक्षाः। दाक्षि के छात्र। **दक्षस्य गोत्रापत्यम्** अर्थ में **दक्ष**-शब्द से **अत इञ्** सूत्र से **इञ्** प्रत्ययादि होकर **दाक्षि** शब्द बना है। यहाँ **दाक्षेः छात्राः** अर्थ में **दाक्षि**+ङस् से **वृद्धाच्छः** सूत्र से छ-प्रत्यय प्राप्त होने पर उसे बाधकर **इञश्च** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, पर्जन्यवल्लक्षणन्यायेन

आदिवृद्धि और भसंज्ञक इकार का लोप होकर **दाक्ष** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर बहुवचन में **दाक्षाः** सिद्ध हो जाता है।

गोत्रे किम्? सौतङ्गमेरिदं सौतङ्गमीयम्। प्रकृतसूत्र में पूर्वसूत्र से **गोत्रे** पद की अनुवृत्ति का यह प्रयोजन है कि गोत्रप्रत्ययान्त इञन्त होने पर ही यह अण् प्रत्यय हो, अन्यथा न हो। अतः **सौतङ्गमेरिदं सौतङ्गमीयम्** में अण् प्रत्यय नहीं होता, क्योंकि **सुतङ्गम** शब्द से गोत्रार्थ में इञ्-प्रत्यय नहीं है अपितु **वुञ्छण्कठजिल०**(४.२.८०) सूत्र से **तस्य निवासः** आदि अर्थ में इञ् प्रत्यय होकर **सौतङ्गमि** शब्द बना है। अतः अण् प्रत्यय न होने पर **वृद्धाच्छः** सूत्र के द्वारा छ-प्रत्यय, ईयादेश होकर **सौतङ्गमीय** शब्द बन जाता है। स्वादिकार्य से **सौतङ्गमीयम्** सिद्ध हो जाता है।

गोत्रमिह शास्त्रीयम्, न तु लौकिकम्। तेनेह न- पाणिनीयम्। प्रकृतसूत्र में अनुवृत्ति से लभ्य **गोत्र**-शब्द **पौत्रप्रभृति गोत्रम्** सूत्र से परिभाषित शास्त्रीय गोत्र पौत्रप्रभृति का बोधक है, न कि लौकिक गोत्र या अनन्तरापत्य पुत्र, पुत्री आदि का। अतः **पाणिनीयम्** (पाणिनि-सम्बन्धी) में इञ्-प्रत्ययान्त **पाणिनि** शब्द से प्रकृत अण् प्रत्यय नहीं हुआ, क्योंकि **पाणिन**-शब्द से युवापत्य अर्थ में **इञ्** प्रत्यय होकर **पाणिनि** शब्द बना है। यद्यपि अपत्याधिकार से बाहर गोत्र-शब्द से लौकिक गोत्र का ही ग्रहण करने का निर्देश भाष्यकार ने दिया है तथापि **कण्वादिभ्यो गोत्रे** तथा **इञश्च** इन दोनों सूत्रों में शास्त्रीय गोत्र का ही ग्रहण है। यह बात **यूनि लुक्** सूत्र के भाष्य में कही गयी है। उसका कारण यह है कि कण्वादि शब्दों के गर्गाद्यन्तर्गत होने के कारण यञ् प्रत्यय गोत्रापत्य में ही हुआ है। अन्यथा यञन्त कण्वादि-शब्दों से शैषिक अञ् प्रत्यय का विधान ही व्यर्थ हो जाता। अतः **पाणिनि**-शब्द से प्रकृत अण् प्रत्यय न होकर **वृद्धाच्छः** सूत्र से छ-प्रत्यय, ईयादेश आदि होकर **पाणिनीयम्** सिद्ध हो जाता है।

१३३४. न द्व्यचः प्राच्यभरतेषु ४।२।११३॥

'इञश्च' (सू.१३३३) इत्यणोऽपवादः। प्रौष्ठीयाः। काशीयाः। भरतानां प्राच्यत्वेऽपि पृथगुपादानम् अन्यत्र प्राच्यग्रहणे भरतानामग्रहणस्य लिङ्गम्।

न द्व्यचः प्राच्यभरतेषु। द्वौ अचौ यस्मिन् स द्व्यच्, तस्माद् द्व्यचः। प्राच्याश्च भरताश्च प्राच्यभरतास्तेषु प्राच्यभरतेषु, इतरेतरयोगद्वन्द्वः। नाव्ययं, द्व्यचः पञ्चम्यन्तं, प्राच्यभरतेषु सप्तम्यन्तम्। **इञश्च** से **इञः** की, **कण्वादिभ्यो गोत्रे** से **गोत्रे** की तथा **प्रस्थोत्तरपदपलद्यादिकोपधादण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

प्राच्य-गोत्रवाची एवं भरत-गोत्रवाची इञ्-प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से शैषिक अण् प्रत्यय नहीं होता।

'इञश्च' इत्यणोऽपवादः। अर्थात् **अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वा**

(विधि और प्रतिषेध अपने से समीपवर्ती का ही होता है) इस परिभाषा के बल पर प्रकृतसूत्र से जो निषेध किया गया है, वह पूर्वसूत्र **इञश्च** से प्राप्त अण् का ही है। अतः **अण्** की अनुवृत्ति विद्यमान है।

प्रौष्ठीयाः। प्रौष्ठि के छात्र। **प्रोष्ठस्य गोत्रापत्यम्** अर्थ में **प्रोष्ठ**-शब्द से **अत इञ्** सूत्र से इञ्-प्रत्यय, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **प्रौष्ठिं** शब्द बना है। **प्रौष्ठेः छात्राः** अर्थ में **इञश्च** सूत्र से अण्-प्रत्यय प्राप्त था किन्तु **प्रौष्ठि** के प्राच्यगोत्र होने के कारण **न द्व्यचः प्राच्यभरतेषु** सूत्र से निषेध हो जाता है। फलतः **वृद्धाच्छः** सूत्र से छ-प्रत्यय, ईयादेश, भसंज्ञक इकार का लोप, स्वादिकार्य होकर **प्रौष्ठीयाः** सिद्ध हो जाता है।

काशीयाः। काशि-नामक आचार्य के छात्र। **काशस्य गोत्रापत्यम्** अर्थ में **काश**-शब्द से **अत इञ्** सूत्र से इञ्-प्रत्यय होकर **काशि** शब्द बना है। **काशेः छात्राः** अर्थ में **इञश्च** सूत्र से अण्-प्रत्यय प्राप्त था किन्तु **काशि** के भरतगोत्र होने के कारण **न द्व्यचः प्राच्यभरतेषु** सूत्र से निषेध हो जाता है। फलतः **वृद्धाच्छः** सूत्र से छ-प्रत्यय, ईयादेश, भसंज्ञक इकार का लोप, स्वादिकार्य होकर **काशीयाः** सिद्ध हो जाता है।

भरतानां प्राच्यत्वेऽपि पृथगुपादानम् अन्यत्र प्राच्यग्रहणे भरतानामग्रहणस्य लिङ्गम्। अर्थात् **प्राच्य**-गोत्र के अन्तर्गत **भरत**-गोत्र का भी समावेश है। अतः प्रकृतसूत्र में **प्राच्य** पद से ही भरतों का भी ग्रहण हो जाता तो पुनः **पृथक् उपादानम्**=भरत-शब्द का जो पृथक् ग्रहण किया गया है, वह व्यर्थ होकर यह **लिङ्गम्**=प्रमाणित करता है अर्थात् ज्ञापन देता है कि **अन्यत्र प्राच्य-ग्रहण में भरतों का ग्रहण नहीं होता**। इसके फलस्वरूप **औद्दालकिः पिता, औद्दालकायनः पुत्रः** में इञन्त **औद्दालकि** शब्द से **यञिञोश्च** (४.१.१०१) सूत्र से विहित **फक्** प्रत्यय का **इञः प्राचाम्** (२.४.६०) से लुक् नहीं होता।

अब आगे वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिकों से **वृद्धाच्छः** सूत्र के द्वारा छ-प्रत्यय किया जाने वाला है। अतः वृद्धसंज्ञक शब्द जानना आवश्यक है। एतदर्थ वृद्धसंज्ञाविधायक सूत्रों को उपस्थापित कर रहे हैं-

१३३५. वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद् वृद्धम् १।१।७३॥

यस्य समुदायस्याचां मध्ये आदिर्वृद्धिस्तद् वृद्धसञ्ज्ञं स्यात्।

वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद् वृद्धम्। वृद्धिः प्रथमान्तं, यस्य षष्ठ्यन्तम्, अचां षष्ठ्यन्तम्, आदिः प्रथमान्तं, तद् प्रथमान्तं, वृद्धं प्रथमान्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्।

जिस शब्द के अचों के मध्य में आदि अच् वृद्धिसंज्ञक अर्थात् आ, ऐ, औ हों, उस शब्द की वृद्धसंज्ञा होती है।

संज्ञा **वृद्धम्** है और संज्ञी **यस्य अचाम् आदिः वृद्धिः**। यहाँ **अचाम्** में षष्ठीविभक्ति निर्धारण अर्थ में है- अचों के मध्य में। जिस प्रातिपदिक में हलों की गणना

न करके केवल अचों की गणना करते हैं, उसमें आदि अच्-वर्ण वृद्धिसंज्ञक अर्थात् आ, ऐ, औं में से कोई एक हो तो उस शब्द की ही वृद्धसंज्ञा होती है। **वृद्धसंज्ञा** का फल **वृद्धाच्छः** आदि सूत्रों की प्रवृत्ति है। जैसे कि **शाला, ऐतिह्य, औपगव** इत्यादि। इस सूत्र के उदाहरण **वृद्धाच्छः** सूत्र में दिये गये हैं।

१३३६. त्यदादीनि च १।१।७४॥
वृद्धसञ्ज्ञानि स्युः।

त्यदादीनि च। त्यद् आदिर्येषां तानि त्यदादीनि। त्यदादीनि प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। **वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद् वृद्धम्** से **वृद्धम्** की अनुवृत्ति आती है।

सर्वादिगण के अन्तर्गत जो त्यदादिगण पठित है, उसमें पढ़े गये शब्दों की भी वृद्धसंज्ञा होती है।

पूर्वसूत्र से आदि-अच् वृद्धि वाले शब्दों की ही वृद्धसंज्ञा होने से त्यदादि शब्दों की प्राप्ति नहीं थी, अतः इस सूत्र की सार्थकता है।

१३३७. वृद्धाच्छः ४।२।११४॥
शालीयः। मालीयः। तदीयः।

वृद्धाच्छः। वृद्धात् पञ्चम्यन्तं, छः प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

वृद्धसंज्ञक सुबन्त प्रातिपदिकों से शैषिक अर्थ में छ प्रत्यय होता है।

छ में छकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **ईय्** आदेश होकर **ईय** बन जाता है।

शालीयः। शाला अर्थात् घर में होने वाला या पैदा हुआ। **शालायां भवः** लौकिक विग्रह और **शाला ङि** अलौकिक विग्रह है। **शाला** में आदि अच् आकार वृद्धिसंज्ञक है, अतः इसकी **वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद् वृद्धम्** से वृद्धसंज्ञा हुई है। इससे **वृद्धाच्छः** के द्वारा छ प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **शाला+छ** बना। **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **छ्** के स्थान पर **ईय्** आदेश होकर **शाला+ईय** बना। भसंज्ञक आकार का लोप करके **शाल्+ईय** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **शालीय** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **शालीयः** सिद्ध हो जाता है।

मालीयः। माला में होने वाला सूता, धागा आदि। **मालायां जातादि** लौकिक विग्रह और **माला ङि** अलौकिक विग्रह है। **माला** में आदि अच् आकार वृद्धिसंज्ञक है, अतः इसकी **वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद् वृद्धम्** से वृद्धसंज्ञा हुई है। इससे **वृद्धाच्छः** के द्वारा **छ** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **माला+छ** बना। **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **छ्** के स्थान पर **ईय्** आदेश होकर **माला+ईय** बना।

भसंज्ञक आकार का लोप करके **माल्+ईय** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **मालीय** बना और सु, रुत्वविसर्ग करके **मालीयः** सिद्ध हो जाता है।

तदीयः। उसका यह। **तस्य अयम्** लौकिक विग्रह और **तद् ङस्** अलौकिक विग्रह है। तद् त्यदादिगणीय है, अतः इसकी **त्यदादीनि च** से वृद्धसंज्ञा हुई है। इससे **वृद्धाच्छः** से **छ** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **तद्+छ** बना। **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **छ्** के स्थान पर **ईय्** आदेश होकर **तद्+ईय** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **तदीय** बना और सु, रुत्वविसर्ग करके **तदीयः** सिद्ध हो जाता है।

१३३८. एङ् प्राचां देशे १।१।७५॥

एङ् यस्याचामादिस्तद् वृद्धसञ्ज्ञं वा स्याद् देशाभिधाने।

एणीपचनीयः। गोनर्दीयः। भोजकटीयः। पक्षेऽणि ऐणीपचनः, गौनर्दः, भौजकटः।

एङ् किम्? आहिच्छत्रः। कान्यकुब्जः।

'वा नामधेयस्य वृद्धसञ्ज्ञा वक्तव्या' (वा.५७६)। दैवदत्तः, देवदत्तीयः।

एङ् प्राचां देशे। एङ् प्रथमान्तं, प्राचां षष्ठ्यन्तं, देशे सप्तम्यन्तम्। **वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद् वृद्धम्** से **यस्य अचाम् आदिः, वृद्धम्** की अनुवृत्ति आती है।

जिस शब्द का आदि-अच् एङ् हो, ऐसे देशवाची शब्द की विकल्प से वृद्धसंज्ञा होती है।

प्राचाम् पद का प्राचीन आचार्यों के मत में, ऐसा अर्थ है। अतः विकल्प सिद्ध होता है। पूर्व दो सूत्रों से अप्राप्त वृद्धसंज्ञा का प्रकृतसूत्र से विशेष परिस्थिति में विकल्प से विधान करना इस सूत्र की सार्थकता है। ध्यान रहे कि देश अर्थ अभिधेय होने पर ही प्रकृतसूत्र से संज्ञा हो रही है। संज्ञा न होने के पक्ष में छ-प्रत्यय नहीं होगा। अतः औत्सर्गिक अण् प्रत्यय हो जाता है। कुछ आचार्य **प्राचाम्** पद का अन्वय **देशे** पद के साथ करते हैं, तदनुसार प्राच्य-देशाभिधान होने पर एङादि-प्रातिपदिकों की नित्य से वृद्धसंज्ञा सिद्ध होगी। मूलकार ने ऐसा न मानकर **प्राचाम्** पद को विकल्पार्थ ही माना है।

एणीपचनीयः। एणीपचन नामक देश में होने वाला। **एणीपचन** शब्द का आदि अच् एङ् है और यह देशवाची भी। अतः इसकी **एङ् प्राचां देशे** सूत्र से विकल्प से वृद्धसंज्ञा होती है। **एणीपचने भवः** अर्थ में **एणीपचन+ङि** में **वृद्धाच्छः** सूत्र के द्वारा **छ** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, ईय् आदेश, भसंज्ञक अकार का लोप करके **एणीपचनीय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **एणीपचनीयः** सिद्ध हो जाता है। वृद्धसंज्ञा न होने के पक्ष में **शेषे** सूत्र से अण् प्रत्यय होता है और आदिवृद्धि होकर **ऐणीपचनः** बनता है।

गोनर्दीयः। गोनर्द नामक देश में होने वाला। **गोनर्द** शब्द की **एङ् प्राचां देशे** सूत्र से विकल्प से वृद्धसंज्ञा होती है। **गोनर्दे भवः** अर्थ में **गोनर्द+ङि** में **वृद्धाच्छः** सूत्र के द्वारा **छ** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, ईय् आदेश, भसंज्ञक अकार का लोप करके **गोनर्दीय** और स्वादिकार्य होकर **गोनर्दीयः** सिद्ध हो जाता है। वृद्धसंज्ञा न होने के पक्ष में **शेषे** सूत्र से अण् प्रत्यय होता है और आदिवृद्धि होकर **गौनर्दः** बनता है।

भोजकटीयः। भोजकट नामक देश में होने वाला। **भोजकट** शब्द की **एङ् प्राचां देशे** सूत्र से विकल्प से वृद्धसंज्ञा होती है। **भोजकटे भवः** अर्थ में **भोजकट+ङि** में **वृद्धाच्छः** सूत्र के द्वारा छ प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, ईय् आदेश, भसंज्ञक अकार का लोप करके **भोजकटीय** और स्वादिकार्य होकर **भोजकटीयः** सिद्ध हो जाता है। वृद्धसंज्ञा न होने के पक्ष में **शेषे** सूत्र से अण् प्रत्यय होता है और आदिवृद्धि होकर **भौजकटः** बनता है।

पक्षेऽणि ऐणीपचनः, गौनर्दः, भौजकटः। अर्थात् **एङ् प्राचां देशे** सूत्र से वैकल्पिक वृद्धसंज्ञा होती है। उसके न होने के पक्ष में **वृच्द्धाच्छः** नहीं लगता। अतः उपर्युक्त तीनों उदाहरणों में अण् प्रत्यय, आदिवृद्धि होकर **ऐणीपचनः, गौनर्दः, भौजकटः** ये रूप सिद्ध होते हैं, जैसा कि ऊपर बताये जा चुके हैं।

एङ् किम्? आहिच्छत्रः। कान्यकुब्जः। प्रकृतसूत्र में **एङ्** पद का ग्रहण करने से जिस शब्द के आदि में एङ् हो, ऐसे देशाभिधायी शब्द की ही वैकल्पिक वृद्धसंज्ञा होती है, अन्यथा नहीं होती। फलतः **अहिच्छत्र, कान्यकुब्ज** शब्दों की वृद्धसंज्ञा नहीं हुयी, क्योंकि ये देशाभिधायी तो हैं किन्तु इनका आदि अच् एङ् नहीं है। फलतः छ-प्रत्यय नहीं हुआ अपितु औत्सर्गिक अण् होने पर आदिवृद्धि आदि होकर **आहिच्छत्रः, कान्यकुब्जः** आदि प्रयोग बनते हैं।

वा नामधेयस्य वृद्धसंज्ञा वक्तव्या। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- **नामवाचक शब्दों की विकल्प से वृद्धसंज्ञा होती है**। देवदत्त नामवाचक शब्द है, वृद्धसंज्ञा की प्राप्ति नहीं थी तो इस वार्तिक से नामवाचक की वैकल्पिक वृद्धसंज्ञा की गई। अतः **वृद्धाच्छः** से छ होकर **देवदत्तीयः** सिद्ध हुआ। वृद्धसंज्ञा न होने के पक्ष में छ भी नहीं हुआ तो **शेषे** से अण्-प्रत्यय, आदिवृद्धि, भसंज्ञक का लोप करके सु आदि करने पर **दैवदत्तः** भी बनता है। इसी प्रकार सभी नामवाचक शब्दों के विषय में समझना चाहिए।

देवदत्तीयः, दैवदत्तः। देवदत्त का यह। **देवदत्तस्यायम्। देवदत्त+ङस्** में **वा नामधेयस्य वृद्धसंज्ञा वक्तव्या** वार्तिक द्वारा विकल्प से **वृद्धसंज्ञा** करके **वृद्धाच्छः** से **छ** प्रत्यय, ईय् आदेश आदि होकर **देवदत्तीयः** बनता है। संज्ञा न होने के पक्ष में **तस्येदम्** से **अण्** होकर **दैवदत्तः** बन जाता है।

१३३९. भवतष्ठक्छसौ ४।२।११५॥

वृद्धाद्भवत एतौ स्तः।

भावत्कः। जश्त्वम्, भवदीयः। वृद्धाद् इत्यनुवृत्तेः शत्रन्तादणेव। भावतः।

भवतष्ठक्छसौ। ठक् च छस् च ठक्छसौ, इतरेतरयोगद्वन्द्वः। भवतः पञ्चम्यन्तं, ठक्छसौ प्रथमान्तम्। **वृद्धाच्छः** से **वृद्धात्** की अनुवृत्ति आती है। **शेषे, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

वृद्ध-संज्ञक भवत्-शब्द से शैषिक ठक् और छस् प्रत्यय होते हैं।

ठक् में ककार इत्संज्ञक है, ठ बचता है और उसके स्थान पर **ठस्येकः** सूत्र से **इक** आदेश होता है। **छस्** में सकार की इत्संज्ञा होती है और छकार के स्थान पर ईयादेश होता है। सित्करण **सिति च** सूत्र से पदसंज्ञा के लिये है। पदसंज्ञा होने से भसंज्ञा का बाध हो जाता है।

भावत्कः। आपका। त्यदादिगणीय होने के कारण **भवत्** शब्द की **त्यदादीनि च** सूत्र से वृद्धसंज्ञा होती है। **भवतः अयम्** अर्थ में **भवत्+ङस्** से **भवतष्ठक्छसौ** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **भवत्+ठ** बना है। **ठस्येकः** सूत्र से इकादेश प्राप्त होने पर उसे बाधकर **इसुसुक्तान्तात्कः** सूत्र के द्वारा **क** आदेश होकर **भवत्+क** बन जाता है। **किति च** से आदिवृद्धि होकर **भावत्क** और स्वादिकार्य से **भावत्कः** सिद्ध हो जाता है।

जश्त्वम्, भवदीयः। उक्त **भवत्**-शब्द से **छस्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, ईयादेश आदि होकर **भवत्+ईय** बना है। **सिति च** सूत्र से **भवत्** शब्द की पदसंज्ञा हो जाती है। अतः **झलां जशोऽन्ते** सूत्र से तकार को जश्त्व दकार होकर **भवदीय** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **भवदीयः** सिद्ध हो जाता है।

वृद्धाद् इत्यनुवृत्तेः शत्रन्तादणेव- भावतः। अर्थात् पूर्वसूत्र से **वृद्धात्** पद की अनुवृत्ति के कारण वृद्धसंज्ञक भवत्-शब्द से ही ये दो प्रत्यय होते हैं किन्तु भू-धातु से शतृ-प्रत्यय होकर निष्पन्न **भवत्**-शब्द के त्यदादि न होने के कारण वह वृद्धसंज्ञक नहीं है, अतः उससे ये प्रत्यय नहीं होते। फलतः नैसर्गिक अण्-प्रत्यय होकर **भावतः** सिद्ध हो जाता है। **भावतः**=होते हुये से सम्बन्धित। त्यदादिगण में पठित भवत्-शब्द **भा** धातु से **भातेर्डवतु** से डवतु प्रत्यय, टिलोप आदि होकर बना है।

१३४०. काश्यादिभ्यष्ठञ्ञिठौ ४।२।११६॥

इकार उच्चारणार्थः। काशिकी, काशिका। वैदिकी, वैदिका। 'आपदादिपूर्वपदात् कालान्तात्' (ग.सू.७४)। आपदादिराकृतिगणः। आपत्कालिकी, आपत्कालिका।

काश्यादिभ्यष्ठञ्ञिठौ। काशिः आदिर्येषां ते काश्यादयस्तेभ्यः काश्यादिभ्यः। ठञ् च ञिठश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः ठञ्ञिठौ। काश्यादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, ठञ्ञिठौ प्रथमान्तम्। **शेषे, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

काशि-आदि गणपठित प्रातिपदिकों से शैषिक ठञ् और ञिठ प्रत्यय होते हैं।

इकार उच्चारणार्थः। अर्थात् ञिठ प्रत्यय में इकार उच्चारणार्थक है और ञकार इत्संज्ञक है। ठञ् में भी ञकार इत्संज्ञक है। दोनों प्रत्ययों में **ठ** बचता है। ध्यान रहे कि ठञ् होने पर स्त्रीत्वविवक्षा में **टिड्ढाणञ्०** सूत्र से ङीप् होता है और ञिठ प्रत्यय होने पर नहीं होता, अपितु टाप् हो जाता है।

काशिकी, काशिका। काशी में उत्पन्न। **काशि** और **काशी** दोनों शब्द हैं। प्रथम-शब्द काश्-धातु से इन्-प्रत्यय होकर और द्वितीय-शब्द में अच्-प्रत्यय होने पर ङीष् होकर **काशि** और **काशी** ये शब्द बनते हैं। **काश्यां जाता** अर्थ में **काशि+ङि (काशी+ङि)** से **काश्यादिभ्यष्ठञ्ञिठौ** सूत्र से ठञ् प्रत्यय होने पर इकादेश, भसंज्ञक इकारलोप होकर **काशिक** और ङीप् प्रत्यय होकर **काशिकी** शब्द बना है। ञिठ-प्रत्यय होने के पक्ष में भी अनुबन्धलोप के बाद शिष्ट **ठ** के स्थान पर इकादेश होकर **काशिक** शब्द बनता है। टाप् होकर **काशिका** शब्द बन जाता है। उभयत्र स्वादिकार्य होकर **काशिकी, काशिका** ये दो रूप बन जाते हैं।

वैदिकी, वैदिका। वेदी में उत्पन्न। **वेदौ भवा** अर्थ में **वेदि+ङि** से **काश्यादिभ्यष्ठञ्ञिठौ** सूत्र से ठञ् प्रत्यय होने पर इकादेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक इकारलोप होकर **वैदिक** और ङीप् प्रत्यय होकर **वैदिकी** शब्द बना है। ञिठ-प्रत्यय होने के पक्ष में भी अनुबन्धलोप के बाद शिष्ट **ठ** के स्थान पर इकादेश होकर **वैदिक** शब्द बनता है। टाप् होकर **वैदिका** शब्द बन जाता है। उभयत्र स्वादिकार्य होकर **वैदिकी, वैदिका** ये दो रूप बन जाते हैं।

यहाँ पर यह विचारणीय है कि **ञिठ** प्रत्यय में **ञि** समुदाय की **आदिर्ञिटुडवः** से इत्संज्ञा होने पर शिष्ट **ठ** के स्थान पर **इक** आदेश करके भी स्त्रीलिंग में **टाप्** प्रत्यय तो हो जायेगा किन्तु केवल ञकार की इत्संज्ञा न होने के कारण ञित्त्वप्रयुक्त आद्युदात्त स्वर का विधान नहीं हो पायेगा। अतः यहाँ केवल ञकार को इत्संज्ञक माना जाता है और अकार को उच्चारणार्थक अर्थात् इकार को प्रत्यय का अवयव नहीं माना जाता। इस स्थिति में **इठ** स्वरूप से ङीप् का निवारण तो हो जायेगा किन्तु प्रत्यय का स्वरूप **इठ** रहने पर **ठ** के स्थान **इक** आदेश कैसे होगा? इस शंका के विषय में कहा जाता है। इकार का प्रयोजन केवल उच्चारण मात्र है, क्योंकि इकार के अभाव में **ञ्ठ** ऐसा उच्चारण असमीचीन है। अतः इकार उच्चारणार्थ ही है और प्रत्यय का स्वरूप **ठ** मात्र है। ऐसी स्थिति में **इक** आदेश के लिये कोई बाधा नहीं है।

काश्यादिगणः- काशि, चेदि, (वेदि), सांयाति, संवाह, अच्युत, मोदमान, शकुलाद, हस्तिकर्षू, कुनामन्, हिरण्य, करण, गोवासन, भारङ्गी, अरिन्दम, अरित्र, देवदत्त, दशग्राम, शौवावतान, युवराज, उपराज, देवराज, मोदन, सिन्धुमित्र, दासमित्र, सुधामित्र, सोममित्र, छागमित्र, साधामित्र, (सधमित्र)। **आपदादिपूर्वपदात्कालान्तात्।** आपद् ऊर्ध्वं तत्।

'आपदादिपूर्वपदात् कालान्तात्'। यह काश्यादिगण के अन्तर्गत पठित गणसूत्र है। गणसूत्रार्थ- आपत् आदि शब्द पूर्व में हो और काल-शब्द अन्त में हो, ऐसे प्रातिपदिकों से भी ठञ् और ञिठ प्रत्यय होते हैं।

आपदादिराकृतिगणः। आपत् आदि कोई गणपाठ पठित नहीं है, अतः इसे आकृतिगण माना जाता है।

आपत्कालिकी, आपत्कालिका। आपत्काल में होने वाला। **आपत्काले भवा** अर्थ में **आपत्काल+ङि** से **आपदादिपूर्वपदात् कालान्तात्** वार्तिक से ठञ् प्रत्यय होने पर इकादेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप, ङीप् प्रत्यय होकर **आपत्कालिकी** तथा ञिठ-प्रत्यय होने के पक्ष में भी अनुबन्धलोप के बाद शिष्ट **ठ** के स्थान पर इकादेश, टाप् होकर **आपत्कालिका** शब्द बन जाते हैं। उभयत्र स्वादिकार्य होकर **आपत्कालिकी, आपत्कालिका** ये दो रूप बन जाते हैं।

१३४१. वाहीकग्रामेभ्यश्च ४।२।११७॥

वाहीकग्रामवाचिभ्यो वृद्धेभ्यष्ठञ्ञिठौ स्तः। छस्यापवादः।
कास्तीरं नाम वाहीकग्रामः। कास्तीरिकी, कास्तीरिका।

वाहीकग्रामेभ्यश्च। वाहीकस्य वाहीके वा ये ग्रामास्ते वाहीकग्रामास्तेभ्यो वाहीकग्रामेभ्यः पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **वृद्धाच्छः** से **वृद्धात्** की और **काश्यादिभ्यष्ठञ्ञिठौ** से **ठञ्-ञिठौ** की अनुवृत्ति आती है। **शेषे, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

वाहीक के ग्रामवाची वृद्ध-संज्ञक प्रातिपदिकों से भी शैषिक ठञ् और ञिठ प्रत्यय होते हैं।

वाहीक-ग्राम और वाहीक व्यक्ति आदि की चर्चा व्याकरण और काव्यशास्त्रों में भी होती है। प्राच्य=पूर्वदेश और उदीच्य=उत्तरदेश की सीमा **शरावती** नदी से दी जाती है। **वाहीक** देश इससे भिन्न हैं। कई आचार्यों ने **बहिर्भूत** होने के कारण **वाहीक** माना है। यद्यपि वकार और बकार का भेद है तथापि बाह्य-अर्थ में ही **वाहीक** की प्रसिद्धि है। महाभारत के कर्णपर्व में भी कहा गया है-

पञ्चानां सिन्धुषष्ठानामन्तरे वै समाश्रिताः।
वाहीका नाम ते देशा न तेषु दिवसं वसेत्॥ उक्त श्लोक के अनुसार पाँचों

नदियों के साथ छठी सिन्धु-नदी के बीच वाहीक नाम के (कुछ) देश (जनपद) हैं। वहाँ निवास के प्रति तो अरुचि दिखायी गयी है, उसका कारण यह रहा है कि कुछ आचारादि न्यूनता वहाँ है। जो भी हो, वाहीक देश ये ही हैं और इनके ग्रामों को **वाहीकग्राम** कहा जाता है।

छस्यापवादः। यह **वृद्धाच्छः** से प्राप्त छ-प्रत्यय का अपवाद है।

कास्तीरं नाम वाहीकग्रामः। कास्तीरिकी, कास्तीरिका। कास्तीर-नामक वाहीक-देश का एक ग्राम है, उसमें होने वाली। **कास्तीरे भवा** अर्थ में **कास्तीर+ङि** से **वाहीकग्रामेभ्यश्च** सूत्र से ठञ् प्रत्यय होने पर इकादेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक इकारलोप होकर **कास्तीरिक** और ङीप् प्रत्यय होकर **कास्तीरिकी** शब्द बना है। ञिठ-प्रत्यय होने के पक्ष में भी अनुबन्धलोप के बाद शिष्ट **ठ** के स्थान पर इकादेश होकर **कास्तीरिक** शब्द बनता है। टाप् होकर **कास्तीरिका** शब्द बन जाता है। उभयत्र स्वादिकार्य होकर **कास्तीरिकी, कास्तीरिका** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

यहाँ स्त्रीलिङ्गविशिष्ट उदाहरण दिये गये हैं किन्तु स्त्रीत्वाभिधेय होने पर ही ये प्रत्यय होते हैं, ऐसा नहीं है अपितु उक्त दो प्रत्ययों के होने से स्त्रीलिङ्ग में होने वाले अन्तर को दिखाने के लिये किया गया है। पुंल्लिंग और नपुंसकलिंग अभिधेय होने पर भी ये प्रत्यय होते हैं। यही बात अन्यत्र भी समझना चाहिये।

१३४२. विभाषोशीनरेषु ४।२।११८॥

एषु ये ग्रामास्तद्वाचिभ्यो वृद्धेभ्यष्ठञ्ञिठौ वा स्तः।

सौदर्शनिकी, सौदर्शनिका, सौदर्शनीया।

विभाषोशीनरेषु। विभाषा प्रथमान्तम्, उशीनरेषु सप्तम्यन्तम्। **वाहीकग्रामेभ्यश्च** से **वाहीकग्रामेभ्यः** की, **वृद्धाच्छः** से **वृद्धात्** की और **काश्यादिभ्यष्ठञ्ञिठौ** से **ठञ्-ञिठौ** की अनुवृत्ति आती है। **शेषे, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

उशीनर देशों में वृद्ध-संज्ञक वाहीक-ग्रामवाची प्रातिपदिकों से विकल्प से शैषिक ठञ् और ञिठ प्रत्यय होते हैं।

ये दोनों प्रत्यय वैकल्पिक हैं। इनके न होने पर औत्सर्गिक **वृद्धाच्छः** सूत्र से छ-प्रत्यय होता है।

भौगोलिक दृष्टि से **उशीनर** वाहीक देश का ही एक भाग था। पाणिनि के समय यहाँ पर आयुधजीवी संघशासन था। रावी और चिनाव के बीच का भूभाग कभी मद्र देश में था, वह **उशीनर** कहलाता है, ऐसा इतिहासकारों का मानना है।

सौदर्शनिकी, सौदर्शनिका, सौदर्शनीया। उशीनरस्थ सौदर्शन-नामक वाहीकग्राम में होने वाली। **सौदर्शने भवा** अर्थ में **सौदर्शन+ङि** से **विभाषोशीनरेषु** सूत्र से विकल्प

से ठञ् प्रत्यय होने पर इकादेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक इकारलोप होकर **सौदर्शनिक** और ङीप् प्रत्यय होकर **सौदर्शनिकी** शब्द बना है। ञिठ-प्रत्यय होने के पक्ष में भी अनुबन्धलोप के बाद शिष्ट **ठ** के स्थान पर इकादेश और टाप् होकर **सौदर्शनिका** शब्द बन जाता है। उक्त दोनों प्रत्यय न होने पर **वृद्धाच्छः** से छ-प्रत्यय होकर **सौदर्शनीया** बनता है। उभयत्र स्वादिकार्य होकर **सौदर्शनिकी, सौदर्शनिका** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

१३४३. ओर्देशे ठञ् ४।२।११९॥

उवर्णान्ताद्देशवाचिनष्ठञ्। निषादकर्षूः- नैषादकर्षुकः। 'केऽणः'(सू. ८३४) इति ह्रस्वः। 'देशे' किम्? पटोश्छात्राः पाटवाः। ञिठं व्यावर्तयितुं ठञ्ग्रहणम्। वृद्धाच्छं परत्वादयं बाधते। दाक्षिकर्षुकः।

ओर्देशे ठञ्। ओः पञ्चम्यन्तं, देशे सप्तम्यन्तं, ठञ् प्रथमान्तम्। **शेषे, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

उवर्णान्त देशवाची प्रातिपदिकों से शैषिक ठञ् प्रत्यय होता है।

निषादकर्षूः- नैषादकर्षुकः। 'केऽणः' इति ह्रस्वः। निषादकर्षू नामक देश में होने वाला। **निषादकर्ष्वां जातः** विग्रह करके **निषादकर्षू+ङि** में **ओर्देशे ठञ्** सूत्र से ठञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** सूत्र से **ठ** के स्थान पर **इक** प्राप्त होने पर उसे बाधकर **इसुसुक्तान्तात्कः** सूत्र से **क** आदेश करने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि करके **नैषादकर्षू+क** बना है। **केऽणः** सूत्र से ऊकार को ह्रस्व होकर **नैषादकर्षुक** और एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **नैषादकर्षुकः** सिद्ध हो जाता है। मूल प्रातिपदिक दीर्घान्त है, यह दिखाने के लिये **निषादकर्षूः** पद दिया गया है।

देशे किम्? पटोश्छात्राः पाटवाः। प्रकृतसूत्र में **देशे** पद का निवेश होने के कारण देशवाची उवर्णान्त शब्द से ही यह प्रत्यय होता है। अतः **पटोः छात्राः** अर्थ में **पटु**-शब्द के उवर्णान्त होते हुये भी देशवाची न होने (गुणवाची होने) के कारण प्रकृतसूत्र से ठञ् प्रत्यय नहीं हुआ, अपितु औत्सर्गिक अण् प्रत्यय, आदिवृद्धि, **ओर्गुणः** सूत्र से उकार को गुण ओकार और उसको अवादेश होकर **पाटव** बनता है। स्वादिकार्य से बहुवचन में **पाटवाः** सिद्ध हो जाता है।

ञिठं व्यावर्तयितुं ठञ्ग्रहणम्। अर्थात् **काश्यादिभ्यष्ठञ्ञिठौ** सूत्र से **ठञ्** की अनुवृत्ति सुलभ होते हुये भी प्रकृतसूत्र में पुनः **ठञ्** का ग्रहण किया गया है, वह इस लिये कि **ञिठ** की अनुवृत्ति रोकी जा सके, अन्यथा **सन्नियोगशिष्टानां सह वा प्रवृत्तिः सह वा निवृत्तिः** न्याय से ठञ् के साथ **ञिठ** की भी अनुवृत्ति आती, जिससे एक अन्य अनिष्ट रूप बनने लगता।

वृद्धाच्छं परत्वादयं बाधते। दाक्षिकर्षुकः। अर्थात् यह परसूत्र होने के कारण **वृद्धाच्छः** को बाधता है। जहाँ पर **वृद्धाच्छः** और **ओर्देशे ठञ्** इन दो सूत्रों की युगपत्प्राप्ति होती है, वहाँ पर **विप्रतिषेधे परं कार्यम्** सूत्र के नियम से **वृद्धाच्छः** बाधित हो जाता है। जैसे कि **दाक्षिकर्षू** शब्द में उवर्णान्त देशवाची होने के कारण प्रकृतसूत्र की प्राप्ति है आदि अच् आकार वृद्धि होने से वृद्धसंज्ञक होने के कारण **वृद्धाच्छः** की भी प्राप्ति है। अतः दोनों में परत्वात् ठञ् प्रत्यय ही हुआ। ठ के स्थान पर क आदेश आदि कार्य पूर्ववत् करके **दाक्षिकर्षुकः** सिद्ध हो जाता है। दाक्षिकर्षू नामक देश में होने वाला।

१३४४. वृद्धात् प्राचाम् ४।२।१२०॥

प्राग्देशवाचिनो वृद्धादेवेति नियमार्थं सूत्रम्।

आढकजम्बुकः। शाकजम्बुकः। नेह- मल्लवास्तु- माल्लवास्तवः।

वृद्धात्प्राचाम्। वृद्धात् पञ्चम्यन्तं, प्राचां षष्ठ्यन्तम्। **ओर्देशे ठञ्** के तीनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **शेषे, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

पूर्वदेश-वाची उवर्णान्त वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिकों से शैषिक ठञ् प्रत्यय होता है।

प्राग्देशवाचिनो वृद्धादेवेति नियमार्थं सूत्रम्। प्रकृतसूत्र पूर्वसूत्र का ही विषय है। प्राग्देशवाची उवर्णान्त प्रातिपदिकों तक पूर्वसूत्र को सीमित किया गया है। सामान्यतः सभी उवर्णान्त देशवाची शब्दों से पूर्वसूत्र द्वारा ठञ् प्राप्त रहा किन्तु यहाँ **यदि उवर्णान्त देशवाची शब्दों से ठञ्-प्रत्यय हो तो वृद्धसंज्ञक प्राग्देशवाची प्रातिपदिकों से ही हो, अन्यत्र न हो** इस नियम के लिये प्रकृत सूत्र की सार्थकता होती है। अतः **सिद्धे सत्यारभ्यमाणो विधिर्नियमाय भवति** के अनुसार यह नियमसूत्र बन जाता है। नियम अतिव्याप्तिवारण के लिये होता है।

आढकजम्बुकः। आढकजम्बू नामक देश में होने वाला। **आढकजम्ब्वां भवः** विग्रह करके **आढकजम्बू+ङि** में **वृद्धात्प्राचाम्** सूत्र से ठञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **ठ** के स्थान पर प्राप्त **इक** आदेश को बाधकर **इसुसुक्तान्तात्कः** सूत्र से **क** आदेश करने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, **केऽणः** सूत्र से ऊकार को ह्रस्व होकर **आढकजम्बुक** और एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आढकजम्बुकः** सिद्ध हो जाता है।

शाकजम्बुकः। शाकजम्बू नामक देश में होने वाला। **शाकजम्ब्वां भवः** विग्रह करके **शाकजम्बू+ङि** में **वृद्धात्प्राचाम्** सूत्र से ठञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **क** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, ऊकार को ह्रस्व होकर **शाकजम्बुक** और स्वादिकार्य होकर **शाकजम्बुकः** सिद्ध हो जाता है।

नेह- **मल्लवास्तु- माल्लवास्तवः**। अर्थात् प्रकृतसूत्र के यदि **उवर्णान्त देशवाची शब्दों से ठञ्-प्रत्यय हो तो वृद्धसंज्ञक प्राग्देशवाची प्रातिपदिकों से ही हो, अन्यत्र न हो** इस नियम के बन जाने से **मल्लवास्तु** शब्द से ठञ् नहीं हुआ, क्योंकि यह उवर्णान्त प्राग्देशवाची शब्द तो है किन्तु वृद्धसंज्ञक नहीं है। फलतः औत्सर्गिक अण् प्रत्यय, आदिवृद्धि, उकार को गुण ओकार, अवादेश आदि होकर **माल्लवास्तवः** सिद्ध हो जाता है। नियम का फल उदाहरणों में नहीं दिखता किन्तु प्रत्युदाहरण में दृष्टिगोचर होता है। जैसे कि **आढकजम्बुकः, शाकजम्बुकः** इन उदाहरणों में प्रकृतनियम से कोई अन्तर नहीं आया किन्तु **माल्लवास्तवः** में ठञ् नहीं हो पाया।

ऊपर नियम बना कि **प्राग्देशवाचिनो वृद्धादेव**। कहीं विपरीत नियम भी हो सकता है कि **यदि वृद्धात् ठञ् तदा प्राग्देशवाचिन एव**। किन्तु आचार्यव्यवहार और सामर्थ्य से विपरीत नियम का वारण किया जाता है।

आगे और भी देशविशेषवाची शब्दों से शैषिक प्रत्यय किये जा रहे हैं-

१३४५. धन्वयोपधाद् वुञ् ४।२।१२१॥

धन्वविशेषवाचिनो यकारोपधाच्च देशवाचिनो वृद्धाद् वुञ् स्यात्। ऐरावतं धन्व ऐरावतकः। साङ्काश्यकाम्पिल्यशब्दौ 'वुञ्छणादि-' (सू.१२९२) सूत्रेण ण्यान्तौ। साङ्काश्यकः। काम्पिल्यकः।

धन्वयोपधाद् वुञ्। यकार उपधा यस्य स योपधः, बहुव्रीहिः। धन्वा च योपधश्च धन्वयोपधं, तस्माद् धन्वयोपधात्, समाहारद्वन्द्वः। धन्वयोपधात् पञ्चम्यन्तं, वुञ् प्रथमान्तम्। **वृद्धात्प्राचाम्** से **वृद्धात्** और **ओर्देशे ठञ्** से **देशे** की अनुवृत्ति आती है। **शेषे, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

देशाभिधायी धन्व-विशेष-वाची और यकार उपधा वाले वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिकों से शैषिक वुञ् प्रत्यय होता है।

धन्वन्-शब्द **मरुप्रदेश** का वाचक है। धन्वविशेषवाची शब्दों के वृद्धसंज्ञक न होने के कारण **वृद्धात्** का अन्वय **योपधात्** से ही है। ञकार इत्संज्ञक है, **वु** बचता है और उसके स्थान पर **युवोरनाकौ** सूत्र से **अक** आदेश हो जाता है।

ऐरावतं धन्व ऐरावतकः। ऐरावत नामक धन्वविशेष (मरुप्रदेश) में होने वाला। **ऐरावते (मरुप्रदेशे) भवः** विग्रह करके **ऐरावत+ङि** में **धन्वयोपधाद् वुञ्** सूत्र से वुञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **अक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, पर्जन्यवल्लक्षणन्यायेन आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **ऐरावतक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **ऐरावतकः** सिद्ध हो जाता है।

साङ्काश्यकाम्पिल्यशब्दौ 'वुञ्छणादि-' सूत्रेण ण्यान्तौ। अर्थात् **सङ्काश** और **कम्पिल** शब्दों से चातुरर्थिक में **वुञ्छण्कठजिलसेनिर०** (सू.१२९२) सूत्र से

ण्य-प्रत्यय होकर **साङ्काश्य** और **काम्पिल्य** शब्द बने हैं। अतः ये यकारोपध शब्द हैं।

साङ्काश्यकः। सांकाश्य नामक प्रदेश में होने वाला। **साङ्काश्ये भवः** विग्रह करके **साङ्काश्य+ङि** में **धन्वयोपधाद् वुञ्** सूत्र से वुञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **अक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, पर्जन्यवल्लक्षणन्यायेन आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **साङ्काश्यक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **साङ्काश्यकः** सिद्ध हो जाता है।

काम्पिल्यकः। काम्पिल्य नामक प्रदेश में होने वाला। **काम्पिल्ये भवः** विग्रह करके **काम्पिल्य+ङि** में वुञ्, अकादेश, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप, स्वादिकार्य होकर **काम्पिल्यकः** सिद्ध हो जाता है।

१३४६. प्रस्थपुरवहान्ताच्च ४।२।१२२॥

एतदन्ताद् वृद्धाद् देशवाचिनो वुञ् स्यात्। छस्यापवादः। मालाप्रस्थकः। नान्दीपुरकः। पैलुवहकः। पुरान्तग्रहणमप्रागर्थम्। प्राग्देशे तूत्तरेण सिद्धम्।

प्रस्थपुरवहान्ताच्च। प्रस्थश्च पुरश्च वहश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः प्रस्थपुरवहाः। ते अन्ते यस्य स प्रस्थपुरवहान्तस्तस्मात् प्रस्थपुरवहान्तात्, बहुव्रीहिः। **धन्वयोपधाद् वुञ्** से **वुञ्** की, **वृद्धात्प्राचाम्** से **वृद्धात्** और **ओर्देशे ठञ्** से **देशे** की अनुवृत्ति आती है। **शेषे, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

प्रस्थान्त, पुरान्त एवं वहान्त वृद्धसंज्ञक देशवाची प्रातिपदिकों से शैषिक वुञ् प्रत्यय होता है।

छस्यापवादः। यह सूत्र **वृद्धाच्छः** का अपवाद है।

मालाप्रस्थकः। मालाप्रस्थ नामक प्रदेश में होने वाला। **मालाप्रस्थे जातः** विग्रह करके **मालाप्रस्थ+ङि** में **प्रस्थपुरवहान्ताच्च** सूत्र से वुञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **अक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, पर्जन्यवल्लक्षणन्यायेन आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **मालाप्रस्थक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **मालाप्रस्थकः** सिद्ध हो जाता है। यह प्रस्थान्त-शब्द का उदाहरण है।

नान्दीपुरकः। नान्दीपुर नामक प्रदेश में होने वाला। **नान्दीपुरे जातः** विग्रह करके **नान्दीपुर+ङि** में **प्रस्थपुरवहान्ताच्च** सूत्र से वुञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **अक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, पर्जन्यवल्लक्षणन्यायेन आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **नान्दीपुरक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **नान्दीपुरकः** सिद्ध हो जाता है। यह पुरान्त-शब्द का उदाहरण है।

पैलुवहकः। पीलुवह नामक प्रदेश में होने वाला। **पीलुवहे जातः** विग्रह करके **पीलुवह+ङि** में **प्रस्थपुरवहान्ताच्च** सूत्र से वुञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **अक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि ऐकार, भसंज्ञक अकार का लोप होकर

पैलुवहक शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पैलुवहकः** सिद्ध हो जाता है। यहाँ **वा नामधेयस्य वृद्धसंज्ञा वक्तव्या** वार्तिक से वृद्धसंज्ञा समझनी चाहिये। यह पुरान्त-शब्द का उदाहरण है।

पुरान्तग्रहणमप्रागर्थम्। प्राग्देशे तूत्तरेण सिद्धम्। यद्यपि **पुर**-शब्दान्त शब्द रोपध (रेफ उपधा वाला शब्द) है। अतः इसमें अगले सूत्र **रोपधेतोः प्राचाम्** से भी वुञ् प्रत्यय सम्भव है तथापि वक्ष्यमाण सूत्र प्राग्देशवाची शब्दों से प्रत्यय का विधान करता है। ऐसा होने से **अप्रागर्थम्**=अप्राग्देशवाची पुरान्त-शब्दों से वुञ् प्रत्यय के लिये इस सूत्र में **पुरान्त** का ग्रहण सार्थक हो जाता है। यदि पुरान्त-शब्द प्राग्देशवाची हो तो **उत्तरेण**=अगले सूत्र से ही वुञ् प्रत्यय सिद्ध है।

१३४७. रोपधेतोः प्राचाम् ४।२।१२३॥

रोपधादीकारान्ताच्च प्राग्देशवाचिनो वृद्धाद् वुञ् स्यात्।

पाटलिपुत्रकः। ईतः- काकन्दकः।

रोपधेतोः प्राचाम्। र उपधा यस्य स रोपधः, रोपधश्च ईत् च रोपधेतौ, तयोः रोपधेतोः, बहुव्रीहिगर्भ इतरेतरयोगद्वन्द्वः। रोपधेतोः पञ्चम्यर्थे षष्ठीद्विवचनान्तं, प्राचां षष्ठ्यन्तम्। **धन्वयोपधाद् वुञ्** से **वुञ्** की, **वृद्धात्प्राचाम्** से **वृद्धात्** की और **ओर्देशे ठञ्** से **देशे** की अनुवृत्ति आती है। **शेषे, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

पूर्वदेशवाची रेफ उपधा वाले और ईत्-अन्त वाले वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिकों से शैषिक वुञ् प्रत्यय होता है।

प्राचाम् पद **देशे** का विशेषण है।

पाटलिपुत्रकः। पाटलिपुत्र देश में होने वाला। **पाटलिपुत्र** शब्द की उपधा में रेफ है, अतः यह रोपध है। **पाटलिपुत्रे जातः** विग्रह करके **पाटलिपुत्र+ङि** में **रोपधेतोः प्राचाम्** सूत्र से वुञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **अक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, पर्जन्यवल्लक्षणन्यायेन आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पाटलिपुत्रक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पाटलिपुत्रकः** सिद्ध हो जाता है। यह रोपध-शब्द का उदाहरण है।

ईतः। अगला उदाहरण ईकारान्त शब्द का है-

काकन्दकः। काकन्दी नामक देश में होने वाला। **काकन्द्यां जातः** विग्रह करके **काकन्दी+ङि** में **रोपधेतोः प्राचाम्** सूत्र से वुञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **अक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, पर्जन्यवल्लक्षणन्यायेन आदिवृद्धि, भसंज्ञक ईकार का लोप होकर **काकन्दक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **काकन्दकः** सिद्ध हो जाता है।

१३४८. जनपदतदवध्योश्च ४।२।१२४॥

जनपदवाचिनस्तदवधिवाचिनश्च वृद्धाद् वुञ् स्यात्।

आदर्शकः। त्रैगर्तकः।

जनपदतदवध्योश्च। सः=जनपदश्चासौ अवधिस्तदवधिः, कर्मधारयः। जनपदश्च तदवधिश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो जनपदतदवधी, तयोर्जनपदतदवध्योः। **धन्वयोपधाद् वुञ्** से **वुञ्** की, **वृद्धात्प्राचाम्** से **वृद्धात्** की और **ओर्देशे ठञ्** से **देशे** की अनुवृत्ति आती है। **शेषे, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

जनपद और जनपद की अवधि को कहने वाले वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिकों से शैषिक वुञ् प्रत्यय होता है।

आदर्शकः। आदर्श नामक जनपद में होने वाला या रहने वाला। **आदर्शे भवो जातो वा** विग्रह करके **आदर्श+ङि** में **जनपदतदवध्योश्च** सूत्र से वुञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **अक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, पर्जन्यवल्लक्षणन्यायेन आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आदर्शक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आदर्शकः** सिद्ध हो जाता है।

त्रैगर्तकः। त्रिगर्त जनपद की अवधि में होने वाला। **त्रिगर्ते भवः** विग्रह करके **त्रिगर्त+ङि** में **जनपदतदवध्योश्च** सूत्र से वुञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **अक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **त्रैगर्तक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **त्रैगर्तकः** सिद्ध हो जाता है।

प्रकृत सूत्र में **जनपद** मात्र का कथन होने से अर्थात् **तदवधि** शब्द के बिना भी सीमासूचक **त्रैगर्तकः** आदि में वुञ् प्रत्यय सिद्ध हो सकता था, तथापि आचार्य पाणिनि जी ने **तदवधि** शब्द का ग्रहण किया है, इससे यह सूचित होता है कि यह बाधकबाधन के लिये है अर्थात् जनपदविशिष्ट सीमासूचक शब्द से अन्य कोई प्रत्यय न हो, वुञ् ही हो, इसके लिये। इसके फलस्वरूप परसूत्र होने पर भी **गर्तोत्तरपदाच्छः** (४.२.१३७) सूत्र से छ-प्रत्यय नहीं होता अपितु उसे बाधकर प्रकृतसूत्र से वुञ्-प्रत्यय ही किया जाता।

१३४९. अवृद्धादपि बहुवचनविषयात् ४।२।१२५॥

अवृद्धाद् वृद्धाच्च जनपदतदवधिवाचिनो बहुवचनविषयात् प्रादिपदिकाद् वुञ् स्यात्। अवृद्धादणो वृद्धाच्छस्यापवादः। अवृद्धाञ्जनपदात्- आङ्गकः। अवृद्धाञ्जनपदावधेः- आजमीढकः। वृद्धाञ्जनपदात्- दार्वकः। वृद्धाञ्जनपदावधेः- कालञ्जरकः। 'विषय' ग्रहणं किम्? एकशेषेण बहुत्वे मा भूत्- वर्तनी च वर्तनी च वर्तनी च वर्तन्यः, तासु भवो वार्तनः।

अवृद्धादपि बहुवचनविषयात्। न वृद्धोऽवृद्धस्तस्माद् अवृद्धात्, नञ्तत्पुरुषः। बहुवचनस्य विषयो बहुवचनविषयस्तस्माद् बहुवचनविषयात्, बहुव्रीहिः। अवृद्धात् पञ्चम्यन्तम्, अपि प्रथमान्तं, बहुवचनविषयात् पञ्चम्यन्तम्। **धन्वयोपधाद् वुञ्** से **वुञ्** की, **वृद्धात्प्राचाम्** से **वृद्धात्** की, **जनपदतदवध्योः** और **ओर्देशे ठञ्** से **देशे** की अनुवृत्ति आती है। **शेषे, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

जनपद और जनपद की अवधिवाची अवृद्ध और वृद्धसंज्ञक बहुवचन-विषयक प्रातिपदिकों से शैषिक वुञ् प्रत्यय होता है।

अवृद्धादणो वृद्धाच्छस्यापवादः। वृद्ध और अवृद्ध उभयत्र विधान के लिये प्रकृतसूत्र की सार्थकता है। अतः यह अवृद्धसंज्ञक शब्दों से प्राप्त नैसर्गिक अण् और वृद्धसंज्ञक शब्दों से **वृद्धाच्छः** सूत्र से प्राप्त छ-प्रत्यय का अपवाद है।

अवृद्धाञ्जनपदात्- अवृद्ध जनपद का उदाहरण दिया जा रहा है-

आङ्गकः। अङ्ग-नामक जनपद में होने वाला। यहाँ प्रथमस्थिति **अङ्गाः जनपदः** विग्रह में **अङ्ग**-शब्द से अण् प्रत्यय होने के बाद बहुवचन में उक्त प्रत्यय का **जनपदे लुप्** सूत्र से लुक् हो जाता है। अतः **अङ्गेषु भवः** विग्रह करके **अङ्ग+सुप्** में **जनपदतदवध्योश्च** सूत्र से वुञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **अक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आङ्गक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आङ्गकः** सिद्ध हो जाता है।

अवृद्धाञ्जनपदावधेः- अवृद्ध जनपदावधि का उदाहरण दिया जा रहा है-

आजमीढकः। अजमीढ=अजमेर नामक जनपदावधि में होने वाला। यहाँ **अजमीढेषु भवः** विग्रह करके **अजमीढ+सुप्** में **जनपदतदवध्योश्च** सूत्र से वुञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **अक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आजमीढक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आजमीढकः** सिद्ध हो जाता है।

वृद्धाञ्जनपदात्- वृद्ध जनपद का उदाहरण दिया जा रहा है-

दार्वकः। दार्वा नामक जनपद में होने वाला। **दार्वासु भवः** विग्रह करके **दार्वा+सुप्** में **जनपदतदवध्योश्च** सूत्र से वुञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **अक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक आकार का लोप होकर **दार्वक** और स्वादिकार्य होकर **दार्वकः** सिद्ध हो जाता है।

वृद्धाञ्जनपदावधेः- वृद्ध जनपदावधिक का उदाहरण दिया जा रहा है-

कालञ्जरकः। कालञ्जर नामक जनपदावधि में होने वाला। **कालञ्जरेषु भवः** विग्रह करके **कालञ्जर+सुप्** में **जनपदतदवध्योश्च** सूत्र से वुञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **अक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **कालञ्जरक** और स्वादिकार्य होकर **कालञ्जरकः** सिद्ध हो जाता है।

विषय-ग्रहणं किम्? एकशेषेण बहुत्वे मा भूत्- वर्तनी च वर्तनी च वर्तनी च वर्तन्यः, तासु भवो वार्तनः। अर्थात् प्रकृतसूत्र में **बहुवचनविषयात्** पद में **विषय** शब्द का ग्रहण किया गया है, उसका विशेष प्रयोजन है, क्योंकि **विषय** शब्द के बिना ही **बहुवचनात्** मात्र कहने से भी उक्त उदाहरणों की सिद्धि हो जाती। वह विशेष प्रयोजन यह है कि बहुत्व-संज्ञा का विषय होने पर ही हो अर्थात् जहाँ स्वाभाविक बहुवचनान्तता होगी, वहीं वुञ् होता है। इसके फलस्वरूप **वर्तनी च वर्तनी च वर्तनी च** में एकशेष करके जो बहुत्व बना है ऐसे **वर्तनी** शब्द से वुञ् नहीं होगा। अतः **वर्तनीषु भवः** विग्रह में अण् प्रत्यय होकर आदिवृद्धि, ईकारलोप आदि होकर **वार्तनः** सिद्ध होता है।

१३५०. कच्छाग्निवक्त्रवर्तोत्तरपदात् ४।२।१२६॥

देशवाचिनो वृद्धादवृद्धाच्च वुञ् स्यात्।

दारुकच्छकः। काण्डाग्नकः। सैन्धुवक्त्रकः। बाहुवर्तकः।

कच्छाग्निवक्त्रवर्तोत्तरपदात्। कच्छश्च अग्निश्च वक्त्रं च वर्तश्च कच्छाग्निवक्त्रवर्तम्, समाहारद्वन्द्वः। उत्तरं तत् पदम् इति उत्तरपदम्, कर्मधारयः। कच्छाग्निवक्त्रवर्तम् उत्तरपदं यस्य स कच्छाग्निवक्त्रवर्तोत्तरपदं, तस्मात् कच्छाग्निवक्त्रवर्तोत्तरपदात् पञ्चम्यन्तम्। **अवृद्धादपि बहुवचनविषयात्** से **अवृद्धादपि** की, धन्वयोपधाद् वुञ् से वुञ् की, **वृद्धात्प्राचाम्** से **वृद्धात्** की और **ओर्देशे ठञ्** से **देशे** की अनुवृत्ति आती है। **शेषे, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां** प्रथमाद्वा का अधिकार है।

कच्छ, अग्नि, वक्त्र वर्त उत्तरपद वाले अवृद्ध और वृद्धसंज्ञक देशवाची प्रातिपदिकों से शैषिक वुञ् प्रत्यय होता है।

वृद्धसंज्ञक शब्दों से प्राप्त छ-प्रत्यय और अवृद्ध शब्दों से प्राप्त अण्-प्रत्यय का अपवाद है।

दारुकच्छकः। दारुकच्छ नामक देश में होने वाला। **दारुकच्छे भवः** विग्रह करके **दारुकच्छ+ङि** में **कच्छाग्निवक्त्रवर्तोत्तरपदात्** सूत्र से वुञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **अक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **दारुकच्छक** और स्वादिकार्य होकर **दारुकच्छकः** सिद्ध हो जाता है। यह कच्छ-उत्तरपद शब्द का उदाहरण है।

काण्डाग्नकः। काण्डाग्नि=कंडाला नामक देश (बन्दरगाह) में होने वाला। **काण्डाग्नौ भवः** विग्रह करके **काण्डाग्नि+ङि** में **कच्छाग्निवक्त्रवर्तोत्तरपदात्** सूत्र से वुञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **अक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक इकार का लोप होकर **काण्डाग्नक** और स्वादिकार्य होकर **काण्डाग्नकः** सिद्ध हो जाता है। यह अग्नि-उत्तरपद का उदाहरण है।

सैन्धुवक्त्रकः। सिन्धुवक्त्र नामक देश में होने वाला। **सिन्धुवक्त्रे भवः** विग्रह करके **सिन्धुवक्त्र+ङि** में **कच्छाग्निवक्त्रवर्तोत्तरपदात्** सूत्र से वुञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **अक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक इकार का लोप होकर **सैन्धुवक्त्रक** और स्वादिकार्य होकर **सैन्धुवक्त्रकः** सिद्ध हो जाता है। यह वक्त्र-उत्तरपद का उदाहरण है।

बाहुवर्तकः। बहुवर्त नामक देश में होने वाला। **बहुवर्ते भवः** विग्रह करके **बहुवर्त+ङि** में **कच्छाग्निवक्त्रवर्तोत्तरपदात्** सूत्र से वुञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **अक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक इकार का लोप होकर **बाहुवर्तक** और स्वादिकार्य होकर **बाहुवर्तकः** सिद्ध हो जाता है। यह वर्त-उत्तरपद का उदाहरण है।

१३५१. धूमादिभ्यश्च ४।२।१२७॥
देशवाचिभ्यो वुञ्। धौमकः। तैर्थकः।

धूमादिभ्यश्च। धूम आदिर्येषां ते धूमादयस्तेभ्यो धूमादिभ्यः, बहुव्रीहिः। धूमादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **धन्वयोपधाद् वुञ्** से **वुञ्** की और **ओर्देशे ठञ्** से **देशे** की अनुवृत्ति आती है। **शेषे, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

देशवाची धूमादि-गणपठित प्रातिपदिकों से शैषिक वुञ् प्रत्यय होता है।

धौमकः। धूम-देश में होने वाला या रहने वाला। **धूमे भवः** विग्रह करके **धूम+ङि** में **धूमादिभ्यश्च** सूत्र से वुञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **अक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **धौमक** और स्वादिकार्य होकर **धौमकः** सिद्ध हो जाता है।

तैर्थकः। तीर्थस्थान में होने वाला या रहने वाला। **तीर्थे भवः** विग्रह करके **तीर्थ+ङि** में **धूमादिभ्यश्च** सूत्र से वुञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **अक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **तैर्थक** और स्वादिकार्य होकर **तैर्थकः** सिद्ध हो जाता है।

धूमादिगणः- धूम, षण्ड, शशादन, अर्जुनाव, माहकस्थली, आनकस्थली, महिषस्थली, मानस्थली, अट्टस्थली, मद्रकस्थली, समुद्रस्थली, दाण्डायनस्थली, राजस्थली, विदेह, राजगृह, रात्रासाह, शष्प, मित्रवर्ध्र, (मित्रवर्ध), मज्जाली, मद्रकूल, आजीकूल, द्व्यहव, (द्व्याहाव), त्र्यहव, (त्र्याहाव), संस्फाय, बर्बर, वर्ज्य, गर्त, आनर्त, माठर, पाथेय, घोष, पल्ली, आराज्ञी, धार्तराज्ञी, आवय, तीर्थ। **कूलात्सौवीरेषु। समुद्रान्नावि मनुष्ये च।** कुक्षि, अन्तरीप, द्वीप, अरुण, उज्जयनी, पट्टार, दक्षिणापथ, साकेत।

१३५२. नगरात् कुत्सनप्रावीण्ययोः ४।२।१२८॥

नगर-शब्दाद् वुञ् स्यात् कुत्सने प्रावीण्ये च गम्ये।
नागरकश्चौरः शिल्पी वा। 'कुत्सन' इति किम्? नागरा ब्राह्मणाः।

नगरात् कुत्सनप्रावीण्ययोः। कुत्सनं च प्रावीण्यं च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः कुत्सनप्रावीण्ये, तयोः कुत्सनप्रावीण्ययोः। नगरात् पञ्चम्यन्तं, कुत्सनप्रावीण्ययोः सप्तम्यन्तम्। **धन्वयोपधाद् वुञ्** से **वुञ्** की अनुवृत्ति आती है। **शेषे, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

नगर शब्द से शैषिक वुञ् प्रत्यय होता है, कुत्सा (निन्दा) और प्रावीण्य (निपुणता) अभिधेय होने पर।

नागरकश्चौरः शिल्पी वा। नगर में रहने वाला चोर या कारीगर। **नगरे भवः** विग्रह करके **नगर+ङि** से **नगरात् कुत्सनप्रावीण्ययोः** सूत्र से वुञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **नागरक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **नागरकः** सिद्ध हो जाता है।

'कुत्सन' इति किम्? नागरा ब्राह्मणाः। प्रकृत सूत्र में **कुत्सन** और **प्रावीण्य** अभिधेय का निर्देश होने से निन्दा और शिल्पी अर्थ होने पर ही यह वुञ् होता है, अन्यथा नहीं होता। अतः **नगरे भवाः ब्राह्मणाः** में उक्त दोनों अर्थों के न होने के कारण वुञ् प्रत्यय नहीं हुआ अपितु स्वाभाविक अण् प्रत्यय, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **नागर** बनता है और स्वादिकार्य होकर बहुवचन में **नागराः** सिद्ध हो जाता है। **प्राचां ग्रामनगराणाम्** (७.३.१४) सूत्र में **ग्राम** तथा **नगर** के पार्थक्य को सूचित करने के लिये भाष्यकार ने नागराः उदाहरण दिया है।

१३५३. अरण्यान्मनुष्ये ४।२।१२९॥

वुञ्। 'अरण्याण्णः' (वा.२७८२) इत्यस्यापवादः।
'पथ्यध्यायन्यायविहारमनुष्यहस्तिष्विति वाच्यम्'(वा.२८१९)।
आरण्यकः पन्था अध्यायो न्यायो विहारो मनुष्यो हस्ती वा।
'वा गोमयेषु' (वा.२८२०)। आरण्यका आरण्या वा गोमयाः।

अरण्यान्मनुष्ये। अरण्यात् पञ्चम्यन्तं, मनुष्ये सप्तम्यन्तम्। **धन्वयोपधाद् वुञ्** से **वुञ्** की अनुवृत्ति आती है। **शेषे, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

अरण्य-शब्द से शैषिक वुञ् प्रत्यय होता है, मनुष्य अभिधेय होने पर।

'अरण्याण्णः' इत्यस्यापवादः। अर्थात् **अरण्याण्णः** वार्तिक के द्वारा अरण्य-शब्द

से ण-प्रत्यय की प्राप्ति थी किन्तु मनुष्य अभिधेय होने पर उसे बाधकर प्रकृतसूत्र से वुञ्-प्रत्यय किया जाता है।

पथ्यध्यायन्यायविहारमनुष्यहस्तिष्विति वाच्यम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- पथि, अध्याय, न्याय, विहार, मनुष्य, हस्ती अर्थों के अभिधेय होने पर अरण्य-शब्द से वुञ्-प्रत्यय का विधान करना चाहिये। तात्पर्य यह है कि प्रकृतसूत्र से केवल मनुष्य अभिधेय होने पर ही विधान किया गया था, वह न्यून है।

आरण्यकः पन्था अध्यायो न्यायो विहारो मनुष्यो हस्ती वा। जंगल का मार्ग, अरण्य-सम्बन्धी अध्याय, जंगली न्याय, जंगल का विहार, जंगली मनुष्य और जंगली हाथी। **अरण्ये भवः जातो वा** आदि विग्रह करके **अरण्य+ङि** से **अरण्यान्मनुष्ये** सूत्र के द्वारा वुञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **वु** के स्थान पर **युवोरनाकौ** से **अक** आदेश, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकारलोप करके **आरण्यक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आरण्यकः** सिद्ध हो जाता है। विशेषण **आरण्यकः** है और इसके अलग-अलग विशेषण **पन्थाः, अध्यायः, न्यायः, विहारः, मनुष्य, हस्ती** हैं।

वा गोमयेषु। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- गोमय (गोबर) अभिधेय होने पर अरण्य-शब्द से विकल्प से वुञ् प्रत्यय होता है।

आरण्यका आरण्या वा गोमयाः। जंगल का गोबर। **अरण्ये भवाः** विग्रह करके **अरण्य+ङि** से **वा गोमयेषु** वार्तिक के द्वारा विकल्प से वुञ् प्रत्यय होने पर **आरण्यकाः** बन जाता है और तदभाव में औत्सर्गिक अण्-प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि, अकारलोप आदि होकर **आरण्य** शब्द बनता है और स्वादिकार्य होकर **आरण्याः** सिद्ध हो जाता है।

१३५४. विभाषा कुरुयुगन्धराभ्याम् ४।२।१३०॥

वुञ्। कौरवकः, कौरवः। यौगन्धरकः, यौगन्धरः।

विभाषा कुरुयुगन्धराभ्याम्। कुरुश्च युगन्धरश्च कुरुयुगन्धरौ, ताभ्यां कुरुयुगन्धराभ्याम्, इतरेतरयोगद्वन्द्वः। विभाषा प्रथमान्तं, कुरुयुगन्धराभ्यां पञ्चम्यन्तम्। **धन्वयोपधाद् वुञ्** से **वुञ्** की और **ओर्देशे ठञ्** से **देशे** की अनुवृत्ति आती है। **शेषे, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

देशवाची (जनपदवाची) कुरु और युगन्धर प्रातिपदिकों से शेष अर्थों में विकल्प से वुञ् प्रत्यय होता है।

कुरु-शब्द से **अवृद्धादपि बहुवचनविषयात्** (१३४९) सूत्र से नित्य से वुञ् प्राप्त होने पर उसे बाधकर **कच्छादिभ्यश्च** (१३५७) सूत्र से अण् प्रत्यय प्राप्त था। प्रकृतसूत्र से विकल्प से वुञ् कर देने से पक्ष में उक्त अण् प्रत्यय हो जाता है।

कौरवकः, कौरवः। कुरु-जनपदों में होने वाला। **कुरुषु भवः जातो वा** आदि विग्रह करके **कुरु+सुप्** से **विभाषा कुरुयुगन्धराभ्याम्** सूत्र के द्वारा विकल्प से वुञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **वु** के स्थान पर **युवोरनाकौ** से **अक** आदेश, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, उकार को **ओर्गुणः** सूत्र से गुण ओकार और उसको अवादेश होकर **कौरवक** शब्द बना है। वुञ् न होने के पक्ष में **कच्छादिभ्यश्च** सूत्र के द्वारा **अण्** प्रत्यय होने पर भी उक्त कार्य होकर **कौरव** शब्द बनता है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कौरवकः** और **कौरवः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

यौगन्धरकः, यौगन्धरः। युगन्धर-नामक जनपदों में होने वाला। **युगन्धरेषु भवः जातो वा** आदि विग्रह करके **युगन्धर+सुप्** से **विभाषा कुरुयुगन्धराभ्याम्** सूत्र के द्वारा विकल्प से वुञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **वु** के स्थान पर **युवोरनाकौ** से **अक** आदेश, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **यौगन्धरक** शब्द बना है। वुञ् न होने के पक्ष में औत्सर्गिक **अण्** प्रत्यय होने पर भी उक्त कार्य होकर **यौगन्धर** शब्द बनता है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **यौगन्धरकः** और **यौगन्धरः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

१३५५. मद्रवृज्योः कन् ४।२।१३१॥

जनपदवुञोऽपवादः। मद्रेषु जातो मद्रकः। वृजिकः।

मद्रवृज्योः कन्। मद्रश्च वृश्चिश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो मद्रवृजी, तयोर्मद्रवृज्योः, पञ्चम्यर्थे षष्ठी। कन् प्रथमान्तम्। **ओर्देशे ठञ्** से **देशे** की अनुवृत्ति आती है। **शेषे, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

देशवाची (जनपदवाची) मद्र और वृजि प्रातिपदिकों से शेष अर्थों में विकल्प से कन् प्रत्यय होता है।

कन् में नकार इत्संज्ञक है, **क** बचता है।

जनपदवुञोऽपवादः। प्रकृतसूत्रोक्त मद्र और वृजि शब्दों से **जनपदतदवध्योश्च** सूत्र से वुञ् प्राप्त था, उसका यह अपवाद है।

मद्रेषु जातो मद्रकः। मद्र-नामक जनपदों में होने वाला। **मद्रेषु जातः** विग्रह करके **मद्र+सुप्** से **मद्रवृज्योः कन्** सूत्र के द्वारा कन्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **मद्रक** शब्द बनता है। यहाँ पर निमित्त न होने के कारण आदिवृद्धि नहीं होती और भसंज्ञा न होने के कारण अकारलोप नहीं होता। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **मद्रकः** सिद्ध हो जाता है।

वृजिकः। वृजि-नामक जनपदों में होने वाला। **वृजिषु जातः** विग्रह करके **वृजि+सुप्** से **मद्रवृज्योः कन्** सूत्र के द्वारा कन्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर और स्वादिकार्य होकर **वृजिकः** सिद्ध हो जाता है।

१३५६. कोपधादण् ४।२।१३२॥

माहिषिकः।

कोपधादण्। ककार उपधा यस्य स कोपधस्तस्मात् कोपधात्, बहुव्रीहिः। कोपधात् पञ्चम्यन्तम्, अण् प्रथमान्तम्। **ओर्देशे ठञ्** से **देशे** की अनुवृत्ति आती है। **शेषे, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

देशवाची (जनपदवाची) ककार-उपधा वाले प्रातिपदिकों से शेष अर्थों में अण् प्रत्यय होता है।

यहाँ **प्रस्थोत्तरपदपलद्यादिकोपधादण्** (१३३१) सूत्र से अण् प्राप्त होने पर उसे बाधकर **अवृद्धादपि बहुवचनविषयात्** (१३४९) से वुञ् प्रत्यय प्राप्त था, उसका बाध करने के लिये प्रकृतसूत्र की सार्थकता है।

माहिषिकः। माहिषिक-नामक जनपदों में होने वाला। **माहिषिकेषु जातः** विग्रह करके **माहिषिक+सुप्** से **कोपधादण्** सूत्र के द्वारा अण्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् आदि होकर **माहिषिक** बना और स्वादिकार्य होकर **माहिषिकः** सिद्ध हो जाता है।

१३५७. कच्छादिभ्यश्च ४।२।१३३॥

देशवाचिभ्योऽण्। वुञादेरपवादः। काच्छः। सैन्धवः।

कच्छादिभ्यश्च। कच्छ आदिर्येषां ते कच्छादयस्तेभ्यः कच्छादिभ्यः, बहुव्रीहिः। कच्छादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **ओर्देशे ठञ्** से **देशे** की अनुवृत्ति आती है। **शेषे, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

देशवाची कच्छ-आदि गणपठित प्रातिपदिकों से शेष अर्थों में अण् प्रत्यय होता है।

वुञादेरपवादः। यह सूत्र **अवृद्धादपि बहुवचनविषयात्** से प्राप्त वुञ् और **ओर्देशे ठञ्** से प्राप्त ठञ् आदि का अपवाद है।

काच्छः। कच्छ-नामक जनपदों में होने वाला। **कच्छेषु जातः** आदि विग्रह करके **कच्छ+सुप्** से **कच्छादिभ्यश्च** सूत्र के द्वारा अण्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकारलोप करके **काच्छ** और स्वादिकार्य होकर **काच्छः** सिद्ध हो जाता है।

सैन्धवः। सिन्धु-नामक जनपदों में होने वाला। **सिन्धुषु जातः** आदि विग्रह करके **सिन्धु+सुप्** से **कच्छादिभ्यश्च** सूत्र के द्वारा अण्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, उकार के स्थान पर **ओर्गुणः** सूत्र से गुण ओकार और उसको अवादेश होने पर **सैन्धव** और स्वादिकार्य होकर **सैन्धवः** सिद्ध हो जाता है।

कच्छादिगणः- कच्छ, सिन्धु, वर्णु, गन्धार, मधुमत्, कम्बोज, कश्मीर, साल्व, कुरु, अनुषण्ड, द्वीप, अनूप, अजवाह, विजापक, कलूतर, रङ्कु।

१३५८. मनुष्यतत्स्थयोर्वुञ् ४।२।१३४॥

कच्छाद्यणोऽपवादः। कच्छे जातादिः काच्छको मनुष्यः। काच्छकं हसितम्। 'मनुष्य' इति किम्? काच्छो गौः।

मनुष्यतत्स्थयोर्वुञ्। तस्मिन्=मनुष्ये तिष्ठतीति तत्स्थः। मनुष्यश्च तत्स्थश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो मनुष्यतत्स्थौ, तयोर्मनुष्यतत्स्थयोः सप्तम्यन्तं, वुञ् प्रथमान्तम्। **कच्छादिभ्यश्च** से **कच्छादिभ्यः** की अनुवृत्ति आती है। **शेषे, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

मनुष्य और मनुष्यस्थ वस्तु अभिधेय होने पर कच्छ-आदि गणपठित प्रातिपदिकों से शेष अर्थों में वुञ् प्रत्यय होता है।

कच्छाद्यणोऽपवादः। यह पूर्वसूत्र **कच्छादिभ्यश्च** से प्राप्त अण् का अपवाद है। अन्यत्र कच्छादि-शब्दों से अण् ही होता है किन्तु मनुष्य और मनुष्यस्थ अभिधेय होने पर वुञ् होता है।

कच्छे जातादिः काच्छको मनुष्यः। कच्छ-जनपदों में उत्पन्न होने वाला मनुष्य। **कच्छेषु जातादिः** विग्रह करके **कच्छ+सुप्** से **मनुष्यतत्स्थयोर्वुञ्** सूत्र के द्वारा वुञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, वु के स्थान पर **अक** आदेश, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकारलोप करके **काच्छक** और स्वादिकार्य होकर **काच्छकः** सिद्ध हो जाता है।

काच्छकं हसितम्। कच्छ-जनपदों में उत्पन्न मनुष्य में रहने वाली हँसी। यहाँ **हसितम्** मनुष्यस्थ है। अतः उपर्युक्त रीति से **काच्छक** शब्द बन जाने के कारण विशेष्य पद **हसितम्** के अनुरूप **काच्छक**-शब्द भी नपुंसकलिंग में होकर **काच्छकम्** बन जाता है।

'मनुष्य' इति किम्? काच्छो गौः। प्रकृतसूत्र में **मनुष्य**-शब्द का निवेश होने के कारण मनुष्य और मनुष्यस्थ अभिधेय होने पर ही यह वुञ् होता है, अन्यथा नहीं होता। अतः **गौः** (बैल) के अभिधेय होने पर उक्त वुञ् नहीं हुआ अपितु **कच्छादिभ्यश्च** से अण् प्रत्यय होकर **काच्छः** सिद्ध हो जाता है।

१३५९. अपदातौ साल्वात् ४।२।१३५॥

साल्वशब्दस्य कच्छादित्वाद् वुञि सिद्धे नियमार्थमिदम्- अपदातावेवेति। साल्वको ब्राह्मणः। 'अपदातौ' किम्? साल्वः पदातिर्व्रजति।

अपदातौ साल्वात्। पद्भ्याम् अतति=निरन्तरं गच्छतीति पदातिः। न पदातिरपदातिस्तस्मिन् अपदातौ, नञ्तपुरुषः। अपदातौ सप्तम्यन्तं, साल्वात् पञ्चम्यन्तम्। **मनुष्यतत्स्थयोर्वुञ्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **शेषे, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

पैदल से भिन्न मनुष्य और मनुष्यस्थ वस्तु अभिधेय होने पर साल्व प्रातिपदिक से शेष अर्थों में वुञ् प्रत्यय होता है।

अपदातिः=निरन्तर पैदल न चलने वाला।

साल्वशब्दस्य कच्छादित्वाद् वुञि सिद्धे नियमार्थमिदम्- अपदातावेवेति। अर्थात् साल्व-शब्द के कच्छादिगण में होने के कारण **कच्छादिभ्यश्च** सूत्र से ही वुञ् प्रत्यय सिद्ध था तो पुनः प्रकृतसूत्र का अवतरण **सिद्धे सत्यारभ्यमाणो विधिर्नियमाय भवति** के अनुसार नियमार्थ है। वह नियम इस तरह होगा- यदि साल्व-शब्द से वुञ् हो तो अपदाति अर्थ में हो अर्थात् पदाति अर्थ में न हो। नियमसूत्र अतिव्याप्तिदोषवारण के लिये हुआ करते हैं।

साल्वको ब्राह्मणः। साल्व-जनपदों में उत्पन्न होने वाला ब्राह्मण। **साल्वेषु जातादिः** विग्रह करके **साल्व+सुप्** से **अपदातौ साल्वात्** सूत्र के द्वारा वुञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **वु** के स्थान पर **अक** आदेश, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकारलोप करके **साल्वक** और स्वादिकार्य होकर **साल्वकः** सिद्ध हो जाता है।

'अपदातौ' किम्? साल्वः पदातिर्व्रजति। प्रकृतसूत्र में **अपदातौ** पद के निवेश से पैदल-भिन्न अर्थ अभिधेय होने पर ही वुञ् होता है। यहाँ **साल्वः पदातिर्व्रजति** में **पदातिः** पद के निवेश से साल्व-देश का पैदल यात्री अर्थ अभिधेय हो गया है। अतः वुञ् नहीं होता अपितु **साल्व**-शब्द में **कच्छादिभ्यश्च** सूत्र से अण् प्रत्यय होकर **साल्वः** ही बन जाता है।

१३६०. गोयवाग्योश्च ४।२।१३६॥

साल्वाद् वुञ्। कच्छाद्यणोऽपवादः।
साल्वको गौः। साल्विका यवागूः। साल्वमन्यत्।

गोयवाग्योश्च। गौश्च यवागूश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो गोयवाग्वौ, तयोर्गोयवाग्वोः, षष्ठ्यन्तं, चाव्ययम्। **ओर्देशे ठञ्** से **देशे** की, **अपदातौ साल्वात्** से **साल्वात्** की और

मनुष्यतत्स्थयोर्वुञ् से वुञ् की अनुवृत्ति आती है। **शेषे, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

गाय (बैल) और यवागू=लपसी अभिधेय होने पर देशवाची साल्व प्रातिपदिक से शेष अर्थों में वुञ् प्रत्यय होता है।

कच्छाद्यणोऽपवादः। यह सूत्र **कच्छादिभ्यश्च** से प्राप्त अण् का अपवाद है।

साल्वको गौः, साल्विका यवागूः, साल्वमन्यत्। साल्व-देशों में होने वाला बैल, लपसी। **साल्वेषु जातो गौः, साल्वेषु भवा यवागूः** विग्रह करके **साल्व+सुप्** से **गोयवाग्वोश्च** सूत्र के द्वारा वुञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **वु** के स्थान पर **अक** आदेश, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकारलोप करके **साल्वक** बनता है। स्त्रीत्वविवक्षा होने पर टाप् प्रत्यय, **प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः** से अकार को इकारादेश आदि होकर **साल्विका** शब्द बनता है। उभयत्र स्वादिकार्य होकर **साल्वकः** और **साल्विका** ये सिद्ध हो जाते हैं। गौ और यवागू अभिधेय न होने पर वुञ् नहीं होता, अतः **कच्छादिभ्यश्च** से अण् प्रत्यय होकर **साल्वम्** सिद्ध हो जाता है।

१३६१. गर्तोत्तरपदाच्छः ४।२।१३७॥

देशे। अणोऽपवादः। वृकगर्तीयम्। उत्तरपदग्रहणं बहुच्पूर्वनिरासार्थम्।

गर्तोत्तरपदाच्छः। गर्त-शब्द उत्तरपदं यस्य तद् गर्तोत्तरपदं, तस्माद् गर्तोत्तरपदात्, बहुव्रीहिः। गर्तोत्तरपदात् पञ्चम्यन्तं, छः प्रथमान्तम्। **ओर्देशे ठञ्** से **देशे** की और **अपदातौ साल्वात्** से **साल्वात्** की अनुवृत्ति आती है। **शेषे, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

गर्त-उत्तरपद वाले देशवाची प्रातिपदिक से शेष अर्थों में छ-प्रत्यय होता है।

छकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र से **ईय्** आदेश होने पर प्रत्यय का स्वरूप **ईय** बन जाता है।

अणोऽपवादः। यह औत्सर्गिक अण् का अपवाद है। परसूत्र होने के कारण **वाहीकग्रामेभ्यश्च** को बाधता है। पूर्वपद और उत्तरपद की व्यवस्था समास में ही होती है। प्रकृतसूत्र में **उत्तरपद** शब्द के ग्रहण से ज्ञात होता है कि यह सूत्र समास को प्राप्त शब्द के विषय में ही प्रवृत्त होता है।

वृकगर्तीयम्। वृकगर्त-देशों में होने वाला। यहाँ **गर्त** शब्द उत्तरपद है। **वृकगर्तेषु जातम्** विग्रह करके **वृकगर्त+सुप्** से **गर्तोत्तरपदाच्छः** सूत्र के द्वारा छ-प्रत्यय होने पर छकार के स्थान पर ईय् आदेश, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, अकारलोप करके **वृकगर्तीय** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वृकगर्तीयम्** सिद्ध हो जाता है।

उत्तरपदग्रहणं बहुच्पूर्वनिरासार्थम्। प्रकृतसूत्र का स्वरूप यदि **गर्ताच्छः** मात्र रखा गया होता तो भी केवल **गर्त** शब्द के देशवाची न होने के कारण सामर्थ्यात् गर्तोत्तरपदक शब्दों से ही छ-प्रत्यय सिद्ध होता तथापि **उत्तरपद** का निवेश इस लिये किया गया है कि **बहुच्** प्रत्यय-पूर्वक **बहुगर्त** से छ-प्रत्यय न हो। **बहुच्** प्रत्यय है और **बहुगर्त** में समास नहीं हुआ है। समास न होने पर उत्तरपद नहीं बनता। फलतः **बहुगर्त**-शब्द से छ-प्रत्यय नहीं होता। अण् प्रत्यय होकर **बाहुगर्तः** बन जाता है।

१३६२. गहादिभ्यश्च ४।२।१३८॥

छः स्यात्। गहीयः।

'मुखपार्श्वतसोर्लोपश्च' (ग.सू. ७८)। **मुखतीयम्। पार्श्वतीयम्।**

अव्ययानां भमात्रे टिलोपस्यानित्यतां ज्ञापयितुमिदम्।

'कुग्जनस्य परस्य च' (ग.सू.८९)। **जनकीयम्। परकीयम्।**

'देवस्य च' (ग.सू. ९०)। **देवकीयम्।**

'स्वस्य च'। स्वकीयम्।

'वेणुकादिभ्यश्छण्वाच्यः' (ग.सू.९१)। **वैणुकीयम्। वैत्रकीयम्। औत्तरपदकीयम्।**

गहादिभ्यश्च। गह आदिर्येषां ते गहादयस्तेभ्यो गहादिभ्यः, बहुव्रीहिः। गहादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **गर्तोत्तरपदाच्छः** से **छः** की अनुवृत्ति आती है। **शेषे, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

गहादि-गणपठित प्रातिपदिकों से शेष अर्थों में छ-प्रत्यय होता है।

यहाँ पर **देशे** पद का सम्बन्ध नहीं होता, क्योंकि गहादिगण में कुछ शब्द अदेशवाची भी हैं।

गहीयः। गुफा में होने वाला। **गहे जातः** विग्रह करके **गह+ङि** से **गहादिभ्यश्च** सूत्र के द्वारा छ-प्रत्यय होने पर छकार के स्थान पर ईय् आदेश, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, अकारलोप करके **गहीय** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **गहीयम्** सिद्ध हो जाता है।

गहादिगणः- गह, अन्तःस्थ, सम, विषम, मध्य। **मध्यन्दिन चरणे।** उत्तम, अङ्ग, वङ्ग, मगध, पूर्वपक्ष, अपरपक्ष, अधमशाख, उत्तमशाख, एकशाख, समानशाख, समानग्राम, एकग्राम, एकवृक्ष, एकपलाश, इष्वग्र, इष्वनीक, अवस्यन्दन, कामप्रस्थ, खाडायन, काठेरणि, लावेरणि, सौमित्रि, शैशिरि, आसुत्, दैवशर्मि, श्रौति, आहिंसि, आमित्रि, व्याडि, वैजि, आध्यश्वि, आनृशंसि, शौङ्गि, आग्निशर्मि, भौजि, वाराटकी, वाल्मिकी, (वाल्मीकि), क्षैमवृद्धि, आश्वत्थि, औद्गाहमानि, ऐकविन्दवि, दन्ताग्र, हंस, तत्त्वग्र, (तन्त्वग्र), उत्तर, अन्तर, (अनन्तर)। **मुखपार्श्वतसोर्लोपः। जनपरयोः कुक्च। देवस्य च।**

गहादिगण के अन्तर्गत कुछ गणसूत्र पढ़े गये हैं, उनसे छ-प्रत्यय के अतिरिक्त कुछ कार्य भी किये जाते हैं। यहाँ उनका उल्लेख किया जा रहा है-

मुखपार्श्वतसोर्लोपश्च। यह गणसूत्र है। सूत्रार्थः- तसिल्-प्रत्ययान्त मुखतस् और पार्श्वतस् शब्दों से छ-प्रत्यय के साथ मुखतस् और पार्श्वतस् का लोप भी होता है। **अलोन्त्यस्य** सूत्र की उपस्थिति से अन्त्यवर्ण सकार मात्र का लोप होता है।

मुखतीयम्। मुख से उत्पन्न। **मुखतः जातम्** विग्रह करके अव्यय **मुखतस्** से **मुखपार्श्वतसोर्लोपश्च** वार्तिक के द्वारा छ-प्रत्यय और सकार का लोप होने पर छकार के स्थान पर ईय् आदेश, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, अकारलोप करके **मुखतीय** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **मुखतीयम्** सिद्ध हो जाता है।

पार्श्वतीयम्। बगल से उत्पन्न। **पार्श्वतः जातम्** विग्रह करके अव्यय **पार्श्वतस्** से **मुखपार्श्वतसोर्लोपश्च** वार्तिक के द्वारा छ-प्रत्यय और सकार का लोप, ईय् आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, अकारलोप करके **पार्श्वतीय** और स्वादिकार्य होकर **पार्श्वतीयम्** सिद्ध हो जाता है।

अव्ययानां भमात्रे टिलोपस्यानित्यतां ज्ञापयितुमिदम्। यद्यपि **मुखतस्** और **पार्श्वतस्** शब्दों के अव्यय होने के कारण **ईय** के परे रहते टिसंज्ञक भाग **अस्** का **अव्ययानां भमात्रे टिलोपः** वार्तिक से लोप होकर भी **मुखतीयम्, पार्श्वतीयम्** की सिद्धि हो जाती है और प्रकृत गणसूत्र की आवश्यकता नहीं पड़ती, क्योंकि तब गहादि मानकर ही कार्य हो जाता तथापि प्रकृत गणसूत्र का पाठ **अव्ययानां भमात्रे टिलोपः** वार्तिक अनित्य है, इस विशेष प्रयोजन के ज्ञापनार्थ किया गया है। अर्थात् प्रकृत गणसूत्र के व्यर्थ होने से यह ज्ञापित होता है कि **अव्ययानां भमात्रे टिलोपः** (अव्ययों में भसंज्ञा होने मात्र से टिलोप होता है) यह अनित्य है। अतः **आरात्**-शब्द से छ-प्रत्यय होने पर टिलोप नहीं होता, जिससे **आरातीयः** बन जाता है। यदि यह ज्ञापन न होता तो **आरात्** में टिसंज्ञक भाग **आत्** का लोप होकर **आरीयः** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता।

कुग्जनस्य परस्य च। यह भी गणसूत्र है। सूत्रार्थः- **जन** और **पर** शब्दों से छ-प्रत्यय के साथ प्रकृति को कुक् आगम भी होता है। कुक् में अन्त्य ककार इत्संज्ञक और उकार उच्चारणार्थक है, **क्** बचता है। इसके कित् होने के कारण **आद्यन्तौ टकितौ** के नियम से जन-शब्द और पर-शब्द का अन्त्यावयव होता है।

जनकीयम्। जनता का। **जनानाम् इदम्** विग्रह करके **जन+आम्** से **कुक् जनस्य परस्य च** वार्तिक के द्वारा छ-प्रत्यय और प्रकृति को कुक् आगम होने पर ईय् आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **जनक्+ईय=जनकीय** शब्द बन जाता है। मध्य में ककार का व्यवधान होने के कारण भसंज्ञक अकार का लोप नहीं हो पाता। इस तरह **जनकीय** शब्द बना है। स्वादिकार्य होकर **जनकीयम्** सिद्ध हो जाता है।

परकीयम्। दूसरे का। **परस्य इदम्** विग्रह करके **पर+ङस्** से **कुग् जनस्य परस्य च** वार्तिक के द्वारा छ-प्रत्यय और प्रकृति को कुक् आगम, ईय् आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **परकीय** और स्वादिकार्य होकर **परकीयम्** सिद्ध हो जाता है।

देवस्य च। यह भी गणसूत्र है। सूत्रार्थः- **देव**-शब्द से शैषिक छ-प्रत्यय के साथ प्रकृति को कुक् आगम भी होता है।

देवकीयम्। देवता का। **देवानाम् इदम्** विग्रह करके **देव+आम्** से **देवस्य च** वार्तिक के द्वारा छ-प्रत्यय और प्रकृति को कुक् आगम, ईय् आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **देवकीय** और स्वादिकार्य से **देवकीयम्** सिद्ध हो जाता है।

स्वस्य च। यह भी गणसूत्र है। सूत्रार्थः- **स्व**-शब्द से शैषिक छ-प्रत्यय के साथ प्रकृति को कुक् आगम भी होता है।

स्वकीयम्। अपना। **स्वस्य इदम्** विग्रह करके **स्व+ङस्** से **स्वस्य च** वार्तिक के द्वारा छ-प्रत्यय और प्रकृति को कुक् आगम, ईय् आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **स्वकीय** और स्वादिकार्य से **स्वकीयम्** सिद्ध हो जाता है।

वेणुकादिभ्यश्छण्वाच्यः। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- वेणुकादि गणपठित शब्दों से शैषिक छण्-प्रत्यय होता है। छण् में णकार के इत्संज्ञक होने के कारण आदिवृद्धि भी होती है। वेणुकादिगण उपलब्ध नहीं है।

वैणुकीयम्। बाँस से उत्पन्न। **वेणुकाञ्जातम्** विग्रह करके **वेणुक+ङसि** से **वेणुकादिभ्यश्छण्वाच्यः** वार्तिक के द्वारा छण्-प्रत्यय अनुबन्धलोप, ईय् आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि करके **वैणुकीय** और स्वादिकार्य से **वैणुकीयम्** सिद्ध हो जाता है।

वैत्रकीयम्। बेंत से उत्पन्न। **वेत्रकाञ्जातम्** विग्रह करके **वेत्रक+ङसि** से **वेणुकादिभ्यश्छण्वाच्यः** वार्तिक के द्वारा छण्-प्रत्यय अनुबन्धलोप, ईय् आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि करके **वेत्रकीय** और स्वादिकार्य से **वैत्रकीयम्** सिद्ध हो जाता है।

औत्तरपदकीयम्। उत्तरपद से सम्बन्धित। **उत्तरपदस्य इदम्** विग्रह करके **उत्तरपद+ङस्** से **वेणुकादिभ्यश्छण्वाच्यः** वार्तिक के द्वारा छण्-प्रत्यय अनुबन्धलोप, ईय् आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि करके **औत्तरपदकीय** और स्वादिकार्य से **औत्तरपदकीयम्** सिद्ध हो जाता है। उक्त तीनों उदाहरण वेणुकादिगण के हैं।

१३६३. प्राचां कटादेः ४।२।१३९॥

प्राग्देशवाचिनः कटादेश्छः स्यात्। अणोऽपवादः।

कटनगरीयम्। कटघोषीयम्। कटपल्वलीयम्।

प्राचां कटादेः। कट-शब्द आदिर्यस्य स कटादिस्तस्मात् कटादेः। प्राचां षष्ठ्यन्तं, कटादेः पञ्चम्यन्तम्। **ओर्देशे ठञ्** से **देशे** की और **गर्तोत्तरपदाच्छः** से **छः** की अनुवृत्ति आती है। **शेषे, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

जिस शब्द के आदि में कट-शब्द हो, ऐसे प्राग्देशवाची प्रातिपदिकों से शेष अर्थों में छ-प्रत्यय होता है।

प्राचाम् पद के कारण यहाँ पर **ओर्देशे ठञ्** सूत्र से अनुवृत्त **देशे** का सम्बन्ध रहता है। यहाँ **कटादेः** शब्द से गणपाठ नहीं समझना चाहिये अपितु जिस पद में आदि-शब्द कट हो, उनका ग्रहण करना चाहिये अर्थात् कट-पूर्वक शब्द समझना चाहिये।

अणोऽपवादः। यह अण् प्रत्यय का अपवाद है।

कटनगरीयम्। कटनगर में उत्पन्न। **कटनगरे जातम्** आदि विग्रह करके **कटनगर+ङि** से **प्राचां कटादेः** सूत्र के द्वारा छ-प्रत्यय अनुबन्धलोप, ईय् आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप करके **कटनगरीय** और स्वादिकार्य से **कटनगरीयम्** सिद्ध हो जाता है।

कटघोषीयम्। कटघोष में उत्पन्न। **कटघोषे जातम्** आदि विग्रह करके **कटघोष+ङि** से **प्राचां कटादेः** सूत्र के द्वारा छ-प्रत्यय अनुबन्धलोप, ईय् आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप करके **कटघोषीय** और स्वादिकार्य से **कटघोषीयम्** सिद्ध हो जाता है।

कटपल्वलीयम्। कटपल्वल में उत्पन्न। **कटपल्वले जातम्** आदि विग्रह करके **कटपल्वल+ङि** से **प्राचां कटादेः** सूत्र के द्वारा छ-प्रत्यय अनुबन्धलोप, ईय् आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप करके **कटपल्वलीय** और स्वादिकार्य से **कटपल्वलीयम्** सिद्ध हो जाता है।

उक्त तीनों शब्दों का आदि-शब्द **कट** है।

१३६४. राज्ञः क च ४।२।१४०॥

वृद्धत्वाच्छे सिद्धे तत्संनियोगेन कादेशमात्रं विधीयते। राजकीयम्।

राज्ञः क च। राज्ञः पञ्चम्यन्तं, क इति लुप्तप्रथमाकं पदं, चाव्ययम्। **गर्तोत्तरपदाच्छः** से **छः** की अनुवृत्ति आती है। **शेषे, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

राजन् इस प्रातिपदिक से शैषिक अर्थों में छ-प्रत्यय होता है और राजन्-शब्द को क-आदेश भी।

वृद्धत्वाच्छे सिद्धे तत्संनियोगेन कादेशमात्रं विधीयते। वास्तव में राजन् शब्द के वृद्धसंज्ञक होने के कारण **वृद्धाच्छः** सूत्र से ही छ-प्रत्यय सिद्ध है, प्रकृतसूत्र

से तो छ-प्रत्यय की सन्निधि में प्रकृति को क-आदेश मात्र किया जाता है। **अलोऽन्त्यस्य** की प्रवृत्ति से यह आदेश अन्त्य वर्ण नकार के स्थान पर होता है। **क** में अकार उच्चारणार्थक है, **क्** मात्र आदेश होता है। यदि प्रकृतसूत्र से प्रत्ययविधि और आदेशविधि दोनों मानी जाय तो **राज्ञः** पद की आवृत्ति करके एक को पञ्चम्यन्त और एक को षष्ठ्यन्त मानना होगा। प्रत्ययविधि में पञ्चम्यन्त और आदेशविधि में षष्ठ्यन्त होगा।

राजकीयम्। राजा से सम्बन्धित। **राज्ञः इदम्** आदि विग्रह करके **राजन्+ङस्** से **वृद्धाच्छः** सूत्र के द्वारा छ-प्रत्यय अनुबन्धलोप, ईय् आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **राजन्+ईय** बना है। नकार के स्थान पर **राज्ञः क च** सूत्र से ककार आदेश होने पर **राजक्+ईय=राजकीय** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **राजकीयम्** सिद्ध हो जाता है।

१३६५. वृद्धादकेकान्तखोपधात् ४।२।१४१॥

'अक' 'इक' एतदन्तात् खोपधाच्च वृद्धाद् देशवाचिनः छः स्यात्। ब्राह्मणको नाम जनपदो यत्र ब्राह्मणा आयुधजीविनः, तत्र जातो ब्राह्मणकीयः। शाल्मलिकीयः। अयोमुखीयः।

वृद्धादकेकान्तखोपधात्। अकश्च इकश्च अकेकौ, तौ अन्ते यस्य स अकेकान्तः, द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः। ख उपधा यस्य स खोपधः, बहुव्रीहिः। अकेकान्तश्च खोपधश्च तयोः समाहारद्वन्द्वः- अकेकान्तखोपधस्तस्माद् अकेकान्तखोपधात्। वृद्धात् पञ्चम्यन्तम्, अकेकान्तखोपधात् पञ्चम्यन्तम्। **ओर्देशे ठञ्** से **देशे** की और **गर्तोत्तरपदाच्छः** से **छः** की अनुवृत्ति आती है। **शेषे, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

अक, इक अन्त वाले तथा खकारोपध वृद्धसंज्ञक देशवाची प्रातिपदिकों से शैषिक अर्थों में छ-प्रत्यय होता है।

यह **कोपधादण्** से प्राप्त अण् और **वाहीकग्रामेभ्यश्च** से प्राप्त ठञ् तथा ञिठ का अपवाद है।

ब्राह्मणको नाम जनपदो यत्र ब्राह्मणा आयुधजीविनः, तत्र जातो ब्राह्मणकीयः। ब्राह्मणक-नामक जनपद है, जिसमें आयुधजीवी (आयुधों से आजीविका चलाने वाले) ब्राह्मण निवास किया करते हैं, उस देश में उत्पन्न। **ब्राह्मणके (जनपदे) जातः** अर्थ में **ब्राह्मणक+ङि** से **वृद्धादकेकान्तखोपधात्** सूत्र के द्वारा छ-प्रत्यय, ईयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **ब्राह्मणकीय** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **ब्राह्मणकीयः** सिद्ध हो जाता है। यह अकान्त-शब्द का उदाहरण है।

शाल्मलिकीयः। शाल्मलि-नामक जनपद में उत्पन्न। **शाल्मलिके (जनपदे)**

जातः अर्थ में **शाल्मलिक+ङि** से **वृद्धादकेकान्तखोपधात्** सूत्र के द्वारा छ-प्रत्यय, ईयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप और स्वादिकार्य होकर **शाल्मलिकीयः** सिद्ध हो जाता है। यह इकान्त-शब्द का उदाहरण है।

अयोमुखीयः। अयोमुख-नामक जनपद में उत्पन्न। **अयोमुखे (जनपदे) जातः** अर्थ में **अयोमुख+ङि** से **वृद्धादकेकान्तखोपधात्** सूत्र के द्वारा छ-प्रत्यय, ईयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप और स्वादिकार्य होकर **अयोमुखीयः** सिद्ध हो जाता है। यह खोपध-शब्द का उदाहरण है।

१३६६. कन्थापलदनगरग्रामह्रदोत्तरपदात् ४।२।१४२॥

कन्थादिपञ्चकोत्तरपदाद् देशवाचिनो वृद्धाच्छः स्यात्। ठञ्ञिठादेरपवादः। दाक्षिकन्थीयम्। दाक्षिपलदीयम्। दाक्षिनगरीयम्। दाक्षिग्रामीयम्। दाक्षिह्रदीयम्।

कन्थापलदनगरग्रामह्रदोत्तरपदात्। कन्था च पलदश्च नगरं च ग्रामश्च ह्रदश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः कन्थापलदनगरग्रामह्रदाः, ते उत्तरपदानि यस्य तत् कन्थापलदनगरग्रामह्रदोत्तरपदम्, तस्मात् कन्थापलदनगरग्रामह्रदोत्तरपदात्, पञ्चम्यन्तमेकपदं सूत्रम्। **ओर्देशे ठञ्** से **देशे** की, **वृद्धादकेकान्तखोपधात्** से **वृद्धात्** की और **गर्तोत्तरपदाच्छः** से **छः** की अनुवृत्ति आती है। **शेषे, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां** प्रथमाद्वा का अधिकार है।

कन्था, पलद, नगर, ग्राम और ह्रद इन पाँच शब्द उत्तरपद वाले वृद्धसंज्ञक देशवाची प्रातिपदिकों से शैषिक अर्थों में छ-प्रत्यय होता है।

ठञ्ञिठादेरपवादः। अर्थात् **वाहीकग्रामेभ्यश्च** सूत्र से प्राप्त ठञ् और ञिठ प्रत्यय का यह अपवाद है किन्तु नगरान्त-शब्द में तो **रोपधेतोः प्राचाम्** से प्राप्त वुञ् को भी यह बाधता है।

दाक्षिकन्थीयम्। दाक्षिकन्था-नामक जनपद में उत्पन्न। **दाक्षिकन्थायां जातादि** अर्थ में **दाक्षिकन्था+ङि** से **कन्थापलदनगरग्रामह्रदोत्तरपदात्** सूत्र के द्वारा छ-प्रत्यय, ईयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक आकार का लोप होकर **दाक्षिकन्थीय** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **दाक्षिकन्थीयम्** सिद्ध जो जाता है।

दाक्षिपलदीयम्। दाक्षिपलद-नामक जनपद में उत्पन्न। **दाक्षिपलदे जातादि** अर्थ में **दाक्षिपलद+ङि** से **कन्थापलदनगरग्रामह्रदोत्तरपदात्** सूत्र के द्वारा छ-प्रत्यय, ईयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप और स्वादिकार्य होकर **दाक्षिपलदीयम्** सिद्ध जो जाता है।

दाक्षिनगरीयम्। दाक्षिनगर-नामक जनपद में उत्पन्न। **दाक्षिनगरे जातादि**

अर्थ में **दाक्षिनगर+ङि** से **कन्थापलदनगरग्रामह्रदोत्तरपदात्** सूत्र के द्वारा छ-प्रत्यय, ईयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप और स्वादिकार्य होकर **दाक्षिनगरीयम्** सिद्ध जो जाता है।

दाक्षिग्रामीयम्। दाक्षिग्राम-नामक जनपद में उत्पन्न। **दाक्षिग्रामे जातादि** अर्थ में **दाक्षिग्राम+ङि** से **कन्थापलदनगरग्रामह्रदोत्तरपदात्** सूत्र के द्वारा छ-प्रत्यय, ईयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप और स्वादिकार्य होकर **दाक्षिग्रामीयम्** सिद्ध जो जाता है।

दाक्षिह्रदीयम्। दाक्षिह्रद-नामक जनपद में उत्पन्न। **दाक्षिह्रदे जातादि** अर्थ में **दाक्षिह्रद+ङि** से **कन्थापलदनगरग्रामह्रदोत्तरपदात्** सूत्र के द्वारा छ-प्रत्यय, ईयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप और स्वादिकार्य होकर **दाक्षिह्रदीयम्** सिद्ध जो जाता है।

१३६७. पर्वताच्च ४।२।१४३॥
पर्वतीयः।

पर्वताच्च। पर्वतात् पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **गर्तोत्तरपदाच्छः** से **छः** की अनुवृत्ति आती है। **शेषे, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

पर्वत-शब्द से भी शैषिक अर्थों में छ-प्रत्यय होता है।

पर्वत-शब्द स्वाभाविक रूप से देशवाची ही है। अतः **देशे** पद की अनुवृत्ति आवश्यक नहीं है। जहाँ जो शब्द देश और अदेश दोनों का वाचक हों, वहाँ पर **देशे** पद की अनुवृत्ति की गयी है। अथवा यह कह सकते हैं कि **देशे** पद की अनुवृत्ति होते हुये भी उसका सम्बन्ध अपेक्षित नहीं है।

पर्वतीयः। पर्वत में होने वाला, पर्वत का निवासी। **पर्वते जातः** विग्रह करके **पर्वत+ङि** से **पर्वताच्च** सूत्र के द्वारा छ-प्रत्यय, ईयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप और स्वादिकार्य होकर **पर्वतीयः** सिद्ध जो जाता है।

१३६८. विभाषाऽमनुष्ये ४।२।१४४॥
मनुष्यभिन्नेऽर्थे पर्वताच्छो वा स्यात्। पक्षेऽण्।
पर्वतीयानि, पार्वतानि वा फलानि। अमनुष्ये किम्? पर्वतीयो मनुष्यः।

विभाषाऽमनुष्ये। न मनुष्योऽमनुष्यस्तस्मिन् अमनुष्ये। विभाषा प्रथमान्तम्, अमनुष्ये सप्तम्यन्तम्। **पर्वताच्च।** पर्वतात् पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **गर्तोत्तरपदाच्छः** से **छः** की अनुवृत्ति आती है। **शेषे, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

मनुष्य-भिन्न अभिधेय होने पर पर्वत-शब्द से शैषिक अर्थों में विकल्प से छ-प्रत्यय होता है।

पक्षेऽण्। छ-प्रत्यय न होने के पक्ष में औत्सर्गिक अण् प्रत्यय होता है।

पर्वतीयानि, पार्वतानि वा फलानि। पर्वत में होने वाले फल आदि। **पर्वते जातानि** विग्रह करके **पर्वत+ङि** से **विभाषाऽमनुष्ये** सूत्र के द्वारा विकल्प से छ-प्रत्यय, ईयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पर्वतीय** बना है। छ-प्रत्यय न होने के पक्ष में औत्सर्गिक अण्-प्रत्यय, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **पार्वत** शब्द बनता है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पर्वतीयानि** और **पार्वतानि** ये दो रूप सिद्ध जो जाते हैं। उदाहरण बहुवचन का है किन्तु एकवचन में **पर्वतीयम्, पार्वतम्** और द्विवचन में **पर्वतीये, पार्वते** भी बनते हैं। इसी तरह पुंल्लिङ्ग और स्त्रीलिंङ्ग में **पर्वतीयः-पार्वतः, पर्वतीया-पार्वती** आदि रूप बनते हैं।

अमनुष्ये किम्? पर्वतीयो मनुष्यः। सूत्र में **अमनुष्ये** पद के निवेश से मनुष्य अर्थ में उक्त-विकल्प नहीं होता अपितु पूर्वसूत्र से नित्य से ही छ-प्रत्यय होकर **पर्वतीयः** बन जाता है। पर्वत का मनुष्य।

१३६९. कृकणपर्णाद्भारद्वाजे ४।२।१४५॥

भारद्वाजदेशवाचिभ्यामाभ्यां छः।

कृकणीयम्। पर्णीयम्। भारद्वाजे किम्? कार्कणम्। पार्णम्।

कृकणपर्णाद्भारद्वाजे। कृकणश्च पर्णश्च तयोः समाहारद्वन्द्वः कृकणपर्णं, तस्मात् कृकणपर्णात् पञ्चम्यन्तं, भारद्वाजे सप्तम्यन्तम्। **गर्तोत्तरपदाच्छः** से **छः** की अनुवृत्ति आती है। शेषे, **ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

भारद्वाज-देशवाची कृकण तथा पर्ण प्रातिपदिकों से शैषिक अर्थों में छ-प्रत्यय होता है।

कृकणीयम्। भारद्वाजदेशीय कृकण-नामक देश में उत्पन्न। **कृकणे जातादि** अर्थ में **कृकण+ङि** से **कृकणपर्णाद्भारद्वाजे** सूत्र के द्वारा छ-प्रत्यय, ईयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप और स्वादिकार्य होकर **कृकणीयम्** सिद्ध जो जाता है।

पर्णीयम्। भारद्वाजदेशीय पर्ण-नामक देश में उत्पन्न। **पर्णे जातादि** अर्थ में **पर्ण+ङि** से **कृकणपर्णाद्भारद्वाजे** सूत्र के द्वारा छ-प्रत्यय, ईयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप और स्वादिकार्य होकर **पर्णीयम्** सिद्ध जो जाता है।

भारद्वाजे किम्? कार्कणम्। पार्णम्। प्रकृत सूत्र में **भारद्वाजे** पद का निवेश होने से भारद्वाजीय देशाभिधान होने पर ही छ-प्रत्यय होता है, अन्यत्र औत्सर्गिक अण्

प्रत्यय होता है। जैसे कि **कृकण+अ=कार्कणम्, पर्ण+अ=पार्णम्।** यहाँ भारद्वाज शब्द देश-विशेषवाची है, न कि गोत्रवाची।

चतुर्थाध्याय-द्वितीयपाद के सूत्र पूरे हो गये हैं। अब तृतीयपाद के सूत्रों का विवेचन कर रहे हैं।

१३७०. युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च ४।३।१॥

चाच्छः। पक्षेऽण्। युवयोः युष्माकं वा अयं युष्मदीयः। अस्मदीयः।

युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च। युष्मत् च अस्मत् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो युष्मदस्मदौ, तयोः। युष्मदस्मदोः षष्ठ्यन्तं, अन्यतरस्यां सप्तम्यन्तं, खञ् प्रथमान्तं, चाव्ययपदम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है। सूत्र में च पढ़ा गया है, उससे **गर्तोत्तरपदाच्छः** से **छ** लाकर **छ** भी होता है ऐसा अर्थ कर लिया जाता है।

युष्मद् और अस्मद् शब्द से विकल्प से खञ् प्रत्यय होता है।

चाच्छः। सूत्र में पठित च-शब्द से छ-प्रत्यय का भी समुच्चय माना जाता है। इस तरह छ और खञ् का विकल्प सिद्ध हो जाता है। प्रमुख विधीयमान खञ् ही है।

पक्षेऽण्। उक्त प्रत्ययों के न होने के पक्ष में **शेषे** से अण् प्रत्यय हो जाता है।

खञ्-प्रत्यय और अण्-प्रत्यय होने पर आगे के सूत्रों से विशेष-प्रक्रिया की जायेगी। यहाँ **सूचीकटाहन्याय** (सुई और कढ़ाई बनवाने के लिये लुहार के यहाँ दो व्यक्तियों के पहुँचने पर अल्पकाल से साध्य होने के कारण पहले लुहार सुई ही बनाकर देता है और बाद में कढ़ाई) के अनुसार अल्पकार्यसाध्य छ-प्रत्यय का उदाहरण मूलकार ने पहले दिया है- **युष्मदीयः।**

युवयोः युष्माकं वा अयं युष्मदीयः। तुम दोनों और तुम सबका यह। **युवयोः अयम्** अथवा **युष्माकम् अयम्** विग्रह करके **युष्मद्+ओस्** एवं **युष्मद्+आम्** से **युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च** सूत्र से छ-प्रत्यय होने पर **ईय्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **युष्मदीय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **युष्मदीयः** सिद्ध हो जाता है।

अस्मदीयः। हम दोनों और हम सबका यह। **आवयोः अयम्** अथवा **अस्माकम् अयम्** विग्रह करके **अस्मद्+ओस्** एवं **अस्मद्+आम्** से **युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च** सूत्र से छ-प्रत्यय होने पर **ईय्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **अस्मदीय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **अस्मदीयः** सिद्ध हो जाता है।

१३७१. तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ ४।३।२॥

युष्मदस्मदोरेतावादेशौ स्तः, खञ्यणि च।

यौष्माकीणः। आस्माकीनः। यौष्माकः। आस्माकः।

तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ। युष्माकश्च अस्माकश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो युष्माकास्माकौ। तस्मिन् सप्तम्यन्तम्, अणि सप्तम्यन्तं, चाव्ययपदं, युष्माकास्माकौ प्रथमान्तम् अनेकपदमिदं सूत्रम्। **तस्मिन्**-पद से पूर्वसूत्र **युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च** का **खञ्** लिया गया है। **युष्मदस्मदोः** की अनुवृत्ति भी है।

खञ् और अण् के परे होने पर युष्मद् और अस्मद् शब्द के स्थान पर युष्माक और अस्माक आदेश होते हैं।

भाष्यकार ने अर्थ की दृष्टि को इस सूत्र को तीन भागों में बाँटा है-

१. **युष्मदस्मदोः।** पूर्वसूत्र से **छः** की अनुवृत्ति करके युष्मद् और अस्मद् शब्दों से छ-प्रत्यय की सिद्धि होती है।

२. **खञ् च।** इससे खञ्-प्रत्यय की सिद्धि होती है।

३. **अन्यतरस्याम्।** इससे उक्त दोनों प्रत्ययों की विकल्पता सिद्ध होती है। ऐसा करने से यथासङ्ख्य नहीं होगा, अन्यथा प्रकृति **युष्मद्** और **अस्मद्** शब्द दो हैं तथा प्रत्यय भी **खञ्** और **छ** ये दो होने के कारण यथासङ्ख्य की समस्या आ जाती, फलतः खञ् के परे रहते युष्मद्-शब्द में और अण् के परे रहते अस्मद् शब्द में ही सूत्र की प्रवृत्ति होती। अपेक्षित तो यह है कि दोनों शब्दों के स्थान पर दोनों प्रत्ययों के परे रहते सूत्र की प्रवृत्ति हो।

यह सूत्र युष्मद् और अस्मद् शब्द के द्विवचन और बहुवचन में ही लगता है, क्योंकि एकवचन में अगला सूत्र **तवक, ममक** आदेश करता है।

यौष्माकीणः, यौष्माकः। तुम दोनों का या तुम सब का यह। **युवयोर्युष्माकं वा अयम्** विग्रह करके युष्मद्+**ओस्** या **युष्मद्+आम्** में **युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च** सूत्र से विकल्प से **खञ्** प्रत्यय होने के पक्ष में अनुबन्धलोप, खकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **ईन्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **युष्मद्+ईन** बन गया है। **ईन (खञ्)** के परे रहते **तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ** से युष्मद् के स्थान पर **युष्माक** आदेश होने पर **युष्माक+ईन** बना है। खञ् में विद्यमान ञित्त्व स्थानिवद्भावेन **ईन** में भी आ जाता है और उसे **ञित्** मानकर **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करने पर **यु** के उकार के स्थान पर औकार होकर **यौष्माक+ईन** बना है। भसंज्ञक ककारोत्तरवर्ती अकार का **यस्येति च** से लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **यौष्माकीन** बन जाता है। षकार से परे नकार को **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से णत्व होकर **यौष्माकीण** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **यौष्माकीणः** सिद्ध हो जाता है। यह दूसरा रूप है। **खञ्** प्रत्यय न होने के पक्ष में **शेषे** से अण् प्रत्यय

होगा और अण् के परे होने पर भी **तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ** से **युष्माक** आदेश होगा ही। इस तरह से **युष्माक+अ** इस स्थिति में आदिवृद्धि होने पर **यौष्माक+अ**, भसंज्ञक अकार का लोप होने पर **यौष्माक्+अ**, वर्णसम्मेलन करके **यौष्माक** और रुत्व-विसर्ग करके **यौष्माकः** सिद्ध हो जाता है। यह तीसरा रूप है। पहला रूप पूर्वसूत्र में दिखाया जा चुका है- **युष्मदीयः**। इस प्रकार तीन रूप बनते हैं।

आस्माकीनः, आस्माकः। हम दोनों का या हम सब का यह। **आवयोः अस्माकं वा अयम्** विग्रह करके **अस्मद्+ओस्** या **अस्मद्+आम्** में **युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च** सूत्र से विकल्प से **खञ्** प्रत्यय, खकार के स्थान पर **ईन्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अस्मद्+ईन** बन गया है। **ईन (खञ्)** के परे रहते **तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ** से अस्मद् के स्थान पर **अस्माक** आदेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक ककारोत्तरवर्ती अकार का लोप करके **आस्माकीन** बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आस्माकीनः** सिद्ध हो जाता है। यह दूसरा रूप है। **खञ्** प्रत्यय के न होने के पक्ष में **शेषे** से अण् प्रत्यय होगा और अण् के परे होने पर भी **तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ** से **अस्माक** आदेश होगा ही। आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **आस्माक** और स्वादिकार्य होकर **आस्माकः** सिद्ध हो जाता है। यह तीसरा रूप है। पहला रूप पूर्वसूत्र में दिखाया जा चुका है- **अस्मदीयः**। इस प्रकार तीन रूप बनते हैं।

१३७२. तवकममकावेकवचने ४।३।३॥

एकार्थवाचिनो युष्मदस्मदोस्तवकममकौ स्तः खञ्यणि च।

तावकीनः, तावकः। मामकीनः, मामकः। छे तु-

तवकममकावेकवचने। तवकश्च ममकश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वस्तवकममकौ। तवकममकौ प्रथमान्तम्, एकवचने सप्तम्यन्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। यह सूत्र भी पूर्वसूत्र की तरह ही काम करता है।

केवल एकवचन का विषय हो तो खञ् और अण् के परे होने पर युष्मद् और अस्मद् शब्द के स्थान पर तवक और ममक आदेश होते हैं।

यहाँ पर **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** के नियम से युष्मद् के स्थान पर तवक और अस्मद् के स्थान पर ममक आदेश होंगे।

तावकीनः, तावकः। तुम्हारा। **तव अयम्** विग्रह में **युष्मद्+ङस्** यह एकवचन का विषय है। **युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च** से खञ् होने के पक्ष में सुब्लुक् आदि होकर **युष्मद्+ईन** बना है। **तवकममकावेकवचने** से **युष्मद्** के स्थान पर **तवक** आदेश होकर **तवक+ईन** बना। आदिवृद्धि एवं भसंज्ञक अकार का लोप करके **तावकीन** और स्वादिकार्य होकर **तावकीनः** सिद्ध हो जाता है। खञ् न होने के पक्ष में **शेषे** से अण् प्रत्यय होने

पर भी **तवकममकावेकवचने** से **तवक** आदेश होता है। आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **तावक** और स्वादिकार्य से **तावकः** सिद्ध हो जाता है।

मामकीनः, मामकः। मेरा। **मम अयम्** विग्रह में **अस्मद्+ङस्** यह एकवचन का विषय है। **युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च** से खञ् होने के पक्ष में सुब्लुक् आदि होकर **अस्मद्+ईन** बना है। **तवकममकावेकवचने** से **अस्मद्** के स्थान पर **ममक** आदेश होकर **ममक+ईन** बना। आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करके **मामकीन** और स्वादिकार्य होकर **मामकीनः** सिद्ध हो जाता है। खञ् न होने के पक्ष में **शेषे** से अण् प्रत्यय होने पर भी **तवकममकावेकवचने** से **ममक** आदेश होता है। आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **मामक** और स्वादिकार्य से **मामकः** सिद्ध हो जाता है।

छे तु। एकार्थवाची युष्मद् और अस्मद् शब्दों से छ-प्रत्यय होने पर तो अगला सूत्र लगता है।

१३७३. प्रत्ययोत्तरपदयोश्च ७।२।९८॥

मपर्यन्तयोरेकार्थयोस्त्वमौ स्तः प्रत्यये उत्तरपदे च।
त्वदीयः। मदीयः। उत्तरपदे तु त्वत्पुत्रः, मत्पुत्रः।

प्रत्ययोत्तरपदयोश्च। प्रत्ययश्च उत्तरपदं च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः प्रत्ययोत्तरपदे, तयोः। प्रत्ययोत्तरपदयोः सप्तम्यन्तं, चाव्ययपदं द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **त्वमावेकवचने** से **त्वमौ** और **एकवचने** की, **युष्मदस्मदोरनादेशे** से **युष्मदस्मदोः** की और **मपर्यन्तस्य** से **मपर्यन्तस्य** की अनुवृत्ति आती है।

एकवचन का विषय हो और प्रत्यय या उत्तरपद परे हो तो युष्मद् और अस्मद् शब्द के मकार-पर्यन्त भाग अर्थात् युष्म् और अस्म् के स्थान पर त्व और म आदेश होते हैं।

यह तद्धिताधिकार में पठित नहीं है किन्तु तद्धित के लिये प्रासंगिक सूत्र है। यहाँ पर भी **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** के नियम से **युष्मद्** के स्थान पर **त्व** और **अस्मद्** के स्थान पर **म** आदेश होंगे।

त्वदीयः। तुम्हारा। **तव अयम्** अर्थ में **युष्मद्+ङस्** में **युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च** से **छ** होने के पक्ष में छकार के स्थान पर ईय् आदेश करके **युष्मद्+ईय** बना है। प्रत्यय के परे रहते **प्रत्ययोत्तरपदयोश्च** से **युष्मद्** के मपर्यन्त भाग **युष्म्** के स्थान पर **त्व** आदेश होकर **त्व+अद्+ईय** बना है। **त्व+अद्** में **अतो गुणे** से पररूप एकादेश होकर **त्वद्** बना। **त्वद्+ईय=त्वदीय** बनने के बाद स्वादिकार्य होकर **त्वदीयः** सिद्ध हो जाता है।

इस प्रकार से युष्मद् शब्द से छ, खञ् और अण् प्रत्यय एवं उसके स्थान पर युष्माक, तवक और त्व आदेश करने से छः रूप **युष्मदीयः, यौष्माकीणः, यौष्माकः, तावकीनः, तावकः, त्वदीयः** सिद्ध हो जाते हैं। इनके स्त्रीलिङ्ग में टाप्, ङीप् आदि

करके **युष्मदीया, यौष्माकीणा, यौष्माकी, तावकीना, तावकी, त्वदीया** ये रूप बनते हैं और नपुंसकलिङ्ग में **युष्मदीयम्, यौष्माकीणम्, यौष्माकम्, तावकीनम्, तावकम्, त्वदीयम्** बन जाते हैं। पुँल्लिङ्ग में राम की तरह, स्त्रीलिङ्ग में **युष्मदीया, यौष्माकीणा, तावकीना** और **त्वदीया** के रूप रमा शब्द की तरह तथा **यौष्माकी, तावकी** के रूप नदी की तरह चलेंगे। नपुंसक में ज्ञान शब्द की तरह ही होते हैं।

मदीयः। मेरा। **मम अयम्** अर्थ में **अस्मद्+ङस्** में **युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च** से **छ** होने के पक्ष में छकार के स्थान पर ईय् आदेश करके **अस्मद्+ईय** बना है। प्रत्यय के परे रहते **प्रत्ययोत्तरपदयोश्च** से **अस्मद्** के मपर्यन्त भाग **अस्म्** के स्थान पर **म** आदेश होकर **म+अद्+ईय** बना है। **म+अद्** में **अतो गुणे** से पररूप एकादेश होकर **मद्** बना। **मद्+ईय=मदीय** बनने के बाद स्वादिकार्य होकर **मदीयः** सिद्ध हो जाता है।

इस प्रकार से **अस्मद्** शब्द से **छ, खञ्** और **अण्** प्रत्यय एवं उसके स्थान पर अस्माक, ममक और म आदेश करने से छः रूप **अस्मदीयः, आस्माकीनः, आस्माकः, मामकीनः, मामकः, मदीयः** सिद्ध हुए। इनके स्त्रीलिङ्ग में टाप् आदि करके **अस्मदीया, आस्माकीना, आस्माकी, मामकीना, मामकी, मदीया** ये रूप बनते हैं और नपुंसकलिङ्ग में **अस्मदीयम्, आस्माकीनम्, आस्माकम्, मामकीनम्, मामकम्, मदीयम्** बन जाते हैं। पुँल्लिङ्ग में राम की तरह, स्त्रीलिङ्ग में **आस्माकीना, अस्मदीया, मामकीना, मदीया** के रूप रमा शब्द की तरह तथा **आस्माकी, मामकी** के रूप नदी की तरह चलेंगे। नपुंसकलिङ्ग में ज्ञान शब्द की तरह ही होते हैं।

उत्तरपदे तु त्वत्पुत्रः, मत्पुत्रः। अर्थात् उत्तरपद के परे रहते तो **त्वत्पुत्रः, मत्पुत्रः** बनते हैं। पूर्वपद और उत्तरपद की व्यवस्था समास में ही होती है। प्रक्रिया- **तव पुत्रः** लौकिक विग्रह और **युष्मद्+ङस् पुत्र+सु** अलौकिक विग्रह में **षष्ठी** सूत्र से तत्पुरुष समास होने पर समासप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **युष्मद्+पुत्र** बना है। यहाँ पर उत्तरपद **पुत्र**-शब्द परे है। अतः **प्रत्ययोत्तरपदयोश्च** सूत्र के द्वारा **युष्म्** के स्थान पर **त्व** आदेश होने पर **त्व+अद्+पुत्र** बना। **त्व+अद्** में **अतो गुणे** सूत्र से पररूप होकर **त्वद्+पुत्र** बना। दकार को **खरि च** सूत्र से चर्त्व तकार होकर **त्वत्पुत्र** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **त्वत्पुत्रः** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **मम पुत्रः** लौकिक विग्रह और **अस्मद्+ङस् पुत्र+सु** अलौकिक विग्रह में **षष्ठी** सूत्र से तत्पुरुष समास, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **प्रत्ययोत्तरपदयोश्च** सूत्र के द्वारा **अस्म्** के स्थान पर **म** आदेश होने पर **म+अद्+पुत्र** बना। पररूप और दकार को चर्त्व तकार होकर **मत्पुत्र** होने पर स्वादिकार्य होकर **मत्पुत्रः** सिद्ध हो जाता है।

१३७४. अर्धाद्यत् ४।३।४॥

अर्ध्यः।

अर्धाद्यत्। अर्धात् पञ्चम्यन्तं, यत् प्रथमान्तम्। **शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

अर्ध-रूप प्रातिपदिक से शैषिक अर्थ में यत् प्रत्यय होता है।

तकार इत्संज्ञक है, **य** बचता है। तित्करण स्वरार्थ है। यह अण् का अपवाद है।

अर्ध्यः। आधे भाग में होने वाला। **अर्धे भवः** विग्रह करके **अर्ध+ङि** से **अर्धाद्यत्** सूत्र के द्वारा यत् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **अर्ध+य** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके **अर्ध्य** और स्वादिकार्य होकर **अर्ध्यः** सिद्ध हो जाता है।

१३७५. परावराधमोत्तमपूर्वाच्च ४।३।५॥

परार्ध्यम्। अवरार्ध्यम्। अधमार्ध्यम्। उत्तमार्ध्यम्।

परावराधमोत्तमपूर्वाच्च। परं च अवरं च अधमं च उत्तमं च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः परावराधमोत्तमानि, तानि पूर्वाणि यस्य स परावराधमोत्तमपूर्वम्, तस्मात् परावराधमोत्तमपूर्वात् पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **अर्धाद्यत्** के **अर्धात्** और **यत्** दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

पर, अवर, अधम, उत्तम इन शब्दों के पूर्व में रहते अर्ध-शब्द रूप प्रातिपदिक से भी शैषिक अर्थ में यत् प्रत्यय होता है।

परावराधमोत्तमपूर्वात् पद अनुवृत्त **अर्धात्** का विशेषण है। पहले **पर, अवर, अधम, उत्तम** शब्दों के साथ अर्ध शब्द का समास करके **परार्ध, अवरार्ध, अधमार्ध** और **उत्तमार्ध** शब्दों से यत्-प्रत्यय किया जाता है।

परार्ध्यः। आखिरी आधे भाग का। **परार्धे भवः** विग्रह करके **परार्ध+ङि** से **परावराधमोत्तमपूर्वाच्च** सूत्र के द्वारा यत् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **परार्ध+य** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके **परार्ध्य** और स्वादिकार्य होकर **परार्ध्यः** सिद्ध हो जाता है।

अवरार्ध्यम्। सबसे कम आधे भाग का। **अवरार्धे भवः** विग्रह करके **अवरार्ध+ङि** से **परावराधमोत्तमपूर्वाच्च** सूत्र के द्वारा यत् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, अकारलोप करके **अवरार्ध्य** और स्वादिकार्य होकर **अवरार्ध्यः** सिद्ध हो जाता है।

अधमार्ध्यम्। निम्न आधे भाग का। **अधमार्धे भवः** विग्रह करके **अधमार्ध+ङि** से **परावराधमोत्तमपूर्वाच्च** सूत्र द्वारा यत् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, अकारलोप करके **अधमार्ध्य** और स्वादिकार्य होकर **अधमार्ध्यः** सिद्ध हो जाता है।

उत्तमार्ध्यम्। उत्तम आधे भाग का। **उत्तमार्धे भवः** विग्रह करके **उत्तमार्ध+ङि** से **परावराधमोत्तमपूर्वाच्च** सूत्र के द्वारा यत् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, अकारलोप करके **उत्तमार्ध्य** और स्वादिकार्य होकर **उत्तमार्ध्यः** सिद्ध हो जाता है।

१३७६. दिक्पूर्वपदाट्ठञ्च ४।३।६॥

चाद्यत्। पौर्वार्धिकम्, पूर्वार्ध्यम्।

दिक्पूर्वपदाट्ठञ्च। दिक्=दिशावाचकः शब्दः पूर्वपदं यस्य तत् दिक्पूर्वपदं, तस्माद् दिग्पूर्वपदात्, बहुव्रीहिः। दिक्पूर्वपदात् पञ्चम्यन्तं, ठञ् प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **अर्धाद्यत्** के **अर्धात्** और **यत्** दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

दिशावाची शब्द पूर्वपद होने पर भी अर्ध-शब्द रूप प्रातिपदिक से शैषिक अर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है और च-शब्द से यत् प्रत्यय भी।

चाद्यत्। सूत्रस्थ च-शब्द से यत्-प्रत्यय का भी समुच्चय है।

पौर्वार्धिकम्, पूर्वार्ध्यम्। पूर्वी आधे भाग का। **पूर्वस्मिन् अर्धे जातम्** विग्रह में **तद्धितार्थोत्तपदसमाहारे च** सूत्र से समासादि होकर **पूर्वार्ध** शब्द बन जाने के बाद **पूर्वार्ध+ङि** में **दिक्पूर्वपदाट्ठञ्च** सूत्र से ठञ्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, **ठ** के स्थान पर **इक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पौर्वार्धिक** शब्द बनता है। यत्-प्रत्यय होने के पक्ष में केवल अकारलोप होकर **पूर्वार्ध्य** शब्द बनता है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पौवार्धिकम्, पूर्वार्ध्यम्** ये दो रूप बन जाते हैं।

प्रकृतसूत्र में **पद**-शब्द का ग्रहण किये जाने से स्वरूपविधि नहीं होती, अन्यथा **दिक्पूर्वात्** कहने पर **दिगर्थे जातः** अर्थ में ही सूत्र की प्रवृत्ति होती। **पद** शब्द के ग्रहण से दिशावाची शब्द ही लिये जाते हैं। हमेशा यह ध्यान देना होगा कि सूत्र में स्वरूपग्रहण है या अर्थग्रहण।

१३७७. ग्रामजनपदैकदेशादञ्ठञौ ४।३।७॥

ग्रामैकदेशवाचिनो जनपदैकदेशवाचिनश्च दिक्पूर्वपदादर्धान्तादञ्ठञौ स्तः। इमे अस्माकं ग्रामस्य जनपदस्य वा पौर्वार्धाः, पौर्वार्धिकाः। ग्रामस्य पूर्वस्मिन्नर्धे भवा इति तद्धितार्थे समासः। ठञ्ग्रहणं स्पष्टार्थम्। अञ्चेत्युक्ते यतोऽप्यनुकर्षः सम्भाव्येत।

ग्रामजनपदैकदेशादञ्ठञौ। ग्रामश्च जनपदश्च ग्रामजनपदौ, तयोरेकदेशो

ग्रामजनपदैकदेशस्तस्माद् ग्रामजनपदैकदेशात्, द्वन्द्वगर्भषष्ठीतत्पुरुषः। अञ् च ठञ् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः- अञ्ठञौ। ग्रामजनपदैकदेशात् पञ्चम्यन्तम्, अञ्ठञौ प्रथमान्तम्। **दिक्पूर्वपदाट्ठञ्च** से **दिक्पूर्वपदात्** की और **अर्धाद्यत्** से **अर्धात्** की अनुवृत्ति आती है। **शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

ग्राम के एकदेश=अवयववाची और जनपद के अवयववाची दिशा-पूर्वपद वाले अर्ध-शब्द रूप प्रातिपदिक से शैषिक अर्थ में अञ् और ठञ् प्रत्यय होते हैं।

यहाँ **एकदेश**-शब्द अवयव का वाचक है। ये दोनों प्रत्यय यत्-प्रत्यय के बाधक हैं।

इमे अस्माकं ग्रामस्य जनपदस्य वा पौर्वार्धाः, पौर्वार्धिकाः। ग्रामस्य पूर्वस्मिन्नर्धे भवा इति तद्धितार्थे समासः। गाँव या जनपद के पूर्वी आधे भाग में होने वाला। **इमे अस्माकं ग्रामस्य जनपदस्य वा** विग्रह में **पूर्वार्ध+ङि** में **ग्रामजनपदैकदेशादञ्ठञौ** सूत्र से **अञ्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और अकारलोप होकर **पौर्वार्ध** शब्द बना है। ठञ्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, **ठ** के स्थान पर **इक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पौर्वार्धिक** शब्द बनता है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पौवार्धाः** और **पौवार्धिकाः, पूर्वाध्यम्** ये दो रूप बन जाते हैं। यहाँ पर **(ग्रामस्य नगरस्य वा) पूर्वस्मिन् अर्धे भवाः** विग्रह में **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** सूत्र से समासादि होकर **पूर्वार्ध** शब्द बन जाने के बाद प्रकृत सूत्र की प्रवृत्ति होती है।

ठञ्ग्रहणं स्पष्टार्थम्। अञ्चेत्युक्ते यतोऽप्यनुकर्षः सम्भाव्येत। यद्यपि प्रकृतसूत्र का स्वरूप **ग्रामजनपदैकदेशादञ् च** रखते तो भी **च** शब्द से **ठञ्** का अनुकर्षण सम्भव होने से इष्टसिद्धि हो जाती, तथापि स्पष्टप्रतिपत्ति के लिये **ठञ्** का पृथक् ग्रहण किया गया है। दूसरी बात कि यदि ठञ् को पृथक् न लिखते तो च-शब्द से यत्-प्रत्यय के अनुकर्षण की सम्भावना भी रहती। यद्यपि **चानुकृष्टं नोत्तरत्र** के नियम से च-शब्द से जिसका अनुकर्षण किया जाता है, वह पद उस सूत्र से आगे नहीं जाता तथापि प्रकृतसूत्र में भी **च** शब्द पढ़ने पर तो **यत्** का भी अनुकर्षण हो ही जाता। अतः **ग्रामजनपदैकदेशादञ्ठञौ** ऐसा बृहत् सूत्र बनाया गया है।

१३७८. मध्यान्मः ४।३।८।

मध्यमः।

मध्यान्मः। मध्यात् पञ्चम्यन्तं, मः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

मध्य शब्द से शैषिक अर्थ में 'म' प्रत्यय होता है।

मध्यमः। मध्य में होने वाला या उत्पन्न। **मध्ये जातः** यह लौकिक विग्रह है और **मध्य+ङि** यह अलौकिक विग्रह है। **मध्यान्मः** से म प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **मध्यम** बना। स्वादिकार्य करके **मध्यमः** सिद्ध हो जाता है।

१३७९. अ साम्प्रतिके ४।३।९॥

मध्यशब्दादकारप्रत्ययः स्यात् साम्प्रतिकेऽर्थे।
उत्कर्षापकर्षहीनो मध्यो वैयाकरणः।
मध्यं दारु। नातिह्रस्वं नातिदीर्घमित्यर्थः।

अ साम्प्रतिके। अ इति लुप्तप्रथमाकं पदं, साम्प्रतिके सप्तम्यन्तम्। **मध्यान्मः** से **मध्यात्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

साम्प्रतिक अर्थ में विद्यमान मध्य-शब्द से शैषिक अर्थ में 'अ' प्रत्यय होता है।

यहाँ **सम्प्रति** अव्यय से निष्पन्न **साम्प्रतिक** शब्द का ग्रहण किया है और इसका अर्थ है- उत्कर्ष और अपकर्ष से हीन, बीच का। यह सूत्र **मध्यान्मः** का अपवाद है।

उत्कर्षापकर्षहीनो मध्यो वैयाकरणः। उत्कर्ष और अपकर्ष से हीन मध्य-कोटि का वैयाकरण। **मध्ये जातः** विग्रह में **मध्य+ङि** से **अ साम्प्रतिके** सूत्र से **अ** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **मध्य+अ** बना। **यस्येति च** सूत्र से यकारोत्तरवर्ती अकार का लोप करके **मध्य** ही बन जाता है। स्वादिकार्य करके **मध्यः** सिद्ध हो जाता है।

मध्यं दारु। नातिह्रस्वं नातिदीर्घमित्यर्थः। मझौली लकड़ी- न तो छोटी और न ही लम्बी। यहाँ पर भी **मध्य** शब्द से अ-प्रत्यय करके **मध्य** ही बना है और नपुंसकलिङ्गी **दारु** का विशेषण होने के कारण **मध्यम्** बन जाता है।

१३८०. द्वीपादनुसमुद्रं यञ् ४।३।१०॥

समुद्रस्य समीपे यो द्वीपस्तद्विषयाद् द्वीपशब्दाद् यञ् स्यात्।
द्वैप्यम्, द्वैप्या।

द्वीपादनुसमुद्रं यञ्। समुद्रं समया अनुसमुद्रम्, अव्ययीभावः। द्वीपात् पञ्चम्यन्तम्, अनुसमुद्रम् अव्ययं, यञ् प्रथमान्तम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

समुद्र के समीप जो द्वीप, तद्विषयक द्वीप-शब्द से शैषिक अर्थ में यञ् प्रत्यय होता है।

यञ् में ञकार इत्संज्ञक है, **य** बचता है।

द्वैप्यम्, द्वैप्या। समुद्र के समीप विद्यमान द्वीप में होने वाले शहद आदि या स्त्री। **द्वीपे भवम्** विग्रह करके **द्वीप+ङि** से **द्वीपादनुसमुद्रं यञ्** सूत्र से **यञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **द्वैप्य** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होने पर पुंल्लिङ्ग में **द्वैप्यः**, स्त्रीलिङ्ग में **द्वैप्या** और नपुंसकलिङ्ग में **द्वैप्यम्** रूप बनते हैं। यञन्त होने पर भी स्त्रीलिङ्ग में **यञश्च** (४.१.१६) सूत्र से ङीप् प्रत्यय नहीं होता, क्योंकि उक्त सूत्र में कहा गया है कि अपत्यार्थ में विहित यञन्त शब्द में ही इसकी प्रवृत्ति होती है।

१३८१. कालाट्ठञ् ४।३।११॥

कालवाचिभ्यष्ठञ् स्यात्।

मासिकम्। सांवत्सरिकम्। सायंप्रातिकः। पौनःपुनिकः।

कथं तर्हि 'शार्वरस्य तमसो निषिद्धये' इति कालिदासः?

'अनुदितौषसरागा' इति भारविः? समानकालीनं प्राक्कालीनमित्यादि च?

'अपभ्रंशा एवैते' इति प्रामाणिकाः।

'तत्र जातः' (सू.१३९३) इति यावत्कालाधिकारः।

कालाट्ठञ्। कालात् पञ्चम्यन्तं, ठञ् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः**, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, **समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

कालवाचक सभी शब्दों से ठञ् ही होता है, शेष अर्थ में।

ठञ् में ञकार इत्संज्ञक है, अतः आदिवृद्धि होती है। ठ के स्थान पर **ठस्येकः** से इक आदेश होता है।

मासिकम्। महीने में होने वाला या उत्पन्न। **मासे जातं भवं वा** लौकिक विग्रह और **मास ङि** अलौकिक विग्रह है। **कालाट्ठञ्** से ठञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इक आदेश करके **मास+इक** बना। आदिवृद्धि होने पर आकार के स्थान पर आकार ही हुआ और भसंज्ञक अकार का लोप हुआ- **मास्+इक=मासिक** बना। सामान्य में नपुंसक है। प्रातिपदिकत्वेन सु आया और उसके स्थान पर अम् आदेश एवं पूर्वरूप होकर **मासिकम्** सिद्ध हुआ।

सांवत्सरिकम्। वर्ष में होने वाला या उत्पन्न। **संवत्सरे जातं भवं वा** लौकिक विग्रह और **संवत्सर ङि** अलौकिक विग्रह है। **कालाट्ठञ्** से ठञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इक आदेश करके **संवत्सर+इक** बना। आदिवृद्धि होने पर अकार के स्थान पर आकार

हुआ और भसंज्ञक अकार का लोप हुआ- **सांवत्सर्+इक=सांवत्सरिक** बना। सु, उसके स्थान पर अम् आदेश और पूर्वरूप होकर **सांवत्सरिकम्** सिद्ध हुआ।

आगे के प्रयोग के लिये **अव्ययानां भमात्रे टिलोपः** वार्तिक प्रासंगिक है। वार्तिकार्थ- **भसंज्ञामात्र होते ही अव्ययों के टि का लोप होता है।** जिस प्रकार से **नस्तद्धिते** सूत्र नकारान्त भसंज्ञक टि का लोप करता है और टेः डित् परे रहने पर टि का लोप करता है, उस प्रकार से अव्ययों में नहीं होता। वहाँ पर भसंज्ञा हुई है तो इतने मात्र से इस वार्तिक के बल पर अव्ययों के टि का लोप हो जाता है।

सायम्प्रातिकम्। शाम सबेरे होने वाला या उत्पन्न। **सायं च प्रातश्च सायंप्रातः, तत्र जातं भवं वा** लौकिक विग्रह और **सायम्प्रातर्** अलौकिक विग्रह है। यह अव्यय भी है। **कालाट्ठञ्** से ठञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इक आदेश करके **सायम्प्रातर्+इक** बना। आदिवृद्धि होने पर आकार के स्थान पर आकार ही हुआ और भसंज्ञक अकार या इकार न होने के कारण टि का लोप प्राप्त नहीं था, इसलिए वार्तिक बनाया- **अव्ययानां भमात्रे टिलोपः।** इससे **सायम्प्रातर्** में टिसंज्ञक अर् का लोप हुआ, **सायम्प्रात्+इक=सायम्प्रातिक** बना। सामान्य में नपुंसक। सु आया, उसके स्थान पर अम् आदेश और पूर्वरूप होकर **सायम्प्रातिकम्** सिद्ध हो जाता है।

पौनःपुनिकम्। बार बार होने वाला या उत्पन्न। **पुनर्** यह अव्यय है, इसका दो बार उच्चारण है पुनःपुनर्। **पुनःपुनः जातं भवं वा** लौकिक विग्रह और **पुनःपुनर्** अलौकिक विग्रह है। **कालाट्ठञ्** से ठञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इक आदेश करके **पुनःपुनर्+इक** बना। आदिवृद्धि होने पर पु के उकार के स्थान पर औकार हुआ और भसंज्ञक अकार या इकार न होने के कारण टि का लोप प्राप्त नहीं था, इसलिए वार्तिक बनाया- **अव्ययानां भमात्रे टिलोपः।** इससे **पौनःपुनर्** में टिसंज्ञक **अर्** का लोप हुआ, **पौनःपुन्+इक=पौनःपुनिक** बना। सु, उसके स्थान पर अम् आदेश और पूर्वरूप होकर **पौनःपुनिकम्** सिद्ध हुआ।

कालिकम्। काल अर्थात् समय पर होने वाला या उत्पन्न। **काले जातं भवं वा** यह लौकिक विग्रह है और **काल ङि** यह अलौकिक विग्रह है। **कालाट्ठञ्** से ठञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इक आदेश करके **काल+इक** बना। आदिवृद्धि होने पर आकार के स्थान पर आकार ही हुआ और भसंज्ञक अकार का लोप हुआ- **काल्+इक=कालिक** बना। प्रातिपदिक होने से सु आया और उसके स्थान पर **अम्** आदेश, पूर्वरूप होकर **कालिकम्** सिद्ध हुआ।

कथं तर्हि 'शार्वरस्य तमसो निषिद्धये' इति कालिदासः? 'अनुदितौषसरागा' इति भारविः? समानकालीनं प्राक्कालीनमित्यादि च? 'अपभ्रंशा एवैते' इति प्रामाणिकाः। 'तत्र जातः' इति यावत्कालाधिकारः। यहाँ यह प्रश्न किया गया है कि यदि कालवाचक शब्दों से अणादि प्रत्ययों को बाधकर **कालाट्ठञ्** सूत्र से ठञ् प्रत्यय

ही होता है तो महाकवि कालिदास ने अपने काव्य में **शार्वरस्य** प्रयोग कैसे किया? क्योंकि **शर्वरी** (रात) शब्द कालवाची है और इससे भी ठक् प्रत्यय होकर **शार्वरिक** शब्द बनना चाहिये तथा षष्ठी में **शार्वरिकस्य** हो जाना चाहिये। दूसरा प्रश्न यह है कि भारवि कवि ने भी अपने काव्य में **औषसः** का प्रयोग किया है। **उषस्** शब्द कालवाची है और उसके प्रयोग में अण् प्रत्यय होकर **औषस** शब्द बन गया है। प्रकृतसूत्र के अनुसार **औषिकः** बनना चाहिये। तीसरा प्रश्न है कि **समानकालीनम्, प्राक्कालीनम्** आदि प्रयोग बहुधा देखने को मिलते हैं और ये **समानकाल, प्राक्काल** आदि शब्द कालवाची हैं। यहाँ ख् प्रत्यय करने पर ही **प्राक्कालीनम्, समानकालीनम्** बन सकते हैं। इन तीनों प्रश्नों का उत्तर मूलकार एक साथ देते हुये कहते हैं कि ये सभी प्रयोग **अपभ्रंश** ही हैं, ऐसा प्रामाणिक आचार्यों का मानना है। कवियों ने तो पाणिनीय शब्दों का ही प्रयोग किया होगा किन्तु बाद में प्रमादवश अपभ्रंश हो गया है। **'तत्र जातः' इति यावत्कालाधिकारः।** आगे **तत्र जातः** सूत्र तक **कालात्** का अधिकार होने से कालवाची शब्दों से ठञ् प्रत्यय ही होता है, न कि अण् प्रत्यय।

१३८२. श्राद्धे शरदः ४।३।१२॥

ठञ् स्यात्। ऋत्वणोऽपवादः। शारदिकं श्राद्धम्।

श्राद्धे शरदः। श्राद्धे सप्तम्यन्तं, शरदः पञ्चम्यन्तम्। **कालाट्ठञ्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा, शेषे** का अधिकार है।

श्राद्ध अर्थ गम्य होने पर कालवाचक शरद्-शब्द से शैषिक ठञ् प्रत्यय होता है।

ऋत्वणोऽपवादः। शरद्-शब्द के ऋतुवाची होने के कारण वक्ष्यमाण **सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्** सूत्र से अण्-प्रत्यय प्राप्त था, उसका यह अपवाद है।

शारदिकं श्राद्धम्। शरद्-ऋतु में होने वाला श्राद्ध। **शरदि भवम्** अर्थ में **शरद्+ङि** से **श्राद्धे शरदः** सूत्र से ठञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि होकर **शारदिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **शारदिकम्** सिद्ध हो जाता है। पितरों के लिये श्रद्धायुक्त होकर किये जाने वाले पिण्डदान, तर्पण, ब्राह्मणभोजन आदि को श्राद्ध कहते हैं।

१३८३. विभाषा रोगातपयोः ४।३।१३॥

शारदिकः शारदो वा रोग आतपो वा। 'एतयोः' किम्? शारदं दधि।

विभाषा रोगातपयोः। रोगश्च आतपश्च रोगातपौ, तयोः रोगातपयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः। विभाषा प्रथमान्तं, रोगातपयोः सप्तम्यन्तम्। **श्राद्धे शरदः** से **शरदः** की

और **कालाट्ठञ्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा, शेषे** का अधिकार है।

रोग और आतप (धूप, गर्मी) अर्थ गम्य होने पर कालवाचक शरद्-शब्द से विकल्प से शैषिक ठञ् प्रत्यय होता है।

ठञ् न होने के पक्ष में औत्सर्गिक अण् प्रत्यय होता है।

शारदिकः शारदो वा रोग आतपो वा। शरद्-ऋतु में होने वाला रोग या धूप, गर्मी। **शरदि भवः** अर्थ में **शरद्+ङि** से **विभाषा रोगातपयोः** सूत्र से विकल्प से ठञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि होकर **शारदिक** शब्द बन जाता है। ठञ् न होने के पक्ष में औत्सर्गिक अण् प्रत्यय होने पर भी आदिवृद्धि होकर **शारद** शब्द बनता है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **शारदिकः** और **शारदः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

'एतयोः' किम्? शारदं दधि। प्रकृतिसूत्र में **एतयोः=रोगातपयोः** पद के निवेश से रोग और आतप अभिधेय होने पर ही यह वैकल्पिक कार्य होता है, अन्यथा नहीं होता। फलतः **शरदि भवं दधि** अर्थ में वैकल्पिक ठञ् नहीं हुआ, अपितु **सन्धिवेलाद्यृतनक्षत्रेभ्योऽण्** से अण्-प्रत्यय होकर **शारदम्** बन जाता है, क्योंकि यहाँ दही अभिधेय है, न कि रोग या आतप।

१३८४. निशाप्रदोषाभ्यां च ४।३।१४॥

वा ठञ् स्यात्। नैशिकम्, नैशम्। प्रादोषिकम्, प्रादोषम्।

निशाप्रदोषाभ्यां च। निशा च प्रदोषश्च निशाप्रदोषौ, ताभ्यां निशाप्रदोषाभ्याम्, इतरेतरयोगद्वन्द्वः। निशाप्रदोषाभ्यां पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **विभाषा रोगातपयोः** से **विभाषा** की और **कालाट्ठञ्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा, शेषे** का अधिकार है।

कालवाची निशा और प्रदोषा शब्दों से विकल्प से शैषिक ठञ् प्रत्यय होता है।

कालाट्ठञ् के द्वारा नित्य से प्राप्त होने पर निशा और प्रदोष शब्दों से विकल्प से किया गया है।

नैशिकम्, नैशम्। रात्रि-सम्बन्धी। **निशि भवम्** अर्थ में **निशा+ङि** से **निशाप्रदोषाभ्यां च** सूत्र से विकल्प से ठञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, आकारलोप होकर **नैशिक** शब्द बन जाता है। ठञ् न होने के पक्ष में औत्सर्गिक अण् प्रत्यय होने पर भी आदिवृद्धि आदि होकर **नैश** शब्द बनता है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **नैशिकम्, नैशम्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

प्रादोषिकम्, प्रादोषम्। प्रदोषकाल में होने वाला। **प्रदोषे भवम्** अर्थ में **प्रदोष+ङि** से **निशाप्रदोषाभ्यां च** सूत्र से विकल्प से ठञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, आकारलोप होकर **प्रादोषिक** शब्द बन जाता है। अण् प्रत्यय होने पर भी आदिवृद्धि आदि होकर **प्रादोष** शब्द बनता है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **प्रादोषिकम्** और **प्रादोषम्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

१३८५. श्वसस्तुट् च ४।३।१५॥

श्वस्शब्दाट्ठञ् वा स्यात्, तस्य तुडागमश्च।

श्वसस्तुट् च। श्वसः पञ्चम्यन्तं, तुट् प्रथमान्तम्। **विभाषा रोगातपयोः** से **विभाषा** की और **कालाट्ठञ्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा, शेषे** का अधिकार है।

कालवाची श्वस्-शब्द से विकल्प से शैषिक ठञ् प्रत्यय होता है और उसको तुट् आगम भी होता है।

प्रकृतसूत्र से प्रत्यय के साथ प्रत्यय को ही तुट् का आगम भी किया गया है। तुट् में टकार इत्संज्ञक और उकार उच्चारणार्थक है। त् बचता है। उसके टित् होने के कारण **आद्यन्तौ टकितौ** के नियम से प्रत्यय के आदि में बैठता है। इसका उदाहरण अगले सूत्र में है।

प्रसंगप्राप्त वृद्धिनिषेधपूर्वक ऐजागमविधायक सूत्र का अवतरण कर रहे हैं-

१३८६. द्वारादीनां च ७।३।४॥

द्वार, स्वर, स्वाध्याय, व्यल्कश, स्वस्ति, स्वर्, स्म्यकृत्, स्वादु, मृदु, श्वस्, श्वन्, स्व एषां न वृद्धिरैजागमश्च। शौवस्तिकम्।

द्वारादीनां च। द्वार आदिर्येषां ते द्वारादयस्तेषां द्वारादीनाम्, बहुव्रीहिः। द्वारादीनां षष्ठ्यन्तं, चाव्ययम्। **न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्** से **पदान्ताभ्याम्** को छोड़कर सभी पदों की अनुवृत्ति आती है। **मृजेर्वृद्धिः** से **वृद्धिः** की और **अचो ञ्णिति** से **ञ्णिति** की, **तद्धितेष्वचामादेः** के सभी पदों की तथा **किति च** से **किति** की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

द्वारादिगणपठित द्वार, स्वर, स्वाध्याय, व्यल्कश, स्वस्ति, स्वर्, स्म्यकृत्, स्वादु, मृदु, श्वस्, श्वन्, स्व इन शब्दों के यकार एवं वकार से उत्तर जो अङ्गों के अचों में आदि अच्, उसकी ञित्, णित्, कित् तद्धित प्रत्ययों के परवर्ती होने पर वृद्धि नहीं होती किन्तु यकार तथा वकार से पूर्व ऐच् आगम होता है।

न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच् सूत्र में पदान्त यकार-वकार से उत्तरवर्ती कहा गया है, अपदान्त के लिये प्रकृत सूत्र की सार्थकता है। पहले **ऐषमोह्यःश्वसोऽन्यतरस्याम्** (१३२६) सूत्र में कहा गया था- **पक्षे शौवस्तिकं वक्ष्यते।** अब उसी की सिद्धि की जा रही है। यह **श्वस्** शब्द द्वारादि होते हुये अव्यय भी है। द्वारादिगणपठित शब्दों का पाठ मूल में दिया गया है।

शौवस्तिकम्। कल होने वाला। **श्वः भवः** विग्रह करके अव्यय **श्वस्**-शब्द से **श्वसस्तुट् च** सूत्र के द्वारा **ठञ्** प्रत्यय और उसको **तुट्** आगम करने पर ठ के स्थान पर इक आदेश होकर **श्वस्+त्+इक** बना है। **तद्धितेष्वचामादेः** सूत्र से आदिवृद्धि प्राप्त होने पर **द्वारादीनां च** सूत्र लगता है। इससे वृद्धिनिषेध-पूर्वक वकार को ऐच् (औ) आगम हो जाता है। इस तरह **श्+औ+वस्+त्+इक=शौवस्तिक** बन जाता है। स्वादिकार्य होकर **शौवस्तिकम्** सिद्ध हो जाता है।

१३८७. सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण् ४।३।१६॥

सन्धिवेलादिभ्य ऋतुभ्यो नक्षत्रेभ्यश्च कालवृत्तिभ्योऽण् स्यात्। सन्धिवेलायां भवं सान्धिवेलम्। ग्रैष्मम्। तैषम्। सन्धिवेला, सन्ध्या, अमावस्या, त्रयोदशी, चतुर्दशी, पौर्णमासी, प्रतिपत्।
'संवत्सरात्फलपर्वणोः' (ग.सू.९२)। सांवत्सरं फलं पर्व वा। सांवत्सरिकमन्यत्।

सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्। सन्धिवेला आदिर्येषां ते सन्धिवेलादयः, बहुव्रीहिः। सन्धिवेलादयश्च ऋतुश्च नक्षत्रं च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्राणि, तेभ्यः सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अण् प्रथमान्तम्। **कालाट्ठञ्** से **कालात्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा, शेषे** का अधिकार है।

कालवाची सन्धिवेलादि, ऋतुवाची और नक्षत्रवाची प्रातिपदिकों से शैषिक अण् प्रत्यय होता है।

सूत्रोक्त सभी शब्द कालविशेषवाची हैं, अतः **कालाट्ठञ्** सूत्र से ठञ् प्राप्त था, उसका यह अपवाद है। सन्धिवेलादि में स्वरूप-ग्रहण है और ऋतु तथा नक्षत्र में अर्थग्रहण है। सन्धिवेलादिगण में आठ-शब्द पढ़े गये हैं, उनमें **पौर्णमासी** शब्द से छ-प्रत्यय भी प्राप्त रहा।

सन्धिवेलायां भवं सान्धिवेलम्। सन्धिवेला=सन्ध्याकाल में होने वाला। **सन्धिवेलायां भवम्** विग्रह करके **सन्धिवेला+ङि** में **सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्** सूत्र से अण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **सान्धिवेल** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सान्धिवेलम्** सिद्ध हो जाता है।

ग्रैष्मम्। ग्रीष्म ऋतु में होने वाला। **ग्रीष्मे भवम्** विग्रह करके **ग्रीष्म+ङि** में **सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्** सूत्र से अण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **ग्रैष्म** और स्वादिकार्य होकर **ग्रैष्मम्** सिद्ध हो जाता है। यह ऋतुवाची शब्द का उदाहरण है।

तैषम्। तिष्य (पुष्य) नक्षत्र में होने वाला। **तिष्ये भवम्** विग्रह करके **तिष्य+ङि** में **सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्** सूत्र से अण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **तिष्य्+अ** बना है। **तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राणि** वार्तिक से यकारलोप होकर **तैष** शब्द बनता है और स्वादिकार्य होकर **तैषम्** सिद्ध हो जाता है। यह नक्षत्रवाची शब्द का उदाहरण है।

सन्धिवेलादिगणः- सन्धिवेला, सन्ध्या, अमावस्या, त्रयोदशी, चतुर्दशी, पौर्णमासी, प्रतिपत्। **संवत्सरात्फलपर्वणोः**।

संवत्सरात् फलपर्वणोः। यह सन्धिवेलादिगण में पठित गणसूत्र है। सूत्रार्थः- फल और पर्व अर्थ गम्य होने पर ही संवत्सर-शब्द से अण् प्रत्यय होता है।

सांवत्सरं फलं पर्व वा। सांवत्सरिकमन्यत्। संवत्सर=वर्ष में होने वाला फल या पर्व। **संवत्सरे भवम्** विग्रह करके **संवत्सर+ङि** में **संवत्सरात्फलपर्वणोः** से अर्थनिर्णय किये जाने पर **सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्** सूत्र से अण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **सांवत्सर** बना है। स्वादिकार्य होकर **सांवत्सरम्** सिद्ध हो जाता है। फल और पर्व अर्थ गम्य न होने पर तो **कालाट्ठञ्** सूत्र से ठञ् प्रत्यय होने पर इकादेश, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **सांवत्सरिक** और स्वादिकार्य होकर **सांवत्सरिकः** सिद्ध हो जाता है।

१३८८. प्रावृष एण्यः ४।३।१७॥
प्रावृषेण्यः।

प्रावृष एण्यः। प्रावृषः पञ्चम्यन्तम्, एण्यः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है। **कालाट्ठञ्** से **कालात्** की अनुवृत्ति आती है।

कालवाचक प्रावृष् इस समर्थ प्रातिपदिक से एण्य प्रत्यय होता है।

काठाट्ठञ् को बाधकर **सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्** से अण् प्राप्त होता है, उसका भी यह अपवाद है।

प्रावृषेण्यः। वर्षा ऋतु में होने वाला। **प्रावृषि भवः। प्रावृष् ङि** में ठञ् को बाधकर अण् प्राप्त, उसे भी बाधकर के **प्रावृष एण्यः** से **एण्य** प्रत्यय हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **प्रावृष्+एण्य** बना। वर्णसम्मेलन करके स्वादिकार्य करने पर **प्रावृषेण्यः** सिद्ध हो जाता है।

१३८९. वर्षाभ्यष्ठक् ४।३।१८॥

वर्षासु साधु वार्षिकं वासः।

'कालात्साधुपुष्प्यत्यपच्यमानेषु' (सू.१४१८) **इति साध्वर्थे।**

वर्षाभ्यष्ठक्। वर्षाभ्यः पञ्चम्यन्तं, ठक् प्रथमान्तम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है। **कालाट्ठञ्** से **कालात्** की अनुवृत्ति आती है।

कालवाची वर्षा-प्रातिपदिक से शैषिक अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है।

काठाट्ठञ् को बाधकर **सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्** से अण् प्राप्त होता है, उसका भी यह अपवाद है। प्रकृत सूत्र में **वर्षाभ्यः** इस बहुवचन-निर्देश से वर्षा-शब्द की बहुवचनान्तता विदित होती है।

वर्षासु साधु वार्षिकं वासः। वर्षा ऋतु में उपयोगी वस्त्र। **वर्षासु साधु** विग्रह करके **वर्षा+सुप्** में ठञ् को बाधकर अण् प्राप्त, उसे भी बाधकर के **वर्षाभ्यष्ठक्** सूत्र से **ठक्** प्रत्यय होने पर **ठ** को इकादेश हो जाता है। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक आकार का लोप करके **वार्षिक** शब्द बना है। स्वादिकार्य करने पर **वार्षिकम्** सिद्ध हो जाता है।

'कालात्साधुपुष्प्यत्यपच्यमानेषु' इति साध्वर्थे। अर्थात् यद्यपि **तत्र साधुः** यह सूत्र **शेषे** सूत्र के अधिकार में नहीं है तथापि **कालात्साधुपुष्प्यत्पच्यमानेषु** सूत्र से विवक्षित साधु अर्थ शेषाधिकारस्थ है। अतः उक्त साधु-अर्थ में यह शैषिक ठक् प्रत्यय विहित है।

१३९०. सर्वत्राण् च तलोपश्च ४।३।२२॥

हेमन्तादण् स्यात्तलोपश्च वेदलोकयोः।

चकारात् पक्षे ऋत्वण्। हैमनम्, हैमन्तम्।

सर्वत्राण् च तलोपश्च। तस्य लोपस्तलोपः, षष्ठीतत्पुरुषः। सर्वत्र अव्ययम्, अण् प्रथमान्तं, चाव्ययं, तलोपः प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **हेमन्ताच्च** से **हेमन्तात्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा, शेषे** का अधिकार यथावत् है।

हेमन्त-शब्द से शैषिक अण् प्रत्यय होता है और प्रकृति के तकार का लोप भी होता है, लोक और वेद में।

अष्टाध्यायीक्रम में इस सूत्र के पहले वैदिक प्रयोग के लिये **छन्दसि ठञ्, वसन्ताच्च** और **हेमन्ताच्च** ये तीन सूत्र पढ़े गये हैं। कौमुदीकार ने वैदिकप्रकरण अलग से दिया है, अतः यहाँ उन सूत्रों को स्थान नहीं दिया गया है। लौकिक और वैदिक प्रयोगों के लिये इस सूत्र में **सर्वत्र** शब्द का पाठ किया गया है।

चकारात् पक्षे ऋत्वण्। प्रकृतसूत्र में प्रथम **च**-शब्द के द्वारा एकपक्ष में **सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्** सूत्र से अण् प्रत्यय का विधान किया जाता है। उस सूत्र से अण् होने पर तकार का लोप नहीं होगा किन्तु प्रकृतसूत्र से अण् होने पर **हेमन्त** शब्द के तकार का लोप भी होता है। यही दोनों में अन्तर है।

हैमनम्, हैमन्तम्। हेमन्त ऋतु में होने वाला। **हेमन्ते जातादि** विग्रह करके **हेमन्त+ङि** से **सर्वत्राण् तलोपश्च** सूत्र से अण् प्रत्यय और तकार का लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **हैमन** शब्द बना है और एकपक्ष में **सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **हैमन्त** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **हैमनम्** और **हैमन्तम्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

१३९१. सायञ्चिरम्प्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च ४।३।२३॥

सायमित्यादिभ्यश्चतुर्भ्योऽव्ययेभ्यश्च कालवाचिभ्यष्ट्युट्युलौ स्तस्तयोस्तुट् च। तुटः प्रागनादेशः, 'अनद्यतने-' (सू.२१८५) इत्यादिनिर्देशात्। सायंतनम्। चिरंतनम्। प्राह्णप्रगयोरेदन्तत्वं निपात्यते। प्राह्णेतनम्। प्रगेतनम्। दोषातनम्। दिवातनम्। 'चिरपरुत्परारिभ्यस्त्नो वक्तव्यः' (वा.२८४२)। चिरत्नम्। परुत्नम्। परारित्नम्। 'अग्रादिपश्चाड्डिमच्' (वा.२८४४)। अग्रिमम्। आदिमम्। पश्चिमम्। 'अन्ताच्च' (वा.२८४५)। अन्तिमम्।

सायञ्चिरम्प्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च। सायञ्च चिरञ्च प्राह्णे च प्रगे च अव्ययञ्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः सायञ्चिरम्प्राह्णेप्रगेऽव्ययानि, तेभ्यः। ट्युश्च ट्युल् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः ट्युट्युलौ। सायञ्चिरम्प्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यः पञ्चम्यन्तं, ट्युट्युलौ प्रथमान्तं, तुट् प्रथमान्तं, च अव्ययपदम्, अनेकपदं सूत्रम्। **कालाट्ठञ्** से वचनविपरिणाम करके **कालेभ्यः** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

कालवाचक सायम्, चिरम्, प्राह्णे, प्रगे और कालवाची अव्ययों से तद्धितसंज्ञक ट्यु और ट्युल् प्रत्यय होते हैं और उनको तुट् का आगम भी होता है।

इन प्रत्ययों में **टकार** और **लकार** इत्संज्ञक हैं। **यु** बचता है। आगम **तुट्** में उकार और टकार इत्संज्ञक हैं, **त्** बचता है। **यु** के स्थान पर **युवोरनाकौ** से **अन** आदेश हो जाता है। टित्करण का प्रयोजन स्त्रीत्व की विवक्षा में **टिड्ढाणञ्०** सूत्र की प्रवृत्ति है।

तुटः प्रागनादेशः, 'अनद्यतने' इत्यादिनिर्देशात्। यह बता रहे हैं कि तुट्-आगम के पहले ही **यु** के स्थान पर **युवोरनाकौ** से अनादेश हो जाता है। यह इस लिये बताना

पड़ रहा है, क्योंकि उक्त दो प्रत्यय के साथ ही तुट् आगम का विधान प्रकृत सूत्र से किया गया है। यद्यपि एक साथ ही प्रत्यय और आगम का विधान किया गया हो, तथापि पहले केवल प्रत्यय करके अनुबन्धलोप होने के बाद उसके स्थान पर अनादेश होने पर ही तुट् का आगम करना होगा, अन्यथा **युवोरनाकौ** सूत्र के अङ्गाधिकारीय होने के कारण प्रकृतिभूत अङ्ग और **यु** के बीच में तकार का व्यवधान होने से अंग से परे **यु** न मिलने के कारण अनादेश ही नहीं होगा। यहाँ पर यह भी नहीं कह सकते कि **यदागमास्तद्गुणीभूतास्तद्ग्रहणेन गृह्यन्ते** इस परिभाषा के बल पर **त्यु** के **यु** को ही अनादेश होगा, क्योंकि **निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति** के नियम से आदेश तो **यु** को ही होगा, **त्यु** को नहीं। अतः पहले अनादेश होगा और उसके बाद **तुट्** आगम। एक ही सूत्र के दो बार प्रवृत्ति कराने में क्या प्रमाण है? **अनद्यतने इति निर्देशात्।** अर्थात् **अनद्यतने लुट्** आदि पाणिनीय सूत्र ही इसमें प्रमाण हैं, क्योंकि तुट से पहले अनादेश न होता तो **अद्य**-शब्द से ट्यु प्रत्यय होने पर **अनद्यतन** शब्द ही न बन पाता। अतः पाणिनीय उक्त प्रयोग के निर्देश से तुट् से पहले अनादेश होता है, यह बात सिद्ध हो जाती है। **युवोरनाकौ** सूत्र का अर्थ है- अङ्गसंज्ञानिमित्तक जो यु और वु, उनके स्थान पर क्रमशः अन और अक आदेश होते हैं।

सायम् और **चिरम्** शब्द को **ट्यु** और **ट्युल्** प्रत्यय के योग में **मकारान्तत्व निपातन** किया गया है अर्थात् किसी अन्य सूत्र से एकारादेश न होकर प्रकृतसूत्र से एकारयुक्त पाठ से यह निर्देश समझा जाता है कि उक्त प्रत्ययों के योग में **साय** और **चिर** शब्द में मकारान्तता आ जाती है।

सायन्तनम्। शाम को होने वाला। **साये भवम्। साय**+ङि में **कालाट्ठञ्** से **ठञ्** प्राप्त था, उसे बाधकर **सायञ्चिरम्प्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च** से **साय** को मकारान्तत्व निपातन सहित **ट्यु** प्रत्यय अनुबन्धलोप, **युवोरनाकौ** से **यु** के स्थान पर **अन** आदेश करके उसको **तुट्** का आगम भी हुआ। **सायम्**+**त्**+**अन** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **मकार** को अनुस्वार और परसवर्ण करने के बाद वर्णसम्मेलन करके **सायन्तन** बनता है एवं स्वादिकार्य करने पर **सायन्तनम्** सिद्ध हो जाता है। यहाँ **षोऽन्तकर्मणि (सो, सा)** धातु से घञ्-प्रत्यय करके **साय** शब्द निष्पन्न हुआ है और यह दिवसावसान=दिन का अन्तिम भाग अर्थ में रूढ है।

चिरन्तनम्। अधिक काल तक होने वाला। **चिरे भवम्। चिर**+ङि में **कालाट्ठञ्** से **ठञ्** प्राप्त था, उसे बाधकर **सायञ्चिरम्प्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च** से **चिर** को मकारान्तत्व निपातन सहित **ट्यु** प्रत्यय अनुबन्धलोप, **युवोरनाकौ** से **यु** के स्थान पर **अन** आदेश करके उसको **तुट्** का आगम भी हुआ। **चिरम्**+**त्**+**अन** बना। **मकार** को अनुस्वार और परसवर्ण करने के बाद वर्णसम्मेलन करके **चिरन्तन** बनता है एवं स्वादिकार्य करने पर **चिरन्तनम्** सिद्ध हो जाता है।

प्राह्णप्रगयोरेदन्तत्वं निपात्यते। अर्थात् **प्राह्ण** और **प्रग** इन दो शब्दों में **ट्यु** और **ट्युल्** प्रत्ययों के योग में प्रकृत सूत्र से ही **एदन्तत्व निपातन** करके **प्राह्णे, प्रगे** बनाये जाते हैं।

प्राह्णेतनम्। प्रातः काल सहनीय है जिसे, वह। **प्राह्णः सोढोऽस्य** विग्रह करके **प्राह्ण+सु** में **सायञ्चिरम्प्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च** से **प्राह्ण** को एदन्तत्व निपातन सहित **ट्यु** प्रत्यय अनुबन्धलोप, **युवोरनाकौ** से **यु** के स्थान पर **अन** आदेश करके उसको **तुट्** का आगम भी हुआ। **प्राह्णे+त्+अन=प्राह्णेतन** शब्द बना है। स्वादिकार्य करने पर **प्राह्णेतनम्** सिद्ध हो जाता है।

प्रगेतनम्। प्रातः होने वाला। **प्रगे भवम्। प्रग+ङि** में **कालाट्ठञ्** से **ठञ्** प्राप्त था, उसे बाधकर **सायञ्चिरम्प्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च** से **प्रगे** को एदन्तत्व निपातन सहित **ट्यु** प्रत्यय अनुबन्धलोप, **युवोरनाकौ** से **यु** के स्थान पर **अन** आदेश करके उसको **तुट्** का आगम भी हुआ। **प्रगे+त्+अन** बना और वर्णसम्मेलन करके स्वादिकार्य करने पर **प्रगेतनम्** सिद्ध हो जाता है।

दोषातनम्। रात्रि में होने वाला। **दोषा भवम्। दोषा** इस अव्यय से **सायञ्चिरम्प्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च** से **ट्यु** प्रत्यय अनुबन्धलोप, **युवोरनाकौ** से **यु** के स्थान पर **अन** आदेश करके उसको **तुट्** का आगम भी हुआ। **दोषा+त्+अन** बना और वर्णसम्मेलन करके स्वादिकार्य करने पर **दोषातनम्** सिद्ध हो जाता है।

दिवातनम्। दिन में होने वाला। **दिवा भवम्** विग्रह में अव्यय **दोषा** शब्द से **सायञ्चिरम्प्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च** से **ट्यु** प्रत्यय, **अन** आदेश, **तुट्** आगम करके **दिवातन** और स्वादिकार्य होकर **दिवातनम्** सिद्ध हो जाता है।

चिरपरुत्पराभ्यस्त्नो वक्तव्यः। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- चिर, परुत् और परारि शब्दों से जातादि शैषिक अर्थों में त्न-प्रत्यय कहना चाहिये। इसमें किसी वर्ण की इत्संज्ञा नहीं होती है।

चिरत्नम्। प्राचीन काल का। **चिराय भवम्** विग्रह करके **चिर+ङे** से **चिरपरुत्पराभ्यस्त्नो वक्तव्यः** वार्तिक के द्वारा **त्न** प्रत्यय होने पर **चिरत्न** शब्द बनता है और स्वादिकार्य होकर **चिरत्नम्** सिद्ध हो जाता है। यहाँ पर मकारान्त-निपातन नहीं होता।

परुत्नम्। गत वर्ष साल का। **परुत् भवम्** विग्रह करके **परुत्** अव्यय से **चिरपरुत्पराभ्यस्त्नो वक्तव्यः** वार्तिक के द्वारा **त्न** प्रत्यय होने पर **परुत्न** शब्द बनता है और स्वादिकार्य होकर **परुत्नम्** सिद्ध हो जाता है।

परारित्नम्। गत वर्ष से पहले वर्ष का। **परारि भवम्** विग्रह करके **परारि** अव्यय से **चिरपरुत्पराभ्यस्त्नो वक्तव्यः** वार्तिक के द्वारा **त्न** प्रत्यय होने पर **परारित्न** शब्द बनता है और स्वादिकार्य होकर **परारित्नम्** सिद्ध हो जाता है।

अग्रादिपश्चाड्डिमच्। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- अग्र, आदि और पश्च शब्दों से डिमच् प्रत्यय होता है। डिमच् में डकार और चकार इत्संज्ञक हैं, **इम** बचता है। **पश्चात्**-शब्द में टिलोप के लिये प्रकृत प्रत्यय का डित्करण है।

अग्रिमम्। आगे होने वाला। **अग्रे भवम्** विग्रह करके **अग्र+ङि** से **अग्रादिपश्चाड्डिमच्** वार्तिक के द्वारा **डिमच्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप और टिसंज्ञक अकार का लोप करके **अग्रिम** शब्द बनता है और स्वादिकार्य होकर **अग्रिमम्** सिद्ध हो जाता है।

आदिमम्। पहले होने वाला। **आदौ भवम्** विग्रह करके **आदि+ङि** से **अग्रादिपश्चाड्डिमच्** वार्तिक के द्वारा **डिमच्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप और टिसंज्ञक इकार का लोप करके **आदिम** शब्द बना और स्वादिकार्य होकर **आदिमम्** सिद्ध हो जाता है।

पश्चिमम्। बाद में होने वाला या पीछे का। **पश्चाद् भवम्** विग्रह करके **पश्चात्** अव्यय से **अग्रादिपश्चाड्डिमच्** वार्तिक के द्वारा **डिमच्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप और टिसंज्ञक भाग **आत्** का **टेः** सूत्र से लोप करके **पश्चिम** शब्द बनता है। इसके बाद स्वादिकार्य होकर **पश्चिमम्** सिद्ध हो जाता है।

अन्ताच्च। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- अन्त-शब्द से शैषिक अर्थों में डिमच्-प्रत्यय होता है।

अन्तिमम्। अन्त में होने वाला। **अन्ते भवम्** विग्रह करके **अन्त+ङि** से **अन्ताच्च** वार्तिक के द्वारा **डिमच्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप और टिसंज्ञक भाग अकार का लोप करके **अन्तिम** और स्वादिकार्य होकर **अन्तिमम्** सिद्ध हो जाता है।

१३९२. विभाषा पूर्वाह्णापराह्णाभ्याम् ४।३।२४॥

आभ्यां ट्युट्युलौ स्तः, तयोस्तुट् च। पक्षे ठञ्।
पूर्वाह्णेतनम्। अपराह्णेतनम्। 'घकालतनेषु-' (सू.९७५) इत्यलुक्।
पूर्वाह्णः सोढोऽस्येति विग्रहे तु पूर्वाह्णतनम्। अपराह्णतनम्।
पौर्वाह्णिकम्। आपराह्णिकम्।

विभाषा पूर्वाह्णापराह्णाभ्याम्। पूर्वाह्णश्च अपराह्णश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः पूर्वाह्णापराह्णौ, ताभ्यां पूर्वाह्णापराह्णाभ्यां पञ्चम्यन्तं, विभाषा प्रथमान्तम्। **सायञ्चिरम्प्राह्णे-प्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च** से **ट्युट्युलौ, तुट् च** की और **कालाट्ठञ्** से वचनविपरिणाम करके **कालाभ्याम्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

कालवाचक पूर्वाह्ण और अपराह्ण प्रातिपदिकों से शैषिक अर्थों में विकल्प से तद्धितसंज्ञक ट्यु और ट्युल् प्रत्यय होते हैं और उनको तुट् का आगम भी होता है।

पक्षे ठञ्। उक्त प्रत्ययों के न होने के पक्ष में **कालाट्ठञ्** सूत्र से ठञ्-प्रत्यय होता है।

'घकालतनेषु-' इत्यलुक्। प्रकृतसूत्र से **ट्यु, ट्युल्** प्रत्यय के साथ उनको **तुट्** आगम होने के बाद **तन** बन जाता है और उसके परे रहते **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** सूत्र से सप्तमी का लुक् प्राप्त होने पर **घकालतनेषु कालनाम्नः (९७५)** सूत्र के द्वारा उसका विकल्प से अलुक् किया जाता है।

पूर्वाह्णेतनम्, पौर्वाह्णिकम्। दिन के पूर्वभाग में होने वाला। **पूर्वाह्णे भवम्** विग्रह करके **पूर्वाह्ण+ङि** में **विभाषा पूर्वाह्णापराह्णाभ्याम्** सूत्र से **ट्यु** या **ट्युल्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, **युवोरनाकौ** से **यु** के स्थान पर **अन** आदेश करके उसको **तुट्** का आगम भी हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् प्राप्त होने पर **घकालतनेषु कालनाम्नः** सूत्र से उसका अलुक् होने पर **पूर्वाह्ण+इ** में गुण होकर **पूर्वाह्णेतन** शब्द बना है। स्वादिकार्य करने पर **पूर्वाह्णेतनम्** सिद्ध हो जाता है। **ठञ्** प्रत्यय होने पर ठ के स्थान पर इकादेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पौर्वाह्णिक** और स्वादिकार्य होकर **पौर्वाह्णिकम्** सिद्ध हो जाता है।

अपराह्णेतनम्, आपराह्णिकम्। दिन के दूसरे भाग में होने वाला। **अपराह्णे भवम्** विग्रह करके **अपराह्ण+ङि** में **विभाषा पूर्वाह्णापराह्णाभ्याम्** सूत्र से **ट्यु** या **ट्युल्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **यु** के स्थान पर **अन** आदेश, **तुट्** आगम, सप्तमी का अलुक्, गुण होकर **अपराह्णेतन** और स्वादिकार्य करने पर **अपराह्णेतनम्** सिद्ध हो जाता है। **ठञ्** प्रत्यय होने पर, इकादेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आपराह्णिक** और स्वादिकार्य होकर **आपराह्णिकम्** सिद्ध हो जाता है।

ये रूप जातादि अर्थ में बने हैं।

पूर्वाह्णः सोढोऽस्येति विग्रहे तु पूर्वाह्णतनम्। अपराह्णतनम्। यदि जातादि अर्थ न होकर **पूर्वाह्णः सोढोऽस्य** (जिसको पूर्वाह्ण का काल सहनीय है) **अपराह्णः सोढोऽस्य** (अपराह्ण काल सहनीय है जिसको) अर्थ में **पूर्वाह्ण+सु** और **अपराह्ण+सु** से ट्यु, ट्युल् प्रत्यय और उसको तुट् आगम करने पर तो सप्तमी विभक्ति न होने के कारण अलुक् का प्रश्न नहीं है। अतः **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** सूत्र के द्वारा सु का लुक् होकर **पूर्वाह्णतनम्** और **अपराह्णतनम्** रूप बनते हैं। अन्य प्रक्रिया पूर्ववत् ही है।

शैषिक प्रकरण में अभी तक तत्तत् सूत्रों के द्वारा यह निर्देश किया जा चुका है कि शैषिक अर्थों में किस प्रातिपदिक से कौन सा प्रत्यय होता है। अब इनके लिये समर्थ विभक्तियाँ और प्रत्ययार्थ कहना शेष है, जो कि आगे के सूत्रों से निर्वचन किया जा रहा है। अत एव अभी तक जातादि, भव आदि अर्थ ही दिखाये जा रहे थे। अब आगे प्रकृति और प्रत्यय तो प्रायः वहीं रहेंगे किन्तु अर्थविशेष के अनुसार समर्थ-विभक्ति भिन्न-भिन्न हो सकती है।

१३९३. तत्र जातः ४।३।२५॥

सप्तमीसमर्थाज्जात इत्यर्थेऽणादयो घादयश्च युः।

सुघ्ने जातः सौघ्नः। औत्सः। राष्ट्रियः। अवारपारीण इत्यादि।

तत्र जातः। तत्र इति सप्तम्यन्तस्यानुकरणं लुप्तपञ्चमीकमव्ययम्, जातः प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से 'उसमें उत्पन्न हुआ' इस अर्थ में शैषिक अर्थ में होने वाले अण् आदि प्रत्यय और घ आदि प्रत्यय यथासम्भव होते हैं।

तत्र पद समर्थ-विभक्ति का सूचक है अर्थात् इस सूत्र की प्रवृत्ति के लिये समर्थ-विभक्ति सप्तमी होगी। **जातः** पद के द्वारा अर्थ-निर्णय किया जाता है अर्थात् **उत्पन्न हुआ** अर्थ में प्रत्यय होगा। इस तरह यह सूत्र यह निर्णय नहीं करता कि कौन सा प्रत्यय हो किन्तु यह निर्णय करता है कि जो भी प्रत्यय हो वह **उसमें उत्पन्न हुआ** इस अर्थ में हो। अतः जहाँ जिसकी प्राप्ति न्याय्य होगी वहाँ पर वही प्रत्यय होगा। इस लिये मूलकार ने **अणादयो घादयश्च स्युः** लिखा है। इसका तात्पर्य यह है **यथाविहित प्रत्यय हों।** यथाविहित-प्रत्यय का मतलब यह है कि **शेषे** (४.२.९२) से **तत्र जातः** (४.३२५) के पहले तक के सूत्रों में जिस प्रातिपदिक से जो भी प्रत्यय कहा गया है, उससे तो वही वही प्रत्यय हो। यहाँ से लेकर आगे भी **कंसीयपरशव्ययोर्यञञौ लुक् च** (४.३.१६८) सूत्र तक अर्थात् **प्राग्वहतेष्ठक्** (४.४.१) से पहले तक जिस प्रातिपदिक से जो भी विशेष प्रत्यय कहे जा रहे हों, उससे भी वही विशेष प्रत्यय ही हो। जैसे कि पहले **राष्ट्रावारपाराद् घखौ** सूत्र से राष्ट्र-शब्द से घ-प्रत्यय और अवारपार-शब्द से ख-प्रत्यय किया गया था, आगे अर्थ बदलने पर भी उक्त शब्दों से घ-प्रत्यय और ख-प्रत्यय ही होंगे। कुछ अपवाद अवश्य हो सकते हैं किन्तु जिन प्रातिपदिकों से कोई भी प्रत्यय न कहा गया हो, उनसे **प्राग्दीव्यतोऽण्** से चला आ रहा औत्सर्गिक अण् प्रत्यय ही होता है।

आगे किसी सूत्र से समर्थ-विभक्ति बदलने की सूचना न मिलने तक उन सूत्रों में भी समर्थ-विभक्ति सप्तमी ही होगी, अतः **तत्र** पद की अनुवृत्ति जाती है।

सुघ्ने जातः सौघ्नः। सुघ्न नामक देश में उत्पन्न हुआ पदार्थ। **सुघ्ने जातः** लौकिक विग्रह और **सुघ्न ङि** अलौकिक विग्रह है। **तत्र जातः** से अण् हुआ, अनुबन्ध लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् कर **सुघ्न+अ** बना है। णित् होने के कारण आदिवृद्धि करके उकार के स्थान पर औकार आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करके **सौघ्न्+अ=सौघ्न** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **सौघ्नः** सिद्ध हुआ।

औत्सः। उत्स अर्थात् झरने में उत्पन्न हुआ पदार्थ, मेढक आदि। **उत्से जातः** लौकिक विग्रह और **उत्स ङि** अलौकिक विग्रह है। **तत्र जातः** के अर्थ में **उत्सादिभ्योऽञ्**

से अञ् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **उत्स+अ** बना है। ञित् होने के कारण आदिवृद्धि करके उकार के स्थान पर औकार आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करके **औत्स्+अ=औत्स** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **औत्सः** सिद्ध हुआ।

राष्ट्रियः। राष्ट्र में उत्पन्न हुआ पदार्थ। **राष्ट्रे जातः** लौकिक विग्रह और **राष्ट्र ङि** अलौकिक विग्रह है। **तत्र जातः** के अर्थ में **राष्ट्रपारवाराद्घखौ** सूत्र से **घ** प्रत्यय हुआ क्योंकि पहले भी **राष्ट्रावारपाराद् घखौ** के द्वारा राष्ट्र शब्द से घ प्रत्यय ही हुआ है अर्थात् यहाँ भी यही न्याय्य है। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् कर **राष्ट्र+घ** बना है। **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से घ के घकार के स्थान पर इय् आदेश करके इय, **राष्ट्र+इय** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके **राष्ट्र्+इय=राष्ट्रिय** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **राष्ट्रियः** सिद्ध हुआ।

अवारपारीणः। इस पार और उस पार उत्पन्न हुआ पदार्थ। **अवारपारे जातः** लौकिक विग्रह और **अवारपार ङि** अलौकिक विग्रह है। **तत्र जातः** के अर्थ में **राष्ट्रपारवाराद्घखौ** सूत्र से **ख** प्रत्यय हुआ क्योंकि पहले भी **राष्ट्रावारपाराद् घखौ** के द्वारा अवारपार शब्द से ख प्रत्यय ही हुआ है अर्थात् यहाँ भी यही न्याय्य है। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **अवारपार+ख** बना। **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से ख के खकार के स्थान पर ईन् आदेश करके ईन, **अवारपार+ईन** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके **अवारपार्+ईन=अवारपारीन** बना, णत्व करके सु और सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **अवारपारीणः** सिद्ध हुआ। इब इसी प्रकार **पारावारीणः, अवारीणः, पारीणः** आदि भी बनाइये।

इत्यादि। मूल के इत्यादि-शब्द से ऐसे अनेक शब्दों की सिद्धि कर लेनी चाहिये, यह सूचना दी गयी है।

१३९४. प्रावृषष्ठप् ४।३।२६॥

एण्यस्यापवादः। प्रावृषि जातः प्रावृषिकः।

प्रावृषष्ठप्। प्रावृषः पञ्चम्यन्तं, ठप् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तत्र जातः** का अनुवर्तन एवं **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त प्रावृष् इस प्रातिपदिक से जातः के अर्थ में ठप् प्रत्यय होता है।

एण्यस्यापवादः। यह सूत्र **प्रावृषं एण्यः** का अपवाद है। अन्य जगहों पर **प्रावृष्** से एण्य ही होता है किन्तु **जातः** अर्थ में **ठप्** होगा। पकार इत्संज्ञक है, **ठ** शेष रहता है। **ठ** के स्थान पर **ठस्येकः** से **इक** आदेश हो जाता है।

प्रावृषिकः। वर्षा में उत्पन्न होने वाला। **प्रावृषि जातः** लौकिक विग्रह और **प्रावृष्+ङि** अलौकिक विग्रह है। **प्रावृष एण्यः** को बाधकर **तत्र जातः** के अर्थ में **प्रावृषष्ठप्** से **ठप्** प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, इक आदेश होकर **प्रावृष्+इक** बना है। भसंज्ञक अकार का लोप करके **प्रावृष्+इक=प्रावृषिक** बना, एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य करके **प्रावृषिकः** सिद्ध हो जाता है।

१३९५. सञ्ज्ञायां शरदो वुञ् ४।३।२७॥

ऋत्वणोऽपवादः। शारदकाः दर्भविशेषा मुद्गविशेषाश्च।

सञ्ज्ञायां शरदो वुञ्। संज्ञायां सप्तम्यन्तं, शरदः पञ्चम्यन्तं, वुञ् प्रथमान्तम्। **तत्र जातः** का अनुवर्तन एवं **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त शरद-इस प्रातिपदिक से 'जातः' अर्थ में वुञ् प्रत्यय होता है, संज्ञा के विषय में।

ऋत्वणोऽपवादः। यह **सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रोऽण्** का अपवाद है। शरद्-शब्द से अन्य अर्थों में अण् ही होता है किन्तु **जातः** अर्थ में अण् न होकर वुञ् होगा।

शारदकाः दर्भविशेषा मुद्गविशेषाश्च। शरद ऋतु में उत्पन्न होने वाले कुश या मुंग आदि। **शरदि जाताः** विग्रह करके **शरद्+ङि** से **संज्ञायां शरदो वुञ्** सूत्र से वुञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **वु** के स्थान पर **युवोरनाकौ** से अकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि होकर **शारदिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होने पर बहुवचन में **शारदकाः** सिद्ध हो जाता है। यह कुश-विशेष या मुंगविशेष की संज्ञा है।

अब प्रसंगवश कुछ सूत्र उत्तरपद की आदिवृद्धि के लिये प्रस्तुत किये जा रहे हैं-

१३९६. उत्तरपदस्य ७।३।१०॥

अधिकारोऽयम्, 'हनस्तः-' (सू.२५७४) इत्यस्मात् प्राक्।

उत्तरपदस्य षष्ठ्यन्तमेकपदमधिकारसूत्रम्।

अधिकारोऽयम्, 'हनस्तः-' इत्यस्मात् प्राक्। अर्थात् यह सप्तमाध्याय का अधिकारसूत्र है और इसका अधिकार अष्टाध्यायीक्रम में **हनस्तोऽचिण्णलोः (७.३.३२)** से पहले तक अर्थात् **यथातथयथापुरयोः पर्यायेण (७.३.३१)** तक जाता है। यह वृद्धिप्रसंग का सूत्र है। इसके अधिकार में आने वाले सूत्र उत्तरपद के आदि-अच् की वृद्धि करते हैं।

१३९७. अवयवादृतोः ७।३।११॥

अवयववाचिनः पूर्वपदादृतुवाचिनोऽचामादेरचो वृद्धिः स्यात् ञिति णिति किति च तद्धिते परे। पूर्ववार्षिकः। अपरहैमनः। 'अवयवात्' किम्? पूर्वासु वर्षासु भवः पौर्ववर्षिकः। 'ऋतोर्वृद्धिमद्विधावयवानाम्' (वा.५६०) इति तदन्तविधिः पूर्वत्र। इह तु न, अवयवत्वाभावात्।

अवयवादृतोः। अवयवात् पञ्चम्यन्तम्, ऋतोः षष्ठ्यन्तम्। **तद्धितेष्वचामादेः** से **तद्धिते, अचाम्, आदेः** तीनों पदों की, **मृजेर्वृद्धिः** से **वृद्धिः** की, **अचो ञ्णिति** के दोनों पदों की और **किति च** से **किति** की अनुवृत्ति आती है। **उत्तरपदस्य** सूत्र का अधिकार है।

अवयववाची पूर्वपद से परे ऋतुवाची शब्द के अचों में जो आदि अच्, उसकी वृद्धि होती है, तद्धितसंज्ञक ञित् णित कित् प्रत्ययों के परे रहते।

यह **तद्धितेष्वचामादेः** और **किति च** सूत्र का अपवाद है। अवयव-शब्द का अर्थ है एकभाग। अधिकृत **उत्तरपदस्य** के द्वारा **पूर्वपदात्** का आक्षेप हो जाता है और उसका अन्वय **अवयवात्** के साथ हो जाता है।

पूर्ववार्षिकः। वर्षा के पहले उत्पन्न। **पूर्वं वर्षाणाम्** विग्रह करके **पूर्व+सु वर्षा+आम्** अलौकिक विग्रह में **पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे** (७१२) सूत्र से समास होने पर समासप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् लुक् होकर **पूर्ववर्षा** शब्द बना है। **पूर्ववर्षासु जातः** अर्थ में **पूर्ववर्षा+सुप्** से **वर्षाभ्यष्ठक्** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, ठ के स्थान पर इकादेश, तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **पूर्ववर्षा+इक** बना है। **तद्धितेष्वचामादेः** से प्राप्त आदिवृद्धि को बाधकर **अवयवादृतोः** सूत्र से उत्तरपद **वर्षा** के आदि अच् अकार की वृद्धि होती है- **पूर्ववार्षा+इक**। यहाँ अवयववाची पूर्वपद है- **पूर्व** और उससे पर ऋतुवाची उत्तरपद है- **वर्षा**। इसके बाद भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पूर्ववार्षिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पूर्ववार्षिकः** सिद्ध हो जाता है।

अपरहैमनः। हेमन्त के बाद उत्पन्न। **हेमन्तस्य अपरम्** विग्रह समास करके **अपरहेमन्त** शब्द बना है। **अपरहेमन्ते जातः** अर्थ में **सर्वत्राण् च तलोपश्च** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय और तकार का लोप करने पर **अपर+हेमन्+अ** बना है। **तद्धितेष्वचामादेः** से प्राप्त आदिवृद्धि को बाधकर **अवयवादृतोः** सूत्र से उत्तरपद **हेमन्** के आदि अच् एकार की वृद्धि होती है- **अपरहैमन्+अ**। यहाँ अवयववाची पूर्वपद है- **अपर** और उससे पर ऋतुवाची है- **हेमन्+अ**। इसके बाद भसंज्ञक अकार का लोप होकर **अपरहैमन** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **अपरहैमनः** सिद्ध हो जाता है।

'अवयवात्' किम्? पूर्वासु वर्षासु भवः पौर्ववर्षिकः। प्रकृतसूत्र में **अवयवात्** पद का निवेश होने से अवययवाची शब्द पूर्वपद होने पर ही उत्तरपद की आदिवृद्धि होती है, अन्यथा नहीं होती। अतः **पौर्ववर्षिकः** में पूर्वपद अवयववाची न होने के कारण उत्तरपद की आदिवृद्धि न होकर पूर्वपद की ही आदिवृद्धि हो जाती है, क्योंकि यहाँ **पूर्वासु वर्षासु भवः** विग्रह करके **तद्धितार्थोत्तपदसमाहारे च** सूत्र से समास होकर **पूर्ववर्षा** बनने के बाद **कालाट्ठञ्** सूत्र के द्वारा ठञ् प्रत्यय, इकादेश हुआ है। आदिवृद्धि और आकारलोप होकर **पौर्ववर्षिक** तथा स्वादिकार्य से **पौर्ववर्षिकः** सिद्ध हो जाता है। एकदेशी समास होने पर अवयववाची हो जाता है किन्तु तद्धितार्थविषयक समास में अवयव नहीं बनता।

'ऋतोर्वृद्धिमद्विधावयवानाम्' इति तदन्तविधिः पूर्वत्र। इह तु न, अवयवत्वाभावात्। अर्थात् **पूर्वत्र=पूर्ववार्षिक** शब्द में **ऋतोर्वृद्धिमद्विधावयवानाम्** (ऋतुवाची शब्द से वृद्धिनिमित्तक प्रत्यय का विधान होने पर तदन्तविधि होती है) वार्तिक से तदन्तविधि होने के कारण **वर्षाभ्यष्ठक्** से ठक् प्रत्यय सम्भव हो जाता है किन्तु **इह=पौर्ववर्षिकः** में अवयववाची न होने के कारण तदन्तविधि नहीं होती। अतः **वर्षाभ्यष्ठक्** से ठक् न होकर कालसामान्य से होने वाला ठञ् प्रत्यय होता है। भले ही पूर्वपद या उत्तरपद की वृद्धि के कारण रूपों में अन्तर आता हो किन्तु प्रत्ययों को देखा जाय अनुबन्धलोप होने पर दोनों प्रत्यय समान ही हैं और दोनों ही वृद्धिनिमित्तक हैं, तथापि दोनों में स्वर का भेद है।

१३९८. सुसर्वार्धाज्जनपदस्य ७।३।१२॥

उत्तरपदस्य वृद्धिः। सुपाञ्चालकः। सर्वपाञ्चालकः। अर्धपाञ्चालकः। 'जनपदतदवध्योः-' (सू.१३४८) इति वुञ्। 'सुसर्वार्धदिक्छब्देभ्यो जनपदस्य' (वा.५५९) इति तदन्तविधिः।

सुसर्वार्धाज्जनपदस्य। सुश्च सर्वश्च अर्धं च तेषां समाहारद्वन्द्वः सुसर्वार्धम्, तस्मात् सुसर्वार्धात् पञ्चम्यन्तं, जनपदस्य षष्ठ्यन्तम्। **तद्धितेष्वचामादेः** से **तद्धितेषु, अचाम्, आदेः** तीनों पदों की, **मृजेर्वृद्धिः** से **वृद्धिः** की, **अचो ञ्णिति** के दोनों पदों की और **किति च** से **किति** की अनुवृत्ति आती है। **उत्तरपदस्य** का अधिकार है।

सु, सर्व, अर्ध शब्द से पर में जनपदवाची उत्तरपद शब्द के अचों में जो आदि अच्, उसकी वृद्धि होती है, तद्धितसंज्ञक ञित् णित् कित् प्रत्ययों के परे रहते।

'जनपदतदवध्योः-' इति वुञ्। आगे के उदाहरणों में **जनपदतदवध्योश्च** सूत्र के द्वारा **वुञ्** प्रत्यय होता है।

सुपाञ्चालकः। सुन्दर पांचाल जनपद में उत्पन्न। **सु शोभना पञ्चालाः**

विग्रह में **कुगतिप्रादयः** सूत्र से समास होने के बाद **सुपञ्चाल** शब्द बना है। **सुपञ्चालेषु भवः** अर्थ में **सुपञ्चाल+सुप्** इस स्थिति में **जनपदतदवध्योश्च** के प्रसंग में **अवृद्धादपि बहुवचनविषयात्** सूत्र के द्वारा **वुञ्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, **वु** के स्थान पर **अक** आदेश होने पर **सुपञ्चाल+अक** बना है। यहाँ पर **सु** पूर्वपद और **पञ्चाल** उत्तरपद है। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि प्राप्त होने पर उसे बाधकर **सुसर्वार्धाज्जनपदस्य** सूत्र के द्वारा उत्तरपद के आदि अच् पकारोत्तरवर्ती अकार की वृद्धि होकर **सुपाञ्चाल+अक** बना है। भसंज्ञक अकार का लोप, प्रातिपदिकत्व की अक्षुण्णता के कारण स्वादिकार्य होकर **सुपाञ्चालकः** सिद्ध हो जाता है।

सर्वपाञ्चालकः। सुन्दर पांचाल जनपद में उत्पन्न। **सर्वे पञ्चालाः** विग्रह में **पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन** सूत्र से समास होने के बाद **सर्वपञ्चाल** शब्द बना है। **सर्वपञ्चालेषु भवः** अर्थ में **सर्वपञ्चाल+सुप्** इस स्थिति में **जनपदतदवध्योश्च** के प्रसंग में **अवृद्धादपि बहुवचनविषयात्** सूत्र के द्वारा **वुञ्** प्रत्यय, **अक** आदेश, **सुसर्वार्धाज्जनपदस्य** सूत्र के द्वारा उत्तरपद के आदि अच् पकारोत्तरवर्ती अकार की वृद्धि के बाद अकारलोप होकर **सर्वपाञ्चालक** बना है। स्वादिकार्य होकर **सर्वपाञ्चालकः** सिद्ध हो जाता है।

अर्धपाञ्चालकः। आधे पांचाल जनपद में उत्पन्न। **अर्धं पञ्चालानाम्** विग्रह में **अर्धं नपुंसकम्** सूत्र से समास होने के बाद **अर्धपञ्चाल** शब्द बना है। **अर्धपञ्चालेषु भवः** अर्थ में **अर्धपञ्चाल+सुप्** इस स्थिति में **वुञ्** प्रत्यय, **अक** आदेश, **सुसर्वार्धाज्जनपदस्य** सूत्र के द्वारा उत्तरपद की आदिवृद्धि और अकारलोप होकर **अर्धपाञ्चालक** बना है। स्वादिकार्य होकर **अर्धपाञ्चालकः** सिद्ध हो जाता है।

यहाँ पर यह शंका होती है कि जनपदवाची शब्द तो **पञ्चाल** है किन्तु **सुपञ्चाल, सर्वपञ्चाल, अर्धपञ्चाल** शब्दों से जनपदविषयक वुञ् कैसे सम्भव है? इसका समाधान मूलकार कर रहे हैं-

'सुसर्वार्धदिक्छब्देभ्यो जनपदस्य' इति तदन्तविधिः। अर्थात् उक्त शब्दों से **सुसर्वार्धदिक्छब्देभ्यो जनपदस्य** इस वार्तिक के द्वारा तदन्तविधि होने के कारण **सुपञ्चालादि** शब्दों से भी वुञ् प्रत्यय हो जाता है। यह वार्तिक **येन विधिस्तदन्तस्य (१. १.७२)** सूत्र के भाष्य में पठित है।

१३९९. दिशोऽमद्राणाम् ७।३।१३॥

दिग्वाचकाञ्जनपदवाचिनो वृद्धिः। पूर्वपाञ्चालकः।
'दिशः' किम्? पूर्वपञ्चालानामयं पौर्वपञ्चालः।
'अमद्राणाम्' किम्? पौर्वमद्रः। योगविभाग उत्तरार्थः।

दिशोऽमद्राणाम्। न मद्राः- अमद्रास्तेषाममद्राणाम्, नञ्तत्पुरुषः। दिशः

पञ्चम्यन्तम्, अमद्राणां षष्ठ्यन्तम्। **सुसर्वार्धाज्जनपदस्य** से **जनपदस्य** की, **तद्धितेष्वचामादेः** से **तद्धिते, अचाम्, आदेः** तीनों पदो की, **मृजेर्वृद्धिः** से **वृद्धिः** की, **अचो ञ्णिति** के दोनों पदों की और **किति च** से **किति** की अनुवृत्ति आती है। **उत्तरपदस्य** का अधिकार है।

दिशावाची शब्दों से पर में जो मद्र-शब्द-भिन्न जनपदवाची जो उत्तरपद, उनके अचों में जो आदि अच्, उसकी वृद्धि होती है, तद्धितसंज्ञक ञित् णित् कित् प्रत्ययों के परे रहते।

पूर्वपाञ्चालकः। पूर्वी पञ्चाल जनपद में उत्पन्न। **पूर्वेषु पञ्चालेषु भवः** विग्रह में **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** सूत्र से तद्धितार्थविषयक समास करके **पूर्वपञ्चाल** शब्द बना है। इसके बाद **अवृद्धादपि बहुवचनविषयात्** सूत्र के द्वारा **वुञ्** प्रत्यय, **अक** आदेश होने पर **तद्धितेष्वचामादेः** से प्राप्त आदिवृद्धि को बाधकर **दिशोऽमद्राणाम्** सूत्र के द्वारा उत्तरपद के आदि अच् पकारोत्तरवर्ती अकार की वृद्धि होकर, अकारलोप होकर **पूर्वपाञ्चालक** बना है। स्वादिकार्य होकर **पूर्वपाञ्चालकः** सिद्ध हो जाता है।

'दिशः' किम्? पूर्वपञ्चालानामयं पौर्वपञ्चालः। प्रकृतसूत्र में **दिशः** पद का निवेश होने से दिशावाची शब्द पूर्वपद होने पर ही यह उत्तरपद की वृद्धि होती है, अन्यथा नहीं होती। यहाँ **पूर्वपञ्चालानाम् अयम्** में पूर्व-शब्द दिशावाची न होकर कालवाची है। अतः उत्तरपद की वृद्धि नहीं हुयी। यहाँ **पूर्वपञ्चालानाम् अयम्** अर्थ में **तस्येदम्** सूत्र के द्वारा अण्-प्रत्यय होने पर **तद्धितेष्वचामादेः** सूत्र के द्वारा आदिवृद्धि होकर **पौर्वपञ्चालः** सिद्ध हो जाता है।

'अमद्राणाम्' किम्? पौर्वमद्रः। प्रकृतसूत्र में **अमद्राणाम्** पद का निवेश करके मद्र-शब्द में उत्तरपद की वृद्धि का निषेध किया गया है। यदि न किया जाता तो **पूर्वमद्रेषु भवः** अर्थ में **मद्रेभ्योऽञ्** (१३२९) सूत्र से विहित अञ् प्रत्यय के परे रहते उत्तरपद की आदिवृद्धि होकर अनिष्ट रूप बन जाता। **अमद्राणाम्** पद से निषेध किये जाने के कारण उत्तरपद मद्र-शब्द की आदिवृद्धि नहीं हुयी अपितु **तद्धितेष्वचामादेः** सूत्र के द्वारा आदिवृद्धि होकर होकर **पौर्वमद्रः** सिद्ध हो जाता है।

योगविभाग उत्तरार्थः। यद्यपि यहाँ उपर्युक्त दोनों सूत्रों के स्थान पर संयुक्त रूप में एक ही सूत्र **सुसर्वार्धदिशो जनपदस्यामद्राणाम्** पढ़ा जाता तो भी इष्ट रूपसिद्धि हो जाती तथापि योगविभाग करके दो सूत्र इस लिये बनाये गये हैं कि अग्रिम सूत्र **प्राचां ग्रामनगराणाम्** में केवल **दिशः** पद की ही अनुवृत्ति हो सके, अन्य पदों की न हो, क्योंकि **सन्नियोगशिष्टानां सह वा प्रवृत्तिः सह वा निवृत्तिः** के नियम से एकयोग में निर्दिष्ट शब्द एकसाथ प्रवृत्त और एकसाथ निवृत्त होते हैं। कुछ आचार्य यहाँ पर यह भी तर्क देते हैं कि सुसर्वार्ध से पर मद्र-शब्द का भी पर्युदास (निषेध) प्रसक्त होने लगेगा। वह न हो, एतदर्थ योगविभाग सार्थक है।

१४००. प्राचां ग्रामनगराणाम् ७।३।१४॥

दिशः परेषां ग्रामवाचिनां नगरवाचिनां चाङ्गानामवयवस्य च वृद्धिः। पूर्वेषुकामशम्यां भवः पूर्वैषुकामशमः। नगरे- पूर्वपाटलिपुत्रकः।

प्राचां ग्रामनगराणाम् ग्रामाश्च नगराणि च ग्रामनगराणि, तेषां ग्रामनगराणाम्, इतरेतरयोगद्वन्द्वो ग्रामनगराणाम्। **दिशोऽमद्राणाम्** से **दिशः** की, **तद्धितेष्वचामादेः** से **तद्धिते, अचाम्, आदेः** तीनों पदों की, **मृजेर्वृद्धिः** से **वृद्धिः** की, **अचो ञ्णिति** के दोनों पदों की और **किति च** से **किति** की अनुवृत्ति आती है। **उत्तरपदस्य** और **अङ्गस्य** का अधिकार है।

दिशावाची शब्दों से उत्तर विद्यमान जो प्राच्य देशाशन्तर्गत में जो ग्रामवाची और नगरवाची उत्तरपद अङ्ग, उनके अचों में जो आदि अच्, उसकी वृद्धि होती है, तद्धितसंज्ञक ञित् णित् कित् प्रत्ययों के परे रहते।

यह भी उत्तरपद के आदि अच् की वृद्धि करता है। अतः **तद्धितेष्वचामादेः** और **किति च** का अपवाद है।

पूर्वेषुकामशम्यां भवः पूर्वैषुकामशमः। पूर्वी इषुकामशमी ग्राम में उत्पन्न। **पूर्वा चासौ ईषुकामशमी च** विग्रह करके **दिक्संख्ये संज्ञायाम्** सूत्र से समासादि होकर **पूर्व+इषुकामशमी** बना है। **तत्र जातः** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि प्राप्त थी किन्तु प्राच्य-ग्रामवाची शब्द उत्तरपद होने के कारण **प्राचां ग्रामनगराणाम्** सूत्र से उत्तरपद **इषुकामशमी** के आदि अच् इकार की वृद्धि हो जाती है। **पूर्व+ऐषुकामशमी** में **वृद्धिरेचि** से वृद्धि होकर **पूर्वैषुकामशमी+अ** बना है। भसंज्ञक ईकार का लोप होकर **पूर्वैषुकामशम** और स्वादिकार्य होकर **पूर्वैषुकामशमः** सिद्ध हो जाता है। संज्ञावाची होने के कारण **पूर्वेषुकामशमी** से **दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां ञः** सूत्र से **ञ**-प्रत्यय नहीं हुआ है। समुदाय के ग्रामवाची होते हुए पर उत्तरपद की भी ग्रामसंज्ञा है। यह ग्रामवाची उत्तरपद का उदाहरण है।

नगरे- नगरवाची उत्तरपद का उदाहरण दिया जा रहा है-

पूर्वपाटलिपुत्रकः। पूर्वी पाटलीपुत्र नगर में उत्पन्न। **पूर्वश्चासौ पाटलिपुत्रश्च** विग्रह करके **पूर्वापरप्रथमचरमजघन्यसमानमध्यमध्यमवीराश्च** सूत्र से समासादि होकर **पूर्वपाटलिपुत्र** बना है। **पाटलिपुत्रे जातः** अर्थ में **रोपधेतोः प्राचाम्** सूत्र के द्वारा **वुञ्** प्रत्यय, अकादेश होने पर **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि प्राप्त थी किन्तु प्राच्य-नगरवाची शब्द के उत्तरपद होने के कारण **प्राचां ग्रामनगराणाम्** सूत्र से उत्तरपद **पाटलिपुत्र** के आदि अच् आकार की ही पर्जन्यवल्लक्षणन्यायेन वृद्धि हो जाती है। भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पूर्वपाटलिपुत्रक** और स्वादिकार्य होकर **पूर्वपाटलिपुत्रकः** सिद्ध हो जाता है।

प्रसंगप्राप्त उत्तरपद में आदिवृद्धि का विवेचन करके पुनः तद्धितप्रत्ययविधायक सूत्रों का विवेचन कर रहे हैं। यहाँ पर यह नहीं भूलना चाहिये कि अभी हम **तत्र जातः** के अर्थ में ही चल रहे हैं।

१४०१. पूर्वाह्णापराह्णार्द्रामूलप्रदोषावस्कराद् वुन् ४।३।२८॥

पूर्वाह्णकः। अपराह्णकः। आर्द्रकः। मूलकः। प्रदोषकः। अवस्करकः।

पूर्वाह्णापराह्णार्द्रामूलप्रदोषावस्कराद् वुन्। पूर्वाह्णश्च अपराह्णश्च आर्द्रा च मूलं च प्रदोषश्च अवस्करश्च तेषां समाहारद्वन्द्वः पूर्वाह्णापराह्णार्द्रामूलप्रदोषावस्करम्, तस्मात् पूर्वाह्णापराह्णार्द्रामूलप्रदोषावस्कराद् पञ्चम्यन्तं, वुन् प्रथमान्तम्। **सञ्ज्ञायां शरदो वुञ्** सूत्र से **संज्ञायाम्** की और **तत्र जातः** के दोनों पदों की अनुवृत्ति है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार यथावत् विद्यमान है।

सप्तम्यन्त पूर्वाह्ण, अपराह्ण, आर्द्रा, मूल, प्रदोष और अवस्कर प्रातिपदिकों से 'जातः' अर्थ में वुन् प्रत्यय होता है, संज्ञा के विषय में।

वुन् में नकार इत्संज्ञक है, **वु** बचता है और उसके स्थान पर **युवोरनाकौ** सूत्र से **अक** आदेश हो जाता है। यह प्रत्यय वृद्धिनिमित्तक नहीं है।

यह अनेक सूत्रों का अपवाद है। जैसे कि **पूर्वाह्ण** और **अपराह्ण** शब्दों से **विभाषा पूर्वाह्णापराह्णाभ्याम्** से विकल्प से **ट्यु** और **ट्युल्** प्रत्यय प्राप्त थे। उनका यह अपवाद है। **जातः** अर्थ में तो **वुन्** ही होगा और शेष भवादि अर्थों में उक्त प्रत्यय होंगे।

आर्द्रा और **मूल** शब्द नक्षत्रवाची हैं। इनसे भी **सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय प्राप्त था, उसका प्रकृतसूत्र अपवाद है। जातार्थ में वुन् ही होगा और भवादि अर्थ में अण्। **प्रदोष** शब्द से **निशाप्रदोषाभ्यां च** सूत्र से ठञ् प्रत्यय प्राप्त था, उसका यह अपवाद है। **अवस्कर** शब्द से **तत्र जातः** सूत्र से ही औत्सर्गिक प्रत्यय प्राप्त था, उसका यह अपवाद है।

पूर्वाह्णकः। पूर्वाह्ण काल में (दोपहर से पहले) उत्पन्न। **पूर्वाह्णे जातः** अर्थ में **पूर्वाह्ण+ङि** से **पूर्वाह्णापराह्णार्द्रामूलप्रदोषावस्कराद् वुन्** सूत्र से वुन् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, वु के स्थान पर अकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पूर्वाह्णक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पूर्वाह्णकः** सिद्ध हो जाता है।

अपराह्णकः। अपराह्ण काल में (दोपहर के बाद) उत्पन्न। **अपराह्णे जातः** अर्थ में **अपराह्ण+ङि** से **पूर्वाह्णापराह्णार्द्रामूलप्रदोषावस्कराद् वुन्** सूत्र से वुन् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, वु के स्थान पर अकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **अपराह्णक** और स्वादिकार्य होकर **अपराह्णकः** सिद्ध हो जाता है।

आर्द्रकः। आर्द्रा नक्षत्र में उत्पन्न। **आर्द्रायां जातः** अर्थ में **आर्द्रा+ङि** से **पूर्वाह्णापराह्णार्द्रामूलप्रदोषावस्कराद् वुन्** सूत्र से वुन् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, वु के स्थान पर अकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक आकार का लोप होकर **आर्द्रक** और स्वादिकार्य होकर **आर्द्रकः** सिद्ध हो जाता है।

मूलकः। मूल नक्षत्र में उत्पन्न। **मूले जातः** अर्थ में **मूल+ङि** से **पूर्वाह्णापराह्णार्द्रा-मूलप्रदोषावस्कराद् वुन्** सूत्र से वुन् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, वु के स्थान पर अकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **मूलक** और स्वादिकार्य होकर **मूलकः** सिद्ध हो जाता है।

प्रदोषकः। प्रदोष काल में उत्पन्न। **प्रदोषे जातः** अर्थ में **प्रदोष+ङि** से **पूर्वाह्णापराह्णार्द्रामूलप्रदोषावस्कराद् वुन्** सूत्र से वुन् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, वु के स्थान पर अकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **प्रदोषक** और स्वादिकार्य होकर **प्रदोषकः** सिद्ध हो जाता है।

अवस्करकः। मल (गन्दी जगह) नक्षत्र में उत्पन्न। **अवस्करे जातः** अर्थ में **अवस्कर+ङि** से **पूर्वाह्णापराह्णार्द्रामूलप्रदोषावस्कराद् वुन्** सूत्र से वुन् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, वु के स्थान पर अकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **अवस्करक** और स्वादिकार्य होकर **अवस्करकः** सिद्ध हो जाता है।

१४०२. पथः पन्थ च ४।३।२९॥
पथि जातः पन्थकः।

पथः पन्थ च। पथः पञ्चम्यन्तं, पन्थ इति लुप्तप्रथमाकं पदं, चाव्ययम्। पूर्वाह्णापराह्णार्द्रामूलप्रदोषावस्कराद् वुन् से **वुन्** की और **तत्र जातः** के दोनों पदों की अनुवृत्ति है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार यथावत् विद्यमान है।

सप्तम्यन्त पथिन्-शब्द से 'जातः' अर्थ में वुन् प्रत्यय होता है और प्रत्यय की सन्निधि में पथिन्-शब्द के स्थान पर पन्थ आदेश भी होता है।

यह सूत्र प्रकृति के स्थान पर आदेश का भी विधान कर रहा है। **पथिन्-शब्द** के पञ्चमी और षष्ठी के एकवचन में **पथः** रूप बनता है। सूत्र में पठित **पथः** को पञ्चम्यन्त मानकर इसकी आवृत्ति की जाती है और आवृत्त **पथः** को षष्ठ्यन्त बना लिया जाता है। प्रत्ययविधि के लिये पञ्चम्यन्त और आदेशविधि के लिये षष्ठ्यन्त।

पथि जातः पन्थकः। मार्ग में उत्पन्न। **पथि जातः** अर्थ में **पथिन्+ङि** से **पथः पन्थ च** सूत्र से वुन् प्रत्यय के साथ प्रकृति के स्थान पर **पन्थ** आदेश, प्रत्यय में अनुबन्धलोप, वु के स्थान पर अकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पन्थक** और स्वादिकार्य होकर **पन्थकः** सिद्ध हो जाता है।

१४०३. अमावास्याया वा ४।३।३०॥

अमावास्यकः, आमावास्यः।

अमावास्याया वा। अमावास्यायाः पञ्चम्यन्तं, वाव्ययम्। **पूर्वाह्णापराह्णार्द्रा-मूलप्रदोषावस्कराद् वुन्** से **वुन्** की और **तत्र जातः** के दोनों पदों की अनुवृत्ति है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार यथावत् विद्यमान है।

सप्तम्यन्त अमावास्या-शब्द से 'जातः' अर्थ में विकल्प से वुन् प्रत्यय होता है।

वुन् न होने के पक्ष में **सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्** सूत्र से ही जातार्थ में अण् प्रत्यय होगा, क्योंकि **अमावास्या** शब्द का पाठ सन्धिवेलादिगण में है। **अमावास्या** और **अमावस्या** दो शब्द हैं। एकदेशविकृतन्यायेन **अमावस्या** शब्द से भी ये प्रत्यय होंगे।

अमावास्यकः, आमावास्यः। अमावास्या तिथि में उत्पन्न। **अमावास्यायां जातः** अर्थ में **अमावास्या+ङि** से **अमावास्याया वा** सूत्र से विकल्प से वुन् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, अकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक आकार का लोप होकर **अमावास्यक** शब्द बनता है। वुन् न होने के पक्ष में **सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि और भसंज्ञक आकार का लोप होकर **आमावास्य** शब्द बनता है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यार्येन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **अमावास्यकः** और **आमावास्यः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं। **अमावस्या** शब्द के पक्ष में भी उक्त दोनों प्रत्यय होकर **अमावस्यकः** और **आमावस्यः** ये दो रूप बनते हैं।

१४०४. अ च ४।३।३१॥

अमावास्यः।

अ च। अ इति लुप्तप्रथमाकं पदं, चाव्ययम्। **तत्र जातः** के दोनों पदों की अनुवृत्ति है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार यथावत् विद्यमान है।

सप्तमी-समर्थ अमावास्या-शब्द से 'जातः' अर्थ में अ-प्रत्यय भी होता है।

अण् और **अ** में अनुबन्ध का अन्तर है। अ-प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि नहीं होती।

अमावास्यः। अमावास्या तिथि में उत्पन्न। **अमावास्यायां जातः** अर्थ में **अ च** सूत्र से अ-प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक आकार का लोप होकर **अमावास्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **अमावास्यः** सिद्ध हो जाता है। णित् न होने के कारण आदिवृद्धि नहीं हुयी।

१४०५. सिन्ध्वपकराभ्यां कन् ४।३।३२॥

सिन्धुकः। कच्छाद्यणि मनुष्यवुञि च प्राप्ते। अपकरकः। औत्सर्गिकेऽणि प्राप्ते-

सिन्ध्वपकराभ्यां कन्। सिन्धुश्च अपरकश्च सिन्ध्वपकरौ, ताभ्यां सिन्ध्वपकराभ्यां पञ्चम्यन्तं, कन् प्रथमान्तम्। **तत्र जातः** के दोनों पदों की अनुवृत्ति है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार यथावत् विद्यमान है।

सप्तमी-समर्थ सिन्धु और अपकर प्रातिपदिकों से 'जातः' अर्थ में कन् प्रत्यय भी होता है।

कन् में नकार इत्संज्ञक है, **क** बचता है।

कच्छाद्यणि मनुष्यवुञि च प्राप्ते। सिन्धु और अपकर शब्दों का कच्छादिगण में पाठ होने के कारण **कच्छादिभ्योऽण्** से अण् प्रत्यय की प्राप्ति थी और **मनुष्यतत्स्थयोर्वुञ्** से वुञ् प्रत्यय की प्राप्ति थी किन्तु जातार्थ में उक्त दोनों प्रत्ययों का यह अपवाद है।

सिन्धुकः। सिन्धु जनपद में उत्पन्न। **सिन्धौ जातः** अर्थ में **सिन्धु+ङि** से **सिन्ध्वपकराभ्यां कन्** सूत्र से कन्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **सिन्धुक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सिन्धुकः** सिद्ध हो जाता है।

अपकरकः। अपकर नामक देश में उत्पन्न। **अपकरे जातः** अर्थ में **अपकर+ङि** से **सिन्ध्वपकराभ्यां कन्** सूत्र से कन्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **अपकरक** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **अपकरकः** सिद्ध हो जाता है।

औत्सर्गिकेऽणि प्राप्ते- अर्थात् **सिन्धु** और **अपकर** शब्दों से औत्सर्गिक अण् मात्र प्राप्त होने पर अगला सूत्र **अणञौ च** लगता है। तात्पर्य यह है कि उक्त शब्दों कर कच्छादिगण में पाठ होने के कारण **कच्छादिभ्योऽण्** से अण् प्रत्यय की प्राप्ति थी और **मनुष्यतत्स्थयोर्वुञ्** से वुञ् प्रत्यय की प्राप्ति थी किन्तु जातार्थ में उक्त दोनों प्रत्ययों का अपवादभूत **कन्** प्रत्यय हुआ है। जब दो शब्दों से औत्सर्गिक अण् प्राप्त होता है तब तो अग्रिम सूत्र द्वारा **सिन्धु** शब्द से **अण्** और **अपकर** शब्द से **अञ्** प्रत्यय होता है।

१४०६. अणञौ च ४।३।३३॥

क्रमात् स्तः। सैन्धवः। आपकरः।

अणञौ च। अण् च अञ् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वोऽणञौ प्रथमान्तम्, चाव्ययम्। **सिन्ध्वपकराभ्यां कन्** से **सिन्ध्वपकराभ्याम्** की और **तत्र जातः** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा**

और **शेषे** का अधिकार यथावत् विद्यमान है। **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** की उपस्थिति होती है।

सप्तमी-समर्थ सिन्धु और अपकर प्रातिपदिकों से 'जातः' अर्थ में क्रमशः अण् और अञ् प्रत्यय होते हैं।

यद्यपि **अण्** और **अञ्** में अनुबन्धलोप होने पर केवल अ ही बचता है, तथापि स्वरभेद के कारण अलग-अलग दो प्रत्ययों का विधान किया गया है।

सैन्धवः। सिन्धु जनपद में उत्पन्न। **सिन्धौ जातः** अर्थ में सिन्धु+ङि से **अणञौ च** सूत्र से अण्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, उकार को **ओर्गुणः** से गुण ओकार और उसको अवादेश होने पर **सैन्धव** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सैन्धवः** सिद्ध हो जाता है।

आपकरः। अपकर नामक देश में उत्पन्न। **अपकरे जातः** अर्थ में **अपकर+ङि** से **अणञौ च** सूत्र से अञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आपकर** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **आपकरः** सिद्ध हो जाता है।

१४०७. श्रविष्ठाफल्गुन्यनुराधास्वातितिष्यपुनर्वसुहस्तविशाखा-षाढाबहुलाल्लुक् ४।३।३४॥

एभ्यो नक्षत्रवाचिभ्यः परस्य जातार्थप्रत्ययस्य लुक् स्यात्।

श्रविष्ठाफल्गुन्यनुराधास्वातितिष्य०। श्रविष्ठा च फल्गुन्यौ च अनुराधे च स्वातिश्च तिष्यश्च पुनर्वसू च हस्तश्च विशाखा च अषाढा च बहुला च तेषां समाहारद्वन्द्वः श्रविष्ठाफल्गुन्यनुराधास्वातितिष्यपुनर्वसुहस्तविशाखाषाढाबहुलम्, तस्मात् श्रविष्ठाफल्गुन्यनुराधा-स्वातितिष्यपुनर्वसुहस्तविशाखाषाढाबहुलात् पञ्चम्यन्तं, लुक् प्रथमान्तम्। **तत्र जातः** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है। **जातः, प्रत्ययः, तद्धिताः** का षष्ठी में विपरिणाम कर लेना चाहिये- **जातस्य तद्धितस्य प्रत्ययस्य**।

सप्तमी-समर्थ नक्षत्रवाची श्रविष्ठा, फल्गुनी, अनुराधा, स्वाति, तिष्य, पुनर्वसु, हस्त, विशाखा, अषाढा और बहुला प्रातिपदिकों से विहित जातार्थ प्रत्यय का लुक् होता है।

सूत्रोक्त दसों शब्द नक्षत्रवाची हैं और इनसे **सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्** सूत्र से विहित जातार्थक अण् प्रत्यय का लुक् किया गया है। जातार्थ-प्रत्यय के लुक् के बाद अगले सूत्र से स्त्रीप्रत्यय टाप् आदि का भी लुक् किया जाता है।

१४०८. लुक् तद्धितलुकि १।२।४९॥

तद्धितलुकि सत्युपसर्जन-स्त्रीप्रत्ययस्य लुक् स्यात्।

श्रविष्ठासु जातः श्रविष्ठः। फाल्गुन इत्यादि।

'चित्रारेवतीरोहिणीभ्यः स्त्रियामुपसंख्यानम्' (वा.२८५७)। चित्रायां जाता चित्रा। रेवती रोहिणी आभ्यां 'लुक्तद्धितलुकि' इति लुकि कृते पिप्पल्यादेराकृतिगणत्वात् पुनर्ङीष्।

'फल्गुन्यषाढाभ्यां टानौ वक्तव्यौ' (वा.२८५८)। स्त्रियामित्येव। फल्गुनी। अषाढा।

'श्रविष्ठाषाढाभ्यां छण् वक्तव्यः' (वा.२८५९)। अस्त्रियामपि। श्राविष्ठीयः। आषाढीयः।

लुक् तद्धितलुकि। तद्धितस्य लुक् तद्धितलुक् तस्मिन् तद्धितलुकि। लुक् प्रथमान्तं, तद्धितलुकि सप्तम्यन्तम्। **गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य** के **गोस्त्रियोः** में से एकदेश **स्त्रियाः** की और **उपसर्जनस्य** की अनुवृत्ति आती है।

तद्धित का लुक् होने पर उपसर्जन-स्त्री-प्रत्यय का लुक् होता है।

अनुवृत्त **उपसर्जनस्य** शब्द का अर्थ अप्रधान है, न कि उपसर्जनसंज्ञक। तद्धितप्रत्यय के लुक् होने पर यदि तद्धितप्रत्यय की प्रकृति स्त्रीप्रत्ययान्त हो तो उक्त स्त्रीप्रत्यय-मात्र का लुक् किया जाता है। तद्धित का लुक् होने पर तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा आदि कार्य तो होते हैं किन्तु आदिवृद्धि नहीं होती।

श्रविष्ठासु जातः श्रविष्ठः। श्रविष्ठा=श्रवण-नक्षत्र में उत्पन्न। **श्रविष्ठासु जातः** विग्रह करके **श्रविष्ठा+सुप्** में **सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर उसका **श्रविष्ठाफल्गुन्यनुराधास्वातितिष्यपुनर्वसुहस्तविशाखाषाढाबहुलाल्लुक्** से लुक् हो जाता है। अतः श्रविष्ठा में विद्यमान स्त्रीत्वबोधक प्रत्यय टाप् का **लुक् तद्धितलुकि** से लुक् हो जाने से **श्रविष्ठ** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **श्रविष्ठः** सिद्ध हो जाता है। स्त्रीत्वविवक्षा में पुनः टाप् होकर **श्रविष्ठा** बनता है।

फाल्गुनः। फल्गुनी-नक्षत्र में उत्पन्न। **फल्गुन्यां जातः** विग्रह करके **फल्गुनी+ङि** से अण् प्रत्यय होने पर उसका लुक् होकर **फल्गुनी** बना है। **फल्गुनी** में विद्यमान स्त्रीत्वबोधक प्रत्यय ङीप् का **लुक् तद्धितलुकि** से लुक् हो जाने से **फल्गुन** शब्द बन जाता है और एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **फल्गुनः** सिद्ध हो जाता है।

इत्यादि। अर्थात् **इत्यादि**-शब्द के द्वारा यह संकेत दिया गया है कि सूत्रोक्त शेष शब्दों से भी विहित तद्धित-प्रत्यय का इसी तरह लुक् करने पर स्त्रीत्वबोधक प्रत्यय का भी लुक् करना चाहिये। जैसे कि-

अनुराधासु जातः (अनुराधा+अण्) **अनुराधः**। अनुराधा-नक्षत्र में उत्पन्न।
स्वात्यां जातः (स्वाति+अण्) **स्वातिः**। स्वाति-नक्षत्र में उत्पन्न।
तिष्ये जातः (तिष्य+अण्) **तिष्यः**। तिष्य-नक्षत्र में उत्पन्न।
पुनर्वस्वोः जातः (पुनर्वसु+अण्) **पुनर्वसुः**। पुनर्वसु-नक्षत्र में उत्पन्न।
हस्ते जातः (हस्त+अण्) **हस्तः**। हस्त-नक्षत्र में उत्पन्न।
विशाखायां जातः (विशाखा+अण्) **विशाखः**। विशाखा-नक्षत्र में उत्पन्न।
अषाढायां जातः (अषाढा+अण्) **अषाढः**। अषाढा-नक्षत्र में उत्पन्न।
बहुलायां जातः (बहुला+अण्) **बहुलः**। कृत्तिका-नक्षत्र में उत्पन्न।

इसके अतिरिक्त उक्त विषयों में कुछ अन्य वार्तिकों के द्वारा व्यवस्था दी जा रही है।

चित्रारेवतीरोहिणीभ्यः स्त्रियामुपसंख्यानम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- चित्रा, रेवती और रोहिणी शब्दों से स्त्रीत्वविवक्षा में जातादि अर्थ में विहित प्रत्यय का लुक् कहना चाहिये। **श्रविष्ठाफल्गुन्यनुराधास्वातितिष्यपुनर्वसुहस्तविशाखाषाढाबहुलाल्लुक्** सूत्र में उक्त शब्दों के पठित न होने के कारण वार्तिक का अवतरण किया गया है और दूसरी बात यह है कि प्रकृत वार्तिक की प्रवृत्ति में तद्धितप्रत्ययान्त शब्द का वाच्य स्त्रीलिङ्ग ही होना चाहिये। लुक् होने के बाद **लुक् तद्धितलुकि** की प्रवृत्ति होती ही है।

चित्रायां जाता चित्रा। चित्रा-नक्षत्र में उत्पन्न स्त्री। **चित्रायां जाता** विग्रह करके **चित्रा+ङि** से अण् प्रत्यय होने पर उसका **चित्रारेवतीरोहिणीभ्यः स्त्रियामुपसंख्यानम्** वार्तिक से लुक् होकर **चित्रा** बना है। इसके बाद विद्यमान स्त्रीत्वबोधक प्रत्यय टाप् का **लुक् तद्धितलुकि** से लुक् हो जाने से **चित्र** शब्द बन जाता है। पुनः स्त्रीत्वविवक्षा में **अजाद्यतष्टाप्** से टाप् प्रत्यय होकर **चित्रा** शब्द ही बन जाता है। स्वादिकार्य होकर **चित्रा** सिद्ध हो जाता है।

रेवती रोहिणी आभ्यां 'लुक् तद्धितलुकि' इति लुकि कृते पिप्पल्यादेराकृतिगणत्वात् पुनर्ङीष्। अर्थात् **रेवती** और **रोहिणी** शब्दों से अण् प्रत्यय, उसका लुक् होने पर **लुक् तद्धितलुकि** सूत्र के द्वारा गौरादिगणविहित स्त्रीबोधक प्रत्यय ङीष् का लुक् होने पर भी पुनः स्त्रीत्वविवक्षा में ङीष् प्रत्यय किया जाता है, क्योंकि रेवती और रोहिणी शब्दों का पाठ **पिप्पल्यादिगण** में है। **पिप्पल्यादि** के आकृतिगण होने के कारण पुनः ङीष् होता है। स्त्रीत्वार्थविशिष्ट **रेवती** और **रोहिणी** शब्दों का पिप्पल्यादिगण में पाठ होने में भाष्य में उदाहरण दिया जाना ही प्रमाण है। अतः **रेवती** और **रोहिणी** शब्दों से जातार्थप्रत्यय होने के बाद उसका लुक् होने पर भी पुनः ङीष् होकर **रेवती, रोहिणी** शब्द ही बनते हैं। **रेवत्यां जाता रेवती** और **रोहिण्यां जाता रोहिणी।**

ध्यान रहे कि जातादि अर्थ में तद्धितप्रत्यय का लुक् होने पर स्त्रीत्वबोधक प्रत्यय का लुक् हो जाता है, जिससे कि टाप्, ङीप् आदि की निवृत्ति हो जाती है और तद्धितान्त शब्द के स्त्रीत्वविशिष्ट होने पर यदि विशेष सूत्रों से ङीप् आदि की प्राप्ति है

तो वे हो जाते हैं, अन्यथा **अजाद्यतष्टाप्** से औत्सर्गिक टाप् प्रत्यय तो हो ही जाता है। वाच्य के स्त्रीत्व न होने पर तो पुंल्लिंग ही रह जाता है, जैसे कि **फल्गुनः, श्रविष्ठः** इत्यादि।

फल्गुन्यषाढाभ्यां टानौ वक्तव्यौ। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- फल्गुनी और अषाढा शब्दों से जातादि अर्थों में स्त्रीलिङ्ग वाच्य होने पर अण्-प्रत्यय के अपवादस्वरूप क्रमशः ट और अन् प्रत्यय होते हैं। **सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्** का यह अपवाद है।

स्त्रियामित्येव। उपर्युक्त वार्तिक स्त्रीलिंग वाच्य होने पर ही प्रवृत्त होता है। ऐसा महाभाष्य से निर्देश प्राप्त है। यद्यपि भाष्यकार ने प्रकृत वार्तिक की बहुत उपयोगिता नहीं मानी है, उसका कार्य **नक्षत्रेभ्यो बहुलम्** (४.३.३४) सूत्र से ही बहुलतया लुक् करके सिद्ध होता है, ऐसा कहा है तथापि वार्तिक के रहते यह केवल स्त्रीलिंग का विषय बनना चाहिये, ऐसा भाष्यकार का आशय है।

फल्गुनी। फल्गुनी-नक्षत्र में उत्पन्न स्त्री। **फल्गुन्यां जाता** विग्रह करके **फल्गुनी+ङि** से अण् प्रत्यय प्राप्त होने पर उसको बाधकर **फल्गुन्यषाढाभ्यां टानौ वक्तव्यौ** वार्तिक से **ट** प्रत्यय हो जाता है। अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **फल्गुनी+अ** बना है। यहाँ पर विशेष वार्तिक से ट-प्रत्यय के विधान के फलस्वरूप **श्रविष्ठाफल्गुन्यनुराधास्वातितिष्यपुनर्वसुहस्तविशाखाषाढाबहुलाल्लुक्** सूत्र से उसका लुक् नहीं होता, अन्यथा विधान ही व्यर्थ हो जाता। तद्धित का लुक् न होने के कारण **लुक् तद्धितलुकि** सूत्र भी नहीं लगता। अतः **फल्गुनी+अ** में भसंज्ञक ईकार का **यस्येति च** से लोप होकर **फल्गुन** शब्द बन जाता है। यह टिदन्त शब्द बन गया है। अतः स्त्रीत्वविवक्षा में **टिड्ढाणञ्०** सूत्र से ङीप् प्रत्यय, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **फल्गुनी** ही बन जाता है। स्वादिकार्य होकर **फल्गुनी** सिद्ध हो जाता है।

अषाढा। अषाढा-नक्षत्र में उत्पन्न स्त्री। **अषाढायां जाता** विग्रह करके **अषाढा+ङि** से अण् प्रत्यय प्राप्त होने पर उसको बाधकर **फल्गुन्यषाढाभ्यां टानौ वक्तव्यौ** वार्तिक से **अन्** (**अ**) प्रत्यय हो जाता है। अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **अषाढा+अ** बना है। यहाँ पर विशेष वार्तिक से अन्-प्रत्यय के विधान के फलस्वरूप **श्रविष्ठाफल्गुन्यनुराधास्वातितिष्यपुनर्वसुहस्तविशाखाषाढाबहुलाल्लुक्** सूत्र से उसका लुक् नहीं होता, अन्यथा विधान ही व्यर्थ हो जाता। तद्धित लुक् न होने के कारण **लुक् तद्धितलुकि** सूत्र भी नहीं लगता। अतः **अषाढा+अ** में भसंज्ञक आकार का **यस्येति च** से लोप होकर **अषाढ** शब्द बन जाता है। स्त्रीत्वविवक्षा में **अजाद्यतष्टाप्** सूत्र से टाप् प्रत्यय, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **अषाढा** ही बन जाता है। स्वादिकार्य होकर **अषाढा** सिद्ध हो जाता है।

श्रविष्ठाषाढाभ्यां छण् वक्तव्यः। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- स्त्रीलिङ्ग वाच्य हो या न हो, श्रविष्ठा और अषाढा शब्दों से छण् प्रत्यय होता है। णकार इत्संज्ञक

है और छकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र के द्वारा **ईय्** आदेश होता है। णित् होने के कारण आदिवृद्धि भी होती है। विधानसामर्थ्य से ही इस प्रत्यय का भी **.श्रविष्ठाफल्गुन्यनुराधा०** सूत्र से लुक् नहीं होता।

अस्त्रियामपि। अर्थात् प्रकृत वार्तिक स्त्रीलिंग और अस्त्रीलिंग उभयत्र प्रवृत्त होता है। तात्पर्य यह है कि भाष्यनिर्देश के कारण ही इस वार्तिक में **स्त्रियाम्** का सम्बन्ध नहीं रहता।

श्राविष्ठीयः। श्रविष्ठा=श्रवण-नक्षत्र में उत्पन्न। **श्रविष्ठासु जातः** विग्रह करके **श्रविष्ठा+सुप्** में **सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्** सूत्र से अण् प्रत्यय प्राप्त होने पर उसे बाधकर **श्रविष्ठाषाढाभ्यां छण् वक्तव्यः** वार्तिक से **छण्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, ईय् आदेश होने पर विशेष विधान-सामर्थ्य से उसका **श्रविष्ठफल्गुन्यनुराधास्वातितिष्यपुनर्वसु-हस्तविशाखाषाढाबहुलाल्लुक्** से लुक् नहीं होता। फलतः **श्रविष्ठा+ईय** में आदिवृद्धि और भसंज्ञक आकार का लोप होकर **श्राविष्ठीय** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **श्राविष्ठीयः** सिद्ध हो जाता है।

आषाढीयः। अषाढा-नक्षत्र में उत्पन्न। **अषाढायां जातः** विग्रह करके **अषाढा+ङि** से प्राप्त अण् प्रत्यय को बाधकर **श्रविष्ठाषाढाभ्यां छण् वक्तव्यः** वार्तिक से **छण्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, ईय् आदेश, उसका विधानसामर्थ्यात् अलुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक आकार का लोप होकर **आषाढीय** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आषाढीयः** सिद्ध हो जाता है।

अब प्रसंगवश उत्तरपद के आदि-अच् की वृद्धि के लिये साप्तमिक सूत्र का अवतरण कर रहे हैं-

१४०९. जे प्रोष्ठपदानाम् ७।३।१८॥

प्रोष्ठपदानामुत्तरपदस्याचामादेरचो वृद्धिः स्याज्जातार्थे ञिति णिति किति च। प्रोष्ठपदासु जातः प्रोष्ठपादो माणवकः। 'जे' इति किम्? प्रोष्ठपदासु भवः प्रौष्ठपदः। बहुवचननिर्देशात् पर्यायोऽपि गृह्यते। भद्रपादः।

जे प्रोष्ठपदानाम्। जे सप्तम्यन्तं, प्रोष्ठपदानां षष्ठीबहुवचनम्। **तद्धितेष्वचामादेः** से **तद्धिते, अचाम्, आदेः** तीनों पदों की, **मृजेर्वृद्धिः** से **वृद्धिः** की, **अचो ञ्णिति** के दोनों पदों की और **किति च** से **किति** की अनुवृत्ति आती है। **उत्तरपदस्य** सूत्र का और **अङ्गस्य** का अधिकार है।

जातार्थ में विहित जो तद्धित-संज्ञक ञित्, णित् और कित् प्रत्यय, उसके परे रहते प्रोष्ठपद-अङ्ग के उत्तरपद के अचों में जो आदि अच्, उसकी वृद्धि होती है।

सूत्रस्थ **जे** पद जातार्थक-प्रत्यय का बोधक है और सप्तम्यन्त होने से जातार्थक प्रत्यय के परे रहते, ऐसा अर्थ बन जाता है। **तद्धितेषु, ञिति, णिति, किति** ये **जे** पद के विशेषण हैं। यह सूत्र **तद्धितेष्वचामादेः** और **किति च** सूत्र का अपवाद है।

प्रोष्ठपदासु जातः प्रोष्ठपादो माणवकः। प्रोष्ठपदा=पूर्वभद्रपदा या उत्तरभद्रपदा में उत्पन्न माणवक। **प्रोष्ठपदासु जातः** विग्रह करके **प्रोष्ठपदा+सुप्** में **सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **प्रोष्ठपदा+अ** बना है। **तद्धितेष्वचामादेः** से प्राप्त आदिवृद्धि को बाधकर **जे प्रोष्ठपदानाम्** सूत्र से उत्तरपद **पदा** शब्द के आदि अच् अकार की वृद्धि होकर **प्रोष्ठपादा+अ** बन जाता है। भसंज्ञक अकार का लोप होकर **प्रोष्ठपाद** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **प्रोष्ठपादः** सिद्ध हो जाता है।

'जे' इति किम्? प्रोष्ठपदासु भवः प्रौष्ठपदः। प्रकृतसूत्र में **जे** पद के निवेश से जातार्थ-प्रत्यय के परे रहते ही उत्तरपद के आदि अच् की वृद्धि होती है, अन्यथा नहीं होती। अतः **प्रोष्ठपदासु भवः** विग्रह करके अण् प्रत्यय करने पर जातार्थ प्रत्यय न होकर भवार्थक प्रत्यय होने के कारण उत्तरपद की वृद्धि नहीं हुयी अपितु **तद्धितेष्वचामादेः** सूत्र से आदिवृद्धि होकर **प्रौष्ठपदः** सिद्ध हो जाता है।

बहुवचननिर्देशात् पर्यायोऽपि गृह्यते। भद्रपादः। प्रकृतसूत्र में **प्रोष्ठपदानाम्** यह बहुवचन-निर्देश पर्याय-शब्दों का ग्रहण करने के लिये है। अतः प्रोष्ठपद-शब्द के पर्यायवाची शब्दों में भी उत्तरपद के आदि-अच् की वृद्धि होती है। जैसे कि प्रोष्ठपदा=पूर्वभद्रपदा या उत्तरभद्रपदा में उत्पन्न माणवक। **भद्रपदासु जातः** विग्रह करके **भद्रपदा+सुप्** में **सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **भद्रपदा+अ** बना है। **तद्धितेष्वचामादेः** से प्राप्त आदिवृद्धि को बाधकर **जे प्रोष्ठपदानाम्** सूत्र से उत्तरपद **पदा** शब्द के आदि अच् अकार की वृद्धि होकर **भद्रपादा+अ** और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **भद्रपाद** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **भद्रपादः** सिद्ध हो जाता है।

अब पुनः तद्धितलुक् का प्रसंग आ रहा है-

१४१०. स्थानान्तगोशालखरशालाच्च ४।३।३५॥

एभ्यो जातार्थप्रत्ययस्य लुक् स्यात्। गोस्थाने जातो गोस्थानः। गोशालः। खरशालः। 'विभाषा सेना-' (सू.८२८) इति नपुंसकत्वे ह्रस्वत्वम्।

स्थानान्तगोशालखरशालाच्च। स्थानम् अन्ते यस्य स स्थानान्तः, बहुव्रीहिः। स्थानान्तश्च गोशालं च खरशालं च तेषां समाहारद्वन्द्वः स्थानान्तगोशालखरशालम्, तस्मात् स्थानान्तगोशालखरशालात्। **श्रविष्ठाफल्गुन्यनुराधास्वातितिष्य०** से **लुक्** की तथा **तत्र**

जातः के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

स्थानान्त, गोशाल, खरशाल प्रातिपदिकों से विहित जातार्थ प्रत्यय का लुक् होता है।

गोस्थाने जातो गोस्थानः। गोस्थान=गौशाला में उत्पन्न। **गोस्थाने जातः** विग्रह करके **गोस्थान+ङि** से **तत्र जातः** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर उसका **स्थानान्तगोशालखरशालाच्च** सूत्र से लुक् हो जाता है। लुक् होने पर भी प्रत्ययलक्षणेन तद्धितान्त मानकर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् आदि कार्य भी होते हैं। इस तरह **गोस्थान** ही बना है। तद्धित लुक् होने के कारण आदिवृद्धि नहीं होती। अतः **गोस्थान** ही बना हुआ है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **गोस्थानः** सिद्ध हो जाता है।

गोशालः। गौशाला में उत्पन्न। **गोशाले जातः** विग्रह करके **गोशाल+ङि** में **तत्र जातः** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर उसका **स्थानान्तगोशालखरशालाच्च** सूत्र से लुक् हो जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **गोशालः** सिद्ध हो जाता है।

खरशालः। गधे बाँधने के स्थान पर उत्पन्न। **खरशाले जातः** विग्रह करके **खरशाल+ङि** से **तत्र जातः** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर उसका **स्थानान्तगोशालखरशालाच्च** सूत्र से लुक् हो जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **खरशालः** सिद्ध हो जाता है।

यहाँ पर यह प्रश्न उदित होता है कि **गोशाला, खरशाला** शब्दों के आबन्त स्त्रीलिङ्ग होने के कारण प्रकृतसूत्र में **गोशाल, खरशाल** ऐसा अकारान्त-निर्देश कैसे किया गया है? इसका समाधान मूलकार इस तरह कर रहे हैं-

'विभाषा सेना-' इति नपुंसकत्वे ह्रस्वत्वम्। यद्यपि **शाला** शब्द आबन्त स्त्रीलिंग है तथापि **गवां शाला** और **खराणां शाला** विग्रह में **गो** और **खर** शब्दों के साथ **शाला** शब्द का समास होने के बाद (८२८) **विभाषा सेनासुराच्छायाशालानिशानाम्** (२.४.२५) सूत्र से नपुंसकत्व होकर **गोशालम्, खरशालम्** ऐसे रूप बनते हैं अर्थात् शालान्त तत्पुरुष को नपुंसकत्व का विधान किया गया है। नपुंसकत्व होने पर **ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य** सूत्र के द्वारा आकार को ह्रस्व होकर **गोशाल, खरशाल** ऐसे अकारान्त शब्द बन जाते हैं।

अब विशेष स्थलों पर तद्धित-प्रत्यय का विकल्प से लुक् करने वाले सूत्र का अवतरण कर रहे हैं-

१४११. वत्सशालाभिजिदश्वयुक्छतभिषजो वा ४।३।३६॥

एभ्यो जातार्थस्य लुग्वा स्यात्।

वत्सशाले जातो वत्सशालः, वात्सशाल इत्यादि।

'जातार्थे प्रतिप्रसूतोऽण्वा डिद्वक्तव्यः' (वा.२६९०)।

शातभिषजः, शातभिषः, शतभिषक्।

वत्सशालाभिजिदश्वयुक्छतभिषजो वा। वत्सशालं च अभिजित् च अश्वयुक् च शतभिषक् च तेषां समाहारद्वन्द्वो वत्सशालाभिजिदश्वयुक्छतभिषक्, तस्माद् वत्सशालाभिजिदश्वयुक्छतभिषजः पञ्चम्यन्तं, वाव्ययम्। **श्रविष्ठाफल्गुन्यनुराधास्वातितिष्य०** से **लुक्** की तथा **तत्र जातः** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

वत्सशाल, अभिजित्, अश्वयुक् और शतभिषज् प्रातिपदिकों से विहित जातार्थ प्रत्यय का विकल्प से लुक् होता है।

वत्सशाले जातो वत्सशालः, वात्सशाल इत्यादि। बछड़े बाँधने के स्थान पर उत्पन्न। **वत्सशाले जातः** विग्रह करके **वत्सशाल+ङि** से **तत्र जातः** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर उसका **वत्सशालाभिजिदश्वयुक्छतभिषजो वा** सूत्र से विकल्प से लुक् हो जाता है। अतः **वत्सशाल** ही बना हुआ है। लुक् न होने के पक्ष में **वत्सशाला+अ** में आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **वात्सशाल** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वत्सशालः** और **वात्सशालः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

आभिजितः, अभिजित्। अभिजित्-नक्षत्र में उत्पन्न। **अभिजिति जातः** विग्रह करके **अभिजित्+ङि** से **तत्र जातः** सूत्र के प्रसंग में **सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्** से अण् प्रत्यय होने पर उसका **वत्सशालाभिजिदश्वयुक्छतभिषजो वा** सूत्र से विकल्प से लुक् हो जाता है। अतः **अभिजित्** ही बना हुआ है। लुक् न होने के पक्ष में **अभिजित्+अ** में आदिवृद्धि होकर **आभिजित** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **अभिजित्** और **आभिजितः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

आश्वयुजः, अश्वयुक्। आश्विन-मास में उत्पन्न। **अश्वयुजोर्जातः** विग्रह करके **अश्वयुज्+ओस्** से **तत्र जातः** से अण् प्रत्यय होने पर उसका **वत्सशालाभिजिदश्वयुक्छतभिषजो वा** सूत्र से विकल्प लुक् हो जाता है। अतः **अश्वयुज्** ही बना हुआ है। लुक् न होने के पक्ष में **अश्वयुज्+अ** में आदिवृद्धि होकर **आश्वयुज** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **अश्वयुक्** और **आश्वयुजः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

शतभिषज् शब्द के विषय में वक्ष्यमाण विशेष वार्तिक के द्वारा विशेष व्यवस्था की गयी है-

जातार्थे प्रतिप्रसूतोऽण्वा डिद्वक्तव्यः। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- जातार्थ में प्रतिप्रसूत अण् को विकल्प से डिद्वद्भाव होता है। प्रत्यय के डिद्वत् होने से उसके परे रहते टिसंज्ञक भाग **अज्** का **टेः** सूत्र से लोप हो जाता है। प्रतिप्रसूत-शब्द का अर्थ है- पहले प्राप्त को बाधकर प्रवृत्त हुये का भी पुनः बाध हो जाना। जैसे कि **तत्र जातः** सूत्र से प्राप्त अण् को बाधकर **कालाट्ठञ्** सूत्र के द्वारा बाध हो जाता है और उसका भी **सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्** से बाध किया जाता है। इस तरह प्रतिप्रसव बन जाता है। उक्त प्रतिप्रसूत अण् का ही विकल्प से डिद्वद्भाव प्रकृत वार्तिक से किया गया है। प्रकृत वार्तिक **दृष्टं साम** सूत्र के भाष्य में है।

शातभिषजः, शातभिषः, शतभिषक्। शतभिषा नक्षत्र में उत्पन्न। **शतभिषजि जातः** विग्रह करके **शतभिषज्+ङि** में प्रतिप्रसूत अण् प्रत्यय का **वत्सशालाभिजिदश्वयुक्छतभिषजो वा** सूत्र से विकल्प से लुक् होने पर **शतभिषज्** ही बना है। लुक् न होने के पक्ष में **अण्** प्रत्यय को विकल्प से डिद्वद्भाव होने से टिसंज्ञक भाग **अज्** का **टेः** सूत्र से लोप होने पर **शतभिष्+अ** बना है। आदिवृद्धि होकर **शातभिष** शब्द बना है। डिद्वद्भाव न होने के पक्ष में टिलोप नहीं होता, अतः **शातभिषज** बना है। इस तरह तीन शब्द बने हैं। तीनों जगह एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **शतभिषक्, शातभिषः** और **शातभिषजः** ये तीन रूप सिद्ध हो जाते हैं।

१४१२. नक्षत्रेभ्यो बहुलम् ४।३।३७॥

जातार्थप्रत्ययस्य बहुलं लुक् स्यात्। रोहिणः, रौहिणः।

नक्षत्रेभ्यो बहुलम्। नक्षत्रेभ्यः पञ्चम्यन्तं, बहुलं प्रथमान्तम्। **श्रविष्ठाफल्गुन्यनुराधास्वातितिष्य०** से लुक् की तथा **तत्र जातः** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

नक्षत्रवाची प्रातिपदिकों से विहित जातार्थ प्रत्यय का बहुल से लुक् होता है।

विकल्प और **बहुल** के बीच का अन्तर स्पष्ट है। बहुल से कार्य होने पर कहीं होना, कहीं न होना और कहीं विकल्प से होना साथ ही कहीं कुछ विशेष कार्य भी हो जाना- ये चारों पक्ष होते है- **चातुर्विधं बाहुलकं वदन्ति।** जबकि विकल्प में ऐसा नहीं होता। यहाँ लुक् होने के पक्ष में स्त्रीप्रत्ययान्त शब्दों में **लुक् तद्धितलुकि** सूत्र से स्त्रीत्वबोधक प्रत्यय का भी लुक् हो जाता है।

रोहिणः, रौहिणः। रोहिणी-नक्षत्र में उत्पन्न। **रोहिण्यां जातः** विग्रह करके **रोहिणी+ङि** से **तत्र जातः** के प्रसंग में **सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्** से विहित जातार्थ प्रत्यय का **नक्षत्रेभ्यो बहुलम्** से विकल्प से लुक् हो जाता है। इसके अनन्तर **लुक्**

तद्धितलुकि सूत्र के द्वारा स्त्रीत्वबोधक प्रत्यय ङीप् की निवृत्ति होकर **रोहिण+अ** बना है। भसंज्ञक अकार का लोप होकर **रोहिण** शब्द बना है। तद्धित-प्रत्यय के लुक् न होने के पक्ष में आदिवृद्धि होकर **रौहिण** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **रोहिणः** और **रौहिणः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं। ध्यान रहे कि यह **रोहिणी** शब्द नक्षत्रवाची और अव्युत्पन्न है, वर्णवाची **रोहिणी** (लाल रंग) शब्द में लुक् नहीं होता, अन्यथा तद्धितलुक् के परे रहते स्त्रीप्रत्यय की निवृत्ति होने पर नकार की भी निवृत्ति होकर तकार आ जाता। **वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः** सूत्र वर्णवाची **रोहित** शब्द से ङीप् के साथ तकार के स्थान पर नकार आदेश भी करता है। उक्त ङीप् की निवृत्ति होने पर नकार भी निवृत्त हो जाता।

तत्र जातः सूत्र से प्रारम्भ हुआ जातार्थ-प्रत्यय का प्रकरण पूर्ण हो गया है। अब आगे अन्य प्राग्दीव्यतीय अर्थों में **तत्र जातः** का अर्थक्रम उन्नीसवाँ था। अब बीसवें अर्थक्रम में **कृत-लब्ध-क्रीत-कुशल** का विवेचन कर रहे हैं।

१४१३. कृतलब्धक्रीतकुशलाः ४।३।३८॥

'तत्र' इत्येव। सुघ्ने कृतो लब्धः क्रीतः कुशलो वा सौघ्नः।

कृतलब्धक्रीतकुशलाः। कृतश्च लब्धश्च क्रीतश्च कुशलश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः कृतलब्धक्रीतकुशलाः प्रथमान्तमेकपदमिदं सूत्रम्। **तत्र जातः** से **तत्र** की अनुवृत्ति आती है। **शेषे, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार यथावत् है।

'तत्र' इत्येव। इस सूत्र के द्वारा प्रत्यय-विधान में समर्थ विभक्ति सप्तमी है, क्योंकि यहाँ पर तत्र जातः से तत्र की अनुवृत्ति आती है। प्रत्ययविशेष का निर्देश न होने से यथाविहित प्रत्यय होंगे। किसी प्रत्यय का निर्देश न होने पर **प्राग्दीव्यतोऽण्** से अण् प्रत्यय का विधान माना जाता है।

सूत्रार्थः- **सप्तमी समर्थ प्रातिपदिक से कृत, लब्ध, क्रीत, कुशल इन चार अर्थों में यथाविहित प्रत्यय होते हैं।**

यथाविहित प्रत्यय होने का अर्थ है कि जिस प्रातिपदिक से जो भी प्रत्यय कहा गया है, उससे इन चार अर्थों में वे ही प्रत्यय हों। शेष से औत्सर्गिक अण् हो।

कृतः=किया गया। **लब्धः**=पाया हुआ। **क्रीतः**=खरीदा हुआ। **कुशलः**=कुशल, चतुर।

सुघ्ने कृतो लब्धः क्रीतः कुशलो वा सौघ्नः। सुघ्न-नामक देश में खरीदा हुआ, सुघ्न में पाया गया, सुघ्न खरीदा गया और सुघ्न में कुशल। **सुघ्ने कृतः लब्धः क्रीतः कुशलः** अर्थों में **सुघ्न+ङि** से **कृतलब्धक्रीतकुशलाः** से अण् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप होकर **सुघ्न+अ** बना। आदिवृद्धि होने पर उकार को औकार हो जाता है और

भसंज्ञक अकार का लोप होकर **स्रौघ्न** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन स्वादिकार्य होकर **स्रौघ्नः** सिद्ध हो जाता है। इस तरह यद्यपि उक्त चार अर्थों में प्रत्ययों का विधान किया गया तथापि रूप समान ही है और प्रसंगानुसार तत्तत् अर्थ की उपस्थिति हो जाती है। यथाविहित प्रत्यय की अनुशंसा होने के कारण **औत्सः, राष्ट्रियः, पारावारीणः** आदि रूप बनते हैं, क्योंकि उक्त शब्दों से घ, ख आदि प्रत्यय पहले किये गये थे।

उक्त चार अर्थों में एक ही सूत्र से यथाविहित प्रत्ययों का विधान करके इस अर्थक्रम को यहीं पर पूर्ण किया गया है। अब आगे **प्रायभवः** अर्थ में प्रत्यय किया जा रहा है।

१४१४. प्रायभवः ४।३।३९॥

'तत्र' इत्येव। स्रुघ्ने प्रायेण बाहुल्येन भवति स्रौघ्नः।

प्रायभवः। प्रथमान्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। **तत्र जातः** से **तत्र** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से 'प्रायः होता है' या 'प्रायः होने वाला' इस अर्थ में शैषिक अर्थ में होने वाले यथाविहित अण् आदि प्रत्यय और घ आदि प्रत्यय यथासम्भव होते हैं।

यह सूत्र यह निर्णय नहीं करता कि कौन सा प्रत्यय हो किन्तु यह निर्णय करता है कि **प्रायः होता है** इस अर्थ में प्रत्यय हो। अतः जहाँ जिसकी प्राप्ति न्याय्य होगी, वहाँ वही प्रत्यय होगा। प्राग्दीव्यतीयों में यह इक्कीसवाँ अर्थक्रम है। भाष्यकार ने तो **तत्र भवः** अर्थ से ही इस सूत्र की गतार्थता मानी है- **प्रायभवग्रहणमनर्थकं तत्र भवेन कृतत्वात्।**

स्रौघ्नः। स्रुघ्न नामक देश में ज्यादातर होने वाला पदार्थ। **स्रुघ्ने जातः** लौकिक विग्रह और **स्रुघ्न ङि** अलौकिक विग्रह है। **प्रायभवः** से अण् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **स्रुघ्न+अ** बना। णित् होने के कारण आदिवृद्धि करके उकार के स्थान पर औकार आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करके **स्रौघ्न्+अ=स्रौघ्न** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **स्रौघ्नः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **औत्सः, राष्ट्रियः, पारावारीणः** भी बनाये जा सकते हैं।

१४१५. उपजानूपकर्णोपनीवेष्ठक् ४।३।४०॥

औपजानुकः। औपकर्णिकः। औपनीविकः।

उपजानूपकर्णोपनीवेष्ठक्। जानुनः समीपम् उपजानु, अव्ययीभावः। कर्णस्य समीपम् उपकर्णम्, अव्ययीभावः। नीवेः समीपम् उपनीवि अव्ययीभावः। उपजानु च उपकर्णं च उपनीवि च तेषां समाहारद्वन्द्वः उपजानूपकर्णोपनीविः, सौत्रं पुंस्त्वम्, तस्माद् उपजानूपकर्णोपनीवेः पञ्चम्यन्तं, ठक् प्रथमान्तम्। **प्रायभवः** अर्थ की अनुवृत्त्या उपस्थिति

है। **तत्र जातः** से **तत्र** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त समर्थ उपजानु, उपकर्ण और उपनीवि प्रातिपदिकों से 'प्रायभव' अर्थ में शैषिक ठक् प्रत्यय होता है।

ठक् में ककार इत्संज्ञक है, **ठ** बचता है। कहीं इसके स्थान पर **इक** आदेश और कहीं **क** आदेश हो जाता है।

औपजानुकः। प्रायः घुटनों के समीप होने वाला। **उपजानु प्रायभवः** विग्रह करके **उपजानु+ङि** से **उपजानूपकर्णोपनीवेष्ठक्** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होने पर **उपजानु+ठ** बना है। **ठस्येकः** को बाधकर **इसुसुक्तान्तात्कः** सूत्र से ठ के स्थान पर **क** आदेश होकर **उपजानु+क** बना। **किति च** सूत्र से आदिवृद्धि होकर **औपजानुक** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **औपजानुकः** सिद्ध हो जाता है।

औपकर्णिकः। प्रायः कान के समीप होने वाला। **उपकर्ण प्रायभवः** विग्रह करके **उपकर्ण+ङि** से **उपजानूपकर्णोपनीवेष्ठक्** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **ठस्येकः** से इकादेश, **किति च** सूत्र से आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **औपकर्णिक** और स्वादिकार्य होकर **औपकर्णिकः** सिद्ध हो जाता है।

औपनीविकः। प्रायः नीवि के समीप होने वाला। **उपनीवि प्रायभवः** विग्रह करके उपनीवि+ङि से **उपजानूपकर्णोपनीवेष्ठक्** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, ठस्येकः से इकादेश, **किति च** सूत्र से आदिवृद्धि, भसंज्ञक इकार का लोप होकर **औपनीविक** और स्वादिकार्य होकर **औपनीविकः** सिद्ध हो जाता है।

१४१६. सम्भूते ४।३।४१॥
सुघ्ने सम्भवति सौघ्नः।

सम्भूते। सम्भूते सप्तम्यन्तमेकपदं सूत्रम्। **तत्र जातः** से **तत्र** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से 'होने की सम्भावना है' इस अर्थ में शैषिक अर्थ में होने वाले अण् आदि प्रत्यय और घ आदि प्रत्यय यथासम्भव होते हैं।

यह सूत्र भी यह निर्णय नहीं करता कि कौन सा प्रत्यय हो किन्तु यह निर्णय करता है कि **'सम्भव होता है'** इस अर्थ में प्रत्यय हो। अतः जहाँ जिसकी प्राप्ति न्याय्य होगी वहाँ वही प्रत्यय होगा। समर्थ-विभक्ति का निर्धारण अनुवृत्त **तत्र** पद से किया जाता है, अतः सप्तमी समर्थ विभक्ति है। प्राग्दीव्यतीयों में यह बाइसवाँ अर्थक्रम है।

स्रौघ्नः। स्रुघ्न नामक देश में सम्भव होने वाला पदार्थ। **स्रुघ्ने सम्भूतः** लौकिक विग्रह और **स्रुघ्न+ङि** अलौकिक विग्रह है। **सम्भूते** से अण् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **स्रुघ्न+अ** बना। णित् होने के कारण आदिवृद्धि करके उकार के स्थान पर औकार आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करके **स्रौघ्न्+अ=स्रौघ्न** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **स्रौघ्नः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **औत्सः, राष्ट्रियः, पारावारीणः** भी बनाये जाते हैं।

१४१७. कोशाड्ढञ् ४।३।४२॥
कौशेयं वस्त्रम्।

कोशाड्ढञ्। कोशात् पञ्चम्यन्तं, ढञ् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तत्र जातः** से **तत्र** और **सम्भूते** से **सम्भूते** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त समर्थ प्रातिपदिक कोश-शब्द से 'होने की सम्भावना है' इस अर्थ में शैषिक ढञ् प्रत्यय होता है।

ञकार इत्संज्ञक है, **ढ** बचता है। उसमें केवल **ढ्** के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **एय्** आदेश होकर **एय** बन जाता है। यह **सम्भूते** से प्राप्त अण् का बाधक है।

कौशेयं वस्त्रम्। रेशम धागे में होने वाला वस्त्र। **कोशे सम्भूतम्** लौकिक विग्रह और **कोश ङि** अलौकिक विग्रह है। **सम्भूते** से अण् प्राप्त था, उसे बाधकर **कोशाड् ढञ्** से **ढञ्** प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **कोश+ढ** बना। **ढकार** के स्थान पर **एय्** आदेश होकर **कोश+एय** बना। ञित् होने के कारण आदिवृद्धि करके ओकार के स्थान पर औकार आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करके **कौश्+एय=कौशेय** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **कौशेयः** सिद्ध हो जाता है।

सम्भूते अर्थ में भी दो ही सूत्रों से प्रत्ययों का प्रकरण पूरा हो गया है। अब अगला अर्थक्रम आता है।

१४१८. कालात् साधुपुष्प्यत्पच्यमानेषु ४।३।४३॥
हेमन्ते साधुर्हैमनः प्रावारः। वसन्ते पुष्प्यन्ति वासन्त्यः कुन्दलताः।
शरदि पच्यन्ते शारदाः शालयः।

कालात् साधुपुष्प्यत्पच्यमानेषु। साधुश्च पुष्प्यत् च पच्यमानश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः साधुपुष्प्यत्पच्यमानास्तेषु साधुपुष्प्यत्पच्यमानेषु। कालात् पञ्चम्यन्तं, पुष्प्यत्पच्यमानेषु सप्तम्यन्तम्। **तत्र जातः** से **तत्र** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त समर्थ कालवाची प्रातिपदिक से 'साधु, पुष्य्यत् और पच्यमान अर्थों में शैषिक यथाविहित प्रत्यय होते हैं।

प्राग्दीव्यतीयों में यह तेइसवाँ अर्थक्रम है। एक ही सूत्र से तीन अर्थ दिखाये गये हैं- साधु, पुष्य्यत् और पच्यमान। यहाँ पर भी **तत्र** पद की अनुवृत्ति से समर्थ विभक्ति सप्तमी ही है।

साधु=सुखदायक, सुन्दर, समुचित।

पुष्य्यत्=खिलता हुआ।

पच्यमान=पकता हुआ।

हेमन्ते साधुर्हैमनः प्रावारः। हेमन्त ऋतु में सुखदायक चादर आदि। **हेमन्ते साधुः** विग्रह करके **हेमन्त+ङि** से **कालात्साधुपुष्य्यत्पच्यमानेषु** के प्रसंग में **सर्वत्राण् च तलोपश्च** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय और **हेमन्त** शब्द के तकार का लोप होकर **हेमन्+अ+अ** बना है। आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **हैमन** शब्द बनता है। स्वादिकार्य से **हैमनः** सिद्ध हो जाता है। यह साधु अर्थ का उदाहरण है।

वसन्ते पुष्य्यन्ति वासन्त्यः कुन्दलताः। वसन्त ऋतु में खिलने वाली कुन्दलता। **वसन्ते पुष्य्यन्ति** विग्रह करके **वसन्त+ङि** से **कालात्साधुपुष्य्यत्पच्यमानेषु** के प्रसंग में **सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **वासन्त** शब्द बनता है। स्त्रीत्वविवक्षा में **टिड्ढाणञ्०** से ङीप् होने पर अकारलोप होकर **वासन्ती** शब्द बनता है। स्वादिकार्य से **वासन्ती, वासन्त्यौ, वासन्त्यः** आदि सिद्ध हो जाते हैं। यह पुष्य्यत् अर्थ का उदाहरण है।

शरदि पच्यन्ते शारदाः शालयः। शरद् ऋतु में पकने वाला धान। **शरदि पच्यन्ते** विग्रह करके **शरद्+ङि** से **कालात्साधुपुष्य्यत्पच्यमानेषु** के प्रसंग में **सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **शारद** शब्द बनता है। स्वादिकार्य से **शारदः, शारदौ, शारदाः** आदि सिद्ध हो जाते हैं। यह पच्यमान अर्थ का उदाहरण है।

यहाँ से **तत्र भवः** (४.३.५३) तक **कालात्** की अनुवृत्ति जाती है।

१४१९. उप्ते च ४।३।४४॥
हेमन्ते उप्यन्ते हैमन्ता यवाः।

उप्ते च। उप्ते सप्तम्यन्तं, चाव्ययम्। **कालात् साधुपुष्य्यत्पच्यमानेषु** से **कालात्** की और **तत्र जातः** से **तत्र** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त समर्थ कालवाची प्रातिपदिक से उप्त=बोया हुआ अर्थ में शैषिक यथाविहित प्रत्यय होते हैं।

उप्त प्राग्दीव्यतीयों में यह चौबीसवाँ अर्थक्रम है। यहाँ पर भी **तत्र** पद की अनुवृत्ति से समर्थ विभक्ति सप्तमी ही है। **डु वप बीजसन्ताने** धातु से क्त-प्रत्यय होने पर वकार को सम्प्रसारण होकर **उप्त** शब्द बना है।

हेमन्ते उप्यन्ते हैमन्ता यवाः। हेमन्त ऋतु में बोये गये जौ। **हेमन्ते उप्यन्ते** विग्रह करके **हेमन्त+ङि** से **उप्ते च** के प्रसंग में **सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **हैमन्त** शब्द बनता है। स्वादिकार्य से **हैमन्तः, हैमन्तौ, हैमन्ताः** आदि रूप सिद्ध हो जाते हैं।

१४२०. आश्वयुज्या वुञ् ४।३।४५॥

ठञोऽपवादः। आश्वयुज्यामुप्ता आश्वयुजका माषाः।

आश्वयुज्या वुञ्। आश्वयुजी-शब्दस्य पञ्चम्यन्तं रूपम्- आश्वयुज्याः। वुञ् प्रथमान्तम्। **कालात् साधुपुष्यत्पच्यमानेषु** से **कालात्** की, **उप्ते च** से **उप्ते** की और **तत्र जातः** से **तत्र** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त समर्थ आश्वयुजी प्रातिपदिक से उप्त=बोया हुआ अर्थ में शैषिक वुञ् प्रत्यय विकल्प से होता है।

ठञोऽपवादः। यह यथाविहित प्रत्यय के क्रम में **कालाट्ठञ्** सूत्र से प्राप्त ठञ् प्रत्यय का अपवाद है। ञकार इत्संज्ञक है और अवशिष्ट वु के स्थान् पर **युवोरनाकौ** से अक आदेश होता है।

आश्वयुज्यामुप्ता आश्वयुजका माषाः। आश्वयुजी=अश्विनी नक्षत्र से युक्त पूर्णमासी में बोये गये ऊड़द। **अश्वयुग्भ्यां युक्ता पौर्णमासी आश्वयुजी। आश्वयुज्याम् उप्ताः** विग्रह करके **आश्वयुजी+ङि** से **आश्वयुज्या वुञ्** से वुञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, पर्जन्यवल्लक्षणप्रवृत्तिन्यायेन आदिवृद्धि, भसंज्ञक ईकार का लोप होकर **आश्वयुजक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आश्वयुजकः, आश्वयुजकौ, आश्वयुजकाः** आदि रूप बनते हैं।

१४२१. ग्रीष्मवसन्तादन्यतरस्याम् ४।३।४६॥

पक्षे ऋत्वण्। ग्रैष्मकम्, ग्रैष्मम्। वासन्तकम्, वासन्तम्।

ग्रीष्मवसन्तादन्यतरस्याम्। ग्रीष्मश्च वसन्तश्च तयोः समाहारद्वन्द्वो ग्रीष्मवसन्तं, तस्माद् ग्रीष्मवसन्तात्। ग्रीष्मवसन्तात् पञ्चम्यन्तम्, अन्यतरस्यां विभक्तिप्रतिरूपकमव्ययम्।

कालात् साधुपुष्यत्पच्यमानेषु से **कालात्** की, **आश्वयुज्या वुञ्** से **वुञ्** की, **उप्ते च** से **उप्ते** की और **तत्र जातः** से **तत्र** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त समर्थ कालवाची ग्रीष्म और वसन्त प्रातिपदिकों से उप्त=बोया हुआ अर्थ में शैषिक वुञ् प्रत्यय होता है।

पक्षे ऋत्वण्। प्रकृत प्रत्यय न होने के पक्ष में **सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्** से अण् प्रत्यय होता है।

ग्रैष्मकम्, ग्रैष्मम्। ग्रीष्म ऋतु में बोया गया। **ग्रीष्मे उप्तम्** विग्रह करके **ग्रीष्म+ङि** से **ग्रीष्मवसन्तादन्यतरस्याम्** सूत्र से विकल्प से वुञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **ग्रैष्मक** शब्द बना है। वुञ् न होने के पक्ष में अण् प्रत्यय होने पर **ग्रैष्म** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **ग्रैष्मकम्** और **ग्रैष्मम्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

वासन्तकम्, वासन्तम्। वसन्त ऋतु में बोया गया। **वसन्ते उप्तम्** विग्रह करके **वसन्त+ङि** से **ग्रीष्मवसन्तादन्यतरस्याम्** सूत्र से विकल्प से वुञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **वासन्तक** शब्द बना है। वुञ् न होने के पक्ष में अण् प्रत्यय होने पर **वासन्त** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वासन्तकम्** और **वासन्तम्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

उप्त अर्थ पूरा हो गया है। अब **देयम् ऋणे** अर्थ का क्रम आ रहा है। प्राग्दीव्यतीयों में यह पच्चीसवाँ अर्थक्रम है।

१४२२. देयमृणे ४।३।४७॥
'कालात्' इत्येव। मासे देयमृणं मासिकम्।

देयमृणे। देयं प्रथमान्तम्, ऋणे सप्तम्यन्तम्। **कालात् साधुपुष्यत्पच्यमानेषु** से **कालात्** की और **तत्र जातः** से **तत्र** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त समर्थ कालवाची प्रातिपदिक से देय=अनिवार्य रूप से देने योग्य अर्थ में ऋण-अभिधेय होने पर शैषिक यथाविहित प्रत्यय होते हैं।

'कालात्' इत्येव। इस सूत्र में भी **कालात्** का सम्बन्ध है, अतः कालवाची शब्दों से ही प्रत्यय होंगे। यह सूत्र प्रत्यय का निर्धारण नहीं करता किन्तु अर्थ का निर्धारण करता है। अतः जिस-जिस प्रकृति से जो-जो प्रत्यय होते आये हैं, यहाँ **देयम्** अर्थ में

भी वे ही प्रत्यय होंगे किन्तु अभिधेय **ऋण** होना चाहिये। कालवाची शब्दों से **कालाट्ठञ्** सूत्र से ठञ् होता आया है, अतः यहाँ पर भी ठञ् ही होगा।

मासे देयमृणं मासिकम्। एक मास में अवश्य लौटाने योग्य=चुका देने योग्य ऋण। **मासे देयम् ऋणम्** विग्रह करके **मास+ङि** से **देयमृणे** सूत्र से ठञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **मासिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **मासिकम्** सिद्ध हो जाता है।

१४२३. कलाप्यश्वत्थयवबुसाद् वुन् ४।३।४८॥

यस्मिन् काले मयूराः कलापिनो भवन्ति स उपचारात् कलापी, तत्र देयमृणं कलापकम्। अश्वत्थस्य फलमश्वत्थः, तद्युक्तः कालोऽप्यश्वत्थः। यस्मिन्काले अश्वत्थाः फलन्ति, तत्र देयमृणमश्वत्थकम्। यस्मिन् यवबुसमुत्पद्यते तत्र देयमृणं यवबुसकम्।

कलाप्यश्वत्थयवबुसाद् वुन्। कलापी च अश्वत्थश्च यवबुसश्च तेषां समाहारद्वन्द्वः कलाप्यश्वत्थयवबुसम्, तस्मात् कलाप्यश्वत्थयवबुसात् पञ्चम्यन्तं, वुन् प्रथमान्तम्। **देयमृणे** के दोनों पदों की, **कालात् साधुपुष्यत्पच्यमानेषु** से **कालात्** की और **तत्र जातः** से **तत्र** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त समर्थ कालवाची कलापी, अश्वत्थ, यवबुस प्रातिपदिकों से देय=अनिवार्य रूप से देने योग्य अर्थ में ऋण-अभिधेय होने पर शैषिक वुन् प्रत्यय होता है।

यद्यपि **कलापी, अश्वत्थ** और **यवबुस** शब्द कालवाची नहीं हैं, तथापि लक्षणा से उन्हें कालवाची मान लिया जाता है, जिसका विवरण मूलकार ने स्वयं आगे दिया है।

यस्मिन् काले मयूराः कलापिनो भवन्ति स उपचारात् कलापी, तत्र देयमृणं कलापकम्। यद्यपि **कलापी** मयूर का नाम है, तथापि जिस मास में मयूर कलापी=पंखयुक्त हो जाते हैं, लक्षणावश उस काल को भी **कलापी** कहा जाता है। इस तरह **कलापिन्** शब्द भी कालवाची हो जाता है। कलापी काल=मयूरों के पंखयुक्त होने के काल में अवश्य लौटाने योग्य=चुका देने योग्य ऋण। **कलापिनि देयम् ऋणम्** विग्रह करके **कलापिन्+ङि** से **कलाप्यश्वत्थयवबुसाद् वुन्** सूत्र से वुन् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **कलापिन्+अक** बना है। **नस्तद्धिते** सूत्र के द्वारा टिसंज्ञक भाग **इन्** का लोप होकर **कलापक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कलापकम्** सिद्ध हो जाता है।

अश्वत्थस्य फलमश्वत्थः, तद्युक्तः कालोऽप्यश्वत्थः। यस्मिन्काले अश्वत्थाः फलन्ति, तत्र देयमृणमश्वत्थकम्। यद्यपि **अश्वत्थ** एक वृक्षविशेष का नाम है, तथापि जिस मास में पीपल के फल लगते हैं, लक्षणावश उस काल को भी **अश्वत्थ** कहा जाता है। इस तरह **अश्वत्थ** शब्द भी कालवाची हो जाता है। अश्वत्थ काल में अवश्य लौटाने योग्य=चुका देने योग्य ऋण। **अश्वत्थे देयम् ऋणम्** विग्रह करके **अश्वत्थ+ङि** से **कलाप्यश्वत्थयवबुसाद् वुन्** सूत्र से वुन् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **अश्वत्थक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **अश्वत्थकम्** सिद्ध हो जाता है। **अश्वत्थस्य फलम्** अर्थ में **तस्य विकारः** सूत्र से विहित विकारार्थक प्रत्यय का **फले लुक्** सूत्र से लुक् हुआ है। अतः **अश्वत्थ** शब्द का अश्वत्थ का फल अर्थ है।

यस्मिन् यवबुसमुत्पद्यते, तत्र देयमृणं यवबुसकम्। यद्यपि **यवबुस** जौ की भूस को कहते हैं तथापि जिस मास में जौ में भूस आ जाता है, लक्षणावश उस काल को भी **यवबुस** कहा जाता है। इस तरह **यवबुस** शब्द भी कालवाची हो जाता है। जौ में भूस आने के काल में अवश्य लौटाने योग्य=चुका देने योग्य ऋण। **यवबुसे देयम् ऋणम्** विग्रह करके **यवबुस+ङि** से **कलाप्यश्वत्थयवबुसाद् वुन्** सूत्र से वुन् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **यवबुसक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **यवबुसकम्** सिद्ध हो जाता है।

१४२४. ग्रीष्मावरसमाद् वुञ् ४।३।४९॥

ग्रीष्मे देयमृणं ग्रैष्मकम्। आवरसमकम्।

ग्रीष्मावरसमाद् वुञ्। ग्रीष्मश्च अवरसमा च तयोः समाहारद्वन्द्वो ग्रीष्मावरसमं, तस्माद् ग्रीष्मावरसमात् पञ्चम्यन्तं, वुञ् प्रथमान्तम्। **देयमृणे** के दोनों पदों की, **कालात् साधुपुष्यत्पच्यमानेषु** से **कालात्** की और **तत्र जातः** से **तत्र** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त समर्थ कालवाची ग्रीष्म और अवरसमा प्रातिपदिकों से देय=अनिवार्य रूप से देने योग्य अर्थ में ऋण-अभिधेय होने पर शैषिक वुञ् प्रत्यय होता है।

ग्रीष्मे देयमृणं ग्रैष्मकम्। ग्रीष्म ऋतु में अवश्य चुका देने योग्य ऋण। **ग्रीष्मे देयम् ऋणम्** विग्रह करके **ग्रीष्म+ङि** से **ग्रीष्मावरसमाद् वुञ्** सूत्र से वुञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि होकर ईकार को ऐकार और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **ग्रैष्मक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **ग्रैष्मकम्** सिद्ध हो जाता है।

आवरसमकम्। आने वाले वर्ष में चुका देने योग्य ऋण। **अवरसमायां देयम् ऋणम्** विग्रह करके **अवरसमा+ङि** से **ग्रीष्मावरसमाद् वुञ्** सूत्र से वुञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक आकार का लोप होकर **आवरसम** और स्वादिकार्य होकर **आवरसमकम्** सिद्ध हो जाता है।

१४२५. संवत्सराग्रहायणीभ्यां ठञ्च ४।३।५०॥

चाद् वुञ्।

सांवत्सरिकम्, सांवत्सरकम्। आग्रहायणिकम्, आग्रहायणकम्।

संवत्सराग्रहायणीभ्यां ठञ्च। संवत्सरश्च आग्रहायणी च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः संवत्सराग्रहायण्यौ, ताभ्यां संवत्सराग्रहायणीभ्यां पञ्चम्यन्तं, ठञ् प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **देयमृणे** के दोनों पदों की, **कालात् साधुपुष्यत्पच्यमानेषु** से **कालात्** की और **तत्र जातः** से **तत्र** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है। **च**-शब्द से **ग्रीष्मावरसमाद् वुञ्** का भी समुच्चय है।

सप्तम्यन्त समर्थ कालवाची संवत्सर और आग्रहायणी प्रातिपदिकों से देय=अनिवार्य रूप से देने योग्य अर्थ में ऋण-अभिधेय होने पर शैषिक ठञ् प्रत्यय होता है और च-शब्द से वुञ् प्रत्यय भी होता है।

सांवत्सरिकम्, सांवत्सरकम्। एक वर्ष में चुका देने योग्य ऋण। **संवत्सरे देयम् ऋणम्** विग्रह करके **संवत्सर+ङि** से **संवत्सराग्रहायणीभ्यां ठञ्च** सूत्र से ठञ् प्रत्यय होने पर उसके स्थान पर इकादेश, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **सांवत्सरिक** शब्द बना है। वुञ् प्रत्यय होने के पक्ष में अकादेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **सांवत्सरक** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सांवत्सरिकम्** और **सांवत्सरकम्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

आग्रहायणिकम्, आग्रहायणकम्। अगहन (मार्गशीर्ष) में चुका देने योग्य ऋण। **आग्रहायण्यां देयम् ऋणम्** विग्रह करके **आग्रहायणी+ङि** से **संवत्सराग्रहायणीभ्यां ठञ्च** सूत्र से ठञ् प्रत्यय होने पर उसके स्थान पर इकादेश, आदिवृद्धि, ईकारलोप होकर **आग्रहायणिक** शब्द बना है। वुञ् प्रत्यय होने के पक्ष में अकादेश, भसंज्ञक ईकार का लोप होकर **आग्रहायणक** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आग्रहायणिकम्** और **आग्रहायणकम्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

देयमृणे का प्रकरण पूरा हो गया है। अब प्राग्दीव्यतीयों में छब्बीसवें अर्थक्रम **व्याहरति**=शब्द करता है, इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय के लिये एक सूत्र का अवतरण कर रहे हैं-

१४२६. व्याहरति मृगः ४।३।५१॥

कालवाचिनः सप्तम्यन्ताच्छब्दायते इत्यर्थे अणादयः स्युः, यो व्याहरति स मृगश्चेत्। निशायां व्याहरति- नैशो मृगः, नैशिकः।

व्याहरति मृगः। व्याहरति क्रियापदं, मृगः प्रथमान्तम्। **कालात् साधुपुष्यत्पच्यमानेषु** से **कालात्** की और **तत्र जातः** से **तत्र** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त समर्थ कालवाची प्रातिपदिकों से व्याहरति=शब्द करता है अर्थ में यथाविहित अण् आदि शैषिक प्रत्यय होते हैं और व्याहरण करता है, वह मृग हो तो।

यहाँ पर भी **तत्र** पद की अनुवृत्ति होने से समर्थ विभक्ति सप्तमी ही मानी जाती है।

निशायां व्याहरति नैशो मृगः, नैशिकः। रात में शब्द करने वाला पशु मृग। **निशायां व्याहरति** विग्रह करके **निशा+ङि** से **व्याहरति मृगः** के अर्थ में **निशाप्रदोषाभ्यां च** (४.३.१४) सूत्र से **अण्** और **ठञ्** प्रत्यय होते हैं। अण् होने के पक्ष में आदिवृद्धि, भसंज्ञक आकार का लोप आदि होकर **नैश** शब्द बना है और ठक् होने के पक्ष में इकादेश आदि होकर **नैशिक** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **नैशः, नैशिकः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं। यथाविहित प्रत्यय का विधान होने से पूर्व में **निशा** शब्द से अण् और ठक् का विधान होने के कारण यहाँ पर भी ये ही प्रत्यय हो जाते हैं।

व्याहरति अर्थ के लिये एक ही सूत्र अष्टाध्यायी में है। अब प्राग्दीव्यतीयों में सत्ताइसवें अर्थक्रम **तदस्य सोढम्**=सहन किया अर्थ में प्रत्यय का विधान किया जा रहा है। अब **तत्र** की निवृत्ति हो जाती है।

१४२७. तदस्य सोढम् ४।३।५२॥

'कालात्' इत्येव।

निशा-सहचरितमध्ययनं निशा, तत्सोढमस्य नैशिकः, नैशः।

तदस्य सोढम्। तत् प्रथमान्तम्, अस्य षष्ठ्यन्तं, सोढं प्रथमान्तम्। **कालात् साधुपुष्यत्पच्यमानेषु** से **कालात्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

प्रथमान्त समर्थ कालवाची प्रातिपदिकों से अस्य सोढम्=इसको सहनीय है अर्थ में यथाविहित अण् आदि शैषिक प्रत्यय होते हैं।

यहाँ पर भी **तत्** पद के द्वारा समर्थ विभक्ति प्रथमा की सूचना है और **अस्य**

सोढम् यह अर्थनिर्देश है। **सोढम्** पद का अर्थ है- सहन किया हुआ अथवा अभ्यास किया हुआ। इस तरह **अस्य** इस षष्ठी के **सोढम्** अर्थ में प्रथमा-समर्थ से प्रत्यय होंगे।

'कालात्' इत्येव। इस सूत्र तक **कालात्** का सम्बन्ध है, अतः कालवाची शब्दों से ही अणादि प्रत्यय होंगे।

निशा-सहचरितमध्ययनं निशा, तत्सोढमस्य नैशिकः, नैशः। जिस छात्र का अभ्यास रात्रि में पढ़ने का हो। **निशा** के साथ सहचरित अध्ययन को भी लक्षणावृत्ति से **निशा** कहा जाता है। अतः यह कालवाची हो जाता है। **निशा सोढम् अस्य** विग्रह करके **निशा+ङि** से **तदस्य सोढम्** के अर्थ में **निशाप्रदोषाभ्यां च** (४.३.१४) सूत्र से **अण्** और **ठक्** प्रत्यय होते हैं। अण् होने के पक्ष में आदिवृद्धि, भसंज्ञक आकार का लोप आदि होकर **नैश** शब्द बना है और ठक् होने के पक्ष में इकादेश आदि होकर **नैशिक** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **नैशः, नैशिकः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं। रात्रि में अध्ययन किये जाने से रात्रि और अध्ययन का परस्पर साहचर्य है। अतः अध्ययन भी **निशा** का अभिधेय होगा। उस रात्रि के अध्ययन को जो सहन कर सके, उस छात्र को **नैशिकः, नैशः** कहा जाता है।

तदस्य सोढम् का अर्थ में भी एक ही सूत्र से प्रत्यय-विधान किया गया। अब प्राग्दीव्यतीयों में से अठ्ठाइसवें अर्थक्रम **तत्र भवः** अर्थ में प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है।

१४२८. तत्र भवः ४।३।५३॥

सुघ्ने भवः सौघ्नः। राष्ट्रियः।

तत्र भवः। तत्र इति सप्तम्यन्तस्यानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, भवः प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से 'वहाँ होता है या वहाँ होने वाला' इस अर्थ में शैषिक अर्थ में होने वाले अण् आदि प्रत्यय और घ आदि प्रत्यय यथासम्भव होते हैं।

. यह सूत्र भी यह निर्णय नहीं करता कि कौन सा प्रत्यय हो किन्तु यह निर्णय करता है कि **वहाँ होता है** इस अर्थ में प्रत्यय हों। अतः जहाँ जिसकी प्राप्ति न्याय्य होगी, वहाँ वही प्रत्यय होगा। समर्थविभक्ति की सूचना सूत्रोक्त **तत्र** पद से मिलती है, अतः सप्तमी ही समर्थ विभक्ति होगी। **कालात्** की निवृत्ति हो गयी है। **तत्र भवः** और **तत्र जातः** के अर्थों में सूक्ष्मभेद है। सत्ता मात्र को **भवः** और उत्पन्न होने को **जातः** कहा जाता है। अतः **भवः** शब्द का केवल सत्ता=स्थिति मात्र अर्थ लेना चाहिये।

स्रौघ्नः। स्रुघ्न नामक देश में होने वाला पदार्थ। **स्रुघ्ने भवः** लौकिक विग्रह और **स्रुघ्न ङि** अलौकिक विग्रह है। **तत्र भवः** से अण् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **स्रुघ्न+अ** बना है। णित् होने के कारण आदिवृद्धि करके उकार के स्थान पर औकार आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करके **स्रौघ्न्+अ=स्रौघ्न** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **स्रौघ्नः** सिद्ध हुआ।

राष्ट्रियः। यथाविहित प्रत्यय का विधान होने से **राष्ट्र** से पूर्वविहित **घ** प्रत्यय होकर **राष्ट्रियः** बन जाता है। इसी तरह **औत्सः, पारावारीणः** आदि प्रयोग बना लेने चाहिये।

१४२९. दिगादिभ्यो यत् ४।३।५४॥

दिश्यम्। वर्ग्यम्।

दिगादिभ्यो यत्। दिक् आदिर्येषां ते दिगादयस्तेभ्यः। दिगादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, यत् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त समर्थ दिक् आदि प्रातिपदिकों से 'वहाँ होता है या वहाँ होने वाला' इस शैषिक अर्थ में यत् प्रत्यय होता है।

तकार इत्संज्ञक है, **य** बचता है।

दिश्यम्। दिशा में होने वाला पदार्थ। **दिशि भवम्** लौकिक विग्रह और **दिश् ङि** अलौकिक विग्रह है। **दिगादिभ्यो यत्** से **यत्** प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **दिश्+य** बना है। वर्णसम्मेलन, सु, अम् आदेश करके **दिश्यम्** सिद्ध हुआ। आदिवृद्धि के लिये निमित्त प्रत्यय नहीं है।

वर्ग्यम्। वर्ग में होने वाला पदार्थ। **वर्गे भवम्** लौकिक विग्रह और **वर्ग ङि** अलौकिक विग्रह है। **दिगादिभ्यो यत्** से **यत्** प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **वर्ग+य** बना है। **यस्येति च** से भसंज्ञक अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन, सु, अम् आदेश करने पर **वर्ग्यम्** सिद्ध हुआ। इसी तरह **आदौ भवः आद्यः, अन्ते भवः अन्त्यः, रहसि भवं रहस्यम्** आदि भी **दिगादि** मान कर के बना सकते हैं।

दिगादिगणः- दिश्, वर्ग, पूग, गण, पक्ष, धाय्य, मित्र, मेधा, अन्तर, पथिन्, रहस्, अलीक, उखा, अलीक, साक्षिन्, देश, आदि, अन्त, मुख, जघन, मेघ, यूथ। **उदकात्संज्ञायाम्**। ज्ञाय, (न्याय), वंश, वेश, काल, आकाश।

१४३०. शरीरावयवाच्च ४।३।५५॥

दन्त्यम्। कण्ठ्यम्।

शरीरावयवाच्च। शरीरस्य अवयवः शरीरावयवः, षष्ठीतत्पुरुषः। तस्मात्। शरीरावयवात् पञ्चम्यन्तं, चाव्ययपदं द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तत्र भवः** यह सूत्र अनुवृत्त होता है और **दिगादिभ्यो यत्** से **यत्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

शरीर के अवयव वाचक सप्तम्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से 'होने वाला' इस अर्थ में यत् प्रत्यय होता है।

दन्त्यम्। दन्त में होने वाला पदार्थ, मल आदि कुछ भी। **दन्तेषु भवम्** लौकिक विग्रह और **दन्त सुप्** अलौकिक विग्रह है। **शरीरावयवाच्च** से यत् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **दन्त+य** बना है। भसंज्ञक अकार का लोप करके **दन्त्+य=दन्त्य** बना, सु के बाद अम् आदेश और पूर्वरूप करके **दन्त्यम्** सिद्ध हुआ।

कण्ठ्यम्। कण्ठ में होने वाला पदार्थ, मल आदि कुछ भी। **कण्ठे भवम्** लौकिक विग्रह और **कण्ठ ङि** अलौकिक विग्रह है। **शरीरावयवाच्च** से यत् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **कण्ठ+य** बना है। भसंज्ञक अकार का लोप करके **कण्ठ्+य=कण्ठ्य** बना, सु के बाद अम् आदेश और पूर्वरूप करके **कण्ठ्यम्** सिद्ध हुआ।

इसी तरह शरीर के अवयववाची अन्य शब्दों से भी यत् करके निम्नानुसार रूप सिद्ध होते हैं-

कर्णे भवम्-कर्ण्यम्=कान में होने वाला।
ओष्ठे भवम्-ओष्ठ्यम्= होंठ में होने वाला।
उरसि भवम्-उरस्यम्=छाती में होने वाला।
मुखे भवम्-मुख्यम्=मुख में होने वाला।
तालुनि भवम्-तालव्यम्=तालु में होने वाला।
मूर्धनि भवम्-मूर्धन्यम्=मूर्धा में होने वाला।

अब प्रसंगवश पूर्वोत्तरपद (उभयपद) की वृद्धि का विधान किया जा रहा है। ये सप्तमाध्याय के सूत्र हैं।

१४३१. प्राचां नगरान्ते ७।३।२४॥

प्राचां देशे नगरान्तेऽङ्गे पूर्वपदस्योत्तरपदस्य चाचामादेरचो वृद्धिर्ञिति णिति किति च। सुह्मनगरे भवः सौह्मनागरः। पौण्ड्रनागरः। 'प्राचाम्' किम्? मद्रनगरम् उदक्षु, तत्र भवो माद्रनगरः।

प्राचां नगरान्ते। नगरम् अन्ते यस्य तत् नगरान्तं, तस्मिन् नगरान्ते, बहुव्रीहिः। प्राचां षष्ठ्यन्तं, नगरान्ते सप्तम्यन्तम्। **हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च** से **पूर्वपदस्य** की, **तद्धितेष्वचामादेः** से **तद्धिते अचाम्, आदेः** तीनों पदों की, **मृजेर्वृद्धिः** से **वृद्धिः** की,

अचो ञ्णिति के दोनों पदों की और **किति च** से **किति** की अनुवृत्ति आती है। **उत्तरपदस्य** और **अङ्गस्य** का अधिकार है।

प्राच्य-देश में नगर-शब्दान्त जो अङ्ग, उनके पूर्वपद और उत्तरपद के अचों में जो आदि अच्, उसकी वृद्धि होती है, तद्धितसंज्ञक ञित् णित कित् प्रत्ययों के परे रहते।

यह उभयपदों में आदि अच् की वृद्धि करता है। अतः **तद्धितेष्वचामादेः** और **किति च** का अपवाद है। **प्राच्य**-शब्द पूर्वदिशा के देशों का बोधक है।

सुह्मनगरे भवः सौह्मनागरः। सुह्मनगर में होने वाला। **सुह्मनगरे भवः** लौकिक विग्रह और **सुह्मनगर+ङि** अलौकिक विग्रह है। **तत्र भवः** सूत्र से **अण्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **सुह्मनगर+अ** बना है। **प्राचां नगरान्ते** सूत्र से उभयपद के आदि अचों की वृद्धि होती है। यहाँ पर पूर्वपद **सुह्म** और उत्तरपद **नगर** है। अतः उकार और अकार की वृद्धि होगी। इस तरह **सौह्मनागर+अ** बना है। भसंज्ञक अकार का लोप करके **सौह्मनागर** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सौह्मनागरः** सिद्ध हो जाता है।

पौण्ड्रनागरः। पुण्ड्रनगर में होने वाला। **पुण्ड्रनगरे भवः** लौकिक विग्रह और **पुण्ड्रनगर+ङि** अलौकिक विग्रह में **तत्र भवः** सूत्र से **अण्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **पुण्ड्रनगर+अ** बना है। **प्राचां नगरान्ते** सूत्र से उभयपद के आदि अचों की वृद्धि होती है। यहाँ पर पूर्वपद **पुण्ड्र** और उत्तरपद **नगर** है। अतः उकार और अकार की वृद्धि होगी। इस तरह **पौण्ड्रनागर+अ** बना है। भसंज्ञक अकार का लोप करके **पौण्ड्रनागर** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पौण्ड्रनागरः** सिद्ध हो जाता है।

'प्राचाम्' किम्? मद्रनगरम् उदक्षु, तत्र भवो माद्रनगरः। प्रत्युदाहरण बता रहे हैं- प्रकृतसूत्र में **प्राचाम्** पद का निवेश इस लिये किया गया है कि नगरान्त शब्द होने पर पूर्वदेशवाची शब्द में ही उभयपद की वृद्धि होती है, अन्यथा नहीं होती। अतः **माद्रनगरः** में उभयपदवृद्धि नहीं होती, क्योंकि यह **उदक्षु**=उत्तरदेशवाची नगरान्त शब्द है। अतः **मद्रनगरे भवः** विग्रह में **तत्र भवः** से **अण्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर और **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि होकर **माद्रनगर** तथा स्वादिकार्य से **माद्रनगरः** सिद्ध हो जाता है।

१४३२. जङ्गलधेनुवलजान्तस्य विभाषितमुत्तरम् ७।३।२५॥

जङ्गलाद्यन्तस्याङ्गस्य पूर्वपदस्याचामादेरचो वृद्धिरुत्तरपदस्य तु वा ञिति णिति किति च। कुरुजङ्गले भवं कौरुजङ्गलम्, कौरुजाङ्गलम्। वैश्वधेनवम्, वैश्वधैनवम्। सौवर्णवलजम्, सौवर्णवालजम्।

जङ्गलधेनुवलजान्तस्य विभाषितमुत्तरम्। जङ्गलं च धेनुश्च वलजञ्च तेषां समाहारद्वन्द्वो जङ्गलधेनुवलजं, तद् अन्ते यस्य तद् जङ्गलधेनुवलजान्तं, तस्य जङ्गलधेनुवलजान्तस्य षष्ठ्यन्तम्। विभाषितं प्रथमान्तम्, उत्तरं प्रथमान्तम्। **हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च** से **पूर्वपदस्य** की, **तद्धितेष्वचामादेः** से **तद्धितेषु अचाम्, आदेः** तीनों पदों की, **मृजेर्वृद्धिः** से **वृद्धिः** की, **अचो ञ्णिति** के दोनों पदों की और **किति च** से **किति** की अनुवृत्ति आती है। **उत्तरपदस्य** और **अङ्गस्य** का अधिकार है।

जङ्गल, धेनु, वलज अन्त वाले अङ्ग के पूर्वपद के अचों में आदि अच् की नित्य से वृद्धि होती है और उत्तरपद के अचों में जो आदि अच्, उसकी विकल्प से वृद्धि होती है, तद्धितसंज्ञक जित् णित् कित् प्रत्ययों के परे रहते।

इस तरह यह सूत्र **तद्धितेष्वचामादेः** और **किति च** का अपवाद होते हुये पूर्वपद की नित्य से और उत्तरपद की विकल्प से वृद्धि करता है। **विभाषितम्** पद विभाषा-शब्द से **तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच्** सूत्र से इतच्-प्रत्यय होकर सिद्ध हुआ है। अतः विभाषित-शब्द का अर्थ है- विभाषा हो गयी है जिस पद में, वह पद। इस तरह **विभाषितम्** का अर्थ हुआ- उत्तरपद विभाषित वृद्धि वाला बनता है। **कुरुजङ्गल** आदि तीनों शब्द देशविशेष के वाचक हैं।

कुरुजङ्गले भवं कौरुजङ्गलम्, कौरुजाङ्गलम्। कुरुजङ्गल नामक देश में होने वाला। **कुरुजङ्गले भवम्** विग्रह करके **कुरुजङ्गल+ङि** से **तत्र भवः** सूत्र के द्वारा अण्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **कुरुजङ्गल+अ** बना है। जङ्गलान्त शब्द है। पूर्वपद **कुरु** और उत्तरपद **जङ्गल** है। अतः **जङ्गलधेनुवलजान्तस्य विभाषितमुत्तरम्** सूत्र के द्वारा पूर्वपद के आदि अच् की नित्य से और उत्तरपद के आदि अच् की विकल्प से वृद्धि होने के बाद भसंज्ञक अकार का लोप होकर **कौरुजाङ्गल** और **कौरुजङ्गल** ये दो शब्द बने हैं। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कौरुजाङ्गलम्** और **कौरुजङ्गलम्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

वैश्वधेनवम्, वैश्वधैनवम्। विश्वधेनु नामक देश में होने वाला। **विश्वधेन्वां भवम्** विग्रह करके **विश्वधेनु+ङि** से **तत्र भवः** सूत्र के द्वारा अण्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **विश्वधेनु+अ** बना है। धेन्वन्त शब्द है। पूर्वपद **विश्व** और उत्तरपद **धेनु** है। अतः **जङ्गलधेनुवलजान्तस्य विभाषितमुत्तरम्** सूत्र के द्वारा पूर्वपद के आदि अच् की नित्य से और उत्तरपद के आदि अच् की विकल्प से वृद्धि होने के बाद **धेनु** शब्द के उकार को **ओर्गुणः** सूत्र से गुण ओकार और उसको अवादेश होने पर **वैश्वधैनव** और **वैश्वधेनव** ये दो शब्द बने हैं। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वैश्वधैनवम्** और **वैश्वधेनवम्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

सौवर्णवलजम्, सौवर्णवालजम्। सुवर्णवलज नामक देश में होने वाला। **सुवर्णवलजे भवम्** विग्रह करके **सुवर्णवलज+ङि** से **तत्र भवः** सूत्र के द्वारा अण्-प्रत्ययादि

होकर **सुवर्णवलज+अ** बना है। वलजान्त शब्द है। पूर्वपद **सुवर्ण** और उत्तरपद **वलज** है। अतः **जङ्गलधेनुवलजान्तस्य विभाषितमुत्तरम्** सूत्र के द्वारा पूर्वपद के आदि अच् की नित्य से और उत्तरपद के आदि अच् की विकल्प से वृद्धि होने के बाद भसंज्ञक अकार का लोप होकर **सौवर्णवालज** और **सौवर्णवलज** ये दो शब्द बने हैं। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सौवर्णवालजम्** और **सौवर्णवलजम्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

प्रसंगानुसार दो सूत्रों के द्वारा वृद्धि का विवेचन करके पुनः **तत्र भवः** अर्थ में शब्द-विशेष से प्रत्यय-विशेष का विधान कर रहे हैं-

१४३३. दृतिकुक्षिकलशिवस्त्यस्त्यहेर्ढञ् ४।३।५६॥

दार्तेयम्। कौक्षेयम्। कलशिर्घटः, तत्र भवं कालशेयम्।

दृतिकुक्षिकलशिवस्त्यस्त्यहेर्ढञ्। दृतिश्च कुक्षिश्च कलशिश्च वस्तिश्च अस्तिश्च अहिश्च तेषां समाहारद्वन्द्वो दृतिकुक्षिकलशिवस्त्यस्त्यहिः, तस्माद् दृतिकुक्षिकलशिवस्त्यस्त्यहेः, सौत्रं पुंस्त्वम्। दृतिकुक्षिकलशिवस्त्यस्त्यहेः पञ्चम्यन्तं, ढञ् प्रथमान्तम्। **तत्र भवः** यह सूत्र अनुवृत्त होता है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त समर्थ दृति, कुक्षि, कलशि, वस्ति, अस्ति और अहि इन प्रातिपदिकों से 'होने वाला' इस अर्थ में ढञ् प्रत्यय होता है।

ढञ् में ञकार इत्संज्ञक है और केवल ढकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **एय्** आदेश होकर **एय** ऐसा प्रत्यय का स्वरूप बन जाता है। सूत्रोक्त **अस्ति** शब्द विभक्ति-प्रतिरूपक अव्यय है और इसके सत्ता, धन आदि अर्थ हैं।

दार्तेयम्। दृति=मशक, चर्ममय भस्त्रिका में होने वाला। **दृतौ भवम्** विग्रह करके **दृति+ङि** से **तत्र भवः** सूत्र के द्वारा अण्-प्रत्यय को बाधकर **दृतिकुक्षिकलशिवस्त्यस्त्यहेर्ढञ्** सूत्र से **ढञ्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, एयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **दृति+एय** बना है। आदिवृद्धि, रपर और भसंज्ञक इकार का लोप होकर **दार्तेय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **दार्तेयम्** सिद्ध हो जाता है।

कौक्षेयम्। कोख, पेट में होने वाला। **कुक्षौ भवम्** विग्रह करके **कुक्षि+ङि** से **दृतिकुक्षिकलशिवस्त्यस्त्यहेर्ढञ्** सूत्र से **ढञ्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, एयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक इकार का लोप होकर **कौक्षेय** तथा स्वादिकार्य होकर **कौक्षेयम्** सिद्ध हो जाता है। **कुक्षि** शब्द के धूमादिगण में पाठ होने से वुञ् भी प्राप्त था, उसका भी यह अपवाद है।

कलशिर्घटः, तत्र भवं कालशेयम्। कोशानुसार **कलशि** शब्द का अर्थ है- घट, उसमें होने वाला। **कलशौ भवम्** विग्रह करके **कलशि+ङि** से **दृतिकुक्षिकलशिवस्त्यस्त्यहेर्ढञ्** सूत्र से **ढञ्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, एयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक इकार का लोप होकर **कालशेय** तथा स्वादिकार्य होकर **कालशेयम्** सिद्ध हो जाता है। मन्थपात्र को भी **कलशि** कहते हैं।

वास्तेयम्। पेडू में होने वाला। **वस्तौ भवम्** विग्रह करके प्रकृत सूत्र से **ढञ्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, एयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक इकार का लोप होकर **वास्तेय** तथा स्वादिकार्य होकर **वास्तेयम्** सिद्ध हो जाता है। नाभि के नीचे के भाग को **वस्ति** कहते हैं।

आस्तेयम्। धन में रहने वाला। **अस्ति भवम्** विग्रह करके प्रकृत सूत्र से **ढञ्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, एयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक इकार का लोप होकर **आस्तेय** तथा स्वादिकार्य होकर **आस्तेयम्** सिद्ध हो जाता है। यहाँ पर **अस्ति** शब्द विभक्तिप्रतिरूपक अव्यय है और इसके सत्ता, धन आदि अर्थ हैं।

आहेयम्। सर्प में होने वाला। **अहौ भवम्** विग्रह करके प्रकृत सूत्र से **ढञ्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, एयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक इकार का लोप होकर **आहेय** तथा स्वादिकार्य होकर **आहेयम्** सिद्ध हो जाता है।

१४३४. ग्रीवाभ्योऽण् च ४।३।५७॥
चाड्ढञ्। ग्रैवेयम्, ग्रैवम्।

ग्रीवाभ्योऽण् च। ग्रीवाभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अण् प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **तत्र भवः** यह सूत्र अनुवृत्त होता है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है। **च**-शब्द से **दृतिकुक्षिकलशिवस्त्यस्त्यहेर्ढञ्** के **ढञ्** प्रत्यय का भी समुच्चय है।

सप्तम्यन्त समर्थ ग्रीवा शब्द से 'उसमें होने वाला' अर्थ में अण् प्रत्यय और ढञ् प्रत्यय होते हैं।

यहाँ पर **ग्रीवा** शब्द केवल कण्ठ का ग्राहक न होकर धमनियों का बोधक है और धमनियों की संख्या बहुत होने के कारण सूत्र में **गीवाभ्यः** यह बहुवचन निर्देश है। यह सूत्र **शरीरावयवाद्यत्** से प्राप्त यत् प्रत्यय का अपवाद है।

ग्रैवेयम्, ग्रैवम्। धमनियों में रहने वाला। **ग्रीवासु भवम्** विग्रह करके **ग्रीवा+सुप्** से **ग्रीवाभ्योऽण् च** सूत्र से **ढञ्** और **अण्** प्रत्यय होते हैं। ढञ्-प्रत्यय के पक्ष में अनुबन्धलोप, एयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक

आकार का लोप होकर **ग्रैवेय** शब्द बना है और अण् होने के पक्ष में आदिवृद्धि, आकारलोप होकर **ग्रैव** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **ग्रैवेयम्** और **ग्रैवम्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

१४३५. गम्भीराञ्ज्यः ४।३।५८॥

गम्भीरे भवं गाम्भीर्यम्।

'पञ्चजनादुपसङ्ख्यानम्' (वा.२८६८)। पाञ्चजन्यम्।

गम्भीराञ्ज्यः। गम्भीरात् पञ्चम्यन्तं, ञ्यः प्रथमान्तम्। **तत्र भवः** यह सूत्र अनुवृत्त होता है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त समर्थ गम्भीर-प्रातिपदिक से 'तत्र भवः' अर्थ में ञ्य प्रत्यय प्रत्यय होता है।

ञ्य में ञकार इत्संज्ञक है, **य** बचता है।

गम्भीरे भवं गाम्भीर्यम्। गहराई में रहने वाला या होने वाला। **गम्भीरे भवम्** विग्रह करके **गम्भीर+ङि** से **गम्भीराञ्ज्यः** सूत्र से **ञ्य** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **गाम्भीर्य** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **गाम्भीर्यम्** सिद्ध हो जाता है। प्रकृतसूत्र से ञ्य प्रत्यय की जगह यदि **यञ्** प्रत्यय किया जाता तो स्त्रीत्वविवक्षा में **प्राचां ष्फ तद्धितः** से ष्फ प्रत्यय की सम्भावना होने से अनिष्ट रूप की सिद्धि होती।

पञ्चजनादुपसङ्ख्यानम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- पञ्चजन-शब्द से भी भवार्थ में ञ्य-प्रत्यय होता है।

पाञ्चजन्यम्। पञ्चजन नामक दैत्य के पास रहने वाला या होने वाला, भगवान् विष्णु का शंख। **पञ्चजने भवम्** विग्रह करके **पञ्चजन+ङि** से **पञ्चजनादुपसङ्ख्यानम्** वार्तिक सक **ञ्य** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पाञ्चजन्य** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पाञ्चजन्यम्** सिद्ध हो जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण ने पञ्चजन-नामक दैत्य को मारकर उसकी हड्डी को ही शंख के रूप में स्वीकार किया था। **तं पाञ्चजन्यं शशिकोटिशुभ्रं शङ्खं सदाहं शरणं प्रपद्ये।**

१४३६. अव्ययीभावाच्च ४।३।५९॥

परिमुखं भवं पारिमुख्यम्।

'परिमुखादिभ्य एवेष्यते' (वा.२८६६)। नेह- औपकूलः।

अव्ययीभावाच्च। अव्ययीभावात् पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **गम्भीराञ्ञ्यः** से **ञ्यः** की और **तत्र भवः** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त समर्थ अव्ययीभाव-समासयुक्त प्रातिपदिक से 'तत्र भवः' अर्थ में ञ्य प्रत्यय होता है।

अव्ययीभाव शब्द अव्ययीभाव समास से युक्त शब्द का सूचक है अर्थात् जिसमें अव्ययीभाव समास हो चुका हो, उसी शब्द के विषय में प्रकृत सूत्र की प्रवृत्ति होती है।

परिमुखं भवं पारिमुख्यम्। सामीप्य या उपस्थिति। **परिमुखं** शब्द अव्ययीभाव समास से युक्त है। **परिमुखं भवम्** विग्रह करके **परिमुख** से **अव्ययीभावाच्च** सूत्र से **ञ्य** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पारिमुख्य** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पारिमुख्यम्** सिद्ध हो जाता है।

परिमुखादिभ्य एवेष्यते। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- प्रकृतसूत्र से परिमुखादि अव्ययीभाव शब्दों से ही ञ्य प्रत्यय इष्ट है, अन्य अव्ययीभाव से नहीं। सूत्र के द्वारा समस्त अव्ययीभाव शब्दों से प्राप्त था, उसका प्रकृत वार्तिक से परिसीमन कर दिया गया है। अतः यह वार्तिक नियमार्थ है।

परिमुखादिगणः- परिमुख, परिहनु, पर्योष्ठ, पर्युलूखल, परिसीर, उपसीर, उपस्थूण, उपकलाप, अनुपथ, अनुपद, अनुगङ्ग, अनुतिल, अनुसीत, अनुसाय, अनुसीर, अनुमाष, अनुयव, अनुयूप, अनुवंश, प्रतिशाख।

यद्यपि **परिमुखादिभ्य एवेष्यते** यह वार्तिक भाष्य में नहीं है तथापि दिगादिगणपाठ के अनन्तर परिमुखादि गणपाठ किये जाने से यह ज्ञापित होता है कि प्रकृतसूत्रस्थ अव्ययीभाव पद परिमुखादि गण तक ही सीमित है। कारण यह है कि अष्टाध्यायी में परिमुखादिगण को अभिलक्षित कर कोई दूसरा विधान नहीं किया गया है।

नेह- औपकूलः। अर्थात् **अव्ययीभावाच्च** सूत्र को परिमुखादिगण में ही सीमित कर दिये जाने के कारण **औपकूलः** में ञ्य-प्रत्यय नहीं होता, क्योंकि यह **उपकूल** शब्द परिमुखादिगण में नहीं आता। **कूलस्य समीपम्** विग्रह करके अव्ययीभाव समास होकर **उपकूल** शब्द बनता है और **तत्र भवः** अर्थ में औत्सर्गिक अण् प्रत्यय, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **औपकूल** तथा स्वादिकार्य से **औपकूलः** सिद्ध हो जाता है।

१४३७. अन्तःपूर्वपदाट्ठञ् ४।३।६०॥

'अव्ययीभावात्' इत्येव।

वेश्मनीत्यन्तर्वेश्मम्। तत्र भवमान्तर्वेश्मिकम्। आन्तर्गणिकम्।

'अध्यात्मादेष्ठञिष्यते' (वा.२८६९) अध्यात्मं भवं आध्यात्मिकम्।

अन्तःपूर्वपदाट्ठञ्। अन्तः पूर्वपदं यस्य तद् अन्तःपूर्वपदं, तस्माद् अन्तःपूर्वपदाद्, बहुव्रीहिः। अन्तःपूर्वपदात् पञ्चम्यन्तं, ठञ् प्रथमान्तम्। **अव्ययीभावात्** की तथा **तत्र भवः** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त समर्थ अव्ययीभाव-समासयुक्त अन्तर्-पूर्वपद वाले प्रातिपदिक से 'तत्र भवः' अर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है।

'अव्ययीभावात्' इत्येव। पूर्वसूत्र की अनुवृत्ति को सूचित किया गया है।

वेश्मनीत्यन्तर्वेश्मम्। तत्र भवमान्तर्वेश्मिकम्। मकान के भीतर होने वाला। पहले **वेश्मनि** लौकिक विग्रह में **अन्तर्** शब्द का **वेश्मन्** शब्द के साथ **अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि०** सूत्र से विभक्त्यर्थ में समास करके **अन्तर्वेश्मम्** शब्द बन जाता है। उसके बाद **अन्तर्वेश्मं भवम्** विग्रह करके **अन्तर्वेश्म** शब्द से **अन्तःपूर्वपदाट्ठञ्** सूत्र के द्वारा ठञ्-प्रत्यय करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, इकादेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **आन्तर्वेश्मिक** शब्द बनता है और स्वादिकार्य होकर **आन्तर्वेश्मिकम्** सिद्ध हो जाता है।

आन्तर्गणिकम्। गण के भीतर होने वाला। पहले **गणे** लौकिक विग्रह में **अन्तर्** शब्द का **गण** शब्द के साथ अव्ययीभाव समास करके **अन्तर्गणम्** शब्द बन जाता है। उसके बाद **अन्तर्गणं भवम्** विग्रह करके **अन्तर्गण** शब्द से **अन्तःपूर्वपदाट्ठञ्** सूत्र के द्वारा ठञ्-प्रत्यय करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, इकादेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **आन्तर्गणिक** शब्द बनता है और स्वादिकार्य होकर **आन्तर्गणिकम्** सिद्ध हो जाता है।

अध्यात्मादेष्ठञिष्यते। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- सप्तमी-समर्थ अध्यात्म आदि गणपठित शब्दों से भवार्थ में ठञ् प्रत्यय अभीष्ट है। ञकार इत्संज्ञक है। ठ के स्थान पर **ठस्येकः** से इक आदेश हो जाता है।

आध्यात्मिकम्। आत्मनि इति अध्यात्मम्=आत्मा(के विषय) में, **भवम्**=होने वाला। **अध्यात्म** शब्द अव्ययीभाव समास में निष्पन्न होने के कारण अव्यय है। उसके परे रहते विभक्ति की स्थिति नहीं है। अतः विभक्ति रहित **अध्यात्म** से **अध्यात्मादेष्ठञिष्यते** से **ठञ्** हुआ, अनुबन्धलोप, **अध्यात्म+ठ** प्रातिपदिकसंज्ञा, ठ के स्थान पर **ठस्येकः** से इक आदेश करके **अध्यात्म+इक** बना। आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **आध्यात्म्+इक=आध्यात्मिक** बना। सु, अम्, पूर्वरूप, **आध्यात्मिकम्** सिद्ध हुआ।

यद्यपि **अध्यात्मादिगण** में **अध्यात्म, अधिदेव, अधिभूत, इहलोक, परलोक** आदि शब्द पढ़े गये हैं तथापि इसे आकृतिगण माना जाता है। अतः अनेक तादृश (उसी प्रकार के) शब्दों से भी **तत्र भवः** अर्थ में ठञ् करके निम्नलिखित प्रयोगों की सिद्धि की जा सकती है-

इह भवम्=ऐहिकम् (यहाँ अथवा इस लोक में होने वाला)
अमुत्र भवम्=आमुत्रिकम् (वहाँ अर्थात् उस लोक में होने वाला)
त्रिवर्णेषु भवः=त्रैवर्णिकः (तीनों वर्णों का धर्म आदि)
स्वभावे भवः=स्वाभाविको (स्वाभाविक गुण आदि)।

अब आगे अनुशतिकादिगण में उभयपद-वृद्धि के लिये सूत्र को उपस्थापित किया जा रहा है-

१४३८. अनुशतिकादीनां च ७।३।२०॥

एषामुभयपदवृद्धिः स्याद् ञिति णिति किति च।
आधिदैविकम्। आधिभौतिकम्। ऐहलौकिकम्। पारलौकिकम्।
अध्यात्मादिराकृतिगणः।

अनुशतिकादीनां च। अनुशतिक आदिर्येषां ते अनुशतिकादयस्तेषाम्। अनुशतिकादीनां षष्ठ्यन्तं च अव्ययपदं द्विपदं सूत्रम्। **हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च** से **पूर्वपदस्य** की, **तद्धितेष्वचामादेः** से **अचाम्, आदेः** एवं **तद्धिते** की, **मृजेर्वृद्धिः** से **वृद्धिः** की, **अचो ञ्णिति** से **ञ्णिति** की और **किति च** से **किति** की अनुवृत्ति आती है। **उत्तरपदस्य** का अधिकार आता है।

अनुशतिकादिगण में पठित शब्दों में पूर्वपद और उत्तरपद अर्थात् उभयपद (दोनों पदों) के आदि अच् की वृद्धि होती है, ञित् णित् और कित् प्रत्यय के परे रहते।

जहाँ दो पदों में समास होकर एकपद हो गया है, वहाँ भी **पदत्व** तो दोनों पदों में है। **तद्धितेष्वचामादेः** पूर्वपद में ही आदिवृद्धि करता है और जहाँ दोनों पदों में आदिवृद्धि करना अभीष्ट है, वहाँ के लिए यह सूत्र पठित है।

आधिदैविकम्। देवों में होने वाला। **अधिदेवम्** शब्द अव्ययीभाव समास में निष्पन्न होने के कारण अव्यय है। **अधिदेव ङि** से **अध्यात्मादेष्ठञिष्यते** से **ठञ्** हुआ, अनुबन्धलोप, **अधिदेव+ठ** प्रातिपदिकसंज्ञा, **ठ** के स्थान पर **ठस्येकः** से **इक** आदेश करके **अधिदेव+इक** बना। यहाँ पर **अधि** पूर्वपद और **देव** उत्तरपद है। **अनुशतिकादीनां च** से दोनों पदों के आदि अचों की वृद्धि हुई। **अ** की वृद्धि **आ** और **ए** की वृद्धि **ऐ** होने से **आधिदैव+इक**, भसंज्ञक **अकार** का लोप करके **आधिदैव्+इक=आधिदैविक** बना। सु, अम्, पूर्वरूप, **आधिदैविकम्** सिद्ध हुआ।

आधिभौतिकम्। पृथ्वी आदि भूतों में होने वाला। **अधिभूतम्** शब्द अव्ययीभाव समास में निष्पन्न होने के कारण अव्यय है। **अधिभूत ङि** से **अध्यात्मादेष्ठञिष्यते** से **ठञ्** हुआ, अनुबन्धलोप, **अधिभूत+ठ** प्रातिपदिकसंज्ञा, **ठ** के स्थान पर **ठस्येकः** से **इक** आदेश करके **अधिभूत+इक** बना। यहाँ पर **अधि** पूर्वपद और **देव** उत्तरपद है।

अनुशतिकादीनां च से दोनों पदों के आदि अचों की वृद्धि हुई। **अ** की वृद्धि **आ** और **उ** की वृद्धि **औ** होने से **आधिभौत+इक**, भसंज्ञक अकार का लोप करके **आधिभौत्+इक=आधिभौतिक** बना। सु, अम्, पूर्वरूप, **आधिभौतिकम्** सिद्ध हुआ।

ऐहलौकिकम्। इस लोक में होने वाला। **इहलोक+ङि** में **विशेषणं विशेष्येण बहुलम्** से समास, प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्तिलुक् के बाद पुनः स्वादिकार्य होने से **इहलोकः, इहलोकौ** आदि बनते हैं। **इहलोके भवम्** यह लौकिक विग्रह और **इहलोक ङि** अलौकिक विग्रह है। **इहलोक** से **अध्यात्मादेष्ठञिष्यते** के द्वारा **ठञ्** हुआ, अनुबन्धलोप, **इहलोक+ठ** प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्ति का लुक्, **ठ** के स्थान पर **ठस्येकः** से **इक** आदेश करके **इहलोक+इक** बना। यहाँ पर **इह** पूर्वपद और **लोक** उत्तरपद है। **अनुशतिकादीनां च** से दोनों पदों के आदि अचों की वृद्धि हुई। **इ** की वृद्धि **ऐ** और **ओ** की वृद्धि **औ** होने से **ऐहलौक+इक**, भसंज्ञक अकार का लोप करके **ऐहलौक्+इक=ऐहलौकिक** बना। सु, अम्, पूर्वरूप होकर **ऐहलौकिकम्** सिद्ध हुआ।

पारलौकिकम्। पर लोक में होने वाला। **परश्चासौ लोकः** में कर्मधारयसमास है। **परलोके भवम्** लौकिक विग्रह है। **परलोक ङि** से **अध्यात्मादेष्ठञिष्यते** से **ठञ्** हुआ, अनुबन्धलोप, **परलोक+ठ** प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्तिलुक् होकर **ठ** के स्थान पर **ठस्येकः** से **इक** आदेश करके **परलोक+इक** बना। यहाँ **पर** पूर्वपद और **लोक** उत्तरपद है। **अनुशतिकादीनां च** से दोनों पदों के आदि अचों की वृद्धि हुई। **अ** की वृद्धि **आ** और **ओ** की वृद्धि **औ** होने से **पारलौक+इक**, भसंज्ञक **अकार** का लोप करके **पारलौक्+इक=** पारलौकिक बना। सु, अम्, पूर्वरूप, **पारलौकिकम्** सिद्ध हुआ।

अध्यात्मादिराकृतिगणः। अध्यात्मादि आकृतिगण है।

अब आगे आदिवृद्धि के बाधक आत् आदेश-विधायक सूत्र को उपस्थापित कर रहे हैं-

१४३९. देविकाशिंशपादित्यवाड्दीर्घसत्रश्रेयसामात् ७।३।१॥

एषां पञ्चानां वृद्धिप्राप्तावादेरच आद् ञिति णिति किति च। दाविकम्। देविकाकूले भवा दाविकाकूलाः शालयः। शिंशपाया विकारः शांशपश्चमसः। 'पलाशादिभ्यो वा'(सू.१५२१) इत्यञ्। दित्यौह इदं दात्यौहम्। दीर्घसत्रे भवं दार्घसत्रम्। श्रेयसि भवं श्रायसम्।

देविकाशिंशपादित्यवाड्दीर्घसत्रश्रेयसामात्। देविका च शिंशपा च दित्यवाट् च दीर्घसत्रं च श्रेयस् च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो देविकाशिंशपादित्यवाड्दीर्घसत्रश्रेयसस्तेषां देविकाशिंशपादित्यवाड्दीर्घसत्रश्रेयसां षष्ठ्यन्तम्, आत् प्रथमान्तम्। **तद्धितेष्वचामादेः** से **अचाम्, आदेः** एवं **तद्धिते** की, **मृजेर्वृद्धिः** से **वृद्धिः** की, **अचो ञ्णिति** से **ञ्णिति** की और **किति च** से **किति** की अनुवृत्ति आती है।

देविका, शिंशपा, दित्यवाट्, दीर्घसत्र और श्रेयस् इन पाँच शब्दों की आदिवृद्धि प्राप्त होने पर उसके स्थान पर आकार आदेश होता है, ञित् णित् और कित् प्रत्यय के परे रहते।

वृद्धि होती तो एकार को ऐकार, इकार-ईकार को ऐकार की प्राप्ति होती किन्तु प्रकृत सूत्र से सर्वत्र केवल आकार आदेश ही किया गया है। अतः यह सूत्र **तद्धितेष्वचामादेः** का अपवाद है। प्रकृतसूत्र में प्रोक्त सभी उदाहरण भवार्थक मात्र के नहीं हैं अपितु विकारादि अर्थ वाले भी हैं।

दाविकम्। देविका नदी में उत्पन्न। **देविकायां भवम्** विग्रह करके **देविका+ङि** में **तत्र भवः** सूत्र से अण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **देविका+अ** बना है। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि प्राप्त होने पर उसे बाधकर **देविकाशिंशपादित्यवाड्दीर्घसत्रश्रेयसामात्** सूत्र से **दे** के एकार के स्थान पर आकार आदेश होकर **दाविका+अ** बना। भसंज्ञक आकार का लोप करके स्वादिकार्य करने पर **दाविकम्** सिद्ध हो जाता है।

देविकाकूले भवा दाविकाकूलाः शालयः। देविकाकूल=देविकानदी के तट में उत्पन्न धान। **देविकाकूले भवः** विग्रह करके **देविकाकूल+ङि** में **तत्र भवः** सूत्र से अण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **देविकाकूल+अ** बना है। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि प्राप्त होने पर उसे बाधकर **देविकाशिंशपादित्यवाड्दीर्घसत्रश्रेयसामात्** सूत्र से **दे** के एकार के स्थान पर आकार आदेश होकर **दाविकाकूल+अ** बना। भसंज्ञक आकार का लोप करके स्वादिकार्य करने पर **दाविकाकूलम्** सिद्ध हो जाता है। यहाँ उत्तरपद की वृद्धि के भ्रम का निवारण करने के लिये यह उदाहरण दिया गया है।

शिंशपाया विकारः शांशपश्चमसः। 'पलाशादिभ्यो वा' इत्यञ्। शिशम की लकड़ी का बना हुआ चम्मच, यज्ञपात्र जो चौकोर होता है। **शिंशपायाः विकारः** विग्रह करके **शिंशपा+ङस्** में **पलाशादिभ्यो वा (४.३.१४१)** सूत्र से अञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **शिंशपा+अ** बना है। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि प्राप्त होने पर उसे बाधकर **देविकाशिंशपादित्यवाड्दीर्घसत्रश्रेयसामात्** सूत्र से **शि** के इकार के स्थान पर आकार आदेश होकर **शांशपा+अ** बना। भसंज्ञक आकार का लोप करके स्वादिकार्य करने पर **शांशपः** सिद्ध हो जाता है।

दित्यौह इदं दात्यौहम्। दो वर्ष के बछड़े का यह। **दित्यौहः इदम्** विग्रह करके **दित्यवाह्+ङस्** में **तस्येदम्** सूत्र से अण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **वाह ऊठ्** सूत्र से वकार को सम्प्रसारण एवं **सम्प्रसारणाच्च** सूत्र से पूर्वरूप करके **दित्य+ऊह्+अ** बना है। **एत्येधत्यूठ्सु** सूत्र के द्वारा वृद्धि एकादेश करके **दित्यौह्+अ** बना है। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि प्राप्त होने पर उसे बाधकर **देविकाशिंशपा-**

दित्यवाड्दीर्घसत्रश्रेयसामात् सूत्र से **दि** के इकार के स्थान पर आकार आदेश होकर **दात्यौह** बना है। स्वादिकार्य करने पर **दात्यौहः** सिद्ध हो जाता है।

दीर्घसत्रे भवं दार्घसत्रम्। लम्बे समय के यज्ञ में होने वाला। **दीर्घसत्रे भवम्** विग्रह करके **दीर्घसत्र+ङि** में **तत्र भवः** सूत्र से अण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि प्राप्त होने पर उसे बाधकर **देविकाशिंशपादित्यवाड्दीर्घसत्रश्रेयसामात्** सूत्र से **दी** के ईकार के स्थान पर आकार आदेश होकर **दार्घसत्र** बना है। स्वादिकार्य करने पर **दार्घसत्रम्** सिद्ध हो जाता है।

श्रेयसि भवं श्रायसम्। कल्याण में होने वाला। **श्रेयसि भवम्** विग्रह करके **श्रेयस्+ङि** में **तस्येदम्** सूत्र से अण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् **श्रेयस्+अ** बना है। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि प्राप्त होने पर उसे बाधकर **देविकाशिंशपादित्यवाड्दीर्घसत्रश्रेयसामात्** सूत्र से **श्रे** के एकार के स्थान पर आकार आदेश होकर **श्रायस** बना है। स्वादिकार्य करने पर **श्रायसम्** सिद्ध हो जाता है।

१४४०. ग्रामात् पर्यनुपूर्वात् ४।३।६१॥

ठञ् स्यात्। 'अव्ययीभावात्' इत्येव। पारिग्रामिकः। आनुग्रामिकः।

ग्रामात् पर्यनुपूर्वात्। परिश्च अनुश्च पर्यनू, तौ पूर्वौ यस्मात् तत् पर्यनुपूर्वम्, तस्मात् पर्यनुपूर्वात्। ग्रामात् पञ्चम्यन्तं, पर्यनुपूर्वात् पञ्चम्यन्तम्। **अव्ययीभावाच्च** से **अव्ययीभावात्** की, **अन्तःपूर्वपदाट्ठञ्** से **ठञ्** की तथा **तत्र भवः** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

अव्ययीभावसमासयुक्त सप्तम्यन्त समर्थ परि या अनु पूर्वक ग्राम-शब्द से भवार्थ में ठञ् प्रत्यय प्रत्यय होता है।

'अव्ययीभावात्' इत्येव। यह सूत्र भी अव्ययीभाव समास होने पर ही प्रवृत्त होता है।

पारिग्रामिकः। गाव के चारों ओर होने वाला। **परिग्रामम्** शब्द अव्ययीभाव समास में निष्पन्न होने के कारण अव्यय है। **परिग्राम+ङि** से **ग्रामात् पर्य पर्यनुपूर्वात्** सूत्र से **ठञ्** हुआ, अनुबन्धलोप होने के बाद **परिग्राम+ठ** बना। **ठ** के स्थान पर **ठस्येकः** से **इक** आदेश करके **परिग्राम+इक** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** सूत्र से आदिवृद्धि हुई और अकार का **यस्येति च** से लोप होकर **पारिग्रामिक** बना। स्वादिकार्य होकर **पारिग्रामिकः**सिद्ध हुआ।

आनुग्रामिकः। गाव के पीछे होने वाला। **अनुग्रामम्** शब्द अव्ययीभाव समास में निष्पन्न होने के कारण अव्यय है। **अनुग्राम+ङि** से **ग्रामात् पर्य पर्यनुपूर्वात्** सूत्र से **ठञ्** हुआ, अनुबन्धलोप होने के बाद **अनुग्राम+ठ** बना। **ठ** के स्थान पर **ठस्येकः** से **इक**

आदेश करके **आनुग्राम+इक** बना। **तद्धितेष्वचामादेः** सूत्र से आदिवृद्धि हुई और अकार का **यस्येति च** से लोप होकर **आनुग्रामिक** बना। स्वादिकार्य होकर **आनुग्रामिकः**सिद्ध हुआ।

१४४१. जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः ४।३।६२॥
जिह्वामूलीयम्। अङ्गुलीयम्।

जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः। जिह्वाया मूलं जिह्वामूलम्, जिह्वामूलञ्च अङ्गुलिश्च तयोः समाहाराद्वन्द्वो जिह्वामूलाङ्गुलिः, सौत्रं पुंस्त्वम्, तस्माद्। जिह्वामूलाङ्गुलेः पञ्चम्यन्तं, छः प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है। **तत्र भवः** की अनुवृत्ति आती है।

जिह्वामूल और अङ्गुलि शब्द से तत्र भवः अर्थ में छ-प्रत्यय होता है।

ये दोनों शब्द शरीर के अवयववाचक होने के कारण इनसे **शरीरावयवाच्च** से यत् प्रत्यय की प्राप्ति थी, उसे बाधकर यह **छ** करता है। **छ** के **छकार** के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से ईय् आदेश होकर **ईय** बन जाता है।

जिह्वामूलीयम्। जीभ के मूल भाग में होने वाला। **जिह्वामूले भवं** लौकिक विग्रह और **जिह्वामूल ङि** अलौकिक विग्रह है। **जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः** से छ प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके छ के छकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से ईय् आदेश करके **जिह्वामूल+ईय** बना। ञित्, णित् या कित् न होने के कारण आदिवृद्धि तो नहीं हुई किन्तु भसंज्ञक अकार का लोप हुआ, **जिह्वामूल्+ईय=जिह्वामूलीय** बना। सु प्रत्यय, उसके स्थान पर **अम्** आदेश, पूर्वरूप करके **जिह्वामूलीयम्** सिद्ध हुआ।

अङ्गुलीयम्। अङ्गुली में होने वाला। **अङ्गुल्यां भवं** लौकिक विग्रह और **अङ्गुलि ङि** अलौकिक विग्रह है। **जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः** से छ प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके छ के छ् के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से ईय् आदेश करके **अङ्गुल+ईय** बना। ञित्, णित् या कित् न होने के कारण आदिवृद्धि तो नहीं हुई किन्तु भसंज्ञक ईकार का लोप हुआ, **अङ्गुल्+ईय=अङ्गुलीय** बना। सु, अम्, पूर्वरूप करके **अङ्गुलीयम्** सिद्ध हुआ।

१४४२. वर्गान्ताच्च ४।३।६३॥
कवर्गीयम्।

वर्गान्ताच्च। वर्गः अन्ते यस्य स वर्गान्तस्तस्मात्। वर्गान्तात् पञ्चम्यन्तं, चाव्ययपदं द्विपदमिदं सूत्रम्। **तत्र भवः** इस सूत्र का अनुवर्तन होता है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है और **जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः** से **छः** की अनुवृत्ति आती है।

वर्ग शब्द अन्त में हो ऐसे शब्दों से भी छ प्रत्यय होता है।

सामान्यतया **तत्र भवः** अर्थ में **तत्र भवः** से अण् प्रत्यय की प्राप्ति थी तो इस सूत्र को बनाकर के वर्गान्त से छ का विधान किया गया। छ के स्थान पर ईय् आदेश तो होता ही है।

कवर्गीयम्। कवर्ग में होने वाला। **कवर्गे भवं** लौकिक विग्रह और **कवर्ग ङि** अलौकिक विग्रह है। **वर्गान्ताच्च** से छ प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके छ के छ् के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से ईय् आदेश करके **कवर्ग+ईय** बना। ञित्, णित् या कित् न होने के कारण आदिवृद्धि तो नहीं हुई किन्तु भसंज्ञक अकार का लोप हुआ, **कवर्ग्+ईय=कवर्गीय** बना। सु, अम्, पूर्वरूप करके **कवर्गीयम्** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार से **चवर्गे भवं, चवर्ग ङि** से **चवर्गीयम्** आदि प्रयोग बनाये जा सकते हैं।

१४४३. अशब्दे यत्खावन्यतरस्याम् ४।३।६४॥

पक्षे पूर्वेण छः। मद्वर्ग्यः, मद्वर्गीणः, मद्वर्गीयः।

अशब्दे किम्? कवर्गीयो वर्णः।

अशब्दे यत्खावन्यतरस्याम्। न शब्दोऽशब्दस्तस्मिन् अशब्दे, नञ्तत्पुरुषः। यत् च खश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो यत्खौ। अशब्दे सप्तम्यन्तं, यत्खौ प्रथमान्तम्, अन्यतरस्यां विभक्तिप्रतिरूपकमव्ययम्। **वर्गान्ताच्च** से **वर्गान्तात्** का तथा **तत्र भवः** सूत्र के दोनों पदों का अनुवर्तन होता है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

सप्तमी-समर्थ वर्गान्त प्रातिपदिक से शब्दसमूह से भिन्न अर्थ गम्य होने पर विकल्प से यत् और ख प्रत्यय होते हैं।

पक्षे पूर्वेण छः। इस सूत्र से यत् और ख प्रत्यय न होने के पक्ष में **वर्गान्ताच्च** से **छ** प्रत्यय होता है। पूर्वसूत्र से छ-प्रत्यय की प्राप्ति होने पर प्रकृतसूत्र बाधनार्थ उपस्थित है।

मद्वर्ग्यः, मद्वर्गीणः, मद्वर्गीयः। मेरे वर्ग (पक्ष) में रहने वाला। **मद्वर्गे भवः** विग्रह करके **मद्वर्ग+ङि** से छ-प्रत्यय को बाधकर **अशब्दे यत्खावन्यतरस्याम्** सूत्र से यत् और ख प्रत्यय होते हैं। यत् होने के पक्ष में भसंज्ञक अकार का लोप होकर **मद्वर्ग्य** शब्द बना है। ख-प्रत्यय होने के पक्ष में खकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **ईन्** आदेश होने पर अकारलोप करके **मद्वर्गीन** और णत्व होकर **मद्वर्गीण** बना है। छ-प्रत्यय होने के पक्ष में छकार के स्थान पर **ईय्** आदेश, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **मद्वर्गीय** ये तीन शब्द बने हैं। सर्वत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **मद्वर्ग्यः, मद्वर्गीणः** और **मद्वर्गीयः** ये तीन रूप सिद्ध हो जाते हैं।

अशब्दे किम्? कवर्गीयो वर्णः। प्रकृतसूत्र में **अशब्दे** पद के द्वारा शब्द-सम्बन्धी विषय होने पर यत् और ख प्रत्ययों का निषेध किया गया है। अतः **कवर्ग** शब्द से उक्त प्रत्यय नहीं होते अपितु पूर्वसूत्र **वर्गान्ताच्च** से छ-प्रत्यय होकर **कवर्गीयः** बनता है। कवर्ग में रहने वाला वर्ण।

१४४४. कर्णललाटात् कनलङ्कारे ४।३।६५॥
कर्णिका। ललाटिका।

कर्णललाटात्कनलङ्कारे। कर्णश्च ललाटश्च तयोः समाहारद्वन्द्वः कर्णललाटं, तस्मात् कर्णललाटात् पञ्चम्यन्तं, कन् प्रथमान्तम्, अलङ्कारे सप्तम्यन्तम्। **तत्र भवः** की अनुवृत्ति होती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

सप्तमी-समर्थ कर्ण और ललाट इन प्रातिपदिकों से भवार्थ में कन् प्रत्यय होता है, अलंकार अर्थ अभिधेय होने पर।

कन् में नकार इत्संज्ञक है, **क** बचता है। **शरीरावयवाच्च** से प्राप्त यत् प्रत्यय का यह अपवाद है। सुन्दरता हेतु धारण किये जाने वाले आभूषणों को अलंकार कहा गया है।

कर्णिका। कान का आभूषण। **कर्णे भवा** विग्रह करके **कर्ण+ङि** से **कर्णललाटात् कनलङ्कारे** सूत्र के द्वारा **कन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप होकर **कर्णक** शब्द बना है। लोक में इस शब्द का स्त्रीलिंग में प्रयोग होता है। अतः **अजाद्यतष्टाप्** सूत्र से टाप् प्रत्यय होकर **कर्णका** और **प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः** से णकारोत्तरवर्ती अकार को इकार आदेश होकर **कर्णिका** बन जाता है। स्वादिकार्य होकर **कर्णिका** सिद्ध हो जाता है।

ललाटिका। ललाट का आभूषण, टिकिया आदि। **ललाटे भवा** विग्रह करके **ललाट+ङि** से **कर्णललाटात् कनलङ्कारे** सूत्र के द्वारा **कन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप होकर **ललाटक** शब्द बना है। लोक में इस शब्द का स्त्रीलिंग में प्रयोग होता है। अतः **अजाद्यतष्टाप्** सूत्र से टाप् प्रत्यय होने पर इत्त्व होकर **ललाटिका** तथा स्वादिकार्य होकर **ललाटिका** सिद्ध हो जाता है।

अब प्राग्दीव्यतीयों में उनतीसवें अर्थक्रम **तस्य व्याख्यानः** का प्रसंग आ रहा है-

१४४५. तस्य व्याख्यान इति च व्याख्यातव्यनाम्नः ४।३।६६॥
सुपां व्याख्यानः सौपो ग्रन्थः। तैङः। कार्तः। सुप्सु भवं सौपम्।

तस्य व्याख्यान इति च व्याख्यातव्यनाम्नः। व्याख्यायते अनेन इति व्याख्यानः,

तस्मिन् व्याख्याने। व्याख्यातव्यस्य नाम व्याख्यातव्यनाम, तस्माद् व्याख्यातव्यनाम्नः, षष्ठीतत्पुरुषः। **तत्र भवः** की अनुवृत्ति होती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है। **च** शब्द से **तत्र भवः** का भी समुच्चय समझना चाहिये।

व्याख्यान किये जाने वाले षष्ठी-समर्थ प्रातिपदिकों से व्याख्यान अभिधेय होने पर यथाविहित प्रत्यय होते हैं तथा सप्तमी समर्थ व्याख्यातव्यवाची शब्दों से भवार्थ में भी यथाविहित प्रत्यय होते हैं।

व्याख्यायते अनेन इस व्युत्पत्ति से **व्याख्यान** शब्द ग्रन्थ का पर्यायवाची है। **व्याख्यान** का कर्म ग्रन्थ का विषय होता है। कर्ता **आचार्य** होता है। **कथन** क्रिया है। सूत्रोक्त **च** शब्द से सूत्र के दो अर्थ होते हैं। **तत्र भवः** की अनुवृत्ति से सप्तमी-समर्थ से भवार्थ में और सूत्रोक्त **तस्य व्याख्याने** के अनुसार षष्ठीसमर्थ से **व्याख्यान** अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं। यद्यपि उपर्युक्त दोनों अर्थों के साधक तो सामान्यतः **तस्येदम्** और **तत्र भवः** सूत्र विद्यमान हैं, अतः इस सूत्र की बहुत आवश्यकता प्रतीत नहीं होती, तथापि अर्थद्वय के बाधक ठञ् आदि प्रत्यय बताये जायेंगे, उनके अपवादस्वरूप युगपद्-व्याख्यानरूप अधिकार चरितार्थ होता है। अत एव भाष्यकार ने भी कहा है- **युगपदपवादान् वक्ष्यामि।**

सुप्, तिङ्, कृत् आदि व्याख्यातव्य विषय हैं, अतः इनसे प्रत्यय होगा।

सुपां व्याख्यानः सौपो ग्रन्थः। सुपों का व्याख्यान। **सुपां व्याख्यानः** विग्रह करके **सुप्+आम्** से **तस्य व्याख्यान इति च व्याख्यातव्यनाम्नः** सूत्र से यथाविहित अण् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **सुप्+अ** बना है। आदिवृद्धि होकर **सौप** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सौपः** सिद्ध हो जाता है। सुप्-प्रत्ययों का व्याख्यान जिस ग्रन्थ में किया गया है, उस ग्रन्थ का नाम।

तैङः। तिङों का व्याख्यान। **तिङां व्याख्यानः** विग्रह करके **तिङ्+आम्** से **तस्य व्याख्यान इति च व्याख्यातव्यनाम्नः** सूत्र से यथाविहित अण् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **तिङ्+अ** बना है। आदिवृद्धि होकर **तैङ** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **तैङः** सिद्ध हो जाता है। तिङ्-प्रत्ययों का व्याख्यान जिस ग्रन्थ में किया गया है, उस ग्रन्थ का नाम।

कार्तः। कृत्-प्रत्ययों का व्याख्यान। **कृतां व्याख्यानः** विग्रह करके **कृत्+आम्** से **तस्य व्याख्यान इति च व्याख्यातव्यनाम्नः** सूत्र से अण् प्रत्यय, आदिवृद्धि, रपर होकर **कार्त** और स्वादिकार्य होकर **कार्तः** सिद्ध हो जाता है। कृत्-प्रत्ययों का व्याख्यान जिस ग्रन्थ में किया गया है, उस ग्रन्थ का नाम।

सुप्सु भवं सौपम्। उपर्युक्त तीन उदाहरण **तस्य व्याख्यानः** के थे किन्तु **सुप्सु भवम्** विग्रह में भी अण् ही प्रत्यय होता है किन्तु इसका विग्रह है- **सुप्सु भवम्।** यहाँ पर **तत्र भवः** अर्थ में अण् प्रत्यय है।

१४४६. बह्वचोऽन्तोदात्ताट्ठञ् ४।३।६७॥

षत्वणत्वयोर्विधायकं शास्त्रं षत्वणत्वम्,
तस्य व्याख्यानस्तत्र भवो वा षात्वणत्विकः।

बह्वचोऽन्तोदात्ताट्ठञ्। बहवोऽचो यस्मिन् स बह्वच्, तस्माद् बह्वचः। अन्त उदात्तो यस्य स अन्तोदात्तस्तस्माद् अन्तोदात्तात्। बह्वचः पञ्चम्यन्तम्, अन्तोदात्तात् पञ्चम्यन्तं, ठञ् प्रथमान्तम्। **तस्य व्याख्यान इति च व्याख्यातव्यनाम्नः** के सभी पदों की और **तत्र भवः** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

व्याख्यान और भव अर्थ में षष्ठी-समर्थ और सप्तमी समर्थ बहुत अच् वाले अन्तोदात्त व्याख्यातव्य नाम प्रातिपदिकों से ठञ् प्रत्यय होता है।

षत्वणत्वयोर्विधायकं शास्त्रं षत्वणत्वम्, तस्य व्याख्यानस्तत्र भवो वा षात्वणत्विकः। षत्व और णत्व के विधायक शास्त्र को भी लक्षणावश षत्वणत्व ही कहा जाता है और उनके व्याख्यान या उनमें रहने वाला विषय **षात्वणत्विकः** है। **षत्वणत्वयोः व्याख्यानः** अथवा **षत्वणत्वयोः भवः** विग्रह करके **षत्वणत्व** शब्द से **बह्वचोऽन्तोदात्ताट्ठञ्** सूत्र से ठञ् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, ठ के स्थान पर इकादेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **षात्वणत्विक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **षात्वणत्विकः** सिद्ध हो जाता है।

१४४७. क्रतुयज्ञेभ्यश्च ४।३।६८॥

सोमसाध्येषु यागेष्वेतौ प्रसिद्धौ तत्रान्यतरोपादानेन सिद्धे उभयोरुपादानसामर्थ्यादसोमका अपीह गृह्यन्ते। अग्निष्टोमस्य व्याख्यानस्तत्र भवो वा आग्निष्टोमिकः। वाजपेयिकः। राजसूयिकः। पाकयज्ञिकः। नावयज्ञिकः। बहुवचनं स्वरूपविधिनिरासार्थम्। अनन्तोदात्तार्थ आरम्भः।

क्रतुयज्ञेभ्यश्च। क्रतवश्च यज्ञाश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः क्रतुयज्ञास्तेभ्यः क्रतुयज्ञेभ्यः पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **बह्वचोऽन्तोदात्ताट्ठञ्** से ठञ् की, **तस्य व्याख्यान इति च व्याख्यातव्यनाम्नः** के सभी पदों की और **तत्र भवः** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

क्रतुवाची और यज्ञवाची व्याख्यातव्यनाम षष्ठी तथा सप्तमी-समर्थ प्रातिपदिकों से व्याख्यान और भव अर्थों में ठञ् प्रत्यय होता है।

सोमसाध्येषु यागेष्वेतौ प्रसिद्धौ तत्रान्यतरोपादानेन सिद्धे उभयोरुपादान-सामर्थ्यादसोमका अपीह गृह्यन्ते। अर्थात् **क्रतु** और **यज्ञ** ये दोनों ही शब्द सोम से साध्य होने वाले सोमयाग के सम्बन्ध में प्रसिद्ध हैं। अतः क्रतु के ग्रहण से यज्ञ का ग्रहण हो

जाता और या यज्ञ के ग्रहण से क्रतु का ग्रहण हो जाता। इस तरह एक शब्द का ही उपादान पर्याप्त था, तथापि सूत्रकार ने **क्रतु** और **यज्ञ** दोनों शब्दों का ग्रहण किया है, तत्सामर्थ्यात् यहाँ पर **क्रतु** और **यज्ञ** ये असोमक (सोमसाध्य से भिन्न) का भी ग्रहण होता है। अर्थात् सोमसाध्य से भिन्न यज्ञ और क्रतुवाचक शब्दों से भी व्याख्यान अर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है। अतः उदाहरणों में सोमसाध्य और असोमक दोनों प्रकार के उदाहरण दिये गये हैं।

अग्निष्टोमस्य व्याख्यानस्तत्र भवो वा आग्निष्टोमिकः। अग्निष्टोम नामक यज्ञ का व्याख्यान ग्रन्थ या अग्निष्टोम नामक यज्ञ में होने वाला। **अग्निष्टोमस्य व्याख्यानः** अथवा **अग्निष्टोमे भवः** विग्रह करके अलौकिक विग्रह में भी अर्थानुसार षष्ठ्यन्त या सप्तम्यन्त बना लेना चाहिये। **अग्निष्टोम**-शब्द से **क्रतुयज्ञेभ्यश्च** सूत्र से **ठञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप आदि करके **आग्निष्टोमिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आग्निष्टोमिकः** सिद्ध हो जाता है।

वाजपेयिकः। वाजपेय नामक यज्ञ का व्याख्यान ग्रन्थ या वाजपेय नामक यज्ञ में होने वाला। **वाजपेयस्य व्याख्यानः** अथवा **वाजपेये भवः** विग्रह करके अलौकिक विग्रह में भी अर्थानुसार षष्ठ्यन्त या सप्तम्यन्त बनाकर **वाजपेय**-शब्द से **क्रतुयज्ञेभ्यश्च** सूत्र से **ठञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप आदि करके **वाजपेयिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वाजपेयिकः** सिद्ध हो जाता है।

राजसूयिकः। राजसूय नामक यज्ञ का व्याख्यान ग्रन्थ या राजसूय नामक यज्ञ में होने वाला। **राजसूयस्य व्याख्यानः** अथवा **राजसूये भवः** विग्रह करके **राजसूय**-शब्द से **क्रतुयज्ञेभ्यश्च** सूत्र से **ठञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप आदि करके **राजसूयिक** और स्वादिकार्य होकर **राजसूयिकः** सिद्ध हो जाता है।

पाकयज्ञिकः। पाकयज्ञ का व्याख्यान ग्रन्थ या पाकयज्ञ में होने वाला। **पाकयज्ञस्य व्याख्यानः** अथवा **पाकयज्ञे भवः** विग्रह करके **पाकयज्ञ**-शब्द से **क्रतुयज्ञेभ्यश्च** सूत्र से **ठञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप आदि करके **पाकयज्ञिक** और स्वादिकार्य होकर **पाकयज्ञिकः** सिद्ध हो जाता है।

नावयज्ञिकः। नवयज्ञ का व्याख्यान ग्रन्थ या नवयज्ञ में होने वाला। **नवयज्ञस्य व्याख्यानः** अथवा **नवयज्ञे भवः** विग्रह करके **नवयज्ञ**-शब्द से **क्रतुयज्ञेभ्यश्च** सूत्र से **ठञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप आदि करके **नावयज्ञिक** और स्वादिकार्य होकर **नावयज्ञिकः** सिद्ध हो जाता है।

बहुवचनं स्वरूपविधिनिरासार्थम्। सूत्र में क्रतु और यज्ञ ये दो शब्द दिये गये हैं किन्तु द्विवचन का प्रयोग न करके बहुवचन का प्रयोग किया गया है। अतः यह सिद्ध होता है कि यहाँ पर स्वरूपविधि न होकर अर्थग्रहण है। अर्थात् **स्वं रूपं शब्दस्याशब्दसंज्ञा** (१.१.६८) से प्राप्त क्रतु और यज्ञ शब्दों से प्रत्यय-विधान की व्यवस्था प्रतिबाधित होती है। फलतः क्रतुविशेष के वाचक और यज्ञविशेष के वाचक शब्दों से यह प्रत्यय-विधान मान्य है।

अनन्तोदात्तार्थ आरम्भः। अर्थात् पूर्वसूत्र से अन्तोदात्त प्रातिपदिकों से ही ठञ् का विधान किया गया था, प्रकृतसूत्र की अनन्तोदात्त प्रातिपदिकों से भी उक्त प्रत्यय का विधान करने में सार्थकता है।

१४४८. अध्यायेष्वेवर्षेः ४।३।६९॥

ऋषिशब्देभ्यो लक्षणया व्याख्येयग्रन्थवृत्तिभ्यो भवे व्याख्याने चाध्याये ठञ् स्यात्। वसिष्ठेन दृष्टो मन्त्रो वसिष्ठः, तस्य व्याख्यानः तत्र भवो वा वासिष्ठिकोऽध्यायः। 'अध्यायेषु' किम्? वासिष्ठी ऋक्।

अध्यायेष्वेवर्षेः। अध्यायेषु सप्तम्यन्तम्, एव अव्ययम्, ऋषेः पञ्चम्यन्तम्। **बह्वचोऽन्तोदात्तादृञ्** से **ठञ्** की, **तस्य व्याख्यान इति च व्याख्यातव्यनाम्नः** के सभी पदों की और **तत्र भवः** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

षष्ठी तथा सप्तमी-समर्थ व्याख्यातव्य-नाम ग्रन्थवृत्ति ऋषिवाची प्रातिपदिकों से व्याख्यान और भव अर्थों में अध्याय अर्थ गम्यमान होने पर ठञ् प्रत्यय होता है।

पूर्वोक्त व्याख्यान का ही प्रकरण चल रहा है किन्तु व्याख्यानात्मक अध्याय ही यहाँ वाच्य है। यद्यपि व्याख्यातव्य नहीं है तथापि लक्षणावृत्ति से ऋषि-शब्द से व्याख्यातव्य-ग्रन्थ उपस्थित होता है।

वसिष्ठेन दृष्टो मन्त्रो वसिष्ठः, तस्य व्याख्यानः तत्र भवो वा वासिष्ठिकोऽध्यायः। वसिष्ठ-शब्द ऋषिवाची है, तत्सह-चरित ग्रन्थ **वसिष्ठ** ही कहलाता है, क्योंकि वसिष्ठ से देखा गया मन्त्र, ऐसा अर्थ किया जाता है। वासिष्ठ का व्याख्यान ग्रन्थ या वासिष्ठ में होने वाला **वासिष्ठिक अध्याय** कहलाता है। इस तरह **वसिष्ठस्य व्याख्यानः** अथवा **वसिष्ठे भवः** विग्रह करके यथायोग्य षष्ठ्यन्त और सप्तम्यन्त **वसिष्ठ** शब्द से **अध्यायेष्वेवर्षेः** सूत्र के द्वारा ठञ् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **वसिष्ठ+इक** बना है। आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **वासिष्ठिक** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वासिष्ठिकः** सिद्ध हो जाता है। जिस अध्याय में वासिष्ठ मन्त्रों की व्याख्या हो- **वासिष्ठिकोऽध्यायः।**

'अध्यायेषु' किम्? वासिष्ठी ऋक्। प्रकृत सूत्र में **अध्यायेषु** पद का निवेश होने से **वासिष्ठी ऋक्** (वसिष्ठ से उपलब्ध मन्त्रों व्याख्या करने वाली ऋचा) में **अध्याय** वाच्य न होने के कारण ठञ् प्रत्यय नहीं हुआ किन्तु औत्सर्गिक अण् प्रत्यय होकर **वासिष्ठ** शब्द बनता है और स्त्रीलिंग **ऋक्** का विशेषण होने के कारण उक्त शब्द से स्त्रीत्वविवक्षा में **टिड्ढाणञ्०** सूत्र के द्वारा ङीप् होकर **वासिष्ठी** बन जाता है।

१४४९. पौरोडाशपुरोडाशात् ष्ठन् ४।३।७०॥

पुरोडाशसहचरितो मन्त्रः पुरोडाशः, स एव पौरोडाशः, ततः ष्ठन्। पौरोडाशिकः, पुरोडाशिकः।

पौरोडाशपुरोडाशात् ष्ठन्। पौरोडाशश्च पुरोडाशश्च तयोः समाहारद्वन्द्वः पौरोडाशपुरोडाशम्, तस्मात् पौरोडाशपुरोडाशात् पञ्चम्यन्तं, ष्ठन् प्रथमान्तम्। **तस्य व्याख्यान इति च व्याख्यातव्यनाम्नः** के सभी पदों की और **तत्र भवः** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

षष्ठी तथा सप्तमी-समर्थ पौरोडाश और पुरोडाश इन व्याख्यातव्य-नाम प्रातिपदिकों से व्याख्यान और भव अर्थों में ष्ठन् प्रत्यय होता है।

षकार की **षः प्रत्ययस्य** सूत्र से इत्संज्ञा होती है, नकार तो **हलन्त्यम्** से ही इत्संज्ञक है। ठ बचता है और उसके स्थान पर **इक** आदेश हो जाता है। षित्करण स्त्रीत्वविवक्षा में **षिद्गौरादिभ्यश्च** से ङीष्-विधानार्थ है।

यज्ञकार्य में चावल या जौ के आटे को गरम पानी में गूँथ **बाटी** के सदृश पिण्ड बनाया जाता है, उसे पुरोडाश कहते हैं और उक्त शब्द से स्वार्थ में **प्रज्ञादिभ्यश्च** सूत्र के द्वारा वैकल्पिक अण् प्रत्यय करने पर **पौरोडाश** और **पुरोडाश** ये दो शब्द हो जाते हैं।

पुरोडाशसहचरितो मन्त्रः पुरोडाशः, स एव पौरोडाशः, ततः ष्ठन्। पौरोडाशिकः, पुरोडाशिकः। पुरोडाश के साथ पढ़ा जाने वाला मन्त्र लक्षणावृत्ति से पुरोडाश कहलाता है और पुरोडाश को ही पौरोडाश भी कहते हैं। पुरोडाश या पौरोडाश का व्याख्यान या उसमें होने वाला। **पुरोडाशस्य पौरोडाशस्य वा व्याख्यानः** अथवा **पुरोडाशे पौरोडाशे वा भवः** अर्थ में **पौरोडाशपुरोडाशात् ष्ठन्** सूत्र के द्वारा ष्ठन् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पौरोडाशिक** और **पुरोडाशिक** शब्द बने हैं। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पौरोडाशिकः** और **पुरोडाशिकः** सिद्ध हो जाते हैं।

१४५०. छन्दसो यदणौ ४।३।७१॥

छन्दस्यः, छान्दसः।

छन्दसो यदणौ। यत् च अण् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो यदणौ। छन्दसः पञ्चम्यन्तं, यदणौ प्रथमान्तम्। **तस्य व्याख्यान इति च व्याख्यातव्यनाम्नः** के सभी पदों की और **तत्र भवः** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

षष्ठी तथा सप्तमी-समर्थ छन्दस्-प्रातिपदिक से व्याख्यान और भव अर्थों में यत् और अण् प्रत्यय होते हैं।

छन्दस् शब्द के द्व्यच् होने के कारण अग्रिम सूत्र से ठक् की प्राप्ति थी, उसका यह अपवाद है। यहाँ पर दो अर्थ एवं दो प्रत्ययों में स्वरितत्व प्रतिज्ञा न होने के कारण यथासंख्य-नियम प्रवृत्त नहीं होता।

छन्दस्यः, छान्दसः। छन्दस्-शास्त्र का व्याख्यान या छन्दस्-शास्त्र में होने वाला। **छन्दसो व्याख्यानः** अथवा **छन्दसि भवः** विग्रह करके षष्ठ्यन्त या सप्तम्यन्त **छन्दस्**-शब्द से **छन्दसो यदणौ** सूत्र के द्वारा यत् प्रत्यय होने के पक्ष में **छन्दस्य** और अण् प्रत्यय होने के पक्ष में आदिवृद्धि होकर **छान्दस** शब्द बने हैं। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **छन्दस्यः** और **छान्दसः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

१४५१. द्व्यजृद्ब्राह्मणर्क्प्रथमाध्वरपुरश्चरणनामाख्याताट्ठक् ४।३।७२॥

द्व्यचः- ऐष्टिकः, (शैषिकः), पाशुकः।
ऋतः- चातुर्होतृकः। ब्राह्मणिकः। आर्चिक इत्यादि।

द्व्यजृद्ब्राह्मणर्क्प्रथमाध्वरपुरश्चरणनामाख्याट्ठक्। द्वौ अचौ यस्मिन् स द्व्यच्, बहुव्रीहिः। द्व्यच् च ऋत् च ब्राह्मणश्च ऋक् च प्रथमश्च, अध्वरश्च, पुरश्चरणं च नाम च आख्यातं च तेषां समाहारद्वन्द्वः द्व्यजृद्ब्राह्मणर्क्प्रथमाध्वरपुरश्चरणनामाख्यातम्, तस्माद् द्व्यजृद्ब्राह्मणर्क्प्रथमाध्वरपुरश्चरणनामाख्याताद् पञ्चम्यन्तं, ठक् प्रथमान्तम्। **तस्य व्याख्यान इति च व्याख्यातव्यनाम्नः** के सभी पदों की और **तत्र भवः** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

षष्ठी तथा सप्तमी-समर्थ व्याख्यातव्यनाम दो अच् वाले प्रातिपदिक तथा ऋकारान्त, ब्राह्मण, ऋच्, प्रथम, अध्वर, पुरश्चरण, नाम और आख्यात प्रातिपदिकों से व्याख्यान और भव अर्थों में ठक् प्रत्यय होता है।

द्व्यच् शब्द का अर्थग्रहण है और शेष शब्दों में स्वरूपग्रहण। यह विधान

अणादि प्रत्यय का बाधक है। **ऋक्** शब्द तथा **दो अच् वाले शब्दों** में यह अण् का अपवाद है। **पुरश्चरण** शब्द के ल्युट्-प्रत्ययान्त होने के कारण कृदुत्तरपद-प्रकृति-स्वर से यह मध्योदात्त है। अतः अनुदात्तादि होने से प्राप्त अण् का यह अपवाद है। ब्राह्मणादि तीनों शब्द अन्तोदात्त हैं। अतः प्राप्त ठञ् का यह अपवाद है। ऋकारान्त शब्दों में भी यह अण् का ही अपवाद है।

द्व्यचः। पहले दो अच् वाले शब्दों का उदाहरण दिया जा रहा है।

ऐष्टिकः। इष्टि की व्याख्या करने वाला ग्रन्थ या इष्टि में होने वाला। **इष्टेः व्याख्यानः** अथवा **इष्टौ भवः** विग्रह करके **इष्टि+ङस्** या **इष्टि+ङि** अलौकिक विग्रह से **द्व्यजृद्ब्राह्मणर्क्प्रथमाध्वरपुरश्चरणनामाख्याताट्ठक्** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, इकादेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक इकार का लोप होकर **ऐष्टिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **ऐष्टिकः** सिद्ध हो जाता है।

शैषिकः। शेष की व्याख्या करने वाला ग्रन्थ या शेष में होने वाला। **शेषस्य व्याख्यानः** अथवा **शेषे भवः** विग्रह करके **शेष+ङस्** या **शेष+ङि** अलौकिक विग्रह में **द्व्यजृद्ब्राह्मणर्क्प्रथमाध्वरपुरश्चरणनामाख्याताट्ठक्** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, इकादेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर शैषिक और स्वादिकार्य होकर **शैषिकः** सिद्ध हो जाता है।

पाशुकः। पशुओं की व्याख्या करने वाला ग्रन्थ या पशुओं में होने वाला। पशूनां व्याख्यानः अथवा **पशुषु भवः** विग्रह करके **पशु+आम्** या **पशु+सुप्** अलौकिक विग्रह से **द्व्यजृद्ब्राह्मणर्क्प्रथमाध्वरपुरश्चरणनामाख्याताट्ठक्** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होने के बाद इकादेश को बाधकर **इसुसुक्तान्तात् कः** सूत्र से क आदेश और आदिवृद्धि होने पर **पाशुक** तथा स्वादिकार्य होकर **पाशुकः** सिद्ध हो जाता है। ये तीन उदाहरण द्व्यच्क शब्दों के हैं।

ऋतः। अब ऋदन्त शब्द का उदाहरण दिया जा रहा है-

चातुर्होतृकः। चतुर्होताओं द्वारा किये जाने वाले यज्ञ का व्याख्यान ग्रन्थ या चतुर्होताओं में होने वाला। **चित्तिः लुक् इत्यादयो मन्त्राश्चतुर्होतारः तैत्तिरीये प्रसिद्धाः, तेषां व्याख्यानः** अथवा **चतुर्होतृषु भवः** विग्रह करके **चतुर्होतृ+आम्** या **चतुर्होतृ+सुप्** अलौकिक विग्रह में **द्व्यजृद्ब्राह्मणर्क्प्रथमाध्वरपुरश्चरणनामाख्याताट्ठक्** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, प्राप्त इकादेश को बाधकर **इसुसुक्तान्तात् कः** सूत्र से **क** आदेश और आदिवृद्धि होने पर **चातुर्होतृक** तथा स्वादिकार्य होकर **चातुर्होतृकः** सिद्ध हो जाता है।

ब्राह्मणिकः। वेद के ब्राह्मणभाग की व्याख्या करने वाला ग्रन्थ या ब्राह्मणग्रन्थ में होने वाला। **ब्राह्मणानां व्याख्यानः** अथवा **ब्राह्मणेषु भवः** विग्रह करके **ब्राह्मण+आम्**

या **ब्राह्मण+सुप्** अलौकिक विग्रह से **द्व्यजृद्ब्राह्मणर्क्प्रथमाध्वरपुरश्चरणनामाख्याताट्ठक्** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, इकादेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **ब्राह्मणिक** और स्वादिकार्य होकर **ब्राह्मणिकः** सिद्ध हो जाता है।

आर्चिकः। ऋच् (ऋचाओं) की व्याख्या करने वाला ग्रन्थ या ऋचाओं में में होने वाला। **ऋचां व्याख्यानः** अथवा **ऋक्षु भवः** विग्रह करके **ऋच्+आम्** या **ऋच्+सुप्** अलौकिक विग्रह से **द्व्यजृद्ब्राह्मणर्क्प्रथमाध्वरपुरश्चरणनामाख्याताट्ठक्** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, इकादेश, ऋकार की आदिवृद्धि होने पर रपर होकर **आर्चिक** और स्वादिकार्य होकर **आर्चिकः** सिद्ध हो जाता है।

इत्यादि। इत्यादि-शब्द से सूत्रोक्त शेष शब्दों से भी ठक् प्रत्यय करके रूप बनाने का संकेत किया गया है। जैसे कि-

प्राथमिकः। प्रधानोपसर्जन की व्याख्या करने वाला ग्रन्थ या प्रधानोपसर्जन में होने वाला। **प्रथमस्य व्याख्यानः** अथवा **प्रथमे भवः** विग्रह करके **प्रथम+ङस्** या **प्रथम+ङि** अलौकिक विग्रह से **द्व्यजृद्ब्राह्मणर्क्प्रथमाध्वरपुरश्चरणनामाख्याताट्ठक्** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, इकादेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **प्राथमिक** और स्वादिकार्य होकर **प्राथमिकः** सिद्ध हो जाता है।

आध्वरिकः। अध्वर=यज्ञ की व्याख्या करने वाला ग्रन्थ या अध्वर में होने वाला। **अध्वरस्य व्याख्यानः** अथवा **अध्वरे भवः** विग्रह करके **अध्वर+ङस्** या **अध्वर+ङि** अलौकिक विग्रह से **द्व्यजृद्ब्राह्मणर्क्प्रथमाध्वरपुरश्चरणनामाख्याताट्ठक्** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, इकादेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आध्वरिक** और स्वादिकार्य होकर **आध्वरिकः** सिद्ध हो जाता है।

पौरश्चरणिकः। पुरश्चरण की व्याख्या करने वाला ग्रन्थ या पुरश्चरण में होने वाला। **पुरश्चरणस्य व्याख्यानः** अथवा **पुरश्चरणे भवः** विग्रह करके **पुरश्चरण+ङस्** या **पुरश्चरण+ङि** अलौकिक विग्रह से **द्व्यजृद्ब्राह्मणर्क्प्रथमाध्वरपुरश्चरणनामाख्याताट्ठक्** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, इकादेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पौरश्चरणिक** और स्वादिकार्य होकर **पौरश्चरणिकः** सिद्ध हो जाता है।

नामिकः। नाम, प्रातिपदिक, संज्ञा की व्याख्या करने वाला ग्रन्थ या उनमें होने वाला। **नाम्नां व्याख्यानः** अथवा **नामसु भवः** विग्रह करके **नामन्+आम्** या **नामन्+सुप्** अलौकिक विग्रह से **द्व्यजृद्ब्राह्मणर्क्प्रथमाध्वरपुरश्चरणनामाख्याताट्ठक्** सूत्र के द्वारा

ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, इकादेश, **नस्तद्धिते** सूत्र से टिसंज्ञक **अन्** का लोप होकर **नामिक** और स्वादिकार्य से **नामिकः** सिद्ध हो जाता है।

आख्यातिकः। तिङन्त की व्याख्या करने वाला ग्रन्थ या उसमें होने वाला। **आख्यातस्य व्याख्यानः** अथवा **आख्याते भवः** विग्रह करके **आख्यात+ङस्** या **आख्यात+ङि** अलौकिक विग्रह से **द्व्यजृद्ब्राह्मणर्क्प्रथमाध्वरपुरश्चरणनामाख्याताट्ठक्** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, इकादेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आख्यातिक** और स्वादिकार्य होकर **आख्यातिकः** सिद्ध हो जाता है।

१४५२. अणृगयनादिभ्यः ४।३।७३॥
ठञादेरपवादः। आर्गयनः। औपनिषदः। वैयाकरणः।

अणृगयनादिभ्यः। ऋगयन आदिर्येषां ते ऋगयनादयस्तेभ्य ऋगयनादिभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अण् प्रथमान्तम्। **तस्य व्याख्यान इति च व्याख्यातव्यनाम्नः** के सभी पदों की और **तत्र भवः** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

षष्ठी तथा सप्तमी-समर्थ ऋगयनादि-गणपठित व्याख्यातव्यनाम प्रातिपदिकों से व्याख्यान और भव अर्थों में अण् प्रत्यय होता है।

ठञादेरपवादः। यह विधान भी ठञ् आदि का अपवाद है। वह इस तरह कि **ऋगयन** आदि कतिपय शब्द समस्त हैं, अतः ये अन्तोदात्त हैं। फलतः **बह्वचोऽन्तोदात्तात्ठञ्** (४.३.६७) से प्राप्त ठञ् का इस विधान से बाध किया जाता है। **उपनिषत्** शब्द में कृत्स्वर-निमित्तक अन्तोदात्त होने से ठञ् प्राप्त था, उसका यह अपवाद है। **व्याकरण** शब्द में प्राप्त **वृद्धाच्छः** का यह अपवाद है। अतः **ठञादेरपवादः** लिखा गया है।

आर्गयनः। ऋग्वेद के पारायण की व्याख्या करने वाला ग्रन्थ या उसमें होने वाला। **ऋगयनस्य व्याख्यानः** अथवा **ऋगयने भवः** विग्रह करके **ऋगयन+ङस्** या **ऋगयन+ङि** अलौकिक विग्रह से **अणृगयनादिभ्यः** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, इकादेश, ऋकार की आदिवृद्धि होने पर रपर तथा भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आर्गयन** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आर्गयनः** सिद्ध हो जाता है।

औपनिषदः। उपनिषद् की व्याख्या करने वाला ग्रन्थ या उसमें होने वाला। **उपनिषदां व्याख्यानः** अथवा **उपनिषत्सु भवः** विग्रह करके **उपनिषद्+आम्** या **उपनिषद्+सुप्** अलौकिक विग्रह से **अणृगयनादिभ्यः** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, इकादेश, आदिवृद्धि होकर **औपनिषद** और स्वादिकार्य होकर **औपनिषदः** सिद्ध हो जाता है।

वैयाकरणः। व्याकरण की व्याख्या करने वाला ग्रन्थ या उसमें होने वाला। **व्याकरणस्य व्याख्यानः** अथवा **व्याकरणे भवः** विग्रह करके **व्याकरण+ङस्** या **व्याकरण+ङि** अलौकिक विग्रह से **अणृगयनादिभ्यः** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, इकादेश, प्राप्त आदिवृद्धि को बाधकर **न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्** सूत्र के द्वारा ऐच् (ऐकार) आगम, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **वैयाकरण** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वैयाकरणः** सिद्ध हो जाता है।

ऋगयनादिगणः- ऋगयन, पदव्याख्यान, छन्दोमान, छन्दोभाषा, छन्दोविचिति, न्याय, पुनरुक्त, निरुक्त, व्याकरण, निगम, वास्तुविद्या, क्षत्रविद्या, अङ्गविद्या, विद्या, उत्पात, उत्पाद, उद्याव, संवत्सर, मुहूर्त, उपनिषद्, निमित्त, शिक्षा, भिक्षा।

तस्य व्याख्यानः और **तत्र भवः** अर्थों का प्रकरण यहाँ पर पूरा हो जाता है। अब प्राग्दीव्यतीयों में तीसवें अर्थक्रम **तत आगतः** का प्रकरण प्रारम्भ हो रहा है।

१४५३. तत आगतः ४।३।७४॥

सुघ्नादागतः सौघ्नः।

तत आगतः। ततः पञ्चम्यन्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकम्, आगतः प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

पञ्चम्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से 'वहाँ से आया हुआ' इस अर्थ में अण् आदि या यथायोग्य घ आदि प्रत्यय होते हैं।

सुघ्नादागतः सौघ्नः। सुघ्न नामक देश से आया हुआ। **सुघ्नाद् आगतः** लौकिक विग्रह और **सुघ्न ङसि** अलौकिक विग्रह है। **तत आगतः** से अण् हुआ, अनुबन्ध लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **सुघ्न+अ** बना। णित् होने के कारण आदिवृद्धि करके उकार के स्थान पर औकार आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करके **सौघ्न्+अ=सौघ्न** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **सौघ्नः** सिद्ध हुआ।

माथुरः। मथुरा नामक देश से आया हुआ। **मथुराया आगतः** लौकिक विग्रह और **मथुरा ङसि** अलौकिक विग्रह है। **तत आगतः** से अण् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **मथुरा+अ** बना। णित् होने के कारण आदिवृद्धि करके अकार के स्थान पर आकार आदेश और भसंज्ञक आकार का लोप करके **माथुर्+अ=माथुर** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **माथुरः** सिद्ध हुआ।

इसी तरह अन्य शब्दों से भी **तत आगतः** अर्थ में अणादि प्रत्यय करके प्रयोग बनाने चाहिये। जैसे-

राष्ट्रादागतः, **राष्ट्रियः**। यहाँ घ प्रत्यय होगा क्योंकि शेष अर्थ में **राष्ट्रावारपाराद्**

घखौ से घ हुआ था। इसी प्रकार अवारादागतः **अवारीणः**, पारादागतः **पारीणः**, **अवारपारीणः**, **पारावारीणः**, **ग्राम्यः-ग्रामीणः** आदि आदि।

१४५४. ठगायस्थानेभ्यः ४।३।७५॥

शुल्कशालाया आगतः शौल्कशालिकः।

ठगायस्थानेभ्यः। आयस्य स्थानानि आयस्थानानि, तेभ्यः। ठक् प्रथमान्तम्, आयस्थानेभ्यः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तत आगतः** की अनुवृत्ति एवं **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

आयस्थान के वाचक पञ्चम्यन्त प्रातिपदिकों से 'आगतः' अर्थ में तद्धितसंज्ञक ठक् प्रत्यय होता है।

ककार इत्संज्ञक है, ठ बचता है। उसके स्थान पर **ठस्येकः** से **इक** आदेश हो जाता है। आमदनी के स्थानों को **आयस्थान** कहते हैं। जैसे कि **आयकर, मनोरंजन कर, चुंगी, शुल्क लिए जाने वाले स्थान** आदि।

शौल्कशालिकः। चुंगी से आया हुआ। **शुल्कशालाया आगतः**। शुल्कशाला+ङसि से **ठगायस्थानेभ्यः** से **ठक्**, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **ठस्येकः** से **इक** आदेश, कित् होने के कारण **आदिवृद्धि** करके **भसंज्ञक** आकार का लोप, स्वादिकार्य होकर **शौल्कशालिकः** सिद्ध हो जाता है।

१४५५. शुण्डिकादिभ्योऽण् ४।३।७६॥

आयस्थानठकश्छादीनां चापवादः।

शुण्डिकादागतः शौण्डिकः। कार्कणः। तैर्थः। औदपानः।

शुण्डिकादिभ्योऽण्। शुण्डिका आदिर्येषां ते शुण्डिकादयस्तेभ्यः शुण्डिकादिभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अण् प्रथमान्तम्। **तत आगतः** की अनुवृत्ति एवं **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

आयस्थान के वाचक शुण्डिकादि गणपठित पञ्चम्यन्त प्रातिपदिकों से 'आगतः' अर्थ में तद्धितसंज्ञक अण् प्रत्यय होता है।

आयस्थानठकश्छादीनां चापवादः। पूर्वसूत्र से आयस्थानादि-निमित्तक ठक् और **कृकणपर्णाद्भारद्वाजे** आदि से प्राप्त छ आदि प्रत्ययों का यह अपवाद है।

शुण्डिकादागतः शौण्डिकः। मद्यविभाग से प्राप्त धन आदि। **शुण्डिकाद् आगतः** लौकिक विग्रह और **शुण्डिक+ङसि** अलौकिक विग्रह है। **शुण्डिकादिभ्योऽण्** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार

का लोप आदि करके **शौण्डिक** और स्वादिकार्य होकर **शौण्डिकः** सिद्ध हो जाता है।

कार्कणः। कृकण नामक शिकार पक्षी से प्राप्त आय आदि। **कृकणाद् आगतः** लौकिक विग्रह और **कृकण+ङसि** अलौकिक विग्रह है। **शुण्डिकादिभ्योऽण्** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि होने पर रपर, भसंज्ञक अकार का लोप आदि करके **कार्कण** और स्वादिकार्य होकर **कार्कणः** सिद्ध हो जाता है।

तैर्थः। तीर्थ से आया हुआ। **तीर्थाद् आगतः** लौकिक विग्रह और **तीर्थ+ङसि** अलौकिक विग्रह है। **शुण्डिकादिभ्योऽण्** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप आदि करके **तैर्थ** और स्वादिकार्य होकर **तैर्थः** सिद्ध हो जाता है।

औदपानः। जलस्थान से प्राप्त धन आदि। **उदपानाद् आगतः** लौकिक विग्रह और **उदपान+ङसि** अलौकिक विग्रह है। **शुण्डिकादिभ्योऽण्** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप आदि करके **औदपान** और स्वादिकार्य होकर **औदपानः** सिद्ध हो जाता है।

शुण्डिकादिगणः- शुण्डिक, कृकण, कृपण, स्थण्डिल, उदपान, उपल, तीर्थ, भूमि, तृण, पर्ण।

१४५६. विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ् ४।३।७७॥

औपाध्यायकः। पैतामहकः।

विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ्। विद्या च योनिश्च विद्यायोनी, विद्यायोनिकृताः सम्बन्धाः विद्यायोनिसम्बन्धाः, तेभ्यः। विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यः पञ्चम्यन्तं, वुञ् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **ततः आगतः** इस सूत्र का अनुवर्तन और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

विद्याकृत सम्बन्ध वाले या योनिकृतसम्बन्ध वाले पञ्चम्यन्त प्रातिपदिकों से 'तत आगतः' अर्थ में वुञ् प्रत्यय होता है।

विद्यासम्बन्ध शिक्षा-ग्रहण से और योनिसम्बन्ध जन्म से होता है। **ञकार** इत्संज्ञक है और **वु** के स्थान पर **युवोरनाकौ** से **अक** आदेश होता है। उपाध्याय, आचार्य, शिष्य आदि विद्यासम्बन्ध के हैं और पिता, पितामह, माता, मातामह, मातुल आदि योनिसम्बन्ध के हैं।

औपाध्यायकः। उपाध्याय से आया हुआ विचार, मत, सलाह आदि। **उपाध्यायाद् आगतः** लौकिक विग्रह और **उपाध्याय ङसि** अलौकिक विग्रह है। **विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ्** से **वुञ्** हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **उपाध्याय+वु** बना है। वु के स्थान पर **युवोरनाकौ** से अक आदेश करने पर **उपाध्याय+अक** बना। णित्

होने के कारण आदिवृद्धि करके उकार के स्थान पर औकार आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करके **औपाध्याय्+अक=औपाध्यायक** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **औपाध्यायकः** सिद्ध हुआ।

पैतामहकः। पितामह अर्थात् दादा से आया हुआ। **पितमहाद् आगतः** लौकिक विग्रह और **पितामह ङसि** अलौकिक विग्रह है। **विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ्** से वुञ् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् कर **पितामह+वु** बना है। वु के स्थान पर **युवोरनाकौ** से अक आदेश करने पर **पितामह+अक** बना। णित् होने के कारण आदिवृद्धि करके इकार के स्थान पर ऐकार आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करके **पैतामह्+अक=पैतामहक** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **पैतामहकः** सिद्ध हुआ। अब इसी प्रकार से **आचार्यादागतः-आचार्यकः, शिष्यादागतः-शैष्यकः, मातुलादागतः-मातुलकः** आदि बनाये जा सकते हैं।

१४५७. ऋतष्ठञ् ४।३।७८॥
वुञोऽपवादः। हौतृकम्। भ्रातृकम्।

ऋतष्ठञ्। ऋतः पञ्चम्यन्तं, ठञ् प्रथमान्तम्। **विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ्** से **विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यः** की तथा **ततः आगतः** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है। **प्रातिपदिकात्** का विशेषण है- **ऋतः**। अतः तदन्तविधि होकर **ऋदन्तात्** अर्थ हो जाता है।

विद्याकृत सम्बन्ध वाले या योनिकृतसम्बन्ध वाले ऋकारान्त पञ्चम्यन्त प्रातिपदिकों से 'तत आगतः' अर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है।

वुञोऽपवादः। यह सूत्र पूर्वसूत्र का ही विषय है तथा विशेष परिस्थिति में **वुञ्** के अपवाद **ठञ्** का विधान किया जा रहा है।

हौतृकम्। होता से प्राप्त, आगत। **होतुः आगतः** लौकिक विग्रह और **होतृ+ङसि** अलौकिक विग्रह है। **विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ्** से प्राप्त वुञ् को बाधकर **ऋतष्ठञ्** सूत्र से ठञ् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् कर **होतृ+ठ** बना। है। **ठस्येकः** को बाधकर **इसुसुक्तान्तात् कः** सूत्र के द्वारा ठ के स्थान पर **क** आदेश तथा **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि होकर **हौतृक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **हौतृकः** सिद्ध हो जाता है। यह विद्यासम्बन्ध का उदाहरण है।

भ्रातृकम्। भाई से प्राप्त, आगत धन आदि। **भ्रातुः आगतः** लौकिक विग्रह और **भ्रातृ+ङसि** अलौकिक विग्रह में **विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ्** से प्राप्त वुञ् को बाधकर **ऋतष्ठञ्** सूत्र से ठञ् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् कर

होतृ+ठ बना। है। **ठस्येकः** को बाधकर **इसुसुक्तान्तात् कः** सूत्र के द्वारा ठ के स्थान पर **क** आदेश तथा पर्जन्यवल्लक्षणन्यायेन आदिवृद्धि होकर **भ्रातृक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **भ्रातृकः** सिद्ध हो जाता है। यह योनिसम्बन्ध का उदाहरण है।

१४५८. पितुर्यच्च ४।३।७९॥

चाड्डञ्। 'रीङृतः' (सू.१२३४), 'यस्येति च' (सू.३११) इति लोपः। पित्र्यम्, पैतृकम्।

पितुर्यच्च। पितुः पञ्चम्यन्तं, यत् प्रथमान्तं, चाव्ययम्। ऋतष्ठञ् से ठञ् की, **विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ्** से **विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यः** की तथा **ततः आगतः** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

विद्याकृत सम्बन्ध वाले या योनिकृत सम्बन्ध वाले ऋकारान्त पञ्चम्यन्त पितृ-शब्दात्मक प्रातिपदिक से 'तत आगतः' अर्थ में यत् प्रत्यय होता है और सूत्र में पठित च-शब्द से ठञ् प्रत्यय का समुच्चय है अर्थात् पक्ष में ठञ् प्रत्यय भी होता है।

चाड्डञ्। च-शब्द ठञ् के समुच्चय के लिये है।

'रीङृतः'। ऋकार के स्थान पर रीङ् आदेश करने वाले सूत्र का स्मरण कराया गया है। यह सूत्र रक्ताद्यर्थकप्रकरण में आ चुका है। यह कृद्भिन्न और सार्वधातुकभिन्न यकार और च्वि प्रत्यय के परवर्ती होने पर ह्रस्व ऋकारान्त अङ्ग के ऋकार के स्थान पर **रीङ्** आदेश करता है। ङकार इत्संज्ञक है।

'यस्येति च' इति लोपः। भसंज्ञक अंग के ईकार का लोप करने वाले सूत्र का स्मरण कराया गया है अर्थात् रीङ् आदेश होने के बाद भी ईकार का लोप होता है।

पित्र्यम्, पैतृकम्। पिता से प्राप्त, आगत धन आदि। **पितुः आगतः** लौकिक विग्रह और **पितृ+ङसि** अलौकिक विग्रह में **विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ्** से प्राप्त वुञ् को बाधकर **पितुर्यच्च** सूत्र से यत् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **पितृ+य** बना है। यहाँ पर यकार परे है, अतः **रीङृतः** सूत्र के द्वारा ऋकार के स्थान पर **रीङ्** आदेश होकर **पित्री+य** बना है। भसंज्ञक ईकार का **यस्येति च** से लोप होकर **पित्र्य** शब्द बना है। ठञ् प्रत्यय होने के पक्ष में अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् कर **पितृ+ठ** बना। है। **ठस्येकः** को बाधकर **इसुसुक्तान्तात् कः** सूत्र के द्वारा ठ के स्थान पर **क** आदेश करके आदिवृद्धि होकर **पैतृक** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पित्र्यम्** और **पैतृकम्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं। यह भी योनिसम्बन्ध का उदाहरण है।

१४५९. गोत्रादङ्कवत् ४।३।८०॥

बिदेभ्य आगतं बैदम्। गार्गम्। दाक्षम्। औपगवकम्।

गोत्रादङ्कवत्। अङ्क इव अङ्कवत्। गोत्रात् पञ्चम्यन्तम्, अङ्कवत् अव्ययम्। **ततः आगतः** के दोनों पदो की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

पञ्चमी समर्थ गोत्रवाची प्रातिपदिकों से आगतः अर्थ में अङ्कवत् प्रत्ययविधि होती है।

अङ्कवत् का तात्पर्य यह है कि जिस तरह से गोत्रवाची शब्दों से **गोत्रचरणाद् वुञ्** सूत्र से वुञ् प्रत्यय होता है, उसी प्रकार यहाँ भी होता है।

यहाँ पर यह प्रश्न किया जा सकता है कि **अङ्कवत्** प्रत्ययविधि का अतिदेश करने से **सङ्घाङ्कलक्षणेष्वञ्यञिञामण्** (४.३.१२७) से विहित अण् प्रत्यय का ही अतिदेश होना चाहिये, न कि **वुञ्** का, क्योंकि **सङ्घाङ्कलक्षणेष्वञ्यञिञामण्** सूत्र से ही **अङ्क**-शब्द का ग्रहण है। इसका उत्तर यह दिया जाता है कि यहाँ पर **अङ्क**-शब्द **तस्येदम्** (४.३.१७) के अर्थसामान्य का ही उपलक्षण है। अर्थात् जिस तरह से गोत्रवाचियों से **तस्येदम्** अर्थ में प्रत्यय होते हैं, उसी प्रकार **तत आगतः** अर्थ में भी हों। अतः वुञ् प्रत्यय का अतिदेश प्रकृत सूत्र से किया जाता है। आचार्यों के व्यवहार से ऐसा किया गया है। इस तरह यह सिद्ध होता है कि **सङ्घाङ्कलक्षणेष्वञ्यञिञामण्** से विहित प्रत्यय और **तस्येदम्** से विहित प्रत्यय दोनों का अतिदेश है, न कि केवल अण् मात्र का। अतः अण्, वुञ् इन सभी यथाविहित प्रत्ययों का अतिदेश समझना चाहिये।

बिदेभ्य आगतं बैदम्। बैदों से प्राप्त धन आदि। यहाँ पर **बिदस्य गोत्रापत्यम्** अर्थ में **बिद**-शब्द से अण् प्रत्यय होकर **बैदः, बैदौ** रूप बनते हैं तथा बहुवचन में तद्राजप्रत्यय का लुक् करके **बिदाः** बनता है। अतः मूलकार ने विग्रह दिया है- **बिदेभ्य आगतम्।** उक्त लौकिक विग्रह करके **बिद+भ्यस्** से **गोत्रादङ्कवत्** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय का विधान हो जाता है, क्योंकि यहाँ अञन्त **बिद**-शब्द से **सङ्घाङ्कलक्षणेष्वञ्यञिञामण्** से यथाविहित प्रत्यय अण् है। प्रत्यय के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **बैद** बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **बैदम्** सिद्ध हो जाता है। प्रकृत अतिदेश के फलस्वरूप **द्व्यजृद्ब्राह्मणर्क्प्रथमाध्वरपुरश्चरणनामाख्याताट्ठक्** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय नहीं हुआ।

गार्गम्। गार्ग्यों से प्राप्त धन आदि। यहाँ पर **गर्गस्य गोत्रापत्यम्** अर्थ में **गर्ग**-शब्द से **गर्गादिभ्यो यञ्** से यञ् प्रत्यय होकर **गार्ग्यः, गार्ग्यौ** रूप बनते हैं तथा बहुवचन में तद्राजप्रत्यय का लुक् करके **गर्गाः** बनता है। अतः इसका लौकिक विग्रह होगा- **गर्गेभ्य आगतम्।** उक्त लौकिक विग्रह करके **गर्ग+भ्यस्** से **गोत्रादङ्कवत्** सूत्र के

द्वारा अण् प्रत्यय का विधान हो जाता है, क्योंकि यहाँ यञन्त **गर्ग**-शब्द से **सङ्घाङ्कलक्षणेष्वञ्यञिञामण्** से यथाविहित प्रत्यय अण् है। प्रत्यय के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **गार्ग** बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **गार्गम्** सिद्ध हो जाता है।

दाक्षम्। दाक्षों से प्राप्त धन आदि। यहाँ पर **दक्षस्य गोत्रापत्यम्** अर्थ में **दक्ष**-शब्द से **अत इञ्** से इञ् प्रत्यय होकर **दाक्षिः, दाक्षी** रूप बनते हैं तथा बहुवचन में तद्राजप्रत्यय का लुक् करके **दक्षाः** बनता है। अतः इसका लौकिक विग्रह होगा- **दक्षेभ्य आगतम्।** उक्त लौकिक विग्रह करके **दक्ष+भ्यस्** से **गोत्रादङ्कवत्** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय का विधान हो जाता है। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **दाक्ष** बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **दाक्षम्** सिद्ध हो जाता है।

औपगवकम्। औपगवों से प्राप्त धन आदि। यहाँ पर **उपगोः गोत्रापत्यम्** अर्थ में **उपगु**-शब्द से अण् प्रत्ययादि होकर **औपगव** शब्द बना है। **औपगवेभ्य आगतम्** उक्त लौकिक विग्रह करके **औपगव+भ्यस्** से **गोत्रादङ्कवत्** सूत्र के द्वारा वुञ् प्रत्यय का विधान हो जाता है, क्योंकि यहाँ **औपगव**-शब्द से **गोत्रचरणाद् वुञ्** से यथाविहित प्रत्यय वुञ् ही है। प्रत्यय के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **युवोरनाकौ** से अकादेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **औपगवक** बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **औपगवकम्** सिद्ध हो जाता है।

१४६०. नञः शुचीश्वरक्षेत्रज्ञकुशलनिपुणानाम् ७।३।३०॥

नञः परेषां शुच्यादिपञ्चानामादेरचो वृद्धिः, पूर्वपदस्य तु वा ञिदादौ परे। आशौचम्, अशौचम्। आनैश्वर्यम्, अनैश्वर्यम्। आक्षैत्रज्ञम्, अक्षैत्रज्ञम्। आकौशलम्, अकौशलम्। आनैपुणम्, अनैपुणम्।

नञः शुचीश्वरक्षेत्रज्ञकुशलनिपुणानाम्। शुचिश्च ईश्वरश्च क्षेत्रज्ञश्च कुशलश्च निपुणश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः शुचीश्वरक्षेत्रज्ञकुशलनिपुणास्तेषां शुचीश्वरक्षेत्रज्ञकुशल-निपुणानाम्, षष्ठ्यन्तमेतत्। नञः पञ्चम्यन्तम्। **अर्धात् परिमाणस्य पूर्वस्य तु वा** से **पूर्वपदस्य तु वा** की, **तद्धितेष्वचामादेः** से **तद्धितेषु अचाम्, आदेः** तीनों पदों की, **मृजेर्वृद्धिः** से **वृद्धिः** की, **अचो ञ्णिति** के दोनों पदों की और **किति च** से **किति** की अनुवृत्ति आती है। **उत्तरपदस्य** और **अङ्गस्य** का अधिकार है।

नञ् से परवर्ती शुचि, ईश्वर, क्षेत्रज्ञ, कुशल, निपुण इन पाँच शब्दों के अचों में आदि अच् की नित्य से वृद्धि होती है और पूर्वपद की विकल्प से वृद्धि होती है, तद्धितसंज्ञक ञित् णित् कित् प्रत्ययों के परे रहते।

इस तरह यह सूत्र **तद्धितेष्वचामादेः** और **किति च** का अपवाद होते हुये

पूर्वपद की विकल्प से और उत्तरपद की नित्य से वृद्धि करता है। जहाँ पूर्वपद और उत्तरपद की बात आती है, वहाँ पर समास अवश्य हुआ होता है, क्योंकि यह व्यवस्था समास में ही मानी गयी है। इस तरह यहाँ पर पूर्वपद **नञ्** और उत्तरपद शुचि, ईश्वर, क्षेत्रज्ञ, कुशल और निपुण शब्द होंगे। प्रकृतसूत्र की प्रवृत्ति केवल **तत आगतः** अर्थ में विहित प्रत्ययों के परे मात्र नहीं है अपितु तद्धितसंज्ञक यावत् ञित्, णित्, कित् प्रत्ययों के परे रहते होती है, चाहे वे प्रत्यय किसी भी अर्थ में विहित हों।

आशौचम्, अशौचम्। अशुचि=अपवित्रता से आगत। **अशुचेः आगतम्** लौकिक विग्रह और **अशुचि+ङस्** अलौकिक विग्रह है। यहाँ पर पहले **न अस्य शुचयो विद्यन्ते** अर्थ में **न** का **शुचि** शब्द के साथ समासादि करके **अशुचि** शब्द बना लेना चाहिये। उक्त अलौकिक विग्रह में **तत आगतः** से अण् प्रत्यय होकर **अशुचि+अ** बना है। यहाँ पर पूर्वपद **अ** और उत्तरपद **शुचि** है। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि प्राप्त होने पर उसे बाधकर **नञः शुचीश्वरक्षेत्रज्ञकुशलनिपुणानाम्** सूत्र से पूर्वपद की विकल्प से वृद्धि और उत्तरपद **शुचि** के उकार की नित्य से वृद्धि होती है। भसंज्ञक इकार का तो लोप होता ही है। इस तरह **आशौच** और **अशौच** ये दो शब्द बने हैं। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आशौचम्** और **अशौचम्** ये दो रूप बनते हैं।

आनैश्वर्यम्, अनैश्वर्यम्। प्रभुत्व के अभाव का भाव। **अनीश्वरस्य भावः** लौकिक विग्रह और **अनीश्वर+ङस्** अलौकिक विग्रह है। यहाँ पर पहले **न ईश्वरः** अर्थ में **न** का **ईश्वर** शब्द के साथ नञ्तत्पुरुष समासादि करके **अनीश्वर** शब्द बना लेना चाहिये। उक्त अलौकिक विग्रह में **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** (५.१.१२३) सूत्र से **ष्यञ्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप होकर **अनीश्वर+य** बना है। यहाँ पर पूर्वपद **अ** और उत्तरपद ईश्वर है। नञ्समास के बाद नुट् का आगम भी हुआ है। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि प्राप्त होने पर उसे बाधकर **नञः शुचीश्वरक्षेत्रज्ञकुशलनिपुणानाम्** सूत्र से पूर्वपद की विकल्प से वृद्धि और उत्तरपद **ईश्वर** शब्द के ईकार की नित्य से वृद्धि होती है। भसंज्ञक अकार का तो लोप होता ही है। इस तरह **आनैश्वर्य** और **अनैश्वर्य** ये दो शब्द बने हैं। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आनैश्वर्यम्** और **अनैश्वर्यम्** ये दो रूप बनते हैं।

आक्षैत्रज्ञम्, अक्षैत्रज्ञम्। अक्षेत्रज्ञ से आगत। आत्मा को क्षेत्रज्ञ कहते हैं और तद्भिन्न जड को अक्षेत्रज्ञ। **अक्षेत्रज्ञाद् आगतम्** लौकिक विग्रह और **अक्षेत्रज्ञ+ङसि** अलौकिक विग्रह है। यहाँ पर पहले **न क्षेत्रज्ञः** अर्थ में **न** का **क्षेत्रज्ञ** शब्द के साथ नञ्तत्पुरुष समासादि करके **अक्षेत्रज्ञ** शब्द बना लेना चाहिये। उक्त अलौकिक विग्रह में **तत आगतः** सूत्र से **अण्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप होकर **अक्षेत्रज्ञ+अ** बना है। यहाँ पर पूर्वपद **अ** और उत्तरपद **क्षेत्रज्ञ** है। **नञः शुचीश्वरक्षेत्रज्ञकुशलनिपुणानाम्** सूत्र से पूर्वपद की विकल्प से वृद्धि और उत्तरपद **क्षेत्रज्ञ** शब्द के एकार की नित्य से वृद्धि होती

है। भसंज्ञक अकार का तो लोप होता ही है। इस तरह **आक्षैत्रज्ञ** और **अक्षैत्रज्ञ** ये दो शब्द बने हैं। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आक्षैत्रज्ञम्** और **अक्षैत्रज्ञम्** ये दो रूप बनते हैं। भावार्थ में तो **क्षेत्रज्ञ** शब्द के ब्राह्मणादि होने के कारण **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** (५.१.१२३) से ष्यञ् होकर **आक्षैत्रज्ञ्यम्** और **आक्षैत्रज्ञ्यम्** बनना चाहिये।

आकौशलम्, अकौशलम्। अकुशल से आया हुआ। **अकुशलाद् आगतः** लौकिक विग्रह और **अकुशल+ङसि** अलौकिक विग्रह है। यहाँ पर पहले **न कुशलः** विग्रह में **न** का **कुशल** शब्द के साथ नञ्तत्पुरुष समासादि करके **अकुशल** शब्द बना लेना चाहिये। उक्त अलौकिक विग्रह में भावार्थ में अण् प्रत्यय होकर या आगतार्थ में **तत आगतः** सूत्र से **अण्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप होकर **अकुशल+अ** बना है। यहाँ पर पूर्वपद **अ** और उत्तरपद **कुशल** है। **नञः शुचीश्वरक्षेत्रज्ञकुशलनिपुणानाम्** सूत्र से पूर्वपद की विकल्प से वृद्धि और उत्तरपद **कुशल** शब्द के उकार की नित्य से वृद्धि होती है। भसंज्ञक अकार का तो लोप होता ही है। इस तरह **आकौशल** और **अकौशल** ये दो शब्द बने हैं। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आकौशलम्** और **अकौशलम्** ये दो रूप बनते हैं।

आनैपुणम्, अनैपुणम्। अनिपुण से आया हुआ। **अनिपुणादागतः** विग्रह करके अणादि प्रत्यय करके **नञः शुचीश्वरक्षेत्रज्ञकुशलनिपुणानाम्** सूत्र से पूर्वपद की विकल्प से वृद्धि और उत्तरपद **निपुण** शब्द के अकार की नित्य से वृद्धि होकर **आनैपुणम्** और **अनैपुणम्** ये दो रूप बनते हैं।

१४६१. हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः ४।३।८१॥

समादागतं समरूप्यम्। विषमरूप्यम्। पक्षे गहादित्वाच्छः। समीयम्। विषमीयम्। देवदत्तरूप्यम्, दैवदत्तम्, देवदत्तीयम्।

हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः। हेतवश्च मनुष्याश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो हेतुमनुष्याः, तेभ्यः। हेतुमनुष्येभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अन्यतरस्याम् सप्तम्यन्तं, रूप्यः प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **ततः आगतः** इस सूत्र का अनुवर्तन एवं **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

हेतुवाचक एवं मनुष्यवाचक पञ्चम्यन्त प्रातिपदिकों से 'तत आगतः' के अर्थ में विकल्प से रूप्य प्रत्यय होता है।

पक्षे गहादित्वाच्छः। प्रकृतसूत्र से **रूप्य** प्रत्यय न होने के पक्ष में **हेतु** शब्द के गहादिगणीय होने के कारण **गहादिभ्यश्च** सूत्र से छ-प्रत्यय होता है।

समरूप्यम्, समीयम्। सम अर्थात् उचित हेतु से आया हुआ सामान। **समादागतम्। सम ङसि** से **हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः** से विकल्प से **रूप्य** प्रत्यय,

प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके स्वादिकार्य करने पर **समरूप्यम्** बना। यह कार्य वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में **गहादिभ्यश्च** से **छ** प्रत्यय, उसके स्थान पर **ईय** आदेश होकर भसंज्ञक अकार के लोप के बाद वर्णसम्मेलन, स्वादिकार्य करके **समीयम्** बन जाता है।

विषमरूप्यम्, विषमीयम्। विषमता से अथवा ऊँच-नीच होने से आया हुआ। **विषमादागतं** इस विग्रह में **विषम+ङसि** में उपर्युक्त रीति से रूप्य और छ-प्रत्यय करके **विषमरूप्यम्** और **विषमीयम्** भी सरलता से बनाये जा सकते हैं। यहाँ पर **सम** और **विषम** शब्द हेतुवाची हैं।

देवदत्तरूप्यम्, दैवदत्तम्। देवदत्त से आया हुआ सामान। यह मनुष्यवाचक का उदाहरण है। **देवदत्तादागतम्** लौकिक विग्रह और **देवदत्त ङसि** अलौकिक विग्रह में **हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः** से विकल्प से **रूप्य** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके स्वादिकार्य करने पर **देवदत्तरूप्यम्** बना। यह कार्य वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में **तत आगतः** से **अण्** होकर भसंज्ञक अकार के लोप के बाद वर्णसम्मेलन, स्वादिकार्य करके **दैवदत्तम्** भी बन जाता है।

१४६२. मयट् च ४।३।८२॥

सममयम्। विषममयम्। देवदत्तमयम्।

मयट् च। मयट् प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **ततः आगतः** इस सूत्र का अनुवर्तन एवं **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

हेतुवाचक एवं मनुष्यवाचक पञ्चम्यन्त प्रातिपदिकों से 'तत आगतः' के अर्थ में मयट् प्रत्यय भी होता है।

टकार इत्संज्ञक है, **मय** बचता है।

सममयम्। सम अर्थात् उचित हेतु से आया हुआ सामान। **समादागतम्। सम ङसि** से **मयट् च** सूत्र के द्वारा **मयट्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके स्वादिकार्य करने पर **सममयम्** सिद्ध हो जाता है।

विषममयम्। विषम अर्थात् ऊँच-नीच हेतु से आया हुआ सामान। **विषमादागतम्।** यहाँ पर **विषम+ङसि** से **मयट् च** सूत्र के द्वारा **मयट्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके स्वादिकार्य करने पर **विषममयम्** सिद्ध हो जाता है।

देवदत्तमयम्। देवदत्त से आया हुआ। **देवदत्तादागतम्** विग्रह करके **देवदत्त+ङसि** से **मयट् च** सूत्र के द्वारा **मयट्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके स्वादिकार्य करने पर **देवदत्तमयम्** सिद्ध हो जाता है।

यहाँ **तत आगतः** का प्रकरण पूरा हो गया है। अब प्राग्दीव्यतीयों में इकतीसवें

अर्थक्रम **प्रभवति**=सर्वप्रथम प्रकाशित होना, सर्वप्रथम दिखायी पड़ना अर्थ में प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है। यहाँ पर भी समर्थ विभक्ति पञ्चमी ही है, क्योंकि **तत आगतः** से **ततः** की अनुवृत्ति आती है।

१४६३. प्रभवति ४।३।८३॥

ततः इत्येव। हिमवतः प्रभवति हैमवती गङ्गा।

प्रभवति। प्रभवति क्रियापदम् एकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तत आगतः** से **ततः** और **प्राग्दीव्यतोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

पञ्चम्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से 'प्रभवति' अर्थात् सर्वप्रथम प्रकाशित होना या दिखाई देना अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं।

तत इत्येव। अर्थात् **तत आगतः** से **ततः** की अनुवृत्ति होने के कारण प्रकृतसूत्र के विधान में समर्थ विभक्ति पञ्चमी ही है। यहाँ **प्रभवति** शब्द का अर्थ है- प्रथम बार प्रकाशित होना, प्रथम बार दिखायी पड़ना, निकास होना, उपलब्धि आदि।

हैमवती गङ्गा। हिमालय में सर्वप्रथम दिखाई देने वाली गङ्गा। **हिमवतः प्रभवति** लौकिक विग्रह और **हिमवत् ङसि** अलौकिक विग्रह है। **प्रभवति** से अण् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **हिमवत्+अ** बना है। णित् होने के कारण आदिवृद्धि करके इकार के स्थान पर ऐकार आदेश, **हैमवत्+अ=हैमवत** बना। **हैमवत** यह शब्द स्त्रीलिङ्ग गङ्गा का विशेषण होने के कारण स्त्रीलिङ्ग में ङीप् होकर **हैमवती** बना। सु के बाद नदी की तरह **हैमवती** सिद्ध हो जाता है।

१४६४. विदूराञ्ञ्यः ४।३।८४॥

विदूरात् प्रभवति वैदूर्यो मणिः।

विदूराञ्ञ्यः। विदूरात् पञ्चम्यन्तं, ञ्यः प्रथमान्तम्। **प्रभवति** के साथ साथ **ततः** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

पञ्चम्यन्त समर्थ विदूर इस प्रातिपदिक से 'प्रभवति' अर्थात् सर्वप्रथम प्रकाशित होना या दिखाई देना अर्थ में ञ्य प्रत्यय होता है।

यह औत्सर्गिक अण् का अपवाद है। ञकार इत्संज्ञक है, **य** बचता है।

विदूरात् प्रभवति वैदूर्यो मणिः। विदूर अर्थात् बालवाय से निकलने वाला वैदूर्य=लहशुनिया मणि। **विदूरात् प्रभवति** लौकिक विग्रह और **विदूर+ङसि** अलौकिक विग्रह है। **विदूराञ्ञ्यः** सूत्र से अण् को बाधकर **ञ्य्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् कर **विदूर+य** बना है। ञित् होने के कारण आदिवृद्धि करके इकार के स्थान

पर ऐकार आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **वैदूर्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वैदूर्यः** सिद्ध हो जाता है।

दो सूत्रों के द्वारा **प्रभवति** अर्थ में विहित प्रत्ययों का प्रकरण पूरा किया गया है। अब आगे प्राग्दीव्यतीयों में बत्तीसवें अर्थक्रम **तद् गच्छति** अर्थ में प्रत्यय का विधान किया जा रहा है और इसके लिये केवल एक ही सूत्र है।

१४६५. तद् गच्छति पथिदूतयोः ४।३।८५॥

घ्नं गच्छति घ्नौघ्नः पन्था दूतो वा।

तद् गच्छति पथिदूतयोः। पन्थाश्च दूतश्च तयोरितरेतरद्वन्द्वः पथिदूतौ, तयोः पथिदूतयोः। तत् द्वितीयान्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, गच्छति क्रियापदं, पथिदूतयोः सप्तम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

द्वितीयान्त समर्थ प्रातिपदिकों से 'गच्छति' अर्थात् जाने वाला अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं किन्तु जाने वाला यदि मार्ग या दूत हो तो।

घ्नौघ्नः। घ्न नामक देश को जाने वाला मार्ग या दूत। **घ्नं गच्छति पन्था दूतो वा** लौकिक विग्रह और **घ्न अम्** अलौकिक विग्रह है। **तद् गच्छति पथिदूतयोः** से **अण्** हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **घ्न+अ** बना है। णित् होने के कारण आदिवृद्धि करके उकार के स्थान पर औकार आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करके **घ्नौघ्न्+अ=घ्नौघ्न** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **घ्नौघ्नः** सिद्ध हो जाता है।

एक ही सूत्र से **गच्छति** अर्थ में प्रत्यय का विधान करके अब आगे **अभिनिष्क्रामति**=निकलता है अर्थ में प्रत्यय का विधान भी एक ही सूत्र से किया जा रहा है। यह प्राग्दीव्यतीयों में तैंतीसवाँ अर्थक्रम है।

१४६६. अभिनिष्क्रामति द्वारम् ४।३।८६॥

तद् इत्येव। घ्नमभिनिष्क्रामति घ्नौघ्नं कान्यकुब्जद्वारम्।

अभिनिष्क्रामति द्वारम्। अभिनिष्क्रामति क्रियापदं, द्वारं प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तद् गच्छति पथिदूतयोः** से तत् की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

द्वितीयान्त समर्थ प्रातिपदिकों से 'अभिनिष्क्रामति' अर्थात् उस ओर निकलता है इस अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं किन्तु निकलने वाला यदि द्वार हो तो।

स्रौघ्नम्। स्रुघ्न नामक देश की ओर निकलने वाला कान्यकुब्ज देश का द्वार। **स्रुघ्नम् अभिनिष्क्रामति कान्यकुब्जद्वारम्। स्रुघ्न अम्** अलौकिक विग्रह है। **अभिनिष्क्रामति द्वारम्** से **अण्** हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **स्रुघ्न+अ** बना है। णित् होने के कारण आदिवृद्धि करके उकार के स्थान पर औकार आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करके **स्रौघ्न्+अ=स्रौघ्न** बना और स्वादिकार्य करके **स्रौघ्नम्** सिद्ध हो जाता है।

प्राचीन काल में सुरक्षा के लिये नगरों के चारों ओर प्राकार बनाये जाते थे। बाहर जाने के लिये बड़े-बड़े द्वार होते थे। जो दरवाजा जिस ओर जाता था, उसके नाम से वह द्वार कहलाता था। काशिका के अनुसार **स्रौघ्न** कान्यकुब्ज (कन्नौज) का द्वार-विशेष था, जो स्रुघ्न की ओर निकलता था। यद्यपि **द्वार से निकलना** प्रयोग अधिकतर व्यवहार में आता है, अतः करण कारक का प्रयोग होना चाहिये तथापि स्वातन्त्र्येण विवक्षा होने के कारण द्वार की कर्तृरूपता होती है- **विवक्षातः कारकाणि भवन्ति।** अन्यत्र भी जैसे **असिः छिनत्ति** वाक्य में **असि** (तलवार) के साधन होने पर भी उसकी कर्तृत्वेन विवक्षा की जाती है। इसी तरह यहाँ पर भी **द्वार** का कर्तृगत स्वातन्त्र्य विवक्षित है। इस विषय में महाभाष्य में भी बहुत कुछ लिखा गया है।

अब आगे **अधिकृत्य कृते ग्रन्थे** अर्थ का प्रकरण आता है। यह प्राग्दीव्यतीयों में चौंतीसवाँ अर्थक्रम है।

१४६७. अधिकृत्य कृते ग्रन्थे ४।३।८७॥

तद् इत्येव। शारीरकमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः शारीरकीयः।
'शारीरकं भाष्यम्' इति त्वभेदोपचारात्।

अधिकृत्य कृते ग्रन्थे। अधिकृत्य ल्यबन्तम् अव्ययम्, कृते सप्तम्यन्तं, ग्रन्थे सप्तम्यन्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तद् गच्छति पथिदूतयोः** से **तद्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

द्वितीयान्त प्रातिपदिक से 'आधार मानकर बनाया गया ग्रन्थ' इस अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं।

अधिकृत्य का अर्थ और भी कर सकते हैं, जैसे- अधिकार कर, प्रस्तुत कर, विषय बनाकर आदि।

शारीरकीयः। शारीरक अर्थात् आत्मा को विषय बनाकर बनाया गया ग्रन्थ। **शारीरकम् अधिकृत्य कृतो ग्रन्थः** लौकिक विग्रह और **शारीरक अम्** अलौकिक विग्रह है। **अधिकृत्य कृतो ग्रन्थः** से अणादि छ हुआ क्योंकि यह शब्द आदि अच् वृद्धि वाला है, इसलिए इसकी **वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद् वृद्धम्** से वृद्धसंज्ञा हुई है, और **वृद्धाच्छः**

ने वृद्धसंज्ञक से छ प्रत्यय होने का निर्णय दे दिया है। इसके बाद **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से छ के स्थान पर ईय्, **शारीरक्+ईय** भसंज्ञक अकार का लोप करके **शारीरक्+ईय=शारीरकीय** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **शारीरकीयः** सिद्ध हुआ।

शाकुन्तलम्। शकुन्तला नामक नायिका को विषय बनाकर बनाया गया नाटक-ग्रन्थ। **शकुन्तलाम् अधिकृत्य कृतो ग्रन्थः** लौकिक विग्रह और **शकुन्तला अम्** अलौकिक विग्रह है। **अधिकृत्य कृते ग्रन्थे** से अण् हुआ, आदिवृद्धि, भसंज्ञक आकार का लोप करके **शाकुन्तल्+अ=शाकुन्तल** बना, सु के बाद नपुंसक में अम्, पूर्वरूप करके **शाकुन्तलम्** सिद्ध हुआ। **कालिदास** का **अभिज्ञानशाकुन्तलम्** नामक नाटक बहुत प्रसिद्ध है।

'शारीरकं भाष्यम्' इति त्वभेदोपचारात्। मूलकार यहाँ पर **शारीरकं भाष्यम्** प्रयोग की समीचीनता बता रहे हैं। **शारीरकम्** यह अण् प्रत्यय के बाद स्वार्थ में क-प्रत्यय करके जो प्रयोग किया जाता है, वह जीवात्मा को अधिकृत कर भाष्य की रचना होने पर भी **शरीरस्य इदम्** इस अर्थ में प्रथम **तस्येदम्** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय करने पर पुनः स्वार्थ में **शारीरमेव शारीरकम्** में **क** प्रत्यय-प्रतिपाद्य जीव तथा तत्प्रतिपादक भाष्य इन दोनों में लक्षणा से अभेदारोप किया जाता है। ऐसा अन्यत्र भी होता है। जैसे कि **वासवदत्ताम् अधिकृत्य कृता आख्यायिका** आदि में **वासवदत्ता** आदि प्रयोग समीचीन माने जाते हैं।

१४६८. शिशुक्रन्दयमसभद्वन्द्वेन्द्रजननादिभ्यश्छः ४।३।८८॥

शिशूनां क्रन्दनं शिशुक्रन्दः, तमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः शिशुक्रन्दीयः। यमस्य सभा यमसभम्। क्लीबत्वं निपातनात्। यमसभीयः। किरातार्जुनीयम्। इन्द्रजननादिराकृतिगणः। इन्द्रजननीयम्। विरुद्धभोजनीयम्।

शिशुक्रन्दयमसभद्वन्द्वेन्द्रजननादिभ्यश्छः। शिशूनां क्रन्दः शिशुक्रन्दः, षष्ठीतत्पुरुषः। यमस्य सभा यमसभम्, षष्ठीतत्पुरुषः। इन्द्रजननमादिर्येषां ते इन्द्रजननादयः, बहुव्रीहिः। शिशुक्रन्दश्च यमसभं च द्वन्द्वश्च इन्द्रजननादयश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः शिशुक्रन्दयमसभद्वन्द्वेन्द्रजननादयस्तेभ्यः शिशुक्रन्दयमसभद्वन्द्वेन्द्रजननादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, छः प्रथमान्तम्। **अधिकृत्य कृते ग्रन्थे** सूत्र के सभी पदों की और **तद् गच्छति पथिदूतयोः** से **तद्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

द्वितीयान्त शिशुक्रन्द, यमसभ, द्वन्द्वसमास से युक्त और इन्द्रजननादि गणपठित प्रातिपदिकों से 'आधार मानकर बनाया गया ग्रन्थ' इस अर्थ में छ प्रत्यय होता है।

शिशूनां क्रन्दनं शिशुक्रन्दः, तमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः शिशुक्रन्दीयः। बच्चों के रोने को विषय बनाकर उसके विविध कारणों का व्याख्यान-परक ग्रन्थ **शिशुक्रन्दीयः** कहलाता है। **शिशुक्रन्दमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः** लौकिक विग्रह और **शिशुक्रन्द+अम्** अलौकिक विग्रह में औत्सर्गिक अण् को बाधकर **शिशुक्रन्दयमसभद्वन्द्वेन्द्रजननादिभ्यश्छः** सूत्र से छ-प्रत्यय, छकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र से **ईय्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **शिशुक्रन्द+ईय** बना है। भसंज्ञक अकार का लोप होकर **शिशुक्रन्दीय** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **शिशुक्रन्दीयः** सिद्ध हो जाता है।

यमस्य सभा यमसभम्। क्लीबत्वं निपातनात्। यमसभीयः। यमराज की सभा को विषय बनाकर बनाया गया ग्रन्थ। **यमस्य सभा** विग्रह में षष्ठीतत्पुरुष समास होने के बाद यद्यपि **परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः** के नियम से स्त्रीलिंग ही होना चाहिये तथापि प्रकृतसूत्र में नपुंसकत्व युक्त **यमसभ** शब्द का पाठ होने से निपातनात् नंपुसंक लिंग माना जाता है। इस तरह **यमसभम् अधिकृत्य कृतो ग्रन्थः** लौकिक विग्रह और **यमसभ+अम्** अलौकिक विग्रह करके **शिशुक्रन्दयमसभद्वन्द्वेन्द्रजननादिभ्यश्छः** सूत्र से छ-प्रत्यय होने पर **ईय्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **यमसभीय** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **यमसभीयः** सिद्ध हो जाता है।

किरातार्जुनीयम्। किरात और अर्जुन को विषय बनाकर बनाया गया ग्रन्थ। **किरातश्च अर्जुनश्च किरातार्जुनौ, तौ अधिकृत्य कृतो ग्रन्थः** लौकिक विग्रह और **किरातार्जुन+औट्** अलौकिक विग्रह करके प्रकृत में द्वन्द्वसमास होने के कारण **शिशुक्रन्दयमसभद्वन्द्वेन्द्रजननादिभ्यश्छः** सूत्र से छ-प्रत्यय होने पर **ईय्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **किरातार्जुनीय** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **किरातार्जुनीयः** सिद्ध हो जाता है।

इन्द्रजननादिराकृतिगणः। यद्यपि सूत्रकार ने इन्द्रजननादिगण का निर्देश किया है तथापि उक्त गणपाठ उपलब्ध नहीं है। अतः इसे आकृतिगण ही माननां होगा। शिष्टप्रयोगों के अनुसार कम से कम इन्द्रजनन, प्रद्युम्नागमन, सीतान्वेषण, विरुद्धभोजन इत्यादि शब्द तो इस गण में हैं ही।

इन्द्रजननीयम्। इन्द्र के जन्म को विषय बनाकर बनाया गया ग्रन्थ। **इन्द्रजननम् अधिकृत्य कृतो ग्रन्थः** लौकिक विग्रह और **इन्द्रजनन+अम्** अलौकिक विग्रह करके **शिशुक्रन्दयमसभद्वन्द्वेन्द्रजननादिभ्यश्छः** सूत्र से छ-प्रत्यय होने पर **ईय्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **इन्द्रजननीय** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **इन्द्रजननीयः** सिद्ध हो जाता है।

विरुद्धभोजनीयम्। विपरीत भोजन को विषय बनाकर बनाया गया ग्रन्थ। **विरुद्धभोजनम् अधिकृत्य कृतो ग्रन्थः** लौकिक विग्रह और **विरुद्धभोजन+अम्** अलौकिक विग्रह करके **शिशुक्रन्दयमसभद्वन्द्वेन्द्रजननादिभ्यश्छः** सूत्र से छ-प्रत्यय होने पर **ईय्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **विरुद्धभोजनीय** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **विरुद्धभोजनीयम्** सिद्ध हो जाता है।

अब प्राग्दीव्यतीयों में पैंतीसवें अर्थक्रम **सोऽस्य निवासः** अर्थ का निर्देश एक सूत्र से कर रहे हैं।

१४६९. सोऽस्य निवासः ४।३।८९॥
घ्नो निवासोऽस्य घ्नौघ्नः।

सोऽस्य निवासः। सः प्रथमान्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, अस्य षष्ठ्यन्तं, निवासः प्रथमान्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

प्रथमान्त प्रातिपदिकों से 'वह इसका निवास है' इस अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं।

घ्नौघ्नः। घ्न नामक देश निवास है जिसका, वह। **घ्नः निवासः अस्य** लौकिक विग्रह और **घ्न सु** अलौकिक विग्रह है। **सोऽस्य निवासः** से अण् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् कर **घ्न+अ** बना है। णित् होने के कारण आदिवृद्धि करके उकार के स्थान पर औकार आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करके **घ्नौघ्न्+अ=घ्नौघ्न** बना, सु के बाद रुत्वविसर्ग करके **घ्नौघ्नः** सिद्ध हो जाता है।

अब अगले सूत्र से **अभिजन** अर्थ का प्रकरण चलेगा। यह प्राग्दीव्यतीयों में छत्तीसवाँ अर्थक्रम है।

१४७०. अभिजनश्च ४।३।९०॥
घ्नोऽभिजनोऽस्य घ्नौघ्नः।
यत्र स्वयं वसति स निवासः। यत्र पूर्वैरुषितं सोऽभिजनः इति विवेकः।

अभिजनश्च। अभिजनः प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **सोऽस्य निवासः** से **सः, अस्य** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

प्रथमान्त प्रातिपदिकों से 'वह इसका अभिजन है' इस अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं।

घ्नोऽभिजनोऽस्य घ्नौघ्नः। घ्न नामक देश अभिजन है जिसका, वह। **घ्नः**

अभिजनः अस्य लौकिक विग्रह और **स्रुघ्न सु** अलौकिक विग्रह है। **अभिजनश्च** से अण् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् कर **स्रुघ्न+अ** बना है। णित् होने के कारण आदिवृद्धि करके उकार के स्थान पर औकार आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करके **स्रौघ्न्+अ=स्रौघ्न** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **स्रौघ्नः** सिद्ध हो जाता है।

यत्र स्वयं वसति स निवासः, यत्र पूर्वैरुषितं सोऽभिजनः इति विवेकः। मूलकार **निवास** और **अभिजन** शब्दों का अन्तर समझा रहे हैं कि जहाँ पर स्वयं निवास करता है, वह **निवास** कहलाता है किन्तु पूर्व-बन्धुओं के निवासस्थल को **अभिजन** कहते हैं, तदनुसार अभिजन-सम्बन्ध से जिस देश में वे बन्धु रह रहे थे, वह देश **अभिजन** कहलाता है। **अभिजायते येभ्य इति अभिजनः।**

१४७१. आयुधजीविभ्यश्छः पर्वते ४।३।९१॥

पर्वतवाचिनः प्रथमान्तादभिजनशब्दादस्येत्यर्थे छः स्यात्।

हृद्गोलः पर्वतोऽभिजनो येषामायुधजीविनां ते हृद्गोलीयाः।

'आयुध' इति किम्? ऋक्षोदः पर्वतोऽभिजनो येषां ते आर्क्षोदा द्विजाः।

आयुधजीविभ्यश्छः पर्वते। आयुधैर्जीवितुं शीलं येषां ते आयुधजीविनस्तेभ्य आयुधजीविभ्यः। आयुधजीविभ्यः इति तादर्थ्ये चतुर्थी। छः प्रथमान्तं, पर्वते सप्तम्यन्तम्। **अभिजनश्च** से **अभिजनः** की **सोऽस्य निवासः** से **सः** एवं **अस्य** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

प्रथमान्त समर्थ पर्वतवाची प्रातिपदिकों से 'वह इसका अभिजन है' इस अर्थ में छ-प्रत्यय होता है, आयुधजीवियों को बतलाने के लिये।

आयुध शस्त्र को कहते हैं और शस्त्र से जिनकी जीविका चले, वे आयुधजीवी कहलाते हैं। **पर्वते** शब्द प्रकृति का विशेषण है, अतः सप्तमी का पञ्चमी में विभक्तिविपरिणाम किया जाता है। सूत्र में **आयुधजीविभ्यः** पद चतुर्थी का द्योतक है- आयुधजीवियों को बतलाने के लिये।

हृद्गोलः पर्वतोऽभिजनो येषामायुधजीविनां ते हृद्गोलीयाः। हृद्गोल नामक पर्वत है अभिजन जिन आयुधजीविकों का, वे **हृद्गोलीय** कहलाते हैं। **हृद्गोलः अभिजनो येषाम्** लौकिक विग्रह और **हृद्गोल+सु** अलौकिक विग्रह में **आयुधजीविभ्यश्छः पर्वते** सूत्र के द्वारा छ-प्रत्यय होने पर ईयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **हृद्गोलीय** और स्वादिकार्य होकर बहुवचन में **हृद्गोलीयाः** सिद्ध हो जाता है।

'आयुध' इति किम्? ऋक्षोदः पर्वतोऽभिजनो येषां ते आर्क्षोदा द्विजाः। प्रकृतसूत्र में **आयुध** शब्द का निवेश होने से **आर्क्षोदाः द्विजाः** (जिन ब्राह्मणों के पूर्वज ऋक्षोद पर्वत पर रहे हों) में छ-प्रत्यय नहीं हुआ, क्योंकि ये आयुधजीवी नहीं थे। अतः औत्सर्गिक अण् प्रत्यय होकर **आर्क्षोद** और स्वादिकार्य होकर **आर्क्षोदाः** सिद्ध हो जाता है।

१४७२. शण्डिकादिभ्यो ञ्यः ४।३।९२॥

शण्डिकोऽभिजनोऽस्य शाण्डिक्यः।

शण्डिकादिभ्यो ञ्यः। शण्डिक आदिर्येषां ते शण्डिकादयस्तेभ्यः शण्डिकादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, ञ्यः प्रथमान्तम्। **अभिजनश्च** से **अभिजनः** की **सोऽस्य निवासः** से **सः** एवं **अस्य** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

प्रथमान्त समर्थ शण्डिकादि प्रातिपदिकों से 'वह इसका अभिजन है' इस अर्थ में ञ्य-प्रत्यय होता है।

ञकार इत्संज्ञक है, **य** बचता है।

शण्डिकोऽभिजनोऽस्य शाण्डिक्यः। शण्डिक नामक स्थान अभिजन है जिनका। **शण्डिकः अभिजनः अस्य** लौकिक विग्रह और **शण्डिक+सु** अलौकिक विग्रह में **शण्डिकादिभ्यो ञ्यः** सूत्र के द्वारा ञ्य-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **शाण्डिक्य** और स्वादिकार्य होकर **शाण्डिक्यः** सिद्ध हो जाता है।

शण्डिकादिगणः- शण्डिक, सर्वसेन, सर्वकेश, शक, शट, रक, शङ्कु, बोध।

१४७३. सिन्धुतक्षशिलादिभ्योऽणञौ ४।३।९३॥

सिन्ध्वादिभ्योऽण् तक्षशिलादिभ्योऽञ् स्यादुक्तेऽर्थे।

सैन्धवः। तक्षशिला नगरी अभिजनोऽस्य ताक्षशिलः।

सिन्धुतक्षशिलादिभ्योऽणञौ। सिन्धुश्च तक्षशिलाश्च सिन्धुतक्षशिले, ते आदिर्येषां से सिन्धुतक्षशिलादयस्तेभ्यः सिन्धुतक्षशिलादिभ्यः। अण् च अञ् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः अणञौ। **अभिजनश्च** से **अभिजनः** की **सोऽस्य निवासः** से **सः** एवं **अस्य** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है। सिन्ध्वादि और तक्षशिलादि दो तरह की प्रकृति और अण् तथा अञ् इन दो प्रत्ययों के रहते **यथासङ्ख्यमनुदेशः समानाम्** की उपस्थिति होती है।

प्रथमान्त समर्थ सिन्धु-आदि एवं तक्षशिला आदि प्रातिपदिकों से 'वह इसका अभिजन है' इस अर्थ में क्रमशः अण् और अञ् प्रत्यय होते हैं।

यथासंख्य होने पर सिन्ध्वादि से अण् और तक्षशिलादि से अञ् प्रत्यय हो जाते हैं।

सैन्धवः। सिन्धु-देश अभिजन है जिनका। **सिन्धुः अभिजनः अस्य** लौकिक विग्रह और **सिन्धु+सु** अलौकिक विग्रह में **सिन्धुतक्षशिलादिभ्योऽणञौ** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, उकार को **ओर्गुणः** से गुण होकर ओकार और उसको अवादेश होने पर **सैन्धव** बन जाता है। स्वादिकार्य से **सैन्धवः** सिद्ध हो जाता है।

तक्षशिला नगरी अभिजनोऽस्य ताक्षशिलः। तक्षशिला नगरी अभिजन है जिनका। **तक्षशिला अभिजनः अस्य** लौकिक विग्रह और **तक्षशिला+सु** अलौकिक विग्रह में **सिन्धुतक्षशिलादिभ्योऽणञौ** सूत्र के द्वारा अञ् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक आकार का लोप होकर **ताक्षशिल** बन जाता है। स्वादिकार्य से **ताक्षशिलः** सिद्ध हो जाता है।

सिन्ध्वादिगणः- सिन्धु, वर्ण, मधु, मत, कम्बोज, साल्व, कश्मीर, गन्धार, किष्किन्धा, उरसा, दरद, (दरद्), गन्दिका।

तक्षशिलादिगणः- तक्षशिला, वत्सोद्धरण, कैर्मेदुर, ग्रामणी, छगल, क्रोष्टुकर्ण, सिंहकर्ण, सङ्कुचित, किन्नर, काण्ढधार, पर्वत, अवसान, बर्बर, कंस।

१४७४. तूदीशलातुरवर्मतीकूचवाराङ्ढक्छण्ढञ्यकः ४।३।९४॥

तुदी अभिजनोऽस्य तौदेयः। शालातुरीयः। वार्मतेयः। कौचवार्यः।

तूदीशलातुरवर्मतीकूचवाराङ्ढक्छण्ढञ्यकः। तूदी च शलातुरश्च वर्मती च कूचवारश्च तेषां समाहारद्वन्द्वः तूदीशलातुरवर्मतीकूचवारं, तस्मात् तूदीशलातुरवर्मतीकूचवारात् पञ्चम्यन्तम्। ढक् च छण् च ढञ् च यक् च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो ढक्छण्ढञ्यकः। **अभिजनश्च** से **अभिजनः** की **सोऽस्य निवासः** से **सः** एवं **अस्य** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है। प्रकृति और प्रत्ययों में समानसंख्या होने के कारण **यथासङ्ख्यमनुदेशः समानाम्** की उपस्थिति होती है।

प्रथमान्त समर्थ तूदी, शलातुर, वर्मती और कूचवार इन प्रातिपदिकों से 'वह इसका अभिजन है' इस अर्थ में क्रमशः ढक्, छण्, ढञ् और यक् प्रत्यय होते हैं।

यथासंख्य होने पर **तूदी** से ढक्, **शलातुर** से छण्, **वर्मती** से ढञ् और **कूचवार** से **यक्** प्रत्यय हो जाते हैं।

तुदी अभिजनोऽस्य तौदेयः। जिसके अभिजन तूदी नगरी में रहते हों। **तूदी अभिजनः अस्य** लौकिक विग्रह और **तूदी+सु** अलौकिक विग्रह में **तूदीशलातुरवर्मतीकूच-**

वाराङ्गक्छण्ढञ्यकः सूत्र के द्वारा ढक् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, ढकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र से **एय्** आदेश होकर **तूदी+एय** बना है। आदिवृद्धि और भसंज्ञक ईकार का लोप होकर **तौदेय** बन जाता है। स्वादिकार्य से **तौदयः** सिद्ध हो जाता है।

शालातुरीयः। जिसके अभिजन शलातुर में रहते हों। **शलातुरः अभिजनः अस्य** लौकिक विग्रह और **शलातुर+सु** अलौकिक विग्रह में **तूदीशलातुरवर्मतीकूच-वाराङ्गक्छण्ढञ्यकः** सूत्र के द्वारा छण् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, छकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र से **ईय्** आदेश होकर, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **शालातुरीय** बन जाता है। स्वादिकार्य से **शालातुरीयः** सिद्ध हो जाता है। पाणिनि के अभिजन शलातुर में ही रहते थे, इस लिये पाणिनि जी को **शालातुरीयः** भी कहा जाता है। इस समय इसका नाम **लाहौर** है, जो वर्तमान में पाकिस्तान में है।

वार्मतेयः। जिसके अभिजन वर्मती नगरी में रहते हों। **वर्मती अभिजनः अस्य** लौकिक विग्रह और **वर्मती+सु** अलौकिक विग्रह में **तूदीशलातुरवर्मतीकूच-वाराङ्गक्छण्ढञ्यकः** सूत्र के द्वारा ढञ् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, ढकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र से **एय्** आदेश होकर, आदिवृद्धि और भसंज्ञक ईकार का लोप होकर **वार्मतेय** बन जाता है। स्वादिकार्य से **वार्मतेयः** सिद्ध हो जाता है।

कौचवार्यः। जिसके अभिजन कूचवार शहर में रहते हों। **कूचवारः अभिजनः अस्य** लौकिक विग्रह और **कूचवार+सु** अलौकिक विग्रह में **तूदीशलातुरवर्मतीकूच-वाराङ्गक्छण्ढञ्यकः** सूत्र के द्वारा यक् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **किति च** सूत्र से आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **कौचवार्य** बन जाता है। स्वादिकार्य से **कौचवार्यः** सिद्ध हो जाता है।

यहाँ अभिजनार्थ का प्रकरण पूरा हो जाता है। अब आगे **भक्तिः** अर्थ का प्रकरण है। यह प्राग्दीव्यतीयों में सैंतीसवाँ अर्थक्रम है। इसकी समर्थ विभक्ति प्रथमा ही है, क्योंकि **सोऽस्य निवासः** से **सः अस्य** की अनुवृत्ति आती है।

१४७५. भक्तिः ४।३।९५॥

'सोऽस्य' इत्यनुवर्तते। भज्यते सेव्यत इति भक्तिः।
स्रुघ्नो भक्तिरस्य स्रौघ्नः।

भक्तिः प्रथमान्तमेकपदमिदं सूत्रम्। **सोऽस्य निवासः** से **सः** एवं **अस्य** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्,**

समर्थानां प्रथमाद्वा और **शेषे** का अधिकार है। प्रकृति और प्रत्ययों में समानसंख्या होने के कारण **यथासङ्ख्यमनुदेशः समानाम्** की उपस्थिति होती है।

प्रथमान्त समर्थ प्रातिपदिकों से 'वह इसकी भक्ति है' इस अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं।

'सोऽस्य' इत्यनुवर्तते। अर्थात् **सोऽस्य निवासः** से **सः**, **अस्य** इन दो पदों की अनुवृत्ति आती है।

भज्यते सेव्यत इति भक्तिः। यहाँ **भक्ति** शब्द का अर्थ सेवित है, क्योंकि **भज्यते सेव्यते** इस कर्मव्युत्पत्ति में भज्-धातु से क्तिन् प्रत्यय होकर **भक्ति** शब्द निष्पन्न हुआ है।

स्रुघ्नो भक्तिरस्य स्रौघ्नः। स्रुघ्न नामक देश सेवित है जिसका, वह। **स्रुघ्नः भक्तिः अस्य** लौकिक विग्रह और **स्रुघ्न+सु** अलौकिक विग्रह है। **भक्तिः** सूत्र से अण् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् कर **स्रुघ्न+अ** बना है। णित् होने के कारण आदिवृद्धि करके उकार के स्थान पर औकार आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करके **स्रौघ्न्+अ=स्रौघ्न** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **स्रौघ्नः** सिद्ध हो जाता है।

१४७६. अचित्ताददेशकालाट्ठक् ४।३।९६॥

अपूपा भक्तिरस्य आपूपिकः। पायसिकः। 'अचित्तात्' किम्? दैवदत्तः। 'अदेशात्' किम्? स्रौघ्नः। 'अकालात्' किम्? ग्रैष्मः।

अचित्ताददेशकालाट्ठक्। न विद्यमानं चित्तं यस्मिन् तत् अचित्तं, तस्माद् अचित्ताद्, बहुव्रीहिः। देशश्च कालश्च तयोः समाहारद्वन्द्वो देशकालम्। न देशकालमदेशकालं, तस्माददेशकालाद्, नञ्तत्पुरुषः। **भक्तिः** तथा **सोऽस्य निवासः** से **सः** एवं **अस्य** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

प्रथमान्त समर्थ भक्ति-समानाधिकरणवाची देश-कालवाचक को छोड़कर जो अचेतनवाची प्रातिपदिक, उनसे षष्ठ्यर्थ में ठक् प्रत्यय होता है।

देश-कालवाची भी अचित्त हैं, अतः उनका **अदेशकालात्** पद से निषेध किया गया है।

अपूपा भक्तिरस्य आपूपिकः। जिसकी अभिरुचि मालपूआ के प्रति हो। **अपूपाः भक्तिः अस्य** लौकिक विग्रह करके **अपूप+जस्** से **भक्तिः अस्य** अर्थ में **अचित्ताददेशकालाट्ठक्** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, **ठ** के स्थान पर **इक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आपूपिक** और स्वादिकार्य से **आपूपिकः** सिद्ध हो जाता है।

पायसिकः। पायस=खीर के प्रति जिसकी अभिरुचि हो। **पायसं भक्तिः अस्य** लौकिक विग्रह करके **पायस+सु** से **भक्तिः अस्य** अर्थ में **अचित्ताददेशकालाट्ठक्** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, **ठ** के स्थान पर **इक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पायसिक** और स्वादिकार्य से **पायसिकः** सिद्ध हो जाता है।

'अचित्तात्' किम्? दैवदत्तः। प्रकृतसूत्र में **अचित्तात्** पद के निवेश से जो चित्त=मन वाला अर्थात् चेतन हो, उससे ठञ् नहीं होता। जैसे कि **देवदत्त** आदि। **देवदत्तो भक्तिः अस्य** (देवदत्त के प्रति जिसकी अभिरुचि हो) में देवदत्त के चित्तवान् होने के कारण ठक् नहीं हुआ अपितु **भक्तिः** सूत्र से **अण्** प्रत्यय, आदिवृद्धि होकर **दैवदत्तः** बन जाता है।

'अदेशात्' किम्? स्रौघ्नः। प्रकृतसूत्र में **अदेश** पद के निवेश से देशवाची शब्द से ठक् का निषेध किया गया है। अतः **स्रुघ्नो भक्तिः अस्य** (स्रुघ्न-देश के प्रति जिसकी अभिरुचि हो) में **स्रुघ्न** शब्द से ठञ् नहीं हुआ अपितु **भक्तिः** सूत्र से **अण्** प्रत्यय, आदिवृद्धि होकर **स्रौघ्नः** सिद्ध हो जाता है।

'अकालात्' किम्? ग्रैष्मः। प्रकृतसूत्र में **अकाल** पद के निवेश से कालवाची शब्द से ठञ् का निषेध किया गया है। अतः **ग्रीष्मो भक्तिः अस्य** (ग्रीष्म-काल के प्रति जिसकी अभिरुचि हो) में **ग्रीष्म** शब्द से ठक् नहीं हुआ अपितु **भक्तिः** सूत्र से **अण्** प्रत्यय, आदिवृद्धि होकर **ग्रैष्मः** सिद्ध हो जाता है।

१४७७. महाराजाट्ठञ् ४।३।९७॥

माहाराजिकः।

महाराजाट्ठञ। महाराजात् पञ्चम्यन्तं, ठञ् प्रथमान्तम्। **भक्तिः** तथा **सोऽस्य निवासः** से **सः** एवं **अस्य** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

प्रथमान्त समर्थ भक्ति-समानाधिकरणवाची महाराज इस प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है।

माहाराजिकः। महाराज के प्रति जिसकी अभिरुचि हो। **महाराजो भक्तिः अस्य** लौकिक विग्रह करके **महाराज+सु** से **भक्तिः अस्य** अर्थ में **महाराजाट्ठञ्** सूत्र के द्वारा ठञ् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, **ठ** के स्थान पर **इक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **माहाराजिक** और स्वादिकार्य से **माहाराजिकः** सिद्ध हो जाता है।

१४७८. वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन् ४।३।९८॥

वासुदेवकः। अर्जुनकः।

वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन्। वासुदेवश्च अर्जुनश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो वासुदेवार्जुनौ, ताभ्यां वासुदेवार्जुनाभ्याम् पञ्चम्यन्तं, वुन् प्रथमान्तम्। **भक्तिः** तथा **सोऽस्य निवासः** से **सः** एवं **अस्य** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

प्रथमान्त समर्थ भक्ति-समानाधिकरणवाची वासुदेव और अर्जुन इन प्रातिपदिकों से षष्ठ्यर्थ में वुन् प्रत्यय होता है।

वुन् में नकार इत्संज्ञक है और **वु** के स्थान पर युवोरनाकौ से **अक** आदेश हो जाता है। प्रकृतसूत्र में **वासुदेवश्च अर्जुनश्च** विग्रह में इतरेतरयोगद्वन्द्वसमास होने के बाद **अल्पाच्तरम्** सूत्र के द्वारा अल्प अच् वाले **अर्जुन** शब्द का पूर्वनिपात होना चाहिये था किन्तु **अभ्यर्हितं च** वार्तिक के द्वारा दोनों में अधिक पूज्य **वासुदेव** का पूर्वनिपात हुआ है। अथवा यूँ कह सकते हैं कि पूज्य का पूर्वनिपात होता है, यह ज्ञापित करने के लिये उक्त सूत्र की प्रवृत्ति नहीं करायी गयी है। तात्पर्य यह है कि सूत्र के द्वारा **वासुदेव** शब्द का पूर्वनिपात और वार्तिक के द्वारा **अर्जुन** शब्द का पूर्वनिपात की युगपत्प्राप्ति होने पर प्रकृतसूत्र से अभ्यर्हित=पूज्य की प्रबलता का ज्ञापन दिया गया है।

वासुदेवकः। वासुदेव के प्रति जिसकी अभिरुचि हो। **वासुदेवो भक्तिः अस्य** लौकिक विग्रह करके **वासुदेव+सु** से **भक्तिः अस्य** अर्थ में **वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन्** सूत्र के द्वारा वुन् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, **वु** के स्थान पर **अक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **वासुदेवक** और स्वादिकार्य से **वासुदेवकः** सिद्ध हो जाता है।

यहाँ पर यह शंका होती है कि **वसुदेव का अपत्य** अर्थ को अभिलक्षित कर **वसुदेव** शब्द से **ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च** (४.१.११४) सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय होकर निष्पन्न **वासुदेव** शब्द से वक्ष्यमाण सूत्र **गोत्रक्षत्रियाख्येभ्यो बहुलं वुञ्** (४.३.९९) से ही वुञ् प्रत्यय सिद्ध था और वासुदेव-शब्द से चाहे वुञ् हो या वुन्, रूप और स्वर में कोई अन्तर नहीं आता, ऐसी स्थिति में पृथक् सूत्र से वुन् प्रत्यय के विधान का क्या प्रयोजन है? भाष्यकार ने इस शंका का समाधान करते हुये कहा है कि यहाँ **वासुदेव** शब्द अपत्यार्थक न होकर **भगवान्** अर्थ में योगरूढ है- **नैषा क्षत्रियाख्या, संज्ञैषा तत्र भवतः**। अर्थात् **यस्मिन् सर्वं वसति स वासुः, स चासौ देवो वासुदेवः**। जिसमें सब चराचर बसता है, उसे **वासु** कहते हैं और वासु जो देव, वह वासुदेव है। ऐसी स्थिति में क्षत्रियाख्या वृष्णिवंशीय न होने के कारण उक्त सूत्र से वुञ् नहीं हो सकता, अतः पृथक् से वुन् का विधान किया गया है।

अर्जुनकः। अर्जुन के प्रति जिसकी अभिरुचि हो। **अर्जुनो भक्तिः अस्य** लौकिक विग्रह करके **अर्जुन+सु** से **भक्तिः अस्य** अर्थ में **वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन्** सूत्र के द्वारा वुन् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, **वु** के स्थान पर **अक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा,

सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **अर्जुनक** और स्वादिकार्य से **अर्जुनकः** सिद्ध हो जाता है।

१४७९. गोत्रक्षत्रियाख्येभ्यो बहुलं वुञ् ४।३।९९॥

अणोऽपवादः। परत्वाद् वृद्धाच्छं बाधते।
ग्लुचुकायनिर्भक्तिरस्य ग्लौचुकायनकः। नाकुलकः।
बहुलग्रहणान्नेह- पाणिनो भक्तिरस्य पाणिनीयः।

गोत्रक्षत्रियाख्येभ्यो बहुलं वुञ्। गोत्रं च क्षत्रियश्च गोत्रक्षत्रियौ, तौ आख्या येषां ते गोत्रक्षत्रियाख्याः, तेभ्यो गोत्रक्षत्रियाख्येभ्यः, द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः। गोत्रक्षत्रियाख्येभ्यः पञ्चम्यन्तं, बहुलं प्रथमान्तं, वुञ् प्रथमान्तम्। **भक्तिः** तथा **सोऽस्य निवासः** से **सः** एवं **अस्य** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

प्रथमान्त समर्थ भक्ति-समानाधिकरणवाची गोत्राख्य और क्षत्रियाख्य प्रातिपदिकों से षष्ठ्यर्थ में बहुलता से वुञ् प्रत्यय होता है।

अणोऽपवादः। परत्वाद् वृद्धाच्छं बाधते। यद्यपि यह सूत्र औत्सर्गिक अण् का अपवाद है तथापि **औपगवकः** इत्यादि में यह सूत्र परवर्ती सूत्र होने के कारण **वृद्धाच्छः** सूत्र को भी बाधता है। प्रकृतसूत्र में **गोत्र** शब्द से लौकिक गोत्र का ग्रहण है, न कि शास्त्रीय **पौत्रप्रभृति गोत्र** का।

ग्लुचुकायनिर्भक्तिरस्य ग्लौचुकायनकः। ग्लुचुकायनि नामक ऋषि के प्रति जिसकी अभिरुचि हो। **ग्लुचुकायनिः भक्तिः अस्य** लौकिक विग्रह करके **ग्लुचुकायनि+सु** से **भक्तिः अस्य** अर्थ में **गोत्रक्षत्रियाख्येभ्यो बहुलं वुञ्** सूत्र के द्वारा वुन् प्रत्यय होता है, क्योंकि ग्लुचुकायनि एक लौकिक गोत्रवाची शब्द है। प्रत्यय के बाद अनुबन्धलोप, **वु** के स्थान पर **अक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक इकार का लोप होकर **ग्लौचुकायनक** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **ग्लौचुकायनकः** सिद्ध हो जाता है।

नाकुलकः। नकुल के प्रति जिसकी अभिरुचि हो। **नकुलो भक्तिः अस्य** लौकिक विग्रह करके **नकुल+सु** से **भक्तिः अस्य** अर्थ में **गोत्रक्षत्रियाख्येभ्यो बहुलं वुञ्** सूत्र के द्वारा वुन् प्रत्यय होता है, क्योंकि नकुल एक क्षत्रियवाची शब्द है। प्रत्यय के बाद अनुबन्धलोप, **वु** के स्थान पर **अक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **नाकुल** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **नाकुलकः** सिद्ध हो जाता है।

बहुलग्रहणान्नेह- पाणिनो भक्तिरस्य पाणिनीयः। प्रकृतसूत्र में **बहुलम्** पद का निवेश है और यह केवल विकल्प का बोधक न होकर अनेकार्थक है। अतः कहीं

सूत्र की नित्य से प्रवृत्ति होना और कहीं नित्य से अप्रवृत्ति होना भी सूचित होता है। अतः **पाणिनो भक्तिः अस्य** में यह सूत्र प्रवृत्त नहीं हुआ अर्थात् वुञ् प्रत्यय नहीं हुआ। फलतः **वृद्धाच्छः** सूत्र के द्वारा **छ** प्रत्यय, ईयादेश आदि होकर **पाणिनीयः** सिद्ध हो जाता है। यहाँ **पाणिन**-शब्द **पाणिनि** का ही पर्यायवाची (नामान्तर) है।

१४८०. जनपदिनां जनपदवत्सर्वं जनपदेन समानशब्दानां बहुवचने ४।३।१००॥

जनपदस्वामिवाचिनां बहुवचने जनपदवाचिनां समानश्रुतीनां जनपदवत् सर्वं स्यात् प्रत्ययः प्रकृतिश्च। 'जनपदतदवध्योश्च' (सू.१३४८) इति प्रकरणे ये प्रत्यया उक्तास्तेऽत्रातिदिश्यन्ते। अङ्गा जनपदो भक्तिरस्य आङ्गकः। अङ्गाः क्षत्रियाः भक्तिरस्य आङ्गकः। 'जनपदिनाम्' किम्? पञ्चाला ब्राह्मणा भक्तिरस्य पाञ्चालः। 'जनपदेन' इति किम्? पौरवो राजा भक्तिरस्य पौरवीयः।

जनपदिनां जनपदवत्सर्वं जनपदेन समानशब्दानां बहुवचने। जनपदशब्दो देशवाची, स एषामस्तीति जनपदिनस्तेषां जनपदिनाम्। जनपद इव जनपदवत्। समानाश्च ते शब्दाः समानशब्दास्तेषां समानशब्दानाम्। जनपदिनां षष्ठ्यन्तं, जनपदवत् अव्ययम्, सर्वं प्रथमान्तं, जनपदेन तृतीयान्तं, समानशब्दानां षष्ठ्यन्तं, बहुवचने सप्तम्यन्तम्। **भक्तिः** तथा **सोऽस्य निवासः** से **सः** एवं **अस्य** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

बहुवचन के विषय में वर्तमान जनपद के समान ही क्षत्रियवाची प्रातिपदिकों को जनपद की भाँति ही समग्र कार्य (प्रत्यय और प्रकृति) हों।

'जनपदतदवध्योश्च' इति प्रकरणे ये प्रत्यया उक्तास्तेऽत्रातिदिश्यन्ते। यह अतिदेश सूत्र है। जनपद-शब्द देश का वाचक है। जनपद के स्वामी क्षत्रिय जनपदी कहलाते हैं। प्रकृतसूत्र के विधान का यह तात्पर्य है कि **जनपदतदवध्योश्च** (४.२.१२४) सूत्र के प्रकरण में देशवाची जनपद-प्रातिपदिकों से जो प्रत्यय कहे गये हैं, वे भक्ति-समानाधिकरणवाची जनपदी अर्थात् क्षत्रियवाची प्रातिपदिकों से भी उसी प्रकार होंगे। प्रकृति भी उसी तरह की और प्रत्यय भी उसी तरह के होंगे। जैसे कि **अङ्ग, वङ्ग** आदि शब्द जनपदवाची होने के साथ ही जनपदि-वाची हैं। इसके साथ ही बहुवचन में वर्तमान भी हैं। अतः जनपद में कहा हुआ **वुञ्** प्रत्यय **जनपदोऽस्य भक्तिः** अर्थ में भी हो जाता है।

अङ्गा जनपदो भक्तिरस्य आङ्गकः। (अङ्ग जनपद का जो भक्त हो) और **अङ्गाः क्षत्रियाः भक्तिरस्य आङ्गकः।** (अङ्ग क्षत्रियों का जो भक्त हो)। उभयत्र

अङ्ग-शब्द से **अस्य भक्तिः** अर्थ में **जनपदिनां जनपदवत्सर्वं जनपदेन समानशब्दानां बहुवचने** सूत्र के द्वारा जनपदवत् अतिदेश होने से जनपद अर्थ में विहित **वुञ्** प्रत्यय के भक्ति अर्थ में भी हो जाने से **अङ्ग+वुञ्**, अनुबन्धलोप, अक आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आङ्गक** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आङ्गकः** सिद्ध हो जाता है।

'जनपदिनाम्' किम्? पञ्चाला ब्राह्मणा भक्तिरस्य पाञ्चालः। प्रकृतसूत्र में **जनपदिनाम्** पद के निवेश से **पञ्चालाः ब्राह्मणाः भक्तिः अस्य** विग्रह में जनपदवत् का अतिदेश नहीं हुआ, क्योंकि यहाँ जनपद-स्वामी की विवक्षा नहीं की गयी है। अभेदोपचार के बल पर **पञ्चाल** शब्द की ब्राह्मण-बोधकता मात्र है। अतः वुञ् न होकर **भक्तिः** सूत्र के द्वारा औत्सर्गिक अण् प्रत्यय होने से **पाञ्चालाः** सिद्ध हो जाता है।

'जनपदेन' इति किम्? पौरवो राजा भक्तिरस्य पौरवीयः। प्रकृतसूत्र में **जनपदेन** पद के निवेश से **पौरवीयः** (पौरव राजा का भक्त) अर्थ में सर्वातिदेश नहीं हुआ, क्योंकि यहाँ तत्समान जनपद की विद्यमानता (जनपद-वाचकता) नहीं है। अतः **वृद्धाच्छः** से छ-प्रत्यय होकर **पौरवीयः** बन जाता है।

यहाँ पर **सोऽस्य भक्ति** अर्थ की पूर्णता हो जाती है। अब आगे **तेन प्रोक्तम्** अर्थ में प्रत्यय किये जायेंगे। प्राग्दीव्यतीयों में यह अड़तीसवाँ अर्थक्रम है।

१४८१. तेन प्रोक्तम् ४।३।१०१॥

पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयम्।

तेन प्रोक्तम्। तेन तृतीयान्तं लुप्तपञ्चमीकं, प्रोक्तं प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

'उसके द्वारा कहा गया' इस अर्थ में तृतीयान्त प्रातिपदिक से यथाविहित अण् आदि प्रत्यय होते हैं।

तेन पद के द्वारा यह सूचित किया गया है कि प्रकृत अर्थ के सम्बन्ध में प्रत्यय-विधान होने पर प्रकृति की समर्थ विभक्ति तृतीया होगी।

पाणिनीयम्। पाणिनि जी के द्वारा कहा गया, व्याकरण शास्त्र। **पाणिनिना प्रोक्तम्** लौकिक विग्रह और **पाणिनि टा** अलौकिक विग्रह है। **तेन प्रोक्तम्** से **छ** हुआ क्योंकि यह शब्द आदि अच् वृद्धि वाला है, इसलिए इसकी **वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद् वृद्धम्** से वृद्धसंज्ञा हुई है, और **वृद्धाच्छः** ने वृद्धसंज्ञक से छ प्रत्यय होने का निर्णय दे दिया है। इसके बाद **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **छ्** के स्थान पर **ईय्**, **पाणिनि+ईय** भसंज्ञक इकार का लोप करके **पाणिन्+ईय=पाणिनीय** बना, सु के बाद अम्, पूर्वरूप करके **पाणिनीयम्** सिद्ध हुआ।

चान्द्रम्। चन्द्र के द्वारा कहा गया, शास्त्र। **चन्द्रेण प्रोक्तम्** लौकिक विग्रह और **चन्द्र टा** अलौकिक विग्रह है। **तेन प्रोक्तम्** से अण् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, णित् होने के कारण आदिवृद्धि करके अकार के स्थान पर आकार आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करके **चान्द्र्+अ=चान्द्र** बना, सु के बाद अम् आदेश, पूर्वरूप करके **चान्द्रम्** सिद्ध हुआ।

४८२. तित्तिरिवरतन्तुखण्डिकोखाच्छण् ४।३।१०२॥

'छन्दोब्राह्मणानि-' (सू.१२७८) इति तद्विषयता।
तित्तिरिणा प्रोक्तमधीयते तैत्तिरीयाः।

तित्तिरिवरतन्तुखण्डिकोखाच्छण्। तित्तिरिश्च वरतन्तुश्च खण्डिकश्च उखश्च तेषां समाहारद्वन्द्वः तित्तिरिवरतन्तुखण्डिकोखम्, तस्मात् तित्तिरिवरतन्तुखण्डिकोखात् पञ्चम्यन्तं, छण् प्रथमान्तम्। **तेन प्रोक्तम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

'उसके द्वारा कहा गया' इस अर्थ में तृतीया-समर्थ तित्तिरि, वरतन्तु, खण्डिक और उख इन प्रातिपदिक से छण् प्रत्यय होता है।

पूर्वसूत्र का ही विषय है किन्तु प्रकृति-विशेष से प्रत्यय-विशेष का विधान होने के कारण यह पूर्वसूत्र का अपवाद है। छण् में णकार इत्संज्ञक है, छ बचता है और उसके स्थान पर **ईय्** आदेश हो जाता है। णित्करण आदिवृद्धि के लिये है।

'छन्दोब्राह्मणानि-' इति तद्विषयता। इस सूत्र से लेकर **तेनैकदिक्** (४.३.११२) सूत्र पर्यन्त कहे जाने वाले प्रत्यय **छन्दोविषय** वाच्य होने पर ही सम्बद्ध होते हैं। इसका कारण यह है कि **शौनकादिभ्यश्छन्दसि** (४.३.१०१६) सूत्र में निविष्ट **छन्दसि** पद का उससे पूर्व अपकर्ष तथा उत्तरवर्ती सूत्रों में अनुवृत्ति है। पहले **छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि** (४.२.६६) सूत्र के द्वारा छन्दो-विषयक शब्दों से अध्येतृ-वेदितृ अर्थ में प्रत्ययों का विधान बतलाया गया है। इस हेतु यहाँ भी छन्दोविषयक **अध्येता-वेत्ता** अर्थ में ही छण् प्रत्यय होगा, केवल **प्रोक्त** अर्थ में नहीं होगा। इसी बात को मूलकार ने सूचित किया है- **छन्दोब्राह्मणानि० इति तद्विषयता।** इस तरह इस नियमन के दो स्वरूप होते हैं- १. तित्तिरि आदि शब्दों से छण् ही होता है और २. वह भी छन्दोविषय वाच्य होने पर ही होगा। यहाँ पर छन्दस्-शब्द मन्त्र-मात्र का द्योतक है।

तित्तिरिणा प्रोक्तमधीयते तैत्तिरीयाः। तित्तिरि के कहे गये वेदों को पढ़ने वाले। **तित्तिरिणा प्रोक्तम् अधीयते** विग्रह करके **तित्तिरि+टा** में **तेन प्रोक्तम्** के अर्थ में **तित्तिरिवरतन्तुखण्डिकोखाच्छण्** सूत्र से छण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, ईय् आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **तित्तिरि+ईय** बना है। आदिवृद्धि और भसंज्ञक के अन्त्य इकार का लोप करके **तैत्तिरीय** तथा स्वादिकार्य से **तैत्तिरीयः, तैत्तिरीयौ,**

तैत्तिरीयाः इत्यादि रूप सिद्ध होते हैं। इसके बाद भी तैत्तिरीय वेदशाखा का अध्ययन करता है, इस अर्थ में **तैत्तिरीय**-शब्द से **तदधीते तद्वेद** सूत्र से अण् होने पर उसका **प्रोक्ताल्लुक्** सूत्र के द्वारा लुक् होकर **तैत्तिरीयः** ही बनता है। इसी प्रकार से प्रकृतसूत्र के अन्य शब्दों से भी छण् प्रत्यय करके **वारतन्तवीयाः, खाण्डिकीयाः, औखीयाः** आदि प्रयोग बना लेने चाहिये।

तित्तिरिणा प्रोक्तः श्लोकः अर्थ में उक्त छण् नहीं होगा, क्योंकि छण् प्रत्यय छन्दोविषय होने पर ही होता है, लौकिक प्रयोग के लिये नहीं होता।

१४८३. काश्यपकौशिकाभ्यामृषिभ्यां णिनिः ४।३।१०३॥
काश्यपेन प्रोक्तमधीयते काश्यपिनः।

काश्यपकौशिकाभ्यामृषिभ्यां णिनिः। काश्यपश्च कौशिकश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः काश्यपकौशिकौ, ताभ्यां काश्यपकौशिकाभ्यां, पञ्चम्यन्तम्। ऋषिभ्यां पञ्चम्यन्तं, णिनिः प्रथमान्तम्। **तेन प्रोक्तम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

'उसके द्वारा कहा गया पढ़ता है' इस अर्थ में तृतीया-समर्थ ऋषिवाची काश्यप और कौशिक इन प्रातिपदिक से णिनि प्रत्यय होता है।

णिनि में णकार और अन्त्य इकार इत्संज्ञक हैं, **इन्** बचता है। णित्करण आदिवृद्धि के लिये है। यह सूत्र **वृद्धाच्छः** का अपवाद है।

काश्यपेन प्रोक्तमधीयते काश्यपिनः। काश्यप ऋषि के द्वारा प्रोक्त विषय का अध्ययन करने वाले। **काश्यपेन प्रोक्तम् अधीयते** विग्रह करके **काश्यप+टा** से **काश्यपकौशिकाभ्यामृषिभ्यां णिनिः** सूत्र के द्वारा णिनि प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, पर्जन्यवल्लक्षणन्यायेन आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **काश्यपिन्** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **काश्यपी, काश्यपिनौ, काश्यपिनः** इत्यादि रूप बनते हैं। इसके बाद **अधीते वेद वा** अर्थ में विहित प्रत्यय का **प्रोक्ताल्लुक्** से लुक् हो जाता है।

कौशिकिनः। कौशिक ऋषि के द्वारा प्रोक्त विषय का अध्ययन करने वाले। **कौशिकेन प्रोक्तम् अधीयते** विग्रह करके **कौशिक+टा** से **काश्यपकौशिकाभ्यामृषिभ्यां णिनिः** सूत्र के द्वारा णिनि प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, पर्जन्यवल्लक्षणन्यायेन आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **कौशिकिन्** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कौशिकी, कौशिकिनौ, कौशिकिनः** इत्यादि रूप बनते हैं। इसके बाद **अधीते वेद वा** अर्थ में विहित प्रत्यय का **प्रोक्ताल्लुक्** से लुक् हो जाता है।

सूत्र में **ऋषि** शब्द का निवेश होने से ऋषिवाची काश्यप और कौशिक शब्दों से ही णिनि प्रत्यय होगा, किन्तु आधुनिक काश्यप या कौशिक नामक व्यक्ति के रचित विषय के अध्येता के लिये तो णिनि न होकर **वृद्धाच्छः** से छ-प्रत्यय होकर **काश्यपीयाः, कौशिकीयाः** प्रयोग बनते हैं।

१४८४. कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्च ४।३।१०४॥

कलाप्यन्तेवासिभ्यः- हरिद्रुणा प्रोक्तमधीयते हारिद्रविणः।
वैशम्पायनान्तेवासिभ्यः- आलम्बिनः।

कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्च। कलापी च वैशम्पायनश्च तयोरितरेतर-योगद्वन्द्वः कलापिवैशम्पायनौ। तयोरन्तेवासिनः कलापिवैशम्पायनान्तेवासिनस्तेभ्यः कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यः, षष्ठीतत्पुरुषः। कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यः पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **काश्यपकौशिकाभ्यामृषिभ्यां णिनिः** से **णिनिः** और **तेन प्रोक्तम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ कलापी के अन्तेवासी और वैशम्पायन के अन्तेवासी के वाचक जो प्रातिपदिक, उनसे 'उसके द्वारा कहा गया पढ़ता है' इस अर्थ में णिनि प्रत्यय होता है, छन्दस् के विषय में।

अन्तेवासी शब्द **शिष्य** का पर्यायवाची है। कलापी के चार शिष्य थे- हरिद्रु, तुम्बुरु, छगली और उलप। वैशम्पायन के नौ शिष्य थे- आलम्बि, पलंग, कमल, ऋचाभ, आरुणि, ताण्ड्य, श्यामायन, कठ और कलापी। कलापी के शिष्य छगली के विषय में आगे **छगलिनो ढिनुक्** सूत्र के द्वारा ढिनुक् प्रत्यय का विधान है, अतः णिनि नहीं होगा।

कलाप्यन्तेवासिभ्यः। पहले कलापी के अन्तेवासी का उदाहरण दिया जा रहा है।

हरिद्रुणा प्रोक्तमधीयते हारिद्रविणः। हरिद्रु-नामक कलापी के शिष्य के द्वारा प्रोक्त विषय का अध्ययन करने वाले। **हरिद्रुणा प्रोक्तम् अधीयते** विग्रह करके **हरिद्रु+टा** से **कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्च** सूत्र के द्वारा णिनि प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, आदिवृद्धि, उकार को **ओर्गुणः** से गुण ओकार और उसके स्थान पर अवादेश होकर **हारिद्रविन्** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **हारिद्रवी, हारिद्रविणौ, हारिद्रविणः** इत्यादि रूप बनते हैं। इसके बाद **अधीते वेद वा** अर्थ में विहित प्रत्यय का **प्रोक्ताल्लुक्** से लुक् हो जाता है।

वैशम्पायनान्तेवासिभ्यः। अब वैशम्पायन के अन्तेवासी का उदाहरण दिया जा रहा है।

आलम्बिनः। आलम्ब-नामक वैशम्पायन के शिष्य के द्वारा प्रोक्त विषय का अध्ययन करने वाले। **आलम्बेन प्रोक्तम् अधीयते** विग्रह करके **आलम्ब+टा** से **कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्च** सूत्र के द्वारा णिनि प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **आलम्बिन्** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आलम्बी, आलम्बिनौ, आलम्बिनः** इत्यादि रूप बनते हैं। इसके बाद **अधीते वेद वा** अर्थ में विहित प्रत्यय का **प्रोक्ताल्लुक्** से लुक् हो जाता है।

वैशम्पायन के शिष्य **कलापिन्** शब्द से आगे अण् प्रत्यय कहा जा रहा है। वहाँ तो कलापी के शिष्यों के परम्परया वैशम्पायन के शिष्य होने के कारण सिद्ध ही था, पृथक् कलापी का ग्रहण करके यह ज्ञापित किया जाता है कि प्रकृत शिष्य-सन्दर्भ में प्रशिष्यों का ग्रहण नहीं होता। यह बात महाभाष्य में बतलायी गयी है।

१४८५. पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु ४।३।१०५॥

तृतीयान्तात् प्रोक्तार्थे णिनिः स्याद्, यत्प्रोक्तं पुराणप्रोक्ताश्चेद् ब्राह्मणकल्पास्ते भवन्ति। पुराणेन चिरन्तनेन मुनिना प्रोक्ताः। भल्लु, भाल्लविनः। शाट्यायनः- शाट्यायनिनः। कल्पे, पिङ्ग- पैङ्गी कल्पः। 'पुराण-' इति किम्? याज्ञवल्कानि ब्राह्मणानि। आश्मरथः कल्पः। अणि 'आपत्यस्य-' (सू.१०८२) इति यलोपः।

पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु। पुराणेन प्राचीनेन प्रोक्ताः पुराणप्रोक्तास्तेषु पुराणप्रोक्तेषु, तृतीयातत्पुरुषः। ब्राह्मणानि च कल्पाश्च ब्राह्मणकल्पास्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु, इतरेतरयोगद्वन्द्वः। **काश्यपकौशिकाभ्यामृषिभ्यां णिनिः** से **णिनिः** और **तेन प्रोक्तम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से यदि पुराणप्रोक्त ब्राह्मण-ग्रन्थ और कल्पग्रन्थ अभिधेय हों तो प्रोक्त अर्थ में णिनि प्रत्यय होता है।

पुराणेन=चिरन्तनेन मुनिना प्रोक्ताः। यहाँ पर प्राचीन ऋषियों द्वारा प्रोक्त ब्राह्मणग्रन्थ एवं कल्पग्रन्थों को **पुराणप्रोक्त** कहा गया है। इस बात का ध्यान रहे कि ब्राह्मणग्रन्थों के विषय में तद्विषयता होती है किन्तु कल्पग्रन्थों के छान्दस न होने के कारण नहीं होती।

भल्लु, भाल्लविनः। भल्लु प्राचीन मुनि हैं। भल्लु के द्वारा प्रोक्त ब्राह्मणग्रन्थ के अध्येता। **भल्लुना प्रोक्तमधीयते** विग्रह करके **भल्लु+टा** से **पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु** सूत्र के द्वारा णिनि प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **भल्लु+इन्** बना है। आदिवृद्धि, उकार को **ओर्गुणः** सूत्र से गुण करके ओकार होने पर

सूत्र में **ऋषि** शब्द का निवेश होने से ऋषिवाची काश्यप और कौशिक शब्दों से ही णिनि प्रत्यय होगा, किन्तु आधुनिक काश्यप या कौशिक नामक व्यक्ति के रचित विषय के अध्येता के लिये तो णिनि न होकर **वृद्धाच्छः** से छ-प्रत्यय होकर **काश्यपीयाः, कौशिकीयाः** प्रयोग बनते हैं।

१४८४. कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्च ४।३।१०४॥

कलाप्यन्तेवासिभ्यः- हरिद्रुणा प्रोक्तमधीयते हारिद्रविणः।
वैशम्पायनान्तेवासिभ्यः- आलम्बिनः।

कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्च। कलापी च वैशम्पायनश्च तयोरितरेतर-योगद्वन्द्वः कलापिवैशम्पायनौ। तयोरन्तेवासिनः कलापिवैशम्पायनान्तेवासिनस्तेभ्यः कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यः, षष्ठीतत्पुरुषः। कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यः पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **काश्यपकौशिकाभ्यामृषिभ्यां णिनिः** से **णिनिः** और **तेन प्रोक्तम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ कलापी के अन्तेवासी और वैशम्पायन के अन्तेवासी के वाचक जो प्रातिपदिक, उनसे 'उसके द्वारा कहा गया पढ़ता है' इस अर्थ में णिनि प्रत्यय होता है, छन्दस् के विषय में।

अन्तेवासी शब्द **शिष्य** का पर्यायवाची है। कलापी के चार शिष्य थे- हरिद्रु, तुम्बुरु, छगली और उलप। वैशम्पायन के नौ शिष्य थे- आलम्बि, पलंग, कमल, ऋचाभ, आरुणि, ताण्ड्य, श्यामायन, कठ और कलापी। कलापी के शिष्य छगली के विषय में आगे **छगलिनो ढिनुक्** सूत्र के द्वारा ढिनुक् प्रत्यय का विधान है, अतः णिनि नहीं होगा।

कलाप्यन्तेवासिभ्यः। पहले कलापी के अन्तेवासी का उदाहरण दिया जा रहा है।

हरिद्रुणा प्रोक्तमधीयते हारिद्रविणः। हरिद्रु-नामक कलापी के शिष्य के द्वारा प्रोक्त विषय का अध्ययन करने वाले। **हरिद्रुणा प्रोक्तम् अधीयते** विग्रह करके **हरिद्रु+टा** से **कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्च** सूत्र के द्वारा णिनि प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, आदिवृद्धि, उकार को **ओर्गुणः** से गुण ओकार और उसके स्थान पर अवादेश होकर **हारिद्रविन्** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **हारिद्रवी, हारिद्रविणौ, हारिद्रविणः** इत्यादि रूप बनते हैं। इसके बाद **अधीते वेद वा** अर्थ में विहित प्रत्यय का **प्रोक्ताल्लुक्** से लुक् हो जाता है।

वैशम्पायनान्तेवासिभ्यः। अब वैशम्पायन के अन्तेवासी का उदाहरण दिया जा रहा है।

आलम्बिनः। आलम्ब-नामक वैशम्पायन के शिष्य के द्वारा प्रोक्त विषय का अध्ययन करने वाले। **आलम्बेन प्रोक्तम् अधीयते** विग्रह करके **आलम्ब+टा** से **कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्च** सूत्र के द्वारा णिनि प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **आलम्बिन्** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आलम्बी, आलम्बिनौ, आलम्बिनः** इत्यादि रूप बनते हैं। इसके बाद **अधीते वेद वा** अर्थ में विहित प्रत्यय का **प्रोक्ताल्लुक्** से लुक् हो जाता है।

वैशम्पायन के शिष्य **कलापिन्** शब्द से आगे अण् प्रत्यय कहा जा रहा है। वहाँ तो कलापी के शिष्यों के परम्परया वैशम्पायन के शिष्य होने के कारण सिद्ध ही था, पृथक् कलापी का ग्रहण करके यह ज्ञापित किया जाता है कि प्रकृत शिष्य-सन्दर्भ में प्रशिष्यों का ग्रहण नहीं होता। यह बात महाभाष्य में बतलायी गयी है।

१४८५. पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु ४।३।१०५॥

तृतीयान्तात् प्रोक्तार्थे णिनिः स्याद्, यत्प्रोक्तं पुराणप्रोक्ताश्चेद् ब्राह्मणकल्पास्ते भवन्ति। पुराणेन चिरन्तनेन मुनिना प्रोक्ताः। भल्लु, भाल्लविनः। शाट्यायनः- शाट्यायनिनः। कल्पे, पिङ्गः- पैङ्गी कल्पः। 'पुराण-' इति किम्? याज्ञवल्क्यानि ब्राह्मणानि। आश्मरथः कल्पः। अणि 'आपत्यस्य-' (सू.१०८२) इति यलोपः।

पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु। पुराणेन प्राचीनेन प्रोक्ताः पुराणप्रोक्तास्तेषु पुराणप्रोक्तेषु, तृतीयातत्पुरुषः। ब्राह्मणानि च कल्पाश्च ब्राह्मणकल्पास्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु, इतरेतरयोगद्वन्द्वः। काश्यपकौशिकाभ्यामृषिभ्यां णिनिः से **णिनिः** और **तेन प्रोक्तम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से यदि पुराणप्रोक्त ब्राह्मण-ग्रन्थ और कल्पग्रन्थ अभिधेय हों तो प्रोक्त अर्थ में णिनि प्रत्यय होता है।

पुराणेन=चिरन्तनेन मुनिना प्रोक्ताः। यहाँ पर प्राचीन ऋषियों द्वारा प्रोक्त ब्राह्मणग्रन्थ एवं कल्पग्रन्थों को **पुराणप्रोक्त** कहा गया है। इस बात का ध्यान रहे कि ब्राह्मणग्रन्थों के विषय में तद्विषयता होती है किन्तु कल्पग्रन्थों के छान्दस न होने के कारण नहीं होती।

भल्लु, भाल्लविनः। भल्लु प्राचीन मुनि हैं। भल्लु के द्वारा प्रोक्त ब्राह्मणग्रन्थ के अध्येता। **भल्लुना प्रोक्तमधीयते** विग्रह करके **भल्लु+टा** से **पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु** सूत्र के द्वारा णिनि प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **भल्लु+इन्** बना है। आदिवृद्धि, उकार को **ओर्गुणः** सूत्र से गुण करके ओकार होने पर

उसके स्थान पर अवादेश होकर **भाल्लविन्** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होने पर **भाल्लवी, भाल्लविनौ, भाल्लविनः** इत्यादि रूप बनते हैं।

शाट्यायनः- शाट्यायनिनः। शाट्यायन भी प्राचीन मुनि हैं। शाट्यायन के द्वारा प्रोक्त ब्राह्मणग्रन्थ के अध्येता। **शाट्यायनेन प्रोक्तमधीयते** विग्रह करके **शाट्यायन+टा** से **पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु** सूत्र के द्वारा णिनि प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **शाट्यायनिन्** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होने पर **शाट्यायनी, शाट्यायनिनौ, शाट्यायनिनः** इत्यादि रूप बनते हैं। ये दो उदाहरण ब्राह्मणग्रन्थ के लिये हैं।

कल्पे। अब कल्पसूत्र का उदाहरण दिया जा रहा है।

पिङ्ग- पैङ्गी कल्पः। पिङ्ग भी प्राचीन मुनि हैं। पिङ्ग के द्वारा प्रोक्त कल्पग्रन्थ। **पिङ्गेन प्रोक्तम्** विग्रह करके **पिङ्ग+टा** से **पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु** सूत्र के द्वारा णिनि प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **पैङ्गिन्** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होने पर **पैङ्गी** सिद्ध होता है। यह उदाहरण कल्पग्रन्थ का है।

'पुराण-' इति किम्? याज्ञवल्कानि ब्राह्मणानि। प्रकृतसूत्र में **पुराण** शब्द का निवेश होने से प्राचीन मुनियों के द्वारा प्रोक्त होने पर ही यह णिनि प्रत्यय होता है, अन्यथा नहीं होता। अतः **याज्ञवल्क्येन प्रोक्तानि ब्राह्मणानि अधीयते** में णिनि प्रत्यय नहीं हुआ, क्योंकि महाभारत के अनुसार याज्ञवल्क्य प्राचीन मुनि न होकर आधुनिक मुनि हैं। फलतः औत्सर्गिक अण् प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होने पर **आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति** सूत्र के द्वारा यकार का लोप होकर **याज्ञवल्क** शब्द बन जाता है और स्वादिकार्य होकर **याज्ञवल्कानि** सिद्ध हो जाता है।

आश्मरथः कल्पः। उपर्युक्त रीति से ही प्रकृतसूत्र में **पुराण** शब्द का निवेश होने से **आश्मरथ्येन प्रोक्तान् कल्पान् अधीयते** में णिनि प्रत्यय नहीं हुआ, क्योंकि महाभारत के अनुसार आश्मरथ्य भी प्राचीन मुनि न होकर आधुनिक मुनि हैं। फलतः औत्सर्गिक अण् प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होने पर **आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति** सूत्र के द्वारा यकार का लोप होकर **आश्मरथ** शब्द बन जाता है और स्वादिकार्य होकर **आश्मरथः** सिद्ध हो जाता है।

अणि 'आपत्यस्य-' इति यलोपः। उपर्युक्त दोनों प्रत्युदाहरणों में औत्सर्गिक अण् होने के बाद प्रकृति के यकार का **आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति** सूत्र से लोप किया गया है।

महाभाष्य के अनुसार तो याज्ञवल्क्य आदि भी प्राचीन ऋषि ही हैं। अतः प्राप्त णिनि प्रत्यय के निवारणार्थ भाष्यकार ने **याज्ञवल्क्यादिभ्यः प्रतिषेधः तुल्यकालत्वात्** यह वचन कहा है। याज्ञवल्क्यादि भी शाट्यायन आदि के समानकालिक हैं। अतः वहाँ पर प्राप्त णिनि का निषेध किया जाता है।

१४८६. शौनकादिभ्यश्छन्दसि ४।३।१०६॥

छन्दस्यभिधेये एभ्यो णिनिः। शौनकेन प्रोक्तमधीयते शौनकिनः।

शौनकादिभ्यश्छन्दसि। शौनक आदिर्येषां ते शौनकादयस्तेभ्यः शौनकादिभ्यः, बहुव्रीहिः। शौनकादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, छन्दसि सप्तम्यन्तम्। **काश्यपकौशिकाभ्यामृषिभ्यां णिनिः** से **णिनिः** और **तेन प्रोक्तम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ शौनकादिगणपठित प्रातिपदिकों से प्रोक्त विषय में छन्दस् अभिधेय होने पर णिनि प्रत्यय होता है।

शौनकेन प्रोक्तमधीयते शौनकिनः। शौनक मुनि के द्वारा प्रोक्त छन्दस्-शास्त्र के अध्येता। **शौनकेन प्रोक्तमधीयते** विग्रह करके **शौनक+टा** से **शौनकादिभ्यश्छन्दसि** सूत्र के द्वारा णिनि प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, पर्जन्यवल्लक्षणन्यायेन आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **शौनकिन्** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होने पर बहुवचन में **शौनकिनः** सिद्ध हो जाता है।

शौनकादिगणः शौनक, वाजसनेय, शार्ङ्गरव, शानेय, शाष्पेय, खाडायन, स्तम्भ, स्कन्ध, देवदर्शन, रज्जुभार, रज्जुकण्ठ, कठशाठ, कषाय, तल, तण्ड, पुरुषांसक, अश्वपेज।

१४८७. कठचरकाल्लुक् ४।३।१०७॥

आभ्यां प्रोक्तप्रत्ययस्य लुक् स्यात्।
कठेन प्रोक्तमधीयते कठाः। चरकाः।

कठचरकाल्लुक्। कठश्च चरकश्च तयोः समाहारद्वन्द्वः कठचरकम्, तस्मात् कठचरकात् पञ्चम्यन्तं, लुक् प्रथमान्तम्। **तेन प्रोक्तम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है। **प्रोक्तम्** का षष्ठ्यन्त में विपरिणाम किया जाता है- **प्रोक्तस्य।**

कठ और चरक शब्दों से विहित प्रोक्त प्रत्यय का छन्दोविषय में लुक् होता है।

कठ वैशम्पायन के अन्तेवासी हैं। अतः **कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्च** से विहित **णिनि** प्रत्यय का लुक् होगा। **चरक** शब्द से तो औत्सर्गिक अण् का ही लुक् किया जाता है। उसके बाद दोनों शब्दों से अध्येतृ-अर्थ में विहित अण् का पुनः **प्रोक्ताल्लुक्** सूत्र से लुक् किया जाता है। इसके बाद प्रथमा-बहुवचन में **कठाः** और **चरकाः** ये उदाहरण बन जाते हैं।

कठेन प्रोक्तमधीयते कठाः। कठ के द्वारा प्रोक्त विषय के अध्येता। **कठेन प्रोक्तमधीयते** में **णिनि** प्रत्यय करके उसका **कठचरकाल्लुक्** से लुक् करने पर **कठ** ही बन जाता है। कृदन्तत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्व को अक्षुण्ण मानकर स्वादिकार्य होने पर प्रथमाबहुवचन में **कठाः** सिद्ध हो जाता है।

चरकाः। चरक के द्वारा प्रोक्त विषय के अध्येता। **चरकेण प्रोक्तमधीयते** में औत्सर्गिक **अण्** प्रत्यय करके उसका **कठचरकाल्लुक्** से लुक् करने पर **चरक** ही बन जाता है। कृदन्तत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्व को अक्षुण्ण मानकर स्वादिकार्य होने पर प्रथमाबहुवचन में **चरकाः** सिद्ध हो जाता है।

१४८८. कलापिनोऽण् ४।३।१०८॥

कलापिना प्रोक्तमधीयते कालापाः।

'नान्तस्य टिलोपे सब्रह्मचारिपीठसर्पिकलापिकौथुमितैतिलिजाजलि-लाङ्गलिशिलालिशिखण्डिसूकरसद्मसुपर्वणामुपसंख्यानम्' (वा.४१८३) इत्युपसंख्यानाट्टिलोपः।

कलापिनोऽण्। कलापिनः पञ्चम्यन्तम्, अण् प्रथमान्तम्। **तेन प्रोक्तम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ कलापिन् प्रातिपदिक से प्रोक्तार्थ में छन्दोविषय अभिधेय होने पर अण् प्रत्यय होता है।

कलापी वैशाम्पायन का अन्तेवासी है, अतः **कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्च** सूत्र के द्वारा णिनि प्राप्त था, उसका यह अपवाद है।

कलापिना प्रोक्तमधीयते कालापाः। कलापी के द्वारा प्रोक्त विषय के अध्येता। **कलापिना प्रोक्तमधीयते** अर्थ में **कलापिन्+टा** से **कलापिनोऽण्** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **कलापिन्+अ** बना है। आदिवृद्धि होती है। **नस्तद्धिते** सूत्र से टिसंज्ञक भाग **इन्** का लोप प्राप्त होने पर उसका **इनण्यनपत्ये (६.४.१६४)** सूत्र के द्वारा प्रकृतिभाव प्राप्त था किन्तु वक्ष्यमाण **नान्तस्य टिलोपे०** वार्तिक से उसका प्रतिषेध किया जाता है अर्थात् प्रकृतिभाव का निषेध किया जाता है। फलतः **नस्तद्धिते** सूत्र से ही टिलोप होकर **कालाप्+अ=कालाप** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्व को अक्षुण्ण मानकर स्वादिकार्य होने पर प्रथमाबहुवचन में **कालापाः** सिद्ध हो जाता है। अध्येतृ-प्रत्यय का तो **प्रोक्ताल्लुक्** से ही लुक् हो जाता है।

'**नान्तस्य टिलोपे सब्रह्मचारिपीठसर्पिकलापिकौथुमितैतिलिजाजलि-लाङ्गलिशिलालिशिखण्डिसूकरसद्मसुपर्वणामुपसंख्यानम्**। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- नकारान्त शब्दों के टिलोप के प्रसंग में सब्रह्मचारिन्, पीठसर्पिन्, कलापिन्, कौथुमिन्, तैतिलिन्, जाजलिन्, लाङ्गलिन्, शिलालिन्, शिखण्डिन्, सूकरसद्मन्, सुपर्वन् शब्दों को पढ़ना चाहिये अर्थात् इन शब्दों के टिसंज्ञक भाग का लोप होना चाहिये। तात्पर्य यह है कि प्रकृतिभाव नहीं होना चाहिये। **इनण्यनपत्ये** सूत्र से प्राप्त प्रकृतिभाव का निषेध है। उक्त सभी शब्द नकारान्त हैं।

इन सबके उदाहरण इस तरह बनते हैं- **साब्रह्मचाराः, पैठसर्पाः, कालापाः, कौथुमाः, तैतिलाः, जाजलाः, लाङ्गलाः, शैलालाः, शैखण्डाः, सौकरसद्माः, सौपर्वाः**।

इत्युपसंख्यानाट्टिलोपः। अर्थात् उक्त वार्तिक में **कलापिन्** शब्द का पाठ होने के कारण टिलोप होकर **कालापाः** बन जाता है, जैसे कि ऊपर प्रक्रिया बतायी जा चुकी है।

१४८९. छगलिनो ढिनुक् ४।३।१०९॥
छगलिना प्रोक्तमधीयते छागलेयिनः।

छगलिनो ढिनुक्। छगलिनः पञ्चम्यन्तं, ढिनुक् प्रथमान्तम्। **तेन प्रोक्तम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ छगलिन् प्रातिपदिक से **प्रोक्तार्थ में छन्दोविषय अभिधेय होने पर ढिनुक् प्रत्यय होता है।**

ढिनुक् में अन्त्य ककार इत्संज्ञक और और उकार उच्चारणार्थ है, **ढिन्** बचता है। ढकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र के द्वारा **एय्** आदेश होकर प्रत्यय का स्वरूप **एयिन्** बन जाता है। कित्करण आदिवृद्धि के लिये है।

छगलिन् कलापी के शिष्य हैं, अतः **कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्च** सूत्र के द्वारा णिनि प्रत्यय प्राप्त था, उसका यह अपवाद है।

छगलिना प्रोक्तमधीयते छागलेयिनः। छगली के द्वारा प्रोक्त विषय के अध्येता। **छगलिना प्रोक्तमधीयते** अर्थ में **छगलिन्+टा** से **छगलिनो ढिनुक्** सूत्र के द्वारा **ढिनुक्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, ढकार के स्थान पर **एय्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **छगल+एयिन्** बना है। आदिवृद्धि होने के बाद लोप होकर **यस्येति च** से अकार का लोप होकर **छागलेयिन्** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्व को अक्षुण्ण मानकर स्वादिकार्य होने पर प्रथमाबहुवचन में **छागलेयिनः** सिद्ध हो जाता है। अध्येतृ-प्रत्यय का तो **प्रोक्ताल्लुक्** से ही लुक् हो जाता है।

ध्यान रहे कि **तद्विषयता** का प्रकरण चल रहा है, अतः अध्येतृ-प्रत्यय का लुक् सर्वत्र किया जा रहा है।

१४९०. पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः ४।३।११०॥

णिनिः स्यात्।

पाराशर्येण प्रोक्तं भिक्षुसूत्रमधीयते पाराशरिणो भिक्षवः। शैलालिनो नटाः।

पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः। पाराशर्यश्च शिलाली च तयोरितरेतर-योगद्वन्द्वः पाराशर्यशिलालिनौ, ताभ्यां पाराशर्यशिलालिभ्याम्। भिक्षुश्च नटश्च तयारितरेतरयोगद्वन्द्वो भिक्षुनटौ, तयोः सूत्रे भिक्षुनटसूत्रे, तयोः भिक्षुनटसूत्रयोः। पारशर्यशिलालिभ्यां पञ्चम्यन्तं, भिक्षुनटसूत्रयोः सप्तम्यन्तम्। मण्डूकप्लुतिन्याय से **काश्यपकौशिकाभ्यामृषिभ्यां णिनिः** से **णिनिः** और **तेन प्रोक्तम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ पाराशर्य और शिलालिन् इन प्रातिपदिकों से प्रोक्तार्थ में यथासंख्य से भिक्षुसूत्र और नटसूत्र का विषय होने पर णिनि प्रत्यय होता है।

पाराशर्येण प्रोक्तं भिक्षुसूत्रमधीयते पाराशरिणो भिक्षवः। पाराशर्य के द्वारा प्रोक्त भिक्षुसूत्र के अध्येता। **पाराशर्येण प्रोक्तं भिक्षुसूत्रम् अधीयते** अर्थ में **पाराशर्य+टा** से **पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः** सूत्र के द्वारा **णिनि** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का और यकार का लोप होकर **पाराशरिन्** शब्द बन जाता है। उससे फिर **तदधीते तद्वेत** अर्थ में अण् होता है किन्तु उसका **प्रोक्ताल्लुक्** से लुक् हो जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्व को अक्षुण्ण मानकर स्वादिकार्य होने पर प्रथमाबहुवचन में **पाराशरिणः** सिद्ध हो जाता है।

शैलालिनो नटाः। शिलाली के द्वारा प्रोक्त नटसूत्र के अध्येता। **शिलालिना प्रोक्तं नटसूत्रम् अधीयते** अर्थ में **शिलालिन्+टा** से **पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः** सूत्र के द्वारा **णिनि** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर, आदिवृद्धि , टिसंज्ञक भाग **इन्** का **नस्तिद्धिते** से लोप होकर **शैलालिन्** शब्द बन जाता है। उससे फिर **तदधीते तद्वेत** अर्थ में अण् होता है किन्तु उसका **प्रोक्ताल्लुक्** से लुक् हो जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्व को अक्षुण्ण मानकर स्वादिकार्य होने पर प्रथमाबहुवचन में **शैलालिनः** सिद्ध हो जाता है।

१४९१. कर्मन्दकृशाश्वादिनिः ४।३।१११॥

'भिक्षुनटसूत्रयोः' इत्येव।

कर्मन्देन प्रोक्तमधीयते कर्मन्दिनो भिक्षवः। कृशाश्विनो नटाः।

कर्मन्दकृशाश्वादिनिः। कर्मन्दश्च कृशाश्वश्च तयोः समाहारद्वन्द्वः

कर्मन्दकृशाश्वम्, तस्मात् कर्मन्दकृशाश्वात् पञ्चम्यन्तम्, इनिः प्रथमान्तम्। **पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः** से **भिक्षुनटसूत्रयोः** और **तेन प्रोक्तम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ कर्मन्द और कृशाश्व इन प्रातिपदिकों से प्रोक्तार्थ में यथासंख्य भिक्षुसूत्र और नटसूत्र का विषय होने पर इनि प्रत्यय होता है।

णिनि में णित्करण है, **इनि** में नहीं है, यह अन्तर है।

'भिक्षुनटसूत्रयोः' इत्येव। पूर्वसूत्र से **भिक्षुनटसूत्रयोः** की अनुवृत्ति आने के कारण भिक्षुसूत्र और नटसूत्र के अध्ययन के विषय में ही प्रकृतसूत्र प्रवृत्त होता है।

कर्मन्देन प्रोक्तमधीयते कर्मन्दिनो भिक्षवः। कर्मन्द के द्वारा प्रोक्त भिक्षुसूत्र के अध्येता। **कर्मन्देन प्रोक्तं भिक्षुसूत्रम् अधीयते** अर्थ में **कर्मन्द+टा** से **कर्मन्दकृशाश्वादिनिः** सूत्र के द्वारा **इनि** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर भसंज्ञक अकार का लोप होने पर **कर्मन्दिन्** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्व को अक्षुण्ण मानकर स्वादिकार्य होने पर प्रथमाबहुवचन में **कर्मन्दिनः** सिद्ध हो जाता है। अध्येतृ-प्रत्यय का तो **प्रोक्ताल्लुक्** से ही लुक् हो जाता है।

कृशाश्विनो नटाः। कृशाश्व के द्वारा प्रोक्त नटसूत्र के अध्येता। **कृशाश्वेन प्रोक्तं नटसूत्रम् अधीयते** अर्थ में **कृशाश्व+टा** से **कर्मन्दकृशाश्वादिनिः** सूत्र के द्वारा **इनि** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर भसंज्ञक अकार का लोप होने पर **कृशाश्विन्** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्व को अक्षुण्ण मानकर स्वादिकार्य होने पर प्रथमाबहुवचन में **कृशाश्विनः** सिद्ध हो जाता है। अध्येतृ-प्रत्यय का तो **प्रोक्ताल्लुक्** से ही लुक् हो जाता है।

यहाँ **तेन प्रोक्तम्** का प्रकरण समाप्त हो जाता है। अब आगे **तेनैकदिक्**=समानदिशा अर्थ में प्रत्यय किये जायेंगे। यह प्राग्दीव्यतीयों में उनतालीसवाँ अर्थक्रम है।

१४९२. तेनैकदिक् ४।३।११२॥

सुदाम्ना अद्रिणा एकदिक् सौदामनी।

तेनैकदिक्। एका दिग् यस्य तद् एकदिक्, बहुव्रीहिः। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से एकदिक् (एक दिशा में विद्यमान) अर्थ में यथाविहित अणादि प्रत्यय होते हैं।

तेन शब्द तृतीया-समर्थ विभक्ति का सूचक है और **एकदिक्** अर्थ। यह अधिकरणार्थ-प्रधान है। एकदिशा में विद्यमान।

सुदाम्ना अद्रिणा एकदिक् सौदामनी। सुदामन् नामक पर्वत से एक दिशा में चमकने वाली बिजली। **सुदाम्ना एकदिक्** विग्रह करके **सुदामन्+टा** से **तेनैकदिक्** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **सुदामन्+अ** बना हुआ है। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि होने पर उकार को औकार हो जाता है। **नस्तद्धिते** सूत्र के द्वारा प्राप्त टिलोप का **अन्** (६.४.१६७) सूत्र से प्रकृतिभाव हो जाने से **सौदामन** शब्द बना है। यह शब्द यहाँ स्त्रीलिङ्गवृत्ति **विद्युत्** शब्द का विशेषण है, अतः **सौदामन** शब्द से भी स्त्रीत्वविवक्षा में **टिड्ढाणञ्०** सूत्र के द्वारा ङीप् होने पर भसंज्ञक अकार का लोप होकर **सौदामनी** शब्द बन जाता है। स्वादिकार्य होकर **सौदामनी** सिद्ध हो जाता है।

१४९३. तसिश्च ४।३।११३॥

स्वरादिपाठादव्ययत्वम्। पीलुमूलेन एकदिक् पीलुमूलतः।

तसिश्च। तसिः प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **तेनैकदिक्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है तथा **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से एकदिक् (एक दिशा में विद्यमान) अर्थ में तसि प्रत्यय भी होता है।

स्वरादिपाठादव्ययत्वम्। तसि-प्रत्ययान्त शब्द का स्वरादिगण में पाठ होने के कारण **स्वरादिनिपातमव्ययम्** सूत्र के द्वारा अव्ययसंज्ञा होती है। वैसे **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** (१.१.३८) सूत्र के अन्तर्गत **तसिलादयः प्राक्पाशपः** के रूप में परिगणित होने के कारण **तसि**-प्रत्ययान्त शब्द की उक्त सूत्र से भी अव्ययसंज्ञा सिद्ध है। वस्तुतः तस्-प्रत्ययान्त अव्यय अधिकरणशक्तिप्रधान है तथापि तृतीयान्त की भी प्रधानता प्रतीत होती है। यह बात **कृन्मेजन्तः** सूत्र में कैयट ने कही है।

तसि में इकार उच्चारणार्थ है, **तस्** बचता है।

पीलुमूलेन एकदिक् पीलुमूलतः। पीलु एक वृक्षविशेष का नाम है। पीलुमूल वाली दिशा में विद्यमान। **पीलुमूलेन एकदिक्** विग्रह करके **पीलुमूल+टा** से **तसिश्च** सूत्र के द्वारा **तसि** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **पीलुमूलतस्** बना हुआ है। **स्वरादिनिपातमव्ययम्** से तसिप्रत्ययान्त **पीलुमूलतस्** शब्द की अव्ययसंज्ञा होती है। एकदेशविकृतन्यायेन तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकत्व के अक्षुण्ण होने के कारण स्वादि प्रत्यय होते हैं और शब्द के अव्यय होने के कारण स्वादिप्रत्ययों का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हो जाता है। प्रकृति में विद्यमान सकार को रुत्व और उसको विसर्ग हो जाता है। इस तरह **पीलुमूलतः** सिद्ध हो जाता है।

१४९४. उरसो यच्च ४।३।११४॥

चात्तसिः। अणोऽपवादः। उरसा एकदिक् उरस्यः, उरस्तः।

उरसो यच्च। उरसः पञ्चम्यन्तं, यत् प्रथमान्तं, चाव्ययम्। च-शब्द से पूर्वसूत्र के **तसिः** का समुच्चय है। **तेनैकदिक्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है तथा **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ उरस् प्रातिपदिक से एकदिक् (एक दिशा में विद्यमान) अर्थ में यत् प्रत्यय होता है, च-शब्द से तसि-प्रत्यय भी।

अणोऽपवादः। यह औत्सर्गिक अण् का अपवाद है। ध्यान रहे कि यत्-प्रत्यय के पक्ष में अव्यय नहीं होगा किन्तु तसि-प्रत्यय के पक्ष में अव्यय हो जाता है। **यत्** में तकार इत्संज्ञक है, **य** बचता है।

उरसा एकदिक् उरस्यः, उरस्तः। उरःस्थल की ओर विद्यमान। **उरसा एकदिक्** विग्रह करके **उरस्+टा** से **उरसो यच्च** सूत्र के द्वारा **यत्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **उरस्य** शब्द बना है। **तसि** प्रत्यय होने पर **उरस्तस्** बना हुआ है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन तद्धितान्तप्रयुक्त प्रातिपदिकत्व के अक्षुण्ण होने के कारण स्वादि प्रत्यय होते हैं और **उरस्तस्** शब्द के अव्यय होने के कारण स्वादिप्रत्ययों का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हो जाता है। प्रकृति में विद्यमान सकार को रुत्व और उसको विसर्ग हो जाता है। इस तरह **उरस्तः** सिद्ध होता है। यत् प्रत्यय वाले **उरस्य** शब्द से आगत सु-प्रत्यय का रुत्वविसर्ग होकर **उरस्यः** सिद्ध होता है।

यहाँ **एकदिक्** अर्थ की समाप्ति है। अब आगे **उपज्ञात** अर्थ में एक सूत्र से प्रत्यय किया जा रहा है। यह प्राग्दीव्यतीयों में चालीसवाँ अर्थक्रम है।

१४९५. उपज्ञाते ४।३।११५॥

तेन इत्येव। पाणिनिनोपज्ञातं पाणिनीयम्।

उपज्ञाते। उपज्ञाते सप्तम्यन्तमेकपदं सूत्रम्। **तेनैकदिक्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है तथा **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से उपज्ञात=प्रथमज्ञात अर्थ में यथाविहित अणादि प्रत्यय होते हैं।

तेन इत्येव। अर्थात् **तेनैकदिक्** सूत्र से **तेन** पद की अनुवृत्ति आने के कारण समर्थ विभक्ति तृतीया है।

उपज्ञा का अर्थ है- **नई सूझ।** अपनी बुद्धि से जो नई बात आविष्कृत की जाती है, वह **उपज्ञा** है किन्तु जिसका आविष्कार पहले हो चुका हो तथा उसमें परिष्कार आदि

कर नया रूप देते हुये प्रस्तुत ग्रन्थादि **प्रोक्त** कहलाता है। इस तरह इन दोनों में अन्तर समझना चाहिये। **उपज्ञात** शब्द का अर्थ हुआ- नई सूझ से सम्पन्न।

पाणिनिनोपज्ञातं पाणिनीयम्। पाणिनि जी के द्वारा प्रथम ज्ञापित=आविष्कृत व्याकरण। **पाणिनिना उपज्ञातम्** विग्रह करके **पाणिनि+टा** से **उपज्ञाते** सूत्र के द्वारा यथाविहित **छ**-प्रत्यय किया जाता है। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, छकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र के द्वारा **ईय्** आदेश होकर **पाणिनि+ईय** बना है। भसंज्ञक अकार का लोप करके **पाणिनीय** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पाणिनीयम्** सिद्ध हो जाता है।

एक सूत्र से ही **उपज्ञात** अर्थ का निर्देश करके अब आगे **कृते (ग्रन्थे)** अर्थ में प्रत्यय का विधान किया जा रहा है। यह प्राग्दीव्यतीयों में इकतालीसवाँ अर्थक्रम है।

१४९६. कृते ग्रन्थे ४।३।११६॥

वररुचिना कृतो वाररुचो ग्रन्थः।

कृते ग्रन्थे। कृते सप्तम्यन्तं, ग्रन्थे सप्तम्यन्तम्। **तेनैकदिक्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है तथा **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से कृत=किया गया अर्थ में यथाविहित अणादि प्रत्यय होते हैं किन्तु जो किया जाय वह ग्रन्थ हो।

सूत्रार्थ के अनुसार सिद्ध होता है कि **ग्रन्थ बनाना** अर्थ में प्रत्यय का विधान है। ध्यान रहे कि जो किया जाय, वह ग्रन्थ ही होना चाहिये, तभी ये प्रत्यय होंगे। **प्रोक्त** और **कृत** में भी अन्तर है। **प्रोक्त** में ग्रन्थ प्रवक्ता की समग्र मूलरचना न होने पर भी पूर्वाचार्यों की रचनाओं का परिष्कार किया गया होता है और **कृत** ग्रन्थ में ग्रन्थकार की समग्र रचना अपनी होती है।

वररुचिना कृतो वाररुचो ग्रन्थः। वररुचि=कात्यायन जी के द्वारा विरचित ग्रन्थ। **वररुचिना कृतः** विग्रह करके **वररुचि+टा** से **कृते ग्रन्थे** सूत्र के द्वारा यथाविहित **अण्** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक इकार का लोप करके **वाररुच** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वाररुचः (ग्रन्थः)** सिद्ध हो जाता है।

१४९७. सञ्ज्ञायाम् ४।३।११७॥

तेन इत्येव। अग्रन्थार्थमिदम्। मक्षिकाभिः कृतं माक्षिकं मधु।

सञ्ज्ञायाम्। संज्ञायां सप्तम्यन्तमेकपदं सूत्रमिदम्। **तेनैकदिक्** से **तेन** की और

कृते ग्रन्थे से **कृते** की अनुवृत्ति आती है तथा **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से कृत=किया गया अर्थ में यथाविहित अणादि प्रत्यय होते हैं संज्ञा के विषय में।

तेन इत्येव। इस सूत्र में भी **तेन** की अनुवृत्ति आने से समर्थ-विभक्ति तृतीया ही है।

अग्रन्थार्थमिदम्। यह सूत्र अग्रन्थ (ग्रन्थ-भिन्न) अर्थ में प्रत्यय-विधान के लिये है, क्योंकि पूर्वसूत्र से ग्रन्थ अर्थ में प्रत्यय किये गये थे। अतः इस सूत्र में **कृते** की अनुवृत्ति आती है किन्तु **ग्रन्थे** की नहीं आती है। इस तरह यह सिद्ध होता है कि यदि ग्रन्थ भिन्न अर्थ में प्रत्यय विधान हो तो संज्ञा के विषय में ही हो।

मक्षिकाभिः कृतं माक्षिकं मधु। मधुमक्खियों के द्वारा निर्मित शहद। **माक्षिकम्** शहद को कहते हैं, यह विशेषण न होकर लोकप्रचलित संज्ञा ही है। **मक्षिकाभिः कृतम्** विग्रह करके **मक्षिका+भिस्** से **संज्ञायाम्** सूत्र के द्वारा यथाविहित **अण्** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक आकार का लोप करके **माक्षिक** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **माक्षिकम् (मधु)** सिद्ध हो जाता है।

१४९८. कुलालादिभ्यो वुञ् ४।३।११८॥

तेन कृते सञ्ज्ञायाम्। कुलालेन कृतं कौलालकम्। वारुडकम्।

कुलालादिभ्यो वुञ्। कुलाल आदिर्येषां ते कुलालादयस्तेभ्यः कुलालादिभ्यः, बहुव्रीहिः। कुलालादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, वुञ् प्रथमान्तम्। पूर्वसूत्र **सञ्ज्ञायाम्** की, **तेनैकदिक्** से **तेन** की और **कृते ग्रन्थे** से **कृते** की अनुवृत्ति आती है तथा **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ कुलालादि गणपठित प्रातिपदिकों से कृत=किया गया अर्थ में वुञ् प्रत्यय होता है, संज्ञा के विषय में।

तेन कृते सञ्ज्ञायाम्। तृतीयान्त से कृत अर्थ में संज्ञा के विषय में ही प्रत्यय का विधान है। **वुञ्** में ञकार इत्संज्ञक है और शिष्ट **वु** के स्थान पर **युवोरनाकौ** सूत्र से **अक** आदेश हो जाता है।

कुलालेन कृतं कौलालकम्। कुम्हार के द्वारा निर्मित बरतन, घट आदि। **कुलालेन कृतम्** विग्रह करके **कुलाल+टा** से **कुलालादिभ्यो वुञ्** सूत्र के द्वारा **वुञ्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, **वु** के स्थान पर **अक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **कौलालक** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कौलालकम्** सिद्ध हो जाता है।

वारुडकम्। वरुड नामक प्राचीन जातिविशेष के द्वारा निर्मित। **वरुडेन कृतम्** विग्रह करके **वरुड+टा** से **कुलालादिभ्यो वुञ्** सूत्र के द्वारा **वुञ्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, **वु** के स्थान पर **अक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **वारुडक** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वारुडकम्** सिद्ध हो जाता है।

कुलालादिगणः- कुलाल, वरुड, चाण्डाल, निषाद, कर्मार, सेना, सिरिन्ध्र, (सिरिध्रि), सैरिन्ध्र, देवराज, पर्षत्, (परिषत्), वधू, रुरु, रुद्र, अनडुह्, ब्रह्मन्, कुम्भकार, श्वपाक।

१४९९. क्षुद्राभ्रमरवटरपादपादञ् ४।३।११९॥
तेन कृते सञ्ज्ञायाम्।
क्षुद्राभिः कृतं क्षौद्रम्। भ्रामरम्। वाटरम्। पादपम्।

क्षुद्राभ्रमरवटरपादपादञ्। क्षुद्राश्च भ्रमरश्च वटरश्च पादपश्च तेषां समाहारद्वन्द्वः क्षुद्राभ्रमरवटरपादपं, तस्मात् क्षुद्राभ्रमरवटरपादपात् पञ्चम्यन्तम्, अञ् प्रथमान्तम्। **सञ्ज्ञायाम्** की, **तेनैकदिक्** से **तेन** की और **कृते ग्रन्थे** से **कृते** की अनुवृत्ति आती है तथा **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ क्षुद्रा, भ्रमर, वटर, पादप इन प्रातिपदिकों से कृत=किया गया अर्थ में अञ् प्रत्यय होता है, संज्ञा के विषय में।

तेन कृते सञ्ज्ञायाम्। तृतीयान्त से कृत अर्थ में संज्ञा के विषय में ही प्रत्यय का विधान है। **अञ्** में ञकार इत्संज्ञक है, **अ** बचता है।

क्षुद्राभिः कृतं क्षौद्रम्। छोटी मधुमक्खियों के द्वारा निर्मित शहद। **क्षुद्राभिः कृतम्** विग्रह करके **क्षुद्रा+भिस्** से **क्षुद्राभ्रमरवटरपादपादञ्** सूत्र के द्वारा **अञ्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक आकार का लोप करके **क्षौद्र** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **क्षौद्रम्** सिद्ध हो जाता है।

भ्रामरम्। भौंरों के द्वारा निर्मित। **भ्रमरैः कृतम्** विग्रह करके **भ्रमर+भिस्** से **क्षुद्राभ्रमरवटरपादपादञ्** सूत्र के द्वारा **अञ्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **भ्रामर** और स्वादिकार्य होकर **भ्रामरम्** सिद्ध हो जाता है।

वाटरम्। मुर्गों के द्वारा निर्मित। **वटरैः कृतम्** विग्रह करके **वटर+भिस्** से **क्षुद्राभ्रमरवटरपादपादञ्** सूत्र के द्वारा **अञ्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **वाटर** और स्वादिकार्य होकर **वाटरम्** सिद्ध हो जाता है।

पादपम्। वृक्षों से निर्मित। **पादपैः कृतम्** विग्रह करके **पादप+भिस्** से **क्षुद्राभ्रमरवटरपादपादञ्** सूत्र के द्वारा **अञ्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, पर्जन्यवल्लक्षणन्यायेन आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **पादप** और स्वादिकार्य होकर **पादपम्** सिद्ध हो जाता है।

कृते अर्थ की समाप्ति हो जाती है। अब आगे **(तस्य) इदम्** अर्थ का प्रारम्भ है। प्राग्दीव्यतीयों में यह बयालीसवाँ अर्थक्रम है।

१५००. तस्येदम् ४।३।१२०॥

उपगोरिदमौपगवम्।

'वहेस्तुरणिट् च'। (वा.२९१०)। संवोढुः स्वं सांवहित्रम्।

'अग्नीधः शरणे रण् भत्वं च'। (वा.२९११)। अग्निमिन्द्धे अग्नीत्, तस्य स्थानमाग्नीध्रम्। तात्स्थ्यात्सोऽप्याग्नीध्रः।

'समिधामाधाने षेन्यण्'। (वा.२९१२)। सामिधेन्यो मन्त्रः, सामिधेनी ऋक्।

तस्येदम्। तस्य षष्ठ्यन्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकम्, इदं प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां** प्रथमाद्वा और **शेषे** का अधिकार है।

'उसका है यह' इस अर्थ में **समर्थ षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से यथाविहित अण्** आदि प्रत्यय होते हैं।

तस्य पद सम्बन्ध-सामान्य में षष्ठी होने के कारण समर्थ विभक्ति षष्ठी की सूचना दी गयी है और **इदम्**=यह पद अर्थ का अभिव्यञ्जक है।

उपगोरिदम् औपगवम्। उपगु का है यह। **उपगोः इदम्** लौकिक विग्रह और **उपगु+ङस्** अलौकिक विग्रह है। **तस्येदम्** से अण् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, णित् होने के कारण आदिवृद्धि करके उकार को **ओर्गुणः** से गुण ओकार और उसके स्थान पर अवादेश होकर **औपगव** शब्द बना है। स्वादिकार्य से **औपगवम्** सिद्ध हो जाता है।

भागवतम्। भगवान् का है यह। **भगवतः इदम्** लौकिक विग्रह और **भगवत् ङस्** अलौकिक विग्रह है। **तस्येदम्** से अण् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, णित् होने के कारण आदिवृद्धि करके अकार के स्थान पर आकार आदेश करके **भागवत्+अ=भागवत** बना, सु के बाद अम् आदेश, पूर्वरूप करके **भागवतम्** सिद्ध हुआ।

प्रकृतसूत्र में विशेष कार्य के लिये तीन वार्तिक पढ़े गये हैं-

वहेस्तुरणिट् च। यह वार्तिक है। वहेः, तुः, अण्, इट्, च। वार्तिकार्थः- वह्-धातु से विहित तृन् और तृच् प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से अण् प्रत्यय के साथ **तृ** को

इट् आगम भी होता है। वह्-धातु के अनिट् होने के कारण तृन्, तृच् को **आर्धधातुकस्येड् वलादेः** से इट् प्राप्त नहीं था, उसका इस वार्तिक से विधान किया गया है। केवल अण् प्रत्यय तो **तस्येदम्** सूत्र से ही सिद्ध है।

संवोढुः स्वं सांवहित्रम्। पति की सम्पत्ति। सम्-पूर्वक वह्-धातु से **तृन्** या **तृच्** करने पर **हो ढः** सूत्र से ढत्व, **झषस्तथोर्धोऽधः** सूत्र से तकार को धत्व, उसको ष्टुत्व ढकार, **ढो ढे लोपः** सूत्र से प्रथम ढकार का लोप करके **सहिवहोरोदवर्णस्य** सूत्र के द्वारा ओकारादेश होकर **संवोढृ** शब्द बनता है। **संवोढुः स्वम् इदम्** विग्रह करके **संवोढृ+ङस्** से **वहेस्तुरणिट् च** वार्तिक के द्वारा अण् प्रत्यय के साथ ढृ को इट् आगम होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **संवो+इढृ** बनता है किन्तु यहाँ मध्य में इकार के आने से नैमित्तिक ढत्व, धत्व और उससे निष्पन्न ढत्व की निवृत्ति हो जाती है। अतः **संवह्+इतृ+अ** बना है। आदिवृद्धि और ऋकार को **इको यणचि** सूत्र से यण् होकर **सांवहित्र** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सांवहित्रम्** सिद्ध हो जाता है।

अग्नीधः शरणे रण् भत्वं च। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- अग्नीध् शब्द से शरण (गृह) अर्थ में रण् प्रत्यय होता है और अप्राप्त भसंज्ञा भी होती है। भसंज्ञा इस लिये की गयी है कि पदसंज्ञा की निवृत्ति हो जाय। भसंज्ञा और पदसंज्ञा की युगपत् प्राप्ति होने पर एकसंज्ञाधिकार होने के कारण एक ही संज्ञा हो सकती है। अतः भसंज्ञा से पदसंज्ञा की निवृत्ति की जाती है। पदसंज्ञा न होने से धकार को जश्त्व नहीं होता। **रण्** में णकार इत्संज्ञक है, **र** बचता है। णित्करण आदिवृद्धि के लिये है।

अग्निमिन्द्धे अग्नीत्, तस्य स्थानमाग्नीध्रम्। तात्स्थ्यात्सोऽप्याग्नीध्रः। उस ऋत्विग्विशेष अग्नीध् का स्थान एवं संज्ञा। **अग्निम् इन्द्धे** विग्रह में **अग्नि+अम्** के उपपद रहते **इन्ध्** धातु से **क्विप् च** सूत्र के द्वारा क्विप् प्रत्यय होने पर सर्वापहारलोप, कित् परे रहते धातु के नकार का **अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति** से लोप होकर **इध्** बनता है और उपपदसमासादि होकर **अग्नीध्** शब्द बनता है। उसके प्रथमा एकवचन में **अग्नीत्** बन जाता है। जहाँ पर अग्नि प्रदीप्त की जाती है, उस स्थान को **आग्नीध्र** कहा जाता है। यह सोमयाग की महावेदी की संज्ञा है। **अग्नीध्+ङस्** से **अग्नीधः शरणे रण् भत्वं च** वार्तिक के द्वारा **रण्** प्रत्यय और प्रकृति की भसंज्ञा होने के बाद अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **अग्नीध्+र** बना है। भसंज्ञा के द्वारा पदसंज्ञा का बाध हो जाने से पदत्वाभावात् धकार को **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व नहीं होता। आदिवृद्धि होकर **आग्नीध्र** शब्द बना है। **आग्नीध्र** में रहने वाले को भी लक्षणावृत्ति से **आग्नीध्र** ही कहा जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आग्नीध्रम्** सिद्ध हो जाता है।

यज्ञाग्नि को प्रदीप्त करने वाला ऋत्विक् भी **अग्नीध्** कहलाता है। यज्ञाग्नि को प्रदीप्त करने के स्थान की भी **आग्नीध्र** संज्ञा है। उस स्थान पर स्थित होने से ऋत्विक् का भी नाम **आग्नीध्र** हो जाता है। लक्षणावृत्ति से इसके अनेक अर्थ बनते हैं।

ब्राह्मण-ग्रन्थों के अनुसार यज्ञ में सोलह ऋत्विजों का काम एक दूसरे के सहयोग पर आश्रित होता है। उनके चार वर्ग होते हैं- १. ऋग्वेद से सम्बद्ध- होता, मैत्रावरुण, अच्छावाक् और ग्रावस्तुत्। २. यजुर्वेद से सम्बद्ध- अध्वर्यु, प्रतिप्रस्थाता, नेष्टा और उन्नेता। ३. सामवेद से सम्बद्ध- उद्गाता, प्रस्तोता, प्रतिहर्ता और सुब्रह्मण्य। ४. अथर्ववेद से सम्बद्ध- ब्रह्मा, ब्राह्मणाच्छंसी, आग्नीध्र और पोता।

सोमयज्ञ में महावेदी के उत्तरार्ध में पाँच हाथ की लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई नाप के चतुरस्र स्थान (मण्डप) को **आग्नीध्र** कहा जाता है।

समिधामाधाने षेन्यण्। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- आधानार्थक **समिध्**-शब्द से **षेन्यण्** प्रत्यय होता है। षकार की **षः प्रत्ययस्य** से और णकार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा होकर उनका लोप हो जाता है। इस तरह **एन्य** बचता है। षित्करण स्त्रीत्वविवक्षा में **षिद्गौरादिभ्यश्च** से ङीष् प्रत्यय के विधानार्थ है णित्करण आदिवृद्धि के लिये।

सामिधेन्यो मन्त्रः, सामिधेनी ऋक्। अग्नि में समिधा स्थापन करते समय पढ़ा जाने मन्त्र या ऋचा। **समिधः आधीयन्ते अनेन** विग्रह करके **समिध्+जस्** से **समिधामाधाने षेन्यण्** वार्तिक के द्वारा **षेन्यण्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि होकर **सामिधेन्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सामिधेन्यः (मन्त्रः)** सिद्ध हो जाता है। ऋचा वाच्य होने पर तो स्त्रीत्व होने के कारण ङीष्, भसंज्ञक अकार का लोप और **हलस्तद्धितस्य** से यकार का लोप होकर **सामिधेनी** शब्द बनने पर स्वादिकार्य होते हैं। **सामिधेनी ऋक्।**

१५०१. रथाद्यत् ४।३।१२१॥
रथ्यं चक्रम्।

रथाद्यत्। रथात् पञ्चम्यन्तं, यत् प्रथमान्तम्। **तस्येदम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है तथा **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

'उसका है यह' इस अर्थ में समर्थ षष्ठ्यन्त रथ-प्रातिपदिक से यत् प्रत्यय होता है।

यह औत्सर्गिक अण् का अपवाद है।

रथ्यं चक्रम्। रथ का यह (पहिया)। **रथस्य इदम्** विग्रह करके **रथ+ङस्** से **रथाद्यत्** सूत्र के द्वारा यत् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **रथ्य** और स्वादिकार्य होकर **रथ्यम्** सिद्ध हो जाता है।

१५०२. पत्रपूर्वादञ् ४।३।१२२॥

पत्रं वाहनम्। अश्वरथस्येदमाश्वरथम्।

पत्रपूर्वादञ्। पत्रं=वाहनं पूर्वं यस्य तत् पत्रपूर्वं, तस्मात् पत्रपूर्वात्, बहुव्रीहिः। पत्रपूर्वात् पञ्चम्यन्तम्, अञ् प्रथमान्तम्। **रथाद्यत्** से **रथात्** की और **तस्येदम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है तथा **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

'उसका है यह' इस अर्थ में समर्थ षष्ठ्यन्त पत्र-पूर्वक रथ प्रातिपदिक से अञ् प्रत्यय होता है।

पत्रं वाहनम्। यहाँ पर **पत्र** शब्द का वाहन अर्थ है। **पतन्ति गच्छन्ति अनेन इति पत्रं वाहनम्।** यहाँ **पत्** धातु से **दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतपददशनहः करणे** (३.२.१८२) सूत्र से ष्ट्रन् प्रत्य होकर **पत्र** शब्द निष्पन्न होता है। अतः वाहनवाची शब्द पूर्व में हो, ऐसे रथ-शब्द से यह प्रत्यय किया गया है। घोड़े, ऊँट, हाथी आदि वाहन हैं।

अश्वरथस्येदमाश्वरथम्। अश्वरथ का यह। **अश्वरथस्य इदम्** विग्रह है। यहाँ पर पत्र=वाहनवाची शब्द **अश्व** है। **अश्वरथ+ङस्** से **पत्रपूर्वादञ्** सूत्र के द्वारा अञ् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आश्वरथ** और स्वादिकार्य होकर **आश्वरथम्** सिद्ध हो जाता है।

१५०३. पत्राध्वर्युपरिषदश्च ४।३।१२३॥

अञ्।

'पत्राद् वाह्ये'। (वा.२९०८)।

अश्वस्येदं वहनीयमाश्वम्। आध्वर्यवम्। पारिषदम्।

पत्राध्वर्युपरिषदश्च। पत्रं च अध्वर्युश्च परिषत् च तेषां समाहारद्वन्द्वः पत्राध्वर्युपरिषत्, तस्मात् पत्राध्वर्युपरिषदः पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **पत्रपूर्वादञ्** से **अञ्** की और **तस्येदम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है तथा **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

'उसका है यह' इस अर्थ में समर्थ षष्ठ्यन्त पत्र, अध्वर्यु और परिषत् इन प्रातिपदिकों से अञ् प्रत्यय होता है।

यहाँ पर भी **पत्र** शब्द का अर्थ **वाहन** ही है किन्तु अर्थविशेष में यह प्रत्यय किया जा रहा हैं, उसका कथन अगले वार्तिक से किया जा रहा है। पत्र-शब्द से अर्थग्रहण और अध्वर्यु तथा परिषद् शब्दों का स्वरूप-ग्रहण किया गया है।

पत्राद्वाह्ये। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- पत्र से ढोने योग्य अर्थ में ही अञ् प्रत्यय होता है। साथ में **इदम्** अर्थ तो रहेगा ही।

अश्वस्येदं वहनीयमाश्वम्। घोड़े से ढोने योग्य यह बोझा, भार। **अश्वस्य इदं वहनीयम् (वाह्यम्)** विग्रह है। यहाँ पर पत्र=वाहनवाची शब्द **अश्व** है। **अश्व+ङस्** से **पत्राद्वाह्ये** वार्तिक का अर्थसाहाय्य लेकर **पत्राध्वर्युपरिषदश्च** सूत्र के द्वारा अञ् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आश्व** और स्वादिकार्य होकर **आश्वम्** सिद्ध हो जाता है।

आध्वर्यवम्। अध्वर्यु से सम्बन्धित यह। **अध्वर्योः इदम्** विग्रह करके अध्वर्यु+ङस् से **पत्राध्वर्युपरिषदश्च** सूत्र के द्वारा अञ् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, प्रकृति के उकार को **ओर्गुणः** से गुण ओकार और उसको अवादेश होकर **आध्वर्यव** तथा स्वादिकार्य होकर **आध्वर्यवम्** सिद्ध हो जाता है।

पारिषदम्। परिषत्-सम्बन्धी। **परिषदः इदम्** विग्रह करके **परिषद्+ङस्** से **पत्राध्वर्युपरिषदश्च** सूत्र के द्वारा अञ् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि **पारिषद** और स्वादिकार्य होकर **पारिषदम्** सिद्ध हो जाता है।

१५०४. हलसीराट्ठक् ४।३।१२४॥

हालिकम्। सैरिकम्।

हलसीराट्ठक्। हलश्च सीरं च तयोः समाहारद्वन्द्वो हलसीरं, तस्माद् हलसीरात्, पञ्चम्यन्तं, ठक् प्रथमान्तम्। **तस्येदम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है तथा **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

'उसका है यह' इस अर्थ में समर्थ षष्ठ्यन्त हल और सीर इन प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होता है।

हालिकम्। हल से सम्बन्धित। **हलस्य इदम्** विग्रह करके **हल+ङस्** से **हलसीराट्ठक्** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, ठ के स्थान पर इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **किति च** सूत्र से आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करके **हालिक** तथा स्वादिकार्य होकर **हालिकम्** सिद्ध हो जाता है।

सैरिकम्। हल. से सम्बन्धित। **सीरस्य इदम्** विग्रह करके **सीर+ङस्** से **हलसीराट्ठक्** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, ठ के स्थान पर इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **किति च** सूत्र से आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करके **सैरिक** तथा स्वादिकार्य होकर **सैरिकम्** सिद्ध हो जाता है।

१५०५. द्वन्द्वाद् वुन् वैरमैथुनिकयोः ४।३।१२५॥

काकोलूकिका। कुत्सकुशिकिका।

'वैरे देवासुरादिभ्यः प्रतिषेधः' (वा.२९१४)। दैवासुरम्।

द्वन्द्वाद् वुन् वैरमैथुनिकयोः। मिथुनं दम्पती, तयोः कर्म मैथुनिका=विवाहः। वैरं

च मैथुनिका च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो वैरमैथुनिके, तयोः द्वन्द्वमैथुनिकयोः। द्वन्द्वात् पञ्चम्यन्तं, वुन् प्रथमान्तं, वैरमैथुनिकयोः सप्तम्यन्तम्। **तस्येदम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है तथा **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

'उसका है यह' इस अर्थ में समर्थ षष्ठ्यन्त द्वन्द्वसमास-युक्त प्रातिपदिक से वुन् प्रत्यय होता है, वैर और मैथुनिका=विवाह अभिधेय गम्य होने पर।

वुन् में नकार इत्संज्ञक है और शिष्ट **वु** के स्थान पर **युवोरनाकौ** सूत्र से **अक** आदेश हो जाता है।

काकोलूकिका। कौवा और उल्लू का यह वैर। **काकश्च ऊलूकश्च** विग्रह करके इतरेतरद्वन्द्वसमास करने पर **काकोलूकौ** बन जाता है। **तयोः वैरम्** अर्थ में **द्वन्द्वाद् वुन् वैरमैथुनिकयोः** सूत्र के द्वारा वुन् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **काकोलूकक** बनता है। लौकिक व्यवहारानुसार यह शब्द स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होता है, अतः **अजाद्यतष्टाप्** सूत्र के द्वारा टाप् प्रत्यय और **प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः** से ककारोत्तरवर्ती अकार को इत्त्व होकर **काकोलूकिका** शब्द बनने के बाद स्वादिकार्य होता है।

कुत्सकुशिकिका। कुत्स और कुशिका का विवाह। **कुत्सश्च कुशिका च** विग्रह करके इतरेतरद्वन्द्वसमास करने पर **कुत्सकुशिके** बन जाता है। **तयोः मैथुनिका** अर्थ में **द्वन्द्वाद् वुन् वैरमैथुनिकयोः** सूत्र के द्वारा वुन् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक आकार का लोप होकर **कुत्सकुशिकक** बनता है। लौकिक व्यवहारानुसार यह शब्द स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होता है, अतः **अजाद्यतष्टाप्** सूत्र के द्वारा टाप् प्रत्यय और **प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः** से ककारोत्तरवर्ती अकार को इत्त्व होकर **कुत्सकुशिकिका** शब्द बनने के बाद स्वादिकार्य होता है।

वैरे देवासुरादिभ्यः प्रतिषेधः। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- देवासुरादिगणपठित शब्दों का द्वन्द्व समास होने पर यदि वैर अर्थ अभिधेय हो तो प्रकृत वुन् प्रत्यय का निषेध होता है।

दैवासुरम्। देव और असुरों का यह वैर। **देवाश्च असुराश्च** विग्रह करके इतरेतरद्वन्द्वसमास करने पर **देवासुराः (देवासुरम्)** बन जाता है। **तयोः वैरम्** अर्थ में **द्वन्द्वाद् वुन् वैरमैथुनिकयोः** सूत्र के द्वारा वुन् प्रत्यय प्राप्त होने पर **वैरे देवासुरादिभ्यः प्रतिषेधः** वार्तिक से उसका निषेध हो जाता है। फलतः औत्सर्गिक अण् प्रत्यय हो जाता है। आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **दैवासुर** बनता है। स्वादिकार्य से **दैवासुरम्** सिद्ध हो जाता है। यह निषेध **वैर** अर्थ में है, विवाह अर्थ में तो वुन् होकर **देवासुरिका** बन सकता है।

१५०६. गोत्रचरणाद् वुञ् ४।३।१२६॥

औपगवकम्।

'चरणाद्धर्माम्नाययोरिति वक्तव्यम्' (वा.२९१३)। काठकम्।

गोत्रचरणाद्वुञ्। गोत्रं च चरणश्च तयोः समाहारद्वन्द्वो गोत्रचरणं, तस्माद् गोत्रचरणात्। गोत्रचरणात् पञ्चम्यन्तं, वुञ् प्रथमान्तम्। **तस्येदम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है तथा **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

'उसका है यह' इस अर्थ में समर्थ षष्ठ्यन्त गोत्रवाची और चरणवाची प्रातिपदिकों से वुञ् प्रत्यय होता है।

गोत्र-शब्द से प्रवर, अध्याय के रूप में प्रसिद्ध लौकिक गोत्र का ग्रहण है, न कि **पौत्रप्रभृति गोत्रम्** वाले शास्त्रीय गोत्र का। **चरण** शब्द वेदशाखाध्ययन से सम्बन्ध रखता है। **काठक** और **कालापक** आदि वेद की व्याख्यानरूप शाखायें हैं। कठ-ऋषि ने मूल यजुर्वेदसंहिता में याज्ञिक प्रक्रिया के अनुसार अपने दृष्टिकोण से जो न्यूनाधिक परिवर्तन कर अपने शिष्यों को पढ़ाया, वह प्रवचन **काठक** नाम से प्रसिद्ध होकर **काठकसंहिता** के नाम से तैत्तिरीय शाखा की अवान्तर शाखा के रूप प्रसिद्ध हुयी है। इसी तरह **कालापकम्** (मैत्रायणी-संहिता) और **पैप्पलादकम्** (अथर्ववेद की अवान्तर शाखा) आदि में भी समझना चाहिये।

औपगवकम्। गोत्रवाची उपगु का यह, उपगु-सम्बन्धी। **उपगोः इदम्** विग्रह करके उपगु+ङस् से **गोत्रचरणाद् वुञ्** सूत्र के द्वारा वुञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, उकार को **ओर्गुणः** सूत्र से गुण होकर ओकार और उसको अवादेश होकर **औपगवक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **औपगवकम्** सिद्ध हो जाता है।

चरणाद्धर्माम्नाययोरिति वक्तव्यम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- चरणवाची प्रातिपदिक से केवल धर्म और आम्नाय=वेदाभ्यास अर्थ में ही वुञ् प्रत्यय होता है। इस तरह यद्यपि सूत्र के द्वारा गोत्रवाची और चरणवाची शब्दों से प्रकृत वुञ् प्रत्यय का विधान है तथापि प्रकृत वार्तिक के कारण चरणवाची प्रातिपदिकों से धर्म और आम्नाय अर्थ में विधान कर देने से गोत्रवाची प्रातिपदिक से केवल सामान्य षष्ठ्यर्थ में प्रत्यय होता है।

काठकम्। कठों का धर्म या परम्परा। **कठेन प्रोक्तम् अधीयते, तेषां धर्माः आम्नायो वा** विग्रह करके पहले प्रोक्तार्थ प्रत्यय का लुक् करके **कठ** ही बन जाने पर **तस्येदम्** अर्थ में **कठ+आम्** से **गोत्रचरणाद् वुञ्** सूत्र के द्वारा वुञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप करके **काठक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **काठकम्** सिद्ध हो जाता है।

१५०७. सङ्ज्ञाङ्कलक्षणेष्वञ्यञिञामण् ४।३।१२७॥

'घोषग्रहणमपि कर्तव्यम्' (वा.२९१५)। अञ्। बैदः, सङ्ज्ञोऽङ्को घोषो वा। बैदं लक्षणम्। यञ्- गार्गः, गार्गम्। इञ्- दाक्षः, दाक्षम्। परम्परासम्बन्धोऽङ्कः। साक्षात्तु लक्षणम्।

सङ्ज्ञाङ्कलक्षणेष्वञ्यञिञामण्। सङ्ज्ञश्च अङ्कश्च लक्षणञ्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः सङ्ज्ञाङ्कलक्षणानि, तेषु सङ्ज्ञाङ्कलक्षणेषु। अञ् च यञ् च इञ् च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः- अञ्यञिञः, तेषाम् अञ्यञिञाम्। सङ्ज्ञाङ्कलक्षणेषु सप्तम्यन्तम्, अञ्यञिञां षष्ठ्यन्तम्, अण् प्रथमान्तम्। **गोत्रचरणाद्वुञ्** से एकदेश **गोत्रात्** की तथा **तस्येदम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

सङ्ज्ञ, अङ्क=चिह्नविशेष और लक्षण अभिधेय होने पर गोत्रप्रत्ययान्त अञन्त, यञन्त और इञन्त षष्ठी-समर्थ प्रातिपदिकों से इदम्-अर्थ में अण् प्रत्यय होता है।

सूत्रस्थ षष्ठ्यन्त **अञ्यञिञाम्** पद पञ्चम्यन्त में परिणत होकर **अञ्यञिञ्भ्यः** बन जाता है, क्योंकि अनुवृत्त विशेष्य पद **गोत्रात्** पञ्चम्यन्त है। **गोत्रात्** को भी बहुवचन में विपरिणाम करके **गोत्रेभ्यः** बना लेना चाहिये।

इस सूत्र के अर्थ के लिये एक वार्तिक प्रस्तुत किया जा रहा है-

घोषग्रहणमपि कर्तव्यम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- घोष वाच्य होने पर भी उक्त अण् प्रत्यय हो। तात्पर्य यह है कि सूत्र में **सङ्ज्ञाङ्कलक्षणेषु** की जगह **सङ्ज्ञाङ्कलक्षणघोषेषु** ऐसा पाठ होना चाहिये। इस तरह घोष-पद का समावेश करने से वाच्यता चार प्रकार की हो जाती है- **सङ्ज्ञ, अङ्क, लक्षण** और **घोष**। अञादि तीन प्रत्यय हैं और वाच्य चार हो जाते हैं। फलतः यथासंख्य नहीं होता। अन्यथा **संघ वाच्य होने से अञ्-प्रत्ययान्त से, अंक वाच्य होने पर यञ्-प्रत्ययान्त से और लक्षण वाच्य होने पर इञ्-प्रत्ययान्त से** ऐसा अनिष्ट अर्थ उपस्थित होता।

वार्तिक की सहायता से सूत्रार्थ इस तरह बनता है-

सङ्ज्ञ, अङ्क लक्षण और घोष अभिधेय होने पर गोत्रप्रत्ययान्त अञन्त, यञन्त और इञन्त षष्ठी-समर्थ प्रातिपदिकों से इदम्-अर्थ में अण् प्रत्यय होता है।

अञ्। अञ्-प्रत्ययान्त गोत्रवाची का उदाहरण दिया जा रहा है-

बैदः सङ्ज्ञोऽङ्को घोषो वा। बैदं लक्षणम्। बिदों के वंशजों का संघ, अंक=चिह्नविशेष, लक्षण या घोष। **बिदानां सङ्घः, बिदानाम् अङ्कः, बिदानां लक्षणम्, बिदानां घोषः** विग्रह किया जाता है। यहाँ **बिद**-शब्द से गोत्रार्थ में **अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्** (४.१.१०४) सूत्र से अञ् प्रत्यय होने पर एकवचन और द्विवचन में **बैदः, बैदौ** रूप बनते हैं। बहुवचन में तो तद्राजसंज्ञा करके उसका लुक् किया जाता है।

अतः **बिदाः** ही बनता है, फिर भी अञ्प्रत्ययान्त कहलाता है। **बिद+आम्** से **सङ्घाङ्कलक्षणेष्वञ्यञिञामण्** सूत्र के द्वारा **अण्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **बैद** शब्द बनता है। संघ, अंक, घोष वाच्य होने पर पुंल्लिंग और लक्षण वाच्य होने पर यह नपुंसकलिंग हो जाता है। अतः स्वादिकार्य होने पर **बैदः** और **बैदम्** ये रूप बन जाते हैं।

यञ्। यञ्-प्रत्ययान्त गोत्रवाची का उदाहरण दिया जा रहा है-

गार्गाः, गार्गम्। गर्ग के वंशजों का संघ, अंक, लक्षण या घोष। **गर्गाणां सङ्घः, गर्गाणाम् अङ्कः, गर्गाणां लक्षणम्, गर्गाणां घोषः** विग्रह किया जाता है। यहाँ पर **गर्गस्य गोत्रापत्यानि** विग्रह करके **गर्ग+ङस्** इस षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से **गर्गादिभ्यो यञ्** से यञ् प्रत्यय करके- **गार्ग्य** बना है। इस यञन्त शब्द से प्रथमा के बहुवचन की विवक्षा में **जस्** प्रत्यय लाने पर **यञञोश्च** से **यञ्** प्रत्यय का लुक् होकर **निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः** इस न्याय के अनुसार उसके आदिवृद्धि आदि कार्यों के भी निवृत्त हो जाने से शुद्ध **गर्ग** शब्द रह जाता है। इस तरह **गर्ग+अस्** में पूर्वसवर्णदीर्घ, सकार को रुत्वविसर्ग होकर **गर्गाः** सिद्ध हुआ। लुक् होने पर भी यञ्प्रत्ययान्त कहलाता है। **गर्ग+आम्** से **सङ्घाङ्कलक्षणेष्वञ्यञिञामण्** सूत्र के द्वारा **अण्** प्रत्यय होने पर अनुबन्ध लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **गार्ग** शब्द बनता है। संघ, अंक, घोष वाच्य होने पर पुंल्लिंग और लक्षण वाच्य होने पर यह नपुंसकलिंग हो जाता है। अतः स्वादिकार्य होने पर **गार्गः** और **गार्गम्** ये रूप बन जाते हैं।

इञ्। इञ्-प्रत्ययान्त गोत्रवाची का उदाहरण दिया जा रहा है-

दाक्षः, दाक्षम्। दक्ष के वंशजों का संघ, अंक, लक्षण या घोष। **दक्षाणां सङ्घः** आदि विग्रह किया जाता है। यहाँ पर भी **अत इञ्** सूत्र से गोत्रार्थ में इञ् प्रत्यय होने पर बहुवचन में उसका लुक् होकर **दक्षाः** ही बना है। लुक् होने पर भी इञ्प्रत्ययान्त कहलाता है। **दक्ष+आम्** से **सङ्घाङ्कलक्षणेष्वञ्यञिञामण्** सूत्र के द्वारा **अण्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **दाक्ष** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होने पर पूर्ववत् पुंल्लिंग और नपुंसकलिंग में **दाक्षः** और **दाक्षम्** ये रूप बन जाते हैं।

परम्परासम्बन्धोऽङ्कः। साक्षात्तु लक्षणम्। अङ्क और लक्षण का भेद बताते हुये मूलकार कहते हैं कि जिसका परम्परया सम्बन्ध हो, वह **अङ्क** कहलाता है। जैसे गाय, बैल आदि की पहचान के लिये तप्तमुद्रा से अंकित करने पर उसके स्वामित्व का पता चलता है। जिसका साक्षात् सम्बन्ध हो, वह **लक्षण** कहलाता है। जैसे किसी व्यक्ति में विद्याविशेष का होना उसके व्यक्तित्व को सूचित करता है।

१५०८. शाकलाद्वा ४।३।१२८॥

अण्वोक्तेऽर्थे। पक्षे चरणत्वाद् वुञ्।

शकलेन प्रोक्तमधीयते शाकलाः,

तेषां सङ्घोऽङ्को घोषो वा शाकलः, शाकलकः। लक्षणे क्लीबता।

शाकलाद्वा। शाकलात् पञ्चम्यन्तं, वा अव्ययम्। **सङ्घाङ्कलक्षणेष्वञ्ञिञाम्** से **सङ्घाङ्कलक्षणेषु** और **यञः** की, वार्तिक से **घोषे** की **गोत्रचरणाद्वुञ्** से एकदेश **गोत्रात्** की तथा **तस्येदम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

सङ्घ, अङ्क, लक्षण और घोष अभिधेय होने पर गोत्रप्रत्ययान्त यञन्त शाकल्य प्रातिपदिक से इदम्-अर्थ में विकल्प से अण् प्रत्यय होता है।

अण् वा उक्ते अर्थे। पूर्व सूत्र के अर्थ में ही अण् विकल्प से होता है।

पक्षे चरणत्वाद् वुञ्। अण् न होने के पक्ष में **शाकल्य** शब्द के चरणवाची होने के कारण **गोत्रचरणाद् वुञ्** सूत्र से वुञ् प्रत्यय हो जाता है।

शकलेन प्रोक्तमधीयते शाकलाः, तेषां सङ्घोऽङ्को घोषो वा शाकलः, शाकलकः। लक्षणे क्लीबता। शकल के द्वारा प्रोक्त विषय का अध्ययन करता है, इस अर्थ में प्रोक्तार्थ अण् प्रत्यय होकर **शाकल** शब्द बनता है। उसके बाद अध्येतृ और वेदितृ अर्थ में **तदधीते तद्वेद** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय होने पर उसका लुक् होकर **शाकल** ही बन जाता है। इसके बाद शाकलों का संघ, अंक, घोष और लक्षण अर्थ में **शाकन**-शब्द से **शाकलाद्वा** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय होने पर भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** से लोप और यकार का **आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति** सूत्र से लोप होकर **शाकल** बन जाता है। स्वादिकार्य होकर **शाकलः** सिद्ध हो जाता है। वुञ् होने के पक्ष में अकादेश होकर **शाकलकः** बन जाता है। ये रूप संघ, अंक और घोष वाच्य होने पर है, लक्षण वाच्य होने पर तो नपुंसकलिंग होकर **शाकलम्** बन जाता है। अतः मूलकार ने लिखा है- **लक्षणे क्लीबता**।

१५०९. छन्दोगौक्थिकयाज्ञिकबह्वृचनटाञ्ञ्यः ४।३।१२९॥

छन्दोगानां धर्म आम्नायो वा छान्दोग्यम्। औक्थिक्यम्। याज्ञिक्यम्। बाह्वृच्यम्। नाट्यम्। 'चरणाद्धर्माम्नाययोः' (वा.२९१३) इत्युक्तम्। तत्साहचर्यान्नटशब्दादपि तयोरेव।

छन्दोगौक्थिकयाज्ञिकबह्वृचनटाञ्ञ्यः। छन्दोगश्च औक्थिकश्च याज्ञिकश्च बह्वृचश्च, नटश्च तेषां समाहारद्वन्द्वः छन्दोगौक्थिकयाज्ञिकबह्वृचनटं, तस्मात् छन्दोगौक्थिकयाज्ञिकबह्वृचनटात् पञ्चम्यन्तं, ञ्यः प्रथमान्तम्। **तस्येदम्** के दोनों पदों की

अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

षष्ठी-समर्थ छन्दोग, औक्थिक, याज्ञिक, बह्वृच और नट इन प्रातिपदिकों से 'तस्य इदम्' अर्थ में ञ्य प्रत्यय होता है।

छन्दोगादि के चरणवाची होने के कारण **चरणाद्धर्माम्नाययोः** वार्तिक के द्वारा धर्म और आचरण को कहने में ही ञ्य-प्रत्यय होने का विधान प्राप्त होता है। **ञ्य** में ञकार इत्संज्ञक है, **य** बचता है।

छन्दोगानां धर्म आम्नायो वा छान्दोग्यम्। छन्दोगों का धर्म या आम्नाय (परम्परा)। **छन्दोगानां धर्मः आम्नायः वा** विग्रह करके **छन्दोग+आम्** से **छन्दोगौक्थिकयाज्ञिकबह्वृचनटाञ्ञ्यः** सूत्र से ञ्य-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **छान्दोग्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **छान्दोग्यम्** सिद्ध हो जाता है।

औक्थिक्यम्। औक्थिकों का धर्म या आम्नाय (परम्परा)। **औक्थिकानां धर्मः आम्नायः वा** विग्रह करके **औत्थिक+आम्** से **छन्दोगौक्थिकयाज्ञिकबह्वृचनटाञ्ञ्यः** सूत्र से ञ्य-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, पर्जन्यवल्लक्षणन्यायेन आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकारं का लोप करके **औत्थिक्य** और एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **औत्थिक्यम्** सिद्ध हो जाता है।

याज्ञिक्यम्। याज्ञिकों का धर्म या आम्नाय (परम्परा)। **याज्ञिकानां धर्मः आम्नायः वा** विग्रह करके **याज्ञिक+आम्** से **छन्दोगौक्थिकयाज्ञिकबह्वृचनटाञ्ञ्यः** सूत्र से ञ्य-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **याज्ञिक्य** और स्वादिकार्य होकर **याज्ञिक्यम्** सिद्ध हो जाता है।

बाह्वृच्यम्। बह्वृचों का धर्म या आम्नाय (परम्परा)। **बह्वृचानां धर्मः आम्नायः वा** विग्रह करके **बह्वृच+आम्** से **छन्दोगौक्थिकयाज्ञिकबह्वृचनटाञ्ञ्यः** सूत्र से ञ्य-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **बाह्वृच्य** और स्वादिकार्य होकर **बाह्वृच्यम्** सिद्ध हो जाता है।

नाट्यम्। नटों का धर्म या आम्नाय (परम्परा)। **नटानां धर्मः आम्नायः वा** विग्रह करके **नट+आम्** से **छन्दोगौक्थिकयाज्ञिकबह्वृचनटाञ्ञ्यः** सूत्र से ञ्य-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **नाट्य** और स्वादिकार्य होकर **नाट्यम्** सिद्ध हो जाता है।

'चरणाद्धर्माम्नाययोः' इत्युक्तम्। तत्साहचर्यान्नटशब्दादपि तयोरेव। छन्दोगादि के चरणवाची होने के कारण प्रकृतसूत्र में भी **चरणाद्धर्माम्नाययोः** वार्तिक का सम्बन्ध रहता है और यद्यपि **नट** शब्द चरणवाची नहीं है, तथापि छन्दोगादि के साहचर्य से नट-शब्द से भी धर्म और आम्नाय अर्थों में ही ञ्य प्रत्यय किया जाता है, जैसा कि ऊपर प्रक्रिया में दिखाया गया है।

अब एक सूत्र से **इदमर्थ** में विहित विशेष-प्रत्ययों का निषेध किया जा रहा है-

१५१०. न दण्डमाणवान्तेवासिषु ४।३।१३०॥

दण्डप्रधाना माणवा दण्डमाणवाः, तेषु शिष्येषु च वुञ्न स्यात्। दाक्षा दण्डमाणवाः शिष्या वा।

न दण्डमाणवान्तेवासिषु। दण्डप्रधाना माणवाः दण्डमाणवाः, मध्यमपदलोपी समासः। दण्डमाणवाश्च अन्तेवासिनश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो दण्डमाणवान्तेवासिनस्तेषु दण्डमाणवान्तेवासिषु। नाव्ययं, दण्डमाणवान्तेवासिषु सप्तम्यन्तम्। **गोत्रचरणाद् वुञ्** के सभी पदों की तथा **तस्येदम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

षष्ठी-समर्थ गोत्रवाची शब्दों से दण्डमाणव और अन्तेवासी=शिष्य अभिधेय होने पर इदमर्थ में वुञ् प्रत्यय नहीं होता।

आश्रमरक्षकों (दण्डधारी ब्रह्मचारियों) को **दण्डमाणव** कहा गया है। शिष्यों को **अन्तेवासी** कहा जाता है। **गोत्रचरणाद् वुञ्** सूत्र से प्राप्त वुञ्प्रत्यय का यह निषेध किया गया है।

दाक्षा दण्डमाणवाः शिष्या वा। दाक्षी के दण्डमाणव अथवा शिष्यवर्ग। **दाक्षेः दण्डमाणवाः शिष्याः वा** विग्रह किया जाता है। यहाँ दक्ष-शब्द से गोत्रार्थ में इञ्-प्रत्यय होकर **दाक्षि** शब्द बना है। **दाक्षि+ङस्** से **गोत्रचरणाद् वुञ्** सूत्र से वुञ्प्रत्यय प्राप्त था, उसका **न दण्डमाणवान्तेवासिभ्यः** सूत्र के द्वारा निषेध हो जाता है, फलतः **तस्येदम्** सूत्र से ही औत्सर्गिक अण् प्रत्यय हो जाता है। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक इकार का लोप होकर **दाक्ष** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर बहुवचन में **दाक्षाः** सिद्ध हो जाता है।

१५११. रैवतिकादिभ्यश्छः ४।३।१३१॥

तस्येदमित्यर्थे। वुञोऽपवादः। रैवतिकीयम्। बैजवापीयम्।

रैवतिकादिभ्यश्छः। रैवतिक आदिर्येषां ते रैवतिकादयस्तेभ्यो रैवतिकादिभ्यः, बहुव्रीहिः। रैवतिकादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, छः प्रथमान्तम्। **गोत्रचरणाद् वुञ्** के सभी पदों की तथा **तस्येदम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

षष्ठी-समर्थ गोत्रवाची रैवतिकादि गणपठित प्रातिपदिकों से इदमर्थ में छ-प्रत्यय होता है।

तस्येदमित्यर्थे। यह विधान भी **तस्येदम्** अर्थ में ही है।

वुञोऽपवादः। रैवतिकादिगण में पठित सभी शब्द गोत्रप्रत्ययान्त हैं। अतः **गोत्रचरणाद् वुञ्** से प्राप्त वुञ्प्रत्यय का यह अपवाद है।

रैवतिकीयम्। रैवतक-सम्बन्धी। **रेवती**-शब्द से **रेवत्यादिभ्यष्ठक्** (४.१.१४६) सूत्र से गोत्रार्थ में ठक् प्रत्यय होकर **रैवतिक** शब्द बना है। **रैवतिकस्य इदम्** विग्रह करके **रैवतिक+ङस्** से **गोत्रचरणाद् वुञ्** सूत्र से वुञ्प्रत्यय प्राप्त था, उसे बाधकर **रैवतिकादिभ्यश्छः** सूत्र के द्वारा छ-प्रत्यय होने पर उसके स्थान पर **ईय्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **रैवतिकीय** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **रैवतिकीयम्** सिद्ध हो जाता है।

बैजवापीयम्। वैजवाप-सम्बन्धी। **बीजवाप**-शब्द से **अत इञ्** (४.१.९५) सूत्र से गोत्रार्थ में इञ् प्रत्यय होकर **बैजवापि** शब्द बना है। **बैजवापेः इदम्** विग्रह करके **बैजवापि+ङस्** से **रैवतिकादिभ्यश्छः** सूत्र के द्वारा छ-प्रत्यय, **ईय्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक इकार का लोप होकर **बैजवापीय** और स्वादिकार्य होकर **बैजवापीयम्** सिद्ध हो जाता है।

रैवतिकादिगणः- रैवतिक, स्वापिशि, क्षैमवृद्धि, गौरग्रीव, (गौरग्रीवि) औदमेधि, औदवापि, बैजवापि।

१५१२. कौपिञ्जलहास्तिपदादण् ४।३।१३२॥

(वा.२९१८)। कुपिञ्जलस्यापत्यम्। इहैव निपातनादण्। तदन्तात्पुनरण्।
कौपिञ्जलः। गोत्रवुञोऽपवादः।
हस्तिपादस्यापत्यं हास्तिपदः, तस्यायं हास्तिपदः।

कौपिञ्जलहास्तिपदादण्। कौपिञ्जलश्च हास्तिपदश्च तयोः समाहारद्वन्द्वः कौपिञ्जलहास्तिपदं, तस्मात् कौपिञ्जलहास्तिपदात् पञ्चम्यन्तम्, अण् प्रथमान्तम्। **तस्येदम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

षष्ठी-समर्थ कौपिञ्जल और हास्तिपद इन प्रातिपदिकों से इदमर्थ में अण्-प्रत्यय होता है।

प्रकृतसूत्र के विषय में मतभेद है। भाष्य में इसे **रैवतिकादिभ्यश्छः** सूत्र में वार्तिक के रूप में पढ़ा गया है। कैयट ने इसे अपाणिनीय (पाणिनि के द्वारा विरचित न होना) बताया है किन्तु काशिकाकार ने सूत्र माना है। यहाँ कौमुदी की कई पुस्तकों में इसे वार्तिक के रूप में दिखाया गया है तो कई पुस्तकों में सूत्ररूप में। बालमनोरमाकार भी मानते हैं कि यह वार्तिक ही है- **अस्मिन् वार्तिके...**। चाहे सूत्र हो या वार्तिक, कार्य एक ही है किन्तु महाभाष्य के अनुसार इसे वार्तिक ही मानना उचित है।

कुपिञ्जलस्यापत्यम्। इहैव निपातनादण्। तदन्तात्पुनरण्। कौपिञ्जलः। कौपिञ्जल-सम्बन्धी। पहले **कुपिञ्जलस्य अपत्यम्** विग्रह करके **कुपिञ्जल+ङस्** में प्रकृतसूत्र में **कौपिञ्जल** शब्द का पाठ होने के कारण निपातनात् अण् प्रत्यय करके आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **कौपिञ्जल** शब्द बनता है। इसके बाद अणन्त **कौपिञ्जल** शब्द से **कौपिञ्जलस्य अयम्** अर्थ में **कौपिञ्जलहास्तिपदादण्** सूत्र (वार्तिक) से अण् प्रत्यय होकर पुनः **कौपिञ्जल** ही बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कौपिञ्जलः** सिद्ध होता है।

अब प्रश्न आता है कि पहले निपातनात् अण्-प्रत्ययान्त मानना, पुनः उससे अण् करने की क्या आवश्यकता है, सीधे एक ही अण् से कार्यनिर्वाह क्यों न हो? इसका समाधान देखें-

गोत्रवुञोऽपवादः। यह गोत्रार्थ से प्राप्त **गोत्रचरणाद् वुञ्** का अपवाद है। तात्पर्य यह है कि अपत्यार्थक अण्-प्रत्ययान्त **कौपिञ्जल** शब्द से **इदमर्थ** की विवक्षा होने पर **गोत्रचरणाद् वुञ्** से वुञ् प्रत्यय प्राप्त था, उसे बाधने के लिये प्रकृतसूत्र की सार्थकता है।

हस्तिपादस्यापत्यं हास्तिपदः, तस्यायं हास्तिपदः। हस्तिपाद के वंशजों से सम्बन्धित। पहले **हस्तिनः पादौ इव पादौ यस्य** विग्रह करके बहुव्रीहिसमास और उत्तरपद का लोप करके **हस्तिपाद** शब्द बनता है। **अहस्त्यादिभ्यः** पद से निषेध होने के कारण **पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः (५.३.१३८)** सूत्र से **पाद**-शब्द के अन्त्य वर्ण का लोप नहीं होता। **हस्तिपादस्य अपत्यम्** विग्रह करके **हस्तिपाद+ङस्** से **अत इञ्** से प्राप्त इञ् को बाधकर प्रकृतसूत्र में **हास्तिपद** शब्द का पाठ होने के कारण अण् प्रत्यय और **पाद**-शब्द के स्थान पर **पद्** आदेश का निपातन हो जाता है। इस तरह **हास्तिपद** शब्द से **अयम्** अर्थ में **कौपिञ्जलहास्तिपदादण्** सूत्र (वार्तिक) से अण् प्रत्यय होकर **हास्तिपद** बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **हास्तिपदः** सिद्ध होता है।

१५१३. आथर्वणिकस्येकलोपश्च ४।३।१३३॥

अण्स्यात्।

आर्थर्वणिकस्यायमाथर्वणो धर्म आम्नायो वा। चरणाद्वुञोऽपवादः।

॥ इति तद्धितेषु शैषिकप्रकरणम्॥

आथर्वणिकस्येकलोपश्च। इकस्य लोप इकलोपस्तस्य इकलोपस्य, षष्ठीतत्पुरुषः। आथर्वणिकस्य षष्ठ्यन्तम्, इकलोपः प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **कौपिञ्जल-हास्तिपदादण्** से **अण्** की और **तस्येदम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **शेषे** का अधिकार है।

षष्ठी-समर्थ आथर्वणिक प्रातिपदिक से इदमर्थ में अण्-प्रत्यय होता है साथ में इक-शब्द का लोप भी।

कैयट और नागेश इसे सूत्र मानते हैं किन्तु कुछ आचार्य इसे वार्तिक मानते हैं।

चरणाद्वुञोऽपवादः। चरणार्थ से **गोत्रचरणाद् वुञ्** सूत्र से प्राप्त वुञ्प्रत्यय का यह अपवाद है। चरणवाची होने के कारण **चरणाद्धर्मान्नाययोः** वार्तिक के अनुसार धर्म और आम्नाय वाच्य होने पर ही यह प्रत्यय होता है।

आथर्वणिकस्यायमाथर्वणो धर्म आम्नायो वा। अथर्व-वेद पढ़ने वाले का धर्म या आम्नाय (परम्परा)। पहले **अथर्वणा प्रोक्तो वेदः** अर्थ में उपचारवश **अथर्वा (अथर्वन्)** कहते हैं। **अथर्वाणम् अधीते** अर्थ में **अर्थवन्**-शब्द से **वसन्तादिभ्यष्ठक्** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय होने पर इकादेश होकर **आथर्वणिक** शब्द बनता है। **दाण्डिनायनहास्तिनायनाथर्वणिक०** (६.४.१७४) सूत्र में **आथर्वणिक** ऐसा निपातन होने के कारण **नस्तद्धिते** से टिलोप नहीं होता। अब **आथर्वणिकस्य धर्मः आम्नायो वा** विग्रह करके **आथवर्णिकस्येकलोपश्च** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय के साथ प्रकृति के **इक** भाग का लोप करके **आथर्वण** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आथर्वणः** सिद्ध होता है।

यहाँ आकर **शेषे** का अधिकार पूर्ण हो जाता है।

श्री भट्टोजिदीक्षित द्वारा विरचित वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी की गोविन्दाचार्य कृत श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी टीका में तद्धित-शैषिक-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ प्राग्दीव्यतीय-प्रकरणम्

अब विकार अर्थ में होने वाले प्रत्ययों का प्रकरण प्रारम्भ होता है। शैषिक घ-प्रत्यय आदि का विवरण समाप्त हो चुका है किन्तु औत्सर्गिक अण् (**प्राग्दीव्यतोऽण्**) का प्रभाव अभी बना रहेगा, क्योंकि उसका अधिकार **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** (४.४.८३) से पूर्व तक रहता है। एक वस्तु का दूसरे रूप में परिणत होना **विकार** कहलाता है। जैसे दूध का विकार दही और दही का विकार मक्खन, इसी प्रकार लकड़ी का विकार दरबाजा, कुर्सी, पलंग आदि। यहाँ पर भी प्रायः सभी सूत्रों में **प्राग्दीव्यतोऽण्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार चल रहा है। शेष कार्य पूर्व के अन्य प्रकरणों के जैसे ही हैं। वैसे जहाँ से **प्राग्दीव्यतोऽण्** का अधिकार चल रहा है, वे सभी प्राग्दीव्यतीय हैं तथापि कौमुदीकार ने अपत्यार्थ, रक्ताद्यर्थक, चातुरर्थिक और शैषिक को अलग प्रकरण के रूप में दिखाकर शेष-भाग को ही **प्राग्दीव्यतीय** के रूप में दिखाया है।

१५१४. तस्य विकारः ४।३।१३४॥

'अश्मनो विकारे टिलोपो वक्तव्यः'(वा.४१८५)।

अश्मनो विकार आश्मः। भास्मनः। मार्त्तिकः।

तस्य विकारः। तस्य षष्ठ्यन्तानुकरणं लुप्तपञ्चम्यन्तं, विकारः प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, प्राग्दीव्यतोऽण्** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार चल रहा है।

'उसका विकार' इस अर्थ में षष्ठ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से तद्धितीय अण् आदि प्रत्यय होते हैं।

तस्येदम् से **तस्य** इस पद की अनुवृत्ति हो सकती थी और यहाँ पर पढ़ने की आवश्यकता नहीं थी फिर भी यहाँ पर पढ़ने का तात्पर्य यह है कि **शेषाधिकार** की अब यहाँ से निवृत्ति होती है। यहाँ **तस्येदम्** सूत्रस्थ **तस्य** पद **इदम्** अर्थ में शैषिक प्रत्ययों का का विधान करता है, अतः **तस्य** पद की अनुवृत्ति होने पर यहाँ उन प्रत्ययों की निवृत्ति सम्भव नहीं थी। अतः पृथक् **तस्य** पद से प्रकृत विकारार्थ का ही सम्बन्ध होता है। यहाँ पर दूसरी शंका यह भी होती है कि विधीयमान होने से प्रत्ययों का ही प्राधान्य होने के

कारण गौणार्थक **तस्य** की निवृत्ति के लिये विधेय-प्रधान प्रत्ययों की निवृत्ति क्यों न हो? प्रधान का अनुसरण गौण करता है, न कि गौण का अनुसरण प्रधान। इसका समाधान यह है कि प्रकृत सूत्र में विशेषतः **तस्य** के सामर्थ्य से ही गा।ण के साथ प्रधान की भी निवृत्ति हो जाती है। इस विषय में भाष्य का परिशीलन आवश्यक है।

तस्य पद षष्ठी-समर्थ का सूचक है और **विकारः** पद अर्थ-विधायक है। सूत्र में विधेयांश का सूचक कोई पद नहीं है। अतः **प्राग्दीव्यतोऽण्** से अण् की अनुवृत्ति करके उसे ही विधेय माना जाता है। **विकार** का अर्थ है- **प्रकृति-विकृति** अर्थात् प्रकृति में कुछ परिणाम होना अथवा कार्य के रूप में परिणत होना। विकार अर्थ को अभिलक्षित कर औत्सर्गिक अण् प्रत्यय से सम्बद्ध उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं, क्योंकि उसके अपवादस्वरूप **मयट्** आदि प्रत्ययों का विवेचन आगे किया जायेगा।

अश्मनो विकारे टिलोपो वक्तव्यः। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- विकार अर्थ में प्रत्यय हो जाने के बाद अश्मन् शब्द के टि-संज्ञक भाग का लोप कहना चाहिये। **अश्मन्** में अन्त्य अच् मकारोत्तरवर्ती अकार और नकार अर्थात् **अन्** यह टिसंज्ञक है। प्रत्यय होने के बाद **अश्मन्+अ** ऐसी स्थिति में पहले **नस्तद्धिते** से टिलोप प्राप्त होता है, उसे प्रकृतिभावविधायक **अन्** यह सूत्र बाधता है और उसे भी बाधने के लिए यह वार्तिक है, अर्थात् यह वार्तिक **अन्** इस सूत्र का बाधक है।

आश्मः। पत्थर का विकार अथवा पत्थर से बना हुआ कोई पदार्थ। **अश्मनो विकारः** लौकिक विग्रह और **अश्मन् ङस्** अलौकिक विग्रह है। **तस्य विकारः** से अण् प्रत्यय हुआ, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **अश्मन्+अ** बना। णित् होने के कारण आदिवृद्धि हुई और टिसंज्ञक अन् का **अश्मनो विकारे टिलोपो वक्तव्यः** से लोप हुआ, **आश्म्+अ=आश्म** बना। स्वादिकार्य करके **आश्मः** सिद्ध हुआ।

भास्मनः। भस्म का विकार अथवा राख से बना हुआ कोई पदार्थ। **भस्मनः विकारः** लौकिक विग्रह और **भस्मन् ङस्** अलौकिक विग्रह है। **तस्य विकारः** से अण् प्रत्यय हुआ, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **भस्मन्+अ** बना। णित् होने के कारण आदिवृद्धि हुई, **भास्मन्+अ=भास्मन** बना। स्वादिकार्य करके **भास्मनः** सिद्ध हुआ। यहाँ पर तो **अन्** से टिलोप के निषेध होने के बाद इसका बाधक कोई नहीं है। अतः टि का लोप नहीं होता।

मार्त्तिकः। मृत्तिका का विकार अथवा मिट्टी से बनी हुई कोई वस्तु। **मृत्तिकायाः विकारः** लौकिक विग्रह और **मृत्तिका ङस्** अलौकिक विग्रह है। **तस्य विकारः** से अण् प्रत्यय हुआ, प्रातिपदिककसंज्ञा, सुप् का लुक्, **मृत्तिका+अ** बना। णित् होने के कारण आदिवृद्धि होने पर ऋकार के स्थान पर आर् होकर **मार्त्तिका+अ** बना। भसंज्ञक आकार का लोप हुआ, **मार्त्तिक्+अ=मार्त्तिक** बना। स्वादिकार्य करके **मार्त्तिकः** सिद्ध हुआ।

१५१५. अवयवे च प्राण्यौषधिवृक्षेभ्यः ४।३।१३५॥

चाद्विकारे।

मयूरस्यावयवो विकारो वा मायूरः। मौर्वं काण्डं भस्म वा। पैप्पलम्।

अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः। प्राणिनश्च ओषधयश्च वृक्षाश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः प्राण्योषधिवृक्षास्तेभ्यः। अवयवे सप्तम्यन्तं, चाव्ययपदं, प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः पञ्चम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तस्य विकारः** की अनुवृत्ति आती है और ऊपर से **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है। इस सूत्र में **अवयव** अर्थ और जुड़ जाता है।

प्राणी, औषधी और वृक्ष के वाचक प्रातिपदिकों से विकार और अवयव अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं।

चाद्विकारे। च-शब्द से विकारार्थ में प्रत्यय माना जाता है।

यह सूत्र नियमार्थ है। **सिद्धे सत्यारभ्यमाणो विधिर्नियमाय भवति।** जो कार्य पहले ही किसी सूत्र से सिद्ध हो रहा है, उसके लिये यदि पुनः अलग से सूत्र बनाया जाय तो उसे नियमसूत्र कहते हैं। इसके नियम होने का फल यह है कि इस पाद के अन्त तक अर्थात् **कंसीयपरशव्ययोर्यञञौ लुक् च** (४.३.१६५) तक के सूत्रों से जो भी प्राणिवाची और ओषधिवाची प्रातिपदिक कहे गये हैं, उनसे अवयव और विकार अर्थों में प्रत्यय होते हैं। इनसे अन्य जो प्रातिपदिक हैं, उनसे केवल विकार अर्थ में प्रत्यय होते हैं, यही नियम है।

मायूरः। मयूर के अवयव टांग, सिर आदि अथवा मयूर का विकार। **मयूरस्य विकारः, अवयवो वा** लौकिक विग्रह और **मयूर+ङस्** अलौकिक विग्रह है। प्राणिवाची प्रातिपदिकों से आगे **प्राणिरजतादिभ्योऽञ्** (४.३.१५१) सूत्र से अञ् प्रत्यय कहेंगे। **अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः** से यथाविहित प्रत्यय का विधान होने से यहाँ पर अञ् प्रत्यय हुआ, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **मयूर+अ** बना। णित् होने के कारण आदिवृद्धि होने पर अकार के स्थान पर आकार होकर भसंज्ञक अकार का लोप हुआ, **मायूर्+अ=मायूर** बना। स्वादिकार्य करके **मायूरः** सिद्ध हुआ। यह प्राणिवाचक का उदाहरण है। यहाँ पर **अनुदात्तादेश्च** (४.३.१४०) सूत्र से अञ् सिद्ध होने पर भी पुनः अञ् का विधान उदात्तादि शब्दों से तथा वृद्धसंज्ञक शब्दों से प्राप्त मयट्-प्रत्यय के बाधन के लिये सार्थक है।

मौर्वम्। मूर्वा नामक औषधी विशेष, लता का अवयव काण्ड, मूल आदि अथवा विकार भस्म आदि। **मूर्वायाः विकारः** लौकिक विग्रह और **मूर्वा ङस्** अलौकिक विग्रह है। **तस्य विकारः** से अण् प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **मूर्वा+अ** बना। णित् परे आदिवृद्धि औकार और भसंज्ञक आकार का लोप होकर **मौर्व्+अ=मौर्व** बना। स्वादिकार्य करके **मौर्वम्** सिद्ध हुआ। यह औषधि का वाचक है।

पैप्पलम्। पीपल नामक वृक्ष का अवयव डाली, पत्ते अथवा पीपल का भस्म आदि। **पिप्पलस्य विकारः, अवयवो वा** लौकिक विग्रह और **पिप्पल ङस्** अलौकिक विग्रह है। **अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः** से अण् प्रत्यय हुआ, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **पिप्पल+अ** बना। णित् होने के कारण आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप हुआ, **पैप्पल्+अ=पैप्पल** बना। स्वादिकार्य करके **पैप्पलम्** सिद्ध हुआ। यह वृक्षवाचक का उदाहरण है।

१५१६. बिल्वादिभ्योऽण् ४।३।१३६॥
बैल्वम्।

बिल्वादिभ्योऽण्। बिल्व आदिर्येषां ते बिल्वादयस्तेभ्यो बिल्वादिभ्यः, बहुव्रीहिः। बिल्वादिभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अण् प्रथमान्तम्। **अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः** से **अवयवे** की और **तस्य विकारः** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है और ऊपर से **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

बिल्व आदि गणपठित प्रातिपदिकों से विकार और अवयव अर्थ में अण् प्रत्यय होता है।

बैल्वम्। बेल का अवयव डाली, पत्ते अथवा बेल का शरबत आदि। **बिल्वस्य विकारः, अवयवो वा** लौकिक विग्रह और **बिल्व+ङस्** अलौकिक विग्रह है। **बिल्वादिभ्योऽण्** सूत्र से अण् प्रत्यय हुआ, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **बिल्व+अ** बना। णित् होने के कारण आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **बैल्व** शब्द बना है। स्वादिकार्य करके **बैल्वम्** सिद्ध हो जाता है।

बिल्वादिगणः- बिल्व, व्रीहि, काण्ड, मुद्ग, मसूर, गोधूम, इक्षु, वेणु, गवेधुका, कर्पासी, पाटली, कर्कन्धू, कुटीर।

बिल्वादिगण में पठित **गवेधुका** शब्द से औत्सर्गिक अण् स्वतः सिद्ध था, तथापि उसके बाधक मयट् का बाध करने के लिये इस गण में पाठ होने की सार्थकता है। शेष शब्दों में वक्ष्यमाण **अनुदात्तादेश्च** सूत्र से प्राप्त अञ् के बाधनार्थ इस सूत्र की सार्थकता है।

१५१७. कोपधाच्च ४।३।१३७॥
अण्। अञोऽपवादः। तर्कु- तार्कवम्। तैत्तिडीकम्।

कोपधाच्च। कः=ककार उपधा यस्य तत् कोपधम्, तस्मात् कोपधात्। **बिल्वादिभ्योऽण्** से **अण्** की, **अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः** से **अवयवे** की और **तस्य विकारः** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है और ऊपर से **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

ककार-उपधा वाले प्रातिपदिकों से विकार और अवयव अर्थ में अण् प्रत्यय होता है।

अञोऽपवादः। यह वक्ष्यमाण **ओरञ्** सूत्र का अपवाद है।

तर्कु- तार्कवम्। टेकुआ का अंग या बना हुआ (विकार)। **तर्कोः अवयवो विकारो वा** विग्रह करके **तर्कु+ङस्** से **कोपधाच्च** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् आदि होने पर आदिवृद्धि, उकार को **ओर्गुणः** सूत्र से गुण ओकार और उसको अवादेश होकर **तार्कव** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **तार्कवम्** सिद्ध हो जाता है। **तर्कु**-शब्द कोपध है।

तैत्तिडीकम्। ईमली का अवयव या ईमली से बना हुआ (विकार)। **तित्तिडीकस्य अवयवो विकारो वा** विग्रह करके **तित्तिडीक+ङस्** से **कोपधाच्च** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् आदि होने पर आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **तैत्तिडीक** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **तैत्तिडीकम्** सिद्ध हो जाता है। **तित्तिडीक**-शब्द भी कोपध है। यह शब्द मध्योदात्त होने के कारण अनुदात्तादि है, अतः **अनुदात्तादेश्च** प्राप्त था, उसको बाध कर यह सूत्र लगता है।

१५१८. त्रपुजतुनोः षुक् ४।३।१३८॥

आभ्यामण् स्याद्विकारे, एतयोः षुगागमश्च। त्रापुषम्। जातुषम्।

त्रपुजतुनोः षुक्। त्रपु च जतु च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वस्त्रपुजतुनी, तयोस्त्रपुजतुनोः। त्रपुजतुनोः षष्ठीद्विवचनान्तं, षुक् प्रथमान्तम्। **बिल्वादिभ्योऽण्** से **अण्** की और **तस्य विकारः** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है और ऊपर से **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, प्राग्दीव्यतोऽण्, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

त्रपु और जतु इन प्रातिपदिकों से विकार अर्थ में अण् प्रत्यय होता है और प्रकृति को षुक् आगम भी।

यहाँ केवल विकारार्थ में ही प्रत्यय होगा, क्योंकि **त्रपु** और **जतु** शब्द प्राणी, ओषधि एवं वृक्ष के वाचक नहीं हैं। अतः **अवयवे** की अनुवृत्ति नहीं आती। सूत्रस्थ **त्रपुजतुनोः** पद की आवृत्ति की जाती है और पञ्चम्यन्त में विपरिणाम करके **त्रपुजतुभ्याम्** बना लिया जाता है। प्रत्ययविधि में पञ्चम्यन्त और आगमविधि में षष्ठ्यन्त का आश्रयण किया जाता है। **षुक्** में ककार इत्संज्ञक और उकार उच्चारणार्थ है, **ष्** बचता है। इसके कित् होने के कारण **आद्यन्तौ टकितौ** के नियम से यह प्रकृति का अन्त्यावयव होकर बैठता है।

त्रापुषम्। राँगे का बना हुआ (विकार)। **त्रपुनः विकारः** विग्रह करके **त्रपु+ङस्** से **त्रपुजतुनोः षुक्** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय के साथ प्रकृति को षुक् आगम,

अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् आदि होने पर **त्रपुष्+अ** बना है। आदिवृद्धि होकर **त्रापुष** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **त्रापुषम्** सिद्ध हो जाता है।

जातुषम्। लाख का बना हुआ (विकार)। **जतुनः विकारः** विग्रह करके **जतु+ङस्** से **त्रपुजतुनोः षुक्** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय के साथ प्रकृति को षुक् आगम, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् आदि होने पर **जतुष्+अ** बना है। आदिवृद्धि होकर **जातुष** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **जातुषम्** सिद्ध हो जाता है।

१५१९. ओरञ् ४।३।१३९॥
दैवदारवम्। भाद्रदारवम्।

ओरञ्। उ-शब्दस्य पञ्चम्येकवचनम् ओः इति। अञ् प्रथमान्तम्। **अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः** से **अवयवे** की और **तस्य विकारः** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। साथ ही ऊपर से **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

षष्ठी-समर्थ उवर्णान्त प्रातिपदिक से विकार अर्थ में अञ् प्रत्यय होता है।

दैवदारवम्। देवदारु का अंग या उससे बना हुआ (विकार)। **देवदारोः अवयवः विकारः वा** विग्रह करके **देवदारु+ङस्** से **ओरञ्** सूत्र के द्वारा अञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, उकार को **ओर्गुणः** सूत्र से गुण ओकर और उसको अवादेश होने पर **दैवदारव** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **दैवदारवम्** सिद्ध हो जाता है। **देवदारु** शब्द के उवर्णान्त होने के कारण प्रकृत सूत्र प्रवृत्त होता है।

भाद्रदारवम्। भद्रदारु-विशेष का अंग या उससे बना हुआ (विकार)। **भद्रदारोः अवयवः विकारः वा** विग्रह करके **भद्रदारु+ङस्** से **ओरञ्** सूत्र के द्वारा अञ् प्रत्यय, अनुवन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, उकार को **ओर्गुणः** सूत्र से गुण ओकार और उसको अवादेश होने पर **भाद्रदारव** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **भाद्रदारवम्** सिद्ध हो जाता है।

१५२०. अनुदात्तादेश्च ४।३।१४०॥
दाधित्थम्। कापित्थम्।

अनुदात्तादेश्च। अनुदात्त आदिर्यस्य स अनुदात्तादिस्तस्य अनुदात्तादेः, बहुव्रीहिः। अनुदात्तादेः पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **ओरञ्** से **अञ्** की, **अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः**

से **अवयवे** की और **तस्य विकारः** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है और ऊपर से **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

षष्ठी-समर्थ अनुदात्त-वर्ण आदि वाले प्रातिपदिक से विकार और अवयव अर्थ में अञ् प्रत्यय होता है।

दाधित्थम्। कैथ का अंग या उससे बना हुआ। **दधित्थस्य अवयवो विकारो वा** विग्रह करके **दधित्थ+ङस्** से **अनुदात्तादेश्च** सूत्र के द्वारा अञ् प्रत्यय होने पर, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **दाधित्थ** और स्वादिकार्य करके **दाधित्थम्** सिद्ध हो जाता है।

कापित्थम्। कैथ का अंग या उससे बना हुआ। **कपित्थस्य अवयवो विकारो वा** विग्रह करके **कपित्थ+ङस्** से **अनुदात्तादेश्च** सूत्र के द्वारा अञ् प्रत्यय होने पर, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **कापित्थ** और स्वादिकार्य करके **कापित्थम्** सिद्ध हो जाता है।

अव्युत्पन्न पक्ष में **दधित्थ** और **कपित्थ** ये दोनों शब्द **फिषोऽन्त उदात्तः** (फिट्सूत्र) से अन्तोदात्त होने के कारण अनुदात्तादि हैं। व्युत्पन्न-पक्ष में **दध्नि तिष्ठति** विग्रह करके क-प्रत्यय, उपपदसमास, **पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्** सूत्र से सकार को तकार करके निष्पन्न **दधित्थ** शब्द के क-प्रत्ययान्त होने के कारण **थाथघञ्क्ताजवित्रकाणाम्** (६.२.१४४) सूत्र के द्वारा अन्तोदात्त होने से अवशिष्ट समग्र पद निघात होकर अनुदात्तादि हो जाता है। इसके फलस्वरूप प्रकृत सूत्र से अञ् प्रत्यय हो जाता है।

१५२१. पलाशादिभ्यो वा ४।३।१४१॥

पालाशम्। खादिरम्। कारीरम्।

पलाशादिभ्यो वा। पलाश आदिर्येषां ते पलाशादयस्तेभ्यः पलाशादिभ्यः, बहुव्रीहिः। पलाशादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, वाव्ययम्। **ओरञ्** से **अञ्** की, **अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः** से **अवयवे** की और **तस्य विकारः** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है और ऊपर से **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

षष्ठी-समर्थ पलाशादि-गणपठित प्रातिपदिकों से विकार और अवयव अर्थ में विकल्प से अञ् प्रत्यय होता है।

पलाशादिगण में पठित पलाश, खदिर, शिंशपा, स्पन्दन ये अनुदात्तादि शब्द हैं। अतः पूर्वसूत्र से नित्य से प्राप्त होने पर और शेष शब्दों से अप्राप्त होने पर प्रकृतसूत्र से विकल्प से अञ् किया गया है। अतः यह प्राप्ताप्राप्त (उभयत्र) विभाषा है। अञ् न

होने के पक्ष में औत्सर्गिक अण् प्रत्यय होगा। यद्यपि अण् और अञ् प्रत्ययों से समान ही रूप बनते हैं तथापि स्वर में भेद अवश्य होता है।

पालाशम्। पलाश का विकार या अवयव। **पलाशस्य विकारोऽवयवो वा** विग्रह करके **पलाश+ङस्** से **पलाशादिभ्यो वा** सूत्र के द्वारा विकल्प से अण् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **पालाश** और स्वादिकार्य होकर **पालाशम्** सिद्ध हो जाता है। अण् होने के पक्ष में भी समान ही रूप बनता है।

खादिरम्। खैर का विकार या अवयव। **खदिरस्य विकारोऽवयवो वा** विग्रह करके **खदिर+ङस्** से **पलाशादिभ्यो वा** सूत्र के द्वारा विकल्प से अञ् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **खादिर** और स्वादिकार्य होकर **खादिरम्** सिद्ध हो जाता है।

कारीरम्। करीर का अंग या विकार। **करीरस्य विकारोऽवयवो वा** विग्रह करके **करीर+ङस्** से **पलाशादिभ्यो वा** सूत्र के द्वारा विकल्प से अण् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **कारीर** और स्वादिकार्य होकर **कारीरम्** सिद्ध हो जाता है।

पलाशादिगणः- पलाश, खदिर, शिंशपा, स्पन्दन, पुलाक, करीर, शिरीष, यवास, विकङ्कत।

१५२२. शम्याः ष्लञ् ४।३।१४२॥
शामीलं भस्म। षित्वान्ङीष्। शामीली सुक्।

शम्याः ष्लञ्। शमी-शब्दस्य पञ्चम्यन्तं रूपं शम्याः, ष्लञ् प्रथमान्तम्। **अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः** से **अवयवे** की और **तस्य विकारः** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है और ऊपर से **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां** प्रथमाद्वा का अधिकार आ ही रहा है।

षष्ठी-समर्थ शमी इस प्रातिपदिक से विकार और अवयव अर्थ में ष्लञ् प्रत्यय होता है।

ष्लञ् में ञकार इत्संज्ञक है और षकार की भी **षः प्रत्ययस्य** से इत्संज्ञा हो जाती है, **ल** बचता है। षित्करण स्त्रीत्वविवक्षा में ङीष् के लिये है।

शामीलं भस्म। शमी का विकार भस्म। **शम्याः विकारः** विग्रह करके **शमी+ङस्** से **शम्याः ष्लञ्** सूत्र से ष्लञ् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि करके **शामील** शब्द बन जाता है। भसंज्ञा न होने के कारण अकारलोप नहीं होता। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **शामीलम्** (**भस्म**) सिद्ध हो जाता है।

षित्वान्ङीष्। शामीली स्रुक्। स्रुक् वाच्य होने पर उसके स्त्रीलिंग होने के कारण उसके विशेषण **शामील** शब्द से भी **षिद्गौरादिभ्यश्च** सूत्र से ङीष् प्रत्यय होकर **शामीली** शब्द बनने के बाद स्वादिकार्य होता है।

१५२३. मयड्वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः ४।३।१४३॥

प्रकृतिमात्रान्मयड् वा स्याद् विकारावयवयोः। अश्ममयम्, आश्मनम्। 'अभक्ष्य-' इति किम्? मौद्गः सूपः। कार्पासमाच्छादनम्।

मयड् वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः। भक्ष्यं च आच्छादनं च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो भक्ष्याच्छादने, न भक्ष्याच्छादने अभक्ष्याच्छादने, तयोरभक्ष्याच्छादनयोः। **अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः** से **अवयवे** की और **तस्य विकारः** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

प्रकृतिमात्र अर्थात् षष्ठ्यन्त समर्थ सभी प्रातिपदिकों से विकार और अवयव अर्थ में विकल्प से मयट् प्रत्यय होता है किन्तु विकार या अवयव जो हैं, वे भक्ष्य एवं आच्छादन नहीं होने चाहिए, लौकिक प्रयोग के सम्बन्ध में।

भक्ष्य (खाने योग्य वस्तु) और **आच्छादन** (ढकने वाली वस्तु, ओढ़ना आदि) यदि गम्यमान हो रहा हो तो यह प्रत्यय नहीं होगा। **टकार** की इत्संज्ञा होकर **मय** बचता है। **टित्** का फल स्त्रीत्वविवक्षा में **टिड्ढाणञ्०** की प्रवृत्ति है। सूत्र में **एतयोः** पद से प्रकरणानुसार **विकार** और **अवयव** अर्थ लक्षित किये गये हैं। सूत्र में **विकार** और **अवयव** की अनुवृत्ति सिद्ध होते हुये पुनः **एतयोः** पद के ग्रहण से विकारावयव अर्थ में कहे गये विशेष प्रत्ययों के साथ ही मयट् का वैकल्पिक विधान है।

अश्ममयम्। पत्थर का विकार अथवा पत्थर से बना हुआ कोई पदार्थ। **अश्मनो विकारः** लौकिक विग्रह और **अश्मन् ङस्** अलौकिक विग्रह है। **मयड् वैतयोर्भाषायाम-भक्ष्याच्छादनयोः** से **मयट्** प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **अश्मन्+मय** बना। णित् न होने के कारण आदिवृद्धि नहीं हुई और **स्वादिष्वसर्वनामस्थाने** से पदत्व होने के कारण नकार का **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप हुआ, **अश्म+मय=अश्ममय** बना। स्वादिकार्य करके **अश्ममयम्** सिद्ध हुआ। मयट् न होने के पक्ष में **तस्य विकारः** से औत्सर्गिक **अण्** करके टिलोप करने पर **आश्मम्** बनता है। **अवयव** अर्थ में **अण्** होने पर टि का लोप भी नहीं होता, अतः **आश्मनम्** भी बना चुके हैं।

अभक्ष्येत्यादि किम्? मौद्गः सूपः, कार्पासम् आच्छादनम्। अब यहाँ पर प्रश्न करते हैं कि **मयड् वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः** इस सूत्र में **अभक्ष्याच्छादनयोः** यह पद न पढ़ते तो क्या होता? उत्तर यह है कि **मौद्गः सूपः, कार्पासम् आच्छादनम्**

आदि जगहों पर **मुद्ग** और **कार्पास** ये क्रमशः **भक्ष्य** और **आच्छादन** वस्तु हैं। इनमें भी **मयट्** होने लगता और **मुद्गमयम्, कार्पासमयम्** ऐसे अनिष्ट रूप बनने लगते। अनिष्ट रूपों के निवारणार्थ उक्त पद सूत्र में पठित है, जिससे मयट् नहीं हुआ अपितु औत्सर्गिक अण् होकर **मौद्गः, कार्पासम्** ये इष्ट रूप सिद्ध हो गये।

१५२४. नित्यं वृद्धशरादिभ्यः ४।३।१४४॥

आम्रमयम्। शरमयम्।

'एकाचो नित्यम्' (वा.५०५२)। त्वङ्मयम्। वाङ्मयम्। कथं तर्हि 'आप्यम्' 'अम्मयम्' इति? 'तस्येदम्' (सू.१५००) इत्यण्णन्तात् स्वार्थे ष्यञ्।

नित्यं वृद्धशरादिभ्यः। शर आदिर्येषां ते शरादयस्तेभ्यः। वृद्धाश्च शरादयश्च वृद्धशरादयस्तेभ्यः। नित्यं द्वितीयान्तं क्रियाविशेषणम्। वृद्धशरादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तस्य विकारः** से **तस्य** और **मयड् वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः** से **वा** छोड़कर सभी पदों की अनुवृत्ति है। **तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि पदों का अधिकार आ ही रहा है।

षष्ठ्यन्त वृद्धसंज्ञक प्रातिपदिकों एवं शरादिगण-पठित प्रातिपदिकों से विकार और अवयव अर्थ में नित्य से मयट् प्रत्यय होता है किन्तु वे विकार या अवयव भक्ष्य एवं आच्छादन नहीं होने चाहिए।

कुछ विशिष्ट शब्दों में नित्य से मयट् प्रत्यय का विधान करने के लिये **नित्यम्** पद का प्रयोग किया गया है। पूर्वसूत्रों से विकल्प से प्राप्त होने पर नित्य से किया गया है।

आम्रमयम्। आम्रवृक्ष का विकार या अवयव। **आम्रस्य विकारोऽवयवो वा। आम्र ङस्** में **तस्य विकारः** के अधिकार में **नित्यं वृद्धशरादिभ्यः** से नित्य से **मयट्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **आम्रमय** बना। णित् आदि न होने से आदिवृद्धि नहीं हुई। स्वादिकार्य करके **आम्रमयम्** सिद्ध हुआ। यह वृद्धसंज्ञक का उदाहरण है, क्योंकि आदि अच् वृद्धिसंज्ञक होने के कारण **वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद् वृद्धम्** सूत्र के द्वारा **आम्र** शब्द की वृद्धसंज्ञा हुयी है।

शरमयम्। सरकंडों का विकार या अवयव। **शराणां विकारः** विग्रह करके **शर+आम्** से मयट् करके **शरमय** और स्वादिकार्य करके **शरमयम्** सिद्ध हो जाता है। यह शरादि का उदाहरण है।

शरादिगणः- शर, दर्भ, मृद्, (मृत्), कुटी, तृण, सोम, बल्वज।

एकाचो नित्यम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- एक-अच् युक्त प्रातिपदिकों से भी अवयवार्थ और विकारार्थ में नित्य से मयट्-प्रत्यय होता है।

त्वङ्मयम्। त्वचा का बना हुआ (विकार)। **त्वचो विकारः** विग्रह करके **तस्य विकारः** के अधिकार में **एकाचो नित्यम्** वार्तिक से नित्य से **मयट्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके चकार को **चोः कुः** से कुत्व होकर ककार और उसको **झलां जशोऽन्ते** सूत्र से जश्त्व गकार होने के बाद उसको **प्रत्यये भाषायां नित्यम्** वार्तिक से नित्य से अनुनासिक ङकार आदेश होकर **त्वङ्मय** बना है। स्वादिकार्य करके **त्वङ्मयम्** सिद्ध हो जाता है।

वाङ्मयम्। वाणी का परिवर्तन रूप, वाणी-सम्बन्धी, साहित्य आदि। **वाचो विकारः** विग्रह करके **तस्य विकारः** के अधिकार में **एकाचो नित्यम्** वार्तिक से नित्य से **मयट्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिककसंज्ञा, सुप् का लुक् करके चकार को **चोः कुः** से कुत्व होकर ककार और उसको **झलां जशोऽन्ते** सूत्र से जश्त्व गकार होने पर उसको **प्रत्यये भाषायां नित्यम्** वार्तिक से नित्य से अनुनासिक ङकार आदेश होकर **वाङ्मय** बना है। स्वादिकार्य करके **वाङ्मयम्** सिद्ध हो जाता है।

कथं तर्हि 'आप्यम्' 'अम्मयम्' इति? 'तस्येदम्' इत्यण्णन्तात् स्वार्थे ष्यञ्। यह प्रश्न कर रहे हैं कि उपर्युक्त वार्तिक के अनुसार तो एकाच्-शब्द से केवल मयट् प्रत्यय होना चाहिये किन्तु **अपां विकारः** अर्थ में **अप्**-शब्द के **आप्यम्** और **अम्मयम्** ये दो रूप कैसे सुनायी पड़ते हैं? उत्तर देते हैं कि एकाच् होने के कारण **अम्मयम्** तो बन ही जाता है किन्तु **आप्यम्** की सिद्धि के लिये पहले **अप्**-शब्द से **तस्येदम्** सूत्र से इदमर्थ में अण् प्रत्यय होकर **आप** शब्द बन जाता है और अणन्त **आप** शब्द से स्वार्थ में **गुणवचनब्राह्माणादिभ्यः कर्मणि च** (५.११२४) सूत्र में पठित **चातुर्वर्ण्यादीनां स्वार्थे उपसङ्ख्यानम्** वार्तिक के द्वारा ष्यञ् प्रत्यय होने पर भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आप्य** शब्द बनता है और स्वादिकार्य होने पर **आप्यम्** सिद्ध हो जाता है।

१५२५. गोश्च पुरीषे ४।३।१४५॥
गोः पुरीषं गोमयम्।

गोश्च पुरीषे। गोः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, पुरीषे सप्तम्यन्तं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। **तस्य विकारः** इस सम्पूर्ण सूत्र तथा **मयड् वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः** से **मयट्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ ही रहा है।

यदि पुरीष=मल (गोबर) अर्थ हो तो गो-शब्द से मयट् प्रत्यय होता है।

यह सूत्र **गोपयसोर्यत्** से प्राप्त **यत्** का बाधक है। यद्यपि गोबर न तो गाय का अवयव है और न ही गाय का विकार, तथापि सम्बन्ध सामान्य में ही प्रत्यय करना उचित है।

गोः पुरीषं गोमयम्। गाय का विकार अर्थात् गोबर। **गोः विकारः** लौकिक विग्रह और **गो ङस्** अलौकिक विग्रह है। **गोश्च पुरीषे** से मयट्, अनुबन्धलोप होकर **गो+मय,** सु, अम् आदेश, पूर्वरूप होकर **गोमयम्** सिद्ध हो जाता है।

१५२६. पिष्टाच्च ४।३।१४६॥

मयट् स्याद् विकारे। पिष्टमयं भस्म।

कथं पैष्टी सुरेति? सामान्यविवक्षायां 'तस्येदम्' (सू.१५००) इत्यण्।

पिष्टाच्च। पिष्टात् पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **तस्य विकारः** इस सम्पूर्ण सूत्र तथा **मयड् वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः** से **मयट्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ ही रहा है।

विकार अर्थ में षष्ठी-समर्थ पिष्ट-शब्द से भी मयट् प्रत्यय होता है।

पिष्ट-शब्द प्राणिभिन्न और ओषधिभिन्न तथा वृक्षभिन्न है, अतः प्रकृत सूत्र से केवल विकार अर्थ में ही मयट् प्रत्यय होता है। यह सूत्र औत्सर्गिक अण् का अपवाद है।

पिष्टमयं भस्म। आटे की बनी राख। **पिष्टस्य विकारः** लौकिक विग्रह और **पिष्ट+ङस्** अलौकिक विग्रह है। **पिष्टाच्च** सूत्र से मयट् प्रत्यय, अनुबन्धलोप होकर **पिष्टमय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पिष्टमयम्** सिद्ध हो जाता है।

कथं पैष्टी सुरेति? सामान्यविवक्षायां 'तस्येदम्' इत्यण्। यह प्रश्न कर रहे हैं कि यदि विकारार्थ में उक्त सूत्र से मयट् प्रत्यय होता है तो **पिष्टस्य विकारः सुरा** अर्थ में भी मयट् होकर **पिष्टमयी सुरा** बनना चाहिये किन्तु **पैष्टी सुरा** ऐसा अणन्त रूप कैसे बना? इसका उत्तर देते हुये मूलकार कहते हैं कि **तस्येदम्** सूत्र से सम्बन्ध-सामान्य अर्थ में भी अण् प्रत्यय हो सकता है और अणन्त से ङीप् भी **टिड्ढाणञ्०** सूत्र से हो ही जाता है। इस तरह **पैष्टी** रूप असमीचीन नहीं है। वैसे मयट् होकर **पिष्टमयी** भी बनता है।

१५२७.सञ्ज्ञायां कन् ४।३।१४७॥

'पिष्टात्' इत्येव। पिष्टस्य विकार-विशेषः पिष्टकः।

'पूपोऽपूपः पिष्टकः स्यात्'।

सञ्ज्ञायां कन्। संज्ञायां सप्तम्यन्तं, कन् प्रथमान्तम्। **पिष्टाच्च** सूत्र से **पिष्टात्** की तथा **तस्य विकारः** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ ही रहा है।

संज्ञा गम्य होने पर विकार अर्थ में षष्ठी-समर्थ पिष्ट-शब्द से कन् प्रत्यय होता है।

'पिष्टात्' इत्येव। यह विधान पिष्ट-शब्द से ही है, क्योंकि पूर्वसूत्र से **पिष्टात्** की अनुवृत्ति आती है।

पिष्टस्य विकार-विशेषः पिष्टकः। आटे का बना हुआ पुआ। **पिष्टस्य विकारः** लौकिक विग्रह और **पिष्ट+ङस्** अलौकिक विग्रह है। **संज्ञायां कन्** सूत्र से कन् प्रत्यय, अनुबन्धलोप होकर **पिष्टक** और स्वादिकार्य होकर **पिष्टकः** सिद्ध हो जाता है।

'पूपोऽपूपः पिष्टकः स्यात्'। कोशकार ने पिष्टक शब्द के पर्यायवाची शब्द **पूप** और **अपूप** शब्द दिये हैं और यह भी प्रमाणित किया है कि संज्ञा में पिष्ट-शब्द से कन् प्रत्यय होता है।

१५२८. व्रीहेः पुरोडाशे ४।३।१४८॥

मयट् स्यात्। बिल्वाद्यणोऽपवादः।
व्रीहिमयः पुरोडाशः। व्रैहमन्यत्।

व्रीहेः पुरोडाशे। व्रीहेः पञ्चम्यन्तं, पुरोडाशे सप्तम्यन्तम्। **तस्य विकारः** के दोनों पदों की तथा **मयड् वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः** से **मयट्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ ही रहा है।

षष्ठी-समर्थ व्रीहि-शब्द से मयट् प्रत्यय होता है, पुरोडाश रूप विकार अभिधेय होने पर।

बिल्वाद्यणोऽपवादः। व्रीहि-शब्द का पाठ बिल्वादिगण में है, अतः **बिल्वादिभ्योऽण्** से प्राप्त अण् का यह अपवाद है।

व्रीहिमयः पुरोडाशः। व्रैहमन्यत्। धान से बना पुरोडाशात्मक विकार। **व्रीहीणां विकारः पुरोडाशः** विग्रह करके **व्रीहि+आम्** से बिल्वादि-अण् को बाधकर **व्रीहेः पुरोडाशे** सूत्र से मयट् प्रत्यय होने पर **व्रीहिमय** शब्द बनता है और स्वादिकार्य होकर **व्रीहिमयम्** सिद्ध हो जाता है। पुरोडाश से भिन्न अन्य विकार अभिधेय होने पर यह मयट् नहीं होता अपितु औत्सर्गिक अण् होकर आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **व्रैह** और स्वादिकार्य होकर **व्रैहम्** सिद्ध हो जाता है।

१५२९. असञ्ज्ञायां तिलयवाभ्याम् ४।३।१४९॥

तिलमयम्। यवमयम्। सञ्ज्ञायां तु तैलम्, यावकः।

असञ्ज्ञायां तिलयवाभ्याम्। न संज्ञा असंज्ञा, तस्यामसंज्ञायाम्, नञ्तत्पुरुषः। तिलश्च यवश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वस्तिलयवौ, ताभ्यां तिलयवाभ्याम्। असंज्ञायां सप्तम्यन्तं, तिलयवाभ्यां पञ्चम्यन्तम्। **तस्य विकारः** के दोनों पदों की तथा **मयड्**

वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः से **मयट्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ ही रहा है।

षष्ठी-समर्थ तिल और यव इन प्रातिपदिकों से विकार अर्थ में मयट् प्रत्यय होता है, संज्ञा न होने पर।

तिल और **यव** भक्ष्यपदार्थ हैं, अतः **मयड् वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः** से **मयट्** की प्राप्ति नहीं थी, अतः यह विधान है।

तिलमयम्। सञ्ज्ञायां तु तैलम्। तिल से बना हुआ भक्ष्य पदार्थ। **तिलानां विकारः** विग्रह करके **तिल+आम्** से **असंज्ञायां तिलयवाभ्याम्** सूत्र से मयट् प्रत्यय होने पर **तिलमय** शब्द बनता है और स्वादिकार्य होकर **तिलमयम्** सिद्ध हो जाता है। यह असंज्ञा में बना है। संज्ञा में तो मयट् नहीं होता अपितु औत्सर्गिक अण् होकर आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **तैल** और स्वादिकार्य होकर **तैलम्** (तेल) सिद्ध हो जाता है।

यवमयम्। सञ्ज्ञायां तु यावकः। जौ से बना हुआ भक्ष्य पदार्थ। **यवानां विकारः** विग्रह करके **यव+आम्** से **असंज्ञायां तिलयवाभ्याम्** सूत्र से मयट् प्रत्यय होने पर **यवमय** शब्द बनता है और स्वादिकार्य होकर **यवमयम्** सिद्ध हो जाता है। यह असंज्ञा में बना है। संज्ञा में तो मयट् नहीं होता अपितु औत्सर्गिक अण् होकर आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **याव** बनता है और **यावादिभ्यः कन्** (५.४.२९) सूत्र से स्वार्थ में कन् प्रत्यय होकर **यावक** शब्द बन जाता तथा स्वादिकार्य होकर **यावकः** (बिना भूसी के जौ को उबाल कर दूध-चीनी मिलाकर बनाया गया खाद्य पदार्थ) सिद्ध हो जाता है।

१५३०. तालादिभ्योऽण् ४।३।१५२॥

अञ्मयटोरपवादः।

'तालाद्धनुषि' (ग.सू.१९४)। **तालं धनुः। अन्यत्तालमयम्। ऐन्द्रायुधम्।**

तालादिभ्योऽण्। ताल आदिर्येषां ते तालादयस्तेभ्यस्तालादिभ्यः, बहुव्रीहिः। तालादिभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अण् प्रथमान्तम्। **अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः** से **अवयवे** की और **तस्य विकारः** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ ही रहा है।

षष्ठी-समर्थ तालादि-गणपठित प्रातिपदिकों से अवयव और विकार अर्थ में अण् प्रत्यय होता है।

अञ्मयटोरपवादः। यह **नित्यं वृद्धशरादिभ्यः** से प्राप्त मयट् और **अनुदात्तादेश्च** से प्राप्त अञ् का अपवाद है।

तालाद्धनुषि। यह तालादिगण के अन्तर्गत पठित गणसूत्र है। सूत्रार्थः- ताल-शब्द से धनुष अर्थ गम्य होने पर ही अण् होता है, अन्यथा नहीं होता।

तालं धनुः। अन्यत् तालमयम्। ताड़ का बना हुआ धनुष। **तालस्य विकारः** विग्रह करके **ताल+ङस्** से **नित्यं वृद्धशरादिभ्यः** से प्राप्त मयट् को बाधकर **तालादिभ्योऽण्** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, पर्जन्यवल्लक्षणन्यायेन आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **ताल** ही बनता है और स्वादिकार्य होकर **तालम्** सिद्ध हो जाता है। यह प्रयोग धनुष अर्थ गम्य होने पर बना है। धनुष से भिन्न अर्थ में तो **नित्यं वृद्धशरादिभ्यः** से मयट् प्रत्यय होकर **तालमयम्** सिद्ध हो जाता है।

ऐन्द्रायुधम्। इन्द्रायुध=वज्र का बना हुआ धनुष। **इन्द्रायुधस्य विकारः** विग्रह करके **इन्द्रायुध+ङस्** से **अनुदात्तादेश्च** सूत्र से प्राप्त अञ्-प्रत्यय को बाधकर **तालादिभ्योऽण्** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **ऐन्द्रायुध** शब्द बनता है और स्वादिकार्य होकर **ऐन्द्रायुधम्** सिद्ध हो जाता है। **इन्द्रायुध** शब्द के समास-स्वर से अन्तोदात्त होने के कारण शिष्ट-स्वर निघात होकर अनुदात्तादि है।

तालादिगणः- तालाद्धनुषि। बार्हिण, इन्द्रालिश, इन्द्रादृश, इन्द्रायुध, चय, श्यामाक, पीयूक्षा।

१५३१. जातरूपेभ्यः परिमाणे ४।३।१५३॥

अण्। बहुवचनात् पर्यायग्रहणम्। हाटकः तापनीयः सौवर्णो वा निष्कः। 'परिमाणे' किम्? हाटकमयी यष्टिः।

जातरूपेभ्यः परिमाणे। जातरूपेभ्यः पञ्चम्यन्तं, परिमाणे सप्तम्यन्तम्। **तालादिभ्योऽण्।** ताल आदिर्येषां ते तालादयस्तेभ्यस्तालादिभ्यः, बहुव्रीहिः। तालादिभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अण् प्रथमान्तम्। **तालादिभ्योऽण्** से **अण्** की और **तस्य विकारः** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ ही रहा है।

षष्ठी-समर्थ सुवर्णवाची प्रातिपदिकों से यदि परिमाण जाना जाय तो विकार अर्थ में अण् प्रत्यय होता है।

बहुवचनात् पर्यायग्रहणम्। सूत्र में **जातरूपेभ्यः** यह बहुवचन निर्देश इस लिये किया गया कि जातरूप-शब्द के पर्यायवाची शब्दों का भी ग्रहण हो। अतः जातरूप, हाटक, तपनीय, सुवर्ण आदि सभी शब्दों से यह अण् प्रत्यय हो जाय। **जातरूप**-शब्द का अर्थ है **सुवर्ण** (सोना)। आगे परिमाणवाची **निष्कः** शब्द का प्रयोग किया गया है और उसका अर्थ है **सोने का सिक्का, सुवर्णमुद्रा।**

हाटकः तापनीयः सौवर्णो वा निष्कः। मूलकार ने जातरूप-शब्द के तीन पर्यायवाची शब्दों का उदाहरण एक साथ दिया है। इसके तीन वाक्य बनाकर प्रयोगसिद्धि करनी चाहिये।

हाटको निष्कः। सोने का विकार (सोने का बना हुआ) सिक्का। **निष्क**-शब्द से सामान्य रूप से १६ माशे या एक कर्ष के तोल के बराबर के परिमाण का बोध होता है। **हाटकस्य विकारः** विग्रह करके **हाटक+ङस्** से **नित्यं वृद्धशरादिभ्यः** को बाधकर **जातरूपेभ्यः परिमाणे** सूत्र के द्वारा **अण्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, पर्जन्यवल्लक्षणन्यायेन आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **हाटक** ही बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **हाटकः** सिद्ध हो जाता है। यद्यपि अण् प्रत्यय करने व न करने पर समान ही रूप बनते हैं तथापि केवल **हाटक** शब्द से सुवर्ण का बोध होता है तो अणन्त **हाटक** शब्द से सुवर्ण के परिमाण का बोध होता है। केवल **हाटक** शब्द पुंल्लिंग में और परिमाणबोधक **निष्क** आदि के योग में अणन्त **हाटक** शब्द तत्तत् लिंगों में रहता है।

तापनीयो निष्कः। सोने का विकार (सोने का बना हुआ) सिक्का। **तपनीयस्य विकारः** विग्रह करके **तपनीय+ङस्** से **नित्यं वृद्धशरादिभ्यः** को बाधकर **जातरूपेभ्यः परिमाणे** सूत्र के द्वारा **अण्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **तापनीय** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **तापनीयः** सिद्ध हो जाता है। सुवर्ण को **तपनीय** इस लिये कहते हैं, क्योंकि इसको अग्नि में तपाकर इसकी अशुद्धि निकाल दी जाती है और आभूषणादि बनाये जाते हैं।

सौवर्णो वा निष्कः। सोने का विकार (सोने का बना हुआ) सिक्का। **सुवर्णस्य विकारः** विग्रह करके **सुवर्ण+ङस्** से **अनुदात्तादेश्च** को बाधकर **जातरूपेभ्यः परिमाणे** सूत्र के द्वारा **अण्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **सौवर्ण** और स्वादिकार्य होकर **सौवर्णः** सिद्ध हो जाता है।

सुवर्ण को **तपनीय** इस लिये कहते हैं कि इसको अग्नि में तपाकर इसकी अशुद्धि निकाल दी जाती है और आभूषणादि बनाये जाते हैं।

'परिमाणे' किम्? हाटकमयी यष्टिः। प्रकृतसूत्र में **परिमाणे** शब्द का निवेश होने के कारण परिमाण गम्य होने पर ही यह अण् प्रत्यय होता है, अन्यथा नहीं होता। अतः **हाटकमयी यष्टिः** (सुवर्ण की छड़ी) में अण् नहीं होता, क्योंकि **यष्टि** शब्द परिमाण का वाचक नहीं है। अतः **नित्यं वृद्धशरादिभ्यः** सूत्र से मयट् प्रत्यय होकर **हाटकमय** शब्द बनता है और स्त्रीलिंग **यष्टि**-शब्द का यह विशेषण होने के कारण इस शब्द में भी स्त्रीत्व में **टिड्ढाणञ्०** सूत्र से ङीप् होकर **हाटकमयी** सिद्ध हो जाता है।

१५३२. प्राणिरजतादिभ्योऽञ् ४।३।१५४॥

शौकम्। बाकम्। राजतम्।

प्राणिरजतादिभ्योऽञ्। रजत आदिर्येषां ते रजतादयः, प्राणिनश्च रजतादयश्च प्राणिरजतादयस्तेभ्यः प्राणिरजतादिभ्यः, बहुव्रीहिगर्भेतरेतरयोगद्वन्द्वः। **अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः** से **अवयवे** की और **तस्य विकारः** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ ही रहा है।

षष्ठी-समर्थ प्राणिवाची और रजतादि-गणपठित प्रातिपदिकों से अवयव और विकार अर्थ में अञ् प्रत्यय होता है।

शौकम्। तोते का अंग या उससे बना हुआ। **शुकस्य अवयवो विकारो वा** विग्रह करके **शुक+ङस्** से **प्राणिरजतादिभ्योऽञ्** सूत्र के द्वारा अञ्प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अंकार का लोप होकर **शौक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **शौकम्** सिद्ध हो जाता है।

बाकम्। बगुले का अंग या उससे बना हुआ। **बकस्य अवयवो विकारो वा** विग्रह करके **बक+ङस्** से **प्राणिरजतादिभ्योऽञ्** सूत्र के द्वारा अञ्प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **बाक** तथा स्वादिकार्य होकर **बाकम्** सिद्ध हो जाता है।

राजतम्। चाँदी का विकार, उससे बना हुआ। **रजतस्य विकारः** विग्रह करके **रजत+ङस्** से **प्राणिरजतादिभ्योऽञ्** सूत्र के द्वारा अञ्प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **राजत** तथा स्वादिकार्य होकर **राजतम्** सिद्ध हो जाता है।

प्रथम दो उदाहरणों **शौकम्, बाकम्** में **प्राणिनां कुपूर्वम्** (फिट्सूत्र) से आद्युदात्त होने से अञ् प्राप्त नहीं था, अतः यह अपूर्व विधान है। **राजतम्** में **अनुदात्तादेश्च** सूत्र से अञ् प्राप्त रहा, क्योंकि **रजत** शब्द घृतादि में अन्तोदात्त के रूप में पठित है। अतः मयट् के बाधनार्थ अञ् का विधान किया गया है।

रजतादिगणः- रजत, सीस, लोह, उदुम्बर, नीप, दारु, रोहितक, बिभीतक, पीतदारु, तीव्रदारु, त्रिकण्टक, कण्टकार।

१५३३. ञितश्च तत्प्रत्ययात् ४।३।१५५॥

ञिद्यो विकारावयवप्रत्ययः तदन्तादञ् स्यात् तयोरेवार्थयोः। मयटोऽपवादः। शामीलस्य शामीलम्। दाधित्थस्य दाधित्थम्। कापित्थम्। ञितः किम्? बैल्वमयम्।

ञितश्च तत्प्रत्ययात्। ञ् इत् यस्य स ञित्, तस्मात् ञितः। ताभ्यां विहितः प्रत्ययस्तत्प्रत्ययस्तस्मात् तत्प्रत्ययात्। ञितः पञ्चम्यन्तं, चाव्ययं, तत्प्रत्ययात् पञ्चम्यन्तम्। **प्राणिरजतादिभ्योऽञ्** से **अञ्** की, **अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः** से **अवयवे** की और

तस्य विकारः के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ रहा है।

विकार और अवयव अर्थों में विहित जो ञित् प्रत्यय, तदन्त षष्ठी-समर्थ प्रातिपदिकों से भी अवयव और विकार अर्थ में ही अञ् प्रत्यय होता है।

विकार का भी विकार और अवयव का भी अवयव कहना हो तो यह प्रत्यय हो जाता है।

स्मरणीयः- तस्य विकारः (४.३.१२४) तथा **अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः** (४.३.१३५) के अधिकारों में निम्नलिखित सूत्रों से ञित् प्रत्यय किये जाते हैं-

१. **ओरञ्** (४.३.१३९)
२. **अनुदात्तादेश्च** (४.३.१४०)
३. **पलाःशादिभ्यो वा** (४.३.१४१)
४. **शम्याः ष्लञ्** (४.३.१४२)
५. **प्राणिरजतादिभ्योऽञ्** (४.३.१५४)
६. **उष्ट्राद् वुञ्** (४.३.१५७)
७. **एण्या ढञ्** (४.३.१५९)
८. **कंसीयपरशव्ययोर्यञञौ लुक् च** (४.३.१६८)। अतः इन सूत्रों से विहित ञित्प्रत्ययान्त शब्दों से पुनः विकार एवं अवयव अर्थ अभिधेय होने पर प्रकृतसूत्र से अञ् प्रत्यय किया जाता है। यद्यपि अञ्प्रत्ययान्त से पुनः अञ्प्रत्यय करने पर रूपों में अन्तर नहीं आता तथापि अर्थ की विशेषता रहती है। भाष्यकार ने तो समानार्थक दो प्रत्ययों के होने पर अरुचि दिखाकर प्रकृत सूत्र का प्रत्याख्यान कर दिया है- **विकारावयवशब्दात् प्रसङ्ग इति चेत्तन्न, किं कारणम्? अनभिधानात्।**

मयटोऽपवादः। यह मयट् प्रत्यय का अपवाद है।

शामीलस्य शामीलम्। शमी के विकार का विकार। पहले **शम्याः विकारः** विग्रह करके **शमी+ङस्** से **शम्याः ष्लञ्** सूत्र से ष्लञ् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि करके **शामील** शब्द बन जाता है। इस तरह **शामील** शब्द ञिदन्त है। उसके बाद पुनः **शामीलस्य विकारः** विग्रह करके **शामील** शब्द से **ञितश्च तत्प्रत्ययात्** से अञ्प्रत्यय, सुप् का लुक्, पर्जन्यवल्लक्षणन्यायेन आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करके **शामील** ही बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **शामीलम्** सिद्ध हो जाता है।

दाधित्थस्य दाधित्थम्। कैथ के विकार का विकार या कैथ के अवयव का अवयव। पहले **दधित्थस्य अवयवो विकारो वा** विग्रह करके **दधित्थ+ङस्** से **अनुदात्तादेश्च** सूत्र के द्वारा अञ् प्रत्यय होने पर, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **दाधित्थ** शब्द बना है। इस तरह

दाधित्थ शब्द ञिदन्त है। उसके बाद पुनः **दाधित्थस्य विकारः** विग्रह करके **दाधित्थ** शब्द से **ञितश्च तत्प्रत्ययात्** से अञ्प्रत्यय, सुप् का लुक्, पर्जन्यवल्लक्षणन्यायेन आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करके **दाधित्थ** ही बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **दाधित्थम्** सिद्ध हो जाता है।

कापित्थम्। कैथ के विकार का विकार या कैथ के अवयव का अवयव। पहले **कपित्थस्य अवयवो विकारो वा** विग्रह करके **कपित्थ+ङस्** से **अनुदात्तादेश्च** सूत्र के द्वारा अञ् प्रत्यय होने पर, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **कापित्थ** शब्द बना है। इस तरह **कापित्थ** शब्द ञिदन्त है। उसके बाद पुनः **कापित्थस्य विकारः** विग्रह करके **कापित्थ** शब्द से **ञितश्च तत्प्रत्ययात्** से अञ्प्रत्यय, सुप् का लुक्, पर्जन्यवल्लक्षणन्यायेन आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करके **कापित्थ** ही बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कापित्थम्** सिद्ध हो जाता है।

ञितः किम्? बैल्वमयम्। प्रकृतसूत्र में **ञितः** पद का निवेश होने के कारण जो प्रत्यय ञित् होगा, तदन्त शब्द से ही यह अञ् प्रत्यय होता है, अन्यथा नहीं होता। अतः **बैल्व** शब्द से अञ् नहीं होता, क्योंकि यहाँ पर **बिल्व**-शब्द से **बिल्वादिभ्योऽण्** से अण् प्रत्यय होकर **बैल्व** बना है और यह ञिदन्त नहीं है। अतः द्वितीय-विकारार्थक **मयट्**-प्रत्यय होकर **बैल्वमयम्** बनता है। बिल्व के विकार का विकार या बिल्व के अवयव का अवयव।

१५३४. क्रीतवत्परिमाणात् ४।३।१५६॥

'प्राग्वहतेष्ठक्' (सू.१५४८) इत्यारभ्य क्रीतार्थे ये प्रत्यया येनोपाधिना परिमाणाद्विहितास्ते तथैव विकारेऽतिदिश्यन्ते। अणादीनामपवादः। निष्केण क्रीतं नैष्किकम्। एवं निष्कस्य विकारोऽपि नैष्किकः। शतस्य विकारः-शत्यः, शतिकः।

क्रीतवत्परिमाणात्। क्रीत इव क्रीतवत्, सप्तमीसमर्थाद्वतिः। क्रीतवत् अव्ययं, परिमाणात् पञ्चम्यन्तम्। **अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः** से **अवयवे** की और **तस्य विकारः** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ रहा है।

षष्ठी-समर्थ परिमाणवाची प्रातिपदिकों से प्राग्वहतेष्ठक् (४.४.१) से आरम्भ कर क्रीतवत् प्रत्यय अर्थात् परिमाणवाची प्रातिपदिकों से जिस प्रकार जो प्रत्यय क्रीत अर्थ में कहे गये हैं, वे प्रत्यय उसी तरह विकार और अवयव अर्थों में भी होते हैं।

यह अतिदेश सूत्र है। आगे **प्राक् क्रीताच्छः** (५.१.१) के प्रकरण में **क्रीत** अर्थ में अनेक प्रत्यय कहे जायेंगे, उन्हीं सबका यहाँ विकार और अवयव अर्थों में अतिदेश किया गया है।

अणादीनामपवादः। अण् आदि प्रत्यय का यह अपवाद है।

निष्केण क्रीतं नैष्किकम्, एवं निष्कस्य विकारोऽपि नैष्किकः। सोने के सिक्के से खरीदी गयी वस्तु अर्थ में आगे **निष्क**-शब्द से **तेन क्रीतम्** के अधिकार में **आर्हादगोपुच्छसंख्यापरिमाणाट्ठक्** (५.१.१९) सूत्र से क्रीतार्थक ठक् प्रत्यय करने पर इकादेश आदि होकर **नैष्किक** शब्द बनता है। उसी तरह यहाँ विकार अर्थ में भी निष्क-शब्द से उक्त ठक् प्रत्यय का अतिदेश किया जाता है अर्थात् क्रीतार्थ में होने वाला ठक् प्रत्यय **क्रीतवत्परिमाणात्** सूत्र से अतिदिष्ट होकर विकारार्थ में भी हो जाता है। इस तरह सोने के सिक्के से खरीदी गयी वस्तु भी **नैष्किक** और सोने के सिक्के का विकार भी **नैष्किक** कहलाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **नैष्किकः** सिद्ध हो जाता है। यह विकारार्थ का उदाहरण है।

शतस्य विकारः- शत्यः, शतिकः। सौ रूपये से खरीदी गयी वस्तु अर्थ में आगे **शत**-शब्द से **तेन क्रीतम्** के अधिकार में **शताच्च ठन्यतावशते** (५.१.२१) सूत्र से क्रीतार्थक **ठन्** और **यत्** प्रत्यय करने पर **शतिक** और **शत्य** शब्द बनते हैं। उसी तरह यहाँ विकार अर्थ में भी **शत**-शब्द से उक्त दोनों प्रत्ययों का अतिदेश किया जाता है अर्थात् क्रीतार्थ में होने वाले उक्त प्रत्यय **क्रीतवत्परिमाणात्** सूत्र से अतिदिष्ट होकर विकारार्थ में भी हो जाते हैं। सौ रूपये से खरीदी गयी वस्तु भी **शत्य** एवं **शतिक** और सौ का अवयव भी **शत्य** एवं **शतिक** कहलाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **शत्यः** और **शतिकः** सिद्ध हो जाते हैं। यह अवयवार्थ का उदाहरण है।

ध्यान रहे कि परिमाण-वाचकता केवल नाप या तौल तक ही सीमित नहीं है, अपितु संख्या भी परिमाण के रूप में गृहीत होती है।

१५३५. उष्ट्राद्वुञ् ४।३।१५७॥

प्राण्यङ्गोऽपवादः। औष्ट्रकः।

उष्ट्राद्वुञ्। उष्ट्रात् पञ्चम्यन्तं, वुञ् प्रथमान्तम्। **अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः** से **अवयवे** की और **तस्य विकारः** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ रहा है।

षष्ठी-समर्थ उष्ट्र-शब्द से विकार और अवयव अर्थों में वुञ् प्रत्यय होता है।

प्राण्यञोऽपवादः। उष्ट्र-शब्द प्राणी का वाचक है, अतः **प्राणिरजतादिभ्योऽञ्** सूत्र से अञ् प्रत्यय प्राप्त होने पर उसका अपवाद-स्वरूप प्रकृतसूत्र का आरम्भ किया गया है। **वुञ्** में ञकार इत्संज्ञक है, **वु** बचता है और उसके स्थान पर **युवोरनाकौ** सूत्र के द्वारा **अक** आदेश हो जाता है।

औष्ट्रकः। ऊँट का अवयव (अंक) या उससे बना हुआ (विकार)। **उष्ट्रस्यावयवो विकारो वा** विग्रह करके **उष्ट्र+ङस्** से **उष्ट्राद्वुञ्** सूत्र से वुञ्प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **वु** के स्थान पर **अक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करके **औष्ट्रक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **औष्ट्रकः** सिद्ध हो जाता है।

१५३६. उमोर्णयोर्वा ४।३।१५८॥

औमकम्, औमम्। और्णकम्, और्णम्। वुञभावे यथाक्रममणञौ।

उमोर्णयोर्वा। उमा च ऊर्णा च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्व उमोर्णे, तयोः- उमोर्णयोः। उमोर्णयोः पञ्चम्यर्थे षष्ठीद्विवचनान्तं, वाव्ययम्। **उष्ट्राद्वुञ्** से **वुञ्** की, **अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः** से **अवयवे** की और **तस्य विकारः** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ रहा है।

षष्ठी-समर्थ उमा और ऊर्णा इन प्रातिपदिकों से विकार और अवयव अर्थों में विकल्प से वुञ् प्रत्यय होता है।

वुञभावे यथाक्रममणञौ। वुञ् न होने के पक्ष में यथाक्रम अण् और अञ् प्रत्यय होते हैं अर्थात् **उमा** शब्द से औत्सर्गिक अण् और **ऊर्णा** शब्द के अनुदात्तादि होने के कारण **अनुदात्तादेश्च** सूत्र के द्वारा अञ् प्रत्यय होता है।

औमकम्, औमम्। अलसी का बना हुआ, रेशमी वस्त्र। **उमायाः विकारः** विग्रह करके **उमा+ङस्** से **उमोर्णयोर्वा** सूत्र से विकल्प से वुञ्प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **वु** के स्थान पर **अक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक आकार का लोप करके **औमक** शब्द बना है। वुञ् न होने के पक्ष में औत्सर्गिक अण् होने पर आदिवृद्धि आदि होकर **औम** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **औमकम्** और **औमम्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

और्णकम्, और्णम्। ऊन का बना हुआ। **ऊर्णायाः विकारः** विग्रह करके **ऊर्णा+ङस्** से **उमोर्णयोर्वा** सूत्र से विकल्प से वुञ्प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **वु** के स्थान पर **अक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक आकार का लोप करके **और्णक** शब्द बना है। वुञ् न होने के पक्ष में ऊर्णा-शब्द के अनुदात्तादि होने के कारण **अनुदात्तादेश्च** सूत्र के द्वारा अञ् होने पर आदिवृद्धि आदि होकर **और्ण** शब्द बना

है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **और्णकम्** और **और्णम्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

१५३७. एण्या ढञ् ४।३।१५९॥

ऐणेयम्। एणस्य तु ऐणम्।

एण्या ढञ्। एणी-शब्दस्य षष्ठ्यन्तं रूपम् एण्याः इति। ढञ् प्रथमान्तम्। **अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः** से **अवयवे** की और **तस्य विकारः** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार आ रहा है।

षष्ठी-समर्थ एणी-रूप प्रातिपदिक से विकार और अवयव अर्थों में विकल्प से ढञ् प्रत्यय होता है।

ढञ् में ञकार इत्संज्ञक है और शिष्ट केवल ढकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र से **एय्** आदेश होकर प्रत्यय का स्वरूप **एय** बन जाता है। **एणी** शब्द हिरनी का वाचक है। अतः प्राणिवाचक होने के कारण **प्राणिरजतादिभ्योऽञ्** से अञ् प्राप्त था, उसका यह अपवाद है।

ऐणेयम्। हिरनी का अंग या उससे बना हुआ। **एण्याः अवयवो विकारो वा** विग्रह करके **एणी+ङस्** से **एण्या ढञ्** सूत्र से **ढञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **ढ** के स्थान पर **एय्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक ईकार का लोप करके **ऐणेय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **ऐणेयम्** सिद्ध हो जाता है।

एणस्य तु ऐणम्। प्रकृतसूत्र में स्त्रीलिंग-विशिष्ट **एणी** शब्द का ग्रहण होने से पुंल्लिंग **एण** शब्द से यह ढञ् नहीं होगा। अतः **एणस्य विकारोऽवयवो वा** (हिरन का अंग या विकार (मृगचर्म) अर्थ में औत्सर्गिक अण् प्रत्यय हो जाता है। आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **ऐण** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **ऐणम्** सिद्ध हो जाता है।

१५३८. गोपयसोर्यत् ४।३।१६०॥

गव्यम्। पयस्यम्।

गोपयसोर्यत्। गौश्च पयस् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो गोपयसी, तयोः। गोपयसोः पञ्चम्यर्थे षष्ठी, यत् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः** से **अवयवे** की, **तस्य विकारः** आदि की अनुवृत्ति और **तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि पदों का अधिकार आ ही रहा है।

विकार और अवयव अर्थ में षष्ठ्यन्त गो और पयस् इन प्रातिपदिकों से यत् प्रत्यय होता है।

तकार इत्संज्ञक है, **य** बचता है।

गव्यम्। गाय का विकार अर्थात् दूध, दही, घी, मूत्र एवं गोबर। **गोः विकारः** लौकिक विग्रह और **गो ङस्** अलौकिक विग्रह है। **गोपयसोर्यत्** से यत् प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप होकर **गो+य** बना। **वान्तो यि प्रत्यये** से अव् आदेश होकर **गव्य** बना। सु, अम्, **गव्यम्।**

पयस्यम्। दूध का विकार अर्थात् दही, घी, खीर आदि। **पयसः विकारः** लौकिक विग्रह और **पयस् ङस्** अलौकिक विग्रह है। **गोपयसोर्यत्** से यत् प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप होकर **पयस्+य=पयस्य** बना। सु, अम्, **पयस्यम्।**

यद्यपि विकारार्थ में **सर्वत्र गोरजादिप्रसङ्गे यत्** सूत्र से यत् प्रत्यय होकर इष्टसिद्धि हो जाती तथापि **मयड् वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः** सूत्र से प्राप्त मयट् का बाधन करने के लिये प्रकृत सूत्र की सार्थकता है।

१५३९. द्रोश्च ४।३।१६१॥
द्रुर्वृक्षः, तस्य विकारोऽवयवो वा द्रव्यम्।

द्रोश्च। द्रोः पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **गोपयसोर्यत्** से **यत्** की, **अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः** से **अवयवे** की, **तस्य विकारः** आदि की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि पदों का अधिकार है।

विकार और अवयव अर्थ में षष्ठ्यन्त द्रु-शब्द से भी यत् प्रत्यय होता है।

यह **एकाचो नित्यम्** वार्तिक से प्राप्त मयट् और **ओरञ्** सूत्र से प्राप्त अञ् प्रत्यय का अपवाद है।

द्रुर्वृक्षः, तस्य विकारोऽवयवो वा द्रव्यम्। द्रु-शब्द का अर्थ है- वृक्ष और वृक्ष का अवयव तथा उसका अंग **द्रव्य** कहलाता है। **द्रोः अवयवो विकारो वा** विग्रह करके **द्रु+ङस्** से **द्रोश्च** सूत्र के द्वारा **यत्** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **द्रु+य** बना है। उकार को **ओर्गुणः** से गुण ओकार और उसको **वान्तो यि प्रत्यये** सूत्र से अवादेश होकर **द्रव्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **द्रव्यम्** सिद्ध हो जाता है। वस्तुवाची **द्रव्य**-शब्द भिन्न है।

१५४०. माने वयः ४।३।१६२॥
'द्रोः' इत्येव। द्रुवयम्।
'यौतवं द्रुवयं पाय्यमिति मानार्थकं त्रयम्' इत्यमरः।

माने वयः। माने सप्तम्यन्तं, वयः प्रथमान्तम्। **द्रोश्च** से **द्रोः** की और **तस्य विकारः** आदि की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि पदों का अधिकार है।

मान=नाप रूप विकार अर्थ गम्य होने पर षष्ठ्यन्त द्रु-शब्द से भी वय प्रत्यय होता है।

द्रोः इत्येव। पूर्वसूत्र से **द्रोः** की अनुवृत्ति होने के कारण **द्रु**-शब्द से ही **वय** प्रत्यय का विधान हुआ है।

द्रुवयम्। लकड़ी का मान=नाप रूप विकार। **द्रोः विकारो मानम्** विग्रह करके **द्रु+ङस्** से **माने वयः** सूत्र के द्वारा **वय** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **द्रु+वय** बना है। यहाँ पर भसंज्ञा न होने के कारण **ओर्गुणः** से गुण नहीं होता, अतः **द्रुवय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **द्रुवयम्** सिद्ध हो जाता है।

'यौतवं द्रुवयं पाय्यमिति मानर्थकं त्रयम्' इत्यमरः। मूलकार ने अमरकोश का प्रमाण देते हुये कहा है कि **यौतव, द्रुवय** और **पाय्य** ये तीन शब्द मानार्थक हैं।

१५४१. फले लुक् ४।३।१६३॥

विकारावयवप्रत्ययस्य लुक् स्यात् फले।

आमलक्याः फलमामलकम्।

फले लुक्। फले सप्तम्यन्तं, लुक् प्रथमान्तम्। **अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः** से **अवयवे** की, **तस्य विकारः** आदि की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि पदों का अधिकार है।

फल अभिधेय होने पर विकार और अवयव अर्थ में विहित प्रत्यय का लुक् होता है।

अनुवृत्त तद्धिताः, **प्रत्ययः** का षष्ठ्यन्त में विपरिणाम करना चाहिये- **तद्धितस्य प्रत्ययस्य।** यह सूत्र प्रत्यय विधान के लिये न होकर पूर्व-विहित प्रत्यय का लुग्विधान करता है। फलित वृक्ष का फल ही अवयव भी है और विकार भी।

आमलक्याः फलमामलकम्। आँवले का फल। **आमलक्याः फलम्** विग्रह करके **आमलकी+ङस्** से अवयव और विकार अर्थों में वृद्धसंज्ञक शब्द से **नित्यं वृद्धशरादिभ्यः** सूत्र के द्वारा मयट्-प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **आमलकी+मय** बना है। मयट् का **फले लुक्** सूत्र के द्वारा लुक् होने पर **आमलकी** बन जाता है। इसके बाद **लुक् तद्धितलुकि** सूत्र के द्वारा स्त्रीबोधक प्रत्यय ङीप् का भी लुक् हो जाता है, अतः **आमलक** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आमलकम्** सिद्ध हो जाता है।

१५४२. प्लक्षादिभ्योऽण् ४।३।१६४॥

विधानसामर्थ्यान्न लुक्। प्लाक्षम्।

प्लक्षादिभ्योऽण्। प्लक्ष आदिर्येषां ते प्लक्षादयस्तेभ्यः प्लक्षादिभ्यः, बहुव्रीहिः। प्लक्षादिभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अण् प्रथमान्तम्। **फले लुक्** सूत्र से **फले** की, **अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः** से **अवयवे** की और **तस्य विकारः** आदि की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि पदों का अधिकार है।

षष्ठी-समर्थ प्लक्षादि-गणपठित प्रातिपदिकों से फलात्मक विकार और अवयव अर्थ में अण् प्रत्यय होता है।

विधानसामर्थ्यान्न लुक्। यद्यपि यह प्रत्यय फलात्मक विकार और अवयव अर्थ में विहित है, तथापि प्रकृत प्रत्यय का **फले लुक्** से लुक् नहीं होता, क्योंकि **प्लक्षादिभ्योऽण्** इस विशेष सूत्र से उक्त प्रत्यय का विधान किया गया है। यदि लुक् ही करना हो तो विशेष-सूत्र से विधान ही व्यर्थ है। अतः विधानसामर्थ्य से प्रत्यय का लुक् नहीं होता।

प्लाक्षम्। पाकड़ फल रूप विकार या अंग। **प्लक्षस्य अवयवो विकारो वा फलम्** विग्रह करके **प्लक्ष+ङस्** में **प्लक्षादिभ्योऽण्** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **प्लाक्ष** और स्वादिकार्य होकर **प्लाक्षम्** सिद्ध हो जाता है।

अब प्रसंगवश एक सूत्र से आदिवृद्धि का निषेध करते हुये ऐच् आगम का विधान किया जा रहा है-

१५४३. न्यग्रोधस्य च केवलस्य ७।३।५॥

अस्य न वृद्धिरैजागमश्च। नैयग्रोधम्।

न्यग्रोधस्य च केवलस्य। न्यग्रोधस्य षष्ठ्यन्तं, चाव्ययं, केवलस्य षष्ठ्यन्तम्। सप्तमाध्याय-तृतीयपांद के **न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्** सूत्र के **पदान्ताभ्याम्** को छोड़ कर शेष सभी पदों की, **तद्धितेष्वचामादेः, अचः, ञ्णिति, वृद्धिः** और **अङ्गस्य** की यथायथ अनुवृत्ति और अधिकार है।

केवल न्यग्रोध-शब्द के अचों में से आदि अच् की वृद्धि नहीं होती है किन्तु यकार से पूर्व ऐच् का आगम होता है, तद्धितसंज्ञक ञित्, णित् और कित् प्रत्ययों के परे रहते।

यद्यपि **य्वाभ्याम्** की अनुवृत्ति आती है किन्तु **न्यग्रोध** शब्द में केवल यकार होने के कारण **व** का सम्बन्ध नहीं रहता। इसी तरह ऐच् आगम में भी केवल ऐकार का सम्बन्ध रहता है, औकार का नहीं रहता। न्यग्रोध-शब्द प्लक्षादि में आता है।

नैयग्रोधम्। वट (बड़) का विकार या अंग। **न्यग्रोधस्य अवयवो विकारो वा** विग्रह करके **न्यग्रोध+ङस्** में **प्लक्षादिभ्योऽण्** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय होने पर

प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **न्यग्रोध+अ** बना है। **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि प्राप्त होने पर **न्यग्रोधस्य च केवलस्य** सूत्र के द्वारा वृद्धिनिषेध-पूर्वक यकार से पहले ऐकार का आगम किया जाता है। भसंज्ञक अकार का तो लोप होता ही है। इस तरह **नैयग्रोध** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **नैयग्रोधम्** सिद्ध हो जाता है।

न्यक् रोहति विग्रह करके निष्पन्न **न्यग्रोध**-शब्द से अण् प्रत्यय करने पर यद्यपि **न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्** सूत्र के द्वारा भी ऐच् आगम सिद्ध हो सकता था, फिर भी प्रकृत सूत्र का अवतरण नियमार्थ बन जाता है। उसका नियम यह होता है कि पदान्तर-सहित **न्यग्रोध**-शब्द में वृद्धिनिषेध नहीं होता। अव्युत्पत्तिपक्ष में तो यकार के अपदान्त होने के कारण यह सूत्र उपयोगी है अर्थात् **न य्वाभ्यां०** सूत्र की प्राप्ति नहीं होगी।

पुनः फल-रूप विकारावयव अर्थ में अण् प्रत्यय किया जा रहा है, वह भी विकल्प से-

१५४४. जम्ब्वा वा ४।३।१६५॥

जम्बूशब्दात् फलेऽण् वा स्यात्।
जाम्बवम्। पक्षे ओरञ्, तस्य लुक्- जम्बु।

जम्ब्वा वा। जम्ब्वाः षष्ठ्यन्तं, वाव्ययम्। **प्लक्षादिभ्योऽण्** से **अण्** की, **फले लुक्** सूत्र से **फले** की और **तस्य विकारः** आदि की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि पदों का अधिकार है।

षष्ठी-समर्थ जम्बू इस **प्रातिपदिक से फलात्मक विकार अर्थ में विकल्प से अण्** प्रत्यय होता है।

पक्षे ओरञ्, तस्य लुक्। अण् न होने के पक्ष में **ओरञ्** विशेष-सूत्र से विधान् किये जाने के कारण यहाँ पर भी अण् प्रत्यय का **फले लुक्** सूत्र के द्वारा लुक् नहीं होता किन्तु अण् न होने के पक्ष में **ओरञ्** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय होता है और उसके सामान्य-विहित होने के कारण **फले लुक्** से लुक् हो जाता है।

जाम्बवम्। पक्षे ओरञ्, तस्य लुक्- जम्बु। जामुन का फल। **जम्ब्वाः विकारः फलम्** विग्रह करके **जम्बू+ङस्** से **जम्ब्वा वा** सूत्र के द्वारा विकल्प से अण् प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, ऊकार को **ओर्गुणः** से गुण ओकार और उसको अवादेश होकर **जाम्बव** शब्द बना है। अण् न होने के पक्ष में **ओरञ्** सूत्र के द्वारा **अञ्** प्रत्यय होने पर उसका **फले लुक्** से लुक् होकर **जम्बू** बन गया है। फल-वाच्य होने के कारण यह नपुंसकलिंग में है। अतः **ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य** सूत्र के द्वारा ऊकार को ह्रस्व होकर **जम्बु** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन

प्रातिपकित्वात् स्वादिकार्य होने पर **जाम्बव+सु** में सु के स्थान पर अमादेश और पूर्वरूप होकर **जाम्बवम्** तथा **जम्बु+सु** में सु का **स्वमोर्नपुंसकात्** से लुक् होकर **जम्बु** ये दो रूप बन जाते हैं।

१५४५. लुप् च ४।३।१६६॥

जम्ब्वाः फलप्रत्ययस्य लुब्वा स्यात्।

'लुपि युक्तवत्-' (सू. १२९४)। **जम्ब्वाः फलं जम्बूः।**

'फलपाकशुषामुपसंख्यानम्' (वा.२९४९)। **व्रीहयः। मुद्गाः।**

'पुष्पमूलेषु बहुलम्' (वा२९५०)। **मल्लिकायाः पुष्पं मल्लिका। जात्याः पुष्पं जाती। विदार्या मूलं विदारी। बहुलग्रहणान्नेह। पाटलानि पुष्पाणि। साल्वानि मूलानि। बाहुलकात् क्वचिल्लुक्। अशोकम्। करवीरम्।**

लुप् च। लुप् प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **जम्ब्वा वा** से **जम्ब्वाः** की, **फले लुक्** सूत्र से **फले** की और **तस्य विकारः** आदि की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि पदों का अधिकार है।

षष्ठी-समर्थ जम्बू इस प्रातिपदिक से फलात्मक विकार अर्थ में विहित प्रत्यय का लुप् भी होता है।

च-शब्द समुच्चयार्थक है। अतः एक पक्ष में अण् का लुप् होता है और एक पक्ष में अण् रह जाता है। इस तरह विकल्प सिद्ध होता है। अतः मूलकार ने लिखा है- **लुब्वा स्यात्।**

'लुपि युक्तवत्-'। यद्यपि लुप् भी लुक् जैसा ही प्रत्यय का अदर्शन है तथापि लुप्-शब्द के द्वारा प्रत्यय का अदर्शन करने पर **लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने** (१२९४) सूत्र के द्वारा युक्तवद्भाव होता है। युक्तवद्भाव का तात्पर्य है प्रकृति के समान लिंग और वचन का होना।

जम्ब्वाः फलं जम्बूः। जामुन का फल। **जम्ब्वाः विकारः फलम्** विग्रह करके **जम्बू+ङस्** से **जम्ब्वा वा** सूत्र के द्वारा विहित अण् प्रत्यय का **लुप् च** सूत्र के द्वारा लुप् हो जाने से **लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने** (१.२.५१) सूत्र के द्वारा युक्तवद्भाव हो जाने के कारण **ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य** सूत्र के द्वारा ऊकार को ह्रस्व नहीं होता, क्योंकि युक्तवद्भाव का तात्पर्य ही है कि प्रकृति के अनुसार लिंग और वचन का होना। यहाँ प्रकृति **जम्बू** शब्द स्त्रीलिंग में है और फलार्थक प्रत्यय होने के बाद भी वह नपुंसक नहीं होगा, क्योंकि युक्तवद्भाव हो गया है। इस तरह **जम्बू** शब्द ही बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपकित्वात् स्वादिकार्य होने पर सकार को रुत्व और उसको विसर्ग होकर **जम्बूः** सिद्ध हो जाता है। स्मरण रहे कि इसी अर्थ में इसी शब्द से पूर्वसूत्र द्वारा **जाम्बवम्** और **जम्बु** ये दो रूप बनाये जा चुके हैं।

फलपाकशुषामुपसंख्यानम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- फल के पक्व होकर सूख जाने पर भी (फल-पक्व-शुषाम्) धान्यवाची शब्दों से विहित फलार्थक प्रत्यय का लुप् होता है। कुछ फल और धान्य ऐसे होते हैं जो पकने पर सूख जाते हैं। जैसे धान, मूंग, ऊड़द इत्यादि।

व्रीहयः। धान का फल, धान। **व्रीहीणां फलानि** विग्रह करके **व्रीहि+आम्** से **बिल्वादिभ्योऽण्** सूत्र के द्वारा विहित अण् प्रत्यय का **फलपाकशुषामुपसंख्यानम्** वार्तिक के द्वारा लुप् हो जाने से **लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने** (१.२.५१) सूत्र के द्वारा युक्तवद्भाव हो जाने के कारण फलवाच्य होने पर भी नपुंसकता नहीं होती। अतः पुंल्लिंग ही बना रहता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपकित्वात् स्वादिकार्य होने पर बहुवचन में **व्रीहयः** सिद्ध हो जाता है।

मुद्गाः। मूंग का फल। **मुद्गानां फलानि** विग्रह करके **मुद्ग+आम्** से **बिल्वादिभ्योऽण्** सूत्र के द्वारा विहित अण् प्रत्यय का **फलपाकशुषामुपसंख्यानम्** वार्तिक के द्वारा लुप् हो जाने से **लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने** (१.२.५१) सूत्र के द्वारा युक्तवद्भाव हो जाने के कारण फलवाच्य होने पर भी नपुंसकता नहीं होती। अतः पुंल्लिंग ही बना रहता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपकित्वात् स्वादिकार्य होने पर बहुवचन में **व्रीहयः** सिद्ध हो जाता है।

पुष्पमूलेषु बहुलम्। पुष्प और मूल अर्थ गम्य होने पर विकारार्थक प्रत्यय का बहुल से लुप् होता है।

मल्लिकायाः पुष्पं मल्लिका। मोंगरे का फूल। **मल्लिकायाः पुष्पम्** विग्रह करके **मल्लिका+ङस्** से अण् प्रत्यय होने पर उसका **पुष्पमूलेषु बहुलम्** वार्तिक के द्वारा लुप् हो जाने से **लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने** सूत्र के द्वारा युक्तवद्भाव हो जाने के कारण पुष्प-वाच्य होने पर नपुंसकता नहीं होती, अपितु स्त्रीलिंगता ही बनी रहता है और वचन भी एकत्व में ही रहता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपकित्वात् स्वादिकार्य होने पर **मल्लिका** सिद्ध हो जाता है।

जात्याः पुष्पं जाती। चमेली का फूल। **जात्याः पुष्पम्** विग्रह करके **जाती+ङस्** से अण् प्रत्यय होने पर उसका **पुष्पमूलेषु बहुलम्** वार्तिक के द्वारा लुप् हो जाने से **लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने** सूत्र के द्वारा युक्तवद्भाव हो जाने के कारण पुष्प-वाच्य होने पर भी नपुंसकता नहीं होती, अपितु स्त्रीलिंगता ही बनी रहती है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदित्वात् स्वादिकार्य होने पर **जाती** सिद्ध हो जाता है। ये दो उदाहरण पुष्पवाच्य के हैं।

विदार्याः मूलं विदारी। विदारी का मूल, विदारीकन्द। **विदार्याः मूलम्** विग्रह करके **विदारी+ङस्** से अण् प्रत्यय होने पर उसका **पुष्पमूलेषु बहुलम्** वार्तिक के द्वारा लुप् हो जाने से **लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने** सूत्र के द्वारा युक्तवद्भाव हो जाने के कारण मूल-वाच्य होने पर भी नपुंसकता नहीं होती, अपितु स्त्रीलिंगता ही बनी रहता है।

एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपकित्वात् स्वादिकार्य होने पर **विदारी** सिद्ध हो जाता है। यह मूलवाच्य का उदाहरण है।

बहुलग्रहणान्नेह। पाटलानि पुष्पाणि। अर्थात् **पुष्पमूलेषु बहुलम्** वार्तिक में **बहुलम्** पद का निवेश होने से कहीं लुप् नहीं भी होता है, अतः **लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने** सूत्र के द्वारा युक्तवद्भाव भी नहीं होता। फलतः **पाटलस्य पुष्पाणि** विग्रह करके **बिल्वादिभ्योऽण्** से अण् प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पाटल** शब्द नपुंसक और बहुवचन में प्रयुक्त होता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपकित्वात् स्वादिकार्य होने पर बहुवचन में **पाटलानि** सिद्ध हो जाता है।

साल्वानि मूलानि। इसी तरह **साल्व**-शब्द से **साल्वस्य पुष्पाणि** विग्रह करके **अनुदात्तादेश्च** सूत्र के द्वारा विहित **अञ्** प्रत्यय का लुप् नहीं होता। अतः बहुवचन में **साल्वानि** बन जाता है।

बाहुलकात् क्वचिल्लुक्। अशोकम्। करवीरम्। बहुल-शब्द के अनेकार्थ होने के कारण **क्वचिदन्यदेव** अर्थ का आश्रयण करके कहीं-कहीं लुप् न होकर लुक् हो जाता है। जैसे कि **अशोकस्य मूलम्** (अशोक का फूल और **करवीरस्य पुष्पम्** (करवीर का पुष्प) में प्रत्ययों का लुक् हो गया है। लुप् न होने कारण युक्तवद्भाव नहीं हुआ। अतः विशेष्यानुसार से लिंग और वचन हो गये हैं।

१५४६. हरीतक्यादिभ्यश्च ४।३।१६७॥

एभ्यः फलप्रत्ययस्य लुप् स्यात्।
हरीतक्यादीनां लिङ्गमेव प्रकृतिवत्।
हरीतक्याः फलानि हरीतक्यः।

हरीतक्यादिभ्यश्च। हरीतकी आदिर्येषां ते हरीतक्यादयस्तेभ्यो हरीतक्यादिभ्यः, बहुव्रीहिः। हरितक्यादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **लुप् च** सूत्र से **लुप्** की, **फले लुक्** सूत्र से **फले** की और **तस्य विकारः** आदि की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि पदों का अधिकार है।

षष्ठी-समर्थ हरीतकी-आदि-गणपठित प्रातिपदिकों से फलात्मक विकार अर्थ में विहित प्रत्यय का लुप् होता है।

हरीतक्यादीनां लिङ्गमेव प्रकृतिवत्। यह वार्तिक का अंश है। वार्तिकार्थः- हरीतकी आदि शब्दों में युक्तवद्भाव होने पर लिङ्ग ही प्रकृतिवत् होता है, वचन नहीं होता। **फले लुक्** से लुक् प्राप्त होने पर उसका अपवाद **लुप्** किया गया है। लुक् होने पर एक तो युक्तवद्भाव नहीं होता, दूसरा **लुक् तद्धितलुकि** से स्त्रीबोधक प्रत्यय का लुक् हो जाता है। यह **लुक्** और **लुप्** में अन्तर है।

हरीतक्याः फलानि हरीतक्यः। हर्रे (हरड़) के फल। **हरीतक्याः फलानि** विग्रह करके **हरीतकी+ङस्** से **अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर उसका **हरीतक्यादिभ्यश्च** सूत्र के द्वारा लुप् होने पर **लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने** सूत्र के द्वारा युक्तवद्भाव हो जाने के कारण फल-वाच्य होने पर नपुंसकता नहीं होती, अपितु स्त्रीलिंगता ही बनी रहता है। वचन का युक्तवद्भाव नहीं होता, यह बात ऊपर बतायी जा चुकी है। अतः बहुवचन होगा। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपकित्वात् स्वादिकार्य होने पर **हरीतक्यः** सिद्ध हो जाता है।

हरीतक्यादिगणः- हरीतकी, कोशातकी, नखरञ्जनी, शष्कण्डी, दाडी, दोडी, श्वेतपाकी, अर्जुनपाकी, द्राक्षा, काला, ध्वाक्षा, गभीका, कण्टकारिका, पिप्पली, चिम्पा, (चिञ्चा), शेफालिका।

१५४७. कंसीयपरशव्ययोर्यञञौ लुक्च ४।३।१६८॥

कंसीयपरशव्यशब्दाभ्यां यञञौ स्तश्छयतोश्च लुक्।
कंसाय हितं कंसीयम्, तस्य विकारः कांस्यम्।
परशवे हितं परशव्यम्, तस्य विकारः पारशवः।
॥ इति तद्धितेषु चतुर्थस्य तृतीयपादे प्राग्दीव्यतीयप्रकरणम्॥

कंसीयपरशव्ययोर्यञञौ लुक्च। कंसीयश्च परशव्यश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः कंसीयपरशव्यौ, तयोः कंसीयपरशव्ययोः। यञ् च अञ् च तयोरितरतेरयोगद्वन्द्वो यञञौ। कंसीयपरशव्ययोः षष्ठीद्विवचनान्तं, यञञौ प्रथमान्तं, लुक् प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **तस्य विकारः** आदि की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि पदों का अधिकार है। **यथासङ्ख्यमनुदेशः समानाम्** इस परिभाषा सूत्र की उपस्थिति है।

षष्ठी-समर्थ कंसीय और परशव्य इन प्रातिपदिकों से विकार अर्थ में यथासंख्य यञ् और अञ् प्रत्यय होते हैं और शब्दों में विद्यमान छ और यत् प्रत्यय का लुक् भी होता है।

कंस शब्द धातु कांसा का वाचक है। उससे हितार्थ में **प्राक् क्रीताच्छः** (५.१.१) सूत्र से छ-प्रत्यय होने पर उसके स्थान पर **ईय** आदेश होकर **कंसीय** शब्द बना है और **परशु** शब्द फरशा, कुल्हाड़ी का वाचक है और उससे हितार्थ में **उगवादिभ्यो यत्** (५.१.२) सूत्र से यत्-प्रत्यय होकर **परशव्य** बना है। यद्यपि सूत्र में **कंसीय** और **परशव्य** शब्द षष्ठ्यन्त के होने के कारण पूरे शब्दों के लुक् की सम्भावना हो सकती है, तथापि यहाँ लुक् करने पर **छ** और **यत्** का ही लुक् होता है, पूरे **कंसीय** और **परशव्य** शब्दों का नहीं, क्योंकि **प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः** (१.१.६०) से प्रत्यय के अदर्शन की ही लुक् संज्ञा होती है सो प्रत्यय का ही लुक् होगा।

कंसाय हितं कंसीयम्, तस्य विकारः कांस्यम्। कांस के हित के लिये जो है, उससे बना हुआ (विकार)। **कंसाय हितम्** विग्रह करके पहले **कंस**-शब्द से **प्राक् क्रीताच्छः** सूत्र से छ-प्रत्यय, **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र से ईय् आदेश होकर **कंसीय** शब्द बना है। इसके बाद **कंसस्य विकारः** विग्रह करके **कंसीयपरशव्ययोर्यञञौ लुक् च** सूत्र के द्वारा **यञ्** प्रत्यय और प्रकृति में छ (ईय् आदेश) का लुक् होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **कंस+य** बना है। आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **कांस्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कांस्यम्** सिद्ध हो जाता है।

परशवे हितं परशव्यम्, तस्य विकारः पाराशवः। कुल्हाडी के हित के लिये जो है, उससे बना हुआ (विकार)। **परशवे हितम्** विग्रह करके पहले **परशु**-शब्द से **उगवादिभ्यो यत्** सूत्र के द्वारा यत्-प्रत्यय होने पर **ओर्गुणः** से गुण ओकार और उसको **वान्तो यि प्रत्यये** से अवादेश होकर **परशव्य** शब्द बना है। इसके बाद **परशव्यस्य विकारः** विग्रह करके **कंसीयपरशव्ययोर्यञञौ लुक् च** सूत्र के द्वारा **अञ्** प्रत्यय और प्रकृति में विद्यमान यत् का लुक् होने पर नैमित्तिक ओकार और उसके आदेश अव् की भी निवृत्ति होकर **परशु+अ** बना है। आदिवृद्धि और उकार को **ओर्गुणः** से गुण होकर ओकार और उसको **एचोऽयवायावः** सूत्र से अवादेश होकर **पाराशव** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पाराशवः** सिद्ध हो जाता है।

यहाँ अष्टाध्यायी के चतुर्थाध्याय-तृतीयपाद के सूत्र पूरे हो जाते हैं। **प्राग्दीव्यतोऽण्** से जो औत्सर्गिक अण् किया जा रहा था, वह भी पूरा हो जाता है। यद्यपि **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** सूत्र अभी आगे है किन्तु अण् का प्रकरण पूरा हो जाता है, क्योंकि आगे औत्सर्गिक प्रत्यय अण् न होकर ठक् आदि हैं।

श्री भट्टोजिदीक्षित द्वारा विरचित वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी की गोविन्दाचार्य कृत श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी टीका में तद्धित-प्राग्दीव्यतीय-प्रकरण पूर्ण हुआ।

●

अथ प्राग्वहतीय-प्रकरणम्

अब तद्धित में **प्राग्वहतीय-प्रकरण** का प्रारम्भ हो रहा है। इसे **ठगधिकारप्रकरण** भी कहते हैं। इस प्रकरण में **प्राग्वहतेष्ठक्** इस सूत्र का अधिकार चलता है अर्थात् इस सूत्र से **तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्** ४।४।७६ तक के जितने भी सूत्र हैं, उन सूत्रों में **ठक्** पहुँच जाता है। ठक् प्रत्यय का अधिकार होने के कारण इस प्रकरण को **ठगधिकारप्रकरण** और **वहति** शब्द से पहले का प्रकरण होने के कारण **प्राग्वहतीय-प्रकरण** कहते हैं। इस प्रकरण में अष्टाध्यायी के चतुर्थाध्याय-चतुर्थपाद के सूत्र हैं। **ठक्** में ककार की **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा और उसका **तस्य लोपः** से लोप होता है। इस्, उस्, उक् और त से परे ठ के स्थान पर **इसुसुक्तान्तात् कः** से **क** या **ठस्येकः** से **इक** आदेश होता है। ठक् में **ककार** की इत्संज्ञा होने के कारण इसके परे रहते **किति च** से प्रकृति में आदिवृद्धि होती है।

१५४८. प्राग्वहतेष्ठक् ४।४।१॥

तद्वहतीत्यतः प्राक् ठगधिक्रियते।

'तदाहेति माशब्दादिभ्य उपसंख्यानम्' (वा.२९५१)।

मा शब्दं कार्षीः इति य आह स माशब्दिकः।

प्राग्वहतेष्ठक्। प्राक् अव्ययपदं, वहतेः पञ्चम्यन्तं, ठक् प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्।

इस सूत्र से 'तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्' से पहले तक 'ठक्' का अधिकार रहता है।

यह अधिकार सूत्र है। अधिकार सूत्र स्वक्षेत्र में कार्य न करके दूसरे सूत्रों का कार्यसाधन करते हैं। **तद्वहति०** इत्यादि से इस सूत्र के अधिकार की सीमा बतलायी गयी है। **वहति** शब्द से **तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्** सूत्रोक्त **वहति** का ग्रहण है। प्रकृत सूत्र से लेकर **तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्** से पहले तक जो अर्थ निर्दिष्ट किये गये हैं, उन अर्थों में **ठक्** प्रत्यय होता है। अपवाद-सूत्रों को छोड़कर औत्सर्गिक सूत्रों में सर्वत्र इसकी ही प्रवृत्ति होगी। अतः वहीं इसकी अनुवृत्ति दिखलायी गयी है।

प्राग्वहतीय में **प्राग्वहतेष्ठक्** (४४.१) से लेकर **तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्** (४.४.७६) सूत्र के पहले तक ३६ अर्थों का निर्देश है। इन अर्थों में होने वाले प्रत्यय या अर्थ प्राग्वहतीय कहलाते हैं। उक्त ३६ अर्थों को कहने के लिये यदि कोई अन्य प्रत्यय नहीं कहा गया है तो उससे नैसर्गिक प्रत्यय ठक् ही लगाना चाहिये। अतः इस अधिकार में ठक् प्रत्यय ही औत्सर्गिक प्रत्यय है। इन अर्थों में प्रत्यय के लिये समर्थ-विभक्ति और उनकी प्रकृति आगे यथास्थान बतायी जा रही है।

तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, आद्युदात्ताश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा और **प्राग्वहतेष्ठक्** इन सात सूत्रों के अर्थों को मिलकार ही अब आगे के सूत्रों के अर्थ बनेंगे।

तदाहेति माशब्दादिभ्य उपसंख्यानम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- **वह कहता है** इस अर्थ में **मा**-शब्द आदि प्रकृतिरूप वाक्यांश से ठक् प्रत्यय होता है। वार्तिकस्थ **तद्** शब्द द्वितीयान्त है, अतः समर्थ-विभक्ति द्वितीया होगी और **आह**=कहता है, यह अर्थनिर्देश है। यह सूत्रोक्त ३६ अर्थों से भिन्न अर्थ है।

मा शब्दं कार्षीः इति य आह स माशब्दिकः। मत बोलो, ऐसा कहने वाला। **मा शब्दं कार्षीः इति य आह सः** यह विग्रह है और **माशब्द+अम्** से **तदाहेति माशब्दादिभ्य उपसंख्यानम्** वार्तिक के द्वारा ठक् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, **ठ** के स्थान पर **ठस्येकः** सूत्र के द्वारा **इक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **माशब्द+इक** बना है। पर्जन्यवल्लक्षणन्यायेन कित् परे होने के कारण **किति च** सूत्र से आदिवृद्धि होती है और भसंज्ञक अकार का भी लोप हो जाता है। इस तरह **माशब्दिक** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्व की अक्षुण्णता के कारण स्वादिकार्य होकर **माशब्दिकः** सिद्ध हो जाता है।

यहाँ पर यह शंका होती है कि **माशब्दिकः** आदि प्रयोगों की सिद्धि तो प्रकृत वार्तिक का शाब्दिक अर्थ मात्र लेने से ही सम्भव है। वह इस प्रकार होगा- **तदाह** अर्थ अभिधेय होने पर माशब्द-आदि गणपठित द्वितीयान्त-प्रकृतिक शब्दों से ठक् प्रत्यय होता है। तब तो अग्रिम सूत्रस्थ वार्तिक **आहौ प्रभूतादिभ्यः** के द्वारा **आह** अर्थ में प्रभूतादि-शब्दों के द्वारा ठक् का विधान ही व्यर्थ हो जायेगा। इसका समाधान यह है कि इस वार्तिक के विधानसामर्थ्य से प्रकृत वार्तिक द्वारा **वाक्य** से ही प्रत्यय-विधि स्वीकार करनी चाहिये। तदनुसार **पदसमुदायो हि वाक्यम्** इस सिद्धान्त के अनुसार **मा** और **शब्दम्** इन दो पदों का समुदायात्मक रूप वाक्य **माशब्द** से ही यह ठक् प्रत्यय हो जाता है।

माशब्दादिगणः- माशब्दः, नित्यशब्दः, कार्यशब्दः।

अब तद्धितप्रकरण के लिये प्रासंगिक वृद्धिनिषेध करने वाले सूत्र को उपस्थापित कर रहे हैं-

१५४९. स्वागतादीनां च ७।३।७॥

ऐज्न स्यात्। स्वागतमित्याह स्वागतिकः। स्वाध्वरिकः। स्वङ्गस्यापत्यं स्वाङ्गिः। व्यङ्गस्यापत्यं व्याङ्गिः। व्यडस्यापत्यं व्याडिः। व्यवहारेण चरति व्यावहारिकः। स्वपतौ साधु स्वापतेयम्।

'आहौ प्रभूतादिभ्यः' (वा.२९५२)। प्रभूतमाह प्राभूतिकः। पार्याप्तिकः।

'पृच्छतौ सुस्नातादिभ्यः'(वा.२९५३)। सुस्नातं पृच्छति सौस्नातिकः। सौखशायनिकः। अनुशतिकादिः।

'गच्छतौ परदारादिभ्यः' (वा.२९५४)। पारदारिकः। गौरुतल्पिकः।

स्वागतादीनां च। स्वागत आदिर्येषां ते स्वागतादयस्तेषां स्वागतादीनाम्, बहुव्रीहिः। स्वागतादीनां षष्ठ्यन्तं, चाव्ययम्। न **कर्मव्यतिहारे** से न की अनुवृत्ति आती है और **अङ्गस्य** का अधिकार है।

स्वागतादि-गणपठित शब्दों में ऐच् आगम नहीं होता।

यह प्रांसगिक सूत्र है। तद्धितप्रकरण में वृद्धिनिषेध-पूर्वक ऐच् आगम के लिये सप्तमाध्याय के तृतीयपाद में **न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्** आदि सूत्र पठित है और ऐच् आगम का भी निषेध **न कर्मव्यतिहारे** सूत्र से वहीं पर किया गया है। उसके बाद यह **स्वागतादीनां च** सूत्र पठित है। यह **न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्** से विहित ऐजागम का निषेध करता है। अतः यह निषेधात्मक विधिसूत्र है। स्वागतादिगणपठित शब्दों में ऐच आगम और वृद्धिनिषेध का निषेध प्रकृतसूत्र से किया जाता है। अतः यह प्रतिप्रसव है। फलतः **किति च** सूत्र से आदिवृद्धि हो जाती है।

स्वागतमित्याह स्वागतिकः। स्वागत है, ऐसा कहने वाला। **स्वागतम् इति आह सः** विग्रह करके **स्वागत+अम्** से आगे वक्ष्यमाण वार्तिक **आहौ प्रभूतादिभ्यः** के द्वारा ठक् प्रत्यय होने पर इकादेश होकर **स्वागत+इक** बना है। **किति च** से प्राप्त आदिवृद्धि को बाधकर **न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्** सूत्र से ऐच् आगम की प्राप्ति थी, उसका **स्वागतादीनां च** सूत्र से निषेध हो जाता है। फलतः पर्जन्यवल्लक्षणन्यायेन आदिवृद्धि होती है किन्तु ऐच् आगम नहीं होता। भसंज्ञक अकार का लोप करके **स्वागतिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **स्वागतिकः** सिद्ध हो जाता है।

स्वाध्वरिकः। उत्तम यज्ञ है, ऐसा कहने वाला। **स्वध्वरम् इति आह सः** विग्रह करके **स्वध्वर+अम्** से आगे वक्ष्यमाण वार्तिक **आहौ प्रभूतादिभ्यः** के द्वारा ठक् प्रत्यय, इकादेश, प्राप्त आदिवृद्धि को बाधकर **न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्** सूत्र से ऐच् आगम की प्राप्ति थी, उसका **स्वागतादीनां च** सूत्र से निषेध हो जाता है। फलतः आदिवृद्धि होती है किन्तु ऐच् आगम नहीं होता। भसंज्ञक अकार का लोप करके

स्वाध्वरिक शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **स्वाध्वरिकः** सिद्ध हो जाता है।

ये दो उदाहरण तो प्राग्वहतीयप्रकरण के ही हैं। अब आगे **स्वागतादीनां च** के अन्य-प्राकरणिक उदाहरण दे रहे हैं-

स्वङ्गस्यापत्यं स्वाङ्गिः। स्वङ्ग का पुत्र। **स्वङ्गस्य अपत्यम्** विग्रह करके **स्वङ्ग+ङस्** से **अत इञ्** सूत्र के द्वारा **इञ्** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **स्वङ्ग+इ** बना है। **तद्धितेष्वचामादेः** सूत्र से प्राप्त आदिवृद्धि को बाधकर **न ष्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्** सूत्र से ऐच् आगम की प्राप्ति थी, उसका **स्वागतादीनां च** सूत्र से निषेध हो जाता है। फलतः आदिवृद्धि होती है किन्तु ऐच् आगम नहीं होता। भसंज्ञक अकार का लोप करके **स्वाङ्गि** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **स्वाङ्गिः** सिद्ध हो जाता है।

व्यङ्गस्यापत्यं व्याङ्गिः। व्यङ्ग का पुत्र। **व्यङ्गस्य अपत्यम्** विग्रह करके **व्यङ्ग+ङस्** से **अत इञ्** सूत्र के द्वारा **इञ्** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **व्यङ्ग+इ** बना है। **तद्धितेष्वचामादेः** सूत्र से प्राप्त आदिवृद्धि को बाधकर **न ष्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्** सूत्र से ऐच् आगम की प्राप्ति थी, उसका **स्वागतादीनां च** सूत्र से निषेध हो जाता है। फलतः आदिवृद्धि होती है किन्तु ऐच् आगम नहीं होता। भसंज्ञक अकार का लोप करके **व्याङ्गि** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **व्याङ्गिः** सिद्ध हो जाता है।

व्यडस्यापत्यं व्याडिः। व्यड का पुत्र। **व्यडस्य अपत्यम्** विग्रह करके **व्यड+ङस्** से **अत इञ्** सूत्र के द्वारा **इञ्** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **व्यड+इ** बना है। **तद्धितेष्वचामादेः** सूत्र से प्राप्त आदिवृद्धि को बाधकर **न ष्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्** सूत्र से ऐच् आगम की प्राप्ति थी, उसका **स्वागतादीनां च** सूत्र से निषेध हो जाता है। फलतः आदिवृद्धि होती है किन्तु ऐच् आगम नहीं होता। भसंज्ञक अकार का लोप करके **व्याडि** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **व्याडिः** सिद्ध हो जाता है।

व्यवहारेण चरति व्यावहारिकः। व्यवहार का ज्ञाता। **व्यवहारेण चरति** विग्रह करके **व्यवहार+टा** से **चरति** सूत्र के द्वारा **ठक्** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **व्यवहार+इक** बना है। **किति च** सूत्र से प्राप्त आदिवृद्धि को बाधकर **न ष्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्** सूत्र से ऐच् आगम की प्राप्ति थी, उसका **स्वागतादीनां च** सूत्र से निषेध हो जाता है। फलतः आदिवृद्धि होती है किन्तु ऐच् आगम नहीं होता। भसंज्ञक अकार का लोप करके **व्यावहारिक** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **व्यावहारिकः** सिद्ध हो जाता है।

स्वपतौ साधु स्वापतेयम्। धन के स्वामित्व के लिये सुखदायक। **स्वपतौ साधु** विग्रह करके **स्वपति+ङि** से **पथ्यतिथिवसतिस्वपतेर्ढञ्** सूत्र के द्वारा **ढञ्** प्रत्यय,

अनुबन्धलोप, ढकार के स्थान पर एय् आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **स्वपति+एय** बना है। **तद्धितेष्वचामादेः** सूत्र से प्राप्त आदिवृद्धि को बाधकर **न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्** सूत्र से ऐच् आगम की प्राप्ति थी, उसका **स्वागतादीनां च** सूत्र से निषेध हो जाता है। फलतः आदिवृद्धि होती है किन्तु ऐच् आगम नहीं होता। भसंज्ञक इकार का लोप करके **स्वापतेय** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **स्वापतेयः** सिद्ध हो जाता है।

आहौ प्रभूतादिभ्यः। यह **प्राग्वहतेष्ठक्** सूत्र में पठित वार्तिक है। वार्तिकार्थः- **आह**=कहता है अर्थ में द्वितीया-समर्थ प्रभूत आदि गणपठित प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होता है। **आह** शब्द से उच्चारणार्थक इकार लगाकर **आहि** और उसके सप्तमी में **आहौ** बना है। **आह** का एकदेश **आह्** है, उसके साथ आगन्तुक इकार से संयुक्त करके पढ़ा गया है।

प्रभूतमाह प्राभूतिकः। बहुत है, ऐसा कहने वाला। **प्रभूतम् इति आह सः** विग्रह करके **प्रभूत+अम्** से **आहौ प्रभूतादिभ्यः** वार्तिक के द्वारा ठक् प्रत्यय, इकादेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **प्राभूतिक** शब्द बना है। यहाँ **न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्** सूत्र नहीं लगता, क्योंकि शब्द में यकार या वकार नहीं है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **प्राभूतिकः** सिद्ध हो जाता है।

पार्याप्तिकः। पर्याप्त है, ऐसा कहने वाला। **पर्याप्तम् इति आह सः** विग्रह करके **पर्याप्त+अम्** से **आहौ प्रभूतादिभ्यः** वार्तिक के द्वारा ठक् प्रत्यय, इकादेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पार्याप्तिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पार्याप्तिकः** सिद्ध हो जाता है।

पृच्छतौ सुस्नातादिभ्यः। यह भी **प्राग्वहतेष्ठक्** सूत्र में पठित वार्तिक है। वार्तिकार्थः- **पृच्छतौ**=पूछता है अर्थ में द्वितीया-समर्थ सुस्नात आदि गणपठित प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होता है।

सुस्नातं पृच्छति सौस्नातिकः। तुम ने अच्छी तरह स्नान कर लिया, यह पूछने वाला। **सुस्नातं पृच्छति** विग्रह करके **सुस्नात+अम्** से **पृच्छतौ सुस्नातादिभ्यः** वार्तिक के द्वारा ठक् प्रत्यय, इकादेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **सौस्नातिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सौस्नातिकः** सिद्ध हो जाता है।

सौखशायनिकः। अनुशतिकादिः। तुम ने सुखपूर्वक शयन किया, यह पूछने वाला। **सुखशयनं पृच्छति** विग्रह करके **सुखशयन+अम्** से **पृच्छतौ सुस्नातादिभ्यः** वार्तिक के द्वारा ठक् प्रत्यय, इकादेश, **सुखशयन** शब्द के अनुशतिकादि होने के कारण **अनुशतिकादीनां च** सूत्र के द्वारा उभयपद (सुख+शयन) के आदि अचों की वृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **सौखशायनिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सौखशायनिकः** सिद्ध हो जाता है।

गच्छतौ परदारादिभ्यः। यह भी **प्राग्वहतेष्ठक्** सूत्र में पठित वार्तिक है। वार्तिकार्थः- **गच्छतौ**=जाता है अर्थ में द्वितीया-समर्थ परदार आदि गणपठित प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होता है।

पारदारिकः। परस्त्री से अनैतिक सम्बन्ध रखने वाला। **परदारान् गच्छति** विग्रह करके **परदार+शस्** से **गच्छतौ परदारादिभ्यः** वार्तिक के द्वारा ठक् प्रत्यय, इकादेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पारदारिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पारदारिकः** सिद्ध हो जाता है।

गौरुतल्पिकः। गुरुपत्नी का गमन करने वाला या गुरु की शय्या पर बैठने वाला। **गुरुतल्पं गच्छति** विग्रह करके **गुरुतल्प+अम्** से **गच्छतौ परदारादिभ्यः** वार्तिक के द्वारा ठक् प्रत्यय, इकादेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **गौरुतल्पिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **गौरुतल्पिकः** सिद्ध हो जाता है।

१५५०. तेन दीव्यति खनति जयति जितम् ४।४।२॥

अक्षैर्दीव्यति आक्षिकः। अभ्र्या खनति आभ्रिकः।
अक्षैर्जयति आक्षिकः। अक्षैर्जितमाक्षिकम्।

तेन दीव्यति खनति जयति जितम्। तेन तृतीयान्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, दीव्यति, खनति, जयति क्रियापदानि, जितम् प्रथमान्तम् अनेकपदं सूत्रम्। **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

खेलने वाला, खोदने वाला, जीतने वाला, जीता गया इन अर्थों में तृतीया-समर्थ प्रातिपदिकों से ठक् प्रत्यय होता है।

प्राग्वहतीयों में यह पहला अर्थक्रम है। सूत्रस्थ **तेन** पद तृतीया-समर्थ-विभक्ति का सूचक है और **दीव्यति, खनति, जयति** एवं **जितम्** पद अर्थ के सूचक हैं।

अक्षैर्दीव्यति आक्षिकः, अक्षैर्जयति आक्षिकः, अक्षैर्जितम् आक्षिकम्। पासों से खेलने वाला, पासों से जीतने वाला, पासों से जीता गया। **अक्षैर्दीव्यति जयति जितम्** लौकिक विग्रह और **अक्ष+भिस्** अलौकिक विग्रह है। **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **ठक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप करके **अक्ष+भिस्+ठ** की प्रातिपदिकसंज्ञा, **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से सुप् **भिस्** का लुक् करके **अक्ष+ठ** बना। **ठस्येकः** से **ठ** के स्थान पर **इक** आदेश होकर **अक्ष+इक** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई- **आक्ष+इक** बना। **यस्येति च** से भसंज्ञक अकार का लोप हुआ- **आक्ष्+इक** बना। वर्णसम्मेलन होने पर **आक्षिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होने पर सु, रुत्वविसर्ग करके **आक्षिकः** सिद्ध हुआ। यहाँ पर **दीव्यति** और

जयति अर्थ में प्रत्यय होने पर पुंल्लिंग होकर **आक्षिकः** बन गया है तो **जितम्** अर्थ में प्रत्यय होने पर नपुंसकलिंग होकर **आक्षिकम्** बन जाता है।

अभ्रया खनति आभ्रिकः। लकड़ी की कुल्हाड़ी से खोदने वाला। **अभ्रया खनति** विग्रह करके **अभ्रि+टा** में **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **ठक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, ठ के स्थान पर इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक इकार का लोप करके **आभ्रिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आभ्रिकः** सिद्ध हो जाता है।

दीव्यति खनति जयति जितम् का प्रकरण पूरा हो गया है। अब आगे दो सूत्रों से **संस्कृतम्**=संस्कार किया हुआ अर्थ में प्रत्ययों का विधान किया जाता है। प्राग्वहतीयों में यह दूसरा अर्थक्रम है।

१५५१. संस्कृतम् ४।४।३॥

दध्ना संस्कृतं दाधिकम्। मारीचिकम्।

संस्कृतम्। संस्कृतम् प्रथमान्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'उससे संस्कार किया गया' इस अर्थ में तृतीयान्त प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय होता है।

दाधिकम्। दही से संस्कार किया गया अर्थात् दही मिला कर स्वादिष्ट बनाया गया पदार्थ। **दध्ना संस्कृतम्** लौकिक विग्रह और **दधि टा** अलौकिक विग्रह है। **संस्कृतम्** से ठक्, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से ठ के स्थान पर इक आदेश करके **दधि+इक** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई और भसंज्ञक इकार का लोप करके **दाध्+इक=दाधिक**, स्वादिकार्य करके **दाधिकम्** सिद्ध हुआ।

मारीचिकम्। मरीच से संस्कार किया गया अर्थात् मरीच नामक मसाला लगाकर स्वादिष्ट बनाया गया पदार्थ। **मरीचेन संस्कृतम्** लौकिक विग्रह और **मरीच टा** अलौकिक विग्रह है। **संस्कृतम्** से ठक्, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से ठ के स्थान पर इक आदेश करके **मरीच+इक** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई और भसंज्ञक अकार का लोप करके **मारीच्+इक=मारीचिक**, स्वादिकार्य करके **मारीचिकम्** सिद्ध हुआ।

१५५२. कुलत्थकोपधादण् ४।४।४॥

ठकोऽपवादः। कुलत्थैः संस्कृतं कौलत्थम्। तैत्तिडीकम्।

कुलत्थकोपधादण्। ककार उपधा यस्य स कोपधः, कुलत्थश्च कोपधश्च कुलत्थकोपधं, तस्मात् कुलत्थकोपधात्, बहुव्रीहिगर्भसमाहारद्वन्द्वः। कुलत्थकोपधात्

पञ्चम्यन्तम्, अण् प्रथमान्तम्। **संस्कृतम्** की और **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है। **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'उससे संस्कार किया गया' इस अर्थ में तृतीया-समर्थ कुलत्थ और ककारोपध प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय होता है।

ठकोऽपवादः। यह औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय का अपवाद है।

कुलत्थैः संस्कृतं कौलत्थम्। कुलथी के द्वारा संस्कार किया गया पदार्थ। **कुलत्थैः संस्कृतम्** लौकिक विग्रह करके **कुलत्थ+भिस्** से **संस्कृतम्** अर्थ में **कुलत्थकोपधादण्** सूत्र से अण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **कौलत्थ** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य करके **कौलत्थम्** सिद्ध हुआ।

तैत्तिडीकम्। ईमली के द्वारा संस्कार किया गया पदार्थ। **तित्तिडीकेन संस्कृतम्** लौकिक विग्रह करके **तित्तडीक+टा** से **संस्कृतम्** अर्थ में **कुलत्थकोपधादण्** सूत्र से अण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **तैत्तडीक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य करके **तैत्तिडीकम्** सिद्ध हुआ।

संस्कृतम् अर्थ का प्रकरण पूरा हो गया है। अब आगे तीन सूत्रों से **तरति**=तैरता (तरता) है, इस अर्थ में प्रत्ययों का विधान किया जाता है। प्राग्वहतीयों में यह तीसरा अर्थक्रम है।

१५५३. तरति ४।४।५॥
उडुपेन तरति औडुपिकः।

तरति। तरति क्रियापदमेकपदमिदं सूत्रम्। **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है। (**प्राग्वहतेष्ठक्** से) **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'तैरता (तरता) है' इस अर्थ में तृतीया-समर्थ प्रातिपदिकों से औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय होता है।

समर्थ-विभक्ति का ज्ञान अनुवृत्त **तेन** पद से और अर्थज्ञान सूत्रोक्त **तरति** पद से होता है। यह औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय है, क्योंकि इस प्रकरण का औत्सर्गिक प्रत्यय यही है तथा सूत्र से किसी विशेष प्रत्यय का कथन नहीं किया गया है।

उडुपेन तरति औडुपिकः। छोटी नाव से तैरता (तरता) है। **उडुपेन तरति** लौकिक विग्रह करके **उडुप+टा** से **तरति** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप करने के बाद **ठ** के स्थान पर **इक** आदेश, **किति च** से आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप

करके **औडुपिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य करके **औडुपिकः** सिद्ध हो जाता है।

१५५४. गोपुच्छाट्ठञ् ४।४।६॥
गौपुच्छिकः।

गोपुच्छाट्ठञ्। गोः पुच्छं गोपुच्छं, तस्माद् गोपुच्छात्, षष्ठीतत्पुरुषः। गोपुच्छात् पञ्चम्यन्तं, ठञ् प्रथमान्तम्। **तरति** की तथा **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है। **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'तैरता (तरता) है' इस अर्थ में तृतीया-समर्थ गोपुच्छ इस प्रातिपदिक से ठञ् प्रत्यय होता है।

यद्यपि **ठक्** और **ठञ्** प्रत्ययों से निष्पन्न होने वाले रूप समान ही होते हैं, तथापि स्वरभेद के लिये ठक् से भिन्न **ठञ्** का विधान किया गया है।

गौपुच्छिकः। गाय की पुच्छ से पार होता है। **गोपुच्छेन तरति** लौकिक विग्रह करके **गोपुच्छ+टा** से **गोपुच्छाट्ठञ्** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **इक** आदेश, **किति च** से आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **गौपुच्छिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य करके **गौपुच्छिकः** सिद्ध हो जाता है।

१५५५. नौद्व्यचष्ठन् ४।४।७॥
नाविकः। घटिकः। बाहुभ्यां तरति बाहुका स्त्री।

नौद्व्यचष्ठन्। द्वौ अचौ यस्मिन् स द्व्यच्, नौश्च द्व्यच् च तयोः समाहारद्वन्द्वो नौद्व्यच्, तस्माद् नौद्व्यचः। नौद्व्यचः पञ्चम्यन्तं, ठन् प्रथमान्तम्। **तरति** की तथा **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है। **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'तैरता (तरता) है' इस अर्थ में तृतीया-समर्थ नौ-शब्द और दो अच् वाले प्रातिपदिकों से ठन् प्रत्यय होता है।

ठक् और **ठञ्** से भिन्न **ठन्** प्रत्यय के विधान करने में तीन प्रयोजन हैं। एक तो आदिवृद्धि नहीं होगी, दूसरा अनुदात्त स्वर का होना और तीसरा स्त्रीत्वविवक्षा में ठन्नन्त से ङीप् नहीं होता।

नाविकः। नौका से तैरने (तरने) वाला। **नावा तरति** लौकिक विग्रह करके **नौ+टा** से **नौद्व्यचष्ठन्** सूत्र के द्वारा ठन् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **इक** आदेश और नौ के औकार के स्थान पर **एचोऽयवायावः** सूत्र के द्वारा आव् आदेश होकर **नाविक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य करके **नाविकः** सिद्ध हो जाता है।

घटिकः। घड़े के सहारे तैरने (तरने) वाला। **घटेन तरति** लौकिक विग्रह करके **घट+टा** से **नौद्व्यचष्ठन्** सूत्र के द्वारा ठन् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **इक** आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करके **घटिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य करके **घटिकः** सिद्ध हो जाता है। यह द्व्यच् का उदाहरण है।

बाहुभ्यां तरति बाहुका स्त्री। बाहों से तैरने वाली स्त्री। **बाहुभ्यां तरति** लौकिक विग्रह करके **बाहु+भ्याम्** से **नौद्व्यचष्ठन्** सूत्र के द्वारा ठन् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **इक** आदेश को बाधकर **इसुसुक्तान्तात् कः** से ठ के स्थान पर क आदेश होकर **बाहुक** शब्द बना है। स्त्रीत्वविवक्षा में **अजाद्यतष्टाप्** से टाप् होकर **बाहुका** और स्वादिकार्य करके **बाहुका** सिद्ध हो जाता है। ठक् या ठञ् होता तो **टिड्ढाणञ्०** सूत्र से ङीप् होकर **बाहुकी** ऐसा अनिष्ट रूप बनता। पुंल्लिंग में तो **बाहुकः** बनता है। यह भी द्व्यच् का ही उदाहरण है।

तरति अर्थ का प्रकरण पूरा हो गया है। अब आगे कुछ सूत्रों से **चरति**=खाता है या जाता है, इस अर्थ में प्रत्ययों का विधान किया जाता है। प्राग्वहतीयों में यह चतुर्थ अर्थक्रम है।

१५५६. चरति ४।४।८॥

तृतीयान्ताद् गच्छति-भक्षयतीत्यर्थयोष्ठक् स्यात्।
हस्तिना चरति हास्तिकः। शाकटिकः। दध्ना भक्षयति दाधिकः।

चरति। अर्थनिर्देशकं क्रियापदमिदम्। **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है। (**प्राग्वहतेष्ठक्** से) **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'जाता है या खाता है' अर्थ में तृतीया-समर्थ प्रातिपदिकों से औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय होता है।

अनुवृत्त **तेन** से तृतीया-समर्थ-विभक्ति की सूचना मिलती है और **चरति** से अर्थनिर्देश किया गया है। **चर** धातु के दो अर्थ हैं- जाना और खाना- **चर गतिभक्षणयोः**। अतः **चरति** से जाता है और खाता है, ये दो अर्थ लिये जाते हैं। अतः मूलकार ने लिखा है- **गच्छति, भक्षयति इत्यर्थयोः**। कहीं **गच्छति** अर्थ का सम्बन्ध रहता है तो कहीं **भक्षयति** अर्थ का।

हस्तिना चरति हास्तिकः। हाथी से चलता है (जाता है)। **हस्तिना चरति** विग्रह करके **हस्तिन्+टा** से **चरति** सूत्र के द्वारा औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **इक** आदेश, **किति च** से आदिवृद्धि और टिसंज्ञक भाग **इन्** का **नस्तद्धिते** सूत्र के द्वारा लोप करके **हास्तिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य करके **हास्तिकः** सिद्ध हो जाता है।

शाकटिकः। गाड़ी=सग्गड़ से चलता है (जाता है)। **शकटेन चरति** विग्रह करके **शकट+टा** से **चरति** सूत्र के द्वारा औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **इक** आदेश, **किति च** से आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **शाकटिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य करके **शाकटिकः** सिद्ध हो जाता है। इन दोनों उदाहरणों में **गच्छति** अर्थ का सम्बन्ध है।

दध्ना भक्षयति दाधिकः। दही से खाता है (दही से खाने वाला)। **दध्ना भक्षयति** विग्रह करके **दधि+टा** से **चरति** सूत्र के द्वारा औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **इक** आदेश, **किति च** से आदिवृद्धि और भसंज्ञक इकार का लोप होकर **दाधिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य करके **दाधिकः** सिद्ध हो जाता है। इस उदाहरण में **भक्षयति** मात्र अर्थ का सम्बन्ध है।

१५५७. आकर्षात् ष्ठल् ४।४।९॥

आकर्षो निकषोपलः। 'आकषात्' इति पाठान्तरम्।
तेन चरति आकर्षिकः। षित्वान्ङीष् आकर्षिकी।

आकर्षात् ष्ठल्। आकर्षात् पञ्चम्यन्तं, ष्ठल् प्रथमान्तम्। **चरति** की और **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'जाता है' अर्थ में तृतीया-समर्थ आकर्ष-शब्द से ष्ठल् प्रत्यय होता है।

आकर्षो निकषोपलः। सोने या चाँदी को परखने के लिये जो पत्थर होता है, उसे **आकर्ष** कहते हैं। हिन्दी में इसे **कसौटी** कहते हैं। यहाँ पर **भक्षयति** अर्थ का सम्बन्ध होना सम्भव नहीं है, अतः **गच्छति** अर्थ में ही प्रत्यय होता है। **ष्ठल्** में षकार और लकार इत्सज्ञक हैं, **ठ** बचता है। षकार की इत्संज्ञा **षः प्रत्ययस्य** सूत्र से होती है। इस प्रत्यय के होने पर आदिवृद्धि की प्राप्ति नहीं है। षित्करण स्त्रीत्वविवक्षा में **षिद्गौरादिभ्यश्च** से ङीष्-विधान के लिये है।

'आकषात्' इति पाठान्तरम्। कहीं-कहीं **आकर्षात्** के स्थान पर **आकषात्** ऐसा पाठान्तर भी मिलता है।

तेन चरति आकर्षिकः। षित्वान्ङीष्- आकर्षिकी। आकर्ष=कसौटी के साथ चलने वाला। **आकर्षेण चरति** विग्रह करके **आकर्ष+टा** से **आकर्षात् ष्ठल्** सूत्र के द्वारा ष्ठल् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अवशिष्ट **ठ** के स्थान पर **इक** आदेश, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आकर्षिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य करके **आकर्षिकः** सिद्ध हो जाता है। स्त्रीत्वविवक्षा में ङीष् होकर **आकर्षिकी** बनता है।

१५५८. पर्पादिभ्यः ष्ठन् ४।४।१०॥

पर्पेण चरति पर्पिकः, पर्पिकी। येन पीठेन पङ्गवश्चरन्ति स पर्पः। अश्विकः। रथिकः।

पर्पादिभ्यः ष्ठन्। पर्प आदिर्येषां ते पर्पादयस्तेभ्यः पर्पादिभ्यः, बहुव्रीहिः। पर्पादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, ष्ठन् प्रथमान्तम्। **चरति** की और **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

पर्पादिगणपठित तृतीया-समर्थ प्रातिपदिकों से चरति अर्थ में ष्ठन् प्रत्यय होता है।

ष्ठन् में षकार और नकार इत्संज्ञक हैं, ठ अवशिष्ट रहता है। षित्करण स्त्रीत्वविवक्षा में ङीष् के लिये और नित्करण स्वरार्थ है।

येन पीठेन पङ्गवश्चरन्ति, स पर्पः। जिसका सहारा लेकर पंगु=लंगड़े लोग चलते हैं, उसे **पर्प** कहा जाता है। वह दोपाया, चौपाया भी हो सकता है।

पर्पेण चरति पर्पिकः, पर्पिकी। पर्प=पंगु को सहारा देने वाली लकड़ी से चलने वाला। **पर्पेण चरति** विग्रह करके **पर्प+टा** से **पर्पादिभ्यः ष्ठन्** सूत्र के द्वारा ष्ठन् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अवशिष्ट ठ के स्थान पर **इक** आदेश, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पर्पिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य करके **पर्पिकः** सिद्ध हो जाता है। स्त्रीत्वविवक्षा में ङीष् होकर **पर्पिकी** बनता है।

अश्विकः। घोड़े से चलने वाला। **अश्वेन चरति** विग्रह करके **अश्व+टा** से **पर्पादिभ्यः ष्ठन्** सूत्र के द्वारा ष्ठन् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अवशिष्ट ठ के स्थान पर **इक** आदेश, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **अश्विक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य करके **अश्विकः** सिद्ध हो जाता है।

रथिकः। रथ से चलने वाला। **रथेन चरति** विग्रह करके **रथ+टा** से **पर्पादिभ्यः ष्ठन्** सूत्र के द्वारा ष्ठन् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अवशिष्ट ठ के स्थान पर **इक** आदेश, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **रथक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य करके **रथिकः** सिद्ध हो जाता है।

पर्पादिगणः-पर्प, अश्व, अश्वत्थ, रथ, जाल, न्याय, व्याल। **पादः पच्च।**

इस ठगधिकार में सरलता से यह ज्ञात नहीं होता कि कौन सा ठक् प्रत्यय ष-इत्संज्ञक (षित्) है और कौन सा नहीं? उसका कारण यह है कि संहितापाठ में सन्धि करने पर सामीप्य के कारण स्पष्ट नहीं होता कि कहाँ सन्धिजन्य ष् है तथा कहाँ स्वतन्त्र। अतः ष्-इत्संज्ञक प्रत्ययों का स्पष्टीकरण महाभाष्य में एक कारिका द्वारा दिया गया है-

आकर्षात्पर्पादेर्भस्त्रादिभ्यः कुसीदसूत्राच्च।

आवसथात् किसरादेः षितः षडेते ठगधिकारे॥ अर्थात् **आकर्षात् ष्ठल्, पर्पादिभ्यः ष्ठन्, भस्त्रादिभ्यः ष्ठन्, कुसीददशैकादशात् ष्ठन्ठचौ, आवसथात् ष्ठल्, किसरादिभ्यः ष्ठन्** ये छह सूत्र विधिवाक्य के रूप में ठगधिकार के अन्तर्गत षित् प्रत्ययों के स्वरूप में पठित हैं।

१५५९. श्वगणाट्ठञ्च ४।४।११॥

चात् ष्ठन्।

श्वगणाट्ठञ्च। श्वगणात् पञ्चम्यन्तं, ठञ् प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **चरति** की और **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ श्वगण इस प्रातिपदिक से चरति अर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है।

चात् ष्ठन्। सूत्रोक्त **च**-शब्द से पूर्वसूत्रोक्त **ष्ठन्** का समुच्चय है। अतः दोनों प्रत्यय होते हैं। इसका उदाहरण अगले सूत्र में दिया गया है।

अब प्रसंगवश ऐज्-आगम-निषेधक सूत्र को उपस्थापित कर रहे हैं। **श्वगण** शब्द का द्वारादिगण में पाठ होने के कारण **द्वारादीनां च** सूत्र के द्वारा ऐच् आगम की प्राप्ति थी।

१५६०. श्वादेरिञि ७।३।८॥

ऐञ्न। श्वभस्त्रस्यापत्यं श्वाभस्त्रिः। श्वादंष्ट्रिः।

तदादिविधौ चेदमेव ज्ञापकम्।

'इकारादाविति वाच्यम्' (वा.४५१२)। श्वगणेन चरति श्वागणिकः, श्वागणिकी, श्वगणिकः, श्वगणिकी।

श्वादेरिञि। श्वन्-शब्द आदिर्यस्य स श्वादिस्तस्य श्वादेः, बहुव्रीहिः। श्वादेः षष्ठ्यन्तम्, इञि सप्तम्यन्तम्। **न य्वाभ्यां पदान्ताभ्याम्०** से **ऐच्** आदि की तथा **न कर्मव्यतिहारे** से **न** की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

जिसमें श्वन्-शब्द आदि हो तो ऐसे अङ्ग को इञ् प्रत्यय के परे रहते ऐच् आगम नहीं होता।

पहले अपत्यार्थक इञ्-प्रत्यय के परे रहते ऐजागमनिषेध का उदाहरण दे रहे हैं-

श्वभस्त्रस्यापत्यं श्वाभस्त्रिः। श्वभस्त्र की सन्तान। **श्वभस्त्रस्य अपत्यम्**

विग्रह करके **श्वभस्त्र+ङस्** से **अत इञ्** सूत्र के द्वारा इञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होने पर **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि प्राप्त होने पर उसे बाधकर **द्वारादीनां च** सूत्र से ऐच् आगम प्राप्त था, उसका **श्वादेरिञि** सूत्र से निषेध हो जाता है। फलतः वृद्धि ही हो जाती है और भसंज्ञक अकार का लोप करके **श्वाभस्त्रि** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **श्वाभस्त्रिः** सिद्ध हो जाता है।

श्वादंष्ट्रिः। श्वदंष्ट्र की सन्तान। **श्वदंष्ट्रस्य अपत्यम्** विग्रह करके **श्वदंष्ट्र+ङस्** से **अत इञ्** सूत्र के द्वारा इञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होने पर **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि प्राप्त होने पर उसे बाधकर **द्वारादीनां च** सूत्र से ऐच् आगम प्राप्त था, उसका **श्वादेरिञि** सूत्र से निषेध हो जाता है। फलतः वृद्धि ही हो जाती है और भसंज्ञक अकार का लोप करके **श्वादंष्ट्रि** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **श्वादंष्ट्रिः** सिद्ध हो जाता है।

यहाँ पर यह शंका होती है कि द्वारादिगण में **श्वन्** शब्द का पाठ है और न कि श्वभस्त्र और श्वदंष्ट्र का। ऐसी स्थिति में **द्वारादीनां च** सूत्र के द्वारा ऐच् आगम की प्राप्ति ही नहीं है तो उसके निषेध के लिये **श्वादेरिञि** सूत्र की आवश्यकता ही क्या है? इस प्रश्न का उत्तर मूलकार ने इस तरह से दिया है-

तदादिविधौ चेदमेव ज्ञापकम्। प्रकृतसूत्र से निषेध करना ही यह ज्ञापित होता है कि द्वारादिगणपठित शब्दों में तदादिविधि होती है। तात्पर्य यह है कि उक्त **द्वारादीनां च** सूत्र में पठित **श्वन्**-शब्द से श्वादि-शब्दों का भी ग्रहण होता है। अत एव प्रकृतसूत्र से ऐजागम का निषेध सार्थक हो जाता है।

इकारादाविति वाच्यम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- प्रकृतसूत्र में **इञि** की जगह **इकारादौ** ऐसा पाठ होना चाहिये। ऐसा करने से इकारादि प्रत्ययों के परे रहते भी श्वादि-शब्दों में ऐच्-आगम का निषेध सम्भव हो सकेगा, अन्यथा **श्वगण**-शब्द से ठञ् प्रत्यय, इकादेश करने पर भी प्रकृतसूत्र की प्राप्ति नहीं हो सकेगी।

अब पूर्वसूत्र का उदाहरण दे रहे हैं-

श्वगणेन चरति श्वागणिकः, श्वागणिकी, श्वगणिकः, श्वगणिकी। कुत्ते को लेकर चलने वा पुरुष या कुत्ते को लेकर चलने वाली स्त्री। यहाँ पुंल्लिंग और स्त्रीलिंग दोनों के उदाहरण दिये गये हैं। **श्वगणेन चरति** विग्रह करके **श्वगण+टा** से **श्वगणाट् ठञ् च** सूत्र के द्वारा ठञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि प्राप्त होने पर उसे बाधकर **द्वारादीनां च** सूत्र से ऐजागम प्राप्त था, उसका भी **श्वादेरिञि** में पठित **इकारादाविति वाच्यम्** वार्तिक की सहायता से निषेध किया जाता है। फलतः आदिवृद्धि हो जाती है और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **श्वागणिक** शब्द बन जाता है। स्त्रीत्वविवक्षा में ठञन्त शब्द से

टिड्ढाणञ्० सूत्र से ङीप् होकर **श्वागणिकी** शब्द बन जाता है। ष्ठन् होने के पक्ष में षकार और नकार की इत्संज्ञा होती है किन्तु वृद्धि प्राप्त नहीं है। अतः **श्वगणिक** शब्द बनता है। इससे स्त्रीत्वविवक्षा में षित्त्वात् **षिद्गौरादिभ्यश्च** सूत्र से ङीष् होकर **श्वगणिकी** शब्द बन जाता है। सभी चारों शब्दों में स्वादिकार्य होने पर **श्वागणिकः, श्वागणिकी, श्वगणिकः, श्वगणिकी** ये रूप बनते हैं।

अब प्रसंगवश श्वादि-शब्दों में विकल्प से ऐच् आगम करने वाले सूत्र को उपस्थापित कर रहे हैं-

१५६१. पदान्तस्यान्यतरस्याम् ७।३।९॥

श्वादेरङ्गस्य पदशब्दान्तस्यैज् वा।

श्वापदस्येदं श्वापदम्, शौवापदम्।

पदान्तस्यान्यतरस्याम्। पद-शब्दोऽन्ते यस्य स पदान्तस्तस्य पदान्तस्य, बहुव्रीहिः। पदान्तस्य षष्ठ्यन्तम्, अन्यतरस्यामिति विभक्तिप्रतिरूपकमव्ययम्। **श्वादेरिञि** से **श्वादेः** की, **न कर्मव्यतिहारे** से **न** की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

जिसमें श्वन्-शब्द आदि में हो और पद-शब्द अन्त में हो, ऐसे अङ्ग को विकल्प से ऐच् आगम नहीं होता।

यद्यपि इस सूत्र में भी **न कर्मव्यतिहारे** सूत्र से **न** पद की अनुवृत्ति आती है, तदनुसार **विकल्प से ऐच् आगम नहीं होता** ऐसा अर्थ बनता है, तथापि कौमुदीकार ने **विकल्प से ऐच्-आगम होता है** ऐसा किया है। दोनों वाक्यों का तात्पर्य समान ही है।

श्वापदस्येदं श्वापदम्, शौवापदम्। श्वपद नामक व्यक्ति से सम्बन्धी। **श्वपदस्य इदम्** विग्रह करके **श्वपद+ङस्** से **तस्येदम्** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होने के बाद वृद्धि प्राप्त होने पर उसे बाधकर **पदान्तस्यान्यतरस्याम्** सूत्र के द्वारा विकल्प से ऐच् आगम होता है। वकार से पहले औकार हो जाने से **शौवापद+अ** बना है। भसंज्ञक अकार का लोप करके **शौवापद** शब्द बन जाता है। ऐच् न होने के पक्ष में पर्ज्जन्यवल्लक्षणन्यायेन आदिवृद्धि होकर **श्वापद** शब्द बनता है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **शौवापदम्** और **श्वापदम्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

अब प्राग्वहतीय के पञ्चम अर्थक्रम **जीवति**=जीवित रहता है, अर्थ में प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है। इसमें भी समर्थ-विभक्ति तृतीया ही है, क्योंकि **तेन दीव्यति जयति जयति जितम्** से **तेन** पद की अनुवृत्ति आती है।

१५६२. वेतनादिभ्यो जीवति ४।४।१२॥

वेतनेन जीवति वैतनिकः। धानुष्कः।

वेतनादिभ्यो जीवति। वेतनम् आदिर्येषां ते वेतनादयस्तेभ्यो वेतनादिभ्यः, बहुव्रीहिः। वेतनादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, जीवति क्रियापदम्। **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है। **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ वेतनादि-गणपठित प्रातिपदिकों से जीवति=जीता है अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है।

वेतनेन जीवति वैतनिकः। वेतन लेकर जीवन-निर्वाह करने वाला। **वेतनेन जीवति** विग्रह करके **वेतन+टा** से **वेतनादिभ्यो जीवति** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, ठ के स्थान पर इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **किति च** सूत्र से आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **वैतनिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वैतनिकः** सिद्ध हो जाता है।

धानुष्कः। धनुष-सम्बन्धी कार्य से जीवन-निर्वाह करने वाला। **धनुषा जीवति** विग्रह करके **धनुष्+टा** से **वेतनादिभ्यो जीवति** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय, **इसुसुक्तान्तात्कः** से **ठ** के स्थान पर **क** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और आदिवृद्धि होकर **धानुष्क** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **धानुष्कः** सिद्ध हो जाता है।

वेतनादिगणः- वेतन, वाहन, अर्धवाह, धनुर्दण्ड, जाल, वेश, उपवेश, प्रेषण, उपवस्ति, सुख, शय्या, शक्ति, उपनिषद्, उपदेश, स्फिज्, (स्फिज), पाद, उपस्थ, उपस्थान, उपहस्त।

१५६३. वस्नक्रयविक्रयाट्ठन् ४।४।१३॥

वस्नेन=मूल्येन जीवति वस्निकः।

क्रयविक्रयग्रहणं सङ्गातविगृहीतार्थम्। क्रयविक्रयिकः, क्रयिकः, विक्रयिकः।

वस्नक्रयविक्रयाट्ठन्। क्रयश्च विक्रयश्च तयोः समाहारद्वन्द्वः क्रयविक्रयम्, वस्नं च क्रयविक्रयं च तयोः समाहारद्वन्द्वः वस्नक्रयविक्रयं, तस्माद् वस्नक्रयविक्रयात् पञ्चम्यन्तं, ठन् प्रथमान्तम्। **वेतनाभ्यो जीवति** से **जीवति** की तथा **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ वस्न और क्रयविक्रय इन प्रातिपदिकों से जीवति=जीता है अर्थ में ठन् प्रत्यय होता है।

वस्नेन=मूल्येन जीवति वस्निकः। मूल्य=पूँजी लगाकर जीवन-निर्वाह करने वाला। **वस्नेन जीवति** विग्रह करके **वस्न+टा** से **वस्नक्रयविक्रयाट्ठन्** सूत्र के द्वारा ठन् प्रत्यय, **ठ** के स्थान पर **इक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार

का लोप होकर **वस्निक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वस्निकः** सिद्ध हो जाता है।

क्रयविक्रयग्रहणं सङ्घातविगृहीतार्थम्। सूत्रोक्त **क्रयविक्रय** शब्द में **क्रय** और **विक्रय** इन दो शब्दों का समूह है। इसका ग्रहण सङ्घात=समस्त अवस्था और विगृहीत=असमस्त अवस्था, उभयावस्था में प्रत्यय करने के लिये है अर्थात् **क्रयविक्रय** इस समूह से और **क्रय** एवं **विक्रय** इस विगृहीत अवस्था से ठन् प्रत्यय होगा। अतः इसके तीन उदाहरण होंगे- **क्रयविक्रयिकः, क्रयिकः** और **विक्रयिकः।**

क्रयविक्रयिकः। खरीद-बिक्री से जीवन-निर्वाह करने वाला। **क्रयविक्रयेण जीवति** विग्रह करके **क्रयविक्रय+टा** से **वस्नक्रयविक्रयाट्ठन्** सूत्र के द्वारा ठन् प्रत्यय, **ठ** के स्थान पर **इक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **क्रयविक्रयिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **क्रयविक्रयिकः** सिद्ध हो जाता है।

क्रयिकः। केवल खरीदने से जीवन-निर्वाह करने वाला। **क्रयेण जीवति** विग्रह करके **क्रय+टा** से **वस्नक्रयविक्रयाट्ठन्** सूत्र के द्वारा ठन्, इकादेश आदि होकर **क्रयिक** और स्वादिकार्य होकर **क्रयिकः** सिद्ध हो जाता है।

विक्रयिकः। केवल बेचकर जीवन-निर्वाह करने वाला। **विक्रयेण जीवति** विग्रह करके **विक्रय+टा** से **वस्नक्रयविक्रयाट्ठन्** सूत्र के द्वारा ठन्, इकादेश आदि होकर **विक्रयिक** और स्वादिकार्य होकर **विक्रयिकः** सिद्ध हो जाता है।

१५६४. आयुधाच्छ च ४।४।१४॥

चाट्ठन्। आयुधेन जीवति आयुधीयः, आयुधिकः।

आयुधाच्छ च। आयुधात् पञ्चम्यन्तं, छ इति लुप्तप्रथमाकं पदं, चाव्ययम्। **वेतनाभ्यो जीवति** से **जीवति** की तथा **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ आयुध-वाची प्रातिपदिक से जीवति=जीता है अर्थ में छ प्रत्यय भी होता है।

चाट्ठन्। प्रकृतसूत्र में पठित **च**-शब्द से **ठन्** प्रत्यय का भी समुच्चय है। अतः पूर्वसूत्र से **ठन्** की भी अनुवृत्ति आती है।

आयुधेन जीवति आयुधीयः, आयुधिकः। शस्त्र से जीविका चलाने वाला। **आयुधेन जीवति** विग्रह करके **आयुध+टा** से **आयुधाच्छ च** सूत्र के द्वारा ठन् प्रत्यय, छकार के स्थान पर **ईय्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आयुधीय** शब्द बना है। ठन् प्रत्यय होने के पक्ष में **इक** आदेश, भसंज्ञक

अकार का लोप होकर **आयुधिक** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आयुधीयः** और **आयुधिकः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

यहाँ पर **जीवति** अर्थ की समाप्ति है। अब प्राग्वहतीयों में षष्ठ अर्थक्रम **हरति**=ले जाना अर्थ में प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है।

१५६५. हरत्युत्सङ्गादिभ्यः ४।४।१५॥

उत्सङ्गेन हरत्यौत्सङ्गिकः।

हरत्युत्सङ्गादिभ्यः। उत्सङ्ग आदिर्येषां ते उत्सङ्गादयस्तेभ्य उत्सङ्गादिभ्यः, बहुव्रीहिः। हरति क्रियापदम्, उत्सङ्गादिभ्यः पञ्चम्यन्तम्। **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है। **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ उत्सङ्ग-आदि-गणपठित प्रातिपदिकों से हरति=ले जाता है (स्थानान्तरित करता है) अर्थ में औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय होता है।

यहाँ पर भी समर्थ-विभक्ति तृतीया ही है।

उत्सङ्गेन हरत्यौत्सङ्गिकः। उत्सङ्ग=गोद से (में) लेकर चलने वाला। **उत्सङ्गेन हरति** विग्रह करके **उत्सङ्ग+टा** से **हरत्युत्सङ्गादिभ्यः** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **औत्सङ्गिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **औत्सङ्गिकः** सिद्ध हो जाता है।

उत्सङ्गादिगणः- उत्सङ्ग, उडुप, उत्पुत, उत्पन्न, उत्पुट, पिटक, पिटाक।

१५६६. भस्त्रादिभ्यः ष्ठन् ४।४।१६॥

भस्त्रया हरति भस्त्रिकः। षित्वाद् भस्त्रिकी।

भस्त्रादिभ्यः ष्ठन्। भस्त्रा आदिर्येषां ते भस्त्रादयस्तेभ्यो भस्त्रादिभ्यः, बहुव्रीहिः। भस्त्रादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, ष्ठन् प्रथमान्तम्। **हरत्युत्सङ्गादिभ्यः** से **हरति** की तथा **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ भस्त्रादि-गणपठित प्रातिपदिकों से हरति=ले जाता है (स्थानान्तरित करता है) अर्थ में ष्ठन् प्रत्यय होता है।

ष्ठन् में षकार और नकार इत्संज्ञक हैं, अवशिष्ट **ठ** के स्थान पर इकादेश होता है।

भस्त्रया हरति भस्त्रिकः। षित्वाद् भस्त्रिकी। मशक=भाथी (धौकनी) से ले जाने वाला। **भस्त्रया हरति** विग्रह करके **भस्त्रा+टा** से **भस्त्रादिभ्यः ष्ठन्** सूत्र के द्वारा

ष्ठन् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक आकार का लोप होकर **भस्त्रिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **भस्त्रिकः** सिद्ध हो जाता है। षित् होने के कारण स्त्रीत्वविवक्षा में **षिद्गौरादिभ्यश्च** सूत्र के द्वारा ङीष् होकर **भस्त्रिकी** बन जाता है।

भस्त्रादिगणः- भस्त्रा, भरट, मरण, शीर्षभार, शीर्षेभार, अंसभार, अंसेभार।

१५६७. विभाषा विवधात् ४।४।१७॥

विवधेन हरति विवधिकः। पक्षे ठक्। वैवधिकः।
एकदेशविकृतस्यानन्यत्वाद्वीवधादपि ष्ठन्। वीवधिकः, वीवधिकी।
विवधवीवधशब्दौ उभयतो बद्धशिक्ये स्कन्धवाह्ये काष्ठे वर्तेते।

विभाषा विवधात्। विभाषा प्रथमान्तं, विवधात् पञ्चम्यन्तम्। **भस्त्रादिभ्यः ष्ठन्** से **ष्ठन्** की, **हरत्युत्सङ्गादिभ्यः** से **हरति** की तथा **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ विवध-शब्द से हरति अर्थ में विकल्प से ष्ठन् प्रत्यय होता है।

पक्षे ठक्। ष्ठन् न होने के पक्ष में औत्सर्गिक ठक् होता है। ठक् होने के पक्ष में **किति च** से आदिवृद्धि होती है किन्तु ष्ठन् होने पर नहीं होती, यही अन्तर है।

विवधेन हरति विवधिकः, वैवधिकः। बँहगी से ले ढोने वाला। **विवधेन हरति** विग्रह करके **विवध+टा** से **विभाषा विवधात्** सूत्र के द्वारा ष्ठन् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **विवधिक** शब्द बना है। ठक् होने के पक्ष में आदिवृद्धि होकर **वैवधिक** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **विवधिकः** और **वैवधिकः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं। ष्ठन् वाले रूप से स्त्रीत्वविवक्षा में षित्त्वात् ङीष् होकर **विवधिकी** बन जाता है।

एकदेशविकृतस्यानन्यत्वाद् वीवधादपि ष्ठन्। वीवधिकः, वीवधिकी। अर्थात् जिस तरह से **विवध** शब्द से ष्ठन् होता है, उसी तरह **वीवध** शब्द से भी ष्ठन् हो जाता है, क्योंकि एकदेशविकृतन्यायेन **विवध** और **वीवध** शब्दों में अन्यत्व=भेद नहीं माना जाता। अतः **वीवधिकः** भी बन जाता है। स्त्रीत्वविवक्षा में षित्त्वात् ङीष् होकर **वीवधिकी** बन जाता है।

विवध-वीवधशब्दौ उभयतो बद्धशिक्ये स्कन्धवाह्ये काष्ठे वर्तेते। अर्थात् **विवध** और **वीवध** शब्दों का अर्थ है- जिसके दोनों सिरों पर बोझ बाँधकर ढोया जाता है, वह काष्ठ, जिसे हिन्दी में **बँहगी** कहते हैं।

वेतनादिभ्यो जीवति। वेतनम् आदिर्येषां ते वेतनादयस्तेभ्यो वेतनादिभ्यः, बहुव्रीहिः। वेतनादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, जीवति क्रियापदम्। **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है। **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ वेतनादि-गणपठित प्रातिपदिकों से जीवति=जीता है अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है।

वेतनेन जीवति वैतनिकः। वेतन लेकर जीवन-निर्वाह करने वाला। **वेतनेन जीवति** विग्रह करके **वेतन+टा** से **वेतनादिभ्यो जीवति** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, ठ के स्थान पर इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **किति च** सूत्र से आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **वैतनिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वैतनिकः** सिद्ध हो जाता है।

धानुष्कः। धनुष-सम्बन्धी कार्य से जीवन-निर्वाह करने वाला। **धनुषा जीवति** विग्रह करके **धनुष्+टा** से **वेतनादिभ्यो जीवति** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय, **इसुसुक्तान्तात्कः** से **ठ** के स्थान पर **क** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और आदिवृद्धि होकर **धानुष्क** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **धानुष्कः** सिद्ध हो जाता है।

वेतनादिगणः- वेतन, वाहन, अर्धवाह, धनुर्दण्ड, जाल, वेश, उपवेश, प्रेषण, उपवस्ति, सुख, शय्या, शक्ति, उपनिषद्, उपदेश, स्फिज्, (स्फिज), पाद, उपस्थ, उपस्थान, उपहस्त।

१५६३. वस्नक्रयविक्रयाट्ठन् ४।४।१३॥

वस्नेन=मूल्येन जीवति वस्निकः।

क्रयविक्रयग्रहणं सङ्गतविगृहीतार्थम्। क्रयविक्रयिकः, क्रयिकः, विक्रयिकः।

वस्नक्रयविक्रयाट्ठन्। क्रयश्च विक्रयश्च तयोः समाहारद्वन्द्वः क्रयविक्रयम्, वस्नं च क्रयविक्रयं च तयोः समाहारद्वन्द्वः वस्नक्रयविक्रयं, तस्माद् वस्नक्रयविक्रयात् पञ्चम्यन्तं, ठन् प्रथमान्तम्। **वेतनाभ्यो जीवति** से **जीवति** की तथा **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ वस्न और क्रयविक्रय इन प्रातिपदिकों से जीवति=जीता है अर्थ में ठन् प्रत्यय होता है।

वस्नेन=मूल्येन जीवति वस्निकः। मूल्य=पूँजी लगाकर जीवन-निर्वाह करने वाला। **वस्नेन जीवति** विग्रह करके **वस्न+टा** से **वस्नक्रयविक्रयाट्ठन्** सूत्र के द्वारा ठन् प्रत्यय, **ठ** के स्थान पर **इक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार

का लोप होकर **वस्निक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वस्निकः** सिद्ध हो जाता है।

क्रयविक्रयग्रहणं सङ्घातविगृहीतार्थम्। सूत्रोक्त **क्रयविक्रय** शब्द में **क्रय** और **विक्रय** इन दो शब्दों का समूह है। इसका ग्रहण सङ्घात=समस्त अवस्था और विगृहीत=असमस्त अवस्था, उभयावस्था में प्रत्यय करने के लिये है अर्थात् **क्रयविक्रय** इस समूह से और **क्रय** एवं **विक्रय** इस विगृहीत अवस्था से ठन् प्रत्यय होगा। अतः इसके तीन उदाहरण होंगे- **क्रयविक्रयिकः, क्रयिकः** और **विक्रयिकः।**

क्रयविक्रयिकः। खरीद-बिक्री से जीवन-निर्वाह करने वाला। **क्रयविक्रयेण जीवति** विग्रह करके **क्रयविक्रय+टा** से **वस्नक्रयविक्रयाट्ठन्** सूत्र के द्वारा ठन् प्रत्यय, **ठ** के स्थान पर **इक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **क्रयविक्रयिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **क्रयविक्रयिकः** सिद्ध हो जाता है।

क्रयिकः। केवल खरीदने से जीवन-निर्वाह करने वाला। **क्रयेण जीवति** विग्रह करके **क्रय+टा** से **वस्नक्रयविक्रयाट्ठन्** सूत्र के द्वारा ठन्, इकादेश आदि होकर **क्रयिक** और स्वादिकार्य होकर **क्रयिकः** सिद्ध हो जाता है।

विक्रयिकः। केवल बेचकर जीवन-निर्वाह करने वाला। **विक्रयेण जीवति** विग्रह करके **विक्रय+टा** से **वस्नक्रयविक्रयाट्ठन्** सूत्र के द्वारा ठन्, इकादेश आदि होकर **विक्रयिक** और स्वादिकार्य होकर **विक्रयिकः** सिद्ध हो जाता है।

१५६४. आयुधाच्छ च ४।४।१४॥

चाट्ठन्। आयुधेन जीवति आयुधीयः, आयुधिकः।

आयुधाच्छ च। आयुधात् पञ्चम्यन्तं, छ इति लुप्तप्रथमाकं पदं, चाव्ययम्। **वेतनाभ्यो जीवति** से **जीवति** की तथा **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ आयुध-वाची प्रातिपदिक से जीवति=जीता है अर्थ में छ प्रत्यय भी होता है।

चाट्ठन्। प्रकृतसूत्र में पठित **च**-शब्द से **ठन्** प्रत्यय का भी समुच्चय है। अतः पूर्वसूत्र से **ठन्** की भी अनुवृत्ति आती है।

आयुधेन जीवति आयुधीयः, आयुधिकः। शस्त्र से जीविका चलाने वाला। **आयुधेन जीवति** विग्रह करके **आयुध+टा** से **आयुधाच्छ च** सूत्र के द्वारा ठन् प्रत्यय, छकार के स्थान पर **ईय्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आयुधीय** शब्द बना है। ठन् प्रत्यय होने के पक्ष में **इक** आदेश, भसंज्ञक

वेतनादिभ्यो जीवति। वेतनम् आदिर्येषां ते वेतनादयस्तेभ्यो वेतनादिभ्यः, बहुव्रीहिः। वेतनादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, जीवति क्रियापदम्। **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है। **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ वेतनादि-गणपठित प्रातिपदिकों से जीवति=जीता है अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है।

वेतनेन जीवति वैतनिकः। वेतन लेकर जीवन-निर्वाह करने वाला। **वेतनेन जीवति** विग्रह करके **वेतन+टा** से **वेतनादिभ्यो जीवति** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, ठ के स्थान पर इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **किति च** सूत्र से आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **वैतनिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वैतनिकः** सिद्ध हो जाता है।

धानुष्कः। धनुष-सम्बन्धी कार्य से जीवन-निर्वाह करने वाला। **धनुषा जीवति** विग्रह करके **धनुष्+टा** से **वेतनादिभ्यो जीवति** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय, **इसुसुक्तान्तात्कः** से **ठ** के स्थान पर **क** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और आदिवृद्धि होकर **धानुष्क** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **धानुष्कः** सिद्ध हो जाता है।

वेतनादिगणः- वेतन, वाहन, अर्धवाह, धनुर्दण्ड, जाल, वेश, उपवेश, प्रेषण, उपवस्ति, सुख, शय्या, शक्ति, उपनिषद्, उपदेश, स्फिज्, (स्फिज), पाद, उपस्थ, उपस्थान, उपहस्त।

१५६३. वस्नक्रयविक्रयाट्ठन् ४।४।१३॥

वस्नेन=मूल्येन जीवति वस्निकः।

क्रयविक्रयग्रहणं सङ्घातविगृहीतार्थम्। क्रयविक्रयिकः, क्रयिकः, विक्रयिकः।

वस्नक्रयविक्रयाट्ठन्। क्रयश्च विक्रयश्च तयोः समाहारद्वन्द्वः क्रयविक्रयम्, वस्नं च क्रयविक्रयं च तयोः समाहारद्वन्द्वः वस्नक्रयविक्रयं, तस्माद् वस्नक्रयविक्रयात् पञ्चम्यन्तं, ठन् प्रथमान्तम्। **वेतनाभ्यो जीवति** से **जीवति** की तथा **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ वस्न और क्रयविक्रय इन प्रातिपदिकों से जीवति=जीता है अर्थ में ठन् प्रत्यय होता है।

वस्नेन=मूल्येन जीवति वस्निकः। मूल्य=पूँजी लगाकर जीवन-निर्वाह करने वाला। **वस्नेन जीवति** विग्रह करके **वस्न+टा** से **वस्नक्रयविक्रयाट्ठन्** सूत्र के द्वारा ठन् प्रत्यय, **ठ** के स्थान पर **इक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार

का लोप होकर **वस्निक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वस्निकः** सिद्ध हो जाता है।

क्रयविक्रयग्रहणं सङ्घातविगृहीतार्थम्। सूत्रोक्त **क्रयविक्रय** शब्द में **क्रय** और **विक्रय** इन दो शब्दों का समूह है। इसका ग्रहण सङ्घात=समस्त अवस्था और विगृहीत=असमस्त अवस्था, उभयावस्था में प्रत्यय करने के लिये है अर्थात् **क्रयविक्रय** इस समूह से और **क्रय** एवं **विक्रय** इस विगृहीत अवस्था से ठन् प्रत्यय होगा। अतः इसके तीन उदाहरण होंगे- **क्रयविक्रयिकः, क्रयिकः** और **विक्रयिकः**।

क्रयविक्रयिकः। खरीद-बिक्री से जीवन-निर्वाह करने वाला। **क्रयविक्रयेण जीवति** विग्रह करके **क्रयविक्रय+टा** से **वस्नक्रयविक्रयाट्ठन्** सूत्र के द्वारा ठन् प्रत्यय, **ठ** के स्थान पर **इक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **क्रयविक्रयिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **क्रयविक्रयिकः** सिद्ध हो जाता है।

क्रयिकः। केवल खरीदने से जीवन-निर्वाह करने वाला। **क्रयेण जीवति** विग्रह करके **क्रय+टा** से **वस्नक्रयविक्रयाट्ठन्** सूत्र के द्वारा ठन्, इकादेश आदि होकर **क्रयिक** और स्वादिकार्य होकर **क्रयिकः** सिद्ध हो जाता है।

विक्रयिकः। केवल बेचकर जीवन-निर्वाह करने वाला। **विक्रयेण जीवति** विग्रह करके **विक्रय+टा** से **वस्नक्रयविक्रयाट्ठन्** सूत्र के द्वारा ठन्, इकादेश आदि होकर **विक्रयिक** और स्वादिकार्य होकर **विक्रयिकः** सिद्ध हो जाता है।

१५६४. आयुधाच्छ च ४।४।१४॥

चाट्ठन्। आयुधेन जीवति आयुधीयः, आयुधिकः।

आयुधाच्छ च। आयुधात् पञ्चम्यन्तं, छ इति लुप्तप्रथमाकं पदं, चाव्ययम्। **वेतनाभ्यो जीवति** से **जीवति** की तथा **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ आयुध-वाची प्रातिपदिक से जीवति=जीता है अर्थ में छ प्रत्यय भी होता है।

चाट्ठन्। प्रकृतसूत्र में पठित **च**-शब्द से **ठन्** प्रत्यय का भी समुच्चय है। अतः पूर्वसूत्र से **ठन्** की भी अनुवृत्ति आती है।

आयुधेन जीवति आयुधीयः, आयुधिकः। शस्त्र से जीविका चलाने वाला। **आयुधेन जीवति** विग्रह करके **आयुध+टा** से **आयुधाच्छ च** सूत्र के द्वारा ठन् प्रत्यय, छकार के स्थान पर **ईय्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आयुधीय** शब्द बना है। ठन् प्रत्यय होने के पक्ष में **इक** आदेश, भसंज्ञक

वेतनादिभ्यो जीवति। वेतनम् आदिर्येषां ते वेतनादयस्तेभ्यो वेतनादिभ्यः, बहुव्रीहिः। वेतनादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, जीवति क्रियापदम्। **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है। **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ वेतनादि-गणपठित प्रातिपदिकों से जीवति=जीता है अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है।

वेतनेन जीवति वैतनिकः। वेतन लेकर जीवन-निर्वाह करने वाला। **वेतनेन जीवति** विग्रह करके **वेतन+टा** से **वेतनादिभ्यो जीवति** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, ठ के स्थान पर इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **किति च** सूत्र से आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **वैतनिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वैतनिकः** सिद्ध हो जाता है।

धानुष्कः। धनुष-सम्बन्धी कार्य से जीवन-निर्वाह करने वाला। **धनुषा जीवति** विग्रह करके **धनुष्+टा** से **वेतनादिभ्यो जीवति** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय, **इसुसुक्तान्तात्कः** से **ठ** के स्थान पर **क** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और आदिवृद्धि होकर **धानुष्क** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **धानुष्कः** सिद्ध हो जाता है।

वेतनादिगणः- वेतन, वाहन, अर्धवाह, धनुर्दण्ड, जाल, वेश, उपवेश, प्रेषण, उपवस्ति, सुख, शय्या, शक्ति, उपनिषद्, उपदेश, स्फिज्, (स्फिज), पाद, उपस्थ, उपस्थान, उपहस्त।

१५६३. वस्नक्रयविक्रयाट्ठन् ४।४।१३॥

वस्नेन=मूल्येन जीवति वस्निकः।

क्रयविक्रयग्रहणं सङ्गातविगृहीतार्थम्। क्रयविक्रयिकः, क्रयिकः, विक्रयिकः।

वस्नक्रयविक्रयाट्ठन्। क्रयश्च विक्रयश्च तयोः समाहारद्वन्द्वः क्रयविक्रयम्, वस्नं च क्रयविक्रयं च तयोः समाहारद्वन्द्वः वस्नक्रयविक्रयं, तस्माद् वस्नक्रयविक्रयात् पञ्चम्यन्तं, ठन् प्रथमान्तम्। **वेतनाभ्यो जीवति** से **जीवति** की तथा **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ वस्न और क्रयविक्रय इन प्रातिपदिकों से जीवति=जीता है अर्थ में ठन् प्रत्यय होता है।

वस्नेन=मूल्येन जीवति वस्निकः। मूल्य=पूँजी लगाकर जीवन-निर्वाह करने वाला। **वस्नेन जीवति** विग्रह करके **वस्न+टा** से **वस्नक्रयविक्रयाट्ठन्** सूत्र के द्वारा ठन् प्रत्यय, **ठ** के स्थान पर **इक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार

का लोप होकर **वस्निक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वस्निकः** सिद्ध हो जाता है।

क्रयविक्रयग्रहणं सङ्घातविगृहीतार्थम्। सूत्रोक्त **क्रयविक्रय** शब्द में **क्रय** और **विक्रय** इन दो शब्दों का समूह है। इसका ग्रहण सङ्घात=समस्त अवस्था और विगृहीत=असमस्त अवस्था, उभयावस्था में प्रत्यय करने के लिये है अर्थात् **क्रयविक्रय** इस समूह से और **क्रय** एवं **विक्रय** इस विगृहीत अवस्था से ठन् प्रत्यय होगा। अतः इसके तीन उदाहरण होंगे- **क्रयविक्रयिकः, क्रयिकः** और **विक्रयिकः।**

क्रयविक्रयिकः। खरीद-बिक्री से जीवन-निर्वाह करने वाला। **क्रयविक्रयेण जीवति** विग्रह करके **क्रयविक्रय+टा** से **वस्नक्रयविक्रयाट्ठन्** सूत्र के द्वारा ठन् प्रत्यय, **ठ** के स्थान पर **इक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **क्रयविक्रयिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **क्रयविक्रयिकः** सिद्ध हो जाता है।

क्रयिकः। केवल खरीदने से जीवन-निर्वाह करने वाला। **क्रयेण जीवति** विग्रह करके **क्रय+टा** से **वस्नक्रयविक्रयाट्ठन्** सूत्र के द्वारा ठन्, इकादेश आदि होकर **क्रयिक** और स्वादिकार्य होकर **क्रयिकः** सिद्ध हो जाता है।

विक्रयिकः। केवल बेचकर जीवन-निर्वाह करने वाला। **विक्रयेण जीवति** विग्रह करके **विक्रय+टा** से **वस्नक्रयविक्रयाट्ठन्** सूत्र के द्वारा ठन्, इकादेश आदि होकर **विक्रयिक** और स्वादिकार्य होकर **विक्रयिकः** सिद्ध हो जाता है।

१५६४. आयुधाच्छ च ४।४।१४॥

चाट्ठन्। आयुधेन जीवति आयुधीयः, आयुधिकः।

आयुधाच्छ च। आयुधात् पञ्चम्यन्तं, छ इति लुप्तप्रथमाकं पदं, चाव्ययम्। **वेतनाभ्यो जीवति** से **जीवति** की तथा **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ आयुध-वाची प्रातिपदिक से जीवति=जीता है अर्थ में छ प्रत्यय भी होता है।

चाट्ठन्। प्रकृतसूत्र में पठित **च**-शब्द से **ठन्** प्रत्यय का भी समुच्चय है। अतः पूर्वसूत्र से **ठन्** की भी अनुवृत्ति आती है।

आयुधेन जीवति आयुधीयः, आयुधिकः। शस्त्र से जीविका चलाने वाला। **आयुधेन जीवति** विग्रह करके **आयुध+टा** से **आयुधाच्छ च** सूत्र के द्वारा ठन् प्रत्यय, छकार के स्थान पर **ईय्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आयुधीय** शब्द बना है। ठन् प्रत्यय होने के पक्ष में **इक** आदेश, भसंज्ञक

अकार का लोप होकर **आयुधिक** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आयुधीयः** और **आयुधिकः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

यहाँ पर **जीवति** अर्थ की समाप्ति है। अब प्राग्वहतीयों में षष्ठ अर्थक्रम **हरति**=ले जाना अर्थ में प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है।

१५६५. हरत्युत्सङ्गादिभ्यः ४।४।१५॥

उत्सङ्गेन हरत्यौत्सङ्गिकः।

हरत्युत्सङ्गादिभ्यः। उत्सङ्ग आदिर्येषां ते उत्सङ्गादयस्तेभ्य उत्सङ्गादिभ्यः, बहुव्रीहिः। हरति क्रियापदम्, उत्सङ्गादिभ्यः पञ्चम्यन्तम्। **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है। **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ उत्सङ्ग-आदि-गणपठित प्रातिपदिकों से हरति=ले जाता है (स्थानान्तरित करता है) अर्थ में औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय होता है।

यहाँ पर भी समर्थ-विभक्ति तृतीया ही है।

उत्सङ्गेन हरत्यौत्सङ्गिकः। उत्सङ्ग=गोद से (में) लेकर चलने वाला। **उत्सङ्गेन हरति** विग्रह करके **उत्सङ्ग+टा** से **हरत्युत्सङ्गादिभ्यः** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय, इकादेश, प्रातिमदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **औत्सङ्गिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **औत्सङ्गिकः** सिद्ध हो जाता है।

उत्सङ्गादिगणः- उत्सङ्ग, उडुप, उत्पुत, उत्पन्न, उत्पुट, पिटक, पिटाक।

१५६६. भस्त्रादिभ्यः ष्ठन् ४।४।१६॥

भस्त्रया हरति भस्त्रिकः। षित्वाद् भस्त्रिकी।

भस्त्रादिभ्यः ष्ठन्। भस्त्रा आदिर्येषां ते भस्त्रादयस्तेभ्यो भस्त्रादिभ्यः, बहुव्रीहिः। भस्त्रादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, ष्ठन् प्रथमान्तम्। **हरत्युत्सङ्गादिभ्यः** से **हरति** की तथा **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ भस्त्रादि-गणपठित प्रातिपदिकों से हरति=ले जाता है (स्थानान्तरित करता है) अर्थ में ष्ठन् प्रत्यय होता है।

ष्ठन् में षकार और नकार इत्संज्ञक हैं, अवशिष्ट **ठ** के स्थान पर इकादेश होता है।

भस्त्रया हरति भस्त्रिकः। षित्वाद् भस्त्रिकी। मशक=भाथी (धौकनी) से ले जाने वाला। **भस्त्रया हरति** विग्रह करके **भस्त्रा+टा** से **भस्त्रादिभ्यः ष्ठन्** सूत्र के द्वारा

ष्ठन् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक आकार का लोप होकर **भस्त्रिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **भस्त्रिकः** सिद्ध हो जाता है। षित् होने के कारण स्त्रीत्वविवक्षा में **षिद्गौरादिभ्यश्च** सूत्र के द्वारा ङीष् होकर **भस्त्रिकी** बन जाता है।

भस्त्रादिगणः- भस्त्रा, भरट, मरण, शीर्षभार, शीर्षेभार, अंसभार, अंसेभार।

१५६७. विभाषा विवधात् ४।४।१७॥

विवधेन हरति विवधिकः। पक्षे ठक्। वैवधिकः।
एकदेशविकृतस्यानन्यत्वाद्वीवधादपि ष्ठन्। वीवधिकः, वीवधिकी।
विवधवीवधशब्दौ उभयतो बद्धशिक्ये स्कन्धवाह्ये काष्ठे वर्तेते।

विभाषा विवधात्। विभाषा प्रथमान्तं, विवधात् पञ्चम्यन्तम्। **भस्त्रादिभ्यः ष्ठन्** से **ष्ठन्** की, **हरत्युत्सङ्गादिभ्यः** से **हरति** की तथा **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ विवध-शब्द से हरति अर्थ में विकल्प से ष्ठन् प्रत्यय होता है।

पक्षे ठक्। ष्ठन् न होने के पक्ष में औत्सर्गिक ठक् होता है। ठक् होने के पक्ष में **किति च** से आदिवृद्धि होती है किन्तु ष्ठन् होने पर नहीं होती, यही अन्तर है।

विवधेन हरति विवधिकः, वैवधिकः। बँहगी से ले ढोने वाला। **विवधेन हरति** विग्रह करके **विवध+टा** से **विभाषा विवधात्** सूत्र के द्वारा ष्ठन् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **विवधिक** शब्द बना है। ठक् होने के पक्ष में आदिवृद्धि होकर **वैवधिक** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **विवधिकः** और **वैवधिकः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं। ष्ठन् वाले रूप से स्त्रीत्वविवक्षा में षित्त्वात् ङीष् होकर **विवधिकी** बन जाता है।

एकदेशविकृतस्यानन्यत्वाद् वीवधादपि ष्ठन्। वीवधिकः, वीवधिकी। अर्थात् जिस तरह से **विवध** शब्द से ष्ठन् होता है, उसी तरह **वीवध** शब्द से भी ष्ठन् हो जाता है, क्योंकि एकदेशविकृतन्यायेन **विवध** और **वीवध** शब्दों में अन्यत्व=भेद नहीं माना जाता। अतः **वीवधिकः** भी बन जाता है। स्त्रीत्वविवक्षा में षित्त्वात् ङीष् होकर **वीवधिकी** बन जाता है।

विवध-वीवधशब्दौ उभयतो बद्धशिक्ये स्कन्धवाह्ये काष्ठे वर्तेते। अर्थात् **विवध** और **वीवध** शब्दों का अर्थ है- जिसके दोनों सिरों पर बोझ बाँधकर ढोया जाता है, वह काष्ठ, जिसे हिन्दी में **बँहगी** कहते हैं।

१५६८. अण् कुटिलिकायाः ४।४।१८॥

कुटिलिका व्याधानां गतिविशेषः, कर्मारोपकरणभूतं लोहं च।
कुटिलिकया हरति मृगानङ्गारान् वा कौटिलिको व्याधः, कर्मारश्च।

अण् कुटिलिकायाः। अण् प्रथमान्तं, कुटिलिकायाः पञ्चम्यन्तम्। **हरत्युत्सङ्गादिभ्यः** से **हरति** की तथा **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ कुटिलिका-शब्द से हरति अर्थ में अण् प्रत्यय होता है।

कुटिलिका व्याधानां गतिविशेषः, कर्मारोपकरणभूतं लोहं च। अर्थात् **कुटिलिका** शब्द का अर्थ है- व्याधों की टेढ़ी चाल या लोहार आदि की अंगार खींचने के लिये बनायी गयी छड़ (सँड़सी)।

कुटिलिकया हरति मृगानङ्गारान् वा कौटिलिको व्याधः, कर्मारश्च। टेढ़ी चाल से मृग आदि का शिकार करने वाला बहेलिया या सँडसी आदि से अंगार खीचने वाला लोहार आदि। **कुटिलिकया हरति** विग्रह करके **कुटिलिका+टा** से **अण् कुटिलिकायाः** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक आकार का लोप होकर **कौटिलिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कौटिलिकः** सिद्ध हो जाता है।

यहाँ पर **हरति** अर्थ की समाप्ति है। अब प्राग्वहतीयों में सप्तम अर्थक्रम **निर्वृत्त**=सम्पादन करना (उत्पन्न करना) अर्थ में प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है।

१५६९. निर्वृत्तेऽक्षद्यूतादिभ्यः ४।४।१९॥

अक्षद्यूतेन निर्वृत्तमाक्षद्यूतिकं वैरम्।

निर्वृत्तेऽक्षद्यूतादिभ्यः। अक्षद्यूत आदिर्येषां ते अक्षद्यूतादयस्तेभ्योऽक्षद्यूतादिभ्यः, बहुव्रीहिः। निर्वृत्ते सप्तम्यन्तम्, अक्षद्युतादिभ्यः पञ्चम्यन्तम्। **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है। **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ अक्षद्यूतादि-गणपठित प्रातिपदिकों से निर्वृत्ते=सम्पादन करना (उत्पन्न करना) अर्थ में औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय होता है।

यहाँ पर भी समर्थ-विभक्ति तृतीया ही है, क्योंकि **तेन** की अनुवृत्ति आती है।

अक्षद्यूतेन निर्वृत्तमाक्षद्यूतिकं वैरम्। पाशे के जुए से उत्पन्न वैर। **अक्षद्यूतेन निर्वृत्तम्** विग्रह करके **अक्षद्यूत+टा** से **निर्वृत्तेऽक्षद्यूतादिभ्यः** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अवशिष्ट **ठ** के स्थान पर **इक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्,

आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आक्षद्यूतिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आक्षद्यूतिकः** सिद्ध हो जाता है।

अक्षद्यूतादिगणः- अक्षद्यूत, [जानुप्रहत], जङ्घाप्रहत, जङ्घाप्रहत, पादखेदन, कण्टकमर्दन, गतानुगत, गतागत, यातोपयात, अनुगत।

१५७०. क्त्रेर्मम्नित्यम् ४।४।२०॥

क्त्रिप्रत्ययान्तप्रकृतिकात् तृतीयान्तान्निर्वृत्तेऽर्थे मप् स्यान्नित्यम्।

कृत्या निर्वृत्तं कृत्रिमम्। पक्त्रिमम्।

'भावप्रत्ययान्तादिमब्वक्तव्यः'(वा.२९५६)।

पाकेन निर्वृत्तं पाकिमम्। त्यागिमम्।

क्त्रेर्मम्नित्यम्। क्त्रेः पञ्चम्यन्तं, मप् प्रथमान्तं, नित्यं प्रथमान्तम्। **निर्वृत्तेऽक्षद्यूतादिभ्यः** से **निर्वृत्ते** की, **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ क्त्रि-प्रत्ययान्त-प्रकृतिक प्रातिपदिक से निर्वृत्ते=सम्पादन करना (उत्पन्न करना) अर्थ में नित्य से मप् प्रत्यय होता है।

मप् में पकार इत्संज्ञक है, **म** बचता है।

समर्थानां प्रथमाद्वा से प्राप्त महाविभाषा (**वा**) की निवृत्ति के लिये **नित्यम्** पद उपादान किया गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि **क्त्रि**-प्रत्ययान्त शब्द से नित्य से मप् होता है और केवल **क्त्रि** प्रत्ययान्त शब्द का प्रयोग नहीं किया जा सकता। अत एव इसके लौकिक विग्रह वाक्य में क्त्रिप्रत्ययान्त शब्द का प्रयोग नहीं है, अपितु जिस अर्थ में क्त्रि-प्रत्यय होता है, उसी अर्थ में विहित समानार्थ प्रत्यय से अस्वपद विग्रहवाक्य बनाया जाता है। ध्यान रहे कि कृत्प्रकरण में डकार-इत्संज्ञक धातुओं से **ड्वितः क्त्रिः** (३.३.८८) सूत्र के द्वारा **क्त्रि** प्रत्यय किया जाता है।

कृत्या निर्वृत्तं कृत्रिमम्। बनावटी (नकली) से बनाया गया अर्थात् नकली वस्तु। **कृत्या निर्वृत्तम्** (कृ-धातु से क्त्रि के समानार्थक क्तिन्-प्रत्ययान्त **कृति**-शब्द) लौकिक विग्रह करके **कृत्रि** से **क्त्रेर्मम्नित्यम्** सूत्र के द्वारा मप्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **कृत्रिम** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य से **कृत्रिमम्** सिद्ध हो जाता है। स्त्रीलिंग में टाप् होकर **कृत्रिमा** बनता है और पुंल्लिङ्ग में **कृत्रिमः**।

पक्त्रिमम्। पाक से बनने वाला पदार्थ। **पक्त्या निर्वृत्तम्** (पच्-धातु से क्त्रि के समानार्थक क्तिन्-प्रत्ययान्त **पक्ति**-शब्द) लौकिक विग्रह करके **पक्त्रि** शब्द से **क्त्रेर्मम्नित्यम्** सूत्र के द्वारा मप्-प्रत्यय करके **कृत्रिम** और स्वादिकार्य से **पक्त्रिमम्** सिद्ध

हो जाता है। यहाँ पर धातु के चकार को **चोः कुः** सूत्र के द्वारा कुत्व होकर ककार हो गया है।

भावप्रत्ययान्तादिमब्वक्तव्यः। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- भावार्थक (भाव-अर्थ में विहित) प्रत्ययान्त शब्दों से निर्वृत्त-अर्थ में इमप्-प्रत्यय होता है। पकार की इत्संज्ञा होकर **इम** मात्र बचता है। घञ् आदि भावार्थक प्रत्यय कृत्प्रकरण में **भावे** सूत्र के अधिकार में किये जाते हैं। इस वार्तिक में **नित्यम्** पद का अन्वय नहीं होता। अतः लौकिक विग्रह में समानार्थ प्रत्यय की आवश्यकता नहीं है। इस लिये उदाहरणों मे स्वपद-विग्रह दिखाया गया है।

पाकेन निर्वृत्तं पाकिमम्। पाक से सम्पन्न। **डुपचष् पाके (पच्)** धातु से भावार्थ में घञ्-प्रत्यय, उपधावृद्धि और **चजोः कु घिण्ण्यतोः** से चकार को कुत्व होकर निष्पन्न **पाक** शब्द सिद्ध होता है। **पाकेन निर्वृत्तम्** विग्रह करके **पाक+टा** से **भावप्रत्ययान्तादिमब्वक्तव्यः** वार्तिक से **इमप्** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **पाक+इम** बना है। भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पाकिम** और स्वादिकार्य होकर **पाकिमम्** सिद्ध हो जाता है।

त्यागिमम्। त्याग के कारण आया हुआ। **त्यज हानौ** धातु से भावार्थ में घञ्-प्रत्यय, उपधावृद्धि और जकार को कुत्व होकर निष्पन्न **त्याग** शब्द सिद्ध होता है। **त्यागेन निर्वृत्तम्** विग्रह करके **त्याग+टा** से **भावप्रत्ययान्तादिमब्वक्तव्यः** वार्तिक से **इमप्** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **त्यागिम** और स्वादिकार्य होकर **त्यागिमम्** सिद्ध हो जाता है।

१५७१. अपमित्ययाचिताभ्यां कक्कनौ ४।४।२१॥

अपमित्येति ल्यबन्तम्। अपमित्य निर्वृत्तमापमित्यकम्।
याचितेन निर्वृत्तं याचितकम्।

अपमित्ययाचिताभ्यां कक्कनौ। अपमित्य इति च, याचितश्च तयोरितरेतर-योगद्वन्द्वः- अपमित्ययाचितौ, ताभ्याम् अपमित्ययाचिताभ्याम्। कक् च कन् च तयोरितरेतरद्वन्द्वः कक्कनौ। अपमित्ययाचिताभ्यां पञ्चम्यन्तं, कक्कनौ प्रथमान्तम्। **निर्वृत्तेऽक्षद्यूतादिभ्यः** से **निर्वृत्ते** की, **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है। प्रकृति और प्रत्ययों में समानसंख्या होने के कारण **यथासङ्ख्यमनुदेशः समानाम्** की उपस्थिति होती है।

अपमित्य-शब्द और तृतीया-समर्थ याचित शब्द से निर्वृत्त करना अर्थ में कक् और कन् प्रत्यय होते हैं।

अपमित्येति ल्यबन्तम्। सूत्रोक्त **अपमित्य** शब्द ल्यप्-प्रत्ययान्त है। **अप**-पूर्वक विनिमयार्थक **मेङ् (मा)** धातु से क्त्वा-प्रत्यय, गतिसमास, क्त्वा के स्थान पर ल्यप् आदेश, धातु के आकार के स्थान पर **मयतेरिदन्यतरस्याम्** सूत्र के द्वारा इकारादेश, तुक् आगम होकर **अपमित्य** शब्द की निष्पत्ति होती है। क्त्वा-प्रत्ययान्त शब्द अव्ययसंज्ञक होता है, अतः लौकिक विग्रहवाक्य में विभक्ति नहीं लगेगी।

अपमित्य निर्वृत्तम् आपमित्यकम्। जो ऋण जिस रूप में लिया जाय उसी रूप में चुका दिया जाय। **अपमित्य** शब्द से **अपमित्ययाचिताभ्यां कक्कनौ** सूत्र के द्वारा **कक्** प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि होकर **आपमित्यक** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **आपमित्यकम्** सिद्ध हो जाता है।

याचितेन निर्वृत्तं याचितकम्। मागी हुयी वस्तु, जो लौटाई न जाय। **याचितेन निर्वृत्तम्** लौकिक विग्रह करके **याचित+टा** से **अपमित्ययाचिताभ्यां कक्कनौ** सूत्र के द्वारा **कन्** प्रत्यय होने पर, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **याचितक** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **याचितकम्** सिद्ध हो जाता है।

१५७२. संसृष्टे ४।४।२२॥
दध्ना संसृष्टं दाधिकम्।

संसृष्टे। संसृष्टे सप्तम्यन्तमेकपदं सूत्रम्। **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है और **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'मिला हुआ' इस अर्थ में तृतीयान्त प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय होता है।

दाधिकम्। दही से मिला हुआ। **दध्ना संसृष्टम्** लौकिक विग्रह और **दधि टा** अलौकिक विग्रह है। **संसृष्टे** से ठक्, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से ठ के स्थान पर इक आदेश करके **दधि+इक** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई और भसंज्ञक इकार का लोप करके **दाध्+इक=दाधिक**, स्वादिकार्य करके **दाधिकम्** सिद्ध हुआ।

१५७३. चूर्णादिनिः ४।४।२३॥
चूर्णैः संसृष्टाश्चूर्णिनोऽपूपाः।

चूर्णादिनिः। चूर्णात् पञ्चम्यन्तम्, इनिः प्रथमान्तम्। पूर्वसूत्र **संसृष्टे** की और **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'मिला हुआ' अर्थ में तृतीयान्त चूर्ण इस प्रातिपदिक से इनि प्रत्यय होता है।

इनि में अन्त्य इकार इत्संज्ञक है, **इन्** अवशिष्ट रहता है। इस प्रत्यय के लगने से शब्द इन्नन्त बन जाता है।

चूर्णैः संसृष्टाश्चूर्णिनोऽपूपाः। आटा मिले हुये पुए। **चूर्णैः संसृष्टाः** विग्रह करके **चूर्ण+भिस्** से **चूर्णादिनिः** सूत्र के द्वारा इनि-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप करके **चूर्णिन्** शब्द बन जाता है। स्वादिकार्य होने पर एकवचन में **चूर्णी** और द्विवचन-बहुचन में क्रमशः **चूर्णिनौ, चूर्णिनः** रूप बनते हैं। **अपूपाः** का विशेषण होने के कारण प्रकृत में बहुवचन का प्रयोग किया गया है।

१५७४. लवणाल्लुक् ४।४।२४॥

लवणेन संसृष्टो लवणः सूपः। लवणं शाकम्।

लवणाल्लुक्। लवणात् पञ्चम्यन्तं, लुक् प्रथमान्तम्। पूर्वसूत्र **संसृष्टे** की और **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है और **प्राग्वहतेष्ठक्** से **ठक्** का अधिकार है तथा **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का भी अधिकार यथावत् है।

संसृष्ट=मिला हुआ अर्थ में तृतीयान्त लवण-शब्द से विहित ठक् प्रत्यय का लुक् होता है।

लवणेन संसृष्टो लवणः सूपः। लवणं शाकम्। नमक मिला हुआ दाल और नमक मिला हुआ शाक। **सूपः** के लिये **लवणेन संसृष्टः** विग्रह और **शाकम्** के लिये **लवणेन संसृष्टम्** विग्रह करके **लवण+टा** में **संसृष्टे** सूत्र के द्वारा औत्सर्गिक **ठक्** प्रत्यय होने पर उसका **लवणाल्लुक्** सूत्र से लुक् होता है तथापि प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **लवण** शब्द ही बन जाता है। स्वादिकार्य होने पर **सूपः** का विशेषण **लवणः** और **शाकम्** का विशेषण **लवणम्** सिद्ध हो जाता है।

१५७५. मुद्गादण् ४।४।२५॥

मौद्ग ओदनः।

मुद्गादण्। मुद्गात् पञ्चम्यन्तम्, अण् प्रथमान्तम्। **संसृष्टे** की और **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

संसृष्ट=मिला हुआ अर्थ में तृतीयान्त मुद्ग-शब्द से अण् प्रत्यय होता है। यह औत्सर्गिक ठक् का अपवाद है।

मौद्ग ओदनः। मूँग (दाल) मिला हुआ भात, खिचड़ी। **मुद्गेन संसृष्टः** विग्रह करके **मुद्ग+टा** में **मुद्गादण्** सूत्र के द्वारा अण्-प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्,

आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **मौद्ग** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **मौद्गः** सिद्ध हो जाता है।

यहाँ **संसृष्ट** अर्थ की समाप्ति है। अब एक सूत्र से **उपसिक्त**=ऊपर से डाला हुआ अर्थ में प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है। यह प्राग्वहतीयों में नौवाँ अर्थक्रम है।

१५७६. व्यञ्जनैरुपसिक्ते ४।४।२६॥

ठक्। दध्ना उपसिक्तं दाधिकम्।

व्यञ्जनैरुपसिक्ते। व्यञ्जनैः इति पञ्चम्यर्थे तृतीया। उपसिक्ते सप्तम्यन्तम्। **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है और **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

उपसिक्त=ऊपर से मिलाया गया अर्थ में तृतीयान्त व्यञ्जनवाची प्रातिपदिक से औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय होता है।

संसृष्ट और **उपसिक्त** में सूक्ष्म भेद है। सींचन करके कोमल बनाना **उपसिक्त** कहलाता है और **संसृष्ट** का अर्थ मिलाना है ही। यद्यपि **संसृष्ट** अर्थ में ही यह प्रत्यय भी सम्भव है तथापि इस सूत्र को नियमार्थ माना जाता है। वह नियम इस तरह कि व्यञ्जनवाची शब्दों से उपसिक्त अर्थ में ही ठक् हो, अन्य अर्थ में न हो। अतः **सूपेन संसृष्टा स्थाली** आदि जगहों पर ठक् प्रत्यय नहीं हुआ करता।

दध्ना उपसिक्तं दाधिकम्। दही में मिलाकर मुलायम बनाया हुआ। दही व्यञ्जनवाची शब्द है। **दध्ना उपसिक्तम्** लौकिक विग्रह करके **दधि+टा** से **व्यञ्जनैरुपसिक्ते** सूत्र के द्वारा ठक्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से ठ के स्थान पर इक आदेश करके **दधि+इक** बना है। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई और भसंज्ञक इकार का लोप करके **दाध्+इक=दाधिक** बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य करके **दाधिकम्** सिद्ध हो जाता है।

यहाँ पर **उपसिक्त** अर्थ की समाप्ति है। अब तीन सूत्रों से **वर्तते**=बरतता है अर्थ में प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है। यह प्राग्वहतीयों में दसवाँ अर्थक्रम है।

१५७७. ओजःसहोऽम्भसा वर्तते ४।४।२७॥

ओजसा वर्तत औजसिकः शूरः।
साहसिकश्चौरः। आम्भसिको मत्स्यः।

ओजःसहोऽम्भसा वर्तते। ओजस् च सहस् च अम्भस् च तेषां समाहारद्वन्द्व ओजःसहोऽम्भस्, तेन ओजःसहोऽम्भसा, तृतीयान्तं, वर्तते क्रियापदम्। **तेन दीव्यति खनति जयति जितम्** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है और **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

वर्तते=बरतता है, व्यवहार करता है- अर्थ में तृतीयान्त ओजस्, सहस् और अम्भस् इन प्रातिपदिकों से औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय होता है।

ओजसा वर्तते औजसिकः शूरः। ओज सम्पन्न होकर व्यवहार करने वाला, शूर, वीर। **ओजसा वर्तते** विग्रह करके **ओजस्+टा** से **ओजःसहोऽम्भसा वर्तते** सूत्र के द्वारा ठक्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से ठ के स्थान पर इक आदेश, कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि औकार होकर **औजसिक** बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य करके **औजसिकः** सिद्ध हो जाता है।

साहसिकश्चौरः। साहस, हिम्मत के साथ व्यवहार करने वाला, चोर। **सहसा वर्तते** विग्रह करके **सहस्+टा** से **ओजःसहोऽम्भसा वर्तते** सूत्र के द्वारा ठक्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इक आदेश, आदिवृद्धि होकर **साहसिक** शब्द बन जाता है। स्वादिकार्य करके **साहसिकः** सिद्ध हो जाता है।

आम्भसिको मत्स्यः। जल के साथ बरतने वाली मछली। **अम्भसा वर्तते** विग्रह करके **अम्भस्+टा** से **ओजःसहोऽम्भसा वर्तते** सूत्र के द्वारा ठक्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इक आदेश, आदिवृद्धि होकर **आम्भसिक** शब्द बन जाता है। स्वादिकार्य करके **आम्भसिकः** सिद्ध हो जाता है।?

अब **तेन** की अनुवृत्ति समाप्त हो जाती है।

१५७८. तत् प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम् ४।४।२८॥

द्वितीयान्तादस्माद्वर्तत इत्यस्मिन्नर्थे ठक् स्यात्।
क्रियाविशेषणत्वाद् द्वितीया। प्रतीपं वर्तते प्रातीपिकः।
आन्वीपिकः। प्रातिलोमिकः। आनुलोमिकः। प्रातिकूलिकः। आनुकूलिकः।

तत्प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम्। प्रतिश्च अनुश्न प्रत्यनू- इतरेतरयोगद्वन्द्वः। तौ पूर्वौ यस्य तत् प्रत्ययनुपूर्वम्, बहुव्रीहिः। ईपश्च लोम च कूलं च तेषां समाहारद्वन्द्व ईपलोपकूलम्। तत् द्वितीयान्तं, प्रत्यनुपूर्वं द्वितीयान्तम्, ईपलोमकूलं क्रियाविशेषणं द्वितीयान्तम्। **ओजःसहोऽम्भसा वर्तते** से **वर्तते** की अनुवृत्ति आती है और **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

द्वितीया-समर्थ प्रति, अनु इन पूर्व वाले ईप, लोम, कूल इन प्रातिपदिकों से वर्तते=विद्यमान है- अर्थ में औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय होता है।

सूत्रोक्त **तत्** पद द्वितीयान्त है और यही समर्थ-विभक्ति का सूचक है। इसके फलस्वरूप इस सूत्र की प्रवृत्ति में द्वितीया-समर्थ प्रातिपदिक होना आवश्यक है। **प्रतीप, अन्वीप, प्रतिलोम, अनुलोम, प्रतिकूल, अनुकूल** इतने शब्दों से यह प्रत्यय होगा।

क्रियाविशेषणत्वाद् द्वितीया। अर्थात् **वर्तते** क्रिया के प्रति **प्रतीप, अन्वीप, प्रतिलोम, अनुलोम, प्रतिकूल** और **अनुकूल** ये शब्द क्रियाविशेषण हैं। अतः द्वितीयान्त

होना चाहिये। एतदर्थ ही सूत्र में समर्थ-विभक्ति **तत्** यह द्वितीयान्त पद है। अकर्मक धातुओं के साथ क्रियाविशेषण कर्म ही व्यवहृत होता है। क्रियाविशेषण में हमेशा एकत्व, कर्मत्व और नपुंसकत्व रहता है।

प्रतीपं वर्तते प्रातीपिकः। प्रतिकूल रहने वाला। **प्रतीप** शब्द बहुव्रीहिसमासपरक है। **प्रतिगताः आपो यस्मिन्** विग्रह करके **प्रति+अप्** में बहुव्रीहि-समास होने पर **ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे** सूत्र के द्वारा समासान्त अ-प्रत्यय और **अप्**-शब्द के अवयव अकार के स्थान पर **द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽप ईत्** (६.१.९७) सूत्र के द्वारा ईकारादेश होकर **प्रति+ईप** और सवर्णदीर्घ होकर **प्रतीप** शब्द बनता है। विग्रह अप्-शब्द के साथ होने पर समासानन्तर **प्रतीप** शब्द प्रतिकूलता का बोधक हो जाता है। **प्रतीपं वर्तते** विग्रह करके **प्रतीप+अम्** से **तत्प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम्** सूत्र के द्वारा **ठक्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, ठ के स्थान पर इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **प्रातीपिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **प्रातीपिकम्** सिद्ध हो जाता है।

आन्वीपिकः। अनुकूल रहने वाला। **अनुगताः आपो यस्मिन्** विग्रह करके **अनु+अप्** में बहुव्रीहि-समास होने पर समासान्त अ-प्रत्यय और **अप्**-शब्द के अवयव अकार के स्थान पर पूर्ववत् ईकारादेश और **अनु+ईप** में यण् होकर **अन्वीप** शब्द बनता है। देशाभिधान होने पर **ऊदनोर्देशे** (६.३.९८) सूत्र से ऊकारादेश होकर **अनूप** शब्द भी बनता है किन्तु यहाँ पर देशाभिधान न होने के कारण **अन्वीप** ही बनता है। यह अनुकूलता का बोधक है। **अन्वीपं वर्तते** विग्रह करके **अन्वीप+अम्** से **तत्प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम्** सूत्र के द्वारा **ठक्** प्रत्यय, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकार का लोप होकर **आन्वीपिक** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **आन्वीपिकम्** सिद्ध हो जाता है।

प्रातिलोमिकः। प्रतिकूल रहने वाला। **प्रतिलोम** शब्द का अर्थ है- प्रतिकूल, बालों की नीचे से ऊपर जाने की प्रक्रिया, अस्वाभाविक, अनियमित, क्रम-विपरीत। प्रकृत उदाहरण में प्रतिकूल अर्थ लिया गया है। **प्रतिलोम वर्तते** विग्रह करके **प्रतिलोमन्+अम्** से **तत्प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम्** सूत्र के द्वारा **ठक्** प्रत्यय, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, **नस्तद्धिते** से टिसंज्ञक भाग **अन्** का लोप होकर **प्रातिलोमिक** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **प्रातिलोमिकः** सिद्ध हो जाता है।

आनुलोमिकः। अनुकूल रहने वाला। **अनुलोम** शब्द का अर्थ है- अनुकूल, बालों की ऊपर नीचे आने की प्रक्रिया, स्वाभाविक, नियमित, क्रमानुसार। प्रकृत उदाहरण में अनुकूल अर्थ लिया गया है। **अनुलोम वर्तते** विग्रह करके **अनुलोमन्+अम्** से **तत्प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम्** सूत्र के द्वारा **ठक्** प्रत्यय, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का

लुक्, आदिवृद्धि, टिसंज्ञक भाग का लोप होकर **आनुलोमिक** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **आनुलोमिकः** सिद्ध हो जाता है।

प्रातिकूलिकः। प्रतिकूल रहने वाला। **प्रतिकूलं वर्तते** विग्रह करके **प्रतिकूल+अम्** से **तत्प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम्** सूत्र के द्वारा **ठक्** प्रत्यय, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **प्रातिकूलिक** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **प्रातिकूलिकः** सिद्ध हो जाता है।

आनुकूलिकः। अनुकूल रहने वाला। **अनुकूलं वर्तते** विग्रह करके **अनुकूल+अम्** से **तत्प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम्** सूत्र के द्वारा **ठक्** प्रत्यय, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आनुकूलिक** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **आनुकूलिकः** सिद्ध हो जाता है।

१५७९. परिमुखं च ४।४।२९॥

परिमुखं वर्तते पारिमुखिकः। चात् पारिपार्श्विकः।

परिमुखं च। परिमुखं द्वितीयान्तं क्रियाविशेषणं, चाव्ययम्। **तत्प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम्** से **तत्** की और **ओजःसहोऽम्भसा वर्तते** से **वर्तते** की अनुवृत्ति आती है, साथ ही **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

द्वितीया-समर्थ परिमुख शब्द से वर्तते=विद्यमान है- अर्थ में औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय होता है।

परिमुखं वर्तते पारिमुखिकः। अभिमुख रहने वाला। **परिमुखं वर्तते** विग्रह करके **परिमुख+अम्** से **परिमुखं च** सूत्र के द्वारा **ठक्** प्रत्यय, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पारिमुखिक** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **पारिमुखिकः** सिद्ध हो जाता है।

चात् पारिपार्श्विकः। प्रकृतसूत्र में पठित **च**-शब्द अनुक्त समुच्चय के लिये है अर्थात् सूत्रोक्त परिमुख-शब्द के अतिरिक्त शब्दों से भी यह प्रत्यय सम्भव है- इस बात का द्योतक है। अतः **पारिपार्श्विकः** भी बनता है। इसका अर्थ है- स्वामी आदि के आसपास रहने वाला। **परिपार्श्वं** विग्रह करके **परिपार्श्व+अम्** से **परिमुखं च** सूत्र के द्वारा **ठक्** प्रत्यय, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पारिपार्श्विक** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **पारिपार्श्विकः** सिद्ध हो जाता है।

यहाँ पर **वर्तते** अर्थ की समाप्ति है। अब आगे **प्रयच्छति**=देता है- अर्थ में दो सूत्रों से प्रत्यय किये जा रहे हैं। प्राग्वहतीयों में यह ग्यारहवाँ अर्थक्रम है। इसमें भी समर्थ विभक्ति द्वितीया ही है।

१५८०. प्रयच्छति गर्ह्यम् ४।४।३०॥

द्विगुणार्थं द्रव्यं द्विगुणम्, तत्प्रयच्छति द्वैगुणिकः। त्रैगुणिकः।
'वृद्धेर्वृधुषिभावो वक्तव्यः'(वा.२९६५)। वार्धुषिकः।

प्रयच्छति गर्ह्यम्। प्रयच्छति क्रियापदं, गर्ह्यं द्वितीयान्तम्। **तत्प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम्** से तत् की अनुवृत्ति आती है और **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

द्वितीया-समर्थ प्रातिपदिक से प्रयच्छति=देता है- अर्थ में औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय होता है किन्तु जो देय वस्तु है वह गर्ह्य=निन्दित होना चाहिये।

गर्ह्य का अर्थ है निन्दनीय। ब्याज, सूद आदि ग्रहण करना निन्दनीय माना गया है।

द्विगुणार्थं द्रव्यं द्विगुणम्, तत्प्रयच्छति द्वैगुणिकः। दो गुना करने के लिये दिया गया धन भी लक्षणावृत्ति से **द्विगुण** ही कहलाता है और वह धन देता है अर्थात् दो गुना बनाने के लिये दूसरे को सूद में देता है- अर्थ में **द्वैगुणिकः** बनता है। इस तरह यह देय वस्तु गर्ह्य है। **द्विगुणं प्रयच्छति** विग्रह करके **द्विगुण+अम्** से **प्रयच्छति गर्ह्यम्** सूत्र के द्वारा **ठक्** प्रत्यय, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **द्वैगुणिक** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **द्वैगुणिकः** सिद्ध हो जाता है।

त्रैगुणिकः। तीन गुना करने के लिये धन देने वाला। पूर्ववत् **त्रिगुणं प्रयच्छति** विग्रह करके **त्रिगुण+अम्** से **प्रयच्छति गर्ह्यम्** सूत्र के द्वारा **ठक्** प्रत्यय, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **त्रैगुणिक** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **त्रैगुणिकः** सिद्ध हो जाता है।

वृद्धेर्वृधुषिभावो वक्तव्यः। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- गर्ह्य देय होने पर प्रयच्छति अर्थ में वृद्धि से ठक् तो होता ही है, तत्सन्नियोग में वृद्धि-शब्द के स्थान पर **वृधुषि** आदेश भी होता है। वास्तव में ठक् सूत्र के द्वारा ही होता है और प्रकृत वार्तिक से केवल वृधुषि आदेश मात्र किया जाता है।

वार्धुषिकः। धन को बढ़ाने की दृष्टि से ऋण देने वाला। **वृद्धि** के लिये दिया जाने वाला ऋण भी लक्षणावृत्ति से वृद्धि ही कहलाता है। **वृद्धिं प्रयच्छति** विग्रह करके **वृद्धि+अम्** से **प्रयच्छति गर्ह्यम्** सूत्र के द्वारा **ठक्** प्रत्यय, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **वृद्धेर्वृधुषिभावो वक्तव्यः** वार्तिक के द्वारा **वृधुषि** आदेश होकर **वृधुषि+इक** बना है। आदिवृद्धि, भसंज्ञक इकार का लोप होकर **वार्धुषिक** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **वार्धुषिकः** सिद्ध हो जाता है।

१५८१. कुसीददशैकादशात् ष्ठन्ष्ठचौ ४।४।३१॥

गर्ह्यार्थाभ्यामाभ्यामेतौ स्तः प्रयच्छतीत्यर्थे।

कुसीदं वृद्धिः, तदर्थं द्रव्यं कुसीदम्, तत्प्रयच्छतीति कुसीदिकः, कुसीदिकी। एकादशार्थत्वादेकादश, ते च ते वस्तुतो दश चेति विग्रहेऽकारः समासान्त इहैव सूत्रे निपात्यते, दशैकादशिकः, दशैकादशिकी। दशैकादशान् प्रयच्छतीत्युत्तमर्ण एवेहापि तद्धितार्थः।

कुसीददशैकादशात्ष्ठन्ष्ठचौ। कुसीदं च दशैकादश च तयोः समाहारद्वन्द्व दशैकादशं, तस्माद् दशैकादशात्। ष्ठन् च ष्ठच् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः ष्ठन्ष्ठचौ। **प्रयच्छति गर्ह्यम्** के दोनों पदों की और **तत्प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम्** से **तत्** की अनुवृत्ति आती है साथ ही **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

द्वितीया-समर्थ गर्ह्यवाची कुसीद और दशैकादश इन प्रातिपदिकों से यथासंख्य से ष्ठन् और ष्ठच् प्रत्यय होते हैं, प्रयच्छति गर्ह्यम्=निन्दिनीय देता है-अर्थ में।

षकार की **षः प्रत्ययस्य** से इत्संज्ञा होती है। दोनों प्रत्यय षित् हैं और प्रथम नित् तथा द्वितीय चित् है। आदिवृद्धि के लिये निमित्त नहीं है। अनुबन्धलोप के बाद दोनों प्रत्ययों में केवल ठ ही बचता है।

कुसीदं वृद्धिः, तदर्थं द्रव्यं कुसीदम्, तत्प्रयच्छतीति कुसीदिकः, कुसीदिकी। कुसीद-शब्द का अर्थ वृद्धि=ब्याज, उसके लिये दिया जाने वाला ऋण भी लक्षणावृत्ति से कुसीद ही कहलाता हैं। ब्याज लेना निन्दनीय है। **कुसीदं प्रयच्छति** (अधिक ब्याज के लिये धन देता है) अर्थ में **कुसीद+अम्** से **कुसीददशैकादशात्ष्ठन्ष्ठचौ** सूत्र से ष्ठन्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अवशिष्ट ठ के स्थान पर इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **कुसीदिक** शब्द बनता है। स्त्रीत्वविवक्षा में षित् होने के कारण **षिद्गौरादिभ्यश्च** सूत्र के द्वारा ङीष् प्रत्यय होकर **कुसीदिकी** शब्द बनता है। उभयत्र स्वादिकार्य होकर **कुसीदिकः** और **कुसीदिकी** ये रूप सिद्ध हो जाते हैं। केवल वृद्धि अर्थ के प्रतिपादक **कुसीद** शब्द की द्रव्यत्व-विशिष्ट में लक्षणा कर तादर्थ्य से ताच्छब्द्य की कल्पना की गयी है।

एकादशार्थत्वादेकादश, ते च ते वस्तुतो दश चेति विग्रहेऽकारः समासान्त इहैव सूत्रे निपात्यते। ग्यारह रुपये लेने के लिये दिये जाने वाले दस रुपये को भी लक्षणावृत्ति से **एकादश** कहते हैं। ऐसा एकादशों की संख्या वास्तव में दस हो तो उसे **दशैकादश** कहा जाता है। पहले **एकादश च दश च** विग्रह करके कर्मधारयसमास करने पर सुप् का लुक् होकर **दश+एकादश** बना है। **संख्यायाः अल्पीयस्याः** वार्तिक के द्वारा

अल्पसंख्यावाची **दश** शब्द का पूर्वप्रयोग और वृद्धिसन्धि होकर **दशैकादशन्** बनता है। उसके प्रथमा-बहुवचन और द्वितीयबहुवचन में **दशैकादश** ही होना चाहिये, किन्तु यहाँ प्रकृतसूत्र के द्वारा समासान्त अकारादेश का निपातन किया जाता है और **नस्तद्धिते** सूत्र के द्वारा टिसंज्ञक भाग **अन्** का लोप होकर **दशैकादश** बन जाता है तथा द्वितीयाबहुवचन में **दशैकादशान्** बन जाता है। इस तरह **दशैकादशान् प्रयच्छति** करके विग्रह किया गया है। इसके अनुसार प्रथमा-बहुवचन में **दशैकादशाः** बनना चाहिये। रूपसिद्धि आगे बतायी जा रही है।

दशैकादशिकः, दशैकादशिकी। दशैकादशान् प्रयच्छतीत्युत्तमर्ण एवेहापि तद्धितार्थः। दस रुपये देकर महीने भर में ग्यारह रुपये लेने वाला। पाणिनि जी के समय मासिक एक रुपये ब्याज लेना भी उचित नहीं माना जाता रहा होगा। अतः इसके निन्द्य=गर्ह्य माना गया। **दशैकादशान् प्रयच्छति** विग्रह करके **दशैकादश+शस्** से **कुसीददशैकादशात्ष्ठन्ष्ठचौ** सूत्र से ष्ठन्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अवशिष्ट **ठ** के स्थान पर इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **दशैकादशिक** शब्द बनता है। स्त्रीत्वविवक्षा में षित् होने के कारण **षिद्गौरादिभ्यश्च** सूत्र के द्वारा ङीष् प्रत्यय होकर **दशैकादशिकी** शब्द बनता है। उभयत्र स्वादिकार्य होकर **दशैकादशिकः** और **दशैकादशिकी** रूप सिद्ध हो जाते हैं। यहाँ पर तद्धित-प्रत्यय का अर्थ यह होगा कि दस रुपये लिये हुए ऋण को ग्यारह रुपये वापस करता है। इस तरह स्वीकार करने वाला उत्तमर्ण=साहूकार **दशैकादशिकः** कहलाता है। जैसे लौकिक विग्रहवाक्य **दशैकादशान् प्रयच्छति** में देने वाला साहूकार ही प्रमुख प्रतीत होता है, उसी तरह समास में भी ऋणदाता ही तद्धितार्थ होता हुआ प्रधान बन जाता है।

यहाँ **प्रयच्छति गर्ह्यम्** अर्थ की समाप्ति है। आगे **उञ्छति** अर्थ में प्रत्यय किया जा रहा है। प्राग्वहतीयों में यह बारहवाँ अर्थक्रम है। इसमें भी समर्थ विभक्ति द्वितीया ही है।

१५८२. उञ्छति ४।४।३२॥

बदराण्युञ्छति बादरिकः।

उञ्छति। क्रियापदमेकपदं सूत्रम्। **तत् प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम्** से **तत्** इस द्वितीयान्त पद की अनुवृत्ति आती है और **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'चुन चुन कर बटोरता है' इस अर्थ में द्वितीयान्त प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय होता है।

बादरिकः। बेर को चुन चुन कर बटोरने वाला। **बदराणि उञ्छति** लौकिक विग्रह और **बदर+शस्** अलौकिक विग्रह है। **उञ्छति** से ठक्, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से

ठ के स्थान पर इक आदेश करके **बदर+इक** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई। भसंज्ञक अकार का लोप करके **बादर+इक=बादरिक** बना और स्वादिकार्य करके **बादरिकः** सिद्ध हो जाता है।

यहाँ एक सूत्र से **उञ्छति** अर्थ की समाप्ति है। आगे **रक्षति** अर्थ में एक सूत्र से औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय किया जा रहा है। प्राग्वहतीयों में यह तेरहवाँ अर्थक्रम है। इसमें भी समर्थ विभक्ति द्वितीया ही है।

१५८३. रक्षति ४।४।३३॥

समाजं रक्षति सामाजिकः।

रक्षति। रक्षति इति अर्थबोधकं क्रियापदम्। **तत् प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम्** से **तत्** इस द्वितीयान्त पद की अनुवृत्ति आती है और **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'रक्षा करता है' अर्थ में द्वितीयान्त प्रातिपदिक से औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय होता है।

समाजं रक्षति सामाजिकः। समाज की रक्षा करने वाला। **समाजं रक्षति** लौकिक विग्रह और **समाज+अम्** अलौकिक विग्रह है। **रक्षति** सूत्र से ठक्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से ठ के स्थान पर इक आदेश करके **समाज+इक** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई। भसंज्ञक अकार का लोप करके **सामाजिक** शब्द बना है और स्वादिकार्य करके **सामाजिकः** सिद्ध हो जाता है।

यहाँ एक सूत्र से **रक्षति** अर्थ की समाप्ति है। आगे **करोति** अर्थ में एक सूत्र से औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय किया जा रहा है। प्राग्वहतीयों में यह चौदहवाँ अर्थक्रम है। इसमें भी समर्थ विभक्ति द्वितीया ही है।

१५८४. शब्ददर्दुरं करोति ४।४।३४॥

शब्दं करोति शाब्दिकः। दार्दुरिकः।

शब्ददर्दुरं करोति। शब्दश्च दर्दुरश्च तयोः समाहारद्वन्द्वः शब्ददर्दुरं, तत् शब्ददर्दुरम्। शब्ददर्दुरं द्वितीयान्तं, करोति क्रियापदम्। **तत् प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम्** से **तत्** इस द्वितीयान्त पद की अनुवृत्ति आती है साथ ही **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'करोति=करता है' अर्थ में द्वितीयान्त प्रातिपदिक शब्द और दर्दुर शब्दों से औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय होता है।

शब्दं करोति शाब्दिकः। शब्द की निष्पत्ति करने वाला, वैयाकरण। **शब्दं करोति** लौकिक विग्रह और **शब्द+अम्** अलौकिक विग्रह है। **शब्ददर्दुरं करोति** सूत्र से

ठक्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से ठ के स्थान पर इक आदेश, कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करके **शाब्दिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **शाब्दिकः** सिद्ध हो जाता है। यहाँ पर **शब्दं करोति** का प्रकृति-प्रत्यय का विभाग करके शब्द का विवेचन करना अर्थ ही विवक्षित है, न कि शब्द (शोर) करना। अतः **शब्दं करोति खरः** इत्यादि जगहों पर उक्त प्रत्यय नहीं होता।

दार्दुरिकः। मिट्टी के घड़े को बनाने वाला, कुम्हार। विश्वकोश के अनुसार दर्दुर-शब्द के अनेक अर्थ हैं- **दर्दुरस्तोयदे भेके वाद्यभाण्डाद्रिभेदयोः दर्दुरा चण्डिकायां स्यात् पामजाले तु दर्दुरम्।** सभी अर्थों वाले **दर्दुर** शब्द से यह प्रत्यय हो सकता है। यथायोग्य अन्वय किया जाता है। **दर्दुरं करोति** लौकिक विग्रह और **दर्दुर+अम्** अलौकिक विग्रह है। **शब्ददर्दुरं करोति** सूत्र से ठक्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से ठ के स्थान पर इक आदेश, कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करके **दार्दुरिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **दार्दुरिकः** सिद्ध हो जाता है।

यहाँ एक सूत्र में ही **करोति** अर्थ की समाप्ति है। आगे **हन्ति=मारता है** अर्थ में एक सूत्र से औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय किया जा रहा है। प्राग्वहतीयों में यह पन्द्रहवाँ अर्थक्रम है। इसमें भी समर्थ विभक्ति द्वितीया ही है।

१५८५. पक्षिमत्स्यमृगान् हन्ति ४।४।३५॥

'स्वरूपस्य पर्यायाणां विशेषाणां च ग्रहणम्' (वा.५२३)।

'मत्स्यपर्यायेषु मीनस्यैव'। पक्षिणो हन्ति पाक्षिकः। शाकुनिकः। मायूरिकः। मात्स्यिकः। मैनिकः। शाकुलिकः। मार्गिकः। हारिणिकः। सारङ्गिकः।

पक्षिमत्स्यमृगान् हन्ति। पक्षिणश्च मत्स्याश्च मृगाश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः पक्षिमत्स्यमृगास्तान् पक्षिमत्स्यमृगान् द्वितीयान्तं, हन्ति अर्थबोधकं क्रियापदम्। **तत् प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम्** से तत् इस द्वितीयान्त पद की अनुवृत्ति आती है और **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

द्वितीया-समर्थ पक्षिन्, मत्स्य और मृग शब्दों से हन्ति=मारता है- अर्थ में औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय होता है।

उक्त अर्थ सूत्र के अनुसार है किन्तु आगे वार्तिक से विशेष अर्थ का आपादन किया जा रहा है। वास्तव में **स्वं रूपं शब्दस्याशब्दसंज्ञा (१.१.६८)** सूत्र के अनुसार जिस शब्द का उच्चारण किया गया है, उसी शब्द से प्रत्यय की प्राप्ति होती है। अतः केवल पक्षिन्, मत्स्य और मृग शब्दों से ही प्रत्यय की प्राप्ति थी किन्तु कुछ विशेष शब्दों

से भी प्रत्यय अभीष्ट होने के कारण निम्नलिखित वार्तिक का अवतरण किया गया है।

स्वरूपस्य पर्यायाणां विशेषाणां च ग्रहणम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- पक्षिन्, मत्स्य तथा मृग इन शब्दों से केवल स्वरूप मात्र का ग्रहण नहीं होता अपितु पर्यायवाची शब्दों का भी और तद्विशेषवाची शब्दों का भी ग्रहण किया जाता है। पक्षिन् के पर्यायवाची शब्द शकुनि आदि हैं तो तद्विशेषवाची मयूर आदि। इसी तरह मृग के पर्यायवाची शब्द हरिण आदि हैं तो तद्विशेषवाची सारङ्ग आदि। मत्स्य के पर्यायवाची शब्दों के विषय में निम्नलिखित भाष्येष्टि उल्लेखनीय है।

'मत्स्यपर्यायेषु मीनस्यैव'। यह भाष्येष्टि है। भाष्यकार चाहते हैं कि उपर्युक्त वार्तिक के अनुसार पर्यायग्रहण करते समय मत्स्य-शब्द के पर्यायों में से केवल **मीन** ही लेना चाहिये, अन्य शब्द नहीं।

पक्षिणो हन्ति पाक्षिकः। पक्षियों को मारने वाला। **पक्षिणः हन्ति** विग्रह करके **पक्षिन्+शस्** से **पक्षिमत्स्यमृगान् हन्ति** सूत्र के द्वारा ठक्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से ठ के स्थान पर इक आदेश, कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि और टिसंज्ञक भाग **इन्** का **नस्तद्धिते** सूत्र के द्वारा लोप होकर **पाक्षिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पाक्षिकः** सिद्ध हो जाता है। यह पक्षिन्-शब्द के स्वरूपग्रहण का उदाहरण है।

शाकुनिकः। पक्षियों को मारने वाला। **शकुनीन् हन्ति** विग्रह करके **शकुनि+शस्** से **पक्षिमत्स्यमृगान् हन्ति** सूत्र के द्वारा ठक्-प्रत्यय, इकादेश, आदिवृद्धि और भसंज्ञक इकार का **यस्येति च** से लोप होकर **शाकुनिक** तथा स्वादिकार्य से **शाकुनिकः** सिद्ध हो जाता है। यह पक्षिन्-शब्द के पर्यायवाची शब्द का उदाहरण है।

मायूरिकः। मोरों को मारने वाला। **मयूरान् हन्ति** विग्रह करके **मयूर+शस्** से **पक्षिमत्स्यमृगान् हन्ति** सूत्र के द्वारा ठक्-प्रत्यय, इकादेश, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** से लोप होकर **मायूरिक** तथा स्वादिकार्य से **मायूरिकः** सिद्ध हो जाता है। यह पक्षिन्-शब्द के विशेषवाची शब्द का उदाहरण है।

मात्स्यिकः। मछलियों को मारने वाला। **मत्स्यान् हन्ति** विग्रह करके **मत्स्य+शस्** से **पक्षिमत्स्यमृगान् हन्ति** सूत्र के द्वारा ठक्-प्रत्यय, इकादेश, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** से लोप होकर **मात्स्यिक** तथा स्वादिकार्य से **मात्स्यिकः** सिद्ध हो जाता है। यह स्वरूपात्मक मत्स्य-शब्द का उदाहरण है।

मैनिकः। मछलियों को मारने वाला। **मीनान् हन्ति** विग्रह करके **मीन+शस्** से **पक्षिमत्स्यमृगान् हन्ति** सूत्र के द्वारा ठक्-प्रत्यय, इकादेश, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** से लोप होकर **मैनिक** तथा स्वादिकार्य से **मैनिकः** सिद्ध हो जाता है। यह मत्स्य-शब्द के पर्यायवाची शब्द का उदाहरण है। स्मरण रहे कि मत्स्यपर्याय में केवल **मीन** शब्द का ही ग्रहण है।

शाकुलिकः। शीघ्रगामी मछलियों को मारने वाला। **शकुलान् हन्ति** विग्रह करके **शकुल+शस्** से **पक्षिमत्स्यमृगान् हन्ति** सूत्र के द्वारा ठक्-प्रत्यय, इकादेश, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** से लोप होकर **शाकुलिक** तथा स्वादिकार्य से **शाकुलिकः** सिद्ध हो जाता है। यह मत्स्यविशेषवाची का उदाहरण है।

मार्गिकः। मृगों को मारने वाला। **मृगान् हन्ति** विग्रह करके **मृग+शस्** से **पक्षिमत्स्यमृगान् हन्ति** सूत्र के द्वारा ठक्-प्रत्यय, इकादेश, आदिवृद्धि, रपर और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **मार्गिक** तथा स्वादिकार्य से **मार्गिकः** सिद्ध हो जाता है। यह स्वरूपात्मक मृग-शब्द का उदाहरण है।

हारिणिकः। हिरणों को मारने वाला। **हरिणान् हन्ति** विग्रह करके **हरिण+शस्** से **पक्षिमत्स्यमृगान् हन्ति** सूत्र के द्वारा ठक्-प्रत्यय, इकादेश, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **हारिणिक** तथा स्वादिकार्य से **हारिणिकः** सिद्ध हो जाता है। यह मृग-शब्द के पर्यायवाची शब्द का उदाहरण है।

सारङ्गिकः। सारङ्ग नामक चित्रमृगों को मारने वाला। **सारङ्गान् हन्ति** विग्रह करके **सारङ्ग+शस्** से **पक्षिमत्स्यमृगान् हन्ति** सूत्र के द्वारा ठक्-प्रत्यय, इकादेश, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **सारङ्गिक** तथा स्वादिकार्य से **सारङ्गिकः** सिद्ध हो जाता है। यह मृगविशेषवाची शब्द का उदाहरण है।

यहाँ एक सूत्र में **हन्ति** अर्थ की समाप्ति तो नहीं है किन्तु **तिष्ठति=रहता है** अर्थ और जुड़ जाता है। प्राग्वहतीयों में यह सोलहवाँ अर्थक्रम है। इसमें भी समर्थ विभक्ति द्वितीया ही है।

१५८६. परिपन्थं च तिष्ठति ४।४।३६॥

अस्माद् द्वितीयान्तात् तिष्ठति हन्ति चेत्यर्थे ठक् स्यात्।
पन्थानं वर्जयित्वा व्याप्य वा तिष्ठति पारिपन्थिकश्चौरः।
निपातनात् पन्थादेशः। परिपन्थं हन्ति पारिपन्थिकः।

परिपन्थं च तिष्ठति। परिपन्थं द्वितीयान्तं, चाव्ययं, तिष्ठति अर्थबोधकं क्रियापदम्। **तत् प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम्** से **तत्** इस द्वितीयान्त पद की अनुवृत्ति आती है और **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

द्वितीया-समर्थ परिपन्थ शब्द से तिष्ठति=बैठता (रहता) है और हन्ति=मारता है- अर्थों में औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय होता है।

सूत्रस्थ **च** शब्द पूर्वसूत्रस्थ प्रत्ययार्थ **हन्ति** का अनुकर्षण करता है। **चानुकृष्टं नोत्तरत्र**=च-शब्द के द्वारा अनुकर्ष करने पर उसकी अनुवृत्ति आगे नहीं जाती। यद्यपि स्था-धातु अकर्मक है तथापि उसके साथ देश, काल, भाव तथा मार्गवाची शब्दों की

कर्मसंज्ञा हो जाती है। द्रष्टव्यः- **अकर्मकधातुभिर्योगे देशः कालो भावो गन्तव्योऽध्वा च कर्मसंज्ञक इति वाच्यम्**- कारक। अतः प्रकृत में परिपन्थ शब्द क्रियाविशेषण के रूप में द्वितीयान्त है और उसका अनुवृत्त द्वितीयान्त तत् शब्द के साथ अन्वय हो जाता है। **परिपन्थ** शब्द का अर्थ है- मार्ग को चारों ओर से छोड़ना या घेरना। घेरना अर्थ होने पर **परि** शब्द (उपसर्ग) का **चारों ओर से** ऐसा अर्थ उपस्थापित करता है। अतः **परिगतः पन्थाः** विग्रह करके **कुगतिप्रादयः** सूत्र से गतिसमास होने पर **परिपन्थ** शब्द निष्पन्न होता है अथवा **पन्थानं वर्जयित्वा** विग्रह करके अव्ययीभाव समास करके भी **परिपन्थ** शब्द बनता है। इस समास की अवस्था में **परि** की **अपपरी वर्जने** (१.४.४८) सूत्र के द्वारा कर्मप्रवचनीयसंज्ञा होती है और **पञ्चम्यपाङ्परिभिः** (२.३.१०) सूत्र के द्वारा कर्मप्रवचनीय **परि**-शब्द के योग में **पथिन्** शब्द में पञ्चमी विभक्ति हो जाती है तथा उक्त पञ्चमी के साथ **परि** का **अपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्याः** सूत्र के द्वारा बहुव्रीहिसमास और निपातनात् **पथिन्** के स्थान पर **पन्थ** आदेश होकर **परिपन्थ** शब्द बनता है। इसके लिये लौकिक विग्रह है- **परि पथः**।

पन्थानं वर्जयित्वा व्याप्य वा तिष्ठति पारिपन्थिकश्चौरः। परिपन्थं हन्ति पारिपन्थिकः। **निपातनात् पन्थादेशः**। रास्ता छोड़कर या रास्ते को घेरकर बैठने वाला चोर या मार्गस्थ जनों को मारने वाला डाकू। **पन्थानं वर्जयित्वा व्याप्य वा तिष्ठति** और **परिपन्थं हन्ति** विग्रह करके **परिपथिन्+अम्** से **परिपन्थं च तिष्ठति** सूत्र के द्वारा औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अवशिष्ट **ठ** के स्थान पर इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, प्रकृतसूत्र में **परिपन्थ** शब्द के पाठ से **पथिन्** के स्थान पर निपातन से **पन्थ** आदेश होकर **पारिपन्थिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पारिपन्थिकः** सिद्ध हो जाता है।

यहाँ **हन्ति** और **तिष्ठति** इन दोनों अर्थों की समाप्ति हो जाती है। अब आगे दो सूत्रों से **धावति**=दौड़ता है- अर्थ में प्रत्यय का विधान है। प्राग्वहतीयों में यह सत्रहवाँ अर्थक्रम है। इसमें भी समर्थ विभक्ति द्वितीया ही है।

१५८७. माथोत्तरपदपदव्यनुपदं धावति ४।४।३७॥

दण्डाकारो माथः=पन्था दण्डमाथः। दण्डमाथं धावति दाण्डमाथिकः। पादविकः। आनुपदिकः।

माथोत्तरपदपदव्यनुपदं धावति। माथ-शब्द उत्तरपदं यस्य तत् माथोत्तरपदं, माथोत्तरपदं च पदवी च अनुपदं च माथोत्तरपदपदव्यनुपदं, तत् माथोत्तरपदपदव्यनुपदम्, बहुव्रीहिगर्भसमाहारद्वन्द्वः। माथोत्तरपदपदव्यनुपदं द्वितीयान्तं, धावति इति अर्थबोधकं क्रियापदम्। **तत् प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम्** से **तत्** इस द्वितीयान्त पदानुवृत्ति है और **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

द्वितीया-समर्थ माथ-उत्तरपद वाला शब्द और पदवी तथा अनुपद इन प्रातिपदिकों से धावति=दौड़ता है- अर्थ में औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय होता है।

दण्डाकारो माथः पन्था दण्डमाथः। दण्डमाथं धावति दाण्डमाथिकः। दण्डाकार लम्बी और सीधी सड़क को **दण्डमाथ** कहते हैं। यहाँ पर **दण्डाकारो माथः** विग्रह के मध्यमपदलोपी समास करके **दण्डमाथ** शब्द की निष्पत्ति होती है। तादृश मार्ग में दौड़ने वाला **दाण्डमाथिक** कहलाता है। यहाँ पर माथ-उत्तरपद वाला शब्द है। **दण्डमाथं धावति** विग्रह करके **दण्डमाथ+अम्** से **माथोत्तरपदपदव्यनुपदं धावति** सूत्र के द्वारा औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अवशिष्ट **ठ** के स्थान पर इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **दाण्डमाथिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **दाण्डमाथिकः** सिद्ध हो जाता है।

पादविकः। पदवी=मार्ग में दौड़ने वाला। **पदवीं धावति** विग्रह करके **पदवी+अम्** से **माथोत्तरपदपदव्यनुपदं धावति** सूत्र के द्वारा औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अवशिष्ट **ठ** के स्थान पर इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक ईकार का लोप होकर **पादविक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पादविकः** सिद्ध हो जाता है।

आनुपदिकः। पीछे-पीछे दौड़ने वाला। **अनुपदं धावति** विग्रह करके **अनुपद+अम्** से **माथोत्तरपदपदव्यनुपदं धावति** सूत्र के द्वारा औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अवशिष्ट **ठ** के स्थान पर इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आनुपदिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आनुपदिकः** सिद्ध हो जाता है। **अनुपद** शब्द **पदस्य पश्चात्** विग्रह करके अव्ययीभावसमास करके निष्पन्न हुआ है।

१५८८. आक्रन्दाद्ठञ् च ४।४।३८॥

अस्माद्ठञ् स्यात्, चाद्ठक् धावतीत्यर्थे।

आक्रन्दं दुःखिनां रोदनस्थानं धावति आक्रन्दिकः।

आक्रन्दाद्ठञ् च। आक्रन्दन्ति अस्मिन् इति आक्रन्दः=रोदनस्थानम्, तस्मात् आक्रन्दात् पञ्चम्यन्तं, ठञ् प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **माथोत्तरपदपदव्यनुपदं धावति** से **धावति** की और **तत् प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम्** से **तत्** इस द्वितीयान्त पद की अनुवृत्ति आती है। **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

द्वितीया-समर्थ आक्रन्द-शब्द से ठञ् प्रत्यय होता है और च-शब्द से ठक् प्रत्यय भी होता है, धावति=दौड़ता है- अर्थ में।

केवल औत्सर्गिक ठक् मात्र प्राप्त होने पर दोनों प्रत्ययों का विधान किया गया है। यद्यपि दोनों प्रत्ययों में रूपसाम्य ही होता है तथापि स्वरभेद अवश्य है।

आक्रन्दं दुःखिनां रोदनस्थानं धावति आक्रन्दिकः। दुःखियों के रोदनस्थान को **आक्रन्द** कहते हैं। प्राचीन काल में निश्चित आक्रन्द पर आकर रोने पर उनकी सुनवाई होती थी तथा तदनुसार न्यायविधान किया जाता है। तादृश आक्रन्द=रोदनस्थान की ओर दौड़ने वाला। **आक्रन्दं धावति** विग्रह करके **आक्रन्द+अम्** से **आक्रन्दाद्ठञ् च** सूत्र के द्वारा ठञ् और ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अवशिष्ट **ठ** के स्थान पर इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आक्रन्दिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आक्रन्दिकः** सिद्ध हो जाता है।

यहाँ **धावति** अर्थ की समाप्ति हो जाती है। अब आगे दो सूत्रों से **गृह्णाति**=ग्रहण करता है- अर्थ में प्रत्यय का विधान है। प्राग्वहतीयों में यह अठारहवाँ अर्थक्रम है। इसमें भी समर्थ विभक्ति द्वितीया ही है।

१५८९. पदोत्तरपदं गृह्णाति ४।४।३९॥

पूर्वपदं गृह्णाति पौर्वपदिकः। औत्तरपदिकः।

पदोत्तरपदं गृह्णाति। पद-शब्द उत्तरपदं यस्य तत् पदोत्तरपदं, तत् पदोत्तरपदं द्वितीयान्तं, गृह्णाति इत्यर्थबोधकं क्रियापदम्। **तत् प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम्** से **तत्** इस द्वितीयान्त पद की अनुवृत्ति आती है। **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

द्वितीया-समर्थ पद-उत्तरपद वाले प्रातिपदिक से गृह्णाति=ग्रहण करता है- अर्थ में औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय होता है।

पूर्वपदं गृह्णाति पौर्वपदिकः। पूर्वपद विषय पर लिखा हुआ ग्रन्थ या उसका लेखक। **पूर्वपदं गृह्णाति** विग्रह करके **पूर्वपद+अम्** से **पदोत्तरपदं गृह्णाति** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अवशिष्ट **ठ** के स्थान पर इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पौर्वपदिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पौर्वपदिकः** सिद्ध हो जाता है।

औत्तरपदिकः। उत्तरपद विषय पर लिखा हुआ ग्रन्थ या उसका लेखक। **उत्तरपदं गृह्णाति** विग्रह करके **उत्तरपद+अम्** से **पदोत्तरपदं गृह्णाति** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अवशिष्ट **ठ** के स्थान पर इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **औत्तरपदिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **औत्तरपदिकः** सिद्ध हो जाता है।

१५९०. प्रतिकण्ठार्थललामं च ४।४।४०॥
एभ्यो गृह्णात्यर्थे ठक् स्यात्।
प्रतिकण्ठं गृह्णाति प्रातिकण्ठिकः। आर्थिकः। लालामिकः।

प्रतिकण्ठार्थललामं च। प्रतिकण्ठं च अर्थश्च ललामश्च तेषां: समाहारद्वन्द्वः प्रतिकण्ठार्थललामं, तत् प्रतिकण्ठार्थललामं द्वितीयान्तं, चाव्ययम्। **पदोत्तरपदं गृह्णाति** से **गृह्णाति** की और **तत् प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम्** से **तत्** इस द्वितीयान्त पद की अनुवृत्ति आती है। **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

द्वितीया-समर्थ प्रतिकण्ठ, अर्थ और ललाम इन प्रातिपदिकों से गृह्णाति=ग्रहण करता है- अर्थ में औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय होता है।

प्रतिकण्ठ शब्द में अव्ययीभाव समास है। **कण्ठं कण्ठं प्रति** विग्रह करके यथार्थसूचक वीप्सा में अथवा आभिमुख्य अर्थ में भी बहुव्रीहिसमास हो जाता है। यथार्थ-वीप्सा में **अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धि०** सूत्र से और आभिमुख्यार्थ में **लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये** सूत्र से समास किया जाता है।

प्रतिकण्ठं गृह्णाति प्रातिकण्ठिकः। प्रतिकण्ठ अर्थात् अलग-अलग प्रातिपदिकों का प्रतिपदपाठपरक ग्रन्थ=गणपाठ। **प्रतिकण्ठं गृह्णाति** विग्रह करके **प्रतिकण्ठ+अम्** से **प्रतिकण्ठार्थललामं च** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अवशिष्ट **ठ** के स्थान पर इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **प्रातिकण्ठिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **प्रातिकण्ठिकः** सिद्ध हो जाता है।

आर्थिकः। अर्थविचार का प्रतिपादक ग्रन्थ। **अर्थं गृह्णाति** विग्रह करके **अर्थ+अम्** से **प्रतिकण्ठार्थललामं च** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अवशिष्ट **ठ** के स्थान पर इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आर्थिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आर्थिकः** सिद्ध हो जाता है।

लालामिकः। ललाम=चिह्न या सौन्दर्य का ग्राहक। **ललामं गृह्णाति** विग्रह करके **ललाम+अम्** से **प्रतिकण्ठार्थललामं च** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अवशिष्ट **ठ** के स्थान पर इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **लालामिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **लालामिकः** सिद्ध हो जाता है।

यहाँ **गृह्णाति** अर्थ की समाप्ति हो जाती है। अब अगले एक सूत्र से **चरति**=आचरण करता है- अर्थ में प्रत्यय का विधान है। प्राग्वहतीयों में यह उन्नीसवाँ अर्थक्रम है। इसमें भी समर्थ विभक्ति द्वितीया ही है।

१५९१. धर्मं चरति ४।४।४१॥

धार्मिकः।

'अधर्माच्चेति वक्तव्यम्' (वा.२९६६)। आधर्मिकः।

धर्मं चरति। धर्मं द्वितीयान्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, चरति क्रियापदं द्विपदमिदं सूत्रम्। **तत् प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम्** से **तत्** इस द्वितीयान्त पद की अनुवृत्ति आती है। **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'धर्म का आचरण करता है' इस अर्थ में द्वितीयान्त प्रातिपदिक धर्म-शब्द से ठक् प्रत्यय होता है।

धार्मिकः। धर्म का आचरण करने वाला। **धर्मं चरति** लौकिक विग्रह और **धर्म अम्** अलौकिक विग्रह है। **धर्मं चरति** से ठक्, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से ठ के स्थान पर इक आदेश करके **धर्म+इक** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई और भसंज्ञक अकार का लोप करके **धार्म्+इक=धार्मिक** बना। स्वादिकार्य करके **धार्मिकः** सिद्ध हुआ।

अधर्माच्चेति वक्तव्यम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- जिस तरह से धर्म शब्द से ठक् प्रत्यय होता है, उसी तरह अधर्म से भी होना चाहिए।

यहाँ पर यह प्रश्न हो सकता है कि यदि **धार्मिक** बनने के बाद **नञ्** समास करें तो क्या होगा? उत्तर यह है कि तब **अधार्मिकः** बनेगा। इस तरह **अधार्मिकः** ऐसा रूप बन सकता है किन्तु **आधर्मिकः** नहीं बनेगा। फिर प्रश्न होता है कि तदन्तविधि से धर्मशब्दान्त अधर्म शब्द से भी तो प्रत्यय हो सकता है न? इस पर कहा जाता है कि **ग्रहणवता प्रातिपदिकेन तदन्तविधिर्नास्ति**=ग्रहण किये हुये प्रातिपदिक में तदन्तविधि नहीं होती- इस परिभाषा के बल से अप्राप्ति है। अतः **आधर्मिकः** की सिद्धि के लिए इस वार्तिक की आवश्यकता है।

यहाँ **चरति** अर्थ की समाप्ति हो जाती है। अब अगले सूत्र से **एति**=जाता है- अर्थ में प्रत्यय का विधान है। प्राग्वहतीयों में यह बीसवाँ अर्थक्रम है। इसमें भी समर्थ विभक्ति द्वितीया ही है।

१५९२. प्रतिपथमेति ठंश्च ४।४।४२॥

प्रतिपथमेति प्रतिपथिकः, प्रातिपथिकः।

प्रतिपथमेति ठंश्च। प्रतिपथं द्वितीयान्तं, ठन् प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **तत् प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम्** से **तत्** इस द्वितीयान्त पद की अनुवृत्ति आती है। **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'जाता है' इस अर्थ में द्वितीयान्त प्रातिपदिक **प्रतिपथ**-शब्द से **औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय** और **ठन्** प्रत्यय भी होता है।

ठन् होने पर वृद्धि नहीं होगी किन्तु ठक् प्रत्यय के पक्ष में वृद्धि होती है साथ ही दोनों प्रत्ययों में स्वरभेद भी है।

यहाँ पर **प्रतिपथ** शब्द की निष्पत्ति अव्ययीभाव समास से माननी चाहिये। **पन्थानं पन्थानं प्रति** विग्रह करके वीप्सार्थ में या **पथः अभिमुखं** विग्रह करके आभिमुख्यार्थ में अव्ययीभाव समास सम्भव है। समास के बाद **ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे** (५.४.७४) सूत्र से समासान्त अ-प्रत्यय होने पर उसके तद्धित होने से **नस्तद्धिते** सूत्र के द्वारा टिसंज्ञक भाग **इन्** का लोप होकर **प्रतिपथ** शब्द बनता है। अव्यय से सुबुत्पत्ति होने पर उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् प्राप्त होता है किन्तु **नाव्ययीभावादतोऽम्त्वपञ्चम्याः** से अमादेश होने पर पूर्वरूप होकर **प्रतिपथम्** सिद्ध हो जाता है।

प्रतिपथमेति प्रतिपथिकः, प्रातिपथिकः। प्रत्येक मार्ग से चलने वाला या मार्गाभिमुख होकर चलने वाला। **प्रतिपथम् एति** लौकिक विग्रह और **प्रतिपथ+अम्** अलौकिक विग्रह में **प्रतिपथमेति ठंश्च** सूत्र से ठन्-प्रत्यय होने के पक्ष में अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से ठ के स्थान पर इक आदेश करके निमित्तभाव में वृद्धि का अभाव और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **प्रतिपथिक** शब्द बना है। ठक्-प्रत्यय के पक्ष में तो कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि होकर **प्रातिपथिक** बन जाता है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदित्वात् स्वादिकार्य होकर **प्रतिपथिकः** और **प्रातिपथिकः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

यहाँ **एति** अर्थ की समाप्ति हो जाती है। अब अगले तीन सूत्रों से **समवैति**=प्रवेश कर उसका अवयव हो जाना- अर्थ में प्रत्ययों का विधान है। प्राग्वहतीयों में यह इक्कीसवाँ अर्थक्रम है। इसमें भी समर्थ विभक्ति द्वितीया ही है।

१५९३. समवायान् समवैति ४।४।४३॥
सामवायिकः। सामूहिकः।

समवायान् समवैति। समवायान् द्वितीयान्तं, समवैति अर्थबोधकं क्रियापदम्। **तत् प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम्** से तत् इस द्वितीयान्त पद की अनुवृत्ति आती है। **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

समवैति=समवेत होता है (प्रवेश कर उसका अवयव हो जाता है)- अर्थ में द्वितीयान्त प्रातिपदिक समूहवाची शब्द से औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय होता है।

सूत्रस्थ **समवायान्** पद में बहुवचन समूहार्थक शब्दों का द्योतक है।

सामवायिकः। सभा में सम्मिलित होने वाला। **समवायं समवैति** लौकिक

विग्रह और **समवाय+शस्** अलौकिक विग्रह में **समवायान् समवैति** सूत्र से ठक्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से ठ के स्थान पर इक आदेश, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **सामवायिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सामवायिकः** सिद्ध हो जाता है।

सामूहिकः। समूह में सम्मिलित होने वाला। **समूहान् समवैति** विग्रह करके **समूह+शस्** में **समवायान् समवैति** सूत्र से ठक्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इक आदेश, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **सामूहिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सामूहिकः** सिद्ध हो जाता है।

१५९४. परिषदो ण्यः ४।४।४४॥

परिषदं समवैति पारिषद्यः।

परिषदो ण्यः। परिषदः पञ्चम्यन्तं, ण्यः प्रथमान्तम्। **समवायान् समवैति** से **समवैति** और **तत् प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम्** से तत् इस द्वितीयान्त पद की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

समवैति=समवेत होता है (प्रवेश कर उसका अवयव हो जाता है)- अर्थ में द्वितीयान्त प्रातिपदिक परिषद्-शब्द से औत्सर्गिक ठक् का अपवाद ण्य-प्रत्यय होता है।

ण्य में णकार इत्संज्ञक है, **य** बचता है। णित्करण आदिवृद्धि के लिये है।

परिषदं समवैति पारिषद्यः। सामूहिकः। परिषद्=सभा में सम्मिलित होने वाला। **परिषदं समवैति** विग्रह करके **परिषद्+अम्** में **परिषदो ण्यः** सूत्र से ण्य-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, आदिवृद्धि होकर **पारिषद्य** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पारिषद्यः** सिद्ध हो जाता है।

१५९५. सेनाया वा ४।४।४५॥

ण्यः स्यात्। पक्षे ठक्। सैन्याः, सैनिकाः।

सेनाया वा। सेनायाः पञ्चम्यन्तं, वाव्ययम्। **परिषदो ण्यः**। परिषदः पञ्चम्यन्तं, ण्यः प्रथमान्तम्। **समवायान् समवैति** से **समवैति** की और **परिषदो ण्यः** से **ण्यः** की तथा **तत् प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम्** से तत् इस द्वितीयान्त पद की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

समवैति=समवेत होता है- अर्थ में द्वितीयान्त प्रातिपदिक सेना-शब्द से विकल्प से ण्य प्रत्यय होता है।

पक्षे ठक्। ण्य-प्रत्यय न होने के पक्ष में औत्सर्गिक ठक्-प्रत्यय होता है।

सैन्याः, सैनिकाः। सेना में सम्मिलित होने वाले, सेना के सदस्य। **सेनां समवयन्ति** विग्रह करके **सेना+अम्** में **सेनाया वा** सूत्र से विकल्प से ण्य-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, आदिवृद्धि और भसंज्ञकान्त्य आकार का लोप होकर **सैन्य** शब्द बनता है। ठक् होने के पक्ष में इकादेश, आदिवृद्धि, आकारलोप होकर **सैनिक** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदित्वात् स्वादिकार्य होकर बहुवचन में **सैन्याः** और **सैनिकाः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

यहाँ **समवैति** अर्थ की समाप्ति हो जाती है। अब अगले सूत्र से **पश्यति**=देखता है- अर्थ में औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय का विधान है। प्राग्वहतीयों में यह बाईसवाँ अर्थक्रम है। इसमें भी समर्थ विभक्ति द्वितीया ही है।

१५९६. सञ्ज्ञायां ललाटकुक्कुट्यौ पश्यति ४।४।४६॥

ललाटं पश्यति लालाटिकः सेवकः।
कुक्कुटीशब्देन तत्पातार्हः स्वल्पदेशो लक्ष्यते। कौक्कुटिको भिक्षुः।

सञ्ज्ञायां ललाटकुक्कुट्यौ पश्यति। ललाटश्च कुक्कुटी च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः ललाटकुक्कुट्यौ, ते। संज्ञायां सप्तम्यन्तं, ललाटकुक्कुट्यौ द्वितीयान्तं, पश्यति अर्थबोधकं क्रियापदम्। **तत् प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम्** से **तत्** इस द्वितीयान्त पद की अनुवृत्ति आती है। **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

पश्यति=देखता है- अर्थ में द्वितीयान्त प्रातिपदिक ललाट और कुक्कुटी से औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय होता है, संज्ञा अर्थ गम्य होने पर।

ललाटं पश्यति लालाटिकः सेवकः। जो सेवक ठीक से काम न करे किन्तु बैठे-बैठे स्वामी का ललाट (मुख) ताकता रहे, वह। **ललाटं पश्यति** विग्रह करके **ललाट+अम्** में **सञ्ज्ञायां ललाटकुक्कुट्यौ पश्यति** सूत्र से विकल्प से ठक्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इकादेश, आदिवृद्धि और भसंज्ञकान्त्य अकार का लोप होकर **लालाटिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदित्वात् स्वादिकार्य होकर **लालाटिकः** सिद्ध हो जाता है।

कुक्कुटीशब्देन तत्पातार्हः स्वल्पदेशो लक्ष्यते। सूत्रोक्त **कुक्कुटी** शब्द का अभिधेयार्थ विवक्षित नहीं है किन्तु लक्षणावृत्ति से विशेष अर्थ उपस्थित होता है। कुक्कुटी-शब्द का लक्ष्यार्थ यह है कि जितनी दूरी मुर्गी की उड़ान में (फुँदकने में) व्याप्त रहती हो, वह दूरी। अर्थात् भिक्षु की दृष्टि चलते समय सिर नीचा कर पृथ्वी पर उतनी दूरी तक पड़े जितनी थोड़ी दूरी मुर्गी के फुंदकने के लिये मुर्गी देखती है। यहाँ संन्यासी के लिये उसकी दृष्टि-सीमा का परिसीमन किया गया है। अधिक नेत्रव्यापार करने पर

पतन की सम्भावना होती है। अतः चलने के लिये जितनी दृष्टि आवश्यक हो, उतनी दूरी ही रखकर चलना चाहिये।

कौक्कुटिको भिक्षुः। जितनी दूरी मुर्गी की उड़ान में (फुँदकने में) व्याप्त रहती हो, उतनी दृष्टि रखकर चलने वाला भिक्षुक। **कुक्कुटीं पश्यति** विग्रह करके **कुक्कुटी+अम्** में **सञ्ज्ञायां ललाटकुक्कुट्यौ पश्यति** सूत्र से विकल्प से ठक्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इकादेश, आदिवृद्धि और भसंज्ञकान्त्य ईकार का लोप होकर **कौक्कुटिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदित्वात् स्वादिकार्य होकर **कौक्कुटिकः** सिद्ध हो जाता है।

एक सूत्र से ही **पश्यति** अर्थ की समाप्ति कर आगे तीन सूत्रों से **धर्म्यम्**=आचार और व्यवहार के अनुकूल कार्य- अर्थ में प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है। प्राग्वहतीयों में यह तेईसवाँ अर्थक्रम है। इसमें समर्थ विभक्ति षष्ठी होती है, क्योंकि उसे **तस्य** पद के द्वारा दर्शाया जा रहा है।

१५९७. तस्य धर्म्यम् ४।४।४७॥
आपणस्य धर्म्यमापणिकम्।

तस्य धर्म्यम्। तस्य षष्ठ्यन्तं, धर्म्यं प्रथमान्तम्। **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

षष्ठी-समर्थ प्रातिपदिक से धर्म्य अर्थ में औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय होता है।

धर्म्य-शब्द **धर्मादनपेतम्** (४.४.९२) सूत्र से **ञ्य**-प्रत्यय होकर निष्पन्न हुआ है। अतः इसका अर्थ होता है न्याय्य एवं आचार-युक्त व्यवहार का बोधक।

आपणस्य धर्म्यमापणिकम्। बाजार का कर, चुंगी। **आपणस्य धर्म्यम्** विग्रह करके **आपण+ङस्** में **तस्य धर्म्यम्** सूत्र से ठक्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इकादेश, आदिवृद्धि और भसंज्ञकान्त्य अकार का लोप होकर **आपणिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदित्वात् स्वादिकार्य होकर **आपणिकम्** सिद्ध हो जाता है।

१५९८. अण् महिष्यादिभ्यः ४।४।४८॥
महिष्या धर्म्यं माहिषम्। याजमानम्।

अण् महिष्यादिभ्यः। महिषी आदिर्येषां ते महिष्यादयस्तेभ्यो महिष्यादिभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अण् प्रथमान्तम्। **तस्य धर्म्यम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

षष्ठी-समर्थ महिषी आदि गणपठित प्रातिपदिकों से धर्म्य अर्थ में ठक् का अपवाद अण् प्रत्यय होता है।

महिष्या धर्म्यं माहिषम्। रानी का कर्तव्य। **महिष्याः धर्म्यम्** विग्रह करके

महिषी+ङस् में **अण् महिष्यादिभ्यः** सूत्र से अण्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, आदिवृद्धि और भसंज्ञकान्त्य ईकार का लोप होकर **माहिष** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदित्वात् स्वादिकार्य होकर **माहिषम्** सिद्ध हो जाता है।

याजमानम्। यजमान का कर्तव्य। **यजमानस्य धर्म्यम्** विग्रह करके **यजमान+ङस्** में **अण् महिष्यादिभ्यः** सूत्र से अण्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, आदिवृद्धि और भसंज्ञकान्त्य अकार का लोप होकर **याजमान** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदित्वात् स्वादिकार्य होकर **याजमानम्** सिद्ध हो जाता है।

महिष्यादिगणः- महिषी, प्रजापति, प्रजावती, प्रलेपिका, विलेपिका, अनुलेपिका, पुरोहित, मणिपाली, अनुवारक, [अनुचारक], होतृ, यजमान।

१५९९. ऋतोऽञ् ४।४।४९॥

यातुर्धर्म्यं यात्रम्।

'नराच्चेति वक्तव्यम्' (वा.२९६७)। नरस्य धर्म्या नारी।

'विशसितुरिड्लोपश्चाञ्च वक्तव्यः'(वा.२९६८)। विशसितुर्धर्म्यं वैशस्त्रम्।

'विभाजयितुर्णिलोपश्चाञ्च वाच्यः'(वा.२९६९)। विभाजयितुर्धर्म्यं वैभाजित्रम्।

ऋतोऽञ्। ऋतः पञ्चम्यन्तम्, अञ् प्रथमान्तम्। **तस्य धर्म्यम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

षष्ठी-समर्थ ऋकारान्त प्रातिपदिक से धर्म्य अर्थ में ठक् का अपवाद अञ् प्रत्यय होता है।

यातुर्धर्म्यं यात्रम्। यात्री का कर्तव्य। **यातुः धर्म्यम्** विग्रह करके **यातृ+ङस्** में **ऋतोऽञ्** सूत्र से अञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, आदिवृद्धि और अन्त्य ऋकार को यण् रेफ होकर **यात्र** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **यात्रम्** सिद्ध हो जाता है।

नराच्चेति वक्तव्यम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- नर-शब्द से भी धर्म्य अर्थ में अञ् प्रत्यय होता है। ऋकारान्त न होने के कारण सूत्र से अप्राप्त होने के कारण प्रकृत वार्तिक से विधान किया गया है। औत्सर्गिक ठक् के बाधनार्थ भी इसकी चरितार्थता है। अञ् प्रत्यय होने पर **टिड्ढाणञ्०** से ङीप् प्रत्यय हो जाता है।

नरस्य धर्म्या नारी। नर के धर्म से अनपेत स्त्री। **नरस्य धर्म्या** विग्रह करके **नर+ङस्** में **नराच्चेति वक्तव्यम्** वार्तिक से अञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, आदिवृद्धि और अन्त्य अकार का लोप होकर **नार** बनता है। स्त्रीत्वविवक्षा में ङीप् होकर **नारी** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **नारी** सिद्ध हो जाता है।

विशसितुरिड्लोपश्चाञ्च वक्तव्यः। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- विशसितृ-शब्द से धर्म्य अर्थ में अञ्-प्रत्यय के साथ इट् का लोप होता है। वि-पूर्वक शस्-धातु से तृच् प्रत्यय होने पर इट् आगम होकर **विशसितृ** शब्द बना है, उससे अञ्-प्रत्यय के सन्नियोग में इट् का लोप किया जाता है।

विशसितुर्धर्म्यं वैशस्त्रम्। शासन का नियम। **विशसितुः धर्म्यम्** विग्रह करके **विशसितृ+ङस्** में **विशसितुरिड्लोपश्चाञ्च वक्तव्यः** वार्तिक से अञ्-प्रत्यय, इट् वाले इकार का लोप, अनुबन्धलोप, आदिवृद्धि होकर **वैशस्तृ+अ** बना। ऋकार को यण् होकर **वैशस्त्र** बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वैशस्त्रम्** सिद्ध हो जाता है।

विभाजयितुर्णिलोपश्चाञ्च वाच्यः। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- ण्यन्त-विभाजयितृ-शब्द से धर्म्य अर्थ में अञ्-प्रत्यय के साथ णि-प्रत्यय का लोप होता है। वि-पूर्वक भज्-धातु से णिच् करके **विभाजि** बनता है और तृच् प्रत्यय होने पर इकार को गुण, अयादेश होकर **विभाजयितृ** शब्द बना है, उससे अञ्-प्रत्यय के सन्नियोग में णि के इकार का लोप किया जाता है।

विभाजयितुर्धर्म्यं वैभाजित्रम्। बँटवारा करने वाले का धर्म। **विभाजयितुः धर्म्यम्** विग्रह करके **विभाजयितृ+ङस्** में **विभाजयितुर्णिलोपश्चाञ्च वाच्यः** वार्तिक से अञ्-प्रत्यय, णि वाले इकार का लोप, अनुबन्धलोप, आदिवृद्धि होकर **वैभाज्+इतृ+अ** बना। वर्णसम्मेलन और ऋकार को यण् होकर **वैभाजित्र** बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वैभाजित्रम्** सिद्ध हो जाता है।

यहाँ **धर्म्यम्** अर्थ की समाप्ति है। अब आगे **अवक्रयः**=ठेके पर लेना- अर्थ में औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय का विधान किया जा रहा है। प्राग्वहतीयों में यह चौबीसवाँ अर्थक्रम है। इसमें समर्थ विभक्ति षष्ठी होती है, क्योंकि उसमें **तस्य** पद की अनुवृत्ति आती है।

१६००. अवक्रयः ४।४।५०॥

षष्ठ्यन्ताट्ठक् स्यादवक्रयेऽर्थे।

आपणस्यावक्रयः आपणिकः। राजग्राह्यं द्रव्यमवक्रयः।

अवक्रयः। अवक्रयः प्रथमान्तम्। **तस्य धर्म्यम्** से **तस्य** की अनुवृत्ति आती है। **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

षष्ठी-समर्थ प्रातिपदिक से अवक्रय अर्थ में औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय होता है।

आपणस्यावक्रयः आपणिकः। राजग्राह्यं द्रव्यमवक्रयः। बाजार के ठेकेदार कर। **आपणस्य अवक्रयः** विग्रह करके **आपण+ङस्** में **अवक्रयः** सूत्र से ठक्-प्रत्यय,

अनुबन्धलोप, इकादेश, आदिवृद्धि और भसंज्ञकान्त्य अकार का लोप होकर **आपणिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आपणिकः** सिद्ध हो जाता है। भट्टोजिदीक्षित जी के अनुसार राजा के द्वारा ग्राह्य द्रव्य को **अवक्रय** कहा जाता है किन्तु अमरकोश के अनुसार विक्रेय वस्तु का मूल्य ही अवक्रय है।

यहाँ **अवक्रयः** अर्थ की समाप्ति है। अब आगे **अस्य पण्यम्**=इसका व्यापार (व्यवसाय, खरीदने योग्य)- अर्थ में प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है। प्राग्वहतीयों में यह पच्चीसवाँ अर्थक्रम है। इसमें समर्थ विभक्ति प्रथमा होती है, क्योंकि उसका सूचक **तत्** पद विद्यमान रहता है।

१६०१. तदस्य पण्यम् ४।४।५१॥

अपूपाः पण्यमस्य आपूपिकः।

तदस्य पण्यम्। तत् प्रथमान्तम्, अस्य षष्ठ्यन्तं, पण्यं प्रथमान्तम्। **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

प्रथमा समर्थ प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय होता है, यदि वह प्रथमा-समर्थ पण्य=वस्तु खरीद-बिक्री के योग्य हो तो।

अपूपाः पण्यमस्य आपूपिकः। पूए खरीदने योग्य हैं जिसके अर्थात् पूए का दूकानदार। **अपूपाः पण्यमस्य** विग्रह करके **अपूप+जस्** में **तदस्य पण्यम्** सूत्र से ठक्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इकादेश, आदिवृद्धि और भसंज्ञकान्त्य अकार का लोप होकर **आपूपिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आपूपिकः** सिद्ध हो जाता है।

१६०२. लवणाट्ठञ् ४।४।५२॥

लावणिकः।

लवणाट्ठञ्। लवणात् पञ्चम्यन्तं, ठञ् प्रथमान्तम्। **तदस्य पण्यम्** के तीनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

प्रथमा समर्थ प्रातिपदिक लवण-शब्द से षष्ठ्यर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है, यदि वह प्रथमा-समर्थ पण्य=वस्तु खरीद-बिक्री के योग्य हो तो।

यह औत्सर्गिक ठक् का अपवाद है। ठक् और ठञ् में रूपसाम्य होने पर भी स्वरभेद है। ठञ्-प्रत्ययान्त आद्युदात्त होता है।'

लावणिकः। नमक का व्यापारी। **लवणः पण्यमस्य** विग्रह करके **लवण+सु** में **लवणाट्ठञ्** सूत्र से ठञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इकादेश, आदिवृद्धि और भसंज्ञकान्त्य

अकार का लोप होकर **लावणिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदित्वात् स्वादिकार्य होकर **लावणिकः** सिद्ध हो जाता है।

१६०३. किसरादिभ्यः छन् ४।४।५३॥

किसरं पण्यमस्य किसरिकः। षित्त्वान्ङीष्, किसरीकी।

किसर, उशीर, नलद इत्यादि-किसरादयः, सर्वे सुगन्धिद्रव्यविशेषवाचिनः।

किसरादिभ्यः छन्। किसर आदिर्येषां ते किसरादयस्तेभ्यः किसरादिभ्यः, बहुव्रीहिः। किसरादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, छन् प्रथमान्तम्। **तदस्य पण्यम्** के तीनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

प्रथमा समर्थ किसरादि-गणपठित प्रातिपदिकों से षष्ठ्यर्थ में छन् प्रत्यय होता है, यदि वह प्रथमा-समर्थ पण्य=वस्तु खरीद-बिक्री के योग्य हो तो।

छन् में षकार की **षः प्रत्ययस्य** सूत्र से इत्संज्ञा होती है और नकार भी इत्संज्ञक है, **ठ** बचता है। षित्करण स्त्रीत्वविवक्षा में **षिद्गौरादिभ्यश्च** सूत्र से ङीष् के लिये है, अन्यथा औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय होने पर **टिड्ढाणञ्०** सूत्र से ङीप् होने पर स्वरभेद हो जाता और कित् के कारण आदिवृद्धि का भी प्रसंग आ जाता।

किसरं पण्यमस्य किसरिकः। षित्त्वान्ङीष्, किसरीकी। सुगन्धी द्रव्य का व्यापारी। **किसरं पण्यमस्य** विग्रह करके **किसर+सु** में **किसरादिभ्यः छन्** सूत्र से छन्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इकादेश और भसंज्ञकान्त्य अकार का लोप होकर **किसरिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **किसरिकः** सिद्ध हो जाता है। स्त्रीत्वविवक्षा में ङीष् होकर **किसरिकी** बन जाता है।

किसर, उशीर, नलद इत्यादि-किसरादयः, सर्वे सुगन्धिद्रव्यविशेषवाचिनः। किसरादिगण में पठित किसर, उशीर, नलद आदि सभी शब्द सुगन्धि-द्रव्यविशेष के वाचक हैं।

किसरादिगणः- किसर, नरद, नलद, स्थागल, गतर, गुग्गुलु, उशीर, हरिद्रा, हरिद्रु, पर्गी (पर्णी)।

१६०४. शलालुनोऽन्यतरस्याम् ४।४।५४॥

छन् स्यात्, पक्षे ठक्।

शलालुकः, शलालुकी। शालालुकः, शालालुकी।

शलालुः सुगन्धिद्रव्यविशेषः।

शलालुनोऽन्यतरस्याम्। शलालुनः पञ्चम्यन्तम्, अन्यतरस्यां विभक्तिप्रतिरूपकं विकल्पबोधकं पदम्। **किसरादिभ्यः छन्** से **छन्** की तथा **तदस्य पण्यम्** के तीनों पदों

की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

प्रथमा समर्थ शलालु इस प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में विकल्प से ष्ठन् प्रत्यय होता है, यदि वह प्रथमा-समर्थ पण्य=वस्तु खरीद-बिक्री के योग्य हो तो।

पक्षे ठक्। ष्ठन् न होने के पक्ष में औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय होता है। ठक् प्रत्यय होने के पक्ष में आदिवृद्धि होती है।

शलालुकः, शलालुकी। शालालुकः, शालालुकी। सुगन्धित पदार्थ बेचने वाला या बेचने वाली। **शलालु पण्यमस्य (अस्याः)** विग्रह करके **शलालु+सु** में **शलालुनोऽन्यतरस्याम्** सूत्र से विकल्प से ष्ठन्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप होकर **शलालु+ठ** बना है। इकादेश को बाधकर **इसुसुक्तान्तात्कः** सूत्र के द्वारा **क** आदेश होकर **शलालुक** शब्द बना है। स्त्रीत्वविवक्षा में षित्त्वात् ङीष् होकर **शलालुकी** शब्द बना है। ठक् होने पक्ष में अन्य कार्य पूर्ववत् होकर आदिवृद्धि होक़र पुंल्लिंग में **शालालुक** और स्त्रीलिंग में **शालालुकी** बने हैं। चारों शब्दों में एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदित्वात् स्वादिकार्य होकर **शलालुकः, शलालुकी, शालालुकः, शालालुकी** सिद्ध हो जाते हैं।

शलालुः सुगन्धिद्रव्यविशेषः। शलालु-शब्द भी सुगन्धिद्रव्यविशेष का वाचक है। यहाँ पर यह नहीं समझना चाहिये कि सुगन्धिद्रव्यवाची होने के कारण पूर्वसूत्र से ही ष्ठन् प्रत्यय हो जाता, क्योंकि यह किसरादिगण में नहीं आता।

यहाँ **पण्यम्** अर्थ की समाप्ति है। अब आगे दो सूत्रों से **अस्य शिल्पम्**=इसकी कला, इसका ज्ञान- अर्थ में प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है। प्राग्वहतीयों में यह छब्बीसवाँ अर्थक्रम है। इसमें समर्थ विभक्ति प्रथमा होती है, क्योंकि उसके सूचक **तत्** पद की अनुवृत्ति आती है।

१६०५. शिल्पम् ४।४।५५॥
मृदङ्गवादनं शिल्पमस्य मार्दङ्गिकः।

शिल्पम्। प्रथमान्तमेकपदं सूत्रम्। **तदस्य पण्यम्** से **तदस्य** की अनुवृत्ति आती है। **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'शिल्प है इसका' इस अर्थ में प्रथमान्त प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय होता है।

मार्दङ्गिकः। मृदंग बजाने का विशेष ज्ञान है जिसका अर्थात् मृदंग बजाने वाला। **मृदङ्गवादनं शिल्पम् अस्य** लौकिक विग्रह और **मृदङ्ग+सु** अलौकिक विग्रह है। **शिल्पम्** सूत्र से ठक्, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से ठ के स्थान पर इक आदेश करके **मृदङ्ग+इक** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई तो ऋकार के स्थान

पर **आर्** होकर और भसंज्ञक अकार का लोप करके **मार्दङ्ग्+इक=मार्दङ्गिक** बना। स्वादिकार्य करके **मार्दङ्गिकः** सिद्ध हो जाता है।

१६०६. मड्डुकझर्झराद्णन्यतरस्याम् ४।४।५६॥

मड्डुकवादनं शिल्पमस्य माड्डुकः, माड्डुकिकः। झार्झरः, झार्झरिकः।

मड्डुकझर्झराद्णन्यतरस्याम्। मड्डुकश्च झर्झरश्च तयोः समाहारद्वन्द्वो मड्डुकझर्झरं, तस्माद् मड्डुकझर्झरात् पञ्चम्यन्तम्, अण् प्रथमान्तम्, अन्यतरस्यां विभक्तिप्रतिरूपकमव्ययम्। **शिल्पम्** की तथा **तदस्य पण्यम्** से **तदस्य** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'शिल्प है इसका' इस अर्थ में प्रथमान्त मड्डुक और झर्झर इन प्रातिपदिकों से विकल्प से अण् प्रत्यय होता है।

शिल्पम् के कुशलता, कला, ज्ञान, वैशिष्ट्य आदि अर्थ हैं। अण् प्रत्यय वैकल्पिक है, इसके न होने के पक्ष में औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय होता है।

मड्डुकवादनं शिल्पमस्य माड्डुकः, माड्डुकिकः। बड़ा डमरु बजाने का विशेष ज्ञान है जिसका, वह। **मड्डुकवादनं शिल्पम् अस्य** विग्रह करके **मड्डुक+सु** से **मड्डुकझर्झराद्णन्यतरस्याम्** सूत्र से विकल्प से अण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **माड्डुक** शब्द बना है। अण् न होने के पक्ष में औत्सर्गिक ठक्-प्रत्यय अनुबन्धलोप, इकादेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **माड्डुकिक** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **माड्डुकः** और **माड्डुकिकः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

झार्झरः, झार्झरिकः। झाँझ बजाने का विशेष ज्ञान है जिसका, वह। **झर्झरवादनं शिल्पम् अस्य** विग्रह करके **झर्झर+सु** से **मड्डुकझर्झराद्णन्यतरस्याम्** सूत्र से विकल्प से अण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **झार्झर** शब्द बना है। अण् न होने के पक्ष में औत्सर्गिक ठक्-प्रत्यय अनुबन्धलोप, इकादेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **झार्झरिक** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **झार्झरः** और **झार्झरिकः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

यहाँ **अस्य शिल्पम्** अर्थ की समाप्ति है। अब आगे तीन सूत्रों से **अस्य प्रहरणम्**=इसका प्रहार, इसका आयुध- अर्थ में प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है। प्राग्वहतीयों में यह सत्ताइसवाँ अर्थक्रम है। इसमें समर्थ विभक्ति प्रथमा होती है, क्योंकि उसके सूचक **तत्** पद की अनुवृत्ति आती है।

१६०७. प्रहरणम् ४।४।५७॥

'तदस्य' इत्येव। असिः प्रहरणमस्य आसिकः। धानुष्कः।

प्रहरणम्। प्रहरणं प्रथमान्तमेकपदं सूत्रम्। **तदस्य पण्यम्** से **तदस्य** की अनुवृत्ति आती है। **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'हथियार है इसका' इस अर्थ में प्रथमान्त प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय होता है।

'तदस्य' इत्येव। यहाँ पर भी **तदस्य पण्यम्** से **तदस्य** की अनुवृत्ति आने से प्रथमा-समर्थ से षष्ठ्यर्थ में प्रत्यय का विधान है।

आसिकः। तलवार है प्रहरण अर्थात् हथियार जिसका, वह। **असिः प्रहरणम् अस्य** लौकिक विग्रह और **असि सु** अलौकिक विग्रह है। **प्रहरणम्** सूत्र से ठक्, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से ठ के स्थान पर इक आदेश करके **असि+इक** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई और भसंज्ञक इकार का लोप करके **आस्+इक=आसिक**, स्वादिकार्य करके **आसिकः** सिद्ध हो जाता है।

धानुष्कः। धनुष है प्रहरण अर्थात् हथियार जिसका, वह। **धनुः प्रहरणम् अस्य** लौकिक विग्रह और **धनुष् सु** अलौकिक विग्रह है। **तदस्य प्रहरणम्** सूत्र से ठक्, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से ठ के स्थान पर **इक** आदेश प्राप्त था, उसे बाधकर **इसुसुक्तान्तात्कः** से **क** आदेश करके **धनुष्+क** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई और **ष्** के असिद्ध होने से रुत्वविसर्ग, फिर **इणः षः** से षकार ही होकर **धानुष्+क=धानुष्क** बना। स्वादिकार्य करके **धानुष्कः** सिद्ध हो जाता है।

१६०८. परश्वधाट्ठञ्च ४।४।५८॥

पारश्वधिकः।

परश्वधाट्ठञ्च। परश्वधात् पञ्चम्यन्तं, ठञ् प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **प्रहरणम्** की तथा **तदस्य पण्यम्** से **तदस्य** की अनुवृत्ति आती है। **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'हथियार है इसका' इस अर्थ में प्रथमान्त प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में ठञ् प्रत्यय भी होता है।

च-शब्द के द्वारा औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय का भी समुच्चय है। अर्थात् **ठञ्** और **ठक्** दोनों प्रत्यय होते हैं। यद्यपि दोनों प्रत्ययों के रूप में समानता ही है, तथापि स्वरभेद स्पष्ट है।

पारश्वधिकः। परशु=फरसा है प्रहरण अर्थात् हथियार जिसका, वह। **परश्वधः प्रहरणम् अस्य** विग्रह करके **परश्वध+सु** में **परश्वधाट्ठञ् च** सूत्र से ठञ् और ठक्

प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इकादेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पारश्वधिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पारश्वधिकः** सिद्ध हो जाता है। **परशु** शब्द का पर्यायवाची है **परश्वध** शब्द।

१६०९. शक्तियष्ट्योरीकक् ४।४।५९॥

शाक्तीकः। याष्टीकः।

शक्तियष्ट्योरीकक्। शक्तिश्च यष्टिश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः शक्तियष्टी, तयोः शक्तियष्ट्योः, पञ्चम्यर्थे षष्ठी, ईकक् प्रथमान्तम्। **प्रहरणम्** की तथा **तदस्य पण्यम्** से **तदस्य** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'हथियार है इसका' इस अर्थ में प्रथमान्त शक्ति और यष्टि इन प्रातिपदिकों से षष्ठ्यर्थ में ईकक् प्रत्यय होता है।

ईकक् में अन्त्य ककार इत्संज्ञक है, **ईक** बचता है। कित्करण आदिवृद्धि के के लिये है।

शाक्तीकः। शक्ति-नामक प्रहरण अर्थात् हथियार है जिसका, वह। **शक्तिः प्रहरणम् अस्य** विग्रह करके **शक्ति+सु** में **शक्तियष्ट्योरीकक्** सूत्र से **ईकक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, आदिवृद्धि, भसंज्ञक इकार का लोप होकर **शाक्तीक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **शाक्तीकः** सिद्ध हो जाता है।

याष्टीकः। लाठी है प्रहरण=हथियार जिसका, वह। **यष्टिः प्रहरणम् अस्य** विग्रह करके **यष्टि+सु** में **शक्तियष्ट्योरीकक्** सूत्र से **ईकक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, आदिवृद्धि, भसंज्ञक इकार का लोप होकर **याष्टीक** शब्द बनता है और स्वादिकार्य होकर **याष्टीकः** सिद्ध हो जाता है।

यहाँ **अस्य प्रहरणम्** अर्थ की समाप्ति है। अब अगले सूत्र से **अस्य मतिः**=इसका मानना है- अर्थ में औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय का विधान किया जा रहा है। प्राग्वहतीयों में यह अठ्ठाइसवाँ अर्थक्रम है। इसमें भी समर्थ विभक्ति प्रथमा होती है, क्योंकि उसके सूचक **तत्** पद की अनुवृत्ति आती है।

१६१०. अस्ति-नास्ति-दिष्टं मतिः ४।४।६०॥

'तदस्य' इत्येव। अस्ति परलोक इत्येवं मतिर्यस्य स आस्तिकः। नास्तीति मतिर्यस्य स नास्तिकः। दिष्टमिति मतिर्यस्य स दैष्टिकः।

अस्तिनास्तिदिष्टं मतिः। अस्तिश्च नास्तिश्च दिष्टं च तेषां समाहारद्वन्द्वोऽस्ति-नास्तिदिष्टं प्रथमान्तं, मतिः प्रथमान्तम्। **तदस्य पण्यम्** से **तदस्य** की अनुवृत्ति है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

प्रथमा-समर्थ अस्ति, नास्ति, दिष्ट इन प्रातिपदिकों से अस्य मतिः=इनका मानना है- इस अर्थ में औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय होता है।

सूत्रोक्त **अस्ति** और **नास्ति** ये दो पद विभक्तिप्रतिरूपक निपात हैं। यद्यपि इन्हें शुद्ध क्रिया मानकर इनके प्रातिपदिक न होने पर भी विधानसामर्थ्यात् प्रत्यय हो सकता है, तथापि इनको निपात मानना समुचित है।

'तदस्य' इत्येव। 'तदस्य' इत्येव। यहाँ पर भी **तदस्य पण्यम्** से **तदस्य** की अनुवृत्ति आने से प्रथमा-समर्थ से षष्ठ्यर्थ में प्रत्यय का विधान है।

अस्ति परलोक इत्येवं मतिर्यस्य स आस्तिकः। ईश्वर और परलोक है, ऐसा जिसका मानना है, उसे **आस्तिक** कहते हैं। **अस्ति परलोक ईश्वरो वा इति मतिर्यस्य** विग्रह करके **अस्ति** इस निपात से **अस्तिनास्तिदिष्टं मतिः** सूत्र के द्वारा **ठक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इकादेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक इकार का लोप होकर **आस्तिक** शब्द बनता है और स्वादिकार्य होकर **आस्तिकः** सिद्ध हो जाता है।

नास्तीति मतिर्यस्य स नास्तिकः। ईश्वर और परलोक नहीं है, ऐसा जिसका मानना है, उसे **नास्तिक** कहते हैं। **नास्ति परलोक ईश्वरो वा इति मतिर्यस्य** विग्रह करके **नास्ति** इस निपात से **अस्तिनास्तिदिष्टं मतिः** सूत्र के द्वारा **ठक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इकादेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक इकार का लोप होकर **नास्तिक** शब्द बनता है और स्वादिकार्य होकर **नास्तिकः** सिद्ध हो जाता है।

यदि केवल **अस्ति मतिः** अर्थ में प्रत्यय किया जाय तो चोर में भी मति होने से वह भी आस्तिक कहलायेगा। इसी तरह मति-रहित अचेतन में भी **नास्तिक** शब्द का प्रयोग होने लगेगा। अतः परलोकघटित या ईश्वरघटित अर्थ किया गया है।

दिष्टमिति मतिर्यस्य स दैष्टिकः। भाग्य है, ऐसा जिसका मानना है, उसे **दैष्टिक** कहते हैं। **अस्ति दिष्टम् इति मतिर्यस्य** विग्रह करके **दिष्ट+सु** में **अस्तिनास्तिदिष्टं मतिः** सूत्र के द्वारा **ठक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इकादेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **दैष्टिक** शब्द बनता है और स्वादिकार्य होकर **दैष्टिकः** सिद्ध हो जाता है।

यहाँ एक ही सूत्र से **अस्य मतिः** अर्थ की समाप्ति है। अब आगे **अस्य शीलम्**=इसका स्वभाव है- अर्थ में प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है। प्राग्वहतीयों में यह उनतीसवाँ अर्थक्रम है। इसमें भी समर्थ विभक्ति प्रथमा होती है, क्योंकि उसके सूचक **तत्** पद की अनुवृत्ति आती है।

१६११. शीलम् ४।४।६१॥

अपूपभक्षणं शीलमस्य आपूपिकः।

शीलम्। शीलं प्रथमान्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तदस्य पण्यम्** से **तद्** और **अस्य** की अनुवृत्ति आती है। **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'यह स्वभाव है इसका' इस अर्थ में प्रथमान्त प्रातिपदिक से औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय होता है।

आपूपिकः। मालपूए खाने का स्वभाव है जिसका अर्थात् मालपूआ खाने वाला। **अपूपभक्षणं शीलम् अस्य** लौकिक विग्रह और **अपूप सु** अलौकिक विग्रह है। **शीलम्** सूत्र से ठक्, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से ठ के स्थान पर इक आदेश करके **अपूप+इक** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई और भसंज्ञक अकार का लोप करके **आपूप्+इक=आपूपिक** बना। स्वादिकार्य करके **आपूपिकः** सिद्ध हुआ।

इसी तरह से **ऐसा स्वभाव है इसका** इस अर्थ में अन्य शब्दों से भी ठक् करके प्रयोग सिद्ध होते हैं। जैसे-

मोदकभक्षणं शीलमस्य- मौदकिकः। मोदक खाने का स्वभाव वाला।
शष्कुलीभक्षणं शीलमस्य- शाष्कुलिकः। पूड़ी खाने का स्वभाव वाला।
ओदनभक्षणं शीलमस्य- औदनिकः। भात खाने का स्वभाव वाला।
पायसभक्षणं शीलमस्य- पायसिकः। खीर खाने का स्वभाव वाला।
करुणा शीलमस्य- कारुणिकः। करुणा स्वभाव वाला।

१६१२. छत्रादिभ्यो णः ४।४।६२॥
गुरोर्दोषाणामावरणं छत्रम्, तच्छीलमस्य छात्रः।

छत्रादिभ्यो णः। छत्र आदिर्येषां ते छत्रादयस्तेभ्यश्छत्रादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, णः प्रथमान्तम्। **शीलम्** की और **तदस्य पण्यम्** से **तद्** और **अस्य** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'यह स्वभाव है इसका' इस अर्थ में प्रथमान्त छत्रादि-गणपठित प्रातिपदिकों से औत्सर्गिक ठक् का अपवाद ण-प्रत्यय होता है।

गुरोर्दोषाणामावरणं छत्रम्, तच्छीलमस्य छात्रः। गुरुकार्य में लगा हुआ, गुरु की त्रुटियों को सिर ढकने वाले छत्र के समान छिपाने वाला शिष्य। गुरु के दोषों को प्रकट होने से बचाने वाला शिष्य। वैसे छत्र-शब्द का अर्थ **छाता** है, जो आतप, धूप, वर्षा आदि से रक्षा करता है। उसे ओढ़कर शरीर को ढक लिया जाता है। यहाँ पर काशिकाकार, न्यासकार आदि व्याख्याताओं ने छत्र-शब्द के आवरणरूप अर्थ में लाक्षणिक-वृत्ति मानकर उसे गौण बना दिया है। दीक्षित जी ने भी उसी रूप में अर्थ स्वीकार कर **छत्र-शीलता** शिष्य में दिखलायी है। **छत्रम् इव शीलम् अस्य** लौकिक

विग्रह और **छत्र+सु** अलौकिक विग्रह है। **छत्रादिभ्यो णः** सूत्र से ण-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, आदिवृद्धि हुई और भसंज्ञक अकार का लोप करके **छात्र** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **छात्रः** सिद्ध हो जाता है। आजकल तकारलोप करके केवल **छात्रः** ऐसा लिखने का प्रचलन हो गया है।

महाभाष्यकार ने छत्र-शब्द को **छत्रमिव छत्रम्** व्युत्पत्ति से माना है। तदनुसार उत्तरपदलोप माना जायेगा। यद्यपि छत्र-शब्द की गौणी वृत्ति तो उन्होंने भी मानी है, तथापि छत्रशीलता वे गुरु में स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार जो **छत्र** के समान होकर शिष्य की रक्षा करे, उसको अज्ञानान्धकार से हटाये, वह गुरु **छत्र** के समान होने से **छत्र**पदवाच्य होगा तथा छत्र के समान गुरु की जो सेवा करे, वह **छात्र** कहलायेगा।

छत्रादिगणः- छत्र, शिक्षा, प्ररोह, स्था, बुभुक्षा, चुरा, तितिक्षा, उपस्थान, कृषि, कर्मन्, विश्वधा, तपस्, सत्य, अनृत, विशिखा, विशिका, भक्षा, उदस्थान, पुरोडा, विक्षा, चुक्षा, मन्द्र।

अब षाष्ठ सूत्र से अप्राप्त टिलोप का निपातन किया जा रहा है-

१६१३. कार्मस्ताच्छील्ये ६।४।१७२॥

कार्म इति ताच्छील्ये णे टिलोपो निपात्यते। कर्मशीलः कार्मः। 'नस्तद्धिते' (सू.६७९) इत्येव सिद्धे 'अण्कार्यं ताच्छीलिके णेऽपि'। तेन चौरी, तापसी इत्यादि सिद्धम्। ताच्छील्ये किम्? कार्मणः।

कार्मस्ताच्छील्ये। तत् शीलं यस्य स तच्छीलः, तस्य भावः ताच्छील्यं, तस्मिन् ताच्छील्ये। कार्मः प्रथमान्तं, ताच्छील्ये सप्तम्यन्तम्। **भस्य** और **अङ्गस्य** का अधिकार है।

ताच्छील्य अर्थ में विहित तद्धितसंज्ञक ण-प्रत्यय के परे रहते कर्मन्-शब्दावयव भसंज्ञक अंग के टि-संज्ञक भाग लोप-निपातन किया जाता है।

यह प्रासंगिक सूत्र है। छत्रादिगण में कर्मन्-शब्द का पाठ होने से ण-प्रत्यय होता है और ताच्छील्य=उसका वैसा स्वभाव अर्थ में विहित उक्त प्रत्यय के परे रहते टि-लोप का निपातन किया गया है। जब किसी तरह शब्दसिद्धि न हो रही हो तो निपातन से कार्य किया जाता है। प्रकृति, प्रत्यय आदि प्रदर्शन के बिना आचार्य द्वारा सिद्ध-रूप का सूत्र में प्रदर्शित करना ही निपातन है।

कर्मशीलः कार्मः। कर्मशील अर्थात् निरन्तर कर्म करने का स्वभाव वाला व्यक्ति। **कर्म शीलम् अस्य** विग्रह करके **कर्मन्+सु** में **छत्रादिभ्यो णः** सूत्र के द्वारा ण-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, आदिवृद्धि, **कार्मस्ताच्छील्ये** सूत्र के द्वारा टिसंज्ञक भाग **अन्** से लोप प्राप्त होने पर उसका अभाव निपातन करने पर **कार्म** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य करके **कार्मः** सिद्ध हो जाता है।

'नस्तद्धिते' इत्येव सिद्धे 'अण्कार्यं ताच्छीलिके णेऽपि'। तेन चौरी, तापसी इत्यादि सिद्धम्। यहाँ यह बताया जा रहा है कि प्रकृत सूत्र के बिना ही कर्मन्+अ में नस्तद्धिते सूत्र के द्वारा ही टिलोप करके भी कार्मः की सिद्धि हो जाती है तो प्रकृतसूत्र की क्या आवश्यकता है? यह निपातन व्यर्थ होकर ज्ञापित करता है कि ताच्छील्य अर्थ में विहित ण-प्रत्यय को अण्-प्रत्यय के समान माना जाता है। इसके फलस्वरूप ण-प्रत्यय के परे रहते अण्-प्रत्यय के परवर्ती होने के समान अन् (६.४.१६७) सूत्र से प्रकृतिभाव (टिलोपाभाव) की प्राप्ति होती है, वह न हो। इसके लिये यह निपातन चरितार्थ होता है। यह ज्ञापन है। ज्ञापन प्रायः अन्यत्र फलितार्थ होता है। जैसे कि उक्त निपातन के अनुसार चुरा शीलमस्य (चोरी करने का स्वभाव है जिसका; वह स्त्री) विग्रह करके चुरा+सु से छत्रादिभ्यो णः से ण-प्रत्यय, आदिवृद्धि, आकारलोप होने पर जो चौर शब्द बनता है, उसको अणन्त के समान मानकर टिड्ढाणञ्० सूत्र से ङीप् प्रत्यय सम्भव हो जाता है, जिससे चौरी रूप सिद्ध हो जाता है। तद्नुसार ही तपः शीलमस्य (तपस्या करने करने का स्वभाव है जिसका, वह स्त्री) विग्रह करके तपस्+सु से छत्रादिभ्यो णः से ण-प्रत्यय, आदिवृद्धि होने पर जो तापस शब्द बनता है, उसमें स्त्रीत्वविवक्षा होने पर उसे भी अणन्त के समान मानकर टिड्ढाणञ्० सूत्र से ङीप् प्रत्यय सम्भव हो जाता है, जिससे तापसी रूप सिद्ध हो जाता है।

ताच्छील्ये किम्? कार्मणः। प्रकृत सूत्र में ताच्छील्ये पद का निवेश होने से ताच्छील्य अर्थ में विहित ण-प्रत्यय के परे रहते ही यह निपातन होता है, अन्यथा नहीं होता। अतः कर्मणे इदम् विग्रह करके तस्येदम् सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय होने पर यह निपातन नहीं हुआ, क्योंकि यहाँ ताच्छील्यार्थक प्रत्यय न होकर इदमर्थक प्रत्यय है। अतः अन् सूत्र के द्वारा टिलोप का प्रकृतिभाव होकर कार्मण शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर कार्मणः सिद्ध हो जाता है।

यहाँ तस्य शीलम् अर्थ की समाप्ति है। अब आगे अध्ययने वृत्तम्=अध्ययन के विषय में होने वाला कार्य- अर्थ में प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है। प्राग्वहतीयों में यह तीसवाँ अर्थक्रम है। इसमें भी समर्थ विभक्ति प्रथमा होती है, क्योंकि उसके सूचक तत् पद की अनुवृत्ति आती है।

१६१४. कर्माध्ययने वृत्तम् ४।४।६३॥

प्रथमान्तात् षष्ठ्यर्थे ठक् स्यादध्ययने वृत्ता या क्रिया सा चेत् प्रथमान्तस्यार्थः।
एकमन्यद् वृत्तमस्य ऐकान्यिकः।
यस्याध्ययने प्रवृत्तस्य परीक्षाकाले विपरीतोच्चारणरूपं स्खलितमेकं जातं सः।

कर्माध्ययने वृत्तम्। कर्म प्रथमान्तम्, अध्ययने इति विषय-सप्तमी, वृत्तं प्रथमान्तम्। तदस्य पण्यम् से तद् और अस्य की अनुवृत्ति आती है। ठक्, प्रत्ययः,

परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है। यहाँ पर **कर्म** शब्द का अर्थ **क्रिया** है। **वृत्तम्** का अर्थ **जातम्, सम्पन्नम्** है।

'अध्ययन के विषय में होने वाला कार्य' इस अर्थ में प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय होता है। अथवा प्रथमान्त प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में ठक् प्रत्यय होता है, अध्ययन में प्रवृत्त जो क्रिया, वह यदि प्रथमान्त का अर्थ हो तो।

एकमन्यद् वृत्तमस्य ऐकान्यिकः। यस्याध्ययने प्रवृत्तस्य परीक्षाकाले विपरीतोच्चारणरूपं स्खलितमेकं जातं सः। अध्ययन में प्रवृत्त छात्र का परीक्षा के समय एक जगह विपरीत-उच्चारण रूप स्खलन हो जाय, उस छात्र को **ऐकान्यिकः** कहा गया है। अब लिखित परीक्षा होती है तो लेखन में स्खलन होने पर भी यही रूप होगा। यहाँ पर **एकम् अन्यद् वृत्तम्** विग्रह करके **एक+सु अन्यत्+सु** में **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** सूत्र के द्वारा तद्धितार्थ-विषय में समास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, सवर्णदीर्घ, त्यदाद्यत्व, पररूप आदि होकर **एकान्य** शब्द बन जाता है। उसके बाद **एकान्य** शब्द से **कर्माध्ययने वृत्तम्** सूत्र के द्वारा औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय करने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, इकादेश, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **ऐकान्यिक** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **ऐकान्यिकः** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **द्वैयन्यिकः** और **त्रैयन्यिकः** आदि भी बन जाते है किन्तु इन दो उदाहरणों में **न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्** सूत्र के द्वारा ऐच् आगम भी होता है, जैसा कि **वैयाकरण, वैयाघ्रः** इत्यादि में होता है।

१६१५. बह्वच्पूर्वपदाट्ठञ् ४।४।६४॥

प्राग्विषये। द्वादशान्यानि कर्माण्यध्ययने वृत्तान्यस्य द्वादशान्यिकः। द्वादशापपाठा अस्य जाता इत्यर्थः।

बह्वच्पूर्वपदाट्ठञ्। बहवोऽचो यस्मिन् स बह्वच्, बहुव्रीहिः। बह्वच् पूर्वपदं यस्य तत् बह्वच्पूर्वपदं, तस्माद् बह्वच्पूर्वपदात्, बहुव्रीहिः। बह्वच्पूर्वपदात् पञ्चम्यन्तं, ठञ् प्रथमान्तम्। **कर्माध्ययने वृत्तम्** के सभी पदों की और **तदस्य पण्यम्** से **तद्, अस्य** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है। यहाँ पर **कर्म** शब्द का अर्थ **क्रिया** है। **वृत्तम्** का अर्थ **जातम्, सम्पन्नम्** है।

'अध्ययन के विषय में होने वाला कार्य' इस अर्थ में वृत्तकर्मसमानाधिकरण प्रथमा-समर्थ अनेकाच् पूर्वपद वाले प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है (पूर्वसूत्र के विषय में)।

यह पूर्वसूत्र का अपवाद है। यद्यपि ठक् और ठञ् प्रत्ययों के रूपों में समानता ही है तथापि उनमें स्वरभेद अवश्य रहता है।

द्वादशान्यानि कर्माण्यध्ययने वृत्तान्यस्य द्वादशान्यिकः। द्वादशापपाठा अस्य जाता इत्यर्थः। अध्ययन में प्रवृत्त छात्र का परीक्षा के समय बारह जगह विपरीत-उच्चारण रूप स्खलन हो जाय, उस छात्र को **द्वादशान्यिकः** कहा गया है। उदात्तादि और ह्रस्वादि वर्णों का यथायथ उच्चारण न करके बारह बार विपरीत अपपाठ करने वाला छात्र। यहाँ पर **द्वादश अन्यानि वृत्तानि** विग्रह करके द्वादशन्+जस् अन्यत्+जस् में **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** सूत्र के द्वारा तद्धितार्थ-विषय में समास करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, नकार का लोप, सवर्णदीर्घ, त्यदाद्यत्व, पररूप आदि होकर **द्वादशान्य** शब्द बन जाता है। उसके बाद **बह्वच्पूर्वपदाट्ठञ्** सूत्र के द्वारा ठञ् प्रत्यय करने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, इकादेश, सुप् का लुक्, पर्जन्यवल्लक्षणन्यायेन आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **द्वादशान्यिक** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **द्वादशान्यिकः** सिद्ध हो जाता है। **द्वादश**-शब्द में तीन अच् हैं, अतः बह्वच्-पूर्वपद है। इसी तरह **त्रायोदशान्यिकः** आदि जगहों पर भी समझना चाहिये।

इस सूत्र का पाठभेद मिलता है- **बह्वच्पूर्वपदाट्ठञ्।** इस तरह **ठच्** प्रत्यय का विधान है। ऐसी स्थिति में **त्रयोदशान्यिकः** आदि में आदिवृद्धि नहीं हो पाती।

यहाँ **अध्ययने वृत्तम्** अर्थ की समाप्ति है। अब अगले सूत्र से **अस्मै हितम्**=इसमें हित है- अर्थ में औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय का विधान किया जा रहा है। प्राग्वहतीयों में यह इकतीसवाँ अर्थक्रम है। इसमें भी समर्थ विभक्ति प्रथमा होती है, क्योंकि उसके सूचक **तत्** पद की अनुवृत्ति आती है।

१६१६. हितं भक्षाः ४।४।६५॥
अपूपभक्षणं हितमस्मै आपूपिकः।

हितं भक्षाः। हितं प्रथमान्तं, भक्षाः प्रथमान्तम्। **तदस्य पण्यम्** से **तद्, अस्य** की अनुवृत्ति आती है। **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है। यहाँ अनुवृत्त **अस्य** पद का चतुर्थी में विभक्तिविपरिणाम किया जाता है, क्योंकि **हित**-शब्द के योग में **चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः** सूत्र के द्वारा चतुर्थी विभक्ति हो जाती है।

'हितम् अस्मै=हित है इसमें' इस विषय में हित-समानाधिकरण वाले भक्ष्यवाची प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय होता है।

अपूपभक्षणं हितमस्मै आपूपिकः। मालपूए खाना जिसके लिये हितकारी हो। **अपूपभक्षणं हितम् अस्मै** विग्रह करके **अपूप+सु** में **हितं भक्षाः+** सूत्र के द्वारा

औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय करने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, इकादेश, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आपूपिक** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आपूपिकः** सिद्ध हो जाता है। यहाँ पर **अपूप** शब्द **अपूपभक्षण** अर्थ में लाक्षणिक है।

यहाँ **अस्मै हितम्** अर्थ की समाप्ति है। अब अगले सूत्र से **अस्मै नियुक्तं दीयते**=इसके लिये नियम-पूर्वक दिया जाता है- अर्थ में प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है। प्राग्वहतीयों में यह बत्तीसवाँ अर्थक्रम है। इसमें भी समर्थ विभक्ति प्रथमा होती है, क्योंकि उसका सूचक **तत्** पद सूत्र में ही पढ़ा गया है।

१६१७. तदस्मै दीयते नियतम् ४।४।६६॥

अग्रभोजनं नियतं दीयते अस्मै आग्रभोजनिकः।

तदस्मै दीयते नियतम्। तत् प्रथमान्तम्, अस्मै चतुर्थ्यन्तं, दीयते क्रियापदं, नियतं क्रियाविशेषणं द्वितीयान्तम्। **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है। इस सूत्र का बहुत्र **तदस्मै दीयते नियुक्तम्** ऐसा पाठ भी उपलब्ध होता है। तात्पर्य तो दोनों का समान ही है।

प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से 'इसके लिये नियम-पूर्वक दिया जाता है' इस अर्थ में औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय होता है।

अग्रभोजनं नियतं दीयते अस्मै आग्रभोजनिकः। जिसे नियम-पूर्वक सबसे पहले भोजन दिया जाता है, वह। **अग्रभोजनं नियतं दीयते अस्मै** विग्रह करके **अग्रभोजन+सु** में **तदस्मै दीयते नियतम्** सूत्र के द्वारा औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय करने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, इकादेश, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आग्रभोजनिक** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आग्रभोजनिकः** सिद्ध हो जाता है।

१६१८. श्राणामांसौदनाट्ठिठन् ४।४।६७॥

श्राणा नियतं दीयतेऽस्मै श्राणिकः, श्राणिकी।
मांसौदनग्रहणं सङ्गतविगृहीतार्थम्। मांसौदनिकः, मांसिकः, ओदनिकः।

श्राणामांसौदनाट्ठिठन्। श्राणा च मांसौदनं च तयोः समाहारद्वन्द्वः श्राणामांसौदनं, तस्मात् श्राणामांसौदनात्, पञ्चम्यन्तं, टिठन् प्रथमान्तम्। **तदस्मै दीयते नियतम्** के तीनों पदों की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

प्रथमा-समर्थ श्राणा और मांसौदन इन प्रातिपदिकों से 'इसके लिये नियम-पूर्वक दिया जाता है' इस अर्थ में टिठन् प्रत्यय होता है।

टिठन् में टकार और नकार इत्संज्ञक हैं, इकार उच्चारणार्थ है और **ठ** मात्र अवशिष्ट रहता है तथा उसके स्थान पर इकादेश हो जाता है। टित्करण स्त्रीत्वविवक्षा में ङीप् के लिये और नित्करण आद्युदात्त के लिये है।

श्राणा नियतं दीयतेऽस्मै श्राणिकः, श्राणिकी। पकी हुयी लपसी जिसे नियमित रूप से दिया जाय, वह पुरुष या स्त्री। **श्राणा नियतं दीयते अस्मै (अस्यै)** विग्रह करके **श्राणा+सु** में **श्राणामांसौदनाट् टिठन्** सूत्र के द्वारा टिठन् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इकादेश, सुप् का लुक्, भसंज्ञक आकार का लोप होकर **श्राणिक** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **श्राणिकः** सिद्ध हो जाता है। स्त्रीत्वविवक्षा में **टिड्ढाणञ्०** सूत्र से ङीप् होकर **श्राणिकी** बन जाता है।

मांसौदनग्रहणं सङ्घातविगृहीतार्थम्। सूत्र में पठित **मांसौदन** शब्द में दो शब्दों का समूह है- **मांस+ओदन।** इसमें **मांसौदन** समुदाय से और इसके विगृहीत रूप केवल **मांस** या केवल **ओदन** से भी यह प्रत्यय होता है।

मांसौदनिकः, मांसिकः, ओदनिकः। मांस-मिश्रित भात जिसे नियमित रूप से दिया जाय, वह। **मांसौदनं नियतं दीयते अस्मै** विग्रह करके **मांसौदन+सु** में **श्राणामांसौदनाट् टिठन्** सूत्र के द्वारा टिठन् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इकादेश, सुप् का लुक्, भसंज्ञक आकार का लोप होकर **मांसौदनिक** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **मांसौदनिकः** सिद्ध हो जाता है। यह सङ्घात=समूह का उदाहरण है। विगृहीत करने पर केवल **मांस**-शब्द से उक्त प्रत्यय होकर शेषकार्य पूर्ववत् करके **मांसिकः** (जिसे नियमित मांस दिया जाय) और केवल **ओदन** शब्द से **ओदनिकः** (जिसे नियमित भात दिया जाय) सिद्ध होते हैं।

उपर्युक्त तीनों प्रयोगों में निमित्ताभाव के कारण आदिवृद्धि नहीं हुयी, अन्यथा ठञ् प्रत्यय से ही निर्वाह हो जाता।

१६१९. भक्तादणन्यतरस्याम् ४।४।६८॥

पक्षे ठक्। भक्तमस्मै नियतं दीयते भाक्तः, भाक्तिकः।

भक्तादणन्यतरस्याम्। भक्तात् पञ्चम्यन्तम्, अण् प्रथमान्तम्, अन्यतरस्यां विभक्तिप्रतिरूपकमव्ययम्। **तदस्मै दीयते नियतम्** के तीनों पदों की अनुवृत्ति आती है तथा **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

प्रथमा-समर्थ भक्त इस प्रातिपदिक से 'इसके लिये नियम-पूर्वक दिया जाता है' इस अर्थ में विकल्प से अण् प्रत्यय होता है।

पक्षे ठक्। अण् न होने के पक्ष में **तदस्मै दीयते नियतम्** सूत्र से औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय होता है।

भक्तमस्मै नियतं दीयते भाक्तः, भाक्तिकः। भात जिसे नियमित रूप से दिया जाय, वह। **भक्तं नियतं दीयते अस्मै** विग्रह करके **भक्त+सु** में **भक्तादणन्यतरस्याम्** सूत्र के द्वारा विकल्प से अण्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **भाक्त** शब्द बन जाता है। अण् न होने के पक्ष में औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय होने पर इकादेश, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **भाक्तिक** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **भाक्तः** और **भाक्तिकः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

यहाँ **अस्मै नियुक्तं दीयते** अर्थ की समाप्ति है। अब अगले दो सूत्रों से **तत्र नियुक्तः**=उस कार्य में नियुक्त- अर्थ में प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है। प्राग्वहतीयों में यह तैंतीसवाँ अर्थक्रम है। इसमें समर्थ विभक्ति सप्तमी होती है, क्योंकि उसका सूचक **तत्र** पद यहाँ दिया गया है।

१६२०. तत्र नियुक्तः ४।४।६९॥
आकरे नियुक्त आकरिकः।

तत्र नियुक्तः। तत्र सप्तम्यर्थबोधकमव्ययं, नियुक्तः प्रथमान्तम्। **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

सप्तमी-समर्थ प्रातिपदिक से 'नियुक्त' अर्थ में औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय होता है।

यहाँ पर **नियुक्त** शब्द **संरक्षणादि में प्रेरित** अर्थ में प्रयुक्त है।

आकरे नियुक्त आकरिकः। खान की सुरक्षा के लिये नियुक्त व्यक्ति। **आकरे नियुक्तः** विग्रह करके **आकर+ङि** में **तत्र नियुक्तः** सूत्र के द्वारा औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आकरिक** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आकरिकः** सिद्ध हो जाता है।

१६२१. अगारान्ताट्ठन् ४।४।७०॥
देवागारे नियुक्तो देवागारिकः।

अगारान्ताट्ठन्। अगारोऽन्ते यस्य तद् अगारान्तं, तस्माद् अगारान्तात्, बहुव्रीहिः। अगारान्तात् पञ्चम्यन्तं, ठन् प्रथमान्तम्। **तत्र नियुक्तः** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

अगार-शब्द अन्त वाले सप्तमी-समर्थ प्रातिपदिक से 'नियुक्त' अर्थ में ठन् प्रत्यय होता है।

यह औत्सर्गिक ठक् का अपवाद है।

देवागारे नियुक्तो देवागारिकः। देवागार=मन्दिर की सुरक्षा के लिये नियुक्त व्यक्ति। **देवागारे नियुक्तः** विग्रह करके **देवागार+ङि** में **अगारान्ताट्ठन्** सूत्र के द्वारा ठन् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, निमित्ताभाव के कारण आदिवृद्धि का अभाव और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **देवागारिक** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **देवागारिकः** सिद्ध हो जाता है।

यहाँ **तत्र नियुक्तः** अर्थ की समाप्ति है। अब अगले सूत्र से **अध्यायिनि**=अध्ययन करने वाला- अर्थ में औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय का विधान किया जा रहा है। प्राग्वहतीयों में यह चौंतीसवाँ अर्थक्रम है। इसमें समर्थ विभक्ति सप्तमी होती है, क्योंकि पूर्वसूत्र से **तत्र** पद की अनुवृत्ति आती है।

१६२२. अध्यायिन्यदेशकालात् ४।४।७१॥

निषिद्धदेशकालवाचकाट्ठक्स्यादध्येतरि।

श्मशानेऽधीते श्माशानिकः। चतुर्दश्यामधीते चातुर्दशिकः।

अध्यायिन्यदेशकालात्। देशश्च कालश्च तयोः समाहारद्वन्द्वो देशकालम्, न देशकालम् अदेशकालं, तस्माद् अदेशकालात्। यहाँ पर **नञ्** शब्द विरुद्ध अर्थ में विद्यमान है। अध्यायिनि सप्तम्यन्तम्, अदेशकालात् पञ्चम्यन्तम्। **तत्र नियुक्तः** से **तत्र** की अनुवृत्ति आती है तथा **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

सप्तमी-समर्थ अदेशकाल=जिस देश व काल में अध्ययन नहीं करना चाहिये ऐसे विरुद्ध देशकालवाची प्रातिपदिकों से अध्यायिनि=अध्ययन करने वाला अभिधेय हो तो औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय होता है।

अध्ययन की दृष्टि से जो देश और काल निषिद्ध किये गये हैं, अर्थात् जहाँ अध्ययन नहीं हो सकता या नहीं किया जाना चाहिये, ऐसे देश-काल को यहाँ **अदेशकाल** कहा गया है। यहाँ पर **नञ्** विरुद्ध अर्थ को उपस्थापित करता है। श्मशान, चौराहे आदि वेदाध्ययनादि के लिये शास्त्रों में निषिद्ध किये गये हैं। इसी तरह चतुर्दशी तिथि भी शास्त्राध्ययन के लिये निषिद्ध है।

श्मशानेऽधीते श्माशानिकः। निषिद्ध स्थान श्मशान में अध्ययन करने वाला। **श्मशाने अधीते** विग्रह करके **श्मशान+ङि** में **अध्यायिन्यदेशकालात्** सूत्र के द्वारा औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **श्माशानिक** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **श्माशानिकः** सिद्ध हो जाता है।

चतुर्दश्यामधीते चातुर्दशिकः। निषिद्ध काल चतुर्दशी में अध्ययन करने वाला। **चतुर्दश्याम् अधीते** विग्रह करके **चतुर्दशी+ङि** में **अध्यायिन्यदेशकालात्** सूत्र के द्वारा औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक ईकार का लोप होकर **चातुर्दशिक** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **चातुर्दशिकः** सिद्ध हो जाता है।

यहाँ एक ही सूत्र में **अध्यायी** अर्थ की समाप्ति है। अब अगले सूत्र से **व्यवहरति**=व्यवहार करता है- अर्थ में औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय का विधान किया जा रहा है। प्राग्वहतीयों में यह पैंतीसवाँ अर्थक्रम है। इसमें समर्थ विभक्ति सप्तमी होती है, क्योंकि पूर्वसूत्र से **तत्र** पद की अनुवृत्ति आती है।

१६२३. कठिनान्तप्रस्तारसंस्थानेषु व्यवहरति ४।४।७२॥

'तत्र' इत्येव। वंशकठिने व्यवहरति वांशकठिनिकः। वंशा वेणवः कठिना यस्मिन्देशे स वंशकठिनः। तस्मिन्देशे या क्रिया यथा अनुष्ठेया तां तथैवानुतिष्ठतीत्यर्थः। प्रास्तारिकः। सांस्थानिकः।

कठिनान्तप्रस्तारसंस्थानेषु व्यवहरति। कठिन-शब्दोऽन्ते यस्य स कठिनान्तः, बहुव्रीहिः। कठिनान्तश्च प्रस्तारश्च संस्थानं च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः कठिनान्तप्रस्तारसंस्थानानि तेषु कठिनान्तप्रस्तारसंस्थानेषु सप्तम्यन्तं, व्यवहरति इत्यर्थबोधकं क्रियापदम्। **तत्र नियुक्तः** से **तत्र** की अनुवृत्ति आती है और **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

सप्तमी-समर्थ कठिनान्त-शब्द और प्रस्तार तथा संस्थान इन प्रातिपदिकों से व्यवहरति=व्यवहार करता है- अर्थ में औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय होता है।

'तत्र' इत्येव। यहाँ भी **तत्र नियुक्तः** सूत्र से **तत्र** पद की अनुवृत्ति आ रही है, अतः समर्थ-विभक्ति सप्तमी ही है।

वंशकठिने व्यवहरति वांशकठिनिकः। बाँस के वन में व्यवसाय करने वाला। **वंशकठिने व्यवहरति** विग्रह करके **वंशकठिन+ङि** में **कठिनान्तप्रस्तारसंस्थानेषु व्यवहरति** सूत्र के द्वारा औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **वांशकठिनिक** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वांशकठिनिकः** सिद्ध हो जाता है। यह कठिनान्त-प्रातिपदिक का उदाहरण है।

वंशा वेणवः कठिना यस्मिन् देशे स वंशकठिनः। तस्मिन्देशे या क्रिया यथा अनुष्ठेया तां तथैवानुतिष्ठतीत्यर्थः। अर्थात् उपर्युक्त **वंशकठिन** में बहुव्रीहि समास

किया गया है। जिस देश में कठोर बाँस होते हैं, उस देश में जो कार्य जिस रीति से किया जाता है, उसे उक्तरीति से सम्पन्न करने वाले को **वांशकठिनिकः** कहा गया है।

प्रास्तारिकः। प्रस्तार=अल्पसमूह या यज्ञ में यथोचित व्यवहार करने वाला। **प्रस्तारे व्यवहरति** विग्रह करके **प्रस्तार+ङि** में **कठिनान्तप्रस्तारसंस्थानेषु व्यवहरति** सूत्र के द्वारा औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **प्रास्तारिक** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **प्रास्तारिकः** सिद्ध हो जाता है।

सांस्थानिकः। समूह में चतुष्पथ में यथोचित व्यवहार करने वाला। **संस्थाने व्यवहरति** विग्रह करके **संस्थान+ङि** में **कठिनान्तप्रस्तारसंस्थानेषु व्यवहरति** सूत्र के द्वारा औत्सर्गिक ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **सांस्थानिक** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सांस्थानिकः** सिद्ध हो जाता है।

यहाँ एक ही सूत्र से **व्यवहरति** अर्थ की समाप्ति है। अब अगले दो सूत्रों से **निवसति**=रहता है- अर्थ में प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है। प्राग्वहतीयों में यह छत्तीसवाँ अर्थक्रम है। इसमें समर्थ विभक्ति सप्तमी होती है, क्योंकि पूर्वसूत्र से **तत्र** पद की अनुवृत्ति आती है।

१६२४. निकटे वसति ४।४।७३॥
नैकटिको भिक्षुः।

निकटे वसति। निकटे सप्तम्यन्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, वसति क्रियापदं, द्विपदं सूत्रम्। **ठक्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त 'निकट' प्रातिपदिक से 'रहने वाला' इस अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है।

नैकटिको भिक्षुः। गाँव के निकट में रहने वाला संन्यासी। **निकटे वसति** लौकिक विग्रह और **निकट ङि** अलौकिक विग्रह है। **निकटे वसति** सूत्र से **ठक्**, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से **ठ** के स्थान पर **इक** आदेश करके **निकट+इक** बना। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि हुई और भसंज्ञक अकार का लोप करके **नैकट्+इक=नैकटिक** बना। स्वादिकार्य करके **नैकटिकः** सिद्ध हो जाता है। अरण्य में निवास करने वाले भिक्षु और ब्रह्मचारी को ग्राम से एक कोस दूर रहना चाहिये, ऐसी शास्त्रीय व्यवस्था है। उसकी उपेक्षा करके जो ग्राम के निकट ही रहता है, उसे **नैकटिकः** कहा गया है।

१६२५. आवसथात् ष्ठल् ४।४।७४॥

आवसथे वसति आवसथिकः। षित्वान्ङीष्, आवसथिकी।

'आकर्षात्पर्पादेर्भस्त्रादिभ्यः कुसीदसूत्राच्च।

आवसथात्किसरादेः षितः षडेते ठगधिकारे॥' (वा.२९५५)।

षडिति सूत्रषट्केन विहिता इत्यर्थः। प्रत्ययास्तु सप्त।

॥ इति तद्धितेषु ठगधिकारप्रकरणम्॥

आवसथात् ष्ठल्। आवसथात् पञ्चम्यन्तं, ष्ठल् प्रथमान्तम्। **निकटे वसति** से **वसति** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त 'आवसथ' प्रातिपदिक से 'रहने वाला' अर्थ में ठक् का अपवाद ष्ठल् प्रत्यय होता है।

षकार और लकार इत्संज्ञक हैं, ठ बचता है। षित्करण स्त्रीत्वविवक्षा में ङीष् के लिये और लित्करण स्वर के लिये है।

आवसथे वसति आवसथिकः। षित्वान्ङीष्, आवसथिकी। आवसथ=कुटिया में ही रहने वाला भिक्षु आदि। **आवसथे वसति** लौकिक विग्रह और **आवसथ+ङि** अलौकिक विग्रह है। **आवसथात्ष्ठल्** सूत्र के द्वारा ठक् का अपवाद **ष्ठल्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से ठ के स्थान पर **इक** आदेश करके भसंज्ञक अकार का लोप करने पर **आवसथिक** शब्द बना है। स्त्रीत्वविवक्षा में षित् होने के कारण **षिद्गौरादिभ्यश्च** सूत्र के द्वारा ङीष् होकर **आवसथिकी** बनता है। स्वादिकार्य करके **आवसथिकः** और **आवसथिकी** ये सिद्ध हो जाते हैं।

भाष्यकार ने **आकर्षात् ष्ठल्** (४.४.९) सूत्र में एक श्लोकवार्तिक पढ़ा है। वह इस लिये कि ठक्, ठन्, ष्ठन्, ष्ठल् आदि में अनुबन्धलोप होने पर केवल ठ ही अवशिष्ट रहता है। इसी तरह इस ठगधिकार में सरलता से यह ज्ञात नहीं होता कि कौन सा ठक् प्रत्यय ष-इत्संज्ञक है और कौन सा नहीं? उसका कारण यह है कि संहितापाठ में सन्धि करने पर सामाप्य के कारण स्पष्ट नहीं होता कि कहाँ सन्धिजन्य ष् है तथा कहाँ स्वतन्त्र, ऐसी स्थिति में यह सन्देह बना रहता है कि कहाँ षित् है और कहाँ षित् नहीं है? इसी का निराकरण निम्नलिखित वार्तिक करता है।

आकर्षात्पर्पादेर्भस्त्रादिभ्यः कुसीदसूत्राच्च।

आवसथात् किसरादेः षितः षडेते ठगधिकारे॥ यह श्लोकवार्तिक है। वार्तिकार्थः- **आकर्षात् ष्ठल्, पर्पादिभ्यः ष्ठन्, भस्त्रादिभ्यः ष्ठन्, कुसीददशैकादशात् ष्ठन्ष्ठचौ, आवसथात् ष्ठल्, किसरादिभ्यः ष्ठन्** ये छह सूत्र विधिवाक्य के रूप में ठगधिकार के अन्तर्गत षित् प्रत्ययों के स्वरूप में पठित हैं।

षडिति सूत्रषट्केन विहिता इत्यर्थः। प्रत्ययास्तु सप्त। उक्त वार्तिक में **षट् एते** कहा गया है, उसका अर्थ है- छह सूत्रों से विहित प्रत्यय। वास्तव में प्रत्यय तो सात हैं, क्योंकि **कुसीददशैकादशात् ष्ठन्ष्ठचौ** सूत्र से दो प्रत्यय किये जाते हैं।

इति तद्धितेषु ठगधिकारप्रकरणम्। यहाँ पर तद्धितीय ठक् प्रत्यय के अधिकार के साथ प्राग्वहतीय का प्रकरण (ठगधिकार) पूर्ण हो जाता है।

श्री भट्टोजिदीक्षित द्वारा विरचित वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी की
गोविन्दाचार्य कृत श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी टीका में
तद्धितीय प्राग्वहतीय-प्रकरण पूर्ण हुआ।

●

अथ प्राग्घितीयप्रकरणम्

अब **प्राग्घितीयप्रकरण** का प्रारम्भ होता है। प्राग्वहतीयों के अन्तर्गत का यह प्रकरण है। औत्सर्गिक प्रत्यय के रूप में **यत्**-प्रत्यय का अधिकार है, अतः इससे **यदधिकारप्रकरण** भी कहा जा सकता है। **तस्मै हितम्** सूत्र में हित-शब्द का उच्चारण है, उससे पहले होने वाले प्रत्ययों को प्राग्घितीय कहा जाता है। प्रत्ययविधायक सूत्रों में **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, आद्युदात्तश्च** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार विद्यमान है। **प्राग्घिताद्यत्** यह सूत्र **तस्मै हितम्** से पहले तक **यत्** के अधिकार का निर्णय करता है। **यत्** में तकार इत्संज्ञक है। ञित्, णित् और कित् न होने से वृद्धि का प्रसङ्ग नहीं है। अपवाद के रूप में अन्य प्रत्यय किये जाते हैं किन्तु औत्सर्गिक प्रत्यय तो यत् ही है।

१६२६. प्राग्घिताद्यत् ४।४।७५॥

'तस्मै हितम्' (सू.१६६५) इत्यतः प्राग्यदधिक्रियते।

प्राग्घिताद्यत्। प्राक् अव्ययपदं, हितात् पञ्चम्यन्तं, यत् प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्।

'तस्मै हितम्' सूत्र से पहले तक यत्-प्रत्यय का अधिकार रहता है।

यह अधिकार सूत्र है। सूत्र में **हितात्** शब्द एकदेशीय निर्देश है। यह **तस्मै हितम्** (५.१.५) सूत्र का निर्देशक है। **प्राक्** शब्द के योग में **हित** शब्द में पञ्चमी-विभक्ति हुयी है। यत् में तकार इत्संज्ञक है, य बचता है। अर्थविधायक सूत्र आगे दिये जा रहे हैं, वहीं उसका उपयोग होगा। अधिकार की सीमा तो वस्तुतः हितार्थ से पूर्व क्रीतार्थ तक ही रहती है।

अष्टाध्यायी में प्राग्दीव्यतीय और प्राग्वहतीय के विवेचन के बाद प्राग्घितीय का प्रकरण है। इसमें लगभग इकतीस अर्थों का निर्देश है, जिनका विवेचन यथास्थान किया जायेगा।

प्राग्घितीय में सबसे पहले **वहति**=ढोता है, अर्थ में प्रत्यय का विधान किया जा रहा है। प्राग्घितीयों में यह पहला अर्थक्रम है। **तद्** शब्द के द्वारा समर्थ-विभक्ति द्वितीया होने की सूचना है।

१६२७. तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम् ४।४।७६॥

रथं वहति रथ्यः। युग्यः।

वत्सानां दमनकाले स्कन्धे यत्काष्ठमासज्यते स प्रासङ्गः, तं वहति प्रासङ्ग्यः।

तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्। तद् द्वितीयान्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, वहति क्रियापदं, रथयुगप्रासङ्गं द्वितीयान्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, त्रिपदमिदं सूत्रम्। प्राग्घिताद्यत् से **यत्** का तथा **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

द्वितीयान्त रथ, युग और प्रासङ्ग इन प्रातिपदिकों से 'वहति' अर्थात् वहन करता है या वहन करने वाला (ढोता है) अर्थ में यत् प्रत्यय होता है।

रथ्यः। रथ को ढोने वाला। **रथं वहति** लौकिक विग्रह और **रथ अम्** अलौकिक विग्रह है। **तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्** से यत् प्रत्यय, तकार का लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **रथ+य** बना। भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** से लोप हुआ, **रथ्+य=रथ्य** बना। सु आदि कार्य करके **रथ्यः** सिद्ध हो जाता है।

युग्यः। युग अर्थात् रथ या हल की एक विशेष लकड़ी को ढोने वाला। **युगं वहति** लौकिक विग्रह और **युग अम्** अलौकिक विग्रह है। **तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्** से यत् प्रत्यय, तकार का लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **युग+य** बना। भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** से लोप हुआ, **युग्+य=युग्य** बना। सु आदि कार्य करके **युग्यः** सिद्ध हो जाता है।

प्रासङ्ग्यः। नये बछड़ों का नियन्त्रण करने वाले प्रासङ्ग को ले जाने वाला। **प्रासङ्गं वहति** लौकिक विग्रह और **प्रासङ्ग+ अम्** अलौकिक विग्रह करके **तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्** से यत् प्रत्यय, तकार का लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप करके **प्रासङ्ग्य** बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **प्रासङ्ग्यः** सिद्ध हो जाता है।

वत्सानां दमनकाले स्कन्धे यत्काष्ठमासज्यते स प्रासङ्गः, तं वहति प्रासङ्ग्यः। रथ का अर्थ प्रसिद्ध ही है। रथ या हल आदि खींचने के लिए घोड़ा, बैल आदि के गले में जो लकड़ी डाली जाती है, उस लकड़ी को **युग** कहते हैं तो अशिक्षित बैल आदि को शिक्षित करने के लिए युग के साथ जो एक अन्य युग को गले में डाल देते हैं, उस लकड़ी को **प्रासङ्ग** कहते हैं। इस तरह रथ, युग और प्रासङ्ग को ढोने वाले को रथ्य, युग्य और **प्रासङ्ग्य** कहते हैं।

यद्यपि **समर्थानां प्रथमाद्वा** इस सूत्र के अनुसार सूत्र में प्रथमोच्चारित पद से प्रत्यय का विधान होना चाहिये और यहाँ पर प्रथमोच्चारित पद **रथयुगप्रासङ्गम्** नहीं है, अपितु **तद्** है। तथापि **रथ, युग, प्रासङ्ग** इनके तत्पदबोध्य होने से इन्हीं से यह प्रत्यय होगा।

१६२८. धुरो यड्ढकौ ४।४।७७॥
'हलि च' (सू.३५४) इति दीर्घे प्राप्ते।

धुरो यड्ढकौ। यत् च ढक् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो यड्ढकौ। धुरः पञ्चम्यन्तं, यड्ढकौ प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्** से **तद्** और **वहति** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

द्वितीयान्त प्रातिपदिक धुर्-शब्द से 'ढोता है' अर्थ में यत् और ढक् दोनों प्रत्यय होते हैं।

ढक् में ककार इत्संज्ञक है और ढ के ढकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से एय् आदेश हो जाता है। **धुर्** रथ का एक विशेष अङ्ग है।

धुर्वी (**धुर्व्**) धातु से **भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपृजुग्रावस्तुतः क्विप्** (३.२.१७७) सूत्र के द्वारा क्विप् प्रत्यय होने पर सर्वापहारलोप होता है और **राल्लोपः** (६.४.२१) सूत्र के द्वारा रेफ से परवर्ती वकार का लोप होकर **धुर्** यह प्रातिपदिक बनता है। इसके बाद तद्धित प्रत्यय किया जाता है।

'हलि च' इति दीर्घे प्राप्ते। उपर्युक्त सूत्र से यत् प्रत्यय होने के पक्ष में **धुर्+य** बनने पर **हलि च** सूत्र से उपधा को दीर्घ प्राप्त होता है, उसका अगले सूत्र से निषेध हो जाता है।

१६२९. न भकुर्छुराम् ८।२।७९॥
भस्य कुर्छुरोश्चोपधाया दीर्घो न स्यात्। धुर्यः, धौरेयः।

न भकुर्छुराम्। भं च कुर् च छुर् च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो भकुर्छुरस्तेषाम्। न अव्ययपदं, भकुर्छुरां षष्ठ्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **र्वोरुपधाया दीर्घ इकः** से **उपधायाः** और **दीर्घः** की अनुवृत्ति आती है।

भसंज्ञक की उपधा एवं कुर्, छुर् की उपधा को दीर्घ नहीं होता है।

हलि च से प्राप्त दीर्घ का निषेध होता है।

धुर्यः, धौरेयः। धुर् अर्थात् रथ के एक विशेष भाग धुरी को ढोने वाला। **धुरं वहति** लौकिक विग्रह और **धुर् अम्** अलौकिक विग्रह है। **धुरो यड्ढकौ** से यत् प्रत्यय होने के पक्ष में तकार का लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **धुर्+य=धुर्य** बना। यहाँ **हलि च** से दीर्घ प्राप्त था, उसका **न भकुर्छुराम्** से निषेध हुआ। **धुर्य** से सु आदि कार्य करके **धुर्यः** सिद्ध हो जाता है। **ढक्** होने के पक्ष में ककार की इत्संज्ञा, ढकार के स्थान पर एय् आदेश करके **धुर्+एय** बना। कित् होने के कारण आदिवृद्धि करके **धौर्+एय=धौरेय** बना। स्वादिकार्य करके **धौरेयः** सिद्ध हो जाता है।

१६३०. खः सर्वधुरात् ४।४।७८॥

सर्वधुरां वहतीति सर्वधुरीणः।

खः सर्वधुरात्। खः प्रथमान्तं, सर्वधुरात् पञ्चम्यन्तम्। **तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्** से **तद्** और **वहति** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः**, परश्च, **ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

द्वितीयान्त प्रातिपदिक सर्वधुरा-शब्द से 'ढोता है' अर्थ में ख-प्रत्यय होता है।

प्रातिपदिक शब्दस्वरूप को विशेष्य मानकर **सर्वधुरात्** यह नपुंसक निर्देश है। **ख** में खकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **इन्** आदेश होकर प्रत्यय का स्वरूप **ईन** बन जाता है। तदन्तविधि के कारण **सर्वधुरा** शब्द से भी **धुरो यड्ढकौ** सूत्र से यत् और ढक् प्रत्ययों की प्राप्ति थी, उसका यह अपवाद है।

सर्वधुरां वहतीति सर्वधुरीणः। समग्र धुरी को ढोने वाला। **सर्वधुरां वहति** विग्रह करके **सर्वधुरा+अम्** में **धुरो यड्ढकौ** से प्राप्त प्रत्यय को बाधकर **खः सर्वधुरात्** सूत्र के द्वारा ख-प्रत्यय, खकार के स्थान पर **ईन्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके भसंज्ञक आकार का **यस्येति च** से लोप होकर **सर्वधुरीन** और रेफ से परवर्ती नकार को **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** सूत्र से णत्वादेश होकर **सर्वधुरीण** बन जाता है और एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सर्वधुरीणः** सिद्ध हो जाता है।

विशेषः- यद्यपि केवल **धुर्** शब्द रेफान्त है, तथापि **सर्व** शब्द के साथ समास होने पर **सर्वधुरा** शब्द बन जाता है। प्रक्रिया- **सर्वा धूः** विग्रह करके **सर्वा+सु धुर्+सु** अलौकिक विग्रह में **पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन** (२. १४९) सूत्र से समास होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **सर्वधुर्** बनने पर **ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे** सूत्र के द्वारा समासान्त **अ** प्रत्यय होकर **सर्वधुर** शब्द बनता है। धुर्-शब्द स्त्रीलिंग है। अतः **परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः** सूत्र के नियमानुसार अदन्त **सर्वधुर** शब्द से टाप् होकर **सर्वधुरा** शब्द बन जाता है। प्रकृत सूत्र में अकारान्त नपुंसकलिंग में **सर्वधुरात्** का प्रयोग किया गया है, वह **प्रातिपदिकात्** का विशेषण मानकर है या **सामान्ये नपुंसकम्** के अनुसार नपुंसक हुआ है, ऐसा मान लेना चाहिये। अमरकोश के अनुसार **सर्वधुरा** शब्द स्त्रीलिंग में ही होता है- **स तु सर्वधुरीणो यो भवेत् सर्वधुरावहः।**

यद्यपि **समर्थानां प्रथमाद्वा** इस सूत्र के अनुसार सूत्र में प्रथमोच्चारित पद से प्रत्यय का विधान होना चाहिये और यहाँ पर प्रथमोच्चारित पद **सर्वधुर** नहीं है, अपितु अनुवृत्तिलभ्य **तद्** पद है। उसे ही प्रथमोच्चारित पद मानकर तत्पदबोध्य **सर्वधुरा** से यह प्रत्यय होगा।

१६३१. एकधुराल्लुक् च ४।४।७९॥
एकधुरां वहति एकधुरीणः, एकधुरः।

एकधुराल्लुक् च। एकधुरात् पञ्चम्यन्तं, लुक् प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **खः सर्वधुरात्** से **खः** की, **तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्** से **तद्** और **वहति** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है। यह लुग्विधायक सूत्र है और **लुक्** प्रत्यय के साथ अन्वय करने पर **खः, तद्धिताः** और **प्रत्ययः** का षष्ठी में विपरिणाम करके **तद्धितस्य प्रत्ययस्य खस्य** हो जाता है।

वहति अर्थ में द्वितीयान्त प्रातिपदिक एकधुरा-शब्द से विहित प्रत्यय का लुक् भी होता है।

वास्तव में यह सूत्र ख-प्रत्यय और पक्ष में उसका लुक् करता है। अतः अनुवृत्त **खः** की आवृत्ति करनी चाहिये और प्रत्ययविधि में प्रथमान्त **खः** और लुग्विधि में षष्ठ्यन्त **खस्य** करना चाहिये। इस तरह पक्ष में लुक् होने के कारण लुगभाव पक्ष में ख-प्रत्यय की विद्यमानता रहती है।

एकधुरां वहति एकधुरीणः, एकधुरः। एक धुरी को ढोने वाला। **एकधुरां** वहति विग्रह करके **एकधुरा+अम्** में **एकधुराल्लुक् च** सूत्र के द्वारा ख-प्रत्यय और पक्ष में उसका लुक् होने पर **लुक्तद्धितलुकि** से स्त्रीप्रत्यय का लुक् होकर अभिधेय के अनुसार पुंल्लिंग होकर **एकधुर** शब्द बनता है। लुक् न होने के पक्ष में खकार के स्थान पर **ईन्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** से लोप होकर **एकधुरीन** और नकार को णत्व होकर **एकधुरीण** शब्द बनता है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **एकधुरः, एकधुरीणः** रूप सिद्ध हो जाते हैं।

१६३२. शकटादण् ४।४।८०॥
शकटं वहति शाकटो गौः।

शकटादण्। शकटात् पञ्चम्यन्तम्, अण् प्रथमान्तम्। **तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्** से **तद्** और **वहति** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'वहति' अर्थ में द्वितीयान्त प्रातिपदिक शकट-शब्द से अण् प्रत्यय होता है।

यह औत्सर्गिक यत् का अपवाद है। णित्करण आदिवृद्धि के लिये है।

शकटं वहति शाकटो गौः। गाड़ी को खींचने वाला बैल। **शकटं वहति** विग्रह करके **शकट+अम्** में **शकटादण्** सूत्र के द्वारा अण्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा,

सुप्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **शाकट** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **शाकटः** (**गौः**) सिद्ध हो जाता है।

१६३३. हलसीराट्ठक् ४।४।८१॥
हलं वहति हालिकः। सैरिकः।

हलसीराट्ठक्। हलश्च सीरं च तयोः समाहारद्वन्द्वो हलसीरं तस्माद्धलसीरात् पञ्चम्यन्तं, ठक् प्रथमान्तम्। **तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्** से **तद्** और **वहति** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'वहति' अर्थ में द्वितीयान्त प्रातिपदिक हल और सीर शब्दों से ठक् प्रत्यय होता है।

यह औत्सर्गिक यत् का अपवाद है। कित्करण आदिवृद्धि के लिये है।

हलं वहति हालिकः। हल खींचने वाला बैल या हल ढोने वाला किसान। **हलं वहति** विग्रह करके **हल+अम्** में **हलसीराट्ठक्** सूत्र के द्वारा ठक्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **हालिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **हालिकः** सिद्ध हो जाता है।

सैरिकः। सीर=हल खींचने वाला बैल या हल ढोने वाला किसान। **सीरं वहति** विग्रह करके **सीर+अम्** में **हलसीराट्ठक्** सूत्र के द्वारा ठक्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **हालिक** और स्वादिकार्य से **सैरिकः** सिद्ध हो जाता है।

१६३४. सञ्ज्ञायां जन्याः ४।४।८२॥
जनी वधूः। तां वहन्ति प्रापयन्ति जन्याः।

सञ्ज्ञायां जन्याः। संज्ञायां सप्तम्यन्तं, जन्याः प्रथमान्तम्। **तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्** से **तद्** और **वहति** की अनुवृत्ति आती है। **यत्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'वहति' अर्थ में द्वितीयान्त प्रातिपदिक जनी-शब्द से यत्प्रत्यय का निपातन होकर 'जन्या' साधु माना जाता है।

जनी वधूः, तां वहन्ति=प्रापयन्ति जन्याः। बहू को **जनी** कहते हैं। **जायते अस्यां गर्भः** (इसमें गर्भ उत्पन्न होता है) इस अर्थ को धारण करने के कारण बहू को **जनी** कहा गया है। उसे पालकी में रखकर ले जाने वालों को **जन्याः** कहा जाता है। **जनीं वहन्ति** विग्रह करके **जनी+अम्** में **संज्ञायां जन्याः** सूत्र के द्वारा यत्-प्रत्यय का निपातन

करने पर **जनी+य** बना है। यकार के परे रहते भसंज्ञक ईकार का लोप होकर **जन्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर प्रथमा-बहुवचन में **जन्याः** सिद्ध हो जाता है।

विशेषः- भाष्यकार ने **जन्या** को प्रथमान्त के बजाय **जनी**-शब्द का पञ्चम्यन्त रूप की आशंका करके अन्ततः प्रथमान्त ही माना है- **जनीं वहन्ति जन्याः, जनीं वोढारो जन्याः, जनीमवाक्षुर्जन्याः**। और **जननी** शब्द के स्थान पर **जनी** आदेश का निपातन और यत्-प्रत्यय का निपातन माना है। बालमनोरमाकार आदि इसे निपातन नहीं मानते। उनके अनुसार **जन्याः** जनी-शब्द का पञ्चम्यन्त रूप है और **जन्याः** का अर्थ किया है- मित्रगण बहू को जामाता के घर पहुँचाते हैं।

यहाँ पर **वहति** अर्थ की समाप्ति है। अब एक सूत्र से **विध्यति**=बींधता है- अर्थ में औत्सर्गिक यत्-प्रत्यय का विधान किया जा रहा है। प्राग्घितीयों में यह दूसरा अर्थक्रम है। **तद्** शब्द की अनुवृत्ति से समर्थ-विभक्ति द्वितीया मानी जाती है।

१६३५. विध्यत्यधनुषा ४।४।८३॥

द्वितीयान्ताद् विध्यतीत्यर्थे यत् स्यात्, न चेत्तत्र धनुः करणम्।
पादौ विध्यन्ति पद्याः शर्कराः।

विध्यत्यधनुषा। न धनुः- अधनुः, तेन अधनुषा तृतीयान्तं, विध्यतीति अर्थबोधकं क्रियापदम्। **तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्** से **तद्** की अनुवृत्ति आती है। **यत्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

विध्यति=बींधता है- अर्थ में द्वितीयान्त प्रातिपदिक से औत्सर्गिक यत् प्रत्यय होता है, यदि बींधने का साधन धनुष् न हो तो।

पादौ विध्यन्ति पद्याः शर्कराः। पैंरों को बींधने वाले=घायल करने वाले नुकीले कंकड़। **पादौ विध्यन्ति** विग्रह करके **पाद+औ** में **विध्यत्यधनुषा** सूत्र के द्वारा यत्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पद्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर प्रथमा-बहुवचन में **पद्याः** सिद्ध हो जाता है।

यहाँ पर **विध्यति** अर्थ की समाप्ति है। अब दो सूत्रों से **लब्धा**=प्राप्त करने वाला- अर्थ में प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है। प्राग्घितीयों में यह तीसरा अर्थक्रम है। **तद्** शब्द की अनुवृत्ति से समर्थ-विभक्ति द्वितीया मानी जाती है।

१६३६. धनगणं लब्धा ४।४।८४॥

तृन्नन्तमेतत्। धनं लब्धा धन्यः। गणं लब्धा गण्यः।

धनगणं लब्धा। धनं च गणश्च तयोः समाहारद्वन्द्वो धनगणं, तद् धनगणं

द्वितीयान्तं, लब्धा इति लब्धृ-शब्दस्य प्रथमान्तं रूपम्। **तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्** से **तद्** की अनुवृत्ति आती है। **यत्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

लब्धा=प्राप्त करने वाला- अर्थ में द्वितीयान्त प्रातिपदिक धन और गण शब्दों से औत्सर्गिक यत् प्रत्यय होता है।

तृन्नन्तमेतत्। यह तृन्प्रत्ययान्त रूप है, अर्थात् डुलभष् प्राप्तौ (**लभ्**) धातु से **लभते तच्छीलः** विग्रह करके **तृन्** सूत्र के द्वारा तृन्-प्रत्यय होने पर **लभ्+तृ** बन जाता है। **झषस्तथोर्धोऽधः** सूत्र के द्वारा प्रत्यय के तकार को धकारादेश और **झलां जशोऽन्ते** सूत्र से जश्त्व होकर धातु के भकार को बकारादेश होने पर **लब्धृ** शब्द बनता है। प्रातिपदिकसंज्ञा और स्वादिकार्य होकर **लब्धा, लब्धारौ, लब्धारः** इत्यादि रूप बनते हैं। इसके योग में **कर्तृकर्मणोः कृति** सूत्र के द्वारा **धनगण**-शब्द में षष्ठीविभक्ति प्राप्त होने पर **न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्** (२.३.६९) सूत्र के द्वारा उसका निषेध हो जाता है और अन्ततः द्वितीया हो जाती है। यदि तृच्प्रत्ययान्त होता तो उक्त सूत्र से निषेध न हो पाता और षष्ठी हो जाती।

धनं लब्धा धन्यः। धन को प्राप्त करने वाला। **धनं लब्धा** विग्रह करके **धन+अम्** में **धनगणं लब्धा** सूत्र के द्वारा यत्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **धन्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर में **धन्यः** सिद्ध हो जाता है।

गणं लब्धा गण्यः। समूह को प्राप्त करने वाला। **गणं लब्धा** विग्रह करके **गण+अम्** में **धनगणं लब्धा** सूत्र के द्वारा यत्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **गण्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **गण्यः** सिद्ध हो जाता है।

१६३७. अन्नाण्णः ४।४।८५॥

अन्नं लब्धा आन्नः।

अन्नाण्णः। अन्नात् पञ्चम्यन्तं, णः प्रथमान्तम्। **धनगणं लब्धा** से **लब्धा** की और **तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्** से **तद्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

लब्धा=प्राप्त करने वाला- अर्थ में द्वितीयान्त प्रातिपदिक अन्न-शब्द से औत्सर्गिक यत् प्रत्यय का अपवाद ण-प्रत्यय होता है।

ण प्रत्यय में णकार इत्संज्ञक है, **अ** बचता है। णित्करण आदिवृद्धि के लिये है।

अन्नं लब्धा आन्नः। अन्न को प्राप्त करने वाला। **अन्नं लब्धा** विग्रह करके **अन्न+अम्** में **अन्नाण्णः** सूत्र के द्वारा ण-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आन्न** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आन्नः** सिद्ध हो जाता है।

यहाँ पर **लब्धा** अर्थ की समाप्ति है। अब अगले सूत्र से **गतः**=प्राप्त हुआ- अर्थ में औत्सर्गिक यत्-प्रत्यय का विधान किया जा रहा है। प्राग्घितीयों में यह चतुर्थ अर्थक्रम है। **तद्** शब्द की अनुवृत्ति से समर्थ-विभक्ति द्वितीया मानी जाती है।

१६३८. वशं गतः ४।४।८६॥

वश्यः परेच्छानुसारी।

वशं गतः। वशं द्वितीयान्तं, गतः इत्यर्थबोधकं प्रथमान्तं पदम्। **तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्** से **तद्** की अनुवृत्ति आती है। **यत्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

गतः=प्राप्त हुआ- अर्थ में द्वितीयान्त प्रातिपदिक वश-शब्द से औत्सर्गिक यत् प्रत्यय होता है।

वश्यः परेच्छानुसारी। दूसरे की इच्छानुसार चलने वाला, वश में रहने वाला, परवश। **वशं गतः** विग्रह करके **वश+अम्** में **वशं गतः** सूत्र के द्वारा यत्-प्रत्यय होने पर भसंज्ञक अकार का लोप होकर **वश्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वश्यः** सिद्ध हो जाता है। ध्यान रहे कि **वश कान्तौ** धातु से अप्-प्रत्यय होकर **वश** शब्द निष्पन्न हुआ है।

यहाँ पर एक ही सूत्र से **गतः** अर्थ की समाप्ति है। अब अगले सूत्र से **अस्मिन्**=सप्तम्यर्थ में औत्सर्गिक यत्-प्रत्यय का विधान किया जा रहा है। प्राग्घितीयों में यह पाँचवाँ अर्थक्रम है।

१६३९. पदमस्मिन् दृश्यम् ४।४।८७॥

पद्यः कर्दमः। नातिशुष्क इत्यर्थः।

पदमस्मिन् दृश्यम्। पदं प्रथमान्तम्, अस्मिन् सप्तम्यन्तं, दृश्यं प्रथमान्तम्। **यत्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

दृश्य-समानाधिकरण प्रथमा-समर्थ पद-प्रातिपदिक से सप्तम्यर्थ में औत्सर्गिक यत् प्रत्यय होता है।

प्रत्ययार्थ सप्तम्यर्थ-जन्य **अस्मिन्** अभीष्ट है। सूत्र में **पदम्** शब्द प्रथमाविभक्ति में निर्दिष्ट है। अतः उसी के अनुसार प्रथमा ही समर्थ-विभक्ति मानी जाती है। अथवा

तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम् सूत्र से अनुवृत्त **तत्** पद को प्रथमान्ततया विपरिणाम करके भी कार्यनिर्वाह किया जा सकता है। जो भी हो, समर्थ-विभक्ति प्रथमा ही है।

पद्यः कर्दमः। नातिशुष्क इत्यर्थः। कीचड़ को **पद्यः** कहते हैं, जो न तो ज्यादा सूखा हो और न ज्यादा गीला ही किन्तु जिसमें पैर रखने से उसका निशान बन जाता हो। **पदम् अस्मिन् दृश्यम्** विग्रह करके **पद+सु** में **पदमस्मिन् दृश्यम्** सूत्र के द्वारा यत्-प्रत्यय होने पर भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पद्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पद्यः** सिद्ध हो जाता है।

यहाँ पर एक ही सूत्र से **अस्मिन्** अर्थ की समाप्ति है। अब अगले सूत्र से **अस्य**=षष्ठ्यर्थ में- औत्सर्गिक यत्-प्रत्यय का विधान किया जा रहा है। प्राग्घितीयों में यह छठा अर्थक्रम है।

१६४०. मूलमस्याबर्हि ४।४।८८॥

आबर्हणमाबर्हं उत्पाटनम्, तदस्यास्तीत्याबर्हि।
मूलमाबर्हि येषां ते मूल्या मुद्गाः।

मूलमस्याबर्हि। मूलं प्रथमान्तम्, अस्य षष्ठ्यन्तम्, आबर्हि प्रथमान्तम्। **यत्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

आबर्हि-समानाधिकरण प्रथमा-समर्थ मूल-प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में औत्सर्गिक यत् प्रत्यय होता है।

आबर्हणमाबर्हं उत्पाटनम्, तदस्यास्तीत्याबर्हि। आबर्ह-शब्द का अर्थ है- उत्पाटन=उखाड़ना। जिसका उत्पाटन होता है, उसे **आबर्हिन्** कहते हैं। **आङ्**-उपसर्गपूर्वक **बृहू (बृह्)** धातु का उपसर्गवश उत्पाटन अर्थ बन जाता है। **आबर्हिन्** शब्द के नपुंसक एकवचन में **आबर्हि** बनता है। **जड़** को **मूल** कहा जाता है। जिसका जड़ सहित उत्पाटन होता हो, उसके विषय में प्रकृत सूत्र की प्रवृत्ति होती है।

प्रत्ययार्थ षष्ठ्यर्थ-जन्य **अस्य** अभीष्ट है। सूत्र में **मूलम्** शब्द प्रथमाविभक्ति में निर्दिष्ट है। अतः उसी के अनुसार प्रथमा ही समर्थ-विभक्ति मानी जाती है। अथवा **तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्** सूत्र से अनुवृत्त **तत्** पद को प्रथमान्ततया विपरिणाम करके भी कार्यनिर्वाह किया जा सकता है। जो भी हो, समर्थ-विभक्ति प्रथमा ही है।

मूलमाबर्हि येषां ते मूल्या मुद्गाः। मूंग (दाल-विशेष) के पौधों के दानों के पक जाने पर उन्हें जड़-समेत उखाड़ा जाता है। अतः वे मूंग **मूल्याः** कहे जाते हैं। मूल-सहित उत्पाटन हो जिनका, वह **मूल्याः** माना जाता है। **मूलम् आबर्हि एषाम्** विग्रह करके **मूल+सु** में **मूलमस्याबर्हि** सूत्र के द्वारा यत्-प्रत्यय होने पर भसंज्ञक अकार का

लोप होकर **मूल्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर प्रथमा-बहुवचन में **मूल्याः** सिद्ध हो जाता है।

यहाँ पर एक ही सूत्र से **अस्य** अर्थ की समाप्ति है। अब अगले सूत्र के द्वारा संज्ञा के विषय में **यत्प्रत्ययान्त धेनुष्या** शब्द का निपातन किया जा रहा है ।

१६४१. सञ्ज्ञायां धेनुष्या ४।४।८९॥

धेनुशब्दस्य षुगागमो य-प्रत्ययश्च स्वार्थे निपात्यते, सञ्ज्ञायाम्।
'धेनुष्या बन्धके स्थिता'।

सञ्ज्ञायां धेनुष्या। संज्ञायां सप्तम्यन्तं, धेनुष्या प्रथमान्तम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

संज्ञा गम्यमान होने पर स्त्रीलिंग में य-प्रत्ययान्त धेनुष्या-शब्द का निपातन किया जाता है अर्थात् धेनु-शब्द से यत् प्रत्यय और प्रकृति को षुक् आगम किया जाता है, स्वार्थ में।

इस सूत्र में अर्थ-निर्देश न होने के कारण यह निपातन स्वार्थ में किया जाता है, किन्तु संज्ञा गम्यमान होना चाहिये। जिस प्रत्यय के विधान में अर्थनिर्देश नहीं होता, उसे स्वार्थिक प्रत्यय कहते हैं- **अनिर्दिष्टार्थाः प्रत्ययाः स्वार्थे भवन्ति।**

षुक् में ककार इत्संज्ञक और उकार उच्चारणार्थक है, केवल **ष्** बचता है। इसके कित् होने के कारण **आद्यन्तौ टकितौ** के नियम से प्रकृति का अन्त्यावयव होकर रहता है। यद्यपि यत्-प्रत्यय करने पर भी रूपसाम्य ही रहता है तथापि **तित्स्वरितम्** से प्राप्त स्वरित-स्वर का बाधन करने के लिये अतित् य-प्रत्यय का निपातन किया गया है।

'धेनुष्या बन्धके स्थिता'। दूध आदि के द्वारा ऋण चुकाने के लिये जो धेनु उत्तमर्ण=साहूकार के अधीन की जाती है, उसे **धेनुष्या** कहा गया है। **धेनु+सु** में **सञ्ज्ञायां धेनुष्या** सूत्र के द्वारा य-प्रत्यय और प्रकृति को षुक् आगम करके **धेनुष्य** शब्द बन जाता है। स्त्रीत्वविवक्षा में टाप् करके स्वादिकार्य करने पर **धेनुष्या** सिद्ध हो जाता है।

अब **संयुक्ते**=संयुक्त होने पर- अर्थ में ण्य-प्रत्यय का विधान किया जा रहा है। प्राग्घितीयों में यह सातवाँ अर्थक्रम है। **गृहपतिना** इस तृतीयान्त शब्द से तृतीया समर्थ-विभक्ति मानी जाती है।

१६४२. गृहपतिना संयुक्ते ञ्यः ४।४।९०॥

गृहपतिर्यजमानः, तेन संयुक्तो गार्हपत्योऽग्निः।

गृहपतिना संयुक्ते ञ्यः। गृहपतिना सप्तम्यन्तं, संयुक्ते सप्तम्यन्तं, ञ्यः प्रथमान्तम्। **सञ्ज्ञायां धेनुष्या** से **संज्ञायाम्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

संज्ञा गम्यमान होने पर संयुक्त होना अर्थ में तृतीया-समर्थ गृहपति-शब्द से ञ्य-प्रत्यय होता है।

ञ्य में ञकार इत्संज्ञक है, **य** बचता है। ञित्करण आदिवृद्धि और स्वरार्थ है।

गृहपतिर्यजमानः, तेन संयुक्तो गार्हपत्योऽग्निः। यजमान को गृहपति कहते हैं और उससे सम्बद्ध अग्नि को **गार्हपत्य** कहा जाता है। **गृहपतिना संयुक्तः** विग्रह करके **गृहपति+टा से गृहपतिना संयुक्ते ञ्यः** सूत्र के द्वारा ञ्य-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, ऋकार की वृद्धि, रपर और भसंज्ञक के अन्त्यवर्ण इकार का लोप होकर **गार्हपत्य** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **गार्हपत्यः** सिद्ध हो जाता है।

विशेषः- गृहपति शब्द यजमान का पर्यायवाची है। अतः **गृहपति** से सम्बद्ध अग्नि की आख्या **गार्हपत्य** की गयी है। यद्यपि तीनों श्रौताग्नियाँ- **गार्हपत्याग्नि, दक्षिणाग्नि** और **आहवनीयाग्नि** ये यजमान से ही सम्बद्ध हैं, तथापि संज्ञा-विशेष होने के कारण **गार्हपत्य** अग्नि को ही प्रधानता दी जाती है। दक्षिणाग्नि का विशिष्ट नाम **आनाय्य** है, क्योंकि उसे गार्हपत्याग्नि में से लाते हैं और कार्यसमाप्ति होने के बाद उसकी रक्षा या आधान नहीं किया जाता। अत एव पाणिनि जी ने भी **आनाय्योऽनित्ये** (३.२. १२७) सूत्र से अनित्य मानकर **आनाय्य** शब्द का निपातन किया है और भाष्यकार ने **आनाय्यो दक्षिणाग्निरिति वक्तव्यम्** के उसकी व्याख्या की है। किन्तु अरणि-मन्थन से उत्पन्न अग्नि **आहिताग्नि** को यजमान गार्हपत्य नामक वेदी में गार्हपत्याग्नि के रूप में सुरक्षित रखता है। अन्य दोनों अग्नि काल-विशेष के लिये उपयोगी हैं।

१६४३. नौवयोधर्मविषमूलमूलसीतातुलाभ्यस्तार्यतुल्यप्राप्यवध्या-नाम्यसमसमितसम्मितेषु ४।४।९१॥

नावा तार्यं नाव्यम्। वयसा तुल्यो वयस्यः। धर्मेण प्राप्यं धर्म्यम्। विषेण वध्यो विष्यः। मूलेनानाम्यं मूल्यम्। मूलेन समो मूल्यः। सीतया समितं सीत्यं क्षेत्रम्। तुलया सम्मितं तुल्यम्।

नौ-वयो-धर्म-विष-मूल-मूल०। नौश्च वयश्च धर्मश्च विषञ्च मूलञ्च मूलञ्च सीता च तुला च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो नौवयोधर्मविषमूलमूलसीतातुलास्ताभ्यः। तार्यञ्च तुल्यञ्च प्राप्यञ्च वध्यञ्च आनाम्यञ्च समश्च समितञ्च सम्मितञ्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वस्तार्य-तुल्य-प्राप्यवध्याऽऽनाम्य-सम-समित-सम्मितानि तेषु। नौ-वयो-धर्म-विष-मूल-मूल-सीता-तुलाभ्यः पञ्चम्यन्तं, तार्य-तुल्य-प्राप्य- वध्याऽऽनाम्य-सम-समित-सम्मितेषु सप्तम्यन्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **यत्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है। प्रकृति और अर्थों में समसंख्या होने के कारण **यथासङ्ख्यमनुदेशः समानाम्** की उपस्थिति होती है।

नौ, वयस्, धर्म, विष, मूल, मूल, सीता और तुला शब्दों से क्रमशः तारने योग्य, तुल्य, प्राप्य, वध्य, प्राप्त होने वाला लाभ, सम, एक समान करना और तौलना अर्थ में यत् प्रत्यय होता है।

यद्यपि सूत्र में प्रत्ययार्थ-विभक्ति का सूचक कोई पद और न विशेष-परिस्थितिवश और न तो किसी पद की अनुवृत्ति ही अपेक्षित है। उसका कारण यह है कि **तार्य** आदि प्रत्ययार्थों में **नौ** आदि प्रातिपदिकों का करणादि अर्थ-विशेषों के द्वारा तृतीया विभक्ति से सम्बन्ध हो सकता है, अन्य विभक्तियों से नहीं। अतः नौ आदि शब्द तृतीयासमर्थ ही लेने चाहिये।

नाव्यम्। नौका के द्वारा पार ले जाने योग्य। **नावा तार्यम्** लौकिक विग्रह और **नौ टा** अलौकिक विग्रह है। **नौ-वयो-धर्म-विष-मूल-मूल-सीता-तुलाभ्यस्तार्य-तुल्य-प्राप्य-वध्याऽऽनाम्य-सम-समित-सम्मितेषु** से तार्य अर्थ में यत् प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **नौ+य** बना। **वान्तो यि प्रत्यये** से आव् आदेश होकर **नाव्य** बना और विभक्तिकार्य करके **नाव्यम्** सिद्ध हुआ।

वयस्यः। आयु से समान, मित्र आदि। **वयसा तुल्यम्** लौकिक विग्रह और **वयस् टा** अलौकिक विग्रह है। **नौ-वयो-धर्म-विष-मूल-मूल-सीता-तुलाभ्यस्तार्य-तुल्य-प्राप्य-वध्याऽऽनाम्य-सम-समित-सम्मितेषु** से तुल्य अर्थ में यत्, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **वयस्+य=वयस्य** बना। विभक्ति कार्य करके **वयस्यः** सिद्ध हुआ।

धर्म्यम्। धर्म के द्वारा प्राप्त करने योग्य स्वर्ग, सुख, धन आदि। **धर्मेण प्राप्यम्** लौकिक विग्रह और **धर्म टा** अलौकिक विग्रह है। **नौ-वयो-धर्म-विष-मूल-मूल-सीता-तुलाभ्यस्तार्य-तुल्य-प्राप्य-वध्याऽऽनाम्य-सम-समित-सम्मितेषु** से प्राप्य अर्थ में यत् प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप करके **धर्म्+य=धर्म्य** बना और विभक्ति कार्य करके **धर्म्यः** सिद्ध हुआ।

विष्यः। विष के द्वारा वध करने योग्य शत्रु आदि। **विषेण वध्यः** लौकिक विग्रह और **विष टा** अलौकिक विग्रह है। **नौ-वयो-धर्म-विष-मूल-मूल-सीता-तुलाभ्यस्तार्य-तुल्य-प्राप्य-वध्याऽऽनाम्य-सम-समित-सम्मितेषु** से वध्य अर्थ में यत् प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप करके **विष्+य=विष्य** बना और विभक्ति कार्य करके **विष्यः** सिद्ध हुआ।

मूल्यम्। मूल अर्थात् पूँजी के द्वारा प्राप्त होने वाला लाभ। **मूलेन आनाम्यम्** लौकिक विग्रह और **मूल+टा** अलौकिक विग्रह है। **नौ-वयो-धर्म-विष-मूल-मूल-सीता-तुलाभ्यस्तार्य-तुल्य-प्राप्य-वध्याऽऽनाम्य-सम-समित-सम्मितेषु** से आनाम्य अर्थ में यत् प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप करके **मूल्+य=मूल्य** बना और विभक्तिकार्य करके **मूल्यम्** सिद्ध हुआ।

मूल्यः। मूल के समान। **मूलेन समः** विग्रह करके **मूल+टा** में **नौवयोधर्मविषमूलमूलसीतातुलाभ्यस्तार्यतुल्यप्राप्यवध्याऽऽनाम्यसमसमितसम्मितेषु** से सम अर्थ में यत् प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप करके **मूल्+य=मूल्य** बना और विभक्तिकार्य करके **मूल्यः** सिद्ध हो जाता है।

सीतया समितं सीत्यम्। हल से एक समान किया हुआ, खेत। **सीतया समितम्** विग्रह करके **सीता+टा** में **नौ-वयो-धर्म-विष-मूल-मूल-सीता-तुलाभ्यस्तार्य-तुल्य-प्राप्य-वध्याऽऽनाम्य-सम-समित-सम्मितेषु** से समित अर्थ में यत् प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक आकार का लोप करके **सीत्य** और विभक्तिकार्य करके **सीत्यम्** सिद्ध हो जाता है।

तुलया सम्मितं तुल्यम्। तराजू से तोला गया। **तुलया सम्मितम्** विग्रह करके **तुला+टा** में **नौ-वयो-धर्म-विष-मूल-मूल-सीता-तुलाभ्यस्तार्य-तुल्य-प्राप्य-वध्याऽऽनाम्य-सम-समित-सम्मितेषु** से समित अर्थ में यत् प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक आकार का लोप करके **तुल्य** और विभक्तिकार्य करके **तुल्यम्** सिद्ध हो जाता है।

अब प्राग्घितीयों में आठवें अर्थक्रम **अनपेत**=अनुकूल, सम्बद्ध अर्थ में एक सूत्र से औत्सर्गिक यत् प्रत्यय का विधान किया जा रहा है।

१६४४. धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते ४।४।९२॥

धर्मादनपेतं धर्म्यम्। पथ्यम्। अर्थ्यम्। न्याय्यम्।

धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते। धर्मश्च पन्थाश्च अर्थश्च न्यायश्च तेषां समाहारद्वन्द्वो धर्मपथ्यर्थन्यायं, तस्माद् धर्मपथ्यर्थन्यायात्। न अपेतम् अनपेतं, तस्मिन् अनपेते, नञ्तत्पुरुषः। धर्मपथ्यर्थन्यायात् पञ्चम्यन्तम्, अनपेते सप्तम्यन्तम्। **यत्, तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार है।

धर्म, पथिन्, अर्थ और न्याय इन पञ्चमी-समर्थ प्रातिपदिकों से अनपेत=अनुकूल, सम्बद्ध अर्थ में औत्सर्गिक यत् प्रत्यय होता है।

सामर्थ्यवशात् पञ्चम्यन्त से ही यह प्रत्यय होगा।

धर्मादनपेतं धर्म्यम्। धर्म के अनुकूल। **धर्माद् अनपेतम्** विग्रह करके **धर्म+ङसि** से **धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते** सूत्र के द्वारा औत्सर्गिक यत् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **धर्म्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **धर्म्यम्** सिद्ध हो जाता है।

पथ्यम्। लाभदायक भोजन, मार्ग के अनुकूल। **पथः अनपेतम्** विग्रह करके **पथिन्+ङसि** से **धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते** सूत्र के द्वारा औत्सर्गिक यत् प्रत्यय, अनुबन्धलोप,

प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और **नस्तद्धिते** सूत्र के द्वारा टिसंज्ञक भाग **इन्** का लोप होकर **पथ्य** शब्द बनता है तथा विभक्तिकार्य होकर **पथ्यम्** सिद्ध हो जाता है।

अर्थ्यम्। उपयुक्त, अर्थ के अनुकूल। **अर्थाद् अनपेतम्** विग्रह करके **अर्थ+ङसि** से **धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते** सूत्र के द्वारा औत्सर्गिक यत् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **अर्थ्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **अर्थ्यम्** सिद्ध हो जाता है।

न्याय्यम्। समुचित, यथोचित, जो न्याय के अनुकूल हो। **न्यायाद् अनपेतम्** विग्रह करके **न्याय+ङसि** से **धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते** सूत्र के द्वारा औत्सर्गिक यत् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **न्याय्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **न्याय्यम्** सिद्ध हो जाता है।

अब प्राग्घितीयों में नौवें अर्थक्रम **निर्मित**=बनाया हुआ- अर्थ में दो सूत्रों से प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है।

१६४५. छन्दसो निर्मिते ४।४।९३॥

छन्दसा निर्मितं छन्दस्यम्। इच्छया कृतमित्यर्थः।

छन्दसो निर्मिते। छन्दसः पञ्चम्यन्तं, निर्मिते सप्तम्यन्तम्। **यत्, तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार है।

इच्छा-वाची छन्दस्-शब्द से निर्मिते=बनाया गया- अर्थ में औत्सर्गिक यत् प्रत्यय होता है।

सामर्थ्यवशात् तृतीयान्त से ही यह प्रत्यय होगा, क्योंकि क्त-प्रत्ययान्त **निर्मित** शब्द के योग में तृतीया-विभक्ति ही होती है। यहाँ पर **छन्दस्** शब्द का अर्थ **इच्छा** है, न कि मात्राओं एवं वर्णों पर आधारित **छन्दः** और न ही वेद है।

छन्दसा निर्मितं छन्दस्यम्। इच्छया कृतमित्यर्थः। अपनी इच्छा से बनाया गया। **छन्दसा निर्मितम्** विग्रह करके **छन्दस्+टा** से **छन्दसो निर्मिते** सूत्र के द्वारा औत्सर्गिक यत् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **छन्दस्य** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य से **छन्दस्यम्** सिद्ध हो जाता है।

१६४६. उरसोऽण् च ४।४।९४॥

चाद्यत्। उरसा निर्मितः पुत्र औरसः, उरस्यः।

उरसोऽण् च। उरसः पञ्चम्यन्तम्, अण् प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **छन्दसो निर्मिते** से **निर्मिते** की अनुवृत्ति आती है। **यत्, तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार है।

उरस्-शब्द से निर्मिते=बनाया गया- अर्थ में अण् प्रत्यय भी होता है।

चाद्यत्। सूत्र में पठित **च**-शब्द से औत्सर्गिक यत् प्रत्यय भी होता है। इस तरह उरस्-शब्द से अण् और यत् ये दोनों प्रत्यय होते हैं। अर्थ की अनुकूलता के अनुसार यहाँ पर भी तृतीया ही समर्थ-विभक्ति है।

उरसा निर्मितः पुत्र औरसः, उरस्यः। विधिपूर्वक पाणिगृहीत भार्या से स्वयं इच्छापूर्वक उत्पन्न किया हुआ पुत्र। **उरसा निर्मितः** विग्रह करके **उरस्+टा** से **उरसोऽण् च** सूत्र के द्वारा अण्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, णित् परे होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** सूत्र के द्वारा आदिवृद्धि होकर **औरस** शब्द बनता है। यत्-प्रत्यय होने के पक्ष में **उरस्य** शब्द बना हुआ है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **औरसः** और **उरस्यः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

विशेषः- विधिपूर्वक विवाहित स्वजातीय पत्नी से वंशपरम्परा को अविच्छिन्न रखने के लिये सन्तान की इच्छा करते हुये उत्पादित पुत्र को **औरसः** और **उरस्यः** कहा गया है। अमरकोशकार भी कहते हैं- **स्वजाते त्वौरसोरस्यौ।** मनु जी भी कहते हैं कि **स्वक्षेत्रे संस्कृतायां तु स्वयमुत्पादयेद्यदि। तमौरसं विजानीयात् पुत्रं प्राथमकल्पिकम्॥** श्रुतियों का वचन है- **अङ्गादङ्गात् सम्भवति हृदयादधिजायसे** इत्यादि। अतः पाणिगृहीत भार्या से उत्पन्न प्रायः प्रथमपुत्र को **औरस** कहा गया है।

अब प्राग्घितीयों में दशवें अर्थक्रम **प्रियः** अर्थ में एक सूत्र से औत्सर्गिक यत्-प्रत्यय का विधान किया जा रहा है।

१६४७. हृदयस्य प्रियः ४।४।९५॥

हृद्यो देशः। 'हृदयस्य हृल्लेख-' (सू.९८८) इति हृदादेशः।

हृदयस्य प्रियः। हृदयस्य षष्ठ्यन्तं, प्रियः प्रथमान्तम्। **यत्, तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार है।

प्रिय अर्थ में षष्ठी-समर्थ हृदय-शब्द से औत्सर्गिक यत्-प्रत्यय होता है।

उद्देश्यवाची शब्द **हृदय** और यत्-प्रत्यय विधेय है। समर्थविभक्ति षष्ठी है, क्योंकि **हृदयस्य** में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

'हृदयस्य हृल्लेख-' इति हृदादेशः। हृदय-शब्द से यत्-प्रत्यय होने के बाद **हृदयस्य हृल्लेखयदण्लासेषु (६.३.५०)** सूत्र से **हृदय** के स्थान पर **हृद्** आदेश होता है।

हृद्यो देशः। हृदय को प्रिय देश। **हृदयस्य प्रियः** विग्रह करके **हृदय+ङस्** से **हृदयस्य प्रियः** सूत्र के द्वारा औत्सर्गिक यत्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **हृदय+य** बना है। **हृदयस्य हृल्लेखयदण्लासेषु (६.३.५०)** सूत्र से **हृदय** के स्थान पर **हृद्** आदेश होकर **हृद्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात्

स्वादिकार्य होकर **हृद्यः** सिद्ध हो जाता है। ध्यान रहे कि मूलकार ने विशेष्य पद **देशः** दिया है किन्तु यह सभी विशेष्यों के साथ सम्बद्ध हो जाता है। जैसे कि **हृद्यः पुत्रः, हृद्या पुत्री, हृद्यं पुस्तकम्** इत्यादि।

अब प्राग्घितीयों में ग्यारहवें अर्थक्रम **बन्धन** अर्थ में एक सूत्र से औत्सर्गिक यत्-प्रत्यय का विधान किया जा रहा है।

१६४८. बन्धने चर्षौ ४।४।९६॥

हृदयशब्दात् षष्ठ्यन्ताद् बन्धने यत् स्याद्वेदेऽभिधेये।
हृदयस्य बन्धनं हृद्यो वशीकरणमन्त्रः।

बन्धने चर्षौ। बन्धने सप्तम्यन्तं, चाव्ययम्, ऋषि-शब्दस्य सप्तम्यन्तं रूपम् ऋषौ। **हृदयस्य प्रियः** से **हृदयस्य** की अनुवृत्ति आती है। **यत्, तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार है।

बन्धन अर्थ में षष्ठी-समर्थ हृदय-शब्द से औत्सर्गिक यत्-प्रत्यय होता है, वेद=मन्त्र अभिधेय होने पर।

यहाँ पर **ऋषि**-शब्द वेद (मन्त्र) का वाचक है। हृदय के बन्धन से तात्पर्य है कि मन्त्रों के प्रभाव से हृदय का सत्कर्म की ओर प्रवृत्त होना। अतः वशीकरण मन्त्र के रूप में **हृद्यः** उदाहरण दिया जा रहा है। समर्थविभक्ति षष्ठी है, क्योंकि अनुवृत्त **हृदयस्य** में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

हृदयस्य बन्धनं हृद्यो वशीकरणमन्त्रः। हृदय को वश में करने वाला वैदिक मन्त्र। **हृदयस्य बन्धनं मन्त्रः** विग्रह करके **हृदय+ङस्** से **बन्धने चर्षौ** सूत्र के द्वारा औत्सर्गिक यत्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **हृदय+य** बना है। **हृदयस्य हृल्लेखयदण्लासेषु** (६.३.५०) सूत्र से **हृदय** के स्थान पर **हृद्** आदेश होकर **हृद्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **हृद्यः** सिद्ध हो जाता है।

अब प्राग्घितीयों में बारहवें अर्थक्रम **करण, जल्प, कर्ष** अर्थों में एक सूत्र से औत्सर्गिक यत्-प्रत्यय का विधान किया जा रहा है।

१६४९. मतजनहलात् करणजल्पकर्षेषु ४।४।९७॥

मतं ज्ञानम्, तस्य करणं भावः साधनं वा मत्यम्।
जनस्य जल्पो जन्यः। हलस्य कर्षो हल्यः।

मतजनहलात् करणजल्पकर्षेषु। मतं च जनश्च हलश्च तेषां समाहारद्वन्द्वो मतजनहलं, तस्मान्मतजनहलात्। करणं च जल्पश्च कर्षश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः करणजल्पकर्षास्तेषु करणजल्पकर्षेषु। मतजनहलात् पञ्चम्यन्तं, करणजल्पकर्षेषु सप्तम्यन्तम्।

यत्, तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा आदि का अधिकार है। प्रकृतियों और अर्थों में समानसंख्या होने के कारण **यथासङ्ख्यमनुदेशः समानाम्** की उपस्थिति रहती है।

करण, जल्प और कर्ष अर्थों में क्रमशः षष्ठी-समर्थ मत, जन और हल शब्दों से औत्सर्गिक यत्-प्रत्यय होता है।

करण-शब्द का अर्थ **साधन** है, जल्प-शब्द का अर्थ **जनवाद** है और **कर्ष**-शब्द का अर्थ **जुता हुआ**।

मतं ज्ञानम्, तस्य करणं भावः साधनं वा मत्यम्। मत-शब्द का अर्थ ज्ञान है और ज्ञान के करण, भाव और साधन को **मत्यम्** कहते हैं। ज्ञान का साधन। **मतस्य करणम्** विग्रह करके **मत+ङस्** से **मतजनहलात् करणजल्पकर्षेषु** सूत्र के द्वारा औत्सर्गिक यत्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञकान्त्य अकार का लोप करके **मत्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **मत्यः** सिद्ध हो जाता है।

जनस्य जल्पो जन्यः। लोगों का कहना। **जनस्य जल्पः** विग्रह करके **जन+ङस्** से **मतजनहलात् करणजल्पकर्षेषु** सूत्र के द्वारा औत्सर्गिक यत्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञकान्त्य अकार का लोप करके **जन्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **जन्यः** सिद्ध हो जाता है।

हलस्य कर्षो हल्यः। हल का जुता हुआ। **हलस्य कर्षः** विग्रह करके **हल+ङस्** से **मतजनहलात् करणजल्पकर्षेषु** सूत्र के द्वारा औत्सर्गिक यत्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञकान्त्य अकार का लोप करके **हल्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **हल्यः** सिद्ध हो जाता है।

अब प्राग्घितीयों में तेरहवें अर्थक्रम **साधु** अर्थ में आठ सूत्रों से विविध प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है।

१६५०. तत्र साधुः ४।४।९८॥

अग्रे साधुः अग्र्यः। सामसु साधुः सामन्यः।
'ये चाभावकर्मणोः' (सू.११५४) इति प्रकृतिभावः। कर्मण्यः। शरण्यः।

तत्र साधुः। तत्र सप्तम्यन्तस्यानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, साधुः प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **यत्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त प्रातिपदिक से साधु, कुशल, प्रवीण या योग्य जैसे अर्थ में यत् प्रत्यय होता है।

तत्र पद सप्तमी-समर्थ-विभक्ति का सूचक है और **साधुः** अर्थबोधक पद है।

अग्र्यः। आगे रहने में प्रवीण या योग्य। **अग्रे साधुः** लौकिक विग्रह और **अग्र ङि** अलौकिक विग्रह है। **तत्र साधुः** से यत् प्रत्यय, तकार का लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके भसंज्ञक अकार का लोप करने पर **अग्र्+य=अग्र्य** बना। स्वादिकार्य करके **अग्र्यः** सिद्ध हुआ।

सामसु साधुः सामन्यः। **'ये चाभावकर्मणोः' इति प्रकृतिभावः**। सामगान में निपुण। **सामनि साधुः** विग्रह करके **सामन्+ङि** में **तत्र साधुः** से यत् प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **नस्तद्धिते** सूत्र से टिलोप प्राप्त होने पर **ये चाभावकर्मणोः** (६.४.१६८) से प्रकृतिभाव होने से टिलोप नहीं होता। वर्णसम्मेलन होकर **सामन्य** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सामन्यः** सिद्ध हो जाता है।

कर्मण्यः। कर्म करने में प्रवीण या योग्य। **कर्मणि साधुः** लौकिक विग्रह और **कर्मन् ङि** अलौकिक विग्रह है। **तत्र साधुः** से यत् प्रत्यय, तकार का लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **कर्मन्+य** बना। **नस्तद्धिते** से टि का लोप प्राप्त था किन्तु **ये चाभावकर्मणोः** से प्रकृतिभाव होकर टिलोप रूक गया। नकार को णत्व करने पर **कर्मण्+य=कर्मण्य** बना। स्वादिकार्य करके **कर्मण्यः** सिद्ध हो जाता है।

शरण्यः। रक्षा करने , शरण देने में प्रवीण या योग्य। **शरणे साधुः** लौकिक विग्रह और **शरण ङि** अलौकिक विग्रह है। **तत्र साधुः** से यत् प्रत्यय, तकार का लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके भसंज्ञक अकार का लोप करने पर **शरण्+य=शरण्य** बना। स्वादिकार्य करके **शरण्यः** सिद्ध हो जाता है।

१६५१. प्रतिजनादिभ्यः खञ् ४।४।९९॥

प्रतिजनं साधुः प्रातिजनीनः। सांयुगीनः। सार्वजनीनः। वैश्वजनीनः।

प्रतिजनादिभ्यः खञ्। प्रतिजन आदिर्येषां ते प्रतिजनादयस्तेभ्यः प्रतिजनादिभ्यः, बहुव्रीहिः। प्रतिजनादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, खञ् प्रथमान्तम्। **तत्र साधुः** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

सप्तमी-समर्थ प्रतिजन आदि गणपठित प्रातिपदिकों से साधु, कुशल, प्रवीण या योग्य जैसे अर्थों में यत् का अपवाद खञ् प्रत्यय होता है।

खञ् में ञकार की इत्संज्ञा होती है और खकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र से **ईन्** आदेश होकर प्रत्यय का स्वरूप **ईन** बन जाता है। ञित्करण आदिवृद्धि और स्वर के लिये है।

प्रतिजनं साधुः प्रातिजनीनः। प्रतिव्यक्ति के लिये सज्जन। **प्रतिजनं साधुः**

विग्रह करके **प्रतिजन** शब्द से **प्रतिजनादिभ्यः खञ्** सूत्र के द्वारा खञ्प्रत्यय, अनुबन्धलोप, खकार के स्थान पर ईन् आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करने पर **प्रातिजनीन** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **प्रातिजनीनः** सिद्ध हो जाता है। स्मरण रहे कि **जनं जनं प्रति** विग्रह में अव्ययीभाव समास होकर **प्रतिजनम्** शब्द बनता है। यद्यपि **तृतीयासप्तम्योर्बहुलम्** सूत्र के द्वारा विकल्प से अलुक् होने के कारण **प्रतिजने** भी बन सकता है किन्तु मूलकार ने **प्रतिजनम्** शब्द के साथ ही विग्रह दिखाया है।

सांयुगीनः। युद्ध में कुशल। **संयुगे साधुः** विग्रह करके **संयुग+ङि** से **प्रतिजनादिभ्यः खञ्** सूत्र के द्वारा खञ्प्रत्यय, ईनादेश, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करने पर **सांयुगीन** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सांयुगीनः** सिद्ध हो जाता है।

सार्वजनीनः। सभी लोगों में उपयोगी। **सर्वजनेषु साधुः** विग्रह करके **सर्वजन+सुप्** से **प्रतिजनादिभ्यः खञ्** सूत्र के द्वारा खञ्प्रत्यय, ईनादेश, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करने पर **सार्वजनीन** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सार्वजनीनः** सिद्ध हो जाता है।

वैश्वजनीनः। समस्त संसार के लिये श्रेयस्कर। **विश्वजनेषु साधुः** विग्रह करके **विश्वजन+सुप्** से **प्रतिजनादिभ्यः खञ्** सूत्र के द्वारा खञ्प्रत्यय, ईनादेश, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करने पर **वैश्वजनीन** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वैश्वजनीनः** सिद्ध हो जाता है।

प्रतिजनादिगणः- प्रतिजन, इदंयुग, संयुग, समयुग, परयुग, परकुल, परस्यकुल, अमुष्यकुल, सर्वजन, विश्वजन, महाजन, पञ्चजन।

१६५२. भक्ताण्णः ४।४।१००॥

भक्ते साधवो भाक्ताः शालयः।

भक्ताण्णः। भक्तात् पञ्चम्यन्तं, णः प्रथमान्तम्। **तत्र साधुः** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

सप्तमी-समर्थ ओदन-वाची भक्त-शब्द से साधु अर्थ में यत् का अपवाद ण-प्रत्यय होता है।

णकार इत्संज्ञक है, अ बचता है। णित्करण आदिवृद्धि के लिये है।

भक्ते साधवो भाक्ताः शालयः। भात के लिये उपयुक्त धान। **भक्ते साधवः** विग्रह करके **भक्त+ङि** से **भक्ताण्णः** सूत्र के द्वारा ण-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करने पर **भाक्त** शब्द बना है।

एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर प्रथमाबहुवचन में **भाक्ताः** सिद्ध हो जाता है।

१६५३. परिषदो ण्यः ४।४।१०१॥

पारिषद्यः। परिषद इति योगविभागाण्णोऽपि। पारिषदः।

परिषदो ण्यः। परिषदः पञ्चम्यन्तं, ण्यः प्रथमान्तम्। **तत्र साधुः** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

सप्तमी-समर्थ परिषद् इस प्रातिपदिक से साधु अर्थ में यत् का अपवाद ण्य-प्रत्यय होता है।

णकार इत्संज्ञक है, **य** बचता है। णित्करण आदिवृद्धि के लिये है।

पारिषद्यः। जो व्यवस्थापिका सभा में कुशल हो। **परिषदि साधुः** विग्रह करके **परिषद्+ङि** से **पारिषदो ण्यः** सूत्र के द्वारा ण्य-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और आदिवृद्धि करने पर **पारिषद्य** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पारिषद्यः** सिद्ध हो जाता है।

परिषद इति योगविभागाण्णोऽपि। पारिषदः। प्रकृतसूत्र का योगविभाग किया जाता है। एकभाग **परिषदः** और दूसरा भाग **ण्यः**। प्रथमभाग में पूर्वसूत्र से **णः** की अनुवृत्ति की जाती है। अतः **परिषद्** शब्द से ण-प्रत्यय हो जाता है और आदिवृद्धि होकर **पारिषदः** भी बन जाता है।

१६५४. कथादिभ्यष्ठक् ४।४।१०२॥

कथायां साधुः काथिकः।

कथादिभ्यष्ठक्। कथा आदिर्येषां ते कथादयस्तेभ्यः कथादिभ्यः, बहुव्रीहिः। कथादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, ठक् प्रथमान्तम्। **तत्र साधुः** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

सप्तमी-समर्थ कथादि-गणपठित प्रातिपदिकों से साधु अर्थ में यत् का अपवाद ठक् प्रत्यय होता है।

कथायां साधुः काथिकः। पारिषद्यः। कथा बाँचने में निपुण। **कथायां साधुः** विग्रह करके **कथा+ङि** से **कथादिभ्यष्ठक्** सूत्र के द्वारा ठक्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञकान्त्य आकार का लोप करने पर **काथिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **काथिकः** सिद्ध हो जाता है।

कथादिगणः- कथा, विकथा, विश्वकथा, संकथा, वितण्डा, कुष्ठविद्, (कुष्ठवित्), जनवाद, जनेवाद, जनोवाद, वृत्ति, संग्रह, गुण, गण, आयुर्वेद।

१६५५. गुडादिभ्यष्ठञ् ४।४।१०३॥

गुडे साधुर्गौडिक इक्षुः। साक्तुको यवः।

गुडादिभ्यष्ठञ्। गुड आदिर्येषां ते गुडादयस्तेभ्यो गुडादिभ्यः, बहुव्रीहिः। गुडादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, ठञ् प्रथमान्तम्। **तत्र साधुः** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

सप्तमी-समर्थ गुडादि-गणपठित प्रातिपदिकों से साधु अर्थ में यत् का अपवाद ठञ् प्रत्यय होता है।

गुडे साधुर्गौडिक इक्षुः। गुड़ बनाने के लिये उपयोगी अच्छे गन्ने, ईख। **गुडे साधुः** विग्रह करके **गुड+ङि** से **गुडादिभ्यष्ठञ्** सूत्र के द्वारा ठञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञकान्त्य अकार का लोप करने पर **गौडिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **गौडिकः** सिद्ध हो जाता है।

साक्तुको यवः। सत्तू के लिये उपयोगी अच्छे जौ। **सक्तौ साधुः** विग्रह करके **सक्तु+ङि** से **गुडादिभ्यष्ठञ्** सूत्र के द्वारा ठञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और **इसुसुक्तान्तात्कः** सूत्र से ठ के स्थान पर **क** आदेश होकर **साक्तुक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **साक्तुकः** सिद्ध हो जाता है।

गुडादिगणः- गुड, कुल्माष, सक्तु, अपूप, मांसौदन, इक्षु, वेणु, सङ्ग्राम, सङ्घात, सङ्क्राम, संवाह, प्रवास, निवास, उपवास।

१६५६. पथ्यतिथिवसतिस्वपतेर्ढञ् ४।४।१०४॥

पथि साधु पाथेयम्। आतिथेयम्।
वसनं वसतिः, तत्र साधुर्वासतेयी रात्रिः। स्वापतेयं धनम्।

पथ्यतिथिवसतिस्वपतेर्ढञ्। पन्थाश्च अतिथिश्च वसतिश्च स्वपतिश्च तेषां समाहारद्वन्द्वः पथ्यतिथिवसतिस्वपतिः, सौत्रं पुस्त्वम्। तस्मात् पथ्यतिथिवसतिस्वपतेः पञ्चम्यन्तं, ढञ् प्रथमान्तम्। **तत्र साधुः** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

सप्तमी-समर्थ पथिन्, अतिथि, वसति, स्वपति इन प्रातिपदिकों से साधु अर्थ में यत् का अपवाद ढञ् प्रत्यय होता है।

ढञ् में ञकार इत्संज्ञक है और ढकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र के द्वारा **एय्** आदेश होकर प्रत्यय का स्वरूप **ऐय** बन जाता है। ञित्करण आदिवृद्धि और स्वर के लिये है।

पथि साधु पाथेयम्। मार्ग में यात्रा के लिये उपयोगी खाद्यसामग्री। **पथि साधुः** विग्रह करके **पथिन्+ङि** से **पथ्यतिथिवसतिस्वपतेर्ढञ्** सूत्र के द्वारा ढञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, एयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और टिसंज्ञक **इन्** का **नस्तद्धिते** सूत्र से लोप होकर **पाथेय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पाथेयम्** सिद्ध हो जाता है।

आतिथेयम्। अतिथि के लिये समुचित सत्कार आदि। **अतिथौ साधुः** विग्रह करके **अतिथि+ङि** से **पथ्यतिथिवसतिस्वपतेर्ढञ्** सूत्र के द्वारा ढञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, एयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक इकार का लोप करके **आतिथेय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आतिथेयम्** सिद्ध हो जाता है।

वसनं वसतिः, तत्र साधुर्वासतेयी रात्रिः। निवास के लिये उपयुक्त रात्रि। **वसतौ साधुः** विग्रह करके **वसति+ङि** से **पथ्यतिथिवसतिस्वपतेर्ढञ्** सूत्र के द्वारा ढञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, एयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक इकार का लोप करके **वासतेय** शब्द बना है। स्त्रीत्वविवक्षा में **टिड्ढाणञ्०** सूत्र के द्वारा ङीप् होकर **वासतेयी** और स्वादिकार्य होकर **वासतेयी** सिद्ध हो जाता है। **वस** निवासे धातु से औणादिक **अति** प्रत्यय होकर **वसति** प्रातिपदिक तैयार होता है।

स्वापतेयं धनम्। स्वामित्व के लिये उपयोगी, धन। **स्वपतौ साधुः** विग्रह करके **स्वपति+ङि** से **पथ्यतिथिवसतिस्वपतेर्ढञ्** सूत्र के द्वारा ढञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, एयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक इकार का लोप करके **स्वापतेय** शब्द बना है। स्वादिकार्य होकर **स्वापतेयम्** सिद्ध हो जाता है। यहाँ **स्वस्य=धनस्य पतिः** विग्रह में षष्ठीतत्पुरुषसमास होकर **स्वपति** शब्द बना है।

१६५७. सभाया यः ४।४।१०५॥

सभ्यः।

सभाया यः। सभायाः पञ्चम्यन्तं, यः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तत्र साधुः** का अनुवर्तन और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त 'सभा' प्रातिपदिक से 'साधु' अर्थात् निपुण, कुशल, अच्छा आदि अर्थ में य प्रत्यय होता है।

सभ्यः। सभा में प्रवीण या योग्य। **सभायां साधुः** लौकिक विग्रह और **सभा ङि** अलौकिक विग्रह है। **सभाया यः** सूत्र से **य** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके भसंज्ञक आकार का लोप करने पर **सभ्+य=सभ्य** बना। स्वादिकार्य होकर **सभ्यः** सिद्ध हो जाता है। तित् न होने के कारण **तित्स्वरितम्** सूत्र से स्वरित-स्वर नहीं होगा। अतः यत् से पृथक् **य** प्रत्यय का विधान किया गया है।

यहाँ **साधुः** अर्थ की समाप्ति होकर अब प्राग्घितीयों में चौदहवें अर्थक्रम **वासी**=निवास करने वाला- अर्थ में यत्-प्रत्यय का विधान किया जा रहा है।

१६५८. समानतीर्थे वासी ४।४।१०७॥

'साधुः' इति निवृत्तम्।

वसतीति वासी। समाने तीर्थे गुरौ वसतीति सतीर्थ्यः।

समानतीर्थे वासी। समानतीर्थे सप्तम्यन्तं, वासी प्रथमान्तम्। **तत्र साधुः** से **तत्र** पद का अनुवर्तन और **यत्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त समानतीर्थ शब्द से वासी=रहने वाला- अर्थ में औत्सर्गिक यत् प्रत्यय होता है।

'साधुः' इति निवृत्तम्। पहले से चली आ रही **साधुः** पद की निवृत्ति हो गयी है, क्योंकि इस सूत्र में **वासी** अर्थ का ग्रहण किया गया है।

वसतीति वासी। निवास करने वाले को **वासी** कहते हैं। कोशग्रन्थों में तीर्थ-शब्द के अनेक अर्थ बताये गये हैं। जैसे कि मेदिनीकोश में-

तीर्थं शास्त्राध्वरक्षेत्रोपायनारीरजःसु च।

अवतारर्षिजुष्टाम्बुपात्रोपाध्यायमन्त्रिषु॥ अर्थात् शास्त्र, यज्ञ, क्षेत्र, उपाय, नारीरज, घाट, ऋषियों से सेवित जल, पात्र, गुरु इन अर्थों में **तीर्थ** शब्द का प्रयोग होता है।

समाने तीर्थे गुरौ वसतीति सतीर्थ्यः। समान ही गुरु (एक ही गुरु) के समीप में रहने वाला, सहपाठी। **समानतीर्थे वसति** विग्रह करके **समानतीर्थे वासी** सूत्र के द्वारा **यत्** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **समानतीर्थ+य** बना है। **तीर्थे ये** (६.३.८६) सूत्र के द्वारा **समान**-शब्द के स्थान पर **स** आदेश होकर **सतीर्थ+य** बना है। भसंज्ञक अकार का लोप करने पर **सतीर्थ्य** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सतीर्थ्यः** सिद्ध हो जाता है।

यहाँ **साधुः** अर्थ की समाप्ति होकर अब प्राग्घितीयों में पन्द्रहवें अर्थक्रम **शयितः**=शयन करने वाला- अर्थ में प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है।

१६५९. समानोदरे शयित ओ चोदात्तः ४।४।१०८॥

समाने उदरे शयितः स्थितः समानोदर्यो भ्राता।

समानोदरे शयित ओ चोदात्तः। समानं च तद् उदरं च समानोदरं, तस्मिन् समानोदरे। समानोदरे सप्तम्यन्तं, शयितः प्रथमान्तम्, ओ लुप्तप्रथमाकं पदं, चाव्ययम्, उदात्तः प्रथमान्तम्। **तत्र साधुः** से **तत्र** पद का अनुवर्तन और **यत्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

सप्तमी समर्थ समानोदर इस प्रातिपदिक से शयन किया हुआ अर्थ में यत् प्रत्यय होता है तथा समानोदर-शब्द का ओकार उदात्त स्वर वाला भी हो जाता है।

समाने उदरे शयितः स्थितः समानोदर्यो भ्राता। जो समान उदर में शयन किया हुआ हो, सगा भाई। **समानोदरे शयितः** विग्रह करके **समानोदरे शयित ओ चोदात्तः** सूत्र के द्वारा **यत्** प्रत्यय और ओकार को उदात्तस्वर, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **समानोदर+य** बना है। भसंज्ञक अकार का लोप करने पर **समानोदर्य** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **समानोदर्यः** सिद्ध हो जाता है।

विशेषः- सूत्र के द्वारा यत्-प्रत्यय करने पर **तित्स्वरितम्** (६.१.१७९) सूत्र से य के अकार को स्वरित हो जाता है। उसके बाद **अनुदात्तं पदमेकवर्जम्** (६.१.१५२) सूत्र के द्वारा यकाराकार को छोड़कर सारा पद अनुदात्त हो जाता है किन्तु उसको बाधकर केवल ओकार के उदात्त रहने का प्रकृतसूत्र से विधान किया गया है।

यह **समानोदर्य** शब्द वैकल्पिक है अर्थात् **विभाषोदरे** (६.३.८८) सूत्र के द्वारा **समान** शब्द के स्थान पर **स** आदेश न होने के पक्ष का यह रूप है। स-आदेश होने पर तो **सोदर्य** बनता है।

१६६०.सोदराद्यः ४।४।१०९॥

सोदर्यः, अर्थः प्राग्वत्।

इति तद्धितेषु चतुर्थस्य चतुर्थपादे प्राग्घितीयप्रकरणम्॥

सोदराद्यः। सोदरात् पञ्चम्यन्तं, यः प्रथमान्तम्। **समानोदरे शयित ओ चोदात्तः** से **शयितः** और **तत्र साधुः** से **तत्र** पद का अनुवर्तन आता है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

सप्तमी समर्थ सोदर इस प्रातिपदिक से शयन किया हुआ अर्थ में य-प्रत्यय होता है।

सोदर्यः, अर्थः प्राग्वत्। पूर्वसूत्र का ही विषय है। जब **समान**-शब्द के स्थान पर **विभाषोदरे** सूत्र से **स** आदेश होता है, तब **सोदर** शब्द बना हुआ है, उससे **सोदराद्यः**

सूत्र से **य** प्रत्यय होने पर भसंज्ञक अकार का लोप होकर **सोदर्य** और स्वादिकार्य होकर **सोदर्यः** सिद्ध हो जाता है। इसका अर्थ पूर्व के समान ही है अर्थात् जो समान उदर में शयन किया हुआ हो, सगा भाई ही अर्थ है।

इति तद्धितेषु चतुर्थस्य चतुर्थपादे प्राग्घितीयप्रकरणम्। इस तरह अष्टाध्यायी के अनुसार **तद्धिताः** सूत्र के अधिकार में विहित प्रत्ययों में चतुर्थाध्याय-चतुर्थपाद की समाप्ति है और प्राग्घितीय प्रत्ययों का एक भाग भी पूरा हो जाता है। यद्यपि चतुर्थपाद में और भी सूत्र हैं तथापि वे सब **भवे छन्दसि** सूत्र से छन्दोविषय में ही विहित होते हैं और दीक्षित जी ने वैदिक प्रकरण अलग ही रखा है, अतः वहीं पर उनका विवेचन किया गया है।

श्री भट्टोजिदीक्षित द्वारा विरचित वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी की
गोविन्दाचार्य कृत श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी टीका में
तद्धित-प्राग्घितीय-प्रकरण पूर्ण हुआ।

●

अथ छयद्विधिप्रकरणम्

अब हित-अर्थ में होने वाले **छ** और **यत्** प्रत्ययों का प्रकरण प्रारम्भ करते हैं। इस प्रकरण में **प्राक्क्रीताच्छः** सूत्र से **छः** का अधिकार चलता है और **तस्मै हितम्** आदि सूत्रों से छ और **उगवादिभ्यो यत्** से **यत्** प्रत्यय होने के कारण यह प्रकरण **छ** और **यत्** दोनों ही प्रत्ययों का प्रकरण है। अत एव इसे **छयतोरधिकार** कहते हैं और दीक्षित जी ने छयद्विधिप्रकरण नाम दिया है। इस प्रकरण में भी **तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार रहता है। यद्यपि **आद्युदात्तश्च** का भी अधिकार रहता है तथापि स्वरविषयक होने के कारण और स्वरवैदिक अलग प्रकरण होने से स्वरों का विशेष विवेचन है, अतः इसकी यहाँ उपेक्षा की गयी है।

१६६१. प्राक् क्रीताच्छः ५।१।१॥

'तेन क्रीतम्'(सू.१७०२) इत्यतः प्राग्छोऽधिक्रियते।

प्राक्क्रीताच्छः। प्राक् अव्ययपदं, क्रीतात् पञ्चम्यन्तं, छः प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्।

'तेन क्रीतम्' इस सूत्र से पहले तक 'छ' प्रत्यय का अधिकार रहता है।

तद्धितप्रकरण में प्रारम्भ से ही **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार चल ही रहा है। अतः स्वभावतः इस प्रकरण में भी रहेगा। **छकार** के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **ईय्** आदेश होकर प्रत्यय का स्वरूप **ईय** बन जाता है। इस तरह इस प्रकरण का औत्सर्गिक प्रत्यय **छ** है और विशेष सूत्रों से विशेष प्रत्ययों का विधान होने पर इसका बाध हो सकता है।

यहाँ पर दो शंकायें उपस्थित होती हैं। १. जब **प्राग्धिताद्यत्** (४.४.७५) सूत्र से यत्-प्रत्यय का अधिकार प्रारम्भ किया गया था तो **हित** शब्द के पहले तक अर्थात् **तस्मै हितम्** (५.१.५) के पहले तक इसका अधिकार है। ऐसी स्थिति में उसके पहले यत्-प्रत्यय का अधिकार कैसे समाप्त हुआ? २. दूसरी शंका यह कि **प्राक् क्रीताच्छः** (५.१.१) सूत्र से जो छ-प्रत्यय का अधिकार कहा गया है, वह अधिकार **क्रीत** शब्द

से पहले अर्थात् **तेन क्रीतम्** (५.१.३७) के पहले तक कहा जा रहा है तो फिर उसके पहले ही **प्राग्वतेष्ठञ्** (५.१.१८) सूत्र से ठञ्-प्रत्यय का अधिकार क्यों प्रारम्भ किया गया? इसका उत्तर यह है कि तद्धित के सारे अधिकारों की अवधि एक प्रत्ययविधायक सूत्र से दूसरे प्रत्ययविधायक सूत्र तक न होकर एक अर्थविधायक सूत्र से दूसरे अर्थविधायक सूत्र तक होती है। इस प्रकार तद्धित के सारे अधिकार अर्थावधि ही होते हैं।

विशेषः- इस प्रकरण से अष्टाध्यायी के पञ्चमाध्याय प्रथमपाद के सूत्र दिये गये हैं। **प्राक्क्रीताच्छः** सूत्र की आधिकारिक सीमा का सूचक **क्रीतात्** पद है जो कि तद्घटित सूत्र **तेन क्रीतम्** (५.१.३६) का संकेतक है। यह भी अर्थ-परक निर्देश है। तदुनुसार क्रीत-अर्थ आने से पूर्व **छ** का ही अधिकार रहेगा। तात्पर्य यह है कि **तेन क्रीतम्** सूत्र से पहले जितने अर्थ कहे गये हैं, उन सब अर्थों में औत्सर्गिक प्रत्यय **छ** ही हो। यही यहाँ पर अधिकार का स्वरूप है। यद्यपि उक्त अधिकार पठित है तथापि वास्तविकता तो यह है कि इसके मध्य में ही **प्राग्वतेष्ठञ्** (५.१.१८) सूत्र से क्रीतादि-अर्थों में ठञादि-प्रत्ययों का विधान किये जाने से छ-प्रत्यय की अधिकार-सीमा कम हो जाती है। तदनुसार छ-प्रत्यय का अधिकार **परिखायाः ढञ्** (५.१.१७) तक ही रहता है।

१६६२. उगवादिभ्यो यत् ५।१।२॥

'प्राक् क्रीतात्' इत्येव। उवर्णान्ताद् गवादिभ्यश्च यत् स्याच्छस्यापवादः। 'नाभि नभं च' (ग.सू.९५)। नभ्योऽक्षः। नभ्यमञ्जनम्। रथनाभावेवेदम्। 'शुनः संप्रसारणं वा च दीर्घत्वम्' (ग.सू.९६) शून्यम्, शुन्यम्। 'ऊधसोऽनङ् च' (ग.सू.९७)। ऊधन्यः।

उगवादिभ्यो यत्। गो आदिर्येषां ते गवादयः। उश्च गवादयश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्व उगवादयस्तेभ्यः। उगवादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, यत् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

उवर्णान्त प्रातिपदिक से तथा गवादिगणपठित प्रातिपदिकों से परे प्राक्क्रीतीय अर्थों में छ-प्रत्यय का अपवाद तद्धितसंज्ञक यत् प्रत्यय होता है।

तकार इत्संज्ञक है, **य** बचता है।

छस्यापवादः। इस प्रकरण के सभी सूत्रों में **छ** का ही अधिकार है, अतः छ प्रत्यय की प्राप्ति होती है किन्तु **उगवादिभ्यो यत्** इस विशेष सूत्र से बाधित हो जाने से उवर्णान्त और गवादिगणीय शब्दों से तो यत् ही होगा।

कौमुदीकार ने यहाँ उवर्णान्त प्रातिपदिक और गवादिकों का उदाहरण नहीं दिया है। इसके उदाहरण होते हैं- **शङ्कव्यम्, गव्यम्** इत्यादि।

शङ्कव्यं दारु। कीली, खूँटी के लिए उपयुक्त लकड़ी। **शङ्कवे हितम्** लौकिक विग्रह और **शङ्कु ङे** अलौकिक विग्रह है। **तस्मै हितम्** से **छ** प्रत्यय प्राप्त था, उसे बाधकर के **उगवादिभ्यो यत्** से **यत्** प्रत्यय, अनुबन्ध तकार की इत्संज्ञा और लोप करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **शङ्कु+य** बना। णित्, ञित्, कित् आदि न होने के कारण वृद्धि का प्रसंग नहीं है और इकार या अकार के अन्त में न होने के कारण भसंज्ञक टिलोप का भी प्रसंग नहीं है। अत: **ओर्गुण:** से उकार को गुण होकर ओकार बन जाता है, जिससे **शङ्को+य** बना। **वान्तो यि प्रत्यये** से **अव्** आदेश होकर वर्णसम्मेलन करने पर **शङ्कव्य** बनता है। स्वादिकार्य करने पर **शङ्कव्यम्** सिद्ध होता है।

गव्यम्। गायों के लिए हितकारी घास, चारा आदि। **गोभ्यो हितम्** लौकिक विग्रह और **गो भ्यस्** अलौकिक विग्रह है। **तस्मै हितम्** से **छ** प्रत्यय प्राप्त था, उसे बाधकर **उगवादिभ्यो यत्** से **यत्** प्रत्यय, अनुबन्ध तकार की इत्संज्ञा और लोप करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **गो+य** बना। णित्, ञित्, कित् आदि न होने के कारण वृद्धि का प्रसंग नहीं है और इकार या अकार के अन्त में न होने के कारण टिलोप का भी प्रसंग नहीं है। **वान्तो यि प्रत्यये** से **अव्** आदेश होकर वर्णसम्मेलन करने पर **गव्य** बनता है। स्वादि कार्य करने पर **गव्यम्** सिद्ध होता है।

गवादिगण:- गो, हविस्, अक्षर, विष, बर्हिस्, अष्टका, स्खदा, युग, मेधा, स्रुच्। **नाभि नभं च। शुन: संप्रसारणं वा च दीर्घत्वं तत्संनियोगेन चान्तोदात्तत्वम्। ऊधसोऽनङ् च।** कूप, खद, दर, खर, असुर, अध्वन्, (अध्वन), क्षर, वेद, बीज, दीस, (दीप्त)।

यहाँ पर गवादिगण से सम्बद्ध तीन गणसूत्रों का उल्लेख किया जा रहा है-

नाभि नभं च। यह गणसूत्र है। सूत्रार्थ:- यत् प्रत्यय करते समय 'नाभि' के स्थान पर 'नभ' आदेश करना चाहिए।

नभ्योऽक्ष:। नभ्यमञ्जनम्। रथचक्र की नाभि के लिए हितकर अर्थात् उपयुक्त चक्रदण्ड और पहिये के लिये उपयुक्त तेल, अंजन। **नाभये हितम्** विग्रह करके **नाभि+ङे** में **तस्मै हितम्** से छ प्रत्यय प्राप्त था, उसे बाधकर **उगवादिभ्यो यत्** से **यत्** प्रत्यय, और **नाभि नभं च** से **नाभि** के स्थान पर **नभ** आदेश करने पर **नभ+ङे+य** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **नभ+य** बना। णित्, ञित्, कित् आदि न होने के कारण वृद्धि का प्रसंग नहीं है। भसंज्ञक अकार का लोप करके **नभ्य** बनता है। स्वादिकार्य करने पर **नभ्य:** सिद्ध होता है। यदि **अञ्जन** आदि नपुंसक शब्द विशेष्य हो तो **नभ्यम्** ऐसा नपुंसक ही होगा।

रथनाभावेवेदम्। उपर्युक्त नभादेश केवल रथ की नाभि वाच्य होने पर ही है, अन्यवाची नाभि शब्द को नहीं होता। अत: शरीरावयव नाभि के लिये यह आदेश नहीं है।

शुनः संप्रसारणं वा च दीर्घत्वम्। यह भी गवादिगणान्तर्गत का गणसूत्र है। सूत्रार्थः- चतुर्थी-समर्थ श्वन्-शब्द से हितार्थ में यत् प्रत्यय होने पर प्रकृति को सम्प्रसारण और विकल्प से दीर्घ भी हो।

शून्यम्, शुन्यम्। कुत्ते के लिये उपयुक्त। **शुने हितम्** विग्रह करके **श्वन्+ङे** में **उगवादिभ्यो यत्** सूत्र के द्वारा **यत्** प्रत्यय और **शुनः सम्प्रसारणं च वा दीर्घत्वम्** वार्तिक के द्वारा वकार को सम्प्रसारण उकार होने **श्+उ+अन्+य** बना है। **सम्प्रसारणाच्च** सूत्र के द्वारा **उ+अ** में पूर्वरूप होने पर **शुन्+य** बना है। प्रकृत वार्तिक से ही उकार को विकल्प से दीर्घ होकर **शून्य** शब्द बना है। दीर्घ न होने के पक्ष में **शुन्य** बना हुआ है। स्वादिकार्य करने पर **शून्यम्** और **शुन्यम्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

ऊधसोऽनङ् च। यह भी गवादिगणान्तर्गत का गणसूत्र है। सूत्रार्थः- चतुर्थी-समर्थ ऊधस्-शब्द से हितार्थ में यत् प्रत्यय होने पर प्रकृति को **अनङ्** आदेश भी होता है। **अनङ्** में ङकार इत्संज्ञक और द्वितीय अकार उच्चारणार्थक है, **अन्** बचता है। इसके ङित् होने के कारण **ङिच्च** सूत्र के नियम से अन्त्य वर्ण सकार के स्थान पर हो जाता है।

ऊधन्यः। **ऊधसे हितम्** विग्रह करके **ऊधस्+ङे** में **उगवादिभ्यो यत्** सूत्र के द्वारा **यत्** प्रत्यय और **ऊधसोऽनङ् च** वार्तिक के द्वारा सकार के स्थान पर **अनङ्** (**अन्**) आदेश होने पर **ऊध+अन्+य** बना है। **ऊध+अन्** में **अतो गुणे** से पररूप होकर **ऊधन्य** बना हुआ है। स्वादिकार्य करने पर **ऊधन्यः** सिद्ध हो जाता है। यहाँ पर **ये चाभावकर्मणोः** सूत्र के द्वारा प्रकृतिभाव होने के कारण **नस्तद्धिते** सूत्र से टिलोप नहीं हुआ है।

प्राक्क्रीताच्छः के **छः** के साथ **उगवादिभ्यो यत्** के **यत्** का भी इस प्रकरण में अधिकार रहता है। जहाँ पर विशेष प्रत्ययों का विधान न हो, वहाँ पर यथासम्भव इन दो प्रत्ययों की उपस्थिति समझनी चाहिये।

१६६३. कम्बलाच्च सञ्ज्ञायाम् ५।१।३॥

यत् स्यात्। कम्बल्यमूर्णापलशतम्।
'सञ्ज्ञायाम्' किम्? कम्बलीया ऊर्णा।

कम्बलाच्च सञ्ज्ञायाम्। कम्बलात् पञ्चम्यन्तं, संज्ञायां सप्तम्यन्तम्। **उगवादिभ्यो यत्** से **यत्** की अनुवृत्ति आती है। **प्राक् क्रीतात्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

कम्बल इस प्रातिपदिक से भी प्राक्क्रीतीय अर्थों में छ-प्रत्यय का अपवाद तद्धितसंज्ञक यत् प्रत्यय होता है, संज्ञा के विषय में।

कम्बल्यमूर्णापलशतम्। कम्बल के लिये उपयोगी पाँच सेर ऊन। **कम्बलाय हितम्** विग्रह करके **कम्बल+ङे** में **कम्बलाच्च संज्ञायाम्** सूत्र के द्वारा **यत्** प्रत्यय,

अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **कम्बल्य** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कम्बल्यम्** सिद्ध हो जाता है।

'सञ्ज्ञायाम्' किम्? कम्बलीया ऊर्णा। प्रकृतसूत्र में **संज्ञायाम्** पद के निवेश से संज्ञा में ही यह प्रत्यय होता है, असंज्ञा में नहीं। अतः **कम्बलीया ऊर्णा** में नहीं हुआ, क्योंकि यह संज्ञा नहीं है। फलतः **तस्मै हितम्** सूत्र से छ-प्रत्यय हो जाता है और छकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र के द्वारा **ईय्** आदेश होने पर भसंज्ञक अकार का लोप होकर **कम्बलीय** बन जाता है। स्त्रीलिंग **ऊर्णा** का विशेषण होने के कारण इसमें भी टाप् प्रत्यय होकर **कम्बलीया** सिद्ध हो जाता है।

१६६४. विभाषा हविरपूपादिभ्यः ५।१।४॥
आमिक्ष्यं दधि, आमिक्षीयम्। पुरोडाश्यास्तण्डुलाः, पुरोडाशीयाः। अपूप्यम्, अपूपीयम्।

विभाषा हविरपूपादिभ्यः। अपूप आदिर्येषां ते अपूपादयः, बहुव्रीहिः। हविः च अपूपादयश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः- हविरपूपादयस्तेभ्यो हविरपूपादिभ्यः। विभाषा प्रथमान्तं, हविरपूपादिभ्यः पञ्चम्यन्तम्। **उगवादिभ्यो यत्** से **यत्** की अनुवृत्ति आती है। **प्राक्क्रीतात्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

हविष्-विशेषवाची और अपूपादि-गणपठित प्रातिपदिकों से प्राक्क्रीतीय अर्थों में विकल्प से तद्धितसंज्ञक यत् प्रत्यय होता है।

यत् न होने के पक्ष में छ प्रत्यय होता है।

आमिक्ष्यं दधि, आमिक्षीयम्। छेना बनाने के लिये उपयोगी दही। उबलते हुये दूध में दही डालने से दूध फट जाता है और उसका जो घना भाग अलग हो जाता है, उसे **आमिक्षा** कहते हैं। **आमिक्षायै हितम्** विग्रह करके **आमिक्षा+ङे** में **विभाषा हविरपूपादिभ्यः** सूत्र के द्वारा विकल्प से **यत्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक आकार का लोप होकर **आमिक्ष्य** शब्द बना है। यत् प्रत्यय न होने के पक्ष में **तस्मै हितम्** से छ-प्रत्यय, ईयादेश, आकारलोप होकर **आमिक्षीय** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आमिक्ष्यम्** और **आमिक्षीयम्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं। **आमिक्षा** को हविष्-विशेष माना गया है।

पुरोडाश्यास्तण्डुलाः, पुरोडाशीयाः। पुरोडाश के लिये उपयोगी चावल। **पुरोडाशाय हिताः** विग्रह करके **पुरोडाश+ङे** में **विभाषा हविरपूपादिभ्यः** सूत्र के द्वारा विकल्प से **यत्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पुरोडाश्य** शब्द बना है। यत् प्रत्यय न होने के पक्ष में **तस्मै हितम्** से

विग्रह करके **प्रतिजन** शब्द से **प्रतिजनादिभ्यः खञ्** सूत्र के द्वारा खञ्प्रत्यय, अनुबन्धलोप, खकार के स्थान पर ईन् आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करने पर **प्रातिजनीन** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **प्रातिजनीनः** सिद्ध हो जाता है। स्मरण रहे कि **जनं जनं प्रति** विग्रह में अव्ययीभाव समास होकर **प्रतिजनम्** शब्द बनता है। यद्यपि **तृतीयासप्तम्योर्बहुलम्** सूत्र के द्वारा विकल्प से अलुक् होने के कारण **प्रतिजने** भी बन सकता है किन्तु मूलकार ने **प्रतिजनम्** शब्द के साथ ही विग्रह दिखाया है।

सांयुगीनः। युद्ध में कुशल। **संयुगे साधुः** विग्रह करके **संयुग+ङि** से **प्रतिजनादिभ्यः खञ्** सूत्र के द्वारा खञ्प्रत्यय, ईनादेश, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करने पर **सांयुगीन** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सांयुगीनः** सिद्ध हो जाता है।

सार्वजनीनः। सभी लोगों में उपयोगी। **सर्वजनेषु साधुः** विग्रह करके **सर्वजन+सुप्** से **प्रतिजनादिभ्यः खञ्** सूत्र के द्वारा खञ्प्रत्यय, ईनादेश, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करने पर **सार्वजनीन** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सार्वजनीनः** सिद्ध हो जाता है।

वैश्वजनीनः। समस्त संसार के लिये श्रेयस्कर। **विश्वजनेषु साधुः** विग्रह करके **विश्वजन+सुप्** से **प्रतिजनादिभ्यः खञ्** सूत्र के द्वारा खञ्प्रत्यय, ईनादेश, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करने पर **वैश्वजनीन** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वैश्वजनीनः** सिद्ध हो जाता है।

प्रतिजनादिगणः- प्रतिजन, इदंयुग, संयुग, समयुग, परयुग, परकुल, परस्यकुल, अमुष्यकुल, सर्वजन, विश्वजन, महाजन, पञ्चजन।

१६५२. भक्ताण्णः ४।४।१००॥

भक्ते साधवो भाक्ताः शालयः।

भक्ताण्णः। भक्तात् पञ्चम्यन्तं, णः प्रथमान्तम्। **तत्र साधुः** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

सप्तमी-समर्थ ओदन-वाची भक्त-शब्द से साधु अर्थ में यत् का अपवाद ण-प्रत्यय होता है।

णकार इत्संज्ञक है, अ बचता है। णित्करण आदिवृद्धि के लिये है।

भक्ते साधवो भाक्ताः शालयः। भात के लिये उपयुक्त धान। **भक्ते साधवः** विग्रह करके **भक्त+ङि** से **भक्ताण्णः** सूत्र के द्वारा ण-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करने पर **भाक्त** शब्द बना है।

एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर प्रथमाबहुवचन में **भाक्ताः** सिद्ध हो जाता है।

१६५३. परिषदो ण्यः ४।४।१०१॥

पारिषद्यः। परिषद इति योगविभागाण्णोऽपि। पारिषदः।

परिषदो ण्यः। परिषदः पञ्चम्यन्तं, ण्यः प्रथमान्तम्। **तत्र साधुः** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

सप्तमी-समर्थ परिषद् इस प्रातिपदिक से साधु अर्थ में यत् का अपवाद ण्य-प्रत्यय होता है।

णकार इत्संज्ञक है, **य** बचता है। णित्करण आदिवृद्धि के लिये है।

पारिषद्यः। जो व्यवस्थापिका सभा में कुशल हो। **परिषदि साधुः** विग्रह करके **परिषद्+ङि** से **पारिषदो ण्यः** सूत्र के द्वारा ण्य-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और आदिवृद्धि करने पर **पारिषद्य** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पारिषद्यः** सिद्ध हो जाता है।

परिषद इति योगविभागाण्णोऽपि। पारिषदः। प्रकृतसूत्र का योगविभाग किया जाता है। एकभाग **परिषदः** और दूसरा भाग **ण्यः**। प्रथमभाग में पूर्वसूत्र से **णः** की अनुवृत्ति की जाती है। अतः **परिषद्** शब्द से ण-प्रत्यय हो जाता है और आदिवृद्धि होकर **पारिषदः** भी बन जाता है।

१६५४. कथादिभ्यष्ठक् ४।४।१०२॥

कथायां साधुः काथिकः।

कथादिभ्यष्ठक्। कथा आदिर्येषां ते कथादयस्तेभ्यः कथादिभ्यः, बहुव्रीहिः। कथादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, ठक् प्रथमान्तम्। **तत्र साधुः** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

सप्तमी-समर्थ कथादि-गणपठित प्रातिपदिकों से साधु अर्थ में यत् का अपवाद ठक् प्रत्यय होता है।

कथायां साधुः काथिकः। पारिषद्यः। कथा बाँचने में निपुण। **कथायां साधुः** विग्रह करके **कथा+ङि** से **कथादिभ्यष्ठक्** सूत्र के द्वारा ठक्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञकान्त्य आकार का लोप करने पर **काथिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **काथिकः** सिद्ध हो जाता है।

कथादिगणः- कथा, विकथा, विश्वकथा, संकथा, वितण्डा, कुष्ठविद्, (कुष्ठवित्), जनवाद, जनेवाद, जनोवाद, वृत्ति, संग्रह, गुण, गण, आयुर्वेद।

१६५५. गुडादिभ्यष्ठञ् ४।४।१०३॥
गुडे साधुर्गौडिक इक्षुः। साक्तुको यवः।

गुडादिभ्यष्ठञ्। गुड आदिर्येषां ते गुडादयस्तेभ्यो गुडादिभ्यः, बहुव्रीहिः। गुडादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, ठञ् प्रथमान्तम्। **तत्र साधुः** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

सप्तमी-समर्थ गुडादि-गणपठित प्रातिपदिकों से साधु अर्थ में यत् का अपवाद ठञ् प्रत्यय होता है।

गुडे साधुर्गौडिक इक्षुः। गुड़ बनाने के लिये उपयोगी अच्छे गन्ने, ईख। **गुडे साधुः** विग्रह करके **गुड+ङि** से **गुडादिभ्यष्ठञ्** सूत्र के द्वारा ठञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञकान्त्य अकार का लोप करने पर **गौडिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **गौडिकः** सिद्ध हो जाता है।

साक्तुको यवः। सत्तू के लिये उपयोगी अच्छे जौ। **सक्तौ साधुः** विग्रह करके **सक्तु+ङि** से **गुडादिभ्यष्ठञ्** सूत्र के द्वारा ठञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और **इसुसुक्तान्तात्कः** सूत्र से ठ के स्थान पर **क** आदेश होकर **साक्तुक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **साक्तुकः** सिद्ध हो जाता है।

गुडादिगणः- गुड, कुल्माष, सक्तु, अपूप, मांसौदन, इक्षु, वेणु, सङ्ग्राम, सङ्घात, सङ्क्राम, संवाह, प्रवास, निवास, उपवास।

१६५६. पथ्यतिथिवसतिस्वपतेर्ढञ् ४।४।१०४॥
पथि साधु पाथेयम्। आतिथेयम्।
वसनं वसतिः, तत्र साधुर्वासतेयी रात्रिः। स्वापतेयं धनम्।

पथ्यतिथिवसतिस्वपतेर्ढञ्। पन्थाश्च अतिथिश्च वसतिश्च स्वपतिश्च तेषां समाहारद्वन्द्वः पथ्यतिथिवसतिस्वपतिः, सौत्रं पुस्त्वम्। तस्मात् पथ्यतिथिवसतिस्वपतेः पञ्चम्यन्तं, ढञ् प्रथमान्तम्। **तत्र साधुः** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

सप्तमी-समर्थ पथिन्, अतिथि, वसति, स्वपति इन प्रातिपदिकों से साधु अर्थ में यत् का अपवाद ढञ् प्रत्यय होता है।

ढञ् में ञकार इत्संज्ञक है और ढकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र के द्वारा **एय्** आदेश होकर प्रत्यय का स्वरूप **ऐय** बन जाता है। ञित्करण आदिवृद्धि और स्वर के लिये है।

पथि साधु पाथेयम्। मार्ग में यात्रा के लिये उपयोगी खाद्यसामग्री। **पथि साधुः** विग्रह करके **पथिन्+ङि** से **पथ्यतिथिवसतिस्वपतेर्ढञ्** सूत्र के द्वारा ढञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, एयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और टिसंज्ञक **इन्** का **नस्तद्धिते** सूत्र से लोप होकर **पाथेय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पाथेयम्** सिद्ध हो जाता है।

आतिथेयम्। अतिथि के लिये समुचित सत्कार आदि। **अतिथौ साधुः** विग्रह करके **अतिथि+ङि** से **पथ्यतिथिवसतिस्वपतेर्ढञ्** सूत्र के द्वारा ढञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, एयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक इकार का लोप करके **आतिथेय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आतिथेयम्** सिद्ध हो जाता है।

वसनं वसतिः, तत्र साधुर्वासतेयी रात्रिः। निवास के लिये उपयुक्त रात्रि। **वसतौ साधुः** विग्रह करके **वसति+ङि** से **पथ्यतिथिवसतिस्वपतेर्ढञ्** सूत्र के द्वारा ढञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, एयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक इकार का लोप करके **वासतेय** शब्द बना है। स्त्रीत्वविवक्षा में **टिड्ढाणञ्०** सूत्र के द्वारा ङीप् होकर **वासतेयी** और स्वादिकार्य होकर **वासतेयी** सिद्ध हो जाता है। **वस** निवासे धातु से औणादिक **अति** प्रत्यय होकर **वसति** प्रातिपदिक तैयार होता है।

स्वापतेयं धनम्। स्वामित्व के लिये उपयोगी, धन। **स्वपतौ साधुः** विग्रह करके **स्वपति+ङि** से **पथ्यतिथिवसतिस्वपतेर्ढञ्** सूत्र के द्वारा ढञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, एयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक इकार का लोप करके **स्वापतेय** शब्द बना है। स्वादिकार्य होकर **स्वापतेयम्** सिद्ध हो जाता है। यहाँ **स्वस्य=धनस्य पतिः** विग्रह में षष्ठीतत्पुरुषसमास होकर **स्वपति** शब्द बना है।

१६५७. सभाया यः ४।४।१०५॥

सभ्यः।

सभाया यः। सभायाः पञ्चम्यन्तं, यः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तत्र साधुः** का अनुवर्तन और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त 'सभा' प्रातिपदिक से 'साधु' अर्थात् निपुण, कुशल, अच्छा आदि अर्थ में य प्रत्यय होता है।

सभ्यः। सभा में प्रवीण या योग्य। **सभायां साधुः** लौकिक विग्रह और **सभा ङि** अलौकिक विग्रह है। **सभाया यः** सूत्र से **य** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके भसंज्ञक आकार का लोप करने पर **सभ्+य=सभ्य** बना। स्वादिकार्य होकर **सभ्यः** सिद्ध हो जाता है। तित् न होने के कारण **तित्स्वरितम्** सूत्र से स्वरित-स्वर नहीं होगा। अतः यत् से पृथक् **य** प्रत्यय का विधान किया गया है।

यहाँ **साधुः** अर्थ की समाप्ति होकर अब प्राग्घितीयों में चौदहवें अर्थक्रम **वासी**=निवास करने वाला- अर्थ में यत्-प्रत्यय का विधान किया जा रहा है।

१६५८. समानतीर्थे वासी ४।४।१०७॥

'साधुः' इति निवृत्तम्।

वसतीति वासी। समाने तीर्थे गुरौ वसतीति सतीर्थ्यः।

समानतीर्थे वासी। समानतीर्थे सप्तम्यन्तं, वासी प्रथमान्तम्। **तत्र साधुः** से **तत्र** पद का अनुवर्तन और **यत्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त समानतीर्थ शब्द से वासी=रहने वाला- अर्थ में औत्सर्गिक यत् प्रत्यय होता है।

'साधुः' इति निवृत्तम्। पहले से चली आ रही **साधुः** पद की निवृत्ति हो गयी है, क्योंकि इस सूत्र में **वासी** अर्थ का ग्रहण किया गया है।

वसतीति वासी। निवास करने वाले को **वासी** कहते हैं। कोशग्रन्थों में तीर्थ-शब्द के अनेक अर्थ बताये गये हैं। जैसे कि मेदिनीकोश में-

तीर्थं शास्त्राध्वरक्षेत्रोपायनारीरजःसु च।

अवतारर्षिजुष्टाम्बुपात्रोपाध्यायमन्त्रिषु॥ अर्थात् शास्त्र, यज्ञ, क्षेत्र, उपाय, नारीरज, घाट, ऋषियों से सेवित जल, पात्र, गुरु इन अर्थों में **तीर्थ** शब्द का प्रयोग होता है।

समाने तीर्थे गुरौ वसतीति सतीर्थ्यः। समान ही गुरु (एक ही गुरु) के समीप में रहने वाला, सहपाठी। **समानतीर्थे वसति** विग्रह करके **समानतीर्थे वासी** सूत्र के द्वारा **यत्** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **समानतीर्थ+य** बना है। **तीर्थे ये** (६.३.८६) सूत्र के द्वारा **समान**-शब्द के स्थान पर **स** आदेश होकर **सतीर्थ+य** बना है। भसंज्ञक अकार का लोप करने पर **सतीर्थ्य** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सतीर्थ्यः** सिद्ध हो जाता है।

यहाँ **साधुः** अर्थ की समाप्ति होकर अब प्राग्घितीयों में पन्द्रहवें अर्थक्रम **शयितः**=शयन करने वाला- अर्थ में प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है।

१६५९. समानोदरे शयित ओ चोदात्तः ४।४।१०८॥

समाने उदरे शयितः स्थितः समानोदर्यो भ्राता।

समानोदरे शयित ओ चोदात्तः। समानं च तद् उदरं च समानोदरं, तस्मिन् समानोदरे। समानोदरे सप्तम्यन्तं, शयितः प्रथमान्तम्, ओ लुप्तप्रथमाकं पदं, चाव्ययम्, उदात्तः प्रथमान्तम्। **तत्र साधुः** से **तत्र** पद का अनुवर्तन और **यत्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

सप्तमी समर्थ समानोदर इस प्रातिपदिक से शयन किया हुआ अर्थ में यत् प्रत्यय होता है तथा समानोदर-शब्द का ओकार उदात्त स्वर वाला भी हो जाता है।

समाने उदरे शयितः स्थितः समानोदर्यो भ्राता। जो समान उदर में शयन किया हुआ हो, सगा भाई। **समानोदरे शयितः** विग्रह करके **समानोदरे शयित ओ चोदात्तः** सूत्र के द्वारा **यत्** प्रत्यय और ओकार को उदात्तस्वर, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **समानोदर+य** बना है। भसंज्ञक अकार का लोप करने पर **समानोदर्य** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **समानोदर्यः** सिद्ध हो जाता है।

विशेषः- सूत्र के द्वारा यत्-प्रत्यय करने पर **तित्स्वरितम्** (६.१.१७९) सूत्र से य के अकार को स्वरित हो जाता है। उसके बाद **अनुदात्तं पदमेकवर्जम्** (६.१.१५२) सूत्र के द्वारा यकाराकार को छोड़कर सारा पद अनुदात्त हो जाता है किन्तु उसको बाधकर केवल ओकार के उदात्त रहने का प्रकृतसूत्र से विधान किया गया है।

यह **समानोदर्य** शब्द वैकल्पिक है अर्थात् **विभाषोदरे** (६.३.८८) सूत्र के द्वारा **समान** शब्द के स्थान पर **स** आदेश न होने के पक्ष का यह रूप है। स-आदेश होने पर तो **सोदर्य** बनता है।

१६६०.सोदराद्यः ४।४।१०९॥

सोदर्यः, अर्थः प्राग्वत्।

इति तद्धितेषु चतुर्थस्य चतुर्थपादे प्राग्घतीयप्रकरणम्॥

सोदराद्यः। सोदरात् पञ्चम्यन्तं, यः प्रथमान्तम्। **समानोदरे शयित ओ चोदात्तः** से **शयितः** और **तत्र साधुः** से **तत्र** पद का अनुवर्तन आता है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

सप्तमी समर्थ सोदर इस प्रातिपदिक से शयन किया हुआ अर्थ में य-प्रत्यय होता है।

सोदर्यः, अर्थः प्राग्वत्। पूर्वसूत्र का ही विषय है। जब **समान**-शब्द के स्थान पर **विभाषोदरे** सूत्र से **स** आदेश होता है, तब **सोदर** शब्द बना हुआ है, उससे **सोदराद्यः**

सूत्र से **य** प्रत्यय होने पर भसंज्ञक अकार का लोप होकर **सोदर्य** और स्वादिकार्य होकर **सोदर्यः** सिद्ध हो जाता है। इसका अर्थ पूर्व के समान ही है अर्थात् जो समान उदर में शयन किया हुआ हो, सगा भाई ही अर्थ है।

इति तद्धितेषु चतुर्थस्य चतुर्थपादे प्राग्घितीयप्रकरणम्। इस तरह अष्टाध्यायी के अनुसार **तद्धिताः** सूत्र के अधिकार में विहित प्रत्ययों में चतुर्थाध्याय-चतुर्थपाद की समाप्ति है और प्राग्घितीय प्रत्ययों का एक भाग भी पूरा हो जाता है। यद्यपि चतुर्थपाद में और भी सूत्र हैं तथापि वे सब **भवे छन्दसि** सूत्र से छन्दोविषय में ही विहित होते हैं और दीक्षित जी ने वैदिक प्रकरण अलग ही रखा है, अतः वहीं पर उनका विवेचन किया गया है।

श्री भट्टोजिदीक्षित द्वारा विरचित वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी की
गोविन्दाचार्य कृत श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी टीका में
तद्धित-प्राग्घितीय-प्रकरण पूर्ण हुआ।

●

अथ छयद्विधिप्रकरणम्

अब हित-अर्थ में होने वाले **छ** और **यत्** प्रत्ययों का प्रकरण प्रारम्भ करते हैं। इस प्रकरण में **प्राक्क्रीताच्छः** सूत्र से **छः** का अधिकार चलता है और **तस्मै हितम्** आदि सूत्रों से छ और **उगवादिभ्यो यत्** से **यत्** प्रत्यय होने के कारण यह प्रकरण **छ** और **यत्** दोनों ही प्रत्ययों का प्रकरण है। अत एव इसे **छयतोरधिकार** कहते हैं और दीक्षित जी ने छयद्विधिप्रकरण नाम दिया है। इस प्रकरण में भी **तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार रहता है। यद्यपि **आद्युदात्तश्च** का भी अधिकार रहता है तथापि स्वरविषयक होने के कारण और स्वरवैदिक अलग प्रकरण होने से स्वरों का विशेष विवेचन है, अतः इसकी यहाँ उपेक्षा की गयी है।

१६६१. प्राक् क्रीताच्छः ५।१।१॥
'तेन क्रीतम्'(सू.१७०२) इत्यतः प्राग्छोऽधिक्रियते।

प्राक्क्रीताच्छः। प्राक् अव्ययपदं, क्रीतात् पञ्चम्यन्तं, छः प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्।

'तेन क्रीतम्' इस सूत्र से पहले तक 'छ' प्रत्यय का अधिकार रहता है।

तद्धितप्रकरण में प्रारम्भ से ही **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार चल ही रहा है। अतः स्वभावतः इस प्रकरण में भी रहेगा। **छकार** के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **ईय्** आदेश होकर प्रत्यय का स्वरूप **ईय** बन जाता है। इस तरह इस प्रकरण का औत्सर्गिक प्रत्यय **छ** है और विशेष सूत्रों से विशेष प्रत्ययों का विधान होने पर इसका बाध हो सकता है।

यहाँ पर दो शंकायें उपस्थित होती हैं। १. जब **प्राग्घिताद्यत्** (४.४.७५) सूत्र से यत्-प्रत्यय का अधिकार प्रारम्भ किया गया था तो **हित** शब्द के पहले तक अर्थात् **तस्मै हितम्** (५.१.५) के पहले तक इसका अधिकार है। ऐसी स्थिति में उसके पहले यत्-प्रत्यय का अधिकार कैसे समाप्त हुआ? २. दूसरी शंका यह कि **प्राक् क्रीताच्छः** (५.१.१) सूत्र से जो छ-प्रत्यय का अधिकार कहा गया है, वह अधिकार **क्रीत** शब्द

से पहले अर्थात् **तेन क्रीतम्** (५.१.३७) के पहले तक कहा जा रहा है तो फिर उसके पहले ही **प्राग्वतेष्ठञ्** (५.१.१८) सूत्र से ठञ्-प्रत्यय का अधिकार क्यों प्रारम्भ किया गया? इसका उत्तर यह है कि तद्धित के सारे अधिकारों की अवधि एक प्रत्ययविधायक सूत्र से दूसरे प्रत्ययविधायक सूत्र तक न होकर एक अर्थविधायक सूत्र से दूसरे अर्थविधायक सूत्र तक होती है। इस प्रकार तद्धित के सारे अधिकार अर्थावधि ही होते हैं।

विशेषः- इस प्रकरण से अष्टाध्यायी के पञ्चमाध्याय प्रथमपाद के सूत्र दिये गये हैं। **प्राक्क्रीताच्छः** सूत्र की आधिकारिक सीमा का सूचक **क्रीतात्** पद है जो कि तद्घटित सूत्र **तेन क्रीतम्** (५.१.३६) का संकेतक है। यह भी अर्थ-परक निर्देश है। तदुनुसार क्रीत-अर्थ आने से पूर्व **छ** का ही अधिकार रहेगा। तात्पर्य यह है कि **तेन क्रीतम्** सूत्र से पहले जितने अर्थ कहे गये हैं, उन सब अर्थों में औत्सर्गिक प्रत्यय **छ** ही हो। यही यहाँ पर अधिकार का स्वरूप है। यद्यपि उक्त अधिकार पठित है तथापि वास्तविकता तो यह है कि इसके मध्य में ही **प्राग्वतेष्ठञ्** (५.१.१८) सूत्र से क्रीतादि-अर्थों में ठञादि-प्रत्ययों का विधान किये जाने से छ-प्रत्यय की अधिकार-सीमा कम हो जाती है। तदनुसार छ-प्रत्यय का अधिकार **परिखायाः ढञ्** (५.१.१७) तक ही रहता है।

१६६२. उगवादिभ्यो यत् ५।१।२॥

'प्राक् क्रीतात्' इत्येव। उवर्णान्ताद् गवादिभ्यश्च यत् स्याच्छस्यापवादः। 'नाभि नभं च' (ग.सू.९५)। नभ्योऽक्षः। नभ्यमञ्जनम्। रथनाभावेवेदम्। 'शुनः संप्रसारणं वा च दीर्घत्वम्' (ग.सू.९६) शून्यम्, शुन्यम्। 'ऊधसोऽनङ् च' (ग.सू.९७)। ऊधन्यः।

उगवादिभ्यो यत्। गो आदिर्येषां ते गवादयः। उश्च गवादयश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्व उगवादयस्तेभ्यः। उगवादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, यत् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

उवर्णान्त प्रातिपदिक से तथा गवादिगणपठित प्रातिपदिकों से परे प्राक्क्रीतीय अर्थों में छ-प्रत्यय का अपवाद तद्धितसंज्ञक यत् प्रत्यय होता है।

तकार इत्संज्ञक है, **य** बचता है।

छस्यापवादः। इस प्रकरण के सभी सूत्रों में **छ** का ही अधिकार है, अतः **छ** प्रत्यय की प्राप्ति होती है किन्तु **उगवादिभ्यो यत्** इस विशेष सूत्र से बाधित हो जाने से उवर्णान्त और गवादिगणीय शब्दों से तो यत् ही होगा।

कौमुदीकार ने यहाँ उवर्णान्त प्रातिपदिक और गवादिकों का उदाहरण नहीं दिया है। इसके उदाहरण होते हैं- **शङ्क्व्यम्, गव्यम्** इत्यादि।

शङ्कव्यं दारु। कीली, खूँटी के लिए उपयुक्त लकड़ी। **शङ्कवे हितम्** लौकिक विग्रह और **शङ्कु ङे** अलौकिक विग्रह है। **तस्मै हितम्** से **छ** प्रत्यय प्राप्त था, उसे बाधकर के **उगवादिभ्यो यत्** से **यत्** प्रत्यय, अनुबन्ध तकार की इत्संज्ञा और लोप करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **शङ्कु+य** बना। णित्, ञित्, कित् आदि न होने के कारण वृद्धि का प्रसंग नहीं है और इकार या अकार के अन्त में न होने के कारण भसंज्ञक टिलोप का भी प्रसंग नहीं है। अतः **ओर्गुणः** से उकार को गुण होकर ओकार बन जाता है, जिससे **शङ्को+य** बना। **वान्तो यि प्रत्यये** से **अव्** आदेश होकर वर्णसम्मेलन करने पर **शङ्कव्य** बनता है। स्वादिकार्य करने पर **शङ्कव्यम्** सिद्ध होता है।

गव्यम्। गायों के लिए हितकारी घास, चारा आदि। **गोभ्यो हितम्** लौकिक विग्रह और **गो भ्यस्** अलौकिक विग्रह है। **तस्मै हितम्** से **छ** प्रत्यय प्राप्त था, उसे बाधकर **उगवादिभ्यो यत्** से **यत्** प्रत्यय, अनुबन्ध तकार की इत्संज्ञा और लोप करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **गो+य** बना। णित्, ञित्, कित् आदि न होने के कारण वृद्धि का प्रसंग नहीं है और इकार या अकार के अन्त में न होने के कारण टिलोप का भी प्रसंग नहीं है। **वान्तो यि प्रत्यये** से **अव्** आदेश होकर वर्णसम्मेलन करने पर **गव्य** बनता है। स्वादि कार्य करने पर **गव्यम्** सिद्ध होता है।

गवादिगणः- गो, हविस्, अक्षर, विष, बर्हिस्, अष्टका, स्खदा, युग, मेधा, स्रुच्। **नाभि नभं च। शुनः संप्रसारणं वा च दीर्घत्वं तत्संनियोगेन चान्तोदात्तत्वम्। ऊधसोऽनङ् च।** कूप, खद, दर, खर, असुर, अध्वन्, (अध्वन), क्षर, वेद, बीज, दीस, (दीप्त)।

यहाँ पर गवादिगण से सम्बद्ध तीन गणसूत्रों का उल्लेख किया जा रहा है-

नाभि नभं च। यह गणसूत्र है। सूत्रार्थः- यत् प्रत्यय करते समय 'नाभि' के स्थान पर 'नभ' आदेश करना चाहिए।

नभ्योऽक्षः। नभ्यमञ्जनम्। रथचक्र की नाभि के लिए हितकर अर्थात् उपयुक्त चक्रदण्ड और पहिये के लिये उपयुक्त तेल, अंजन। **नाभये हितम्** विग्रह करके **नाभि+ङे** में **तस्मै हितम्** से **छ** प्रत्यय प्राप्त था, उसे बाधकर **उगवादिभ्यो यत्** से **यत्** प्रत्यय, और **नाभि नभं च** से **नाभि** के स्थान पर **नभ** आदेश करने पर **नभ+ङे+य** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **नभ+य** बना। णित्, ञित्, कित् आदि न होने के कारण वृद्धि का प्रसंग नहीं है। भसंज्ञक अकार का लोप करके **नभ्य** बनता है। स्वादिकार्य करने पर **नभ्यः** सिद्ध होता है। यदि **अञ्जन** आदि नपुंसक शब्द विशेष्य हो तो **नभ्यम्** ऐसा नपुंसक ही होगा।

रथनाभावेवेदम्। उपर्युक्त नभादेश केवल रथ की नाभि वाच्य होने पर ही है, अन्यवाची नाभि शब्द को नहीं होता। अतः शरीरावयव नाभि के लिये यह आदेश नहीं है।

शुनः संप्रसारणं वा च दीर्घत्वम्। यह भी गवादिगणान्तर्गत का गणसूत्र है। सूत्रार्थः- चतुर्थी-समर्थ श्वन्-शब्द से हितार्थ में यत् प्रत्यय होने पर प्रकृति को सम्प्रसारण और विकल्प से दीर्घ भी हो।

शून्यम्, शुन्यम्। कुत्ते के लिये उपयुक्त। **शुने हितम्** विग्रह करके **श्वन्+ङे** में **उगवादिभ्यो यत्** सूत्र के द्वारा **यत्** प्रत्यय और **शुनः सम्प्रसारणं च वा दीर्घत्वम्** वार्तिक के द्वारा वकार को सम्प्रसारण उकार होने **श्+उ+अन्+य** बना है। **सम्प्रसारणाच्च** सूत्र के द्वारा **उ+अ** में पूर्वरूप होने पर **शुन्+य** बना है। प्रकृत वार्तिक से ही उकार को विकल्प से दीर्घ होकर **शून्य** शब्द बना है। दीर्घ न होने के पक्ष में **शुन्य** बना हुआ है। स्वादिकार्य करने पर **शून्यम्** और **शुन्यम्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

ऊधसोऽनङ् च। यह भी गवादिगणान्तर्गत का गणसूत्र है। सूत्रार्थः- चतुर्थी-समर्थ ऊधस्-शब्द से हितार्थ में यत् प्रत्यय होने पर प्रकृति को **अनङ्** आदेश भी होता है। **अनङ्** में ङकार इत्संज्ञक और द्वितीय अकार उच्चारणार्थक है, **अन्** बचता है। इसके ङित् होने के कारण **ङिच्च** सूत्र के नियम से अन्त्य वर्ण सकार के स्थान पर हो जाता है।

ऊधन्यः। ऊधसे हितम् विग्रह करके **ऊधस्+ङे** में **उगवादिभ्यो यत्** सूत्र के द्वारा **यत्** प्रत्यय और **ऊधसोऽनङ् च** वार्तिक के द्वारा सकार के स्थान पर **अनङ्** (**अन्**) आदेश होने पर **ऊध+अन्+य** बना है। **ऊध+अन्** में **अतो गुणे** से पररूप होकर **ऊधन्य** बना हुआ है। स्वादिकार्य करने पर **ऊधन्यः** सिद्ध हो जाता है। यहाँ पर **ये चाभावकर्मणोः** सूत्र के द्वारा प्रकृतिभाव होने के कारण **नस्तद्धिते** सूत्र से टिलोप नहीं हुआ है।

प्राक्क्रीताच्छः के **छः** के साथ **उगवादिभ्यो यत्** के **यत्** का भी इस प्रकरण में अधिकार रहता है। जहाँ पर विशेष प्रत्ययों का विधान न हो, वहाँ पर यथासम्भव इन दो प्रत्ययों की उपस्थिति समझनी चाहिये।

१६६३. कम्बलाच्च सञ्ज्ञायाम् ५।१।३॥

यत् स्यात्। कम्बल्यमूर्णापलशतम्।

'सञ्ज्ञायाम्' किम्? कम्बलीया ऊर्णा।

कम्बलाच्च सञ्ज्ञायाम्। कम्बलात् पञ्चम्यन्तं, संज्ञायां सप्तम्यन्तम्। **उगवादिभ्यो यत्** से **यत्** की अनुवृत्ति आती है। **प्राक् क्रीतात्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

कम्बल इस प्रातिपदिक से भी प्राक्क्रीतीय अर्थों में छ-प्रत्यय का अपवाद तद्धितसंज्ञक यत् प्रत्यय होता है, संज्ञा के विषय में।

कम्बल्यमूर्णापलशतम्। कम्बल के लिये उपयोगी पाँच सेर ऊन। **कम्बलाय हितम्** विग्रह करके **कम्बल+ङे** में **कम्बलाच्च संज्ञायाम्** सूत्र के द्वारा **यत्** प्रत्यय,

अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **कम्बल्य** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कम्बल्यम्** सिद्ध हो जाता है।

'सञ्ज्ञायाम्' किम्? कम्बलीया ऊर्णा। प्रकृतसूत्र में **संज्ञायाम्** पद के निवेश से संज्ञा में ही यह प्रत्यय होता है, असंज्ञा में नहीं। अतः **कम्बलीया ऊर्णा** में नहीं हुआ, क्योंकि यह संज्ञा नहीं है। फलतः **तस्मै हितम्** सूत्र से छ-प्रत्यय हो जाता है और छकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र के द्वारा **ईय्** आदेश होने पर भसंज्ञक अकार का लोप होकर **कम्बलीय** बन जाता है। स्त्रीलिंग **ऊर्णा** का विशेषण होने के कारण इसमें भी टाप् प्रत्यय होकर **कम्बलीया** सिद्ध हो जाता है।

१६६४. विभाषा हविरपूपादिभ्यः ५।१।४॥

आमिक्ष्यं दधि, आमिक्षीयम्। पुरोडाश्यास्तण्डुलाः, पुरोडाशीयाः। अपूप्यम्, अपूपीयम्।

विभाषा हविरपूपादिभ्यः। अपूप आदिर्येषां ते अपूपादयः, बहुव्रीहिः। हविः च अपूपादयश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः- हविरपूपादयस्तेभ्यो हविरपूपादिभ्यः। विभाषा प्रथमान्तं, हविरपूपादिभ्यः पञ्चम्यन्तम्। **उगवादिभ्यो यत्** से **यत्** की अनुवृत्ति आती है। **प्राक्क्रीतात्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

हविष्-विशेषवाची और अपूपादि-गणपठित प्रातिपदिकों से प्राक्क्रीतीय अर्थों में विकल्प से तद्धितसंज्ञक यत् प्रत्यय होता है।

यत् न होने के पक्ष में **छ** प्रत्यय होता है।

आमिक्ष्यं दधि, आमिक्षीयम्। छेना बनाने के लिये उपयोगी दही। उबलते हुये दूध में दही डालने से दूध फट जाता है और उसका जो घना भाग अलग हो जाता है, उसे **आमिक्षा** कहते हैं। **आमिक्षायै हितम्** विग्रह करके **आमिक्षा+ङे** में **विभाषा हविरपूपादिभ्यः** सूत्र के द्वारा विकल्प से **यत्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक आकार का लोप होकर **आमिक्ष्य** शब्द बना है। यत् प्रत्यय न होने के पक्ष में **तस्मै हितम्** से छ-प्रत्यय, ईयादेश, आकारलोप होकर **आमिक्षीय** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आमिक्ष्यम्** और **आमिक्षीयम्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं। **आमिक्षा** को हविष्-विशेष माना गया है।

पुरोडाश्यास्तण्डुलाः, पुरोडाशीयाः। पुरोडाश के लिये उपयोगी चावल। **पुरोडाशाय हिताः** विग्रह करके **पुरोडाश+ङे** में **विभाषा हविरपूपादिभ्यः** सूत्र के द्वारा विकल्प से **यत्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पुरोडाश्य** शब्द बना है। यत् प्रत्यय न होने के पक्ष में **तस्मै हितम्** से

छ-प्रत्यय, ईयादेश, अकारलोप होकर **पुरोडाशीय** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर बहुवचन में **पुरोडाश्याः** और **पुरोडाशीयाः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं। **पुरोडाश** भी हविष्-विशेष ही है।

आमिक्षा और **पुरोडाश** की हविष् यज्ञ में दी जाती है। अतः ये हविष्-विशेषवाची शब्द हैं।

अपूप्यम्, अपूपीयम्। मालपूआ बनाने के लिये उपयोगी वस्तु। **अपूपेभ्यो हितम्** विग्रह करके **अपूप+भ्यस्** में **विभाषा हविरपूपादिभ्यः** सूत्र के द्वारा विकल्प से **यत्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **अपूप्य** शब्द बना है। यत् प्रत्यय न होने के पक्ष में **तस्मै हितम्** से छ-प्रत्यय, ईयादेश, अकारलोप होकर **अपूपीय** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **अपूप्यम्** और **अपूपीयम्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

अपूपादिगणः- अपूप, तण्डुल, अभ्युष, (अभ्यूष), अभ्योष, अवोष, अभ्येष, पृथुक, ओदन, सूप, पूप, किण्व, प्रदीप, मुसल, कटक, कणवेष्टक, इर्गल, अर्गल। **अन्नविकारेभ्यश्च**। यूप, स्थूणा, दीप, अश्व, पत्र।

१६६५. तस्मै हितम् ५।१।५॥
वत्सेभ्यो हितो वत्सीयो गोधुक्।
शङ्कवे हितं शङ्कव्यं दारु। गव्यम्। हविष्यम्।

तस्मै हितम्। तस्मै चतुर्थ्यन्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, हितं प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

चतुर्थ्यन्त समर्थ प्रातिपदिक से उसके लिए हितकर अर्थ में यथाविहित छ-यत् आदि प्रत्यय होते हैं।

वत्सीयः (गोधुक्)। बछड़ों के लिए हितकारी गोदोहन। **वत्सेभ्यः हितम्** लौकिक विग्रह और **वत्स+भ्यस्** अलौकिक विग्रह है। **तस्मै हितम्** से छ प्रत्यय, ईय आदेश करके भसंज्ञक अकार का लोप, वर्णसम्मेलन, सु आदि कार्य करने पर **वत्सीयः** सिद्ध होता है।

शङ्कवे हितं शङ्कव्यं दारु। कीली, खूँटी के लिए उपयुक्त लकड़ी। **शङ्कवे हितम्** लौकिक विग्रह और **शङ्कु+ङे** अलौकिक विग्रह है। **तस्मै हितम्** से **यत्** प्रत्यय, अनुबन्ध तकार की इत्संज्ञा और लोप करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **शङ्कु+य** बना। णित्, ञित्, कित् आदि न होने के कारण वृद्धि का प्रसंग नहीं है और इकार या अकार के अन्त में न होने के कारण भसंज्ञक टिलोप का भी प्रसंग नहीं है। अतः **ओर्गुणः** से उकार को गुण होकर ओकार बन जाता है, जिससे **शङ्को+य** बना।

वान्तो यि प्रत्यये से **अव्** आदेश होकर वर्णसम्मेलन करने पर **शङ्क्व्य** बनता है। स्वादिकार्य करने पर **शङ्क्व्यम्** सिद्ध होता है।

गव्यम्। गायों के लिए हितकारी घास, चारा आदि। **गोभ्यो हितम्** लौकिक विग्रह और **गो+भ्यस्** अलौकिक विग्रह है। **तस्मै हितम्** से **यत्** प्रत्यय, अनुबन्ध तकार की इत्संज्ञा और लोप करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **गो+य** बना। णित्, ञित्, कित् आदि न होने के कारण वृद्धि का प्रसंग नहीं है और इकार या अकार के अन्त में न होने के कारण टिलोप का भी प्रसंग नहीं है। **वान्तो यि प्रत्यये** से **अव्** आदेश होकर वर्णसम्मेलन करने पर **गव्य** बनता है। स्वादि कार्य करने पर **गव्यम्** सिद्ध होता है।

हविष्यम्। हविष् के लिए उपयोगी। **हविषे हितम्** विग्रह करके **हविष्+ङे** में **तस्मै हितम्** से **यत्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **हविष्य** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **हविष्यम्** सिद्ध होता है।

१६६६. शरीरावयवाद्यत् ५।१।६॥

दन्त्यम्। कण्ठ्यम्।

'नस्नासिकायाः' (षष्ठी-समर्थ वा.३४९७)। नस्यम्। नाभ्यम्।

शरीरावयवाद्यत्। शरीरस्यावयवः शरीरावयवस्तस्मात्। शरीरावयवात् पञ्चम्यन्तं, यत् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तस्मै हितम्** यह सूत्र अनुवृत्त होता है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

शरीर के अवयववाचक चतुर्थ्यन्त प्रातिपदिक से हितकर अर्थ में यत् प्रत्यय होता है।

तकार इत्संज्ञक है और यकार के परे होने पर प्रकृति की भसंज्ञा होती है, अतः पूर्व के इकार-अकार का लोप होता है।

दन्त्यम्। दाँतों के लिए हितकारी मंजन आदि। **दन्तेभ्यः हितम्** लौकिक विग्रह और **दन्त भ्यस्** अलौकिक विग्रह है। **शरीरावयवाद्यत्** से यत् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, भसंज्ञक अकार का लोप, वर्णसम्मेलन, सु आदि कार्य करने पर **दन्त्यम्** सिद्ध होता है।

कण्ठ्यम्। कण्ठ के लिए हितकारी लेप, चूर्ण आदि। **कण्ठाय हितम्** लौकिक विग्रह और **कण्ठ ङे** अलौकिक विग्रह है। **शरीरावयवाद्यत्** से यत् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अकार का लोप, वर्णसम्मेलन, सु आदि कार्य करने पर **कण्ठ्यम्** सिद्ध होता है।

नस्नासिकायाः। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- यत् प्रत्यय के परे रहते नासिका-शब्द के स्थान पर **नस्** आदेश होता है। यह वार्तिक महाभाष्य में **पद्दन्नोमास्हृन्निशसन्यूषन्दोष-**

न्यकञ्छकन्नुदन्नासञ्छस्पप्रभृतिषु (६.१.६३) सूत्र में पठित है। वहाँ इसका स्वरूप है- **नस्नासिकाया यत्तस्क्षुद्रेषु**। इसका अर्थ है- यत्, तस् और क्षुद्र शब्दों के परवर्ती रहते नासिका शब्द के स्थान पर नस्-आदेश होता है। उसी का संग्रह करके मूलकार ने यहाँ केवल **नस्नासिकायाः** के रूप में दिया है।

नस्यम्। नाक के लिए हितकारी। **नासिकायै हितम्** लौकिक विग्रह और **नासिका ङे** अलौकिक विग्रह है। **शरीरावयवाद्यत्** से यत् प्रत्यय, अनुबन्धलोप करके **नस्नासिकायाः** वार्तिक के द्वारा नासिका-शब्द के स्थान पर नस् आदेश होकर **नस्+य** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **नस्यम्** सिद्ध हो जाता है।

नाभ्यम्। नाभि के लिए हितकारी लेप आदि। **नाभये हितम्** विग्रह करके **नाभि+ङे** में **शरीरावयवाद्यत्** से यत् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक इकार का लोप करके **नाभ्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **नाभ्यम्** सिद्ध हो जाता है।

अब प्रसंगवश षष्ठाध्याय के सूत्र का अवतरण कर रहे हैं-

१६६७. ये च तद्धिते ६।१।६१॥

यादौ तद्धिते परे शिरःशब्दस्य शीर्षन्नादेशः स्यात्।
शीर्षण्यः। 'तद्धिते' किम्? शिर इच्छति शिरस्यति।
'वा केशेषु' (वा.३४९३)। शीर्षण्याः, शिरस्या वा केशाः।
'अचि शीर्ष इति वाच्यम्' (वा.३४९४)। अजादौ तद्धिते शिरसः शीर्षादेशः।
स्थूलशिरस इदं स्थौलशीर्षम्।

ये च तद्धिते। ये सप्तम्यन्तं, चाव्ययं, तद्धिते सप्तम्यन्तम्। **शीर्षश्छन्दसि** सूत्र से **शीर्षन्** की अनुवृत्ति आती है।

यकारादि तद्धित-प्रत्यय के परे रहते शिरस्-शब्द के स्थान पर शीर्षन् आदेश होता है।

यह प्रासंगिक सूत्र अष्टाध्यायी के छठे अध्याय में पठित है। शरीरावयववाचक शिरस्-शब्द के प्रसंग में शीर्षन् आदेश के लिये यहाँ पर उद्धृत किया गया है।

शीर्षण्यः। सिर के लिए हितकारी वस्त्र आदि। **शिरसे हितम्** विग्रह करके **शिरस्+ङे** में **शरीरावयवाद्यत्** से यत् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **शिरस्+य** बना है। **ये च तद्धिते** सूत्र के द्वारा **शिरस्**-शब्द के स्थान पर **शीर्षन्** आदेश होने पर रेफ से परे नकार को णत्व होकर **शीर्षण्य** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **शीर्षण्यः** सिद्ध हो जाता है। यहाँ **ये चाभावकर्मणोः** सूत्र के द्वारा प्रकृतिभाव होने के कारण **नस्तद्धिते** से टिलोप नहीं होता।

'तद्धिते' किम्? शिर इच्छति शिरस्यति। प्रकृतसूत्र में **तद्धिते** पद के निवेश से तद्धित के यकारादि प्रत्यय के परवर्ती होने पर ही यह आदेश होगा, अन्यथा नहीं। अतः **शिर इच्छति** विग्रह करके **शिरस्+अम्** से **सुप आत्मनः क्यच्** (३.१.८) सूत्र से क्यच्-प्रत्यय, **सनाद्यन्ता धातवः** सूत्र से धातुसंज्ञा, **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से सुप् का लुक् होकर **शिरस्+य** बनने पर **शीर्षन्** आदेश नहीं हुआ, क्योंकि यह प्रत्यय तद्धित का नहीं है। अतः **शिरस्य** बन जाता है और लट् आदि होकर **शिरस्यति** रूप सिद्ध हो जाता है। यहाँ पर **न क्ये** (१.४.१५) के नियम से पदसंज्ञा न होने के कारण सकार को रुत्व भी नहीं होता।

शीर्षन्-आदेश के सम्बन्ध में भाष्य में और दो वार्तिक पढ़े गये हैं-

वा केशेषु। केश अर्थ विवक्षित होने पर **शिरस्** का **शीर्षन्** रूपान्तर (आदेश) विकल्प से होता है। यत् प्रत्यय तो **शरीरावयवाद्यत्** से ही सिद्ध है।

शीर्षण्याः, शिरस्या वा केशाः। सिर के लिये हितकारी केश। **शिरसे हिताः** विग्रह करके **शिरस्+ङे** में **शरीरावयवाद्यत्** सूत्र से यत् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हो जाता है और **वा केशेषु** से विकल्प से **शीर्षन्** भाव होने पर नकार को णत्व होकर **शीर्षण्य** बन जाता है। उक्त आदेश न होने के पक्ष में **शिरस्य** ही बना हुआ है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **शीर्षण्याः** और **शिरस्याः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

अचि शीर्ष इति वाच्यम्। (अजादौ तद्धिते शिरसः शीर्षादेशः)। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- अजादि तद्धित प्रत्यय के परे रहते **शिरस्** के स्थान पर ह्रस्व-अकारान्त **शीर्ष** आदेश होता है।

स्थूलशिरस इदं स्थौलशीर्षम्। स्थूल सिर से सम्बन्धी। **स्थूलशिरसः इदम्** विग्रह करके **स्थूलशिरस्+ङस्** में **तस्येदम्** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हो जाता है और **अचि शीर्ष इति वाच्यम्** वार्तिक से **शीर्ष** भाव होकर **स्थूलशीर्ष+अ** बन जाता है। आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **स्थौलशीर्ष** शब्द बना हुआ है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **स्थौलशीर्षम्** सिद्ध हो जाता है।

१६६८. खलयवमाषतिलवृषब्रह्मणश्च ५।१।७॥

खलाय हितं खल्यम्। यव्यम्। माष्यम्।
तिल्यम्। वृष्यम्। ब्रह्मण्यम्। चाद्रथ्या।

खलयवमाषतिलवृषब्रह्मणश्च। खलश्च यवश्च माषश्च तिलश्च वृषश्च ब्रह्म च तेषां समाहारद्वन्द्वः खलयवमाषतिलवृषब्रह्म, तस्मात् खलयवमाषतिलवृषब्रह्मणः, पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **तस्मै हितम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **यत्, प्रत्ययः,**

परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

चतुर्थी-समर्थ खल, यव, माष, तिल, वृष और ब्रह्मन् इन प्रातिपदिकों से हित-अर्थ में यत् प्रत्यय होता है।

खलाय हितं खल्यम्। खलिहान के लिये उपयुक्त। खलाय हितम् विग्रह करके **खल+ङे** से **खलयवमाषतिलवृषब्रह्मणश्च** सूत्र के द्वारा यत्-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप होकर खल्य बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **खल्यम्** सिद्ध हो जाता है।

यव्यम्। जौ के लिये उपयुक्त। **यवेभ्यो हितम्** विग्रह करके **यव+भ्यस्** से **खलयवमाषतिलवृषब्रह्मणश्च** सूत्र के द्वारा यत्-प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **यव्य** और स्वादिकार्य होकर **यव्यम्** सिद्ध हो जाता है।

माष्यम्। ऊड़द के लिये उपयुक्त। **माषेभ्यो हितम्** विग्रह करके **माष+भ्यस्** से **खलयवमाषतिलवृषब्रह्मणश्च** सूत्र के द्वारा यत्-प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **माष्य** और स्वादिकार्य होकर **माष्यम्** सिद्ध हो जाता है।

तिल्यम्। तिल के लिये उपयुक्त। **तिलेभ्यो हितम्** विग्रह करके **तिल+भ्यस्** से **खलयवमाषतिलवृषब्रह्मणश्च** सूत्र के द्वारा यत्-प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **तिल्य** और स्वादिकार्य होकर **तिल्यम्** सिद्ध हो जाता है।

वृष्यम्। शक्ति की वृद्धि के लिये उपयुक्त। **वृषाय हितम्** विग्रह करके **वृष+ङे** से **खलयवमाषतिलवृषब्रह्मणश्च** सूत्र के द्वारा यत्-प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **वृष्य** और स्वादिकार्य होकर **वृष्यम्** सिद्ध हो जाता है।

ब्रह्मण्यम्। ब्राह्मण के लिये हितकारी। **ब्रह्मणे हितम्** विग्रह करके **ब्रह्मन्+ङे** से **खलयवमाषतिलवृषब्रह्मणश्च** सूत्र के द्वारा यत्-प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होने के बाद **ये चाभावकर्मणोः** सूत्र से प्रकृतिभाव होने के कारण टिलोपाभाव और नकार को णत्व होकर **ब्रह्मण्य** बन जाता है। स्वादिकार्य होकर **ब्रह्मण्यम्** सिद्ध हो जाता है।

चाद् रथ्या। प्रकृतसूत्र में च-शब्द अनुक्तसमुच्चय के लिये है अर्थात् जिन शब्दों का कथन सूत्र में नहीं है, उनसे भी यह प्रत्यय हो सके, एतदर्थ च-शब्द पठित है। शिष्टप्रयोगों को देखते हुये अनुक्त शब्दों से भी यह प्रत्यय किया जाता है। अतः **रथाय हितम्** विग्रह करके **रथ** शब्द से भी यत् प्रत्यय करके अकारलोप होने पर **रथ्य** और टाप् प्रत्यय होकर **रथ्या** बन जाता है। रथ के लिये उपयुक्त मार्ग।

१६६९. अजाविभ्यां थ्यन् ५।१।८॥
अजथ्या यूथिः। अविथ्या।

अजाविभ्यां थ्यन्। अजश्च अविश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः- अजावी, ताभ्याम् अजाविभ्याम्, पञ्चम्यन्तं, थ्यन् प्रथमान्तम्। **तस्मै हितम्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

चतुर्थी-समर्थ अज अवि इन प्रातिपदिकों से हित-अर्थ में थ्यन् प्रत्यय होता है।

थ्यन् में नकार इत्संज्ञक है, **थ्य** बचता है। थ्यन्-प्रत्ययान्त शब्द लोक में स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होता है, अतः टाप् होगा।

अजथ्या यूथिः। बकरों के हितकर, झुण्ड। **अजेभ्यो हिताः** और **अजाभ्यो हिताः** दोनों तरह के विग्रह हो सकते हैं। **प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम्** परिभाषा के अनुसार **अज**-शब्द के ग्रहण से **अजा** शब्द का भी ग्रहण होता है। **अज+भ्यस्** और **अजा+भ्यस्** इस स्थिति में **अजाविभ्यां थ्यन्** सूत्र के द्वारा थ्यन्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और **अजा** शब्द में **तसिलादिष्वाकृत्वसुचः** सूत्र से पुंवद्भाव होकर **अजथ्य** बन जाता है। टाप् होकर **अजथ्या** और स्वादिकार्य होकर अजथ्याः सिद्ध हो जाता है।

वैसे यह आशंका होती है कि **अजाविभ्यां थ्यन्** सूत्र में **अजा+अवि** ऐसा पदच्छेद है या अज+अवि ऐसा? किन्तु **अजावि** में **अज** शब्द का पूर्वप्रयोग हुआ है। यह तभी सम्भव है, जब अज शब्द होगा, क्योंकि **अजाद्यदन्तम्** सूत्र के द्वारा अदन्त का पूर्वप्रयोग होता है, यदि अजा शब्द होता तो **द्वन्द्वे घि** सूत्र के द्वारा **अवि** शब्द का पूर्वनिपात होकर **अव्यजा** बन जाता। वैसे लिङ्गविशिष्ट परिभाषा के द्वारा **अज** शब्द से **अजा** शब्द का ग्रहण होकर अजा शब्द से भी थ्यन् प्रत्यय हो जाता है।

अविथ्या। भेंडों के हितकर, झुण्ड। **अवीनां हिताः** विग्रह करके **अवि+भ्यस्** इस स्थिति में **अजाविभ्यां थ्यन्** सूत्र के द्वारा थ्यन्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और टाप् होकर **अविथ्या** बना हुआ है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **अविथ्याः** सिद्ध हो जाता है।

१६७०.आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात् खः ५।१।९॥

आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात् खः। विश्वे जनाः- विश्वजनाः(कर्मधारयः) भोगः उत्तरपदं यस्य स भोगोत्तरपदः। आत्मा च विश्वजनाश्च भोगोत्तरपदञ्च तेषां समाहारद्वन्द्वः- आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदम्, तस्मात्। आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात् पञ्चम्यन्तं,

खः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। तस्मै हितम् की अनुवृत्ति और प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः का अधिकार आ ही रहा है।

आत्मन्, विश्वजन शब्द तथा भोग उत्तरपद वाले शब्दों से 'हित' अर्थ में ख प्रत्यय होता है।

ख् के स्थान पर आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम् से ईन् आदेश होकर ईन बन जाता है।

१६७१. आत्माध्वानौ खे ६।४।१६९॥

एतौ खे प्रकृत्या स्तः। आत्मने हितमात्मनीनम्। विश्वजनीनम्। कर्मधारयादेवेष्यते। षष्ठीतत्पुरुषाद्बहुव्रीहेश्च छ एव। विश्वजनीयम्। 'पञ्चजनादुपसंख्यानम्' (वा.२९९६)। पञ्चजनीनम्। 'सर्वजनाट्ठञ् खश्च' (वा.२९९७)। सार्वजनिकः, सर्वजनीनः। 'महाजनाट्ठञ्' (वा.२९९८)। माहाजनिकः। मातृभोगीणः। पितृभोगीणः। राजभोगीनः। 'आचार्यादणत्वं च'(वा.१८४) आचार्यभोगीनः।

आत्माध्वानौ खे। आत्मा च अध्वा च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्व आत्माध्वानौ। आत्माध्वानौ प्रथमान्तं, खे सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। प्रकृत्यैकाच् से प्रकृत्या की अनुवृत्ति आती है।

ख प्रत्यय के परे रहते आत्मन् और अध्वन् शब्द को प्रकृतिभाव होता है।

नस्तद्धिते से प्राप्त टिलोप के निषेध के लिए प्रकृतिभाव किया जा रहा है।

आत्मनीनम्। अपने लिए हितकारी। आत्मने हितम् लौकिक विग्रह और आत्मन् ङे अलौकिक विग्रह है। आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात् खः से ख प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके आत्मन्+ख बना। खकार के स्थान पर ईन् आदेश होकर आत्मन्+ईन बना है। अब नस्तद्धिते से टिसंज्ञक अन् का लोप प्राप्त था, आत्माध्वानौ खे से प्रकृतिभाव हो जाने से वैसे ही रह गया अर्थात् उसका लोप नहीं हुआ। इस तरह आत्मनीन यह प्रातिपदिक बना। स्वादिकार्य करने पर आत्मनीनम् सिद्ध हो जाता है।

विश्वजनीनम्। सबों के लिए हितकारी। विश्वेभ्यो जनेभ्यो हितम् लौकिक विग्रह और विश्वजन+भ्यस् अलौकिक विग्रह है। अथवा विश्वे च ते जनाश्च विग्रह करके कर्मधारयसमास करके विश्वजन शब्द बना लेना चाहिये। उसके बाद आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात् खः से ख प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके विश्वजन+ख बना। खकार के स्थान पर ईन् आदेश होकर विश्वजन+ईन बना है।

यस्येति च से भसंज्ञक अकार का लोप, वर्णसम्मेलन और स्वादिकार्य करके **विश्वजनीनम्** सिद्ध हो जाता है।

कर्मधारयादेवेष्यते। षष्ठीतत्पुरुषाद्बहुव्रीहेश्च छ एव। विश्वजनीयम्। यह जो ऊपर **विश्वजन**-शब्द से ख-प्रत्यय किया गया है, वह कर्मधारयसमासयुक्त विश्वजन-शब्द से ही इष्ट है। **कर्मधारयादेवेष्यते** यह भाष्येष्टि है। अतः **विश्वस्य जनः** विग्रह करके षष्ठीतत्पुरुष और **विश्वो जनो यस्य** विग्रह करके बहुव्रीहिसमास होने पर ख-प्रत्यय न होकर छ-प्रत्यय ही होगा। फलतः **विश्वजनीयम्** सिद्ध होगा।

जन-शब्दान्त प्रातिपदिकों के सम्बन्ध में कुछ वार्तिक पढ़े गये हैं-

पञ्चजनादुपसङ्ख्यानम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- पञ्चजन-शब्द से भी ख-प्रत्यय कहना चाहिये। सूत्र में **विश्वजन** शब्द का ग्रहण है, न कि **पञ्चजन** का। अतः अप्राप्त होने के कारण वार्तिक की सार्थकता है।

पञ्चजनीनम्। पञ्चजन के हितकर। **पञ्चजनेभ्यो हितम्** विग्रह करके **पञ्चजन+भ्यस्** में **पञ्चजनादुपसङ्ख्यानम्** वार्तिक से **ख** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, खकार के स्थान पर **ईन** आदेश, भसंज्ञक अकार का लोप करके **पञ्चजनीन** और स्वादिकार्य करके **पञ्चजनीनम्** सिद्ध हो जाता है। **पञ्चजन** शब्द से चारों वर्ण तथा पाँचवें रथकार-जाति का ग्रहण किया जाता है।

सर्वजनाट्ठञ् खश्च। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- हितार्थ में सर्वजन-शब्द से भी ठञ्-प्रत्यय होता है और ख-प्रत्यय भी।

सार्वजनिकः, सर्वजनीनः। सभी जनों के लिये हितकारी। **सर्वजनेभ्यो हितम्** विग्रह करके **सर्वजन+भ्यस्** में **सर्वजनाट्ठञ् खश्च** वार्तिक से **ठञ्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, **ठ** के स्थान पर इकादेश और ञित् परे होने के कारण आदिवृद्धि तथा भसंज्ञक अकार का लोप होकर **सार्वजनिक** शब्द बना है। **ख**-प्रत्यय होने के पक्ष में **ईन्** आदेश, निमित्ताभाव के कारण वृद्धि का अभाव किन्तु भसंज्ञक अकार का लोप करके **सर्वजनीन** बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सार्वजनिकः** और **सर्वजनीनः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

महाजनाट्ठञ्। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- हितार्थ में महाजन-शब्द से ठञ्-प्रत्यय होता है।

माहाजनिकः। महापुरुषों के लिये उपयुक्त। **महाजनेभ्यो हितम्** विग्रह करके **महाजन+भ्यस्** में **महाजनाट्ठञ्** वार्तिक से **ठञ्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, **ठ** के स्थान पर इकादेश और ञित् परे होने के कारण आदिवृद्धि तथा भसंज्ञक अकार का लोप होकर **माहाजनिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **माहाजनिकः** सिद्ध हो जाता है।

मातृभोगीणम्। माता के शरीर के लिए हितकारी आहार आदि। **मातृभोगाय हितम्** लौकिक विग्रह और **मातृभोग ङे** अलौकिक विग्रह है। **आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात्**

खः से **ख** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **मातृभोग+ख** बना। **खकार** के स्थान पर **ईन्** आदेश होकर **मातृभोग+ईन** बना है। **यस्येति च** से भसंज्ञक अकार का लोप, वर्णसम्मेलन और **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से णत्व होने पर **मातृभोगीण** बना। स्वादिकार्य करके **मातृभोगीणः** सिद्ध हुआ।

पितृभोगीणः। राजभोगीनः। उपर्युक्त रीति से **पितृभोगीणः** और **राजभोगीनः** भी बन जाते हैं। **राजभोगीनः** में निमित्ताभाव के कारण णत्व नहीं होता।

आचार्यादणत्वं च। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- हितार्थ में आचार्य-शब्द से परवर्ती भोगान्त प्रातिपदिकों से विहित प्रत्यय के नकार को णत्वाभाव भी होता है। रेफ से परे नकार को णत्व प्राप्त होने के कारण निषेध किया गया है।

आचार्यभोगीनः। आचार्य के शरीर के लिए हितकारी आहार आदि। **आचार्यभोगाय हितम्** विग्रह करके **आचार्यभोग+ङे** में **आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात् खः** सूत्र से **ख** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, खकार के स्थान पर **ईन्** आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप करके **आचार्यभोगीन** बना है। **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से णत्व प्राप्त होने पर प्रकृतवार्तिक **आचार्यादणत्वं च** से उसका निषेध हो जाता है, फलतः **आचार्यभोगीन** में एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आचार्यभोगीनः** सिद्ध हो जाता है।

१६७२. सर्वपुरुषाभ्यां णढञौ ५।१।१०॥

'सर्वाण्णो वेति वक्तव्यम्' (वा.२९९९)। सर्वस्मै हितं सार्वम्, सर्वीयम्। 'पुरुषाद्धविकारसमूहतेनकृतेषु'(वा.३०००)। भाष्यकारप्रयोगात् तेनेत्यस्य द्वन्द्वमध्ये निवेशः। पुरुषस्य वधः पौरुषेयः। 'तस्येदम्' (सू.१५००) इत्यणि प्राप्ते। पुरुषस्य विकारः पौरुषेयः, 'प्राणिरजतादिभ्योऽञ्' (सू.१५३२) इत्यञि प्राप्ते। समूहेऽप्यणि प्राप्ते। 'एकाकिनोऽपि परितः पौरुषेयवृता इव' इति माघः। तेन कृते ग्रन्थेऽणि प्राप्ते, अग्रन्थे तु प्रासादादावप्राप्त एवेति विवेकः।

सर्वपुरुषाभ्यां णढञौ। सर्वश्च पुरुषश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः सर्वपुरुषौ, ताभ्यां सर्वपुरुषाभ्याम्। णश्च ढञ् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो णढञौ। **तस्मै हितम्** की अनुवृत्ति और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है। प्रकृति और प्रत्ययों में समानसंख्या होने के कारण **यथासङ्ख्यमनुदेशः समानाम्** की उपस्थिति होती है।

चतुर्थी-समर्थ सर्व और पुरुष इन प्रातिपदिकों से 'हित' अर्थ में क्रमशः ण और ढञ् प्रत्यय होते हैं।

ढञ् में ञकार इत्संज्ञक है और ढकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **एय्** आदेश होकर प्रत्यय का स्वरूप **एय** बन जाता है।

इस सूत्र में दो वार्तिक पठित हैं-

सर्वाण्णो वेति वक्तव्यम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- सर्व-शब्द से विकल्प से ण-प्रत्यय कहना चाहिये। सूत्र से नित्य से प्राप्त होने के कारण इष्टसिद्धि के लिये वार्तिक से वैकल्पिक किया गया है। ण-प्रत्यय न होने के पक्ष में औत्सर्गिक छ-प्रत्यय होगा।

सर्वस्मै हितं सार्वम्, सर्वीयम्। सबों के लिये हितकारी। **सर्वस्मै हितम्** विग्रह करके **सर्व+ङे** में **सर्वाण्णो वेति वक्तव्यम्** वार्तिक की सहायता से **सर्वपुरुषाभ्यां णढञौ** सूत्र से विकल्प से **ण** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करके **सार्व** शब्द बना है। ण-प्रत्यय न होने के पक्ष में **प्राक्क्रीताच्छः** से छ-प्रत्यय, ईयादेश आदि होकर **सर्वीय** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सार्वम्** और **सर्वीयम्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

अगले वार्तिक से **पुरुष** शब्द के सम्बन्ध में **हित** अर्थ का त्याग करके ढ-प्रत्यय की कल्पना की गयी है-

पुरुषाद्वधविकारसमूहतेनकृतेषु। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- पुरुष-शब्द से वध, विकार, समूह और तेनकृत अर्थों में ढञ् प्रत्यय होता है।

उक्त वार्तिक में **वधश्च विकारश्च समूहश्च तेनकृतश्च** विग्रह करके इतरेतरयोगद्वन्द्वसमास किया गया है। यहाँ पर यह शंका होती है कि **तेन कृतः** विग्रह में भी समास है और समास होने के बाद विभक्ति का लुक् होकर **तत्कृत** होना चाहिये किन्तु **तेनकृत** ऐसा प्रयोग कैसे किया गया? इसका समाधान कर रहे हैं-

भाष्यकारप्रयोगात् तेनेत्यस्य द्वन्द्वमध्ये निवेशः। भाष्यकार ने ही **तेनकृत** का प्रयोग किया है, अतः तेन का भी द्वन्द्वमध्य में निवेश साधु माना जाता है। जब भाष्यकार का ही प्रयोग है तो वहाँ पर शंका का कोई स्थान ही नहीं है। अथवा तृतीया का निपातनवश अलुक् माना जा सकता है। निपातन प्रकृत वार्तिक में ही दृष्टिगोचर है। **वध, विकार** और **समूह** अर्थ में प्रयोगवशात् समर्थ-विभक्ति षष्ठी होती है और **तेनकृत** में **तेन** का निर्देश होने से तृतीया ही समर्थ-विभक्ति हो जाती है।

पुरुषस्य वधः पौरुषेयः। पुरुष का वध। **पुरुषस्य वधः** विग्रह करके **पुरुष+ङस्** में **पुरुषाद्वधविकारसमूहतेनकृतेषु** वार्तिक से अर्थ की सहायता लेकर **सर्वपुरुषाभ्यां णढञौ** सूत्र से **ढञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, ढकार के स्थान पर एयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करके **पौरुषेय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पौरुषेयः** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह-

पुरुषाणां विकारः पौरुषेयः (पुरुषों का विकार)।
पुरुषाणां समूहः पौरुषेयः (पुरुषों का समूह)।
पुरुषैः कृतः पौरुषेयः (पुरुषों के द्वारा बनाया गया)।

'तस्येदम्' इत्यणि प्राप्ते। अर्थात् **पुरुषस्य वधः** विग्रह में **तस्येदम्** सूत्र के द्वारा अण् प्राप्त था, उसे बाधकर प्रकृतसूत्र से ढञ्-प्रत्यय किया गया है।

पुरुषस्य विकारः पौरुषेयः, 'प्राणिरजतादिभ्योऽञ्' इत्यञि प्राप्ते। अर्थात् विकारार्थ में **प्राणिरजतादिभ्योऽञ्** सूत्र से **अञ्** प्रत्यय प्राप्त था, उसे बाधकर प्रकृतसूत्र से ढञ् प्रत्यय किया गया है।

समूहेऽप्यणि प्राप्ते। अर्थात् **पुरुषस्य समूहः** विग्रह में **तस्य समूहः** सूत्र के द्वारा अण् प्राप्त होने पर उसे बाधकर प्रकृतसूत्र से ढञ् प्रत्यय किया गया है।

'एकाकिनोऽपि परितः पौरुषेयवृता इव' इति माघः। समूहार्थ में ढञ्-प्रत्ययान्तता का उदाहरण महाकवि माघ द्वारा विरचित **शिशुपालवध** में प्राप्त होता है- **पौरुषेयवृताः।** उक्त पद्य का अर्थ है- यद्यपि वे अकेले ही थे तथापि तेजस्विता के कारण पुरुष-समुदाय से युक्त के समान दिखाई पड़ते थे।

तेन कृते ग्रन्थेऽणि प्राप्ते, अग्रन्थे तु प्रासादादावप्राप्त एवेति विवेकः। अर्थात् **तेन कृते ग्रन्थे** (उसके द्वारा विरचित ग्रन्थ) अर्थ में भी **कृते ग्रन्थे** (४.३.११६) सूत्र से अण् प्राप्त था, उसे बाधकर प्रकृतसूत्र से ढञ् प्रत्यय किया गया है। **अग्रन्थे**=क्रियमाण ग्रन्थ अभिधेय से भिन्न **प्रासादादौ**=उसके द्वारा निर्मित महल (**तेन कृतः प्रासादः**) इत्यादि अभिधेय होने पर उक्त सूत्र से अण् भी प्राप्त नहीं था, सो अपूर्वविधि के लिये प्रकृतसूत्र से ढञ् प्रत्यय किया गया है, ऐसा समझना चाहिये।

१६७३. माणवचरकाभ्यां खञ् ५।१।११॥

माणवाय हितं माणवीनम्। चारकीणम्।

माणवचरकाभ्यां खञ्। माणवश्च चरकश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो माणवचरकौ, ताभ्यां माणवचरकाभ्यां पञ्चम्यन्तं, खञ् प्रथमान्तम्। **तस्मै हितम्** की अनुवृत्ति और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

चतुर्थी-समर्थ माणव और चरक इन प्रातिपदिकों से 'हित' अर्थ में खञ् प्रत्यय होता है।

माणवाय हितं माणवीनम्। छात्र के लिये हितकारी। **माणवाय हितम्** विग्रह करके **माणव+ङे** से **माणवचरकाभ्यां खञ्** सूत्र से खञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, खकार के स्थान पर **ईन्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, पर्जन्यवल्लक्षणन्यायेन आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **माणवीन** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **माणवीनम्** सिद्ध हो जाता है।

चारकीणम्। चरक के लिये हितकर। **चरकाय हितम्** विग्रह करके **चरक+ङे** से **माणवचरकाभ्यां खञ्** सूत्र से खञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, खकार के स्थान पर **ईन्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप और रेफ से परवर्ती नकार को णत्व होकर **चारकीण** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **चारकीणम्** सिद्ध हो जाता है।

विशेषः- सूत्रोक्त **माणव** शब्द की निष्पत्ति **मनु** शब्द से मानी गयी है। **मनोर्जातावञ्यतौ षुक् च** (४.१.१६१) सूत्र के भाष्य में एक श्लोकवार्तिक पठित है-

अपत्ये कुत्सिते मूढे मनोरौत्सर्गिकः स्मृतः।

नकारस्य च मूर्धन्यस्तेन सिद्ध्यति माणवः॥ अर्थात् मनु की मूढ और कुत्सित सन्तति अर्थ में **मनु**-शब्द से औत्सर्गिक अण् प्रत्यय होकर **मनु+अ** बनने पर आदिवृद्धि, उकार को गुण ओकार और उसको अवादेश होकर **मानव** बन जाने पर नकार को मूर्धन्य (णकार) आदेश होने पर **माणव** शब्द की सिद्धि होती है। वस्तुतः यह शब्द प्रारम्भिक ब्रह्मचर्यावस्था का द्योतक है। इसी तरह **चरक** शब्द भी विद्यार्थी के लिये प्रयुक्त होता था। **चरति इति चरः** और **चर एव चरकः**। यहाँ **चर गतिभक्षणयोः** धातु से पचादिगणीय अच् प्रत्यय होकर **चर** शब्द बनता है और उससे स्वार्थ में **क** प्रत्यय होकर **चरक** शब्द निष्पन्न होता है। गुरुकुलं में ब्रह्मचर्य की अवधि समाप्त कर लेने पर जो उच्चतर ज्ञान की खोज में विचरते थे, ऐसे उच्चतर विद्वानों की अन्वर्थसंज्ञा **चरक** है।

यहाँ तक केवल हितार्थ में प्रत्यय किये गये थे। प्राक्क्रीतीय में यह पहला अर्थक्रम था। अब दूसरे अर्थक्रम **विकृति के लिये जो प्रकृति** अर्थ में प्रत्यय किया जा रहा है-

१६७४. तदर्थं विकृतेः प्रकृतौ ५।१।१२॥

विकृतिवाचकाच्चतुर्थ्यन्तात् तदर्थायां प्रकृतौ वाच्यायां प्रत्ययः स्यात्। अङ्गारेभ्य एतानि अङ्गारीयाणि काष्ठानि। प्राकारीया इष्टकाः। शङ्कव्यं दारु।

तदर्थं विकृतेः प्रकृतौ। तस्मै इदं तदर्थम्, चतुर्थीतत्पुरुषः। तदर्थं प्रथमान्तं, विकृतेः पञ्चम्यन्तं, प्रकृतौ सप्तम्यन्तम्। **तस्मै हितम्** से **तस्मै** की अनुवृत्ति और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

चतुर्थी-समर्थ विकृतिवाची प्रातिपदिक से प्रकृति=कारण अभिधेय हो तो यथाविहित प्रत्यय होते हैं, यदि वह प्रकृति विकृति के लिये हो तो।

सूत्र में प्रथमान्त **तदर्थम्** सप्तमी के अर्थ में प्रयुक्त है। **तदर्थ**-शब्दस्थ **तत्** पद विकृति का बोधक है। किसी भी कार्य का कारण प्रकृति होती है और कारण का विकार विकृति कहलाता है।

अङ्गारेभ्य एतानि अङ्गारीयाणि काष्ठानि। कोयले के लिये ये लकड़ी। यहाँ

पर **कोयला** विकृति है और उसकी प्रकृति है **काष्ठ**। यहाँ पर विकृतिवाची **अङ्गार** से प्रकृति अर्थात् **काष्ठ** अभिधेय हो रहा है। अतः **अङ्गारेभ्य एतानि काष्ठानि** विग्रह करके **अङ्गार+भ्यस्** से **तदर्थं विकृतेः प्रकृतौ** सूत्र से छ-प्रत्यय, ईयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप करके **अङ्गारीय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर प्रथमा-बहुवचन में **अङ्गारीयाणि** सिद्ध हो जाता है। एकवचन और द्विवचन में क्रमशः **अङ्गारीयम्, अङ्गारीये** बनते हैं।

प्राकारीया इष्टकाः। चारदिवारी के लिये ईंटें। यहाँ पर **प्राकार** विकृति है और उसकी प्रकृति है **इष्टक**। यहाँ पर विकृतिवाची **प्राकार** से प्रकृति अर्थात् **इष्टक** (**ईंटों**) का अभिधान हो रहा है। अतः **प्राकाराय एताः इष्टकाः** विग्रह करके **प्राकारा+ङे** से **तदर्थं विकृतेः प्रकृतौ** सूत्र से छ-प्रत्यय, ईयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप करके **प्राकारीय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर प्रथमा-बहुवचन में **प्राकारीयाः** सिद्ध हो जाता है।

शङ्कव्यं दारु। खूँटी बनाने के लिये लकड़ी। यहाँ पर **शङ्कु** विकृति है और उसकी प्रकृति है **दारु**। यहाँ पर विकृतिवाची **शङ्कु** से प्रकृति अर्थात् **दारु** (**लकड़ी**) का अभिधान हो रहा है। अतः **शङ्कवे इदं दारु** विग्रह करके **शङ्कु+ङे** से **तदर्थं विकृतेः प्रकृतौ** सूत्र से यत्-प्रत्यय होता है, क्योंकि यह सूत्र यथाविहित प्रत्यय का विधान करता है और शङ्कु शब्द से **उगवादिभ्यो यत्** सूत्र से यत् का विधान किया गया है। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और उकार को गुण ओकार और उसको अवादेश होकर **शङ्कव्य** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **शङ्कव्यम्** सिद्ध हो जाता है।

१६७५. छदिरुपधिबलेर्ढञ् ५।१।१३॥

छादिषेयाणि तृणानि। बालेयास्तण्डुलाः।
'उपधिशब्दात् स्वार्थे इष्यते' (वा.३००३)।
उपधीयेत इत्युपधिः, रथाङ्गम्, तदेव औपधेयम्।

छदिरुपधिबलेर्ढञ्। छदिस् च उपधिश्च बलिश्च तेषां समाहारद्वन्द्वः छदिरुपधिबलिः, तस्मात् छदिरुपधिबलेः, सौत्रं पुंस्त्वम्। छदिरुपधिबलेः पञ्चम्यन्तं, ढञ् प्रथमान्तम्। **तदर्थं विकृतेः प्रकृतौ** के सभी पदों की **तस्मै हितम्** से **तस्मै** की अनुवृत्ति और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

चतुर्थी-समर्थ विकृतिवाची छदिस्, उपधि और बलि इन प्रातिपदिकों से प्रकृति=कारण अभिधेय हो तो ढञ् प्रत्यय होता है, यदि वह प्रकृति विकृति के लिये हो तो।

यह छ-प्रत्यय का अपवाद प्रत्यय है।

छादिषेयाणि तृणानि। छाजन=छप्पर बनाने के लिये उपयोगी घासफूस। यहाँ पर **छदिस्** विकृति है और उसकी प्रकृति है **तृण**। यहाँ पर विकृतिवाची **छादिषेय** से प्रकृति अर्थात् **तृण** का अभिधान हो रहा है। अतः **छदिसे इमानि तृणानि** विग्रह करके **छदिस्+ङे** से **छदिरुपधिबलेर्ढञ्** सूत्र से ढञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, ढकार के स्थान पर **एय्** आदेश होकर **छदिस्+एय** बना है। आदिवृद्धि और सकार को षत्व होकर **छादिषेय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर प्रथमा-बहुवचन में **छादिषेयाणि** सिद्ध हो जाता है।

बालेयास्तण्डुलाः। बलि=देवपूजा के लिये उपयोगी चावल। यहाँ पर **बलि** विकृति है और उसकी प्रकृति है **तण्डुल**। **बलये इमे तण्डुलाः** विग्रह करके **बलि+ङे** से **छदिरुपधिबलेर्ढञ्** सूत्र से ढञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, ढकार के स्थान पर **एय्** आदेश, आदिवृद्धि और भसंज्ञक इकार का लोप होकर **बालेय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर प्रथमा-बहुवचन में **बालेयाः** सिद्ध हो जाता है।

उपधिशब्दात् स्वार्थे इष्यते। यह वार्तिक है। उपधि-शब्द से स्वार्थ में ढञ् प्रत्यय इष्ट है। अतः तदर्थ में नहीं होगा।

उपधीयेत इत्युपधिः, रथाङ्गम्, तदेव औपधेयम्। जो पूरे रथ को धारण करता है, उसे उपधि=रथाङ्ग=चक्र कहते हैं और **उपधि** को ही **औपधेय** कहा जाता है। यहाँ पर देखा गया कि **उपधि** का जो अर्थ है, वही अर्थ **औपधेय** का भी है। ढञ् प्रत्यय होने पर भी अर्थ में कोई विशेषता नहीं है। **अनिर्दिष्टार्थाः प्रत्ययाः स्वार्थे भवन्ति** के नियम से विशेष अर्थ को उपस्थापित न करने वाले प्रत्यय स्वार्थिक माने जाते हैं। अतः **उपधिः एव** विग्रह करके **उपधि+सु** से **छदिरुपधिबलेर्ढञ्** सूत्र से ढञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, ढकार के स्थान पर **एय्** आदेश, आदिवृद्धि और भसंज्ञक इकार का लोप होकर **औपधेय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **औपधेयम्** सिद्ध हो जाता है।

१६७६. ऋषभोपानहो ञ्यः ५।१।१४॥

छस्यापवादः। आर्षभ्यो वत्सः। औपानह्यो मुञ्जः। चर्मण्यप्ययमेव पूर्वविप्रतिषेधेन। औपानह्यं चर्म।

ऋषभोपानहो ञ्यः। ऋषभश्च उपानत् च तयोः समाहारद्वन्द्व ऋषभोपानत्, तस्माद् ऋषभोपानहः, पञ्चम्यन्तं, ञ्यः प्रथमान्तम्। **तदर्थं विकृतेः प्रकृतौ** के सभी पदों की **तस्मै हितम्** से **तस्मै** की अनुवृत्ति और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

चतुर्थी-समर्थ विकृतिवाची ऋषभ और उपानह् इन प्रातिपदिकों से प्रकृति=कारण अभिधेय हो तो ञ्य प्रत्यय होता है, यदि वह प्रकृति विकृति के लिये हो तो।

छस्यापवादः। यह छ-प्रत्यय का अपवाद प्रत्यय है।

आर्षभ्यो वत्सः। साँड़ बनाने के लिये उपयुक्त बछड़ा। **ऋषभाय अयम्** विग्रह करके **ऋषभ+ङे** में **ऋषभोपानहो ञ्यः** सूत्र से ञ्य-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होने पर ञित् परे होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से प्रकृति आदि-अच् ऋकार की वृद्धि, रपर होकर **आर्षभ+य** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके **आर्षभ्य** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आर्षभ्यः** सिद्ध हो जाता है।

औपानह्यो मुञ्जः। जूता बनाने के लिये उपयुक्त मूँज। **उपानहे अयम्** विग्रह करके **उपानह्+ङे** में **ऋषभोपानहो ञ्यः** सूत्र से ञ्य-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि होकर **औपानह्य** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **औपानह्यः** सिद्ध हो जाता है।

चर्मण्यप्ययमेव पूर्वविप्रतिषेधेन। अर्थात् चर्म-अर्थ अभिधेय होने पर भी वक्ष्यमाण सूत्र **चर्मणोऽञ्** को पूर्वविप्रतिषेध के नियम से बाधकर प्रकृतसूत्र से विधीयमान ञ्य-प्रत्यय ही होता है। यह पूर्वविप्रतिषेध की चर्चा **उगवादिभ्यो यत्** सूत्र के भाष्य में है।

औपानह्यं चर्म। जूता बनाने के लिये उपयुक्त चमड़ा। इसकी सिद्धि पूर्ववत् होती है।

१६७७. चर्मणोऽञ् ५।१।१५॥

चर्मणो या विकृतिस्तद्वाचकादञ् स्यात्।
वर्ध्र्यै इदं वार्ध्रं चर्म। वारत्रं चर्म।

चर्मणोऽञ्। चर्मन्-शब्दस्य षष्ठ्यन्तं रूपं चर्मणः, अञ् प्रथमान्तम्। **तदर्थं विकृतेः प्रकृतौ** के सभी पदों की **तस्मै हितम्** से **तस्मै** की अनुवृत्ति और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

चतुर्थी-समर्थ चर्म के विकार-वाचक प्रातिपदिकों से तदर्थ प्रकृति अभिधेय होने पर अञ् प्रत्यय होता है।

चर्मणः को पञ्चम्यन्त मानने पर केवल चर्मन्-शब्द से ही प्रत्यय होगा, न कि चर्म-विकारवाची से। अतः इसे षष्ठ्यन्त माना गया है।

वर्ध्र्यै इदं वार्ध्रं चर्म। ताँत बनाने के लिये उपयुक्त चमड़ा। **वर्ध्र्यै इदम्** विग्रह करके **वर्ध्री+ङे** में **चर्मणोऽञ्** सूत्र से अञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि होकर **वार्ध्री+अ** बनने पर भसंज्ञक ईकार का लोप होकर **वार्ध्र** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वार्ध्रम्** सिद्ध हो जाता है।

वारत्रं चर्म। ताँत बनाने के लिये उपयुक्त चमड़ा। **वरत्रायै इदम्** विग्रह करके

वरत्रा+ङे में **चर्मणोऽञ्** सूत्र से अञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक आकार का लोप होकर **वारत्र** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वारत्रम्** सिद्ध हो जाता है।

अमरकोश के अनुसार वध्री, वरत्रा शब्द डोरी के वाचक हैं- **नध्री, वर्ध्री, वरत्रा स्यात्।**

यहाँ विकृति-प्रकृति अर्थ की निवृत्ति हो जाती है। अब प्राक्क्रीतीय के तृतीय अर्थक्रम **तदस्य स्यात्** और **तदस्मिन् स्यात्** अर्थों में प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है-

१६७८. तदस्य तदस्मिन् स्यादिति ५।१।१६॥

प्राकार आसामिष्टकानां स्यात् प्राकारीया इष्टकाः।
प्रासादीयं दारु। प्राकारोऽस्मिन् स्यात् प्राकारीयो देशः।
इतिशब्दो लौकिकीं विवक्षामनुसारयति।
तेनेह न- प्रासादो देवदत्तस्य स्यादिति।

तदस्य तदस्मिन् स्यादिति। तत् प्रथमान्तम्, अस्य षष्ठ्यन्तं, तत् प्रथमान्तम्, अस्मिन् सप्तम्यन्तं, स्यात् क्रियापदम्, इत्यव्ययम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है। तदिति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकात् षष्ठ्यर्थे सप्तम्यर्थे च यथाविहितं प्रत्ययो भवति, यत्तत् प्रथमासमर्थं स्यात् चेत् तद्भवति।

प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में और प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से सप्तम्यर्थ में भी यदि वह प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक स्यात्-क्रिया के साथ समानाधिकरण वाला तो यथाविहित प्रत्यय होते हैं।

सूत्र में **तत्** पद प्रथमा-समर्थ-विभक्ति का बोधक है और **अस्य** पद षष्ठ्यर्थ का सूचक है। इसी तरह द्वितीय **तत्** पद भी प्रथमा-समर्थ-विभक्ति का और **अस्मिन्** पद सप्तम्यर्थ का सूचक है। सम्भावना-बोधक **स्यात्** पद प्रथमा-समर्थ के सामानाधिकरण्य का सूचक है।

पहले षष्ठ्यर्थ का उदाहरण दे रहे हैं-

प्राकार आसामिष्टकानां स्यात् प्राकारीया इष्टकाः। चारदिवारी बनना जिन ईटों से सम्भव हो। **प्राकारः आसाम् इष्टकानां स्यात्** विग्रह करके **प्राकार+सु** से **तदस्य तदस्मिन् स्यादिति** सूत्र के द्वारा **छ**-प्रत्यय, ईयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **प्राकारीय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर प्रथमा-बहुवचन में **प्राकारीयाः** सिद्ध हो जाता है।

प्रासादीयं दारु। महल बनना जिस लकड़ी से सम्भव हो। **प्रासादः स्याद् अस्य दारुणः** विग्रह करके **प्रासाद+सु** से **तदस्य तदस्मिन् स्यादिति** सूत्र के द्वारा **छ**-प्रत्यय, ईयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **प्रासादीय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **प्रासादीयम्** सिद्ध हो जाता है।

अब सप्तम्यर्थ का उदाहरण दे रहे हैं-

प्राकारोऽस्मिन् स्यात् प्राकारीयो देशः। चारदिवारी बनना सम्भव हो, जिस स्थान पर। **प्राकारः स्याद् अस्मिन् देशे** विग्रह करके **प्राकार+सु** से **तदस्य तदस्मिन् स्यादिति** सूत्र के द्वारा **छ**-प्रत्यय, ईयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **प्राकारीय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **प्राकारीयः** सिद्ध हो जाता है।

इतिशब्दो लौकिकीं विवक्षामनुसारयति। तेनेह न- प्रासादो देवदत्तस्य स्यादिति। सूत्र में प्रयुक्त **इति**-शब्द लौकिक विवक्षा का अनुसरण कराता है अर्थात् सर्वसाधारण के साथ वस्तु के सम्बन्ध की स्थिति में प्रचलित शिष्ट-व्यवहार के अनुसार ही इस सूत्र को प्रवृत्त कराता है। अत एव **प्रासादो देवदत्तस्य स्यात्** विग्रह में व्यक्तिविशेष से सीमित सम्बन्धता विवक्षित होने के कारण सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती, अर्थात् छ-प्रत्यय नहीं होता।

१६७९. परिखाया ढञ् ५।१।१७॥

पारिखेयी भूमिः।

॥ इति तद्धितेषु छयतोः पूर्णोऽवधिः॥

परिखाया ढञ्। परिखायाः पञ्चम्यन्तं, ढञ् प्रथमान्तम्। **तदस्य तदस्मिन् स्यादिति** के सभी पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

प्रथमा-समर्थ परिखा-प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ और सप्तम्यर्थ में यदि वह प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक स्यात्-क्रिया के साथ समानाधिकरण वाला हो तो ढञ् प्रत्यय होता है।

पारिखेयी भूमिः। खाई बनाने के लिये पर्याप्त भूमि। **परिखा स्यात् अस्याः अस्यां वा** विग्रह करके **परिखा+सु परिखाया ढञ्** सूत्र के द्वारा ढञ् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप और **ढकार** के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र के द्वारा **एय्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **परिखा+एय** बना हुआ

है। आदिवृद्धि और भसंज्ञक आकार का लोप होकर **पारिखेय** शब्द बन जाता है। **भूमि** शब्द का विशेषण होने के कारण **पारिखेय** शब्द से स्त्रीत्वविवक्षा में **टिड्ढाणञ्०** सूत्र के द्वारा ङीप् होकर **पारिखेयी** शब्द बन जाता है, इसके बाद स्वादिकार्य होता है।

इति तद्धितेषु छयतोः पूर्णोऽवधिः। तद्धित के छ और यत् प्रत्ययों का अधिकार यहीं पूरा हो जाता है।

श्री भट्टोजिदीक्षित द्वारा विरचित वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी की
गोविन्दाचार्य कृत श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी टीका में
तद्धितीय-छयद्विधि-प्रकरण पूर्ण हुआ।

●

अथार्हीयप्रकरणम्

अब **आर्हीय-प्रकरण** प्रारम्भ होता है। **तदर्हति** (५.१.६३) सूत्र से **अर्हति**-अर्थ में प्रत्यय किया जाता है और **आर्हादगोपुच्छसङ्ख्यापरिमाणाट्ठक्** (५.१.१९) सूत्र में **आर्हात्** पद से **आ अर्हात्** अर्थात् **तदर्हति** सूत्र तक के प्रत्यय एवं अर्थों को **आर्हीय** कहा गया है। इसमें **प्राग्वतेष्ठञ्** (५.१.१८) से **तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः** (५.१.११५) तक **ठञ्** का अधिकार है, अतः इसे **ठञधिकार-प्रकरण** भी कहते हैं। उसके अन्दर अपवाद के रूप में अण्, अञ् आदि प्रत्यय भी होते हैं। इस अवधि में लगभग २७ अर्थों में प्रत्ययों का विधान है। **वति**-शब्द के उच्चारण से पहले तक के प्रत्ययों या अर्थों को **प्राग्वहतीय** भी कहा जाता है। पूरे तद्धित-प्रकरण में **तद्धिताः**, **ङ्याप्प्रातिपदिकात्**, **प्रत्ययः**, **परश्च** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार रहता ही है। अतः ङ्यन्त, आबन्त और प्रातिपदिक से परे ये तद्धित प्रत्यय किये जाते ही हैं।

१६८०. प्राग्वतेष्ठञ् ५।१।१८॥

'तेन तुल्यम्-' (सू.१७७८) इति वतिं वक्ष्यति, ततः प्राक् ठञधिक्रियते।

प्राग्वतेष्ठञ्। प्राक् अव्ययपदं, वतेः पञ्चम्यन्तं, ठञ् प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्।

'तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः' सूत्र से वति-प्रत्यय कहा जायेगा, उससे पहले तक ठञ् का अधिकार रहता है।

ञकार इत्संज्ञक है। ञित् होने से आदिवृद्धि हो सकेगी। **ठ** के स्थान पर **ठस्येकः** से **इक** आदेश होता है। सूत्रस्थ **वतेः** पद से **तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः** (५.१.११५) सूत्र लक्षित होता है। यहाँ भी अर्थप्रधान निर्देश है। **वति** अर्थ के प्रारम्भ होने से पहले तक ठञ् का अधिकार होगा। तदनुसार उन सब अर्थों में प्रत्ययों का निर्देश न किये जाने पर सामान्यतः ठञ् प्रत्यय ही औत्सर्गिक रूप में किया जायेगा।

अब एक मध्ये-पठित दूसरे अधिकार की चर्चा की जा रही है-

१६८१. आर्हादगोपुच्छसङ्ख्यापरिमाणाट्ठक् ५।१।१९॥

'तदर्हति' (सू.१७२८) इत्येतदभिव्याप्य ठञधिकारमध्ये ठञोऽपवाद-ष्ठगधिक्रियते गोपुच्छादीन् वर्जयित्वा।

आर्हादगोपुच्छसङ्ख्यापरिमाणाट्ठक्। गोपुच्छं च सङ्ख्या च परिमाणं च तेषां समाहारद्वन्द्वो गोपुच्छसङ्ख्यापरिमाणं, न गोपुच्छसङ्ख्यापरिमाणम् अगोपुच्छसङ्ख्यापरिमाणं, तस्माद् अगोपुच्छसङ्ख्यापरिमाणात्। आ अव्ययम्, अर्हात् पञ्चम्यन्तं, गोपुच्छसङ्ख्यापरिमाणात् पञ्चम्यन्तं, ठक् प्रथमान्तम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

इस सूत्र से लेकर 'तदर्हति' सूत्र तक ठञ् के अधिकार के मध्य उसका अपवादभूत ठक्-प्रत्यय का अधिकार किया जाता है किन्तु गोपुच्छ, सङ्ख्यावाची और परिमाणवाची शब्दों के सम्बन्ध में ठक् का अधिकार नहीं होता।

तात्पर्य यह है कि **प्राग्वतेष्ठञ्** के अधिकार के बीच में ही ठक् का अधिकार कर दिया गया है, सो यह उसका अपवाद है। सूत्रस्थ **आर्हात्** पद में **आ+अर्हात्** ऐसा पदच्छेद है और **आङ्** अभिविधि अर्थ में प्रयुक्त है। अतः **आ अर्हात्** का अर्थ होगा- **तदर्हति** सूत्र पर्यन्त। तदनुसार वहीं तक ठक् का अधिकार रहेगा। उसमें गोपुच्छ, संख्यावाची और परिमाणवाची शब्दों में यह ठक् प्रभावी नहीं होगा अर्थात् गोपुच्छादि में ठञ् ही होगा। ठक् और ठञ् प्रत्ययों के होने पर यद्यपि रूपों में कोई अन्तर नहीं आता, तथापि स्वरभेद रहता है।

यहाँ पर यह समझना चाहिये कि यह ठक्-प्रत्यय का अधिकार कोई पृथक् अधिकार नहीं है अपितु ठञ्-प्रत्यय के अधिकार में जो २७ अर्थ आते हैं, उन्हीं में से ११ अर्थों में यह ठक् प्रत्यय लगाना चाहिये, वह भी गोपुच्छादि शब्दों को छोड़कर। यदि सभी शब्दों से इन ११ अर्थों में ठक् लगना होता तो ठक् का पृथक् अधिकार ही बना देते किन्तु ठक् तो ठञ् के अधिकार के भीतर ही कुछ स्थान के लिये विहित है। अतः यह ठक् प्रत्यय का अधिकार ठञ् प्रत्यय के अधिकार का अपवाद है, क्योंकि उसी के निर्धारित स्थान में ही हो रहा है। इस तरह प्रकृत सूत्र अर्थात् मध्ये-पठित अधिकार में गोपुच्छ, संख्यावाची और परिमाणवाची शब्दों का समावेश नहीं किया गया है।

संख्यावाची तथा परिमाणवाची शब्दों का पृथक् ग्रहण करने से यह विदित होता है कि यहाँ संख्या परिमाण के रूप में अपेक्षित नहीं है अर्थात् परिमाण-शब्द केवल परिच्छेद-परक नहीं है। अतः महाभाष्य में **परिमाण** और **संख्या** में भेद दिखाया गया है। महाभाष्य में एक श्लोक वार्तिक पठित है-

ऊर्ध्वमानं किलोन्मानं परिमाणं तु सर्वतः।

आयामस्तु प्रमाणं स्यात् संख्या बाह्या तु सर्वतः॥ अर्थात् ऊँचाई जिससे नापी जाय, उसे **उन्मान** कहा जाता है और चारों तरफ के माप (विस्तार) को **परिमाण** कहा जाता है। इसी तरह केवल लम्बाई, दीर्घता आदि माप बताने के लिये **आयाम** शब्द का प्रयोग होता है और **संख्या** सर्वथा परिमाण से बाहर है। भाष्यकार ने आगे जाकर संख्या को केवल भेद-मात्रार्थक माना है, न कि मानादि का निर्धारक- **भेदमात्रं ब्रवीत्येषा नैषा मानं कुतश्चन।**

१६८२. असमासे निष्कादिभ्यः ५।१।२०॥

'आर्हात्' इत्येतत् 'तेन क्रीतम्' (सू.१७०२) इति यावत् सप्तदशसूत्र्यामनुवर्तते। निष्कादिभ्योऽसमासे ठक् स्यादार्हीयेष्वर्थेषु। नैष्किकम्। समासे तु ठञेव।

असमासे निष्कादिभ्यः। न समासोऽसमासस्तस्मिन् असमासे, नञ्तत्पुरुषः। निष्क आदिर्येषां ते निष्कादयस्तेभ्यो निष्कादिभ्यः, बहुव्रीहिः। असमासे सप्तम्यन्तं, निष्कादिभ्यः पञ्चम्यन्तम्। **ठक्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

निष्कादि-गणपठित प्रातिपदिक जब समास में विद्यमान न हों, तब उनसे आर्हीय अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है।

'आर्हात्' इत्येतत् 'तेन क्रीतम्' इति यावत् सप्तदशसूत्र्यामनुवर्तते। अर्थात् इस सूत्र से लेकर **तेन क्रीतम्** तक के १७ सूत्रों में **आ+अर्हात्** की अनुवृत्ति है, अतः उन्हें **आर्हीय** कहा जाता है। तब तक आर्हीय अर्थों में प्रत्यय होते रहेंगे।

ध्यान रहे कि **आर्हीय** (**तदर्हति** सूत्र पर्यन्त) ११ अर्थ बतायें गये हैं। उनका विवेचन यथास्थान किया जा रहा है। यह सूत्र ठञ् का अपवाद है।

नैष्किकम्। स्वर्णमुद्रा से खरीदा हुआ। स्वर्णमुद्रा को **निष्क** कहते हैं। **निष्केण क्रीतम्** विग्रह करके **निष्क+टा** इस स्थिति में **असमासे निष्कादिभ्यः** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** सूत्र से **ठ** के स्थान पर **इक** आदेश, **किति च** सूत्र से आदिवृद्धि और **यस्येति च** सूत्र से भसंज्ञकान्त्य वर्ण अकार का लोप होकर **नैष्किक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **नैष्किकः** सिद्ध हो जाता है।

निष्कादिगणः- निष्क, पण, पाद, माष, वाह, द्रोण, षष्टि।

समासे तु ठञेव। प्रकृतसूत्र में पठित **असमासे** पद से समास को प्राप्त निष्कादि शब्दों में ठक् प्रत्यय का निषेध किया गया है। अतः समास होने पर तो ठक् न होकर **ठञ्** ही होता है। उदाहरण आगे दिया जा रहा है।

अब प्रसंगवश सप्तमाध्यायस्थ उत्तरपदवृद्धिविधायक सूत्र को उपस्थापित कर रहे हैं-

१६८३. परिमाणान्तस्यासञ्ज्ञाशाणयोः ७।३।१७॥

उत्तरपदवृद्धिः स्याद् ञिदादौ।

परमनैष्किकः। 'असञ्ज्ञा' इति किम्? पञ्च कलापाः परिमाणमस्य पाञ्चकलापिकम्। 'तदस्य परिमाणम्' (सू.१७२३) इति ठञ्। असमासग्रहणं ज्ञापकं भवति 'इतः प्राक्तदन्तविधिः' इति। तेन सुगव्यम्, यवापूप्यमित्यादि।

इत ऊर्ध्वं तु-

'सङ्ख्यापूर्वपदानां तदन्तग्रहणं प्राग्वतेरिष्यते तच्चालुकि-' (वा.३०१८)। पारायणिकः। द्वैपारायणिकः। 'अलुकि' इति किम्? द्वाभ्यां शूर्पाभ्यां क्रीतं द्विशूर्पम्। द्विशूर्पेण क्रीते 'शूर्पादञ्-' (सू.१६९१) मा भूत्, किन्तु ठञ्। द्विशौर्पिकम्।

परिमाणान्तस्यासञ्ज्ञाशाणयोः। परिमाणम् अन्ते यस्य स परिमाणान्तस्तस्य परिमाणान्तस्य, बहुव्रीहिः। संज्ञा च शाणं च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः संज्ञाशाणे, न संज्ञाशाणे असंज्ञाशाणे, तयोरसंज्ञाशाणयोः, नञ्तत्पुरुषः। परिमाणान्तस्य षष्ठ्यन्तम्, असंज्ञाशाणयोः सप्तम्यन्तम्। **उत्तरपदस्य** और **अङ्गस्य** का अधिकार है। **मृजेर्वृद्धिः** से **वृद्धिः** की, **संख्यायाः संवत्सरसंख्यस्य च** से **संख्यायाः** की, **अचो ञ्णिति** के सभी पदों की, **तद्धितेष्वचामादेः** तथा **किति च** के सभी पदों की अनुवृत्ति आती है।

परिमाणवाची शब्द अन्त में है जिस अङ्ग के, उसके संख्यावाची शब्द से परवर्ती उत्तरपद के अचों में आदि अच् की वृद्धि होती है, ञित्, णित्, कित् तद्धित प्रत्यय के परे रहते किन्तु संज्ञा-विषय नहीं होना चाहिये और शाण-शब्द भी उत्तरपद में न हो तो।

परमनैष्किकः। उत्तम-निष्क (उत्तम सुवर्णमुद्रा) से खरीदा गया। **परमश्चासौ निष्कः** विग्रह करके कर्मधारयसमास होने पर **परमनिष्क** शब्द बना है। **परमनिष्केण क्रीतः** विग्रह करके **परमनिष्क+टा** इस स्थिति में समास होने के कारण **असमासे निष्कादिभ्यः** सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय तो नहीं होगा किन्तु **प्राग्वतेष्ठञ्** के अनुसार **तेन क्रीतम्** से ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** सूत्र से ठ के स्थान पर **इक** आदेश होकर **परमनिष्क+इक** बना है। **तद्धितेष्वचामादेः** सूत्र से आदि-अच् पकार से परवर्ती अकार की वृद्धि प्राप्त होने पर **परिमाणान्तस्यासंज्ञाशाणयोः** सूत्र से उत्तरपद **निष्क** के इकार की वृद्धि होकर **परमनैष्क+इक** बना है। **यस्येति च** सूत्र से भसंज्ञकान्त्य वर्ण अकार का लोप होकर **परमनैष्किक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **परमनैष्किकः** सिद्ध हो जाता है।

'असञ्ज्ञा' इति किम्? पञ्च कलापाः परिमाणमस्य पाञ्चकलापिकम्। 'तदस्य परिमाणम्' इति ठञ्। प्रकृतसूत्र में **असंज्ञाशाणयोः** पद का निवेश होने से संज्ञा के विषय में यह उत्तरपदवृद्धि नहीं होती। फलतः **पञ्च कलापाः परिमाणम् अस्य** (पाँच कलाप है परिमाण जिसके) विग्रह करके **पञ्चकलाप+जस्** इस स्थिति में **तदस्य परिमाणम्** (५.१.४) सूत्र से ठञ् प्रत्यय होने पर **पञ्चकलाप+इक** बना है। संज्ञा होने के कारण परिमाणान्त होने पर भी **परिमाणान्तस्यासंज्ञाशाणयोः** से उत्तरपदवृद्धि नहीं हुयी, अपितु **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिपदवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर

पाञ्चकलापिक शब्द बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पाञ्चकलापिकम्** सिद्ध हो जाता है।

अब **असमासे निष्कादिभ्यः** सूत्र में पठित समास-शब्द के विषय में आशंका की जाती है कि **परमनैष्किकः** रूप की सिद्धि तो औत्सर्गिक ठञ्-प्रत्यय करने पर भी हो जाती है, तथापि स्वरभेद के लिये **असमासे निष्कादिभ्यः** से ठक् की चरितार्थता स्वीकार की जाती है किन्तु **असमासे निष्कादिभ्यः** सूत्र के स्थान पर केवल **निष्कादिभ्यः** पढ़ा जाता तो भी तदन्तविधि होने के फलस्वरूप **परमनैष्किकः** निष्पन्न होने से इष्टसिद्धि हो जाती? इस पर कहा जाता है कि **ग्रहणवता प्रातिपदिकेन तदन्तविधिर्नास्ति** इस परिभाषा के बल पर तदन्तविधि नहीं होती। अतः उक्त सूत्र में **असमासे** पद का ग्रहण व्यर्थ हो जाता है। उसके वैयर्थ्य को मूलकार बता रहे हैं-

असमासग्रहणं ज्ञापकं भवति 'इतः प्राक्तदन्तविधिः' इति। प्रकृतसूत्र में **असमासे** का ग्रहण व्यर्थ होकर यह ज्ञापन करता है कि यहाँ से पूर्व अर्थात् **आर्हादगोपुच्छसंख्यापरिमाणाट्ठक्** तक प्रतिपादित विषयों में तदन्तविधि होती है अर्थात् उक्त परिभाषा बाधित रहती है। ज्ञापन से परिभाषा का बाध किया जाता है। इस ज्ञापन का क्या फल है? इस पर कहते हैं-

तेन सुगव्यम्, यवापूप्यमित्यादि। अर्थात् उक्त ज्ञापन से **सुगव्यम्, यवापूप्यम्** इत्यादि में ठञ् नहीं होता अपितु यत् ही होता है। तात्पर्य यह है कि तदन्तविधि होने के कारण **गो**-शब्द से **उगवादिभ्यो यत्** सूत्र से होने वाला यत् प्रत्यय गोशब्दान्त **सुगो** से भी हो जाता है। इसी तरह **अपूप** शब्द से **विभाषा हविरपूपादिभ्यः** सूत्र से होने वाला यत्-प्रत्यय अपूपान्त **यवापूप** शब्द से भी हो जाता है। अतः **सुगव्यम्, यवापूप्यम्** आदि की सिद्धि होती है।

यह तो सिद्ध हुआ कि **असमासे निष्कादिभ्यः** सूत्र में **असमासे** पद से यह ज्ञापित होता है कि उक्त सूत्र से पहले तक तदन्तविधि मान्य है किन्तु अब इससे आगे तदन्तविधि होती है या नहीं? यह प्रश्न उदित होता है। इसका समाधान वार्तिक के द्वारा कर रहे हैं-

इत ऊर्ध्वं तु- इस सूत्र से आगे तदन्तविधि होती है। तदन्तविधिविधायक वार्तिक को उपस्थापित करते हैं-

सङ्ख्यापूर्वपदानां तदन्तग्रहणं प्राग्वतेरिष्यते तच्चालुकि। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- संख्यावाची-पूर्वपदक शब्द ही वत्यर्थ के पूर्व तक तदन्तविधि द्वारा गृहीत होते हैं और तद्धितलुक् होने पर तदन्तग्रहण नहीं होता। **इत ऊर्ध्वम्** की अवधि **तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः** से पूर्व ही माननी चाहिये।

पारायणिकः। द्वैपारायणिकः। पारायण करने वाला, दो पारायण करने वाला। **पारायणं वर्तयति** विग्रह करके **पारायण+अम्** से **पारायणतुरायणचान्द्रायणं वर्तयति**

(५.१.७२) सूत्र से ठञ् प्रत्यय होता है तो तदन्तविधि होने के कारण संख्यापूर्व-पारायण (द्विपारायण) शब्द से भी ठञ् होगा। अतः **पारायणिकः** और **द्वैपारायणिकः** ये रूप बनते हैं।

'अलुकि' इति किम्? द्वाभ्यां शूर्पाभ्यां क्रीतं द्विशूर्पम्। द्विशूर्पेण क्रीते 'शूर्पादञ्-' मा भूत्, किन्तु ठञ्। द्विशौर्पिकम्। प्रकृत वार्तिक में **अलुकि** पद के निवेश से उक्त तदन्तविधि भी अलुक् स्थलों पर ही होती है। अतः **द्विशौर्पिकम्** में तदन्तविधि नहीं हुयी। **द्विशूर्पेण क्रीतम्** (दो शूर्प से खरीदा गया) विग्रह करके **द्विशूर्प+टा** में **शूर्पादञन्यतरस्याम्** (५.१.२६) सूत्र से अञ् न होकर नैसर्गिक ठञ् प्रत्यय हुआ है। केवल शूर्प-शब्द से होने वाला अञ् शूर्पशब्दान्त **द्विशूर्प** से नहीं हुआ अर्थात् तदन्तविधि नहीं हुयी। उसका कारण यह है कि **द्वाभ्यां शूर्पाभ्यां क्रीतम्** विग्रह करके **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** सूत्र से तद्धितार्थ-विषय में समास होने पर आगत **अञ्** अथवा **ठञ्** का **अध्यर्धपूर्वाद् द्विगोर्लुक्** सूत्र से लुक् हो जाता है। इस प्रकार **द्विशूर्प** शब्द लुगन्त है, अलुगन्त नहीं। अतः **द्विशूर्प** शब्द में तदन्तविधि न होने के कारण **अञ्** प्रत्यय की प्राप्ति नहीं रही। **ठञ्** होने पर **परिमाणान्तस्यासंज्ञाशाणयोः** सूत्र से उत्तरपद **शूर्प** के ऊकार की वृद्धि होकर **द्विशौर्पिकम्** सिद्ध हो जाता है।

१६८४. अर्धात् परिमाणस्य पूर्वस्य तु वा ७।३।२६॥

अर्धात् परिमाणवाचकस्योत्तरपदस्यादेरचो वृद्धिः, पूर्वपदस्य तु वा ञिति णिति किति च। अर्धद्रोणेन क्रीतमर्धद्रौणिकम्, आर्धद्रौणिकम्।

अर्धात् परिमाणस्य पूर्वस्य तु वा। अर्धात् पञ्चम्यन्तं, परिमाणस्य षष्ठ्यन्तं, पूर्वस्य षष्ठ्यन्तं, तु अव्ययं, वा अव्ययम्। **उत्तरपदस्य** और **अङ्गस्य** का अधिकार है। **मृजेर्वृद्धिः** से **वृद्धिः** की, **अचो ञ्णिति** के सभी पदों की, **तद्धितेष्वचामादेः** तथा **किति च** के सभी पदों की अनुवृत्ति आती है।

अर्ध-शब्द से परवर्ती परिमाणवाची उत्तरपद के अचों में आदि अच् की वृद्धि होती है किन्तु पूर्वपद की विकल्प से वृद्धि होती है, ञित्, णित्, कित् तद्धित प्रत्यय के परे रहते।

परिमाणान्तस्यासंज्ञाशाणयोः सूत्र से प्राप्त उत्तरपदवृद्धि का यह अपवाद है। सूत्रस्थ **पूर्वस्य** पद **पूर्वपदस्य** का बोधक है।

अर्धद्रोणेन क्रीतमर्धद्रौणिकम्, आर्धद्रौणिकम्। आधे द्रोण परिमाण=साढ़े बारह सेर से खरीदा गया। **अर्धद्रोणेन क्रीतम्** विग्रह करके **अर्धद्रोण+टा** इस स्थिति में **प्राग्वतेष्ठञ्** से ठञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर, इकादेश होने के बाद **अर्धद्रोण+इक** बना हुआ है। पूर्वपद **अर्ध** और उत्तरपद **द्रोण** है। **अर्धात् परिमाणस्य पूर्वस्य तु वा** सूत्र से पूर्वपद के आदि-अच् की विकल्प से वृद्धि और

उत्तरपद के आदि अच् की नित्य से वृद्धि होती है। भसंज्ञकान्त्य वर्ण अकार का लोप होता ही है। इस तरह **आर्धद्रौणिक** और **अर्धद्रौणिक** बन जाते हैं। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आर्धद्रौणिक** और अर्धद्रौणिक ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

१६८५. नातः परस्य ७।३।२७॥

अर्धात् परस्य परिमाणाकारस्य वृद्धिर्न पूर्वपदस्य तु वा ञिदादौ। अर्धप्रस्थिकम्, आर्धप्रस्थिकम्। 'अतः' किम्? आर्धकौडविकम्। 'तपरः' किम्? अर्धखार्यां भवा अर्धखारी। अर्धखारीभार्य इत्यत्र 'वृद्धिनिमित्तस्य-' सू. ८४०) इति पुंवद्भावनिषेधो न स्यात्।

नातः परस्य। नाव्ययम्, अतः षष्ठ्यन्तं, परस्य षष्ठ्यन्तम्। **उत्तरपदस्य** और **अङ्गस्य** का अधिकार है। **अर्धात् परिमाणस्य पूर्वस्य तु वा** इस पूरे सूत्र की, **मृजेर्वृद्धिः** से **वृद्धिः** की, **अचो ञ्णिति** के सभी पदों की, **तद्धितेष्वचामादेः** तथा **किति च** के सभी पदों की अनुवृत्ति आती है।

अर्ध-शब्द से परवर्ती परिमाणवाची उत्तरपद के अचों में आदि-अच्-भूत ह्रस्व अकार की वृद्धि नहीं होती है किन्तु पूर्वपद की तो विकल्प से वृद्धि होती है, ञित्, णित्, कित् तद्धित प्रत्यय के परे रहते।

पूर्वसूत्र का ही विषय है। अन्यत्र पूर्वसूत्र से कार्य होता है किन्तु उत्तरपद का आदि अच् यदि ह्रस्व अकार हो तो प्रकृत सूत्र से वृद्धि-निषेध होता है।

अर्धप्रस्थिकम्, आर्धप्रस्थिकम्। आधे प्रस्थ-परिमाण से खरीदा गया। **अर्धप्रस्थेन क्रीतम्** विग्रह करके **अर्धप्रस्थ+टा** इस स्थिति में **प्राग्वतेष्ठञ्** से ठञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर, इकादेश करके **अर्धप्रस्थ+इक** बना हुआ है। पूर्वपद **अर्ध** और उत्तरपद **प्रस्थ** है। **नातः परस्य** सूत्र से पूर्वपद के आदि-अच् की वृद्धि विकल्प से और उत्तरपद के आदि अच् की वृद्धि का निषेध होता है। भसंज्ञकान्त्य वर्ण अकार का लोप होता ही है। इस तरह **आर्धप्रस्थिक** और **अर्धप्रस्थिक** बन जाते हैं। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आर्धप्रस्थिकम्** और **अर्धप्रस्थिकम्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

'अतः' किम्? आर्धकौडविकम्। प्रकृतसूत्र में **अतः** पद के निवेश से ह्रस्वाकार का ही वृद्धिविकल्प किया गया है। अतः **अर्धकुडवेन क्रीतम्** विग्रह करके ठञादि होने पर उत्तरपद के **कुडव** में आदि अच् अकार न होने के कारण वृद्धिनिषेध नहीं हुआ। यहाँ पर **अर्ध** शब्द से परवर्ती परिमाणवाची **कुडव** शब्द है। फलतः पूर्वसूत्र **अर्धात् परिमाणस्य पूर्वस्य तु वा** सूत्र के द्वारा उत्तरपदस्थ उकार नित्य से वृद्धि औकार

और पूर्वपदस्थ अकार की विकल्प से वृद्धि होकर **आर्धकौडविकम्** और **अर्धकौडविकम्** इस तरह के रूप सिद्ध होते हैं।

'तपरः' किम्? अर्धखार्यां भवा अर्धखारी। अर्धखारीभार्य इत्यत्र 'वृद्धिनिमित्तस्य-' इति पुंवद्भावनिषेधो न स्यात्। दूसरा प्रत्युदाहरण बताते हुये प्रश्न करते हैं **अस्य** पाठ करने से काम चल सकता था किन्तु तरह-विशिष्ट **अतः** पाठ का क्या प्रयोजन है? ऐसा प्रश्न करने का प्रयोजन यह है कि दीर्घ आकार को वृद्धि हो या न हो, कोई अन्तर नहीं आता। इस तरह तपरकरण आपाततः व्यर्थ प्रतीत हो रहा है। इसका समाधान करते हुये कहते हैं कि **अर्धखार्यां भवा** विग्रह करके भवार्थ में **अर्धखारी** शब्द से अण्-प्रत्यय होने पर उसका **अध्यर्धपूर्वाद् द्विगोर्लुगसंज्ञायाम्** (५. १.२९) सूत्र से लुक् हो जाता है। इसके बाद **अर्धखारी चासौ भार्या** (जिसकी पत्नी अर्धखारी=दो मन देकर प्राप्त हुयी हो) में समासादि करके **अर्धखारी+भार्या** बन जाने पर **स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु** (६.३. ३४) सूत्र से प्राप्त पुंवद्भाव को **वृद्धिनिमित्तस्य च तद्धितस्यारक्तविकारे** (६.३.३९) सूत्र के द्वारा निषेध-सिद्धि के लिये सूत्र में तपरकरण आवश्यक है। अन्यथा उक्त प्रयोग में भी वृद्धिनिषेध हो जाता और इस तरह तदुत्तर **अर्धखारी** शब्द से भवार्थ में आगत अण्-प्रत्यय का लुक् हो जाने पर वह यद्यपि वृद्धिनिमित्तक प्रत्यय तो नहीं है तथापि **वृद्धिनिमित्तस्य०** सूत्र की प्रवृत्ति रूक जाने से पुंवद्भाव हो जाता, जो कि अनिष्ट है।

इस तरह वृद्धिविषयक तीन सूत्रों को उपस्थापित कर पुनः पाञ्चमिक तद्धित-प्रत्यय-विधायक सूत्रों को उपस्थापित कर रहे हैं-

१६८६. शताच्च ठन्यतावशते ५।१।२१॥

शतेन क्रीतं शतिकम्, शत्यम्। 'अशते' किम्? शतं परिमाणमस्य शतकः सङ्घः। इह प्रत्ययार्थो वस्तुतः प्रकृत्यर्थान्न भिद्यते, तेन ठन्यतौ न, किन्तु कनेव। 'असमासे' इत्येव, द्विशतेन क्रीतं द्विशतकम्।

शताच्च ठन्यतावशते। ठन् च यत् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः, ठन्यतौ। न शतम् अशतं, तस्मिन् अशते। शतात् पञ्चम्यन्तं, चाव्ययं, ठन्यतौ प्रथमान्तम्, अशते सप्तम्यन्तम्। **असमासे निष्कादिभ्यः** से **असमासे** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

समास-रहित 'शत' इस प्रातिपदिक से आर्हीय अर्थों में ठन् और यत् प्रत्यय होते हैं, यदि सौ रुपये (मुद्रा) अभिधेय न हो तो।

शतेन क्रीतं शतिकम्, शत्यम्। सौ मुद्राओं से खरीदा गया। **शतेन क्रीतम्** विग्रह करके **शत+टा** से **शताच्च ठन्यतावशते** सूत्र के द्वारा ठन् प्रत्यय होने पर, ठ के स्थान पर इकादेश और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **शतिक** बना है। प्रकृतसूत्र से

ही यत् प्रत्यय होने के पक्ष में भसंज्ञक अकार का लोप होकर **शत्य** बना है। निमित्ताभाव के कारण उभयत्र वृद्धि नहीं होती। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **शतिकम्** और **शत्यम्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

'अशते' किम्? शतं परिमाणमस्य शतकः सङ्घः। इह प्रत्ययार्थो वस्तुतः **प्रकृत्यर्थान्न भिद्यते, तेन ठन्यतौ न, किन्तु कनेव।** प्रकृतसूत्र में **अशते** पद के निवेश के कारण **सौ** रुपये आदि अभिधेय होने पर उक्त दोनों प्रत्यय नहीं होते। अतः **शतं परिमाणम् अस्य** (सौ है जिसका परिमाण, ऐसा संघ) विग्रह करके **शत+सु** से उक्त दोनों प्रत्यय नहीं हुये, क्योंकि यहाँ प्रत्ययार्थ ही **शत** है। इन प्रत्ययार्थ और प्रकृत्यर्थ में अभेद है अर्थात् प्रकृत्यर्थ से भिन्न अर्थ में प्रत्यय नहीं होता। फलतः ठन् और यत् नहीं होते। अतः **सङ्ख्याया अतिशदन्तायाः कन्** (५.१.२२) सूत्र के द्वारा **कन्** प्रत्यय होकर **शतक** शब्द बनता है और स्वादिकार्य से **शतकः** सिद्ध हो जाता है।

'असमासे' इत्येव, द्विशतेन क्रीतं द्विशतकम्। प्रकृतसूत्र में पठित **च**-शब्द से **असमासे निष्कादिभ्यः** सूत्र से **असमासे** की अनुवृत्ति मानी जाती है। इसके फलस्वरूप समासयुक्त शत-शब्दान्त प्रातिपदिक से उक्त ठन् और यत् प्रत्यय नहीं होते। फलतः **द्विशतेनं क्रीतम्** (दो सौ मुद्राओं से खरीदा गया) इस विग्रह में **द्विशत** शब्द से उक्त दोनों प्रत्यय नहीं हुये। यहाँ पर कन्-प्रत्यय होकर **द्विशतकम्** सिद्ध होता है।

१६८७. सङ्ख्याया अतिशदन्तायाः कन् ५।१।२२॥

सङ्ख्यायाः कन् स्यादार्हीयेऽर्थे, न तु त्यन्तशदन्तायाः।
पञ्चभिः क्रीतः पञ्चकः। बहुकः।
त्यन्तायास्तु साप्ततिकः। शदन्तायाः चात्वारिंशत्कः।

सङ्ख्याया अतिशदन्तायाः कन्। तिश्च शत् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः- तिशतौ, तिशतौ अन्ते यस्याः सा तिशदन्ता, बहुव्रीहिः। न तिशदन्ता अतिशदन्ता, तस्याः अतिशदन्तायाः, नञ्तत्पुरुषः। सङ्ख्यायाः पञ्चम्यन्तम्, अतिशदन्तायाः पञ्चम्यन्तं, कन् प्रथमान्तम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

ति-शब्दान्त और शत्-शब्दान्त से भिन्न संख्यावाची प्रातिपदिकों से कन् प्रत्यय होता है, आर्हीय अर्थों में।

संख्यावाची शब्दों में ति-शब्दान्त **विंशति** और शत्-शब्दान्त **त्रिंशत्, चत्वारिंशत्, पञ्चाशत्** शब्द हैं, उनसे कन्-प्रत्यय का निषेध किया गया है। अन्य सभी संख्यावाची शब्दों से आर्हीय अर्थों में कन् प्रत्यय किया जाता है। कन् में नकार इत्संज्ञक है, **क** बचता है। यह वृद्धि का निमित्त नहीं है।

पञ्चभिः क्रीतः पञ्चकः। पाँच मुद्राओं से खरीदा हुआ। **पञ्चभिः क्रीतः** विग्रह करके **पञ्चन्+भिस्** इस स्थिति में **सङ्ख्याया अतिशदन्तायाः कन्** सूत्र से

कन्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् अन्तर्वर्तिनी विभक्ति का आश्रय लेकर **पञ्चन्** को पद मानकर पदान्त नकार का **नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप करने पर **पञ्चक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पञ्चकः** सिद्ध हो जाता है।

बहुकः। बहुत मुद्राओं से खरीदा हुआ। **बहुभिः क्रीतः** विग्रह करके **बहु+भिस्** इस स्थिति में **बहु**-शब्द के **बहुगणवतुडति संख्या** सूत्र से संख्या-संज्ञक होने के कारण **सङ्ख्याया अतिशदन्तायाः कन्** सूत्र से कन्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करने पर **बहुक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **बहुकः** सिद्ध हो जाता है।

त्यन्तायास्तु साप्ततिकः। ति-अन्त वाले **सप्तति** शब्द से कन् नहीं होता, क्योंकि **सङ्ख्याया अतिशदन्तायाः कन्** सूत्र में **अतिशदन्तायाः** से निषेध किया गया है। अतः **सप्तत्याः क्रीतः** विग्रह करके **सप्तति+टा** में **तेन क्रीतम्** सूत्र से **ठञ्** प्रत्यय होने पर इकादेश, सुब्लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक इकार का लोप होकर **साप्ततिक** और स्वादिकार्य होकर **साप्ततिकः** सिद्ध हो जाता है।

शदन्तायाः चात्वारिंशत्कः। शत्-अन्त वाले **चत्वारिंशत्** शब्द से भी कन् नहीं होता, क्योंकि **सङ्ख्याया अतिशदन्तायाः कन्** सूत्र में **अतिशदन्तायाः** से निषेध किया गया है। अतः **चत्वारिंशता क्रीतः** विग्रह करके **चत्वारिंशत्+टा** में **तेन क्रीतम्** सूत्र से **ठञ्** प्रत्यय होने पर **इसुसुक्तान्तात्कः** से **ठ** के स्थान पर **क** अदेश, सुब्लुक्, आदिवृद्धि होकर **चत्वारिंशत्क** और स्वादिकार्य होकर **चत्वरिंशत्कः** सिद्ध हो जाता है।

१६८८. वतोरिड् वा ५।१।२३॥

वत्वन्तात् कन इड् वा स्यात्। तावतिकः, तावत्कः।

वतोरिड् वा। वतोः पञ्चम्यन्तम्, इट् प्रथमान्तं, वा अव्ययम्। **सङ्ख्याया अतिशदन्तायाः कन्** से **कन्** की और **आर्हादगोपुच्छसंख्यापरिमाणाट् ठक्** से **आर्हात्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः**, **ङ्याप्प्रातिपदिकात्**, **प्रत्ययः**, **परश्च** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

वतु-प्रत्ययान्त से विहित तद्धित कन्-प्रत्यय को विकल्प से इट् आगम होता है।

महाभाष्य में षष्ठीप्रकल्पक पक्ष है। तदनुसार पञ्चम्यन्त परवर्ती पद षष्ठ्यन्त में परिणत हो जाता है। यहाँ पर भी **वतोः** पञ्चम्यन्त है और उससे परे अनुवृत्त **कन्** का षष्ठ्यन्त में विपरिणाम किया जाता है- **कनः**।

तावतिकः, तावत्कः। उतनी मुद्राओं से खरीदा हुआ। **तावता क्रीतः** विग्रह करके **तावत्+टा** इस स्थिति में **तावत्**-शब्द के **वतु**-प्रत्ययान्त होने से **बहुगणवतुडति**

संख्या सूत्र से संख्या-संज्ञक होने के कारण **सङ्ख्याया अतिशदन्तायाः कन्** सूत्र से कन्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करने पर **तावत्+क** बना है। **वतोरिड् वा** सूत्र के द्वारा प्रत्यय को विकल्प से इट् आगम, अनुबन्धलोप होकर **तावतिक** और इडभाव पक्ष में **तावत्क** शब्द बने हैं। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **तावतिकः** और **तावत्कः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं। **तद्**-शब्द से **यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप्** सूत्र से **वतुप्** (**वत्**) प्रत्यय होने पर **आ सर्वनाम्नः** सूत्र से तद्-शब्द के दकार को आकारादेश और सवर्णदीर्घ होकर **तावत्** शब्द बनता है।

१६८९. विंशतित्रिंशद्भ्यां ड्वुन्नसञ्ज्ञायाम् ५।१।२४॥

योगविभागः कर्तव्यः। आभ्यां कन् स्यात्। असञ्ज्ञायां ड्वुन् स्यात्। कनोऽपवादः। विंशकः। त्रिंशकः। सञ्ज्ञायां विंशतिकः। त्रिंशत्कः।

विंशतित्रिंशद्भ्यां ड्वुन्नसञ्ज्ञायाम्। विंशतिश्च त्रिंशत् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो विंशतित्रिंशतौ, ताभ्यां विंशतित्रिंशद्भ्याम्। न संज्ञा असंज्ञा, तस्याम् असंज्ञायाम्।

योगविभागः कर्तव्यः। भाष्यकार ने इस सूत्र का योगविभाग किया है। प्रथमभाग **विंशतित्रिंशद्भ्याम्** और द्वितीयभाग **ड्वुन् असंज्ञायाम्।** प्रथमसूत्र में **सङ्ख्याया अतिशदन्तायाः कन्** से **कन्** की और **आर्हादगोपुच्छसंख्यापरिमाणाट् ठक्** से **आर्हात्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है। द्वितीयसूत्र में **कन्** की अनुवृत्ति नहीं जाती किन्तु योगविभक्त प्रथमसूत्र के **विंशतित्रिंशद्भ्याम्** की अनुवृत्ति जाती है। इस तरह प्रथमसूत्रार्थः- विंशतित्रिंशद्भ्यां पर तद्धितः कन् प्रत्ययो भवति आर्हीयार्थे। द्वितीयसूत्रार्थः- विंशतित्रिंशद्भ्यां पर तद्धितो ड्वुन्-प्रत्ययो भवति असंज्ञायाम्।

प्रथमसूत्रार्थः- **विंशति और त्रिंशत् शब्दों से आर्हीय अर्थों में कन् प्रत्यय होता है।**

द्वितीयसूत्रार्थः- **विंशति और त्रिंशत् शब्दों से ड्वुन् प्रत्यय होता है, संज्ञा का विषय न हो तो।**

यह सूत्र भी संख्याविषयक ही है। प्रकृत सूत्र का योगविभाग न करने पर **विंशति** और **त्रिंशत्** शब्दों से ड्वुन् मात्र होता और कन् की प्राप्ति नहीं होती, क्योंकि **सङ्ख्याया अतिशदन्तायाः कन्** से त्यन्त और शदन्त शब्दों से कन् का निषेध किया गया है। ऐसी स्थिति में **विंशतिकः** और **त्रिंशत्कः** प्रयोग न बन पाते। अतः भाष्यकार ने युक्ति से उक्त सूत्र का योगविभाग किया है।

कनोऽपवादः। सूत्र के प्रथमभाग से प्राप्त कन् का द्वितीयभाग से प्राप्त ड्वुन् अपवाद है। डकार और नकार इत्संज्ञक हैं, **वु** बचता है। मूलकार ने पहले ड्वुन्-प्रत्यय का उदाहरण दिया है। असंज्ञा में ड्वुन् और संज्ञा में कन् प्रत्यय हो जाते हैं।

विंशकः। बीस मुद्राओं से खरीदा गया। **विंशत्या क्रीतः** विग्रह करके **विंशति+टा** इस स्थिति में **विंशतित्रिंशद्भ्यां ड्वुन्नसञ्ज्ञायाम्** के योगविभक्त द्वितीयभाग से **ड्वुन्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप और शिष्ट **वु** के स्थान पर **युवोरनाकौ** सूत्र से **अक** आदेश होकर **विंशति+अक** बना है। प्रत्यय डित् है, अतः **टेः** सूत्र से प्राप्त टिलोप को बाधकर **तिविंशतेर्डिति** (६.४.१४२) सूत्र से **ति** शब्द का लोप हो जाता है और अवशिष्ट **विंश** में अन्त्य अकार का **यस्येति च** से लोप होकर **विंशक** शब्द बनता है। स्वादिकार्य से **विंशकः** सिद्ध हो जाता है।

त्रिंशकः। तीस मुद्राओं से खरीदा गया। **त्रिंशता क्रीतः** विग्रह करके **त्रिंशत्+टा** इस स्थिति में **विंशतित्रिंशद्भ्यां ड्वुन्नसञ्ज्ञायाम्** के योगविभक्त द्वितीयभाग से **ड्वुन्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप और शिष्ट **वु** के स्थान पर **युवोरनाकौ** सूत्र से **अक** आदेश होकर **त्रिंशत्+अक** बना है। **टेः** सूत्र से प्राप्त टिसंज्ञक भाग **अत्** का लोप होकर **त्रिंश्+अक=त्रिंशक** शब्द बनता है। स्वादिकार्य से **त्रिंशकः** सिद्ध हो जाता है। ये दो असंज्ञा के उदाहरण हैं। संज्ञा में तो कन् होगा।

सञ्ज्ञायां विंशतिकः। संज्ञा में ड्वुन् नहीं होगा। अतः **विंशति+टा** इस स्थिति में **विंशतित्रिंशद्भ्यां ड्वुन्नसञ्ज्ञायाम्** के योगविभक्त प्रथमभाग से **कन्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप होकर **विंशतिक** बन जाता है। डित् परे न होने के कारण तिलोप या टिलोप की प्रसक्ति नहीं है। इस तरह **विंशतिक** शब्द बना हुआ है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **विंशतिकः** सिद्ध हो जाता है।

त्रिंशत्कः। यह भी संज्ञा का ही उदाहरण है, अतः ड्वुन् नहीं होगा। **त्रिंशत्+टा** में **विंशतित्रिंशद्भ्यां ड्वुन्नसञ्ज्ञायाम्** के योगविभक्त प्रथमभाग से **कन्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप होकर **त्रिंशत्क** स्वादिकार्य होकर **त्रिंशत्कः** सिद्ध हो जाता है।

१६९०. कंसाट्टिठन् ५।१।२५॥

टो ङीबर्थः, इकार उच्चारणार्थः। कंसिकः, कंसिकी।
'अर्धाच्चेति वक्तव्यम्' (वा.३०१८)। अर्धिकः, अर्धिकी।
'कार्षापणाट्टिठन्वक्तव्यः प्रतिरादेशश्च वा' (वा.३०१९)।
कार्षापणिकः, कार्षापणिकी। प्रतिकः, प्रतिकी।

कंसाट्टिठन्। कंसात् पञ्चम्यन्तं, टिठन् प्रथमान्तम्। **आर्हादगोपुच्छ-संख्यापरिमाणाट् ठक्** से **आर्हात्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

आर्हीय अर्थों में कंस-शब्द से टिठन् प्रत्यय होता है।

टो ङीबर्थः, इकार उच्चाराणर्थः। टकार की इत्संज्ञा इसलिये होती है कि

टित् मानकर स्त्रीत्वविवक्षा में **टिड्ढाणञ्०** सूत्र से ङीप् प्रत्यय हो सके। टकारोत्तरवर्ती इकार टकार के उच्चारण के लिये योजित है, अर्थात् इत्संज्ञक नहीं है। नकार इत्संज्ञक है ही। इस तरह **ठ** मात्र बचता है और उसके स्थान पर **ठस्येकः** से इकादेश हो जाता है।

कंसिकः, कंसिकी। कंस-परिमाण से खरीदा गया। **कंसेन क्रीतः** विग्रह करके **कंस+टा** इस स्थिति में **कंसाट्टिठन्** सूत्र से टिठन्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप और उच्चारणार्थ इकार की निवृत्ति होने के बाद **ठ** के स्थान पर इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **कंस+इक** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके **कंसिक** शब्द बना है। एकदेशविविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कंसिकः** सिद्ध हो जाता है। स्त्रीत्वविवक्षा में ङीप् प्रत्यय होने के बाद ककार से परवर्ती अकार का लोप होकर **कंसिकी** बन जाता है। इसके बाद स्वादिकार्य होता है।

इस सूत्र में दो वार्तिक पढ़े गये हैं-

अर्धाच्चेति वक्तव्यम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- अर्ध-शब्द से भी आर्हीय अर्थों में टिठन् प्रत्यय कहना चाहिये। यहाँ अर्ध-शब्द आधे कार्षापण अर्थ में रूढ़ है।

अर्धिकः, अर्धिकी। आधे कार्षापण से खरीदा गया। **अर्धेन क्रीतः** विग्रह करके **अर्ध+टा** इस स्थिति में **अर्धाच्चेति वक्तव्यम्** वार्तिक से टिठन्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **ठ** के स्थान पर इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप करके **अर्धिक** शब्द बना है। स्वादिकार्य होकर **अर्धिकः** सिद्ध हो जाता है। स्त्रीत्वविवक्षा में ङीप् प्रत्यय होने के बाद धकार से परवर्ती अकार का लोप और स्वादिकार्य होकर **अर्धिकी** बन जाता है।

कार्षापणाट्टिठन्वक्तव्यः प्रतिरादेशश्च वा। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- कार्षापण-शब्द से टिठन् प्रत्यय होता है और प्रकृति के स्थान पर विकल्प से **प्रति** आदेश भी होता है।

कार्षापणिकः, कार्षापणिकी। प्रतिकः, प्रतिकी। कार्षापण से खरीदा गया। **कार्षापणेन क्रीतः** विग्रह करके **कार्षापण+टा** इस स्थिति में **कार्षापणाट्टिठन्वक्तव्यः प्रतिरादेशश्च वा** वार्तिक से टिठन्-प्रत्यय और प्रकृति के स्थान पर विकल्प से **प्रति** आदेश होने पर अनुबन्धलोप, **ठ** के स्थान पर इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक इकार का लोप करके **प्रतिक** शब्द बना है। प्रति आदेश न होने के पक्ष में **कार्षापणिक** बना है। स्त्रीत्वविवक्षा में ङीप् प्रत्यय करके उभयत्र **प्रतिकी** और **कार्षापणिकी** शब्द बने हैं। चारों जगह एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **प्रतिकः, कार्षापणिकः** और **प्रतिकी, कार्षापणिकी** ये रूप सिद्ध हो जाते हैं।

१६९१. शूर्पादञन्यतरस्याम् ५।१।२६॥

शौर्पम्, शौर्पिकम्।

शूर्पादञन्यतरस्याम्। शूर्पात् पञ्चम्यन्तम्, अञ् प्रथमान्तम्, अन्यतरस्यामिति सप्तमीप्रतिरूपकमव्ययम्। **आर्हादगोपुच्छसंख्यापरिमाणाट् ठक्** से **आर्हात्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

आर्हीय अर्थों में शूर्प-शब्द से विकल्प से अञ् प्रत्यय होता है।

अञ् न होने के पक्ष में **प्राग्वतेष्ठञ्** से औत्सर्गिक **ठञ्** प्रत्यय होगा।

शौर्पम्, शौर्पिकम्। शूर्प-परिमाण से खरीदा गया। **शूर्पेण क्रीतम्** विग्रह करके **शूर्प+टा** इस स्थिति में **शूर्पादञन्यतरस्याम्** सूत्र से विकल्प से **अञ्** प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **शौर्प** शब्द बना है। अञ्-प्रत्यय न होने के पक्ष में औत्सर्गिक ठञ्-प्रत्यय होने पर **ठ** के स्थान पर इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, भसंज्ञक इकार का लोप करके **शौर्पिक** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **शौर्पम्** और **शौर्पिकम्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

१६९२. शतमानविंशतिकसहस्रवसनादण् ५।१।२७॥

एभ्योऽण् स्यात्। ठञ्ठक्कनामपवादः।

शतमानेन क्रीतं शातमानम्। वैंशतिकम्। साहस्रम्। वासनम्।

शतमानविंशतिकसहस्रवसनादण्। शतमानं च विंशतिकश्च सहस्रं च वसनं च तेषां समाहारद्वन्द्वः शतमानविंशतिकसहस्रवसनं, तस्मात् शतमानविंशतिकसहस्रवसनात् पञ्चम्यन्तम्, अण् प्रथमान्तम्। **आर्हादगोपुच्छसंख्यापरिमाणाट् ठक्** से **आर्हात्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

आर्हीय अर्थों में शतमान, विंशतिक, सहस्र और वसन इन प्रातिपदिकों से अण् प्रत्यय होता है।

ठञ्ठक्कनामपवादः। यह सूत्र ठञ्, ठक्, क प्रत्ययों का अपवाद है। **प्राग्वतेष्ठञ्** के प्रसंग में प्राप्त औत्सर्गिक ठञ् अथवा परिमाणवाची होने के कारण **आर्हादगोपुच्छसङ्ख्यापरिमाणाट् ठक्** से प्राप्त ठक् का और संख्यावाची शब्दों से **संख्याया अतिशदन्तायाः कन्** से प्राप्त कन् को बाधकर प्रकृत सूत्र प्राप्त होता है। प्रकृत-सूत्रोक्त **शतमान** और **सहस्र** शब्द संख्यावाची हैं तथा **विंशतिक** शब्द कन्प्रत्ययान्त है।

शतमानेन क्रीतं शातमानम्। सौ रत्ती की सौवर्णी या रजत-मुद्रा से खरीदा गया। **शतमानेन क्रीतम्** विग्रह करके **शतमान+टा** इस स्थिति में **शतमानविंशतिकसहस्रवसनादण्** सूत्र से विकल्प से **अण्** प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का

लोप होकर **शातमान** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **शातमानम्** सिद्ध हो जाता है।

वैंशतिकम्। बीस मासे के कार्षापण से खरीदा गया। **विंशतिकेन क्रीतम्** विग्रह करके **विंशतिक+टा** इस स्थिति में **शतमानविंशतिकसहस्रवसनादण्** सूत्र से विकल्प से **अण्** प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **वैंशतिक** तथा स्वादिकार्य होकर **वैंशतिकम्** सिद्ध हो जाता है।

साहस्रम्। सहस्र कार्षापण से खरीदा गया। **सहस्रेण क्रीतम्** विग्रह करके **सहस्र+टा** इस स्थिति में **शतमानविंशतिकसहस्रवसनादण्** सूत्र से विकल्प से **अण्** प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **साहस्र** तथा स्वादिकार्य होकर **साहस्रम्** सिद्ध हो जाता है।

वासनम्। वस्त्र से खरीदा गया। **वसनेन क्रीतम्** विग्रह करके **वसन+टा** इस स्थिति में **शतमानविंशतिकसहस्रवसनादण्** सूत्र से विकल्प से **अण्** प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **वासन** तथा स्वादिकार्य होकर **वासनम्** सिद्ध हो जाता है।

१६९३. अध्यर्धपूर्वद्विगोर्लुगसञ्ज्ञायाम् ५।१।२८॥

अध्यर्धपूर्वाद् द्विगोश्च परस्यार्हीयस्य लुक्स्यात्।

अध्यर्धकंसम्। द्विकंसम्। सञ्ज्ञायां तु पाञ्चकलापिकम्।

अध्यर्धपूर्वद्विगोर्लुगसञ्ज्ञायाम्। अध्यारूढम् अर्धं यस्मिन् सः अध्यर्धः, बहुव्रीहिः। अध्यर्धं पूर्वो यस्मिन् स अध्यर्धपूर्वः, अध्यर्धपूर्वश्च द्विगुश्च अध्यर्धपूर्वद्विगुः, तस्माद् अध्यधपूर्वद्विगोः, बहुव्रीहिगर्भः समाहारद्वन्द्वः, सौत्रं पुंस्त्वम्। न संज्ञा असंज्ञा, तस्याम् असंज्ञायाम्, नञ्तत्पुरुषः। अध्यर्धपूर्वद्विगोः पञ्चम्यन्तं, लुक् प्रथमान्तम्, असंज्ञायां सप्तम्यन्तम्। **आर्हादगोपुच्छसंख्यापरिमाणाट् ठक्** से **आर्हात्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

अध्यर्ध-पूर्व वाले शब्द और द्विगुसमासयुक्त प्रातिपदिकों से आर्हीय अर्थों में विहित तद्धित प्रत्यय का लुक् होता है, यदि संज्ञा का विषय न हो।

तद्धित प्रत्यय का लुक् किया जा रहा है किन्तु संज्ञा में नहीं होता।

अध्यर्धकंसम्। जिसमें आधा भाग और अधिक हो, उस कंस-परिमाण से खरीदा गया। **अध्यर्ध्यकंसेन क्रीतम्** विग्रह करके **अध्यर्धकंस+टा** इस स्थिति में **प्राग्वतेः संख्यापूर्वपदानां तदन्तविधिरलुकि** वार्तिक की सहायता से **कंसान्त अध्यर्ध्यकंस** शब्द से **कंसाट्टिठन्** सूत्र से **टिठन्** प्रत्यय होने पर उसका **अध्यर्धपूर्वद्विगोर्लुगसञ्ज्ञायाम्** से लुक् हो जाता है। अतः **अध्यर्धकंस** ही बना हुआ है। स्वादिकार्य होकर **अध्यर्धकंसम्**

सिद्ध हो जाता है। यहाँ पर तद्धितप्रत्यय टिठन् की विवक्षा में पहले **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** सूत्र से समास करके तब तद्धित प्रत्यय आता है।

द्विकंसम्। दो कंस-परिमाण से खरीदा गया। **द्वाभ्यां कंसाभ्यां क्रीतम्** विग्रह करके **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** सूत्र से समास करने पर **द्विकंस** शब्द बनता है। इसकी **संख्यापूर्वो द्विगुः** सूत्र से द्विगुसंज्ञा होती है। **द्विकंस+टा** इस स्थिति में **कंसान्त द्विकंस** शब्द से **कंसाट्टिठन्** सूत्र से **टिठन्** प्रत्यय होने पर उसका **अध्यध 'पूर्वद्विगोर्लुगसञ्ज्ञायाम्** से लुक् हो जाता है। अतः **द्विकंस** ही बना हुआ है। स्वादिकार्य होकर **द्विकंसम्** सिद्ध हो जाता है।

सञ्ज्ञायां तु पाञ्चकलापिकम्। संज्ञा में तद्धित-प्रत्यय का लुक् नहीं होता, क्योंकि प्रकृतसूत्र में **असंज्ञायाम्** के द्वारा निषेध किया जाता है। अतः **पञ्च कलापाः परिमाणमस्य** विग्रह करके तद्धितार्थ समास होने के बाद द्विगुसमासयुक्त **पञ्चकपाल** शब्द से **तदस्य परिमाणम्** सूत्र से विहित ठञ्-प्रत्यय का लुक् नहीं हुआ, क्योंकि यह संज्ञा है। अतः ठ के स्थान पर इकादेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **पाञ्चकलापिक** शब्द बनता है और स्वादिकार्य से **पाञ्चकलापिकम्** सिद्ध हो जाता है।

१६९४. विभाषा कार्षापणसहस्राभ्याम् ५।१।२९॥

लुग्वा स्यात्। अध्यर्धकार्षापणम्, अध्यर्धकार्षापणिकम्। द्विकार्षापणम्, द्विकार्षापणिकम्। औपसङ्ख्यानिकस्य टिठनो लुक्। पक्षे अध्यर्धप्रतिकम्। द्विप्रतिकम्। अध्यर्धसहस्रम्, अध्यर्धसाहस्रम्। द्विसहस्रम्, द्विसाहस्रम्।

विभाषा कार्षापणसहस्राभ्याम्। कार्षापणश्च सहस्रं च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः कार्षापणसहस्रे, ताभ्यां कार्षापणसहस्राभ्याम्। विभाषा प्रथमान्तं, कार्षापणसहस्राभ्यां पञ्चम्यन्तम्। **अध्यर्धपूर्वद्विगोर्लुगसञ्ज्ञायाम्** से **अध्यर्धपूर्वद्विगोः** और **लुक्** की और **आर्हादगोपुच्छसंख्या- परिमाणाट् ठक्** से **आर्हात्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

अध्यर्ध-पूर्व वाले शब्द और द्विगुसमासयुक्त कार्षापण एवं सहस्र इन प्रातिपदिकों से आर्हीय अर्थों में विहित तद्धित प्रत्यय का विकल्प से लुक् होता है।

लुक् न होने के पक्ष में प्रत्यय का श्रवण होता है।

औपसङ्ख्यानिकस्य टिठनो लुक्। अर्थात् **कंसाट् टिठन्** सूत्र में पठित उपसंख्यानात्मक वार्तिक **कार्षापणाट् टिठन् वक्तव्यः** से विहित टिठन् प्रत्यय का इस सूत्र से लुक् किया जाता है।

अध्यर्धकार्षापणम्, अध्यर्धकार्षापणिकम्। पक्षे **अध्यर्धप्रतिकम्।** आधे अधिक कार्षापण से खरीदा गया। **अध्यर्धकार्षापणेन क्रीतम्** विग्रह करके **अध्यर्धकार्षापण+टा** इस स्थिति में **कार्षापणाट् टिठन्वक्तव्यः प्रतिरादेशश्च वा** वार्तिक से टिठन्-प्रत्यय होने पर उसका **विभाषा कार्षापणसहस्राभ्याम्** से विकल्प से लुक् होने पर **अध्यर्धकार्षापण** ही बना हुआ है। लुक् न होने के पक्ष में अवशिष्ट **ठ** के स्थान पर इकादेश और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **अध्यर्ध्यकार्षापणिक** शब्द बना है। **कार्षापणाट् टिठन्वक्तव्यः प्रतिरादेशश्च वा** से प्रकृतिभाग **कार्षापण** शब्द के स्थान पर विकल्प से **प्रति** आदेश होने से **अध्यर्धप्रतिक** बना है। तीनों जगह एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **अध्यर्धकार्षापणम्, अध्यर्धकार्षापणिकम्** और **अध्यर्धप्रतिकम्** ये रूप सिद्ध हो जाते हैं।

द्विकार्षापणम्, द्विकार्षापणिकम्। द्विप्रतिकम्। दो कार्षापण से खरीदा गया। **द्विकार्षापणेन क्रीतम्** विग्रह करके **द्विकार्षापण+टा** इस स्थिति में **कार्षापणाट् टिठन्वक्तव्यः प्रतिरादेशश्च वा** वार्तिक से टिठन्-प्रत्यय होने पर उसका **विभाषा कार्षापणसहस्राभ्याम्** से विकल्प से लुक् होने पर **द्विकार्षापण** ही बना हुआ है। लुक् न होने के पक्ष में अवशिष्ट **ठ** के स्थान पर इकादेश और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **द्विकार्षापणिक** शब्द बना है। **कार्षापणाट् टिठन्वक्तव्यः प्रतिरादेशश्च वा** से प्रकृतिभाग **कार्षापण** शब्द के स्थान पर विकल्प से **प्रति** आदेश होने से **अध्यर्धप्रतिक** बना है। तीनों जगह एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **द्विकार्षापणम्, द्विकार्षापणिकम्** और **द्विप्रतिकम्** ये रूप सिद्ध हो जाते हैं।

अध्यर्धसहस्रम्, अध्यर्धसाहस्रम्। आधे से अधिक सहस्र मुद्राओं से खरीदा गया। **अध्यर्धसहस्रेण क्रीतम्** विग्रह करके **अध्यर्धसहस्र+टा** इस स्थिति में **शतमानविंशतिकसहस्रवसदनादण्** सूत्र से अण्-प्रत्यय होने पर उसका **विभाषा कार्षापणसहस्राभ्याम्** से विकल्प से लुक् होने पर **अध्यर्धसहस्र** ही बना हुआ है। लुक् न होने के पक्ष में अण् के परे रहते **संख्यायाः संवत्सरसंख्यस्य च** (७.३.१५) सूत्र से उत्तरपद **सहस्र** के आदि अच् की वृद्धि होकर **अध्यर्धसाहस्र** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **अध्यर्धसहस्रम्** और **अध्यर्धसाहस्रम्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

द्विसहस्रम्, द्विसाहस्रम्। दो सहस्र मुद्राओं से खरीदा गया। **द्विसहस्रेण क्रीतम्** विग्रह करके **द्विसहस्र+टा** इस स्थिति में पूर्ववत् अण् और उसका लुक्, तदभाव में उत्तरपदादिवृद्धि करके **द्विसहस्र** और **द्विसाहस्र** बने हुये हैं। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **द्विसहस्रम्** और **द्विसाहस्रम्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

आगे भी वैकल्पिक लुग्विधायक सूत्र को उपस्थापित कर रहे हैं-

१६९५. द्वित्रिपूर्वान्निष्कात् ५।१।३०॥

लुग्वा स्यात्। द्विनिष्कम्, द्विनैष्किकम्। त्रिनिष्कम्, त्रिनैष्किकम्। 'बहूपूर्वाच्चेति वक्तव्यम्' (वा.३०२४)। बहुनिष्कम्, बहुनैष्किकम्।

द्वित्रिपूर्वान्निष्कात्। द्वौ च त्रयश्च द्वित्रयः, द्वित्रयः पूर्वं यस्मिन् स द्वित्रिपूर्वः, तस्माद् द्वित्रिपूर्वात्। **विभाषा कार्षापणसहस्राभ्याम्** से **विभाषा** की, **अध्यर्धपूर्वद्विगोर्लुगसञ्ज्ञायाम्** से **अध्यर्धपूर्वद्विगोः** तथा **लुक्** की और **आर्हादगोपुच्छसंख्यापरिमाणाट्ठक्** से **आर्हात्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

द्वि-शब्द और त्रि-शब्द पूर्व वाले द्विगुसमासयुक्त निष्क-शब्द से आर्हीय अर्थों में विहित तद्धित प्रत्यय का विकल्प से लुक् होता है।

निष्क-शब्द परिमाणवाची है। अतः उससे **प्राग्वतेष्ठञ्** सूत्र से विहित प्रत्यय का लुक् होगा। लुक् न होने के पक्ष में प्रत्यय का श्रवण होता है। संख्यापूर्वक कर्मधारय समास द्विगुसंज्ञक होता ही है- **संख्यापूर्वो द्विगुः**।

द्विनिष्कम्, द्विनैष्किकम्। दो स्वर्णमुद्राओं से खरीदा गया। **द्विनिष्केण क्रीतम्** विग्रह करके **द्विनिष्क+टा** इस स्थिति में **प्राग्वतेष्ठञ्** से विहित ठञ्-प्रत्यय का **द्वित्रिपूर्वान्निष्कात्** से विकल्प से लुक् होने पर **द्विनिष्क** ही बना हुआ है। लुक् न होने के पक्ष में ठ के स्थान पर इकादेश, **परिमाणान्तस्यासंज्ञाशाणयोः** सूत्र से उत्तरपद **निष्क** के आदि अच् की वृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **द्विनैष्किक** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **द्विनिष्कम्** और **द्विनैष्किकम्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

त्रिनिष्कम्, त्रिनैष्किकम्। तीन स्वर्णमुद्राओं से खरीदा गया। **त्रिनिष्केण क्रीतम्** विग्रह करके त्रिनिष्क+टा इस स्थिति में विहित ठञ्-प्रत्यय का **द्वित्रिपूर्वान्निष्कात्** से विकल्प से लुक् होने पर **त्रिनिष्क** ही बना हुआ है। लुक् न होने के पक्ष में इकादेश, उत्तरपद की आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **त्रिनैष्किक** शब्द बना है। स्वादिकार्य होकर **त्रिनिष्कम्** और **त्रिनैष्किकम्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

बहूपूर्वाच्चेति वक्तव्यम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- बहु-शब्द-पूर्वक निष्क-शब्द से भी आर्हीय प्रत्यय का विकल्प से लुक् कहना चाहिये। सूत्र में केवल द्वि और त्रि-शब्द पूर्व का ही ग्रहण होने के कारण **बहुनिष्क** शब्द में लुक् की प्राप्ति नहीं थी, अतः प्रकृत वार्तिक की सार्थकता है।

बहुनिष्कम्, बहुनैष्किकम्। बहुत स्वर्णमुद्राओं से खरीदा गया। **बहुनिष्केण क्रीतम्** विग्रह करके **बहुनिष्क+टा** इस स्थिति में विहित ठञ्-प्रत्यय का **बहूपूर्वाच्चेति वक्तव्यम्** वार्तिक से विकल्प से लुक् होने पर **बहुनिष्क** ही बना हुआ है। लुक् न होने के पक्ष में इकादेश, उत्तरपद की आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर

बहुनैष्किक शब्द बना है। स्वादिकार्य होकर **बहुनिष्कम्** और **बहुनैष्किकम्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

१६९६. बिस्ताच्च ५।१।३१॥

द्वित्रिबहुपूर्वाद् बिस्तादार्हीयस्य लुग्वा स्यात्।
द्विबिस्तम्, द्विबैस्तिकम् इत्यादि।

बिस्ताच्च। बिस्तात् पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **द्वित्रिपूर्वान्निष्कात्** से **द्वित्रिपूर्वात्** की, **विभाषा कार्षापणसहस्राभ्याम्** से **विभाषा** की, **अध्यर्धपूर्वद्विगोर्लुगसञ्ज्ञायाम्** से **अध्यर्धपूर्वद्विगोः** तथा **लुक्** की और **आर्हादगोपुच्छसंख्यापरिमाणाट् ठक्** से **आर्हात्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

द्वि-शब्द और त्रि-शब्द पूर्व वाले द्विगुसमासयुक्त बिस्त-शब्द से आर्हीय अर्थों में विहित तद्धित प्रत्यय का विकल्प से लुक् होता है।

द्विबिस्तम्, द्विबैस्तिकम् इत्यादि। दो बिस्त परिमाण (१६० रत्ती) से खरीदा गया। **द्वौ बिस्तौ परिमाणमस्य** विग्रह करके **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** सूत्र से समासादि होकर **द्विबिस्त** शब्द बनता है। **द्विबिस्तेन क्रीतम्** विग्रह करके **द्विबिस्त+टा** इस स्थिति में **प्राग्वतेष्ठञ्** से विहित ठञ्-प्रत्यय का **बिस्ताच्च** सूत्र से विकल्प से लुक् होने पर **द्विबिस्त** ही बना हुआ है। लुक् न होने के पक्ष में **ठ** के स्थान पर इकादेश, **परिमाणान्तस्यासंज्ञाशाणयोः** सूत्र से उत्तरपद **बिस्त** के आदि अच् की वृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **द्विबैस्तिक** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **द्विबिस्तम्** और **द्विबैस्तिकम्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं। **इत्यादि** शब्द से **त्रिबिस्तम्** और **त्रिबैस्तिकम्** की भी सिद्धि पूर्ववत् समझनी चाहिये।

उपर्युक्त वैकल्पिक लुग्विधायक सूत्रों की सार्थकता इसलिये है कि **अध्यर्धपूर्वद्विगोर्लुगसञ्ज्ञायाम्** से सर्वत्र नित्य से लुक् प्राप्त होने पर विकल्प से किया जाता है। इस तरह लुक् और लुग्विकल्प का प्रकरण यहीं पूरा करके पुनः तद्धित-प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है-

१६९७. विंशतिकात् खः ५।१।३२॥

अध्यर्धपूवाद् द्विगोरित्येव।
अध्यर्धविंशतिकीनम्। द्विविंशतिकीनम्।

विंशतिकात् खः। विंशतिकात् पञ्चम्यन्तं, खः प्रथमान्तम्। **अध्यर्धपूर्वद्विगोर्लुगसञ्ज्ञायाम्** से **अध्यर्धपूर्वद्विगोः** की और **आर्हादगोपुच्छसंख्यापरिमाणाट् ठक्** से

आर्हात् की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

अध्यर्धपूर्वक और द्विगुसमासयुक्त विंशतिक-शब्द से आर्हीय अर्थों में ख-प्रत्यय होता है।

अध्यर्धपूवाद् द्विगोरित्येव। अर्थात् **अध्यर्धपूर्वद्विगोर्लुगसंज्ञायाम्** सूत्र से **अध्यर्धपूर्वद्विगोः** की अनुवृत्ति रहने से यह सूत्र भी अध्यर्ध-पूर्व शब्द और द्विगुसमासयुक्त शब्दों के विषय में ही प्रवृत्त होता है। विधान-सामर्थ्य से प्रकृत-सूत्र से विहित **ख** प्रत्यय का **अध्यर्धपूर्वद्विगोर्लुगसंज्ञायाम्** सूत्र से लुक् नहीं होता।

अध्यर्धविंशतिकीनम्। आधा अधिक बीस अर्थात् चालीस मासे से खरीदा गया। **अध्यर्धविंशतिकेन क्रीतम्** विग्रह करके **अध्यर्धविंशतिक+टा** इस स्थिति में **विंशतिकात् खः** से ख-प्रत्यय होने पर खकार के स्थान पर **ईन्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **अध्यर्धविंशतिकीन** और स्वादिकार्य होकर **अध्यर्धविंशतिकीनम्** सिद्ध हो जाता है।

द्विविंशतिकीनम्। दो-बीस अर्थात् चालीस मासे से खरीदा गया। **द्विविंशतिकेन क्रीतम्** विग्रह करके **द्विविंशतिक+टा** इस स्थिति में **विंशतिकात् खः** से ख-प्रत्यय होने पर खकार के स्थान पर **ईन्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **द्विविंशतिकीन** और स्वादिकार्य होकर **द्विविंशतिकीनम्** सिद्ध हो जाता है।

१६९८. खार्या ईकन् ५।१।३३॥

अध्यर्धखारीकम्। द्विखारीकम्।

'केवलायाश्चेति वक्तव्यम्'(वा.३०२५)। खारीकम्।

खार्या ईकन्। खार्याः पञ्चम्यन्तम्, ईकन् प्रथमान्तम्। **अध्यर्धपूर्वद्विगोर्लुगसञ्ज्ञायाम्** से **अध्यर्धपूर्वद्विगोः** की और **आर्हादगोपुच्छसंख्यापरिमाणाट् ठक्** से **आर्हात्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

अध्यर्धपूर्वक और द्विगुसमासयुक्त खारी-शब्दान्त प्रातिपदिक से आर्हीय अर्थों में ईकन्-प्रत्यय होता है।

ईकन् में नकार इत्संज्ञक है, **ईक** बचता है। यह वृद्धि का निमित्तक नहीं है।

यहाँ **तदस्य परिमाणम्** सूत्र से ठञ् और उसका लुक् प्राप्त होने पर उसे बाधकर यह प्रत्यय किया जाता है।

अध्यर्धखारीकम्। आधा अधिक खारी-परिमाण से खरीदा गया। **अध्यर्धखार्याः क्रीतम्** विग्रह करके **अध्यर्धखारी+टा** इस स्थिति में **खार्या ईकन्** से ईकन्-प्रत्यय होने

पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक ईकार का लोप होकर **अध्यर्धखारीक** और स्वादिकार्य होकर **अध्यर्धखारीकम्** सिद्ध हो जाता है।

द्विखारीकम्। दो खारी-परिमाण से खरीदा गया। **द्विखार्याः क्रीतम्** विग्रह करके **द्विखारी+टा** इस स्थिति में **खार्या ईकन्** से ईकन्-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक ईकार का लोप होकर **द्विखारीक** और स्वादिकार्य होकर **द्विखारीकम्** सिद्ध हो जाता है।

केवलायाश्चेति वक्तव्यम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- केवल **खारी**-शब्द से भी ईकन् प्रत्यय का विधान कहना चाहिये। प्रकृतसूत्र में अध्यर्धपूर्व और द्विगु वाले **खारी** से ही विधान होने के कारण केवल **खारी** से प्राप्त नहीं था, एतदर्थ वार्तिक की सार्थकता है।

खारीकम्। खारी-परिमाण से खरीदा गया। **खार्याः क्रीतम्** विग्रह करके **खारी+टा** इस स्थिति में **केवलायाश्चेति वक्तव्यम्** वार्तिक से ईकन्-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक ईकार का लोप होकर **खारीक** और स्वादिकार्य होकर **खारीकम्** सिद्ध हो जाता है।

१६९९. पणपादमाषशताद्यत् ५।१।३४॥

अध्यर्धपण्यम्। द्विपण्यम्। अध्यर्धपाद्यम्। द्विपाद्यम्। इह 'पादः पत्' (सू.४१४) इति न। 'यस्य -' (सू.३११) इति लोपस्य स्थानिवद्भावात्। 'पद्यत्यतदर्थे' (सू.९९१) इत्यपि न, प्राण्यङ्गार्थस्यैव तत्र ग्रहणात्।

पणपादमाषशताद्यत्। पणश्च पादश्च माषश्च शतं च तेषां समाहारद्वन्द्वः पणपादमाषशतं, तस्मात् पणपादमाषशतात् पञ्चम्यन्तं, यत् प्रथमान्तम्। **अध्यर्धपूर्वद्विगोर्लुगसञ्ज्ञायाम्** से **अध्यर्धपूर्वद्विगोः** की और **आर्हादगोपुच्छसंख्यापरिमाणाट् ठक्** से **आर्हात्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

अध्यर्धपूर्वक और द्विगुसमासयुक्त पण-पाद-माष-शत-शब्दान्त प्रातिपदिकों से आर्हीय अर्थों में यत्-प्रत्यय होता है।

अध्यर्धपण्यम्। आधा-अधिक पण से खरीदा गया। **अध्यर्धपणेन क्रीतम्** विग्रह करके **अध्यर्धपण+टा** इस स्थिति में **पणपादमाषशताद्यत्** सूत्र से यत्-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक ईकार का लोप होकर **अध्यर्धपण्य** और स्वादिकार्य होकर **अध्यर्धपण्यम्** सिद्ध हो जाता है।

द्विपण्यम्। दो पण से खरीदा गया। **द्विपणेन क्रीतम्** विग्रह करके **द्विपण+टा** में **पणपादमाषशताद्यत्** सूत्र से यत्-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुब्लुक्, भसंज्ञक ईकार का लोप होकर **द्विपण्य** और स्वादिकार्य होकर **द्विपण्यम्** सिद्ध हो जाता है।

अध्यर्धपाद्यम्। आधा-अधिक पाद (चतुर्थांश) से खरीदा गया। **अध्यर्धपादेन क्रीतम्** विग्रह करके **अध्यर्धपाद+टा** इस स्थिति में **पणपादमाषशताद्यत्** सूत्र से यत्-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक ईकार का लोप होकर **अध्यर्धपाद्य** और स्वादिकार्य होकर **अध्यर्धपाद्यम्** सिद्ध हो जाता है।

द्विपाद्यम्। दो पाद (दो चतुर्थांश) से खरीदा गया। **द्विपादेन क्रीतम्** विग्रह करके **द्विपाद+टा** इस स्थिति में **पणपादमाषशताद्यत्** सूत्र से यत्-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक ईकार का लोप होकर **द्विपाद्य** और स्वादिकार्य होकर **द्विपाद्यम्** सिद्ध हो जाता है।

इह 'पादः पत्' इति न, 'यस्य -' इति लोपस्य स्थानिवद्भावात्। 'पद्यत्यतदर्थे' इत्यपि न, प्राण्यङ्गार्थस्यैव तत्र ग्रहणात्। अर्थात् उपर्युक्त प्रयोग में **द्विपाद+य** बनने पर जब **यस्येति च** सूत्र से अकार का लोप हो जाता है, तब **पादः पत्** सूत्र से **पद्** आदेश नहीं होता, क्योंकि अकारलोप का **स्थानिवद्भाव** हो जाने से **पाद** बुद्धि रहती है, न कि **पाद्** की बुद्धि। अतः **पाद्** रूप के अभाव में पद् आदेश नहीं हो पाता। इसी तरह **पद्यत्यतदर्थे** (६.३.५३) सूत्र से भी यत् के परे रहते **पद्** आदेश नहीं हो पाता, क्योंकि उक्त सूत्र में प्राणी के अंग रूप पाद का ग्रहण है, न कि अन्य पाद का। प्रकृत में **पण, माष, शत** शब्दों के साहचर्य से **पाद** शब्द प्राण्यंग न होकर **परिमाणवाची** है।

१७००. शाणाद्वा ५।१।३५॥
यत् स्यात्। पक्षे ठञ्। तस्य लुक्।
अध्यर्धशाण्यम्, अध्यर्धशाणम्।

शाणाद्वा। शाणात् पञ्चम्यन्तं, वा अव्ययम्। **पणपादमाषशताद्यत्** से **यत्** की, अध्यर्धपूर्वद्विगोर्लुगसञ्ज्ञायाम् से **अध्यर्धपूर्वद्विगोः** की और **आर्हादगोपुच्छसंख्या-परिमाणाट् ठक्** से आर्हात् की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

अध्यर्धपूर्वक और द्विगुसमासयुक्त शाण-शब्द से आर्हीय अर्थों में विकल्प से यत्-प्रत्यय होता है।

पक्षे ठञ्। तस्य लुक्। यत् न होने के पक्ष में औत्सर्गिक ठञ्-प्रत्यय हो जाता है और उसका **अध्यर्धपूर्वद्विगोर्लुगसञ्ज्ञायाम्** से लुक् हो जाता है। विधानसामर्थ्य से यत् का लुक् नहीं होता। शाण-शब्द भी परिमाणवाची है।

अध्यर्धशाण्यम्, अध्यर्धशाणम्। आधा अधिक (डेढ़) शाण-परिमाण से खरीदा गया। **अध्यर्धशाणेन क्रीतम्** विग्रह करके **अध्यर्धशाण+टा** इस स्थिति में **शाणाद्वा** सूत्र से विकल्प से यत्-प्रत्यय होने के पक्ष में भसंज्ञक अकार का लोप होकर **अध्यर्धशाण्य** बना है। यत् न होने के पक्ष में औत्सर्गिक ठञ् और उसका लुक् होकर

अध्यर्धशाण बना हुआ है। उभयत्र स्वादिकार्य होकर अध्यर्धशाण्यम् और अध्यर्धशाणम् ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

१७०१. द्वित्रिपूर्वादण् च ५।१।३६॥

'शाणात्' इत्येव। चाद्यत्। तेन त्रैरूप्यम्। 'परिमाणान्तस्यासञ्ज्ञाशाणयोः' (सू.१६८३) इति पर्युदासादादिवृद्धिरेव। द्वैशाणम्, द्विशाण्यम्, द्विशाणम्।

इह ठञादयस्त्रयोदश प्रत्यया: प्रकृतास्तेषां समर्थविभक्तयोऽर्थाश्चाकाङ्क्षितास्त इदानीमुच्यन्ते।

द्वित्रिपूर्वादण् च। द्वौ च त्रयश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो द्वित्रय:, द्वित्रय: पूर्वे यस्मिन् स द्वित्रिपूर्वस्तस्माद् द्वित्रिपूर्वात् पञ्चम्यन्तम्, अण् प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **शाणाद्वा** से **शाणात्** की, **पणपादमाषशताद्यत्** से **यत्** की और **आर्हादगोपुच्छसंख्यापरिमाणाट्ठक्** से **आर्हात्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिता:, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्यय:, परश्च** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

द्वि और त्रि शब्द के पूर्व रहते शाण-शब्द से आर्हीय अर्थों में अण् प्रत्यय भी होता है।

'शाणात्' इत्येव। पूर्वसूत्र से **शाणात्** की अनुवृत्ति आने के कारण **द्विशाण** और **त्रिशाण** शब्दों से अण् प्रत्यय होगा।

चाद्यत्। प्रकृतसूत्र में पठित **च**-शब्द से पूर्वसूत्र से विहित वैकल्पिक यत्-प्रत्यय भी होगा और पक्ष में औत्सर्गिक ठञ् भी, किन्तु उसका **अध्यर्धपूर्वद्विगोर्लुगसञ्ज्ञायाम्** से लुक् हो जाता है। विधानसामर्थ्य से यत् का लुक् नहीं होता।

तेन त्रैरूप्यम्। अर्थात् अण्, यत् और ठञ् करके उसका लुक् करने पर **द्विशाण** और **त्रिशाण** शब्द के तीन-तीन रूप बनते हैं।

'परिमाणान्तस्यासञ्ज्ञाशाणयोः' इति पर्युदासादादिवृद्धिरेव। अर्थात् उत्तरपदादिवृद्धिविधायक **परिमाणान्तस्यासंज्ञाशाणयोः** सूत्र में **असंज्ञाशाणयोः** से संज्ञा और शाण-शब्द में उत्तरपदवृद्धि का पर्युदास=निषेध किया गया है। अत: **द्विशाण** और **त्रिशाण** शब्दों में उत्तरपदवृद्धि न होकर आदिवृद्धि होती है।

द्वैशाणम्, द्विशाण्यम्, द्विशाणम्। दो शाण-परिमाण से खरीदा गया। **द्विशाणेन क्रीतम्** विग्रह करके **द्विशाण+टा** इस स्थिति में **द्वित्रिपूर्वादण् च** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **द्वैशाण** शब्द बना है। पक्ष में **शाणाद्वा** सूत्र से विकल्प से यत्-प्रत्यय होने पर भसंज्ञक अकार का लोप होकर **द्विशाण्य** बना है। यत् न होने के पक्ष में औत्सर्गिक ठञ् और उसका लुक् होकर **द्विशाण** बना हुआ है। तीनों में स्वादिकार्य होकर **द्वैशाणम्, द्विशाण्यम्** और **द्विशाणम्** ये तीन रूप सिद्ध हो जाते हैं।

इह ठञादयस्त्रयोदश प्रत्ययाः प्रकृतास्तेषां समर्थविभक्तयोऽर्थाश्चाकाङ्क्षितास्त इदानीमुच्यन्ते। इस प्रकरण के आरम्भ से लेकर अब तक तेरह प्रत्ययों का निरूपण किया जा चुका है किन्तु उनकी समर्थ-विभक्तियाँ एवं अपेक्षित अर्थ साकांक्ष हैं अर्थात् समर्थ-विभक्ति और अर्थ के विषय में आकांक्षा बनी हुयी है। अतः अब उनका निरूपण आगे किया जा रहा है।

आर्हीय-प्रकरण के पूर्वोक्त तेरह प्रत्यय और प्रत्ययविधायक सूत्र निम्नलिखित हैं-

१. प्राग्वतेष्ठञ् (५.१.१८) ठञ्-प्रत्यय
२. आर्हादगोपुच्छ-संख्या-परिमाणाट्ठक् (५.१.१९) ठक्-प्रत्यय
३. शताच्च ठन्-यतावशते (५.१.२१) ठन् और यत् प्रत्यय
४. संख्याया अतिशदन्तायाः कन् (५.१.२२) कन्-प्रत्यय
५. विंशति-त्रिंशद्भ्यां ड्वुन्नसंज्ञायाम् (५.१.२४) ड्वुन्-प्रत्यय
६. कंसाट्टिठन् (५.१.२५) टिठन्-प्रत्यय
७. शूर्पादञन्यतरस्याम् (५.१.२६) अञ्-प्रत्यय
८. शतमान-विंशतिक-सहस्र-वसनादण् (५.१.२७) अण्-प्रत्यय
९. विंशतिकात्खः (५.१.३२) ख-प्रत्यय
१०. खार्या ईकन् (५.१.३३) ईकन्-प्रत्यय
११. पण-पाद-माष-शताद् यत् (५.१.३४) यत्-प्रत्यय
१२. द्वि-त्रिपूर्वादण्च (५.१.३६) अण्-प्रत्यय। यहाँ पर एक सूत्र से ठन् और यत् दो प्रत्यय किये गये हैं और अण् प्रत्यय का विधान दो सूत्रों से किया गया है। अब उक्त प्रत्ययों के अर्थ और प्रकृति की समर्थ-विभक्तियाँ बतायी जा रही हैं।

१७०२. तेन क्रीतम् ५।१।३७॥

ठञ्। गोपुच्छेन क्रीतं गौपुच्छिकम्।
साप्ततिकम्। प्रास्थिकम्। ठक्- नैष्किकम्।

तेन क्रीतम्। तेन तृतीयान्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, क्रीतं प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

'उससे खरीदा हुआ' अर्थ में तृतीयान्त प्रातिपदिक से ठञ् प्रत्यय होता है और यथाप्रकृति यथाविहित प्रत्यय भी होते हैं।

आर्हीयों में **क्रीतम्** अर्थ पहला है। उपर्युक्त १३ प्रत्ययों की समर्थ-विभक्तियों का सूचक तथा अर्थ-निर्देशक यह सूत्र है। सूत्रस्थ **तेन** पद से समर्थ-विभक्ति तृतीया मानी जाती है तथा **क्रीतम्** पद से किया जाने वाला प्रत्यय **खरीदा गया** अर्थ में होता है।

औत्सर्गिक प्रत्यय **प्राग्वतेष्ठञ्** से **ठञ्** ही है और अपवाद प्रत्यय तत्तत् सूत्रों से बताये जा चुके हैं। अतः यथाविहित प्रत्यय होते हैं, ऐसा अर्थ करना चाहिये।

गोपुच्छेन क्रीतम् गौपुच्छिकम्। गोपुच्छ=चँवर आदि से खरीदी गई वस्तु। **गोपुच्छेन क्रीतम्** विग्रह करके **गोपुच्छ+टा** में **तेन क्रीतम्** सूत्र से ठञ्, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **ठस्येकः** से इक आदेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक इकार का लोप करके **गौपुच्छिक** बना है। स्वादिकार्य करके **गौपुच्छिकम्** सिद्ध हो जाता है। **आर्हादगोपुच्छसंख्यापरिमाणाट् ठक्** सूत्र में गोपुच्छादि-शब्दों का पर्युदास=निषेध होने के कारण उक्त सूत्र से ठक् नहीं होता।

साप्ततिकम्। सत्तर रूपये से खरीदी गई वस्तु। **सप्तत्या क्रीतम्** लौकिक विग्रह और **सप्तति+टा** अलौकिक विग्रह है। **तेन क्रीतम्** से ठञ्, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **ठस्येकः** से इक आदेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक इकार का लोप, **साप्तत्+इक=साप्ततिक** बना। स्वादिकार्य करके **साप्ततिकम्** सिद्ध हो जाता है। **आर्हादगोपुच्छसंख्यापरिमाणाट् ठक्** सूत्र में संख्या के लिये भी पर्युदास=निषेध होने के कारण उक्त सूत्र से ठक् नहीं होता।

प्रास्थिकम्। प्रस्थ नामक प्राचीन काल की नापने की वस्तु, उससे खरीदी गई वस्तु। **प्रस्थेन क्रीतम्** लौकिक विग्रह और **प्रस्थ टा** अलौकिक विग्रह है। **तेन क्रीतम्** के प्रसंग में **आर्हादगोपुच्छसंख्यापरिमाणाट् ठक्** सूत्र से ठक् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **ठस्येकः** से इक आदेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप, **प्रास्थ्+इक=प्रास्थिक**, वर्णसम्मेलन और स्वादिकार्य करके **प्रास्थिकम्** सिद्ध हो जाता है।

अब प्रसंगवश इकारादेशविधायक प्रथमाध्यायस्थ सूत्र को उतार रहे हैं-

१७०३. इद् गोण्याः १।२।५०॥

गोण्या इत् स्यात् तद्धितलुकि। लुकोऽपवादः।
पञ्चभिर्गोणीभिः क्रीतः पटः पञ्चगोणिः।

इद् गोण्याः। इत् प्रथमान्तं, गोणी-शब्दस्य षष्ठ्यन्तं रूपं गोण्याः। **लुक् तद्धितलुकि** सूत्र से **तद्धितलुकि** की अनुवृत्ति आ रही है।

तद्धित-प्रत्यय का लुक् होने पर गोणी-शब्द को ह्रस्व इकार आदेश होता है।

लुकोऽपवादः। तद्धित-प्रत्यय के लोप होने पर उपसर्जन-स्त्रीप्रत्यय का **लुक् तद्धितलुकि** सूत्र से लुक् प्राप्त होता है, उसका यह अपवाद है। **गोणी** शब्द को इकारादेश प्राप्त होने पर **अलोऽन्त्यस्य** की उपस्थिति से अन्त्य वर्ण ईकार के स्थान पर उक्त ह्रस्व आदेश हो जाता है।

पञ्चभिर्गोणीभिः क्रीतः पटः पञ्चगोणिः। पाँच गोणियों से खरीदा गया। **पञ्चभिर्गोणीभिः क्रीतः** विग्रह करके पहले **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** सूत्र के द्वारा समासादि होकर **पञ्चगोणी** शब्द बना है। उसके बाद **तेन क्रीतम्** के द्वारा अर्थ और समर्थविभक्ति के निर्धारण के बाद **आर्हादगोपुच्छसंख्यापरिमाणाट् ठक्** सूत्र से ठक् प्रत्यय होने के बाद उसका **अध्यर्धपूर्वद्विगोर्लुगसंज्ञायाम्** सूत्र से लुक् हो जाता है। इसके बाद **लुक् तद्धितलुकि** सूत्र से **गोणी** में स्त्रीप्रत्यय ईकार का लोप प्राप्त होने पर उसे बाधकर **इद् गोण्याः** सूत्र से ह्रस्व इकार आदेश होकर **पञ्चगोणि** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पञ्चगोणिः** सिद्ध हो जाता है। वैसे **गोण**-शब्द से आवपन और स्त्रीत्वविवक्षा में **जानपदकुण्डगोणस्थल०** (४.१.४२) सूत्र से ङीप् होकर **गोणी** शब्द बनता है। कहा जाता है कि **गोणी** शब्द अढ़ाई मन के परिमाण का वाचक है। आज के हिसाब से अढ़ाई मन बराबर एक क्विन्टल होता है और प्रायः बोरी भी एक क्विन्टल के लिये होती है। अतः कई लोग **बोरी** को भी गोणी कहते हैं।

यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि जब ईकार के स्थान पर इकार आदेश करना है तो प्रकृतसूत्र की क्या आवश्यकता है? पुंवद्भाव कर दीजिये न! इस पर कहा जाता है कि **गोणी** शब्द का पुंवद्भाव होने पर **गोणि** नहीं बनता अपितु **गोण** बनता है, क्योंकि **गोण**-शब्द से ही ङीप् हुआ है। अतः पुंवद्भाव से काम नहीं चलता, एतदर्थ प्रकृतसूत्र की सार्थकता है।

अब अगले सूत्र से निमित्त अर्थ में यथाविहित प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है। आर्हीयों में यह दूसरा अर्थक्रम है।

१७०४. तस्य निमित्तं संयोगोत्पातौ ५।१।३८॥

संयोगः सम्बन्धः। उत्पातः शुभाशुभसूचकः। शतिकः शत्यो वा धनपतिसंयोगः। शत्यं शतिकं वा दक्षिणाक्षिस्पन्दनम्, शतस्य निमित्तमित्यर्थः। वातपित्तश्लेष्मभ्यः शमनकोपनयोरुपसंख्यानम्' (वा.३०३३)। वातस्य शमनं कोपनं वा वातिकम्। पैत्तिकम्। श्लैष्मिकम्। 'सन्निपाताच्चेति वक्तव्यम्' (वा.३०३७)। सान्निपातिकम्।

तस्य निमित्तं संयोगोत्पातौ। संयोगश्च उत्पातश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः संयोगोत्पातौ। तस्य षष्ठ्यन्तं, निमित्तं प्रथमान्तं, संयोगोत्पातौ प्रथमान्तम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

षष्ठी-समर्थ प्रातिपदिक से निमित्त (कारण) अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं, यदि वह निमित्त संयोग और उत्पात हो तो।

संयोगः संबन्धः। संयोग का अर्थ है सम्बन्ध।

उत्पातः शुभाशुभसूचकः। शुभ और अशुभ की सूचना को उत्पात कहते हैं।

यहाँ **तस्य** शब्द के द्वारा यह सूचित किया गया है कि समर्थ-विभक्ति षष्ठी है। **निमित्तम्** अर्थ है।

शतिकः शत्यो वा धनपतिसंयोगः। सौ के लिये धनपनि का संयोग। **शतस्य निमित्तं संयोगः** विग्रह करके **शत+ङस्** इस स्थिति में आर्हीय अर्थ में **शत** शब्द से **शताच्च तस्य निमित्तं संयोगोत्पातौ** सूत्र के द्वारा ठन् और यत् होता है। **ठन्** होने के पक्ष में **ठ** के स्थान पर इकादेश और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **शतिक** तथा **यत्** प्रत्यय होने के पक्ष में भसंज्ञक अकार का लोप होकर **शत्य** बने हैं। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **शतिकः** और **शत्यः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं। यह **संयोग** का उदाहरण है।

शत्यं शतिकं वा दक्षिणाक्षिस्पन्दनम्, शतस्य निमित्तमित्यर्थः। सौ रुपये के लिये दक्षिण नेत्र का फड़कना। यहाँ पर भी पूर्ववत् विग्रह करके **शतिकम्** और **शत्यम्** रूप बन जाते हैं। यह **उत्पात** का उदाहरण है।

अब दो वार्तिकों के द्वारा अन्य कुछ शब्दों से लगभग इन्हीं अर्थों में ठक् प्रत्यय का विधान किया जा रहा है-

वातपित्तश्लेष्मभ्यः शमनकोपनयोरुपसंख्यानम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- शमन (शान्ति) और कोपन (बिगड़ना) अर्थ में वात, पित्त और श्लेष्मन् शब्दों से ठक् प्रत्यय कहना चाहिये।

वातस्य शमनं कोपनं वा वातिकम्। वात (शरीर की तीन प्रकार की धातुओं में एक, शारीरिक वायु) का शमन होना या कुपित होना। **वातस्य शमनम्** अथवा **वातस्य कोपनम्** विग्रह करके **वात+ङस्** इस स्थिति में **वातपित्तश्लेष्मभ्यः शमनकोपनयोरुपसंख्यानम्** वार्तिक के द्वारा ठक् प्रत्यय होने पर इकादेश और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **वातिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वातिकम्** सिद्ध हो जाता है।

पैत्तिकम्। पित्त (शरीर के तीन प्रकार की धातुओं में एक, पित्त) का शमन होना या कुपित होना। **पित्तस्य शमनम्** अथवा **पित्तस्य कोपनम्** विग्रह करके **पित्त+ङस्** इस स्थिति में **वातपित्तश्लेष्मभ्यः शमनकोपनयोरुपसंख्यानम्** वार्तिक के द्वारा ठक् प्रत्यय होने पर इकादेश, आदिवृद्धि और अकारलोप होकर **पैत्तिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पैत्तिकम्** सिद्ध हो जाता है।

श्लैष्मिकम्। कफ का शमन होना या कुपित होना। **श्मेष्मणः शमनम्** अथवा **श्लेष्मणः कोपनम्** विग्रह करके **श्लेश्मन्+ङस्** इस स्थिति में **वातपित्तश्लेष्मभ्यः शमनकोपनयोरुपसंख्यानम्** वार्तिक के द्वारा ठक् प्रत्यय होने पर इकादेश, आदिवृद्धि और **नस्तद्धिते** सूत्र से टिसंज्ञक भाग **अन्** का लोप होकर **श्लैष्मिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **श्लैष्मिकम्** सिद्ध हो जाता है।

सन्निपाताच्चेति वक्तव्यम्। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- सन्निपात-शब्द से भी शमन और कुपित होना अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है।

सान्निपातिकम्। सन्निपात का शमन होना या कुपित होना। **सन्निपातस्य शमनम्** अथवा **सन्निपातस्य कोपनम्** विग्रह करके **सन्निपात+ङस्** इस स्थिति में **सन्निपाताच्चेति वक्तव्यम्** वार्तिक के द्वारा ठक् प्रत्यय होने पर इकादेश, आदिवृद्धि और अकारलोप होकर **सान्निपातिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सान्निपातिकम्** सिद्ध हो जाता है।

१७०५. गोद्व्यचोऽसंख्यापरिमाणाश्वादेर्यत् ५।१।३९॥

गोर्निमित्तं संयोग उत्पातो वा गव्यः। द्व्यचः- यशस्यः। धन्यः। स्वर्ग्यः। 'गोद्व्यचः' किम्? विजयस्य वैजयिकः। 'असंख्या-' इत्यादि किम्? पञ्चानां पञ्चकम्। सप्तकम्। प्रास्थिकम्। खारीकम्। अश्वादि आश्विकम्। आश्मिकम्। 'ब्रह्मवर्चसादुपसंख्यानम्' (वा.३०३५)। ब्रह्मवर्चस्यम्।

गोद्व्यचोऽसंख्यापरिमाणाश्वादेर्यत्। द्वौ अचौ यस्मिन् स द्व्यच्, गौश्च द्व्यच् च इति गोद्व्यच्, तस्माद् गोद्व्यचः, बहुव्रीहिगर्भसमाहारद्वन्द्वः। अश्व आदिर्येषां ते अश्वादयः, बहुव्रीहिः। संख्या च परिमाणं च अश्वादयश्च तेषां समाहारद्वन्द्वः संख्यापरिमाणाश्वादिः, सौत्रं पुस्त्वम्। न संख्यापरिमाणाश्वादिरसंख्यापरिमाणाश्वादिस्तस्माद् असंख्यापरिमाणाश्वादेः। गोद्व्यचः पञ्चम्यन्तम्, असंख्यापरिमाणाश्वादेः पञ्चम्यन्तं, यत् प्रथमान्तम्। **तस्य निमित्तं संयोगोत्पातौ** के सभी पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और समर्थानां प्रथमाद्वा का अधिकार है।

षष्ठी-समर्थ गो-शब्द और **दो अच् वाले प्रातिपदिकों से निमित्त (कारण) अर्थ में यत्-प्रत्यय होता है किन्तु संख्यावाची, परिमाणवाची और अश्वादिगणपठित शब्दों को छोड़कर।**

असंख्यापरिमाणाश्वादेः पद संख्यावाची, परिमाणवाची और अश्वादिगणपठित शब्दों से यत् प्रत्यय के वारण के लिये पर्युदास है।

गोर्निमित्तं संयोग उत्पातो वा गव्यः। गाय के निमित्त संयोग या उत्पात। **गोर्निमित्तं संयोगः** और **गोर्निमित्तम् उत्पातः** विग्रह करके **गो+ङस्** इस स्थिति में **गोद्व्यचोऽसंख्यापरिमाणाश्वादेर्यत्** सूत्र के द्वारा यत् प्रत्यय होने पर **गो+य** बना है। **वान्तो यि प्रत्यये** सूत्र के द्वारा ओकार को अवादेश होकर **गव्य** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **गव्यः** सिद्ध हो जाता है।

द्व्यचः- अब दो अच् वाले शब्दों के उदाहरण दिये जा रहे हैं-

यशस्यः। यश के निमित्त संयोग या उत्पात। **यशसो निमित्तं संयोगः** अथवा **यशसो निमित्तम् उत्पातः** इस तरह विग्रह करके **यशस्+ङस्** इस स्थिति में

गोद्व्यचोऽसंख्यापरिमाणाश्वादेर्यत् सूत्र के द्वारा यत् प्रत्यय होने पर **यशस्य** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **यशस्यः** सिद्ध हो जाता है।

धन्यः। धन के निमित्त संयोग या उत्पात। **धनस्य निमित्तं संयोगः** और **धनस्य निमित्तम् उत्पातः** विग्रह करके **धन+ङस्** इस स्थिति में **गोद्व्यचोऽसंख्यापरिमाणाश्वादेर्यत्** सूत्र के द्वारा यत् प्रत्यय होने पर भसंज्ञक अकार का लोप होकर धन्य शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **धन्यः** सिद्ध हो जाता है।

स्वर्ग्यः। स्वर्ग के निमित्त संयोग या उत्पात। **स्वर्गस्य निमित्तं संयोगः** और **स्वर्गस्य निमित्तम् उत्पातः** विग्रह करके **स्वर्ग+ङस्** इस स्थिति में **गोद्व्यचोऽसंख्यापरिमाणाश्वादेर्यत्** सूत्र के द्वारा यत् प्रत्यय होने पर भसंज्ञक अकार का लोप होकर **स्वर्ग्य** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **स्वर्ग्यः** सिद्ध हो जाता है।

'गोद्व्यचः' किम्? विजयस्य वैजयिकः। प्रकृतसूत्र में **गोद्व्यचः** शब्द के निवेश से यह बताया गया है कि या तो गो-शब्द हो या दो अच् वाला शब्द हो तभी यह यत् प्रत्यय होता है, अन्यथा नहीं होता। अतः **विजयस्य निमित्तं संयोग उत्पातो वा** (विजय के निमित्त संयोग या उत्पात) विग्रह में यत् नहीं हुआ, क्योंकि इसमें तीन अच् हैं। अतः **आर्हादगोपुच्छसंख्यापरिमाणाट् ठक्** से ठक् प्रत्यय हो जाता है और इकादेश, आदिवृद्धि तथा भसंज्ञक अकार का लोप होकर **वैजयिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वैजयिकः** सिद्ध हो जाता है।

'असंख्या-' इत्यादि किम्? पञ्चानां पञ्चकम्। प्रकृतसूत्र में **असंख्यापरिमाणाश्वादेः** पद के द्वारा संख्यावाची, परिमाणवाची और अश्वादिगणपठित शब्दों से यत्-प्रत्यय का निषेध किया गया है। यदि उक्त पद न होता तो **पञ्चानां निमित्तं संयोग उत्पातो वा** (पाँच के निमित्त संयोग या उत्पात) विग्रह में यत् होकर अनिष्ट रूप बनता। उक्त निषेध से यत् नहीं हुआ अपितु यथाप्राप्त **संख्याया अतिशदन्तायाः कन्** सूत्र से कन् प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, नकार का **नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप होकर **पञ्चक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पञ्चकम्** सिद्ध हो जाता है।

सप्तकम्। प्रकृतसूत्र में **असंख्यापरिमाणाश्वादेः** पद के द्वारा संख्यावाची **सप्तन्** शब्द में भी यत्-प्रत्यय का निषेध हो गया है। अतः **सप्तानां निमित्तं संयोग उत्पातो वा** (पाँच के निमित्त संयोग या उत्पात) विग्रह करके **सप्तन्+आम्** इस स्थिति में यथाप्राप्त **संख्याया अतिशदन्तायाः कन्** सूत्र से कन् प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, नकार का **नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप होकर **सप्तक** और स्वादिकार्य होकर **सप्तकम्** सिद्ध हो जाता है।

प्रास्थिकम्। प्रकृतसूत्र में **असंख्यापरिमाणाश्वादेः** पद के द्वारा परिमाणी **प्रस्थ** शब्द से भी यत्-प्रत्यय का निषेध हो गया है। अतः **प्रस्थस्य निमित्तं संयोग उत्पातो वा** (प्रस्थ-परिमाण के निमित्त संयोग या उत्पात) विग्रह करके **प्रस्थ+ङस्** इस

स्थिति में **प्राग्वतेष्ठञ्** के अनुसार यथाप्राप्त ठञ् प्रत्यय, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **प्रास्थिक** और स्वादिकार्य होकर **प्रास्थिकम्** सिद्ध हो जाता है।

खारीकम्। प्रकृतसूत्र में **असंख्यापरिमाणाश्वादेः** पद के द्वारा परिमाणी **खारी** शब्द से भी यत्-प्रत्यय का निषेध हो गया है। अतः **खार्याः निमित्तं संयोग उत्पातो वा** (खारी-परिमाण के निमित्त संयोग या उत्पात) विग्रह करके **खारी+ङस्** इस स्थिति में **खार्या ईकन्** सूत्र से यथाप्राप्त ईकन् प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक और भसंज्ञक ईकार का लोप होकर **खारीक** होने के बाद स्वादिकार्य होकर **खारीकम्** सिद्ध हो जाता है।

अश्वादि- आश्विकम्। प्रकृतसूत्र में **असंख्यापरिमाणाश्वादेः** पद के द्वारा अश्वादिगणपठित शब्दों से भी यत्-प्रत्यय का निषेध हो गया है। अतः **अश्वस्य निमित्तं संयोग उत्पातो वा** (घोड़े के निमित्त संयोग या उत्पात) विग्रह करके **अश्व+ङस्** इस स्थिति में **आर्हादगोपुच्छसंख्यापरिमाणाट् ठक्** से ठक् प्रत्यय हो जाता है और इकादेश, आदिवृद्धि तथा भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आश्विक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आश्विकः** सिद्ध हो जाता है।

आश्मिकम्। प्रकृतसूत्र में **असंख्यापरिमाणाश्वादेः** पद के द्वारा अश्वादिगणपठित शब्दों से यत्-प्रत्यय के निषेध के कारण **अश्मनो निमित्तं संयोग उत्पातो वा** (पत्थर के निमित्त संयोग या उत्पात) विग्रह करके **अश्मन्+ङस्** इस स्थिति में **आर्हादगोपुच्छसंख्यापरिमाणाट् ठक्** से ठक् प्रत्यय, इकादेश, आदिवृद्धि तथा **नस्तद्धिते** सूत्र से टिसंज्ञक भाग **अन्** का लोप होकर **आश्मिक** शब्द बनता है और स्वादिकार्य होकर **आश्मिकः** सिद्ध हो जाता है।

अश्वादिगणः- अश्व, अश्मन्, गण, ऊर्णा, (उर्म), उमा, भङ्ग, क्षण, (गङ्गा), वर्षा, वसु।

ब्रह्मवर्चसादुपसंख्यानम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- ब्रह्मवर्चस-शब्द से भी **निमित्त** अर्थ में यत् प्रत्यय होता है।

ब्रह्मवर्चस्यम्। ब्रह्मतेज के निमित्त संयोग या उत्पात। **ब्रह्मवर्चसस्य निमित्तं संयोग उत्पातो वा** विग्रह करके **ब्रह्मवर्चस+ङस्** इस स्थिति में **ब्रह्मवर्चसादुपसंख्यानम्** वार्तिक से यत् प्रत्यय और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **ब्रह्मवर्चस्य** शब्द बनता है तथा स्वादिकार्य होकर **ब्रह्मवर्चस्यम्** सिद्ध हो जाता है।

१७०६. पुत्राच्छ च ५।१।४०॥
चाद्यत्। पुत्रीयः, पुत्र्यः।

पुत्राच्छ च। पुत्रात् पञ्चम्यन्तं, छ इति लुप्तप्रथमाकं पदं, चाव्ययम्।

गोद्व्यचोऽसंख्यापरिमाणाश्वादेर्यत् से यत् की और **तस्य निमित्तं संयोगोत्पातौ** के सभी पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

षष्ठी-समर्थ पुत्र-शब्द से निमित्त (कारण) अर्थ में छ-प्रत्यय होता है **और च-शब्द से यत् प्रत्यय का भी समुच्चय है।**

चाद्यत्। च-शब्द से यत् प्रत्यय भी होता है।

पुत्रीयः, पुत्र्यः। पुत्र के निमित्त संयोग या उत्पात। पुत्रस्य निमित्तं **संयोग उत्पातो वा** विग्रह करके **पुत्र+ङस्** इस स्थिति में **पुत्राच्छ** च सूत्र से छ-प्रत्यय होने पर छकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र से **ईय्** आदेश हो जाता है। भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पुत्रीय** शब्द बनता है और यत्-प्रत्यय होने के पक्ष में भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पुत्र्य** शब्द बनता है। उभयत्र स्वादिकार्य होकर **पुत्रीयः** और **पुत्र्यः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

१७०७. सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ ५।१।४१॥

सर्वभूमेर्निमित्तं संयोग उत्पातो वा सार्वभौमः। पार्थिवः।
सर्वभूमिशब्दोऽनुशतिकादिषु पठ्यते।

सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ। सर्वा चासौ भूमिः सर्वभूमिः। सर्वभूमिश्च पृथिवी च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः सर्वभूमिपृथिव्यौ, ताभ्याम्। अण् च अञ् च अणञौ। सर्वभूमिपृथिवीभ्यां पञ्चम्यन्तम्, अणञौ प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तस्य निमित्तं संयोगोत्पातौ** के सभी पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है। प्रकृति और प्रत्ययों में समसंख्या होने के कारण **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** की उपस्थिति होती है।

सर्वभूमि और पृथिवी शब्दों से तस्य निमित्तं संयोगात्पातौ अर्थ में क्रमशः अण् और अञ् प्रत्यय होते हैं।

क्रमशः **णकार** और **ञकार** इत्संज्ञक हैं, दोनों में **अ** ही शेष रहता है। **अण्** प्रत्ययान्त अन्तोदात्त और **अञ्** प्रत्ययान्त आद्युदात्त होता है- यही अन्तर है दोनों में। **ञित् णित्** का मुख्य प्रयोजन तो आदिवृद्धि है। **सर्वभूमि** और **पृथिवी** ये दो प्रकृति हैं और **अण्** और **अञ्** ये दो प्रत्यय हैं। यथासंख्य होने से **सर्वभूमि** से **अण्** और पृथिवी से **अञ्** होते हैं।

सर्वभूमिशब्दोऽनुशतिकादिषु पठ्यते। अर्थात् **सर्वभूमि** शब्द का पाठ अनुशतिकादिगण में है। अतः **अनुशतिकादीनां च** सूत्र के द्वारा उभयपद की वृद्धि होती है।

सर्वभूमेर्निमित्तं संयोग उत्पातो वा सार्वभौमः। सम्पूर्ण भूमि के निमित्त उत्पात या संयोग। **सर्वभूमेः निमित्तं संयोग उत्पातो वा** विग्रह करके **सर्वभूमि+ङस्** में **सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ** से अण्, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **तद्धितेष्वचामादेः** से आदि अच् की वृद्धि प्राप्त थी, उसे बाधकर **अनुशतिकादीनाञ्च** से **सर्व** और **भूमि** दोनों पदों में विद्यमान आदि अच् अकार और ऊकार की वृद्धि होकर क्रमशः **सार्व+भौम=सार्वभौम+अ** बना। भसंज्ञक मकारोत्तरवर्ती अकार का लोप होकर **सार्वभौम** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सार्वभौमः** सिद्ध हो जाता है।

पार्थिवः। पृथिवी के निमित्त उत्पात या संयोग। **पृथिव्याः निमित्तं संयोग उत्पातो वा** विग्रह करके **पृथिवी+ङस्** इस स्थिति में **सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ** से अञ्, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **तद्धितेष्वचामादेः** से आदि अच् की वृद्धि और भसंज्ञक ईकार का लोप होकर **पार्थिव** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पार्थिवः** सिद्ध हो जाता है।

यहाँ पर **तस्य निमित्तम्** अर्थ की समाप्ति है। प्राग्वतेः वाले ठञ्-अधिकारमध्य आर्हीयों में तृतीय अर्थक्रम **तस्य ईश्वरः** तथा चतुर्थ अर्थक्रम **तत्र विदितः** अर्थों में प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है। यद्यपि ये दो भिन्न-भिन्न अर्थ हैं, तथापि दीक्षित जी ने दोनों का उदाहरण एक साथ दिया है।

१७०८. तस्येश्वरः ५।१।४२॥

तस्येश्वरः। तस्येति षष्ठ्यन्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकम्, ईश्वरः प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ यह पूरा सूत्र अनुवृत्त होता है और **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार है।

सर्वभूमि और पृथिवी इन षष्ठ्यन्त प्रातिपदिकों से 'ईश्वर' अर्थात् स्वामी अर्थ में यथासंख्य अण् और अञ् प्रत्यय होते हैं।

तस्य पद से समर्थविभक्ति षष्ठी होने की सूचना है। **सर्वभूमि** और **पृथिवी** ये दो प्रकृति हैं और अण् तथा अञ् ये दो प्रत्यय हैं। यथासंख्य होने से सर्वभूमि से अण् और पृथिवी से अञ् प्रत्यय होते हैं। णकार और ञकार इत्संज्ञक हैं तो दोनों में अकार ही शेष बचता है। णित् का फल स्वर में अन्तोदात्त और ञित् का फल आदि उदात्त करना है। यह बात पहले भी बताई जा चुकी है।

सार्वभौमः। सम्पूर्ण भूमि का स्वामी। **सर्वभूमेः ईश्वरः** विग्रह करके **सर्वभूमि+ङस्** में **तस्येश्वरः** से अण्, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **अनुशतिकादीनाञ्च** से **सर्व** और

भूमि दोनों पदों में विद्यमान आदि अच् की वृद्धि के बाद भसंज्ञक अकार का लोप होकर **सार्वभौम** तथा स्वादिकार्य से **सार्वभौमः** सिद्ध हो जाता है।

पार्थिवः। पृथिवी का स्वामी। **पृथिव्याः ईश्वरः** लौकिक विग्रह करके **पृथिवी+ङस्** में **तस्येश्वरः** से अञ्, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदि अच् की वृद्धि, रपर, भसंज्ञक ईकार का लोप करके **पार्थिव** बना है और स्वादिकार्य होकर **पार्थिवः** सिद्ध हो जाता है।

यहाँ पर **तस्य ईश्वरः** अर्थ की समाप्ति है। आर्हीयों में चतुर्थ अर्थक्रम **तत्र विदितः** अर्थ में प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है। यहाँ **तत्र** पद समर्थविभक्ति का सूचक है और **विदितः** अर्थ। अतः समर्थविभक्ति सप्तमी मानी जायेगी। यद्यपि दीक्षित जी ने **ईश्वरः** और **विदितः** इन दोनों अर्थों में उदाहरण एक साथ दिया है, तथापि पाठकों की सुविधा के लिये हमने अलग-अलग करके दिखाया है।

१७०९. तत्र विदित इति च ५।१।४३॥

सर्वभूमेरीश्वरः सर्वभूमौ विदितो वा सार्वभौमः। पार्थिवः।

तत्र विदित इति च। तत्र सप्तम्यन्तं, विदितः प्रथमान्तम्, इति अव्ययं, चाव्ययम्। **सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ** यह पूरा सूत्र अनुवृत्त होता है और **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार है।

सप्तमी-समर्थ सर्वभूमि और पृथिवी इन प्रातिपदिकों से विदितः=प्रसिद्ध अर्थ में यथासंख्य अण् और अञ् प्रत्यय होते हैं।

यद्यपि **तस्य ईश्वरः** और **तत्र विदित इति च** इन दो सूत्रों को एक सूत्र बनाने से भी इष्टसिद्धि सम्भव थी, तथापि अगले सूत्र में केवल **तत्र विदितः** की अनुवृत्ति लाने के लिये योगविभाग किया गया है, ऐसा समझना चाहिये। दूसरी बात यह भी है कि प्रकृति दो, प्रत्यय दो और अर्थ भी दो होने से कहीं ऐसा गलत अर्थ न निकले कि **ईश्वरः** अर्थ में **सर्वभूमि** से **अण्** और **विदितः** अर्थ में **पृथिवी** शब्द से **अञ्** होता है। अतः योगविभाग ही समुचित है।

सर्वभूमेरीश्वरः सर्वभूमौ विदितो वा सार्वभौमः। सम्पूर्ण भूमि में प्रसिद्ध। पूर्ववत् विग्रह करके **सर्वभूमि+ङस्** में **तत्र विदित इति च** सूत्र से अणादि करके **सार्वभौमः** सिद्ध हो जाता है।

पार्थिवः। पृथिवी में प्रसिद्ध। **पृथिव्यां विदितः** विग्रह करके **पृथिवी+ङस्** में **तत्र विदित इति च** से अञादि करके पूर्ववत् **पार्थिवः** सिद्ध हो जाता है।

तत्र विदितः की अनुवृत्ति अगले सूत्र में जाती है।

१७१०. लोकसर्वलोकाट्ठञ् ५।१।४४॥

'तत्र विदितः' इत्यर्थे। लौकिकः।

अनुशतिकादित्वादुभयपदवृद्धिः- सार्वलौकिकः।

लोकसर्वलोकाट्ठञ्। लोकश्च सर्वलोकश्च तयोः समाहारद्वन्द्वो लोकसर्वलोकं, तस्माल्लोकसर्वलोकात् पञ्चम्यन्तं, ठञ् प्रथमान्तम्। **तत्र विदित इति च** से **तत्र विदितः** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार है।

तत्र विदितः अर्थ में लोक और सर्वलोक शब्दों से ठञ् प्रत्यय होता है।

'तत्र विदितः' इत्यर्थे। पूर्वसूत्र से **तत्र विदितः** की अनुवृत्ति के कारण **विदितः** अर्थ में प्रत्यय होगा और समर्थ-विभक्ति सप्तमी होगी।

लौकिकः। लोक में प्रसिद्ध। **लोके विदितः** लौकिक विग्रह करके **लोक+ङि** में **लोकसर्वलोकाट्ठञ्** से ठञ्, अनुबन्धलोप, ठ के स्थान पर इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदि अच् की वृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करके **लौकिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **लौकिकः** सिद्ध हो जाता है।

अनुशतिकादित्वादुभयपदवृद्धिः। अर्थात् **सर्वलोक** शब्द भी अनुशतिकादिगण में पठित है अतः ञित् प्रत्यय के परे रहते **अनुशतिकादीनां च** से उभयपद की वृद्धि होती है।

सार्वलौकिकः। सकल-लोक में प्रसिद्ध। **सर्वलोके विदितः** लौकिक विग्रह करके **सर्वलोक+ङि** में **लोकसर्वलोकाट्ठञ्** से ठञ्, अनुबन्धलोप, ठ के स्थान पर इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, पूर्वपद **सर्व** के आदि अच् अकार और उत्तरपद **लोक** के ओकार की वृद्धि तथा भसंज्ञक अकार का लोप करके **सार्वलौकिक** शब्द बना है। स्वादिकार्य होकर **सार्वलौकिकः** सिद्ध हो जाता है।

यहाँ **तत्र विदितः** अर्थ की समाप्ति है। अब दो सूत्रों से आर्हीयों में पञ्चम अर्थक्रम **तस्य वापः**=जिसमें बोया जाय- अर्थ में प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है। **तस्य** पद षष्ठी समर्थ-विभक्ति का सूचक है तो **वापः** अर्थ।

१७११. तस्य वापः ५।१।४५॥

उप्यतेऽस्मिन्निति वापः क्षेत्रम्।

प्रस्थस्य वापः प्रास्थिकम्। द्रौणिकम्। खारीकम्।

तस्य वापः। तस्य षष्ठ्यन्तं, वापः प्रथमान्तम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार है।

वापः=बोया जाय- अर्थ में षष्ठी-समर्थ प्रादिपदिकों से यथाविहित ठञ् आदि प्रत्यय होते हैं।

उप्यतेऽस्मिन्निति वापः क्षेत्रम्। वाप-शब्द की व्युत्पत्ति दिखाते हुये कहते हैं कि जिसमें बोया जाता है, उसे **वापः** कहा जाता है और वह खेत आदि ही है। यथाविहित प्रत्ययों का विधान होने से आर्हीयों में जो-जो प्रत्यय जिस प्रकृति से पहले बताये गये हैं, उनसे वही प्रत्यय होंगे।

प्रस्थस्य वापः प्रास्थिकम्। जिस खेत में एक-प्रस्थ-परिमाण का बीज बोया जाता है। **प्रस्थस्य वापः** विग्रह करके **प्रस्थ+ङस्** में **तस्य वापः** सूत्र से ठञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, ठ के स्थान पर इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि तथा भसंज्ञक अकार का लोप करके **प्रास्थिक** शब्द बना है। स्वादिकार्य होकर **प्रास्थिकम्** सिद्ध हो जाता है।

द्रौणिकम्। जिस खेत में एक-द्रोण-परिमाण का बीज बोया जाता है। **द्रोणस्य वापः** विग्रह करके **द्रोण+ङस्** में **तस्य वापः** सूत्र से ठक्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, ठ के स्थान पर इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि तथा भसंज्ञक अकार का लोप करके **द्रौणिक** शब्द बना है। स्वादिकार्य होकर **द्रौणिकम्** सिद्ध हो जाता है। ध्यान रहे कि **द्रोण**-शब्द निष्कादिगण में आता है और यथाविहित प्रत्यय **असमासे निष्कादिभ्यः** से विहित **ठक्** ही होता है।

खारीकम्। जिस खेत में एक-खारी-परिमाण का बीज बोया जाता है। **खार्याः वापः** विग्रह करके **खारी+ङस्** में **तस्य वापः** सूत्र से ईकन्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् तथा भसंज्ञक ईकार का लोप करके **खारीक** शब्द बना है। स्वादिकार्य होकर **खारीकम्** सिद्ध हो जाता है। ध्यान रहे कि पहले **खारी** शब्द से **खार्या ईकन्** सूत्र से **ईकन्** प्रत्यय किया गया है। अतः यहाँ पर यथाविहित प्रत्यय **ईकन्** ही होता है। ये तीनों उदाहरण परिमाणवाची हैं।

१७१२. पात्रात् ष्ठन् ५।१।४६॥

पात्रस्य वापः क्षेत्रं पात्रिकम्, पात्रिकी क्षेत्रभक्तिः।

पात्रात् ष्ठन्। पात्रात् पञ्चम्यन्तं, ष्ठन् प्रथमान्तम्। **तस्य वापः** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार है।

वापः=बोया जाय- अर्थ में षष्ठी-समर्थ पात्र-शब्द से ष्ठन् प्रत्यय होता है।

ष्ठन् में षकार और नकार इत्संज्ञक हैं, **ठ** बचता है और उसके स्थान पर **इक** आदेश हो जाता है। नित्करण स्वरार्थ और षित्करण स्त्रीत्वविवक्षा में **षिद्गौरादिभ्यश्च**

से ङीष् के लिये है। इस प्रत्यय में आदिवृद्धि का निमित्त नहीं है। **पात्र**-शब्द के परिमाणवाची होने के कारण **आर्हादगोपुच्छसंख्या- परिमाणाट्ठक्** सूत्र से ठक् प्राप्ति होने पर उसका यह अपवाद है।

पात्रस्य वापः क्षेत्रं पात्रिकम्, पात्रिकी क्षेत्रभक्तिः। जिस खेत में एक-पात्र-परिमाण का बीज बोया जाता है, उसे **पात्रिक** कहते हैं और स्त्रीलिंग में पात्र भर बीज बोने योग्य खेत के भाग को **पात्रिकी** कहा जाता है। **पात्रस्य वापः** विग्रह करके **पात्र+ङस्** में **पात्रात् ष्ठन्** सूत्र से ष्ठन्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **ठ** के स्थान पर इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् तथा भसंज्ञक अकार का लोप करके **पात्रिक** शब्द बना है। स्त्रीत्वविवक्षा में ङीष् होकर **पात्रिकी** बनता है। उभयत्र स्वादिकार्य होकर **पात्रिकः** और **पात्रिकी** रूप सिद्ध हो जाते हैं।

यहाँ **तत्र वापः** अर्थ की समाप्ति है। अब तीन सूत्रों से आर्हीयों में षष्ठ अर्थक्रम **अस्मिन् दीयते**=इसमें दिया जाता है- अर्थ में प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है। **तत्** पद प्रथमा समर्थ-विभक्ति का सूचक है।

१७१३. तदस्मिन् वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदा दीयते ५।१।४७॥

वृद्धिर्दीयते इत्यादि क्रमेण प्रत्येकं सम्बन्धादेकवचनम्। पञ्च अस्मिन् वृद्धिः आयः लाभः शुल्कम् उपदा वा दीयते पञ्चकः। शतिकः, शत्यः। साहस्रः। उत्तमर्णेन मूलातिरिक्तं ग्राह्यं वृद्धिः। ग्रामादिषु स्वामिग्राह्यो भाग आयः। विक्रेत्रा मूल्यादधिकग्राह्यं लाभः। रक्षानिर्वेशो राजभागः शुल्कः। उत्कोच उपदा। 'चतुर्थ्यर्थे उपसंख्यानम्' (वा.३०३६)। पञ्च अस्मै वृद्ध्यादिर्दीयते पञ्चको देवदत्तः। 'सममब्राह्मणे दानम्' इतिवदधिकरणत्वविवक्षा वा।

तदस्मिन् वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदा दीयते। वृद्धिश्च आयश्च लाभश्च शुल्कश्च उपदा च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदाः। तत् प्रथमान्तम्, अस्मिन् सप्तम्यन्तं, वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदाः प्रथमान्तं, दीयते क्रियापदम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार है।

प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से सप्तम्यर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं, यदि वृद्धि, आय, लाभ, शुल्क और उपदा ये सब दीयते=दिया जाता है- क्रिया के कर्म हों तो।

वृद्धिर्दीयते इत्यादि क्रमेण प्रत्येकं सम्बन्धादेकवचनम्। यद्यपि बहुवचनान्त **वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदाः** के साथ **दीयन्ते** ऐसा बहुवचनान्त क्रियापद होना चाहिये था, तथापि **दीयते** के साथ एक-एक का अन्वय करने के हेतु से एकवचन दिया गया है। इस तरह **वृद्धिर्दीयते, आयो दीयते, लाभो दीयते, शुल्को दीयते** और **उपदा दीयते** करके अन्वय किया जाता है।

अस्मिन् पद प्रत्ययार्थ-बोधक है और **तद्** यह प्रथमान्त पद समर्थविभक्ति का सूचक। **दीयते** यह क्रियापद कर्मवाच्य में है। इस क्रिया का सम्बन्ध वृद्धि, आय, लाभ, शुल्क और उपदा के साथ एकशः माना जाता है।

उत्तमर्णेन मूलातिरिक्तं ग्राह्यं वृद्धिः। साहूकार के द्वारा ऋणी से मूल-धन के अतिरिक्त ब्याज (सूद) के रूप में लिया जाने वाला धन **वृद्धि** कहलाता है।

ग्रामादिषु स्वामिग्राह्यो भाग आयः। गाँव के प्रधान या पटवारी आदि के द्वारा लिया जाने वाला अथवा भूस्वामी द्वारा लिया जाने वाला भाग **आय** कहलाता है।

विक्रेत्रा मूल्यादधिकग्राह्यं लाभः। विक्रेता के द्वारा वस्तु के वास्तविक मूल्य से अधिक जो लिया जाता है, वह **लाभ** कहलाता है।

रक्षानिर्वेशो राजभागः शुल्कः। प्रजा की रक्षा के लिये राजा के द्वारा लिया जाने वाला कर **शुल्क** कहलाता है।

उत्कोच उपदा। घूस (रिश्वत) के रूप में ली जाने वाली धनराशि को **उपदा** कहते हैं।

पञ्च अस्मिन् वृद्धिः आयः लाभः शुल्कम् उपदा वा दीयते पञ्चकः। जिस व्यवहार में पाँच (मुद्रायें, रूपये आदि) ब्याज, आय, लाभ, शुल्क या घूस के रूप में दिया जाता हो। लौकिक विग्रह ऊपर प्रदर्शित है। **पञ्चन्+जस्** इस स्थिति में **तदस्मिन् वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदा दीयते** सूत्र से यथाविहित प्रत्यय के प्रसंग में **कन्** प्रत्यय होता है, क्योंकि पहले आर्हीय अर्थ में **संख्याया अतिशदन्तायाः कन्** सूत्र के द्वारा कन् किया जा चुका है। अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् तथा नकार का **नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप होकर **पञ्चक** शब्द बना है। स्वादिकार्य होकर **पञ्चकः** सिद्ध हो जाता है।

शतिकः, शत्यः। जिस व्यवहार में सौ (मुद्रायें, रूपये आदि) ब्याज, आय, लाभ, शुल्क या घूस के रूप में दिया जाता हो। **शतम् अस्मिन् वृद्धिः आयः लाभः शुल्कम् उपदा वा दीयते** लौकिक विग्रह करके **शत+सु** इस स्थिति में **तदस्मिन् वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदा दीयते** सूत्र से यथाविहित प्रत्यय के प्रसंग में **ठन्** और **यत्** प्रत्यय होते हैं, क्योंकि पहले आर्हीय अर्थ में **शताच्च ठन्यतावशते** सूत्र के द्वारा ये दो प्रत्यय किये जा चुके हैं। अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **शतिक** और **शत्य** बने हुये हैं। स्वादिकार्य होकर **शतिकः** और **शत्यः** ये सिद्ध हो जाते हैं।

साहस्रः। जिस व्यवहार में एक हजार (मुद्रायें, रूपये आदि) ब्याज, आय, लाभ, शुल्क या घूस के रूप में दिया जाता हो। **सहस्रम् अस्मिन् वृद्धिः आयः लाभः शुल्कम् उपदा वा दीयते** लौकिक विग्रह करके **सहस्र+सु** इस स्थिति में **तदस्मिन् वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदा दीयते** सूत्र से यथाविहित प्रत्यय के प्रसंग में **अण्** प्रत्यय होता

है, क्योंकि पहले आर्हीय अर्थ में **शतमानविंशतिकसहस्रवसनादण्** सूत्र के द्वारा **अण्** ही किया गया है। अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **साहस्र** तथा स्वादिकार्य होकर **साहस्रः** सिद्ध हो जाता है।

चतुर्थ्यर्थे उपसंख्यानम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- चतुर्थी के अर्थ में प्रथमान्त समर्थ से भी यथाविहित प्रत्यय होते हैं। ऊपर सूत्र के द्वारा सप्तमी के अर्थ में प्रथमान्त से प्रत्यय किये गये थे और प्रकृत वार्तिक की सार्थकता चतुर्थी के अर्थ में प्रत्यय-विधान के लिये है।

पञ्च अस्मै वृद्ध्यादिर्दीयते पञ्चको देवदत्तः। पूर्ववत् **पञ्चकः** ही बनता है किन्तु विग्रह में **अस्मिन्** की जगह **अस्मै** हो जाता है और जिस देवदत्त नामक व्यक्ति को व्यवहार में पाँच (मुद्रायें, रूपये आदि) ब्याज, आय, लाभ, शुल्क या घूस के रूप में दिया जाता हो, वह। अन्य प्रक्रिया पूर्ववत् ही है।

'सममब्राह्मणे दानम्' इतिवदधिकरणत्वविवक्षा वा। अथवा जिस तरह **समम् अब्राह्मणे दानम्** (अब्राह्मण में दान देना भी समान ही होता है) इस वाक्य में दा-धातु का योग होने पर सम्प्रदान (चतुर्थी) की विवक्षा न करके अधिकरणत्व (सप्तमी) की विवक्षा की गयी है, उसी तरह **पञ्च अस्मै** इत्यादि में सम्प्रदान की विवक्षा न करके अधिकरणत्व की विवक्षा करने पर प्रकृत वार्तिक की कोई उपयोगिता नहीं रह जाती। मूलकार यह कह रहे हैं कि प्रकृत वार्तिक के बिना भी उक्त युक्ति का कार्यनिर्वाह हो सकता है।

सममब्राह्मणे दानं द्विगुणं श्रुतिसम्मते।
त्रिगुणं चाग्निसम्पन्नेऽध्यात्मवेत्त्रे चतुर्गुणम्॥ इति स्मृतिः।

१७१४. पूरणार्धाट्ठन् ५।१।४८॥

यथाक्रमं ठक्टिठनोरपवादः।
द्वितीयो वृद्ध्यादिरस्मिन्दीयते द्वितीयिकः।
तृतीयिकः। अर्धिकः। अर्धशब्दो रूपकस्यार्धे रूढः।

पूरणार्धाट्ठन्। पूरणं च अर्धश्च तयोः समाहारद्वन्द्वः पूरणार्धं, तस्मात् पूरणार्धात् पञ्चम्यन्तं, ठन् प्रथमान्तम्। **तदस्मिन् वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदा दीयते** से सभी पदों की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार है।

प्रथमा-समर्थ पूरण-प्रत्ययान्त शब्द और अर्ध-शब्द (प्रातिपदिक) से सप्तम्यर्थ में ठन् प्रत्यय होता है, पूरण और अर्ध दीयते=दिया जाता है- क्रिया के कर्म हों तो।

यथाक्रमं ठक्टिठनोरपवादः। यह प्रत्यय पूरणवाची शब्दों से **आर्हादगोपुच्छ-संख्यापरिमाणाट् ठक्** से प्राप्त ठक् प्रत्यय और अर्ध-शब्द से **अर्धाच्चेति वक्तव्यम्** वार्तिक से प्राप्त **टिठन्** प्रत्यय का अपवाद है।

पूरणे डट् (५.२.४८) सूत्र के अधिकार में विहित **तीय** आदि प्रत्यय पूरणार्थक माने जाते हैं और **द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम** आदि शब्द पूरणवाची हो जाते हैं। उन्हीं का यहाँ **पूरण** शब्द से ग्रहण है।

द्वितीयो वृद्ध्यादिरस्मिन्दीयते द्वितीयिकः। जिस व्यवहार में दुबारा ब्याज, आय, लाभ, शुल्क या घूस के रूप में दिया जाता हो। **द्वितीयो वृद्ध्यादिः अस्मिन् दीयते** लौकिक विग्रह करके **द्वितीय+सु** इस स्थिति में **पूरणार्धाट्ठन्** सूत्र से **ठन्** प्रत्यय होता है। यहाँ **द्वि**-शब्द से **द्वेस्तीयः** सूत्र से पूरणार्थक **तीय** प्रत्यय हुआ है। अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **द्वितीयिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **द्वितीयिकः** सिद्ध हो जाता है।

तृतीयिकः। जिस व्यवहार में तिबारा ब्याज, आय, लाभ, शुल्क या घूस के रूप में दिया जाता हो। **तृतीयो वृद्ध्यादिः अस्मिन् दीयते** लौकिक विग्रह करके **तृतीय+सु** इस स्थिति में **पूरणार्धाट्ठन्** सूत्र से **ठन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **तृतीयिक** तथा स्वादिकार्य होकर **तृतीयिकः** सिद्ध हो जाता है।

अर्धशब्दो रूपकस्यार्धे रूढः। सूत्रोक्त अर्ध-शब्द **आधा सिक्का** अर्थ में रूढ़ है अर्थात् **अर्ध**-शब्द से आधा सिक्का समझा जाता है।

अर्धिकः। जिस व्यवहार में आधा सिक्का ब्याज, आय, लाभ, शुल्क या घूस के रूप में दिया जाता हो। **अर्धः वृद्ध्यादिः अस्मिन् दीयते** लौकिक विग्रह करके **अर्ध+सु** इस स्थिति में **पूरणार्धाट्ठन्** सूत्र से **ठन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **अर्धिक** तथा स्वादिकार्य होकर **अर्धिकः** सिद्ध हो जाता है।

१७१५. भागाद्यच्च ५।१।४९॥

चाट्ठन्। भागशब्दोऽपि रूपकस्यार्धे रूढः। भागो वृद्ध्यादिरस्मिन् दीयते भाग्यम्, भागिकं शतम्। भाग्या, भागिका विंशतिः।

भागाद्यच्च। भागात् पञ्चम्यन्तं, यत् प्रथमान्तम्। **तदस्मिन् वृद्ध्यायलाभ-शुल्कोपदा दीयते** से सभी पदों की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार है।

प्रथमा-समर्थ भाग-शब्द (प्रातिपदिक) से सप्तम्यर्थ में यत् प्रत्यय भी होता है, वृद्धि, आय, लाभ आदि को दिया जाता है- इस अर्थ में।

चाड्डन्। प्रकृतसूत्रोक्त **च** शब्द से **ठन्** प्रत्यय का भी समुच्चय है; अतः यत् और ठन् दोनों प्रत्यय होते हैं।

भागशब्दोऽपि रूपकस्यार्धे रूढः। सूत्रोक्त भाग-शब्द भी **आधा सिक्का** अर्थ में रूढ़ है अर्थात् **भाग**-शब्द से आधा सिक्का ही समझा जाता है।

भागो वृद्ध्यादिरस्मिन् दीयते भाग्यम्, भागिकं शतम्। भाग्या, भागिका विंशतिः। जिस सौ में भाग=आधा सिक्का ब्याज, आय, लाभ, शुल्क या घूस के रूप में दिया जाता हो। **भागः वृद्ध्यादिः अस्मिन् दीयते** लौकिक विग्रह करके **भाग+सु** इस स्थिति में **भागाद्यच्च** सूत्र से यत्-प्रत्यय होने के पक्ष में भसंज्ञक अकार का लोप होकर **भाग्य** शब्द बना है। इसी प्रकार **ठन्** प्रत्यय होने के पक्ष में अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **भागिक** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **भाग्यम्** और **भागिकम्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं। **शत**-शब्द के नपुंसक में होने के कारण उसके विशेषण **भाग्य** और **भागिक** में नपुंसकत्व हो गया है। किन्तु जब **विंशतिः** के विशेषण के रूप में उक्त शब्द प्रयुक्त हो तो जब जिस बीस में आधा सिक्का वृद्धि आदि के रूप में दिया जाता हो, इस अर्थ में उपर्युक्त **भाग्य** और **भागिक** शब्दों से स्त्रीबोधक प्रत्यय होता है, क्योंकि उसका विशेष्य **विंशतिः** स्त्रीलिंग में है। अतः **भाग्य** से टाप् होकर **भाग्या** और **भागिक** से भी टाप् होकर **भागिका** बन जाते हैं। **भाग्या भागिका विंशतिः**।

यहाँ **तदस्मिन् दीयते** अर्थ की समाप्ति है। अब दो सूत्रों से आर्हीयों में सप्तम अर्थक्रम हरति, वहति, आवहति अर्थों में प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है। द्वितीयान्त तत् पद द्वितीया-समर्थ-विभक्ति का सूचक है।

१७१६. तद्धरति वहत्यावहति भाराद्वंशादिभ्यः ५।१।५०॥

वंशादिभ्यः परो यो भारशब्दस्तदन्तं यत्प्रातिपदिकं तत्प्रकृतिकाद् द्वितीयान्तादित्यर्थः। वंशभारं हरति वहत्यावहति वा वांशभारिकः। ऐक्षुभारिकः। 'भाराद्वंशादिभ्यः' इत्यस्य व्याख्यान्तरं 'भारभूतेभ्यो वंशादिभ्यः' इति। भारभूतान् वंशान् हरति वांशिकः। ऐक्षुकः।

तद्धरति वहत्यावहति भाराद्वंशादिभ्यः। वंश आदिर्येषां ते वंशादयस्तेभ्यो वंशादिभ्यः। तत् द्वितीयान्तं, हरति, वहति, आवहति इत्येतानि क्रियापदानि, भारात् पञ्चम्यन्तं, वंशादिभ्यः पञ्चम्यन्तम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार है।

वंशादिगणपठित शब्दों से परे जो भार-शब्द, तदन्त जो प्रातिपदिक, तादृश द्वितीया-समर्थ प्रातिपदिक से हरति=हरण करता है, वहति=वहन करता है और आवहति=उत्पन्न करता है- अर्थों में यथाविहित प्रत्यय होते हैं।

तद् पद द्वितीया-समर्थ-विभक्ति का सूचक है। **हरति, वहति** और **आवहति** ये तीन अर्थ हैं अर्थात् प्रत्ययार्थ हैं। एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाना या चुराना **हरण** कहलाता है। गाड़ी आदि से ढोना **वहन** कहलाता है। अपने समीप लाना या उत्पादन करना **आवहन** होता है। **भारात्** भी पञ्चम्यन्त पद है और **वंशादिभ्यः** भी किन्तु इनमें सामानाधिकरण्य नहीं है। **भारात्** एकवचनान्त और **वंशादिभ्यः** बहुवचनान्त। अतः वैयधिकरण्य से अन्वय होगा। **वंशादिभ्यः** पद **भारात्** का विशेषण है। यथाविहित प्रत्ययों का विधान करने से **वंशभार** आदि शब्दों से **आर्हादगोपुच्छसंख्यापरिमाणाट् ठक्** से विधीयमान **ठक्** प्रत्यय ही होता है।

वंशादिगणः- वंश, कुटज, बल्वज, मूल, स्थूणा, स्थूण, अक्ष, अश्मन्, अश्व, श्लक्ष्ण, मूल, इक्षु, खट्वा।

वंशभारं हरति वहत्यावहति वा वांशभारिकः। बाँस का भार चुराने वाला, ढोने वाला या उत्पन्न करने वाला। **वंशभारं हरति वहति आवहति** विग्रह करके **वंशभार+अम्** इस स्थिति में **तद्धरति वहत्यावहति भाराद्वंशादिभ्यः** सूत्र से ठक् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञकान्त्य अकार का लोप होकर **वांशभारिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वांशभारिकः** सिद्ध हो जाता है।

ऐक्षुभारिकः। गन्ने का भार चुराने वाला, ढोने वाला या उत्पन्न करने वाला। **इक्षुभारं हरति वहति आवहति** विग्रह करके **इक्षुभार+अम्** इस स्थिति में **तद्धरति वहत्यावहति भाराद्वंशादिभ्यः** सूत्र से ठक् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञकान्त्य अकार का लोप होकर **ऐक्षुभारिक** शब्द बनता है और स्वादिकार्य होकर **ऐक्षुभारिकः** सिद्ध हो जाता है।

'भाराद्वंशादिभ्यः' इत्यस्य व्याख्यान्तरं 'भारभूतेभ्यो वंशादिभ्यः' इति। अन्य कुछ व्याख्याकारों ने **भाराद्वंशादिभ्यः** की दूसरी व्याख्या की है। उनके अनुसार **भारभूत वंश आदि से** ऐसा अर्थ है। इस तरह **भार को प्राप्त करने वाले** इस लाक्षणिक अर्थ में वंशादि-शब्दों का सामानाधिकण्य होने पर भी समान-वचन की व्यवस्था के लिये **व्यत्ययो बहुलम्** (३.१.८५) सूत्र का आश्रयण करके वैयधिकरण्य की कल्पना न करने की युक्ति दी है। उनके अनुसार केवल **वंश, इक्षु** शब्दों से भी ठक् प्रत्यय हो जाता है। जैसे कि-

भारभूतान् वंशान् हरति वांशिकः। भारभूत बाँस का हरण करने वाला, ले जाने वाला और उत्पन्न करने वाला। **भारभूतान् वंशान् हरति** विग्रह करके **वंश+शस्** से ठक्, इकादेश, आदिवृद्धि, अलोप करके **वांशिक** और स्वादिकार्य से **वांशिकः** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह-

ऐक्षुकः। भारभूत गन्ने का हरण करने वाला, ले जाने वाला और उत्पन्न करने वाला। **भारभूतान् इक्षून् हरति** विग्रह करके **इक्षु+शस्** से ठक्, **इसुसुक्तान्तात्कः** से ठ के स्थान पर **क** आदेश, आदिवृद्धि, अलोप करके **ऐक्षुक** और स्वादिकार्य से **ऐक्षुकः** सिद्ध हो जाता है।

१७१७. वस्नद्रव्याभ्यां ठन्कनौ ५।१।५१॥

यथासंख्यं स्तः।

वस्नं हरति वहत्यावहति वा वस्निकः। द्रव्यकः।

वस्नद्रव्याभ्यां ठन्कनौ। वस्नं च द्रव्यं च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो वस्नद्रव्यौ, ताभ्यां वस्नद्रव्याभ्याम्। ठन् च कन् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः ठन्कनौ। वस्नद्रव्याभ्यां पञ्चम्यन्तं, ठन्कनौ प्रथमान्तम्। **तद्धरति वहत्यावहति भाराद्वंशादिभ्यः**। वंश आदिर्येषां ते वंशादयस्तेभ्यो वंशादिभ्यः। तत् द्वितीयान्तं, हरति, वहति, आवहति इत्येतानि क्रियापदानि, भारात् पञ्चम्यन्तं, वंशादिभ्यः पञ्चम्यन्तम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार है। प्रकृति और प्रत्ययों में समान-संख्या होने के कारण **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** की उपस्थिति होती है।

द्वितीया-समर्थ **वस्न और द्रव्य इन प्रातिपदिकों से हरति=हरण करता है, वहति=वहन करता है और आवहति=उत्पन्न करता है (अपने समीप लाता है)-अर्थों में क्रमशः ठन् और कन् प्रत्यय होते हैं।**

यथासंख्य होने पर वस्न शब्द से **ठन्** और **द्रव्य** शब्द से **कन्** प्रत्यय होंगे।

वस्नं हरति वहत्यावहति वा वस्निकः। मूल-पूँजी को चुराने वाला, ढोने वाला या उत्पन्न करने वाला। वस्नं हरति **वहति आवहति** विग्रह करके **वस्न+अम्** इस स्थिति में **वस्नद्रव्याभ्यां ठन्कनौ** सूत्र से ठन् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञकान्त्य अकार का लोप होकर **वास्निक** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **वास्निकः** सिद्ध हो जाता है।

द्रव्यकः। द्रव्य को चुराने वाला, ढोने वाला या उत्पन्न करने वाला। **द्रव्यं हरति वहति आवहति** विग्रह करके **द्रव्य+अम्** इस स्थिति में **वस्नद्रव्याभ्यां ठन्कनौ** सूत्र से कन् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **द्रव्यक** और स्वादिकार्य होकर **द्रव्यकः** सिद्ध हो जाता है।

यहाँ **हरत्यादि** अर्थों की समाप्ति है। अब चार सूत्रों से आर्हीयों में अष्टम अर्थक्रम **सम्भवति, अवहरति, पचति** अर्थों में प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है। **तत्** पद की अनुवृत्ति से द्वितीया समर्थ-विभक्ति मानी जायेगी।

१७१८. सम्भवत्यवहरति पचति ५।१।५२॥

प्रस्थं सम्भवति प्रास्थिकः कटाहः। प्रस्थं स्वस्मिन् समावेशयतीत्यर्थः। प्रास्थिकी ब्राह्मणी। प्रस्थमवहरति, उपसंहरति पचति वेत्यर्थः। 'तत्पचतीति द्रोणादण्च'(वा.३०३८)। चाट्टञ्। द्रोणं पचतीति द्रौणी, द्रौणिकी।

सम्भवत्यवहरति पचति। सम्भवति, अवहरति, पचति इति अर्थबोधकानि क्रियापदानि। **तद्धरति वहत्यावहति भाराद्वंशादिभ्यः** से तद् की अनुवृत्ति आती है और **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार है।

द्वितीया-समर्थ प्रातिपदिकों से सम्भवति=सम्भव है, अवहरति=हटाता है (लूटता है) पचति=पकाता है- अर्थों में यथाविहित प्रत्यय होते हैं।

प्रस्थं सम्भवति प्रास्थिकः कटाहः। प्रास्थिकी ब्राह्मणी। एक प्रस्थ परिमाण जिसमें सम्भव हो, ऐसी कड़ाही। **प्रस्थं सम्भवति** विग्रह करके **प्रस्थ+अम्** इस स्थिति में **सम्भवत्यवहरति पचति** सूत्र से ठञ् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञकान्त्य अकार का लोप होकर **प्रास्थिक** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **प्रास्थिकः** सिद्ध हो जाता है। परिमाण में एक प्रस्थ वस्तु को अपने में समा लेता है, ऐसा अर्थ बनता है। स्त्रीत्वविवक्षा में ठगन्त से **टिड्ढाणञ्०** सूत्र से ङीप् होकर **प्रास्थिकी** बनता है। **प्रास्थिकी** का अर्थ है- एक प्रस्थ परिमाण में पकाने वाली स्त्री। प्रस्थ-शब्द परिमाणवाची होने के कारण **आर्हादगोपुच्छसंख्यापरिमाणाट् ठक्** सूत्र में परिमाणवाची शब्दों से ठक् का निषेध हो जाने से **प्राग्वतेष्ठञ्** वाला ही ठञ् प्रत्यय होता है।

प्रस्थं स्वस्मिन् समावेशयतीत्यर्थः। यहाँ **सम्भवति** का अर्थ है- आधार के प्रमाण से आधेय का प्रमाण अधिक रहने पर किसी तरह उपपन्न करना। **सम्** पूर्वक **भू** धातु है। वैसे भू-धातु अकर्मक है। अतः **प्रस्थ+अम्** इस कर्म के साथ **सम्भवति** का अन्वय कैसे सम्भव है? यह प्रश्न है। इसका उत्तर देते हुये मूलकार कहते हैं कि उपसर्ग बल से अकर्मक धातु भी सकर्मक हो जाया करती है। अतः सम्-उपसर्ग से यहाँ पर कुछ विशेष अर्थ है। वह है- जिसमें जो वस्तु सामान्यतया न समा रही हो, उसमें किसी तरह ठूँस-ठाँस कर समा लेना। ऐसे अर्थ की विवक्षा में **सम्भवति** को सकर्मक माना जा सकता है।

प्रस्थमवहरति, उपसंहरति पचति वेत्यर्थः। अर्थात् जिस तरह से **सम्भवति** अर्थ में प्रस्थ-शब्द से ठञ् प्रत्यय होकर **प्रास्थिकः, प्रास्थिकी** बनते हैं, उसी तरह **अवहरति** और **पचति** अर्थों में भी तादृश ही रूप बनते हैं।

तत्पचतीति द्रोणादण्च। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- तत्-पचति अर्थ में द्रोण-शब्द से अण् प्रत्यय भी होता है।

चाट्ठञ्। प्रकृत वार्तिक में पठित च-शब्द से ठञ् प्रत्यय का भी समुच्चय माना जाता है। इस तरह द्रोण-शब्द से अण् और ठञ् ये दोनों प्रत्यय होते हैं।

द्रोणं पचतीति द्रौणी, द्रौणिकी। एक द्रोण को पकाने वाली। **द्रोणं पचति** विग्रह करके **द्रोण+अम्** इस स्थिति में **तत्पचतीति द्रोणादण्च** वार्तिक से अण्-प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि और भसंज्ञकाकार का लोप होकर **द्रौण** शब्द बना है। ठञ् होने के पक्ष में इकादेश, आदिवृद्धि और भसंज्ञकान्त्य अकार का लोप होकर **द्रौणिक** बना है। स्त्रीत्वविवक्षा में उभयत्र **टिड्ढाणञ्०** सूत्र से ङीप् होकर **द्रौणी** और **द्रौणिकी** शब्द बनते हैं। इसके बाद स्वादिकार्य होता है।

१७१९. आढकाचितपात्रात् खोऽन्यतरस्याम् ५।१।५३॥

पक्षे ठञ्। आढकं सम्भवति अवहरति पचति वा आढकीना, आढकिकी। आचितीना, आचितिकी। पात्रीणा, पात्रिकी।

आढकाचितपात्रात् खोऽन्यतरस्याम्। आढकं च अचितं च पात्रं च तेषां समाहारद्वन्द्व आढकाचितपात्रं, तस्माद् आढकाचितपात्रात् पञ्चम्यन्तं, खः प्रथमान्तम्, अन्यतरस्यां विभक्तिप्रतिरूपकमव्ययम्। **सम्भवत्यवहरति पचति** के तीनों पदों की और **तद्धरति वहत्यावहति भाराद्वंशादिभ्यः** से **तद्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार है।

द्वितीया-समर्थ आढक, अचित, पात्र इन प्रातिपदिकों से सम्भवति=सम्भव है, अवहरति=हटाता है (लूटता है) पचति=पकाता है- अर्थों में विकल्प से ख-प्रत्यय होता है।

आढक, अचित और पात्र तीनों शब्द परिमाणवाची हैं।

पक्षे ठञ्। ख-प्रत्यय न होने के पक्ष में आर्हीय ठञ् प्रत्यय होता है। **आर्हादगोपुच्छसंख्यापरिमाणाट् ठक्** में **अगोपुच्छसंख्यापरिमाणात्** निषेध पद है और उक्त शब्दों के परिमाणवाची होने के कारण ठक् नहीं होता।

आढकं सम्भवति अवहरति पचति वा आढकीना, आढकिकी। आढक-परिमाण भर समा लेने वाली, हटाने वाली या पकाने वाली। **आढकं सम्भवति अवहरति पचति** विग्रह करके **आढक+अम्** इस स्थिति में **आढकाचितपात्रात् खोऽन्यतरस्याम्** सूत्र से विकल्प से ख-प्रत्यय होने पर खकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **ईन्** आदेश और भसंज्ञकाकार का लोप होकर **आढकीन** शब्द बना है। ठञ् होने के पक्ष में इकादेश, आदिवृद्धि और भसंज्ञकान्त्य अकार का लोप होकर **आढकिक** शब्द बना है। पुंल्लिंग में स्वादिकार्य होकर **आढकीनः** और **आढकिकः** रूप बनते हैं। स्त्रीलिंग में **आढकीन** से टाप् और **आढकिक** से **टिड्ढाणञ्०** सूत्र से ङीप् होकर **आढकीना** और **आढकिकी** शब्द बनते हैं। इसके बाद स्वादिकार्य होता है।

आचितीना, आचितिकी। आचित-परिमाण (२५ मन) भर समा लेने वाली, हटाने वाली या पकाने वाली। **आचितं सम्भवति अवहरति पचति** विग्रह करके **आचित+अम्** इस स्थिति में **आढकाचितपात्रात् खोऽन्यतरस्याम्** सूत्र से विकल्प से ख-प्रत्यय, ईनादेशादि होकर, टाप् होने पर **आचितीना** और ठञ् होने पर ङीप् होकर **आचितिकी** शब्द बनते हैं। इसके बाद स्वादिकार्य होता है।

पात्रीणा, पात्रिकी। पात्र-परिमाण समा लेने वाली, हटाने वाली या पकाने वाली। **पात्रं सम्भवति अवहरति पचति** विग्रह करके **पात्र+अम्** इस स्थिति में **आढकाचितपात्रात् खोऽन्यतरस्याम्** सूत्र से विकल्प से ख-प्रत्यय, ईनादेशादि होकर, टाप् होने पर **पात्रीणा** और ठञ् होने पर ङीप् होकर **पात्रिकी** शब्द बनते हैं। इसके बाद स्वादिकार्य होता है।

१७२०. द्विगोः ष्ठंश्च ५।१।५४॥

'आढकाचितपात्रात्' इत्येव। आढकाद्यन्ताद् द्विगोः सम्भवत्यादिष्वर्थेषु ष्ठन्खौ वा स्तः। पक्षे ठञ्। तस्य 'अध्यर्ध-' (सू.१६९३) इति लुक्। षित्वान्ङीष्। द्व्याढकिकी, द्व्याढकीना। 'द्विगोः' (सू.४७९) इति ङीप्। द्व्याढकी। द्व्याचितिकी, द्व्याचितीना। 'अपरिमाण-' (सू.४८०) इति ङीन्निषेधात् द्व्याचिता। द्विपात्रिकी, द्विपात्रीणा, द्विपात्री।

द्विगोः ष्ठंश्च। द्विगोः पञ्चम्यन्तं, ठन् प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **आढकाचितपात्रात् खोऽन्यतरस्याम्** से **आढकाचितपात्रात्** की, **सम्भवत्यवहरति पचति** के तीनों पदों की और **तद्धरति वहत्यावहति भाराद्वंशादिभ्यः** से **तद्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार है।

द्विगुसंज्ञक द्वितीया-समर्थ आढक-अचित-पात्र-शब्दान्त प्रातिपदिकों से सम्भवति=सम्भव है, अवहरति=हटाता है (लूटता है) पचति=पकाता है- अर्थों में विकल्प से ठन् और ख प्रत्यय होते हैं।

'आढकाचितपात्रात्' इत्येव। अर्थात् पूर्वसूत्र से **आढकाचितपात्रात्** की अनुवृत्ति आने के कारण आढकान्त आचितान्त और पात्रान्त द्विगु से ये प्रत्यय किये गये हैं। केवल आढक, आचित और पात्र शब्दों के विषय में पूर्वसूत्र की ही प्रवृत्ति होती है किन्तु जब उक्त शब्दों में संख्यावाचक शब्द के साथ द्विगुसमास होता है, तब प्रकृत सूत्र की प्रवृत्ति समझनी चाहिये।

पक्षे ठञ्। उक्त दो प्रत्यय वैकल्पिक हैं, उनके अभाव में आर्हीय ठञ् प्रत्यय ही होता है।

तस्य 'अध्यर्ध-' इति लुक्। षित्वान्ङीष्। उक्त आर्हीय ठञ् प्रत्यय का **अध्यर्धपूर्वद्विगोर्लुगसंज्ञायाम्** सूत्र से लुक् हो जाता है। ष्ठन् और ख के विशेष विधान

होने के कारण लुक् नहीं होता। ष्ठन्-प्रत्यय के षित् होने के कारण **षिद्गौरादिभ्यश्च** सूत्र के द्वारा स्त्रीत्वविवक्षा में ङीष् होता है।

द्व्याढकिकी, द्व्याढकीना। 'द्विगोः' इति ङीप्। द्व्याढकी। दो आढक-परिमाण भर समा लेने वाली, हटाने वाली या पकाने वाली। **द्व्याढके सम्भवति अवहरति पचति** विग्रह करके **द्व्याढक+औ** इस स्थिति में **द्विगोः ष्ठंश्च** सूत्र से विकल्प से ष्ठन् और ख-प्रत्यय किये जाते हैं। ष्ठन्-प्रत्ययपक्ष में इकादेश, भसंज्ञक अकार का लोप आदि होकर **द्व्याढकिक** और ख प्रत्ययपक्ष में **ईन्** आदेश होकर **द्व्याढकीन** बना है। ष्ठन्नन्त से **षिद्गौरादिभ्यश्च** के द्वारा ङीष् होकर **द्व्याढकिकी** और खान्त से **अजाद्यतष्टाप्** से टाप् होकर **द्व्याढकीना** बन जाते हैं। **ठञ्** होने पक्ष में उसका लुक् होकर **द्व्याढक** ही बना हुआ है और **द्विगोः** सूत्र से ङीष् होकर **द्व्याढकी** शब्द बनता है। इस तरह तीनों शब्द बन जाने पर स्वादिकार्य होकर **द्व्याढकिकी, द्व्याढकीना** और **द्व्याढकी** ये तीन रूप सिद्ध हो जाते हैं।

द्व्याचितिकी, द्व्याचितीना। 'अपरिमाण-' इति ङीब्निषेधात् द्व्याचिता। दो आचित-परिमाण भर समा लेने वाली, हटाने वाली या पकाने वाली। **द्व्याचिते सम्भवति अवहरति पचति** विग्रह करके **द्व्याचित+औ** इस स्थिति में **द्विगोः ष्ठंश्च** सूत्र से विकल्प से ष्ठन् और ख-प्रत्यय एवं तदभाव में **ठञ्** प्रत्यय और उसका लुक् होकर **द्व्याचितिक, द्व्याचितीन** और **द्व्याचित** शब्द बनने के बाद यथायथ टाप् और ङीष् होते हैं। **द्व्याचित** से ङीप् नहीं होता, क्योंकि **अपरिमाणबिस्ताचितकम्बल्येभ्यो न तद्धितलुकि** (४.१.२२) सूत्र के द्वारा उसका निषेध किया जाता है। इस तरह तीनों शब्द बन जाने पर स्वादिकार्य होकर **द्व्याचितिकी, द्व्याचितीना** और **द्व्याचिता** ये तीन रूप सिद्ध हो जाते हैं।

द्विपात्रिकी, द्विपात्रीणा, द्विपात्री। दो पात्र-परिमाण भर समा लेने वाली, हटाने वाली या पकाने वाली। **द्विपात्रे सम्भवति अवहरति पचति** विग्रह करके **द्विपात्र+औ** इस स्थिति में **द्विगोः ष्ठंश्च** सूत्र से विकल्प से ष्ठन् और ख-प्रत्यय तथा तदभाव में **ठञ्** प्रत्यय और उसका लुक् इत्यादि होकर यथायथ ङीष्, टाप् और ङीप् होकर **द्विपात्रिकी, द्विपात्रीणा** और **द्विपात्री** ये तीन रूप सिद्ध हो जाते हैं।

१७२१. कुलिजाल्लुक्खौ च ५।१।५५॥

कुलिजान्ताद् द्विगोः संभवत्यादिष्वर्थेषु लुक्खौ वा स्तः।
चात् ष्ठंश्च। लुगभावे ठञः श्रवणम्।
द्विकुलिजी, द्विकुलिजीना, द्विकुलिजिकी, द्वैकुलिजिकी।

कुलिजाल्लुक्खौ च। लुक् च खश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो लुक्खौ। कुलिजात् पञ्चम्यन्तं, लुक्खौ प्रथमान्तम्। **द्विगोः ष्ठंश्च** से **द्विगोः** की, **सम्भवत्यवहरति पचति** के

तीनों पदों की और **तद्धरति वहत्यावहति भाराद्वंशादिभ्यः** से तद् की अनुवृत्ति आती है। **ठञ्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार है।

द्विगुसंज्ञक द्वितीया-समर्थ कुलिज-शब्दान्त प्रातिपदिक से सम्भवति, अवहरति और पचति अर्थों में विहित प्रत्यय का लुक् और ख प्रत्यय विकल्प से होते हैं।

चात् ष्ठंश्च। लुगभावे ठञः श्रवणम्। प्रकृतसूत्र में पठित च-शब्द से ष्ठन् प्रत्यय का भी समुच्चय माना जाता है। लुक् न होने के पक्ष में ठञ् का श्रवण होता है। इस तरह लुक्, ठञ्, ख और ष्ठन् के चार रूप होते हैं। ध्यान रहे कि लुक् केवल **ठञ्** का ही होता है तथा विशेष-विधान-सामर्थ्य से **ष्ठन्, ख** का लुक् नहीं होता।

द्विकुलिजी, द्विकुलिजीना, द्विकुलिजिकी, द्वैकुलिजिकी। दो कुलिज परिमाण भर समा लेने वाली, हटाने वाली या पकाने वाली। **द्विकुलिजे सम्भवति अवहरति पचति** विग्रह करके **द्विकुलिज+औ** इस स्थिति में **कुलिजाल्लुक्खौ च** सूत्र से आर्हीय प्रत्यय **ठञ्** का लुक् होने पर **द्विकुलिज** और **द्विगोः** सूत्र से ङीप् होकर **द्विकुलिजी** (१) बना हुआ है। लुक् न होने के पक्ष में ठञ् का श्रवण होता है अर्थात् ठ के स्थान पर इकादेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **द्वैकुलिजिक** और ङीप् होकर **द्वैकुलिजिकी** (२) शब्द बना हुआ है। ख-प्रत्यय के पक्ष में ईनादेश और अकारलोप होकर **द्विकुलिजिन** और टाप् होकर **द्विकुलिजीना** (३) बना हुआ है। ष्ठन् होने के पक्ष में इकादेश और ङीष् होकर **द्विकुलिजिकी** बना हुआ है। इसके बाद स्वादिकार्य होता है।

यहाँ **सम्भवति** आदि अर्थों की समाप्ति है। अब अगले सूत्र से आर्हीयों में नवम अर्थक्रम **अस्य अंशवस्नभृतयः** अर्थ में औत्सर्गिक प्रत्यय का विधान किया जा रहा है। **सः** पद के कारण प्रथमा समर्थ-विभक्ति मानी जायेगी।

१७२२. सोऽस्यांशवस्नभृतयः ५।१।५६॥

अंशो भागः। वस्नं मूल्यम्। भृतिर्वेतनम्।
पञ्च अंशो वस्नं भृतिर्वा अस्य पञ्चकः।

सोऽस्यांशवस्नभृतयः। अंशश्च वस्नं च भृतिश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः- अंशवस्नभृतयः। सः प्रथमान्तम्, अस्य षष्ठ्यन्तम्, अंशवस्नभृतयः प्रथमान्तम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार है।

प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं, यह प्रथमा-समर्थ यदि अंश=भाग (हिस्सा), वस्न=मूल्य और भृति=वेतन का समानाधिकरणवाची हो तो।

सः पद प्रथमा-समर्थविभक्ति का सूचक है। **अस्य** षष्ठ्यन्त पद अर्थ का सूचक है और **अंशवस्नभृतयः** अर्थ के समानाधिकरण हैं। **सः** पद **अंश, वस्न** और **भृति** तीनों में एकशः अन्वित होता है। इस तरह **सः अस्य अंशः, तद् अस्य वस्नम्** और **सा अस्य भृतिः** अर्थों में यथाविहित ठञादि प्रत्यय होते हैं।

अंशो भागः। वस्नं मूल्यम्। भृतिर्वेतनम्। अंश-शब्द का अर्थ है- भाग, वस्न-शब्द का अर्थ है-मूल्य और भृति-शब्द से वेतन अर्थ लिया जाता है।

पञ्च अंशो वस्नं भृतिर्वा अस्य पञ्चकः। पाँच रुपये (मुद्रा) जिसके भाग, मूल्य या वेतन हो, वह व्यक्ति। **पञ्च अंशोऽस्य, पञ्च वस्नमस्य** और **पञ्च भृतिरस्य** विग्रह करके **पञ्चन्+जस्** इस स्थिति में **सोऽस्यांशवस्नभृतयः** सूत्र के द्वारा यथाविहित प्रत्यय के विधान में **कन्** प्रत्यय होता है, क्योंकि आर्हीयों में संख्यावाची शब्दों से **संख्याया अतिशदन्तायाः कन्** सूत्र के द्वारा **कन्** किया जा चुका है। प्रत्यय के बाद अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके प्रकृति के नकार का **नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य** सूत्र से लोप करके **पञ्चक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पञ्चकः** सिद्ध हो जाता है।

यहाँ एक ही सूत्र से **अस्य अंशवस्नभृतयः** अर्थों की समाप्ति करके अगले दो सूत्रों से आर्हीयों में दशम अर्थक्रम **अस्य परिमाणम्** अर्थ में यथाविहित प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है। **तद्** पद के कारण प्रथमा समर्थ-विभक्ति मानी जायेगी।

१७२३. तदस्य परिमाणम् ५।१।५७॥
प्रस्थं परिमाणमस्य प्रास्थिको राशिः।

तदस्य परिमाणम्। तत् प्रथमान्तम्, अस्य षष्ठ्यन्तं, परिमाणं प्रथमान्तम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार है।

परिमाण-समानाधिकरणवाची प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं।

तत् पद प्रथमा-समर्थविभक्ति का सूचक है। **अस्य** षष्ठ्यन्त पद अर्थ का सूचक है और **परिमाणम्** अर्थ का समानाधिकरण है। प्रकृतसूत्र में प्रयुक्त परिमाण-शब्द संख्या के रूप में प्रयुक्त हुआ है। अतः यहाँ संख्या भी परिमाण के रूप में गृहीत होता है।

प्रस्थं परिमाणमस्य प्रास्थिको राशिः। प्रस्थ-परिमाण है जिसका, वह। **प्रस्थं परिमाणम् अस्य** विग्रह करके **प्रस्थ+सु** इस स्थिति में **तदस्य परिमाणम्** सूत्र के द्वारा यथाविहित प्रत्यय के विधान में **प्राग्वतेष्ठञ्** से विहित **ठञ्** प्रत्यय होता है। **आर्हादगोपुच्छसंख्यापरिमाणाट् ठक्** सूत्र में परिमाणवाची से ठक् का निषेध है। प्रत्यय

के बाद अनुबन्धलोप, ठ के स्थान पर इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञकान्त्य अकार का लोप करके **प्रास्थिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **प्रास्थिकः** सिद्ध हो जाता है।

१७२४. संख्यायाः सञ्ज्ञासङ्घसूत्राध्ययनेषु ५।१।५८॥

पूर्वसूत्रमनुवर्तते। तत्र-

'सञ्ज्ञायां स्वार्थे प्रत्ययो वाच्यः' (वा.३०३९)। यद्वा द्व्येकयोरितिवत्सङ्ख्यामात्रवृत्तेः परिमाणिनि प्रत्ययः। पञ्चैव पञ्चकाः शकुनयः। पञ्च परिमाणमेषामिति वा। सङ्घे पञ्चकः। सूत्रे अष्टकं पाणिनीयम्। सङ्घशब्दस्य प्राणिसमूहे रूढत्वात्सूत्रं पृथगुपात्तम्। पञ्चकमध्ययनम्।

'स्तोमे डविधिः' (वा.३०४५)। पञ्चदश मन्त्राः परिमाणमस्य पञ्चदशः स्तोमः। सप्तदशः। एकविंशः। डप्रत्यये तिलोपः। सोमयागेषु छन्दोगैः क्रियमाणा पृष्ठादिसञ्ज्ञिका स्तुतिः स्तोमः।

संख्यायाः सञ्ज्ञासङ्घसूत्राध्ययनेषु। सञ्ज्ञा च सङ्घश्च सूत्रं च अध्ययनं च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः सञ्ज्ञासङ्घसूत्राध्ययनानि, तेषु सञ्ज्ञासङ्घसूत्राध्ययनेषु। संख्यायाः पञ्चम्यन्तं, सञ्ज्ञासङ्घसूत्राध्ययनेषु सप्तम्यन्तम्। **तदस्य परिमाणम्** के तीनों पदों की अनुवृत्ति होती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार है।

परिमाण-समानाधिकरणवाची प्रथमा-समर्थ संख्यावाची प्रातिपदिक से संज्ञा, सङ्घ, सूत्र और अध्ययन ये प्रत्ययार्थ होने पर षष्ठ्यर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं।

पूर्वसूत्रमनुवर्तते। तत्र- अर्थात् पूर्वसूत्र की सम्पूर्णतया अनुवृत्ति है। उसमें संज्ञा के विषय में अगले वार्तिक के द्वारा स्वार्थ में प्रत्यय किया जाता है।

सञ्ज्ञायां स्वार्थे प्रत्ययो वाच्यः। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- संज्ञा-विषय गम्य होने पर प्रकृतसूत्र से विधीयमान प्रत्यय स्वार्थ में होता है। **पञ्चकाः शकुनयः** आदि के साथ **परिमाणम् एषाम्** अर्थ सम्बद्ध होने में असमर्थ है। अतः स्वार्थ में कहा गया है।

यद्वा द्व्येकयोरितिवत्सङ्ख्यामात्रवृत्तेः परिमाणिनि प्रत्ययः। उक्त वार्तिक के विषय को प्रकारान्तर से सिद्ध होने की बात बता रहे हैं कि यद्यपि **आ दशतः संख्याः संख्येये** नियम के नियमानुसार शुरू से लेकर दस तक के संख्यावाची शब्द संख्येय अर्थ में भी होते हैं तथापि **द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने** सूत्र में **द्वि** और **एक** शब्दों की संख्या-अर्थ में वृत्ति मानी गयी है। तदनुसार **पञ्चकाः शकुनयः** इत्यादि में संख्यामात्रवृत्ति मानकर परिमाणी अर्थ में प्रत्यय किया जा सकता है।

पञ्चैव पञ्चकाः शकुनयः। पञ्च परिमाणमेषामिति वा। पाँच ही पक्षी (पाँच पक्षि-विशेषों की संज्ञा)। यहाँ **पञ्च एव** विग्रह किया जाता है, क्योंकि **सञ्ज्ञायां स्वार्थे प्रत्ययो वाच्यः** के नियमानुसार स्वार्थ में प्रत्यय किया जा रहा है। जब प्रकारान्तर से परिमाणी अर्थ में भी प्रत्यय होने की सम्भावना है, तब **पञ्च परिमाणम् एषाम्** (पाँच संख्या परिमाण है जिनका) ऐसा विग्रह किया जाता है। अलौकिक विग्रह तो उभयत्र **पञ्चन्+जस्** ही होता है। **संख्यायाः सञ्ज्ञासङ्घसूत्राध्ययनेषु** सूत्र से यथाविहित प्रत्यय की प्रक्रिया में **कन्** प्रत्यय होता है, क्योंकि आर्हीय अर्थों संख्यावाची शब्दों से **संख्याया अतिशदन्तायाः कन्** सूत्र से कन् प्रत्यय किया गया है। फलतः प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, नकार का **नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप करके **पञ्चक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पञ्चकः** सिद्ध हो जाता है। यह संज्ञा का उदाहरण है।

सङ्घे- संघार्थ में उदाहरण दिया जा रहा है-

पञ्चकः। पाँच का समूह। **पञ्च परिमाणमस्य संघस्य** विग्रह करके **पञ्चन्+जस्** इस स्थिति में पूर्ववत् **संख्यायाः सञ्ज्ञासङ्घसूत्राध्ययनेषु** सूत्र से यथाविहित प्रत्यय **कन्,** प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, नकार का लोप और स्वादिकार्य करके **पञ्चकः** सिद्ध हो जाता है। यह संघ का उदाहरण है।

सूत्रे- सूत्रार्थ में उदाहरण दिया जा रहा है। सूत्र-शब्द सूत्रों के संघ अर्थ में है, क्योंकि एक सूत्र में अष्टक नहीं बन सकता।

अष्टकं पाणिनीयम्। पाणिनि द्वारा विरचित आठ अध्यायों में निबद्ध सूत्रों का ग्रन्थ। **अष्ट परिमाणमेषां सूत्राणाम्** विग्रह करके **अष्टन्+जस्** इस स्थिति में पूर्ववत् **संख्यायाः सञ्ज्ञासङ्घसूत्राध्ययनेषु** सूत्र से यथाविहित प्रत्यय **कन्,** प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, नकार का **नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप करके **अष्टक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **अष्टकम्** सिद्ध हो जाता है। यह सूत्र का उदाहरण है।

यहाँ यदि सूत्र-शब्द से सूत्रसंघ का ग्रहण है तो फिर **संख्यायाः संज्ञासङ्घसूत्राध्ययनेषु** सूत्र में **सूत्र**-शब्द का कार्य **सङ्घ**-शब्द से ही चल जाता, पुनः **सूत्र** शब्द की क्या आवश्यकता है? इसका समाधान मूलकार कर रहे हैं-

सङ्घशब्दस्य प्राणिसमूहे रूढत्वात्सूत्रं पृथगुपात्तम्। यहाँ सङ्घ-शब्द प्राणिसमूह अर्थ में रूढ होने के कारण सूत्रसमूह का ग्रहण करने में असमर्थ है। अतः सूत्र-शब्द का पुनः उपादान किया गया है।

पञ्चकम् अध्ययनम्। पाँच बार पढ़ना। **पञ्च आवृत्तिः परिमाणमस्य अध्ययनस्य** विग्रह करके **पञ्चन्+जस्** इस स्थिति में पूर्ववत् **संख्यायाः सञ्ज्ञासङ्घसूत्राध्ययनेषु** सूत्र से यथाविहित प्रत्यय **कन्,** प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, नकारलोप और स्वादिकार्य करके **पञ्चकम्** सिद्ध हो जाता है। यह अध्ययन का उदाहरण है।

स्तोमे डविधिः। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- स्तोम के विषय में संख्यावाची शब्दों से ड-प्रत्यय की विधि होती है। डकार की इत्संज्ञा होकर केवल अकार बचता है और इसके डित् होने के कारण प्रत्यय के परे रहते प्रकृति के टिसंज्ञक भाग का **टेः** सूत्र से लोप हो जाता है।

पञ्चदश मन्त्राः परिमाणमस्य पञ्चदशः स्तोमः। सोमयाग में पढ़े जाने वाले स्तुति के पन्द्रह मन्त्र परिमाण है, जिस स्तोम का, वह। **पञ्चदश मन्त्राः परिमाणमस्य** विग्रह करके **पञ्चदशन्+जस्** इस स्थिति में **स्तोमे डविधिः** वार्तिक के द्वारा ड-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होने के बाद **टेः** सूत्र के द्वारा टिसंज्ञक भाग **अन्** का लोप होकर **पञ्चदश** शब्द बना है। स्वादिकार्य होने पर इसके रूप **राम**-शब्द की तरह होते हैं- **पञ्चदशः**।

सप्तदशः। सोमयाग में पढ़े जाने वाले स्तुति के सत्रह मन्त्र परिमाण है, जिसका। **सप्तदश मन्त्राः परिमाणमस्य** विग्रह करके **सप्तदशन्+जस्** इस स्थिति में **स्तोमे डविधिः** वार्तिक के द्वारा ड-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, टिलोप **सप्तदश** और स्वादिकार्य होकर **सप्तदशः** सिद्ध हो जाता है।

एकविंशः। **डप्रत्यये तिलोपः**। सोमयाग में पढ़े जाने वाले स्तुति के इक्कीस मन्त्रों का समूह। **एकविंशतिः मन्त्राः परिमाणमस्य** विग्रह करके **एकविंशति+सु** इस स्थिति में **स्तोमे डविधिः** वार्तिक के द्वारा ड-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **एकविंशति+अ** बना है। **तिविंशतेर्डिति** सूत्र से **ति**-शब्द का लोप हो जाता है और शकारोत्तरवर्ती अकार का **यस्येति च** से लोप होकर **एकविंश** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **एकविंशः** सिद्ध हो जाता है। **विंशति** आदि शब्दों में ति-शब्द का लोप करने के लिये ही प्रत्यय में डित्करण किया गया है, क्योंकि **तिविंशतेर्डिति** सूत्र डित् प्रत्यय के परे रहते ही ति-शब्द का लोप करता है। अन्यथा केवल अ-प्रत्यय करके **नस्तद्धिते** सूत्र से टिलोप करने पर भी **पञ्चदशः, सप्तदशः** आदि की सिद्धि हो जाती।

सोमयागेषु छन्दोगैः क्रियमाणा पृष्ठादिसञ्ज्ञिका स्तुतिः स्तोमः। सोमयाग में सामगायकों द्वारा की जाने वाली पृष्ठ्यादि स्तुति को **स्तोम** कहा गया है। मनुष्यादि के समूह अर्थ में **स्तोम** शब्द लाक्षणिक है। मीमांसकों के अनुसार **पृष्ठि, रथन्तर** आदि शब्दों से वाच्य **प्रगीत-मन्त्र-साध्य** गुणानुवाद करने वाली स्तुति ही स्तोम है और वह स्तोम ही ड-प्रत्यय के अर्थ के रूप में गृहीत है।

अब अगले सूत्र से संख्यावाची शब्दों का निपातन किया जा रहा है। एक, द्वि, त्रि, चतुर्, पञ्चन्, षष्, सप्तन्, अष्टन्, नवन्, दशन् शब्दों की सिद्धि उणादि में की गयी है। विंशति, त्रिंशत्, चत्वारिंशत्, पञ्चाशत्, षष्टि, सप्तति, नवति, शतम् शब्दों की सिद्धि सूत्रकार ने तद्धितप्रकरण में की है।

संख्या और संख्येय के सम्बन्ध में

सभी पदार्थों की सहज संख्या एकत्व है। द्वित्व आदि का मूल रूप भी एकत्व ही है, क्योंकि भेद की प्रतीति अभेदपूर्वक होती है। द्वित्व, त्रित्व आदि भेदमूलक हैं किन्तु एकत्व अभेदमूलक है। बिना एकत्व के द्वित्व, बहुत्व आदि का परिज्ञान नहीं हो पायेगा। द्वित्व आदि स्वरूप के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वान् द्वित्व को एकत्व से अभिन्न (अव्यतिरिक्त) मानते हैं परन्तु यह मत आचार्य पाणिनि को मान्य नहीं है। पाणिनि जी ने **द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने** (१.४.२२) सूत्र द्वारा द्वित्व में द्विवचन और एकत्व में एकवचन का विधान किया है। अव्यतिरिक्त मानने पर तो द्वित्व के एकत्व से अभिन्न होने के कारण दो एकत्व में द्विवचन होगा। फलतः **द्व्येकयोः** शब्द से तीन एकत्व (दो+एक) का ग्रहण होने लगेगा, जिससे बहुवचन की प्राप्ति होने लगेगी। अतः दो एकत्व से जनित द्वित्व को उन से व्यतिरिक्त (भिन्न) मानना समुचित है। तीन से लेकर दस तक की संख्याओं के बारे में इसी तरह का सिद्धान्त मान्य है। बीस और बीस से आगे की संख्याओं के सम्बन्ध में आचार्य भर्तृहरि ने महाभाष्य के आधार पर अपना पक्ष रखा है। इन संख्याओं के सम्बन्ध में उनका कहना है कि एक तो इनके व्युत्पन्न और अव्युत्पन्न होने के सम्बन्ध में है और दूसरा इनके संख्येय (क्रमवाचक) से सम्बन्ध रखता है। व्युत्पन्न पक्ष में विंशति-शब्द दशद्वयार्थाभिधायी द्वि-शब्द से शतिच्-प्रत्यय का निपातन कर सिद्ध किया जाता है। वस्तुतः सम्पूर्ण शब्द ही निपातन के द्वारा सिद्ध किया जाता है। केवल साधुत्व के परिज्ञान के लिये प्रकृति-प्रत्यय की कल्पना की जाती है। शतिच्-प्रत्यय को स्वार्थिक माना है। स्वार्थ का अभिप्राय विशेष अर्थ उपस्थापित न कर प्रकृति के अर्थ को ही बतलाने से है। कोष आदि में **विंशति** आदि शब्द संख्या (गणना) और संख्येय (क्रमवाचक) दोनों अर्थों में व्यवहृत हैं। जैसे कि बीस गाय के लिये **गवां विंशतिः** तथा **विंशतिर्गावः** दो प्रकार से प्रयोग किया जाता है।

१७२५. पङ्क्तिविंशतित्रिंशच्चत्वारिंशत्पञ्चाशत्षष्टि-सप्तत्यशीतिनवतिशतम् ५।१।५९॥

एते रूढिशब्दा निपात्यन्ते।

पङ्क्ति-विंशति-त्रिंशच्चत्वारिंशत्० पङ्क्तिश्च विंशतिश्च त्रिंशच्च चत्वारिंशच्च पञ्चाशच्च षष्टिश्च सप्ततिश्च अशीतिश्च नवतिश्च शतञ्च तेषां समाहारद्वन्द्वः पङ्क्ति-विंशति-त्रिंशच्चत्वारिंशत्पञ्चाशत्षष्टिसप्तत्यशीतिनवतिशतम्। समाहारद्वन्द्वात्मकं प्रथमान्तम् एकपदमिदं सूत्रम्। **तदस्य परिमाणम्** के तीनों पदों की अनुवृत्ति होती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार है।

पङ्क्ति, विंशति, त्रिंशत्, चत्वारिंशत्, पञ्चाशत्, षष्टि, सप्तति, अशीति, नवति और शतम् इन रूढ-शब्दों का निपातन होता है।

तदस्य परिमाणम् के प्रकरण में यह निपातन है। अतः परिमाण ही प्रत्ययार्थ है। पाणिनि जी ने इन शब्दों में प्रकृति और प्रत्यय की कल्पना न करके सीधे ही उच्चारण कर इन शब्दों का अनुशासन किया है। प्रकृति और प्रत्यय न दिखाकर सीधे शब्दों को दिखाने को ही **निपातन** कहते हैं। अब इसमें हम चाहें तो अनुरूप प्रकृति और प्रत्यय लगा सकते हैं अथवा पाणिनि जी द्वारा ये दस शब्द तद्धितान्त के रूप में स्वयं सिद्ध हैं, इनकी प्रक्रिया के चक्कर में न पड़कर इनको साधु अर्थात् शुद्ध मानकर प्रक्रिया के बिना ही काम चलाने में भी कोई आपत्ति नहीं है। तथापि व्याख्याकारों ने उपयुक्त प्रकृति और प्रत्ययों की कल्पना की है। उसके अनुसार यथासम्भव प्रक्रिया दिखाने का प्रयत्न किया जा रहा है-

पङ्क्तिः। पाँच समूह वाला छन्दः। **पञ्च परिमाणमस्याः** विग्रह करके **पञ्चन्+जस्** में **पङ्क्तिविंशति०** सूत्र से निपातनात् **ति** प्रत्यय, टिसंज्ञक भाग **अन्** का लोप करके **पञ्च्+ति** बना है। चकार को **चोः कुः** से कुत्व होकर ककार और उससे पूर्व नकारज ञकार को भी अनुस्वार मानकर परसवर्ण करने से **पङ्क्ति** शब्द बनता है। स्वादिकार्य से **पङ्क्तिः** सिद्ध हो जाता है। **पङ्क्ति**-छन्द में ४० अक्षर होते हैं और प्रत्येक पाद् में आठ अक्षर हैं। इस तरह आठ अक्षर वाले पाँच पादों वाला छन्द **पङ्क्ति** कहलाता है।

अगले सूत्र से वर्ग-अर्थ गम्य होने पर **पञ्चन्** और **दशन्** शब्दों में **पञ्चद्** और **दशद्** का निपातन किया जा रहा है। उससे **पञ्चद्** और **दशद्** शब्दों का अर्थ स्पष्ट हो जायेगा।

विंशतिः। दो दशक जिस समूह का परिमाण हो, बीस। **द्वौ दशतौ परिमाणमस्याः** विग्रह करके **द्विदशत्+औ** में **पङ्क्तिविंशति०** सूत्र से निपातनात् **शतिच्**-प्रत्यय और प्रकृतिभाग **द्विदशत्** के स्थान पर **विन्** आदेश होकर **विन्+शति** बन जाता है। नकार को अनुस्वार होकर **विंशति** शब्द बन जाता है। स्वादिकार्य से **विंशतिः** सिद्ध हो जाता है। अमरकोश के अनुसार **विंशत्याद्याः सदैकत्वे** अर्थात् **विंशति, त्रिंशत्** से लेकर सभी **शतादि** शब्द तक केवल एकवचन में होते हैं और स्त्रीलिंग भी।

त्रिंशत्। तीन दशक जिस समूह का परिमाण हो, तीस। **त्रयो दशतः परिमाणमस्याः** विग्रह करके **त्रिदशत्+जस्** में **पङ्क्तिविंशति०** सूत्र से निपातनात् **शत्**-प्रत्यय और प्रकृतिभाग **त्रिदशत्** के स्थान पर **त्रिन्** आदेश होकर **त्रिन्+शत्** बन जाता है। नकार को अनुस्वार होकर **त्रिंशत्** शब्द बन जाता है। स्वादिकार्य से **त्रिंशत्** सिद्ध हो जाता है।

चत्वारिंशत्। चार दशक जिस समूह का परिमाण हो, चालीस। **चत्वारो दशतः परिमाणमस्याः** विग्रह करके **चतुर्दशत्+जस्** में **पङ्क्तिविंशति०** सूत्र से निपातनात् **शत्**-प्रत्यय और प्रकृतिभाग **चतुर्दशत्** के स्थान पर **चत्वारिन्** आदेश होकर **चत्वारिन्+शत्**

और नकार को अनुस्वार होकर **चत्वारिंशत्** शब्द बन जाता है। स्वादिकार्य से **चत्वारिंशत्** सिद्ध हो जाता है।

पञ्चाशत्। पाँच दशक जिस समूह का परिमाण हो, पचास। **पञ्च दशतः परिमाणमस्याः** विग्रह करके **पञ्चदशत्+जस्** में **पङ्क्तिविंशति०** सूत्र से निपातनात् **शत्**-प्रत्यय और प्रकृतिभाग के स्थान पर **पञ्चा** आदेश होकर **पञ्चाशत्** शब्द बन जाता है। स्वादिकार्य से **पञ्चाशत्** सिद्ध हो जाता है।

षष्टिः। छह दशक जिस समूह का परिमाण हो, साठ। **षड् दशतः परिमाणमस्याः** विग्रह करके **षड्दशत्+जस्** में **पङ्क्तिविंशति०** सूत्र से निपातनात् **ति**-प्रत्यय और प्रकृतिभाग के स्थान पर **षष्** आदेश होकर **षष्+ति** बन जाता है। **ष्टुना ष्टुः** से तकार को ष्टुत्व होकर **षष्टि** और स्वादिकार्य से **षष्टिः** सिद्ध हो जाता है।

सप्ततिः। सात दशक जिस समूह का परिमाण हो, सत्तर। **सप्त दशतः परिमाणमस्याः** विग्रह करके **सप्तदशत्+जस्** में **पङ्क्तिविंशति०** सूत्र से निपातनात् **ति**-प्रत्यय और प्रकृतिभाग के **दशत्** शब्द का लोप होकर **सप्तति** बन जाता है और स्वादिकार्य से **सप्ततिः** सिद्ध हो जाता है।

अशीतिः। आठ दशक जिस समूह का परिमाण हो, अस्सी। **अष्टौ दशतः परिमाणमस्याः** विग्रह करके **अष्टदशत्+जस्** में **पङ्क्तिविंशति०** सूत्र से निपातनात् ति-प्रत्यय और प्रकृतिभाग के स्थान पर **अशी** आदेश होकर **अशीति** बन जाता है। स्वादिकार्य से अशीतिः सिद्ध हो जाता है।

नवतिः। नौ दशक जिस समूह का परिमाण हो, नब्बे। **नव दशतः परिमाणमस्याः** विग्रह करके नवदशत्+जस् में **पङ्क्तिविंशति०** सूत्र से निपातनात् **ति**-प्रत्यय और प्रकृतिभाग के दशत् का लोप करके **नवति** शब्द बन जाता है। स्वादिकार्य से **नवतिः** सिद्ध हो जाता है।

शतम्। दस दशक जिस समूह का परिमाण हो, सौ। **दश दशतः परिमाणस्य** विग्रह करके दशदशत्+जस् में **पङ्क्तिविंशति०** सूत्र से निपातनात् **त**-प्रत्यय और प्रकृतिभाग के स्थान पर **श** आदेश होकर **शत** बन जाता है। स्वादिकार्य से **शतम्** सिद्ध हो जाता है।

ऊपर पाणिनि जी द्वारा निपातित शब्दों में प्रकृति-प्रत्ययों की कल्पना करके अन्वाख्यान किया गया। वार्तिककार ने उक्त शब्दों को अव्युत्पन्न प्रातिपदिक माना है। जिस तरह सहस्र, अयुत, अर्बुद आदि शब्द अव्युत्पन्न हैं, उसी तरह विंशति आदि शब्द भी अव्युत्पन्न हैं। अव्युत्पन्न शब्दों की **अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्** से प्रातिपदिकसंज्ञा हो जाने के कारण स्वादिकार्य होता ही है। अनेकार्थक **अक्ष** शब्द की तरह **विंशति** आदि शब्द भी **संख्या** और **संख्येय** दोनों अर्थों में स्वभावतः प्रयुक्त होते हैं। वे रूढ-शब्द हैं और रूढ-शब्द होने के कारण उनके लिंग और उनकी संख्या नियत होती है। महाभाष्यकार ने तो व्युत्पत्तिपक्ष का संकेत कर प्रकृति-प्रत्यय तथा प्रत्ययार्थ की कल्पना

की है। **अक्ष** आदि शब्द जब अनेकार्थक होते हैं तब उनमें कोई अन्वय नहीं होता। वे भिन्न-भिन्न जातियों में रूढ होते हैं अर्थात् वे यौगिक नहीं होते। **विंशति, सहस्र** आदि शब्द जब गुणी के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं तब यौगिक शब्द ही माने जाते हैं। वे शब्द संख्या से निरपेक्ष संख्येय-विशेष की अभिव्यक्ति नहीं करते।

१७२६. पञ्चद्दशतौ वर्गे वा ५।१।६०॥

पञ्च परिमाणमस्य पञ्चद्वर्गः। दशत्। पक्षे पञ्चकः। दशकः।

पञ्चद्दशतौ वर्गे वा। पञ्चत् च दशत् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः पञ्चद्दशतौ प्रथमान्तं, वर्गे प्रथमान्तं, वाव्ययम्। **तदस्य परिमाणम्** के तीनों पदों की अनुवृत्ति होती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार है।

पञ्चत् और दशत् ये दो डति-प्रत्ययान्त शब्दों का 'तदस्य परिमाणम्' के विषय में 'वर्ग' अभिधेय होने पर विकल्प से निपातन किया जाता है।

डति में इकार को उच्चारणार्थक मानना पड़ेगा और डकार इत्संज्ञक है। इस तरह **अत्** बचता है। डित् होने के कारण इसके परे रहते **टेः** सूत्र से टिसंज्ञक भाग का लोप हो जायेगा। उक्त निपातित रूप वैकल्पिक हैं। पक्ष में **संख्याया अतिशदन्तायाः कन्** से कन् प्रत्यय भी होता है।

पञ्च परिमाणमस्य पञ्चद् वर्गः। पक्षे पञ्चकः। पाँच व्यक्तियों या पदार्थों का वर्ग। **पञ्च परिमाणम् अस्य** विग्रह करके **पञ्चन्+जस्** इस स्थिति में **पञ्चद्दशतौ वर्गे वा** सूत्र के द्वारा डति-प्रत्ययान्त रूप का निपातन किया जाता है अर्थात् **पञ्चन्** शब्द से **डति** प्रत्यय किया जाता है। अनुबन्धलोप, टिसंज्ञक भाग **अन्** का लोप आदि होकर **पञ्चत्** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **पञ्चत्, पञ्चतौ, पञ्चतः** आदि रूप बनते हैं।

दशत्। पक्षे दशकः। दस व्यक्तियों या पदार्थों का वर्ग। **दश परिमाणम् अस्य** विग्रह करके **दशन्+जस्** इस स्थिति में **पञ्चद्दशतौ वर्गे वा** सूत्र के द्वारा डति-प्रत्ययान्त रूप का निपातन किया जाता है अर्थात् **दशन्** शब्द से **डति** प्रत्यय किया जाता है। अनुबन्धलोप, टिसंज्ञक भाग **अन्** का लोप आदि होकर **दशत्** शब्द बनत्ता है। स्वादिकार्य होकर **दशत्, दशतौ, दशतः** आदि रूप बनते हैं।

१७२७. त्रिंशच्चत्वारिंशतोर्ब्राह्मणे सञ्ज्ञायां डण् ५।१।६२॥

त्रिंशदध्यायाः परिमाणमेषां ब्राह्मणानां त्रैंशानि। चात्वारिंशानि।

त्रिंशच्चत्वारिंशतोर्ब्राह्मणे सञ्ज्ञायां डण्। त्रिंशत् च चत्वारिंशत् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः- त्रिंशच्चत्वारिंशतौ, तयोः त्रिंशच्चत्वारिंशतोः। त्रिंशच्चत्वारिंशतोः पञ्चम्यर्थे षष्ठ्यन्तं, ब्राह्मणे सप्तम्यन्तं, संज्ञायां सप्तम्यन्तं, डण् प्रथमान्तम्। **तदस्य**

परिमाणम् के तीनों पदों की अनुवृत्ति होती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार है।

त्रिंशत् और चत्वारिंशत् प्रातिपदिकों से संज्ञा-विषय में 'तदस्य परिमाणम्' को अभिव्यक्त करने में यदि परिमाणी ब्राह्मण-ग्रन्थ हो तो डण् प्रत्यय होता है।

डण् में डकार और णकार इत्संज्ञक हैं। डित्करण टिलोप के लिये और णित्करण आदिवृद्धि के लिये है। **अ** बचता है।

त्रिंशदध्यायाः परिमाणमेषां ब्राह्मणानां त्रैंशानि। तीस अध्यायों वाला ब्राह्मण ग्रन्थ। **त्रिंशद् अध्यायाः परिमाणम् एषाम्** विग्रह करके **त्रिंशत्+सु** इस स्थिति में **त्रिंशच्चत्वारिंशतोर्ब्राह्मणे सञ्ज्ञायां डण्** सूत्र से डण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और आदिवृद्धि होकर **त्रैंशत्+अ** बना है। डित् परे होने के कारण **टेः** सूत्र के द्वारा टिसंज्ञक भाग **अत्** का लोप होकर **त्रैंश** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर प्रथमाबहुवचन में **त्रैंशानि** सिद्ध हो जाता है। विशेष्य पद **ब्राह्मणानि** है- **त्रैंशानि ब्राह्मणानि।**

चात्वारिंशानि। चालीस अध्यायों वाला ब्राह्मण ग्रन्थ। **चत्वारिंशद् अध्यायाः परिमाणम् एषाम्** विग्रह करके **चत्वारिंशत्+सु** इस स्थिति में **त्रिंशच्चत्वारिंशतोर्ब्राह्मणे सञ्ज्ञायां डण्** सूत्र से डण् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और आदिवृद्धि होकर **चत्वारिंशत्+अ** बना है। डित् परे होने के कारण **टेः** सूत्र के द्वारा टिसंज्ञक भाग **अत्** का लोप होकर **चात्वारिंश** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर प्रथमाबहुवचन में **चात्वारिंशानि** सिद्ध हो जाता है। विशेष्य पद **ब्राह्मणानि** है- **चात्वारिंशानि ब्राह्मणानि।**

ऐतरेय-ब्राह्मण के प्रारम्भ से तीस अध्यायों का भाग **त्रैंश** कहलाता है और अन्तिम दस अध्याय मिलाकर **चात्वारिंश** संज्ञा हो जाती है।

यहाँ **तदस्य परिमाणम्** का प्रसंग पूरा हो जाता है। अब आगे **तद् अर्हति** अर्थ में प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है। आर्हीयों में यह ग्यारहवाँ अर्थक्रम है।

१७२८. तदर्हति ५।१।६३॥

लब्धुं योग्यो भवतीत्यर्थे द्वितीयान्ताट्ठञादयः स्युः।
श्वेतच्छत्रमर्हति श्वैतच्छत्रिकः।

तदर्हति। तद् द्वितीयान्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकम्, अर्हति क्रियापदं द्विपदमिदं सूत्रम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार है।

यह व्यक्ति 'उस वस्तु को प्राप्त करने योग्य है' इस अर्थ में द्वितीयान्त प्रातिपदिकों से यथाविहित ठञ् आदि प्रत्यय होते हैं।

सूत्रस्थ **तद्** पद समर्थ-विभक्ति द्वितीया का सूचक है और **अर्हति** अर्थबोधक पद है। वैसे **अर्हति** का अर्थ होता है- **योग्य होता है**। यह अर्थ यहाँ ग्राह्य नहीं है, क्योंकि उक्त अर्थ को स्वीकार करने पर अकर्मक होने के कारण समर्थविभक्ति द्वितीया उपपन्न नहीं हो सकती। अतः अतः **लब्धुं योग्यः** अर्थ की परिकल्पना की जाती है।

श्वैतच्छत्रिकः। सफेद छत्री प्राप्त करने योग्य। प्राचीन काल में योग्य विद्वान् और राजा आदि के सम्मान में छत्र, चँवर आदि प्रदान करते थे और आज धर्माचार्यों में भी यह प्रथा है। **श्वेतच्छत्रम् अर्हति** लौकिक विग्रह और **श्वेतच्छत्र+अम्** यह अलौकिक विग्रह है। **तदर्हति** से ठञ्, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **ठस्येकः** से इक आदेश, **तद्धितेष्वचामादेः** से आदि अच् की वृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **श्वैतच्छत्र्+इक=श्वैतच्छत्रिक** बना। सु, रुत्वविसर्ग होकर **श्वैतच्छत्रिकः** सिद्ध हुआ।

चामरिकः। चँवर प्राप्त करने योग्य। **चमरम् अर्हति** लौकिक विग्रह और **चमर अम्** यह अलौकिक विग्रह है। **तदर्हति** से ठञ्, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **ठस्येकः** से इक आदेश, **तद्धितेष्वचामादेः** से आदि अच् की वृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **चामर्+इक=चामरिक** बना। सु, रुत्वविसर्ग होकर **चामरिकः** सिद्ध हुआ।

१७२९. छेदादिभ्यो नित्यम् ५।१।६४॥

नित्यमाभीक्ष्ण्यम्। छेदं नित्यमर्हति छैदिको वेतसः। छिन्नप्ररूढत्वात्। 'विराग विरङ्गं च' (ग.सू.९९)। विरागं नित्यमर्हति वैरङ्गिकः।

छेदादिभ्यो नित्यम्। छेद आदिर्येषां ते छेदादयस्तेभ्यः छेदादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, नित्यं प्रथमान्तम्। **तदर्हति** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार है।

नित्यमाभीक्ष्ण्यम्। सूत्रोक्त **नित्यम्** पद आभीक्ष्ण्य=पौनःपुन्य अर्थ में है अर्थात् निरन्तरता अर्थ का द्योतक है। अतः यह प्रत्ययार्थ का विशेषण नहीं है। उसका कारण यह है कि **तदर्हति** को अभिलक्षित कर **आर्हादगोपुच्छसंख्यापरिमाणाट् ठक्** (५१.१.१९) सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय तो **छेद** आदि शब्दों से स्वतः सिद्ध था, अतः पौनःपुन्यार्थ में ही ठक् विधान के लिये प्रकृत सूत्र की उपयोगिता है और इसी के लिये **नित्यम्** की सार्थकता है।

सूत्रार्थः- **छेद आदि द्वितीयान्त प्रातिपदिकों से 'पुनः पुनः प्राप्त करने योग्य है' अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होते हैं।**

छेदं नित्यमर्हति छैदिको वेतसः, छिन्नप्ररूढत्वात्। काटने से बढ़ने के कारण बेंत नित्य=निरन्तर छेद=काटने योग्य होता है। **नित्यं छेदम् अर्हति** विग्रह करके **छेद+अम्** इस स्थिति में **छेदादिभ्यो नित्यम्** सूत्र से ठञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करके **छैदिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **छैदिकः** सिद्ध हो जाता है।

छेदादिगणः- छेद, भेद, द्रोह, दोह, नर्ति, (नर्त) कर्ष, तीर्थ, संप्रयोग, विप्रयोग, प्रयोग, विप्रकर्ष, प्रेषण, संप्रश्न, विप्रश्न, विकर्ष, प्रकर्ष। **विराग विरङ्गं च**।

विराग विरङ्गं च। यह छेदादिगणान्तर्गत का गणसूत्र है। सूत्रार्थः- द्वितीयान्त विराग-शब्द से **नित्यम् अर्हति** अर्थ में ठञ्-प्रत्यय के साथ प्रकृति को **विरङ्ग** आदेश भी होता है।

विरागं नित्यमर्हति वैरङ्गिकः। सदा वैराग्य का अधिकारी। **नित्यं विरागम् अर्हति** विग्रह करके **विराग+अम्** इस स्थिति में **विराग विरङ्गं च** वार्तिक से ठञ्-प्रत्यय और **विरङ्ग** आदेश, अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करके **वैरङ्गिक** तथा स्वादिकार्य होकर **वैरङ्गिकः** सिद्ध हो जाता है।

कुछ लोगों के मत में सूत्रोक्त **नित्यम्** पद आभीक्ष्ण्यार्थक (पौनःपुन्यार्थ) नहीं है, किन्तु प्रत्ययार्थ का विशेषण है और **समर्थानां प्रथमाद्वा** के पाक्षिक प्रभाव की निवृत्ति के लिये उपयोगी है।

१७३०. शीर्षच्छेदाद्यच्च ५।१।६५॥

शिरश्छेदं नित्यमर्हति शीर्षच्छेद्यः, शैर्षच्छेदिकः।
यट्ठकोः सन्नियोगेन शिरसः शीर्षभावो निपात्यते।

शीर्षच्छेदाद्यच्च। शीर्षच्छेदात् पञ्चम्यन्तं, यत् प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **तदर्हति** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** आदि का अधिकार है।

शीर्षच्छेद इस द्वितीयान्त प्रातिपदिक से नित्यमर्हति=पुनः पुनः योग्य है-अर्थ में यत् प्रत्यय भी होता है।

यट्ठकोः सन्नियोगेन शिरसः शीर्षभावो निपात्यते। सूत्र में **शीर्षच्छेद** शब्द का पाठ है, वह यत् और ठक् प्रत्यय के सन्नियोग में **शिरस्**-शब्द के स्थान पर **शीर्ष** आदेश के निपातन से सिद्ध है।

शिरश्छेदं नित्यमर्हति शीर्षच्छेद्यः, शैर्षच्छेदिकः। सदा सिर काटने योग्य। **शिरच्छेदम् अर्हति** विग्रह करके **शिरच्छेद+अम्** इस स्थिति में **शीर्षच्छेदाद्यच्च** सूत्र से यत् प्रत्यय होने पर **शीर्ष** आदेश निपातन होकर **शीर्षच्छेद+य** बना है। भसंज्ञक अकार का लोप करके **शीर्षच्छेद्य** शब्द बन जाता है। ठक्-प्रत्यय होने के पक्ष में भी **शीर्ष** आदेश, प्रत्यय में अनुबन्धलोप, ठ के स्थान पर इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करके **शैर्षच्छेदिक** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **शीर्षच्छेद्यः** और **शैर्षच्छेदिकः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

१७३१. दण्डादिभ्यो यत् ५।१।६६।

एभ्यो यत् स्यात्। दण्डमर्हति दण्ड्यः। अर्घ्यः। वध्यः।

दण्डादिभ्यो यत्। दण्डः आदिर्येषां ते दण्डादयस्तेभ्यः। दण्डादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, यत् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तदर्हति** पूरा सूत्र अनुवृत्त होता है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

दण्ड आदि गणपठित द्वितीयान्त प्रातिपदिक से तदर्हति अर्थ में यत् प्रत्यय होता है।

दण्ड्यः। दण्ड पाने योग्य। **दण्डम् अर्हति** लौकिक विग्रह और **दण्ड अम्** अलौकिक विग्रह है। **दण्डादिभ्यो यत्** से यत्, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप करके **दण्ड्+य=दण्ड्य** बना। उसके बाद रुत्व और विसर्ग करके **दण्ड्यः** सिद्ध हुआ।

अर्घ्यः। अर्घ पाने योग्य। **अर्घम् अर्हति** लौकिक विग्रह और **अर्घ अम्** अलौकिक विग्रह है। **दण्डादिभ्यो यत्** से यत्, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप करके **अर्घ्+य=अर्घ्य** बना। उसके बाद रुत्व और विसर्ग करके **अर्घ्यः** सिद्ध हुआ।

वध्यः। वध करने योग्य। **वधम् अर्हति** लौकिक विग्रह और **वध अम्** अलौकिक विग्रह है। **दण्डादिभ्यो यत्** से यत्, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप करके **वध्+य=वध्य** बना। उसके बाद रुत्व और विसर्ग करके **वध्यः** सिद्ध हुआ।

दण्डादिगणः- दण्ड, मुसल, मधुपर्क, कशा, अर्घ, मेघ, मेधा, सुवर्ण, उदक, वध, युग, गुहा, भाग, इभ, भङ्ग।

बालमनोरमाकार और तत्त्वबोधिनीकार के अनुसार तो इस सूत्र का स्वरूप है- **दण्डादिभ्यः।** ऐसा मानने पर **शीर्षच्छेदाद्यच्च** से **यत्** की अनुवृत्ति आयेगी। यह उचित भी लगता है, क्योंकि जो पद अनुवृत्ति से लभ्य हो, उसके पुनः पाठ का कोई औचित्य नहीं लगता।

१७३२. पात्राद् घंश्च ५।१।६८॥

चाद्यत्। तदर्हतीत्यर्थे। पात्रियः, पात्र्यः।

पात्राद् घंश्च। पात्रात् पञ्चम्यन्तं, घन् प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **तदर्हति** पूरा सूत्र अनुवृत्त होता है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

द्वितीया-समर्थ पात्र प्रातिपदिक से तदर्हति अर्थ में घन् प्रत्यय भी होता है।

चाद्यत्। सूत्रोक्त च-शब्द के कारण यत् प्रत्यय का भी समुच्चय है।

तदर्हतीत्यर्थे। इस सूत्र में भी **तदर्हति** का सम्बन्ध है। पात्र-शब्द परिमाणवाची भी है और योग्यार्थ भी। अतः ठक् और ठञ् दोनों की प्राप्ति थी, उसका प्रकृतसूत्र अपवाद है।

पात्रियः, पात्र्यः। पात्र पाने का अधिकारी। **पात्रम् अर्हति** विग्रह करके **पात्र+अम्** इस स्थिति में **पात्राद् घंश्च** सूत्र के द्वारा घन्-प्रत्यय होने के पक्ष में नकार की इत्संज्ञा और घकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र के द्वारा **इय्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **पात्र+इय** बना है। भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पात्रिय** शब्द बना हुआ है। **यत्** प्रत्यय होने के पक्ष में तो अकारलोप होकर **पात्र्य** बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पात्रियः** और **पात्र्यः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

१७३३. कडङ्करदक्षिणाच्छ च ५।१।६९॥

चाद्यत्। कडं करोतीति विग्रहेऽत एव निपातनात् खच्। कडङ्करं माषमुद्गादिकाष्ठमर्हतीति कडङ्करीयो गौः। कडङ्कर्यः। दक्षिणामर्हतीति दक्षिणीयः, दक्षिण्यः।

कडङ्करदक्षिणाच्छ च। कडङ्करश्च दक्षिणा च तयोः समाहारद्वन्द्वः कडङ्करदक्षिणं, तस्मात् कडङ्करदक्षिणात् पञ्चम्यन्तं, छ इति लुप्तप्रथमाकं पदं, चाव्ययम्। **तदर्हति** पूरा सूत्र अनुवृत्त होता है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

द्वितीया-समर्थ कडङ्कर और दक्षिण इन प्रातिपदिकों से तदर्हति अर्थ में छ-प्रत्यय भी होता है।

चाद्यत्। सूत्रोक्त च-शब्द से छ-प्रत्यय का समुच्चय है।

कडं करोतीति विग्रहेऽत एव निपातनात् खच्। सूत्रोक्त **कडङ्कर**-शब्द की व्युत्पत्ति बता रहे हैं। **कडं करोति** विग्रह करके **कड+अम्** के उपपद रहते **कृ**-धातु से निपातनात्=प्रकृत सूत्र में सूत्रकार द्वारा **कडङ्कर** इस रूप में उच्चारण करने से किसी सूत्र से भी अप्राप्त खच्-प्रत्यय मान लिया जाता है, क्योंकि खित् प्रत्यय के परे रहते ही **खित्यनव्ययस्य** सूत्र से मुम् आगम हो सकता है। खच् में अनुबन्धलोप होकर **अ** बचता है। धातु के ऋकार को गुण और रपर होकर **कर** बन जाता है। पुनः **कडस्य कर** विग्रह करके **उपपदमतिङ्** सूत्र से समासादि करके **कड+कर** बनने के बाद उक्त सूत्र से मुम् आगम, अनुबन्धलोप, मकार को अनुस्वार और उसको परसवर्ण होकर **कडङ्कर** शब्द

सिद्ध होता है। ऊड़द, मुंग, गेहूँ आदि के धान्य निकालने पर जो कठोर सूखा डंठल, भूसा आदि बचता है, उसे **कडङ्कर** कहा गया है।

कडङ्करं माषमुद्गादिकाष्ठमर्हतीति कडङ्करीयो गौः। कडङ्कर्यः। ऊड़द, मुंग, गेहूँ आदि के धान्य निकालने पर जो कठोर भूसा आदि डंठल बचता है, उसे प्राप्त करने योग्य बैल। **कडङ्करम् अर्हति** विग्रह करके **कडङ्कर+अम्** इस स्थिति में **कडङ्करदक्षिणाच्छ च** सूत्र से छ-प्रत्यय होने पर छकार के स्थान पर **ईय्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञकान्त्य अकार का लोप होकर **कडङ्करीय** शब्द बना है। यत्-प्रत्यय होने के पक्ष में अलोप होकर **कडङ्कर्य** शब्द बन जाता है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कडङ्करीयः** और **कडङ्कर्यः** ये रूप सिद्ध हो जाते हैं।

दक्षिणामर्हतीति दक्षिणीयः, दक्षिण्यः। दक्षिणा प्राप्त करने योग्य। **दक्षिणाम् अर्हति** विग्रह करके **दक्षिणा+अम्** इस स्थिति में **कडङ्करदक्षिणाच्छ च** सूत्र से छ-प्रत्यय, ईयादेश और आकारलोप होकर **दक्षिणीय** तथा यत्-प्रत्यय होने के पक्ष में आलोप होकर **दक्षिण्य** शब्द बने हैं। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **दक्षिणीयः** और **दक्षिण्यः** ये रूप सिद्ध हो जाते हैं।

१७३४. स्थालीबिलात् ५।१।७०॥

स्थालीबिलमर्हन्ति स्थालीबिलीयास्तण्डुलाः, स्थालीबिल्याः। पाकयोग्या इत्यर्थः।

स्थालीबिलात्। पञ्चम्यन्तमेकपदमिदं सूत्रम्। **शीर्षच्छेदाद्यच्च** सूत्र से **यत्** की, **कडङ्करदक्षिणाच्छ च** से **छ** की और **तदर्हति** के दोनों पदों की अनुवृत्ति है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

द्वितीया-समर्थ स्थालीबिल प्रातिपदिक से तदर्हति अर्थ में छ और यत्-प्रत्यय होते हैं।

स्थालीबिलमर्हन्ति स्थालीबिलीयास्तण्डुलाः, स्थालीबिल्याः। पाकयोग्या इत्यर्थः। जो चावल पकाने के लिये बटलोई आदि में डालने योग्य हो अर्थात् पकाने योग्य चावल आदि। **स्थालीबिलम् अर्हति** विग्रह करके **स्थालीबिल+अम्** इस स्थिति में **स्थालीबिलात्** सूत्र के द्वारा छ-प्रत्यय होने के पक्ष में ईयादेश, अकारलोप आदि होकर **स्थालीबिलीय** शब्द बना है। यत्-प्रत्यय होने के पक्ष में अकारलोप होकर **स्थालीबिल्य** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर प्रथमा-बहुवचन में **स्थालीबिलीयाः** और **स्थालीबिल्याः** ये रूप दो सिद्ध हो जाते हैं।

१७३५. यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ ५।१।७१॥

यथासङ्ख्यं स्तः। **यज्ञमृत्विजं वार्हति यज्ञियः, आर्त्विजीनो यजमानः**। **'यज्ञर्त्विग्भ्यां तत्कर्मार्हतीत्युपसङ्ख्यानम्'**(वा.३०५२)। **यज्ञियो देशः**। **आर्त्विजीनः ऋत्विक्**।

इत्यार्हीयाणां ठगादीनां द्वादशानां पूर्णोऽवधिः।

यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ। यज्ञश्च ऋत्विक् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो यज्ञर्त्विजौ, ताभ्यां यज्ञर्त्विग्भ्याम्। घश्च खञ् च घखञौ। यज्ञर्त्विग्यां पञ्चम्यन्तं, घखञौ प्रथमान्तम्। **तदर्हति** के दोनों पदों की अनुवृत्ति है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है। प्रकृति (उद्देश्य) और प्रत्यय (विधेय) में समान-संख्या होने के कारण **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** की उपस्थिति होती है।

द्वितीया-समर्थ यज्ञ और ऋत्विज् इन प्रातिपदिकों से तदर्हति अर्थ में यथासंख्य=क्रमशः घ और खञ् प्रत्यय होते हैं।

यज्ञमृत्विजं वार्हति यज्ञियः, आर्त्विजीनो यजमानः। मूलकार ने दोनों उदाहरणों को एक साथ दिया है। हमें अलग-अलग बनाकर प्रक्रिया करनी चाहिये। यथासंख्य परिभाषा की उपस्थिति से **यज्ञ** शब्द से **घ** प्रत्यय और **ऋत्विज्** शब्द से **खञ्** प्रत्यय होता है। घकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र से **इय्** आदेश और खकार के स्थान पर उक्त सूत्र से ही **ईन्** आदेश होता है।

यज्ञमर्हति यज्ञियः। यज्ञ का अधिकारी ब्राह्मण। **यज्ञम् अर्हति** विग्रह करके **यज्ञ+अम्** इस स्थिति में **यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ** सूत्र के द्वारा **घ** प्रत्यय होने पर **इय्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञकान्त्य अकार का लोप होकर **यज्ञिय** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **यज्ञियः** सिद्ध हो जाता है।

ऋत्विजम् अर्हति आर्त्विजीनो यजमानः। यज्ञ में **ऋत्विज्** की योग्यता या पुरोहित प्राप्त करने का अधिकारी, यजमान। **ऋत्विजम् अर्हति** विग्रह करके **ऋत्विज्+अम्** इस स्थिति में **यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ** सूत्र के द्वारा **खञ्** प्रत्यय होने पर **ईन्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि (ऋकार को आर्) होकर **आर्त्विजीन** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आर्त्विजीनः** सिद्ध हो जाता है।

यज्ञर्त्विग्भ्यां तत्कर्मार्हतीत्युपसङ्ख्यानम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- यज्ञ और ऋत्विज् शब्दों से **कर्म करने योग्य** अर्थ में भी सूत्रोक्त घ और खञ् प्रत्यय यथासंख्य से होते हैं। सूत्रोक्त शब्दों की समर्थ-विभक्ति के अर्थ का विस्तार किया गया है। तदनुसार **यज्ञिय** शब्द का अर्थ होगा- यज्ञ करने योग्य स्थान और **आर्त्विजीन** शब्द का अर्थ होगा- यज्ञ में पुरोहित पद पाने का अधिकारी। यद्यपि **यज्ञ** और **ऋत्विज्** शब्दों

से लक्षणा द्वारा कर्मपरक अर्थ का लाभ हो सकता है और प्रकृत वार्तिक की बहुत आवश्यकता नहीं रह जाती, तथापि वार्तिककार द्वारा प्रकृत वार्तिक के पाठ से यह ज्ञापित होता है कि इस प्रकरण में मुख्यार्थवाची (अभिधेयार्थ) प्रातिपदिकों से ही प्रत्यय होते हैं न कि लक्षणा आदि के द्वारा उपस्थापित लक्ष्यार्थवाची (गौणार्थवाची) शब्दों से।

यज्ञियो देशः। यज्ञ करने योग्य देश, स्थान आदि। प्रक्रिया पूर्ववत्।

आर्त्विजीनः ऋत्विक्। यज्ञ में पुरोहितादि पद पाने का अधिकारी। प्रक्रिया पूर्ववत्। भाष्यकार ने भी पस्पशाह्निक में लिखा है- **आर्त्विजीनः स्याम इत्यध्येयं व्याकरणम्**।

इत्यार्हीयाणां ठगादीनां द्वादशानां पूर्णोऽवधिः। प्रकृत सूत्र के साथ ही **अर्हति** अर्थ का अधिकार समाप्त होता है, अतः **आर्हादगोपुच्छसंख्यापरिमाणाट् ठक्** (५.१.१९) सूत्र का प्रभाव भी समाप्त ही है। यद्यपि **प्राग्वतेष्ठञ्** (५.१.१८) से आरम्भ होकर **तेन क्रीतम्** (५.१.३७) सूत्र से पहले तक १३ प्रत्यय अनुक्रमण करते हैं, तथापि **प्राग्वतेष्ठञ्** को छोड़कर १२ प्रत्ययों का विधान हुआ है। उनकी अवधि यहाँ समाप्त होती है। अब केवल **ठञ्** का अधिकार चलेगा, क्योंकि उसकी अवधि **तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः** सूत्र से पूर्व तक है।

श्री भट्टोजिदीक्षित द्वारा विरचित वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी की गोविन्दाचार्य कृत श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी टीका में तद्धित-आर्हीय-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ ठञधिकारे कालाधिकारप्रकरणम्

(मूलम्) **अतः परं ठञेव।**

अब प्राग्वतीय ठञ् के अधिकार के अन्तर्गत कालाधिकार-प्रकरण आरम्भ होता है। आगे **कालात्** सूत्र के अधिकार में प्रत्ययों का विधान होने के कारण इसे **कालाधिकारप्रकरण** भी कहा जाता है। इस प्रकरण में औत्सर्गिक प्रत्यय **ठञ्** का ही विधान होगा, क्योंकि यह प्रकरण **प्राग्वतीय** के अन्तर्गत ही है। मध्य में पठित आर्हीय ठक् आदि तो ठञ् के अपवाद-स्वरूप ही थे। आर्हीय अर्थों का निरूपण होने के पश्चात् ठक् आदि प्रत्ययों की अनुवृत्ति सम्भव न होने से ठञ् का ही आधिकारिक प्रभाव विद्यमान था।

१७३६. पारायणतुरायणचान्द्रायणं वर्तयति ५।१।७२॥

पारायणं वर्तयति पारायणिकश्छात्रः।

तुरायणं यज्ञविशेषः, तं वर्तयति तौरायणिको यजमानः। चान्द्रायणिकः।

पारायणतुरायणचान्द्रायणं वर्तयति। पारायणं च तुरायणं च चान्द्रायणं च तेषां समाहारद्वन्द्वः पारायणतुरायणचान्द्रायणं, तत् पारायणतुरायणचान्द्रायणं द्वितीयान्तं, वर्तयतीति अर्थबोधकं क्रियापदम्। तदर्हति से द्वितीयान्त **तत्** की अनुवृत्ति आती है। **ठञ्, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

द्वितीया-समर्थ पारायण, तुरायण और चान्द्रायण इन प्रातिपदिकों से वर्तयति=बरतता है (आवृत्ति करता है)- अर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है।

प्राग्वतीयों में **वर्तयति** बारहवाँ अर्थक्रम है। अनुवृत्त **तत्** पद से समर्थ-विभक्ति द्वितीया मानी जाती है और **वर्तयति** यह प्रत्ययार्थ है। इस प्रकरण का औत्सर्गिक प्रत्यय **ठञ्** है।

पारायणं वर्तयति पारायणिकश्छात्रः। गुरु के निरीक्षण में पाठ की आवृत्ति करने वाला छात्र। **पारायणं वर्तयति** विग्रह करके **पारायण+अम्** में **पारायणतुरायणचान्द्रायणं वर्तयति** सूत्र के द्वारा ठञ् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, **ठ**

के स्थान पर **इक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् करके प्रत्यय के परे रहते प्रकृति में आदि अच् की पर्जन्यवल्लक्षणन्यायेन वृद्धि करके **पारायणिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पारायणिकः** सिद्ध हो जाता है।

प्राचीन काल में पारायण का विशेष महत्त्व था। उस समय वैदिक शाखा-ग्रन्थों का कण्ठस्थीकरण होता था। **श्रोत्रियं छन्दोऽधीते** के अनुसार वेद कण्ठाग्र करने वाले विद्वानों को **श्रोत्रिय** कहा जाता है। वेद के संहितापाठ के बाद पदपाद, क्रमपाठ, जटापाठ और घनपाठ आदि अनेक प्रकार से वैदिक मन्त्रों का सस्वर आवर्तन करना **पारायण** कहा जाता था। श्रावणी को उपाकर्म करके साढ़े चार मास तक वेद का पारायण किया जाता था। यह नियम छात्रावस्था के लिये था। छात्रावस्था के बाद तो कभी भी पारायण किया जा सकता था।

तुरायणं यज्ञविशेषः, तं वर्तयति तौरायणिको यजमानः। संवत्सरसाध्य इष्टियों को **तुरायण** कहा जाता है और उसका नियम पालन करने वाला यजमान **तौरायणिक** कहलाता है। **तुरायणं वर्तयति** विग्रह करके **तुरायण+अम्** में **पारायणतुरायणचान्द्रायणं वर्तयति** सूत्र के द्वारा ठञ् प्रत्यय, इकादेश, आदिवृद्धि करके **तौरायणिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **तौरायणिकः** सिद्ध हो जाता है।

चान्द्रायणिकः। चान्द्रायणव्रत या एतन्नामक प्रायश्चित्त करने वाला। **चान्द्रायणं वर्तयति** विग्रह करके **चान्द्रायण+अम्** में **पारायणतुरायणचान्द्रायणं वर्तयति** सूत्र के द्वारा ठञ् प्रत्यय, इकादेश, आदिवृद्धि करके **चान्द्रायणिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **चान्द्रायणिकः** सिद्ध हो जाता है।

चान्द्रायण एक धार्मिक व्रत या प्रायश्चित्तात्मक कर्म है जो चन्द्रमा की कलावृद्धि और कलाक्षय के अनुसार किया जाता है। इस व्रत में निश्चित १५ ग्रास (कौर) में पूर्णिमा से प्रतिदिन एक ग्रास कम करके अमावास्या को पूर्ण निराहार रहा जाता है और पुनः प्रतिपदा से एक-एक ग्रास बढ़ाकर अगली पूर्णिमा तक पुनः १५ ग्रास किया जाता है।

यहाँ पर एक ही सूत्र से **वर्तयति** अर्थ की समाप्ति है। अब अगले सूत्र से प्राग्वतीयों में तेरहवें अर्थक्रम **आपन्न** (प्राप्त) अर्थ में प्रत्यय किया जा रहा है।

१७३७. संशयमापन्नः ५।१।७३॥
संशयविषयीभूतोऽर्थः सांशयिकः।

संशयमापन्नः। संशयं द्वितीयान्तम्, आपन्नः प्रथमान्तम्। **तदर्हति** से द्वितीयान्त **तत्** की अनुवृत्ति आती है। **ठञ्, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

द्वितीया-समर्थ संशय इस प्रातिपदिक से आपन्न=प्राप्त- अर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है।

यहाँ पर **संशय**-शब्द का प्रयोग सन्देहकर्ता के विषय में न होकर स्थाणु आदि संशय-विषयीभूत वस्तु के बारे में समझना चाहिये।

संशयविषयीभूतोऽर्थः सांशयिकः। संशय के विषय को प्राप्त पदार्थ। **संशयम् आपन्नः** विग्रह करके **संशय+अम्** इस स्थिति में **संशयमापन्नः** सूत्र के द्वारा औत्सर्गिक ठञ् प्रत्यय, इकादेश, आदिवृद्धि और अकारलोप होकर **सांशयिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सांशयिकः** सिद्ध हो जाता है। जैसे कोई अल्प अन्धकार आदि में स्थाणु को देखकर संशय करता है कि यह ठूठ है या आदमी? ऐसी स्थिति में स्थाणु ही **सांशयिक** है न कि सन्देहकर्ता पुरुष।

अब प्राग्वतीयों में चौदहवें अर्थक्रम **गच्छति** अर्थ में प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है-

१७३८. योजनं गच्छति ५।१।७४॥

यौजनिकः।

'क्रोशशतयोजनशतयोरुपसंख्यानम्' (वा.३०५५)।

क्रोशशतं गच्छति क्रौशशतिकः। यौजनशतिकः।

'ततोऽभिगमनमर्हतीति च वक्तव्यम्' (वा.३०५६)।

क्रोशशतादभिगमनमर्हतीति क्रौशशतिको भिक्षुः। यौजनशतिक आचार्यः।

योजनं गच्छति। योजनं द्वितीयान्तं, गच्छति इति अर्थबोधकं क्रियापदम्। **तत्** की अनुवृत्ति आती है। ठञ्, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, **प्रत्ययः, परश्च** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

द्वितीया-समर्थ 'योजन' इस प्रातिपदिक से गच्छति=जाता है- अर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है।

यौजनिकः। योजन=चार कोस जाने वाला। **योजनं गच्छति** विग्रह करके **योजन+अम्** इस स्थिति में **योजनं गच्छति** सूत्र के द्वारा औत्सर्गिक ठञ् प्रत्यय, इकादेश, आदिवृद्धि और अकारलोप होकर **यौजनिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **यौजनिकः** सिद्ध हो जाता है।

क्रोशशतयोजनशतयोरुपसंख्यानम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- क्रोशशत और योजनशत शब्दों से भी **गच्छति** अर्थ में ठञ् प्रत्यय का विधान होना चाहिये। सूत्र से प्राप्त न होने के कारण वार्तिक की उपयोगिता है।

क्रोशशतं गच्छति क्रौशशतिकः। सौ कोस जाने वाला। **क्रोशशतं गच्छति** विग्रह करके **क्रोशशत+अम्** इस स्थिति में **क्रोशशतयोजनशतयोरुपसंख्यानम्** वार्तिक

के द्वारा औत्सर्गिक ठञ् प्रत्यय, इकादेश, आदिवृद्धि और अकारलोप होकर **क्रौशशतिक** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **क्रौशशतिकः** सिद्ध हो जाता है।

यौजनशतिकः। सौ योजन=चार सौ कोस चलने वाला। **योजनशतं गच्छति** विग्रह करके **योजनशत+अम्** इस स्थिति में **क्रोशशतयोजनशतयोरुपसंख्यानम्** वार्तिक के द्वारा औत्सर्गिक ठञ् प्रत्यय, इकादेश, आदिवृद्धि और अकारलोप होकर **यौजनशतिक** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **यौजनशतिकः** सिद्ध हो जाता है।

ततोऽभिगमनमर्हतीति च वक्तव्यम्। यह भी वार्तिक है। **ततः** पद से पूर्ववार्तिक के **क्रोशशत** और **योजनशत** का परामर्श है। अथवा **ततः** पद पञ्चमी-समर्थ-विभक्ति का सूचक है। वार्तिकार्थः- **अभिगमनमर्हति**=पास जाने योग्य है, अर्थ में पञ्चमी-समर्थ **क्रोशशत** और **योजनशत** शब्दों से ठञ् प्रत्यय होता है।

क्रोशशतादभिगमनमर्हतीति क्रौशशतिको भिक्षुः। सौ कोस दूर रहने पर भी नजदीक जाने योग्य भिक्षु। **क्रोशशताद् अभिगमनम् अर्हति** विग्रह करके **क्रोशशत+ङसि** इस स्थिति में **ततोऽभिगमनमर्हतीति च वक्तव्यम्** वार्तिक के द्वारा औत्सर्गिक ठञ् प्रत्यय, इकादेश, आदिवृद्धि और अकारलोप होकर **क्रौशशतिक** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **क्रौशशतिकः** सिद्ध हो जाता है।

यौजनशतिक आचार्यः। सौ योजन दूर रहने पर भी नजदीक जाने योग्य आचार्य। **योजनशताद् अभिगमनम् अर्हति** विग्रह करके **योजनशत+ङसि** इस स्थिति में **ततोऽभिगमनमर्हतीति च वक्तव्यम्** वार्तिक के द्वारा औत्सर्गिक ठञ् प्रत्यय, इकादेश, आदिवृद्धि और अकारलोप होकर **यौजनशतिक** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **यौजनशतिकः** सिद्ध हो जाता है।

१७३९. पथः ष्कन् ५।१।७५॥

षो ङीषर्थः। पन्थानं गच्छति पथिकः। पथिकी।

पथः ष्कन्। पथिन्-शब्दस्य पञ्चम्यन्तं रूपं पथः, ष्कन् प्रथमान्तम्। **योजनं गच्छति** से **गच्छति** और **तदर्हति** से द्वितीयान्त **तत्** की अनुवृत्ति आती है। **ठञ्, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

द्वितीया-समर्थ 'पथिन्' प्रातिपदिक से गच्छति=जाता है- अर्थ में ष्कन् प्रत्यय होता है।

षो ङीषर्थः। ष्कन् में षकार और नकार इत्संज्ञक हैं और षित्करण स्त्रीत्वविवक्षा में ङीष् के लिये है।

पन्थानं गच्छति पथिकः। पथिकी। रास्ता चलने वाला। **पन्थानं गच्छति** विग्रह करके **पथिन्+अम्** इस स्थिति में **पथः ष्कन्** सूत्र से ष्कन् प्रत्यय, अनुबन्धलोप होकर **पथिन्+क** बना है। **नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य** सूत्र से नकार का लोप होकर

पथिक शब्द बनता है। स्त्रीत्वविवक्षा में **षिद्गौरादिभ्यश्च** से ङीष् होने के बाद अकारलोप होकर **पथिकी** शब्द बनता है। स्वादिकार्य से **पथिकः** और **पथिकी** रूप सिद्ध हो जाते हैं। **पथिकी**=रास्ता चलने वाली स्त्री।

१७४०. पन्थो ण नित्यम् ५।१।७६॥

पन्थानं नित्यं गच्छति। पान्थः, पान्था।

पन्थो ण नित्यम्। पन्थः प्रथमान्तं, ण इति लुप्तप्रथमाकं पदं, नित्यं क्रियाविशेषणम्। **पथः ष्कन्** से **पथः** की, **योजनं गच्छति** से **गच्छति** और **तदर्हति** से द्वितीयान्त तत् की अनुवृत्ति आती है। **ठञ्, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

द्वितीया-समर्थ 'पथिन्' प्रातिपदिक से नित्यं गच्छति=जाता है (निरन्तर चलता है- अर्थ में ण-प्रत्यय होता है और पथिन्-शब्द के स्थान पर 'पन्थ' आदेश भी।

पन्थानं नित्यं गच्छति- पान्थः, पान्था। निरन्तर रास्ता चलने वाला। **पन्थानं नित्यं गच्छति** विग्रह करके **पथिन्+अम्** इस स्थिति में **पन्थो ण नित्यम्** सूत्र से ण-प्रत्यय और प्रकृति के स्थान पर **पन्थ** आदेश होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **पन्थ+अ** बना है। आदिवृद्धि और अकार का लोप होकर **पान्थ** शब्द बनता है। स्त्रीत्वविवक्षा में टाप् होकर **पान्था** शब्द बनता है। स्वादिकार्य से **पान्थः** और **पान्था** ये रूप सिद्ध हो जाते हैं। **पान्था**=निरन्तर रास्ता चलने वाली स्त्री।

अब **गच्छति** अर्थ के साथ **आहृतम्**=लाया गया- अर्थ में प्रत्यय का विधान किया जा रहा है। यह प्राग्वतीयों में पन्द्रहवाँ अर्थक्रम है।

१७४१. उत्तरपथेनाहृतं च ५।१।७७॥

उत्तरपथेनाहृतमौत्तरपथिकम्। उत्तरपथेन गच्छति औत्तरपथिकः।
'आहृतप्रकरणे वारिजङ्गलस्थलकान्तारपूर्वादुपसङ्ख्यानम्' (वा.३०५७)।
वारिपथिकम्।

उत्तरपथेनाहृतं च। उत्तरपथेन तृतीयान्तम्, आहृतं प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **योजनं गच्छति** से **गच्छति** की अनुवृत्ति आती है। **ठञ्, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ 'उत्तरपथ' प्रातिपदिक से आहृतम्=लाया गया- अर्थ में और गच्छति अर्थ में औत्सर्गिक ठञ् प्रत्यय होता है।

उत्तरपथेन में तृतीयान्त-निर्देश तृतीया-समर्थविभक्ति का भी सूचक है।

उत्तरपथेनाहृतमौत्तरपथिकम्। उत्तरपथ से लाया गया। **उत्तरपथेन आहृतम्**

विग्रह करके **उत्तरपथ+टा** इस स्थिति में **उत्तरपथेनाहृतं च** सूत्र के द्वारा ठञ् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और अकारलोप होकर **औत्तरपथिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **औत्तरपथिकः** सिद्ध हो जाता है।

उत्तरपथेन गच्छति औत्तरपथिकः। उत्तरपथ से जाने वाला। प्रक्रियां पूर्ववत् ही होती है।

आहृतप्रकरणे वारिजङ्गलस्थलकान्तारपूर्वादुपसङ्ख्यानम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- आहृत-अर्थ के प्रकरण में तृतीया-समर्थ वारि, जङ्गल, स्थल और कान्तार पूर्वक पथ-शब्द से भी औत्सर्गिक प्रत्यय का विधान होना चाहिये। इस तरह **वारिपथ, वारिजङ्गल, स्थलपथ, कान्तारपथ** शब्दों से ठञ् प्रत्यय हो जाता है।

वारिपथिकम्। जलमार्ग से लाया गया। **वारिपथेन आहृतम्** विग्रह करके **वारिपथ+टा** इस स्थिति में **आहृतप्रकरणे वारिजङ्गलस्थलकान्तारपूर्वादुपसङ्ख्यानम्** वार्तिक के द्वारा ठञ् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और अकारलोप होकर **वारिपथिक** तथा स्वादिकार्य करके **वारिपथिकः** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **जाङ्गलपथिकम्** (जंगल मार्ग से लाया गया), **स्थालपथिकम्** (स्थलमार्ग से लाया गया) और **कान्तारपथिकम्** (जंगल मार्ग से लाया गया) में भी समझना चाहिये।

१७४२. कालात् ५।१।७८॥
'व्युष्टादिभ्योऽण्' (सू.१७६१) इत्यतः प्रागधिकारोऽयम्।

कालात्। कालात् इति पञ्चम्यन्तमेकपदमिदं सूत्रम्। यह अधिकारसूत्र है।

'व्युष्टादिभ्योऽण्' (५.१.९७) से पहले तक अर्थात् **तस्य च दक्षिणा यज्ञाख्येभ्यः** (५.१.९५) तक **कालात्** पद का अधिकार रहता है। इसके फलस्वरूप कालवाची शब्दों से ही प्रत्ययों का विधान किया जायेगा।

अब प्राग्वतीयों में सोलहवें अर्थक्रम **निर्वृतम्=सिद्ध हुआ** (सम्पादित हुआ) अर्थ में प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है।

१७४३. तेन निर्वृत्तम् ५।१।७९॥
अह्ना निर्वृत्तम् आह्निकम्।

तेन निर्वृत्तम्। तेनेति तृतीयान्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, निर्वृत्तं प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **कालात्, ठञ्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

तृतीयान्त कालवाचक प्रातिपदिक से 'निर्वृत्त' अर्थात् बनाया गया, सम्पन्न किया गया अर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है।

सूत्रस्थ **तेन** पद तृतीया-समर्थ-विभक्ति का सूचक है और **निर्वृत्तम्** अर्थबोधक।

आह्निकम्। एक दिन में बनाया गया या एक दिन में पूरा किया गया। **अह्ना निर्वृत्तम्** लौकिक विग्रह और **अहन् टा** अलौकिक विग्रह है। **तेन निर्वृत्तम्** से ठञ्, अनुबन्ध का लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्ति का लुक् और ठ के स्थान पर **इक** आदेश करके **अहन्+इक** बना। आदिवृद्धि करके **अल्लोपोऽनः** से भसंज्ञक **अन्** के अकार का लोप करके **आह्न्+इक=आह्निक** बना और स्वादिकार्य करके **आह्निकम्** सिद्ध हो जाता है। यहाँ पर **नस्तद्धिते** सूत्र से प्राप्त टिलोप का **अह्नष्टखोरेव** (६.४.१४५) सूत्र के द्वारा नियमन किये जाने के कारण तदतिरिक्त प्रत्ययों के परे रहते वह नहीं होता।

निर्वृत्त अर्थ में अन्य कालवाची शब्दों से भी ठञ्-प्रत्यय करके **मासिकम्, सांवत्सरिकम्, साप्ताहिकम्, पाक्षिकम्** आदि भी बनाये जा सकते हैं।

यहाँ निर्वृत्त अर्थ की समाप्ति करके अगले सूत्र से अधीष्ट, भृ, भूत और भावी अर्थों में प्रत्यय का विधान किया जा रहा है। यह प्राग्वतीयों में सत्रहवाँ अर्थक्रम है।

१७४४. तमधीष्टो भृतो भूतो भावी ५।१।८०॥

अधीष्टः सत्कृत्य व्यापारितः। भृतो वेतनेन क्रीतः। भूतः स्वसत्तया व्याप्तकालः। भावी तादृश एवानागतकालः। **मासमधीष्टो मासिकोऽध्यापकः। मासं भृतः मासिकः कर्मकरः। मासं भूतो मासिको व्याधिः। मासं भावी मासिक उत्सवः।**

तमधीष्टो भृतो भूतो भावी। तं द्वितीयान्तम्, अधीष्टः प्रथमान्तं, भृतः प्रथमान्तं, भूतः प्रथमान्तं, भावी प्रथमान्तम्। **कालात्, ठञ्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और समर्थानां प्रथमाद्वा का अधिकार आ रहा है।

द्वितीया-समर्थ कालवाची प्रातिपदिक से अधीष्ट=सत्कारपूर्वक काम में लगाया गया, भूत=वेतन देकर काम में लगाया गया, भूत=हो चुका और भावी=होने वाला- इन अर्थों में ठञ् प्रत्यय होता है।

अधीष्टः सत्कृत्य व्यापारितः। सत्कार-पूर्वक कार्य में नियोजित करना **अधीष्ट** कहलाता है।

भृतो वेतनेन क्रीतः। वेतन आदि देकर खरीदा गया **भृतः** कहलाता है।

भूतः स्वसत्तया व्याप्तकालः। स्वसत्ता द्वारा व्याप्त (बीता हुआ समय) को **भूत** कहा गया है।

भावी तादृश एवानागतकालः। स्वसत्ता द्वारा व्याप्त आने वाले समय को **भावी** कहा जाता है।

मासमधीष्टो मासिकोऽध्यापकः। महीने भर के लिये सम्मानपूर्वक रहने वाला अवैतनिक अध्यापक। **मासम् अधीष्टः** विग्रह करके **मास+अम्** इस स्थिति में **तमधीष्टो भृतो भूतो भावी** सूत्र के द्वारा **ठञ्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञकान्त्याकार का लोप करके **मासिक** शब्द बना है। स्वादिकार्य से **मासिकः** सिद्ध हो जाता है।

मासं भृतः- मासिकः कर्मकरः। महीने भर के लिये वेतन देकर काम पर लगाया गया मजदूर। **मासम् अधीष्टः** विग्रह करके पूर्ववत् प्रक्रिया की जाती है।

मासं भूतो मासिको व्याधिः। महीने भर व्याप्त व्याधि। **मासं भूतः** विग्रह करके पूर्ववत् प्रक्रिया की जाती है।

मासं भावी मासिक उत्सवः। महीने भर चलने वाला उत्सव। **मासं भावी** विग्रह करके पूर्ववत् प्रक्रिया की जाती है।

उपर्युक्त सभी लौकिक विग्रहों में **कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे** (२.३.५) सूत्र के द्वारा **मास**-शब्द में द्वितीया विभक्ति हुयी है।

१७४५. मासाद्वयसि यत्खञौ ५।१।८१॥
मासं भूतो मास्यः, मासीनः।

मासाद्वयसि यत्खञौ। यत् च खञ् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो यत्खौ। मासात् पञ्चम्यन्तं, वयसि सप्तम्यन्तं, यत्खञौ प्रथमान्तम्। **तमधीष्टो भृतो भूतो भावी** से केवल **भूतः** की अनुवृत्ति अपेक्षित है। **कालात्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

द्वितीया-समर्थ कालवाची मास इस प्रातिपदिक से भूत=हो चुका अर्थ में यत् और खञ् प्रत्यय होते हैं, वयसि=अवस्था गम्यमान होने पर।

मासं भूतो मास्यः, मासीनः। महीने भर का बच्चा आदि। **मासं भूतः** विग्रह करके **मास+अम्** इस स्थिति में **मासाद्वयसि यत्खञौ** सूत्र से यत्-प्रत्यय होने के पक्ष में अन्त्य अकार का लोप होकर **मास्य** शब्द बना है। खञ्-प्रत्यय होने के पक्ष में खकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र से **ईन्** आदेश होने के बाद अकारलोप होकर **मासीन** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **मास्यः** और **मासीनः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

१७४६. द्विगोर्यप् ५।१।८२॥
'मासाद्वयसि' इत्यनुवर्तते। द्वौ मासौ भूतो द्विमास्यः।

द्विगोर्यप्। द्विगोः पञ्चम्यन्तं, यप् प्रथमान्तम्। **मासाद्वयसि यत्खञौ** से **मासात्** और **वयसि** की तथा **तमधीष्टो भृतो भूतो भावी** से केवल **भूतः** की अनुवृत्ति अपेक्षित है। **कालात्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

द्वितीया-समर्थ द्विगुसंज्ञक कालवाची मासान्त प्रातिपदिक से भूत=हो चुका अर्थ में यप् प्रत्यय होता है, वयसि=अवस्था गम्यमान होने पर।

'मासाद्वयसि' इत्यनुवर्तते। पूर्वसूत्र से **मासात्** और **वयसि** की अनुवृत्ति आती है। अतः अवस्था गम्यमान होने पर मास-शब्दान्त द्विगु से ही यह प्रत्यय होगा।

द्वौ मासौ भूतो द्विमास्यः। दो महीने भर का। **द्वौ मासौ भूतः** विग्रह करके **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** सूत्र से समासादि होने के बाद **द्विमास** शब्द बना है। **द्विमास+औ** इस स्थिति में **द्विगोर्यप्** सूत्र से यप्-प्रत्यय होने पर भसंज्ञक अन्त्य अकार का लोप होकर **द्विमास्य** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **द्विमास्यः** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **त्रिमास्यः, चतुर्मास्यः** आदि बनते हैं।

१७४७. षण्मासाण्ण्यच्च्य ५।१।८३॥

'वयसि' इत्येव। यबप्यनुवर्तते, चाट्वञ्।

षण्मास्यः, षाण्मास्यः, षाण्मासिकः।

षण्मासाण्ण्यच्च्य। षण्मासात् पञ्चम्यन्तं, ण्यत् प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **द्विगोर्यप्** से यप् की, **मासाद्वयसि यत्खञौ** से **वयसि** की तथा **तमधीष्टो भृतो भूतो भावी** से केवल **भूतः** की अनुवृत्ति अपेक्षित है। **कालात्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

द्वितीया-समर्थ कालवाची षण्मास इस प्रातिपदिक से भूतार्थ में ण्यत् और यप् प्रत्यय होते हैं, वयसि=अवस्था गम्यमान होने पर।

'वयसि' इत्येव। यबप्यनुवर्तते, चाट्वञ्। प्रकृत सूत्र में **वयसि** की अनुवृत्ति होने से अवस्था गम्य होने पर ही सूत्र की प्रवृत्ति होगी। पूर्वसूत्र से **यप्** की अनुवृत्ति आने से यप्-प्रत्यय भी होता है और प्रकृत सूत्र के च-शब्द से औत्सर्गिक ठञ्-प्रत्यय का भी समुच्चय है। इस तरह तीन प्रत्यय होते हैं।

षण्मास्यः, षाण्मास्यः, षाण्मासिकः। छह महीने का। **षण्मासान् भूतः** विग्रह करके **षण्मास+शस्** इस स्थिति में **षण्मासाण्ण्यच्च्य** सूत्र से यप्-प्रत्यय होने पर अन्त्य अकार का लोप होकर **षण्मास्य** शब्द बना है। **ण्यत्** प्रत्यय होने के पक्ष में अन्यकार्य पूर्ववत् करके आदिवृद्धि होकर **षाण्मास्य** बना है। **ठञ्** प्रत्यय होने के पक्ष में इकादेश, आदिवृद्धि और अकारलोप होकर **षाण्मासिक** शब्द बना है। तीनों जगह

एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **षण्मास्यः**, **षाण्मास्यः** और **षाण्मासिकः** ये तीन रूप सिद्ध हो जाते हैं।

१७४८. अवयसि ठंश्च ५।१।८४॥

चाण्ण्यत्। षण्मासिको व्याधिः, षाण्मास्यः।

अवयसि ठंश्च। न वयः- अवयस्तस्मिन् अवयसि, नञ्तत्पुरुषः। अवयसि सप्तम्यन्तं, ठन् प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **षण्मासाण्ण्यच्च** से **षण्मासात्**, **यत्** की तथा **तमधीष्टो भृतो भूतो भावी** से केवल **भूतः** की अनुवृत्ति अपेक्षित है। **कालात्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

द्वितीया-समर्थ कालवाची षण्मास इस प्रातिपदिक से भूतार्थ में ण्यत् और ठन् प्रत्यय होते हैं, अवयसि=अवस्था गम्यमान न होने पर।

संस्कृतभाषा में **वयस्** शब्द प्राणियों के जन्मोत्तर व्यतीत काल का ही वाचक है। अतः रोगोत्पत्ति का उत्तरकाल **अवयस्** माना जाता है।

षण्मासिको व्याधिः, षाण्मास्यः। छह महीने की व्याधि। **षण्मासान् भूतः** विग्रह करके षण्मास+शस् इस स्थिति में **अवयसि ठंश्च** सूत्र से यप्-प्रत्यय होने पर अन्त्य अकार का लोप होकर **षण्मास्य** शब्द बना है। **ण्यत्** प्रत्यय होने के पक्ष में अन्यकार्य पूर्ववत् करके आदिवृद्धि होकर **षाण्मास्य** बना है। **ठन्** प्रत्यय होने के पक्ष में इकादेश, अकारलोप होकर **षण्मासिक** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **षाण्मास्यः** और **षण्मासिकः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

१७४९. समायाः खः ५।१।८५॥

समामधीष्टो भृतो भूतो भावी वा समीनः।

समायाः खः। समा-शब्दस्य पञ्चम्यन्तं रूपं समायाः, खः प्रथमान्तम्। **तमधीष्टो भृतो भूतो भावी** के सभी पदों की अनुवृत्ति अपेक्षित है। **कालात्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

द्वितीया-समर्थ कालवाची समा-शब्द से अधीष्ट, भृत, भूत और भावी अर्थों में ख-प्रत्यय होता है।

इसके पूर्व तीन सूत्रों में केवल **भूतः** अर्थ का सम्बन्ध सम्भव था किन्तु इसमें अधीष्ट, भृत और भावी अर्थ की योग्यता है। **समा**-शब्द का अर्थ **एक वर्ष।**

समामधीष्टो भृतो भूतो भावी वा समीनः। साल भर के लिये सादर नियुक्त, वेतन आदि पर नियुक्त रहने वाला, बीता हुआ और होने वाला। **समाम् अधीष्टः, समां**

भृतः, समां भूतः और **समां भावी** विग्रह करके **समा+अम्** इस स्थिति में **समायाः खः** सूत्र के द्वारा **ख**-प्रत्यय होने पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र से खकार के स्थान पर **ईन्** आदेश होने पर भसंज्ञक आकार का लोप होकर **समीन** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **समीनः** सिद्ध हो जाता है।

१७५०. द्विगोर्वा ५।१।८६॥

'समायाः खः' इत्येव। 'तेन परिजय्य-' (सू.१७५७) इत्यतः प्राङ् निर्वृत्तादिषु पञ्चस्वर्थेषु प्रत्ययाः। द्विसमीनः, द्वैसमिकः।

द्विगोर्वा। द्विगोः पञ्चम्यन्तं, वाव्ययम्। **समायाः खः** के दोनों पदों की और **तमधीष्टो भृतो भूतो भावी** के सभी पदों की अनुवृत्ति अपेक्षित है। **कालात्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

द्वितीया-समर्थ कालवाची द्विगुसंज्ञक समा-शब्दान्त प्रातिपदिक से अधीष्ट, भृत, भूत और भावी अर्थों में विकल्प से ख-प्रत्यय होता है।

'समायाः खः' इत्येव। पूर्वसूत्र के दोनों पदों की अनुवृत्ति आने के कारण **समा** शब्द से ख-प्रत्यय का विकल्प किया गया है। ख-प्रत्यय न होने के पक्ष में औत्सर्गिक ठञ् प्रत्यय होगा।

'तेन परिजय्य-' इत्यतः प्राङ् निर्वृत्तादिषु पञ्चस्वर्थेषु प्रत्ययाः। अर्थात् वक्ष्यमाण तेन परिजय्यलभ्यकार्यसुकरम् (५.१.९३) सूत्र से पहले तक **निर्वृत्त, अधीष्ट, भृत, भूत, भावी** इन पाँचों अर्थों में प्रत्यय होते हैं। जहाँ पर जो अर्थ समुचित रहता है, वहाँ वही अर्थ ग्राह्य होगा किन्तु कहीं-कहीं पाँचों अर्थ भी हो सकते हैं।

द्विसमीनः, द्वैसमिकः। दो वर्ष से सम्पन्न, दो वर्ष के लिये सादर नियुक्त, दो वर्ष के लिये वेतन आदि पर नियुक्त रहने वाला, दो वर्ष बीता हुआ और दो वर्ष में होने वाला। **द्विसमया निर्वृत्तम्, द्विसमाम् अधीष्टः, द्विसमां भृतः, द्विसमां भूतः** और **द्विसमां भावी** विग्रह करके **द्विसमा+अम्** इस स्थिति में **द्विगोर्वा** सूत्र के द्वारा विकल्प से **ख**-प्रत्यय होने पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र से खकार के स्थान पर **ईन्** आदेश होने के बाद भसंज्ञक आकार का लोप होकर **द्विसमीन** शब्द बनता है। ख-प्रत्यय न होने के पक्ष में औत्सर्गिक ठञ् प्रत्यय होने पर इकादेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक आकार का लोप होकर **द्वैसमिक** शब्द बनता है। उभयत्र स्वादिकार्य होकर **द्विसमीनः** और **द्वैसमिकः** ये रूप सिद्ध हो जाते हैं।

विशेषः- यद्यपि **समा** शब्द पाणिनीय-व्याकरण के लिङ्गानुशासन सूत्र **अप्सुमनस्समासिकतावर्षाणां बहुत्वं च** के अनुसार एवं **हायनोऽस्त्री शरत्समाः** अमरकोश के वचनानुसार केवल बहुवचनान्त है तथापि पाणिनि जी के ही सूत्र **समां समां विजायते**

(५.२.१२) में एकवचन के रूप में प्रयुक्त होने के कारण एकवचनान्त भी होता है, ऐसा प्रतीत होता है।

१७५१. रात्र्यहःसंवत्सराच्च ५।१।८७॥

'द्विगोः' इत्येव। द्विरात्रीणः, द्वैरात्रिकः। द्व्यहीनः, द्वैयह्निकः। समासान्तविधेरनित्यत्वान्न टच्। द्विसंवत्सरीणः।

रात्र्यहःसंवत्सराच्च। रात्रिश्च अहः च संवत्सरश्च तेषां समाहारद्वन्द्वः रात्र्यहःसंवत्सरं, तस्माद् रात्र्यहःसंवत्सरात् पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **द्विगोर्वा** के दोनों पदों की, **समायाः खः** से **खः** की और **तमधीष्टो भृतो भूतो भावी** के सभी पदों की अनुवृत्ति है। **कालात्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

द्वितीया-समर्थ रात्रि-अहन्-संवत्सरशब्दान्त कालवाची द्विगुसंज्ञक प्रातिपदिक से निर्वृत्त, अधीष्ट, भृत, भूत और भावी अर्थों में विकल्प से ख-प्रत्यय होता है।

'द्विगोः' इत्येव। अर्थात् **द्विगोः** की अनुवृत्ति आने के कारण द्विगुसमासयुक्त प्रातिपदिक से ही यह प्रत्यय होता है। स्मरण रहे कि संख्यापूर्व कर्मधारय समास द्विगुसंज्ञक होता है। पक्ष में औत्सर्गिक ठञ् प्रत्यय होगा।

द्विरात्रीणः, द्विरात्रिकः। दो रात्रि के लिये नियुक्त आदि। **द्वे रात्री अधीष्टः** इत्यादि विग्रह करके तद्धितार्थविषयक समासादि करके **द्विरात्रि** शब्द बनने के बाद **रात्र्यहःसंवत्सराच्च** सूत्र के द्वारा विकल्प से **ख**-प्रत्यय होने पर खकार के स्थान पर **ईन्** आदेश, भसंज्ञक ईकार का लोप, रेफ से परवर्ती नकार को णत्व होकर **द्विरात्रीण** शब्द बनता है। ख-प्रत्यय न होने के पक्ष में औत्सर्गिक ठञ् प्रत्यय होने पर इकादेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक इकार का लोप होकर **द्वैरात्रिक** शब्द बनता है। उभयत्र स्वादिकार्य होकर **द्विरात्रीणः** और **द्वैरात्रिकः** ये रूप सिद्ध हो जाते हैं।

द्व्यहीनः, द्वैयह्निकः। दो दिन के लिये नियुक्त आदि। **द्वे अहनी अधीष्टः** इत्यादि विग्रह करके तद्धितार्थविषयक समासादि करके **द्वि+अहन्** शब्द बनने पर यण् होकर **द्व्यहन्** बन जाता है। **रात्र्यहःसंवत्सराच्च** सूत्र के द्वारा विकल्प से **ख**-प्रत्यय, ईनादेश, **अह्नष्टखोरेव** सूत्र के नियम से **ख** के परे रहते **नस्तद्धिते** सूत्र से टिसंज्ञक भाग **अन्** का लोप हो जाता है। इस तरह **द्व्यहीन** शब्द बना है। औत्सर्गिक ठञ् प्रत्यय होने पर इकादेश होता है। **ट** या **ख** प्रत्यय के परे रहते ही अहन्-शब्द में टिलोप का नियम होने के कारण यहाँ पर टिलोप नहीं होता किन्तु **अल्लोपोऽनः** से हकारोत्तरवर्ती अकार का लोप या **अहन्** शब्द के स्थान पर **अह्न** आदेश होने के बाद **यस्येति च** से अकारलोप होकर **द्व्यह्न्+इक** बना है। **तद्धितेष्वचामादेः** से प्राप्त वृद्धि को बाधकर **न य्वाभ्यां**

पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच् सूत्र के द्वारा ऐच् आगम ऐकार होकर **द्वैयह्निक** शब्द बना है। उभयत्र स्वादिकार्य होकर **द्व्यहीनः** और **द्वैयह्निकः** ये रूप सिद्ध हो जाते हैं।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि **द्वयोः अह्नोः समाहारः** इस तत्पुरुषसमास में तो यद्यपि ख-प्रत्यय हो जाता है तथापि समाहारद्वन्द्वरूप द्विगुसमास होने पर तो नहीं होता, क्योंकि उस स्थल में **राजाहःसखिभ्यष्टच्** (५.४.९१) से टच् के बाद **द्व्यह** शब्द बन जाता है, जो कि **अहन्** में नहीं है।

यहाँ **द्व्यहीनः** के सम्बन्ध में यह शंका होती है कि समास होने के बाद **राज्यहःसंवत्सराच्च** की अपेक्षा **राजाहःसखिभ्यष्टच्** सूत्र के पर होने के कारण ख-प्रत्यय को बाधकर समासान्त टच् प्रत्यय के बाद उस टच् के परे रहते **अह्नोऽह्न एतेभ्यः** सूत्र के द्वारा **अहन्** के स्थान पर **अह्न** आदेश हो जाता है। उसका स्थानिवद्भाव करके यद्यपि उसमें **अहन्**-बुद्धि का आश्रयण किया जा सकता है किन्तु समग्र टच्प्रत्ययान्त में **अहन्नन्त** न होने से **राज्यहःसंवत्सराच्च** सूत्र से ख-प्रत्यय नहीं होगा। इस पर मूलकार कहते है

समासान्तविधेरनित्यत्वान्न टच्। समासान्तविधि के अनित्य होने के कारण यहाँ वह नहीं हुआ, ऐसा मानना चाहिये। इस तरह टच् के अभाव में यहाँ ख-प्रत्यय होने में कोई बाधा नहीं है।

द्विसंवत्सरीणः। दो वर्ष के लिये नियुक्त आदि। **द्वौ संवत्सरौ अधीष्टः** इत्यादि विग्रह करके तद्धितार्थविषयक समासादि करके **द्विसंवत्सर** बन जाने के बाद **राज्यहःसंवत्सराच्च** सूत्र के द्वारा विकल्प से **ख**-प्रत्यय, ईनादेश, भसंज्ञक अकार का लोप, रेफ से परे नकार को णत्व आदि करके **द्विसंवत्सरीण** शब्द बन जाता है। स्वादिकार्य करके द्विसंवत्सरीणः सिद्ध हो जाता है। औत्सर्गिक **ठञ्** होने पर इकादेश करके **द्विसंवत्सर+इक** बनने पर अगले सूत्र से आदिवृद्धि को बाधकर उत्तरपद की वृद्धि की जा रही है।

१७५२. सङ्ख्यायाः संवत्सरसङ्ख्यस्य च ७।३।१५॥

सङ्ख्याया उत्तरपदस्य वृद्धिः स्याद् ञिदादौ। द्विसांवत्सरिकः। द्वे षष्टी भृतो द्विषाष्टिकः। 'परिमाणान्तस्य' इत्येव सिद्धे संवत्सरग्रहणं परिमाणग्रहणे कालपरिमाणस्याग्रहणार्थम्। तेन द्वैसमिक इत्युत्तरपदवृद्धिर्न।

सङ्ख्यायाः संवत्सरसङ्ख्यस्य च। संवत्सरश्च संख्या च तयोः समाहारद्वन्द्वः संवत्सरसंख्यं, तस्य संवत्सरसंख्यस्यः। संख्यायाः पञ्चम्यन्तं, संवत्सरसंख्यस्य षष्ठ्यन्तं, चाव्ययम्। **उत्तरपदस्य** और **अङ्गस्य** का अधिकार है। **तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, किति, ञ्णिति, अचः, वृद्धिः** आदि पदों की अनुवृत्ति आती है।

सङ्ख्यावाची शब्द से परवर्ती (उत्तरपद) संवत्सर शब्द के तथा संख्यावाची शब्द के अचों में जो आदि अच्, उसकी वृद्धि होती है ञित्, णित् और कित् तद्धित प्रत्ययों के परे रहते।

यह प्रासंगिक सूत्र है। सप्तमाध्यायस्थ तृतीय-पाद के आदिवृद्धि-प्रकरणस्थ उत्तरपदाधिकार में यह सूत्र पठित है। आदिवृद्धि को बाधकर उत्तरपद के आदि अच् की वृद्धि की जा रही है। प्रसंग में **द्वि+संवत्सर+इक** में पूर्वपद द्वि और उत्तरपद **संवत्सर** है।

द्विसांवत्सरिकः। दो वर्ष के लिये नियुक्त आदि। **द्वौ संवत्सरौ अधीष्टः** इत्यादि विग्रह करके तद्धितार्थविषयक समासादि करके **द्विसंवत्सर** बन जाने के बाद **रात्र्यहःसंवत्सराच्च** सूत्र के द्वारा **ठञ्** प्रत्यय होने के पक्ष में इकादेश होकर **द्वि+संवत्सर+इक** बना है। **सङ्ख्यायाः संवत्सरसङ्ख्यस्य च** से उत्तरपदवृद्धि का विधान होने पर **संवत्सर** के आदि अच् अकार की वृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **द्विसांवत्सरिक** शब्द बना है। स्वादिकार्य करके **द्विसांवत्सरिकः** सिद्ध हो जाता है।

उत्तरपदवृद्धि का दूसरा उदाहरण दे रहे हैं-

द्वे षष्टी भृतो द्विषाष्टिकः। एक सौ बीस वर्षों के लिये नियुक्त आदि। **द्वे षष्टी भृतः** आदि विग्रह करके समासादि होने के बाद **द्विषष्टि** शब्द से प्राग्वतीय ठञ्-प्रत्यय, इकादेश आदि करने के बाद **सङ्ख्यायाः संवत्सरसङ्ख्यस्य च** से उत्तरपदवृद्धि का विधान होने पर **षष्टि** के आदि अच् अकार की वृद्धि और भसंज्ञक इकार का लोप होकर **द्विषाष्टिक** शब्द बना है। स्वादिकार्य करके **द्विषाष्टिकः** सिद्ध हो जाता है।

'परिमाणान्तस्य' इत्येव सिद्धे संवत्सरग्रहणं परिमाणग्रहणे कालपरिमाण-स्याग्रहणार्थम्। तेन द्वैसमिक इत्युत्तरपदवृद्धिर्न। अर्थात् **संवत्सर** शब्द बारह महीनों की समष्टि परिमाण का सूचक है। अतः प्रकृतसूत्र में **संवत्सर** शब्द का ग्रहण न करने पर भी **परिमाणान्तस्यासंज्ञाशाणयोः** (७.३.१७) सूत्र से ही उत्तरवृद्धि हो जाती, फिर भी **संवत्सर** शब्द का ग्रहण किया गया। वह व्यर्थ होकर यह ज्ञापन करता है कि कालवाचकों का परिमाण के रूप में ग्रहण नहीं होता। इसके फलस्वरूप **द्वैसमिकः** में उत्तरपद की वृद्धि नहीं हुयी। इसी तरह **द्विवर्षा** में **अपरिमाणबिस्ताचितकम्बल्यन्तेभ्यो न तद्धितलुकि** (४.१.२२) से ङीप् का निषेध भी हो जाता है।

प्रसंगवश उत्तरपदवृद्धिविधायक सूत्र का उल्लेख करके पुनः तद्धितीय-प्रत्यय-विधायक सूत्र का अवतरण कर रहे हैं-

१७५३. वर्षाल्लुक्च ५।१।८८॥

वर्षशब्दान्ताद् द्विगोर्वा खः, पक्षे ठञ् वा च लुक्।
त्रीणि रूपाणि। द्विवर्षीणो व्याधिः, द्विवार्षिकः, द्विवर्षः।

वर्षाल्लुक्च। वर्षात् पञ्चम्यन्तं, लुक् प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **द्विगोर्वा** से **द्विगोः**, **वा** की, **समायाः खः** से **खः** की और **तमधीष्टो भृतो भूतो भावी** के सभी पदों की अनुवृत्ति है। **कालात्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

द्वितीया-समर्थ वर्ष-शब्दान्त कालवाची द्विगुसंज्ञक प्रातिपदिक से निर्वृत्त, अधीष्ट, भृत, भूत और भावी अर्थों में विकल्प से ख-प्रत्यय होता है और पक्ष में ठञ् प्रत्यय तथा उसका विकल्प से लुक् भी होता है।

त्रीणि रूपाणि। ख, ठञ् और उसका लुक् करने से तीन रूप बनते हैं।

द्विवर्षीणो व्याधिः, द्विवार्षिकः, द्विवर्षः। दो वर्ष से विद्यमान व्याधि। **द्वौ वर्षौ भूतः** आदि विग्रह करके **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** सूत्र से समासादि करने पर **द्विवर्ष** शब्द बना है। उसके बाद **वर्षाल्लुक् च** सूत्र के द्वारा ख-प्रत्यय होने पर ईनादेश, अकारलोप, रेफ से परे नकार को णत्व होकर **द्विवर्षीण** शब्द बना है। ठञ् प्रत्यय होने पर उसके लुक् होने के पक्ष में **द्विवर्ष** मात्र बना है। लुक् न होने के पक्ष में इकादेश और अगले सूत्र से उत्तरपदादिवृद्धि होकर **द्विवार्षिक** बना है। तीनों जगह एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **द्विवर्षीणः, द्विवर्षः** और **द्विवार्षिकः** ये तीन रूप सिद्ध हो जाते हैं।

अब प्रसंगवश उत्तरपदादिवृद्धिविधायक साप्तमिक सूत्र उपस्थित कर रहे हैं-

१७५४. वर्षस्याभविष्यति ७।३।१६॥

उत्तरपदस्य वृद्धिः स्यात्। द्विवार्षिकः। भविष्यति तु द्वैवार्षिकः। अधीष्टभृतयोरभविष्यतीति प्रतिषेधो न। गम्यते हि तत्र भविष्यत्ता न तु तद्धितार्थः। द्वे वर्षे अधीष्टो भृतो वा कर्म करिष्यतीति द्विवार्षिको मनुष्यः। 'परिमाणान्तस्यासञ्ज्ञाशाणयोः'(सू.१६८३)। द्वौ कुडवौ प्रयोजनमस्य द्विकौडविकः। द्वाभ्यां सुवर्णाभ्यां क्रीतं द्विसौवर्णिकम्। द्विनैष्किकम्। 'असञ्ज्ञा' इति किम्? पञ्च कलापाः परिमाणमस्य पाञ्चकलापिकम्। तद्धितान्तः सञ्ज्ञा। द्वैशाणम्। कुलिजशब्दमपि केचित्पठन्ति। द्वैकुलिजिकः।

वर्षस्याभविष्यति। न भविष्यत् अभविष्यत्, तस्मिन् अभविष्यति। वर्षस्य षष्ठ्यन्तम्, अभविष्यति सप्तम्यन्तम्। **सङ्ख्यायाः संवत्सरसङ्ख्यस्य च** से **सङ्ख्यायाः** के साथ अन्य प्राकरणिक पद **तद्धितेषु, अचाम्, आदेः, किति, ञ्णिति, अचः, वृद्धिः** आदि की अनुवृत्ति आती है। **उत्तरपदस्य** और **अङ्गस्य** का अधिकार है।

सङ्ख्यावाची शब्द से परवर्ती (उत्तरपद) वर्ष-शब्द के अचों में जो आदि अच्, उसकी वृद्धि होती है ञित्, णित् और कित् तद्धित प्रत्ययों के परे रहते, यदि वह तद्धित-प्रत्यय भविष्यत्-अर्थ में न हुआ हो तो।

भावी अर्थ में विहित प्रत्यय भविष्यत्-प्रत्यय है, उसका निषेध किया गया है। अतः निर्वृत्त, अधीष्ट, भृतः और भूत अर्थों में विहित प्रत्यय के परे रहते उत्तरपद की आदिवृद्धि होती है।

द्विवार्षिकः। दो वर्ष से विद्यमान व्याधि। यहाँ **भावी** अर्थ से भिन्न अधीष्ट, भूत अर्थ में **द्विवर्ष** शब्द से **वर्षाल्लुक् च** सूत्र के द्वारा ठञ् के लुक् न होने के पक्ष में इकादेश होने के बाद **वर्षस्याभविष्यति** सूत्र से उत्तरपदादिवृद्धि होकर द्विवार्षिक बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **द्विवार्षिकः** सिद्ध हो जाता है।

भविष्यति तु द्वैवार्षिकः। भविष्यत् अर्थ में अर्थात् **भावी** अर्थ में ठञ् होने पर तो प्रकृत सूत्र नहीं लगता, अतः **तद्धितेष्वचामादेः** सूत्र से आदिवृद्धि होकर **द्वैवार्षिकः** सिद्ध हो जाता है।

अब प्रश्न आता है कि **द्वौ वर्षौ अधीष्टो भृतो भूतो वा कर्म करिष्यति** इत्यादि में भविष्यत्ता की प्रतीति होने से प्रकृतसूत्र के **अभविष्यति** से निषेध हो जाने से उत्तरपद की वृद्धि नहीं होगी तो **द्विवार्षिकः** कैसे बनेगा? इस पर मूलकार कहते हैं-

अधीष्टभृतयोरभविष्यतीति प्रतिषेधो न। गम्यते हि तत्र भविष्यत्ता न तु तद्धितार्थः। द्वे वर्षे अधीष्टो भृतो वा कर्म करिष्यतीति द्विवार्षिको मनुष्यः। अर्थात् उपर्युक्त चार अर्थों में से **अधीष्ट** और **भृत** अर्थ में प्रकृत-सूत्र का **अभविष्यति** यह निषेध नहीं लगता, क्योंकि इन अर्थों में भविष्यत्ता तद्धित-प्रत्यय का अर्थ नहीं है। **अधीष्ट** तथा **भृत** शब्दों में **निष्ठा** सूत्र से भूतार्थ में क्त-प्रत्यय होने के कारण शब्दशक्ति से भूतकाल की ही प्रतीति हो रही है। तद्धित-प्रत्यय से भूतकालविशिष्ट अध्येषण एवं भरणकर्मक का बोध होता है। इस प्रकार के सत्कार एवं भरण-पोषण का सम्बन्ध कालान्तर में होने से कार्य से अर्थात् **कर्म करेगा** अर्थ द्वारा होगा, किन्तु वह तद्धितार्थ नहीं है। तद्धितार्थ तो वहाँ **भृत** और **अधीष्ट** ही हैं। अतः **द्विवार्षिकः** बनने में कोई समस्या नहीं है।

परिमाणान्तस्यासञ्ज्ञाशाणयोः। इस उत्तरपदवृद्धि के प्रसंग में मूलकार पूर्वव्याख्यात **परिमाणन्तस्यासंज्ञाशाणयोः** का स्मरण करा रहे हैं। सूत्रार्थ है- परिमाणवाची शब्द अन्त में है जिस अङ्ग के, उसके संख्यावाची शब्द से परवर्ती उत्तरपद के अचों में आदि अच् की वृद्धि होती है, ञित्, णित्, कित् तद्धित प्रत्यय के परे रहते किन्तु संज्ञा-विषय और शाण-शब्द उत्तरपद में हो तो नहीं। इसके उदाहरण इस प्रकरण के नहीं हैं किन्तु उत्तरपदादिवृद्धि के रूप में दिये जा रहे हैं-

द्वौ कुडवौ प्रयोजनमस्य द्विकौडविकः। दो कुडव परिमाण प्रयोजन वाला। **द्वौ कुडवौ प्रयोजनम् अस्य** विग्रह करके तद्धितार्थविषयक समासादि करके **द्विकुडव** शब्द से ठञ्, इकादेश होने पर **परिमाणान्तस्यासंज्ञाशाणयोः** सूत्र से उत्तरपदादादिवृद्धि होकर **द्विकौडविकः** सिद्ध हो जाता है।

द्वाभ्यां सुवर्णाभ्यां क्रीतं द्विसौवर्णिकम्। दो सुवर्ण-परिमाण से खरीदा गया। **द्वाभ्यां सुवर्णाभ्यां क्रीतम्** विग्रह करके तद्धितार्थविषयक समासादि करके **द्विसुवर्ण** शब्द से क्रीतार्थ में ठञ्, इकादेश होने पर **परिमाणान्तस्यासंज्ञाशाणयोः** सूत्र से उत्तरपदादिवृद्धि होकर **द्विसौवर्णिकम्** सिद्ध हो जाता है।

द्विनैष्किकम्। दो निष्क-परिमाण से खरीदा गया। **द्वाभ्यां निष्काभ्यां क्रीतम्** विग्रह करके तद्धितार्थविषयक समासादि करके **द्विनिष्क** शब्द से क्रीतार्थ में ठञ्, इकादेश होने पर **परिमाणान्तस्यासंज्ञाशाणयोः** सूत्र से उत्तरपदादिवृद्धि होकर **द्विनैष्किकम्** सिद्ध हो जाता है।

'असञ्ज्ञा' इति किम्? पञ्च कलापाः परिमाणमस्य पाञ्चकलापिकम्। तद्धितान्तः सञ्ज्ञा। उक्त **परिमाणान्तस्यासंज्ञाशाणयोः** सूत्र में **असंज्ञाशाणयोः** यह पर्युदासात्मक निषेध है। इसका प्रयोजन यह है कि संज्ञाभिन्न और शाण-शब्दभिन्न में ही उत्तरपदादिवृद्धि हो। इसके फलस्वरूप **पञ्च कलापाः परिमाणमस्य** विग्रह करके **पञ्चलाप** शब्द से ठञादि होने पर उत्तरपदादिवृद्धि नहीं होती, क्योंकि तद्धितप्रत्ययान्त **पाञ्चकलापिक** शब्द संज्ञार्थ प्रयुक्त है। अतः आदिवृद्धि होकर **पाञ्चकलापिकम्** सिद्ध हो जाता है।

द्वैशाणम्। इसी तरह उक्त **परिमाणान्तस्यासंज्ञाशाणयोः** सूत्र में **असंज्ञाशाणयोः** पर्युदासात्मक निषेध **शाण** शब्द के लिये भी है। इसके फलस्वरूप **द्वाभ्यां शाणाभ्यां क्रीतम्** विग्रह करके **द्विशाण** शब्द से अञादि प्रत्यय होने पर उत्तरपदादिवृद्धि नहीं होती, क्योंकि यहाँ पर साक्षात् **शाण** शब्द ही है। अतः आदिवृद्धि होकर **द्वैशाणम्** सिद्ध हो जाता है।

कुलिजशब्दमपि केचित्पठन्ति। कुछ विद्वान् **परिमाणान्तस्यासंज्ञाशाणयोः** सूत्र में **कुलिज** शब्द को भी पढ़ते हैं अर्थात् **परिमाणान्तस्यासंज्ञाशाणकुलिजेषु** ऐसा पाठ मानते हैं। तदनुसार **द्वौ कुलिजौ अवहरति** विग्रह में **द्विकुलिज** शब्द से ठञादि होने पर उत्तरपदादिवृद्धि नहीं होती। अतः आदिवृद्धि होकर **द्वैकुलिजिकः** सिद्ध हो जाता है।

१७५५. चित्तवति नित्यम् ५।१।८९॥

वर्षशब्दान्ताद् द्विगोः प्रत्ययस्य नित्यं लुक् स्याच्चेतने प्रत्ययार्थे। द्विवर्षो दारकः।

चित्तवति नित्यम्। चित्तम् अस्य अस्मिन् अस्तीति चित्तवान्, तस्मिन् चित्तवति। चित्तवति सप्तम्यन्तं, नित्यं क्रियाविशेषणं द्वितीयान्तम्। **वर्षाल्लुक्च** से **वर्षात्** और **लुक्** की, **द्विगोर्वा** से **द्विगोः** की और **तमधीष्टो भृतो भूतो भावी** के सभी पदों की अनुवृत्ति है। **कालात्, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

प्रत्ययार्थ यदि चेतन अभिधेय हो तो द्वितीया-समर्थ वर्ष-शब्दान्त कालवाची द्विगुसंज्ञक प्रातिपदिक से अधीष्टादि अर्थों में विहित प्रत्यय (ख और ठञ्) का नित्य से लुक् होता है।

पूर्वसूत्र से विकल्प से प्राप्त होने पर इससे नित्य से किया जा रहा है।

द्विवर्षो दारकः। दो वर्ष का बालक। द्वौ वर्षौ भूतः विग्रह करके तद्धितार्थविषयक समासादि करके **द्विवर्ष** शब्द से ठञ्-प्रत्यय होने पर उसका चित्तवति नित्यम् से नित्य से लुक् होकर **द्विवर्ष** ही बनता है। स्वादिकार्य होकर **द्विवर्षः** सिद्ध हो जाता है। यहाँ दो वर्ष का बालक चित्तवान्=चेतन है।

यहाँ निर्वृत्त, अधीष्ट, भृत, भूत, भावी अर्थ की समाप्ति है। अब अगले सूत्र से **पच्यन्ते** अर्थ में **षष्टिकाः** का निपातन किया जा रहा है। प्राग्वतीयों में यह अठारहवाँ अर्थक्रम है।

१७५६. षष्टिकाः षष्टिरात्रेण पच्यन्ते ५।१।९०॥

बहुवचनमतन्त्रम्। षष्टिको धान्यविशेषः।
तृतीयान्तात्कन् रात्रशब्दलोपश्च निपात्यते।

षष्टिकाः षष्टिरात्रेण पच्यन्ते। षष्टिकाः प्रथमा-बहुवचनान्तं, षष्टिरात्रेण तृतीयान्तं, पच्यन्ते इति कर्मवाच्ये बहुवचने रूपमर्थबोधकं क्रियापदम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा, ठञ्, कालात्** का अधिकार है।

बहुवचनमतन्त्रम्। सूत्र में **षष्टिकाः** यह बहुवचनान्त प्रयोग है। यह गौण प्रयोग है अर्थात् बहुवचन ही होना चाहिये, ऐसा आवश्यक नहीं है, एकवचन और द्विवचन भी हो सकता है।

षष्टिको धान्यविशेषः। जो धान साठ रात (दो महीने में ही पक जाता है, तादृश धान्यविशेष की संज्ञा है- **षष्टिकः।**

सूत्रार्थः- **तृतीयान्त षष्टिरात्र-शब्द से पच्यन्ते=पकाये जाते हैं- अर्थ में निपातनात् कन् प्रत्यय और रात्र-शब्द का लोप करके 'षष्टिकाः' यह प्रयोग साधु माना जाता है।**

षष्टिकाः। साठी, यह धान्यविशेष की संज्ञा है जो साठ रात में ही पकते हैं। **षष्टिरात्रेण पच्यन्ते** विग्रह करके **षष्टिरात्र+टा** इस स्थिति में **षष्टिकाः षष्टिरात्रेण पच्यन्ते** सूत्र के द्वारा कन्-प्रत्यय और रात्र-शब्द का लोप निपातन से करके **षष्टिक** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर प्रथमा-बहुवचन में **षष्टिकाः** सिद्ध हो जाता है। यद्यपि मूंग आदि भी साठ दिनों में ही पकते हैं, तथापि उन्हें **षष्टिक** नहीं कहा जाता, क्योंकि यह शब्द साठी-धान के लिये ही रूढ़ है।

अब प्राग्वतीयों में उन्नीसवें अर्थक्रम **परिजय्य, लभ्य, कार्य** और **सुकर** अर्थों में प्रत्यय का विधान किया जा रहा है-

१७५७. तेन परिजय्यलभ्यकार्यसुकरम् ५।१।९३॥

मासेन परिजय्यो जेतुं शक्यो मासिको व्याधिः।
मासेन लभ्यं कार्यं सुकरं वा मासिकम्।

तेन परिजय्यलभ्यकार्यसुकरम्। परिजय्यं च लभ्यं च कार्यं च सुकरं च तेषां समाहारद्वन्द्वः परिजय्यलभ्यकार्यसुकरम्। तेन तृतीयान्तं, परिजय्यलभ्यकार्यसुकरं प्रथमान्तम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा, ठञ्** और **कालात्** का अधिकार है।

तृतीया समर्थ कालवाची प्रातिपदिक से परिजय्य=जीता जा सकता है, लभ्य=प्राप्त करने योग्य, कार्य=किया जा सके और सुकर=सुगमता से किया जा सके- इन अर्थों में औत्सर्गिक ठञ् प्रत्यय होता है।

मासेन परिजय्यः=जेतुं शक्यो मासिको व्याधिः। महीने भर में अच्छा होने वाला रोग। **मासेन परिजय्यः** विग्रह करके **मास+टा** इस स्थिति में **तेन परिजय्यलभ्यकार्यसुकरम्** सूत्र के द्वारा ठञ् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, ठ के स्थान पर इकादेश, प्रातिंपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करके **मासिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **मासिकः** सिद्ध हो जाता है।

मासेन लभ्यं कार्यं सुकरं वा मासिकम्। एक महीने में प्राप्त करने योग्य, एक महीने से करने योग्य और एक महीने में सुगमता-पूर्वक साध्य वेतन आदि। **मासेन लभ्यम्, मासेन कार्यम्, मासेन सुकरम्** विग्रह करके **मास+टा** इस स्थिति में पूर्ववत् प्रत्ययादि की प्रक्रिया करके **मासिकम्** सिद्ध हो जाता है।

अब प्राग्वतीयों में बीसवें अर्थक्रम **अस्य ब्रह्मचर्यम्** अर्थ में प्रत्यय का विधान किया जा रहा है-

१७५८. तदस्य ब्रह्मचर्यम् ५।१।९४॥

द्वितीयान्तात् कालवाचिनोऽस्येत्यर्थे प्रत्ययः स्यात्। अत्यन्तसंयोगे द्वितीया। मासं ब्रह्मचर्यमस्य स मासिको ब्रह्मचारी। आर्धमासिकः। यद्वा प्रथमान्तादस्येत्यर्थे प्रत्ययः। मासोऽस्येति मासिकं ब्रह्मचर्यम्।
'महानाम्न्यादिभ्यः षष्ठ्यन्तेभ्य उपसंख्यानम्' (वा.३०६४)। महानाम्न्यो नाम 'विदा मघवन्-' इत्याद्या ऋचः। तासां ब्रह्मचर्यमस्य माहानाम्निकः। हरदत्तस्तु 'भस्याढे-' इति पुंवद्भावान्माहानामिक इत्याह।

'चतुर्मासाण्ण्यो यज्ञे तत्र भव इत्यर्थे' (वा.३०६९)। चतुर्षु मासेषु भवन्ति **चातुर्मास्यानि यज्ञकर्माणि।**
'अण् सञ्ज्ञायाम्'(वा.३०७०)। चतुर्षु मासेषु भवति **चातुर्मासी आषाढी पौर्णमासी। अण्णन्तत्वान्ङीप्।**

तदस्य ब्रह्मचर्यम्। तद् द्वितीयान्तम्, अस्य षष्ठ्यन्तं, ब्रह्मचर्यं प्रथमान्तम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा, ठञ्** और **कालात्** का अधिकार है।

(प्रथमा-समर्थ) द्वितीया समर्थ कालवाची प्रातिपदिक से अस्य=षष्ठ्यर्थ में औत्सर्गिक ठञ् प्रत्यय होता है, ब्रह्मचर्य गम्य होने पर।

विशेषः- सूत्रोक्त **तद्** पद प्रथमान्त और द्वितीयान्त दोनों माना जा सकता है। इसका विवेचन आगे किया जा रहा है। प्रथमान्त मानने पर यह **ब्रह्मचर्य** का विशेषण होगा और द्वितीयान्त मानने पर **ब्रह्मचारी** का। पहले द्वितीयान्त मानकर प्रत्यय किया जा रहा है।

अत्यन्तसंयोगे द्वितीया। द्वितीयान्त मानने पर **कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे** सूत्र से द्वितीया विभक्ति समझनी चाहिये।

मासं ब्रह्मचर्यमस्य स मासिको ब्रह्मचारी। महीने भर ब्रह्मचर्य वाला। **मासं ब्रह्मचर्यम् अस्य** विग्रह करके **मास+अम्** इस स्थिति में **तदस्य ब्रह्मचर्यम्** सूत्र से ठञ् प्रत्यय होने पर इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **मासिक** शब्द बनता है तथा स्वादिकार्य से **मासिकः** सिद्ध हो जाता है। इस पक्ष में प्रत्ययार्थ होने के कारण ब्रह्मचर्य ही प्रधान है। **तद्** शब्द ब्रह्मचर्य का विशेषण है।

आर्धमासिकः। आधे महीने तक ब्रह्मचर्य वाला। **अर्धमासं ब्रह्मचर्यम् अस्य** विग्रह करके **अर्धमास+अम्** इस स्थिति में **तदस्य ब्रह्मचर्यम्** सूत्र से ठञ् प्रत्यय होने पर इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आर्धमासिक** शब्द बनता है तथा स्वादिकार्य से **आर्धमासिकः** सिद्ध हो जाता है।

यद्वा- प्रथमान्तादस्येत्यर्थे प्रत्ययः। अथवा **तद्** शब्द को प्रथमान्त मानने पर सूत्र का अर्थ होगा- प्रथमा-समर्थ कालवाची प्रातिपदिक से **अस्य** अर्थ में प्रत्यय होगा।

मासोऽस्येति मासिकं ब्रह्मचर्यम्। एक महीना ब्रह्मचर्य रहने वाला। यहाँ पर **मास+सु** से प्रत्यय होकर **मासिकम्** बनता है।

आर्धमासिकः। आधे मास तक ब्रह्मचर्य वाला। यहाँ **अर्धमास+सु** इस स्थिति में प्रत्यय होकर **आर्धमासिकः** बनता है।

महानाम्न्यादिभ्यः षष्ठ्यन्तेभ्य उपसंख्यानम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- षष्ठीसमर्थ महानाम्नी आदि प्रातिपदिकों से अस्य ब्रह्मचर्यम् अर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है।

महानाम्न्यो नाम 'विदा मघवन्-' इत्याद्या ऋचः। तासां ब्रह्मचर्यमस्य माहानाम्निकः। **महानाम्नी** नामक **विदा मघवन्** आदि ऋचायें हैं। उन ऋचाओं को पढ़ने का व्रत लेने वाला **माहानाम्निक** कहलाता है। **महानाम्नीनां ब्रह्मचर्यम् अस्य** विग्रह करके **महानाम्नी+आम्** इस स्थिति में **महानाम्न्यादिभ्यः षष्ठ्यन्तेभ्य उपसंख्यानम्** वार्तिक से ठञ् प्रत्यय होने पर इकादेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक ईकार का लोप होकर **माहानाम्निक** शब्द बनता है और स्वादिकार्य होकर **माहानाम्निकः** सिद्ध हो जाता है।

हरदत्तस्तु 'भस्याढे-' इति पुंवद्भावान्माहानामिक इत्याह। उपर्युक्त प्रयोग में काशिका के व्याख्याकार हरदत्त जी का दूसरा मत है। उनके अनुसार **माहानाम्नी+इक** इस स्थिति में **भस्याढे तद्धिते** वार्तिक से पुंवद्भाव होकर **माहानामन्+इक** बनता है और **नस्तद्धिते** सूत्र के द्वारा टिसंज्ञक भाग **अन्** का लोप होकर **माहानामिकः** बनता है। यह मत भाष्यकार को स्वीकार्य नहीं है।

चतुर्मासाण्ण्यो यज्ञे तत्र भव इत्यर्थे। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- चतुर्मास-शब्द से **तत्र भवो यज्ञः** (उसमें होने वाला यज्ञ) अर्थ में ण्य-प्रत्यय होता है। णकार इत्संज्ञक है, **य** बचता है।

चतुर्षु मासेषु भवन्ति चातुर्मास्यानि यज्ञकर्माणि। चार महीनों में होने वाले यज्ञ के कार्य। **चतुर्षु मासेषु भवन्ति** विग्रह करके तद्धितार्थविषयक समासादि करके **चतुर्मास** बनने के बाद **चतुर्मासाण्ण्यो यज्ञे तत्र भव इत्यर्थे** वार्तिक के द्वारा **ण्य** प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **चातुर्मास्य** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **चातुर्मास्यम्, चातुर्मास्ये, चातुर्मास्यानि** आदि रूप सिद्ध होते हैं।

अण् सञ्ज्ञायाम्। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- सप्तम्यन्त चतुर्मास-शब्द से संज्ञा गम्यमान होने पर भवार्थ में अण् प्रत्यय होता है।

चतुर्षु मासेषु भवति चातुर्मासी आषाढी पौर्णमासी। अण्णन्तत्वान्ङीप्। चार महीने बाद होने वाली आषाढ की पौर्णमासी। **चतुर्षु मासेषु भवति** विग्रह करके तद्धितार्थविषयक समासादि करके **चतुर्मास** बनने के बाद **अण् संज्ञायाम्** वार्तिक के द्वारा **अण्** प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **चातुर्मास** शब्द बनता है। संज्ञा गम्यमान होने के कारण यह प्रत्यय हुआ है और यह संज्ञा आषाढ की पूर्णिमा के लिये है। तदनुसार स्त्रीलिंग में अणन्त **चातुर्मास** शब्द से **टिड्ढाणञ्०** सूत्र से ङीप् प्रत्यय, अकार का लोप होकर **चातुर्मासी** बन जाता है और स्वादिकार्य होकर **चातुर्मासी** सिद्ध हो जाता है।

यहाँ शैषिक **तत्र भवः (४.३.५३)** सूत्र से ही भवार्थ में अण्-प्रत्यय सम्भव होने पर पुनः वार्तिक से विधान इस लिये किया गया है कि **द्विगुर्लुगनपत्ये (४.१.८८)** सूत्र से प्रत्यय का लुक् न हो।

अब प्राग्वतीयों में इक्कीसवें अर्थक्रम **तस्य दक्षिणा** अर्थ में प्रत्यय का विधान किया जा रहा है।

१७५९. तस्य च दक्षिणा यज्ञाख्येभ्यः ५।१।९५॥

द्वादशाहस्य दक्षिणा द्वादशाहिकी। आख्याग्रहणादकालादपि। आग्निष्टोमिकी। वाजपेयिकी।

तस्य च दक्षिणा यज्ञाख्येभ्यः। यज्ञम् आचक्षते इति यज्ञाख्याः, तेभ्यो यज्ञाख्येभ्यः। तस्य षष्ठ्यन्तं, चाव्ययं, दक्षिणा प्रथमान्तं, यज्ञाख्येभ्यः पञ्चम्यन्तम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा, ठञ्** और **कालात्** का अधिकार है।

षष्ठी-समर्थ कालवाची यज्ञ की आख्या वाले प्रातिपदिक से भी दक्षिणा अर्थ में औत्सर्गिक ठञ् प्रत्यय होता है।

द्वादशाहस्य दक्षिणा द्वादशाहिकी। बारह दिनों में किये जाने वाले यज्ञ की दक्षिणा। **द्वादशाहस्य दक्षिणा** विग्रह करके **द्वादशाह+ङस्** इस स्थिति में **तस्य च दक्षिणा यज्ञाख्येभ्यः** सूत्र के द्वारा ठञ्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, **ठ** के स्थान पर **इक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **द्वादशाह+इक** बना है। पर्जन्यवल्लक्षणन्यायेन आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **द्वादशाहिक** बना है। स्त्रीलिंग **दक्षिणा** शब्द का विशेषण होने के कारण **द्वादशाहिक** शब्द से भी स्त्रीत्व-बोधक प्रत्यय होगा। अतः ठञन्त होने के कारण **टिड्ढाणञ्०** सूत्र से ङीप् होने पर भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** से लोप होकर **द्वादशाहिकी** शब्द बन जाता है तथा स्वादिकार्य होकर **द्वादशाहिकी** सिद्ध हो जाता है।

आख्याग्रहणादकालादपि। यद्यपि प्रकृत सूत्र में **कालात्** पद का अधिकार है तथापि सूत्र में **आख्या**-शब्द का ग्रहण होने से यह अर्थ निकाल लिया जाता है कि कहीं-कहीं कालवाची न होने पर भी यह प्रत्यय हो सकता है। **अग्निष्टोम, वाजपेय** आदि शब्द कालवाची नहीं हैं। उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं।

आग्निष्टोमिकी। अग्निष्टोम-यज्ञ की दक्षिणा। **अग्निष्टोमस्य दक्षिणा** विग्रह करके **अग्निष्टोम+ङस्** इस स्थिति में **तस्य च दक्षिणा यज्ञाख्येभ्यः** सूत्र के द्वारा ठञ्-प्रत्यय, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आग्निष्टोमिक** तथा ठञन्त होने के कारण **टिड्ढाणञ्०** सूत्र से ङीप् होने पर भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आग्निष्टोमिकी** एवं स्वादिकार्य होकर **आग्निष्टोमिकी** सिद्ध हो जाता है।

वाजपेयिकी। वाजपेय यज्ञ की दक्षिणा। **वाजपेयस्य दक्षिणा** विग्रह करके **वाजपेय+ङस्** इस स्थिति में **तस्य च दक्षिणा यज्ञाख्येभ्यः** सूत्र के द्वारा ठञ्-प्रत्यय, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप, ङीप्, पुनः ककारोत्तरवर्ती भसंज्ञक अकार का लोप होकर **वाजपेयिकी** एवं स्वादिकार्य होकर **वाजपेयिकी** सिद्ध हो जाता है।

अब प्रकरण के अन्त में **दीयते** और **कार्यम्** अर्थों में भवार्थ में यथाविहित प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है। प्राग्वतीयों यह बाईसवाँ अर्थक्रम है।

१७६०. तत्र च दीयते कार्यं भववत् ५।१।९६॥

प्रावृषि दीयते कार्यं वा प्रावृषेण्यम्। शारदम्।

इति तद्धितेषु प्राग्वतीये ठञधिकारे कालाद् इत्यधिकारः सम्पूर्णः।

तत्र च दीयते कार्यं भववत्। भव इव भववत्। तस्य षष्ठ्यन्तं, चाव्ययं, दीयते अर्थबोधकं क्रियापदं, कार्यमित्यपि अर्थबोधकं पदं प्रथमान्तं, भववत् इत्यव्ययम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा, ठञ्, कालात्** का अधिकार है।

सप्तमी-समर्थ कालवाची प्रातिपदिकों से दीयते=दिया जाता है और कार्यम्=कार्य इन दो अर्थों में भव-अर्थ के समान यथाविहित प्रत्यय होते हैं।

जैसे शैषिक-प्रकरण में **तत्र भवः** सूत्र के प्रसंग में जिस प्रकृति से जो-जो प्रत्यय किये गये हैं, उन-उन प्रकृतियों से यहाँ **दीयते** और **कार्यम्** अर्थ में तत्तत् प्रत्ययों का अतिदेश किया गया है। वहाँ कालवाची शब्दों से ठञ्, एण्य आदि प्रत्यय हुये थे तो यहाँ भी वे ही प्रत्यय होंगे।

प्रावृषि दीयते कार्यं वा प्रावृषेण्यम्। वर्षा ऋतु में दिया जाने वाला पदार्थ या किया जाने वाला कार्य। **प्रावृषि दीयते** और **प्रावृषि कार्यम्** विग्रह करके **प्रावृष्+ङि** इस स्थिति में भवार्थ में **प्रावृष एण्यः** सूत्र से **एण्य** प्रत्यय किया गया था सो यहाँ भी **एण्य** प्रत्यय ही होता है। प्रत्यय के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **प्रावृषेण्य** शब्द बनता है। स्वादिकार्य से **प्रावृषेण्यम्** सिद्ध हो जाता है।

शारदम्। शरद ऋतु में दिया जाने वाला पदार्थ या किया जाने वाला कार्य। **शरदि दीयते** और **शरदि कार्यम्** विग्रह करके **शरद्+ङि** इस स्थिति में भवार्थ में **सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्** सूत्र से **अण्** प्रत्यय किया गया था सो यहाँ भी **अण्** प्रत्यय ही होता है। प्रत्यय के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि करके **शारद** शब्द बनता है। स्वादिकार्य से **शारदम्** सिद्ध हो जाता है।

इति तद्धितेषु प्राग्वतीये ठञधिकारे कालाद् इत्यधिकारः सम्पूर्णः। यहाँ **कालात्** का अधिकार पूर्ण हो जाता है। इस सूत्र के अनन्तर सामान्यतः यथानिर्दिष्ट अर्थों में प्रत्ययों का विधान किया जायेगा। ठञ् का अधिकार अभी शेष है। अतः अगले प्रकरण को ठञ्विधिप्रकरण कहा जायेगा।

श्री भट्टोजिदीक्षित द्वारा विरचित वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी की गोविन्दाचार्य कृत श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी टीका में तद्धित-कालाधिकार-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ ठञ्विधिप्रकरणम्

प्राग्वतेष्ठञ् सूत्र से चला आ रहा **ठञ्** का अधिकार **तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः** से पहले तक है। इस प्रकरण के अवशिष्ट सूत्र इसी के अधिकार में आते हैं। अतः इसे दीक्षित जी ने ठञ्विधि-प्रकरण नाम दिया है। कई पुस्तकों में कालाधिकार और इस प्रकरण को एक ही प्रकरण में दिया गया है।

१७६१. व्युष्टादिभ्योऽण् ५।१।९७॥

व्युष्टे दीयते कार्यं वा वैयुष्टम्। व्युष्ट तीर्थ संग्राम प्रवास इत्यादि।

'अग्निपदादिभ्य उपसंख्यानम्' (वा.३०७२)।

अग्निपदे दीयते कार्यं वा आग्निपदम्। पैलुमूलम्।

व्युष्टादिभ्योऽण्। व्युष्ट आदिर्येषां ते व्युष्टादयस्तेभ्यो व्युष्टादिभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अण् प्रथमान्तम्। पूर्वप्रकरण के **तत्र च दीयते कार्यं भववत्** सूत्र से **तत्र दीयते कार्यम्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

सप्तमी-समर्थ व्युष्टादि-गणपठित प्रातिपदिकों से दीयते तथा कार्यम् अर्थों में अण् प्रत्यय होता है।

प्राग्वतेष्ठञ् से ठञ् का अधिकार होने के कारण उसके अपवादस्वरूप अण्-प्रत्यय का विधान किया गया है।

व्युष्टे दीयते कार्यं वा वैयुष्टम्। व्युष्ट=प्रभात काल में दिया जाने वाला या किया जाने वाला कार्य। **व्युष्टे दीयते** और **व्युष्टे कार्यम्** विग्रह करके **व्युष्ट+ङि** इस स्थिति में ठञ् को बाधकर **व्युष्टादिभ्योऽण्** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, प्राप्त आदिवृद्धि को बाधकर **न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्** सूत्र के द्वारा यकार से पहले ऐकारागम होकर **वैयुष्ट+अ** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके **वैयुष्ट** और स्वादिकार्य करके **वैयुष्टम्** सिद्ध हो जाता है।

व्युष्ट तीर्थ संग्राम प्रवास इत्यादि। व्युष्टादिगण के कुछ शब्द दिखाये गये हैं।

व्युष्टादिगणः- व्युष्ट, नित्य, निष्क्रमण, प्रवेशन, उपसंक्रमण, तीर्थ, आस्तरण, सङ्ग्राम, सङ्घात, अग्निपद, पीलुमूल (पीलु, मूल), प्रवास, उपवास।

अग्निपदादिभ्य उपसंख्यानम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- अग्निपदादि गणपठित शब्दों से भी **दीयते** और **कार्यम्** अर्थों में अण् प्रत्यय होता है। कुछ आचार्य व्युष्टादिगण में अग्निपदादि शब्दों का पाठ मानकर इस वार्तिक को अनावश्यक बताते हैं।

अग्निपदे दीयते कार्यं वा आग्निपदम्। अग्निपद=ऊसर-स्थान पर दिया जाने वाला या किया जाने वाला कार्य। **अग्निपदे दीयते** और **अग्निपदे कार्यम्** विग्रह करके **अग्निपद+ङि** इस स्थिति में ठञ् को बाधकर **अग्निपदादिभ्य उपसंख्यानम्** वार्तिक से अण् प्रत्यय, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **आग्निपद** और स्वादिकार्य करके **आग्निपदम्** सिद्ध हो जाता है।

पैलुमूलम्। पीलु-वृक्ष के नीचे होने वाली घटनायें या लेन-देन आदि। **पीलुमूले दीयते** और **पीलुमूले कार्यम्** विग्रह करके **पीलुमूल+ङि** इस स्थिति में **अग्निपदादिभ्य उपसंख्यानम्** वार्तिक से अण् प्रत्यय, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **पैलुमूल** और स्वादिकार्य करके **पैलुमूलम्** सिद्ध हो जाता है।

१७६२. तेन यथाकथाचहस्ताभ्यां णयतौ ५।१।९८॥

यथाकथाचेत्यव्ययसङ्घातात् तृतीयान्ताद्धस्तशब्दाच्च यथासंख्यं णयतौ स्तः। 'अर्थाभ्यां तु यथासंख्यं नेष्यते'। यथाकथा च दीयते कार्यं वा याथाकथाचम्। अनादरेण देयं कार्यं वेत्यर्थः। हस्तेन दीयते कार्यं वा हस्त्यम्।

तेन यथाकथाचहस्ताभ्यां णयतौ। यथाकथाच च हस्तश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो यथाकथाचहस्तौ, ताभ्यां यथाकथाचहस्ताभ्याम्। णश्च यत् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो णयतौ। तेन तृतीयान्तं, यथाकथाचहस्ताभ्यां पञ्चम्यन्तं, णयतौ प्रथमान्तम्। **तत्र च दीयते कार्यं भववत्** सूत्र से **तत्र दीयते कार्यम्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है। प्रकृति और प्रत्ययों में समानसंख्या होने के कारण **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** परिभाषा की उपस्थिति होती है।

तृतीया-समर्थ अव्यय-समूह यथाकथाच-शब्द और हस्त-शब्द से दीयते तथा कार्यम् अर्थों में यथासंख्य ण और यत् प्रत्यय होते हैं।

यथाकथाच यह **यथा, कथा** और **च** इन अव्ययों का समूह है। अनादर अर्थ में इस समूह का प्रयोग किया जाता है। यथासंख्य से होने पर **यथाकथाच** से **ण**-प्रत्यय और **हस्त** शब्द से **यत्** प्रत्यय होंगे।

अर्थाभ्यां तु यथासंख्यं नेष्यते। यद्यपि **दीयते** और **कार्यम्** ये अर्थ भी दो हैं, तथापि अर्थ के साथ यथासंख्यनियम इष्ट नहीं है। अतः दोनों शब्दों से दोनों अर्थों में प्रत्यय होते हैं।

यथाकथा च दीयते कार्यं वा याथाकथाचम्। अनादरेण देयं कार्यं वेत्यर्थः। अनादर से दिया जाने वाला या अनादर से किया जाने वाला। **यथाकथाच दीयते** और **यथाकथाच कार्यम्** विग्रह करके **यथाकथाच** शब्द से **तेन यथाकथाचहस्ताभ्यां णयतौ** सूत्र से **ण** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करके **याथाकथाच** शब्द बना है। स्वादिकार्य करके **याथाकथाचम्** सिद्ध हो जाता है।

हस्तेन दीयते कार्यं वा हस्त्यम्। हाथ से दिया जाने वाला या किया जाने वाला। **हस्तेन दीयते** और **हस्तेन कार्यम्** विग्रह करके हस्त+टा इस स्थिति में **तेन यथाकथाचहस्ताभ्यां णयतौ** सूत्र से **यत्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप भसंज्ञक अकार का लोप करके **हस्त्य** शब्द बना है। स्वादिकार्य करके **हस्त्यम्** सिद्ध हो जाता है।

अब दो सूत्रों से प्राग्वतीयों में तेइसवें अर्थक्रम **सम्पादी**=शोभित होने वाला- अर्थ में प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है-

१७६३. सम्पादिनि ५।१।९९॥

तेन इत्येव। कर्णवेष्टकाभ्यां सम्पादि कार्णवेष्टकिकं मुखम्। कर्णालङ्काराभ्यामवश्यं शोभत इत्यर्थः।

सम्पादिनि। सम्पादिन्-शब्दस्य सप्तम्यन्तं रूपं सम्पादिनि। **ठञ्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है और **तेन यथाकथाचहस्ताभ्यां णयतौ** से तेन की अनुवृत्ति आती है।

तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से सम्पादिनि=शोभित होने वाला- अर्थ में औत्सर्गिक ठञ्-प्रत्यय होता है।

तेन इत्येव। पूर्वसूत्र से **तेन** पद की अनुवृत्ति आने के कारण प्रकृत सूत्र भी तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक में प्रवृत्त होता है।

कर्णवेष्टकाभ्यां सम्पादि कार्णवेष्टकिकं मुखम्। कर्णालङ्काराभ्यामवश्यं शोभत इत्यर्थः। कर्णभूषण के द्वारा अवश्य शोभा को पाने वाला मुख। **कर्णवेष्टकाभ्यां सम्पादि** विग्रह करके **कर्णवेष्टक+भ्याम्** इस स्थिति में **सम्पादिनि** सूत्र के द्वारा औत्सर्गिक ठञ्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **कार्णवेष्टकिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कार्णवेष्टकिकम्** सिद्ध हो जाता है।

१७६४. कर्मवेषाद्यत् ५।१।१००॥

कर्मणा सम्पादि कर्मण्यं शौर्यम्।
वेषेण सम्पादि वेष्यो नटः। वेषः कृत्रिम आकारः।

कर्मवेषाद्यत्। कर्म च वेषश्च तयोः समाहारद्वन्द्वः कर्मवेषं, तस्मात् कर्मवेषात् पञ्चम्यन्तं, यत् प्रथमान्तम्। **सम्पादिनि** की और **तेन यथाकथाचहस्ताभ्यां णयतौ** से **तेन** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ कर्मन् और वेष इन दो प्रातिपदिकों से सम्पादिनि=शोभित होने वाला- अर्थ में यत्-प्रत्यय होता है।

यह औत्सर्गिक ठञ् का अपवाद है।

कर्मणा सम्पादि कर्मण्यं शौर्यम्। कर्म के द्वारा शोभित होने वाला, शूर, वीर। **कर्मणा सम्पादि** विग्रह करके **कर्मन्+टा** इस स्थिति में **कर्मवेषाद्यत्** सूत्र के द्वारा यत्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **कर्मन्+य** बना है। **नस्तद्धिते** सूत्र से प्राप्त टिलोप का **ये चाभावकर्मणोः** (६.४.१६८) के द्वारा प्रकृतिभाव से निषेध हो जाता है और रेफ से परे नकार को णत्व होकर **कर्मण्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कर्मण्यम्** सिद्ध हो जाता है।

वेषेण सम्पादि वेष्यो नटः। वेषः कृत्रिम आकारः। परिधान आदि वेष बनाने से शोभित होने वाला, नट। कृत्रिम आकार को **वेष** कहा गया है। **वेषेण सम्पादि** विग्रह करके वेष+टा इस स्थिति में **कर्मवेषाद्यत्** सूत्र के द्वारा यत्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **वेष्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वेष्यः** सिद्ध हो जाता है।

अब प्राग्वतीयों में चौबीसवें अर्थक्रम **प्रभवति**=समर्थ है या शक्त है- अर्थ में प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है।

१७६५. तस्मै प्रभवति सन्तापादिभ्यः ५।१।१०१॥

सन्तापाय प्रभवति सान्तापिकः। साङ्ग्रामिकः।

तस्मै प्रभवति सन्तापादिभ्यः। सन्ताप आदिर्येषां ते सन्तापादयस्तेभ्यः सन्तापादिभ्यः, बहुव्रीहिः। तस्मै चतुर्थ्यन्तं, प्रभवति इत्यर्थबोधकं क्रियापदं, सन्तापादिभ्यः पञ्चम्यन्तम्। **ठञ्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

चतुर्थी-समर्थ सन्तापादि गणपठित प्रातिपदिकों से प्रभवति=समर्थ है- अर्थ में ठञ्-प्रत्यय होता है।

सूत्रोक्त **तस्मै** पद चतुर्थी समर्थ-विभक्ति का सूचक है और **प्रभवति** अर्थबोधक। उद्देश्यबोधक पद है- **सन्तापादिभ्यः।**

सन्तापाय प्रभवति सान्तापिकः। सन्ताप देने में समर्थ। **सन्तापाय प्रभवति**

विग्रह करके **सन्ताप+ङे** इस स्थिति में **तस्मै प्रभवति सन्तापादिभ्यः** सूत्र के द्वारा ठञ्-प्रत्यय होने पर इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करके **सान्तापिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सान्तापिकः** सिद्ध हो जाता है।

साङ्ग्रामिकः। संग्राम=युद्ध के लिये समर्थ। **सङ्ग्रामाय प्रभवति** विग्रह करके **सङ्ग्राम+ङे** इस स्थिति में **तस्मै प्रभवति सन्तापादिभ्यः** सूत्र के द्वारा ठञ्-प्रत्यय होने पर इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करके **साङ्ग्रामिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **साङ्ग्रामिकः** सिद्ध हो जाता है।

सन्तापादिगणः- सन्ताप, संनाह, संयाम, संयोग, संपराय, संवेशन, संपेष, निष्पेष, सर्ग, निसर्ग, विसर्ग, उपसर्ग, प्रवास, उपवास, संघात, संवेष, संवास, संमोदन, सक्तु। **मांसौदनाद्विगृहीतादपि**।

१७६६. योगाद्यच्च ५।१।१०२॥
चाट्ठञ्। योगाय प्रभवति योग्यः, यौगिकः।

योगाद्यच्च। योगात् पञ्चम्यन्तं, यत् प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **तस्मै प्रभवति सन्तापादिभ्यः** से **तस्मै प्रभवति** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

चतुर्थी-समर्थ योग-शब्द से प्रभवति=समर्थ है- अर्थ में यत्-प्रत्यय होता है।

चाट्ठञ्। प्रकृतसूत्र में पठित **च**-शब्द **ठञ्**-प्रत्यय के समुच्चय के लिये है अर्थात् पक्ष में **ठञ्** भी होता है।

योगाय प्रभवति योग्यः, यौगिकः। योग के लिये समर्थ। **योगः कर्मसु कौशलम्** के अनुसार कर्म में कुशलता को योग कहते हैं। **योगाय प्रभवति** विग्रह करके **योगा+ङे** इस स्थिति में **योगाद्यच्च** सूत्र के द्वारा यत्-प्रत्यय होने के पक्ष में भसंज्ञक अकार का लोप होकर **योग्य** शब्द बनता है और ठञ्-प्रत्यय होने के पक्ष में इकादेश, आदिवृद्धि और अकारलोप होकर **यौगिक** शब्द बनता है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **योग्यः** और **यौगिकः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

१७६७. कर्मण उकञ् ५।१।१०३॥
कर्मणे प्रभवति कार्मुकम्।

कर्मण उकञ्। कर्मणः पञ्चम्यन्तम्, उकञ् प्रथमान्तम्। **तस्मै प्रभवति सन्तापादिभ्यः** से **तस्मै प्रभवति** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

चतुर्थी-समर्थ कर्मन्-शब्द से प्रभवति=समर्थ है- अर्थ में उकञ्-प्रत्यय होता है।

उकञ् में ञकार इत्संज्ञक है, **उक** बचता है। ञित्करण आदिवृद्धि और स्वर के लिये है।

कर्मणे प्रभवति कार्मुकम्। कार्य के लिये, धनुष। **कर्मणे प्रभवति** विग्रह करके **कर्मन्+ङे** इस स्थिति में **कर्मण उकञ्** सूत्र के द्वारा उकञ्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, आदिवृद्धि और **नस्तद्धिते** से टिसंज्ञक भाग **अन्** का लोप होकर **कार्मुक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कार्मुकः** सिद्ध हो जाता है। **कार्मुक** शब्द का सामान्य अर्थ में अभिधान न होने से **धनुष** अर्थ ही लिया जाता है।

अब प्राग्वतीयों में पच्चीसवें अर्थक्रम **अस्य प्राप्तम्** अर्थ में प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है-

१७६८. समयस्तदस्य प्राप्तम् ५।१।१०४॥
समयः प्राप्तोऽस्य सामयिकम्।

समयस्तदस्य प्राप्तम्। समयः प्रत्यमान्तं, तत् प्रथमान्तम्, अस्य षष्ठ्यन्तं, प्राप्तं प्रथमान्तम्। **ठञ्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

प्रथमा-समर्थ 'समय' प्रातिपदिक से अस्य=षष्ठ्यर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है, यदि वह प्रथमा-समर्थ प्राप्त-समानाधिकरण हो।

समयः प्राप्तोऽस्य सामयिकम्। जिसका समय प्राप्त हो गया है, वह **सामयिक** कहलाता है। समयः प्राप्तः अस्य विग्रह करके **समय+सु** इस स्थिति में **समयस्तदस्य प्राप्तम्** सूत्र के द्वारा ठञ् प्रत्यय होने पर इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और अकारलोप होकर **सामयिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सामयिकम्** सिद्ध हो जाता है। पुँल्लिङ्ग में **सामयिकः** और स्त्रीलिङ्ग में ङीप् होकर **सामयिकी** बनता है।

१७६९. ऋतोरण् ५।१।१०५॥
ऋतुः प्राप्तोऽस्य आर्तवम्।
'उपवस्त्रादिभ्य उपसंख्यानम्।
उपवस्ता प्राप्तोऽस्य औपवस्त्रम्। प्राशिता प्राप्तोऽस्य प्राशित्रम्।

ऋतोरण्। ऋतोः पञ्चम्यन्तम्, अण् प्रथमान्तम्। **समयस्तदस्य प्राप्तम्** से **तदस्य प्राप्तम्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

प्रथमा-समर्थ 'ऋतु' प्रातिपदिक से अस्य=षष्ठ्यर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है, यदि वह प्रथमा-समर्थ के साथ समानाधिकरण हो।

ऋतुः प्राप्तोऽस्य आर्तवम्। जिसका मौसम आ गया हो। **ऋतुः प्राप्तः अस्य** विग्रह करके **ऋतु+सु** इस स्थिति में **ऋतोरण्** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होने के बाद ऋकार वृद्धि-रपर तथा उकार को **ओर्गुणः** से गुण ओकार हो जाता है। अवादेश होकर **आर्तव** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आर्तवम्** सिद्ध हो जाता है।

उपवस्त्रादिभ्य उपसंख्यानम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- उपवस्तृ आदि प्रातिपदिकों से भी अण् प्रत्यय होता है, तदस्य प्राप्तम् अर्थ में।

उपवस्ता प्राप्तोऽस्य औपवस्त्रम्। उपवास करने वाला प्राप्त हो गया हो जिसको। **उपवस्ता प्राप्तोऽस्य** विग्रह करके **उपवस्तृ+सु** इस स्थिति में **उपवस्त्रादिभ्य उपसंख्यानम्** वार्तिक से अण् प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि और ऋकार को यण् होकर **औपवस्त्र** शब्द बनता है तथा स्वादिकार्य से **औपवस्त्रम्** सिद्ध हो जाता है।

प्राशिता प्राप्तोऽस्य प्राशित्रम्। खाने वाला प्राप्त हो गया हो जिसको। **प्राशिता प्राप्तोऽस्य** विग्रह करके **प्राशिस्तृ+सु** इस स्थिति में **उपवस्त्रादिभ्य उपसंख्यानम्** वार्तिक से अण् प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि और ऋकार को यण् होकर **प्राशित्र** शब्द बनता है तथा स्वादिकार्य से **प्राशित्रम्** सिद्ध हो जाता है।

१७७०. कालाद्यत् ५।१।१०७॥
कालः प्राप्तोऽस्य काल्यं शीतम्।

कालाद्यत्। कालात् पञ्चम्यन्तं, यत् प्रथमान्तम्। **समयस्तदस्य प्राप्तम्** से **तदस्य प्राप्तम्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

प्रथमा-समर्थ 'काल' प्रातिपदिक से अस्य=षष्ठ्यर्थ में यत् प्रत्यय होता है, यदि वह प्रथमा-समर्थ के साथ समानाधिकरण हो।

कालः प्राप्तोऽस्य काल्यं शीतम्। जिसका समय आ गया हो, जाड़ा, गर्मी इत्यादि। **कालः प्राप्तोऽस्य** विग्रह करके **काल+सु** इस स्थिति में **कालाद्यत्** से यत् प्रत्यय होने पर भसंज्ञक अकार का लोप होकर **काल्य** और स्वादिकार्य से **काल्यम्** सिद्ध हो जाता है।

अब अगले सूत्र से प्राग्वतीयों में छब्बीसवें अर्थक्रम **प्रकृष्ट**=दीर्घता अर्थ में प्रत्यय का विधान किया जा रहा है-

१७७१. प्रकृष्टे ठञ् ५।१।१०८॥
'कालात्' इत्येव। 'तदस्य' इति च।
प्रकृष्टो दीर्घः। कालोऽस्येति कालिकं वैरम्।

प्रकृष्टे ठञ्। प्रकृष्टे सप्तम्यन्तं, ठञ् प्रथमान्तम्। **कालाद्यत्** से **कालात्** की और **समयस्तदस्य प्राप्तम्** से **तदस्य** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

प्रकृष्ट अर्थ में विद्यमान जो प्रथमा-समर्थ काल-शब्द, उससे षष्ठ्यर्थ में यत् प्रत्यय होता है।

'कालात्' इत्येव। 'तदस्य' इति च। अर्थात् **कालात्** और **तदस्य** की अनुवृत्ति रहती है, अतः प्रथमा-समर्थ कालवाची शब्द से ही यह प्रत्यय होता है। यद्यपि यहाँ **ठञ्** अधिकार से ही प्राप्त है तथापि विस्पष्टता के लिये पुनः पढ़ा गया है।

प्रकृष्टो दीर्घः। काल की प्रकृष्टता को अभिलक्षित कर **तदस्य** विषय में यत् का बाधक यह प्रत्यय विहित है। यहाँ काल की प्रकृष्टता **लम्बे समय** के रूप में गृहीत है।

प्रकृष्टः कालोऽस्येति कालिकं वैरम्। लम्बे अरसे से चला आ रहा वैर या ऋण आदि। **प्रकृष्टः कालोऽस्य** विग्रह करके **काल+सु** से **प्रकृष्टे ठञ्** सूत्र से ठञ्प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, पर्जन्यवल्लक्षणन्यायेन आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करके **कालिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कालिकम्** सिद्ध हो जाता है।

अब आगे **प्रयोजनम्** अर्थ में प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है। यह प्राग्वतीयों में सत्ताइसवाँ अर्थक्रम है।

१७७२. प्रयोजनम् ५।१।१०९॥

'तदस्य' इत्येव। इन्द्रमहः प्रयोजनमस्य ऐन्द्रमहिकम्।
प्रयोजनं फलं कारणं च।

प्रयोजनम्। प्रथमान्तमेकपदमिदं सूत्रम्। **समयस्तदस्य प्राप्तम्** से **तदस्य** की अनुवृत्ति आती है। **ठञ्, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

प्रयोजन-समानाधिकरण प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है।

तदस्य इत्येव। अर्थात् **तदस्य** की अनुवृत्ति रहती है, अतः प्रथमा-समर्थ से षष्ठ्यर्थ में ही यह प्रत्यय होता है।

इन्द्रमहः प्रयोजनमस्य ऐन्द्रमहिकम्। इन्द्रोत्सव प्रयोजन है जिसका, वह। **इन्द्रमहः प्रयोजनम् अस्य** विग्रह करके **इन्द्रमह+सु** इस स्थिति में **प्रयोजनम्** सूत्र के द्वारा ठञ्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकारलोप होकर **ऐन्द्रमहिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **ऐन्द्रमहिकः** सिद्ध हो जाता है। **मह**-शब्द उत्सववाची है।

प्रयोजनं फलं कारणं च। सूत्र में प्रयुक्त **प्रयोजन** शब्द फल और कारण का वाचक है। **प्रयुज्यते इति प्रयोजनम्=फलम्** और **प्रयुज्यते अनेन इति प्रयोजनं कारणम्**। प्र-पूर्वक युज्-धातु से ल्युट् प्रत्यय होकर निष्पन्न हुआ है। कर्मणि ल्युट् होने पर फलवाची और करण में ल्युट् होने पर कारणवाची समझना चाहिये।

१७७३. विशाखाषाढादण् मन्थदण्डयोः ५।१।११०॥

आभ्यामण् स्यात् प्रयोजनमित्यर्थे क्रमान्मन्थदण्डयोरर्थयोः।
विशाखा प्रयोजनमस्य वैशाखो मन्थः। आषाढो दण्डः।
'चूडादिभ्य उपसंख्यानम्'। चूडा-चौडम्। श्रद्धा-श्राद्धम्।

विशाखाषाढादण् मन्थदण्डयोः। विशाखा च अषाढा च तयोः समाहारद्वन्द्वो विशाखाषाढं, तस्माद् विशाखाषाढात्। मन्थश्च दण्डश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो मन्थदण्डौ, तयोर्मन्थदण्डयोः। विशाखाषाढात् पञ्चम्यन्तम्, अण् प्रथमान्तं, मन्थदण्डयोः सप्तम्यन्तम्। **प्रयोजनम्** सूत्र की और **समयस्तदस्य प्राप्तम्** से **तदस्य** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

प्रयोजन-समानाधिकरणवाची प्रथमासमर्थ विशाखा और अषाढा इन प्रातिपदिकों से षष्ठ्यर्थ में क्रमशः मन्थ और दण्ड अभिधेय होने पर अण् प्रत्यय होता है।

सूत्र में अभिधेयवाची **मन्थ** और **दण्ड** तथा उद्देश्यवाची **विशाखा** और **अषाढा** होने के कारण **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** की उपस्थिति से **मन्थ** अर्थ में **विशाखा** से और **दण्ड** अर्थ में **अषाढा** शब्दों से प्रत्यय होगा।

विशाखा प्रयोजनमस्य वैशाखो मन्थः। जिसको बनाने में विशाखा-नक्षत्र प्रयोजन हो, ऐसी मथानी। **विशाखा प्रयोजनमस्य मन्थस्य** विग्रह करके **विशाखा+सु** से **विशाखाषाढादण् मन्थदण्डयोः** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक आकार का लोप होकर **वैशाख** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वैशाखः** सिद्ध हो जाता है।

आषाढो दण्डः। जिसको काटने के लिये पूर्वाषाढा या उत्तराषाढा नक्षत्र प्रयोजन हो, ऐसा पलाश आदि का दण्ड। **अषाढा प्रयोजनमस्य दण्डस्य** विग्रह करके **अषाढा+सु** से **विशाखाषाढादण् मन्थदण्डयोः** सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय, आदिवृद्धि और भसंज्ञक आकार का लोप होकर **आषाढ** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आषाढः** सिद्ध हो जाता है।

चूडादिभ्य उपसंख्यानम्। यह वार्तिक है। प्रथमा-समर्थ चूडा आदि गणपठित प्रातिपदिकों से **अस्य प्रयोजनम्** अर्थ में अण् प्रत्यय होता है।

चौडम्। चौल संस्कार। **चूडा**=शिखा बनवाना प्रयोजन है जिस संस्कार का, वह। **चूडा प्रयोजनम् अस्य** विग्रह करके **चूडा+सु** इस स्थिति में **चूडादिभ्य उपसंख्यानम्** वार्तिक से अण् प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि और आकारलोप होकर **चौड** तथा स्वादिकार्य से **चौडम्** सिद्ध हो जाता है। डकार और लकार में अभेद मानकर **चौलम्** भी कहा जाता है।

श्राद्धम्। पितृकर्म, श्रद्धा ही मुख्य प्रयोजन है जिस कार्य का अर्थात् श्रद्धा के कारण किया जाने वाला। **श्रद्धा प्रयोजनम् अस्य** विग्रह करके **श्रद्धा+सु** इस स्थिति में **चूडादिभ्य उपसंख्यानम्** वार्तिक से अण् प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि और आकारलोप होकर **श्राद्ध** तथा स्वादिकार्य से **श्राद्धम्** सिद्ध हो जाता है।

१७७४. अनुप्रवचनादिभ्यश्छः ५।१।१११॥
अनुप्रवचनं प्रयोजनमस्य अनुप्रवचनीयम्।

अनुप्रवचनादिभ्यश्छः। अनुप्रवचनम् आदिर्येषां ते अनुप्रवचनादयस्तेभ्यः- अनुप्रवचनादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, छः प्रथमान्तम्। **प्रयोजनम्** सूत्र की और **समयस्तदस्य प्राप्तम्** से **तदस्य** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

प्रथमासमर्थ **अनुप्रवचनादि** गणपठित **प्रातिपदिकों से अस्य प्रयोजनम्** अर्थ में छ-प्रत्यय होता है।

अनुप्रवचनं प्रयोजनमस्य अनुप्रवचनीयम्। वेदाध्ययन के पश्चात् किया जाने वाला अनुप्रवचन-नामक होम ही प्रयोजन जिसका। **अनुप्रवचनं प्रयोजनम् अस्य** विग्रह करके **अनुप्रवचन+सु** इस स्थिति में **अनुप्रवचनादिभ्यश्छः** सूत्र के द्वारा छ-प्रत्यय होने पर छकार के स्थान पर ईय् आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **अनुप्रवचनीय** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **अनुप्रवचनीयम्** सिद्ध हो जाता है।

अनुप्रवचनादिगणः- अनुप्रवचन, उत्थापन, उपस्थापन, संवेशन, प्रवेशन, अनुप्रवेशन, अनुवासन, अनुवचन, अनुवाचन, अन्वारोहण, प्रारम्भण, आरम्भण, आरोहण।

१७७५. समापनात् सपूर्वपदात् ५।१।११२॥
व्याकरणसमापनं प्रयोजनमस्य व्याकरणसमापनीयः।

समापनात् सपूर्वपदात्। विद्यमानं पूर्वपदं यस्य तत् सपूर्वपदं, तस्मात् सपूर्वपदात्, बहुव्रीहिः। समापनात् पञ्चम्यन्तं, समपूर्वपदात् पञ्चम्यन्तम्। **अनुप्रवचनादिभ्यश्छः** से **छः** की, **प्रयोजनम्** सूत्र की और **समयस्तदस्य प्राप्तम्** से **तदस्य** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

विद्यमान है पूर्वपद जिसका, ऐसे समापन-प्रातिपदिक से अस्य प्रयोजनम् अर्थ में छ-प्रत्यय होता है।

व्याकरणसमापनं प्रयोजनमस्य व्याकरणसमापनीयः। जिसका प्रयोजन व्याकरण के अध्ययन की समाप्ति हो, वह छात्र या मंगलाचरण। **व्याकरणसमापनं प्रयोजनम् अस्य** विग्रह है। यहाँ समापन-शब्द के पूर्व व्याकरण शब्द होने के कारण **समापन**-शब्द सपूर्व है। अतः **व्याकरणसमापन+सु** इस स्थिति में **समापनात् सपूर्वपदात्** सूत्र के द्वारा छ-प्रत्यय होने पर छकार के स्थान पर **ईय्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **व्याकरणसमापनीय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **व्याकरणसमापनीयः** सिद्ध हो जाता है।

१७७६. ऐकागारिकट् चौरे ५।१।११३॥

एकमसहायमगारं प्रयोजनमस्य मुमुषिषोः स ऐकागारिकश्चौरः।

ऐकागारिकट् चौरे। ऐकागारिकट् प्रथमान्तं, चौरे सप्तम्यन्तम्। **प्रयोजनम्** सूत्र की और **समयस्तदस्य प्राप्तम्** से **तदस्य** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

प्रथमान्त एकागार-शब्द से अस्य प्रयोजनम् अर्थ में इकट्-प्रत्ययान्त और आदिवृद्धि-युक्त ऐकागारिकट् शब्द का निपातन किया जाता है, चोर अभिधेय होने पर।

विशेषार्थाभिधायी शब्द का निपातन किया गया है। **ऐकागारिकट्** में टकार इत्संज्ञक है। टित्करण स्त्रीलिंग में **टिड्ढाणञ्०** सूत्र से ङीप् करने के लिये है।

एकमसहायमगारं प्रयोजनमस्य मुमुषिषोः स ऐकागारिकश्चौरः। जिसका प्रयोजन एक=असहाय (सूना) मकान पाना हो, ऐसा चोर। **एकम् अगारं प्रयोजनम् अस्य** विग्रह करके तद्धितार्थविषयक समासादि के बाद निष्पन्न **एकागार**-शब्द से **ऐकागारिकट् चौरे** सूत्र से **इकट्** प्रत्यय और आदिवृद्धि का निपातन करने पर भसंज्ञक अकार का लोप होकर **ऐकागारिक** शब्द बनता है तथा स्वादिकार्य से **ऐकागारिकः** सिद्ध हो जाता है।

१७७७. आकालिकडाद्यन्तवचने ५।१।११४॥

समानकालावाद्यन्तौ यस्येत्याकालिकः। समानकालस्याकाल आदेशः। आशु विनाशीत्यर्थः। पूर्वदिने मध्याह्नादावुत्पद्य दिनान्तरे तत्रैव नश्वर इति वा। 'आकालाट्टंश्च'(वा.३०७८)। आकालिका विद्युत्।

इति तद्धितेषु प्राग्वतीयस्य ठञः पूर्णोऽवधिः।

आकालिकडाद्यन्तवचने। आदिश्च अन्तश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः- आद्यन्तौ, तयोर्वचनम् आद्यन्तवचनं, तस्मिन् आद्यन्तवचने, षष्ठीतत्पुरुषः। आकालिकट् प्रथमान्तम्, आद्यन्तवचने सप्तम्यन्तम्। **प्रयोजनम्** सूत्र की और **समयस्तदस्य प्राप्तम्** से **तदस्य** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

समानकाल-शब्द के स्थान पर आकाल आदेश और इकट् प्रत्यय का निपातन करके आकालिक प्रयोग साधु माना जाता है, आदि और अन्त समान काल में हो, ऐसा अर्थ गम्य होने पर।

समानकालावाद्यन्तौ यस्येत्याकालिकः। समानकालस्याकाल आदेशः। आशु विनाशीत्यर्थः। विशेषार्थाभिधायी **आकालिकट्** शब्द का निपातन किया गया है। इसमें **समानकालौ आद्यन्तौ यस्य** विग्रह करके **समान**-शब्द के स्थान पर **आकाल** आदेश और **इकट्** प्रत्यय का निपातन है, जिसका अर्थ है- शीघ्र विनाश को प्राप्त होने वाला।

आकालिकः। जिसका आदि और अन्त समान काल में हो। **आद्यन्त** शब्द के स्थान पर **आकाल** आदेश और **इकट् (इक)** प्रत्यय होने पर भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आकालिक** शब्द बनता है। स्वादिकार्य से **आकालिकः** सिद्ध हो जाता है।

पूर्वदिने मध्याह्नादावुत्पद्य दिनान्तरे तत्रैव नश्वर इति वा। जो पूर्व दिन मध्याह्न में उत्पन्न होकर दूसरे दिन ही नष्ट हो, उसे **आकालिकः** कहा जाता है अर्थात् नश्वर वस्तु को भी **आकालिकः** कहा जा सकता है।

आकालाट्ठंश्च। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- आकाल-शब्द से ठन् प्रत्यय भी होता है। वार्तिककार कहते हैं कि **आकालिकडाद्यन्तवचने** सूत्र को ही **आकालाट्ठंश्च** के रूप में पढ़ा जाय तो निपातन की कोई आवश्यकता नहीं है।

आकालिका विद्युत्। आशुविनाशिनी बिजली, जो चमकते ही नष्ट हो जाती है। **आकाल**-शब्द से ठन् प्रत्यय करने पर इकादेश आदि होकर **आकालिक** और स्त्रीत्वविवक्षा में टाप् होकर **आकालिका** सिद्ध हो जाता है।

इति तद्धितेषु प्राग्वतीयस्य ठञः पूर्णोऽवधिः। इस तरह तद्धित में **प्राग्वतेष्ठञ्** से जो ठञ् का अधिकार चल रहा था, उसकी अवधि पूर्ण हो जाती है। इसके साथ ही **प्राग्वतीय-प्रकरण** भी पूर्ण हो जाता है।

श्री भट्टोजिदीक्षित द्वारा विरचित वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी की गोविन्दाचार्य कृत श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी टीका में तद्धित-ठञधिकार-प्रकरण पूर्ण हुआ।

●

अथ तद्धितेषु भावकर्मार्थाः

अब भावकर्मार्थक प्रत्ययों का निरूपण किया जा रहा है। उसमें **त्व** और **तल्** प्रत्यय का अधिकार होता है। इसके अन्तर्गत तुल्य और सदृश अर्थ में **वति** और भाव अर्थ में **त्व** आदि प्रत्ययों का विधान है। कौमुदीकार ने आरम्भ केवल तीन सूत्रों से तुल्यार्थक प्रत्ययों का निरूपण किया है किन्तु इसका पृथक् नाम नहीं दिया गया है। लघुशब्देन्दुशेखर में तुल्यार्थकप्रकरण को पृथक् प्रकरण के रूप में विभक्त किया है।

१७७८. तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः १।१।११५॥

ब्राह्मणेन तुल्यं ब्राह्मणवदधीते।

'क्रिया चेत्' किम्? गुणतुल्ये मा भूत्, पुत्रेण तुल्यः स्थूलः।

तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः। तेन तृतीयान्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, तुल्यं प्रथमान्तं, क्रिया प्रथमान्तं, चेत् अव्ययपदं, वतिः प्रथमान्तम् अनेकपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

तृतीयान्त प्रातिपदिक से 'तुल्य' अर्थ में वति प्रत्यय होता है, यदि तुल्यता क्रिया को लेकर हो तो।

तेन पद तृतीया-समर्थविभक्ति का सूचक है। **तुल्य** पद क्रिया का विशेषण है। **वति** में इकार इत्संज्ञक है, **वत्** शेष रहता है। **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** इस सूत्र के अनुसार वतिप्रत्ययान्त को अव्यय में माना गया है। अतः इस प्रत्यय के बाद सिद्ध हुए शब्द अव्यय कहलाते हैं जिससे की गई विभक्ति का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् होता है।

ब्राह्मणेन तुल्यं ब्राह्मणवद् अधीते। यह क्षत्रिय ब्राह्मण के समान (पढ़ता है)। **ब्राह्मणेन तुल्यं** लौकिक विग्रह और **ब्राह्मण टा** अलौकिक विग्रह है। **तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः** से वतिप्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **ब्राह्मणवत्** बना। अव्यय होने के कारण आई हुई विभक्ति का लुक् होकर **ब्राह्मणवत्** सिद्ध हो जाता है।

'क्रिया चेत्' किम्? गुणतुल्ये मा भूत्, पुत्रेण तुल्यः स्थूलः। प्रकृतसूत्र में **क्रिया चेत्** पदों के द्वारा क्रिया की तुल्यता होने पर **वति** प्रत्यय हो किन्तु गुण से तुल्य

होने पर न हो, यह बताया गया है। अत एव **पुत्रेण तुल्यः स्थूलः** (पुत्र के समान स्थूल) में गुणवाचक होने के कारण **पुत्रवत्** नहीं बनता।

१७७९. तत्र तस्येव ५।१।११६॥
मथुरायामिव मथुरावत् सुघ्ने प्राकारः।
चैत्रस्येव चैत्रवन्मैत्रस्य गावः।

तत्र तस्येव। तत्र सप्तम्यन्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, तस्य षष्ठ्यन्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकम्, इव अव्ययपदं त्रिपदमिदं सूत्रम्। **तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः** से **वति** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

सप्तम्यन्त और षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से सदृश, समान आदि अर्थों में वति-प्रत्यय होता है।

क्रिया चेत् की अनुवृत्ति न आने से गुणतुल्य में भी यह प्रत्यय हो जाता है। **उसमें सदृश या उसके सदृश।**

मथुरायामिव मथुरावत् सुघ्ने प्राकारः। मथुरा के सदृश अर्थात् मथुरा में जिस तरह के महल हैं, उसी तरह के महल सुघ्न-देश भी हैं। महल, परकोटे को **प्राकार** कहा जाता है। मथुरायाम् इव लौकिक विग्रह और **मथुरा+ङि** अलौकिक विग्रह है। **तत्र तस्येव** से वतिप्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् करके **मथुरावत्** बना। अव्यय होने के कारण आई हुई विभक्ति का लुक्, **मथुरावत्।** यह सप्तम्यन्त का उदाहरण है।

चैत्रस्येव चैत्रवन्मैत्रस्य गावः। चैत्र की गौओं की तरह मैत्र की गौएँ। **चैत्रस्य इव** विग्रह करके चैत्र+ङस् इस स्थिति में **तत्र तस्येव** से वतिप्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् करके **चैत्रवत्** बना। अव्यय होने के कारण आई हुई विभक्ति का लुक् होकर **चैत्रवत्** सिद्ध हो जाता है। **मैत्र**-शब्द के परे रहते तकार को **यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा** से अनुनासिक नकार आदेश हुआ है। यह षष्ठ्यन्त का उदाहरण है।

१७८०. तदर्हम् ५।१।११७॥
विधिमर्हति विधिवत् पूज्यते।
क्रियाग्रहणं मण्डूकप्लुत्या अनुवर्तते। तेनेह न- राजानमर्हति छत्रम्।

तदर्हम्। तत् प्रथमान्तम्, अर्हं प्रथमान्तम्। **तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः** से **वति** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

द्वितीया-समर्थ प्रातिपदिक से अर्हण-विशिष्ट क्रिया वाच्य हो तो वति-प्रत्यय होता है।

वति प्रत्यय का ही विषय है। सूत्रस्थ **तत्** पद द्वितीया-समर्थ-विभक्ति का सूचक है। **अर्हम्** पद प्रत्ययार्थ को सूचित करता है।

विधिमर्हति विधिवत् पूज्यते। विधि के योग्य होता है अर्थात् विधिवत् पूजित होता है। **विधिम् अर्हति** विग्रह करके **विधि+अम्** इस स्थिति में **तदर्हम्** सूत्र से **वति** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **विधिवत्** शब्द बनता है। अव्ययत्वात् सुलोप होकर **विधिवत्** सिद्ध हो जाता है।

क्रियाग्रहणं मण्डूकप्लुत्या अनुवर्तते। तेनेह न- राजानमर्हति छत्रम्। यद्यपि पूर्वसूत्र में **क्रिया** पद की अनुवृत्ति नहीं थी तथापि प्रकृत सूत्र में मण्डूकप्लुतिन्यायेन **क्रिया चेत्** की अनुवृत्ति मानी जाती है। अतः क्रिया से तुल्य होने पर ही अर्हार्थ में प्रत्यय होगा। फलतः **राजानमर्हति छत्रम्** (राजा को छत्रधारण योग्य है) आदि में क्रियागत-समुदाय न होने से वति-प्रत्यय नहीं होगा।

क्रिया की अनुवृत्ति आने से भाष्यकार ने यह विशेषता दिखलायी है कि **राजवत्** आदि में सादृश्य अर्थ का अभाव रहेगा। अतः वहाँ **तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः** से भी वति-प्रत्यय नहीं हो सकता। **राजवत् पालनम्** का यह अर्थ नहीं है कि राजा के समान किसी अन्य व्यक्ति का पालन होता है, किन्तु **राजा को ही जो उचित क्रिया हो** इस अर्थ में वति-प्रत्यय होता है।

१७८१. तस्य भावस्त्वतलौ ५।१।११९॥

प्रकृतिजन्यबोधे प्रकारो भावः। गोर्भावो गोत्वम्, गोता। 'त्वान्तं क्लीबम्' (लि०१२०)। 'तलन्तं स्त्रियाम्'(लि०१७)।

तस्य भावस्त्वतलौ। त्वश्च तल् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वस्त्वतलौ। तस्य षष्ठ्यन्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, भावः प्रथमान्तं, त्वतलौ प्रथमान्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ ही रहा है।

'उसका भाव' ऐसा अर्थ हो तो षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से त्व और तल् प्रत्यय होते हैं।

प्रकृतिजन्यबोधे प्रकारो भावः। उस सूत्र की जो भी प्रकृति, उससे उत्पन्न होने वाला जो बोध अर्थात् ज्ञान, उसमें जो विशेषणतया प्रतीत होता है, उसे यहाँ पर **भाव** कहा गया है। जैसे यहाँ **गो** प्रकृति है और **गौ** में गो का जो गोत्व रहता है, वह ही **भाव** है अर्थात् गोत्व से युक्त होने पर ही उसे गाय कहा जाता है। **गोत्वविशिष्टो गौः** के अनुसार गो में गोत्व विशेषण के रूप में प्रतीत होता है, अतः वह **भाव** है। इस तरह

सामासन्यतः कह सकते हैं कि जो भी शब्द का प्रवृत्तिनिमित्त होता है, वही भाव है। जैसे गो का गोत्व, घट का घटत्व, पुस्तक का पुस्तकत्व आदि।

तल् में लकार इत्संज्ञक है।

'त्वान्तं क्लीबम्', 'तलन्तं स्त्रियाम्'। ये दो लिङ्गानुशासन के सूत्र हैं। तदनुसार **त्व** प्रत्यय होने पर शब्द नित्य नपुंसक लिङ्ग वाला और **तल्** प्रत्यय होने पर शब्द नित्य स्त्रीलिङ्ग वाला होता है।

गोत्वं, गोता। गौ का भाव। **गोर्भावः** लौकिक विग्रह और **गो ङस्** अलौकिक विग्रह है। **तस्य भावस्त्वतलौ** से त्वप्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **गोत्व** बना। सु विभक्ति, त्वप्रत्ययान्त नपुंसक होता है, अतः सु के स्थान पर अम् आदेश, पूर्वरूप आदि होकर **गोत्वम्** सिद्ध हुआ। तल् होने के पक्ष में लकार की इत्संज्ञा होने के बाद पूर्ववत् कार्य होकर तलन्त स्त्रीलिङ्गी होने के कारण **रमा** की तरह **गोता** सिद्ध होता है।

घटत्वं, घटता। घड़े का भाव। **घटस्य भावः** लौकिक विग्रह और **घट ङस्** अलौकिक विग्रह है। **तस्य भावस्त्वतलौ** से त्वप्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **घटत्व** बना। त्वप्रत्ययान्त नपुंसक होता है, अतः सु के स्थान पर अम् आदेश, पूर्वरूप आदि होकर **घटत्वम्** सिद्ध हुआ। तल् होने के पक्ष में लकार की इत्संज्ञा होने के बाद पूर्ववत् कार्य होकर तलन्त स्त्रीलिङ्गी होने के कारण **रमा** की तरह **घटता** सिद्ध होता है।

अब इसी तरह से भाव अर्थ में त्व और तल् प्रत्यय लगाकर अनेक प्रयोग बना लें। जैसे- सम से **समत्व-समता**, पात्र से **पात्रत्व-पात्रता**, विद्वत् से **विद्वत्त्व-विद्वत्ता**, प्रभु से **प्रभुत्व-प्रभुता**, पटु से **पटुत्व-पटुता** आदि।

१७८२. आ च त्वात् ५।१।१२०॥

'ब्रह्मणस्त्वः-' इत्यतः प्राक् त्वतलावधिक्रियेते। अपवादैः सह समावेशार्थम्। गुणवचनादिभ्यः कर्मणि विधानार्थं चेदम्। चकारो नञ्स्नञ्भ्यामपि समावेशार्थः। स्त्रिया भावः स्त्रैणम्, स्त्रीत्वम्, स्त्रीता। पौंस्नम्, पुंस्त्वम्, पुंस्ता।

आ च त्वात्। आ अव्ययपदं, च अव्ययपदं, त्वात् पञ्चम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **तस्य भावस्त्वतलौ** यह पूरा सूत्र अनुवृत्त होकर आता है। **आ** मर्यादायामव्ययम्।

'ब्रह्मणस्त्वः' सूत्र से पहले 'त्व' और 'तल्' का अधिकार किया जाता है।

अष्टाध्यायी में ब्रह्मणस्त्वः ५।१।१३६॥ का सूत्र यहाँ पर आगे पढ़ा गया है। उसके पहले तक **त्व** और **तल्** इन दो प्रत्ययों के अधिकार के लिए प्रकृत सूत्र पठित है।

अब इसमें यह प्रश्न उठता है कि यह काम तो **तस्य भावस्त्वतलौ** से भी हो सकता है? तो उत्तर में कहा गया है-

अपवादैः सह समावेशार्थम्। अर्थात् त्व और तल् प्रत्यय के बाधक इमनिच् आदि प्रत्यय जब हों तो इमनिच् आदि के साथ-साथ त्व, तल् भी हों, इसलिए अधिकार की आवश्यकता है।

अब दूसरा प्रश्न करते हैं कि **आ च त्वात्** में चकार किस लिए है? इसका उत्तर इस तरह से दिया है-

चकारो नञ्स्नञ्भ्यामपि समावेशार्थः। अर्थात् चकार से **समुच्चय** का अर्थज्ञान होता है। यहाँ पर **चकार** नञ्, स्नञ् प्रत्ययों का भी समावेश करने के लिए है। जैसे कि लोक में **तुम भी आओ** इस वाक्य के प्रयोग से यह ज्ञात होता है कि एक और किसी को भी आना है। इसी तरह इस सूत्र में पठित **चकार** से **त्व, तल्** के साथ **नञ्, स्नञ्** का भी बोध होता है। तात्पर्य यह हुआ कि त्व, तल् के बाधक से विशिष्ट के रूप में विधीयमान **इमनिच्** आदि प्रत्ययों के साथ-साथ **त्व, तल्, नञ्, स्नञ्** ये प्रत्यय भी बारी-बारी से होंगे।

स्त्रियाः भावः- स्त्रैणम्, स्त्रीत्वम्, स्त्रीता। स्त्री का भाव। **स्त्रियाः भावः** लौकिक विग्रह है। **स्त्री+ङस्** इस स्थिति में **आ च त्वात्** के अधिकार में पठित **स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्** से **नञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **स्त्री+न** बना। ञित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि होने पर ईकार के स्थान पर ऐकार हो गया, **स्त्रै+न** बना। **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से प्रत्यय के नकार के स्थान पर णकार आदेश होकर **स्त्रैण** बना और विभक्तिकार्य करके **स्त्रैणम्** सिद्ध हुआ। **त्व** प्रत्यय होने के पक्ष में **स्त्रीत्वम्** और **तल्** प्रत्यय होने के पक्ष में **तलन्तं स्त्रियाम्** के नियम से **तल्** प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग में होता है। अतः **अजाद्यतष्टाप्** से **टाप्** प्रत्यय होकर **स्त्रीता** बन जाता है।

पौंस्नम्, पुंस्त्वम्, पुंस्ता। पुरुष का भाव। **पुंसो भावः** लौकिक विग्रह है। **पुंस् ङस्** इस स्थिति में **आ च त्वात्** के अधिकार में पठित **स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्** से **स्नञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **पुंस्+स्न** बना। ञित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि होने पर उकार के स्थान पर औकार हो गया, **पौंस्+स्न** बना। विभक्ति के लुक् हो जाने पर भी पूर्व विभक्ति को लेकर पदत्व मान कर संयोगान्त **पौंस्** के सकार का लोप करके **पौंस्न** बना और विभक्तिकार्य करके **पौंस्नम्** सिद्ध हुआ। **त्व** प्रत्यय होने के पक्ष में **पुंस्त्वम्** और **तल्** होने के पक्ष में **पुंस्ता** बन जाते हैं।

१७८३. न नञ्पूर्वात्तत्पुरुषादचतुरसङ्गतलवणवटयुधकतरसलसेभ्यः ५।१।१२१॥

इतः परं ये भावप्रत्ययास्ते नञ्तत्पुरुषमात्रान्न स्युश्चतुरादीन् वर्जयित्वा। अपतित्वम्। अपटुत्वम्। नञ्पूर्वात् किम्? बार्हस्पत्यम्। तत्पुरुषात् किम्? नास्य पटवः सन्तीत्यपटुः, तस्य भाव आपटवम्। अचतुर इति किम्? आचतुर्यम्। आसङ्गत्यम्। आलवण्यम्। आवट्यम्। आयुध्यम्। आकत्यम्। आरस्यम्। आलस्यम्।

न नञ्पूर्वात् तत्पुरुषादचतुरसङ्गतल०। नञ्पूर्वो यस्मिन् स नञ्पूर्वस्तस्मान्नञ्पूर्वात्, बहुव्रीहिः। चतुरश्च सङ्गतश्च लवणश्च वटश्च युधश्च कतश्च रसश्च लसश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः- चतुरसङ्गतलवणवटयुधकतरसलसाः। न चतुरसङ्गतलवणवटयुधकतरसलसः अचतुरसङ्गतलवणवटयुधकतरसलसास्तेभ्यः- अचतुरसङ्गतलवणवटयुधकतरसलसेभ्यः, नञ्तत्पुरुषः। नाव्ययं, नञ्पूर्वात् पञ्चम्यन्तं, तत्पुरुषात् पञ्चम्यन्तम्, अचतुरसङ्गतलवणवटयुधकतरसलसेभ्यः पञ्चम्यन्तम्। **तस्य भावस्त्वतलौ** की अनुवृत्ति है और **ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

यहाँ से आगे जो भाव-प्रत्यय कहेंगे, वे नञ्पूर्व वाले तत्पुरुष से नहीं होंगे किन्तु चतुर, सङ्गत, लवण, वट, युध, कत, रस लस इन शब्दों को छोड़कर।

त्व और तल् का ही विषय है किन्तु इस सूत्र से आगे किये जाने वाले प्रत्ययों का विशेष परिस्थितियों में निषेध किया जा रहा है। जो निषेध्य हैं, उनमें यदि नञ्समास हुआ हो तो वक्ष्यमाण ष्यञ् आदि प्रत्यय नहीं होंगे किन्तु यह निषेध चतुर, सङ्गत, लवण, वट, युध, कत, रस लस इन शब्दों में नहीं लगता अर्थात् इन शब्दों से वक्ष्यमाण भावार्थक प्रत्यय हो सकते हैं। वक्ष्यमाण प्रत्ययों का निषेध होने के कारण उक्त त्व, तल् प्रत्यय तो नञ्तत्पुरुष शब्दों से भी होंगे ही।

अपतित्वम्। जो स्वामी न हो, उसका भाव। यहाँ **अपति** शब्द नञ्समासयुक्त है। **अपतेः भावः** विग्रह करके **अपति+ङस्** इस स्थिति में वक्ष्यमाण **पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्** (५.१.१२८) सूत्र से भावार्थ में **यक्** प्रत्यय प्राप्त था, उसका **न नञ्पूर्वात् तत्पुरुषादचतुरसङ्गतलवणवटयुधकतरसलसेभ्यः** सूत्र से निषेध हो जाता है, अतः **तस्य भावस्त्वतलौ** सूत्र से **त्व** प्रत्यय होकर **अपतित्व** और स्वादिकार्य होकर **अपतित्वम्** सिद्ध हो जाता है।

अपटुत्वम्। जो पटु न हो, उसका भाव। यहाँ **अपटु** शब्द नञ्समासयुक्त है। **अपटोः भावः** विग्रह करके **अपटु+ङस्** इस स्थिति में वक्ष्यमाण **इगन्ताच्च लघुपूर्वात्** (५.१.१३१) सूत्र से भावार्थ में **अण्** प्रत्यय प्राप्त था, उसका **न नञ्पूर्वात् तत्पुरुषादचतुरसङ्गतलवणवटयुधकतरसलसेभ्यः** सूत्र से निषेध हो जाता है, अतः

तस्य भावस्त्वतलौ सूत्र से **त्व** प्रत्यय होकर **अपटुत्व** और स्वादिकार्य होकर **अपटुत्वम्** सिद्ध हो जाता है।

भावार्थकप्रत्ययनिषेध के दो उदाहरण देकर अब प्रत्युदाहरण दे रहे हैं-

नञ्पूर्वात् किम्? बार्हस्पत्यम्। प्रकृत सूत्र में **नञ्पूर्वात्** पद का निवेश होने से यह निषेध नञ्समासयुक्त प्रातिपदिक में ही होता है, अन्यत्र नहीं होता। अतः **बृहस्पतेः भावः** विग्रह करके **बृहस्पति+ङस्** इस स्थिति में वक्ष्यमाण **पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्** (**५.१.१२८**) सूत्र से भावार्थ में **यक्** प्रत्यय हो जाता है अर्थात् प्रकृतसूत्र से निषेध नहीं होता। कित् परे होने के कारण **किति च** सूत्र से आदिवृद्धि और **यस्येति च** सूत्र से भसंज्ञक इकार का लोप होकर **बार्हस्पत्य** शब्द बन जाता है। स्वादिकार्य होकर **बार्हस्पत्यम्** सिद्ध हो जाता है।

तत्पुरुषात् किम्? नास्य पटवः सन्तीत्यप्टुः, तस्य भाव आपटवम्। प्रकृत सूत्र में **तत्पुरुषात्** पद का निवेश होने से यह निषेध तत्पुरुषसमास वाले प्रातिपदिक में ही होता है, अन्यत्र नहीं होता। अतः **न अस्य पटवः सन्ति** विग्रह करके बहुव्रीहिसमास से निष्पन्न **अपटु** शब्द में **अपटोः भावः** विग्रह करके **अपटु+ङस्** इस स्थिति में वक्ष्यमाण **इगन्ताच्च लघुपूर्वात्** सूत्र से भावार्थ में **अण्** प्रत्यय हो जाता है अर्थात् प्रकृतसूत्र से निषेध नहीं होता। आदिवृद्धि और उकार को **ओर्गुणः** से गुण ओकार होने के बाद उसको अवादेश होकर **आपटव** शब्द बन जाता है। स्वादिकार्य होकर **आपटवम्** सिद्ध हो जाता है।

अचतुर इति किम्? आचतुर्यम्। प्रकृत सूत्र में **अचतुर...लसेभ्यः** पद से चतुरादि-शब्दों में वक्ष्यमाण प्रत्ययों का निषेध नहीं किया गया है। अतः **अचतुरस्य भावः** विग्रह करके **अचतुर+ङस्** इस स्थिति में वक्ष्यमाण **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** (**५.१.१२४**) सूत्र से भावार्थ में **ष्यञ्** (**य**) प्रत्यय हो जाता है अर्थात् प्रकृतसूत्र से निषेध नहीं होता। आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आचतुर्य** शब्द बन जाता है। स्वादिकार्य होकर **आचतुर्यम्** (अचतुर का भाव) सिद्ध हो जाता है।

इसी तरह-

आसङ्गत्यम्। असंगत का भाव। **असङ्गतस्य भावः** विग्रह करके **असङ्गत+ङस्** में वक्ष्यमाण **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** से **ष्यञ्**, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आसङ्गत्य** तथा स्वादिकार्य होकर **आसङ्गत्यम्** सिद्ध हो जाता है।

आलवण्यम्। जो नमकीन न हो, उसका स्वभाव। **अलवणस्य भावः** विग्रह करके **अलवण+ङस्** में वक्ष्यमाण **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** से **ष्यञ्**, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आलवण्य** तथा स्वादिकार्य होकर **आलवण्यम्** सिद्ध हो जाता है।

आवट्यम्। वट-भिन्न का स्वभाव। **अवटस्य भावः** विग्रह करके **अवट+ङस्** में वक्ष्यमाण **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** से **ष्यञ्**, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आवट्य** तथा स्वादिकार्य होकर **आवट्यम्** सिद्ध हो जाता है।

आयुध्यम्। न लड़ने वाले का स्वभाव। **अयुधस्य भावः** विग्रह करके **अयुध+ङस्** में वक्ष्यमाण **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** से **ष्यञ्**, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आयुध्य** तथा स्वादिकार्य होकर **आयुध्यम्** सिद्ध हो जाता है।

आकत्यम्। जो कत=एक प्रकार का वृक्ष, वह न हो। **अकतस्य भावः** विग्रह करके **अकत+ङस्** में वक्ष्यमाण **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** से **ष्यञ्**, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आकत्य** तथा स्वादिकार्य होकर **आकत्यम्** सिद्ध हो जाता है।

आरस्यम्। रसहीन का भाव। **अरसस्य भावः** विग्रह करके **अरस+ङस्** में वक्ष्यमाण **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** से **ष्यञ्**, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आरस्य** तथा स्वादिकार्य होकर **आरस्यम्** सिद्ध हो जाता है।

आलस्यम्। आलसी का स्वभाव। **अलसस्य भावः** विग्रह करके **अलस+ङस्** में वक्ष्यमाण **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** से **ष्यञ्**, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आलस्य** तथा स्वादिकार्य होकर **आलस्यम्** सिद्ध हो जाता है।

ब्राह्मणादि को आकृतिगण माना जाता है। अतः उक्त सभी प्रयोगों में ष्यञ् सम्भव हो जाता है।

१७८४. पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा ५।१।१२२॥
वावचनमणादिसमावेशार्थम्।

पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा। पृथु आदिर्येषां ते पृथ्वादयस्तेभ्यः। पृथ्वादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, इमनिच् प्रथमान्तं, वा अव्ययपदं, त्रिपदं सूत्रम्। **तस्य भावस्त्वतलौ** से **तस्य** और **भावः** की अनुवृत्ति आती है एवं **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का पूर्ववत् अधिकार है।

षष्ठ्यन्त समर्थ पृथु-आदि गणपठित प्रातिपदिकों से भाव अर्थ में इमनिच् प्रत्यय होता है।

वा-वचनम् अणादिसमावेशार्थम्। इस सूत्र में पठित **वा** शब्द से पक्ष में **अण्** आदि प्रत्ययों का भी समावेश किया जाता है। अतः **इमनिच्** के साथ **इगन्ताच्च लघुपूर्वात्** सूत्र से विधीयमान **अण्** आदि दोनों प्रत्यय होंगे। प्रकृतसूत्र में **वा**-शब्द का ग्रहण न करने पर भी **समर्थानां प्रथमाद्वा** के महाविभाषा अधिकार से पक्ष में वाक्य का औचित्य सिद्ध हो जाता। यदि यह कहा जाय कि **इमनिच्** के न होने पर **त्व, तल्** का समावेश होने के लिये **वा**-ग्रहण आवश्यक है, यह भी नहीं कह सकते। उसका कारण यह है कि **आ च त्वात्** सूत्र के अधिकार में प्रकृत सूत्र की अवस्थिति होने से त्व तथा

तल् प्रत्ययों का समावेश स्वतः सिद्ध है। अतः **वा** शब्द का ग्रहण अन्य प्रत्ययों के होने में सार्थक है। जिसके फलस्वरूप **पार्थवम्** आदि में **इगन्ताच्च लघुपूर्वात्** सूत्र से इगन्त लघुपूर्व होने के कारण अण्-प्रत्यय होगा।

इमनिच् में अन्त्य चकार और उससे पूर्ववर्ती इकार इत्संज्ञक हैं, **इमन्** बचता है। इसके उदाहरण आगे दिखाये गये हैं।

पृथ्वादिगणः- पृथु, मृदु, महत्, पटु, तनु, लघु, बहु, साधु, आशु, उरु, गुरु, बहुल, खण्ड, दण्ड, चण्ड, अकिञ्चन, बाल, होड, पाक, वत्स, मन्द, स्वादु, ह्रस्व, दीर्घ, प्रिय, वृष, ऋजु, क्षिप्र, क्षुद्र, अणु।

१७८५. र ऋतो हलादेर्लघोः ६।४।१६१॥
हलादेर्लघोर्ऋकारस्य रः स्याद् इष्ठेमेयस्सु।

र ऋतो हलादेर्लघोः। रः प्रथमान्तं, ऋतः षष्ठ्यन्तं, हलादेः षष्ठ्यन्तं, लघोः षष्ठ्यन्तम्, अनेकपदं सूत्रम्। **तुरिष्ठेमेयस्सु** से **इष्ठेमेयस्सु** की अनुवृत्ति आती है और **अङ्गस्य** का अधिकार है।

हलादि अङ्ग के लघु ऋकार के स्थान पर र आदेश होता है इष्ठन्, इमनिच् और ईयसुन् प्रत्यय के परे होने पर।

यह प्रासंगिक षष्ठाध्याय का सूत्र है। स्थानी (उद्देश्य) **ऋत्** और आदेश (विधेय) **र** है। **र** यह आदेश **अकार** सहित **रेफ** वाला है, केवल **र्** नहीं है। **इष्ठेमेयस्सु** यह सप्तम्यन्त पद है। इसमें गृहीत प्रत्यय अनुबन्धविनिर्मुक्त हैं। **इष्ठन्** में **इष्ठ**, **इमनिच्** से **इमन्** और **ईयसुन्** से **इयस्** बचा हुआ होता है। **इष्ठश्च इमन् च ईयस् च** में समास करके विभक्ति का लुक् करने के बाद **इमन्** के नकार का **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप करके **इम** ही बचता है। इस तरह **इष्ठ+इम+ईयस्** बना। दोनों जगह गुण करके **इष्ठेमेयस्** बना है। इसके सप्तमी बहुवचन में **इष्ठेमेयस्सु** बनता है। उसकी अनुवृत्ति इस सूत्र में की गई है।

पृथ्वादिगण में अनेक शब्द आते हैं, उनमें से **पृथुमृदुभृशकृशदृढपरिवृढानामेव रत्वम्** वार्तिक से **पृथु, मृदु, भृश, कृश, दृढ** और **परिवृढ** के ऋकार को ही **र** आदेश होता है, अन्य पृथ्वादि शब्दों को नहीं होता।

१७८६. टेः ६।४।१५५॥
भस्य टेर्लोपः स्यादिष्ठेमेयस्सु।
पृथोर्भावः प्रथिमा, पार्थवम्। म्रदिमा, मार्दवम्।

टेः। टेः षष्ठ्यन्तमेकपदं सूत्रम्। **भस्य** और **अङ्गस्य** का अधिकार है और **ढे लोपोऽकद्र्वाः** से **लोपः** की तथा **तुरिष्ठेमेयस्सु** से **इष्ठेमेयस्सु** की अनुवृत्ति आती है। **भस्य** का अन्वय **टेः** के साथ होता है।

इष्ठन्, इमनिच् और इयसुन् प्रत्यय के परे होने पर भसंज्ञक अङ्ग के टि-संज्ञक भाग का लोप होता है।

इकार या अकार के अन्त में न होने पर **यस्येति च** से लोप प्राप्त नहीं होता, ऐसे शब्दों का टिलोप करने के लिए इसकी आवश्यकता पड़ती है।

पृथोर्भावः प्रथिमा, पार्थवम्, पृथुत्वम्, पृथुता। विस्तार का भाव, मोटापन, महत्ता। **पृथोर्भावः।** पृथु ङस् में **पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा** से विकल्प से **इमनिच्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **पृथु+इमन्** बना। **र ऋतो हलादेर्लघोः** से **पृथु** के **ऋकार** के स्थान पर र आदेश होकर **प्+र=प्र, प्रथु+इमन्** बना। **टेः** इस सूत्र से टिसंज्ञक **प्रथु** के उकार का लोप हुआ, **प्रथ्+इमन्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **प्रथिमन्** बना। इससे सु आदि प्रत्ययों के योग में **राजन्** शब्द की तरह उपधा को दीर्घ, हल्ङ्यादिलोप, नकार का लोप करके **प्रथिमा** सिद्ध हो जाता है। इसके आगे के रूप **राजन्** की ही तरह **प्रथिमानौ, प्रथिमानः, प्रथिमानम्, प्रथिमानौ, प्रथिम्नः** आदि चलते हैं। **इमनिच्** प्रत्यय वैकल्पिक है, उसके न होने के पक्ष में वक्ष्यमाण **इगन्ताच्च लघुपूर्वात्** सूत्र से **अण्** प्रत्यय होकर **पृथु+अ** बना। णित् होने के कारण आदिवृद्धि होकर **पार्थु+अ** बना। **ओर्गुणः** से गुण होकर ओकार और उसके स्थान पर अव् आदेश होकर **पार्थव** बना और स्वादिकार्य करके **पार्थवम्** सिद्ध हो जाता है। **आ च त्वात्** से **त्व** और **तल्** प्रत्ययों के अधिकृत होने के कारण **त्व** प्रत्यय के योग में **पृथुत्वम्** और **तल्** प्रत्यय के योग में **पृथुता** भी बन जाते हैं। इस तरह से चार रूप बने।

इसी तरह

मृदोर्भावः- म्रदिमा, मार्दवम्, मृदुत्वम्, मृदुता।
लघोर्भावः- लघिमा, लाघवम्, लघुत्वम्, लघुता।
गुरोर्भावः- गरिमा, **गौरवम्, गुरुत्वम्, गुरुता।**
ऋजोर्भावः- ऋजिमा, **आर्जवम्, ऋजुत्वम्, ऋजुता।**
अणोर्भावः- अणिमा, **आणवम्, अणुत्वम्, अणुता।**
महतो भावः- महिमा, **महत्त्वम्, महत्ता** आदि बनाये जा सकते हैं।

१७८७. वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ्च ५।१।१२३॥

चादिमनिच्। शौक्ल्यम्, शुक्लिमा। दार्ढ्यम्।
'पृथुमृदुभृशकृशदृढपरिवृढानामेव रत्वम्' (वा.४२११)।
द्रढिमा। षो ङीषर्थः। औचिती। याथाकामी।

वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ्च। दृढ आदिर्येषां ते दृढादयः। वर्णाश्च दृढादयश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो वर्णदृढादयस्तेभ्यः। वर्णदृढादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, ष्यञ् प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, त्रिपदं सूत्रम्। **तस्य भावस्त्वतलौ** से **तस्य भावः** की अनुवृत्ति आती है और

सूत्र में पठित **च** से पिछले सूत्र **पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा** के इमनिच् का ग्रहण हो जाता है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है ही।

वर्ण अर्थात् रंगवाचक एवं दृढादिगणपठित षष्ठ्यन्तप्रातिपदिकों से भाव अर्थ में ष्यञ् प्रत्यय होता है और इमनिच् प्रत्यय भी होता है।

षकार की **षः प्रत्ययस्य** सूत्र से इत्संज्ञा होती है। हलन्त्यम् से अकार इत्संज्ञक है। **य** बचता है। ञित्करण आदिवृद्धि और स्वर के लिये है। षित् होने से स्त्रीत्व की विवक्षा में **षिद्गौरादिभ्यश्च** से ङीष् होता है। **ञित्** का फल **आदिवृद्धि** है।

शौक्ल्यम्। शुक्लिमा। सफेद का भाव, सफेदी। **शुक्लस्य भावः।** यह **वर्णवाचक** है। **शुक्ल+ङस्** में **वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च** से **ष्यञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **शुक्ल+य** बना। ञित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करके **शौक्ल+य** बना। **यस्येति च** से भसंज्ञक अकार के लोप के बाद **शौक्ल्+य= शौक्ल्य** बना। अब स्वादिकार्य करके **शौक्ल्यम्** सिद्ध हुआ। **इमनिच्** प्रत्यय होने के पक्ष में **शुक्ल+इमन्** बना है। **टेः** से टिसंज्ञक **अकार** का लोप करने पर **शुक्लिमन्** बना। इससे **राजन्** शब्द की तरह **शुक्लिमा, शुक्लिमानौ, शुक्लिमानः** आदि रूप बना सकते हैं। **आ च त्वात्** के अधिकार के कारण **त्व, तल्** प्रत्यय भी होंगे। **त्व** के योग में **शुक्लत्वम्** और **तल्** के योग में **शुक्लता** भी बन जाते हैं।

इसी तरह **कृष्णस्य भावः- काष्ण्यम्, कृष्णिमा, कृष्णत्वम्, कृष्णता** आदि सभी वर्णवाचक शब्दों से ये प्रत्यय किये जा सकते हैं।

पृथुमृदुभृशकृशदृढपरिवृढानामेव रत्वम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- पृथु, मृदु, भृश, कृश, दृढ और परिवृढ के ऋकार को ही र आदेश होता है, अन्य पृथ्वादि शब्दों को नहीं होता। यह वार्तिक नियमार्थ है। रभावी शब्दों का परिगणन किया गया है।

दार्ढ्यम्, द्रढिमा। दृढ़ता का भाव, दृढ़भाव, दृढ़पन। **दृढस्य भावः।** यह **दृढादिगणपठित शब्द** है। **दृढ ङस्** में **वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च** से **ष्यञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **दृढ+य** बना। ञित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि करके **दार्ढ+य** बना। **यस्येति च** से भसंज्ञक अकार का लोप के बाद **दार्ढ्+य= दार्ढ्य** बना। अब स्वादिकार्य करके **दार्ढ्यम्** सिद्ध हुआ। **इमनिच्** प्रत्यय होने के पक्ष में **दृढ+इमन्** बना है। **र ऋतो हलादेर्लघोः** से **दृढ** के **ऋकार** के स्थान पर **र** आदेश होकर **द्रढ+इमन्** बना। **टेः** से टिसंज्ञक **अकार** का लोप करने पर **द्रढिमन्** बना। इससे **राजन्** शब्द की तरह **द्रढिमा, द्रढिमानौ, द्रढिमानः** आदि रूप बना सकते हैं। **आ च त्वात्** के अधिकार के कारण **त्व, तल्** प्रत्यय भी होंगे। अतः **त्व** के योग में **दृढत्वम्** और **तल्** के योग में **दृढता** भी बन जाते हैं। इसी तरह **दृढादिगणपठित** सभी शब्दों से उक्त प्रत्यय करके प्रयोग बनाये जा सकते हैं।

षो ङीषर्थः। प्रकृतसूत्र से विधीयमान **ष्यञ्** में षित्करण स्त्रीत्वविवक्षा में **षिद्गौरादिभ्यश्च** सूत्र के द्वारा ङीष्-प्रत्यय के विधानार्थ है।

औचिती। उचितता, उपयुक्तता। **उचितस्य भावः** विग्रह करके **उचित+ङस्** में **वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च** से **ष्यञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करके **औचित्य** शब्द बना है। षित्त्वात् **षिद्गौरादिभ्यश्च** सूत्र के द्वारा ङीष् होने पर अकार का **यस्येति च** से लोप होता है और यकार का **हलस्तद्धितस्य** से लोप होकर **औचिती** शब्द बन जाता है। स्वादिकार्य करके **औचिती** सिद्ध हो जाता है।

याथाकामी। इच्छानुसार। **यथाकामम् एव** विग्रह करके **यथाकाम+सु** से **चतुर्वर्णादीनां स्वार्थ उपसंख्यानम्** वार्तिक के द्वारा ष्यञ्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करके **याथाकाम्य** शब्द बना है। षित्त्वात् **षिद्गौरादिभ्यश्च** सूत्र के द्वारा ङीष् होने पर अकार का **यस्येति च** से लोप होता है और यकार का **हलस्तद्धितस्य** से लोप होकर **याथाकामी** शब्द बन जाता है। स्वादिकार्य करके **याथाकामी** सिद्ध हो जाता है।

दृढादिगणः- दृढ, वृढ, परिवृढ, भृश, कृश, वक्र, शुक्र, चुक्र, आम्र, कष्ट, लवण, ताम्र, शीत, उष्ण, जड, बधिर, पण्डित, मधुर, मूर्ख, मूक, स्थिर। वेर्यातलातमतिमनःशारदानाम्। समो मतिमनसोः। जवन।

१७८८. गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च ५।१।१२४॥

चाद्भावे। जडस्य कर्म भावो वा जाड्यम्।

मूढस्य भावः कर्म वा मौढ्यम्। ब्राह्मण्यम्।

'अर्हतो नुम् च' (वा.३०९२) अर्हतो भावः कर्म वा आर्हन्त्यम्, आर्हन्ती।

ब्राह्मणादिराकृतिगणः।

गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च। गुणम् उक्तवन्तः इति गुणवचनाः। ब्राह्मणः आदिर्येषां ते ब्राह्मणादयः। गुणवचनाश्च ब्राह्मणादयश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो गुणवचनब्राह्मणादयस्तेभ्यः। गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, कर्मणि सप्तम्यन्तं, चाव्ययपदं त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तस्य भावस्त्वतलौ** से **तस्य, भावः** तथा **वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च** से **ष्यञ्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है ही।

षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक गुणवाचक शब्द या ब्राह्मणादिगणपठित शब्दों से भाव और कर्म अर्थ में ष्यञ् प्रत्यय होता है।

षकार की **षः प्रत्ययस्य** से इत्संज्ञा होती है तो ञकार **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञक है। य शेष रहता है। ञित् होने के कारण आदिवृद्धि भी होती है। इसके पहले के सूत्रों

से भाव अर्थ में ही प्रत्यय हो रहे थे तो इसमें कर्म अर्थ भी जुड़ गया है। ब्राह्मणादि आकृतिगण है।

कर्म पद से **कार्य** एवं **क्रिया** दोनों का बोध होता है। शरीर-आयास से साध्य नित्य कार्यों को क्रिया कहा जाता है और शास्त्र-विहित यागादि की कर्म-संज्ञा है। शोतोष्णादि का जिनसे बोध हो, उसे **गुणवचन** कहा जाता है।

जाड्यम्। जड़ता का भाव या जड़ का कर्म। जडस्य भावः कर्म वा लौकिक विग्रह और **जड ङस्** अलौकिक विग्रह है। **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** से ष्यञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **जड+य** बना। आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होने पर **जाड्+य=जाड्य** बना। सु, अम् और पूर्वरूप करके **जाड्यम्** सिद्ध हुआ।

मौढ्यम्। मूढ़ होने का भाव या मूढ़ का कर्म, मूढ़पन। **मूढस्य भावः कर्म वा** लौकिक विग्रह और **मूढ ङस्** अलौकिक विग्रह है। **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** से ष्यञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **मूढ+य** बना। आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होने पर **मौढ्+य=मौढ्य** बना। सु, अम् और पूर्वरूप करके **मौढ्यम्** सिद्ध हुआ।

ब्राह्मण्यम्। ब्राह्मण का भाव या कर्म। **ब्राह्मणस्य भावः कर्म वा** लौकिक विग्रह और **ब्राह्मण ङस्** अलौकिक विग्रह है। **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** से ष्यञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **ब्राह्मण+य** बना। आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होने पर **ब्राह्मण्+य=ब्राह्मण्य** बना। सु, अम् और पूर्वरूप करके **ब्राह्मण्यम्** सिद्ध हुआ।

इसी तरह **चोरस्य भावः कर्म वा चौर्यम्, निपुणस्य भावः कर्म वा नैपुण्यम्, दीनस्य भावः कर्म वा दैन्यम्, चपलस्य भावः कर्म वा चापल्यम्, विषमस्य भावः कर्म वा वैषम्यम्** आदि बनाये जा सकते हैं।

अर्हतो नुम् च। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- अर्हत्-शब्द को ष्यञ् के संनियोग में नुम् आगम भी होता है।

अर्हतो भावः कर्म वा आर्हन्त्यम्, आर्हन्ती। पूजनीय का स्वभाव या कर्म। **अर्हतो भावः कर्म वा** विग्रह करके **अर्हत्+ङस्** इस स्थिति में **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** से ष्यञ् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और आदिवृद्धि करके **आर्हत्+य** बना है। **अर्हतो नुम् च** वार्तिक से नुम् आगम, अनुबन्धलोप, **मिदचोऽन्त्यात्परः** के नियम से अन्त्य अच् हकार से परवर्ती अकार के बाद स्थिति, नकार को अनुस्वार और उसको परसवर्ण होकर **आर्हन्त्य** शब्द बना है। स्वादिकार्य से **आर्हन्त्यम्** सिद्ध हो जाता है। स्त्रीत्वविवक्षा में ङीष्, अकारलोप, यलोप होकर **आर्हन्ती** सिद्ध होता है।

ब्राह्मणादिराकृतिगणः। यह ब्राह्मणादि आकृतिगण है अर्थात् कुछ शब्द उदाहरण के तौर पर पढ़े गये हैं किन्तु जो भी ष्यञन्त शब्द अन्य सूत्रों से सिद्ध नहीं होते, उन्हें ब्राह्मणादिगण में मानना चाहिये।

ब्राह्मणादिगणः- ब्राह्मण, वाडव, माणव। **अर्हतो नुम् च**। चोर, धूर्त, आराधय, विराधय, अपराधय, उपराधय, एकभाव, द्विभाव, त्रिभाव, उन्यभाव, अक्षेत्रज्ञ, संवादिन्, संवेशिन्, संभाषिन्, बहुभाषिन्, शीर्षघातिन्, विघातिन्, समस्थ, विषमस्थ, परमस्थ, मध्यस्थ, अनीश्वर, कुशल, चपल, निपुण, पिशुन, कुतूहल, क्षेत्रज्ञ, विश्न, बालिश, अलस, दुःपुरुष, कापुरुष, राजन्, गणपति, अधिपति, गडुल, दायाद, विशस्ति, विषम, विपात, निपात। **सर्ववेदादिभ्यः स्वार्थे। चतुर्वेदस्योभयपदवृद्धिश्च**। शौटीर। **आकृतिगणोऽयम्**।

१७८९. यथातथायथापुरयोः पर्यायेण ७।३।३१॥

नञः परयोरेतयोः पूर्वोत्तरपदयोः पर्यायेणादेरचो वृद्धिर्ञिदादौ। अयथातथाभाव आयथातथ्यम्, अयाथातथ्यम्। आयथापुर्यम्, अयाथापुर्यम्। आपादसमाप्तेर्भावकर्माधिकारः।

'चतुर्वर्णादीनां स्वार्थ उपसंख्यानम्' (वा.३०९१)। चत्वारो वर्णाश्चातुर्वर्ण्यम्। चातुराश्रम्यम्। सर्वे वेदाः सर्ववेदास्तानधीते सर्ववेदः। 'सर्वादेः-'(वा.२७४८) इति लुक्। स एव सार्ववेद्यः।

'चतुर्वेदस्योभयपदवृद्धिश्च' (ग.सू.९३)। चतुरो वेदानधीते चतुर्वेदः। स एव चातुर्वैद्यः। चतुर्विद्यस्य इति पाठान्तरम्। चतुर्विद्य एव चातुर्वैद्यः।

यथातथायथापुरयोः पर्यायेण। यथातथा च यथापुरं च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो यथातथायथापुरे, तयोर्यथातथायथापुरयोः षष्ठ्यन्तं, पर्यायेण तृतीयान्तम्। **नञः शुचीश्वरक्षेत्रज्ञकुशलनिपुणानाम्** से **नञः** की, **तद्धितेष्वचामादेः, किति च, अचो ञ्णिति, वृद्धिः** आदि पदों की तथा **अर्धात् परिमाणस्य पूर्वस्य तु वा** से **पूर्वस्य** की अनुवृत्ति है और **उत्तरपदस्य, अङ्गस्य** का अधिकार है।

नञ् से परे यथातथा तथा यथापुर अङ्गों के पूर्वपद और उत्तरपद अचों में जो आदि अच्, उसकी पर्याय (बारी-बारी) से वृद्धि होती है, ञित्, णित् तथा कित् तद्धित के परे रहते।

पर्याय का तात्पर्य यह है कि एक बार **नञ्** वाले अकार की वृद्धि होगी और एक बार पद के आदि अच् की वृद्धि होगी।

अयथातथाभावः आयथातथ्यम्, अयाथातथ्यम्। ठीक-ठीक से न होना या न रहना। **अयथातथा** में नञ्-समास हुआ है। **अयथातथाभावः** विग्रह करके **अयथातथा**

इस अव्ययसंघात से **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** सूत्र से ष्यञ् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप होकर **अयथातथा+य** बना। **यथातथायथापुरयोः पर्यायेण** सूत्र से पर्याय से पूर्वपद और उत्तरपद के अचों में आदि अच् की वृद्धि होने के बाद भसंज्ञक आकार का लोप होकर **आयथातथ्य** और **अयाथातथ्य** शब्द बने हैं। स्वादिकार्य होकर **आयथातथ्यम्** और **अयाथातथ्यम्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

आयथापुर्यम्, अयाथापुर्यम्। अयथापुर का भाव। अयथापुर में नञ्-समास हुआ है। **अयथापुरस्य भावः** विग्रह करके **अयथापुर+ङस्** इस स्थिति में **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** सूत्र से ष्यञ् प्रत्यय होने पर **यथातथायथापुरयोः पर्यायेण** सूत्र से पर्याय से पूर्वपद और उत्तरपद के अचों में आदि अच् की वृद्धि होने के बाद भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आयथापुर्य** और **अयाथापुर्य** शब्द बने हैं। स्वादिकार्य होकर **आयथापुर्यम्** और **अयाथापुर्यम्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

आपादसमाप्तेर्भावकर्माधिकारः। अर्थात् **तस्य भावस्त्वतलौ** के **भावः** और **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** सूत्र के **कर्मणि (भावकर्मणोः)** का अधिकार पञ्चमाध्याय के प्रथमपाद की समाप्ति पर्यन्त है। इस सम्बन्ध में प्राचीन वृत्तिकारों का व्याख्यान ही प्रमाण है।

प्रासंगिक वृद्धि को बतलाने के बाद अब प्राकरणिक ष्यञ्विधायक सूत्र **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** से सम्बन्धित कुछ वार्तिकों और गणसूत्रों का उल्लेख किया जा रहा है।

चतुर्वर्णादीनां स्वार्थ उपसंख्यानम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- चतुर्वर्ण आदि गणपठित प्रातिपदिकों से स्वार्थ में ष्यञ्-प्रत्यय का विधान होना चाहिये। किसी अर्थ-विशेष के बिना ही विहित प्रत्यय स्वार्थ में होते हैं और इन्हें स्वार्थिक कहते हैं।

चत्वारो वर्णाश्चातुर्वर्ण्यम्। चार वर्ण। **चत्वारो वर्णा एव** विग्रह करके पहले **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** सूत्र से समासादि होने के बाद **चतुर्वर्ण** इस स्थिति में **चतुर्वर्णादीनां स्वार्थ उपसंख्यानम्** वार्तिक के द्वारा ष्यञ् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और आदिवृद्धि होकर **चातुर्वर्ण्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **चातुर्वर्ण्यम्** सिद्ध हो जाता है।

चातुराश्रम्यम्। चार आश्रम। **चत्वार आश्रमा एव** विग्रह करके समासादि होने के बाद **चतुराश्रम** बनता है। **चतुर्वर्णादीनां स्वार्थ उपसंख्यानम्** वार्तिक के द्वारा ष्यञ्, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **चातुराश्रम्य** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **चातुराश्रम्यम्** सिद्ध हो जाता है।

इसी तरह चतुर्वर्णादिगणपठित शब्दों से ष्यञ्-प्रत्यय, आदिवृद्धि और अकारलोप करके रूप बना लेने चाहिये। जैसे कि-

त्रयो लोका एव त्रैलोक्यम्। तीनों लोक।

त्रयः स्वरा एव त्रैस्वर्यम्। तीनो स्वर।

षड् गुणा एव षाड्गुण्यम्। छहों गुण।
सेना एव सैन्यम्। सेना।
अनन्तरमेव आनन्तर्यम्। समीपवर्ती।
सन्निधिरेव सान्निध्यम्। समीप।
समीपम् एव सामीप्यम्। समीप।
उपमा एव औपम्यम्। उपमा।
सुखम् एव सौख्यम्। सुख।
तदर्थमेव तादर्थ्यम्। उसके लिये।
इतिह एव ऐतिह्यम्। इतिहास।
मणिक एव माणिक्यम्। मणि।

चतुर्वर्णादिगणः- चतुर्वर्ण, चतुराश्रम, सर्वविद्य, त्रिलोक, त्रिस्वर, षड्गुण, सेना, अनन्तर, सन्निधि, समीप, उपमा, सुख, तदर्थ, इतिह, मणिक।

सर्वे वेदाः सर्ववेदास्तानधीते सर्ववेदः। 'सर्वादेः-' इति लुक्। स एव सार्ववेद्यः। सभी वेदों को पढ़ने वाला। **सर्वे वेदाः** विग्रह करके **पूर्वकालैकसर्व-जरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन** सूत्र से समास करके **सर्ववेदाः** पद बनता है। इसके बाद **सर्ववेदान् अधीते** विग्रह करके **सर्ववेद+शस्** इस स्थिति में **तदधीते तद्वेद** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर उसका **सर्वादेर्द्विगोश्च** वार्तिक से लुक् होकर **सर्ववेद** ही बनता है। इसके बाद ब्राह्मणादिगण में पठित **सर्ववेदादिभ्यः स्वार्थे** इस गणसूत्र से स्वार्थ में **ष्यञ्** प्रत्यय हो जाता है और आदिवृद्धि तथा भसंज्ञक अकार का लोप होकर **सार्ववेद्य** शब्द बन जाता है। स्वादिकार्य से **सार्ववेद्यः** सिद्ध हो जाता है।

चतुर्वेदस्योभयपदवृद्धिश्च। यह ब्राह्मणादिगण में पठित गणसूत्र है। सूत्रार्थः- चतुर्वेद-शब्द से ष्यञ्-प्रत्यय होने पर उभयपद के आदि अच् की वृद्धि होती है।

चतुरो वेदानधीते चतुर्वेदः। स एव चातुर्वैद्यः। चारों वेदों को पढ़ने वाला। **चत्वारो वेदाः** विग्रह करके द्विगुसमास करके **चतुर्वेद** शब्द बनता है। इसके बाद **चतुर्वेदान् अधीते** विग्रह करके **चतुर्वेद+शस्** इस स्थिति में **तदधीते तद्वेद** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर उसका **द्विगोर्लुगनपत्ये** सूत्र से लुक् होकर **चतुर्वेद** ही बनता है। इसके बाद ब्राह्मणादिगण में पठित **चतुर्वेदस्योभयपदवृद्धिश्च** इस गणसूत्र से स्वार्थ में **ष्यञ्** प्रत्यय के परे रहते उभयपदवृद्धि होती है। पूर्वपद **चतुर्** और उत्तरपद **वेद** है। वृद्धि होने पर **चातुर्वैद+य** बना है। भसंज्ञक अकार का लोप होकर **चातुर्वैद्य** शब्द बन जाता है। स्वादिकार्य से **चातुर्वैद्यः** सिद्ध हो जाता है।

चतुर्विद्यस्य इति पाठान्तरम्। चतुर्विद्य एव चातुर्वैद्यः। प्रकृत गणसूत्र का **चतुर्विद्यस्य** ऐसा पाठान्तर मिलता है। तदनुसार भी **चतुर्विद्य एव** विग्रह करके उभयपदवृद्धि करने पर **चातुर्वैद्यः** ही बनता है। इसका अर्थ होगा- चारों विद्याओं का अध्येता। यहाँ **चतस्रः विद्याः अधीते** विग्रह करके तद्धितार्थ में द्विगुसमास, उपसर्जन को ह्रस्व करके

चतुर्विद्य शब्द बन जाता है। इसके बाद **विद्यालक्षणकल्पान्ताच्चेति वक्तव्यम्** वार्तिक के द्वारा **ठञ्** प्रत्यय होने पर उसका **द्विगोर्लुगनपत्ये** सूत्र से लुक् होकर पुनः **चतुर्विद्य** ही बनता है। इसके बाद ब्राह्मणादिगण में पठित **चतुर्वेदस्योभयपदवृद्धिश्च** का पाठभेद **चतुर्विद्यस्य** मानकर स्वार्थ में **ष्यञ्** प्रत्यय और उभयपदवृद्धि तथा भसंज्ञक अकार का लोप होकर **चातुर्वैद्य** शब्द बन जाता है। स्वादिकार्य से **चातुर्वैद्यः** सिद्ध हो जाता है।

१७९०. स्तेनाद्यन्नलोपश्च ५।१।१२५॥

'न' इति सङ्घातग्रहणम्। 'स्तेन चौर्ये' पचाद्यच्।
स्तेनस्य भावः कर्म वा स्तेयम्।
'स्तेनात्' इति योगं विभज्य स्तैन्यमिति ष्यञन्तमपि केचिदिच्छन्ति।

स्तेनाद्यन्नलोपश्च। नस्य लोपो नलोपः, षष्ठीतत्पुरुषः। स्तेनात् पञ्चम्यन्तं, यत् प्रथमान्तं, नलोपः प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **तस्य भावस्त्वतलौ** से **तस्य, भावः** तथा **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** ये **कर्मणि** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है ही।

षष्ठ्यन्त स्तेन इस प्रातिपदिक से भाव और कर्म अर्थ में यत्-प्रत्यय होता है और प्रकृति के न-शब्द का लोप भी।

'न' इति सङ्घातग्रहणम्। सूत्रस्थ **नलोपः** के **न** शब्द में अकार उच्चारणार्थ नहीं है अपितु **न्+अ=न** है। उक्त दो वर्णों के संघात=समूह का ग्रहण है अर्थात् **न** इस समूह का ही लोप किया जाता है।

'स्तेन चौर्ये' पचाद्यच्। यहाँ **स्तेन** शब्द की निष्पत्ति बताते हुये मूलकार कहते हैं कि **स्तेन चौर्ये** धातु से **नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः** सूत्र से अच् प्रत्यय होकर **स्तेन** शब्द बना है। इसका अर्थ है- चोर।

स्तेनस्य भावः कर्म वा स्तेयम्। चोर का भाव या कर्म। **स्तेनस्य भावः कर्म वा** विग्रह करके **स्तेन+ङस्** इस स्थिति में **स्तेनाद्यन्नलोपश्च** सूत्र से यत्-प्रत्यय के साथ **न** का लोप करके **स्तेय** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **स्तेयम्** सिद्ध हो जाता है।

'स्तेनात्' इति योगं विभज्य स्तैन्यमिति ष्यञन्तमपि केचिदिच्छन्ति। कुछ वृत्तिकार **स्तेनाद्यन्नलोपश्च** सूत्र का योगविभाग चाहते हैं। उनके अनुसार **स्तेनात्** एक सूत्र और **यन्नलोपश्च** एक सूत्र है। ऐसा करने पर पूर्वभाग **स्तेनात्** में पूर्वसूत्र से **ष्यञ्** की अनुवृत्ति करके उसका अर्थ करते हैं- **स्तेन**-शब्द से भाव और कर्म अर्थ में ष्यञ् प्रत्यय होता है। इस तरह **स्तेनस्य भावः कर्म वा** विग्रह करके **स्तेन+ङस्** में ष्यञ् करने पर आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करके **स्तैन्य** और स्वादिकार्य से **स्तैन्यम्** की सिद्धि चाहते हैं। ऐसा करने से **स्तैन्यम्, स्तेयम्** ये दो रूप बन जाते हैं।

१७९१. सख्युर्यः ५।१।१२६॥

सख्युर्भावः कर्म वा सख्यम्। 'दूतवणिग्भ्यां च'। दूतस्य भावः कर्म वा दूत्यम्। 'वणिज्यम्' इति काशिका। माधवस्तु 'वणिज्याशब्दः स्वभावात् स्त्रीलिङ्गः। भाव एव चात्र प्रत्ययो न तु कर्मणि' इत्याह। भाष्ये तु 'दूतवणिग्भ्यां च' इति नास्त्येव। ब्राह्मणादित्वाद् वाणिज्यमपि।

सख्युर्यः। सख्युः पञ्चम्यन्तं, यः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तस्य भावस्त्वतलौ** से **तस्य, भावः** तथा **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** से **कर्मणि** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है ही।

षष्ठ्यन्त 'सखि' इस प्रातिपदिक से भाव और कर्म अर्थ में य प्रत्यय होता है।

सख्यम्। मित्रभाव, मैत्री, मित्रता या मित्र का कर्म। **सख्युर्भावः कर्म वा** विग्रह करके **सखि+ङस्** इस स्थिति में **सख्युर्यः** सूत्र से **य**-प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **सखि+य** बना है। भसंज्ञक इकार का लोप होने पर **सख्+य=सख्य** बन जाता है। स्वादिकार्य से **सख्यम्** सिद्ध हो जाता है।

'दूतवणिग्भ्यां च'। दूतस्य भावः कर्म वा दूत्यम्। 'वणिज्यम्' इति काशिका। काशिकाकार ने प्रकृतसूत्र में **दूतवणिग्भ्यां चेति वक्तव्यम्** इस वार्तिक का पाठ किया है। तदनुसार वार्तिक का अर्थ होगा- दूत और वणिज् शब्दों से भाव और कर्म अर्थ में य-प्रत्यय होता है। फलतः **दूतस्य भावः कर्म वा** (दूत का भाव या कर्म) विग्रह करके **दूत+ङस्** इस स्थिति में उक्त वार्तिक से य-प्रत्यय करने पर भसंज्ञक अकार का लोप करके **दूत्य** शब्द बनता है और स्वादिकार्य से **दूत्यम्** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **वणिजः भावः कर्म वा** (बनिये का भाव या कर्म) **वणिज्+ङस्** इस स्थिति में उक्त वार्तिक से य-प्रत्यय करने पर **वणिज्य** शब्द बनता है और स्वादिकार्य से **वणिज्यम्** सिद्ध हो जाता है। यह हुयी काशिका की बात।

माधवस्तु 'वणिज्याशब्दः स्वभावात् स्त्रीलिङ्गः। भाव एव चात्र प्रत्ययो न तु कर्मणि' इत्याह। व्याख्याकार आचार्य माधव ने **वणिज्या** शब्द को स्वाभाविक रूप से स्त्रीलिंग माना है। उनके अनुसार **वणिज्यम्** नहीं बनता। उनके मतानुसार **वणिज्** शब्द से भावार्थ में ही प्रत्यय होता है, कर्म अर्थ में नहीं होता।

भाष्ये तु 'दूतवणिग्भ्यां च' इति नास्त्येव। मूलकार बता रहे हैं कि महाभाष्य में **दूतवणिग्भ्यां च** यह वार्तिक है ही नहीं।

ब्राह्मणादित्वाद्वाणिज्यमपि। अर्थात् **वणिज्**-शब्द का पाठ ब्राह्मणादिगण में है। अतः **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** सूत्र के द्वारा ष्यञ्-प्रत्यय होकर **वाणिज्य** शब्द भी बनता है।

१७९२. कपिज्ञात्योर्ढक् ५।१।१२७॥

कापेयम्। ज्ञातेयम्।

कपिज्ञात्योर्ढक्। कपिश्च ज्ञातिश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः कपिज्ञाती, तयोः। कपिज्ञात्योः पञ्चम्यर्थे षष्ठी। ढक् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तस्य भावस्त्वतलौ** से **तस्य भावः, गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** से **कर्मणि** की अनुवृत्ति और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

षष्ठ्यन्त कपि और ज्ञाति प्रातिपदिकों से ढक् प्रत्यय होता है।

ककार की इत्संज्ञा होने से आदिवृद्धि होती है। ढ में केवल ढ् के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **एय्** आदेश होकर **एय** बन जाता है।

कापेयम्। कपि=बन्दर का भाव या बन्दर का कर्म। **कपेर्भावः कर्म वा। कपि ङस्** में **कपिज्ञात्योर्ढक्** से **ढक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुब्लुक् करके ढकार के स्थान पर एय् आदेश होकर **कपि+एय** बना है। कित् होने के कारण **किति च** से आदिवृद्धि करके **कापि+एय** बना। भसंज्ञक इकार का **यस्येति च** से लोप करके **कापेय** बन गया है। इससे स्वादिकार्य करने पर **कापेयम्** सिद्ध हो जाता है।

ज्ञातेयम्। ज्ञाति अर्थात् बन्धु का भाव या बन्धु का कर्म। **ज्ञातेर्भावः कर्म वा। ज्ञाति+ङस्** में **कपिज्ञात्योर्ढक्** से **ढक्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् लुक् करके ढकार के स्थान पर एय् आदेश होकर **ज्ञाति+एय** बना है। कित् होने के कारण **पर्जन्यवल्लक्षणप्रवृत्तिः** इस न्याय से वृद्धिवर्ण के स्थान पर भी **किति च** से आदिवृद्धि करके **ज्ञाति+एय** बना। भसंज्ञक इकार का **यस्येति च** से लोप करके **ज्ञातेय** बन गया है। इससे स्वादिकार्य करने पर **ज्ञातेयम्** सिद्ध हो जाता है।

१७९३. पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक् ५।१।१२८॥

सैनापत्यम्। पौरोहित्यम्।

'राजासे' (ग.सू.१०६)। राजन्-शब्दोऽसमासे यकं लभत इत्यर्थः।
राज्ञो भावः कर्म वा राज्यम्। समासे तु ब्राह्मणादित्वात् ष्यञ्, आधिराज्यम्।

पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्। पतिरन्ते यस्य स पत्यन्तः, बहुव्रीहिः। पुरोहित आदिर्येषां ते पुरोहितादयः, बहुव्रीहिः। पत्यन्तश्च पुरोहितादयश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः पत्यन्तपुरोहितादयस्तेभ्यः पत्यन्तपुरोहितादिभ्यः, पञ्चम्यन्तं, यक् प्रथमान्तम्। **तस्य भावस्त्वतलौ** से **तस्य भावः** की और **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** से **कर्मणि** की अनुवृत्ति आती है साथ ही **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

षष्ठी-समर्थ पति-शब्दान्त और पुरोहितादि गणपठित प्रातिपदिकों से भाव और कर्म अर्थ में यत् प्रत्यय होता है।

कित्करण आदिवृद्धि के लिये है।

सैनापत्यम्। सेनापति का कर्म या स्वभाव। **सेनापतेर्भावः कर्म वा** विग्रह करके **सेनापति+ङस्** इस स्थिति में **पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्** सूत्र के द्वारा यक्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक इकार का लोप होकर **सैनापत्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सैनापत्यम्** सिद्ध हो जाता है। यह पत्यन्त-शब्द का उदाहरण है।

पौरोहित्यम्। पुरोहित का कर्म या स्वभाव। **पुरोहितस्य भावः कर्म वा** विग्रह करके **पुरोहित+ङस्** इस स्थिति में **पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्** सूत्र के द्वारा यक्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पौरोहित्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पौरोहित्यम्** सिद्ध हो जाता है। यह पुरोहितादि-शब्द का उदाहरण है।

पुरोहितादिगणः- पुरोहित। **राजासे।** ग्रामिक, पिण्डिक, सुचित, बालमन्द, (बाल मन्द), खण्डिक, दण्डिक, वर्मिक, धर्मिक, शीलिक, सूतिक, मूलिक, तिलक, अञ्जलिक, (अञ्जनिक), रूपिक, ऋषिक, पुत्रिक, अविक, छत्रिक, पर्थिक, पथिक, पर्मिक, प्रतीक, तिलक, सारथि, आस्तिक, सूचिक, संरक्ष, सूचक (संरक्षसूचक), नास्तिक, अजानिक; शाक्वर, नागर, चूडिक।

राजासे। यह पुरोहितादिगणान्तर्गत का गणसूत्र है। सूत्रार्थः- असे=समास से भिन्न स्थलों पर भाव और कर्म अर्थ में राजन्-शब्द से भी यत्-प्रत्यय होता है।

राजन्-शब्दोऽसमासे यकं लभत इत्यर्थः। मूलकार ने गणसूत्र का अर्थ मूल में ही दिया है। राजन्-शब्द असमास में यक्-प्रत्यय के योग्य होता है, यह अर्थ है।

राज्ञो भावः कर्म वा राज्यम्। राजा का स्वभाव या कर्म। **राज्ञः भावः कर्म वा** विग्रह करके **राजन्+ङस्** इस स्थिति में **राजासे** गणसूत्र के द्वारा यक्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **राजन्+य** बना है। **नस्तद्धिते** सूत्र के द्वारा टिसंज्ञक भाग **अन्** का लोप होकर **राज्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **राज्यम्** सिद्ध हो जाता है।

समासे तु ब्राह्मणादित्वात् ष्यञ्, आधिराज्यम्। राजन्-शब्द का किसी शब्द के साथ समास होने पर तो यत्-प्रत्यय नहीं होता, किन्तु उसका ब्राह्मणादिगण में पाठ मानकर **ष्यञ्** प्रत्यय होता है। जैसे कि **अधिकः राजा** विग्रह करके **अधि+राजन्+सु** में **कुगतिप्रादयः** सूत्र से समासादि हो जाता है और **राजाहःसखिभ्यष्टच्** सूत्र से समासान्त टच् प्रत्यय एवं **नस्तद्धिते** सूत्र से टिलोप होकर **अधिराज** शब्द बनता है। इसके बाद **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** से **ष्यञ्** होने पर आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करके **आधिराज्यम्** सिद्ध हो जाता है।

यद्यपि ष्यञ् और यक् प्रत्ययों के होने पर रूप में कोई अन्तर नहीं है तथापि स्वरभेद अवश्य होता है।

१७९४. प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्योऽञ् ५।१।१२९॥

प्राणभृज्जाति- आश्वम्। औष्ट्रम्। वयोवचन- कौमारम्, कैशोरम्। औद्गात्रम्। औन्नेत्रम्। सौष्ठवम्। दौष्ठवम्।

प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्योऽञ्। प्राणभृतां जातिः प्राणभृज्जातिः, षष्ठीतत्पुरुषः। वयसो वचनं वयोवचनं, षष्ठीतत्पुरुषः। उद्गातृ-शब्द आदिर्येषां ते उद्गात्रादयः, बहुव्रीहिः। प्राणभृज्जातिश्च वयोवचनं च उद्गात्रादयश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादयस्तेभ्यः प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्यः, पञ्चम्यन्तम्, अञ् प्रथमान्तम्। **तस्य भावस्त्वतलौ** से **तस्य भावः** की और **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** से **कर्मणि** की अनुवृत्ति आती है साथ ही **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

षष्ठी-समर्थ प्राणभृज्जाति=प्राणधारी (जीवधारी) जातिवाचक प्रातिपदिकों से, वयोवचन=अवस्थावाची प्रातिपदिकों से तथा उद्गात्रादि प्रातिपदिकों से भाव और कर्म अर्थ में अञ्-प्रत्यय होता है।

प्राणभृज्जाति। प्राणधारी जातिवाचक शब्दों के उदाहरण दिये जा रहे हैं-

आश्वम्। घोड़े का स्वभाव या कर्म। **अश्वस्य भावः कर्म वा** विग्रह करके **अश्व+ङस्** इस स्थिति में **प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्योऽञ्** सूत्र के द्वारा अञ्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और अकारलोप होकर **आश्व** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आश्वम्** सिद्ध हो जाता है।

औष्ट्रम्। ऊँट का स्वभाव या कर्म। **ऊष्ट्रस्य भावः कर्म वा** विग्रह करके **ऊष्ट्र+ङस्** इस स्थिति में **प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्योऽञ्** सूत्र के द्वारा अञ्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और अकारलोप होकर **औष्ट्र** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **औष्ट्रम्** सिद्ध हो जाता है।

वयोवचन- अवस्थावाची शब्दों के उदाहरण दिये जा रहे हैं-

कौमारम्। कुमार का स्वभाव या कर्म। **कुमारस्य भावः कर्म वा** विग्रह करके **कुमार+ङस्** इस स्थिति में **प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्योऽञ्** सूत्र के द्वारा अञ्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और अकारलोप होकर **कौमार** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कौमारम्** सिद्ध हो जाता है।

कैशोरम्। किशोर का स्वभाव या कर्म। **किशोरस्य भावः कर्म वा** विग्रह करके **किशोर+ङस्** इस स्थिति में **प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्योऽञ्** सूत्र के द्वारा अञ्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और अकारलोप होकर **कैशोर** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कैशोरम्** सिद्ध हो जाता है।

अब उद्गात्रादिगणपठित शब्दों के उदाहरण दिये जा रहे हैं-

औद्गात्रम्। सामगान करने वाले का स्वभाव या कर्म। **उद्गातुः भावः कर्म वा** विग्रह करके **उद्गातृ+ङस्** इस स्थिति में **प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्योऽञ्** सूत्र के द्वारा अञ्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और ऋकार को यण् होकर **औद्गात्र** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **औद्गात्रम्** सिद्ध हो जाता है।

औन्नेत्रम्। सोमरस उड़लने वाले का स्वभाव या कर्म। **उन्नेतुः भावः कर्म वा** विग्रह करके **उन्नेतृ+ङस्** इस स्थिति में **प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्योऽञ्** सूत्र के द्वारा अञ्-प्रत्यय, आदिवृद्धि और ऋकार को यण् होकर **औन्नेत्र** तथा स्वादिकार्य होकर **औन्नेत्रम्** सिद्ध हो जाता है।

सौष्ठवम्। सुष्ठु का भाव, सज्जनता। **सुष्ठोः भावः** विग्रह करके **सुष्ठु+ङस्** इस स्थिति में **प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्योऽञ्** सूत्र के द्वारा अञ्-प्रत्यय, आदिवृद्धि और उकार को **ओर्गुणः** से गुण ओकार तथा उसको अवादेश होकर **सौष्ठव** एवं स्वादिकार्य होकर **सौष्ठवम्** सिद्ध हो जाता है।

दौष्ठवम्। दुष्ठु का भाव, दुर्जनता। **दुष्ठोः भावः** विग्रह करके **दुष्ठु+ङस्** इस स्थिति में **प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्योऽञ्** सूत्र के द्वारा अञ्-प्रत्यय, आदिवृद्धि और उकार को **ओर्गुणः** से गुण ओकार तथा उसको अवादेश होकर **दौष्ठव** एवं स्वादिकार्य होकर **दौष्ठवम्** सिद्ध हो जाता है।

उद्गात्रादिगणः- उद्गातृ, उन्नेतृ, प्रतिहर्तृ, प्रशास्तृ, होतृ, पोतृ, हर्तृ, रथगणक, पत्तिगणक, सुष्ठु, दुष्ठु, अध्वर्यु, वधू, सुभग, मन्त्र।

१७९५. हायनान्तयुवादिभ्योऽण् ५।१।१३०॥

द्वैहायनम्। त्रैहायनम्। यौवनम्। स्थाविरम्।

'श्रोत्रियस्य यलोपश्च' (वा.३०९३)। श्रौत्रम्। कुशलचपलनिपुणपिशुन-कुतूहलक्षेत्रज्ञायुवादिषु ब्राह्मणादिषु च पठ्यन्ते। कौशल्यम्, कौशलमित्यादि।

हायनान्तयुवादिभ्योऽण्। हायनम् अन्ते यस्य स हायनान्तः, बहुव्रीहिः। युवन् आदिर्येषां ते युवादयः, बहुव्रीहिः। हायनान्तश्च युवादयश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो हायनान्तयुवादयस्तेभ्यो हायनान्तयुवादिभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अण् प्रथमान्तम्। **तस्य भावस्त्वतलौ**

से **तस्य भावः** की और **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** से **कर्मणि** की अनुवृत्ति और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

षष्ठी-समर्थ हायन-शब्दान्त प्रातिपदिक और युवादि-गणपठित प्रातिपदिकों से भाव और कर्म अर्थ में अण्-प्रत्यय होता है।

यह वयोवचनवाची शब्दों से प्राप्त अञ् का अपवाद है। यद्यपि अञ् और अण् प्रत्ययों के समान ही रूप बनते हैं तथापि स्वरभेद रहता है।

द्वैहायनम्। दो वर्ष वाले का स्वभाव या कर्म। **द्विहायनस्य भावः कर्म वा** विग्रह करके **द्विहायन+ङस्** इस स्थिति में **हायनान्तयुवादिभ्योऽण्** सूत्र के द्वारा अण्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और अकारलोप होकर **द्वैहायन** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **द्वैहायनम्** सिद्ध हो जाता है।

त्रैहायनम्। तीन वर्ष वाले का स्वभाव या कर्म। **त्रिहायनस्य भावः कर्म वा** विग्रह करके **त्रिहायन+ङस्** इस स्थिति में **हायनान्तयुवादिभ्योऽण्** सूत्र के द्वारा अण्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और अकारलोप होकर **त्रैहायन** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **त्रैहायनम्** सिद्ध हो जाता है। ये दो हायनान्त-शब्द के उदाहरण हैं।

यौवनम्। युवा पुरुष का स्वभाव या कर्म। **यूनः भावः कर्म वा** विग्रह करके **युवन्+ङस्** इस स्थिति में **हायनान्तयुवादिभ्योऽण्** सूत्र के द्वारा अण्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और आदिवृद्धि होकर **यौवन्+अ** बना है। **नस्तद्धिते** सूत्र से प्राप्त टिलोप का **अन्** सूत्र के द्वारा प्रकृतिभाव से वारण होकर **यौवन** शब्द ही बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **यौवनम्** सिद्ध हो जाता है।

स्थाविरम्। वृद्ध का स्वभाव या कर्म। **स्थविरस्य भावः कर्म वा** विग्रह करके **स्थविर+ङस्** इस स्थिति में **हायनान्तयुवादिभ्योऽण्** सूत्र के द्वारा अण्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और अकारलोप होकर **स्थाविर** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **स्थाविरम्** सिद्ध हो जाता है।

श्रोत्रियस्य यलोपश्च। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- श्रोत्रिय-शब्द से अण् प्रत्यय होता है तथा प्रकृति में विद्यमान **य** का लोप भी होता है।

श्रौत्रम्। वेदाध्ययन किये हुये का स्वभाव या कर्म। **श्रोत्रियस्य भावः कर्म वा** विग्रह करके **श्रोत्रिय+ङस्** इस स्थिति में **श्रोत्रियस्य यलोपश्च** वार्तिक के द्वारा अण्-प्रत्यय के साथ प्रकृति के **य** का लोप होने पर **श्रोत्रि+अ** बना है। आदिवृद्धि और इकारलोप होकर **श्रौत्र** तथा स्वादिकार्य होकर **श्रौत्रम्** सिद्ध हो जाता है।

कुशलचपलनिपुणपिशुनकुतूहलक्षेत्रज्ञा युवादिषु ब्राह्मणादिषु च पठ्यन्ते। कौशल्यम्, कौशलमित्यादि। अर्थात् युवादिगण में पठित कुशल, चपल, निपुण, पिशुन, कुतूहल और क्षेत्रज्ञ शब्दों का ब्राह्मणादिगण में भी पाठ है। अतः युवादि में पाठ होने के कारण प्रकृत सूत्र से अण्-प्रत्यय और ब्राह्मणादिगण में पाठ होने के कारण **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** सूत्र से **ष्यञ्** प्रत्यय दोनों होते हैं। अतः **कुशलस्य भावः** विग्रह करके **कुशल+ङस्** इस स्थिति में **ष्यञ्** प्रत्यय होने के पक्ष में आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **कौशल्य** तथा अण्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और अकारलोप होकर **कौशल** शब्द बनते हैं। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कौशल्यम्** और **कौशलम्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

युवादिगणः- युवन्, स्थविर, होतृ, यजमान। **पुरुषासे।** भ्रातृ, कुतुक, श्रमण, (श्रवण), कटुक, कमण्डलु, कुस्त्री, सुस्त्री, दुःस्त्री, सुहृदय, दुर्हृदय, सुहृद्, दुर्हृद्, सुभ्रातृ, दुर्भ्रातृ, वृषल, परिव्राजक, सब्रह्मचारिन्, अनृशंस। **हृदयासे।** कुशल, चपल, निपुण, पिशुन, कुतूहल, क्षेत्रज्ञ। **श्रोत्रियस्य यलोपश्च।**

१७९६. इगन्ताच्च लघुपूर्वात् ५।१।१३१॥

शुचेर्भावः कर्म वा शौचम्। मौनम्।
कथं काव्यम्? कविशब्दस्य ब्राह्मणादित्वात् ष्यञ्।

इगन्ताच्च लघुपूर्वात्। इक् अन्तोऽन्त्यावयवो यस्य तद् इगन्तं, तस्मात्। लघुः पूर्वो यस्य तत् लघुपूर्वम्, तस्मात्। इगन्तात् पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, लघुपूर्वात् पञ्चम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **तस्य भावस्त्वतलौ** से **तस्य, भावः** तथा **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** से **कर्मणि** एवं **हायनान्तयुवादिभ्योऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

लघुवर्ण जिसके पूर्व में और इक् जिस के अन्त में हो ऐसे षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से भाव और कर्म अर्थों में तद्धितसंज्ञक अण् प्रत्यय होता है।

शुचेर्भावः कर्म वा शौचम्। पवित्रता का भाव या कर्म। **शुचेर्भावः कर्म वा** विग्रह करके **शुचि+ङस्** इस स्थिति में **शुचि**-शब्द के इगन्त (इकार) और लघुपूर्व (ह्रस्व उकार) होने के कारण **इगन्ताच्च लघुपूर्वात्** सूत्र के द्वारा **अण्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **शौच** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **शौचम्** सिद्ध हो जाता है।

मौनम्। मुनि का स्वभाव या कर्म। **मुनेर्भावः कर्म वा** विग्रह करके **मुनि+ङस्** इस स्थिति में **मुनि**-शब्द के इगन्त (इकार) और लघुपूर्व (ह्रस्व उकार) होने के कारण **इगन्ताच्च लघुपूर्वात्** सूत्र के द्वारा **अण्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **मौन** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **मौनम्** सिद्ध हो जाता है।

कथं काव्यम्? कविशब्दस्य ब्राह्मणादित्वात् ष्यञ्। यदि इगन्त लघुपूर्व प्रातिपदिक से अण्-प्रत्यय ही होता है तो **कवेः भावः कर्म वा** (कवि का भाव या कर्म) में क्यों नहीं अण् हुआ? इसका समाधान करते हुये मूलकार कहते हैं कि **कवि** शब्द का ब्राह्मणादिगण में विशेष पाठ होने के कारण अण् को बाधकर **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** सूत्र से ष्यञ् प्रत्यय हो जाता है और आदिवृद्धि तथा भसंज्ञक इकार का लोप होकर **काव्य** शब्द बनता है। स्वादिकार्य से **काव्यम्** सिद्ध हो जाता है। अण्-प्रत्यय होने पर तो **कावम्** ऐसा अनिष्ट रूप बनता। अत एव ब्राह्मणादिगण में कवि-शब्द के पाठ की सार्थकता होती है।

१७९७. योपधाद् गुरूपोत्तमाद् वुञ् ५।१।१३२॥

रामणीयकम्। आभिधानीयकम्।

'सहायाद्वा' (वा.३०९४)। साहाय्यम्, साहायकम्।

योपधाद् गुरूपोत्तमाद् वुञ्। यकार उपधा यस्य स योपधस्तस्माद् योपधात्, बहुव्रीहिः। उत्तमस्य समीपम् उपोत्तमम्, अव्ययीभावः। गुरु उपोत्तमं यस्य स गुरूपोत्तमः, तस्माद् गुरूपोत्तमाद्। योपधात् पञ्चम्यन्तं, गुरूपोत्तमात् पञ्चम्यन्तं, वुञ् प्रथमान्तम्। **तस्य भावस्त्वतलौ** से **तस्य, भावः** तथा **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** से **कर्मणि** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

यकार उपधा होते हुये गुरु-वर्ण उपोत्तम है जिसका, ऐसे षष्ठीसमर्थ प्रातिपदिक से भाव और कर्म अर्थों में तद्धितसंज्ञक वुञ् प्रत्यय होता है।

यहाँ **उत्तम** शब्द से तीन या तीन से अधिक वर्ण वाले शब्द का अन्तिम वर्ण गृहीत होता है और उसके समीपवर्ती (पूर्ववर्ती) वर्ण को **उपोत्तम** कहा जाता है। **गुरु** शब्द से **संयोगे गुरु** और **दीर्घं च** से विहित गुरुसंज्ञक वर्ण का ग्रहण होता है।

रामणीयकम्। सुन्दर व्यक्ति का स्वभाव या कर्म। **रमणीयस्य भावः कर्म वा** विग्रह है। यहाँ **रमणीय** शब्द में तीन से अधिक चार वर्ण हैं और अन्त्य वर्ण से समीपवर्ती **णी** गुरुसंज्ञक है साथ ही अन्त्य अल् अकार से पूर्ववर्ती वर्ण यकार उपधा है। अतः **रमणीय+ङस्** इस स्थिति में **योपधाद् गुरूपोत्तमाद्वुञ्** सूत्र से **वुञ्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, **वु** के स्थान पर **युवोरनाकौ** सूत्र से **अक** आदेश होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा

तथा सुप् का लुक् करके **रमणीय+अक** बना है। आदिवृद्धि तथा भसंज्ञक अकार का लोप करके **रामणीयक** एवं स्वादिकार्य से **रामणीयकम्** सिद्ध हो जाता है।

आभिधानीयकम्। संज्ञा, कोश या नाम का स्वभाव या कर्म। **अभिधानीयस्य भावः कर्म वा** विग्रह है। यहाँ **अभिधानीय** शब्द में तीन से अधिक चार वर्ण हैं और अन्त्य वर्ण से समीपवर्ती **नी** गुरुसंज्ञक है साथ ही अन्त्य अल् अकार से पूर्ववर्ती वर्ण यकार उपधा है। अतः **अभिधानीय+ङस्** इस स्थिति में **योपधाद् गुरूपोत्तमाद्वुञ्** सूत्र से **वुञ्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, **वु** के स्थान पर **युवोरनाकौ** सूत्र से **अक** आदेश होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा तथा सुप् का लुक् करके **अभिधानीय+अक** बना है। आदिवृद्धि तथा भसंज्ञक अकार का लोप करके **आभिधानीयक** एवं स्वादिकार्य से **आभिधानीयकम्** सिद्ध हो जाता है।

सहायाद्वा। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- सहाय-शब्द से भाव और कर्म अर्थ में विकल्प से वुञ् प्रत्यय होता है। वुञ् न होने के पक्ष में ष्यञ् होगा।

साहाय्यम्, साहायकम्। सहायता। **सहायस्य भावः कर्म वा** विग्रह करके **सहाय+ङस्** इस स्थिति में **सहायाद्वा** सूत्र से **वुञ्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, **वु** के स्थान पर **युवोरनाकौ** सूत्र से **अक** आदेश होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्,आदिवृद्धि तथा भसंज्ञक अकार का लोप करके **साहायक** शब्द बना है। ष्यञ् होने के पक्ष में भी आदिवृद्धि और अकारलोप होकर **साहाय्य** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **साहायकम्** और **साहाय्यम्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

१७९८. द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च ५।१।१३३॥
शैष्योपाध्यायिका। मानोज्ञकम्।

द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च। मनोज्ञ आदिर्येषां ते मनोज्ञादयः, बहुव्रीहिः। द्वन्द्वश्च मनोज्ञादयश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो द्वन्द्वमनोज्ञादयस्तेभ्यो द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **योपधाद् गुरूपोत्तमाद् वुञ्** से **वुञ्** की, **तस्य भावस्त्वतलौ** से **तस्य, भावः** तथा **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** से **कर्मणि** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

षष्ठी-समर्थ द्वन्द्वसमासयुक्त प्रातिपदिक और मनोज्ञादिगणपठित प्रातिपदिकों से भाव और कर्म अर्थों में तद्धितसंज्ञक वुञ् प्रत्यय होता है।

द्वन्द्व-शब्द से द्वन्द्वसमासयुक्त प्रातिपदिक का ग्रहण है।

शैष्योपाध्यायिका। शिष्य और उपाध्याय (गुरु) का स्वभाव या कर्म। **शिष्यश्च उपाध्यायश्च** विग्रह करके इतरेतरयोगद्वन्द्व करने पर **शिष्योपाध्यायौ** बनता है। **शिष्योपाध्याययोः भावः कर्म वा** विग्रह करके **शिष्योपाध्याय+ओस्** इस स्थिति में

द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च सूत्र के द्वारा **वुञ्** प्रत्यय होने पर अकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करके **शैष्योपाध्यायक** शब्द बना है। लोक में यह शब्द स्त्रीलिंग में प्रयुक्त हुआ है। अतः **अजाद्यतष्टाप्** सूत्र से टाप् प्रत्यय, अकार का लोप, **प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः** सूत्र से यकार-परवर्ती अकार को इत्त्व होकर **शैष्योपाध्यायिका** बनने के बाद स्वादिकार्य होता है। वैसे यह उदाहरण बहुत उचित नहीं है, क्योंकि यकारोपध होने के कारण **योपधाद् गुरूपोत्तमाद् वुञ्** सूत्र से ही वुञ् सिद्ध है। अतः **गोपालपशुपालिका** आदि उदाहरण उचित होते हैं।

मानोज्ञकम्। सुन्दर वस्तु का स्वभाव या कर्म। **मनोज्ञस्य भावः कर्म वा** विग्रह करके **मनोज्ञ+ङस्** इस स्थिति में **द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च** सूत्र के द्वारा **वुञ्** प्रत्यय होने पर अकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करके **मानोज्ञक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **मानोज्ञकम्** सिद्ध हो जाता है।

१७९९. गोत्रचरणाच्छ्लाघात्याकारतदवेतेषु ५।१।१३४॥

अत्याकारोऽधिक्षेपः। तदवेतः ते गोत्रचरणयोर्भावकर्मणी प्राप्तः अवगतवान् वा। गार्गिकया श्लाघते। गार्ग्यत्वेन विकत्थत इत्यर्थः। गार्गिकया अत्याकुरुते। गार्गिकामवेतः।

गोत्रचरणाच्छ्लाघात्याकारतदवेतेषु। गोत्रं च चरणश्च तयोः समाहारद्वन्द्वो गोत्रचरणं, तस्माद् गोत्रचरणात्। श्लाघा च अत्याकारश्च तदवेतश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः श्लाघात्याकारतदवेतास्तेषु श्लाघात्याकारतदवेतेषु। गोत्रचरणात् पञ्चम्यन्तं, श्लाघात्याकारतदवेतेषु सप्तम्यन्तम्। **योपधाद् गुरूपोत्तमाद् वुञ्** से **वुञ्** की, **तस्य भावस्त्वतलौ** से **तस्य, भावः** तथा **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** से **कर्मणि** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

षष्ठी-समर्थ गोत्रवाची तथा चरणवाची प्रातिपदिकों से श्लाघा, अत्याकार, तदवेत विषयक भाव और कर्म अर्थों में तद्धितसंज्ञक वुञ् प्रत्यय होता है।

अत्याकारोऽधिक्षेपः। अत्याकार-शब्द का अर्थ है- अधिक्षेप=अपमान करना। श्लाघा-शब्द का तो प्रशंसा, बडप्पन दिखाना अर्थ है ही। **गोत्र** शब्द से गोत्रप्रत्ययान्त शब्द का ग्रहण न होकर लौकिक गोत्र का ग्रहण है।

तदवेतः ते गोत्रचरणयोर्भावकर्मणी प्राप्तः अवगतवान् वा। यहाँ **तदवेत** शब्द की व्युत्पत्ति दिखाते हुये कहते हैं कि **ते**=गोत्र और चरण के भाव और कर्मरूप अर्थ से **अवेतः**=ज्ञात या प्राप्त को **तदवेत** कहा जाता है।

गार्गिकया श्लाघते। गार्ग्यत्वेन विकत्थत इत्यर्थः। गर्ग-गोत्र में सम्भूत होने के कारण प्रशंसित होता है। **गार्ग्य** से **गोत्रचरणाच्छ्लाघात्याकारतदवेतेषु** सूत्र से वुञ् होने पर अकादेश, भसंज्ञक अकार का लोप और यकार का **आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति** से लोप होकर **गार्गक** शब्द बनता है। टाप् के बाद अकार को इत्त्व होकर **गार्गिका** शब्द बन जाता है। स्वादिकार्य होने पर तृतीयैकवचन में **गार्गिकया** बन गया है। यह गोत्रवाची का श्लाघा अर्थ में उदाहरण है।

गार्गिकया अत्याकुरुते। गर्ग-गोत्र में उत्पन्न होने के कारण दूसरों को तुच्छ समझता है। यहाँ पर भी पूर्ववत् **गार्ग्य** शब्द से वुञ्, अकादेश, अकारलोप, यकारलोप, टाप्, इत्त्व आदि होकर **गार्गिका** और तृतीयैकवचन में **गार्गिकया** बन गया है। यह गोत्र के अत्याकार का उदाहरण है।

गार्गिकामवेतः। गर्ग-गोत्र के स्वभाव या कर्म को प्राप्त या उसको समझने वाला। यहाँ पर भी पूर्ववत् **गार्ग्य** शब्द से वुञ्, अकादेश, अकारलोप, यकारलोप, टाप्, इत्त्व आदि होकर **गार्गिका** और द्वितीयैकवचन में **गार्गिकाम्** बन गया है। यह गोत्र के तदेवत का उदाहरण है।

चरण अर्थ में **काठिकया श्लाघते, काठिकया अत्याकुरुते** और **काठिकाम् अवेतः** इत्यादि उदाहरण बनते हैं।

१८००. होत्राभ्यश्छः ५।१।१३५॥

होत्राशब्दो ऋत्विग्वाची स्त्रीलिङ्गः। बहुवचनाद्विशेषणग्रहणम्। अच्छावाकस्य भावः कर्म वा **अच्छावाकीयम्। मैत्रावरुणीयम्।**

होत्राभ्यश्छः। होत्राभ्यः प्रथमाबहुवचनं, छः प्रथमान्तम्। **तस्य भावस्त्वतलौ** से **तस्य, भावः** तथा गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः **कर्मणि च** से **कर्मणि** की अनुवृत्ति तथा **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

षष्ठी-समर्थ होत्रा-वाची (ऋग्विग्विशेषवाची) प्रातिपदिकों से भाव और कर्म अर्थों में तद्धितसंज्ञक छ-प्रत्यय होता है।

होत्राशब्दो ऋत्विग्वाची स्त्रीलिङ्गः। बहुवचनाद्विशेषणग्रहणम्। सूत्रोक्त **होत्रा**-शब्द ऋग्विग्विशेषवाची स्त्रीलिंग है। बहुवचन का ग्रहण होने से ऋग्विग्विशेष का ग्रहण होता है, स्वरूप-परक होता तो बहुवचनान्त प्रयोग की कोई आवश्यकता नहीं थी।

अच्छावाकस्य भावः कर्म वा अच्छावाकीयम्। अच्छावाक ऋग्विक्-विशेष का स्वभाव या कर्म। **अच्छावाकस्य भावः कर्म वा** विग्रह करके **अच्छावाक+ङस्** इस स्थिति में **होत्राभ्यश्छः** सूत्र के द्वारा छ-प्रत्यय होने पर छकार के स्थान पर **ईय्** आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **अच्छावाकीय** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **अच्छावाकीयम्** सिद्ध हो जाता है।

मैत्रावरुणीयम्। मैत्रावरुण का स्वभाव या कर्म। **मैत्रावरुणस्य भावः कर्म वा** विग्रह करके **मैत्रावरुण+ङस्** इस स्थिति में **होत्राभ्यश्छः** सूत्र के द्वारा छ-प्रत्यय होने पर छकार के स्थान पर **ईय्** आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **मैत्रावरुणीय** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **मैत्रावरुणीयम्** सिद्ध हो जाता है।

उक्त सभी सूत्रों में **आ च त्वात्** (५.१.१२०) से लेकर इस सूत्र तक जो भी प्रत्यय-विशेष किये गये हैं, उनमें **त्व** और **तल्** का भी समावेश होता है, अर्थात् उक्त प्रत्ययों के साथ त्व-तल्-प्रत्यय भी हो सकते हैं।

१८०१. ब्रह्मणस्त्वः ५।१।१३६॥

होत्रावाचिनो ब्रह्मशब्दात् त्वः स्यात्। छस्यापवादः। ब्रह्मत्वम्। नेति वाच्ये त्ववचनं तलो बाधनार्थम्। ब्राह्मणपर्यायाद् ब्रह्मन्शब्दात्तु त्वतलौ। ब्रह्मत्वम्, ब्रह्मता।

इति तद्धितेषु भावकर्माधिकारप्रकरणम्।

ब्रह्मणस्त्वः। ब्रह्मणः पञ्चम्येकवचनान्तं, त्वः प्रथमान्तम्। **होत्राभ्यश्छः** से **होत्राभ्यः** का एकवचन में विपरिणाम करके **होत्रायाः** की, **तस्य भावस्त्वतलौ** से **तस्य, भावः** तथा **गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च** से **कर्मणि** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

षष्ठी-समर्थ होत्रा-वाची ब्रह्मन्-शब्द से भाव और कर्म अर्थों में तद्धितसंज्ञक त्व-प्रत्यय होता है।

होत्रावाचिनो ब्रह्मशब्दात् त्वः स्यात्।

छस्यापवादः। पूर्वसूत्र से प्राप्त छ-प्रत्यय का अपवाद है।

ब्रह्मत्वम्। ब्रह्मा का स्वभाव या कर्म। **ब्रह्मणः भावः कर्म वा** विग्रह करके **ब्रह्मन्+ङस्** इस स्थिति में **ब्रह्मणस्त्वः** सूत्र के द्वारा त्व-प्रत्यय होने पर नकार का **नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप होकर **ब्रह्मत्व** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **ब्रह्मत्वम्** सिद्ध हो जाता है।

नेति वाच्ये त्ववचनं तलो बाधनार्थम्। अर्थात् केवल छ-प्रत्यय का बाधन करने के लिये तो **ब्रह्मणो न** कहने से काम चल जाता किन्तु ऐसा करने से **तस्य भावस्त्वतलौ** सूत्र से त्व-प्रत्यय होते समय **तल्** प्रत्यय भी होने लगता। अतः तल्-प्रत्यय को भी बाधने के लिये पुनः त्व-विधान सार्थक हो जाता है। इस तरह **विधातावाची ब्रह्मन्** शब्द से **ब्रह्मता** रूप इष्ट नहीं है।

ब्राह्मणपर्यायाद् ब्रह्मन्शब्दात्तु त्वतलौ। ब्रह्मत्वम्, ब्रह्मता। अर्थात् प्रकृतसूत्र से केवल विधाता के पर्यायवाची **ब्रह्मन्**-शब्द से त्व-प्रत्यय किया गया है। ब्राह्मणवाची ब्रह्मन्-शब्द से तो **तस्य भावस्त्वतलौ** सूत्र से **त्व** और **तल्** दोनों होते हैं। अतः **ब्रह्मत्वम्** और **ब्रह्मता** ये दोनों रूप बनते हैं।

श्री भट्टोजिदीक्षित द्वारा विरचित वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी की
गोविन्दाचार्य कृत श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी टीका में
तद्धित-भावकर्माधिकार-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ पाञ्चमिकप्रकरणम्

अब कुछ स्फुट प्रत्ययों का विधान पाञ्चमिक प्रकरण के अन्तर्गत किया जा रहा है। अधिकार-विशेष का निरूपण न होने के कारण और पञ्चमाध्यायवर्ती प्रत्ययों का विधान होने कारण यह संज्ञा दी गयी है, अन्यथा पञ्चमाध्याय के अन्तर्गत आने वाले विभिन्न अर्थाधिकारों से सम्बद्ध प्रत्यय भी इसी में समा जाते। **भवनाद्यर्थक** प्रत्ययों का विधान होने से इसे भवनाद्यर्थक प्रकरण भी कहा जा सकता है। **वह ऐसा हुआ, अवयव, पूरण** आदि अर्थों में भी प्रत्यय होंगे। ये प्रत्यय **खञ्, इतच्, तयप्, डट्, तीय** आदि हैं।

१८०२. धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ् ५।२।१॥

भवन्त्यस्मिन्निति भवनम्। मुद्गानां भवनं क्षेत्रं मौद्गीनम्।

धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्। धान्यानां षष्ठ्यन्तं, भवने सप्तम्यन्तं, क्षेत्रे सप्तम्यन्तं, खञ् प्रथमान्तम् अनेकपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

भवन अर्थात् उत्पत्तिस्थानरूप क्षेत्र अर्थ में किसी धान्यविशेष के वाचक षष्ठी-समर्थ शब्दों से खञ् प्रत्यय होता है।

खञ् में **ञकार** इत्संज्ञक है और **खकार** के स्थान पर **ईन्** आदेश हो जायेगा। सूत्रस्थ **धान्यानाम्** पद अपने अर्थ के साथ समर्थ-विभक्ति का भी सूचक है। अतः समर्थ-विभक्ति षष्ठी मानी जायेगी।

भवन्त्यस्मिन्निति भवनम्। भवन-शब्द क्षेत्र अर्थात् उत्पत्तिस्थान का बोधक है। **भवन्ति अस्मिन्** विग्रह करके भू-धातु से अधिकरण अर्थ में कृत्संज्ञक ल्युट् प्रत्यय करके **भवन** शब्द की निष्पत्ति होती है। भू-धातु सत्तार्थक के साथ उत्पत्त्यर्थक भी है, अतः उक्त अर्थ भी सम्भव है।

मौद्गीनम्। मूंग नामक धान्य(दाल) के होने का क्षेत्र, खेत आदि। **मुद्गानां भवनं क्षेत्रम्** लौकिक विग्रह और **मुद्ग+आम्** अलौकिक विग्रह है। ऐसी स्थिति में **धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्** से खञ् प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से खकार के स्थान पर ईन् आदेश,

आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **मौद्ग्+ईन=मौद्गीन** बना। सु, अम्, पूर्वरूप **मौद्गीनम्।**

इसी तरह-

गौधूमीनम्। गोधूम अर्थात् गेहूँ धान्य के होने का क्षेत्र, खेत आदि। **गोधूमानां भवनं क्षेत्रम्** लौकिक विग्रह और **गोधूम+आम्** अलौकिक विग्रह है। ऐसी स्थिति में **धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्** से खञ् प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से खकार के स्थान पर ईन् आदेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक अकार का लोप करके **गौधूम्+ईन=गौधूमीन** बना। सु, अम्, पूर्वरूप **गौधूमीनम्।**

१८०३. व्रीहिशाल्योर्ढक् ५।२।२॥
व्रौहेयम्। शालेयम्।

व्रीहिशाल्योर्ढक्। व्रीहिश्च शालिश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो व्रीहिशाली, तयोः। व्रीहिशाल्योः पञ्चम्यर्थे षष्ठी, ढक् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्** से **भवने क्षेत्रे** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार पूर्ववत् आ ही रहा है।

षष्ठ्यन्त व्रीहि और शालि इन प्रातिपदिकों से उनके उत्पत्तिस्थान क्षेत्र अर्थ में ढक् प्रत्यय होता है।

यह सूत्र **धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्** का अपवाद है। ककार इत्संज्ञक है, ढकार के स्थान पर **एय्** आदेश होता है।

व्रैहेयम्। धान के होने का क्षेत्र, खेत आदि। **व्रीहीणां भवनं क्षेत्रम्** लौकिक विग्रह और **व्रीहि+आम्** अलौकिक विग्रह है। ऐसी स्थिति में **धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्** से खञ् प्रत्यय प्राप्त हुआ, उसे बाधकर **व्रीहिशाल्योर्ढक्** से **ढक्** प्रत्यय हुआ, अनुबन्ध लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से ढकार के स्थान पर **एय्** आदेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक इकार का लोप करके **व्रैह्+एय=व्रैहेय** बना। सु, अम्, पूर्वरूप करके **व्रैहेयम्** सिद्ध हुआ।

शालेयम्। शालि धान्यविशेष के होने का क्षेत्र, खेत आदि। **शालीनां भवनं क्षेत्रम्** लौकिक विग्रह और **शालि+आम्** अलौकिक विग्रह है। ऐसी स्थिति में **धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्** से खञ् प्रत्यय प्राप्त हुआ, उसे बाधकर **व्रीहिशाल्योर्ढक्** से **ढक्** प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से ढकार के स्थान पर **एय्** आदेश, आदिवृद्धि, भसंज्ञक इकार का लोप करके **शाल्+एय=शालेय** बना। सु, अम्, पूर्वरूप करके **शालेयम्** सिद्ध हुआ।

१८०४. यवयवकषष्टिकाद्यत् ५।२।३॥

यवानां भवनं क्षेत्रं यव्यम्। यवक्यम्। षष्टिक्यम्।

यवयवकषष्टिकाद्यत्। यवश्च यवकश्च षष्टिकश्च तेषां समाहारद्वन्द्वो यवयवकषष्टिकं, तस्माद् यवयवकषष्टिकात् पञ्चम्यन्तं, यत् प्रथमान्तम्। **धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्** से **भवने क्षेत्रे** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार पूर्ववत् आ ही रहा है।

षष्ठी-समर्थ यव, यवक और षष्टिक इन प्रातिपदिकों से उनके उत्पत्तिस्थान क्षेत्र अर्थ में यत् प्रत्यय होता है।

यह खञ्प्रत्यय का अपवाद है।

यवानां भवनं क्षेत्रं यव्यम्। जिस खेत में यव (जौ) होते हैं। **यवानां भवनं क्षेत्रम्** विग्रह करके **यव+आम्** इस स्थिति में **यवयवकषष्टिकाद्यत्** सूत्र से यत्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **यव्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **यव्यम्** सिद्ध हो जाता है।

यवक्यम्। जिस खेत में यवक नामक धान्य होते हैं। **यवकानां भवनं क्षेत्रम्** विग्रह करके **यवक+आम्** इस स्थिति में **यवयवकषष्टिकाद्यत्** सूत्र से यत्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **यवक्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **यवक्यम्** सिद्ध हो जाता है।

षष्टिक्यम्। साठी धान उत्पन्न होने वाला खेत। **षष्टिकानां भवनं क्षेत्रम्** विग्रह करके **षष्टिक+आम्** इस स्थिति में **यवयवकषष्टिकाद्यत्** सूत्र से यत्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **षष्टिक्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **षष्टिक्यम्** सिद्ध हो जाता है।

१८०५. विभाषा तिलमाषोमाभङ्गाणुभ्यः ५।२।४॥

यद्वा स्यात्। पक्षे खञ्। तिल्यम्, तैलीनम्। माष्यम्, माषीणम्। उम्यम्, औमीनम्। भङ्ग्यम्, भाङ्गीनम्। अणव्यम्, आणवीनम्।

विभाषा तिलमाषोमाभङ्गाणुभ्यः। तिलाश्च माषाश्च उमा च भङ्गं च अणुश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः- तिलमाषोमाभङ्गाणवस्तेभ्यस्तिलमाषोमाभङ्गाणुभ्यः। विभाषा प्रथमान्तं, तिलमाषोमाभङ्गाणुभ्यः पञ्चम्यन्तम्। **यवयवकषष्टिकाद्यत्** से **यत्** की और **धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्** से **भवने क्षेत्रे** की अनुवृत्ति आती है साथ ही **प्रत्ययः, परश्च,**

ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार पूर्ववत् आ ही रहा है।

षष्ठी-समर्थ धान्यविशेषवाची तिल, माष, उमा, भङ्ग और अणु इन प्रातिपदिकों से उनके उत्पत्तिस्थान क्षेत्र अर्थ में विकल्प से यत् प्रत्यय होता है।

पक्षे खञ्। यत्प्रत्यय न होने के पक्ष में **धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्** सूत्र से खञ्प्रत्यय होता है। धान्यविशेषों का ही विषय है।

तिल्यम्, तैलीनम्। तिल उत्पन्न होने वाला खेत। **तिलानां भवनं क्षेत्रम्** विग्रह करके **तिल+आम्** इस स्थिति में **विभाषा तिलमाषोमाभङ्गाणुभ्यः** सूत्र से विकल्प से यत् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **तिल्य** शब्द बना है। यत्-प्रत्यय न होने के पक्ष में **धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्** सूत्र से **खञ्** प्रत्यय हो जाता है। ईनादेश और अकारलोप होकर **तैलीन** शब्द बन जाता है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **तिल्यम्** और **तैलीनम्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

माष्यम्, माषीणम्। ऊड़द उत्पन्न होने वाला खेत। **माषाणां भवनं क्षेत्रम्** विग्रह करके **माष+आम्** इस स्थिति में **विभाषा तिलमाषोमाभङ्गाणुभ्यः** सूत्र से विकल्प से **यत्** प्रत्यय होने के पक्ष में अकारलोप होकर **माष्य** और **खञ्** प्रत्यय होने के पक्ष में ईनादेश और अकारलोप तथा षकार से परवर्ती नकार को णत्व होकर **माषीण** शब्द बने हैं। स्वादिकार्य होकर **माष्यम्** और **माषीणम्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

उम्यम्, औमीनम्। अलसी (तीसी) उत्पन्न होने वाला खेत। **उमानां भवनं क्षेत्रम्** विग्रह करके **उमा+आम्** इस स्थिति में **विभाषा तिलमाषोमाभङ्गाणुभ्यः** सूत्र से विकल्प से यत् प्रत्यय होने के पक्ष में आकारलोप होकर **उम्य** और **खञ्** प्रत्यय होने के पक्ष में ईनादेश, आदिवृद्धि और आकारलोप होकर **औमीन** शब्द बने हैं। स्वादिकार्य होकर **उम्यम्** और **औमीनम्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

भङ्ग्यम्, भाङ्गीनम्। पटुआ पैदा होने वाला खेत। **भङ्गानां भवनं क्षेत्रम्** विग्रह करके **भङ्ग+आम्** इस स्थिति में **विभाषा तिलमाषोमाभङ्गाणुभ्यः** सूत्र से विकल्प से **यत्** प्रत्यय होने के पक्ष में आकारलोप होकर **भङ्ग्य** और **खञ्** प्रत्यय होने के पक्ष में ईनादेश, आदिवृद्धि और आकारलोप होकर **भाङ्गीन** शब्द बने हैं। स्वादिकार्य होकर **भङ्ग्यम्** और **भाङ्गीनम्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

अणव्यम्, आणवीनम्। चीना उत्पन्न होने वाला खेत। **अणूनां भवनं क्षेत्रम्** विग्रह करके **अणु+आम्** इस स्थिति में **विभाषा तिलमाषोमाभङ्गाणुभ्यः** सूत्र से विकल्प से **यत्** प्रत्यय होने के पक्ष में उकार को गुण ओकार और उसको अवादेश होकर **अणव्य** और **खञ्** प्रत्यय होने के पक्ष में ईनादेश, आदिवृद्धि, उकार को गुण और उसको अवादेश होकर **आणवीन** शब्द बने हैं। स्वादिकार्य होकर **अणव्यम्** और **आणवीनम्** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

यहाँ **धान्यानां भवनं क्षेत्रम्** यह अर्थ पूर्ण किया गया है। अब अगले सूत्र से **कृतः**=किया हुआ- अर्थ में प्रत्यय किये जा रहे हैं।

१८०६. सर्वचर्मणः कृतः खखञौ ५।२।५॥

असामर्थ्येऽपि निपातनात् समासः।

सर्वश्चर्मणा कृतः सर्वचर्मीणः, सार्वचर्मीणः।

सर्वचर्मणः कृतः खखञौ। खश्च खञ् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः खखञौ। सर्वचर्मणः पञ्चम्यन्तं, कृतः प्रथमान्तं, खखञौ प्रथमान्तम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ सर्वचर्मन् इन प्रातिपदिक से कृतः=किया हुआ- अर्थ में ख और खञ् प्रत्यय होते हैं।

ख और खञ् में वृद्धि ही विशेष है। यद्यपि **सर्वचर्मणः कृतः खश्च** इतना ही सूत्र पढ़ते तब भी च-शब्द से खञ् प्रत्यय का विधान हो सकता था तथापि च-शब्द से कहीं पूर्वसूत्र के यत्-प्रत्यय का परामर्श न हो, एतदर्थ **खखञौ** पढ़ा गया है।

असामर्थ्येऽपि निपातनात् समासः। सूत्र में **सर्व**-शब्द का **कृतः** के साथ अन्वय है, अतः **चर्मणा सर्वः कृतः** यह अर्थ अभिप्रेत है। अतः यहाँ सर्व-शब्द का चर्मन् शब्द के साथ सामर्थ्य नहीं है, फलतः किसी सूत्र से समास की प्राप्ति नहीं है तथापि सूत्रकार के पाठ को प्रमाण मानकर असामर्थ्य में भी निपातनात् समास मान लिया जाता है।

सर्वश्चर्मणा कृतः सर्वचर्मीणः, सार्वचर्मीणः। सब-कुछ चमड़े से बना हुआ। **सर्वः चर्मणा कृतः** विग्रह करके निपातनात् समास मानकर **सर्वचर्मन्** शब्द स्वीकार करके **सर्वचर्मन्+टा** इस स्थिति में **सर्वचर्मणा कृतः खखञौ** सूत्र के द्वारा ख-प्रत्यय होने के पक्ष में खकार को ईनादेश और **नस्तद्धिते** सूत्र से टिसंज्ञक भाग **अन्** का लोप तथा रेफ से परे नकार को णत्व करके **सर्वचर्मीण** शब्द बनता है और खञ् प्रत्यय होने के पक्ष में ञित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** सूत्र के द्वारा आदिवृद्धि अधिक होकर **सार्वचर्मीण** बन जाता है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सर्वचर्मीणः** और **सार्वचर्मीणः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं। दोनों प्रयोगों के बीच केवल आदिवृद्धि का ही अन्तर है।

१८०७. यथामुखसम्मुखस्य दर्शनः खः ५।२।६॥

मुखस्य सदृशं यथामुखं प्रतिबिम्बम्। निपातनात् सादृश्येऽव्ययीभावः।

समं सर्वं मुखं सम्मुखम्। समशब्दस्यान्तलोपो निपात्यते।

यथामुखं दर्शनो यथामुखीनः। सर्वस्य मुखस्य दर्शनः सम्मुखीनः।

यथामुखसंमुखस्य दर्शनः खः। यथामुखं च सम्मुखं च तयोः समाहारद्वन्द्वो यथामुखसंमुखं, तस्य यथामुखसंमुखस्य षष्ठ्यन्तं, दर्शनः प्रथमान्तं, खः प्रथमान्तम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

षष्ठी-समर्थ यथामुख और सम्मुख इन प्रातिपदिकों से दर्शनः अर्थ में ख प्रत्यय होता है।

जिसमें अपना प्रतिबिम्ब देखा जाता है, उसे **दर्शनः** कहा जाता है अर्थात् दर्पण, शीशा ही दर्शन है।

मुखस्य सदृशं यथामुखं प्रतिबिम्बम्। निपातनात् सादृश्येऽव्ययीभावः। मुख के समान जो हो उसे **यथामुख** कहा जाता है। यहाँ **सादृश्य** अर्थ में निपातनवश अव्ययीभाव समास है- **मुखस्य सदृशं यथामुखम्।** निपातनवश समास मानने का कारण यह है कि **यथाऽसादृश्ये** (२.१.७) सूत्र के नियमानुसार असादृश्य अर्थ में ही यथा-शब्द के साथ समास होता है और प्रकृत में सादृश्य अर्थ ही है।

समं सर्वं मुखं सम्मुखम्। समशब्दस्यान्तलोपो निपात्यते। यहाँ **सम्मुख** शब्द का समास बताते हुये कहते हैं कि **समं=सर्वं मुखम्**विग्रह में कर्मधारयसमास तो स्वाभाविक रूप से हो जाता है किन्तु **सम** शब्द के मकारोत्तरवर्ती अन्त्य अकार का लोप निपातनवश ही मानना चाहिये। यह **सम**-शब्द सर्व-शब्द का पर्यायवाची है, सम्यक् अर्थ का अभिधायी नहीं है। अतः इसे उपसर्ग नहीं मानना चाहिये।

यहाँ षष्ठी समर्थ-विभक्ति मानी जाती है। उसका कारण यह है कि कृत्प्रत्ययान्त **दर्शन** शब्द के साथ उसका सामर्थ्य है। **दृश्यते अनेन इति दर्शनः** इस व्युत्पत्ति में **दृश्**-धातु से करणार्थ में ल्युट् प्रत्यय होकर **दर्शन**-शब्द की निष्पत्ति हुयी है। कृत्प्रत्ययान्त शब्द के योग में **कर्तृकर्मणोः कृति** सूत्र के द्वारा षष्ठीविभक्ति होती है।

यथामुखं दर्शनो **यथामुखीनः।** जैसा मुख ठीक वैसा दिखाने वाला। **यथामुखं दर्शनः** विग्रह करके यथामुख इस अव्ययीभावसमासयुक्त अव्यय-शब्द से **यथामुखसम्मुखस्य दर्शनः खः** सूत्र के द्वारा ख प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, खकार को ईनादेश और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **यथामुखीन** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **यथामुखीनः** सिद्ध हो जाता है।

सर्वस्य मुखस्य दर्शनः सम्मुखीनः। समग्र मुख को दिखाने वाला। **समस्य=सर्वस्य मुखस्य दर्शनः** अविग्रह करके तद्धितार्थविषयक कर्मधारय समास हो जाने पर प्रकृतसूत्र में **सम्मुख** शब्द के पाठ से **म** के अकार का लोप माना जाता है। और **सम्मुख+ङस्** इस स्थिति में **यथामुखसम्मुखस्य दर्शनः खः** सूत्र के द्वारा **ख** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, खकार को ईनादेश और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **सम्मुखीन** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सम्मुखीनः** सिद्ध हो जाता है।

१८०८. तत्सर्वादेः पथ्यङ्गकर्मपत्रपात्रं व्याप्नोति ५।२।७॥

सर्वादेः पथ्याद्यन्तात् द्वितीयान्तात् खः स्यात्।
सर्वपथान् व्याप्नोति सर्वपथीनः। सर्वाङ्गीणः।
सर्वकर्मीणः। सर्वपत्रीणः। सर्वपात्रीणः।

तत्सर्वादेः पथ्यङ्गकर्मपत्रपात्रं व्याप्नोति। सर्व-शब्दः आदौ यस्य स सर्वादिस्तस्य सर्वादेः। पन्थाश्च अङ्गं च कर्म च पत्त्रं च पात्रं च तेषां समाहारद्वन्द्वः पथ्यङ्गकर्मपत्रपात्रं, तत् पथ्यङ्गकर्मपत्रपात्रम्। तत् द्वितीयान्तं, सर्वादेः पञ्चम्यन्तं, पथ्यङ्गकर्मपत्रपात्रं द्वितीयान्तं, व्याप्नोति अर्थबोधकं क्रियापदम्। **यथामुखसंमुखस्य दर्शनः खः** से **खः** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

द्वितीया-समर्थ सर्व-शब्द आदि में होते हुये पथिन्, अङ्ग, कर्मन्, पत्त्र और पात्र शब्द अन्त में हो, ऐसे प्रातिपदिकों से व्याप्नोति=व्याप्त होता है- अर्थ में ख प्रत्यय होता है।

पथ्यङ्गकर्मपत्रपात्रम् में पञ्चमी के अर्थ में द्वितीया-विभक्ति का प्रयोग किया गया है। यह **प्रातिपदिकात्** का विशेषण है, अतः **येन विधिस्तदन्तस्य** सूत्र से तदन्तविधि होती है। यद्यपि **ग्रहणवता प्रातिपदिकेन तदन्तविधिर्नास्ति** इस परिभाषा से यहाँ तदन्तविधि का निषेध होना चाहिये तथापि केवल पथिन्-आदि शब्द सर्वादिक (सर्वपूर्वक) कैसे सम्भव हो सकतें हैं? अतः उक्त परिभाषा की प्रवृत्ति नहीं होती। द्वितीयान्त **तत्** पद का अन्वय **व्याप्नोति** क्रिया के साथ होता है।

सर्वपथान् व्याप्नोति सर्वपथीनः (रथः)। सभी प्रकार के मार्गों पर चलने योग्य रथ आदि। पहले **सर्वे च ते पन्थानः** विग्रह करके कर्मधारयसमास, समासान्त अ-प्रत्यय, टिलोप आदि होकर **सर्वपथ** शब्द बनता है। **सर्वपथान् व्याप्नोति** विग्रह करके **सर्वपथ+शस्** इस स्थिति में **तत्सर्वादेः पथ्यङ्गकर्मपत्रपात्रं व्याप्नोति** सूत्र के द्वारा **ख** प्रत्यय होने पर ईनादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **सर्वपथीन** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सर्वपथीनः** सिद्ध हो जाता है।

सर्वाङ्गीणः। सभी प्रकार के अङ्गों में पहुँचने वाला। **सर्वाङ्गानि व्याप्नोति** विग्रह करके **सर्वाङ्ग+शस्** इस स्थिति में **तत्सर्वादेः पथ्यङ्गकर्मपत्रपात्रं व्याप्नोति** सूत्र के द्वारा **ख** प्रत्यय होने पर ईनादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप तथा रेफ से परे नकार को णत्व होकर **सर्वाङ्गीण** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सर्वाङ्गीणः** सिद्ध हो जाता है।

सर्वकर्मीणः। सभी प्रकार के कर्मों को करने में समर्थ पुरुष। **सर्वकर्माणि व्याप्नोति** विग्रह करके **सर्वकर्मन्+शस्** इस स्थिति में **तत्सर्वादेः पथ्यङ्गकर्मपत्रपात्रं व्याप्नोति** सूत्र के द्वारा **ख** प्रत्यय होने पर ईनादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **नस्तद्धिते** सूत्र से टिसंज्ञक भाग **अन्** का लोप तथा रेफ से परे नकार को णत्व होकर **सर्वकर्मीण** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सर्वकर्मीणः** सिद्ध हो जाता है।

सर्वपत्रीणः। सभी प्रकार के वाहनों को चलाने में समर्थ व्यक्ति। **सर्वपत्राणि व्याप्नोति** विग्रह करके **सर्वपत्र+शस्** इस स्थिति में **तत्सर्वादेः पथ्यङ्गकर्मपत्रपात्रं व्याप्नोति** सूत्र के द्वारा **ख** प्रत्यय होने पर ईनादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप तथा रेफ से परे नकार को णत्व होकर **सर्वपत्रीण** शब्द बना है। स्वादिकार्य होकर **सर्वपत्रीणः** सिद्ध हो जाता है।

सर्वपात्रीणः। सभी प्रकार के बरतनों में पकने योग्य। **सर्वपात्राणि व्याप्नोति** विग्रह करके **सर्वपात्र+शस्** इस स्थिति में **तत्सर्वादेः पथ्यङ्गकर्मपत्रपात्रं व्याप्नोति** सूत्र के द्वारा **ख** प्रत्यय होने पर ईनादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप तथा रेफ से परे नकार को णत्व होकर **सर्वपात्रीण** शब्द बना है। स्वादिकार्य होकर सर्वपात्रीणः सिद्ध हो जाता है।

१८०९. आप्रपदं प्राप्नोति ५।२।८॥

पादस्याग्रं प्रपदम्, तन्मर्यादीकृत्य आप्रपदम्, आप्रपदीनः पटः।

आप्रपदं प्राप्नोति। आप्रपदं द्वितीयान्तं, प्राप्नोति इत्यर्थबोधकं क्रियापदम्। **तत्सर्वादेः पथ्यङ्गकर्मपत्रपात्रं व्याप्नोति** से **तत्** और **यथामुखसंमुखस्य दर्शनः खः** से **खः** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

द्वितीया-समर्थ आप्रपद इस प्रातिपदिक से प्राप्नोति=प्राप्त होता है- अर्थ में ख प्रत्यय होता है।

पादस्याग्रं प्रपदम्, तन्मर्यादीकृत्य आप्रपदम्। पैर के अग्रभाग (टखना) को **प्रपद** कहते हैं और यहाँ **आङ्** उपसर्ग मर्यादा अर्थ में प्रयुक्त है। **आ प्रपदं=प्रपदं मर्यादीकृत्य** अर्थ में **आङ्** का **प्रपद** शब्द के साथ **आङ् मर्यादाभिविध्योः** (२.१.१३) सूत्र से समास होकर **आप्रपदम्** बना हुआ है। टखने के पहले-पहले भाग को **आप्रपद** कहा जाता है।

आप्रपदीनः पटः। जो वस्त्र टखने तक व्याप्त हो अर्थात् नीचा हो, वह वस्त्र। **आप्रपदं प्राप्नोति** विग्रह करके **आप्रपद** शब्द से **आप्रपदं प्राप्नोति** सूत्र के द्वारा **ख** प्रत्यय होने पर खकार के स्थान पर ईनादेश और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आप्रपदीन** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **आप्रपदीनः** सिद्ध हो जाता है।

१८१०. अनुपदसर्वान्नायानयं बद्धाभक्षयतिनेयेषु ५।२।९॥

अनुरायामे सादृश्ये वा। अनुपदं बद्धा अनुपदीना उपानत्।
सर्वान्नानि भक्षयति सर्वान्नीनो भिक्षुः।
अयानयः स्थलविशेषः। तं नेयः अयानयीनः शारः।

अनुपदसर्वान्नायानयं बद्धाभक्षयतिनेयेषु। अनुपदं च सर्वान्नं च अयानयश्च तेषां समाहारद्वन्द्वः- अनुपदसर्वान्नायानयं, तत्। बद्धा च भक्षयतिश्च नेयश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो बद्धाभक्षयतिनेयास्तेषु बद्धाभक्षयतिनेयेषु। अनुपदसर्वान्नायानयं द्वितीयान्तं, बद्धाभक्षयतिनेयेषु सप्तम्यन्तम्। **तत्सर्वादेः पथ्यङ्गकर्मपत्रपात्रं व्याप्नोति** से **तत्** और **यथामुखसंमुखस्य दर्शनः खः** से **खः** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है। उद्देश्यबोधक शब्द तीन हैं तो अर्थबोधक शब्द भी तीन ही हैं। अतः **यथासङ्ख्यमनुदेशः समानाम्** की उपस्थिति होती है।

द्वितीया-समर्थ अनुपद, सर्वान्न और अयानय इन प्रातिपदिकों से क्रमशः बद्धा=बराबर सम्बद्ध, भक्षयति=खाता है और नेय=ले जाने योग्य- इन अर्थों में ख प्रत्यय होता है।

अनुरायामे सादृश्ये वा। अर्थात् **अनुपद** शब्द के **अनु** का अर्थ **आयाम** है। तात्पर्य यह है कि जो पद=पैर के साथ बराबर सम्बद्ध हो, न तो बड़ा हो और न ही छोटा, उसे **अनुपद** कहा जाता है। इस अर्थ में **अनु** उपसर्ग का वाच्यार्थ सहायक है। दीर्घता और सदृश अर्थ में **अनु** उपसर्ग का प्रयोग होता है। तदनुसार दोनों ही अर्थों में **अनुपद** शब्द अव्ययीभावान्त है। आयाम अर्थ में **यस्य चायामः** सूत्र से समास होता है तो सादृश्य अर्थ में **अव्ययं विभक्तिसमीप०** सूत्र से।

अनुपदं बद्धा अनुपदीना उपानत्। पैर के नाप के अनुसार बराबर की जूती, न तो छोटी और न ही बड़ी। **अनुपदं बद्धा** विग्रह करके **अनुपद**-शब्द से **अनुपदसर्वान्नायानयं बद्धाभक्षयतिनेयेषु** सूत्र से ख-प्रत्यय होने पर ईनादेश, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **अनुपदीन** शब्द बनता है। विशेष्य पद **उपानह्**-शब्द के स्त्रीलिंग होने के कारण विशेषण में स्त्रीलिंगता होगी। अतः टाप् प्रत्यय होकर **अनुपदीना** बन जाता है तथा स्वादिकार्य से **अनुपदीना** सिद्ध हो जाता है।

सर्वान्नानि भक्षयति सर्वान्नीनो भिक्षुः। सब प्रकार के अन्न को खाने वाला भिक्षु। **सर्वान्नानि भक्षयति** विग्रह करके **सर्वान्न+शस्** इस स्थिति में **अनुपदसर्वान्नायानयं बद्धाभक्षयतिनेयेषु** सूत्र से ख-प्रत्यय होने पर ईनादेश, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **सर्वान्नीन** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सर्वान्नीनः** सिद्ध हो जाता है।

अयानयः स्थलविशेषः। तं नेयः अयानयीनः शारः। शतरंज के खले में दाहिनी ओर से बाईं ओर गोटी की चाल को **अय** और बाईं ओर से दाहिनी ओर की चाल को **अनय** कहते हैं। **अयानय** उस खाने या घर को कहते हैं, जिसमें दोनों ओर से आयी हुयी गोटियाँ किसी में मानी न जा सकें। उस घर में से ले जायी जाने वाली गोटी की संज्ञा है- **अयानय**। यहाँ पर **अयानयं नेयः** विग्रह करके **अयानय+अम्** इस स्थिति में **अनुपदसर्वान्नायानयं बद्धाभक्षयतिनेयेषु** सूत्र से ख-प्रत्यय होने पर ईनादेश, भसंज्ञक अकार का लोप होकर **अयानयीन** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **अयानयीनः** सिद्ध हो जाता है।

१८११. परोवरपरम्परपुत्रपौत्रमनुभवति ५।२।१०॥

परांश्चावरांश्चानुभवतीति परोवरीणः। अवरस्योत्त्वं निपात्यते। परांश्च परतरांश्चानुभवति परम्परीणः। प्रकृतेः परम्परभावो निपात्यते। पुत्रपौत्रान् अनुभवति पुत्रपौत्रीणः। परम्पराशब्दस्तु अव्युत्पन्नं शब्दान्तरं स्त्रीलिङ्गम्। तस्मादेव स्वार्थे ष्यञि पारम्पर्यम्। कथं पारोवर्यवदिति? असाधुरेव, खप्रत्ययसंनियोगेनैव परोवरेति निपातनात्।

परोवरपरम्परपुत्रपौत्रमनुभवति। परोवरं च परम्परं च पुत्रपौत्राश्च तेषां समाहारद्वन्द्वः परोवरपरम्परपुत्रपौत्रं, तत् परोवरपरम्परपुत्रपौत्रं द्वितीयान्तम्, अनुभवति इत्यर्थबोधकं क्रियापदम्। **तत्सर्वादेः पथ्यङ्गकर्मपत्रपात्रं व्याप्नोति** से **तत्** और **यथामुखसंमुखस्य दर्शनः** खः से खः की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः,** परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा का अधिकार है।

द्वितीया-समर्थ **परोवर, परम्पर और पुत्रपौत्र इन प्रातिपदिकों से अनुभवति**=अनुभव करता है- **अर्थ में ख प्रत्यय होता है।**

यह सूत्र ख-प्रत्यय के साथ विविध निपातन भी करता है। उनका विवेचन उदाहरणों के साथ किया जा रहा है।

परांश्चावरांश्चानुभवतीति परोवरीणः। अवरस्योत्त्वं निपात्यते। पर-अवर या ऊँच-नीच का अनुभव करने वाला। **परान् च अवरान् च अनुभवति** विग्रह करके **परोवरपरम्परपुत्रपौत्रमनुभवति** सूत्र से **पर+अवर** में **अवर** के अकार को उकारादेश निपातन के साथ ख-प्रत्यय किया जाता है। **पर+उवर** में गुण होकर **परोवर** शब्द बन जाता है और प्रत्यय के खकार के स्थान पर **ईन्** आदेश होने पर भसंज्ञक अकार का लोप और रेफ से परे नकार को णत्व होकर **परोवरीण** शब्द बन जाता है। स्वादिकार्य से **परोवरीणः** सिद्ध हो जाता है।

परांश्च परतरांश्चानुभवति परम्परीणः। प्रकृतेः परम्परभावो निपात्यते। ज्येष्ठ और ज्येष्ठतरों का अनुभव करता है। **परान् परतरान् च अनुभवति** विग्रह करके

परोवरपरम्परपुत्रपौत्रमनुभवति सूत्र से **पर+परतर** इस प्रकृति के स्थान पर **परम्पर** आदेश निपातन के साथ ख-प्रत्यय किया जाता है। प्रत्यय के खकार के स्थान पर **ईन्** आदेश होने पर भसंज्ञक अकार का लोप और रेफ से परे नकार को णत्व होकर **परम्परीण** शब्द बन जाता है। स्वादिकार्य से **परम्परीणः** सिद्ध हो जाता है।

पुत्रपौत्रान् अनुभवति पुत्रपौत्रीणः। पुत्र और पौत्रों का अनुभव करने वाला। **पुत्रपौत्रान् अनुभवति** विग्रह करके **पुत्रपौत्र+शस्** इस स्थिति में **परोवरपरम्पर-पुत्रपौत्रमनुभवति** सूत्र के द्वारा ख-प्रत्यय किया जाता है। प्रत्यय के खकार के स्थान पर **ईन्** आदेश होने पर भसंज्ञक अकार का लोप और रेफ से परे नकार को णत्व होकर **पुत्रपौत्रीण** शब्द बन जाता है। स्वादिकार्य से **पुत्रपौत्रीणः** सिद्ध हो जाता है।

परम्पराशब्दस्तु अव्युत्पन्नं शब्दान्तरं स्त्रीलिङ्गम्। तस्मादेव स्वार्थे ष्यञि पारम्पर्यम्। लोक में प्रयुक्त होने वाला **परम्परा**-शब्द अव्युत्पन्न प्रातिपदिक है और नित्य स्त्रीलिंग है। वह इस निपातित **परम्पर** शब्द से भिन्न है। उससे ही स्वार्थ में अथवा भाव में **ष्यञ्** प्रत्यय करके **पारम्पर्य** शब्द बनाया जाता है। तदनुसार अर्थ होगा- परम्परा का अनुभव करने वाला।

कथं पारोवर्यवदिति? असाधुरेव, खप्रत्ययसंनियोगेनैव परोवरेति निपातनात्। अब प्रश्न करते हैं कि **पारोवर्यवत्** (**परोवर+ष्यञ्=पारोवर्य+मतुप्=पारोवर्यवत्**) प्रयोग किस प्रकार समीचीन माना जाय? दीक्षित जी उसका उत्तर देते हुये कहते हैं कि उक्त रूप को असाधु ही मानना चाहिये, क्योंकि ख-प्रत्यय के सन्नियोग में ही **अवर** शब्द के अकार के स्थान पर उकारादेश निपातन करके **परोवर** बनाया जाता है, ख-प्रत्ययाभाव में अर्थात् ष्यञ्-प्रत्यय के सन्नियोग में नहीं। अतः ष्यञ्-प्रत्यय के योग में **पारावर्यवत्** रूप को ही साधु मानना चाहिये।

१८१२. अवारपारात्यन्तानुकामं गामी ५।२।११।

अवारपारं गामी अवारपारीणः। अवारीणः। पारीणः। पारावारीणः।
अत्यन्तं गामी अत्यन्तीनः। भृशं गन्तेत्यर्थः।
अनुकामं गामी अनुकामीनः, यथेष्टं गन्ता।

अवारपारात्यन्तानुकामं गामी। अवारपारश्च अत्यन्तश्च अनुकामं च तेषां समाहारद्वन्द्वः- अवारपारात्यन्तानुकामं, तद् अवारपारात्यन्तानुकामं द्वितीयान्तं, गामी इति गामिन्-शब्दस्य प्रथमान्तं रूपम्। **तत्सर्वादेः पथ्यङ्गकर्मपत्रपात्रं व्याप्नोति** से **तत्** और **यथामुखसंमुखस्य दर्शनः खः** से **खः** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

द्वितीया-समर्थ अवारपार, अत्यन्त और अनुकाम इन प्रातिपदिकों से गामी=जाने वाला- अर्थ में ख प्रत्यय होता है।

प्रत्ययार्थ-बोधक **गामी** पद भविष्यत्काल का सूचक है। **गम्**-धातु से **भविष्यति गम्यादयः** के अनुसार **आवश्यकाधमर्ण्ययोर्णिनिः** (३.३.१७०) से **णिनि** प्रत्यय होने पर उपधावृद्धि होकर **गामिन्** शब्द बना है। **अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः** (२.३.७०) सूत्र से षष्ठी-विभक्ति निषिद्ध होने के कारण **गामिन्** के योग में द्वितीया होती है। अत एव समर्थविभक्ति द्वितीया ही है।

अवारपारं गामी अवारपारीणः। भविष्य में आर-पार जाने वाला। **अवारपारं गामी** विग्रह करके **अवारपार+अम्** इस स्थिति में **अवारपारात्यन्तानुकामं गामी** सूत्र से ख-प्रत्यय होने पर खकार को ईनादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक अकार का लोप और रेफ से परे नकार को णत्व होकर **अवारपारीण** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **अवारपारीणः** सिद्ध हो जाता है।

विशेषः- राष्ट्रावारपाराद् घखौ (**सू.१३३५**) में एक वार्तिक पढ़ा गया था- **अवारपाराद्विगृहीताद्विपरीताच्चेति वक्तव्यम्**। तदनुसार तद्धित में **अवारपार** शब्द से प्रत्यय करते समय **अवार+पार** इस समुदाय के रूप में, **अवार** और **पार** इस विगृहीत रूप में और **पारावार** इस विपरीत रूप में भी ग्रहण होता है। तदनुसार **अवार, पार** और **पारावार** शब्दों से ख-प्रत्यय किया जाता है। **अवारपार** से तो किया जा चुका है।

अवारीणः। भविष्य में इस पार जाने वाला। **अवारं गामी** विग्रह करके **अवार+अम्** इस स्थिति में पूर्ववत् ख-प्रत्यय, ईनादेश, भसंज्ञक अकार का लोप और रेफ से परे नकार को णत्व होकर **अवारीण** तथा स्वादिकार्य से **अवारीणः** सिद्ध हो जाता है।

पारीणः। भविष्य में उस पार जाने वाला। **पारं गामी** विग्रह करके **पार+अम्** इस स्थिति में पूर्ववत् ख-प्रत्यय, ईनादेश, भसंज्ञक अकार का लोप और रेफ से परे नकार को णत्व होकर **पारीण** तथा स्वादिकार्य से **पारीणः** सिद्ध हो जाता है।

पारावारीणः। भविष्य में आर-पार जाने वाला। **पारावारं गामी** विग्रह करके **पारावार+अम्** इस स्थिति में पूर्ववत् ख-प्रत्यय, ईनादेश, भसंज्ञक अकार का लोप और रेफ से परे नकार को णत्व होकर **अवारीण** तथा स्वादिकार्य से **अवारीणः** सिद्ध हो जाता है।

अत्यन्तं गामी अत्यन्तीनः। भृशं गन्तेत्यर्थः। भविष्य में बहुत चलने वाला। **अत्यन्तं गामी** विग्रह करके **अत्यन्त+अम्** इस स्थिति में **अवारपारात्यन्तानुकामं गामी** सूत्र से ख-प्रत्यय होने पर खकार को ईनादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप करके **अत्यन्तीन** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **अत्यन्तीनः** सिद्ध हो जाता है।

अनुकामं गामी अनुकामीनः, यथेष्टं गन्ता। इच्छा के अनुसार चलने वाला। **कामम् अनतिक्रम्य** विग्रह में पदार्थानतिवृत्ति अर्थ में अव्ययीभाव समास होने के बाद

निष्पन्न **अनुकाम** शब्द से **अवारपारात्यन्तानुकामं गामी** सूत्र के द्वारा ख-प्रत्यय होने पर खकार को ईनादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **अनुकामीन** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **अनुकामीनः** सिद्ध हो जाता है।

१८१३. समांसमां विजायते ५।२।१२॥

यलोपोऽवशिष्टविभक्तेरलुक्च पूर्वपदे निपात्यते। समांसमीना गौः।
'समांसमीना सा यैव प्रतिवर्षं प्रसूयते' इत्यमरः।
'खप्रत्ययानुत्पत्तौ यलोपो वा वक्तव्यः' (वा.३१००)।
समां समां विजायते। समायां समायां वा।

समांसमां विजायते। समांसमां सप्तम्यन्तं, विजायते इत्यर्थबोधकं क्रियापदम्। **यथामुखसंमुखस्य दर्शनः खः** से **खः** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

सप्तमी-समर्थ समायां-समायाम् से ख-प्रत्यय के साथ यकारलोप और पूर्वपद में अवशिष्ट विभक्ति का अलुक् निपातन से किया जाता है।

सूत्रस्थ **विजायते** पद **वि**-पूर्वक **जन्**-धातु के लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन का रूप है। इसका अर्थ है- गर्भविमोचन-पूर्वक प्रसव करना। यहाँ प्रसवरूप अर्थ संवत्सर अर्थात् वर्ष का व्यापक नहीं है। अतः काल (वर्ष) का अत्यन्त संयोग न होने से **कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे** सूत्र से द्वितीया नहीं होती अपितु **समायाम्** यह सप्तमी विभक्ति है। **समा**-शब्द वर्ष का वाचक है। **समायाम्** का **नित्यवीप्सयोः (८.१.४)** सूत्र से द्वित्व होकर **समायां समायाम्** बन जाता है। सूत्र में **समायाम्+समायाम्** में निपातनात् समास और यकारलोप से निर्दिष्ट किया गया है। इस प्रकार **समायां समायाम्** सप्तम्यन्त प्रकृति-भाग के पूर्वपद में यकारलोप तथा अवशिष्ट विभक्ति का अलुक् तथा ख-प्रत्यय के सन्नियोग में निपातित है। उत्तरपदस्थ सप्तमी-विभक्ति का तो ख-प्रत्यय के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा होकर **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से लुक् हो जाता है।

समांसमीना गौः। प्रतिवर्ष बच्चा देने वाली गौ। **समांसमां विजायते** विग्रह करके निपातित **समांसमा**-शब्द से **समांसमां विजायते** सूत्र के द्वारा ख-प्रत्यय करके खकार के स्थान पर ईनादेश, भसंज्ञक अकार का लोप करके **समांसमीन** शब्द बनता है। स्त्रीत्वविवक्षा होने के कारण टाप् होकर **समांसमीना** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **समांसमीना** सिद्ध हो जाता है। भाष्यकार ने तो लाघवस्वरूप दोनों पदों में यकार का लुक् तथा अवशिष्ट आम् का अलुक् करने से **समांसमाम्** प्रकृति मानी है। तदनुसार सूत्र का अर्थ होगा- **'समायां समायां विजायते'**

अर्थ में सप्तम्यन्तद्वय 'समासमाम्' इस समुदाय से 'विजायते' अर्थ में ख-प्रत्यय होता है। इस तरह निपातन की आवश्यकता नहीं होगी।

'समांसमीना सा यैव प्रतिवर्षं प्रसूयते' इत्यमरः। अमरकोशकार कहते हैं कि जो गाय प्रतिवर्ष प्रसव करती है, उसे **समांसमीना** कहा जाता है।

खप्रत्ययानुत्पत्तौ यलोपो वा वक्तव्यः। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- ख-प्रत्यय की अनुत्पत्ति में यकार का लोप विकल्प से होता है। अर्थात् **विभाषा** अधिकार के कारण कदाचित् ख-प्रत्यय न होने के पक्ष में वाक्य ही रहता है। उस अवस्था में **समायां समायाम्** उभयत्र यकार का लोप विकल्प से होने के लिये वार्तिक प्रस्तुत किया है।

समां समां विजायते। समायां समायां वा। हर वर्ष बच्चा देने वाली गौ। यहाँ ख-प्रत्यय न होने का रूप दिया गया है। ऐसी अवस्था में **समायां समायाम्** में **खप्रत्ययानुत्पत्तौ यलोपो वा वक्तव्यः** वार्तिक से विकल्प से यकार का लोप होकर **समां समां विजायते** बनता है और लोप न होने के पक्ष में **समायां समायां विजायते** रह जाता है।

१८१४. अद्यश्वीनावष्टब्धे ५।२।१३॥

अद्य श्वो वा विजायते अद्यश्वीना वडवा। आसन्नप्रसवेत्यर्थः।
केचित्तु विजायते इति नानुवर्तयन्ति। अद्यश्वीनं मरणम्। आसन्नमित्यर्थः।

अद्यश्वीनावष्टब्धे। अद्यश्वीन लुप्तप्रथमान्तम्, अवष्टब्धे सप्तम्यन्तम्। **समां समां विजायते** से विजायते की और **यथामुखसंमुखस्य दर्शनः खः** से **खः** की अनुवृत्ति आती है। तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा का अधिकार है।

ख-प्रत्ययान्त 'अद्यश्वीन' शब्द का निपातन किया जाता है, **आसन्न**=निकट-प्रसव को कहना हो तो।

अद्य श्वो वा विजायते अद्यश्वीना वडवा। आसन्नप्रसवेत्यर्थः। आज-कल में बच्चा देने वाली गाय। **अश्व श्वो वा विजायते** विग्रह करके **अद्यश्वस्** इस अव्यय-समुदाय से **अद्यश्वीनावष्टब्धे** सूत्र के द्वारा निपातनात् समास के साथ ख-प्रत्यय होने पर खकार के स्थान पर ईनादेश और **अव्ययानां भमात्रे टिलोपः** वार्तिक से टिसंज्ञक भाग **अस्** का लोप करके **अद्यश्वीन** शब्द बनता है। स्त्रीलिंग होने के कारण टाप् होकर **अश्द्यश्वीना** बन जाने के बाद स्वादिकार्य होता है।

केचित्तु विजायते इति नानुवर्तयन्ति। अद्यश्वीनं मरणम्। आसन्नमित्यर्थः। कुछ वृत्तिकार प्रकृतसूत्र में **विजायते** पद की अनुवृत्ति नहीं करते। तदनुसार **आसन्न मरण** आदि अर्थों में भी यह निपातन साधु है। **अद्यश्वीनं मरणम्** (आज या कल में सम्भव मरण) ऐसा प्रयोग करते हैं। लोकव्यवहार में भी ऐसा प्रयोग मिलता है।

सूत्र में **अद्यश्वीन** में किसी लिङ्गविशेष का निर्देश नहीं है। यदि **अद्यश्वीना** ऐसा टाबन्त निर्देश होता तो **अद्यश्वीनः समूहः, अद्यश्वीनं गोमण्डलम्** आदि पुंल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्गयुक्त प्रयोग न बन पाते।

अब दो सूत्रों से ख-प्रत्ययान्त शब्दों का निपातन किया जा रहा है-

१८१५. आगवीनः ५।२।१४॥

आङ्पूर्वाद् गोः कर्मकरे ख-प्रत्ययो निपात्यते।
गोः प्रत्यर्पणपर्यन्तं यः कर्म करोति स आगवीनः।

आगवीनः। प्रथमान्तमेकपदमिदं सूत्रम्। **यथामुखसंमुखस्य दर्शनः खः** से **खः** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

आङ्-पूर्वक गो-शब्द से ख-प्रत्ययान्त 'आगवीन' शब्द का निपातन किया जाता है, कर्मकर वाच्य होने पर।

भाष्य में **गोराङ्पूर्वादा तस्य गोः प्रतिदानात्कारिणि खः** यह वार्तिक पठित है। तदनुसार **कर्मकर** अर्थ में ही ख-प्रत्यय विधान माना जाता है। कर्मकर-शब्द से वेतन लेकर काम करने वाला भृत्य आदि अपेक्षित है। यहाँ पर **आगवीन**-शब्द **ग्वाला** अर्थ में लाक्षणिक है, क्योंकि वह प्रातः स्वामी की गाय दुहता है तथा दिन में चराकर सायंकाल घर पहुँचा देता है।

गोः प्रत्यर्पणपर्यन्तं यः कर्म करोति स आगवीनः। दिन भर गौ चराकर सायंकाल उसे लौटाने तक कार्य करने वाला। **गोः प्रत्यर्पणपर्यन्तं यः कर्म करोति** विग्रह करके **आ+गो** इस स्थिति में **आगवीनः** सूत्र के द्वारा समास-सहित ख-प्रत्यय का निपातन होने पर खकार के स्थान पर ईनादेश हो जाता है और ओकार को अवादेश होकर **आगवीन** शब्द बनता है। स्वादिकार्य से **आगवीनः** सिद्ध हो जाता है। यहाँ समास के बाद **गो** के ओकार को उपसर्जन ह्रस्व करके उकार हो जाता है और पुनः **ओर्गुणः** सूत्र के द्वारा गुण होकर ओकार बनने पर अवादेश होता है।

१८१६. अनुग्वलङ्गामी ५।२।१५॥

अनुगु=गोः पश्चात्पर्याप्तं गच्छति अनुगवीनो गोपालः।

अनुग्वलङ्गामी। अनुगु इति अव्ययीभावसमासयुक्तमव्ययं पञ्चम्यर्थबोधकं पदम्, अलङ्गामी इति अर्थबोधकं पदं प्रथमान्तम्। **यथामुखसंमुखस्य दर्शनः खः** से **खः** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

द्वितीया-समर्थ 'अनुगु' इस अव्यय प्रातिपदिक से अलंगामी=पर्याप्त जाता है- अर्थ में ख-प्रत्यय होता है।

अनुगु=गोः पश्चात्पर्याप्तं गच्छति अनुगवीनो गोपालः। गायों के पीछे ठीक से चलने वाला। **गोः पश्चात्** लौकिक विग्रह और **गो+ङस् अनु** अलौकिक विग्रह में पश्चात्-अर्थ में अव्ययीभाव समास होने के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **अनु** की उपसर्जनसंज्ञा और उसका पूर्वप्रयोग, **गो**-शब्द की उपसर्जनसंज्ञा और उसको **गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य** सूत्र से ह्रस्व होकर **अनुगु** शब्द बनता है। उससे **अनुग्वलङ्गामी** सूत्र के द्वारा ख-प्रत्यय करने पर ईनादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **अनुगु+इन** बना है। उकार को **ओर्गुणः** सूत्र से गुण होने पर उसको अवादेश होकर **अनुगवीन** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **अनुगवीनः** सिद्ध हो जाता है।

१८१७. अध्वनो यत्खौ ५।२।१६॥

अध्वानमलं गच्छति अध्वन्यः, अध्वनीनः। 'ये चाभावकर्मणोः' (सू.११५४), 'आत्माध्वानौ खे' (सू.१६७१) इति सूत्राभ्यां प्रकृतिभावः।

अध्वनो यत्खौ। यत् च खश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो यत्खौ। अध्वनः पञ्चम्यन्तं, यत्खौ प्रथमान्तम्। **अनुग्वलङ्गामी** से **अलङ्गामी** की अनुवृत्ति आती है और **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

अलङ्गामी अर्थ में द्वितीया-समर्थ अध्वन्-शब्द से यत् और ख प्रत्यय होते हैं।

'ये चाभावकर्मणोः' (सू.११५४), 'आत्माध्वानौ खे' (सू.१६७१) इति सूत्राभ्यां प्रकृतिभावः। यहाँ अध्वन्-शब्द से यत्-प्रत्यय होने पर प्राप्त टिलोप का **ये चाभावकर्मणोः** से प्रकृतिभाव और ख-प्रत्यय होने पर **आत्माध्वानौ खे** से प्रकृतिभाव होने के कारण टिलोप नहीं होता। **ये चाभावकर्मणोः** का अर्थ है- भाव और कर्म अर्थ से भिन्न अन्य अर्थों में वर्तमान यकारादि तद्धित-प्रत्यय के परे रहते अन्नन्त भसंज्ञक अंग को प्रकृतिभाव होता है। **आत्माध्वानौ खे** का अर्थ है- भसंज्ञक आत्मन् और अध्वन् शब्दों में ख-प्रत्यय के परे रहते प्रकृतिभाव होता है।

अध्वानमलं गच्छति अध्वन्यः, अध्वनीनः। पर्याप्त मार्ग चलने वाला यात्री। **अध्वानम् अलं गच्छति** विग्रह करके **अध्वन्+अम्** इस स्थिति में **अध्वनो यत्खौ** सूत्र के द्वारा यत्-प्रत्यय होने पर **अध्वन्य** शब्द बना है और ख-प्रत्यय होने पर ईनादेश होकर **अध्वनीन** शब्द बना है। उभयत्र प्राप्त टिलोप का प्रकृतभाव भी हो जाता है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **अध्वन्यः** और **अध्वनीनः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

१८१८. अभ्यमित्राच्छ च ५।२।१७॥

चाद्यत्खौ। अभ्यमित्रीयः, अभ्यमित्र्यः, अभ्यमित्रीणः।
अमित्राभिमुखं सुष्ठु गच्छतीत्यर्थः।

अभ्यमित्राच्छ च। अभ्यमित्रात् पञ्चम्यन्तं, छ इति लुप्तप्रथमाकं पदं, चाव्ययम्। **अध्वनो यत्खौ** से **यत्खौ** की और **अनुग्वलङ्गामी** से **अलङ्गामी** की अनुवृत्ति आती है साथ ही **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार तो है ही।

अलङ्गामी अर्थ में द्वितीया-समर्थ अभ्यमित्र-शब्द से छ-प्रत्यय होता है तथा च-शब्द से यत् और ख प्रत्यय भी होते हैं।

चाद्यत्खौ। सूत्रोक्त च-शब्द से पूर्वसूत्र के यत् और ख प्रत्ययों का समुच्चय समझना चाहिये।

अभ्यमित्रीयः, अभ्यमित्र्यः, अभ्यमित्रीणः। अमित्राभिमुखं सुष्ठु गच्छतीत्यर्थः। वीरता से शत्रु का सामना करने वाला। **अमित्रः=शत्रुः, तम् अभिमुखो भूत्वा** विग्रह करके **अमित्र+अम् अभि** इस स्थिति में **लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये** (२.१.१४) सूत्र से समासादि होकर **अभ्यमित्र** शब्द बना है। **अभ्यमित्रम् अलङ्गामी** विग्रह करके **अभ्यमित्र**-शब्द से **अभ्यमित्राच्छ च** सूत्र से **छ** प्रत्यय होने पर छकार के स्थान पर **ईय्** आदेश हो जाता है और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **अभ्यमित्रीय** शब्द बना है। यत् प्रत्यय होने के पक्ष में अकारलोप होकर **अभ्यमित्र** शब्द बना है। **ख** प्रत्यय होने के पक्ष में खकार को ईनादेश, अकारलोप और रेफ से परवर्ती नकार को णत्व होकर **अभ्यमित्रीण** शब्द बना है। तीनों जगह एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **अभ्यमित्रीयः, अभ्यमित्र्यः** और **अभ्यमित्रीणः** ये रूप सिद्ध हो जाते हैं।

१८१९. गोष्ठात् खञ् भूतपूर्वे ५।२।१८॥

गोष्ठो भूतपूर्वः गौष्ठीनो देशः।

गोष्ठात् खञ् भूतपूर्वे। गोष्ठात् पञ्चम्यन्तं, खञ् प्रथमान्तं, भूतपूर्वे सप्तम्यन्तम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

भूतपूर्व अर्थ में विद्यमान प्रथमा-समर्थ गोष्ठ-शब्द से खञ् प्रत्यय होता है।

गोष्ठो भूतपूर्वः गौष्ठीनो देशः। जहाँ पहले गौयें बैठती थीं, पहले की गौशाला वाला स्थान। **गोष्ठो भूतपूर्वः** विग्रह करके **गोष्ठ+सु** इस स्थिमि में **गोष्ठात् खञ् भूतपूर्वे** सूत्र से खञ्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, खकार के स्थान पर ईनादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और अकारलोप होकर **गौष्ठीन** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **गौष्ठीनः** सिद्ध हो जाता है।

१८२०. अश्वस्यैकाहगमः ५।२।१९॥

एकाहेन गम्यते इत्येकाहगमः। आश्वीनोऽध्वा।

अश्वस्यैकाहगमः। अश्वस्य षष्ठ्यन्तम्, एकाहगमः प्रथमान्तम्। **गोष्ठात् खञ् भूतपूर्वे** से **खञ्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

षष्ठी-समर्थ अश्व-प्रातिपदिक से 'एक दिन में जाने योग्य मार्ग' अर्थ में खञ् प्रत्यय होता है।

एकाहेन गम्यते इत्येकाहगमः। एक दिन में ही जहाँ जाया जा सके, ऐसा स्थान **एकाहगम** कहलाता है। सूत्रस्थ **अश्वस्य** पद के निर्देश से षष्ठीसमर्थ विभक्ति का ग्रहण है।

आश्वीनोऽध्वा। घोड़े के एक दिन चलने योग्य मार्ग। **अश्वस्य एकाहगमः** विग्रह करके **अश्व+ङस्** इस स्थिति में **अश्वस्यैकाहगमः** सूत्र के द्वारा खञ् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, खकार के स्थान पर ईनादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और अकारलोप होकर **आश्वीन** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आश्वीनः** सिद्ध हो जाता है। प्राचीन काल में **आश्वीन** शब्द दूरी को नापने के लिये प्रयुक्त होता रहा होगा।

१८२१. शालीनकौपीने अधृष्टाकार्ययोः ५।२।२०॥

शालाप्रवेशमर्हति शालिनोऽधृष्टः। कूपपतनमर्हति कौपीनं पापम्।
तत्साधनत्वात् तद्वद् गोप्यत्वाद्वा पुरुषलिङ्गमपि, तत्सम्बन्धात् तदाच्छादनपि।

शालीनकौपीने अधृष्टाकार्ययोः। शालीनश्च कौपीनं च तयोः समाहारद्वन्द्वः शालीकौपीनं, तस्मिन् शालीकौपीने। अधृष्टश्च अकार्यं च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः- अधृष्टाकार्ये, तयोः- अधृष्टाकार्ययोः। **गोष्ठात् खञ् भूतपूर्वे** से **खञ्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

खञ्प्रत्ययान्त शालीन और कौपीन शब्द से यथासंख्य करके अधृष्ट और अकार्य वाच्य हों तो वे उसी रूप में निपातित किये जाते हैं।

जो धृष्ट नहीं है, उसे अधृष्ट कहा जायेगा और जो करने योग्य न हो उसे अकार्य कहा जायेगा। शब्द दो हैं और अर्थ भी दो। अतः **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** इस परिभाषा सूत्र की उपस्थिति से अधृष्ट अर्थ में **शालीन** और अकार्य अर्थ में **कौपीन** का निपातन किया जाता है।

शालाप्रवेशमर्हति शालीनोऽधृष्टः। जो घर में घुस जाये अर्थात् लज्जाशील। अथवा जो सभ्य होने के कारण विशिष्ट गृहों में प्रवेश करने योग्य हो, उसे **शालीन** कहा

जो है। अत एव वह **अधृष्ट** होता है अर्थात् धृष्ट नहीं है। **शालाप्रवेशम् अर्हति** विग्रह करके **शालाप्रवेश+अम्** इस स्थिति में **शालीनकौपीने अधृष्टाकार्ययोः** सूत्र के द्वारा निपातनवश खञ्-प्रत्यय के साथ उत्तरपद **प्रवेश**-शब्द का लोप किया जाता है। खकार को ईनादेश होकर **शाला+ईन** बना है। भसंज्ञक अकार का लोप होकर **शालीन** शब्द बनता है और स्वादिकार्य से **शालीनः** सिद्ध हो जाता है।

कूपपतनमर्हति कौपीनं पापम्। कूएँ में गिरने योग्य कार्य, पाप। पतन होने लायक कार्य को **कौपीन** कहा जाता है। **कूपपतनम् अर्हति** विग्रह करके **कूपपतन+अम्** इस स्थिति में **शालीनकौपीने अधृष्टाकार्ययोः** सूत्र के द्वारा निपातनवश खञ्-प्रत्यय के साथ उत्तरपद **पतन**-शब्द का लोप किया जाता है। खकार को ईनादेश होकर **कूप+ईन** बना है। आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **कौपीन** शब्द बनता है तथा स्वादिकार्य से **कौपीनम्** सिद्ध हो जाता है।

तत्साधनत्वात् तद्वद् गोप्यत्वाद्वा पुरुषलिङ्गमपि, तत्सम्बन्धात् तदाच्छादनमपि। कूप में पतन के योग्य दुराचरण का साधन होने के कारण और पाप की तरह गोपनीय रखने योग्य होने के कारण पुरुष के गुप्त-इन्द्रिय को भी **कौपीन** कहा जाता है और तादृश गुप्त-इन्द्रिय को ढकने वाला होने के कारण लँगोटी को भी लक्षणावृत्ति से **कौपीन** कहा जाता है। लक्षणा से पुरुषेन्द्रिय और लँगोटी अर्थ में कोपीनत्व का आरोप होता है। आरोप का कारण पापसाधनत्व और गोप्यत्व आदि हैं। इस तरह **कौपीन** शब्द के तीन अर्थ होते हैं- १. पाप, २. पुरुष-गुप्तांग और ३. लँगोटी।

१८२२. व्रातेन जीवति ५।२।२१॥

व्रातेन शरीरायासेन जीवति न तु बुद्धिवैभवेन स व्रातीनः।

व्रातेन जीवति। व्रातेन तृतीयान्तं, जीवति अर्थबोधकं क्रियापदम्। **गोष्ठात् खञ् भूतपूर्वे** से **खञ्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

तृतीयासमर्थ 'व्रात' शब्द से जीवति=जीता है- अर्थ में खञ् प्रत्यय होता है।

यहाँ **व्रातेन** के निर्देश से समर्थ-विभक्ति तृतीया मानी जाती है। **जीवति** से अर्थ-निर्देश किया गया है। भिन्न-भिन्न जाति और अनियत वृत्ति वाले मनुष्य जो कि शारीरिक परिश्रम करके जीवन-निर्वाह करते हैं, उन मनुष्यों के समूह को **व्रात** कहा जाता है। उनका जो जीविकोपार्जन का काम है, उसे भी लक्षणावृत्ति से **व्रात** ही कहा जाता है।

व्रातेन शरीरायासेन जीवति न तु बुद्धिवैभवेन स व्रातीनः। जो व्रात=शारीरिक श्रम से जीता है, न कि बुद्धिवैभव से उसे **व्रातीन** कहा जाता है। **व्रातेन जीवति** विग्रह

करके **व्रात+टा** इस स्थिति में **व्रातेन जीवति** सूत्र से खञ्प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, पर्जन्यवल्लक्षणन्यायेन आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **व्रातीन** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकरह **व्रातीनम्** सिद्ध हो जाता है।

१८२३. साप्तपदीनं सख्यम् ५।२।२२॥

सप्तभिः पदैरवाप्यते साप्तपदीनम्।

साप्तपदीनं सख्यम्। साप्तपदीनं प्रथमान्तं, सख्यं प्रथमान्तम्। **गोष्ठात् खञ् भूतपूर्वे** से **खञ्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

तृतीयासमर्थ 'सप्तपद' शब्द से सख्यम्=मित्रता अर्थ में खञ्प्रत्यय का निपातन करके साप्तपदीनम् को साधु माना जाता है।

यद्यपि समर्थ-विभक्ति का सूत्र में निर्देश नहीं है तथापि योग्यतावश तृतीया-विभक्ति को ही मानना चाहिये।

सप्तभिः पदैरवाप्यते साप्तपदीनम्। सात पग चल कर मिलने वाली मित्रता। सप्तभिः पदैः **अवाप्यते** विग्रह करके तद्धितार्थविषयक समासादि से निष्पन्न **सप्तपद** शब्द से **साप्तपदीनं सख्यम्** सूत्र के द्वारा खञ्प्रत्ययान्त **साप्तपदीन** शब्द का निपातन होता है अर्थात् खञ्-प्रत्यय होकर आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करके साप्तपदीन शब्द बनता है। स्वादिकार्य से **साप्तपदीनम्** सिद्ध हो जाता है। शास्त्रीय-मर्यादानुसार विवाह में सप्तपदी-प्रक्रिया से पति-पत्नी में मित्र-भाव की प्राप्ति कही गयी है। उसी प्रकार थोड़ी देर के सहवास से या वार्तालाप के सात शब्दों से होनी वाली मित्रता को भी साप्तपदीनम् कहा जा सकता है, क्योंकि यहाँ **पद** शब्द का कदम एवं सम्भाषण दोनों अर्थ है।

१८२४. हैयङ्गवीनं सञ्ज्ञायाम् ५।२।२३॥

ह्योगोदोहस्य हियङ्गुरादेशो विकारार्थे खञ् च निपात्यते।

दुह्यत इति दोहः क्षीरम्। ह्योगोदोहस्य विकारो हैयङ्गवीनम्=नवनीतम्।

हैयङ्गवीनं सञ्ज्ञायाम्। हैयङ्गवीनं प्रथमान्तं, संज्ञायां सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **गोष्ठात् खञ् भूतपूर्वे** से **खञ्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

विकार अर्थ में 'ह्योगोदोह' शब्द के स्थान पर 'हियङ्गु' आदेश और उसके संनियोग में खञ् प्रत्यय का निपातन होता है।

दुह्यते इति दोहः क्षीरम्। जिसका दोहन होता है, वह **दोह** है। दूध ही दोह है।

ह्यो गोदोहस्य विकारो हैयङ्गवीनं नवनीतम्। अर्थात् ह्यस्=कल वाला (दुहा हुआ) **गोदोहः**=गाय का दूध। उसके विकार अर्थात् कल के दूध से दही और उससे निर्मित ताजा-ताजा मक्खन अर्थ में इस सूत्र से **ह्योगोदोह** शब्द के स्थान पर **हियङ्गु** आदेश और साथ में **खञ्** प्रत्यय का भी निपातन सूत्रकार ने किया है। तात्पर्य यह है कि **हैयङ्गवीनम्** को बनाने के लिए प्रक्रिया न दिखाकर सूत्र में ही सिद्ध प्रयोग का पठन सूत्रकार ने किया है। अब इसकी सिद्धि में जो भी प्रत्यय और **ह्योगोदोह** प्रकृति के स्थान पर जो भी आदेश अभीष्ट हो, वह करने के लिए हम स्वतन्त्र हैं। अब पाणिनि जी के द्वारा निपातित **हैयङ्गवीन** के बनाने में **ह्योगोदोह** के स्थान पर **हियङ्गु** आदेश और उसके साथ **खञ्** प्रत्यय का होना सम्भव है। इस तरह **ह्यो-गोदोहस्य विकारः** में उक्त कार्य करके **हियङ्गु+ख** बना। **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **खकार** के स्थान पर **ईन्** आदेश होकर **हियङ्गु+ईन** बना। आदिवृद्धि करके **हैयङ्गु+ईन** बना। उकार को **ओर्गुणः** से गुण होकर **अवादेश** करने पर **हैयङ्गवीन** बना। स्वादिकार्य करके **हैयङ्गवीनम्** सिद्ध हो जाता है। इसका अर्थ है नवनीत=मक्खन।

१८२५. तस्य पाकमूले पील्वादिकर्णादिभ्यः कुणब्जाहचौ ५।२।२४॥

पीलूनां पाकः पीलुकुणः। कर्णस्य मूलं कर्णजाहम्।

तस्य पाकमूले पील्वादिकर्णादिभ्यः कुणब्जाहचौ। पाकश्च मूलञ्च तयोः समाहारद्वन्द्वः पाकमूलं, तस्मिन् पाकमूले। पीलुरादिर्येषां ते पील्वादयः, बहुव्रीहिः। कर्ण आदिर्येषां ते कर्णादयः, बहुव्रीहिः। पील्वादयश्च कर्णादयश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः पील्वादिकर्णादयस्तेभ्यः पील्वादिकणादिभ्यः। कुणप् च जाहच् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः कुणब्जाहचौ। तस्य षष्ठ्यन्तं, पाकमूले सप्तम्यन्तं, पील्वादिकर्णादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, कुणब्जाहचौ प्रथमान्तम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है। उद्देश्यबोधक **पील्वादि** और **कर्णादि** दो हैं। इसी तरह अर्थबोधक **पाक** और **मूल** भी दो हैं और प्रत्यय भी दो ही हैं। अतः **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** की उपस्थिति होती है।

षष्ठी-समर्थ पील्वादि और कर्णादि प्रातिपदिकों से क्रमशः पाक तथा मूल अर्थ में कुणप् और जाहच् प्रत्यय होते हैं।

तस्य पद षष्ठी-समर्थ-विभक्ति का सूचक है। यथासंख्य होने पर **पील्वादि** से **पाक** अर्थ में **कुणप्** प्रत्यय और **कर्णादि** से **मूल** अर्थ में **जाहच्** प्रत्यय होंगे। **कुणप्** में पकार और **जाहच्** में चकार इत्संज्ञक हैं, क्रमशः **कुण** और **जाह** का अवशेष होता

है। **लशक्वतद्धिते** सूत्र में **अतद्धिते** पद के कारण ककार की इत्संज्ञा नहीं होती। यद्यपि **जाहच्** में जकार की **चुटू** से इत्संज्ञा प्राप्त होती है, तथापि इत्संज्ञा का कोई फल नहीं है, अतः इत्संज्ञा नहीं होती। यदि कहो कि इत्संज्ञा का फल लोप है तो वह कथन ठीक नहीं है, क्योंकि अन्य फल के बिना केवल लोप के लिये इत्संज्ञा करना व्यर्थ है- **प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम्।**

पीलूनां पाकः पीलुकुणः। पीलु फलों का पकना। **पीलूनां** पाकः विग्रह करके **पीलु+आम्** इस स्थिति में **तस्य पाकमूले पील्वादिकर्णादिभ्यः कुणब्जाहचौ** सूत्र से कुणप्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **पीलुकुण** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पीलुकुणः** सिद्ध हो जाता है।

कर्णस्य मूलं कर्णजाहम्। कान का मूलस्थान, नीचला भाग। **कर्णयोः मूलम्** विग्रह करके **कर्ण+ओस्** इस स्थिति में **तस्य पाकमूले पील्वादिकर्णादिभ्यः कुणब्जाहचौ** सूत्र से जाहच्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **कर्णजाह** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कर्णजाहः** सिद्ध हो जाता है।

पील्वादिगणः- पीलु, कर्कन्धू, (कर्कन्धु), शमी, करीर, बल, (कुवल), बदर, अश्वत्थ, खदिर।

कर्णादिगणः- कर्ण, अक्षि, नख, केश, पाद, गुल्फ, भ्रू, शृङ्ग, दन्त, ओष्ठ, पृष्ठ।

१८२६. पक्षात्तिः ५।२।२५॥

मूलग्रहणमात्रमनुवर्तते। **पक्षस्य मूलं पक्षतिः।**

पक्षात्तिः। पक्षात् इति पञ्चम्यन्तं, तिः प्रथमान्तम्। **तस्य पाकमूले पील्वादिकर्णादिभ्यः कुणब्जाहचौ** से **तस्य मूले** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

षष्ठी-समर्थ पक्ष-शब्द से मूल अर्थ में ति-प्रत्यय होता है।

मूलग्रहणमात्रमनुवर्तते। अर्थात् पूर्वसूत्र में **पाकमूले** ऐसा एकयोगनिर्दिष्ट होने पर भी **क्वचिदेकदेशोऽप्यनुवर्तते** परिभाषा के अनुसार एकदेश केवल **मूले** का अनुवर्तन माना जाता है, **पाके** का नहीं। भाष्यकार ने एकदेशानुवृत्ति के लिये अनेक उदाहरण दिये हैं।

पक्षस्य मूलं पक्षतिः। प्रतिपदा तिथि या पंख की जड़। **पक्षस्य मूलम्** विग्रह करके **पक्ष+ङस्** इस स्थिति में **पक्षात्तिः** सूत्र के द्वारा **ति** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **पक्षति** शब्द बनता है और स्वादिकार्य होकर **पक्षतिः** सिद्ध हो जाता है।

१८२७. तेन वित्तश्चुञ्चुप्चणपौ ५।२।२६॥

यकारः प्रत्ययययोरादौ लुप्तनिर्दिष्टस्तेन चस्य नेत्सञ्ज्ञा।
विद्यया वित्तो विद्याचुञ्चुः। विद्याचणः।

तेन वित्तश्चुञ्चुप्चणपौ। चुञ्चुप् च चणप् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः चुञ्चुप्चणपौ। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से वित्तः=प्रतीत, ज्ञात, प्रसिद्ध अर्थ में चुञ्चुप् और चणप् प्रत्यय होते हैं।

यकारः प्रत्ययययोरादौ लुप्तनिर्दिष्टस्तेन चस्य नेत्सञ्ज्ञा। भाष्यकार के अनुसार पाणिनि जी ने **यूचुञ्चुप्** और **यूचणप्** प्रत्ययों का विधान किया है किन्तु सूत्र में यकार का दर्शन इस लिये नहीं होता, क्योंकि यकार का **लोपो व्योर्वलि** सूत्र से लोप हो जाता है। यकार आदि में पठित होने के कारण उक्त प्रत्ययों के चकार प्रत्ययादि नहीं बनते, अतः **चुटू** से चकार का लोप नहीं होता। **चुटू** सूत्र में **आदिर्ञिटुडवः** सूत्र से **आदिः** की अनुवृत्ति मानी जाती है। दूसरा समाधान यह भी दिया जाता है कि उक्त प्रत्ययों के आदि में यकार नहीं था किन्तु **षचुटवः प्रत्ययस्य** की जगह योगविभाग करके अलग-अलग **षः प्रत्ययस्य** और **चुटू** के पढ़ने से चकार की इत्संज्ञा होने के सम्बन्ध में **चुटू** की प्रवृत्ति अनित्य मानी गयी है। पकार इत्संज्ञक हैं, **चुञ्चु** और **चण** अवशिष्ट रहते हैं।

विद्यया वित्तो विद्याचुञ्चुः। विद्याचणः। विद्या के द्वारा प्रसिद्ध व्यक्ति। **विद्यया वित्तः** विग्रह करके **विद्या+टा** इस स्थिति में **तेन वित्तश्चुञ्चुप्चणपौ** सूत्र के द्वारा **चुञ्चुप्** प्रत्यय होने के पक्ष में अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **विद्याचुञ्चु** शब्द बना है। **चणप्** प्रत्यय होने के पक्ष में **विद्याचण** बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **विद्याचुञ्चुः** और **विद्याचणः** ये रूप सिद्ध हो जाते हैं।

१८२८. विनञ्भ्यां नानाञौ नसह ५।२।२७॥

असहार्थे पृथग्भावे वर्तमानाभ्यां स्वार्थे प्रत्ययौ। विना। नाना।

विनञ्भ्यां नानाञौ नसह। विश्च नञ् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो विनञौ, ताभ्यां विनञ्भ्याम्। नाश्च नाञ् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वौ नानाञौ। विनञ्भ्यां पञ्चम्यन्तं, नानाञौ प्रथमान्तं, नसह अव्ययसंघातः। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

नसह=असहाय (पृथग्भाव) अर्थ में विद्यमान वि-शब्द और नञ्-शब्दों से स्वार्थ में यथासंख्य से ना और नाञ् प्रत्यय होते हैं।

सूत्र में प्रत्ययार्थ का निर्देश नहीं है, अतः स्वार्थ में प्रत्यय होंगे। प्रकृतिवाची दो शब्द हैं- **वि** तथा **नञ्**। ये दोनों ही अव्यय-शब्द हैं। इसी तरह प्रत्यय भी दो हैं- **ना** और **नाञ्**। अतः **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** की प्रवृत्ति होती है। फलतः **वि**-शब्द से **ना** और **नञ्** शब्द से **नाञ्** प्रत्यय होता है। ञित्करण आदिवृद्धि और आद्युदात्त के लिये है। एतद्द्वयप्रत्ययान्त शब्द भी अव्ययसंज्ञक होते हैं। **नसह** यह शब्दसंघात है और इसका अर्थ है- **सहार्थो न**=सह का विरोधी=असहाय, अकेला, बिना।

विना। रहित। **वि** इस अव्यय से **विनञ्भ्यां नानाञौ नसह** सूत्र से **ना** प्रत्यय होने पर **विना** शब्द बनता है। इसकी अव्ययसंज्ञा होने के कारण इससे आगत सुप् प्रत्यय का **अव्ययादाप्सुपः** सूत्र से लुक् हो जाता है- **विना**।

नाना। अनेक, नसह, पृथक्। **नञ् (न)** इस अव्यय से **विनञ्भ्यां नानाञौ नसह** सूत्र से **नाञ्** प्रत्यय होने पर **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि होकर **नाना** शब्द बनता है। इसकी भी अव्ययसंज्ञा होने के कारण इससे आगत सुप् प्रत्यय का **अव्ययादाप्सुपः** सूत्र से लुक् हो जाता है- **नाना**।

सूत्रोक्त **नसह** शब्द प्रत्ययार्थ नहीं है अपितु प्रकृति का विशेषण है। यदि **नसह** को प्रत्ययार्थ मान लिया जाता तो **नाना** शब्द का अर्थ ही बदल जाता, क्योंकि प्रकृति के रूप में **न** शब्द तो स्वयं निषेधार्थक है और पृथक् अर्थ **नसह** में होने वाले **ना** प्रत्यय से **नसह** अर्थ गम्यमान होगा। तब **न+नसह** से सहार्थ की प्रतीति होने लगेगी। **द्वौ प्रतिषेधौ प्रकृतमेवार्थं गमयतः** (दो निषेध प्रकृत अर्थ का ही बोध कराते हैं)। अतः प्रकृत्यर्थ में ही प्रत्यय का विधान माना गया है। प्रकृत्यर्थ में ही प्रत्यय होने पर ऐसे प्रत्यय को स्वार्थिक प्रत्यय कहा जाता है- **अनिर्दिष्टार्थाः प्रत्ययाः स्वार्थे भवन्ति**।

१८२९. वेः शालच्छङ्कटचौ ५।२।२८॥

क्रियाविशिष्टसाधनवाचकात् स्वार्थे।

विस्तृतं विशालम्। विशङ्कटम्।

वेः शालच्छङ्कटचौ। शालच् च शङ्कटच् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः शालच्छङ्कटचौ। वेः पञ्चम्यन्तं, शालच्छङ्कटचौ प्रथमान्तम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

क्रियाविशिष्ट कारकवाची उपसर्गरूप वि-शब्द से स्वार्थ में शालच् और शङ्कटच् प्रत्यय होते हैं।

दोनों प्रत्ययों में चकार इत्संज्ञक है, **शाल** और **शङ्कट** अवशिष्ट रहते हैं।

यहाँ **वि** प्रातिपदिक उपसर्ग-गत अर्थ को लेकर प्रत्यय को उत्पन्न करता है, क्योंकि उपसर्ग धात्वर्थ के विशेषण होते हैं। जहाँ साक्षात् धात्वर्थ नहीं होता, वहाँ अर्थ उपसर्ग के अन्तर्गत माना जाता है। जैसा कि भाष्य में कहा गया है- **यत्र कश्चित्**

क्रियावाची शब्दः प्रयुज्यते तत्र क्रियाविशेषमाहुः, यत्र हि न प्रयुज्यते ससाधनां तत्र क्रियामाहुः। यह बात आगे के उपसर्ग-सम्बन्धी सूत्रों में भी समझना चाहिये।

विस्तृतं विशालम्। फैला हुआ। **विस्तृतम्** अर्थ में विद्यमान **वि**-शब्द से **वेः शालच्छङ्कटचौ** सूत्र से **शालच्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप होकर **विशाल** शब्द बना है। स्वादिकार्य होकर **विशालम्** सिद्ध हो जाता है।

विशङ्कटम्। बृहत्, विस्तृत। **विस्तृतम्** अर्थ में ही विद्यमान **वि**-शब्द से **वेः शालच्छङ्कटचौ** सूत्र से **शङ्कटच्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप होकर **विशङ्कट** शब्द बना है। स्वादिकार्य होकर **विशङ्कटम्** सिद्ध हो जाता है।

१८३०. संप्रोदश्च कटच् ५।२।२९॥

संकटम्। प्रकटम्। उत्कटम्। चाद् विकटम्।

'अलाबूतिलोमाभङ्गाभ्यो रजस्युपसंख्यानम्' (वा.३१०७)।

अलाबूनां रजः अलाबूकटम्।

'गोष्ठजादयः स्थानादिषु पशुनामभ्यः' (वा.३१०९)। **गवां स्थानं गोगोष्ठम्।**

'सङ्घाते कटच्' (वा.३११०)। **अवीनां सङ्घातः अविकटः।**

'विस्तारे पटच्' (वा.३११५)। **अविपटः।**

'द्वित्वे गोयुगच्' (वा.३११६)। **द्वौ वृषौ वृषगोयुगम्।**

'षट्त्वे षड्गवच्' (वा.३११७) **अश्वषड्गवम्।**

'स्नेहे तैलच्' (वा.३११८)। **तिलतैलम्, सर्षपतैलम्।**

'भवने क्षेत्रे शाकटशाकिनौ' (वा.३११९)। **इक्षुशाकटम्, इक्षुशाकिनम्।**

संप्रोदश्च कटच्। सम् च प्रश्च उत् च तेषां समाहारद्वन्द्वः सम्प्रोद्, तस्मात् सम्प्रोदः पञ्चम्यन्तं, चाव्ययं, कटच् प्रथमान्तम्। च-शब्द से **वेः शालच्छङ्कटचौ** से **वेः** की अनुवृत्ति मानी जाती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

सम्, प्र, उत् और वि इन क्रियाविशिष्ट-साधनवाची उपसर्ग-प्रातिपदिकों से स्वार्थ में कटच् प्रत्यय होता है।

कटच् में चकार इत्संज्ञक है। चित्करण स्वरार्थ है। इस सूत्र के सभी उदाहरण रूढ़ शब्द हैं, किसी तरह व्युत्पत्ति की गयी है।

सङ्कटम्। दुःख। **संहतम्** अर्थ में विद्यमान **सम्**-शब्द से **सम्प्रोदश्च कटच्** सूत्र से **कटच्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप और **सम्** के मकार को अनुस्वार और उसको परसवर्ण होकर **सङ्कट** शब्द बना है। स्वादिकार्य होकर **सङ्कटम्** सिद्ध हो जाता है।

प्रकटम्। दिखायी पड़ने वाला। **प्रज्ञातम्** अर्थ में विद्यमान **प्र**-शब्द से **सम्प्रोदश्च**

कटच् सूत्र से **कटच्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप होकर **प्रकट** शब्द बना है। स्वादिकार्य होकर **प्रकटम्** सिद्ध हो जाता है।

उत्कटम्। बड़ा हुआ। **उद्भूतम्** अर्थ में विद्यमान **उत्**-शब्द से **सम्प्रोदश्च कटच्** सूत्र से **कटच्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप होकर **उत्कट** शब्द बना है। स्वादिकार्य होकर **उत्कटम्** सिद्ध हो जाता है।

चाद् विकटम्। प्रकृतसूत्र में पठित च-शब्द से पूर्वसूत्र के **वेः** की अनुवृत्ति होने के कारण **वि**-शब्द से भी **सम्प्रोदश्च कटच्** सूत्र से **कटच्** प्रत्यय होता है। अनुबन्धलोप होकर **विकट** शब्द बना है। स्वादिकार्य होकर **विकटम्** सिद्ध हो जाता है। इसका अर्थ है- विचित्र, कठिन।

प्रादियों के अतिरिक्त भी कुछ अन्य प्रातिपदिकों से विभिन्न अर्थों में उक्त प्रत्ययों के सदृश अन्य प्रत्ययों का विधान बतलाने के लिये आठ वार्तिक प्रस्तुत किये जा रहे हैं-

अलाबूतिलोमाभङ्गाभ्यो रजस्युपसंख्यानम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- षष्ठ्यन्त **अलाबु, तिल, उमा** तथा **भङ्गा** इन प्रातिपदिकों से **धूल** अभिधेय होने पर **कटच्** प्रत्यय होता है। विकारार्थ प्रत्ययों का यह अपवाद है।

अलाबूनां रजः अलाबूकटम्। लौकी (घिया) की धूल। **अलाबूनां रजः** विग्रह करके **अलाबूतिलोमाभङ्गाभ्यो रजस्युपसंख्यानम्** वार्तिक के द्वारा **कटच्** प्रत्यय होने पर **अलाबूकट** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **अलाबूकटम्** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **तिलानां रजः तिलकटम्, उमानां रजः उमाकटम्, भङ्गानां रजः भङ्गाकटम्** आदि स्थलों पर भी समझना चाहिये।

गोष्ठजादयः स्थानादिषु पशुनामभ्यः। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- पशुओं के नाम से स्थान आदि अभिधेय होने पर **गोष्ठच्** प्रत्यय होता है। चकार इत्संज्ञक है, **गोष्ठ** बचता है।

गवां स्थानं गोगोष्ठम्। गायों के रहने का स्थान, गौशाला। **गवां स्थानम्** विग्रह करके **गो+आम्** इस स्थिति में **गोष्ठजादयः स्थानादिषु पशुनामभ्यः** वार्तिक के द्वारा **गोष्ठच्** प्रत्यय होने पर **गोगोष्ठ** और स्वादिकार्य से **गोगोष्ठम्** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **अजागोष्ठम्, महिषगोष्ठम्** इत्यादि जगहों पर समझना चाहिये।

सङ्घाते कटच्। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- षष्ठ्यन्त पशुवाची शब्दों से समुदाय अर्थ अभिधेय होने पर कटच्-प्रत्यय होता है।

अवीनां सङ्घातः अविकटः। भेंड़ों का झुण्ड। **अवीनां सङ्घातः** विग्रह करके **अवि+आम्** इस स्थिति में **सङ्घाते कटच्** वार्तिक के द्वारा कटच्-प्रत्यय होने पर **अविकट** शब्द बनता है। स्वादिकार्य से **अविकटः** सिद्ध हो जाता है।

विस्तारे पटच्। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- षष्ठ्यन्त पशुवाची शब्दों से **विस्तार** अर्थ अभिधेय होने पर **पटच्** प्रत्यय होता है।

अविपटः। भेंड़ों का विस्तार। **अवीनां विस्तारः** विग्रह करके **अवि+आम्** इस स्थिति में **विस्तारे पटच्** वार्तिक के द्वारा पटच्-प्रत्यय होने पर **अविपट** शब्द बनता है। स्वादिकार्य से **अविपटम्** सिद्ध हो जाता है।

द्वित्वे गोयुगच्। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- पशुवाची शब्दों से **दो का कथन** होने पर **गोयुगच्** प्रत्यय होता है।

द्वौ वृषौ वृषगोयुगम्। दो बैल। **द्वौ वृषौ** विग्रह करके **वृष+औ** इस स्थिति में **द्वित्वे गोयुगच्** वार्तिक से **गोयुगच्** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **वृषगोयुग** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वृषगोयुगम्** सिद्ध हो जाता है।

षट्त्वे षड्गवच्। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- पशुवाची प्रातिपदिकों से **छह का कथन** होने पर **षड्गवच्** प्रत्यय होता है।

अश्वषड्गवम्। छह घोड़े। **षड् अश्वाः** विग्रह करके **अश्व+जस्** स्थिति में **षट्त्वे षड्गवच्** वार्तिक से **षड्गवच्** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **अश्वषड्गव** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **अश्वषड्गवम्** सिद्ध हो जाता है।

स्नेहे तैलच्। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- षष्ठ्यन्त स्निग्ध धान्यों से **तेल** अर्थ अभिधेय होने पर **तैलच्** प्रत्यय होता है। चकार इत्संज्ञक है।

तिलतैलम्। तिल का तेल। **तिलानां स्नेहः** विग्रह करकें **तिल+आम्** इस स्थिति में **स्नेहे तैलच्** वार्तिक से **तैलच्** प्रत्यय होने पर **तिलतैल** शब्द बन जाता है और स्वादिकार्य से **तिलतैलम्** सिद्ध हो जाता है।

सर्षपतैलम्। सरसों का तेल। **सर्षपाणां स्नेहः** विग्रह करके **सर्षप+आम्** इस स्थिति में **स्नेहे तैलच्** वार्तिक से **तैलच्** प्रत्यय होने पर **सर्षपतैल** शब्द बन जाता है और स्वादिकार्य से **सर्षपतैलम्** सिद्ध हो जाता है।

वैसे **तिलेभ्यः आगतम्, तिलस्य इदम्** आदि अर्थों में **तिल**-शब्द से अण् आदि प्रत्यय होकर भी **तैल** शब्द बनता है। इस तरह निष्पन्न **तैल**-शब्द केवल तिल के तेल का वाचक होता है किन्तु बाद में अन्य तिलहनवाची-शब्दों से भी **तैलच्** प्रत्यय संयुक्त करके **सर्षपतैलम्, इङ्गुदीतैलम्** आदि भी प्रयोग होने लगे हैं। भाष्यकार ने भी **स्नेहने तैलशब्दश्च प्रत्ययो वक्तव्यः** कह कर इसकी मान्यता दी है। आजकल तो मिट्टी का तेल, गाड़ी का तेल (पेट्रोल, डीजल) आदि के लिये भी **तेल** शब्द का प्रयोग किया जाता है।

भवने क्षेत्रे शाकटशाकिनौ। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- किसानों के द्वारा बोए जाने वाले खेत अभिधेय होने पर मूल-वाची शब्दों से शाकट और शाकिन प्रत्यय होते हैं।

इक्षुशाकटम्, इक्षुशाकिनम्। ईख, गन्ना उत्पन्न होने वाला खेत। **इक्षूणां भवनं क्षेत्रम्** विग्रह करके **इक्षु+आम्** इस स्थिति में **भवने क्षेत्रे शाकटशाकिनौ** वार्तिक से **शाकट** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **इक्षुशाकट** शब्द बनता है तथा **शाकिन** प्रत्यय होने पर **इक्षुशाकिन** शब्द बनता है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **इक्षुशाकटम्** और **इक्षुशाकिनम्** रूप सिद्ध हो जाते हैं।

१८३१. अवात् कुटारच्च ५।२।३०॥

चात् कटच्। अवाचीनोऽवकुटारः, अवकटः।

अवात्कुटारच्च। अवात् पञ्चम्यन्तं, कुटारच् प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है। च-शब्द से **संप्रोदश्च कटच्** के **कटच्** की भी अनुवृत्ति मानी जाती है।

क्रिया-विशिष्ट साधन-वाचक अव-उपसर्ग रूप प्रातिपदिक से स्वार्थ में कुटारच् प्रत्यय होता है और कटच् प्रत्यय भी।

अवाचीनोऽवकुटारः, अवकटः। नीचे की ओर झुका हुआ। **अवाचीनः** विग्रह करके **अव** इस अव्यय से **अवात्कुटारच्च** सूत्र से **कुटारच्** प्रत्यय होने पर **अवकुटार** शब्द बना है तथा **कटच्** प्रत्यय होने के पक्ष में **अवकुट** बना है। उभयत्र स्वादिकार्य होकर **अवकुटारः** और **अवकटः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

१८३२. नते नासिकायाः सञ्ज्ञायां टीटञ्नाटञ्भ्रटचः ५।२।३१॥

अवाद् इत्येव। नतं नमनम्। नासिकाया नतं अवटीटम्, अवनाटम्, अवभ्रटम्, तद्योगान्नासिका अवटीटा, पुरुषोऽप्यवटीटः।

नते नासिकायाः सञ्ज्ञायां टीटञ्नाटञ्भ्रटचः। टीटच् च नाटच् च भ्रटच् च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः- टीटञ्नाटञ्भ्रटचः। नते सप्तम्यन्तं, नासिकायाः षष्ठ्यन्तं, संज्ञायां सप्तम्यन्तं, टीटञ्नाटञ्भ्रटचः प्रथमान्तम्। **अवात्कुटारच्च** से **अवात्** की अनुवृत्ति है और **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

क्रिया-विशिष्ट साधन-वाचक अव-उपसर्ग रूप प्रातिपदिक से नासिका-सम्बन्धी झुकाव कहने पर संज्ञा के विषय में टीटच्, नाटच् और भ्रटच् प्रत्यय होते हैं।

अवाद् इत्येव। पूर्वसूत्र से **अवात्** की अनुवृत्ति होने के कारण **अव** उपसर्ग से ही ये प्रत्यय होते हैं।

नतं नमनम्। अर्थात् सूत्रोक्त **नत**-शब्द का अर्थ है- झुकना, झुकाव, झुका हुआ। तीनों प्रत्ययों में चकार इत्संज्ञक है, **टीट, नाट** और **भ्रट** ही प्रत्यय हैं।

नासिकाया नतं अवटीटम्, अवनाटम्, अवभ्रटम्, तद्योगान्नासिका अवटीटा, पुरुषोऽप्यवटीटः। नाक का झुकाव। **नासिकायाः नतम्** ऐसा अस्वपद विग्रह करके **अव**-शब्द (उपसर्गात्मक प्रादिपदिक) से **नते नासिकायाः सञ्ज्ञायां टीटञ्नाटञ्भ्रटचः** सूत्र से **टीटच्** प्रत्यय होने पर **अवटीट** बनता है। **नाटच्** प्रत्यय होने पर **अवनाट** बनता है और **भ्रटच्** प्रत्यय होने पर **अवभ्रट** शब्द बनता है। तीनों में स्वादिकार्य करके **अवटीटम्, अवनाटम्, अवभ्रटम्** ये रूप सिद्ध हो जाते हैं। झुकी हुयी नाक के संयोग से नासिका को **अवटीटा नासिका, अवनाटा नासिका** और **अवभ्रटा नासिका** कहा जाता है। ऐसी झुकी हुयी नाक वाला पुरुष भी **अवटीटः पुरुषः, अवनाटः पुरुषः** और **अवभ्रटः पुरुषः** कहलाता है।

१८३३. नेर्बिडञ्जिबरीसचौ ५।२।३२॥

निबिडम्, निबिरीसम्।

नेर्बिडञ्जिबरीसचौ। बिडच् च बिरीसच् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो बिडञ्जिबरीसचौ प्रथमान्तं, नेः पञ्चम्यन्तम्। **नते नासिकायाः सञ्ज्ञायां टीटञ्नाटञ्भ्रटचः** से **नते नासिकायाः, संज्ञायाम्** की अनुवृत्ति है और **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

क्रिया-विशिष्ट साधन-वाचक नि-उपसर्ग रूप प्रातिपदिक से नासिका-सम्बन्धी झुकाव कहने पर संज्ञा के विषय में बिडच् और बिरीसच् प्रत्यय होते हैं।

दोनों प्रत्ययों में चकार इत्संज्ञक है, **बिड** और **बिरीस** बचते हैं।

निबिडम्, निबिरीसम्। नाक का झुकाव या झुकी हुयी नाक वाला पुरुष। **नासिकायाः नतम्** ऐसा अस्वपद विग्रह करके **नि**-शब्द (उपसर्गात्मक प्रादिपदिक) से **नेर्बिडञ्जिबरीसचौ** सूत्र से **बिडच्** प्रत्यय होने पर **निबिड** बनता है। **बिरीसच्** प्रत्यय होने पर **निबिरीस** बनता है तथा उभयत्र स्वादिकार्य करके **निबिडम्** और **निबिरीसम्** ये रूप सिद्ध हो जाते हैं।

१८३४. इनच्पिटच् चिकचि च ५।२।३३॥

नेः इत्येव।

नासिकाया नतेऽभिधेये इनच्पिटचौ प्रत्ययौ प्रकृतेश्चिकच चि इत्यादेशौ च।

'कप्रत्ययचिकादेशौ च वक्तव्यौ' (वा.३१२१)।

चिकिनम्। चिपिटम्। चिक्कम्।

'क्लिन्नस्य चिल् पिल् लश्चास्य चक्षुषी'(वा.३१२२)।

क्लिन्ने चक्षुषी अस्य चिल्लः। पिल्लः।

'चुल् च' (वा.३१२३)। चुल्लः।

इनच्पिटच्चिकचि च। इनच् च पिटच् च तयोः समाहारद्वन्द्वः- इनच्पिटच्, प्रथमान्तम्। चिकचि इति लुप्तप्रथमाकं पदं, चाव्ययम्। **नेर्बिडज्बिरीसचौ** से **नेः** की और **नते नासिकायाः सञ्ज्ञायां टीटञ्नाटञ्भ्रटचः** से **नते नासिकायाः, संज्ञायाम्** की अनुवृत्ति है और **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

क्रिया-विशिष्ट साधन-वाचक नि-उपसर्ग रूप प्रातिपदिक से नासिका-सम्बन्धी झुकाव कहने पर संज्ञा के विषय में इनच् और पिटच् प्रत्यय होते हैं तथा प्रकृतिभूत नि-शब्द के स्थान पर 'चिक' एवं 'चि' आदेश भी।

यह सूत्र प्रत्ययों का विधान तथा आदेश ये दो कार्य करता है। प्रत्ययविधान में अनुवृत्त **नेः** को पञ्चम्यन्त और आदेशविधान में षष्ठ्यन्त मान लिया जाता है। इस तरह **नेः** की आवृत्ति की जाती है। यहाँ पर प्रत्यय भी दो हैं और आदेश भी दो। अतः **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** की उपस्थिति से **इनच्** प्रत्यय के परे रहते **चिक** आदेश और **पिटच्** प्रत्यय के परे रहते **चि** आदेश किया जाता है।

नेः इत्येव। पूर्वसूत्र से **नेः** की अनुवृत्ति आने के कारण इस सूत्र का उद्देश्य भी नि-उपसर्ग ही है।

चिकिनम्। चिपिटम्। नाक का झुकाव या झुकी हुयी नाक अथवा झुकी हुयी नाक वाला पुरुष। **नासिकायाः नतम्** ऐसा अस्वपद विग्रह करके **नि**-शब्द (उपसर्गात्मक प्रादिपदिक) से **इनच्पिटच्चिकचि च** सूत्र से **इनच्** प्रत्यय के साथ प्रकृतिभूत **नि** के स्थान पर **चिक** आदेश होने पर **चिक+इन** बन गया है। भसंज्ञक अकार का लोप करके **चिकिन** शब्द बना है। **पिटच्** प्रत्यय होने के पक्ष में प्रकृति के स्थान पर **चि** आदेश होकर **चिपिट** शब्द बना है। उभयत्र स्वादिकार्य करके **चिकिनम्** और **चिपिटम्** ये रूप सिद्ध हो जाते हैं।

इसी सूत्र में **नते नासिकायाः** के सम्बन्ध में एक वार्तिक और **क्लिन्ने चक्षुषी** अर्थ में दो वार्तिक पढ़े गये हैं-

कप्रत्ययचिकादेशौ च वक्तव्यौ। नासिका का नत अर्थ अभिधेय होने पर क-प्रत्यय और प्रकृतिभूत नि-शब्द के स्थान पर चिक-आदेश भी कहना चाहिये। **चिक** में अकार उच्चारणार्थ है, **चिक्** मात्र आदेश है।

चिक्कम्। नाक का झुकाव या झुकी हुयी नाक अथवा झुकी हुयी नाक वाला पुरुष। **नासिकायाः नतम्** ऐसा अस्वपद विग्रह करके **नि**-शब्द (उपसर्गात्मक प्रादिपदिक) से **कप्रत्ययचिकादेशौ च वक्तव्यौ** वार्तिक से **क**-प्रत्यय के साथ प्रकृतिभूत **नि** के स्थान पर **चिक्** आदेश होने पर **चिक्+क=चिक्क** बन गया है। स्वादिकार्य करके **चिक्कम्** रूप सिद्ध हो जाता है।

क्लिन्नस्य चिल् पिल् लश्चास्य चक्षुषी। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः-

इसकी भीगी आखें- इस अर्थ में **क्लिन्न**-शब्द से **ल** प्रत्यय और प्रकृतिभूत **क्लिन्न**-शब्द के स्थान पर **चिल्** और **पिल्** ये दो आदेश होते हैं।

क्लिन्ने चक्षुषी अस्य चिल्लः। पिल्लः। जिसकी आखें सदा भीगी ही रहती हों। **क्लिन्ने चक्षुषी अस्य** विग्रह करके **क्लिन्न+औ** इस स्थिति में **क्लिन्नस्य चिल् पिल् लश्चास्य चक्षुषी** वार्तिक के द्वारा **ल**-प्रत्यय के साथ प्रकृतिभूत **क्लिन्न**-शब्द के स्थान पर **चिल्** आदेश होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **चिल्ल** शब्द बना है। **पिल्** आदेश होने पर **पिल्ल** बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **चिल्लः** और **पिल्लः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

चुल् च। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- इसकी भीगी आखें- इस अर्थ में **क्लिन्न**-शब्द से **ल** प्रत्यय और प्रकृतिभूत **क्लिन्न**-शब्द के स्थान पर **चुल्** आदेश भी होता है।

चुल्लः। जिसकी आखें सदा भीगी ही रहती हों। **क्लिन्ने चक्षुषी अस्य** विग्रह करके **क्लिन्न+औ** इस स्थिति में **चुल् च** वार्तिक के द्वारा **ल**-प्रत्यय के साथ प्रकृतिभूत **क्लिन्न**-शब्द के स्थान पर **चुल्** आदेश होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **चुल्ल** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **चुल्लः** सिद्ध हो जाता है।

१८३५. उपाधिभ्यां त्यकन्नासन्नारूढयोः ५।२।३४॥

'सञ्ज्ञायाम्' इत्यनुवर्तते।

पर्वतस्यासन्नं स्थलमुपत्यका। आरूढं स्थलमधित्यका।

उपाधिभ्यां त्यकन्नासन्नारूढयोः। उपश्च अधिश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः- उपाधी, ताभ्याम् उपाधिभ्याम्। आसन्नश्च आरूढश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः- आसन्नारूढौ, तयोः- आसन्नारूढयोः। उपाधिभ्यां पञ्चम्यन्तं, त्यकन् प्रथमान्तम्, आसन्नारूढयोः सप्तम्यन्तम्। **नते नासिकायाः सञ्ज्ञायां टीटञ्नाटञ्भ्रटचः** से **संज्ञायाम्** की अनुवृत्ति है और **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

उप और अधि इन दो उपसर्गात्मक प्रातिपदिकों से क्रमशः आसन्न और आरूढ अर्थों में संज्ञा गम्यमान होने पर त्यकन् प्रत्यय होता है।

'सञ्ज्ञायाम्' इत्यनुवर्तते। पूर्वसूत्र से **संज्ञायाम्** की अनुवृत्ति होने के कारण संज्ञा गम्य होने पर ही यह प्रत्यय होता है।

त्यकन् में नकार इत्संज्ञक है, **त्यक** अवशिष्ट रहता है। त्यकन्प्रत्ययान्त शब्द लोक में स्त्रीलिंग में प्रयुक्त हुआ है।

पर्वतस्यासन्नं स्थलमुपत्यका। पहाड़ के समीप का स्थान, तराई, जिसके चारों ओर पहाड़ हो वह स्थान। **पर्वतस्य आसन्नम्** अस्वपद विग्रह करके **उप+ङस्** इस स्थिति

में **उपाधिभ्यां त्यकन्नासन्नारूढयोः** सूत्र के द्वारा **त्यकन्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **उपत्यक** बन जाता है। स्त्रीत्व में टाप् होकर **उपत्यका** बनने के बाद स्वादिकार्य होता है।

आरूढं स्थलमधित्यका। पहाड के ऊपर का स्थान, पठार। **पर्वतस्य आरूढं स्थलम्** अस्वपद विग्रह करके **अधि+ङस्** इस स्थिति में **उपाधिभ्यां त्यकन्नासन्नारूढयोः** सूत्र के द्वारा **त्यकन्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **अधित्यक** बन जाता है। स्त्रीत्व में टाप् होकर **अधित्यका** बनने के बाद स्वादिकार्य होता है। उक्त दोनों प्रयोगों में **प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः** सूत्र से इत्त्व प्राप्त होने पर **त्यकनश्च** वार्तिक के द्वारा उसका निषेध हो जाता है।

१८३६. कर्मणि घटोऽठच् ५।२।३५॥

घटत इति घटः। पचाद्यच्। कर्मणि घटते कर्मठः पुरुषः।

कर्मणि घटोऽठच्। कर्मणि सप्तम्यन्तं, घटः प्रथमान्तम्, अठच् प्रथमान्तम्। तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा का अधिकार है।

सप्तमी-समर्थ कर्मन् इस प्रातिपदिक से **घटः=चेष्टाशील अर्थ में अठच्** प्रत्यय होता है।

घटत इति घटः। पचाद्यच्। सूत्रस्थ **घट**-शब्द कलश का पर्यायवाची नहीं है, किन्तु यौगिक है। **घट चेष्टायाम्** धातु से पचादिप्रयुक्त **अच्** प्रत्यय होकर **घट**-शब्द निष्पन्न हुआ है। अतः यह शब्द कर्मशीलता, चेष्टायुक्त अर्थ का द्योतक है। अतः मूलकार ने व्युत्पत्ति बतायी- **घटते इति घटः।** सूत्रस्थ **कर्मणि** में सप्तम्यन्त का प्रयोग उद्देश्यबोधक के साथ सप्तमी समर्थ-विभक्ति का भी सूचक है। **अठच्** में चकार इत्संज्ञक है, **अठ** बचता है।

कर्मणि घटते कर्मठः पुरुषः। सदा कर्मशील रहने वाला पुरुष। **कर्मणि घटते** विग्रह करके **कर्मन्+ङि** इस स्थिति में **कर्मणि घटोऽठच्** सूत्र के द्वारा अठच्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **कर्मन्+अठ** बना है। **नस्तद्धिते** सूत्र के द्वारा टिसंज्ञक भाग **अन्** का लोप होकर **कर्मठ** शब्द बन गया है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कर्मठः** सिद्ध हो जाता है।

१८३७. तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच् ५।२।३६॥

तारकाः सञ्जाता अस्य तारकितं नभः।
आकृतिगणोऽयम्।

तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्। तारका आदिर्येषां ते तारकादयः- तेभ्यस्तारकादिभ्यः। तद् प्रथमान्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकम्, अस्य षष्ठ्यन्तं, सञ्जातं प्रथमान्तं,

तारकादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, इतच् प्रथमान्तम् अनेकपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

प्रथमान्त तारकादि गणपठित प्रातिपदिकों से 'तत्सञ्जातमस्य' अर्थात् 'वह हो गया है, इसका' इस अर्थ में इतच् प्रत्यय होता है।

तारकादि एक पाणिनि जी द्वारा पढ़ा गया गणपाठ है, इसमें कुछ शब्द तो उनके द्वारा पठित हैं, शेष शब्दों को आकृतिगण मानकर इसके अन्तर्गत मान लिया जाता है, जिससे **इतच्** प्रत्यय हो जाय। चकार इत्संज्ञक है, **इत** बचता है। अजादि होने के कारण इसके परे होने पर भसंज्ञा होती है और ञित्, णित्, कित् न होने के कारण आदिवृद्धि नहीं होती है।

तारकितं नभः। तारे हो गये हैं जिसके, ऐसा आकाश अर्थात् जैसे-जैसे रात्री का आगमन होता है वैसे-वैसे आकाश में तारे दिखते हैं तो वहाँ यह व्यवहार होता है कि आकाश तारामय हो गया है। **तारकाः संजाताः अस्य** लौकिक विग्रह और **तारका जस्** अलौकिक विग्रह में **तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्** से **इतच्** प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक आकार का लोप करके **तारक्+इत=तारकित,** सु, अम् और पूर्वरूप करके **तारकितम्** सिद्ध हुआ।

सदसद्विवेकिनी बुद्धिः पण्डा, सा सञ्जाता अस्य सः पण्डितः। सत् और असत् का विवेक करने वाली बुद्धि को पण्डा कहते हैं, इस प्रकार की बुद्धि जिसकी हो गई है, उसे पण्डित कहते हैं अर्थात् इतच् प्रत्यय होकर के **पण्डितः** की सिद्धि होती है।

पण्डितः। **पण्डा संजाता अस्य** लौकिक विग्रह और **पण्डा सु** अलौकिक विग्रह में **तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्** से **इतच्** प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञक आकार का लोप करके **पण्ड्+इत=पण्डित,** सु, रुत्वविसर्ग करके **पण्डितः** सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार आगे भी बनाइये-

कुसुमानि सञ्जातानि अस्याः- कुसुमिता लता= पुष्प हो गये हैं जिस लता में।
बुभुक्षा सञ्जाता अस्य- बुभुक्षितो बालः= भूख हो गई जिस बालक को।
पिपासा सञ्जाता अस्य- पिपासितो जनः= प्यास लगी जिस मनुष्य को।
रोमाञ्चः सञ्जातोऽस्मिन्- रोमाञ्चितो देहः= रोमाञ्च हो गया है जिस शरीर में।
गर्वः सञ्जातोऽस्य- गर्वितो जनः= घमण्ड हो गया है जिस मनुष्य को।
फलानि सञ्जातानि अस्य- फलितो वृक्षः= फल लग गये हैं जिस वृक्ष में।
दीक्षा सञ्जाता अस्य- दीक्षितो यजमानः= दीक्षा हो गई है जिस यजमान की। आदि।

आकृतिगणोऽयम्। यह आकृतिगण है तथापि कुछ शब्द दिखाये भी गये हैं। जैसे-

तारकादिगणः- तारका, पुष्प, कर्णक, मञ्जरी, ऋजीष, क्षण, सूत्र, मूत्र, निष्क्रमण, पुरीष, उच्चार, प्रचार, विचार, कुड्मल, कण्टक, मुसल, मुकुल, कुसुम, स्तबक, (स्तवक), किसलय, पल्लव, खण्ड, वेग, निद्रा, मुद्रा, बुभुक्षा, धेनुष्या, पिपासा, श्रद्धा, अभ्र, पुलक, अङ्गाकर, वर्णक, द्रोह, सुख, दुःख, उत्कण्ठा, भर, व्याधि, वर्मन्, व्रण, गौरव, शास्त्र, तरंग, तिलक, चन्द्रक, अन्धकार, गर्व, कुमुर, (मुकुर,) हर्ष, उत्कर्ष, रण, कुवलय, गर्ध, क्षुध्, सीमन्त, ज्वर, गर, रोग, रोमाञ्च, षण्डा, कज्जल, तृष्, कोरक, कल्लोल, स्थपुट, फल, कञ्चुक, शृङ्गार, अङ्कुर, शैवल, बकुल, श्वभ्र, आराल, कलङ्क, कर्दम, कन्दल, मूर्च्छा, अङ्गार, हस्तक, प्रतिबिम्ब, विघ्नतन्त्र, प्रत्यय, दीक्षा, गर्ज। **गर्भादप्राणिनि।**

१८३८. प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः ५।२।३७॥

तदस्य इत्यनुवर्तते। ऊरु प्रमाणमस्य ऊरुद्वयसम्, ऊरुदघ्नम्, ऊरुमात्रम्।

'प्रमाणे लः' (वा.३१२८)। शमः। दिष्टिः। वितस्तिः।

'द्विगोर्नित्यम्'(वा.३१२९)। द्वौ शमौ प्रमाणमस्य द्विशमम्।

'प्रमाणपरिमाणाभ्यां संख्यायाश्चापि संशये मात्रञ्वक्तव्यः' (वा.३१३३)।

शममात्रम्। प्रस्थमात्रम्। पञ्चमात्रम्।

'वत्वन्तात्स्वार्थे द्वयसञ्मात्रचौ बहुलम्' (वा.३१३४)।

तावदेव तावद्द्वयसम्। तावन्मात्रम्।

प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः। द्वयसच्च दघ्नच्च मात्रच्च तेषामितरेतरद्वन्द्वो द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः। प्रमाणे सप्तम्यन्तं, द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तदस्य** संजातं तारकादिभ्य इतच् से तद् और **अस्य** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च,** ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

प्रमाण अर्थ में वर्तमान **प्रथमान्त प्रातिपदिक से 'वह प्रमाण है इसका' इस अर्थ में द्वयसच्, दघ्नच् और मात्रच् प्रत्यय होते हैं।**

तीनों में चकार इत्संज्ञक है। तीनों प्रत्यय प्रमाण अर्थ में होते हैं। **प्रमाण** शब्द प्रायः लम्बाई के नापने में प्रयुक्त होता है किन्तु यहाँ **द्वयसच्** और **दघ्नच्** ऊँचाई नापने में प्रयुक्त होते हैं। **मात्रच्** प्रत्यय ऊँचाई एवं लम्बाई सभी प्रकार के नाप के लिये प्रयुक्त होता है।

ऊरुद्वयसम्। ऊरु के बराबर प्रमाण है जिसका अर्थात् नदी का जल ऊरु तक आता है या अन्य कोई वस्तु जंघा के बराबर है आदि अर्थ। **ऊरु सु** से **प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः** से **द्वयसच्** प्रत्यय, चकार का लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **ऊरुद्वयस** बना। सु आया, उसके स्थान पर नपुंसकलिङ्ग में **अम्** आदेश करके पूर्वरूप करने पर **ऊरुद्वयसम्** सिद्ध हो जाता है।

ऊरुदघ्नम्। ऊरु के बराबर प्रमाण है जिसका अर्थात् नदी का जल ऊरु तक आता है या अन्य कोई वस्तु जंघा के बराबर है आदि अर्थ। **ऊरु सु से प्रमाणे द्वयसन्दघ्नञ्मात्रचः** से **दघ्नच्** प्रत्यय, चकार का लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **ऊरुदघ्न** बना। सु आया, उसके स्थान पर नपुंसकलिङ्ग में **अम्** आदेश करके पूर्वरूप करने पर **ऊरुदघ्नम्** सिद्ध हो जाता है।

ऊरुमात्रम्। ऊरु के बराबर प्रमाण है जिसका अर्थात् नदी का जल ऊरु तक आता है या अन्य कोई वस्तु जंघा के बराबर है आदि अर्थ। **ऊरु सु से प्रमाणे द्वयसन्दघ्नञ्मात्रचः** से **मात्रच्** प्रत्यय, चकार का लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **ऊरुमात्र** बना। सु आया, उसके स्थान पर नपुंसकलिङ्ग में अम् आदेश करके पूर्वरूप करने पर **ऊरुमात्रम्** सिद्ध हो जाता है।

प्रसंगवश प्रमाण अर्थ से आगत प्रत्ययों का लुक्-विधान वार्तिकों के आधार पर दीक्षित जी बता रहे हैं-

प्रमाणे लः। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- प्रमाण अर्थ में विहित प्रत्यय का लुक् होता है। यहाँ पर लुक् के लिये **ल** शब्द का प्रयोग किया गया है। प्राचीन आचार्यों ने **ल** शब्द का प्रयोग लुक् के लिये किया है। शमादि-शब्द ऊर्ध्वमान के अतिरिक्त प्रमाण अर्थ के भी बोधक हैं, तदनुसार उनसे विहित मात्रच्-प्रत्यय का लुक् प्रकृत वार्तिक से किया जाता है।

शमः। चौदह अंगुल प्रमाण है जिसका। **शमः प्रमाणम् अस्य** विग्रह करके **शम+सु** इस स्थिति में **प्रमाणे द्वयसन्दघ्नञ्मात्रचः** से **मात्रच्** प्रत्यय होने पर उसका **प्रमाणे लः** वार्तिक से लुक् हो जाता है। स्वादिकार्य होकर **शमः** सिद्ध हो जाता है।

दिष्टिः। दिष्टि-प्रमाण है जिसका। **दिष्टिः प्रमाणम् अस्य** विग्रह करके **दिष्टि+सु** इस स्थिति में **प्रमाणे द्वयसन्दघ्नञ्मात्रचः** से **मात्रच्** प्रत्यय होने पर उसका **प्रमाणे लः** वार्तिक से लुक् हो जाता है। स्वादिकार्य होकर **दिष्टिः** सिद्ध हो जाता है।

वितस्तिः। एक बित्ता प्रमाण है जिसका। **वितस्तिः प्रमाणम् अस्य** विग्रह करके **वितस्ति+सु** इस स्थिति में **प्रमाणे द्वयसन्दघ्नञ्मात्रचः** से **मात्रच्** प्रत्यय होने पर उसका **प्रमाणे लः** वार्तिक से लुक् हो जाता है। स्वादिकार्य होकर **वितस्तिः** सिद्ध हो जाता है।

द्विगोर्नित्यम्। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- प्रमाणान्त द्विगु से विहित द्वयसच् प्रत्यय का नित्य से लुक् होता है। प्रकृत सन्दर्भ में विकल्प न होने के कारण वार्तिक में नित्य-ग्रहण संशयार्थक मात्रच्-प्रत्यय का लुक् होने में सार्थक है। अन्यथा **शममात्रम्** की तरह **द्विशम** शब्द से भी संशयार्थक मात्रच् का लोप नहीं होगा। स्मरण रहे कि संख्यापूर्व तद्धितार्थविषयक समास द्विगु कहलाता है- **संख्यापूर्वो द्विगुः।**

द्वौ शमौ प्रमाणमस्य द्विशमम्। दो हाथ या २८ अंगुल प्रमाण है, जिसका। **द्वौ शमौ प्रमाणम् अस्य** विग्रह करके तद्धितार्थविषयक समास करके **द्विशम** बनने के

बाद **प्रमाणे द्वयसञ्दघ्नञ्मात्रचः** से **द्वयसच्** प्रत्यय होने पर उसका **द्विगोर्नित्यम्** वार्तिक से लुक् हो जाता है। स्वादिकार्य होकर **द्विशमम्** सिद्ध हो जाता है।

प्रमाणपरिमाणाभ्यां संख्यायाश्चापि संशये मात्रञ्चक्तव्यः। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- प्रमाण, परिमाण और संख्यावाची शब्दों से भी संशय अर्थ में मात्रच्-प्रत्यय होता है। शायद इतना हो, यह संशयार्थ है।

शममात्रम्। शायद चौदह अंगुल प्रमाण है! **शमः प्रमाणं स्याद्वा न वा** विग्रह करके **शम+सु** इस स्थिति में **प्रमाणपरिमाणाभ्यां संख्यायाश्चापि संशये मात्रञ्चक्तव्यः** वार्तिक से **मात्रच्** प्रत्यय होने पर **शममात्र** और स्वादिकार्य होकर **शममात्रम्** सिद्ध हो जाता है।

प्रस्थमात्रम्। शायद प्रस्थ के बराबर प्रमाण है! **प्रस्थः प्रमाणं स्याद्वा न वा** विग्रह करके **प्रस्थ+सु** इस स्थिति में **प्रमाणपरिमाणाभ्यां संख्यायाश्चापि संशये मात्रञ्चक्तव्यः** वार्तिक से **मात्रच्** प्रत्यय होने पर **प्रस्थमात्र** और स्वादिकार्य होकर **प्रस्थमात्रम्** सिद्ध हो जाता है।

पञ्चमात्रम्। शायद पाँच ही प्रमाण है! **पञ्च एव प्रमाणं स्याद्वा न वा** विग्रह करके **पञ्चन्+जस्** इस स्थिति में **प्रमाणपरिमाणाभ्यां संख्यायाश्चापि संशये मात्रञ्चक्तव्यः** वार्तिक से **मात्रच्** प्रत्यय होने पर नकार का लोप होकर **पञ्चमात्र** और स्वादिकार्य होकर **पञ्चमात्रम्** सिद्ध हो जाता है।

वत्वन्तात्स्वार्थे द्वयसञ्मात्रचौ बहुलम्। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- वतु-प्रत्ययान्त शब्द से स्वार्थ में बहुल से द्वयसच् और मात्रच् प्रत्यय होते हैं।

तावदेव तावद्द्वयसम्। **तावन्मात्रम्।** उतना ही। **तावत् एव** विग्रह करके **तावत्+सु** इस स्थिति में **वत्वन्तात्स्वार्थे द्वयसञ्मात्रचौ बहुलम्** वार्तिक से **द्वयसच्** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और तकार को **झलां जशोऽन्ते** सूत्र से जश्त्व दकार होकर **तावद्द्वयस** तथा **मात्रच्** प्रत्यय होने के पक्ष में दकार को **यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा** सूत्र से अनुनासिकादेश होकर **तावन्मात्र** बने हैं। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **तावद्द्वयसम्** और **तावन्मात्रम्** ये प्रयोग सिद्ध हो जाते हैं।

१८३९. पुरुषहस्तिभ्यामण्च ५।२।३८॥

पुरुषः प्रमाणमस्य पौरुषम्, पुरुषद्वयसम्। हास्तिनम्, हस्तिद्वयसम्।

पुरुषहस्तिभ्यामण्च। पुरुषश्च हस्ती च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः पुरुषहस्तिनौ, ताभ्यां पुरुषहस्तिभ्यां पञ्चम्यन्तम्, अण् प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **प्रमाणे द्वयसञ्दघ्नञ्मात्रचः** के सभी पदों की और **तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच्** से **तद्** और **अस्य** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आ रहा है।

प्रथमा-समर्थ प्रमाण-समानाधिकरणवाची पुरुष तथा हस्तिन् इन प्रातिपदिकों से षष्ठ्यर्थ में अण् प्रत्यय तथा द्वयसच्, दघ्नच् और मात्रच् प्रत्यय होते हैं।

चार प्रत्ययों के होने से चार रूप बनेंगे। मूलकार ने दो ही रूप दिये हैं।

पुरुषः प्रमाणमस्य पौरुषम्, पुरुषद्वयसम्। एक पुरुष के बराबर नाप वाला। **पुरुषः प्रमाणम् अस्य** विग्रह करके **पुरुष+सु** इस स्थिति में **पुरुषहस्तिभ्यामण्च** सूत्र से अण् प्रत्यय होने के पक्ष में अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और आदिवृद्धि तथा भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पौरुष**-शब्द बना है। इसी तरह द्वयसच्, दघ्नच् और मात्रच् प्रत्यय होने के पक्ष में **पुरुषद्वयस, पुरुषदघ्न** और **पुरुषमात्र** शब्द बने हैं। सर्वत्र स्वादिकार्य होकर **पौरुषम्, पुरुषद्वयसम्, पुरुषदघ्नम्** और **पुरुषमात्रम्** ये चार रूप सिद्ध हो जाते हैं।

हास्तिनम्, हस्तिद्वयसम्। एक हाथी के बराबर नाप वाला। **हस्ती प्रमाणम् अस्य** विग्रह करके **हस्तिन्+सु** इस स्थिति में **पुरुषहस्तिभ्यामण्च** सूत्र से अण् प्रत्यय होने के पक्ष में अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और आदिवृद्धि होकर **हास्तिन्+अ** बना है। प्राप्त टिलोप का **इनण्यनपत्ये** (६.४.१६४) सूत्र से प्रकृतिभाव हो जाता है, फलतः लोप नहीं होता। अतः **हास्तिन** शब्द बना है। इसी तरह द्वयसच्, दघ्नच् और मात्रच् प्रत्यय होने के पक्ष में **नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य** सूत्र से लोप होकर **हस्तिद्वयस, हस्तिदघ्न** और **हस्तिमात्र** शब्द बने हैं। सर्वत्र स्वादिकार्य होकर **हास्तिनम्, हस्तिद्वयसम्, हस्तिदघ्नम्** और **हस्तिमात्रम्** ये चार रूप सिद्ध हो जाते हैं।

१८४०. यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप् ५।२।३९॥

यत्परिमाणमस्य यावान्। तावान्। एतावान्।

यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप्। यत् च तत् च एतत् च एतेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो यत्तदेतदस्तेभ्यः। यत्तदेतेभ्यः पञ्चम्यन्तं, परिमाणे सप्तम्यन्तं, वतुप् प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्** से **तद्** और **अस्य** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

परिमाण अर्थ में विद्यमान यद्, तद्, एतद् इन प्रथमान्त प्रातिपदिकों से 'वह परिमाण है इसका' इस अर्थ में वतुप् प्रत्यय होता है।

वतुप् में उकार और पकार इत्संज्ञक हैं, **वत्** शेष रहता है। ध्यान रहे कि **वति** प्रत्यय वाले **वत्** से यह **वत्** भिन्न है। वतिप्रत्ययान्त अव्यय होता है किन्तु **वतुप्** प्रत्ययान्त के तीनों लिङ्ग में रूप चलते हैं।

यावान्। जो परिमाण है इसका अर्थात् जितना। **यत् परिमाणमस्य। यत् सु** से **यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप्** से **वतुप्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का

लुक् करके यत्+वत् बना। **आ सर्वनाम्नः** से **तकार** के स्थान पर **आकार** आदेश करके सवर्णदीर्घ करने पर **यावत्** बना। इससे सु आया। उगित् होने के कारण **उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः** से नुम् आगम और **अत्वसन्तस्य चाधातोः** से उपधा को दीर्घ करके **यावान्त्+स्** बना है। सकार का हल्ङ्यादिलोप और तकार का संयोगान्तलोप करने पर **यावान्** सिद्ध हुआ। आगे **यावन्तौ, यावन्तः, यावन्तम्, यावन्तौ, यावतः, यावता, यावद्भ्याम्, यावद्भिः** आदि रूप बन जाते हैं। स्त्रीत्वविवक्षा में **उगितश्च** से **ङीप्** करने पर **यावती, यावत्यौ, यावत्यः, यावतीम्, यावत्यौ, यावतीः** आदि बनते हैं। नपुंसकलिङ्ग में **यावत्, यावती, यावन्ति** आदि रूप बनते हैं।

तावान्। उतना। उपर्युक्त रीति से ही **तद्** शब्द से **तत् परिमाणमस्य** उतना परिमाण है जिसका अर्थात् **उतना** अर्थ में **तद् सु** से उक्त प्रक्रिया करके **तावान्, तावन्तौ, तावन्तः। तावती, तावत्यौ, तावत्यः। तावत्, तावती, तावन्ति** आदि बनाइये।

एतावान्। इतना परिमाण है इसका अर्थ में **एतत् सु** से भी उक्त प्रक्रिया के साथ **एतावान्, एतावन्तौ, एतावन्तः। एतावती, एतावत्यौ, एतावत्यः। एतावत्, एतावती, एतावन्ति** आदि रूप सरलता से बन सकते हैं।

१८४१. किमिदम्भ्यां वो घः ५।२।४०॥
आभ्यां वतुप् स्याद्वस्य च घः। कियान्। इयान्।

किमिदम्भ्यां वो घः। किम् च इदं च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः किमिदमौ, ताभ्याम्। **यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप्** से **परिमाणे वतुप्** तथा **तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्** से **तदस्य** की अनुवृत्ति और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार पूर्ववत् आ रहा है।

परिमाण में वर्तमान **किम्, इदम्** इन **प्रथमान्त प्रातिपदिकों से 'वह परिमाण है इसका'** इस अर्थ में **वतुप् प्रत्यय और वतुप् के वकार के स्थान पर घकार आदेश होता है।**

इस सूत्र से दो कार्य हुए। एक तो किम् और इदम् इन सर्वनामों से **वतुप्** प्रत्यय और दूसरा **वतु** के **वकार** के स्थान पर **घ** आदेश। **वतुप्** में अनुबन्धलोप होकर **वत्** बचा है। **अत्** को छोड़कर केवल **व्** के स्थान पर **घ्** आदेश होने के बाद उस घकार के स्थान पर भी **आयनेयीनीयियः०** से **इय्** आदेश होकर **इयत्** बन जाता है।

कियान्। क्या है परिमाण इसका? अर्थात् कितना। **किं परिमाणमस्य,** यह लौकिक विग्रह है। **किम् सु** इस अलौकिक विग्रह में **किमिदम्भ्यां वो घः** से **वतुप्** प्रत्यय और **वकार** के स्थान पर **घ्** आदेश हुआ, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **किम्+घ्+अत्** बना है। **घ्** के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **इय्** आदेश होकर **किम्+इयत्** बना। अब **किम्** के स्थान पर **इदंकिमोरीश्की** से **कि**

आदेश होकर **कि+इयत्** बना। **यस्येति च** से **कि** के इकार का लोप हुआ- **क्+इयत्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **कियत्** बना। इससे सु, उपधा को दीर्घ, नुम्, हल्ङ्यादिलोप और संयोगान्तलोप होकर **कियान्** और आगे **कियन्तौ, कियन्तः** आदि रूप बनते हैं।

इयान्। यह है परिमाण इसका, अर्थात् इतना। **इदं परिमाणमस्य,** यह लौकिक विग्रह है। **इदम् सु** इस अलौकिक विग्रह में **किमिदम्भ्यां वो घः** से वतुप् प्रत्यय और **वकार** के स्थान पर **घ्** आदेश हुआ, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **इदम्+घ्+अत्** बना है। **घ्** के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **इय्** आदेश होकर **इदम्+इयत्** बना। अब **इदम्** के स्थान पर **इदंकिमोरीश्की** से ईश् सर्वादेश, शकार का लोप करके **ई+इयत्** बना। **यस्येति च** से अकेले ईकार का लोप हुआ- **इयत्** इतना मात्र बचा। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मान कर इससे सु, उपधा को दीर्घ, नुम्, हल्ङ्यादिलोप और संयोगान्तलोप होकर **इयान्, इयन्तौ, इयन्तः** आदि रूप बनते हैं।

१८४२. किमः संख्यापरिमाणे डति च ५।२।४१॥

चाद्वतुप्। तस्य च वस्य घः स्यात्। का संख्या एषां ते कति, कियन्तः। क्षेपे तु न, का संख्या एषां दशानाम्।

किमः संख्यापरिमाणे डति च। संख्यायाः परिमाणं संख्यापरिमाणं, तस्मिन् संख्यापरिमाणे, षष्ठीतत्पुरुषः। किमः पञ्चम्यन्तं, संख्यापरिमाणे सप्तम्यन्तं, डति इति लुप्तप्रथमाकं पदं, चाव्ययम्। **किमिदम्भ्यां वो घः** से **वः, घः** की, **यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप्** से **वतुप्** तथा **तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्** से **तदस्य** की अनुवृत्ति और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार पूर्ववत् आ रहा है।

संख्या के परिमाण अर्थ में वर्तमान जो प्रथमा-समर्थ किम्-शब्द, उससे षष्ठ्यर्थ में डति तथा वतुप् प्रत्यय होते हैं साथ ही वतुप् के वकार के स्थान पर घकार आदेश होता है।

यहाँ **परिमाण** शब्द का अर्थ **परिच्छेद** है। अतः संख्या के परिच्छेद से तात्पर्य है- संख्या-सम्बन्धी पृच्छा। तदनुसार जब **किम्** शब्द से केवल संख्या-सम्बन्धी पूछताछ की जायेगी, तभी डति तथा वतुप् प्रत्यय होंगे। **डति** में डकार इत्संज्ञक है, **अति** बचता है। डित्करण टिलोप के लिये है।

का संख्या एषां ते कति कियन्तः। क्या संख्या है इनकी? **का संख्या एषाम्** लौकिक विग्रह करके **किम्+सु** इस स्थिति में **किमः संख्यापरिमाणे डति च** सूत्र से **डति** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप होकर **किम्+अति** बना है। **टेः** सूत्र के द्वारा टिसंज्ञक भाग **इम्** का लोप होकर **कति** शब्द बना है। यह केवल बहुवचनान्त है। स्वादिकार्य होने पर **कति, कति, कतिभ्यः** इत्यादि रूप बनते हैं। द्रष्टव्य- **अजन्तपुंल्लिङ्ग-प्रकरण।**

इसके बाद **वतुप्** प्रत्यय और वकार के स्थान पर **घ्** आदेश होने के पक्ष में घकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** से **इय्** आदेश होकर **किम्+इयत्** बना है। अब **किम्** के स्थान पर **इदंकिमोरीश्की** से **कि** आदेश होकर **कि+इयत्** बना। **यस्येति च** से **कि** के इकार का लोप हुआ- **क्+इयत्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **कियत्** बना। इससे जस्-विभक्ति के आने पर **कियन्तः** रूप सिद्ध हो जाता है। ध्यान रहे कि **कति** शब्द नित्य बहुवचनान्त है। अत एव **का संख्या एषाम्** ऐसा बहुवचनान्त विग्रह किया गया। **का संख्या अस्य** या **का संख्या अनयोः** ऐसा एकवचनान्त और द्विवचनान्त विग्रह नहीं किया जा सकता। ऐसा होने पर तो संख्या निश्चित मानी जायेगी, तब प्रश्न ही व्यर्थ हो जायेगा।

क्षेपे तु न, का संख्या एषां दशानाम्। सूत्र में **किम्** शब्द से संख्या परिच्छेदार्थ विवक्षित होने से **क्षेप**-अर्थ में उक्त डति-प्रत्यय नहीं होता। अतः क्षेपार्थक वाक्य- **एषां एशानां का संख्या** (इन दसों की क्या गिनती है?) में **किम्** शब्द से डति-प्रत्यय नहीं हुआ। अर्थात् यहाँ **किम्** शब्द से संख्या-सम्बन्धी पृच्छा नहीं है, किन्तु संख्येय द्वारा संख्या की कुत्सा गम्यमान है। अपने को ब्राह्मण कहलाने वाले निम्न कोटि के दस हीन-जनों की इस परिषद् में कौन पूछता है।

१८४३. संख्याया अवयवे तयप् ५।२।४२॥

पञ्च अवयवा अस्य पञ्चतयं दारु।

सङ्ख्याया अवयवे तयप्। सङ्ख्यायाः षष्ठ्यन्तं, अवयवे सप्तम्यन्तं, तयप् प्रथमान्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्। तदस्य **सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्** से **तद्** और **अस्य** इन पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार पूर्ववत् आ रहा है।

अवयव अर्थ में विद्यमान सङ्ख्यावाचक प्रथमान्त से 'वह इसका अवयव है' इस अर्थ में तयप् प्रत्यय होता है।

पकार इत्संज्ञक है। यकारादि या अजादि न होने से इसके परे होने पर भसंज्ञा नहीं होगी और ञित्, णित् और कित् न होने से आदिवृद्धि भी नहीं होगी।

पञ्च अवयवा अस्य पञ्चतयं दारु। पाँच अवयव या संख्या है जिसकी, वह लकड़ी। **पञ्च अवयवाः अस्य** लौकिक विग्रह और **पञ्चन् जस्** अलौकिक विग्रह है। **सङ्ख्याया अवयवे तयप्** से तयप्प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, नकार का **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप करके **पञ्चतय** बना। सु, अम् और पूर्वरूप करके **पञ्चतयम्** सिद्ध हो जाता है।

१८४४. द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा ५।२।४३॥

द्वयम्, द्वितयम्। त्रयम्, त्रितयम्।

द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा। द्विश्च त्रिश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो द्वित्री, ताभ्याम्। द्वित्रिभ्यां पञ्चम्यन्तं, तयस्य षष्ठ्यन्तम्, अयच् प्रथमान्तं, वा अव्ययपदम् अनेकपदमिदं सूत्रम्।

द्वि और त्रि प्रातिपदिकों से परे तयप् के स्थान पर वैकल्पिक अयच् आदेश होता है।

चकार इत्संज्ञक है। स्थानिवद्भावेन तयप् में विद्यमान गुण प्रत्ययत्व आदि अयच् में भी आ जाते हैं।

द्वयम्, द्वितयम्। दो अवयव या संख्या है जिसकी, वह। **द्वौ अवयवौ अस्य** लौकिक विग्रह और **द्वि औ** अलौकिक विग्रह है। **सङ्ख्याया अवयवे तयप्** से तयप्प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा** से तय के स्थान पर अयच् आदेश, अनुबन्धलोप करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करने पर **द्वि+अय** बना। भसंज्ञक इकार का लोप करने पर **द्व्+अय=द्वय** बना, सु, अम् करके **द्वयम्** सिद्ध हुआ। अयजादेश न होने के पक्ष में **द्वितयम्** बनता है।

त्रयम्, त्रितयम्। तीन अवयव या संख्या है जिसकी, वह। **त्रयः अवयवाः अस्य** लौकिक विग्रह और **त्रि जस्** अलौकिक विग्रह है। **सङ्ख्याया अवयवे तयप्** से तयप्प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा** से तय के स्थान पर अयच् आदेश, अनुबन्धलोप करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करने पर **त्रि+अय** बना। भसंज्ञक इकार का लोप करने पर **त्र्+अय=त्रय** बना, सु, अम् करके **त्रयम्** सिद्ध हुआ। अयजादेश न होने के पक्ष में **त्रितयम्** बनता है।

१८४५. उभादुदात्तो नित्यम् ५।२।४४॥

उभशब्दात्तयप आदेशोऽयच् स्यात्, स चोदात्तः। उभयम्।
इति तद्धितेषु पाञ्चमिकाः।

उभादुदात्तो नित्यम्। उभात् पञ्चम्यन्तम्, उदात्तः प्रथमान्तं, नित्यं द्वितीयान्तं क्रियाविशेषणम्। **द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा** से **तयस्य** और **अयच्** की अनुवृत्ति आती है।

'उभ' इस प्रातिपदिक से परे तयप् के स्थान पर नित्य से अयच् आदेश होता है और वह उदात्त स्वर वाला होता है।

अष्टाध्यायी के अनेक सूत्र प्रत्यय आदि का विधान करते हुए स्वर का भी विधान करते हैं, उसमें से एक सूत्र यह भी है।

उभयम्। दोनों अवयव हैं इसके अर्थात् दो अवयव वाला अवयवी। **उभौ अवयवौ अस्य** लौकिक विग्रह और **उभ औ** अलौकिक विग्रह है। **सङ्ख्याया अवयवे तयप्** से तयप्प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **उभादुदात्तो नित्यम्** से **तय** के स्थान पर **अयच्** आदेश, अनुबन्धलोप करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करने पर **उभ+अय** बना।

भसंज्ञक अकार का लोप करने पर उभ्+अय=उभय बना और सु, अम् करके उभयम् सिद्ध हो जाता है।

यहाँ इस प्रकरण में पञ्चमाध्याय के विभिन्न प्रत्ययों का निरूपण किया गया। अब अगले प्रकरण में विशेष अर्थ को अभिलक्षित कर प्रकरणानुसार विभाग किया जायेगा।

श्री भट्टोजिदीक्षित द्वारा विरचित वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी की
गोविन्दाचार्य कृत श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी टीका में
पाञ्चमिक-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ मत्वर्थीयप्रकरणम्

अब मत्वर्थीय-प्रकरण का आरम्भ है। वास्तव में (१८९४) **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** (५.२.९४) सूत्र से मतुप्-प्रत्यय का आरम्भ होता है और मतुबर्थ में होने वाले अन्य-प्रत्ययों को भी मत्वर्थीय कहा जाता है किन्तु दीक्षित जी ने उससे पहले **तद् अस्मिन् अधिकम्** अर्थ में होने वाले प्रत्ययों का भी मत्वर्थीय प्रकरण में समावेश किया है। कई आचार्य उक्त मतुब्विधायकसूत्र से पहले के सूत्रों का समावेश पाञ्चमिक-प्रकरण में ही करते हैं, जो उचित भी लगता है।

१८४६. तदस्मिन्नधिकमिति दशान्ताड्डः ५।२।४५॥

एकादश अधिका अस्मिन्नेकादशम्।

'शतसहस्रयोरेवेष्यते' (वा.३१४१)।

नेह- एकादश अधिका अस्यां विंशतौ।

'प्रकृतिप्रत्ययार्थयोः समानजातीयत्वमेवेष्यते' (वा.३१४०)।

नेह- एकादश माषा अधिका अस्मिन्सुवर्णशते।

तदस्मिन्नधिकमिति दशान्ताड्डः। दशन्-शब्दोऽन्ते यस्य तद् दशान्तं, तस्माद् दशान्तात्। तत् प्रथमान्तम्, अस्मिन् सप्तम्यन्तम्, अधिकं प्रथमान्तम्, इत्यव्ययं, दशान्तात् पञ्चम्यन्तं, डः प्रथमान्तम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

प्रथमा-समर्थ दशन्-शब्दान्त समासयुक्त प्रातिपदिक से सप्तम्यर्थ में ड-प्रत्यय होता है, यदि वह प्रथमान्त अधिक के समानाधिकरण वाला हो।

प्रथमान्त **तत्** पद प्रथमा-समर्थ-विभक्ति का सूचक है और **अस्मिन्** पद अर्थबोधक। डकार इत्संज्ञक है, अकार मात्र बचता है। डित्करण टिलोप के लिये है।

एकादश अधिका अस्मिन्नेकादशम्। ग्यारह अधिक हैं जिस शत में या सहस्र में अर्थात् एक सौ ग्यारह एवं एक हजार ग्यारह। **एकादश अधिकाः अस्मिन्** विग्रह करके **एकादशन्+जस्** इस स्थिति में **तदस्मिन्नधिकमिति दशान्ताड्डः** सूत्र से ड-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप होकर **एकादशन्+अ** बना है। **टेः** सूत्र से टिसंज्ञक भाग **अन्** का

लोप होकर **एकादश** शब्द बनता है। **शतम्** या **सहस्रम्** का विशेषण होने के कारण नपुंसकलिङ्ग होकर **एकादशम्** सिद्ध हो जाता है।

सूत्रोक्त **अधिक**-शब्द सापेक्ष है। किसमें अधिक? यह प्रश्न उदित होता है। उसकी पूर्ति अगले वार्तिक से की जा रही है साथ ही अतिव्याप्तिवारण भी किया जाता है।

शतसहस्रयोरेवेष्यते। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- **शत** और **सहस्र** शब्दों से ही एकादश संख्या अधिक ली जानी चाहिये, अन्य शब्दों से नहीं। इस तरह शत से ग्यारह ज्यादा होने पर या सहस्र से ग्यारह ज्यादा होने पर यह सूत्र लगता है।

नेह- एकादश अधिका अस्यां विंशतौ। अर्थात् उपर्युक्त वार्तिक से शत और सहस्र से अधिक होने पर ड-प्रत्यय का विधान होने के कारण **एकादश अधिका अस्यां विंशतौ** (ग्यारह अधिक हैं इस बीस में=इकतीस) में ड-प्रत्यय नहीं हुआ अर्थात् वाक्य ही रह जाता है।

प्रकृतिप्रत्ययार्थयोः समानजातीयत्वमेवेष्यते। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- प्रकृति और प्रत्यय की समान जातीयता होने पर ही ड-प्रत्यय होता है, अन्यथा नहीं होता।

नेह- एकादश माषा अधिका अस्मिन्सुवर्णशते। उपर्युक्त वार्तिक के नियम से **माष**-मात्रा और **सुवर्ण**-मात्रा में समान-जातीयता न होने के कारण ड-प्रत्यय नहीं हुआ।

१८४७. शदन्तविंशतेश्च ५।२।४६॥

डः स्यादुक्तेऽर्थे। त्रिंशदधिका अस्मिन् त्रिंशं शतम्। विंशम्।

शदन्तविंशतेश्च। शत्-शब्दोऽन्ते यस्य स शदन्तः, शदन्तश्च विंशतिश्च तयोः समाहारद्वन्द्वः शदन्तविंशतिः, सौत्रं पुस्त्वम्। तस्मात् शदन्तविंशतेः पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **तदस्मिन्नधिकमिति दशान्ताड्डः** से **तद्, अस्मिन्, अधिकम्, डः** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समार्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

प्रथमा-समर्थ अधिक-समानाधिकरणवाची जो शदन्त तथा विंशति प्रातिपदिक, उनसे भी सप्तम्यर्थ में ड-प्रत्यय होता है।

यह सूत्र पूर्वसूत्र का ही विषय है किन्तु दशान्त न होने से उसकी प्राप्ति नहीं रही। अतः प्रकृतसूत्र की सार्थकता है।

त्रिंशदधिका अस्मिन् त्रिंशं शतम्। तीस अधिक हो ऐसा सौ अर्थात् एक सौ तीस। **त्रिंशत् अधिकाः अस्मिन्** विग्रह करके **त्रिंशत्+सु** इस स्थिति में **शदन्तविंशतेश्च** सूत्र के द्वारा ड-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **त्रिंशत्+अ** बना है। **टेः** सूत्र के द्वारा टिसंज्ञक भाग **अत्** का लोप होकर **त्रिंश** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **त्रिंशम्** सिद्ध हो जाता है।

अथ मत्वर्थीयप्रकरणम्

अब मत्वर्थीय-प्रकरण का आरम्भ है। वास्तव में (१८९४) **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** (५.२.९४) सूत्र से मतुप्-प्रत्यय का आरम्भ होता है और मतुबर्थ में होने वाले अन्य-प्रत्ययों को भी मत्वर्थीय कहा जाता है किन्तु दीक्षित जी ने उससे पहले **तद् अस्मिन् अधिकम्** अर्थ में होने वाले प्रत्ययों का भी मत्वर्थीय प्रकरण में समावेश किया है। कई आचार्य उक्त मतुब्विधायकसूत्र से पहले के सूत्रों का समावेश पाञ्चमिक-प्रकरण में ही करते हैं, जो उचित भी लगता है।

१८४६. तदस्मिन्नधिकमिति दशान्ताड्डः ५।२।४५॥

एकादश अधिका अस्मिन्नेकादशम्।

'शतसहस्रयोरेवेष्यते' (वा.३१४१)।

नेह- एकादश अधिका अस्यां विंशतौ।

'प्रकृतिप्रत्ययार्थयोः समानजातीयत्वमेवेष्यते' (वा.३१४०)।

नेह- एकादश माषा अधिका अस्मिन्सुवर्णशते।

तदस्मिन्नधिकमिति दशान्ताड्डः। दशन्-शब्दोऽन्ते यस्य तद् दशान्तं, तस्माद् दशान्तात्। तत् प्रथमान्तम्, अस्मिन् सप्तम्यन्तम्, अधिकं प्रथमान्तम्, इत्यव्ययं, दशान्तात् पञ्चम्यन्तं, डः प्रथमान्तम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

प्रथमा-समर्थ दशन्-शब्दान्त समासयुक्त प्रातिपदिक से सप्तम्यर्थ में ड-प्रत्यय होता है, यदि वह प्रथमान्त अधिक के समानाधिकरण वाला हो।

प्रथमान्त **तत्** पद प्रथमा-समर्थ-विभक्ति का सूचक है और **अस्मिन्** पद अर्थबोधक। डकार इत्संज्ञक है, अकार मात्र बचता है। डित्करण टिलोप के लिये है।

एकादश अधिका अस्मिन्नेकादशम्। ग्यारह अधिक हैं जिस शत में या सहस्र में अर्थात् एक सौ ग्यारह एवं एक हजार ग्यारह। **एकादश अधिकाः अस्मिन्** विग्रह करके **एकादशन्+जस्** इस स्थिति में **तदस्मिन्नधिकमिति दशान्ताड्डः** सूत्र से ड-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप होकर **एकादशन्+अ** बना है। **टेः** सूत्र से टिसंज्ञक भाग **अन्** का

लोप होकर **एकादश** शब्द बनता है। **शतम्** या **सहस्रम्** का विशेषण होने के कारण नपुंसकलिङ्ग होकर **एकादशम्** सिद्ध हो जाता है।

सूत्रोक्त **अधिक**-शब्द सापेक्ष है। किसमें अधिक? यह प्रश्न उदित होता है। उसकी पूर्ति अगले वार्तिक से की जा रही है साथ ही अतिव्याप्तिवारण भी किया जाता है।

शतसहस्रयोरेवेष्यते। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- **शत** और **सहस्र** शब्दों से ही एकादश संख्या अधिक ली जानी चाहिये, अन्य शब्दों से नहीं। इस तरह शत से ग्यारह ज्यादा होने पर या सहस्र से ग्यारह ज्यादा होने पर यह सूत्र लगता है।

नेह- एकादश अधिका अस्यां विंशतौ। अर्थात् उपर्युक्त वार्तिक से शत और सहस्र से अधिक होने पर ड-प्रत्यय का विधान होने के कारण **एकादश अधिका अस्यां विंशतौ** (ग्यारह अधिक हैं इस बीस में=इकतीस) में ड-प्रत्यय नहीं हुआ अर्थात् वाक्य ही रह जाता है।

प्रकृतिप्रत्ययार्थयोः समानजातीयत्वमेवेष्यते। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- प्रकृति और प्रत्यय की समान जातीयता होने पर ही ड-प्रत्यय होता है, अन्यथा नहीं होता।

नेह- एकादश माषा अधिका अस्मिन्सुवर्णशते। उपर्युक्त वार्तिक के नियम से **माष**-मात्रा और **सुवर्ण**-मात्रा में समान-जातीयता न होने के कारण ड-प्रत्यय नहीं हुआ।

१८४७. शदन्तविंशतेश्च ५।२।४६॥

डः स्यादुक्तेऽर्थे। त्रिंशदधिका अस्मिन् त्रिंशं शतम्। विंशम्।

शदन्तविंशतेश्च। शत्-शब्दोऽन्ते यस्य स शदन्तः, शदन्तश्च विंशतिश्च तयोः समाहारद्वन्द्वः शदन्तविंशतिः, सौत्रं पुस्त्वम्। तस्मात् शदन्तविंशतेः पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **तदस्मिन्नधिकमिति दशान्ताड्डः** से **तद्, अस्मिन्, अधिकम्, डः** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समार्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

प्रथमा-समर्थ अधिक-समानाधिकरणवाची जो शदन्त तथा विंशति प्रातिपदिक, उनसे भी सप्तम्यर्थ में ड-प्रत्यय होता है।

यह सूत्र पूर्वसूत्र का ही विषय है किन्तु दशान्त न होने से उसकी प्राप्ति नहीं रही। अतः प्रकृतसूत्र की सार्थकता है।

त्रिंशदधिका अस्मिन् त्रिंशं शतम्। तीस अधिक हो ऐसा सौ अर्थात् एक सौ तीस। **त्रिंशत् अधिकाः अस्मिन्** विग्रह करके **त्रिंशत्+सु** इस स्थिति में **शदन्तविंशतेश्च** सूत्र के द्वारा ड-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **त्रिंशत्+अ** बना है। **टेः** सूत्र के द्वारा टिसंज्ञक भाग **अत्** का लोप होकर **त्रिंश** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **त्रिंशम्** सिद्ध हो जाता है।

विंशम्। बीस अधिक हो ऐसा सौ अर्थात् एक सौ बीस। **विंशतिः अधिकाः अस्मिन्** विग्रह करके **विंशति+सु** इस स्थिति में **शदन्तविंशतेश्च** सूत्र के द्वारा ड-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **विंशति+अ** बना है। **ति विंशतेर्डिति (६.४.१४२)** सूत्र के द्वारा **ति**-शब्द का लोप होकर **विंश+अ** बनता है और **टेः** सूत्र से टिसंज्ञक भाग अकार का लोप होकर **विंश** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **विंशम्** सिद्ध हो जाता है।

प्रकृत सूत्र में **अन्त**-शब्द का ग्रहण करने से **एकत्रिंशम्, द्वात्रिंशम्** आदि प्रयोग भी सिद्ध हो जाते हैं। यही स्थिति **विंशति** शब्द के सम्बन्ध में भी समझनी चाहिये, क्योंकि महाभाष्य में तदनुरूप वार्तिक का उल्लेख है- **विंशतावप्यन्तग्रहणम्।**

१८४८. संख्याया गुणस्य निमाने मयट् ५।२।४७॥

भागस्य मूल्ये वर्तमानात् प्रथमान्तात् संख्यावाचिनः षष्ठ्यर्थे मयट् स्यात्। यवानां द्वौ भागौ निमानमस्योदश्विद्भागस्य द्विमयमुदश्विद्यवानाम्। 'गुणस्य' इति किम्? द्वौ व्रीहियवौ निमानमस्योदश्वितः। 'निमाने' किम्? द्वौ गुणौ क्षीरस्य एकस्तैलस्य द्विगुणं क्षीरं पच्यते तैलेन।

संख्याया गुणस्य निमाने मयट्। संख्यायाः पञ्चम्यन्तं, गुणस्य षष्ठ्यन्तं, निमाने सप्तम्यन्तं, मयट् प्रथमान्तम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समार्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'भाग का यह मूल्य है' इस अर्थ में वर्तमान प्रथमा-समर्थ संख्यावाची प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में मयट् प्रत्यय होता है।

यद्यपि अर्थ की दृष्टि से सूत्र पूर्ण है तथापि समर्थ-विभक्ति के लिये मण्डूकप्लुति से **तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्** सूत्र से **तदस्य** पदों की अनुवृत्ति अपेक्षित है। सूत्रस्थ **गुण**-शब्द **भाग** अर्थ में प्रयुक्त है तथा **निमान** शब्द का **मूल्य** अर्थ है। **मयट्** में टकार इत्संज्ञक है, **मय** बचता है।

यवानां द्वौ भागौ निमानमस्योदश्विद्भागस्य द्विमयमुदश्विद्यवानाम्। एक भाग मठ्ठा का मूल्य उसका दो भाग यव अर्थात् एक सेर मठ्ठे का मूल्य दो सेर यव। **यवानां द्वौ भागौ निमानम् अस्य** विग्रह करके **द्वि+औ** इस स्थिति में **संख्याया गुणस्य निमाने मयट्** सूत्र से मयट् प्रत्यय करने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् करके **द्विमय** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य करके **द्विमयम्** सिद्ध हो जाता है।

'गुणस्य' इति किम्? द्वौ व्रीहियवौ निमानमस्योदश्वितः। प्रकृतसूत्र में भाग के बोधक गुण-शब्द का निवेश होने से जहाँ पर द्विगुना, तीन गुना अर्थ विद्यमान होगा, वहीं मयट् होगा, अन्यत्र नहीं होगा। **द्वौ व्रीहियवौ निमानम् अस्य उदश्वितः** (दो धान

और जौ मूल्य है जिस उदश्वित् का) में मयट् नहीं हुआ, क्योंकि सूत्र के अनुसार जहाँ गुणवाचक की संख्या ही मूल्य-रूप से हो वहीं मयट् प्रत्यय होता है। यहाँ मठ्ठा का दूना जौ और धान उसके मूल्य-रूप में निर्दिष्ट है, न कि संख्या। अतः वाक्य ही रह जाता है।

'निमाने' किम्? द्वौ गुणौ क्षीरस्य एकस्तैलस्य द्विगुणं क्षीरं पच्यते तैलेन। प्रकृतसूत्र में मूल्यबोधक **निमान**-शब्द का निवेश होने से जहाँ पर मूल्य अर्थ का बोध होगा, वहीं मयट् होगा, अन्यत्र नहीं होगा। अतः **द्वौ गुणौ क्षीरस्य एकस्तैलस्य द्विगुणं क्षीरं पच्यते** (तेल द्वारा उसका दुगुना दूध जलाया या पकाया जाता है) में मयट् नहीं हुआ, क्योंकि यहाँ मूल्य की बात नहीं हो रही है। अतः वाक्य ही रह जाता है।

१८४९. तस्य पूरणे डट् ५।२।४८॥
एकादशानां पूरण एकादशः।

तस्य पूरणे डट्। तस्य षष्ठ्यन्तं, पूरणे सप्तम्यन्तं, डट् प्रथमान्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **सङ्ख्याया गुणस्य निमाने मयट्** से **सङ्ख्यायाः** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार पूर्ववत् आ रहा है।

सङ्ख्यावाचक षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से पूरण अर्थ में डट् प्रत्यय होता है।

डकार और **टकार** की इत्संज्ञा होती है। टित् का फल स्त्रीलिङ्ग में विशेष प्रत्यय के लिए है और डित् का प्रयोजन **टेः** से टिलोप है। एक का पूरण अर्थात् पहली संख्या को पूर्ण करने वाला(पहला) प्रथम, दो का पूरण द्वितीय, पाँच का पूरण पञ्चम आदि समझना चाहिए। जो संख्या है, उसकी पूर्ति करने वाला व्यक्ति, पदार्थ। **पूर्यतेऽनेन इति पूरणः=अवयवः।**

एकादशः। ग्यारहवीं संख्या को पूर्ण करने वाला, ग्यारहवाँ। **एकादशानां पूरणः** लौकिक विग्रह और **एकादशन् आम्** अलौकिक विग्रह है। **तस्य पूरणे डट्** सूत्र से **डट्**, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **एकादशन्+अ** बना। इसमें **अन्** टिसंज्ञक भाग है, उसका **टेः** से लोप हुआ, **एकादश्+अ=एकादश** बना। स्वादिकार्य होकर **एकादशः** सिद्ध हो जाता है। दस के बाद ग्यारहवाँ व्यक्ति न हो तो ग्यारह संख्या नहीं बनती। अतः दसवें के बाद वाला व्यक्ति ग्यारहवीं संख्या का पूरक=पूरण करने वाला है। इसी प्रकार बारहवीं आदि संख्या का पूरण अर्थ में **द्वादशः, त्रयोदशः, चतुर्दशः, पञ्चदशः, षोडशः, सप्तदशः, अष्टादशः** आदि प्रयोग बनते हैं।

१८५०. नान्तादसंख्यादेर्मट् ५।२।४९॥
डटो मडागमः स्यात्। पञ्चानां पूरणः पञ्चमः।
'नान्तात्' किम्? विंशः। 'असंख्यादेः' किम्? एकादशः।

अथ मत्वर्थीयप्रकरणम्

अब मत्वर्थीय-प्रकरण का आरम्भ है। वास्तव में (१८९४) तदस्यास्त्यस्मिन्निति **मतुप्** (५.२.९४) सूत्र से मतुप्-प्रत्यय का आरम्भ होता है और मतुबर्थ में होने वाले अन्य-प्रत्ययों को भी मत्वर्थीय कहा जाता है किन्तु दीक्षित जी ने उससे पहले **तद् अस्मिन् अधिकम्** अर्थ में होने वाले प्रत्ययों का भी मत्वर्थीय प्रकरण में समावेश किया है। कई आचार्य उक्त मतुब्विधायकसूत्र से पहले के सूत्रों का समावेश पाञ्चमिक-प्रकरण में ही करते हैं, जो उचित भी लगता है।

१८४६. तदस्मिन्नधिकमिति दशान्ताड्डः ५।२।४५॥

एकादश अधिका अस्मिन्नेकादशम्।

'शतसहस्रयोरेवेष्यते' (वा.३१४१)।

नेह- एकादश अधिका अस्यां विंशतौ।

'प्रकृतिप्रत्ययार्थयोः समानजातीयत्वमेवेष्यते' (वा.३१४०)।

नेह- एकादश माषा अधिका अस्मिन्सुवर्णशते।

तदस्मिन्नधिकमिति दशान्ताड्डः। दशन्-शब्दोऽन्ते यस्य तद् दशान्तं, तस्माद् दशान्तात्। तत् प्रथमान्तम्, अस्मिन् सप्तम्यन्तम्, अधिकं प्रथमान्तम्, इत्यव्ययं, दशान्तात् पञ्चम्यन्तं, डः प्रथमान्तम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

प्रथमा-समर्थ दशन्-शब्दान्त समासयुक्त प्रातिपदिक से सप्तम्यर्थ में ड-प्रत्यय होता है, यदि वह प्रथमान्त अधिक के समानाधिकरण वाला हो।

प्रथमान्त **तत्** पद प्रथमा-समर्थ-विभक्ति का सूचक है और **अस्मिन्** पद अर्थबोधक। डकार इत्संज्ञक है, अकार मात्र बचता है। डित्करण टिलोप के लिये है।

एकादश अधिका अस्मिन्नेकादशम्। ग्यारह अधिक हैं जिस शत में या सहस्र में अर्थात् एक सौ ग्यारह एवं एक हजार ग्यारह। **एकादश अधिकाः अस्मिन्** विग्रह करके **एकादशन्+जस्** इस स्थिति में **तदस्मिन्नधिकमिति दशान्ताड्डः** सूत्र से ड-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप होकर **एकादशन्+अ** बना है। **टेः** सूत्र से टिसंज्ञक भाग **अन्** का

लोप होकर **एकादश** शब्द बनता है। **शतम्** या **सहस्रम्** का विशेषण होने के कारण नपुंसकलिङ्ग होकर **एकादशम्** सिद्ध हो जाता है।

सूत्रोक्त **अधिक**-शब्द सापेक्ष है। किसमें अधिक? यह प्रश्न उदित होता है। उसकी पूर्ति अगले वार्तिक से की जा रही है साथ ही अतिव्याप्तिवारण भी किया जाता है।

शतसहस्रयोरेवेष्यते। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- **शत** और **सहस्र** शब्दों से ही एकादश संख्या अधिक ली जानी चाहिये, अन्य शब्दों से नहीं। इस तरह शत से ग्यारह ज्यादा होने पर या सहस्र से ग्यारह ज्यादा होने पर यह सूत्र लगता है।

नेह- एकादश अधिका अस्यां विंशतौ। अर्थात् उपर्युक्त वार्तिक से शत और सहस्र से अधिक होने पर ड-प्रत्यय का विधान होने के कारण **एकादश अधिका अस्यां विंशतौ** (ग्यारह अधिक हैं इस बीस में=इकतीस) में ड-प्रत्यय नहीं हुआ अर्थात् वाक्य ही रह जाता है।

प्रकृतिप्रत्ययार्थयोः समानजातीयत्वमेवेष्यते। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- प्रकृति और प्रत्यय की समान जातीयता होने पर ही ड-प्रत्यय होता है, अन्यथा नहीं होता।

नेह- एकादश माषा अधिका अस्मिन्सुवर्णशते। उपर्युक्त वार्तिक के नियम से **माष**-मात्रा और **सुवर्ण**-मात्रा में समान-जातीयता न होने के कारण ड-प्रत्यय नहीं हुआ।

१८४७. शदन्तविंशतेश्च ५।२।४६॥

डः स्यादुक्तेऽर्थे। त्रिंशदधिका अस्मिन् त्रिंशं शतम्। विंशम्।

शदन्तविंशतेश्च। शत्-शब्दोऽन्ते यस्य स शदन्तः, शदन्तश्च विंशतिश्च तयोः समाहारद्वन्द्वः शदन्तविंशतिः, सौत्रं पुस्त्वम्। तस्मात् शदन्तविंशतेः पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **तदस्मिन्नधिकमिति दशान्ताड्डः** से **तद्, अस्मिन्, अधिकम्, डः** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः**, **ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समार्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

प्रथमा-समर्थ अधिक-समानाधिकरणवाची जो शदन्त तथा विंशति प्रातिपदिक, उनसे भी सप्तम्यर्थ में ड-प्रत्यय होता है।

यह सूत्र पूर्वसूत्र का ही विषय है किन्तु दशान्त न होने से उसकी प्राप्ति नहीं रही। अतः प्रकृतसूत्र की सार्थकता है।

त्रिंशदधिका अस्मिन् त्रिंशं शतम्। तीस अधिक हो ऐसा सौ अर्थात् एक सौ तीस। **त्रिंशत् अधिकाः अस्मिन्** विग्रह करके **त्रिंशत्+सु** इस स्थिति में **शदन्तविंशतेश्च** सूत्र के द्वारा ड-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **त्रिंशत्+अ** बना है। **टेः** सूत्र के द्वारा टिसंज्ञक भाग **अत्** का लोप होकर **त्रिंश** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **त्रिंशम्** सिद्ध हो जाता है।

विंशम्। बीस अधिक हो ऐसा सौ अर्थात् एक सौ बीस। **विंशतिः अधिकाः अस्मिन्** विग्रह करके **विंशति+सु** इस स्थिति में **शदन्तविंशतेश्च** सूत्र के द्वारा ड-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **विंशति+अ** बना है। **ति विंशतेर्डिति** (६.४.१४२) सूत्र के द्वारा **ति**-शब्द का लोप होकर **विंश+अ** बनता है और **टेः** सूत्र से टिसंज्ञक भाग अकार का लोप होकर **विंश** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **विंशम्** सिद्ध हो जाता है।

प्रकृत सूत्र में **अन्त**-शब्द का ग्रहण करने से **एकत्रिंशम्, द्वात्रिंशम्** आदि प्रयोग भी सिद्ध हो जाते हैं। यही स्थिति **विंशति** शब्द के सम्बन्ध में भी समझनी चाहिये, क्योंकि महाभाष्य में तदनुरूप वार्तिक का उल्लेख है- **विंशतावप्यन्तग्रहणम्।**

१८४८. संख्याया गुणस्य निमाने मयट् ५।२।४७॥

भागस्य मूल्ये वर्तमानात् प्रथमान्तात् संख्यावाचिनः षष्ठ्यर्थे मयट् स्यात्। यवानां द्वौ भागौ निमानमस्योदश्विद्भागस्य द्विमयमुदश्विद्यवानाम्। 'गुणस्य' इति किम्? द्वौ व्रीहियवौ निमानमस्योदश्वितः। 'निमाने' किम्? द्वौ गुणौ क्षीरस्य एकस्तैलस्य द्विगुणं क्षीरं पच्यते तैलेन।

संख्याया गुणस्य निमाने मयट्। संख्यायाः पञ्चम्यन्तं, गुणस्य षष्ठ्यन्तं, निमाने सप्तम्यन्तं, मयट् प्रथमान्तम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समार्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

'भाग का यह मूल्य है' इस अर्थ में वर्तमान प्रथमा-समर्थ संख्यावाची प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में मयट् प्रत्यय होता है।

यद्यपि अर्थ की दृष्टि से सूत्र पूर्ण है तथापि समर्थ-विभक्ति के लिये मण्डूकप्लुति से **तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्** सूत्र से **तदस्य** पदों की अनुवृत्ति अपेक्षित है। सूत्रस्थ **गुण**-शब्द **भाग** अर्थ में प्रयुक्त है. तथा **निमान** शब्द का **मूल्य** अर्थ है। **मयट्** में टकार इत्संज्ञक है, **मय** बचता है।

यवानां द्वौ भागौ निमानमस्योदश्विद्भागस्य द्विमयमुदश्विद्यवानाम्। एक भाग मठ्ठा का मूल्य उसका दो भाग यव अर्थात् एक सेर मठ्ठे का मूल्य दो सेर यव। **यवानां द्वौ भागौ निमानम् अस्य** विग्रह करके **द्वि+औ** इस स्थिति में **संख्याया गुणस्य निमाने मयट्** सूत्र से मयट् प्रत्यय करने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् करके **द्विमय** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य करके **द्विमयम्** सिद्ध हो जाता है।

'गुणस्य' इति किम्? द्वौ व्रीहियवौ निमानमस्योदश्वितः। प्रकृतसूत्र में भाग के बोधक गुण-शब्द का निवेश होने से जहाँ पर द्विगुना, तीन गुना अर्थ विद्यमान होगा, वहीं मयट् होगा, अन्यत्र नहीं होगा। **द्वौ व्रीहियवौ निमानम् अस्य उदश्वंतः** (दो धान

और जौ मूल्य है जिस उदश्वित् का) में मयट् नहीं हुआ, क्योंकि सूत्र के अनुसार जहाँ गुणवाचक की संख्या ही मूल्य-रूप से हो वहीं मयट् प्रत्यय होता है। यहाँ मठ्ठा का दूना जौ और धान उसके मूल्य-रूप में निर्दिष्ट है, न कि संख्या। अतः वाक्य ही रह जाता है।

'निमाने' किम्? द्वौ गुणौ क्षीरस्य एकस्तैलस्य द्विगुणं क्षीरं पच्यते तैलेन। प्रकृतसूत्र में मूल्यबोधक **निमान**-शब्द का निवेश होने से जहाँ पर मूल्य अर्थ का बोध होगा, वहीं मयट् होगा, अन्यत्र नहीं होगा। अतः **द्वौ गुणौ क्षीरस्य एकस्तैलस्य द्विगुणं क्षीरं पच्यते** (तेल द्वारा उसका दुगुना दूध जलाया या पकाया जाता है) में मयट् नहीं हुआ, क्योंकि यहाँ मूल्य की बात नहीं हो रही है। अतः वाक्य ही रह जाता है।

१८४९. तस्य पूरणे डट् ५।२।४८॥

एकादशानां पूरण एकादशः।

तस्य पूरणे डट्। तस्य षष्ठ्यन्तं, पूरणे सप्तम्यन्तं, डट् प्रथमान्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **सङ्ख्याया गुणस्य निमाने मयट्** से **सङ्ख्यायाः** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार पूर्ववत् आ रहा है।

सङ्ख्यावाचक षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से पूरण अर्थ में डट् प्रत्यय होता है।

डकार और **टकार** की इत्संज्ञा होती है। टित् का फल स्त्रीलिङ्ग में विशेष प्रत्यय के लिए है और डित् का प्रयोजन **टेः** से टिलोप है। एक का पूरण अर्थात् पहली संख्या को पूर्ण करने वाला(पहला) प्रथम, दो का पूरण द्वितीय, पाँच का पूरण पञ्चम आदि समझना चाहिए। जो संख्या है, उसकी पूर्ति करने वाला व्यक्ति, पदार्थ। **पूर्यतेऽनेन इति पूरणः=अवयवः।**

एकादशः। ग्यारहवीं संख्या को पूर्ण करने वाला, ग्यारहवाँ। **एकादशानां पूरणः** लौकिक विग्रह और **एकादशन् आम्** अलौकिक विग्रह है। **तस्य पूरणे डट्** सूत्र से **डट्**, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **एकादशन्+अ** बना। इसमें **अन्** टिसंज्ञक भाग है, उसका **टेः** से लोप हुआ, **एकादश्+अ=एकादश** बना। स्वादिकार्य होकर **एकादशः** सिद्ध हो जाता है। दस के बाद ग्यारहवाँ व्यक्ति न हो तो ग्यारह संख्या नहीं बनती। अतः दसवें के बाद वाला व्यक्ति ग्यारहवीं संख्या का पूरक=पूरण करने वाला है। इसी प्रकार बारहवीं आदि संख्या का पूरण अर्थ में **द्वादशः, त्रयोदशः, चतुर्दशः, पञ्चदशः, षोडशः, सप्तदशः, अष्टादशः** आदि प्रयोग बनते हैं।

१८५०. नान्तादसंख्यादेर्मट् ५।२।४९॥

डटो मडागमः स्यात्। पञ्चानां पूरणः पञ्चमः।

'नान्तात्' किम्? विंशः। 'असंख्यादेः' किम्? एकादशः।

नान्तादसङ्ख्यादेर्मट्। न अन्तो यस्य तत् नान्तं, तस्मात्। सङ्ख्या आदिर्यस्य स सङ्ख्यादिः, न सङ्ख्यादिरसङ्ख्यादिस्तस्मादसङ्ख्यादेः। नान्तात् पञ्चम्यन्तं, असङ्ख्यादेः पञ्चम्यन्तं, मट् प्रथमान्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्। **तस्य पूरणे डट्** से षष्ठी में विभक्तिविपरिणाम करके **डटः** की अनुवृत्ति आती है।

जिसके आदि में कोई सङ्ख्याशब्द न जुड़ा हो, ऐसे नकारान्त सङ्ख्यावाचक प्रातिपदिक से परे डट् को मट् का आगम होता है।

आगम का कोई न कोई आगमी अवश्य होता है। अतः अनुवृत्त डट् ही आगमी है। आगम षष्ठी-निर्दिष्ट को ही होता है, अतः उसका षष्ठ्यन्त में विपरिणाम किया जाता है- **डटः**। **मट्** में टकार इत्संज्ञक है और अकार उच्चारणार्थक। अतः केवल म् अवशिष्ट रहता है। टित् होने के कारण यह मकार **डट्** के आदि में बैठेगा।

पञ्चमः। पाँचवीं संख्या को पूर्ण करने वाला, पाँचवाँ। **पञ्चानां पूरणः** लौकिक विग्रह और **पञ्चन् आम्** अलौकिक विग्रह है। **तस्य पूरणे डट्** से **डट्**, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **पञ्चन्+अ** बना। **नान्तादसङ्ख्यादेर्मट्** से मट् का आगम, अनुबन्धलोप, टित् होने के कारण **आद्यन्तौ टकितौ** के नियम से डट् वाले अकार के आदि में बैठा, म और डट् वाले अकार में पररूप होने पर **पञ्चन्+म** बना। इसमें अन् **टि** है, उसका **टेः** से लोप नहीं हुआ, क्योंकि **म्** हल् होने के कारण उसके परे रहते भसंज्ञा न होकर **स्वादिष्वसर्वनामस्थाने** से पदसंज्ञा हुई है। **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से नकार का लोप होकर **पञ्चम** बना और सु, रुत्वविसर्ग करके **पञ्चमः** सिद्ध हुआ। इसी प्रकार **सप्तमः, नवमः, अष्टमः, दशमः** आदि प्रयोग बनते हैं।

नान्तात् किम्? विंशः। प्रकृत सूत्र में **नान्तात्** पद के निवेश से नकारान्त संख्यावाची शब्दों से ही डट् को मट् आगम होता है, अन्यथा नहीं होता। अतः **विंशः** में मट् आगम नहीं हुआ है। बीस सङ्ख्या का पूरण, बीसवाँ। **विंशतेः पूरणः** लौकिक विग्रह और **विंशति ङस्** अलौकिक विग्रह है। **तस्य पूरणे डट्** से डट्, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **विंशति+अ** बना। **विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम्** से वैकल्पिक तमड् आगम, अनुबन्धलोप, **तम्+अ=तम=विंशतितम** बना, सु, रुत्वविसर्ग करके **विंशतितमः** सिद्ध हुआ। **तमड्** न होने के पक्ष में डट् के परे टिलोप प्राप्त था, उसे बाधकर **ति विंशतेर्डिति** से ति का लोप हुआ, **विंश** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **विंशः** सिद्ध हुआ। स्त्रीलिङ्ग में **विंशतितमी** और **विंशी** बनता है तथा नपुंसकलिङ्ग में **विंशतितमम्** और **विंशम्** बनता है। इसी तरह- **त्रिंशः**। तीस सङ्ख्या का पूरण, तीसवाँ। **त्रिंशतः पूरणः** लौकिक विग्रह और **त्रिंशत् ङस्** अलौकिक विग्रह है। **तस्य पूरणे डट्** से डट्, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **त्रिंशत्+अ** बना। **विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम्** से वैकल्पिक तमडागम, अनुबन्धलोप, **तम्+अ=तम,**

त्रिंशत्+तम=त्रिंशत्तम बना, सु, रुत्वविसर्ग करके **त्रिंशत्तमः** सिद्ध हुआ। तमड् न होने के पक्ष में डट् के परे अत् इस टि का **टेः** से लोप करके **त्रिंश्+ अ=त्रिंश** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **त्रिंशः** सिद्ध हुआ। स्त्रीलिङ्ग में **त्रिंशत्तमी** और **त्रिंशी** बनता है तथा नपुंसकलिङ्ग में **त्रिंशत्तमम्** और **त्रिंशम्** बनता है। इसी तरह **चत्वारिंशत्तमः, चत्वारिंशः** आदि भी बनाते जाइये।

असङ्ख्यादेः किम्? एकादशः। यदि **नान्तादसङ्ख्यादेर्मट्** में **असङ्ख्यादेः** न कहते तो सङ्ख्यादि **एकादशन्** आदि में भी मट् आगम होकर **एकादशमः** आदि अनिष्ट रूप बन जाते। अतः ऐसा न हो इसके लिए असंख्यादेः पढ़ा गया। **एकादशन्** में तो एक संख्या आदि में है, सो यहाँ नहीं हुआ। यहाँ पर डट् के परे टिलोप होकर **एकादशः, द्वादशः, त्रयोदशः** आदि बनते हैं।

१८५१. षट्कतिकतिपयचतुरां थुक् ५।२।५१॥

एषां थुगागमः स्याड्डटि। षण्णां पूरणः षष्ठः। कतिथः। कतिपयशब्दस्यासंख्यात्वेऽप्यत एव ज्ञापकाड्डट्। कतिपयथः। चतुर्थः। 'चतुरश्छयतावाद्यक्षरलोपश्च'(वा.३१५८)। तुरीयः, तुर्यः।

षट्कतिकतिपयचतुरां थुक्। षट् च कतिश्च कतिपयश्च चतुश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः षट्कतिकतिपयचतुरः, तेषाम्। षट्कतिकतिपयचतुरां षष्ठ्यन्तं, थुक् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **तस्य पूरणे डट्** से विभक्तिविपरिणाम करके **डटि** की अनुवृत्ति आती है।

डट् के परे रहते षष्, कति, कतिपय और चतुर् शब्दों को थुक् का आगम होता है।

थुक् में उकार और **ककार** इत्संज्ञक हैं, **थ्** शेष रहता है। **कित्** होने के कारण आगमी प्रकृति के अन्त में बैठता है किन्तु वर्णसम्मेलन होकर **डट्** वाले **अकार** में मिल जाता है। मट् आगम का आगमी प्रत्यय है तो थुक् का आगमी प्रकृति। यह अन्तर है।

षष्ठः। छठवीं संख्या का पूरण, छठवाँ। **षण्णां पूरणः** लौकिक विग्रह और **षष् आम्** अलौकिक विग्रह है। **तस्य पूरणे डट्** से **डट्**, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **षष्+अ** बना है। **षट्कतिकतिपयचतुरां थुक्** से षष् को थुक् का आगम, अनुबन्धलोप, **षष्+थ्+अ** बना। षकार से परे थकार को **ष्टुना ष्टुः** से टुत्व होकर **ठ** बना और वर्णसम्मेलन होकर **षष्ठ** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **षष्ठः** सिद्ध हुआ।

कतिपयशब्दस्यासंख्यात्वेऽप्यत एव ज्ञापकाड्डट्। यद्यपि सूत्रोक्त **कतिपय**-शब्द के संख्यावाची न होने के कारण **तस्य पूरणे डट्** सूत्र से डट् की प्राप्ति नहीं थी तथापि प्रकृतसूत्र के द्वारा कतिपय-शब्द से परवर्ती डट् को थुगागम विधान करने

से यह ज्ञापित होता है कि संख्यावाची न होने पर भी कतिपय-शब्द से डट् होता है।

कतिथः। कितनी संख्या का पूरण, कौन-सा। **कतीनां पूरणः** लौकिक विग्रह और **कति आम्** अलौकिक विग्रह है। **तस्य पूरणे डट्** से **डट्**, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **कति+अ** बना है। **षट्कतिकतिपयचतुरां थुक्** से कति को थुक् का आगम, अनुबन्धलोप, **कति+थ्+अ=कतिथ** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **कतिथः** सिद्ध हुआ।

कतिपयथः। कुछ एक संख्या का पूरण, कुछेकवाँ। **कतिपयानां पूरणः** लौकिक विग्रह और **कतिपय आम्** अलौकिक विग्रह है। **तस्य पूरणे डट्** से **डट्**, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **कतिपय+अ** बना है। **षट्कतिकतिपयचतुरां थुक्** से कतिपय को थुक् का आगम, अनुबन्धलोप, **कतिपय+थ्+अ=कतिपयथ** बना। सु, रुत्वविसर्ग करके **कतिपयथः** सिद्ध हुआ।

चतुर्थः। चार संख्या का पूरण, चौंथा। **चतुर्णां पूरणः** लौकिक विग्रह और **चतुर् आम्** अलौकिक विग्रह है। **तस्य पूरणे डट्** से **डट्**, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **चतुर्+अ** बना है। **षट्कतिकतिपयचतुरां थुक्** से चतुर् को थुक् का आगम, अनुबन्धलोप, **चतुर्+थ्+अ=चतुर्थ** बना और सु, रुत्वविसर्ग करके **चतुर्थः** सिद्ध हुआ।

चतुरश्छयतावाद्यक्षरलोपश्च। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- षष्ठ्यन्त चतुर्-शब्द से पूरणार्थ में **छ** तथा **यत्** प्रत्यय होते हैं और प्रकृति के आद्य-अक्षर का लोप भी। प्रकृति का आद्य अक्षर **च** है, उसी का लोप होता है।

तुरीयः, तुर्यः। चार संख्या का पूरण, चौंथा। **चतुर्णां पूरणः** लौकिक विग्रह और **चतुर्+आम्** इस स्थिति में **चतुरश्छयतावाद्यक्षरलोपश्च** वार्तिक से छ-प्रत्यय होने के पक्ष में छकार के स्थान पर ईयादेश और प्रकृत-वार्तिक से ही च-शब्द का लोप होकर **तुरीय** शब्द बनता है। यत्-प्रत्यय होने के पक्ष में भी च-शब्द का लोप होकर **तुर्य** शब्द बनता है। उभयत्र स्वादिकार्य होकर **तुरीयः** और **तुर्यः** ये दो प्रयोग सिद्ध होते हैं।

१८५२. बहुपूगगणसङ्घस्य तिथुक् ५।२।५२॥

'डटि' इत्येव। पूगसङ्घयोरसंख्यात्वेऽप्यत एव डट्। बहुतिथ इत्यादि।

बहुपूगगणसङ्घस्य तिथुक्। बहवश्च पूगश्च गणश्च सङ्घश्च तेषां समाहारद्वन्द्वो बहुपूगगणसङ्घं, तस्य बहुपूगगणसङ्घस्य षष्ठ्यन्तं, तिथुक् प्रथमान्तम्। **तस्य पूरणे डट्** से विभक्तिविपरिणाम करके **डटि** की अनुवृत्ति आती है।

डट् के परे रहते बहु, पूग, गण और सङ्घ शब्दों को तिथुक् का आगम होता है।

'डटि' इत्येव। यह आगम भी डट्-प्रत्यय के विषय में ही है। **तिथुक्** में ककार इत्संज्ञक है और अकार उच्चारणार्थक। अतः **तिथ्** बचता है। कित् होने के कारण आगमी बहु, पूग आदि के अन्त में बैठता है।

पूगसङ्घयोरसंख्यात्वेऽप्यत एव डट्। यद्यपि **पूग** और **सङ्घ** शब्द संख्यावाची नहीं हैं, अतः **तस्य पूरणे डट्** से डट् की प्राप्ति नहीं है तथापि उक्त शब्दों से डट् के परे रहते तिथुक्-आगम का विधान करने के सामर्थ्य से यह ज्ञापित होता है कि असंख्या होने पर भी डट् होता है। **बहु** और **गण** शब्दों की तो **बहुगणवतुडति संख्या** (१.१. २२) सूत्र से संख्यासंज्ञा होती है।

बहुतिथः। बहुतों का। **बहूनां पूरणः** विग्रह करके **बहु+आम्** इस स्थिति में **तस्य पूरणे डट्** सूत्र से डट् आगम होने के बाद **बहुपूगगणसङ्घस्य तिथुक्** सूत्र से **तिथुक्** आगम होकर **बहुतिथ** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **बहुतिथः** सिद्ध हो जाता है।

इत्यादि। इत्यादि-शब्द से यह निर्देश दिया गया है कि सूत्रोक्त **पूग**-शब्द से डट्-प्रत्यय और तिथुक्-आगम होकर **पूगतिथः** (श्रमजीवी समूहों का), **गण**-शब्द से **गणतिथः** (समूहों का) और **सङ्घ**-शब्द से **सङ्घतिथः** (समूहों का) रूप निष्पन्न होते हैं।

१८५३. वतोरिथुक् ५।२।५३॥

'डटि' इत्येव। यावतिथः।

वतोरिथुक्। वतोः षष्ठ्यन्तम्, इथुक् प्रथमान्तम्। **तस्य पूरणे डट्** से **डट्** की अनुवृत्ति आती है।

वतु-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक को पूरण अर्थ में विहित डट् प्रत्यय के परे रहते इथुक् आगम होता है।

'डटि' इत्येव। अनुवृत्त डट् को सप्तम्यन्त में विपरिणाम करके डट् प्रत्यय के परे रहते प्रकृति को यह आगम विहित है। **इथुक्** में उकार उच्चारणार्थक और ककार इत्संज्ञक है, **इथ्** बचता है।

यावतिथः। जितनों का। **यत्**-शब्द से **वतुप्** प्रत्यय होकर **यावत्** शब्द बनता है। **यावतां पूरणः** विग्रह करके **यावत्+आम्** इस स्थिति में **तस्य पूरणे डट्** सूत्र से डट् आगम होने के बाद **वतोरिथुक्** सूत्र से **इथुक्** आगम होकर **यावतिथ** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **यावतिथः** सिद्ध हो जाता है।

१८५४. द्वेस्तीयः ५।२।५४॥

डटोऽपवादः। द्वयोः पूरणो द्वितीयः।

द्वेस्तीयः। द्वेः पञ्चम्यन्तं, तीयः प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **सङ्ख्याया गुणस्य निमाने मयट्** से **सङ्ख्यायाः, तस्य पूरणे डट्** से **तस्य** एवं **पूरणे** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** और **समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार आता है।

पूरण अर्थ में द्वि शब्द से परे तीय प्रत्यय होता है।

डटोऽपवादः। अर्थात् संख्यावाची शब्दों से तस्य पूरणे डट् सूत्र से प्राप्त डट् प्रत्यय का यह अपवाद है।

द्वितीयः। दो संख्या का पूरण अर्थात् दूसरा। **द्वयोः** पूरणः लौकिक विग्रह और **द्वि ओस्** अलौकिक विग्रह है। **द्वेस्तीयः** से तीय प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **द्वितीय** बना। सु, रुत्व विसर्ग करने पर **द्वितीयः** सिद्ध हो जाता है।

१८५५. त्रेः सम्प्रसारणं च ५।२।५५॥
तृतीयः।

त्रेः सम्प्रसारणञ्च। त्रेः षष्ठ्यन्तं, सम्प्रसारणं प्रथमान्तं, चाव्ययपदं त्रिपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **द्वेस्तीयः** से **तीयः** की, **सङ्ख्याया गुणस्य निमाने मयट्** से **सङ्ख्यायाः**की और **तस्य पूरणे डट्** से **तस्य, पूरणे** की अनुवृत्ति आती है। यहाँ पर त्रि शब्द की द्विरावृत्ति की जाती है सो एक को षष्ठ्यन्त और दूसरे को प्रथमान्त माना जाता है।

त्रि शब्द से पूरण अर्थ में तीय प्रत्यय होता है साथ ही त्रि को सम्प्रसारण भी हो जाता है।

यण् के स्थान पर इक् करने को सम्प्रसारण कहते हैं- **इग्यणः सम्प्रसारणम्**। त्रिशब्द से तीय प्रत्यय और त्रि के रेफ के स्थान पर सम्प्रसारणसंज्ञक ऋकार आदेश होता है। सम्प्रसारण होने पर **सम्प्रसारणाच्च** से पूर्वरूप भी होता है।

तृतीयः। तीन संख्या का पूरण अर्थात् तीसरा। **त्रयाणां पूरणः** लौकिक विग्रह और **त्रि आम्** अलौकिक विग्रह है। **त्रेः सम्प्रसारणञ्च** से तीय प्रत्यय और **त्+र्+इ=त्रि** में जो रेफ, उसके स्थान पर सम्प्रसारणसंज्ञक ऋकार आदेश, **त्+ऋ+इ, ऋ+इ** में **सम्प्रसारणाच्च** से पूर्वरूप एकादेश होने पर ऋकार ही हुआ, **त्+ऋ=तृ+तीय**, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **तृतीय** बना और सु, रुत्व विसर्ग करने पर **तृतीयः** सिद्ध हो जाता है।

१८५६. विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम् ५।२।५६॥
एभ्यो डटस्तमडागमो वा स्यात्।
विंशतितमः, विंशः। एकविंशतितमः, एकविंशः।

विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम्। विंशत्यादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, तमट् प्रथमान्तं, अन्यतरस्यां सप्तम्यन्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्। **सङ्ख्याया गुणस्य निमाने मयट्** से **सङ्ख्यायाः**की और **तस्य पूरणे डट्** से तीनों पदों की अनुवृत्ति आती है।

षष्ठी-समर्थ संख्यावाची विंशति, त्रिंशत्, चत्वारिंशत्, पञ्चाशत्, षष्टि, सप्तति, अशीति, नवति, शतम् इन प्रातिपदिकों से विहित डट् को विकल्प से तमट् आगम होता है।

तमट् में **अट्** इत्संज्ञक है और **तम्** शेष बचता है। यह टित् होने के कारण आगमी के आद्यवयव होकर बैठता है। सामान्यतया संख्यावाची शब्दों से पूरणार्थ में **तस्य पूरणे डट्** सूत्र से जो **डट्** प्रत्यय होता है और उसके अकार के साथ मिलकर **तम** बन जाता है। तमट् न होने के पक्ष में **ति विंशतेर्डिति** से **ति**-शब्द का लोप किया जाता है।

विंशतितमः, विंशः। बीसवाँ, बीस संख्या का पूरण। **विंशतेः पूरणः** विग्रह करके **तस्य पूरणे डट्** सूत्र से डट् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **विंशति+अ** अना है। **विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम्** सूत्र से तमट् आगम होने पर अनुबन्धलोप होकर **विंशतितम** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **विंशतितमः** सिद्ध हो जाता है। तमट् न होने के पक्ष में **विंशति+अ** बना हुआ है। **ति विंशतेर्डिति** सूत्र से **ति**-शब्द का लोप होकर **विंश+अ** बनता है। **टेः** सूत्र से टिसंज्ञक भाग अकार का लोप होकर **विंश** बन जाता है और स्वादिकार्य होकर **विंशः** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **त्रिंशत्तमः**(तीसवाँ) **चत्वारिंशत्तमः**(चालीसवाँ) **पञ्चाशत्तमः**(पचासवाँ) **षष्टितमः**(साठवाँ) **सप्ततितमः**(सत्तरवाँ) **अशीतितमः**(अस्सीवाँ) **नवतितमः**(नब्बेवाँ) **शततमः**(सौवाँ) ये शब्द बन सकते हैं। षष्टितमः आदि में नित्य से तमट् होता है, यह बात आगे आने वाली है।

एकविंशतितमः, एकविंशः। इक्कीस का पूरण, इक्कीसवाँ। **एकविंशतेः पूरणः** विग्रह में तदन्तविधि के कारण **एकविंशति** आदि शब्दों से भी डट् प्रत्यय, तमट् आगम आदि होकर एकविंशतितमः-**एकविंशः** सिद्ध हो जाते हैं। इसी तरह **द्वाविंशतितमः**-द्वाविंशः, **एकत्रिंशत्तमः, एकचत्वारिंशत्तमः, एकपञ्चाशत्तमः, एकषष्टितमः, एकसप्ततितमः, एकाशीतितमः, एकनवतितमः, एकशततमः** आदि शब्द भी बन सकते हैं।

१८५७. नित्यं शतादिमासार्धमाससंवत्सराच्च ५।२।५७॥

शतस्य पूरणः शततमः। एकशततमः।
मासादेरत एव डट्। मासतमः। अर्धमासतमः। संवत्सरतमः।

नित्यं शतादिमासार्धमाससंवत्सराच्च। शतमादिर्येषां ते शतादयः, शतादयश्च मासश्च अर्धमासश्च संवत्सरश्च तेषां समाहारद्वन्द्वः शतादिमासार्धमाससंवत्सरं, तस्मात्।

शतादिमासार्धमाससंवत्सरात् पञ्चम्यन्तं, नित्यं प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम्** से **तमट्** की, **सङ्ख्याया गुणस्य निमाने मयट्** से **सङ्ख्यायाः** की और **तस्य पूरणे डट्** से तीनों पदों की अनुवृत्ति आती है।

षष्ठी-समर्थ संख्यावाची शतादि प्रातिपदिकों से तथा मास, अर्धमास और संवत्सर इन प्रातिपदिकों से विहित डट् को नित्य से तमट् आगम होता है।

शतस्य पूरणः शततमः। सौ संख्या का पूरण, सौवाँ। **शतस्य पूरणः** विग्रह करके **शत+ङस्** इस स्थिति में **तस्य पूरणे डट्** सूत्र से डट्-प्रत्यय होने पर उसको **नित्यं शतादिमासार्धमाससंवत्सराच्च** सूत्र के द्वारा नित्य से तमट् आगम होकर **शततम** और स्वादिकार्य होकर **शततमः** सिद्ध हो जाता है।

एकशततमः। एक सौ एक संख्या का पूरण, एक सौ एकवाँ। **एकशतस्य पूरणः** विग्रह करके **एकशत+ङस्** इस स्थिति में **तस्य पूरणे डट्** सूत्र से डट्-प्रत्यय होने पर उसको **नित्यं शतादिमासार्धमाससंवत्सराच्च** सूत्र के द्वारा नित्य से तमट् आगम होकर **एकशततम** और स्वादिकार्य होकर **एकशततमः** सिद्ध हो जाता है। अग्रिम सूत्र में पर्युदास पद **असंख्यादेः** होने के कारण उससे प्राप्ति नहीं है। अतः तदन्तविधि होने से प्रकृत सूत्र की प्राप्ति होती है। **शततमः** तो उस सूत्र से भी निष्पन्न हो सकता है।

मासादेरत एव डट्। अर्थात् **मास, अर्धमास** और **संवत्सर** शब्द संख्यावाची नहीं हैं तथापि डट् को तमट्-आगम विधान करने से यह ज्ञापित होता है कि इन शब्दों से डट् होता है।

मासतमः। महीने का अन्तिम दिन। **मासस्य पूरणः** विग्रह करके **मास+ङस्** इस स्थिति में **नित्यं शतादिमासार्धमाससंवत्सराच्च** सूत्र के द्वारा डट् को तमट्-आगम विधान-सामर्थ्य से डट्-प्रत्यय होने पर उसको प्रकृत सूत्र से तमट् आगम होकर **मासतम** और स्वादिकार्य होकर **मासतमः** सिद्ध हो जाता है।

अर्धमासतमः। आधे मास का अन्तिम दिन। **अर्धमासस्य पूरणः** विग्रह करके **अर्धमास+ङस्** इस स्थिति में **नित्यं शतादिमासार्धमाससंवत्सराच्च** सूत्र के द्वारा डट् को तमट्-आगम विधान-सामर्थ्य से डट्-प्रत्यय होने पर उसको प्रकृत सूत्र से तमट् आगम होकर **अर्धमासतम** और स्वादिकार्य होकर **अर्धमासतमः** सिद्ध हो जाता है।

संवत्सरतमः। वर्ष का अन्तिम दिन। **संवत्सरस्य पूरणः** विग्रह करके **संवत्सर+ङस्** इस स्थिति में **नित्यं शतादिमासार्धमाससंवत्सराच्च** सूत्र के द्वारा डट् को तमट्-आगम विधान-सामर्थ्य से डट्-प्रत्यय होने पर उसको प्रकृत सूत्र से तमट् आगम होकर **संवत्सरतम** और स्वादिकार्य होकर **संवत्सरतमः** सिद्ध हो जाता है।

१८५८. षष्ट्यादेश्चासंख्यादेः ५।२।५८॥

षष्टितमः। संख्यादेस्तु 'विंशत्यादिभ्यः' (सू.१८५६) इति विकल्प एव। एकषष्टः, एकषष्टितमः।

षष्ट्यादेश्चासंख्यादेः। षष्टिरादिर्यस्य स षष्ट्यादिस्तस्मात् षष्ट्यादेः, बहुव्रीहिः। संख्या आदिर्यस्य स संख्यादिः, न संख्यादिरसंख्यादिस्तस्मादसंख्यादेः, बहुव्रीहिगर्भनञ्तत्पुरुषः। षष्ट्यादेः पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्, असंख्यादेः पञ्चम्यन्तम्। **नित्यं शतादिमासार्धमास-संवत्सराच्च** से **नित्यम्** की, **विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम्** से **तमट्** की और **तस्य पूरणे डट्** से तीनों पदों की अनुवृत्ति आती है।

षष्ठी-समर्थ संख्यावाची शब्द आदि में न हो जिसके, ऐसे [illegible] **षष्टि-आदि प्रातिपदिकों से पूरणार्थ में विहित डट् को नित्य से तमट्** [illegible] **है।**

यह **विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम्** से प्राप्त विकल्प का अपवाद है।

षष्टितमः। साठ संख्या का पूरण, साठवाँ। **षष्टेः पूरणः** विग्रह करके **षष्टि+ङस्** इस स्थिति में **तस्य पूरणे डट्** सूत्र के द्वारा डट्-प्रत्यय होने पर उसको **षष्ट्यादेश्चासंख्यादेः** सूत्र के द्वारा तमट् आगम होकर **षष्टितम** बनता है और स्वादिकार्य होकर **षष्टितमः** सिद्ध हो जाता है।

संख्यादेस्तु 'विंशत्यादिभ्यः' इति विकल्प एव। एकषष्टः, एकषष्टितमः। यदि संख्यावाची शब्द आदि में हो तो प्रकृतसूत्र नहीं लगता, क्योंकि **असंख्यादेः** पद के द्वारा उसका निषेध किया गया है। अतः ऐसी स्थिति में **विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम्** सूत्र के द्वारा ही विकल्प से तमट् आगम होता है। अतः **एकषष्टेः पूरणः** विग्रह करके **एकषष्टि+ङस्** इस स्थिति में डट्-प्रत्यय होने के बाद उक्त सूत्र से विकल्प से तमट् होकर तत्पक्ष में **एकषष्टितमः** रूप बनता है। तमट् न होने के पक्ष में डट् के परे रहते टिसंज्ञक भाग इकार का **टेः** सूत्र से लोप होकर **एकषष्टः** सिद्ध हो जाता है।

प्रकृत सूत्र में **असंख्यादेः**=संख्याभिन्न पर्युदास के होने से संख्यापूर्वक षष्टि-आदि शब्दों से **विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम्** सूत्र से विहित पाक्षिक तमट्-आगम के न होने पर **एकषष्टि** शब्द से तमट्-आगम की सम्भावना में यह शंका उपस्थित होती है कि **ग्रहणवता प्रातिपदिकेन तदन्तविधिर्नास्ति** इस परिभाषा के रहते हुये तदन्तविधि तो होगी नहीं, तब **एकषष्टितमः** की निष्पत्ति कैसै होगी? इसका यह समाधान दिया जाता है कि **असंख्यादेः** पद के ग्रहण से ही यहाँ तदन्तविधि ज्ञापित होती है। अतः **विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम्** सूत्र की प्रवृत्ति भी तदनुसार हो जाती है। फलतः **एकविंशतितमः** आदि प्रयोग भी साधु माने जाते हैं।

यहाँ पर डट्-प्रत्यय और तमट्-आगम का प्रसंग पूर्ण हो जाता है। आग मत्वर्थ में प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है।

१८५९. मतौ छः सूक्तसाम्नोः ५।२।५९॥

मत्वर्थे छः स्यात्।

अच्छावाकशब्दोऽस्मिन्नस्ति अच्छावाकीयं सूक्तम्। वारवन्तीयं साम।

मतौ छः सूक्तसाम्नोः। सूक्तञ्च साम च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः सूक्तसामनी, तयोः सूक्तसाम्नोः। मतौ सप्तम्यन्तं, छः प्रथमान्तं, सूक्तसाम्नोः सप्तम्यन्तम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः** का अधिकार है।

प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिकमात्र से मत्वर्थ में छ-प्रत्यय होता है, सूक्त और साम (सामवेद के मन्त्र का गान) वाच्य हों तो।

यह इसका है या इसमें है इस अर्थ में आगे **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** (५.२.९४) सूत्र के द्वारा **मतुप्** प्रत्यय किया जाता है। जिस अर्थ में मतुप् होता है, उस अर्थ को **मतुबर्थ** या **मत्वर्थ** कहते हैं। प्रकृत सूत्र का **मतौ** पद तादृश मतुप् के अर्थ में लाक्षणिक है। छ-प्रत्यय होने पर केवल छकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र से **ईय्** आदेश होकर प्रत्यय का स्वरूप **ईय** बन जाता है। वैदिक विषय से सम्बद्ध शब्दों को अभिलक्षित करके छ-प्रत्यय का विधान है। अतः **सूक्तसाम्नोः** पद का ग्रहण है।

अच्छावाकशब्दोऽस्मिन्नस्ति अच्छावाकीयं सूक्तम्। जिस सूक्त में **अच्छावाक** शब्द है, उस सूक्त को **अच्छावाकीय** कहा जाता है। **अच्छावाक-शब्दः अस्मिन् अस्ति** विग्रह करके **अच्छावाक+सु** इस स्थिति में मत्वर्थ की विद्यमानता में **मतौ छः सूक्तसाम्नोः** सूत्र के द्वारा **छ**-प्रत्यय होने पर छकार के स्थान पर ईयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **अच्छावाक+ईय** बना है। भसंज्ञा होने के कारण अन्त्य अकार का **यस्येति च** सूत्र से लोप होकर **अच्छावाकीय** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **अच्छावाकीयम्** सिद्ध हो जाता है।

वारवन्तीयं साम। जिस सामगान में **वारवन्त** शब्द है, उसे **वारवन्तीय** कहा जाता है। **वारवन्त-शब्दः अस्मिन् अस्ति** विग्रह करके **वारवन्त+सु** इस स्थिति में मत्वर्थ की विद्यमानता में **मतौ छः सूक्तसाम्नोः** सूत्र के द्वारा **छ**-प्रत्यय होने पर छकार के स्थान पर ईयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञा होने के कारण अन्त्य अकार का लोप होकर **वारवन्तीय** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **वारवन्तीयम्** सिद्ध हो जाता है।

१८६०. अध्यायानुवाकयोर्लुक् ५।२।६०॥

मत्वर्थस्य छस्य। अत एव ज्ञापकात्तत्र छः।
विधानसामर्थ्याच्च विकल्पेन लुक्। गर्दभाण्डः, गर्दभाण्डीयः।

अध्यायानुवाकयोर्लुक्। अध्यायश्च अनुवाकश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः- अध्यायानुवाकौ, तयोरध्यायानुवाकयोः सप्तम्यन्तं, लुक् प्रथमान्तम्। **मतौ छः सूक्तसाम्नोः** से **मतौ छः** की अनुवृत्ति आती है साथ ही **छः** का षष्ठ्यन्त में विपरिणाम करके **छस्य** बना लिया जाता है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः** और **परश्च** का अधिकार है ही।

प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिकमात्र से मत्वर्थ में विहित छ-प्रत्यय का लुक् होता है, अध्याय और अनुवाक अभिधेय होने पर।

मत्वर्थस्य छस्य। प्रकृतसूत्र से **लुक्** का विधान किया जा रहा है। किसका लुक्? इस आकांक्षा की पूर्ति के लिये पूर्वसूत्र से अनुवृत्त **छः** पद के द्वारा छ-प्रत्यय का लुक् विदित होता है। अब यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि पूर्व सूत्र से **सूक्त** और **साम** अभिधेय होने पर ही मत्वर्थ में छ-प्रत्यय होता है किन्तु यहाँ उक्त अर्थ न होकर **अध्याय** और **अनुवाक** अर्थ है। ऐसी स्थिति में छ-प्रत्यय की प्राप्ति किससे है? इसका समाधान मूलकार कर रहे हैं-

अत एव ज्ञापकात्तत्र छः। प्रत्यय-विधान के बिना ही उसका लुक्-विधान करने से ज्ञापित होता है कि अध्याय ओर अनुवाक अर्थ में भी छ-प्रत्यय होता है। अब फिर प्रश्न होता है कि ज्ञापन से प्रत्यय का विधान करके उसका लुक् किया जाता है तो प्रत्यय-विधि व्यर्थ ही हो जाती है न? इसका भी समाधान मूलकार ही दे रहे हैं-

विधानसामर्थ्याच्च विकल्पेन लुक्। लुक्-विधान-सामर्थ्य से लुक् और ज्ञापनसामर्थ्य से प्रत्यय का विधान होने से दोनों पक्ष (प्रत्यय और लुक्-पक्ष) में रूप बनते हैं। जैसे कि-

गर्दभाण्डः, गर्दभाण्डीयः। जिस अध्याय या अनुवाक में **गर्दभाण्ड** शब्द है, उसको **गर्दभाण्ड** या **गर्दभाण्डीय** कहा जाता है। **गर्दभाण्ड-शब्दः अस्मिन् अस्ति** विग्रह करके **गर्दभाण्ड+सु** इस स्थिति में मत्वर्थ की विद्यमानता में **अध्यायानुवाकयोर्लुक्** सूत्र के द्वारा लुग्विधान-सामर्थ्य से छ-प्रत्यय होने पर उसका प्रकृतसूत्र से लुक् हो जाता है। अतः **गर्दभाण्ड** ही बना हुआ है। लुक् न होने के पक्ष में छकार के स्थान पर ईयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञा होने के कारण अन्त्य अकार का **यस्येति च** सूत्र से लोप होकर **गर्दभाण्डीय** शब्द बनता है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **गर्दभाण्डः** और **गर्दभाण्डीयः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

१८६१. विमुक्तादिभ्योऽण् ५।२।६१॥

मत्वर्थेऽण् स्यादध्यायानुवाकयोः।
विमुक्तशब्दोऽस्मिन्नस्ति वैमुक्तः। दैवासुरः।

विमुक्तादिभ्योऽण्। विमुक्त आदिर्येषां ते विमुक्तादयस्तेभ्यो विमुक्तादिभ्यः, पञ्चम्यन्तम्, अण् प्रथमान्तम्। **अध्यायानुवाकयोर्लुक्** से **अध्यायानुवाकयोः** की और **मतौ छः सूक्तसाम्नोः** से **मतौ** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

प्रथमा-समर्थ विमुक्तादि-गणपठित प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में अण्-प्रत्यय होता है, अध्याय और अनुवाक अभिधेय होने पर।

विमुक्तशब्दोऽस्मिन्नस्ति वैमुक्तः। जिस अध्याय या अनुवाक में **विमुक्त** शब्द है, उसको **वैमुक्त** कहा जाता है। **विमुक्त-शब्दः अस्मिन् अस्ति** विग्रह करके **विमुक्त+सु** इस स्थिति में मत्वर्थ की विद्यमानता में **विमुक्तादिभ्योऽण्** सूत्र के द्वारा **अण्**-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **वैमुक्त** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वैमुक्तः (अध्यायोऽनुवाको वा)** सिद्ध हो जाता है।

दैवासुरः। जिस अध्याय या अनुवाक में **देवासुर** शब्द है, उसको **दैवासुर** कहा जाता है। **देवासुर-शब्दः अस्मिन् अस्ति** विग्रह करके देवासुर+सु इस स्थिति में **विमुक्तादिभ्योऽण्** सूत्र के द्वारा **अण्**-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर दैवासुर शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **दैवासुरः (अध्यायोऽनुवाको वा)** सिद्ध हो जाता है।

विमुक्तादिगणः- विमुक्त, देवासुर, रक्षोसुर, उपसद, सुवर्ण, परिसारक, सदसत्, वसु, मरुत्, पत्नीवत्, वसुमत्, महीयत्व, सत्वत, बर्हवत्, दशार्ण, दशार्ह, वयस्, हविर्धान, पतत्रिन्, महित्री, अस्यहत्य, सोमापूषन्, इडा, अग्राविष्णू, उर्वशी, वृत्रहन्।

१८६२. गोषदादिभ्यो वुन् ५।२।६२॥

मत्वर्थेऽध्यायानुवाकयोः। गोषदकः। इषेत्वकः।

गोषदादिभ्यो वुन्। गोषद आदिर्येषां ते गोषदादयस्तेभ्यो गोषदादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, वुन् प्रथमान्तम्। **अध्यायानुवाकयोर्लुक्** से **अध्यायानुवाकयोः** की और **मतौ छः सूक्तसाम्नोः** से **मतौ** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

प्रथमा-समर्थ गोषदादि-गणपठित प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में वुन्-प्रत्यय होता है, अध्याय और अनुवाक अभिधेय होने पर।

वुन् में नकार इत्संज्ञक है और अवशिष्ट **वु** के स्थान पर **युवोरनाकौ** सूत्र से **अक** आदेश हो जाता है।

गोषदकः। जिस अध्याय या अनुवाक में **गोषद** शब्द है, उसको **गोषदक** कहा जाता है। **गोषद-शब्दः अस्मिन् अस्ति** विग्रह करके **गोषद+सु** इस स्थिति में **गोषदादिभ्यो वुन्** सूत्र के द्वारा **वुन्**-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, अकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **गोषदक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **गोषदकः (अध्यायोऽनुवाको वा)** सिद्ध हो जाता है।

इषेत्वकः। जिस अध्याय या अनुवाक में **इषेत्वा**-शब्द हो। **इषेत्वा-शब्दः अस्मिन् अस्ति** विग्रह करके **इषेत्वा+सु** इस स्थिति में **गोषदादिभ्यो वुन्** सूत्र के द्वारा

वुन्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, अकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक आकार का लोप होकर **इषेत्वक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **इषेत्वकः (अध्यायोऽनुवाको वा)** सिद्ध हो जाता है। यजुर्वेद का प्रारम्भ **इषेत्त्वा** से ही होता है।

गोषदादिगणः- गोषद, इषेत्वा, मातरिश्वन्, देवस्यत्वा, देवीरापः, कृष्णोस्याखरेष्ठः, देवीम्, धिया, (देवीन्धीयम्), रक्षोहण, युञ्जान, अञ्जन, प्रभूत, प्रतूर्त, कृशानु, (कृशाकु)।

यहाँ **मतौ** और **अध्यायानुवाकयोः** पदों की अनुवृत्ति निवृत्त हो जाती है। अब कुशल आदि अर्थों में प्रत्ययों का विधान किया जा रहा है।

१८६३. तत्र कुशलः पथः ५।२।६३॥

वुन् स्यात्। पथि कुशलः पथकः।

तत्र कुशलः पथः। तत्र इत्यव्ययं सप्तमी-समर्थ-बोधकं पदं, कुशलः प्रथमान्तं, पथः पञ्चम्यन्तम्। **गोषदादिभ्यो वुन्** से **वुन्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

सप्तमी-समर्थ पथिन्-प्रातिपदिक से कुशल-अर्थ में वुन्-प्रत्यय होता है।

पथि कुशलः पथकः। जो मार्ग चलने में या यात्रा में कुशल हो। **पथि कुशलः** विग्रह करके **पथिन्+ङि** इस स्थिति में **तत्र कुशलः पथः** सूत्र के द्वारा वुन्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, अकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **पथिन्+अक** बना है। **नस्तद्धिते** सूत्र के द्वारा टिसंज्ञक भाग **इन्** का लोप होकर **पथक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पथकः** सिद्ध हो जाता है।

१८६४. आकर्षादिभ्यः कन् ५।२।६४॥

आकर्षे कुशलः आकर्षकः।

'आकषादिभ्यः' इति रेफरहितो मुख्यः पाठः। आकषो निकषः।

आकर्षादिभ्यः कन्। आकर्ष आदिर्येषां ते आकर्षादयस्तेभ्य आकर्षादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, कन् प्रथमान्तम्। **तत्र कुशलः पथः** से **तत्र** और **कुशलः** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

सप्तमी-समर्थ आकर्षादि-गणपठित प्रातिपदिकों से कुशल-अर्थ में कन्-प्रत्यय होता है।

कन् में नकार इत्संज्ञक है, **क** बचता है।

आकर्षे कुशलः आकर्षकः। जो खींचने में कुशल हो। **आकर्षे कुशलः** विग्रह करके **आकर्ष+ङि** इस स्थिति में **आकर्षादिभ्यः कन्** सूत्र के द्वारा **कन्**-प्रत्यय

होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **आकर्षक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आकर्षकः** सिद्ध हो जाता है।

'आकषादिभ्यः' इति रेफरहितो मुख्यः पाठः। आकषो निकषः। अर्थात् **आकर्षादिभ्यः** की जगह **आकषादिभ्यः** ऐसा रेफ-रहित मुख्य पाठ मिलता है। तदनुसार **आकषकः** बन जाता है। कसौटी को **आकष** कहा जाता है और कसौटी पर सोना आदि धातुओं को परखने में जो कुशल हो, उसे **आकषकः** कहा जाता है।

प्रकृत-सूत्र की सार्थकता **शकुनिकः** आदि की सिद्धि में है, अन्यथा **आकर्ष** शब्द से तो वुन्-प्रत्यय करने पर भी **आकर्षकः** रूप की सिद्धि हो जाती।

आकर्षादिगणः- आकर्ष, (आकष), त्सरु, पिशाच, पिचण्ड, अशनि, अश्मन्, निचय, जय, चय, विजय, आचय, नय, पाद, दीप, ह्रद, ह्राद, ह्लाद, गद्गद, शकुनि।

१८६५. धनहिरण्यात् कामे ५।२।६५॥

काम इच्छा। धने कामो धनको देवदत्तस्य। हिरण्यकः।

धनहिरण्यात् कामे। धनं च हिरण्यं च तयोः समाहारद्वन्द्वो धनहिरण्यं, तस्माद् धनहिरण्यात् पञ्चम्यन्तं, कामे सप्तम्यन्तम्। **आकर्षादिभ्यः कन्** से **कन्** की और **तत्र कुशलः पथः** से **तत्र** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

सप्तमी-समर्थ धन और हिरण्य इन प्रातिपदिकों से काम=इच्छा अर्थ में कन्-प्रत्यय होता है।

काम इच्छा। अर्थात् प्रकृत सूत्रस्थ **काम** शब्द का **इच्छा** अर्थ है।

धने कामो धनको देवदत्तस्य। देवदत्त की धन में इच्छा। **धने इच्छा** विग्रह करके **धन+ङि** इस स्थिति में **धनहिरण्यात् कामे** सूत्र के द्वारा **कन्**-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **धनक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **धनकः** सिद्ध हो जाता है।

हिरण्यकः। (देवदत्त की) सुवर्ण में इच्छा। **हिरण्ये इच्छा** विग्रह करके **हिरण्य+ङि** इस स्थिति में **धनहिरण्यात् कामे** सूत्र के द्वारा **कन्**-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **हिरण्यक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **हिरण्यकः** सिद्ध हो जाता है।

१८६६. स्वाङ्गेभ्यः प्रसिते ५।२।६६॥

केशेषु प्रसितः केशकः। तद्रचनायां तत्पर इत्यर्थः।

स्वाङ्गेभ्यः प्रसिते। स्वानि अङ्गानि स्वाङ्गानि, तेभ्यः। स्वाङ्गेभ्यः पञ्चम्यन्तं,

प्रसिते सप्तम्यन्तम्। **आकर्षादिभ्यः कन्** से **कन्** की और **तत्र कुशलः पथः** से **तत्र** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः**, **ङ्याप्प्रातिपदिकात्**, **प्रत्ययः**, **परश्च** का अधिकार है।

सप्तमी-समर्थ स्वाङ्गवाची प्रातिपदिकों से प्रसिते=प्रसक्त (तत्पर) अर्थ में कन्-प्रत्यय होता है।

केशेषु प्रसितः केशकः। तद्रचनायां तत्पर इत्यर्थः। जो अपने बालों को सँवारने में तत्पर हो। **केशेषु प्रसितः** विग्रह करके **केश+सुप्** इस स्थिति में **स्वाङ्गेभ्यः प्रसिते** सूत्र के द्वारा **कन्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **केशक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **केशकः** सिद्ध हो जाता है।

१८६७. उदराट्ठगाद्यूने ५।२।६७॥

अविजिगीषौ ठक् स्यात्, कनोऽपवादः।
बुभुक्षयात्यन्तपीडित उदरे प्रसित औदरिकः।
'आद्यूने' किम्? उदरकः। उदरपरिमार्जनादौ प्रसक्त इत्यर्थः।

उदराट्ठगाद्यूने। उदरात् पञ्चम्यन्तं, ठक् प्रथमान्तम्, आद्यूने सप्तम्यन्तम्। **स्वाङ्गेभ्यः प्रसिते** से **प्रसिते** की और **तत्र कुशलः पथः** से **तत्र** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः**, **ङ्याप्प्रातिपदिकात्**, **प्रत्ययः**, **परश्च** का अधिकार है।

सप्तमी-समर्थ 'उदर' प्रातिपदिक से आद्यूने=विजिगीषा-अर्थ से भिन्न आद्यून अर्थ में कन्-प्रत्यय होता है।

आङ्-पूर्वक दिवु (दिव्) धातु से क्त-प्रत्यय होकर **आद्यून** शब्द बनता है और विजिगीषा, व्यवहार, द्युति, स्तुति, मोद, मद, स्वप्न और कान्ति ये धातु के अर्थ हैं किन्तु विजिगीषा अर्थ में निष्ठासंज्ञक **क्त** प्रत्यय के तकार को नत्व नहीं होता- **दिवोऽविजिगीषायाम्**। यहाँ सूत्र में नत्व-युक्त **आद्यून** पाठ होने से विजिगीषा-अर्थ नहीं है, यह सिद्ध होता है। अतः मूलकार ने **आद्यूने** का अर्थ लिखा है- **अविजिगीषौ।**

कनोऽपवादः। यह पूर्वसूत्र से प्राप्त कन्-प्रत्यय का अपवाद है।

बुभुक्षयात्यन्तपीडित उदरे प्रसित औदरिकः। भूख से पीड़ित होकर पेट सहलाने वाला। **उदरे प्रसितः** विग्रह करके **उदर+ङि** इस स्थिति में **उदराट्ठगाद्यूने** सूत्र से ठक्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, **ठस्येकः** से **ठ** के स्थान पर **ईक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **औदरिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य से **औदरिकः** सिद्ध हो जाता है। जो सदा खाने की इच्छा से पेट सहलाता है रहता न कि मल्लयुद्ध में जीतने की इच्छा से।

'आद्यूने' किम्? उदरकः। **उदरपरिमार्जनादौ प्रसक्त इत्यर्थः।** प्रकृत सूत्र में **आद्यूने** पद के निवेश होने से **आद्यून** अर्थ में ही ठक् होता है किन्तु इससे भिन्न अर्थ होने पर ठक् न होकर पूर्वसूत्र से **कन्** प्रत्यय किया जाता है। **उदर**-शब्द से कन्-प्रत्यय होने पर **उदरकः** रूप बनता है। पहलवानी में जीतने की इच्छा से पेट मसलने वाला **उदरक** कहलाता है।

१८६८. सस्येन परिजातः ५।२।६८॥

कन् स्वर्यते, न तु ठक्। सस्यशब्दो गुणवाची न तु धान्यवाची। 'शस्येन' इति पाठान्तरम्। सस्येन गुणेन परिजातः संबद्धः सस्यकः साधुः।

सस्येन परिजातः। सस्येन तृतीयान्तं, परिजातः प्रथमान्तम्। **आकर्षादिभ्यः कन्** से **कन्** की अनुवृत्ति आती है और **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ 'सस्य' प्रातिपदिक से परिजातः=सब ओर से उत्पन्न- अर्थ में कन्-प्रत्यय होता है।

कन् स्वर्यते, न तु ठक्। पूर्वसूत्र के **ठक्** में स्वरितत्व-प्रतिज्ञा न होने के कारण उसकी अनुवृत्ति नहीं आती अर्थात् **आकर्षादिभ्यः कन्** सूत्र के **कन्** पद में ही स्वरितत्व-प्रतिज्ञा है। स्वरितत्व-प्रतिज्ञा से युक्त पद की अनुवृत्ति हुआ करती है- **स्वरितेनाधिकारः।** स्वरितत्वयुक्त होने पर भी पूर्वसूत्र में **ठक्** शब्द के उच्चारण के कारण **कन्** का सम्बन्ध नहीं था।

सस्यशब्दो गुणवाची न तु धान्यवाची। प्रकृत सूत्र में पठित **सस्य** शब्द गुणवाची है, न कि धान्यवाची। **सस्येन** में तृतीया होने के कारण समर्थ-विभक्ति भी तृतीया ही होगी। **परि+जातः** में परि-शब्द का अर्थ है- सब प्रकार से और **जातः** का अर्थ है- उत्पन्न।

'शस्येन' इति पाठान्तरम्। कहीं-कहीं **सस्येन** की जगह **शस्येन** ऐसा पाठ मिलता है। तदनुसार **शस्य** शब्द का **स्तुत्य** अर्थ लिया जाता है, क्योंकि **शंसु स्तुतौ** धातु से कर्म में **यत्** प्रत्यय करने पर **शस्य** शब्द निष्पन्न होता है।

सस्येन=गुणेन परिजातः संबद्धः सस्यकः साधुः। जो गुणों से भरपूर, जिसमें किसी प्रकार की कमी न हो। **सस्येन=गुणेन परिजातः=सम्बद्धः** विग्रह में **सस्य+टा** इस स्थिति में **सस्येन परिजातः** सूत्र के द्वारा **कन्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **सस्यक** और स्वादिकार्य से **सस्यकः** सिद्ध हो जाता है।

१८६९. अंशं हारी ५।२।६९॥

'हारी' इत्यावश्यके णिनिः। अत एव तद्योगे षष्ठी न। अंशको दायादः।

अंशं हारी। अंशं द्वितीयान्तं, हारी प्रथमान्तम्। **आकर्षादिभ्यः कन्** से **कन्** की अनुवृत्ति आती है और **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

द्वितीया-समर्थ 'अंश' प्रातिपदिक से हारी=हरण करने वाला (प्राप्त करने वाला) अर्थ में कन्-प्रत्यय होता है।

'हारी' इत्यावश्यके णिनिः। अत एव तद्योगे षष्ठी न। सूत्रस्थ हारी पद में हृ-धातु से **आवश्यकाधमर्ण्ययोर्णिनिः** (३.३.१७०) सूत्र से **आवश्यक** अर्थ में **णिनि** प्रत्यय होने पर ऋकार की वृद्धि होकर **हारिन्** प्रातिपदिक है। उसके कृदन्त होने के कारण उसके योग में **अंश** शब्द में **कर्तृकर्मणोः कृति** (२.३.६५) सूत्र से प्राप्त षष्ठी का **अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः** (२.३.७०) सूत्र से निषेध हुआ है। अतः द्वितीया-विभक्ति होकर **अंशम्** बना है। द्वितीयान्त **अंशम्** पद के कारण यहाँ समर्थ-विभक्ति भी द्वितीया ही है।

अंशको दायादः। परम्पराप्राप्त धन के भाग को प्राप्त करने वाला। **अंशं हारी** विग्रह करके **अंश+अम्** इस स्थिति में **अंशं हारी** सूत्र के द्वारा **कन्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **अंशक** और स्वादिकार्य से **अंशकः** सिद्ध हो जाता है।

१८७०. तन्त्रादचिरापहृते ५।२।७०॥

तन्त्रकः पटः। प्रत्यग्र इत्यर्थः।

तन्त्रादचिरापहृते। तन्त्र्यन्ते तन्तवोऽनेनेति तन्त्रं=तन्तुवायशलाका, तस्मात् तन्त्रात्। न चिरः- अचिरः, नञ्तत्पुरुषः। चिरशब्दः कालवाची। अचिरः (कालः) अपहृतस्य अचिरापहृतस्तस्मिन् अचिरापहृते, **कालाः परिमाणिना** इति समासः। **आकर्षादिभ्यः कन्** से **कन्** की अनुवृत्ति आती है और **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

पञ्चमी-समर्थ 'तन्त्र' प्रातिपदिक से करघे से 'तत्काल निकला हुआ' अर्थ में कन्-प्रत्यय होता है।

यहाँ **तन्त्रात्** पद से पञ्चमी-समर्थ विभक्ति का भी निर्देश है। बुनने के करघे को यहाँ पर **तन्त्र** कहा गया है।

तन्त्रकः पटः। प्रत्यग्र इत्यर्थः। जुलाई द्वारा बुनकर थोड़ी देर पहले करघे से अलग किया गया वस्त्र। **तन्त्राद् अचिरापहृतः तन्त्र+ङसि** इस स्थिति में **तन्त्रादचिरापहृते** सूत्र के द्वारा **कन्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **तन्त्रक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिककत्वात् स्वादिकार्य होकर **तन्त्रकः** सिद्ध हो जाता है।

१८७१. ब्राह्मणकोष्णिके सञ्ज्ञायाम् ५।२।७१॥

आयुधजीविनो ब्राह्मणा यस्मिन्देशे स ब्राह्मणकः।
अल्पमन्नं यस्यां सा उष्णिका यवागूः। अल्पान्नशब्दस्योष्णादेशो निपात्यते।

ब्राह्मणकोष्णिके सञ्ज्ञायाम्। ब्राह्मणकश्च उष्णिका च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो ब्राह्मणकोष्णिके प्रथमा-द्विवचनान्तं, संज्ञायां सप्तम्यन्तम्। **आकर्षादिभ्यः कन्** से **कन्** की अनुवृत्ति आती है और **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

संज्ञा के विषय में ब्राह्मणक और उष्णिका इन कन्-प्रत्ययान्त शब्दों का निपातन किया जाता है।

विशेष परिस्थितिवश दो शब्दों का निपातन किया जा रहा है। संज्ञा में निपातन होने के कारण इनका विशेष अर्थ होगा।

आयुधजीविनो ब्राह्मणा यस्मिन्देशे स ब्राह्मणकः। आयुध=शस्त्रों का कार्य करके आजीविका चलाने वाले ब्राह्मण जिस देश में रहते हैं, उस देश को **ब्राह्मणक** कहा गया है। **(आयुधजीविनः) ब्राह्मणाः यस्मिन् देशे** विग्रह करके **ब्राह्मण+जस्** इस स्थिति में **ब्राह्मणकोष्णिके संज्ञायाम्** सूत्र द्वारा **कन्** प्रत्यय निपातित होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **ब्राह्मणक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिककत्वात् स्वादिकार्य होकर **ब्राह्मणकः (देशः)** सिद्ध हो जाता है।

अल्पमन्नं यस्यां सा उष्णिका यवागूः। अल्पान्नशब्दस्योष्णादेशो निपात्यते। जिस खाद्य-पदार्थ में अन्न कम दिया जाता हो किन्तु पानी की मात्रा अधिक होती है, उसे **उष्णिका** कहते हैं। यहाँ **अल्पान्न**-शब्द के स्थान पर **उष्ण** आदेश का भी निपातन किया जाता है। **अल्पम् अन्नं यस्याम्** विग्रह करके **अल्पान्न+सु** इस स्थिति में **ब्राह्मणकोष्णिके संज्ञायाम्** सूत्र द्वारा **कन्** प्रत्यय के साथ **अल्पान्न**-शब्द के स्थान पर **उष्ण** आदेश का निपातन होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **उष्णक** शब्द बनता है। इसका प्रयोग स्त्रीलिंग में किया जाता है, अतः टाप् होने के बाद **प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः** सूत्र के द्वारा णकारोत्तरवर्ती अकार को इकार आदेश करके **उष्णिका** शब्द बनने के बाद स्वादिकार्य होकर **उष्णिका** सिद्ध हो जाता है।

१८७२. शीतोष्णाभ्यां कारिणि ५।२।७२॥

शीतं करोतीति शीतकोऽलसः।
उष्णं करोतीत्युष्णकः शीघ्रकारी।

शीतोष्णाभ्यां कारिणि। शीतं च उष्णं च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः शीतोष्णे,

ताभ्यां शीतोष्णाभ्यां पञ्चम्यन्तं, कारिणि इति कारिन्-शब्दस्य सप्तम्यन्तं रूपम्। **आकर्षादिभ्यः कन्** से **कन्** की अनुवृत्ति आती है और **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

द्वितीया-समर्थ क्रियाविशेषणवाची शीत और उष्ण इन प्रातिपदिकों से कारिणि=करने वाला अर्थ में कन्-प्रत्यय होता है।

शीत और **उष्ण** शब्द **करोति** क्रियां के विशेषण हैं और क्रियाविशेषण में द्वितीया-विभक्ति होती है। फलतः द्वितीया ही समर्थ-विभक्ति है।

शीतं करोतीति शीतकोऽलसः। आलसी व्यक्ति। **शीतं करोति** विग्रह करके **शीत+अम्** इस स्थिति में **शीतोष्णाभ्यां कारिणि** सूत्र द्वारा **कन्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **शीतक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिककत्वात् स्वादिकार्य होकर **शीतकः** सिद्ध हो जाता है। जाड़े में शीत के कारण आलस्य रहता है, अतः आलसी को **शीतकः** कहा गया है।

उष्णं करोतीत्युष्णकः शीघ्रकारी। शीघ्रकारी, फुर्तीला व्यक्ति। **उष्णं करोति** विग्रह करके **उष्ण+अम्** इस स्थिति में **शीतोष्णाभ्यां कारिणि** सूत्र द्वारा **कन्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **उष्णक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिककत्वात् स्वादिकार्य होकर **उष्णकः** सिद्ध हो जाता है। गरम-प्रकृति का व्यक्ति शीघ्रकारी=उष्णक होता है।

१८७३. अधिकम् ५।२।७३॥

अध्यारूढशब्दात् कनुत्तरपदलोपश्च।

अधिकम्। प्रथमान्तमेकपदमिदं सूत्रम्। **आकर्षादिभ्यः कन्** से **कन्** की अनुवृत्ति आती है और **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

अध्यारूढ इस प्रातिपदिक से कन्-प्रत्यय के साथ उत्तरपद आरूढ-शब्द का लोप निपातन करके अधिक-शब्द को साधु माना जाता है।

अधिकम्। ज्यादा, अधिक। **अध्यारूढम्** विग्रह करके **अधि+आरूढ+सु** इस स्थिति में **अधिकम्** सूत्र द्वारा **कन्** प्रत्यय के साथ उत्तरपद **आरूढ**-शब्द का लोप-निपातन करके **अधिक** शब्द बन जाता है और स्वादिकार्य से **अधिकम्** सिद्ध हो जाता है। यह रूढ-शब्द है। **अधिक** शब्द सापेक्ष है, क्योंकि अधिक के लिये उससे अल्प का होना भी आवश्यक है। जैसे **शतादधिकम्** कहने पर सौ से अधिक=एक सौ एक, एक सौ से आदि का बोध होता है और अल्प-संख्या शत है।

१८७४. अनुकाभिकाभीकः कमिता ५।२।७४॥

अन्वभिभ्यां कन्, अभेः पाक्षिको दीर्घश्च।

अनुकामयते अनुकः। अभिकामयते अभिकः, अभीकः।

अनुकाभिकाभीकः कमिता। अनुकश्च अभिकश्च अभीकश्च तेषां समाहारद्वन्द्वः अनुकाभिकाभीकः, सौत्रं पुस्त्वम्। अनुकाभिकाभीकः प्रथमान्तं, कमिता प्रथमान्तम्। **आकर्षादिभ्यः कन्** से **कन्** की अनुवृत्ति आती है और **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

'कामना करने वाला' अर्थ वाच्य होने पर अनुक, अभिक और अभीक ये कन्-प्रत्ययान्त शब्द निपातित किये जाते हैं।

अन्वभिभ्यां कन्, अभेः पाक्षिको दीर्घश्च। निपातन होने के कारण प्रकृति की कल्पना करनी पड़ती है, तदनुसार मूलकार ने **कन्** प्रत्यय की कर्तव्यता में **अनु** और **अभि** इन प्रकृतियों की कल्पना की है और **अभि**-शब्द में पाक्षिक दीर्घ भी बताया है।

अनुकामयते अनुकः। कामना करने वाला। **अनुकामयते** विग्रह करके **अनु** इस उपसर्ग से **अनुकाभिकाभीकः कमिता** सूत्र द्वारा **कन्** प्रत्यय का निपातन होने पर **अनुक** और स्वादिकार्य होकर **अनुकः** सिद्ध हो जाता है।

अभिकामयते अभिकः, अभीकः। कामुक या क्रूर। **अभिकामयते** विग्रह करके **अभि** इस उपसर्ग से **अनुकाभिकाभीकः कमिता** सूत्र द्वारा **कन्** प्रत्यय का निपातन होने पर **अभिक** और स्वादिकार्य होकर **अभिकः** सिद्ध हो जाता है। पक्ष में इकार को दीर्घ भी हो जाता है, अतः **अभीकः** भी बनता है।

१८७५. पार्श्वेनान्विच्छति ५।२।७५॥

अनृजुरुपायः पार्श्वम्, तेनान्विच्छति पार्श्वकः।

पार्श्वेनान्विच्छति। पार्श्वेन तृतीयान्तम्, अन्विच्छति क्रियापदमर्थबोधकम्। **आकर्षादिभ्यः कन्** से **कन्** की अनुवृत्ति आती है और **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ पार्श्व-शब्द से अन्विच्छति=चाहता है, खोजता है अर्थ में कन् प्रत्यय होता है।

पार्श्वेन इस तृतीयान्त पद से समर्थ-विभक्ति भी तृतीया ही है, यह सूचित होता है। यहाँ **पार्श्व**-शब्द कुटिल उपाय का बोधक है।

अनृजुरुपायः पार्श्वम्, तेनान्विच्छति पार्श्वकः। अनृजु=कुटिल उपाय को **पार्श्व** कहा जाता है और उसके द्वारा खोजने वाला अर्थात् कुटिल उपायों से द्रव्योपार्जन आदि करने वाले को **पार्श्वक** कहा जाता है। **पार्श्वेन अन्विच्छति** विग्रह करके

पार्श्व+टा इस स्थिति में **पार्श्वेनान्विच्छति** सूत्र द्वारा **कन्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **पार्श्वक** शब्द बनता है और एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पार्श्वकः** सिद्ध हो जाता है।

१८७६. अयःशूलदण्डाजिनाभ्यां ठक्ठञौ ५।२।७६॥

तीक्ष्णोपायोऽयः शूलम्, तेनान्विच्छति आयःशूलिकः साहसिकः।
दण्डाजिनं दम्भः, तेनान्विच्छति दाण्डाजिनिकः।

अयःशूलदण्डाजिनाभ्यां ठक्ठञौ। अयःशूलं च दण्डाजिनं च तयोरितरेतर-योगद्वन्द्वः- अयःशूलदण्डाजिने, ताभ्याम् अयःशूलदण्डाजिनाभ्याम्। ठक् च ठञ् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः- ठक्ठञौ। **पार्श्वेनान्विच्छति** से **अन्विच्छति** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है। प्रकृति और प्रत्ययों में समानसंख्या होने के कारण **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** की उपस्थिति होती है।

तृतीया-समर्थ अयःशूल और दण्डाजिन इन प्रातिपदिकों से अन्विच्छति=चाहता है, खोजता है अर्थ में क्रमशः ठक् और ठञ् प्रत्यय होते हैं।

ठक् और ठञ् में केवल स्वर का ही भेद है। दोनों प्रत्ययों के परे रहते आदिवृद्धि होती है। यहाँ **अयःशूल** शब्द लक्षणावृत्ति से **तीक्ष्ण-उपाय** अर्थ का बोधक है और दण्डाजिन शब्द **दम्भ** का सूचक है।

तीक्ष्णोपायोऽयः शूलम्, तेनान्विच्छति आयःशूलिकः साहसिकः। तीक्ष्ण-उपाय को **अयःशूल** कहा गया है और तीक्ष्ण उपायों से कार्य करने वाले साहसिक को **आयःशूलिक** कहा जाता है। **अयःशूलेन अन्विच्छति** विग्रह करके **अयःशूल+टा** इस स्थिति में अयःशूलदण्डाजिनाभ्यां **ठक्ठञौ** सूत्र द्वारा **ठक्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, ठ के स्थान पर इक आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और **किति च** सूत्र द्वारा आदिवृद्धि करके यस्येति च से भसंज्ञक अकार का लोप करने पर **आयःशूलिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आयःशूलिकः** सिद्ध हो जाता है।

दण्डाजिनं दम्भः, तेनान्विच्छति दाण्डाजिनिकः। दण्ड और अजिन=मृगचर्म धारण करके ब्रह्मचारी-वेष को धोखा देने वाला व्यक्ति। **दण्डाजिनाभ्याम् अन्विच्छति** विग्रह करके **दण्डाजिन+भ्याम्** इस स्थिति में **अयःशूलदण्डाजिनाभ्यां ठक्ठञौ** सूत्र द्वारा **ठञ्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, ठ के स्थान पर **इक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और **तद्धितेष्वचामादेः** सूत्र द्वारा आदिवृद्धि करके **यस्येति च** से भसंज्ञक अकार का लोप करने पर **दाण्डाजिनिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **दाण्डाजिनिकः** सिद्ध हो जाता है।

१८७७. तावतिथं ग्रहणमिति लुग्वा ५।२।७७॥

कन् स्यात् पूरणप्रत्ययस्य च लुग्वा।

द्वितीयकम्, द्विकं वा ग्रहणं देवदत्तस्य। द्वितीयेन रूपेण ग्रहणमित्यर्थः।

'तावतिथेन गृह्णातीति कन्वक्तव्यो नित्यं च लुक्' (वा.३१७२)।

षष्ठेन रूपेण गृह्णाति षट्को देवदत्तः। पञ्चकः।

तावतिथं ग्रहणमिति लुग्वा। तावतां पूरणं तावतिथम्। गृह्यतेऽनेन ग्रहणम्। तावतिथं प्रथमान्तं, ग्रहणं प्रथमान्तम्, इत्यव्ययं, लुक् प्रथमान्तं, वाव्ययम्। आकर्षादिभ्यः **कन्** से **कन्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः**, **ङ्याप्प्रातिपदिकात्**, **प्रत्ययः**, **परश्च** का अधिकार है।

तृतीया-समर्थ पूरण-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से ग्रहण करना अर्थ में कन् प्रत्यय होता है तथा पूरण-प्रत्यय का विकल्प से लुक् होता है।

तृतीयार्थ में प्रयुक्त प्रथमान्त **तावतिथ** शब्द पूरण-प्रत्ययान्त का निर्देशक है। **ग्रहणम्** पद ग्रहणार्थ में प्रयुक्त है। **उतने को पूरा करने वाला** अर्थ पूरण-प्रत्यय से ही विदित होता है। अतः **तावतिथ** शब्द से पूरण-प्रत्ययान्त का बोध होता है। यद्यपि इस सूत्र में **पूरण-प्रत्ययान्त** इस प्रकार स्पष्ट निर्देश न कर **तावतिथम्** शब्द का प्रयोग सासान्य-निर्देश के रूप में किया गया है तथापि उसका अर्थ पूरण-प्रत्ययान्त ही लिया जाता है। पाणिनि जी ने इस का निर्देश **तस्यापत्यम्** सूत्र में **तस्य** पद का प्रयोग कर सामान्य-षष्ठी **तस्य** से षष्ठ्यन्त का ग्रहण कराया है। सूत्र में ग्रन्थविषयक ग्रहण ही मान्य है।

द्वितीयकम्, द्विकं वा ग्रहणं देवदत्तस्य। द्वितीयेन रूपेण ग्रहणमित्यर्थः। देवदत्त का दूसरी बार सुन कर ग्रन्थ को ग्रहण करना। **द्वितीयेन रूपेण ग्रहणम्** विग्रह करके **द्वितीय+टा** इस स्थिति में **तावतिथं ग्रहणमिति लुग्वा** सूत्र के द्वारा **कन्** प्रत्यय और पूरणार्थ-प्रत्यय **तीय** का विकल्प से लुक् करके **द्विक** शब्द बन जाता है। लुक् न होने के पक्ष में **द्वितीयक** शब्द बना है। उभयत्र स्वादिकार्य होकर **द्विकम्** और **द्वितीयकम्** ये दो रूप सिद्ध होते हैं।

तावतिथेन गृह्णातीति कन्वक्तव्यो नित्यं च लुक्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- तृतीयान्त पूरणार्थक से **गृह्णाति=ग्रहीता** अर्थ में कन् प्रत्यय होता है एवं पूरणार्थक प्रत्यय का नित्य से लुक् होता है। सूत्र-द्वारा ग्रहण-अर्थ में विहित होने के कारण और **ग्रहीता** के विषय में अप्राप्ति होने के कारण प्रकृत वार्तिक की सार्थकता है।

षष्ठेन रूपेण गृह्णाति षट्को देवदत्तः। छठी बार सुनकर ग्रहण करने वाला देवदत्त। **षष्ठेन रूपेण गृह्णाति** विग्रह करके **षष्ठ+टा** इस स्थिति में **तावतिथेन गृह्णातीति कन् वक्तव्यो नित्यं च लुक्** वार्तिक के द्वारा **कन्** प्रत्यय साथ ही पूरणार्थ-प्रत्यय **डट्**

और **थुक्** आगम से निष्पन्न **ठ** का नित्य से लुक् करके **षष्+क** बना हुआ है। षकार को जश्त्व डकार और उसको चर्त्व ककार होकर **षट्क** शब्द बन जाता है। स्वादिकार्य होकर **षट्कः** सिद्ध हो जाता है।

पञ्चकः। पाँचवीं बार सुनकर ग्रहण करने वाला देवदत्त। **पञ्चमेन रूपेण गृह्णाति** विग्रह करके **पञ्चम+टा** इस स्थिति में **तावतिथं गृह्णातीति कन् वक्तव्यो नित्यं च लुक्** वार्तिक के द्वारा **कन्** प्रत्यय साथ ही पूरणार्थ-प्रत्यय **डट्** और **मट्** आगम से निष्पन्न **म** का नित्य से लुक् करके **पञ्चक** शब्द बन जाता है। स्वादिकार्य होकर **पञ्चकः** सिद्ध हो जाता है।

१८७८. स एषां ग्रामणीः ५।२।७८॥

देवदत्तो मुख्य एषां देवदत्तकाः। त्वत्काः। मत्काः।

स एषां ग्रामणीः। सः प्रथमान्तम्, एषां षष्ठ्यन्तं, ग्रामणीः प्रथमान्तम्। **आकर्षादिभ्यः कन्** से **कन्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक यदि वह ग्रामणी=गाँव का मुखियावाची हो तो उससे षष्ठ्यर्थ में कन् प्रत्यय होता है।

सः पद प्रथमा-समर्थ-विभक्ति का सूचक है और **एषाम्** अर्थबोधक।

देवदत्तो मुख्य एषां देवदत्तकाः। देवदत्त मुखिया है जिन ग्रामवासियों का। **देवदत्तो मुख्यः एषाम्** विग्रह करके **देवदत्त+सु** इस स्थिति में **स एषां ग्रामणीः** सूत्र द्वारा **कन्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **देवदत्तक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **देवदत्तकः** सिद्ध हो जाता है।

त्वत्काः। तुम हो मुखिया जिन ग्रामवासियों के, वे। **त्वम् मुख्यः एषाम्** विग्रह करके **युष्मद्+सु** इस स्थिति में **स एषां ग्रामणीः** सूत्र द्वारा **कन्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **युष्मद्+क** बना है। **प्रत्ययोत्तरपदयोश्च** सूत्र के द्वारा **युष्म्**-भाग के स्थान पर **त्व** आदेश होकर **त्वद्+क** और दकार को चर्त्व तकार होकर **त्वत्क** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर प्रथमा-बहुवचन में **त्वत्काः** सिद्ध हो जाता है।

मत्काः। मैं हूँ मुखिया जिन ग्रामवासियों के, वे। **अहम् मुख्यः एषाम्** विग्रह करके **अस्मद्+सु** इस स्थिति में **स एषां ग्रामणीः** सूत्र द्वारा **कन्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **अस्मद्+क** बना है। **प्रत्ययोत्तरपदयोश्च** सूत्र के द्वारा **अस्म्**-भाग के स्थान पर **म** आदेश होकर **मद्+क** और दकार को चर्त्व तकार होकर **मत्क** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर प्रथमा-बहुवचन में **मत्काः** सिद्ध हो जाता है।

१८७९. शृङ्खलमस्य बन्धनं करभे ५।२।७९॥

शृङ्खलकः करभः।

शृङ्खलमस्य बन्धनं करभे। शृङ्खलं प्रथमान्तम्, अस्य षष्ठ्यन्तं, बन्धनं प्रथमान्तं, करभे सप्तम्यन्तम्। **आकर्षादिभ्यः कन्** से **कन्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

प्रथमा-समर्थ शृङ्खल-प्रातिपदिक से षष्ठ्यर्थ में कन् प्रत्यय होता है, यदि वह प्रथमा-समर्थ बन्धन बन रहा हो तथा जो षष्ठी से निर्दिष्ट हो, वह करभ (ऊँट का बच्चा) हो।

शृङ्खलकः करभः। जंजीर बन्धन हो जिस करभ (ऊँट के बच्चे) का, वह। **शृङ्खलम् अस्य बन्धनम्** विग्रह करके **शृङ्खल+सु** इस स्थिति में **शृङ्खलमस्य बन्धनं करभे** सूत्र द्वारा **कन्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **शृङ्खलक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **शृङ्खलकः** सिद्ध हो जाता है। ऊँट के बच्चे के पैरों में जंजीर का बन्धन लगा दिया जाता है, ताकि वह कहीं इधर-उधर न जा सके।

१८८०. उत्क उन्मनाः ५।२।८०॥

उद्गतमनस्कवृत्तेरुच्छब्दात् स्वार्थे कन्। उत्क उत्कण्ठितः।

उत्क उन्मनाः। उत्कः प्रथमान्तम्, उन्मनाः प्रथमान्तम्। **आकर्षादिभ्यः कन्** से **कन्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

उन्मना अर्थ में उद्गतमनस्कार्थ उत्-शब्द से स्वार्थ में क-प्रत्ययान्त उत्क-शब्द का निपातन किया जाता है।

उत्क उत्कण्ठितः। जिसका मन उदास हो अथवा विक्षिप्त हो, उसे **उन्मनाः** कहते हैं। तादृश अर्थ में विद्यमान **उत्**-शब्द से **उत्क उन्मनाः** सूत्र के द्वारा **क** प्रत्यय का निपातन करके **उत्क** शब्द बनता है और स्वादिकार्य से **उत्कः** सिद्ध हो जाता है।

१८८१. कालप्रयोजनाद्रोगे ५।२।८१॥

कालवचनात् प्रयोजनवचनाच्च कन् स्याद् रोगे।
द्वितीयेऽहनि भवो द्वितीयको ज्वरः। प्रयोजनं कारणं रोगस्य फलं वा।
विषपुष्पैर्जनितो विषपुष्पकः। उष्णं कार्यमस्य उष्णकः।
'रोगे' किम्? द्वितीयो दिवसोऽस्य।

कालप्रयोजनाद्रोगे। कालश्च प्रयोजनं च तयोः समाहारद्वन्द्वः कालप्रयोजनं, तस्मात् कालप्रयोजनात् पञ्चम्यन्तं, रोगे सप्तम्यन्तम्। **आकर्षादिभ्यः कन्** से **कन्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

कालवाची और प्रयोजनवाची प्रातिपदिक से रोग अभिधेय होने पर कन् प्रत्यय होता है।

इस सूत्र में सामर्थ्य-वश जहाँ पर जो विभक्ति उचित हो, वहाँ वही विभक्ति की योजना करनी चाहिये, अर्थात् कालवाचियों से सप्तमी समर्थ-विभक्ति और प्रयोजनवाचियों में तृतीया-विभक्ति की योजना करनी चाहिये।

द्वितीयेऽहनि भवो द्वितीयको ज्वरः। एक बार उतर जाने के बाद पुनः दूसरे दिन होने वाला ज्वर। **द्वितीयेऽहनि भवः** विग्रह करके **द्वितीय+ङि** इस स्थिति में **कालप्रयोजनाद्रोगे** सूत्र के द्वारा **कन्** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **द्वितीयक** और स्वादिकार्य से **द्वितीयकः** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **तृतीयेऽहनि भवः- तृतीयकः, चतुर्थेऽहनि भवः- चतुर्थकः** इत्यादि प्रयोग बनते हैं। यह कालवाची प्रातिपदिक का उदाहरण है।

प्रयोजनं कारणं रोगस्य फलं वा। प्रयोजन का अर्थ कारण है और रोग का फल भी।

विषपुष्पैर्जनितो विषपुष्पकः। विषपुष्प=मैनफल के कारण उत्पन्न हुआ ज्वर। **विषपुष्पैः जनितः** विग्रह करके **विषपुष्प+भिस्** इस स्थिति में **कालप्रयोजनाद्रोगे** सूत्र के द्वारा **कन्** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **विषपुष्पक** और स्वादिकार्य से **विषपुष्पकः** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **काशपुष्पैर्जनितः- काशपुष्पकः** (सरकण्डों के फूल से उत्पन्न ज्वर) इत्यादि प्रयोग बनते हैं। यह प्रयोजनवाची प्रातिपदिक का उदाहरण है। उसमें भी कारण का उदाहरण समझना चाहिये।

उष्णं कार्यमस्य उष्णकः। जिस ज्वर का परिणाम गर्मी हो। **उष्णं कार्यम् अस्य** विग्रह करके **उष्ण+सु** इस स्थिति में **कालप्रयोजनाद्रोगे** सूत्र के द्वारा **कन्** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **उष्णक** और स्वादिकार्य से **उष्णकः** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **शीतं कार्यमस्य शीतकः** (जिस ज्वर का परिणाम ठण्ठक हो) इत्यादि प्रयोग बनते हैं। यह प्रयोजनवाची प्रातिपदिक का उदाहरण है किन्तु यह फलात्मक है।

'रोगे' किम्? द्वितीयो दिवसोऽस्य। प्रकृतसूत्र में **रोगे** पद का निवेश होने से रोग-वाच्य होने पर ही यह प्रत्यय होता है, अन्यथा नहीं होता। अतः **द्वितीयो दिवसोऽस्य** (दूसरा दिन है इसका) में रोग-वाच्य न होकर अन्य वाच्य है, अतः कन् प्रत्यय नहीं हुआ, अपितु वाक्य ही रह जाता है।

१८८२. तदस्मिन्नन्नं प्राये सञ्ज्ञायाम् ५।२।८२॥

प्रथमान्तात् सप्तम्यर्थे कन् स्याद्यत्प्रथमान्तमन्नं चेत्प्रायविषयं तत्।
गुडापूपाः प्रायेणान्नमस्यां गुडापूपिका पौर्णमासी।
'वटकेभ्य इनिर्वाच्यः' (वा.३१८५) वटकिनी।

तदस्मिन्नन्नं प्राये सञ्ज्ञायाम्। तत् प्रथमान्तम्, अस्मिन् सप्तम्यन्तम्, अन्नं प्रथमान्तं, प्रायें सप्तम्यन्तं, संज्ञायां सप्तम्यन्तम्। **आकर्षादिभ्यः** कन् से कन् की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

तत्=प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से अस्मिन्=सप्तम्यर्थ में कन् प्रत्यय होता है, यदि वह प्रथमा-समर्थ प्राये=अधिकतर संज्ञाविषय में अन्नविषयक हो।

गुडापूपाः प्रायेणान्नमस्यां गुडापूपिका पौर्णमासी। जिस पूर्णिमा में बहुत गुड़ वाला अपूप=मालपुये रूप अन्न खाद्य हो। **गुडापूपाः प्रायेण अन्नम् अस्यां पौर्णमास्याम्** विग्रह करके **गुडापूप+जस्** इस स्थिति में **तदस्मिन्नन्नं प्राये सञ्ज्ञायाम्** सूत्र से कन् प्रत्यय होता है और प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **गुडापूपक** बन जाता है। टाप्, सवर्णदीर्घ करके **गुडापूपका** बनने के बाद **प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः** सूत्र से ककार से पूर्ववर्ती अकार को इकारादेश होकर **गुडापूपिका** बन जाने के बाद स्वादिकार्य होकर **गुडापूपिका** सिद्ध हो जाता है।

वटकेभ्य इनिर्वाच्यः। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- प्रथमा-समर्थ **वटक** प्रातिपदिक से **इनि** प्रत्यय कहना चाहिये। यह कन्-प्रत्यय का अपवाद है।

वटकिनी। जिस पूर्णिमा में मुख्य भोजन **बड़ा** हो। **वटकाः प्रायेण अन्नम् अस्यां पौर्णमास्याम्** विग्रह करके **वटक+जस्** इस स्थिति में **वटकेभ्य इनिर्वाच्यः** वार्तिक से **इनि (इन्)** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप करके **वटकिन्** शब्द बन जाता है। नकारान्त शब्दों से स्त्रीत्व में **ऋन्नेभ्यो ङीप्** सूत्र से ङीप् प्रत्यय होता है, अतः **वटकिनी** शब्द बन जाता है। स्वादिकार्य होकर **वटकिनी** सिद्ध हो जाता है।

१८८३. कुल्माषादञ् ५।२।८३॥

कुल्माषाः प्रायेणान्नमस्यां कौल्माषी।

कुल्माषादञ्। कुल्माषात् पञ्चम्यन्तम्, अञ् प्रथमान्तम्। **तदस्मिन्नन्नं प्राये सञ्ज्ञायाम्** सूत्र के सभी पदों की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

प्रथमा-समर्थ 'कुल्माष' प्रातिपदिक से सप्तम्यर्थ में अञ् प्रत्यय होता है, यदि वह प्रथमा-समर्थ अधिकतर संज्ञाविषय में अन्नविषयक हो तो

पूर्वसूत्र से प्राप्त कन् का यह अपवाद है।

कुल्माषाः प्रायेणान्नमस्यां कौल्माषी। जिस पूर्णिमा में बहुत कुलत्थ-युक्त भक्ष्य की प्रधानता हो। **कुल्माषाः प्रायेण अन्नम् अस्यां पौर्णमास्याम्** विग्रह करके **कुल्माष+जस्** इस स्थिति में **कुल्माषादञ्** सूत्र से अञ् प्रत्यय होता है और प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और ञित्त्वादि आदिवृद्धि होकर **कौल्माष** बन जाता है। अञन्त होने के कारण **टिड्ढाणञ्०** सूत्र से स्त्रीत्व में **ङीप्** प्रत्यय होने के बाद भसंज्ञक अकार का लोप होकर **कौल्माषी** शब्द बन जाता है। स्वादिकार्य होकर **कौल्माषी** सिद्ध हो जाता है।

१८८४. श्रोत्रियंश्छन्दोऽधीते ५।२।८४॥

श्रोत्रियः। 'वा' इत्यनुवृत्तेश्छान्दसः।

श्रोत्रियंश्छन्दोऽधीते। श्रोत्रियन् प्रथमान्तं, छन्दो द्वितीयान्तम्, अधीते क्रियापदं, त्रिपदं सूत्रम्।

छन्दः अधीते=वेद पढ़ता है- इस अर्थ में छन्दस् शब्द के स्थान पर 'श्रोत्र' आदेश और घन् प्रत्यय का निपातन किया जाता है।

घन् में नकार इत्संज्ञक है, फलतः **ञ्नित्यादिर्नित्यम्** (६.१.१९१) सूत्र से नित्-स्वर आद्युदात्त होगा।

श्रोत्रियः। वेदों का अध्येता। **छन्दोऽधीते** इस अर्थ में **छन्दस् अम्** में **तदधीते तद्वेद** से अण् प्राप्त था, उसे बाधकर के **श्रोत्रियँश्छन्दोऽधीते** से **छन्दस्** के स्थान पर **श्रोत्र** आदेश और **घन्** प्रत्यय का निपातन हुआ। नकार की इत्संज्ञा, लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **श्रोत्र+घ** बना। केवल **घ्** के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां** प्रत्ययादीनाम् से **इय्** आदेश होकर **श्रोत्र+इय** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करने पर **श्रोत्र्+इय**, वर्णसम्मेलन होकर **श्रोत्रिय** बना और स्वादिकार्य होकर **श्रोत्रियः** सिद्ध हो जाता है।

वा इत्यनुवृत्तेः- छान्दसः। इस सूत्र में **तावतिथं ग्रहणमिति लुग्वा** से **वा** की अनुवृत्ति की जाती है। अतः यह कार्य विकल्प से होता है। निपातन न होने के पक्ष में **तदधीते तद्वेद** से **अण्** होकर **छान्दसः** भी बनता है। **छन्दस्+अ** इस स्थिति में आदिवृद्धि करके **छान्दस** और स्वादिकार्य से **छान्दसः** सिद्ध हो जाता है।

१८८५. श्राद्धमनेन भुक्तमिनिठनौ ५।२।८५॥

श्राद्धी, श्राद्धिकः।

श्राद्धमनेन भुक्तमिनिठनौ। इनिश्च ठन् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः- इनिठनौ। श्राद्धं प्रथमान्तम्, अनेन तृतीयान्तं, भुक्तं प्रथमान्तम्, इनिठनौ प्रथमान्तम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च, समर्थानां प्रथमाद्वा** का अधिकार है।

प्रथमा-समर्थ भुक्त-क्रिया के समानाधिकरणवाची श्राद्ध-प्रातिपदिक से 'इसके द्वारा खाया गया' अर्थ में इनि और ठन् प्रत्यय होते हैं।

इनि में अन्त्य इकार और **ठन्** में नकार इत्संज्ञक है।

श्राद्धी, श्राद्धिकः। जिसने श्राद्धभोजन कर लिया है। **श्राद्धं भुक्तम् अनेन** विग्रह करके **श्राद्ध+सु** इस स्थिति में **श्राद्धमनेन भुक्तमिनिठनौ** सूत्र के द्वारा **इनि (इन्)** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **श्राद्धिन्** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **श्राद्धी, श्राद्धिनौ, श्राद्धिनः** इत्यादि रूप बनते हैं। **ठन्** प्रत्यय होने के पक्ष में **ठ** के स्थान पर इकादेश और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **श्राद्धिक** शब्द बनता है तथा स्वादिकार्य से **श्राद्धिकः** सिद्ध हो जाता है।

विशेषः- यद्यपि श्रद्धा-पूर्वक पितरों के उद्देश्य से किया जाने वाला कर्म **श्राद्ध** है, किन्तु मुख्य श्राद्ध-कर्म का तो भोजन-सम्भव नहीं हो सकता तथापि श्राद्ध के साधन-रूप पदार्थ में गौणी-वृत्ति का आश्रयण करके लक्षणा के द्वारा श्राद्ध-शब्द से प्रत्यय का विधान किया जाता है। तदनुसार श्राद्ध के निमित्त अन्नादि का भोजन करने वाला **श्राद्धी** और **श्राद्धिकः** कहलाता है।

१८८६. पूर्वादिनिः ५।२।८६॥
पूर्वं कृतमनेन पूर्वी।

पूर्वादिनिः। पूर्वात् पञ्चम्यन्तम्, इनिः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **श्राद्धमनेन भुक्तमिनिठनौ** से **अनेन** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार आ ही रहा है।

क्रियाविशेषण वाले 'पूर्व' शब्द से 'अनेन' अर्थात् इससे किंवा कर्ता अर्थ में इनि प्रत्यय होता है।

अन्त्य इकार इत्संज्ञक है, **इन्** बचता है। क्रिया के अभाव में कर्ता की स्थिति न होने से क्रिया आदि का अध्याहार करके ही यह प्रत्यय सम्भव होता है।

पूर्वी। पहले कुछ कार्यविशेष कर चुका व्यक्ति। **पूर्वं कृतम् अनेन** ऐसा विग्रह है। **पूर्व+अम्** इस स्थिति में **पूर्वादिनिः** से **इनि** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **पूर्व+इन्** बना। भसंज्ञक अकार का लोप, वर्णसम्मेलन करके **पूर्विन्** बना। इससे **शार्ङ्गी** की तरह **सौ च** से दीर्घ करके **पूर्वी, पूर्विणौ, पूर्विणः** आदि रूप बनते हैं।

१८८७. सपूर्वाच्च ५।२।८७॥
कृतपूर्वी कटम्।

सपूर्वाच्च। पूर्वेण सह सपूर्वम्, तस्मात्। सपूर्वात् पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं,

द्विपदं सूत्रम्। **पूर्वादिनिः** यह पूरा सूत्र अनुवृत्त होता है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार चला आ रहा है।

जिसके पूर्व में अन्य कोई भी शब्द विद्यमान हो ऐसे पूर्व शब्द से 'अनेन' इस अर्थ में इनि प्रत्यय होता है।

सपूर्व का अर्थ है- जिसके पहले कोई अन्य शब्द हो- **विद्यमानं पूर्वं यस्मात् स सपूर्वः**। पूर्वसूत्र द्वारा केवल **पूर्व**-शब्द से ही **इनि**-प्रत्यय प्राप्त रहा, यहाँ तदन्त से भी **इनि** हो जाय, एतदर्थ प्रकृत सूत्र की उपयोगिता है। अतः पूर्वशब्दान्त से भी यह प्रत्यय होता है। यहाँ पर यह शंका होती है कि जब तदन्तविधि से पूर्वशब्दान्त शब्द से पूर्वसूत्र द्वारा इनि-प्रत्यय सम्भव था तो पुनः सपूर्वक पूर्व-शब्द के लिये दूसरे सूत्र की क्या आवश्यकता है? इसका समाधान यह दिया जाता है कि इसी से यह निम्नलिखित परिभाषा ज्ञापित होती है- **ग्रहणवता प्रातिपदिकेन तदन्तविधिर्नास्ति** (ग्रहणवान् प्रातिपदिक से तदन्तविधि नहीं होती)। इस प्रकार **पूर्वादिनिः** सूत्र में जब केवल **पूर्व** शब्द का ग्रहण किया गया है तो तदन्तविधि के निषेध होने से शब्दान्तरयुक्त पूर्व-शब्द का ग्रहण नहीं हो सकता। अतः **सपूर्वाच्च** की सार्थकता है। पुनः यह शंका होती है कि **पूर्वादिनिः** तथा **सपूर्वाच्च** इन दो सूत्रों के स्थान् पर **पूर्वात्सपूर्वादिनिः** ऐसा एक ही सूत्र पढ़ा जाय तो ऐसा करने से **कृतपूर्वी** में **कृत**-सहित **पूर्व**-शब्द से **इन्** प्रत्यय तथा केवल **पूर्व**-शब्द से व्यपदेशिवद्भाव का आश्रय लेकर सपूर्वक मानते हुये **इनि** प्रत्यय सिद्ध हो सकता है। ऐसी स्थिति में पृथक् दो सूत्रों की क्या आवश्यकता है? तथापि आचार्य ने दो सूत्र बनाये हैं, इससे यह ज्ञापित होता है कि **अन्तादिपद-घटित प्रातिपदिक को अभिलक्षित कर जो कार्य विहित है, वह व्यवदेशिवद्भाव से केवल प्रातिपदिक में नहीं हो सकता।** इस तरह परिभाषा ज्ञापित होती है- **व्यपदेशिवद्भावोऽप्रातिपदिकेन**। अतः एक सूत्र बनाने से कार्यनिर्वाह नहीं हो सकता।

कृतपूर्वी। पहले कर चुका व्यक्ति। **पूर्वं कृतम् अनेन** ऐसा विग्रह है। **पूर्व अम् कृत सु** में **सह सुपा** से समास करके **कृतपूर्व** बना है। अब **कृतपूर्व सु** में **सपूर्वाच्च** से **इनि** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **कृतपूर्व+इन्** बना। भसंज्ञक अकार का लोप, वर्णसम्मेलन करके **कृतपूर्विन्** बना। इससे **शार्ङ्गी** की तरह **सौ च** से दीर्घ करके **कृतपूर्वी, कृतपूर्विणौ, कृतपूर्विणः** आदि रूप बनते हैं।

१८८८. इष्टादिभ्यश्च ५।२।८८॥

इष्टमनेन इष्टी। अधीती।

इष्टादिभ्यश्च। इष्टम् आदिर्येषां ते इष्टादयस्तेभ्यः। इष्टादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **पूर्वादिनिः** से **इनिः** और **श्राद्धमनेन भुक्तमिनिठनौ** से **अनेन** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार आ ही रहा है।

प्रथमान्त इष्ट आदि शब्दों से 'अनेन' अर्थ में इनि प्रत्यय होता है।

इष्टादिगण में इष्ट, पूर्त, उपासादित, निगदित, परिगदित, निराकृत, पूजित, परिगणित आदि अनेक शब्द आते हैं। गणपाठ आगे दिया जा रहा है।

इष्टी। यज्ञ कर चुका व्यक्ति। **इष्टम् अनेन** ऐसा विग्रह है। **इष्ट सु** में **इष्टादिभ्यश्च** से **इनि** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **इष्ट+इन्** बना। भसंज्ञक अकार का लोप, वर्णसम्मेलन करके **इष्टिन्** बना। इसमें भी **पूर्वी** की तरह **सौ च** से दीर्घ करके **इष्टी, इष्टिनौ, इष्टिनः** आदि रूप बनते हैं।

अधीती। अध्ययन कर चुका व्यक्ति। **अधीतम् अनेन** ऐसा लौकिक विग्रह है। **अधीत सु** में **इष्टादिभ्यश्च** से **इनि** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अधीत+इन्** बना। भसंज्ञक अकार का लोप, वर्णसम्मेलन करके **अधीतिन्** बना। तत्पश्चात् **पूर्वी** की तरह **सौ च** से दीर्घ करके **अधीती, अधीतिनौ, अधीतिनः** आदि रूप बनते हैं।

इसी तरह **पठितमनेन- पठीती, उपकृतमनेन उपकृती, पूजितमनेन- पूजिती, संरक्षितमनेन संरक्षिती** आदि प्रयोग बनाये जाते हैं। स्मरण रहे कि **क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसंख्यानम्** वार्तिक से इस **इन्नन्त** शब्द के योग में सप्तमी विभक्ति हुआ करती है। जैसे- **पठिती व्याकरणे, अधीती शास्त्रे, पूजिती देवेषु** आदि वाक्य बनते हैं।

इष्टादिगणः- इष्ट, पूर्त, उपासादित, निगदित, परिगदित, परिवादित, निकथित, निषादित, निपठित, संकलित, परिकलित, संरक्षित, परिरक्षित, अर्चित, गणित, अवकीर्ण, आयुक्त, गृहीत, आम्रात, श्रुत, अधीत, अवधान, आसेवित, अवधारित, अवकल्पित, निराकृत, उपकृत, उपाकृत, अनुयुक्त, अनुगणित, अनुपठित, व्याकुलित।

१८८९. छन्दसि परिपन्थिपरिपरिणौ पर्यवस्थातरि ५।२।८९॥
लोके तु परिपन्थिशब्दो न न्याय्यः।

छन्दसि परिपन्थिपरिपरिणौ पर्यवस्थातरि। परिपन्थी च परिपरी च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः परिपन्थिपरिपरिणौ। छन्दसि सप्तम्यन्तं, परिपन्थिपरिपरिणौ प्रथमान्तं, पर्यवस्थातरि सप्तम्यन्तम्। **पूर्वादिनिः** से **इनिः** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार आ ही रहा है।

वेद के विषय में इन्-प्रत्ययान्त परिपन्थिन् और परिपरिन् इन दो शब्दों का निपातन किया जाता है, पर्यवस्थाता=मार्ग का अवरोधक लुटेरा अर्थ अभिधेय होने पर।

सम्पन्न बलवान् को **पर्यवस्थाता=प्रतिपक्षी** कहते हैं किन्तु यहाँ पर **बाधक=मार्ग** का लुटेरा आदि अर्थ विवक्षित है।

परिपन्थी। सम्पन्न एवं बलवान् प्रतिपक्षी। **पर्यवस्थातृ**-शब्द से **छन्दसि**

परिपन्थिपरिपरिणौ पर्यवस्थातरि सूत्र के द्वारा **इनि**-प्रत्यय के साथ प्रकृतिभाग के स्थान पर **परिपन्थ** आदेश का निपातन किया जाता है, जिससे **परिपन्थिन्** शब्द बनता है और स्वादिकार्य होकर **परिपन्थी, परिपन्थिनौ, परिपन्थिनः** आदि रूप बनते हैं। **मा त्वा परिपन्थिनो विदन्**=तुम्हें शत्रु मार्ग रोककर कर न मिलें।

परिपरी। सम्पन्न एवं बलवान् प्रतिपक्षी। **पर्यवस्थातृ**-शब्द से **छन्दसि परिपन्थिपरिपरिणौ पर्यवस्थातरि** सूत्र के द्वारा **इनि**-प्रत्यय के साथ प्रकृतिभाग के स्थान पर **परिपर** आदेश का निपातन किया जाता है, जिससे **परिपरिन्** शब्द बनता है और स्वादिकार्य होकर **परिपरी, परिपरिणौ, परिपरिणः** आदि रूप बनते हैं। **मां त्वा परिपरिणो विदन्**=तुम्हें सब ओर से घेरने वाले लुटेरे न मिलें।

लोके तु परिपन्थिशब्दो न न्याय्यः। लोक में तो **परिपन्थि**-शब्द नहीं होता, अर्थात् ये केवल वैदिक प्रयोग हैं। जब वैदिक प्रयोगों की सिद्धि के लिये प्रकृत सूत्र है और दीक्षित जी ने **स्वरवैदिकी** प्रकरण अलग से बनाया है तो उन्हें चाहिये था कि इस सूत्र को उक्त प्रकरण में ही रखते।

१८९०. अनुपद्यन्वेष्टा ५।२।९०॥

अनुपदमन्वेष्टा गवामनुपदी।

अनुपद्यन्वेष्टा। अनुपदी प्रथमान्तम्, अन्वेष्टा प्रथमान्तम्। **पूर्वादिनिः** से **इनिः** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार आ ही रहा है।

अन्वेष्टा=पीछे जाने वाला- अर्थ में इनि-प्रत्ययान्त अनुपदी-शब्द का निपातन किया जाता है।

अनुपदमन्वेष्टा गवामनुपदी। गायों के पीछे चलने वाला चरवाहा। **अनुपदम् अन्वेष्टा** विग्रह करके अनुपद+अम् इस स्थिति में **अनुपद्यन्वेष्टा** सूत्र के द्वारा **इनि** प्रत्यय का निपातन करके भसंज्ञक अकार का लोप करने पर **अनुपदिन्** शब्द बनता है और स्वादिकार्य से **अनुपदी** सिद्ध हो जाता है। **पदात् पश्चात्** विग्रह करके अव्ययीभाव समास होकर **अनुपदम्** शब्द बनता है, उससे यह प्रत्यय किया गया है।

१८९१. साक्षाद् द्रष्टरि सञ्ज्ञायाम् ५।२।९१॥

साक्षाद् द्रष्टा साक्षी।

साक्षाद् द्रष्टरि सञ्ज्ञायाम्। साक्षात् इति लुप्तपञ्चमीकमव्ययं, द्रष्टरि सप्तम्यन्तं, संज्ञायां सप्तम्यन्तम्। **पूर्वादिनिः** से **इनिः** की अनुवृत्ति आती है। साथ ही **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार आ ही रहा है।

साक्षात् इस अव्यय से यदि सीधे द्रष्टा वाच्य हो तो संज्ञा गम्यमान होने पर इनि-प्रत्यय होता है।

साक्षाद् द्रष्टा साक्षी। प्रत्यक्ष द्रष्टा, गवाह। **साक्षात्**-शब्द से **साक्षाद् द्रष्टरि संज्ञायाम्** सूत्र से **इनि** प्रत्यय होने पर **साक्षात्+इन्** बना है। **अव्ययानां भमात्रे टिलोपः** वार्तिक के द्वारा टिसंज्ञक भाग **आत्** का लोप होकर **साक्षिन्** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **साक्षी, साक्षिणौ, साक्षिणः** इत्यादि रूप बनते हैं।

१८९२. क्षेत्रियच् परक्षेत्रे चिकित्स्यः ५।२।९२॥

क्षेत्रियो व्याधिः, शरीरान्तरे चिकित्स्यः, अप्रतिकार्य इत्यर्थः।

क्षेत्रियच् परक्षेत्रे चिकित्स्यः। परस्य क्षेत्रं=शरीरं परक्षेत्रं, तस्मिन् परक्षेत्रे, षष्ठीतत्पुरुषः। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

क्षेत्रियच्-शब्द का निपातन किया जाता है, दूसरे क्षेत्र=शरीर में चिकित्सा किया जाने योग्य- इस अर्थ में।

यहाँ **परक्षेत्र**-शब्द से घच् प्रत्यय और प्रकृति के पर-शब्द का लोप इन दो कार्यों का निपातन समझना चाहिये। चित्करण स्वरार्थ समझना चाहिये।

क्षेत्रियो व्याधिः, शरीरान्तरे चिकित्स्यः, अप्रतिकार्य इत्यर्थः। दूसरे शरीर में ठीक होने अर्थात् मरणोपरान्त ही ठीक होने वाली व्याधि, जिसका इस शरीर में कोई चिकित्सा नहीं है। **परक्षेत्रे चिकित्स्यः** विग्रह करके **परक्षेत्र+ङि** इस स्थिति में **क्षेत्रियच् परक्षेत्रे चिकित्स्यः** सूत्र के द्वारा घच् प्रत्यय और प्रकृति के **पर** शब्द का लोप होने पर **क्षेत्र+घ** बना है। घकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र के द्वारा **इय्** आदेश होने के बाद भसंज्ञक अकार का लोप होकर **क्षेत्रिय** शब्द बन जाता है और स्वादिकार्य से **क्षेत्रियः** सिद्ध हो जाता है। **क्षेत्रिय** शब्द का प्रयोग बहुत जगहों पर मिलता है। जैसे कि **क्षेत्रियं विषम्** (अपरिहार्य विष), **क्षेत्रियाणि तृणानि** (पास में उगी हुयी खेती के विनाशक घास-पात) और **क्षेत्रियः परदारिकः** (उपपति से उत्पन्न सन्तान) इत्यादि।

१८९३. इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गमिन्द्रदृष्टमिन्द्रसृष्टमिन्द्रजुष्टमिन्द्रदत्तमिति वा ५।२।९३

इन्द्र आत्मा, तस्य लिङ्गम्, करणेन कर्तुरनुमानात्।
इतिकरणं प्रकारार्थम्। इन्द्रेण दुर्जयमिन्द्रियम्।

इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गमिन्द्रदृष्टमिन्द्रसृष्टम्०। इन्द्रियं, प्रथमान्तम्, इन्द्रलिङ्गं प्रथमान्तम्, इन्द्रदृष्टं प्रथमान्तम्, इन्द्रसृष्टं प्रथमान्तम्, इन्द्रजुष्टं प्रथमान्तम्, इन्द्रदत्तं प्रथमान्तम्, इत्यव्ययं, वाव्ययम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

'इन्द्रियम्' इस शब्द का निपातन किया जाता है- इन्द्रलिङ्ग, इन्द्रदृष्ट, इन्द्रसृष्ट, इन्द्रजुष्ट और इन्द्रदत्त अर्थों में।

उक्त अर्थों में से **लिङ्ग** अर्थ में षष्ठी-समर्थ और अन्य अर्थों में तृतीया-समर्थ **इन्द्र**-शब्द से **घच्**-प्रत्यय करके **इन्द्रिय** शब्द का निपातन किया गया है।

इन्द्र आत्मा, तस्य लिङ्गम्, करणेन कर्तुरनुमानात्। सूत्रोक्त प्रकृतिवाची **इन्द्र** जीवात्मा का वाचक है तथा **लिङ्ग** पद उसके चिह्न का बोधक। इस तरह जीवात्मा के परिमापक को **इन्द्रिय** कहा गया है। करण के द्वारा कर्ता का अनुमान किया जाता है। करण से कर्ता का अनुमान-प्रकार इस प्रकार है- **यद्यत् करणं तत्तत् कर्तृसापेक्षम्, अचेतनत्वात्, कुठारादिवत्** अर्थात् जो-जो करण=साधन होता है, वह कर्ता की अपेक्षा करता है, क्योंकि वह अचेतन हुआ करता है, जैसे कि कुल्हाड़ी आदि।

इन्द्रलिङ्गम् इन्द्रियम्। आत्मा का अनुमापक बाह्य चिह्न। **इन्द्रस्य लिङ्गम्** विग्रह करके **इन्द्र+ङस्** इस स्थिति में **इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गमिन्दसृष्ट०** सूत्र से **घच्** प्रत्यय का निपातन करने पर अनुबन्धलोप, घकार के स्थान पर **इय्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञकान्त्य अकार का लोप करके **इन्द्रिय** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य करके **इन्द्रियम्** सिद्ध हो जाता है।

इन्द्रदृष्टम् इन्द्रियम्। आत्मा से अनुभूत। **इन्द्रेण दृष्टम्** विग्रह करके **इन्द्र+टा** इस स्थिति में पूर्ववत् प्रक्रिया करके **इन्द्रियम्** सिद्ध हो जाता है।

इन्द्रसृष्टम् इन्द्रियम्। आत्मा से रचित। **इन्द्रेण सृष्टम्** विग्रह करके **इन्द्र+टा** इस स्थिति में पूर्ववत् प्रक्रिया करके **इन्द्रियम्** सिद्ध हो जाता है।

इन्द्रजुष्टम् इन्द्रियम्। आत्मा से सेवित। **इन्द्रेण जुष्टम्** विग्रह करके **इन्द्र+टा** इस स्थिति में पूर्ववत् प्रक्रिया करके **इन्द्रियम्** सिद्ध हो जाता है।

इन्द्रदत्तम् इन्द्रियम्। आत्मा ने इन्द्रियों को अपने विषयों का भोग प्रदान किया। **इन्द्रेण दत्तम्** विग्रह करके **इन्द्र+टा** इस स्थिति में पूर्ववत् प्रक्रिया करके **इन्द्रियम्** सिद्ध हो जाता है।

इतिकरणं प्रकारार्थम्। इन्द्रेण दुर्जयम् इन्द्रियम्। सूत्रस्थ **इति** शब्द के कारण इन्द्रिय शब्द प्रकारार्थ का सूचक है। इससे अर्थ-विस्तार करने में यह स्वतन्त्रता मिल जाती है। अतः निर्दिष्ट अर्थों के अतिरिक्त अन्य अर्थों में भी यथासम्भव **इन्द्रिय** शब्द की व्युत्पत्ति की जा सकती है। एवमेव **वा** शब्द से यह सूचित किया गया है कि यहाँ **इन्द्रदृष्ट, इन्द्रलिङ्ग** इत्यादि अर्थों में प्रकारान्तर से **इन्द्रिय** शब्द की व्युत्पत्ति मानी जा सकती है। अतः **इन्द्रेण दुर्जयम्** विग्रह करके भी **इन्द्रियम्** सिद्ध हो जाता है।

अब वास्तविक **मत्वर्थीयप्रकरण** प्रारम्भ होता है। **मतुप्**-प्रत्यय जिस अर्थ में होता है, उसी अर्थ में होने वाले **मतुप्, इनि, ठन्, विनि** आदि प्रत्ययों का प्रकरण है। **वह इसके पास है** या **वह इसमें है** इस अर्थ में प्रत्ययों का विधान किया गया है। जैसे

जिसके पास धन है उसे **धनी**, जिसके पास ज्ञान है उसे **ज्ञानी**, जो पुत्र वाला है, उसे **पुत्रवान्** और जिसके पास बुद्धि है उसे **बुद्धिमान्** आदि शब्दों का व्यवहार होता है। उसी प्रकार संस्कृत में इन अर्थों को प्रकट करने के लिए मतुबादि प्रत्यय किये जाते हैं।

१८९४. तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् ५।२।९४॥

गावोऽस्यास्मिन्वा सन्ति गोमान्।

'भूमनिन्दाप्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने।
संसर्गेऽस्तिविवक्षायां भवन्ति मतुबादयः॥' (वा.३१८३)।

तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्। तद् प्रथमान्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकम्, अस्य षष्ठ्यन्तं, अस्ति क्रियापदं, अस्मिन् सप्तम्यन्तं, इत्यव्ययपदं, मतुप् प्रथमान्तम् अनेकपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** इन सबका पहले की तरह अधिकार आ ही रहा है।

'वह इसका है और वह इसमें है' इन दो अर्थों में प्रथमान्त प्रातिपदिक से मतुप् प्रत्यय होता है।

पकार **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञक है और उकार **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से इत्संज्ञक है। **मत्** बचता है।

गोमान्। जिसके पास गौएँ हों वह गोपाल या जिसमें गौएँ रहती हैं ऐसा भवन आदि। **गावः अस्य सन्ति** अथवा **गावः अस्मिन् सन्ति** लौकिक विग्रह और **गो+जस्** अलौकिक विग्रह है। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से मतुप् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **गोमत्** बना। सु विभक्ति आई, **गोमत्+स्** में **उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः** से नुमागम और **अत्वसन्तस्य चाधातोः** से उपधादीर्घ करने पर **गोमान्त्+स्** बना। सकार का **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप हुआ और तकार का **संयोगान्तस्य लोपः** से लोप हुआ तो **धीमान्** की तरह **गोमान्** सिद्ध हुआ। इसके रूप **धीमत्** शब्द की तरह **गोमान्, गोमन्तौ, गोमन्तः** आदि बनते हैं।

भाष्यकार ने मतुप् प्रत्यय के लिए एक श्लोक वार्तिक उद्धृत किया है-

भूम-निन्दा-प्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने।
सम्बन्धेऽस्तिविवक्षायां भवन्ति मतुबादयः॥ अर्थात् **अस्तिविवक्षाया** (विद्यमानता की विवक्षा में) **भूमन्** (बहुत्व), **निन्दा** (बुराई), **प्रशंसा** (प्रशंसा), **नित्ययोगे**(नित्य संयोग), **अतिशायन**(अतिशयता, आधिक्य) और **सम्बन्ध**(संयोग) इन छह अर्थों में **मतुप्** प्रत्यय एवं उसके अर्थ में होने वाले प्रत्ययों का विषय प्रतिपादित किया है। इनके उदाहरण-

भूमा- बहुत्व, अधिकता अर्थ में, जैसे- **गोमान्**(बहुत गायों वाला)
निन्दा- अर्थ में, जैसे- **ककुदावर्तिनी**(ककुदावर्तों वाली) लड़की

प्रशंसा- अर्थ में, जैसे- **रूपवान्**(सुन्दर रूप वाला)

नित्ययोग- नित्यसम्बन्ध अर्थ में, जैसे- **क्षीरिणो वृक्षाः**(सदा दूध वाले वृक्ष)

अतिशायन- अतिशयता अर्थ में, जैसे- **उदरिणी कन्या**(अतिशय अर्थात् बड़े पेट वाली कन्या) और-

संसर्ग- सम्बन्ध अर्थ में, जैसे- **दण्डी**(दण्ड वाला)।

अस्तिविवक्षा- सत्तामात्र की विवक्षा में, जैसे- **अस्तिमान्** (सत्ता वाला)। यहाँ पर **अस्ति** यह विभक्ति-प्रतिरूपक अव्यय है। अतः सत्ता अर्थ में मतुप्-प्रत्यय हुआ है।

मतुप् प्रत्यय के लिए एक बात और ध्यान में रखने योग्य है कि समानरूप मतुप् प्रत्ययान्त शब्द से पुनः उसी प्रकार समान रूप वाला मतुप् प्रत्यय नहीं होगा, जैसा कि समान शैषिक प्रत्यय से पुनः वैसा ही शैषिक प्रत्यय नहीं होता, सन्नन्त से पुनः सन् प्रत्यय नहीं होता। यथा-

शैषिकान्मतुबर्थीयाच्छैषिको मतुबर्थकः।
सरूपः प्रत्ययो नेष्टः सन्नन्तान्न सनिष्यते॥

१८९५. रसादिभ्यश्च ५।२।९५॥

मतुप्। रसवान्। रूपवान्। अन्यमत्वर्थीयनिवृत्त्यर्थं वचनम्।
रस, रूप, वर्ण, गन्ध, स्पर्श, शब्द, स्नेह, भाव।
'गुणात्' (ग.सू.११२)।
'एकाचः' (ग.सू.११३)। स्ववान्। गुणग्रहणं रसादीनां विशेषणम्।

रसादिभ्यश्च। रस आदिर्येषां ते रसादयस्तेभ्यो रसादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् के सभी पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** इन सबका पहले की तरह अधिकार है।

तदस्यास्ति, तदस्मिन् अस्ति अर्थ में रसादि-गणपठित प्रातिपदिकों से भी मतुप् प्रत्यय होता है।

रसवान्। जिसमें रस हो, रस वाला। **रसः अस्मिन् अस्ति** विग्रह करके **रस+सु** इस स्थिति में **अत इनिठनौ** से प्राप्त इनि और ठन् प्रत्ययों को बाधकर **रसादिभ्यश्च** सूत्र के द्वारा मतुप् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **रसमत्** बना है। वक्ष्यमाण **मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः** सूत्र से मकार को वकार होकर **रसवत्** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य, नुमागम दीर्घादि होकर **रसवान्** सिद्ध हो जाता है।

रूपवान्। जिसमें रूप हो, रूप वाला। सामान्यतः रूपवान् तो प्रायः सभी होते ही हैं। अतः सुन्दर रूप वाले को **रूपवान्** कहा जाता है। **रूपम् अस्मिन् अस्ति** विग्रह

करके **रूप+सु** इस स्थिति में **अत इनिठनौ** से प्राप्त इनि और ठन् प्रत्ययों को बाधकर **रसादिभ्यश्च** सूत्र के द्वारा **मतुप्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **रूपमत्** और वक्ष्यमाण सूत्र से मकार को वकार होकर **रूपवत्** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य, नुमागम, दीर्घादि होकर **रूपवान्** सिद्ध हो जाता है।

अन्यमत्वर्थीयनिवृत्त्यर्थं वचनम्। यद्यपि पूर्वसूत्र **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से ही उक्त उदाहरणों में मतुप्-प्रत्यय सिद्ध रहा तथापि उसके अपवाद **अत इनिठनौ** आदि की निवृत्ति हेतु रसादिगणपठित शब्दों के लिये पृथक् सूत्रकरण की सार्थकता है।

रसादिगणः- रस, रूप, वर्ण, गन्ध, स्पर्श, शब्द, स्नेह, भाव।

गुणात्। यह रसादिगण में पठित गणसूत्र है। सूत्रार्थः- गुणवाचक रसादि-शब्दों से ही मतुप् हो, अन्य शब्दों से न हो। तात्पर्य यह है कि रसादि-वाच्य अर्थ में गुणरूप अर्थ विशेषण होकर जहाँ रहता है, वहीं मतुप् होगा, अन्यत्र नहीं होगा। इस तरह रसादि-शब्दों के सम्बन्ध में यह नियमन किया गया है।

गुणग्रहणं रसादीनां विशेषणम्। प्रकृत गणसूत्र का गुण-शब्द रसादि का ही विशेषण है।

एकाचः। यह भी रसादिगण में पठित गणसूत्र है। सूत्रार्थः- एक अच् वाले शब्दों से भी पूर्व-निर्दिष्ट अर्थों में मतुप् प्रत्यय होता है। यहाँ पर अन्य मतुबर्थ प्रत्ययों की निवृत्ति के लिये प्रकृत गणसूत्र की सार्थकता होती है।

स्ववान्। धनी। **स्वम् अस्य अस्ति** विग्रह करके **स्व+सु** इस स्थिति में **एकाचः** वार्तिक के द्वारा **मतुप्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **स्वमत्** और वक्ष्यमाण **मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः** सूत्र से मकार को वकार होकर **स्ववत्** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **स्ववान्** सिद्ध हो जाता है।

१८९६. तसौ मत्वर्थे १।४।१९॥

तान्तसान्तौ भसञ्ज्ञौ स्तो मत्वर्थे प्रत्यये परे।
'वसोः सम्प्रसारणम्' (सू.४३५)। विदुष्मान्।
'गुणवचनेभ्यो मतुपो लुगिष्टः' (वा.३१८५)।
शुक्लो गुणोऽस्यास्तीति शुक्लः पटः। कृष्णः।

तसौ मत्वर्थे। मतोरर्थो मत्वर्थस्तस्मिन्। तश्च स् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वस्तसौ। तसौ प्रथमान्तं, मत्वर्थे सप्तम्यन्तम्। **यचि भम्** से **भम्** की अनुवृत्ति आती है।

मतुप् के अर्थ वाला कोई भी प्रत्यय परे हो तो तकारान्त और सकारान्त प्रातिपदिक की भसंज्ञा होती है।

भसंज्ञाप्रकरण का यह सूत्र है। जैसे कप्प्रत्ययावधिक असर्वनामस्थान यकारादि और अजादि स्वादि प्रत्ययों के परे रहते पूर्व की **यचि भम्** से भसंज्ञा होती है उसी तरह **मतुप्** प्रत्यय के अर्थ में होने वाले सभी प्रत्ययों के परे होने पर **तकारान्त** और **सकारान्त** की भी इससे **भसंज्ञा** की जाती है। **आ कडारादेका संज्ञा** से एकसंज्ञाधिकार होने के कारण भसंज्ञा से पदसंज्ञा का बाध होता है, जिससे पद को मानकर के होने वाले कार्य रूक जाते हैं।

वसोः सम्प्रसारणम्। सम्प्रसारण-विधायक सूत्र का स्मरण कराया गया है।

विदुष्मान्। विद्वान् हैं जिसमें ऐसा वंश। **विद्वांसोऽस्य सन्ति** लौकिक विग्रह और **विद्वस् जस्** इस अलौकिक विग्रह में **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **मतुप्** प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **विद्वस्+मत्** बना है। लुप्तविभक्ति को मानकर के **विद्वस्** में पदसंज्ञा की प्राप्ति थी और **तसौ मत्वर्थे** से **भसंज्ञा** की भी प्राप्ति हो रही थी। **एकसंज्ञाधिकार** होने और अनवकाश संज्ञा होने से **पदसंज्ञा** का बाध होकर **भसंज्ञा** हो गई। अब पदत्व के अभाव के कारण पदान्त को मान कर के होने वाला **वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः** से दत्व रूक गया। तदनन्तर **विद्वस्+मत्** में **वसोः सम्प्रसारणम्** से वकार को सम्प्रसारण और **सम्प्रसारणाच्च** से पूर्वरूप होकर **विदुस्+मत्** बना। **आदेशप्रत्यययोः** से **सकार** को **षकार** आदेश होकर **विदुष्मत्** यह प्रातिपदिक बना। सु, नुम्, नान्तोपधादीर्घ सुलोप, संयोगान्तलोप करके **विदुष्मान्** सिद्ध हुआ। आगे **विदुष्मन्तौ, विदुष्मन्तः** आदि इसके रूप बनते हैं।

गरुत्मान्। दो पंख हैं इसके अर्थात् पक्षी गरुड़। **गरुतौ अस्य स्तः। गरुत् औ** में **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **मतुप्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **गरुत्+मत्** बना है। लुप्तविभक्ति को मानकर के **गरुत्** में पदसंज्ञा की प्राप्ति थी और **तसौ मत्वर्थे** से **भसंज्ञा** की भी प्राप्ति हो रही थी। **एकसंज्ञाधिकार** होने और अनवकाश संज्ञा होने से **पदसंज्ञा** का बाध होकर **भसंज्ञा** हो गई। अब पदत्व के अभाव के कारण पदान्त को मानकर होने वाला **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व रूक गया साथ ही पदत्वाभाव के कारण ही **प्रत्यये भाषायां नित्यम्** से अनुनासिक आदेश भी नहीं हुआ। **गरुत्मत्** यह प्रातिपदिक है। सु, नुम्, उपधा को दीर्घ, सुलोप, संयोगान्तलोप करके **गरुत्मान्** सिद्ध हुआ। **गरुत्मन्तौ, गरुत्मन्तः** आदि इसके रूप बनते हैं।

गुणवचनेभ्यो मतुपो लुगिष्टः। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- गुण के वाचक शब्दों से परे मतुप् प्रत्यय का लुक् होना अभीष्ट है। तात्पर्य यह है कि सफेद, काला आदि गुण को बताने वाले शब्दों से मतुप् करने के बाद भी सफेद वाला, काला वाला आदि ही अर्थ बता रहे हों तो मतुप् प्रत्यय का लुक् हो जाना चाहिए।

शुक्लो गुणोऽस्यास्तीति शुक्लः पटः। सफेद गुण है जिसका ऐसा वस्त्र। यहाँ **शुक्ल सु** में **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **मतुप्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा

होने के बाद सुप् का लुक् करके शुक्ल+मत् बना। **गुणवचनेभ्यो मतुपो लुगिष्टः** इस वार्तिक से **मत्** का लुक् हुआ तो **शुक्ल** ही बचा। इससे स्वादिकार्य करने पर **शुक्लः, शुक्लौ, शुक्लाः** आदि रूप बनते हैं। मतुप् होने के पक्ष में और न होने के पक्ष में समान ही रूप बनते हैं, प्रसंग के अनुसार यहाँ पर अर्थबोध होता है। इसी तरह **कृष्णो गुणोऽस्यास्तीति कृष्णः** आदि भी जानना चाहिए।

शुक्लः में गुणबोधक शुक्ल-शब्द से मतुप्-प्रत्यय होकर उसके लुक् होने पर भी **यः शिष्यते स लुप्यमानार्थाभिधायी** (जो शेष रहता है, वह लुप्त का बोधक होता है) इस न्याय के अनुसार शुक्लगुणाश्रयरूप अर्थ का बोध होता ही है। अतः इस प्रकार के प्रयोगों में वैयाकरण सिद्धान्त के अनुसार लक्षणा मानने की कोई आवश्यकता नहीं होती। इस तरह यहाँ **शुक्लः** पद शुक्ल-गुण से युक्त पट आदि का बोध कराता है, क्योंकि मतुप्-प्रत्यय के बाद उसका लुक् हुआ है किन्तु प्रत्ययार्थ की विद्यमानता है। यहाँ पर नैयायिक गुणवाचक शुक्लादि शब्दों की गुणी अर्थात् द्रव्य में लक्षणा मानते हैं।

गुणवान्। जिसके पास गुण हो। **गुणाः अस्य सन्ति** अथवा **गुणाः अस्मिन् सन्ति** लौकिक विग्रह और **गुण+जस्** अलौकिक विग्रह है। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से मतुप् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **गुण+मत्** बना। अकार से परे मतुप् के मकार के स्थान पर **मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः** से वकार आदेश हुआ, **गुणवत्** बना। सु विभक्ति आई, **गुणवत्+स्** में **उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः** से नुम् करके **अत्वसन्तस्य चाधातोः** से उपधादीर्घ करने पर **गुणवान्त्+स्** बना। सकार का **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप हुआ और तकार का **संयोगान्तस्य लोपः** से लोप हुआ **गुणवान्** सिद्ध हुआ। **गुणवान्, गुणवन्तौ, गुणवन्तः।**

१८९७. मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः ८।२।९॥

मवर्णावर्णान्तान्मवर्णावर्णोपधाच्च यवादिवर्जितात्परस्य मतोर्मस्य वः स्यात्। किंवान्। ज्ञानवान्। विद्यावान्। लक्ष्मीवान्। यशस्वान्। भास्वान्। यवादेस्तु यवमान्। भूमिमान्।

मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः। म् च अश्च अनयोः समाहारः-मम्, तस्मात् मात्। यवः आदिर्येषां ते यवादयः। न यवादयोऽयवादयस्तेभ्यः। मात् पञ्चम्यन्तम्, उपधायाः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययं, मतोः षष्ठ्यन्तम्, अयवादिभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। **पदस्य** का अधिकार है।

मकारान्त, अकारान्त, मकारोपध, अकारोपध इन चार प्रकार के प्रातिपदिकों से परे मतु के मकार के स्थान पर वकार आदेश होता है किन्तु यवादिगणपठित शब्दों में यह नहीं होता।

सूत्रस्थ **मात्** पद को सामर्थ्यवश **उपधायाः** का विशेषण भी माना गया है तथा वह तदन्तविधि द्वारा मकारान्त एवं अवर्णान्त का भी बोधक है। **तस्मादित्युत्तरस्य** तथा **आदेः परस्य** इन दो परिभाषाओं के नियमानुसार **मतुप्** के मकार के स्थान पर वकार आदेश हो जाता है।

किंवान्। कुछ रखने वाला। **किमपि अस्य अस्ति** विग्रह करके **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** सूत्र से मतुप् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **किम्+मत्** बना है। **मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः** के द्वारा मकार से परे **मत्** के मकार के स्थान पर **वकार** आदेश और प्रकृतिस्थ मकार को **मोऽनुस्वारः** से अनुस्वार होकर **किंवत्** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **किंवान्** सिद्ध हो जाता है। यह मकारान्त का उदाहरण है।

वेतस्वान्। वेंत वाला देश। **वेतसाः सन्ति अस्मिन् देशे। वेतस जस्** में **कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप्** से **ड्मतुप्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **वेतस+मत्** बना। डित्त्वसामर्थ्यात् भसंज्ञा न होने पर भी **टेः** से टिसंज्ञक सकारोत्तरवर्ती अकार का लोप हुआ, **वेतस्+मत्** बना। अब **मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः** के द्वारा सकार से परे **मत्** के मकार के स्थान पर **वकार** आदेश होकर **वेतस्+वत्=वेतस्वत्** बना। सु, नुम्, उपधा को दीर्घ, हङ्यादिलोप, तकार का संयोगान्तलोप करके **वेतस्वान्** सिद्ध हुआ। यह अदुपध का उदाहरण है।

ज्ञानवान्। जिसके पास ज्ञान हो, ज्ञानी। **ज्ञानमस्य अस्ति** विग्रह करके **ज्ञान+सु** इस स्थिति में **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से मतुप् होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **ज्ञाना+मत्** बना। अकार से परे मतुप् के मकार के स्थान पर **मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः** से वकार आदेश होकर **ज्ञानवत्** बना है। स्वादिकार्य से **ज्ञानवान्** सिद्ध हो जाता है। यह अकारान्त का उदाहरण है।

विद्यावान्। जिसके पास विद्या हो। **विद्याः अस्य सन्ति** अथवा **विद्याः अस्मिन् सन्ति** लौकिक विग्रह और **विद्या+जस्** अलौकिक विग्रह है। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से मतुप् हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **विद्या+मत्** बना। अवर्ण से परे मतुप् के मकार के स्थान पर **मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः** से वकार आदेश हुआ, **विद्यावत्** बना। सु विभक्ति आई, **विद्यावत्+स्** में नुम्, उपधादीर्घ करने पर **विद्यावान्त्+स्** बना। सकार का **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से लोप हुआ और तकार का **संयोगान्तस्य लोपः** से लोप होकर **विद्यावान्** सिद्ध हुआ। **विद्यावान्, विद्यावन्तौ, विद्यावन्तः।** यह भी अकारान्त (आकारान्त) का उदाहरण है।

लक्ष्मीवान्। जिसके पास लक्ष्मी हो, धनी, ज्ञानी। **लक्ष्मीः अस्य अस्ति** विग्रह करके **लक्ष्मी+सु** इस स्थिति में **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से मतुप् होने पर अनुबन्ध लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **लक्ष्मी+मत्** बना। इकार से परे मतुप् के मकार

के स्थान पर **मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः** से वकार आदेश होकर **लक्ष्मीवत्** बना है। स्वादिकार्य से **लक्ष्मीवान्** सिद्ध हो जाता है। यह मकारोपध का उदाहरण है।

यशस्वान्। यश वाला, यशस्वी। **यशः अस्य अस्ति** विग्रह करके **यशस्+सु** इस स्थिति में **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से मतुप् होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **यशस्+मत्** बना। अदुपध से परे मतुप् के मकार के स्थान पर **मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः** से वकार आदेश होकर **यशस्वत्** बना है। स्वादिकार्य से **यशस्वान्** सिद्ध हो जाता है। यह भी अदुपध का उदाहरण है। यहाँ **तसौ मत्वर्थे** सूत्र के द्वारा भसंज्ञा होने के कारण पदत्वाभाव में सकार को रुत्व नहीं हुआ।

भास्वान्। कान्ति वाला। **भाः अस्य अस्ति** विग्रह करके **भास्+सु** इस स्थिति में **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से मतुप् होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **भास्+मत्** बना। अवर्णोपध से परे मतुप् के मकार के स्थान पर **मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः** से वकार आदेश होकर **भास्वत्** बना है। स्वादिकार्य से **भास्वान्** सिद्ध हो जाता है। यहाँ सकारान्त होने के कारण **तसौ मत्वर्थे** सूत्र के द्वारा भसंज्ञा होने से पदत्वाभाव में सकार को रुत्व नहीं हुआ।

यवादेस्तु यवमान्। भूमिमान्। प्रकृतसूत्र में **अयवादिभ्यः** पद के द्वारा यवादिगणपठित शब्दों में मतुप् के मकार को वत्व-निषेध किया गया है। अतः **यवमान्, भूमिमान्** ही रूप बनते हैं, क्योंकि ये यवादिगणपठित शब्द हैं।

यवादिगणः- यव, दल्मि, ऊर्मि, (उर्मि), भूमि, कृमि, क्रुञ्चा, वशा, द्राक्षा, ध्राक्षा, ध्रजि, व्रजि, ध्वजि, निजि, सिजि, सञ्जि, हरित्, ककुत्, मरुत्, गरुत्, इक्षु, द्रु, मधु। **यवादिराकृतिगणः।**

१८९८. झयः ८।२।१०॥

झयन्तान्मतोर्मस्य वः स्यात्। अपदान्तत्वान्न जश्त्वम्। विद्युत्वान्।

झयः। पञ्चम्यन्तमेकपदमिदं सूत्रम्। **मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः** से **मतोः, वः** की अनुवृत्ति आती है और **पदस्य** का अधिकार है।

झय्-प्रत्याहारान्त से परे मतुप् के मकार के स्थान पर वकार आदेश होता है।

अपदान्तत्वान्न जश्त्वम्। अर्थात् **विद्युत्**-शब्द के तकारान्त होने के कारण **तसौ मत्वर्थे** सूत्र से भसंज्ञा हो जाती है, फलतः पदसंज्ञा का बाध हो जाता है। अतः पदत्वाभावात् **झलां जशोऽन्ते** सूत्र से तकार को जश्त्व नहीं होता।

विद्युत्वान्। बिजली वाला। **विद्युत् अस्य अस्ति** विग्रह करके **विद्युत्+सु** इस स्थिति में **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से मतुप् होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **विद्युत्+मत्** बना। यहाँ पर झय् है तकार। अतः **झयः** सूत्र से मतुप् के

मकार को वकार आदेश होकर **विद्युत्वत्** शब्द बना है। स्वादिकार्य से **विद्युत्वान्** सिद्ध हो जाता है।

१८९९. सञ्ज्ञायाम् ८।२।११॥

मतोर्मस्य वः स्यात्। अहीवती। मुनीवती। शरादित्वाद् दीर्घः।

सञ्ज्ञायाम्। सप्तम्यन्तमेकपदमिदं सूत्रम्। **मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः** से **मतोः, वः** की अनुवृत्ति आती है और **पदस्य** का अधिकार है।

संज्ञा के विषय में मतुप् के मकार के स्थान पर वकार आदेश होता है।

शरादित्वाद् दीर्घः। अर्थात् **अहि, मुनि** आदि शब्द शरादिगण में पढ़े गये हैं। अतः **शरादीनां च** (६.३.११८) सूत्र से इकार को दीर्घ हो जाता है।

अहीवती। सापों वाली नगरी या नदी-विशेष (संज्ञा)। **अहयोऽस्यां सन्ति** विग्रह करके **अहि+जस्** इस स्थिति में **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से मतुप् होने पर अनुबन्ध लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अहि+मत्** बना। **संज्ञायाम्** सूत्र से मतुप् के मकार को वकार आदेश और **शरादीनां च** सूत्र से इकार को दीर्घ होकर **अहीवत्** शब्द बना है। उगित् होने के कारण स्त्रीत्वविवक्षा में **उगितश्च** सूत्र से ङीप् होकर **अहीवती** और स्वादिकार्य से **अहीवती** सिद्ध हो जाता है।

मुनीवती। मुनियों वाली नगरी। **मुनयोऽस्यां सन्ति** विग्रह करके **मुनि+जस्** इस स्थिति में तदस्यास्त्यस्मिन्निति **मतुप्** से मतुप् होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **मुनि+मत्** बना। **संज्ञायाम्** सूत्र से मतुप् के मकार को वकार आदेश और शरादीनां च सूत्र से इकार को दीर्घ होकर **मुनीवत्** शब्द बना है। स्त्रीत्वविवक्षा में उगित् होने के कारण **उगितश्च** सूत्र से ङीप् होकर **मुनीवती** और स्वादिकार्य से **मुनीवती** सिद्ध हो जाता है।

१९००. आसन्दीवदष्ठीवच्चक्रीवत्कक्षीवद्द्रुमण्वच्चर्मण्वती ८।२।१२॥

एते षट् सञ्ज्ञायां निपात्यन्ते। आसनशब्दस्यासन्दीभावः। आसन्दीवान्ग्रामः। अन्यत्रासनवान्। अस्थिशब्दस्याष्ठीभावः। अष्ठीवान्। अस्थिमानन्यत्र। चक्रशब्दस्य चक्रीभावः। चक्रीवान्नाम राजा। चक्रवानन्यत्र। कक्ष्यायाः सम्प्रसारणम्। कक्षीवान्नामर्षिः। कक्ष्यावानन्यत्र। लवणशब्दस्य रुमण्भावः। रुमण्वान्नाम पर्वतः। लवणवानन्यत्र। चर्मणो नलोपाभावो णत्वं च। चर्मण्वती नाम नदी। चर्मवत्यन्यत्र।

आसन्दीवदष्ठीवच्चक्रीवत्०। आसन्दीवत्, अष्ठीवत्, चक्रीवत्, कक्षीवत्, द्रुमण्वत्, चर्मण्वती इति प्रथमान्तानि पृथक्-पृथक् पदानि। पूर्वसूत्र **सञ्ज्ञायाम्** की अनुवृत्ति आती है और **पदस्य** का अधिकार है।

संज्ञा के विषय में आसन्दीवत्, अष्ठीवत्, चक्रीवत्, कक्षीवत्, द्रुमण्वत्, चर्मण्वती इन छह शब्दों का निपातन किया जाता है।

यहाँ पर भी **मतुप्** में मकार के स्थान पर वकारादेश निपातन के साथ अन्य कार्यों का भी निपातन किया गया है, जो तत्तत् स्थानों पर स्पष्ट हो जायेगा। केवल वकारादेश मात्र करना होता तो पूर्वसूत्रों से ही सिद्ध रहा। अतः आदेशादि विशेष-विधि भी की जायेगी। संज्ञा में ही उक्त निपातन है, असंज्ञा में भिन्न रूप बनते हैं। आगे उदाहरणों के साथ प्रत्युदाहरण भी साथ-साथ दिये जा रहे हैं-

आसनशब्दस्यासन्दीभावः। प्रथम प्रयोग में **आसन**-शब्द के स्थान पर **आसन्दी** आदेश का निपातन होता है।

आसन्दीवान् ग्रामः। अन्यत्रासनवान्। आसन वाला गाँव। **आसनमस्यास्ति** विग्रह करके **आसन+सु** इस स्थिति में **तदस्यास्त्यस्मिन्निति** मतुप् सूत्र से मतुप् प्रत्यय होने के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **आसन+मत्** बना हुआ है। **आसन्दीवदष्ठीवच्चक्रीवत्०** सूत्र से मतुप् के मकार को वकार और **आसन** शब्द के स्थान पर **आसन्दी** आदेश होने पर **आसन्दीवत्** शब्द बन जाता है। स्वादिकार्य से **आसन्दीवान्** सिद्ध हो जाता है। संज्ञा से भिन्न स्थलों पर तो **आसनवान्** ही बनता है।

अस्थिशब्दस्याष्ठीभावः। द्वितीय-प्रयोग में **अस्थि**-शब्द के स्थान पर **अष्ठी** आदेश का निपातन होता है।

अष्ठीवान्। अस्थिमानन्यत्र। हड्डियों वाला। **अस्थीनि अस्य सन्ति** विग्रह करके **अस्थि+जस्** इस स्थिति में **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** सूत्र से मतुप् प्रत्यय होने के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **अस्थि+मत्** बना हुआ है। **आसन्दीवदष्ठीवच्चक्रीवत्०** सूत्र से मतुप् के मकार को वकार और **अस्थि** शब्द के स्थान पर **अष्ठी** आदेश होने पर **अष्ठीवत्** शब्द बन जाता है। स्वादिकार्य से **अष्ठीवान्** सिद्ध हो जाता है। संज्ञा से भिन्न स्थलों पर तो **अस्थिमान्** ही बनता है।

चक्रशब्दस्य चक्रीभावः। तृतीय-प्रयोग में **चक्र**-शब्द के स्थान पर **चक्री** आदेश का निपातन किया जाता है।

चक्रीवान्नाम राजा। चक्रवानन्यत्र। चक्र वाला राजा। **चक्रम् अस्यास्ति** विग्रह करके **चक्र+सु** इस स्थिति में **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** सूत्र से मतुप् प्रत्यय होने के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **चक्र+मत्** बना हुआ है। **आसन्दीवदष्ठीवच्चक्रीवत्०** सूत्र से मतुप् के मकार को वकार और **चक्र** शब्द के स्थान पर **चक्री** आदेश होने पर **चक्रीवत्** शब्द बन जाता है। स्वादिकार्य से **चक्रीवान्** सिद्ध हो जाता है। संज्ञा से भिन्न स्थलों पर तो **चक्रवान्** ही बनता है।

कक्ष्यायाः सम्प्रसारणम्। चतुर्थ-प्रयोग में **कक्ष्या**-शब्द के यकार को सम्प्रसारणादेश निपातन होकर **कक्षी** शब्द बनता है।

कक्षीवान्नामर्षिः। कक्ष्यावानन्यत्र। कक्षीवान् नाकम ऋषि। **कक्ष्या**-शब्द से मतुप् होने के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **कक्ष्या+मत्** बना हुआ है। **आसन्दीवदष्ठीवच्चक्रीवत्०** सूत्र से मतुप् के मकार को वकार और **कक्ष्या** शब्द के यकार को सम्प्रसारण होने पर पूर्वरूप होकर **कक्षीवत्** शब्द बन जाता है। स्वादिकार्य से **कक्षीवान्** सिद्ध हो जाता है। संज्ञा से भिन्न स्थलों पर तो **कक्ष्यावान्** ही बनता है।

लवणशब्दस्य रुमण्भावः। पञ्चम प्रयोग में **लवण**-शब्द के स्थान पर **रुमण्** आदेश का निपातन होता है।

रुमण्वान्नाम पर्वतः। लवणवानन्यत्र। नमक वाला पर्वत। **लवणः अस्मिन् अस्ति** विग्रह करके **लवण+सु** इस स्थिति में **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** सूत्र से मतुप् प्रत्यय होने के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **लवण+मत्** बना हुआ है। **आसन्दीवदष्ठीवच्चक्रीवत्०** सूत्र से मतुप् के मकार को वकार और **लवण** शब्द के स्थान पर **रुमण्** आदेश होने पर **रुमण्वत्** शब्द बन जाता है। स्वादिकार्य से **रुमण्वान्** सिद्ध हो जाता है। संज्ञा से भिन्न स्थलों पर तो **लवणवान्** ही बनता है।

चर्मणो नलोपाभावो णत्वं च। चर्मन्-शब्द में नकार-लोप का अभाव और नकार का णत्व निपातन किया जाता है।

चर्मण्वती नाम नदी। चर्मवत्यन्यत्र। चर्मण्वती नाम वाली नदी। **चर्मन्**-शब्द से मतुप् प्रत्यय होने के बाद **आसन्दीवदष्ठीवच्चक्रीवत्०** सूत्र से मतुप् के मकार को वकार और प्राप्त नकारलोप का अभाव तथा उसको णत्व निपातन होकर **चर्मण्वत्** शब्द बन जाता है। स्त्रीत्वविवक्षा होने के कारण **उगितश्च** से ङीप् होकर **चर्मण्वती** और स्वादिकार्य से **चर्मण्वती** सिद्ध हो जाता है। संज्ञा से भिन्न स्थलों पर तो नकारलोप होकर **चर्मवती** ही बनता है।

१९०१. उदन्वानुदधौ च ८।२।१३॥

उदकस्योदन्भावो मतावुदधौ सञ्ज्ञायां च।
उदन्वान् समुद्र ऋषिश्च।

उदन्वानुदधौ च। उदन्वान् प्रथमान्तम्, उदधौ सप्तम्यन्तं, चाव्ययम्। **संज्ञायाम्** की अनुवृत्ति आती है।

मतुप्-प्रत्यय के परे रहते उदक-शब्द के स्थान पर उदन् आदेश और मकार को वकार आदेश निपातन होता है, समुद्र और संज्ञा गम्य होने पर।

मतुप्-प्रत्यय होने की स्थिति में उदक-शब्द के स्थान पर उदन्-शब्द का निपातन है, जिससे **उदन्वान्** शब्द को साधु बना लिया जाता है किन्तु संज्ञा गम्य होना चाहिये या समुद्र। प्रायः संज्ञा में व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ कहीं होता है और कहीं नहीं भी होता।

उदन्वान् समुद्र ऋषिश्च। समुद्र। **उदकानि अस्य सन्ति** विग्रह करके **उदक+जस्**

इस स्थिति में **मतुप्** प्रत्यय होने के बाद **उदन्वानुदधौ च** सूत्र से उदन्-आदेश के साथ मकार को वकार होकर **उदन्वत्** शब्द बनता है और स्वादिकार्य से **उदन्वान्** सिद्ध हो जाता है। संज्ञा में इस का अर्थ होगा- **ऋषि**। संज्ञा में व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ नहीं है।

१९०२. राजन्वान् सौराज्ये ८।२।१४॥

राजन्वती भूः। राजवानन्यत्र।

राजन्वान् सौराज्ये। राजन्वान् प्रथमान्तं, सौराज्ये सप्तम्यन्तम्। **संज्ञायाम्** की अनुवृत्ति आती है।

सौराज्य (शोभन राजाओं वाला) अर्थ गम्य होने पर राजन्वान् शब्द का निपातन किया जाता है।

यहाँ मतुप्-प्रत्यय के परे रहते **राजन्**-शब्द के नलोपाभाव का निपातन है। मतुप् के मकार को वकारादेश तो होता ही है। अच्छे राजा का कार्य सौराज्य कहलाता है।

राजन्वती भूः। राजवानन्यत्र। उत्तम राजाओं वाली पृथ्वी। **राजानः सन्ति अस्याम्** विग्रह करके **राजन्+जस्** इस स्थिति में **मतुप्** प्रत्यय होनें के बाद प्राप्त नकारलोप का **राजन्वान् सौराज्ये** सूत्र से अभाव निपातन होने के बाद प्रत्यय के मकार को वकार होकर **राजन्वत्** शब्द बनता है और स्त्रीलिंगविशिष्ट **भूः** का विशेषण होने के कारण प्रकृत शब्द से भी **उगितश्च** सूत्र से ङीप् प्रत्यय होकर **राजन्वती** बन जाता है एवं स्वादिकार्य से **राजन्वती** सिद्ध हो जाता है।

इस तरह कुछ निपातनों का निरूपण करके अब पुनः तद्धितोक्त मतुबर्थक अन्य प्रत्ययों का निरूपण कर रहे हैं-

१९०३. प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम् ५।२।९६॥

चूडालः, चूडावान्।

'प्राणिस्थात्' किम्? शिखावान्दीपः। 'आतः' किम्? हस्तवान्।

प्राण्यङ्गादेव' (वा.३१८९ नेह- मेधावान्।

प्रत्ययस्वरेणैव सिद्धे अन्तोदात्तत्वे चूडालोऽसीत्यादौ 'स्वरितो वानुदात्ते पदादौ' (सू.३६५९) इति स्वरितबाधनार्थश्चकारः।

प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम्। प्राणिषु तिष्ठतीति प्राणिस्थम्, तस्मात्। प्राणिस्थात् पञ्चम्यन्तम्, आतः पञ्चम्यन्तं, लच् प्रथमान्तम्, अन्यतरस्यां सप्तम्यन्तम्, अनेकपदं सूत्रम्। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

प्राणियों के अंगवाचक आकारान्त प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में विकल्प से लच् प्रत्यय होता है।

मतुप् प्रत्यय जिस अर्थ में होता है, उसे **मतुबर्थ** या **मत्वर्थ** कहते हैं। **'वह इसका है या वह इस में है'** इन अर्थों में मतुप् होता है तो ऐसे अर्थ में होने वाले अन्य प्रत्यय भी **मत्वर्थ** कहलाते हैं। **लच्** में चकार इत्संज्ञक है और **ल** मात्र बचता है। **मतुप्** को बाधकर **लच्** होता है, न होने के पक्ष में **मतुप्** ही होगा। सूत्रस्थ **अन्यतरस्याम्** पद समुच्चयार्थक है। अतः उसकी अनुवृत्ति होने वाले सूत्रों से विहित प्रत्यय का विकल्प न होकर **मतुप्** प्रत्यय का समुच्चय मात्र होगा। विकल्प मानने पर तो पक्ष में यथाप्राप्त अन्य प्रत्ययों का समावेश होने लगेगा।

चूडालः, चूडावान्। चोंटी, शिखा है जिसका अर्थात् चोंटी वाला। **चूडा** शब्द प्राणी के शरीर का एक अंग है। **चूडा अस्यास्ति** या **अस्मिन्नस्ति** यह विग्रह है। **चूडा सु** में **प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम्** से **लच्** प्रत्यय हुआ, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **चूडाल** बना और स्वादिकार्य करके **चूडालः** सिद्ध हुआ। यह प्रत्यय वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **मतुप्** होकर **चूडा+मत्** बना। **मादुपधायाश्च.मतोर्वोऽयवादिभ्यः** से **मत्** के **मकार** के स्थान पर **वकार** आदेश होकर **चूडावत्** बना और स्वादिकार्य करके **चूडावान्** भी बन जाता है।

प्राणिस्थात् किम्, शिखावान् दीपः। यदि **प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम्** इस सूत्र में **प्राणिस्थात्** नहीं कहते तो **शिखा वाला दीपक** इस अप्राणी में भी लच् होने लगता। ऐसा होना अभीष्ट नहीं है। अतः **प्राणिस्थात्** कहा गया जिससे अप्राणी **दीपस्थ शिखा** से लच् न होकर मतुप् ही हो गया- **शिखावान् दीपः।**

आतः किम्, हस्तवान्। यदि **प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम्** सूत्र में **आतः** (आकारान्त शब्द से) नहीं कहते तो **हस्तौ अस्य स्तः हस्तवान्** (जिसके पास हाथ हो) में भी लच् होने लगता, क्योंकि हाथ वाला प्राणी ही होता है। ऐसा होना अभीष्ट नहीं है। अतः **आतः** कहा गया और **हस्त**-शब्द आकारान्त नहीं है, फलतः लच् न होकर मतुप् ही हो गया- **हस्तवान्।**

प्राण्यङ्गादेव। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- प्रकृतसूत्र से प्राणिस्थ होते हुये प्राणी का अंग होने पर ही लच् हो, अन्यथा न हो। यह नियम किया गया है। तात्पर्य यह है कि केवल **प्राणिस्थ** मात्र होने से काम नहीं चलेगा किन्तु प्राणी के अंग का वाचक होना चाहिए।

नेह- मेधावान्। प्राणिस्थ होते हुये भी प्राण्यंग न होने के कारण **मेधावान्** में आकारान्त **मेधा** शब्द से लच् प्रत्यय नहीं हुआ। **बुद्धि** का वाचक **मेधा** शब्द प्राणी में ही स्थित रहता है किन्तु वह **प्राणी का अंग** नहीं है। जो प्राणियों में मूर्तरूप में विद्यमान हो ऐसे अंग के वाचक शब्द से ही इस प्रत्यय का विधान होना चाहिए। अतः **मेधा अस्यास्तीति** में **मेधावान्** बनेगा, **मेधालः** नहीं।

१९०४. सिध्मादिभ्यश्च ५।२।९७॥

लच्वा स्यात्। सिध्मलः, सिध्मवान्। अन्यतरस्यां ग्रहणं मतुप्समुच्चयार्थं, न तु प्रत्ययविकल्पार्थम्। तेन अकारान्तेभ्य इनिठनौ न। वातदन्तबलललाटगलानामूङ् च' (ग.सू.११५)। वातूलः।

सिध्मादिभ्यश्च। सिध्म आदिर्येषां ते सिध्मादयस्तेभ्यः। सिध्मादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम्** से लच्, अन्यतरस्याम् की और **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति इन पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

मतुबर्थ की विवक्षा में सिध्मादि-गणपठित प्रातिपदिकों से विकल्प से लच् प्रत्यय होता है।

अन्यतरस्याम् पद के समुच्चयार्थक होने के कारण पक्ष में मतुप् प्रत्यय भी होता है।

सिध्मलः, सिध्मवान्। एक प्रकार की खुजली और कुष्ठ-सदृश रोग को **सिध्मन्** कहते हैं। सिध्मन्-रोग वाला। **सिध्म अस्यास्ति** विग्रह करके **सिध्मन्+सु** इस स्थिति में **सिध्मादिभ्यश्च** सूत्र से विकल्प से **लच्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और नकार का **नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप करके **सिध्मल** शब्द बना है। स्वादिकार्य करके **सिध्मलः** सिद्ध हो जाता है। यह प्रत्यय वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **मतुप्** होकर **मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः** से **मत्** के **मकार** के स्थान पर **वकार** आदेश होकर **सिध्मवत्** और स्वादिकार्य करके **सिध्मवान्** भी बन जाता है।

अन्यतरस्यां ग्रहणं मतुप्समुच्चयार्थं न तु प्रत्ययविकल्पार्थम्। तेन अकारान्तेभ्य इनिठनौ न। पूर्वसूत्र से अनुवर्तमान **अन्यतरस्याम्** पद विकल्पार्थक न होकर मतुप्-प्रत्यय के समुच्चय के लिये है। अतः लच्-प्रत्यय न होने के पक्ष में **मतुप्** ही होता है, न कि इनि और ठन्। अकारान्त शब्दों से **अत इनिठनौ (१९२२)** सूत्र के द्वारा इनि और ठन् प्रत्ययों की प्राप्ति होती है किन्तु **अन्यतरस्याम्** पद के मतुप्-समुच्चय के लिये होने के कारण सिध्मादिगणपठित शब्दों से इनि और ठन् प्रत्यय न होकर पक्ष में मतुप्-प्रत्यय ही होता है।

सिध्मादिगणः- सिध्म, गडु, मणि, नाभि, बीज, वीणा, कृष्णा, निष्पाव, पांसु, पार्श्व, पर्शु, हनु, सक्त, मास, (मांस)। **पार्ष्णिधमन्योदीर्घश्च। वातदन्तबलललाटानामूङ् च। जटाघटाकालाः क्षेपे।** पर्ण, उदक, प्रज्ञा, सक्थ, कर्ण, स्नेह, शीत, श्याम, पिङ्ग, पित्त, पुष्क, पृथु, मृदु, मण्ड, पत्र, चटु, कपि, गण्डु, ग्रन्थि, श्री, कुश, धारा, वर्ष्मन्, पक्ष्मन्, श्लेष्मन्, पेश, निष्पाव, कुण्ड। **क्षुद्रजन्तूपतापयोश्च।**

वातदन्तबललललाटानामूङ् च। यह सिध्मादिगण के अन्तर्गत पठित गणसूत्र है। सूत्रार्थः- वात, दन्त, बल और ललाट इन शब्दों से मत्वर्थ में लच् प्रत्यय के साथ प्रकृति को ऊङ् आदेश भी होता है। ऊङ् में ङकार इत्संज्ञक है और **ङिच्च** सूत्र की प्रवृत्ति से प्रकृति के अन्त्य वर्ण के स्थान पर यह आदेश हो जाता है।

वातूलः। वात रोग वाला। **वातम् अस्यास्ति** विग्रह करके **वात+सु** इस स्थिति में **वातदन्तबलललाटालानामूङ् च** गणसूत्र से **लच्** प्रत्यय के साथ प्रकृति के अन्त्य वर्ण अकार को **ऊङ्** आदेश होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **वातूल** शब्द बना है। स्वादिकार्य करके **वातूलः** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **दन्ताः अस्य सन्ति दन्तूलः, बलमस्यास्तीति बलूलः, ललाटूलः** आदि प्रयोग बनाये जा सकते हैं।

१९०५. वत्सांसाभ्यां कामबले ५।२।९८॥

आभ्यां लच् स्याद्यथासङ्ख्यं कामवति बलवति चार्थे।

वत्सलः। अंसलः।

वत्सांसाभ्यां कामबले। वत्सश्च अंसश्च तयोरितेतरयोगद्वन्द्वो वत्सांसौ, ताभ्यां वत्सांसाभ्याम्। कामश्च बलं च तयोः समाहारद्वन्द्वः कामबलं, तस्मिन् कामबले। वत्सांसाभ्यां पञ्चम्यन्तं, कामबले सप्तम्यन्तम्। **प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम्** से **लच्** की और **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है। उद्देश्य **वत्स** और **अंस** तथा निमित्तार्थ **काम** और **बल** दो-दो हैं, अतः समानसंख्या के कारण **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** की उपस्थिति होती है।

मतुबर्थ में **वत्स** और **अंस** इन प्रातिपदिकों से **यथासंख्य काम और बल अर्थ** गम्य होने पर **लच्** प्रत्यय होता है।

यहाँ पर **काम** और **बल** शब्द **तद्वान्** (उससे युक्त) अर्थ में लाक्षणिक हैं अर्थात् लक्षणावृत्ति से **काम** शब्द का काम=अनुराग वाला और **बल** शब्द का बल वाला अर्थ गृहीत है।

वत्सलः। छोटों पर स्नेह रखने का काम वाला। **वत्से कामोऽस्यास्ति** विग्रह करके **वत्स+सु** इस स्थिति में **वत्सांसाभ्यां कामबले** सूत्र से **लच्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **वत्सल** शब्द बना है। स्वादिकार्य करके **वत्सलः** सिद्ध हो जाता है।

अंसलः। कंधों के बीच उभार वाला, बैल आदि। **अंसः बलम् अस्य अस्ति** विग्रह करके **अंस+औ** इस स्थिति में **वत्सांसाभ्यां कामबले** सूत्र से **लच्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **अंसल** शब्द बना है। स्वादिकार्य करके **अंसलः** सिद्ध हो जाता है। कंधे पर उभार वाला बैल ज्यादा बलशाली होता है।

१९०६. फेनादिलच्च ५।२।९९॥

चाल्लच्। अन्यतरस्यां ग्रहणं मतुप्समुच्चयार्थमनुवर्तते।

फेनिलः, फेनलः, फेनवान्।

फेनादिलच्च। फेनात् पञ्चम्यन्तम्, इलच् प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम्** से **लच्** की और **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

फेन इस प्रातिपदिक से मतुबर्थ में **इलच्** तथा **लच्** प्रत्यय विकल्प से होते हैं।

चाल्लच्। प्रकृत सूत्र के **च**-शब्द से **लच्** की अनुवृत्ति मानी जाती है। अतः **इलच्** के साथ **लच्** प्रत्यय भी होता है।

अन्यतरस्यां ग्रहणं मतुप्समुच्चयार्थमनुवर्तते। मतुप्-प्रत्यय के समुच्चय के लिये **अन्यतरस्याम्** की भी अनुवृत्ति मानी जाती है। अतः तीन रूप बनते हैं।

फेनिलः, फेनलः, फेनवान्। फेन वाला, समुद्र, साबुन, बुलबुले वाला इत्यादि। **फेनः अस्य अस्ति (अस्मिन् अस्ति)** विग्रह करके **फेन+सु** इस स्थिति में **फेनादिलच्च** सूत्र से **इलच्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **फेनिल** शब्द बनता है। **लच्** प्रत्यय होने के पक्ष में **फेनल** शब्द बनता है और **मतुप्** प्रत्यय होने के पक्ष में **फेनवत्** शब्द बनता है। तीनों जगह एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **फेनिलः, फेनलः** और **फेनवान्** ये तीन रूप सिद्ध हो जाते हैं।

१९०७. लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः ५।२।१००॥

लोमादिभ्यः शः- लोमशः, लोमवान्। रोमशः, रोमवान्।

पामादिभ्यो नः- पामनः।

'अङ्गात्कल्याणे' (ग.सू.११८)। अङ्गना।

'लक्ष्म्या अच्च' (ग.सू.१२१) लक्ष्मणः।

विष्वगित्युत्तरपदलोपश्चाकृतसन्धेः' (वा.३१९४) विषुणः।

पिच्छादिभ्य इलच्- पिच्छिलः, पिच्छवान्। उरसिलः, उरस्वान्।

लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः। लोमन् शब्द आदिर्येषां ते लोमादयः। पामन् शब्द आदिर्येषां ते पामादयः। पिच्छशब्द आदिर्येषां ते पिच्छादयः। लोमादयश्च पामादयश्च पिच्छादयश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो लोमादिपामादिपिच्छादयस्तेभ्यः। शश्च नश्च इलच् च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः शनेलचः। लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, शनेलचः

प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की तथा **प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम्** से **अन्यतरस्याम्** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

मत्वर्थ में लोमादिगणपठित शब्दों से श प्रत्यय, पामादिगणपठित शब्दों से न प्रत्यय और पिच्छादिगणपठित शब्दों से इलच् प्रत्यय होते हैं विकल्प से।

श और **न** प्रत्यय में कोई अनुबन्ध नहीं है किन्तु **इलच्** में चकार इत्संज्ञक है। तीन प्रकार के प्रातिपदिकों से तीन प्रकार के प्रत्यय हो रहे हैं। अतः **यथासङ्ख्यनियम** रहेगा। ये सभी प्रत्यय वैकल्पिक हैं। अतः न होने के पक्ष में **मतुप्** ही होगा।

लोमादिभ्यः शः। लोमादि-गणपठित प्रातिपदिकों से **श** हो रहा है-

लोमशः। लोम, रोम हैं जिसके ऐसा व्यक्ति। **लोमानि अस्य सन्ति। लोमन् जस्** में **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **मतुप्** प्राप्त था, उसे बाधकर **लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः** से **श** प्रत्यय हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **लोमन्+श** बना। **स्वादिष्वसर्वनामस्थाने** से पदत्व के कारण पदान्त नकार का **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप हुआ- **लोमश** बना। स्वादिकार्य करके **लोमशः** सिद्ध हुआ। **श** न होने के पक्ष में **मतुप्** होकर **लोमवान्** बन जाता है।

रोमशः। रोम हैं जिसके ऐसा व्यक्ति। **रोमाणि अस्य सन्ति। रोमन् जस्** में **लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः** से **श** प्रत्यय हुआ। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **रोमन्+श** बना। **स्वादिष्वसर्वनामस्थाने** से पदत्व के कारण पदान्त नकार का **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप हुआ- **रोमश** बना। स्वादिकार्य करके **रोमशः** सिद्ध हुआ। **श** न होने के पक्ष में **मतुप्** होकर **रोमवान्** बन जाता है।

लोमादिगणः- लोमन्, रोमन्, बभ्रु, हरि, गिरि, कर्क, कपि, मुनि, तरु।

पामादिभ्यो नः। पामादि-गणपठित प्रातिपदिकों से **न** प्रत्यय हो रहा है।

पामनः। गीली खुजली वाला व्यक्ति। **पाम अस्यास्तीति। पामन् सु** में **लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः** से **पामादि** मानकर **न** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से **नकार** का लोप करके **पामन** बना। स्वादिकार्य से **पामनः** सिद्ध हुआ। **न** होने के पक्ष में **मतुप्** होकर **पामवान्** बन जाता है।

पामादिगणः- पामन्, वामन्, वेमन्, हेमन्, श्लेष्मन्, कद्रु, (कद्रू), वलि, सामन्, ऊष्मन्, कृमि। **अङ्गात्कल्याणे। शाकीपलालीदद्रूणां ह्रस्वत्वं च। विष्वगित्युत्तरपदलोपश्चाकृतसन्धेः॥ लक्ष्म्या अच्च।**

अङ्गात् कल्याणे। यह पामादिगणान्तर्गत गणसूत्र है। सूत्रार्थः- कल्याण अर्थ में ही अङ्ग-शब्द से न-प्रत्यय हो। **अङ्ग**-शब्द **पामादि** के अन्तर्गत आता है। अतः उससे

लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः से **न** प्रत्यय प्राप्त था किन्तु इस गण सूत्र से सीमा बाँधी गई कि सर्वत्र **अङ्ग** शब्द से **न** प्रत्यय नहीं होता अपितु **कल्याण** अर्थ होने पर ही होता है।

अङ्गना। कल्याण या सुन्दर अंगों वाली स्त्री। **कल्याणानि अङ्गानि सन्ति अस्याः। अङ्ग जस्** में **अङ्गात् कल्याणे** के अर्थनिर्देशन में **लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः** से विकल्प से **न** प्रत्यय होकर स्त्रीत्व में **अङ्गना** बन जाता है। **न** प्रत्यय न होने के पक्ष में **मतुप्** होकर **अङ्गवती** बन जायेगा।

लक्ष्म्या अच्च। यह भी गणसूत्र है। सूत्रार्थः- पामादिगणपठित **लक्ष्मी**-शब्द से **न**-प्रत्यय के साथ उसके साहचर्य में ईकार के स्थान पर ह्रस्व अकार आदेश भी होता है।

लक्ष्मणः। सौन्दर्ययुक्त। **लक्ष्मीः अस्य अस्ति** विग्रह करके **लक्ष्मी+सु** इस स्थिति में **लक्ष्म्या अच्च** गणसूत्र से **न** प्रत्यय के साथ लक्ष्मी-शब्द के ईकार के स्थान पर अकार आदेश होकर **लक्ष्मन** बन जाता है। नकार को णत्व और स्वादिकार्य होकर **लक्ष्मणः** सिद्ध हो जाता है।

विष्वगित्युत्तरपदलोपश्चाकृतसन्धेः। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- सन्धिकार्य होने से पूर्व की स्थिति में **विषु+अञ्च्** इस प्रकृति से मत्वर्थ में न-प्रत्यय तथा उत्तरपद अञ्च् का लोप भी होता है।

विषुणः। अनेक प्रकार से चलने वाला या पीछे चलने वाला। **विष्वङ् अस्य अस्ति** विग्रह करके सन्धिकार्य होने से पूर्व की स्थिति **विषु+अञ्च्** में **विष्वगित्युत्तरपदलोपश्चाकृतसन्धेः** वार्तिक के द्वारा **न** प्रत्यय के साथ उत्तरपद **अञ्च्** का लोप होने पर **विषु+न** बना। षकार से परे नकार को णत्व होकर **विषुण** बन जाता है। स्वादिकार्य होकर **विषुणः** सिद्ध हो जाता है। **विषु+अञ्च्** में कृतयण्सन्धि के पश्चात् प्रत्यय करने पर तो उत्तरपद एवं वलोप होकर **विष्णः** ऐसा अनिष्ट बन जाता।

पिच्छादिभ्य इलच्- पिच्छादि-गणपठित प्रातिपदिकों से **इलच्** प्रत्यय हो रहा है।

पिच्छिलः, पिच्छवान्। मयूरपंख है जिसका ऐसा व्यक्ति। **पिच्छमस्य अस्ति। पिच्छ+सु** इस स्थिति में **पिच्छादि** होने के कारण **लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः** से **इलच्** प्रत्यय हुआ। अनुबन्ध का लोप करके प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् करके **पिच्छ+इल** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके **पिच्छिल** बना। स्वादिकार्य करके **पिच्छिलः** सिद्ध हुआ। **इलच्** न होने के पक्ष में **मतुप्** होकर **पिच्छवान्** बन जाता है। इसी तरह **पङ्कोऽस्यास्तीति पङ्किलः, पङ्कवान्** आदि भी बनाइये।

उरसिलः, उरस्वान्। चौड़ी छाती वाला। **उरः अस्य अस्ति** विग्रह करके **उरस्+सु** इस स्थिति में **पिच्छादि** होने के कारण **लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः**

से **इलच्** प्रत्यय हुआ। अनुबन्ध का लोप करके प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **उरसिल** शब्द बना है। स्वादिकार्य करके **उरसिलः** सिद्ध हो जाता है। **इलच्** न होने के पक्ष में तो **मतुप्** होकर **उरस्वान्** बन जाता है।

पिच्छादिगणः- पिच्छा, उरस्, धुवक, ध्रुवक। **जटाघटाकालाः क्षेपे।** वर्ण, उदक, पङ्क, प्रज्ञा।

१९०८. प्रज्ञाश्रद्धार्चाभ्यो णः ५।२।१०१॥

प्राज्ञो व्याकरणम्। प्राज्ञा। श्राद्धः। आर्चः।

'वृत्तेश्च' (वा.३१९५) वार्त्तः।

प्रज्ञाश्रद्धार्चाभ्यो णः। प्रज्ञा च श्रद्धा च अर्चा च तासामितरेतरयोगद्वन्द्वः प्रज्ञाश्रद्धार्चास्ताभ्यः प्रज्ञाश्रद्धार्चाभ्यः पञ्चम्यन्तं, णः प्रथमान्तम्। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की तथा **प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम्** से **अन्यतरस्याम्** की अनुवृत्ति आती है साथ ही **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

प्रज्ञा, श्रद्धा और अर्चा इन प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में विकल्प से ण-प्रत्यय होता है।

प्राज्ञो व्याकरणम्। प्रकृष्ट ज्ञान वाला। **प्रज्ञा अस्मिन् अस्ति** विग्रह करके **प्रज्ञा+सु** इस स्थिति में **प्रज्ञाश्रद्धार्चाभ्यो णः** सूत्र से विकल्प से ण-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और अन्त्य आकार का लोप होकर **प्राज्ञ** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **प्राज्ञः** सिद्ध हो जाता है। यहाँ पर **प्रज्ञा** शब्द प्रज्ञान का बोधक है- **प्रज्ञानं प्रज्ञा।** प्र-पूर्वक ज्ञा-धातु से भावार्थ में **आतश्चोपसर्गे** सूत्र से **अङ्**-प्रत्यय होने पर धातु के आकार का लोप होकर **प्राज्ञ** और टाप् होकर **प्रज्ञा** बना है। उक्त **प्रज्ञा** शब्द से तद्धितीय ण-प्रत्यय होकर **प्राज्ञ** शब्द बन जाता है। समीप में **व्याकरण** शब्द है। उपसर्जनीभूत प्रज्ञान-क्रिया के प्रति **व्याकरण** कर्म होने से वाक्यस्थ व्याकरण-शब्द में द्वितीया-विभक्ति है। तद्धित प्रत्यय के योग में **कर्तृकर्मणोः कृति** सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती, अतः कृद्योगा षष्ठी नहीं हुयी है। **प्राज्ञ**-शब्द से स्त्रीत्वविवक्षा में **टाप्** प्रत्यय होकर **प्राज्ञा** शब्द बनता है। यदि प्र-पूर्वक ज्ञा-धातु से क-प्रत्यय किया जाता तो उससे स्वार्थ में अण्-प्रत्यय करने पर **प्राज्ञः** रूप सिद्ध हो जाता किन्तु उस स्थिति में अणन्त से स्त्रीलिङ्ग में **टिड्ढाणञ्०** सूत्र से ङीप् होकर **प्राज्ञी** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता। मतुप्-प्रत्यय होने के पक्ष में **प्रज्ञावान्, प्रज्ञावती** आदि रूप बनते हैं।

श्राद्धः। श्रद्धा युक्त। **श्रद्धा अस्मिन् अस्ति** विग्रह करके **श्रद्धा+सु** इस स्थिति में **प्रज्ञाश्रद्धार्चाभ्यो णः** सूत्र से विकल्प से ण-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा,

सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और अन्त्य आकार का लोप होकर **श्राद्ध** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **श्राद्धः** सिद्ध हो जाता है। मतुप्-प्रत्यय होने के पक्ष में **श्रद्धावान्** बनता है।

आर्चः। पूजा युक्त। **अर्चा अस्मिन् अस्ति** विग्रह करके **अर्चा+सु** इस स्थिति में **प्रज्ञाश्रद्धार्चाभ्यो णः** सूत्र से विकल्प से ण-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और अन्त्य आकार का लोप होकर **आर्च** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आर्चः** सिद्ध हो जाता है। मतुप्-प्रत्यय होने के पक्ष में **अर्चावान्** रूप बनता है।

वृत्तेश्च। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- वृत्ति-शब्द से भी मत्वर्थ में ण-प्रत्यय होता है।

वार्त्तः। वृत्ति युक्त। **वृत्तिः अस्मिन् अस्ति** विग्रह करके **वृत्ति+सु** इस स्थिति में **वृत्तेश्च** वार्तिक से ण-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, रपर और अन्त्य इकार का लोप होकर **वार्त्त** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वार्त्तः** सिद्ध हो जाता है।

१९०९. तपःसहस्राभ्यां विनीनी ५।२।१०२॥

विनीन्योरिकारो नकारपरित्राणार्थः। तपस्वी। सहस्री। असन्तत्वाददन्तत्वाच्च सिद्धे पुनर्वचनमणा बाधो मा भूदिति। सहस्रात्तु ठनोऽपि बाधनार्थम्।

तपःसहस्राभ्यां विनीनी। तपस् स सहस्रं च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः- तपस्सहस्रे, ताभ्यां तपस्सहस्राभ्याम्। विनिश्च इनिश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो विनीनी। तपस्सहस्राभ्यां पञ्चम्यन्तं, विनीनी प्रथमान्तम्। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है। प्रकृति और प्रत्ययों में समानसंख्या होने के कारण **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** की उपस्थिति होती है।

तपस् और सहस्र इन प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में यथासंख्य से विनि और इनि प्रत्यय होते हैं।

विनीन्योरिकारो नकारपरित्राणार्थः। यद्यपि **विनि** और **इनि** प्रत्ययों के इकार की इत्संज्ञा होती है तथापि इदित् मानकर अन्य कोई कार्य नहीं होता अपितु उनके नकार-लोप का परित्राण हो जाता है। तात्पर्य यह है कि इकार की इत्संज्ञा के बाद उपदेशावस्था में अन्त्य हल् न होने के कारण नकार की इत्संज्ञा नहीं हो पाती, यही इकारोच्चारण का फल है। इत्संज्ञा होने पर तो उसका **तस्य लोपः** से लोप हो जाता।

तपस्वी। तप वाला। **तपः अस्य अस्ति** विग्रह करके **तपस्+सु** इस स्थिति में **तपस्सहस्राभ्यां विनीनी** सूत्र से **विनि** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप्

का लुक् होकर **तपस्विन्** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **तपस्वी, तपस्विनौ, तपस्विनः** इत्यादि रूप बनते हैं।

सहस्री। हजार कार्षापण वाला। **सहस्रम् अस्य अस्ति** विग्रह करके **सहस्र+सु** इस स्थिति में **तपस्सहस्राभ्यां विनीनी** सूत्र से **इनि** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **सहस्रिन्** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सहस्री, सहस्रिणौ** इत्यादि रूप बनते हैं।

असन्तत्वाददन्तत्वाच्च सिद्धे पुनर्वचनमणा बाधो मा भूदिति। सहस्रात्तु ठनोऽपि बाधनार्थम्। यह बता रहे हैं कि **तपस्** शब्द के असन्त होने के कारण **अस्मायामेधास्रजो विनिः** (५.२.१२१) सूत्र से **विनि** प्रत्यय सिद्ध था और **सहस्र** शब्द के अदन्त होने के कारण **अत इनिठनौ** से **इनि** प्रत्यय सिद्ध था, पुनः प्रकृत सूत्र से विधान इस लिये किया गया है कि वक्ष्यमाण **अण् च** सूत्र से विधीयमान अण्-प्रत्यय से **विनि** और **इनि** का बाध न हो जाय। दूसरी बात यह भी है कि **सहस्र** शब्द से **इनि** प्रत्यय के साथ **अत इनिठनौ** से **ठन्** प्रत्यय भी होता, उसके बाधनार्थ भी पृथक्-सूत्र की सार्थकता सिद्ध होती है।

१९१०. अण् च ५।२।१०३॥

योगविभाग उत्तरार्थः। तापसः। साहस्रः।

'ज्योत्स्नादिभ्य उपसंख्यानम्' (वा.३१९७)। ज्यौत्स्नः। तामिस्रः।

अण् च। अण् प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **तपःसहस्राभ्यां विनीनी** से **तपस्सहस्राभ्याम्** की और **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

प्रथमा-समर्थ तपस् और सहस्र इन प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में अण्-प्रत्यय भी होता है।

योगविभाग उत्तरार्थः। केवल **अण्** की अनुवृत्ति आगे के सूत्र में ले जाने के लिये इस सूत्र को पृथक् किया गया है, अन्यथा **तपःसहस्राभ्यां विनीनी अण् च** ऐसा एकयोग ही करते।

तापसः। तप वाला। **तपः अस्य अस्ति** विग्रह करके **तपस्+सु** इस स्थिति में **अण् च** सूत्र से **अण्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और आदिवृद्धि होकर **तापस** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **तापसः** सिद्ध हो जाता है।

साहस्रः। हजार कार्षापण वाला। **सहस्रम् अस्य अस्ति** विग्रह करके **सहस्र+सु** इस स्थिति में **अण् च** सूत्र से **अण्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और आदिवृद्धि तथा भसंज्ञक अकार का लोप होकर **साहस्र** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **साहस्रः** सिद्ध हो जाता है।

ज्योत्स्नादिभ्य उपसंख्यानम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- ज्योत्स्ना आदि गणपठित प्रातिपदिकों से भी मत्वर्थ में अण् प्रत्यय का उपसंख्यान होना चाहिये।

ज्यौत्स्नः। प्रकाश वाला, शुक्लपक्ष। **ज्योत्स्ना अस्मिन् अस्ति** विग्रह करके **ज्योत्स्ना+सु** इस स्थिति में **ज्योत्स्नादिभ्य उपसंख्यानम्** वार्तिक से अण् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और आदिवृद्धि तथा भसंज्ञक आकार का लोप होकर **ज्यौत्स्न** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **ज्यौत्स्नः** सिद्ध हो जाता है।

तामिस्रः। अन्धकार वाला, कृष्णपक्ष। **तमिस्रा अस्मिन् अस्ति** विग्रह करके **तमिस्रा+सु** इस स्थिति में **ज्योत्स्नादिभ्य उपसंख्यानम्** वार्तिक से **अण्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और आदिवृद्धि तथा भसंज्ञक आकार का लोप होकर **तामिस्र** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **तामिस्रः** सिद्ध हो जाता है।

ज्योत्स्नादिगणः- ज्योत्स्ना, तमिस्रा, कुण्डल, कुतप, विसर्प, विपादिका।

१९११. सिकताशर्कराभ्यां च ५।२।१०४॥
सैकतो घटः। शार्करः।

सिकताशर्कराभ्यां च। सिकता च शर्करा च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः सिकताशर्करे, ताभ्यां सिकताशर्कराभ्यां पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **अण् च** से **अण्** की और **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

प्रथमा-समर्थ सिकता और शर्करा इन प्रातिपदिकों से भी मत्वर्थ में अण्-प्रत्यय होता है।

सैकतो घटः। बालू वाला घड़ा। **सिकताः अस्मिन् सन्ति** विग्रह करके **सिकता+जस्** इस स्थिति में **सिकताशर्कराभ्यां च** सूत्र से **अण्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और आदिवृद्धि तथा भसंज्ञक आकार का लोप होकर **सैकत** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सैकतः** सिद्ध हो जाता है।

शार्करः। कंकड़ बालू या चीनी वाला। **शर्कराः अस्मिन् सन्ति** विग्रह करके **शर्करा+जस्** इस स्थिति में **सिकताशर्कराभ्यां च** सूत्र से **अण्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और आदिवृद्धि तथा भसंज्ञक आकार का

लोप होकर **शार्कर** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **शार्करः** सिद्ध हो जाता है।

१९१२. देशे लुबिलचौ च ५।२।१०५॥

चादण्मतुप् च। सिकताः सन्त्यस्मिन्देशे सिकताः, सिकतिलः, सैकतः, सिकतावान्। एवं शर्करेत्यादि।

देशे लुबिलचौ च। लुप् च इलच् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो लुबिलचौ। देशे सप्तम्यन्तं, लुबिलचौ प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **सिकताशर्कराभ्याम्, अन्यतरस्याम्, तदस्यास्त्यस्मिन्निति, तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, समार्थानां प्रथमाद्वा** आदि पदों की अनुवृत्ति और अधिकार है।

चादण्मतुप् च। प्रकृतसूत्र में पठित **च**-शब्द से **अण्** और **मतुप्** प्रत्ययों का भी समुच्चय है।

प्रथमा-समर्थ सिकता और शर्करा इन प्रातिपदिकों से देश अभिधेय होने पर मत्वर्थ में विहित अण् का लुप् और इलच् प्रत्यय होते हैं, च-शब्द के कारण अण् और मतुप् प्रत्यय भी होते हैं।

प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः सूत्र से प्रत्यय के अदर्शन की लुप् संज्ञा की जाती है, अतः लुप्-शब्द से प्रत्यय का अदर्शन (लोप) समझना चाहिये। प्रकृत सूत्र में किसका लोप हो? यह निर्देश नहीं है, तथापि सन्निहित अण्-प्रत्यय का ही लोप समझना चाहिये। इस प्रकार अण् का लुप्, अण्, इलच् और मतुप् इनके कारण चार-चार रूप बनेंगे।

सिकताः सन्त्यस्मिन्देशे सिकताः, सिकतिलः, सैकतः, सिकतावान्। बालू वाला देश। **सिकताः अस्मिन् सन्ति** विग्रह करके **सिकता+जस्** इस स्थिति में **सिकताशर्कराभ्यां च** से अण् तथा **देशे लुबिलचौ च** सूत्र से उस **अण्** प्रत्यय का लुप् होने पर **सिकता** ही बना हुआ है। **इलच्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक आकार का लोप होकर **सिकतिल** शब्द बना हुआ है। अण्-प्रत्यय की विद्यमानता में पूर्वसूत्र में ही **सैकत** बना चुके हैं और मतुप्-प्रत्यय होने के पक्ष में मकार को वकारादेश होकर **सिकतावत्** बन जाता है। चारों जगह एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सिकताः, सिकतिलः, सैकतः** और **सिकतावान्** ये चार रूप सिद्ध हो जाते हैं।

एवं शर्करेत्यादि। इसी तरह से **शर्करा** शब्द के भी **शर्कराः, शर्करिलः, शार्करः** और **शर्करावान्** ये चार ही रूप बनते हैं।

१९१३. दन्त उन्नत उरच् ५।२।१०६॥

उन्नता दन्ताः सन्त्यस्य दन्तुरः।

दन्त उन्नत उरच्। दन्ते सप्तम्यन्तम्, उन्नते सप्तम्यन्तम्, उरच् प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

दाँतों का उन्नत होना अर्थ गम्यमान हो तो प्रथमान्त 'दन्त' शब्द से मत्वर्थ में 'उरच्' प्रत्यय होता है।

चकार इत्संज्ञक है, **उर** बचता है। जहाँ **उन्नत** दाँत वाला अर्थ न होकर केवल सामान्य दाँत वाला अर्थ होगा, वहाँ **उरच्** न होकर **मतुप्** के योग से **दन्तवान्** बनता है।

दन्तुरः। ऊँचे दाँत वाला व्यक्ति। **उन्नता दन्ता सन्त्यस्य।** दन्त जस् से **दन्त उन्नत उरच्** से **उरच्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **दन्त+उर** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **दन्तुर** बना और स्वादिकार्य करके **दन्तुरः** सिद्ध हुआ। सामान्य अर्थ में **मतुप्** होकर **दन्तवान्** बन जाता है।

१९१४. ऊषसुषिमुष्कमधो रः ५।२।१०७॥

ऊषरः। सुषिरः। मुष्कोऽण्डः, मुष्करः। मधु=माधुर्यम्, मधुरः।
'रप्रकरणे खमुखकुञ्जेभ्य उपसंख्यानम्' (वा.३१९८)।
खरः। मुखरः। कुञ्जो हस्तिहनुः, कुञ्जरः।
'नगपांसुपाण्डुभ्यश्च' (वा.३१९९)।
नगरम्। पांसुरः। पाण्डुरः। पाण्डरशब्दस्त्वव्युत्पन्न एव।
'कच्छ्वा ह्रस्वत्वं च' (वा.३२००)। कच्छुरः।

ऊषसुषिमुष्कमधो रः। ऊषश्च सुषिश्च मुष्कश्च मधु च तेषां समाहारद्वन्द्वः- ऊषिसुषिमुष्कमधुः, तस्माद् ऊषसुषिमुष्कमधोः, सौत्रं पुंस्त्वम्। ऊषसुषिमुष्कमधोः पञ्चम्यन्तं, **रः** प्रथमान्तम्। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

प्रथमा-समर्थ ऊष, सुषि, मुष्क और मधु इन प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में र-प्रत्यय होता है।

ऊषरः। खारी मिट्टी वाला स्थान, जहाँ अनाज पैदा नहीं होता। **ऊषः अस्य अस्ति** विग्रह करके **ऊष+सु** इस स्थिति में **ऊषसुषिमुष्कमधो रः** सूत्र से **र**-प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **ऊषर** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **ऊषरः** सिद्ध हो जाता है।

सुषिरः। छिद्र वाला। **सुषिः अस्य अस्ति** विग्रह करके **सुषि+सु** इस स्थिति में **ऊषसुषिमुष्कमधो रः** सूत्र से **र**-प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **सुषिर** शब्द

बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सुषिरः** सिद्ध हो जाता है।

मुष्कोऽण्डः, मुष्करः। मुष्क का अर्थ अण्डकोष है और तद्वान् **मुष्करः** कहा जाता है। **मुष्कः अस्य अस्ति** विग्रह करके **मुष्क+सु** इस स्थिति में **ऊषसुषिमुष्कमधो रः** सूत्र से **र**-प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **मुष्कर** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **मुष्करः** सिद्ध हो जाता है।

मधु=माधुर्यम्, मधुरः। मधु-शब्द का अर्थ है माधुर्य, मीठा और जिसमें मिठास हो, उसे **मधुर** कहते हैं। **मधु=माधुर्यम् अस्य अस्ति** विग्रह करके **मधु+सु** इस स्थिति में **ऊषसुषिमुष्कमधो रः** सूत्र से **र**-प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **मधुर** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **मधुरः** सिद्ध हो जाता है।

रप्रकरणे खमुखकुञ्जेभ्य उपसंख्यानम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- र-प्रत्यय के प्रकरण में ख, मुख और कुञ्ज शब्दों को मानना चाहिये अर्थात् इन शब्दों से भी र-प्रत्यय का विधान करना चाहिये।

खरः। चौड़े गले वाला। **खः अस्य अस्ति** विग्रह करके **ख+सु** इस स्थिति में **रप्रकरणे खमुखकुञ्जेभ्य उपसंख्यानम्** वार्तिक से **र**-प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **खर** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **खरः** सिद्ध हो जाता है।

मुखरः। निरर्थक या ज्यादा बोलने वाला। **(निन्दितं) मुखम् अस्य अस्ति** विग्रह करके **मुख+सु** इस स्थिति में **रप्रकरणे खमुखकुञ्जेभ्य उपसंख्यानम्** वार्तिक से **र**-प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **मुखर** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **मुखरः** सिद्ध हो जाता है। यहाँ मुख-शब्द लाक्षणिक प्रयोग है, जिसके अनुसार यह **वचन** अर्थ में प्रयुक्त है।

कुञ्जो हस्तिहनुः, कुञ्जरः। कुञ्ज-शब्द का अर्थ है- सूँड़ और सूँड वाला, विशाल हनु वाला। **कुञ्जः अस्य अस्ति** विग्रह करके **कुञ्ज+सु** इस स्थिति में **रप्रकरणे खमुखकुञ्जेभ्य उपसंख्यानम्** वार्तिक से **र**-प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **कुञ्जर** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कुञ्जरः** सिद्ध हो जाता है।

नगपांसुपाण्डुभ्यश्च। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- नग, पांसु और पाण्डु इन प्रातिपदिकों से भी मत्वर्थ में र-प्रत्यय होता है।

नगरम्। वृक्षों वाला शहर। **नगाः=वृक्षा अस्य सन्ति** विग्रह करके **नग+जस्** इस स्थिति में **नगपांसुपाण्डुभ्यश्च** वार्तिक से **र**-प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **नगर** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **नगरम्** सिद्ध हो जाता है।

पांसुरः। धूल वाला। **पांसवः अस्मिन् सन्ति** विग्रह करके **पांसु+जस्** इस स्थिति में **नगपांसुपाण्डुभ्यश्च** वार्तिक से र-प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **पांसुर** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पांसुरः** सिद्ध हो जाता है।

पाण्डुरः। सफेद (पीले) वर्ण वाला। **पाण्डु अस्य अस्ति** विग्रह करके **पाण्डु+सु** इस स्थिति में **नगपांसुपाण्डुभ्यश्च** वार्तिक से र-प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **पाण्डु** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पाण्डुरः** सिद्ध हो जाता है।

पाण्डरशब्दस्त्वव्युत्पन्न एव। पाण्डर-शब्द का भी प्रयोग होता है किन्तु वह अव्युत्पन्न है। अमरकोश में श्वेत के पर्यायवाची शब्दों में **पाण्डर** शब्द का समावेश है। यद्यपि कौमुदीकार के मत में यह शब्द अव्युत्पन्न है तथापि अमरकोश के रामाश्रमी-टीकाकार इस व्युत्पत्ति इस तरह से मानते हैं- **पडि गतौ, बाहुलकाद् अरः, दीर्घश्च।**

कच्छ्वा ह्रस्वत्वं च। यह भी वार्तिक है। मत्वर्थ में कच्छू-शब्द से र-प्रत्यय होता है और प्रकृति को ह्रस्व भी।

कच्छुरः। खाज रोग वाला। **कच्छूः अस्य अस्ति** विग्रह करके **कच्छू+सु** इस स्थिति में **कच्छ्वा ह्रस्वत्वं च** वार्तिक से र-प्रत्यय और प्रकृति के ऊकार को ह्रस्व होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **कच्छुर** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कच्छुरः** सिद्ध हो जाता है।

१९१५. द्युद्रुभ्यां मः ५।२।१०८॥

द्युमः। द्रुमः।

द्युद्रुभ्यां मः। द्युश्च द्रुश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो द्युद्रु, ताभ्यां द्युद्रुभ्यां पञ्चम्यन्तं, मः प्रथमान्तम्। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

प्रथमा-समर्थ द्यु और द्रु इन प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में म-प्रत्यय होता है।

यहाँ **दिव्** शब्द को **दिव उत्** सूत्र से उत्त्व और यण् करके दिखाया गया है और इसका अर्थ है- प्रकाश। यहाँ दिव्-शब्द का **द्यु**-शब्द निपातन मानना उचित है।

द्युमः। प्रकाश वाला। **द्यौः अस्य अस्ति** विग्रह करके **द्यु+सु** इस स्थिति में **द्युद्रुभ्यां मः** सूत्र से **म**-प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **द्युम** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **द्युमः** सिद्ध हो जाता है।

द्रुमः। शाखा वाला वृक्ष। **द्रुः अस्य अस्ति** विग्रह करके **द्रु+सु** इस स्थिति में **द्युद्रुभ्यां मः** सूत्र से **म**-प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **द्रुम** शब्द बना है।

एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **द्रुमः** सिद्ध हो जाता है। यद्यपि **द्रु** शब्द का **वृक्ष** अर्थ ही है तथापि **समुदाये वृत्ताः शब्दा अवयवेऽपि वर्तन्ते** इस न्याय के अनुसार **द्रु** का शाखा अर्थ भी मान लिया जाता है। शाखा वाला वृक्ष होता ही है।

१९१६. केशाद्वोऽन्यतरस्याम् ५।२।१०९॥

प्रकृतेनान्यतरस्यां ग्रहणेन मतुपि सिद्धे पुनर्ग्रहणमिनिठनोः समावेशार्थम्।

केशवः, केशी, केशिकः, केशवान्।

'अन्येभ्योऽपि दृश्यते'(वा.३२१०)। मणिवो नागविशेषः। हिरण्यवो निधिविशेषः।

'अर्णसो लोपश्च'(वा.५०५३)। अर्णवः।

केशाद्वोऽन्यतरस्याम्। केशात् पञ्चम्यन्तं, वः प्रथमान्तम्, अन्यतरस्याम् सप्तम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

प्रथमान्त 'केश' शब्द से मत्वर्थ में विकल्प से व प्रत्यय होता है।

इस प्रत्यय में कोई अनुबन्ध नहीं है। यह प्रत्यय वैकल्पिक है। यह केवल **केश** शब्द से मत्वर्थ प्रत्यय की कर्तव्यता में प्रवृत्त होता है।

यहाँ पर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि **प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम्** से **अन्यतरस्याम्** की अनुवृत्ति आ ही सकती है तो इस सूत्र में पुनः **अन्यतरस्याम्** क्यों पढ़ा गया? इसका उत्तर यह है कि-

प्रकृतेनान्यतरस्यां ग्रहणेन मतुपि सिद्धे पुनर्ग्रहणमिनिठनोः समावेशार्थम्। यहाँ पर आचार्य को केवल **व** प्रत्यय को विकल्प से करना अभीष्ट नहीं है अपितु उसके साथ मत्वर्थ में होने वाले **इनि, ठन्** और **मतुप्** प्रत्ययों को भी करना अभीष्ट है। अतः **अन्यतरस्याम्** पढ़ कर यह सूचित किया है। फलतः **केश** शब्द से उक्त तीनों प्रत्यय होंगे।

केशवः, केशी, केशिकः, केशवान्। केशों वाला व्यक्ति। **केशाः सन्त्यस्य।** **केश जस्** में **केशाद्वोऽन्यतरस्याम्** से विकल्प से **व**-प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **केशव** बना। स्वादिकार्य करके **केशवः** सिद्ध हुआ। **इनि** होने के पक्ष में **केश+इन्** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **केशिन्** यह प्रातिपदिक बना। इससे स्वादिकार्य करके **केशी, केशिनौ, केशिनः** आदि बन जाते हैं। इसी तरह **ठन्** होने पर उसके स्थान पर **ठस्येकः** से **इक** आदेश करके **केशिकः, केशिकौ** आदि भी बन जाते हैं। **मतुप्** होने के पक्ष में **केशवान्** बना सकते हैं। इस प्रकार **केश** शब्द से **मत्वर्थ** में चार रूप बने गये।

अन्येभ्योऽपि दृश्यते। यह वार्तिक है। **केश-शब्द के अतिरिक्त अन्य शब्दों से व प्रत्यय देखा जाता है।** जहाँ-जहाँ भी **व** प्रत्ययान्त रूप देखा जाय, वहाँ सर्वत्र इस

वार्तिक से **व** प्रत्यय हुआ है, ऐसा माना जाय। **दृश्यते** आदि शब्दों के प्रयोग से यह सूचना मिलती है कि हम स्वतन्त्रतया सभी शब्दों से उक्त प्रत्यय नहीं कर सकते। जहाँ-जहाँ आप्त लोगों का ऐसा प्रयोग मिलता है, केवल वहीं पर उक्त **व** प्रत्यय कर सकते हैं। जैसे कि-

मणिवो नागविशेषः। ऐसे शब्दों में आप्तप्रमाण प्राप्त है। अतः **मणिरस्यास्तीति** विग्रह में **मणि सु** से **अन्येभ्योऽपि दृश्यते** इस वार्तिक से **व** प्रत्यय करके स्वादिकार्य करने पर **मणिवः** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **हिरण्यवः निधिविशेषः** आदि भी प्रयोग मिलते हैं।

अर्णसो लोपश्च। यह भी वार्तिक ही है। 'अर्णस्' शब्द से मत्वर्थ में 'व' प्रत्यय होता है साथ ही 'अर्णस्' के अन्त्य अल् का लोप भी होता है।

अर्णवः। बहुत जल है ऐसा समुद्र। **प्रभूतम् अर्णोऽस्यास्तीति। अर्णस् सु** से **अर्णसो लोपश्च** इस वार्तिक से **व** प्रत्यय और **अर्णस्** के अन्त्य वर्ण सकार का लोप भी हुआ- **अर्णव** बना। स्वादिकार्य करके **अर्णवः** सिद्ध हुआ।

१११७. गाण्ड्यजगात् सञ्ज्ञायाम् ५।२।११०॥
ह्रस्वदीर्घयोर्यणा तन्त्रेण निर्देशः।
गाण्डिवम्, गाण्डीवमर्जुनस्य धनुः। अजगवं पिनाकः।

गाण्ड्यजगात् सञ्ज्ञायाम्। गाण्डिश्च गाण्डी च तयोरेकशेषः गाण्डी (निपातनात् समासः)। गाण्डी च अजगश्च तयोः समाहारद्वन्द्वो गाण्ड्यजगं, तस्माद् गाण्ड्यजगात् पञ्चम्यन्तं, संज्ञायां सप्तम्यन्तम्। **केशाद्वोऽन्यतरस्याम्** से **वः** की और **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति आती है साथ ही **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

प्रथमान्त गाण्डि, गाण्डी और अजग इन प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में व-प्रत्यय होता है, संज्ञा के विषय में।

ह्रस्वदीर्घयोर्यणा तन्त्रेण निर्देशः। अर्थात् **गाण्ड्यजग** शब्द में जो यण् हुआ है, वह ह्रस्व **गाण्डि** और दीर्घ **गाण्डी** दोनों के साथ है। जिस तरह से **ख्यत्यात्परस्य** सूत्र में ह्रस्व **खिति**-शब्द और दीर्घ **खीती** शब्द का निर्देश है, उसी तरह यहाँ पर भी ह्रस्व और दीर्घ दोनों प्रकार के शब्दों का निर्देश समझना चाहिये। यद्यपि सूत्र में **अन्यतरस्याम्** पद है, अतः पक्ष में **मतुप्** प्राप्त है, तथापि सिसाधयिषित प्रयोगों के रूढ=संज्ञा होने के कारण पक्ष में मतुप्-प्रत्यय नहीं होगा।

गाण्डिवम्, गाण्डीवमर्जुनस्य धनुः। गाँठ वाला, अर्जुन का धनुष। **गाण्डिः=ग्रन्थिः अस्य अस्ति (गाण्डी अस्य अस्ति)** विग्रह करके **गाण्डि+सु** इस स्थिति में **गाण्ड्यजगात्**

संज्ञायाम् सूत्र से **व** प्रत्यय करने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **गाण्डिव** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **गाण्डिवम्** सिद्ध हो जाता है। दीर्घान्त मानने पर **गाण्डीवम्** बनता है।

अजगवं पिनाकः। श्रीविष्णु जिसके बाण के रूप में रहते हैं, तादृश धनु, शिव का धनुष। घट-घट व्यापी सर्वान्तर्यामी भगवान् विष्णु सर्वत्र रहते ही हैं तथापि शिव के धनुष में विशेष रूप से रहते हैं। **अजगः=विष्णुः अस्मिन् अस्ति** विग्रह करके **अजग+सु** इस स्थिति में **गाण्ड्यजगात् संज्ञायाम्** सूत्र से **व** प्रत्यय करने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अजगव** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **अजगवम्** सिद्ध हो जाता है।

१९१८. काण्डाण्डादीरन्नीरचौ ५।२।१११॥

काण्डीरः। आण्डीरः।

काण्डाण्डादीरन्नीरचौ। काण्डं च अण्डं च तयोः समाहारद्वन्द्वः काण्डाण्डं, तस्मात् काण्डाण्डात्। ईरन् च ईरच् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः- ईरन्नीरचौ। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति आती है तथा **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है। उद्देश्य और विधेयों में समान संख्या होने के कारण **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** की उपस्थिति होती है।

प्रथमान्त काण्ड और अण्ड इन प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में यथासंख्य से ईरन् और ईरच् प्रत्यय होते हैं।

उक्त दोनों प्रत्ययों में नकार और चकार इत्संज्ञक हैं, **ईर** बचता है। यद्यपि अनुबन्धलोप के बाद प्रत्ययों में समानता है तथापि नित्स्वर और चित्स्वर के रूप में अवश्य भेद रहता है।

काण्डीरः। बाण वाला। **काण्डम् अस्यास्ति** विग्रह करके **काण्ड+सु** इस स्थिति में **काण्डाण्डादीरन्नीरचौ** सूत्र द्वारा **ईरन्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् **काण्ड+ईर** बना। उसके बादभसंज्ञक अकार का लोप करके **काण्डीर** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **काण्डीरः** सिद्ध हो जाता है।

आण्डीरः। अण्डे वाला। **अण्डम् अस्यास्ति** विग्रह करके **अण्ड+सु** इस स्थिति में **काण्डाण्डादीरन्नीरचौ** सूत्र द्वारा **ईरच्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप करके **आण्डीर** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आण्डीरः** सिद्ध हो जाता है।

१९१९. रजःकृष्यासुतिपरिषदो वलच् ५।२।११२॥

रजस्वला स्त्री। कृषीवलः। 'वले' (सू.१०४०) इति दीर्घः। आसुतीवलः शौण्डिकः। परिषद्वलः। 'पर्षत्' इति पाठान्तरम्। पर्षद्वलम्। 'अन्येभ्योऽपि दृश्यते'(वा.३२१०) भ्रातृवलः। पुत्रवलः। शत्रुवलः। 'वले' (सू.१०४०) इत्यत्र 'सञ्ज्ञायाम्' इत्यनुवृत्तेर्नेह दीर्घः।

रजःकृष्यासुतिपरिषदो वलच्। रजस् च कृषिश्च आसुतिश्च परिषत् च तेषां समाहारद्वन्द्वः रजःकृष्यासुतिपरिषत्, तस्मात् रजःकृष्यासुतिपरिषदः पञ्चम्यन्तं, वलच् प्रथमान्तम्। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति** मतुप् से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन्** इति इन पदों की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

प्रथमान्त रजस्, कृषि, आसुति और परिषत् इन प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में वलच् प्रत्यय होता है।

वलच् में चकार इत्संज्ञक है, **वल** बचता है।

रजस्वला स्त्री। ऋतुमती स्त्री। **रजः अस्याः अस्ति** विग्रह करके **रजस्+सु** इस स्थिति में **रजःकृष्यासुतिपरिषदो वलच्** सूत्र से **वलच्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **रजस्वल** शब्द बनता है। स्त्रीत्वविवक्षा में टाप् प्रत्यय होकर **रजस्वला** बनने पर स्वादिकार्य होता है।

कृषीवलः। 'वले' इति दीर्घः। खेती वाला, किसान। **कृषिः अस्य अस्ति** विग्रह करके **कृषि+सु** इस स्थिति में **रजःकृष्यासुतिपरिषदो वलच्** सूत्र से **वलच्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **कृषिवल** बना है। **वले (६.३.११८)** सूत्र से प्रकृति को दीर्घ होकर **कृषीवल** और स्वादिकार्य होकर **कृषीवलः** सिद्ध हो जाता है।

आसुतीवलः शौण्डिकः। शराब वाला। **आसुतिः अस्य (अस्मिन्) अस्ति** विग्रह करके **आसुति+सु** इस स्थिति में **रजःकृष्यासुतिपरिषदो वलच्** सूत्र से **वलच्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **आसुतिवल** बना है। **वले (६.३.११८)** सूत्र से प्रकृति को दीर्घ होकर **आसुतीवल** और स्वादिकार्य होकर **आसुतीवलः** सिद्ध हो जाता है।

परिषद्वलः। 'पर्षत्' इति पाठान्तरम्। पर्षद्वलम्। विशिष्ट सभा से युक्त राजा। **परिषद् अस्य अस्ति** विग्रह करके **परिषद्+सु** इस स्थिति में **रजःकृष्यासुतिपरिषदो वलच्** सूत्र से **वलच्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **परिषद्वल** बना है। स्वादिकार्य होकर **परिषद्वलः** सिद्ध हो जाता है। कहीं-कहीं **पर्षत्** ऐसा पाठान्तर मिलता है, तदनुसार वलच्-प्रत्यय होकर **पर्षद्वलम्** भी सिद्ध हो सकता है।

इन चार शब्दों के अतिरिक्त अन्य शब्दों से भी वलच्-प्रत्यय के विधान के लिये वार्तिक का अवतरण किया जा रहा है-

अन्येभ्योऽपि दृश्यते। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- अन्य प्रातिपदिकों से भी वलच्-प्रत्यय देखा जाता है।

भ्रातृवलः। भाइयों वाला। **भ्रातरः अस्य सन्ति** विग्रह करके **भातृ+जस्** इस स्थिति में **अन्येभ्योऽपि दृश्यते** वार्तिक के द्वारा वलच्-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **भ्रातृवल** और स्वादिकार्य से **भ्रातृवलः** सिद्ध हो जाता है।

पुत्रवलः। पुत्रों वाला। **पुत्राः अस्य सन्ति** विग्रह करके **पुत्र+जस्** इस स्थिति में **अन्येभ्योऽपि दृश्यते** वार्तिक के द्वारा वलच्-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **पुत्रवल** और स्वादिकार्य से **पुत्रवलः** सिद्ध हो जाता है।

शत्रुवलः। शत्रुओं वाला। **शत्रवः अस्य सन्ति** विग्रह करके **शत्रु+जस्** इस स्थिति में **अन्येभ्योऽपि दृश्यते** वार्तिक के द्वारा वलच्-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **शत्रुवल** और स्वादिकार्य से **शत्रुवलः** सिद्ध हो जाता है।

'वले' इत्यत्र 'सञ्ज्ञायाम्' इत्यनुवृत्तेर्नेह दीर्घः। अर्थात् **वले** सूत्र में पूर्वसूत्र से **संज्ञायाम्** की अनुवृत्ति है, अतः संज्ञा के विषय में ही वल-प्रत्यय के परे रहते दीर्घ होता है, अन्यथा नहीं होता। फलतः उपर्युक्त तीनों प्रयोगों में संज्ञात्व का अभाव होने के कारण दीर्घ नहीं हुआ है।

१९२०. दन्तशिखात् सञ्ज्ञायाम् ५।२।११३॥
दन्तावलो हस्ती। शिखावलः केकी।

दन्तशिखात् सञ्ज्ञायाम्। दन्ताश्च शिखा च दन्तशिखं, तस्माद् दन्तशिखात्, समाहारद्वन्द्वः। दन्तशिखात् पञ्चम्यन्तं, संज्ञायां सप्तम्यन्तम्। **रजःकृष्यासुतिपरिषदो वलच्** से **वलच्** की और **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति आती है साथ ही **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

प्रथमान्त दन्त और शिखा इन प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में वलच् प्रत्यय होता है।

दन्तावलो हस्ती। बड़े दाँत वाला, हाथी। **दन्ताः अस्य सन्ति** विग्रह करके **दन्त+जस्** इस स्थिति में **दन्तशिखात् संज्ञायाम्** सूत्र से **वलच्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **दन्तवल** बना है। **वले (६.३.११८)** सूत्र से प्रकृति को दीर्घ होकर **दन्तावल** और स्वादिकार्य होकर **दन्तावलः** सिद्ध हो जाता है।

शिखावलः केकी। चोंटी वाला मोर। **शिखा अस्य अस्ति** विग्रह करके

शिखा+सु इस स्थिति में **दन्तशिखात् संज्ञायाम्** सूत्र से **वलच्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **शिखावल** शब्द बना है। स्वादिकार्य होकर **शिखावलः** सिद्ध हो जाता है।

१९२१. ज्योत्स्नातमिस्राशृङ्गिणोर्जस्विन्नूर्जस्वलगोमिन्मलिनमलीमसाः ५।२।११४॥

मत्वर्थे निपात्यन्ते। ज्योतिष उपधालोपो नश्च प्रत्ययः। ज्योत्स्ना। तमस उपधाया इत्वं रश्च, तमिस्रा। स्त्रीत्वमतन्त्रम्, तमिस्रम्। शृङ्गादिनच्, शृङ्गिणः। ऊर्जसो वलच्, तेन बाधो मा भूदिति विनिरपि, ऊर्जस्वी, ऊर्जस्वलः। 'ऊर्जोऽसुगागमः' इति वृत्तिस्तु चिन्त्या, 'ऊर्जस्वतीः' इति वदसुन्नन्तत्वेनैवोपपत्तेः। गोशब्दान्मिनिः, गोमी। मलशब्दादिनच्, मलिनः। ईमसच्च, मलीमसः।

ज्योत्स्नातमिस्राशृङ्गिणोर्जस्विन्नूर्जस्वलगोमिन्मलिनमलीमसाः। ज्योत्स्ना च तमिस्रा च शृङ्गिणश्च ऊर्जस्विन् च ऊर्जस्वलश्च गोमिन् च मलिनश्च मलीमसश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो ज्योत्स्नातमिस्राशृङ्गिणोर्जस्विन्नूर्जस्वलगोमिन्मलिनमलीमसाः, प्रथमान्तमेकपदमिदं सूत्रम्। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन्** इति इन पदों की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

मत्वर्थ में विविध प्रकृतियों से विविध-प्रत्ययान्त ज्योत्स्ना, तमिस्रा, शृङ्गिण, ऊर्जस्विन्, ऊर्जस्वल, गोमिन्, मलिन और मलीमस शब्दों का निपातन किया जाता है।

निपातन में प्रकृति और प्रत्ययों का निरूपण क्रमशः किया जा रहा है-

ज्योतिष उपधालोपो नश्च प्रत्ययः। ज्योत्स्ना। प्रकाशवाली, चाँदनी। **ज्योतींषि अस्यां सन्ति** विग्रह करके **ज्योतिष्+जस्** इस स्थिति में **ज्योत्स्नातमिस्राशृङ्गिणोर्जस्विन्०** इस सूत्र से **न**-प्रत्यय के साथ प्रकृति में उपधाभूत इकार का लोप निपातनवश किया जाता है और इकार के अभाव में नैमित्तिक षकार की भी निवृत्ति होकर षकार भी सकार-रूप में आ जाता है। इस तरह **ज्योत्स्+न=ज्योत्स्न** बना हुआ है। टाप् प्रत्यय होकर **ज्योत्स्ना** और स्वादिकार्य होकर **ज्योत्स्ना** सिद्ध हो जाता है।

तमस उपधाया इत्वं रश्च, तमिस्रा। स्त्रीत्वमतन्त्रम्, तमिस्रम्। अन्धकार वाली, रात्रि। **तमः अस्याम् अस्ति** विग्रह करके **तमस्+सु** इस स्थिति में **ज्योत्स्नातमिस्राशृङ्गिणोर्जस्विन्०** इस सूत्र से **र**-प्रत्यय के साथ प्रकृति में उपधाभूत अकार को इकार आदेश होकर **तमिस्+र=तमिस्र** बना हुआ है। टाप् प्रत्यय होकर **तमिस्रा** और स्वादिकार्य होकर **तमिस्रा** सिद्ध हो जाता है। सूत्र में जो स्त्रीप्रत्ययान्त **तमिस्रा** शब्द

का पाठ है, वह अविवक्षित है अर्थात् केवल स्त्रीलिंग में होता है, ऐसा नहीं है अपितु नपुंसक में भी होता है। अतः **तमिस्रम्** रूप भी बनता है।

शृङ्गादिनच्, शृङ्गिणः। सींग वाला। **शृङ्गम् अस्य अस्ति** विग्रह करके **शृङ्ग+सु** इस स्थिति में **ज्योत्स्नातमिस्राशृङ्गिणोर्जस्विन्०** इस सूत्र से **इनच्**-प्रत्यय का निपातन होकर भसंज्ञक अकार का लोप होने पर **शृङ्गिन** और णत्व होकर **शृङ्गिण** तथा स्वादिकार्य से **शृङ्गिणः** सिद्ध हो जाता है।

ऊर्जसो वलच्, तेन बाधो मा भूदिति विनिरपि, ऊर्जस्वी, ऊर्जस्वलः। शक्तिशाली। यहाँ पर दो प्रत्ययों का निपातन किया गया है- **वलच्** और **विनि**। **ऊर्जः अस्य अस्ति** विग्रह करके **ऊर्जस्+सु** इस स्थिति में **ज्योत्स्नातमिस्राशृङ्गिणोर्जस्विन्०** इस सूत्र से **वलच्**-प्रत्यय होकर **ऊर्जस्वल** शब्द बनता है और **विनि** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप होकर **ऊर्जस्विन्** शब्द बनता है। उभयत्र स्वादिकार्य होकर **ऊर्जस्वलः** और **उर्जस्वी** रूप बनते हैं। यद्यपि यहाँ **अयास्मायामेधास्रजो विनिः (५.२.१२१)** सूत्र से **विनि** प्रत्यय करके भी **ऊर्जस्वी** प्रयोग बन सकता है, तथापि तब विशिष-विहित प्रत्यय वलच् के द्वारा उक्त प्रत्यय का बाध न हो, एतदर्थ दोनों प्रत्ययों का निपातन दिखाया गया है।

'ऊर्जोऽसुगागमः' इति वृत्तिस्तु चिन्त्या, 'ऊर्जस्वतीः' इति वदसुन्नन्तेनैवोपपत्तेः। माधवीयवृत्ति में ऊर्ज-शब्द से असुक् आगम करने के पश्चात् **ऊर्जस्** शब्द माना हैं किन्तु वह चिन्त्य=विचारणीय (अनुचित) है, क्योंकि **वलच्** प्रत्यय के न होने पर असुन्-अन्त से निष्पन्न ऊर्जस्वती प्रयोग के समान यहाँ भी **ऊर्जस्** शब्द माना जा सकता है।

गोशब्दान्मिनिः, गोमी। बैल या गाय वाला। **गावः अस्य सन्ति** विग्रह करके **गो+जस्** इस स्थिति में **ज्योत्स्नातमिस्राशृङ्गिणोर्जस्विन्०** इस सूत्र से **मिनि**-प्रत्यय करने पर अनुबन्धलोप होकर **गोमिन्** शब्द बन जाता है और स्वादिकार्य होकर **गोमी** सिद्ध हो जाता है।

मलशब्दादिनच्, मलिनः। ईमसच्च- मलीमसः। मैल वाला, मैला। **मलम् अस्य अस्ति** विग्रह करके **मल+सु** इस स्थिति में **ज्योत्स्नातमिस्राशृङ्गिणोर्जस्विन्०** इस सूत्र से **इनच्**-प्रत्यय करने पर अनुबन्धलोप और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **मलिन** शब्द बन जाता है। स्वादिकार्य होकर **मलिनः** सिद्ध हो जाता है। इसी शब्द से **ईमसच्** प्रत्यय माना जाता है और अनुबन्धलोप तथा भसंज्ञक अकार का लोप करके **मलीमस** शब्द भी बनता है जिसमें स्वादिकार्य से **मलीमसः** सिद्ध हो जाता है।

१९२२. अत इनिठनौ ५।२।११५॥

दण्डी, दण्डिकः।

अत इनिठनौ। इनिश्च ठन् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्व इनिठनौ। अतः पञ्चम्यन्तं,

इनिठनौ प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति** मतुप् से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति आती है साथ ही **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

ह्रस्व अकारान्त प्रथमान्त प्रातिपदिक से इनि और ठन् प्रत्यय होते हैं।

इनि में नकारोत्तरवर्ती **इकार** इत्संज्ञक है और ठन् में नकार इत्संज्ञक है। **ठ** के स्थान पर **ठस्येकः** से **इक** आदेश होता है।

दण्डी, दण्डिकः। जिसका दण्ड हो (अथवा जिसमें दण्ड हा) अर्थात् दण्ड वाला। **दण्डः अस्य अस्ति** (अथवा **दण्डः अस्मिन् अस्ति**) लौकिक विग्रह और **दण्ड सु** अलौकिक विग्रह है। **अत इनिठनौ** से इनि होने के पक्ष में अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **दण्ड+इन्** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके दण्ड्+इन्=**दण्डिन्** बना। **योगिन्** से **योगी, योगिनौ, योगिनः** की तरह **दण्डिन्** से **दण्डी, दण्डिनौ, दण्डिनः** आदि रूप बनते हैं। **ठन्** होने के पक्ष में नकार का लोप करके ठ के स्थान पर इक आदेश कर **दण्ड+इक**, भसंज्ञक अकार का लोप करके दण्ड्+इक=**दण्डिक** बना। अकारान्त बन जाने के कारण **राम** की तरह **दण्डिकः, दण्डिकौ, दण्डिकाः** रूप बनते हैं।

छत्री, छत्रिकः। जिसका छत्र(छतरी) हो अथवा जिसमें छत्र हो अर्थात् छत्र वाला। **छत्रम् अस्य अस्ति** अथवा **छत्रम् अस्मिन् अस्ति** लौकिक विग्रह और **छत्र सु** अलौकिक विग्रह है। **अत इनिठनौ** से इनि होने के पक्ष में अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **छत्र+इन्** बना। भसंज्ञक अकार का लोप करके **छत्र्+इन्=छत्रिन्** बना। **योगिन्** से **योगी, योगिनौ, योगिनः** की तरह **छत्रिन्** से **छत्री,** रेफ से परे नकार को **अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** से णत्व करने पर **छत्रिणौ, छत्रिणः** आदि रूप बनते हैं। **ठन्** होने के पक्ष में नकार का लोप करके ठ के स्थान पर इक आदेश करके **छत्र+इक**, भसंज्ञक अकार का लोप करके **छत्र्+इक=छत्रिक** बना। अकारान्त बन जाने के कारण राम की तरह **छत्रिकः, छत्रिकौ, छत्रिकाः** रूप बनते हैं।

विशेषः- भाष्यकार ने अकारान्त शब्दों सें कहीं-कहीं **इनि** और **ठन्** प्रत्ययं न होने के विषय में अवगत कराया है। तदनुसार १. एकाक्षरशब्दों, २. कृत्प्रत्ययान्त शब्दों, ३. जातिवाचक शब्दों तथा ४. सप्तम्यर्थवाची (**तदस्मिनन्नस्ति**) शब्दों से ये दोनों प्रत्यय नहीं लगते। अतः मतुप्-प्रत्यय होकर **स्ववान्, कारकवान्, वृक्षवान्** और **दण्डवती** आदि प्रयोग बनते हैं। वहीं पर भाष्यकार ने यह भी सूचित किया है कि यह प्रायिक है। तदनुसार **कार्यी-कार्यिकः, तण्डुली-तण्डुलिकः** आदि प्रयोग भी बनते हैं।

१९२३. व्रीह्यादिभ्यश्च ५।२।११६॥

व्रीही, व्रीहिकः। न च सर्वेभ्यो व्रीह्यादिभ्य इनिठनाविष्येते, किं तर्हि- 'शिखामालासञ्ज्ञादिभ्य इनिः, यवखलादिभ्य इकः' (वा.३२०९)। **अन्येभ्य उभयम्।**

व्रीह्यादिभ्यश्च। व्रीहिः आदिर्येषां ते व्रीह्यादयस्तेभ्यः। व्रीह्यादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की **अत इनिठनौ** से **इनिठनौ** की अनुवृत्ति आती है तथा **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

व्रीहि आदि गणपठित प्रथमान्त प्रातिपदिकों से भी इनि और ठन् प्रत्यय होते हैं।

व्रीहि आदि शब्दों के अदन्त न होने के कारण **अत इनिठनौ** से प्राप्त नहीं था, एतदर्थ इस सूत्र का अवतरण हुआ है।

व्रीही, व्रीहिकः। जिसका धान हो, धान वाला। **व्रीहयोऽस्य सन्ति। व्रीहि जस्** में **व्रीह्यादिभ्यश्च** से **इनि** होने के पक्ष में अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **व्रीहि+इन्** बना। भसंज्ञक इकार का लोप करके **व्रीह्+इन्=व्रीहिन्** बना। **योगिन्** से **योगी, योगिनौ, योगिनः** की तरह **व्रीहिन्** से **व्रीही, व्रीहिणौ, व्रीहिणः** आदि रूप बनते हैं। **ठन्** होने के पक्ष में नकार का लोप करके **ठ** के स्थान पर **ठस्येकः** से **इक** आदेश करके **व्रीहि+इक**, भसंज्ञक इकार का लोप करके **व्रीह्+इक=व्रीह्इक** बना। अकारान्त बन जाने के कारण **राम** की तरह **व्रीहिकः, व्रीहिकौ, व्रीहिकाः** रूप बनते हैं।

व्रीह्यादिगणः- व्रीहि, माया, शाला, शिखा, माला, मेखला, केका, अष्टका, पताका, चर्मन्, कर्मन्, वर्मन्, दंष्ट्रा, संज्ञा, वडवा, वीणा, बलाका, यव, खद, नौ, कुमारी। शीर्षान्नञः।

न च सर्वेभ्यो व्रीह्यादिभ्य इनिठनाविष्येते, किं तर्हि- **'शिखामालासञ्ज्ञादिभ्य इनिः, यवखलादिभ्य इकः'**, **अन्येभ्य उभयम्।** मूलकार कहते हैं कि व्रीह्यादिगणपठित सभी शब्दों से इनि और ठन् नहीं होते। तब कैसे होते हैं? इस प्रश्न पर उन्होंने महाभाष्य के दो वार्तिकों को उद्धृत किया है। तदनुसार **शिखा, माला, संज्ञा, वीणा, वडवा, पताका, वर्मन्, शर्मन्** इन शब्दों से केवल **इनि** प्रत्यय होता है और **यवखद, नौ, कुमारी** शब्दों से इक (ठन्) ही होता है। शेष व्रीह्यादिशब्दों से इनि और ठन् दोनों प्रत्यय होते हैं।

१९२४. तुन्दादिभ्य इलच्च ५।२।११७॥

चादिनिठनौ मतुप् च। तुन्दिलः, तुन्दी, तुन्दिकः, तुन्दवान्। उदर, पिचण्ड, यव, व्रीही।

'स्वाङ्गाद्विवृद्धौ' (ग.सू.१२४)। **विवृद्ध्युपाधिकात्स्वाङ्गवाचिन इलजादयः स्युः। विवृद्धौ कर्णौ यस्य स कर्णिलः, कर्णी, कर्णिकः, कर्णवान्।**

तुन्दादिभ्य इलच्च। तुन्द आदिर्येषां ते तुन्दादयस्तेभ्यस्तुन्दादिभ्यः पञ्चम्यन्तम्, इलच् प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति** मतुप् से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की और **च**-शब्द से **अत इनिठनौ** के **इनिठनौ** की अनुवृत्ति मानी है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है। समुच्चयार्थक **अन्यतरस्याम्** की भी अनुवृत्ति है।

तुन्दादि गणपठित प्रथमान्त प्रातिपदिकों से इलच् प्रत्यय होता है और च-शब्द के कारण इनि, ठन् और मतुप् प्रत्यय भी होते हैं।

चादिनिठनौ मतुप् च। च-शब्द से इनि और ठन् प्रत्ययों का समुच्चय है और **अन्यतरस्याम्** के प्रभाव से **मतुप्** प्रत्यय का भी। इस तरह चार-प्रत्यय होकर चार रूप बनते हैं।

तुन्दिलः, तुन्दी, तुन्दिकः, तुन्दवान्। तोंद वाला। **तुन्दम् अस्य अस्ति** विग्रह करके **तुन्द+सु** इस स्थिति में **तुन्दादिभ्य इलच्च** सूत्र के द्वारा **इलच्** प्रत्यय होने पर भसंज्ञक अकार का लोप होकर **तुन्दिल** शब्द बनता है। **इनि** प्रत्यय होने के पक्ष में भी अकारलोप होकर **तुन्दिन्** शब्द बनता है। इसी तरह **ठन्** प्रत्यय होने के पक्ष में **ठ** के स्थान पर **इक** आदेश और अकारलोप होकर **तुन्दिक** शब्द बनता है। **मतुप्** प्रत्यय के पक्ष में मकार को वकारादेश होकर **तुन्दवत्** शब्द बनता है। चारों में प्रातिपदिकसंज्ञा होकर सुप् का लुक् हुआ है और अभी एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर स्वादिकार्य करने से **तुन्दिलः, तुन्दी, तुन्दिकः** और **तुन्दवान्** ये चार रूप सिद्ध होते हैं।

तुन्दादिगणः- उदर, पिचण्ड, यव, व्रीहि।

स्वाङ्गाद्विवृद्धौ। यह तुन्दादिगण का गणसूत्र है। सूत्रार्थ मूलकार ने स्वयं दिया है-

विवृद्ध्युपाधिकात्स्वाङ्गवाचिन इलजादयः स्युः। बढ़ा हुआ अर्थ में विद्यमान स्वाङ्गवाची शब्दों से भी **इलच्** आदि प्रत्यय होते हैं।

विवृद्धौ कर्णौ यस्य स कर्णिलः, कर्णी, कर्णिकः, कर्णवान्। बड़े कान वाला। **विवृद्धौ कर्णौ यस्य** विग्रह करके **कर्ण+औ** इस स्थिति में **स्वाङ्गाद्विवृद्धौ** गणसूत्र से **इलच्** प्रत्यय होने पर भसंज्ञक अकार का लोप होकर **कर्णिल** शब्द बनता है। **इनि** प्रत्यय होने के पक्ष में भी अकारलोप होकर **कर्णिन्** शब्द बनता है। इसी तरह **ठन्** प्रत्यय होने के पक्ष में **ठ** के स्थान पर **इक** आदेश और अकारलोप होकर **कर्णिक** शब्द बनता है। **मतुप्** प्रत्यय के पक्ष में मकार को वकारादेश होकर **कर्णवान्** शब्द बनता है। चारों में प्रातिपदिकसंज्ञा होकर सुप् का लुक् हुआ है और अभी एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर स्वादिकार्य करने से **कर्णिलः, कर्णी, कर्णिकः** और **कर्णवान्** ये चार रूप सिद्ध होते हैं।

१९२५. एकगोपूर्वाट्ठञ् नित्यम् ५।२।११८॥

एकशतमस्यास्तीति ऐकशतिकः। ऐकसहस्रिकः। गौशतिकः। गौसहस्रिकः।

एकगोपूर्वाट्ठञ् नित्यम्। एकश्च गौश्च एकगावौ, तौ पूर्वौ यस्य एकगोपूर्वं, तस्माद् एकगोपूर्वात्, द्वन्द्वगर्भबहुव्रीहिः। एकगोपूर्वात् पञ्चम्यन्तं, ठञ् प्रथमान्तं, नित्यं प्रथमान्तम्। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

एक-शब्द पूर्वक और गो-शब्द पूर्वक प्रातिपदिक से मत्वर्थ में नित्य से ठञ् प्रत्यय होता है।

अन्यतरस्याम् पद की चली आ रही अनुवृत्ति को रोकने के लिये **नित्यम्** का ग्रहण किया गया है। इससे सिद्ध होता है कि इससे पूर्व तक **अन्यतरस्याम्** की अनुवृत्ति आ रही थी और विशेष-प्रत्यय के साथ औत्सर्गिक **मतुप्** का भी समुच्चय था। यहाँ पर **नित्यम्** पद से **मतुप्** का समुच्चय नहीं होगा किन्तु **ठञ्** मात्र एक प्रत्यय होगा।

एकशतमस्यास्तीति ऐकशतिकः। एक सौ कार्षापणादि वाला। **एकशतम् अस्य अस्ति** विग्रह करके **एकशत+सु** इस स्थिति में **एकगोपूर्वाट्ठञ् नित्यम्** सूत्र से ठञ्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, **ठ** के स्थान पर **इक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **ऐकशतिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **ऐकशतिकः** सिद्ध हो जाता है।

ऐकसहस्रिकः। एक हजार कार्षापणादि वाला। **एकसहस्रम् अस्य अस्ति** विग्रह करके **एकसहस्र+सु** इस स्थिति में **एकगोपूर्वाट्ठञ् नित्यम्** सूत्र से ठञ्-प्रत्यय होने पर इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और अकारलोप होकर **ऐकसहस्रिक** तथा स्वादिकार्य होकर **ऐकसहस्रिकः** सिद्ध हो जाता है।

उपर्युक्त दोनों प्रयोगों में **पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन** (२.१.४९) सूत्र से समास हुआ है। **संख्यायाः संवत्सरसंख्यस्य च** (७.१.१५) सूत्र से उत्तरपदवृद्धि इस कारण नहीं हुयी कि वहाँ पर प्रतिपदोक्त तद्धितार्थ-समास का ही ग्रहण किया गया किन्तु यहाँ पर तो समास के अनन्तर तद्धित प्रत्यय हुआ है।

गौशतिकः। सौ गायों वाला। **गोशतम् अस्य अस्ति** विग्रह करके **गोशत+सु** इस स्थिति में **एकगोपूर्वाट्ठञ् नित्यम्** सूत्र से ठञ्-प्रत्यय होने पर **इकादेश**, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और अकारलोप होकर **गौशतिक** तथा स्वादिकार्य होकर **गौशतिकः** सिद्ध हो जाता है।

गौसहस्रिकः। हजार गायों वाला। **गोसहस्रम् अस्य अस्ति** विग्रह करके **गोसहस्र+सु** इस स्थिति में **एकगोपूर्वाट्ठञ् नित्यम्** सूत्र से ठञ्-प्रत्यय होने पर

इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और अकारलोप होकर **गौसहस्रिक** तथा स्वादिकार्य होकर **गौसहस्रिकः** सिद्ध हो जाता है।

१९२६. शतसहस्रान्ताच्च निष्कात् ५।२।११९॥

निष्कात् परौ यौ शतसहस्रशब्दौ तदन्तात् प्रतिपदिकाट् ठञ् स्यान्मत्वर्थे। नैष्कशतिकः। नैष्कसहस्रिकः।

शतसहस्रान्ताच्च निष्कात्। शतं च सहस्रं च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः शतसहस्रे, ते अन्ते यस्य तत् शतसहस्रान्तं, तस्मात् शतसहस्रान्तात् पञ्चम्यन्तम्, चाव्ययं, निष्कात् पञ्चम्यन्तम्। **एकगोपूर्वाट्ठञ् नित्यम्** से **ठञ्** की तथा **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

निष्क-शब्द से परे जो शत और सहस्र शब्द, तदन्त प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में ठञ् प्रत्यय होता है।

सूत्र के अनुसार **निष्कशत** और **निष्कसहस्र** शब्द समासयुक्त दिखाये गये हैं। यद्यपि यहाँ पर शब्दों की स्थिति विपरीत है, क्योंकि असामर्थ्यात् समास की प्राप्ति नहीं होती, तथापि सूत्र में वैसा पाठ होने पर समास की समीचीनता मान ली जाती है।

नैष्कशतिकः। एक सौ निष्क वाला। **निष्कशतम् अस्य अस्ति** विग्रह करके **निष्कशत+सु** इस स्थिति में **शतसहस्रान्ताच्च निष्कात्** सूत्र से ठञ्-प्रत्यय होने पर **इकादेश**, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और अकारलोप होकर **नैष्कशतिक** तथा स्वादिकार्य होकर **नैष्कशतिकः** सिद्ध हो जाता है।

नैष्कसहस्रिकः। एक हजार निष्क वाला। **निष्कसहस्रम् अस्य अस्ति** विग्रह करके **निष्कसहस्र+सु** इस स्थिति में **शतसहस्रान्ताच्च निष्कात्** सूत्र से ठञ्-प्रत्यय होने पर **इकादेश**, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और अकारलोप होकर **नैष्कसहस्रिक** तथा स्वादिकार्य होकर **नैष्कसहस्रिकः** सिद्ध हो जाता है।

१९२७. रूपादाहतप्रशंसयोर्यप् ५।२।१२०॥

आहतं रूपमस्यास्तीति रूप्यः कार्षापणः। प्रशस्तं रूपमस्यास्तीति रूप्यो गौः। 'आहत' इति किम्? रूपवान्। 'अन्येभ्योऽपि दृश्यते' (वा.३२१०)। हिम्याः पर्वताः। गुण्या ब्राह्मणाः।

रूपादाहतप्रशंसयोर्यप्। आहतं च प्रशंसा च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः- आहतप्रशंसे, तयोः। रूपात् पञ्चम्यन्तम्, आहतप्रशंसयोः सप्तम्यन्तं, यप् प्रथमान्तम्। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

आहत और प्रशंसा अर्थों में वर्तमान प्रथमा-समर्थ रूप-प्रातिपदिक से मत्वर्थ में यप् प्रत्यय होता है।

साँचे में ठोंक कर, निखार कर बनाये जाने वाले सिक्के **आहत** कहलाते हैं। प्राचीन काल में दो प्रकार से मुद्रायें बनायी जाती थीं- साँचे में ठोंक कर और साँचे में ढाल कर। साँचे में ठोंक कर बनायी गयी **आहत** मुद्रायें अधिक प्राचीन मानी जाती हैं।

आहतं रूपमस्यास्तीति रूप्यः कार्षापणः। साँचे में ठोंक कर बनाया गया कार्षापण। **आहतं रूपम् अस्य अस्ति** विग्रह करके **रूप+सु** इस स्थिति में **रूपादाहतप्रशंसयोर्यप्** सूत्र द्वारा **यप् (य)** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और अकारलोप होकर **रूप्य** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **रूप्यः** सिद्ध हो जाता है। यह आहतार्थ का उदाहरण है।

प्रशस्तं रूपमस्यास्तीति रूप्यो गौः। प्रशंसित रूप वाला बैल। **प्रशस्तं रूपम् अस्य अस्ति** विग्रह करके **रूप+सु** इस स्थिति में पूर्ववत् प्रक्रिया की जाती है। यह प्रशंसार्थ का उदाहरण है।

'आहत' इति किम्? रूपवान्। प्रकृत सूत्र में **आहतप्रशंसयोः** पद से आहत और प्रशंसा अर्थ में विद्यमान रूप-शब्द से ही यप् प्रत्यय होता है, अन्य अर्थ में रहने पर नहीं होता। अतः **रूपम् अस्य अस्ति** (सुन्दर रूप वाला) अर्थ में यह प्रत्यय नहीं हुआ अपितु औत्सर्गिक मतुप्-प्रत्यय होकर **रूपवान्** सिद्ध हो जाता है।

अन्येभ्योऽपि दृश्यते। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- अन्य प्रातिपदिकों से भी मत्वर्थ में यप्-प्रत्यय देखा जाता है। **दृश्यते** पद से यह अर्थ निकलता है कि जहाँ शिष्ट-प्रयोगों में यप्-प्रत्ययान्त रूप देखा जाता है, केवल वही मानना चाहिये, न कि हमें स्वतन्त्रया किसी भी शब्द से यप्-प्रत्यय करना चाहिये।

हिम्याः पर्वताः। बहुत हिमों से युक्त पर्वत। **हिमम् एषाम् अस्ति** विग्रह करके **हिम+सु** इस स्थिति में **अन्येभ्योऽपि दृश्यते** वार्तिक द्वारा **यप् (य)** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और अकारलोप होकर **हिम्य** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर बहुवचन में **हिम्याः** सिद्ध हो जाता है।

गुण्या ब्राह्मणाः। प्रशस्त गुणों से युक्त ब्राह्मण-गण। **गुणाः एषां सन्ति** विग्रह करके **गुण+जस्** इस स्थिति में **अन्येभ्योऽपि दृश्यते** वार्तिक द्वारा **यप् (य)** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और अकारलोप होकर **गुण्य** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर बहुवचन में **गुण्याः** सिद्ध हो जाता है।

१९२८. अस्मायामेधास्रजो विनिः ५।२।१२१॥

यशस्वी, यशस्वान्। मायावी। व्रीह्यादिपाठादिनिठनौ, मायी, मायिकः। क्विन्नन्तत्वात्कुः, स्रग्वी।

'आमयस्योपसंख्यानं दीर्घश्च'(वा.३२१३)। आमयावी।
'शृङ्गवृन्दाभ्यामारकन्'(वा.३२१४) शृङ्गारकः। वृन्दारकः।
'फलबर्हाभ्यामिनच्'(वा.३२१५)। फलिनः। बर्हिणः।
'हृदयाच्चालुरन्यतरस्याम्'(वा.३२१६)। इन्ठनौ मतुप्च।
हृदयालुः, हृदयी, हृदयिकः, हृदयवान्।
'शीतोष्णतृप्रेभ्यस्तदसहने-' (वा.३२१७)। शीतं न सहते शीतालुः। उष्णालुः।
'स्फायितञ्चि' (उ.सू. २.१३) इति रक्। तृप्रः पुरोडाशः, तं न सहते तृप्रालुः। 'तृप्रं दुःखम्' इति माधवः।
'हिमाच्चेलुः'(वा.३२१८)। हिमं न सहते हिमेलुः।
'बलादूलः'(वा.३२१९) बलं न सहते बलूलः।
'वातात्समूहे च'(वा.३२२०) वातं न सहते वातस्य समूहो वा वातूलः।
'तप्पर्वमरुद्भ्याम्'(वा.३२२१)। पर्वतः। मरुत्तः।

अस्मायामेधास्रजो विनिः। अस् च माया च मेधा च स्रक् च तेषां समाहारद्वन्द्व अस्मायामेधास्रज्, तस्मात्। अस्मायामेधास्रजः पञ्चम्यन्तं, विनिः प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

प्रथमान्त असन्त शब्द और माया, मेधा तथा स्रज् शब्दों से मत्वर्थ में विनि प्रत्यय होता है।

विनि में नकारोत्तरवर्ती **इकार** इत्संज्ञक है, **विन्** बचता है।

यशस्वी, यशस्वान्। जिसका यश, कीर्ति हो अथवा जिसमें यश, कीर्ति हो अर्थात् यश, कीर्ति वाला। **यशः अस्य अस्ति** अथवा **यशः अस्मिन् अस्ति** लौकिक विग्रह और **यशस् सु** अलौकिक विग्रह है। यह असन्त शब्द है। **अस्मायामेधास्रजो विनिः** से **विनि** हुआ। अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **यशस्+विन्=यशस्विन्** बना। **योगिन्** से **योगी, योगिनौ, योगिनः** की तरह **यशस्विन्** से **यशस्वी, यशस्विनौ, यशस्विनः** आदि रूप बनते हैं। मतुप् होने के पक्ष में अवर्णोपध मानकर मकार के स्थान पर वकार आदेश करके **यशस्वान्, यशस्वन्तौ, यशस्वन्तः** आदि बनाये जाते हैं। स्त्रीलिङ्ग में **यशस्विनी, यशस्विन्यौ, यशस्विन्यः** आदि रूप बनते हैं।

मायावी। माया वाला, कपटी। **माया अस्य अस्ति** अथवा **माया अस्मिन् अस्ति** लौकिक विग्रह और **माया सु** अलौकिक विग्रह है। **अस्मायामेधास्रजो विनिः** से **विनि** हुआ। अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **माया+विन्=मायाविन्** बना। सु आदि विभक्ति आने पर **मायावी, मायाविनौ, मायाविनः** आदि रूप बनते हैं।

स्त्रीलिङ्ग में **मायाविनी, मायाविन्यौ, मायाविन्यः** आदि रूप बनाये जाते हैं।

मेधावी। धारणावती बुद्धि वाला। **मेधा अस्य अस्ति** अथवा **मेधा अस्मिन् अस्ति** लौकिक विग्रह और **मेधा सु** अलौकिक विग्रह है। **अस्मायामेधास्रजो विनिः** से **विनि** हुआ। अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **मेधा+विन्=मेधाविन्** बना। सु आदि विभक्ति आने पर **मेधावी, मेधाविनौ, मेधाविनः** आदि रूप बनते हैं। स्त्रीलिङ्ग में **मेधाविनी, मेधाविन्यौ, मेधाविन्यः** आदि रूप बनाये जाते हैं। इसी प्रकार **स्रज्** से **स्रग्वी, स्रग्विणौ, स्रग्विणः** आदि रूप बनाइये।

क्विन्नन्तात् कुः। **स्रग्वी।** माला, हार वाला। **स्रक् अस्य अस्ति।** स्रज् सु में **अस्मायामेधास्रजो विनिः** से **विनि** हुआ। अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **स्रज्+विन्** बना। **स्वादिष्वसर्वनामस्थाने** से पदत्व के कारण **क्विन्प्रत्ययस्य कुः** से **कुत्व** होकर **जकार** के स्थान पर **गकार** होकर **स्रग्विन्** बना। सु आदि विभक्ति आने पर **स्रग्वी, स्रग्विणौ, स्रग्विणः** आदि रूप बनते हैं।

अब सूत्रोक्त शब्दों के अतिरिक्त अन्य शब्दों से भी मत्वर्थ में **विनि**-प्रत्ययान्त या अन्य-प्रत्ययान्त प्रयोगों की समीचीनता के लिये कुछ वार्तिकों का अवतरण कर रहे हैं-

आमयस्योपसंख्यानं दीर्घश्च। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- आमय-शब्द से भी मत्वर्थ में विनि-प्रत्यय होता है, साथ ही अन्त्य अच् को दीर्घ भी।

आमयावी। रोग वाला। **आमयः अस्य अस्ति** विग्रह करके **आमय+सु** इस स्थिति में **आमयस्योपसंख्यानं दीर्घश्च** वार्तिक द्वारा **विनि**-प्रत्यय के साथ प्रकृतिस्थ यकारोत्तरवर्ती अकार को दीर्घ होता है। इसके बाद प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **आमयाविन्** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आमयावी** सिद्ध हो जाता है।

शृङ्गवृन्दाभ्यामारकन्। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- शृङ्ग और वृन्द इन प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में आरकन्-प्रत्यय होता है। नकार इत्संज्ञक है, **आरक** बचता है।

शृङ्गारकः। सींग वाला। **शृङ्गम् अस्य अस्ति** विग्रह करके **शृङ्ग+सु** इस स्थिति में **शृङ्गवृन्दाभ्यामारकन्** वार्तिक द्वारा **आरकन्**-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **शृङ्गारक** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **शृङ्गारकः** सिद्ध हो जाता है।

वृन्दारकः। झुण्ड वाला, देवता। **वृन्दम् अस्य अस्ति** विग्रह करके **वृन्द+सु** इस स्थिति में **शृङ्गवृन्दाभ्यामारकन्** वार्तिक द्वारा **आरकन्**-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुब्लुक्, अकारलोप होकर **वृन्दारक** और स्वादिकार्य होकर **वृन्दारकः** सिद्ध हो जाता है।

फलबर्हाभ्यामिनच्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- फल और बर्ह इन प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में इनच्-प्रत्यय होता है। चकार इत्संज्ञक है, **इन** बचता है। अजादि-प्रत्यय होने के कारण इसके परे रहते प्रकृति की **यचि भम्** सूत्र से भसंज्ञा हो जाती है।

फलिनः। फल वाला। **फलम् अस्मिन् अस्ति** विग्रह करके **फल+सु** इस स्थिति में **फलबर्हाभ्यामिनच्** वार्तिक द्वारा **इनच्**-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुब्लुक्, अकारलोप होकर **फलिन** और स्वादिकार्य होकर **फलिनः** सिद्ध हो जाता है।

बर्हिणः। पूँछ वाला, मोर। **बर्हः अस्मिन् अस्ति** विग्रह करके **बर्ह+सु** इस स्थिति में **फलबर्हाभ्यामिनच्** वार्तिक द्वारा **इनच्**-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुब्लुक्, अकारलोप और नकार को णत्व होकर **बर्हिण** तथा स्वादिकार्य होकर **बर्हिणः** सिद्ध हो जाता है।

हृदयाच्चालुरन्यतरस्याम्। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- हृदय-शब्द से मत्वर्थ में आलु-प्रत्यय विकल्प से होता है।

इन्ठनौ मतुप्च। प्रकृत वार्तिक में **अन्यतरस्याम्** पद समुच्चयार्थक है। अतः **अत इनिठनौ** सूत्र से होने वाले **इनि** और **ठन्** प्रत्यय तथा **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** सूत्र से होने वाला **मतुप्** ये तीन प्रत्यय भी होते हैं।

हृदयालुः, हृदयी, हृदयिकः, हृदयवान्। उदार हृदय वाला। **प्रशस्तं हृदयम् अस्य अस्ति** विग्रह करके **हृदय+सु** इस स्थिति में **हृदयाच्चालुरन्यतरस्याम्** से **आलु** प्रत्यय होने पर भसंज्ञा और अकार का लोप होकर **हृदयालु** शब्द बनता है। **इनि** प्रत्यय होने के पक्ष में अकारलोप होकर **हृदयिन्** शब्द बनता है। **ठन्** प्रत्यय होने के पक्ष में इकादेश और अकारलोप होकर **हृदयिक** शब्द बनता है और **मतुप्** प्रत्यय होने के पक्ष में मकार को वकार आदेश होकर **हृदयवत्** शब्द बनता है। चारों जगह स्वादिकार्य होने पर **हृदयालुः, हृदयी, हृदयिकः** और **हृदयवान्** ये रूप सिद्ध हो जाते हैं।

शीतोष्णतृप्रेभ्यस्तदसहने। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- द्वितीया-समर्थ शीत, उष्ण और तृप्र इन प्रातिपदिकों से असहन (सहन न करना) रूप मत्वर्थ में आलु-प्रत्यय होता है।

शीतं न सहते शीतालुः। शीत (ठंड) को जो न सह सके। **शीतं न सहते** विग्रह करके **शीत+अम्** इस स्थिति में **शीतोष्णतृप्रेभ्यस्तदसहने** वार्तिक द्वारा **आलु** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञा और अकारलोप होकर **शीतालु** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **शीतालुः** सिद्ध हो जाता है।

उष्णालुः। गर्मी को जो न सह सके। **उष्णं न सहते** विग्रह करके **उष्ण+अम्** इस स्थिति में **शीतोष्णतृप्रेभ्यस्तदसहने** वार्तिक द्वारा **आलु** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञा और अकारलोप होकर **उष्णालु** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **उष्णालुः** सिद्ध हो जाता है।

'स्फायितञ्चि' (२.१३) इति रक्। सूत्रोक्त **तृप्र**-शब्द रि निष्पत्ति बता रहे हैं- **तृप्यति तर्पयति वा** अर्थ में **तृप प्रीणने (तृप्)** धातु से **स्फायितञ्चिवञ्चिशकि-क्षिपिक्षुदि०** सूत्र के द्वारा रक् प्रत्यय होकर **तृप्र**, स्वादिकार्य से **तृप्रः** सिद्ध हो जाता है।

तृप्रः पुरोडाशः, तं न सहते तृप्रालुः। पुरोडाश, हवनीय पदार्थ को **तृप्र** कहते हैं और उसको न सहने वाला। **तृप्रं न सहते** विग्रह करके **तृप्र+अम्** इस स्थिति में **शीतोष्णतृप्रेभ्यस्तदसहने** वार्तिक द्वारा **आलु** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञा और अकारलोप होकर **तृप्रालु** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **तृप्रालुः** सिद्ध हो जाता है।

'तृप्रं दुःखम्' इति माधवः। माधवाचार्य के मत में **तृप्र** शब्द का अर्थ है- दुःख। तदनुसार **तृप्रालु** का अर्थ होगा- दुःख न सहने वाला।

हिमाच्चेलुः। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- सहन न करना अर्थ में द्वितीया-समर्थ हिम-प्रातिपदिक से चेलु-प्रत्यय होता है। चकार इत्संज्ञक है, **एलु** बचता है।

हिमं न सहते हिमेलुः। हिम को जो न सह सके। **हिमं न सहते** विग्रह करके **हिम+अम्** इस स्थिति में **हिमाच्चेलुः** वार्तिक द्वारा **चेलु** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञा और अकारलोप होकर **हिमेलु** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **हिमेलुः** सिद्ध हो जाता है।

बलादूलः। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- सहन न करना अर्थ में द्वितीयान्त बल-प्रातिपदिक से ऊल-प्रत्यय होता है।

बलं न सहते बलूलः। बल को जो न सह सके। **बलं न सहते** विग्रह करके **बल+अम्** इस स्थिति में **बलादूलः** वार्तिक द्वारा **ऊल** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञा और अकारलोप होकर **बलूल** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **बलूलः** सिद्ध हो जाता है।

वातात्समूहे च। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- षष्ठ्यन्त वात-शब्द से समूह अर्थ में और द्वितीयान्त वात-शब्द से असहन-अर्थ में ऊल-प्रत्यय होता है।

वातं न सहते वातस्य समूहो वा वातूलः। वात का समूह=बवण्डर या वात न सहने वाला। **वातं न सहते** विग्रह में **वात+अम्** स्थिति है और **वातस्य समूहः** विग्रह में **वात+ङस्** स्थिति है। उभयत्र **वातात्समूहे च** वार्तिक द्वारा **ऊल** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञा और अकारलोप होकर **वातूल** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वातूलः** सिद्ध हो जाता है।

तप्पर्वमरुद्भ्याम्। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- प्रथमा-समर्थ पर्व और मरुत् इन प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में तप्-प्रत्यय होता है। पकार इत्संज्ञक है, **त** बचता है।

पर्वतः। पहाड़। **पर्वाणि अस्य सन्ति** विग्रह करके **पर्वन्+जस्** इस स्थिति में **तप्पर्वमरुद्भ्याम्** वार्तिक द्वारा **तप्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप्

का लुक् तथा नकार का लोप होकर **पर्वत** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पर्वतः** सिद्ध हो जाता है।

मरुत्तः। एक राजा। **मरुतः परिवेष्टारः अस्य सन्ति** विग्रह करके **मरुत्+जस्** इस स्थिति में **तप्परमरुद्भ्याम्** वार्तिक द्वारा **तप्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **मरुत्त** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **मरुत्तः** सिद्ध हो जाता है।

१९२९. ऊर्णाया युस् ५।२।१२३॥

सित्वात् पदत्वम्। ऊर्णायुः। अत्र 'छन्दसि' इति केचिदनुवर्तयन्ति। युक्तं चैतत्। अन्यथा हि 'अहंशुभमोः-' (सू.१९४६) इत्यत्रैवोर्णाग्रहणं कुर्यात्।

ऊर्णाया युस्। ऊर्णायाः पञ्चम्यन्तं, युस् प्रथमान्तम्। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति आती है साथ ही **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

प्रथमान्त ऊर्णा-शब्द से मत्वर्थ में युस् प्रत्यय होता है।

सित्वात् पदत्वम्। अर्थात् **युस्** में सकार इत्संज्ञक है, **यु** बचता है। इसके सित् होने के कारण **सिति च** सूत्र के द्वारा प्रकृति की पदसंज्ञा होती है, जिससे भसंज्ञा का बाध हो जाता है। फलतः यकार के परे रहते भी आकारलोप नहीं हो पाता।

ऊर्णायुः। ऊन वाला। **ऊर्णाः अस्मिन् सन्ति** विग्रह करके **ऊर्णा+जस्** इस स्थिति में **ऊर्णाया युस्** सूत्र द्वारा युस्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, पदसंज्ञा से भसंज्ञा का बाध, अकारलोपाभाव होकर **ऊर्णायु** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **ऊर्णायुः** सिद्ध होता है।

अत्र 'छन्दसि' इति केचिदनुवर्तयन्ति। युक्तं चैतत्। अन्यथा हि 'अहंशुभमोः-' (सू.१९४६) इत्यत्रैवोर्णाग्रहणं कुर्यात्। कुछ विद्वानों ने अष्टाध्यायीक्रम में इस सूत्र से पहले **बहुलं छन्दसि** पढ़े जाने से इस सूत्र में **छन्दसि** पद की अनुवृत्ति लाना स्वीकार किया है। दीक्षित जी भी इस मत को युक्त=समुचित मानते हैं तथा यह तर्क उपस्थापित करते हैं कि यदि वैदिक प्रयोग में **युस्** प्रत्यय इष्ट न होता तो सूत्रकार **ऊर्णा** शब्द का पाठ वक्ष्यमाण **अहंशुभंयोर्युस्** (५.२.१४०) सूत्र में कर देते। इससे यह सिद्ध होता है कि **ऊर्णायुः** यह वैदिक प्रयोग है।

१९३०. वाचो ग्मिनिः ५।२।१२४॥

वाग्ग्मी।

वाचो ग्मिनिः। वाचः पञ्चम्यन्तं, ग्मिनिः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** एवं **तद्धिताः** का अधिकार है।

'वाच्' इस प्रथमान्त समर्थ प्रातिपदिक से मत्वर्थ में 'ग्मिनि' प्रत्यय होता है।

ग्मिनि में अन्त्य इकार इत्संज्ञक है, **ग्मिन्** शेष रहता है।

वाग्ग्मी। प्रशस्त वाणी वाला, बोलने में चतुर। **प्रशस्ता वागस्त्यस्य** विग्रह करके **वाच्+सु** इस स्थिति में **वाचो ग्मिनिः** सूत्र से **ग्मिनि** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **वाच्+ग्मिन्** बना। **चकार** को **चोः कुः** से कुत्व होकर **ककार** बना। उसको **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व होकर **गकार** हुआ- **वाग्ग्मिन्** बना। इससे स्वादि कार्य करके **वाग्ग्मी, वाग्ग्मिनौ, वाग्ग्मिनः** आदि रूप बनते हैं। यथार्थ एवं सन्तुलित बोलने वाले को **वाग्ग्मी** कहते हैं तो **बोलक्कड़** को **वाचालः** कहते हैं। इसमें **आलच्** प्रत्यय होता है।

कुछ व्याख्याकारों ने यहाँ पर पर चकार को गकार आदेश और **मिनि** प्रत्यय का विधान माना है। तदनुसार एक गकारात्मक रूप **वाङ्मी** बचता है। गकार-संयुक्त प्रत्यय करने पर तो **प्रत्यये भाषायां नित्यम्** से अनुनासिक नहीं होता, क्योंकि गकार अनुनासिक नहीं है।

१९३१. आलजाटचौ बहुभाषिणि ५।२।१२५॥

'कुत्सित इति वक्तव्यम्' (वा.३२२३)। कुत्सितं बहु भाषते वाचालः, वाचाटः। यस्तु सम्यग्बहु भाषते स वाग्ग्मीत्येव।

आलजाटचौ बहुभाषिणि। आलच् च आटच् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः- आलजाटचौ प्रथमान्तं, बहुभाषिणि सप्तम्यन्तम्। **वाचो ग्मिनिः** से **वाचः** की और **तदस्यास्त्यस्मिन्निति** मतुप् से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति आती है साथ ही **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

'वाच्' इस प्रथमान्त प्रातिपदिक से मत्वर्थ में बहुत बोलने वाला अर्थ अभिधेय होने पर आलच् और आटच् प्रत्यय होते हैं।

कुत्सित इति वक्तव्यम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- प्रकृत सूत्र में **कुत्सिते** शब्द और जोड़ देना चाहिये अर्थात् **निरर्थक अधिक बोलने वाला** अभिधेय होने पर ही उक्त प्रत्ययों का विधान होना चाहिये। ये प्रत्यय **ग्मिनि** प्रत्यय के अपवाद हैं। **ग्मिनि** और **आलच्** तथा **आटच्** प्रत्ययों में अर्थ का भेद दिखाने के लिये यहाँ भाष्योक्त वार्तिक का अवतरण किया गया है।

कुत्सितं बहु भाषते वाचालः, वाचाटः। व्यर्थ बकवास करने वाला। **कुत्सितं बहुभाषते** विग्रह करके **वाच्+सु** इस स्थिति में **कुत्सित इति वक्तव्यम्** वार्तिक की अर्थ-सहायता से **आलजाटचौ बहुभाषिणि** सूत्र से **आलच्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **वाचाल** शब्द बना है। इसी सूत्र से **आटच्** प्रत्यय करने पर **वाचाट** भी बन गया है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य करके **वाचालः** और **वाचाटः** ये प्रयोग सिद्ध हो जाते हैं।

यस्तु सम्यग्बहु भाषते स वाग्मीत्येव। जो तो सही-सही सम्यग्भाषण अधिक भी करता है, वहाँ तो पूर्वसूत्र से **ग्मिनि** प्रत्यय होकर **वाग्मी** ही बनता है।

वाग्मी=यथार्थ कुशल वक्ता।

वाचालः, वाचाटः=व्यर्थ बकवास करने वाला।

१९३२. स्वामिन्नैश्वर्ये ५।२।१२६॥

ऐश्वर्यवाचकात् स्वशब्दान्मत्वर्थे आमिनच्। स्वामी।

स्वामिन्नैश्वर्ये। स्वामिन् लुप्तप्रथमाकं पदम्, ऐश्वर्ये सप्तम्यन्तम्। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

ऐश्वर्य-वाचक स्व-शब्द से मत्वर्थ में आमिनच्-प्रत्यय का निपातन करके स्वामिन्-शब्द को साधु माना जाता है।

ऐश्वर्य से तात्पर्य धन नहीं है। अतः **स्वामी** शब्द का अर्थ धनवान् नहीं है अपितु **मालिक** अर्थात् **नियन्ता** माना गया है। **आमिनच्** में चकार इत्संज्ञक और अन्त्य अकार उच्चारणार्थ है, **आमिन्** बचता है।

स्वामी। नियन्ता, मालिक। **स्वम्=ऐश्वर्यम् अस्य अस्ति** विग्रह करके **स्व+सु** इस स्थिति में **स्वामिन्नैश्वर्ये** सूत्र से **आमिनच्** प्रत्यय का निपातन करके अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञा और अकारलोप करके **स्वामिन्** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होने पर **स्वामी, स्वामिनौ, स्वामिनः** इत्यादि रूप बनते हैं। स्त्रीलिंग में **ऋन्नेभ्यो ङीप्** से ङीप् होकर **स्वामिनी** शब्द बनता है और इसके रूप **नदी** शब्द के समान होते हैं।

१९३३. अर्शआदिभ्योऽच् ५।२।१२७॥

अर्शांस्यस्य विद्यन्ते अर्शसः। आकृतिगणोऽयम्।

अर्शआदिभ्योऽच्। अर्शस्-शब्द आदिर्येषां ते अर्शआदयस्तेभ्यः। अर्शआदिभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अच् प्रथमान्तम्। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन्**

इति इन पदों की अनुवृत्ति आती है तथा **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

अर्शस् आदि गणपठित प्रथमा समर्थ प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में अच् प्रत्यय होता है।

चकार इत्संज्ञक है, **अ** शेष रहता है। यह सूत्र **अस्मायामेधास्रजो विनिः** का बाधक है। **अर्शस् आदि** यह **आकृतिगण** है।

अर्शसः। अर्श, बवासीर रोग वाला। **अर्शांसि अस्य सन्ति** विग्रह करके **अर्शस्+जस्** इस स्थिति में **अर्शआदिभ्योऽच्** से **अच्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अर्शस्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **अर्शस** बना। इससे स्वादि कार्य करके **अर्शसः, अर्शसौ, अर्शसाः** आदि रूप बनते हैं।

आकृतिगणोऽयम्। यद्यपि अर्शआदि आकृतिगण है तथापि गणपाठ में कुछ शब्द उदाहरण के रूप में दिये गये हैं।

अर्शाआदिगणः- अर्शस्, उरस्, तुन्द, चतुर, पलित, जटा, घटा, घाटा, अभ्र, अघ कर्दम, अम्ल, लवण। **स्वाङ्गाद्धीनात्। वर्णात्।**

१९३४. द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात् प्राणिस्थादिनिः ५।२।१२८॥

द्वन्द्वः- कटकवलयिनी। शङ्खनूपुरिणी। उपतापो रोगः। कुष्ठी। किलासी। गर्ह्यं निन्द्यम्। ककुदावर्ती। काकतालुकिनी। 'प्राणिस्थात्' किम्? पुष्पफलवान् घटः। 'प्राण्यङ्गान्न'। पाणिपादवती। 'अतः' इत्येव। चित्रकललाटिकावती। सिद्धे प्रत्यये पुनर्वचनं ठनादिबाधनार्थम्।

द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात्प्राणिस्थादिनिः। द्वन्द्वश्च उपतापश्च गर्ह्यं च तेषां समाहारद्वन्द्वो द्वन्द्वोपतापगर्ह्यम्, तस्माद् द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात्। प्राणिनि तिष्ठतीति प्राणिस्थस्तस्मात् प्राणिस्थात्। द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात् पञ्चम्यन्तं, प्राणिस्थात् पञ्चम्यन्तम्, इनिः प्रथमान्तम्। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति** मतुप् से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन्** इति इन पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है। **अत इनिठनौ** से **अतः** की भी अनुवृत्ति मानी जाती है।

प्रथमा-समर्थ द्वन्द्वसमासयुक्त, उपताप=रोगवाची और गर्ह्य=निन्दावाची प्राणिविषयक प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में इनि-प्रत्यय होता है।

विशेष्यवाची शब्द **प्राणिस्थात्** है और उसका विशेषण है- **द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात्।**

द्वन्द्वः। द्वन्द्वसमासयुक्त शब्दों का उदाहरण दिया जा रहा है-

कटकवलयिनी। हाथ-पैरों के गहने वाली स्त्री। **कटकं च वलयश्च कटकवलयौ, तौ अस्याः स्तः** विग्रह करके **कटकवलय+औ** इस स्थिति में **द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात्प्राणिस्थादिनिः** सूत्र से इनि-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा,

सुप् का लुक् और भसंज्ञा करके अकारलोप करने पर **कटकवलयिन्** शब्द बनता है। स्त्रीत्व में **ऋन्नेभ्यो ङीप्** सूत्र से ङीप् प्रत्यय होकर **कटकवलयिनी** बनने के बाद स्वादिकार्य होता है।

शङ्खनूपुरिणी। शंख और बिछुओं वाली स्त्री। **शङ्खं च नूपुरं च शङ्खनूपुरे, ते अस्याः स्तः** विग्रह करके **शङ्खनूपुर+औ** इस स्थिति में **द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात्प्राणिस्थादिनिः** सूत्र से इनि-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञा करके अकारलोप करने पर **शङ्खनूपुरिन्** शब्द बनता है। स्त्रीत्व में **ऋन्नेभ्यो ङीप्** सूत्र से ङीप् प्रत्यय और नकार को णत्व होकर **शङ्खनूपुरिणी** बनने के बाद स्वादिकार्य होता है।

उपतापो रोगः। उपताप-शब्द का अर्थ है- रोग। अब उसके उदाहरण दिये जा रहे हैं-

कुष्ठी। कुष्ठ-रोग वाला। **कुष्ठम् अस्य अस्ति** विग्रह करके **कुष्ठ+सु** इस स्थिति में **द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात्प्राणिस्थादिनिः** सूत्र से इनि-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञा करके अकारलोप करने पर **कुष्ठिन्** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कुष्ठी** सिद्ध हो जाता है।

किलासी। कुष्ठ-विशेष रोग वाला। **किलासः अस्य अस्ति** विग्रह करके **किलास+सु** इस स्थिति में **द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात्प्राणिस्थादिनिः** सूत्र से इनि-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञा करके अकारलोप करने पर **किलासिन्** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **किलासी** सिद्ध हो जाता है।

गर्ह्यं निन्द्यम्। सूत्रोक्त **गर्ह्य** शब्द का अर्थ है- **निन्दनीय।** अब उसके उदाहरण दिये जा रहे हैं-

ककुदावर्ती। कन्धे पर भौंरी वाला। **ककुदे आवर्तः ककुदावर्तः, स अस्य अस्ति** विग्रह करके **ककुदावर्त+सु** इस स्थिति में **द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात्प्राणिस्थादिनिः** सूत्र से इनि-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञा करके अकारलोप करने पर **ककुदावर्तिन्** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **ककुदावर्ती** सिद्ध हो जाता है।

काकतालुकिनी। कौए की तरह तालु वाली स्त्री। **काकस्य इव तालुके काकतालुके, ते अस्याः स्तः** विग्रह करके **काकतालुक+औ** इस स्थिति में **द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात् प्राणिस्थादिनिः** सूत्र से इनि-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञा करके अकारलोप करने पर **काकतालुकिन्** शब्द बनता है। स्त्रीत्वविवक्षा में **ऋन्नेभ्यो ङीप्** से ङीप् होकर **काकतालुकिनी** शब्द बनता है तथा एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **काकतालुकिनी** सिद्ध हो जाता है।

'प्राणिस्थात्' किम्? पुष्पफलवान् घटः। प्रकृतसूत्र में **प्राणिस्थात्** पद के निवेश से प्राणिस्थ पदार्थ के वाचक शब्दों से ही यह प्रत्यय होता है, अन्यथा नहीं होता। अतः द्वन्द्वसमासयुक्त **पुष्पफलवान् (घटः)** में इनि-प्रत्यय नहीं हुआ, क्योंकि पुष्प और फल शब्द प्राणिस्थ पदार्थ के वाचक नहीं हैं। **पुष्पं च फलं चेति पुष्पफले ते अस्य स्तः** विग्रह करके **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** सूत्र से मतुप्-प्रत्यय होने पर मकार को वकार आदेश होकर **पुष्पफलवत्** शब्द बनता है और स्वादिकार्य से **पुष्पफलवान्** सिद्ध हो जाता है।

'प्राण्यङ्गान्न'। पाणिपादवती। यह वार्तिक नहीं है किन्तु आचार्य-व्याख्यान से यह बताया गया है कि यद्यपि प्राणिस्थवाची शब्दों से इनि-प्रत्यय होता है तथापि प्राण्यंगवाची शब्दों से नहीं होता। अतः **पाणी च पादौ च तयोः समाहारद्वन्द्वः पाणिपादं, तदस्यास्तीति** विग्रह करके यहाँ प्राण्यंग होने के कारण इनि-प्रत्यय नहीं हुआ, अपितु मतुप्-प्रत्यय और मकार को वकारादेश, स्त्रीत्वविवक्षा में ङीप् और स्वादिकार्य होकर **पाणिपादवती** सिद्ध हो जाता है। **इनि** प्रत्यय होता तो **पाणिपादिनी** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता।

'अतः' इत्येव। चित्रकललाटिकावती। प्रकृतसूत्र में मण्डूकप्लुतिन्याय से **अत इनिठनौ** से **अतः** की अनुवृत्ति मानी जाती है। यह बात **समासान्ताः** सूत्र के भाष्य से सूचित होती है। अतः ह्रस्व-अकारान्त शब्दों से ही यह प्रत्यय होता है, भले ही वह द्वन्द्व क्यों न हो। फलतः **चित्रकं च ललाटिका च चित्रललाटिके ते अस्याः स्तः** विग्रह करके **चित्रललाटिका+औ** इस स्थिति में अदन्त न होने के कारण प्रकृतसूत्र से इनि-प्रत्यय नहीं हुआ अपितु **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** सूत्र द्वारा मतुप-प्रत्यय होने पर मकार को वकारादेश होकर **चित्रकललाटिकावत्** शब्द बनता है और स्त्रीत्व में ङीप् प्रत्यय होकर **चित्रकललाटिकावती** बनने के बाद स्वादिकार्य हो जाता है।

सिद्धे प्रत्यये पुनर्वचनं ठनादिबाधनार्थम्। यद्यपि प्रकृत सूत्र के उदाहरणभूत उपर्युक्त शब्दों में **अत इनिठनौ** सूत्र से भी **इनि** प्रत्यय सिद्ध था, तथापि उससे **इनि** के साथ **ठन्** प्रत्यय की प्राप्ति होती, उसके बाधनार्थ प्रकृत सूत्र से पृथक् विधान किया गया है।

१९३५. वातातीसाराभ्यां कुक् च ५।२।१२९॥

चादिनिः। वातकी। अतीसारकी।

'रोगे चायमिष्यते'। नेह- वातवती गुहा।

'पिशाचाच्च' (वा.३२२४)। पिशाचकी।

वातातीसाराभ्यां कुक् च। वातश्च अतीसारश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो वातातीसारौ, ताभ्यां वातातीसाराभ्यां पञ्चम्यन्तं, कुक् प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात्प्राणिस्थादिनिः**

से **इनिः** की और **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

प्रथमा-समर्थ वात और अतीसार इन प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में इनि-प्रत्यय के साथ प्रकृति को कुक् आगम भी होता है।

चादिनिः। प्रकृत सूत्रस्थ **च** शब्द से इनि-प्रत्यय का भी विधान माना जाता है। इस तरह प्रकृति को कुक् आगम और प्रकृति से इनि-प्रत्यय दोनों होते हैं। एतदर्थ उद्देश्यबोधक **वातातीसाराभ्याम्** की आवृत्ति की जाती है। एक को पञ्चम्यन्त और एक को षष्ठ्यन्त मान लिया जाता है। प्रत्ययविधि हेतु पञ्चम्यन्त और आगम-विधि हेतु षष्ठ्यन्त मानना चाहिये। कुक् में अन्त्य ककार इत्संज्ञक और उकार उच्चारणार्थक है, **क्** मात्र बचता है तथा इसके कित् होने के कारण **आद्यन्तौ टकितौ** के नियम से प्रकृति का अन्तावयव होकर बैठता है।

वातकी। वात रोग वाला। **वातः अस्य अस्ति** विग्रह करके **वात+सु** इस स्थिति में **वातातीसाराभ्यां कुक् च** सूत्र से **इनि** प्रत्यय के साथ **कुक्** आगम होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **वातक्+इन्=वातकिन्** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वातकी** सिद्ध हो जाता है।

अतीसारकी। अतीसार=विरेचन रोग वाला। **अतीसारः (अतिसारः) अस्य अस्ति** विग्रह करके **अतीसार+सु** इस स्थिति में **वातातीसाराभ्यां कुक् च** सूत्र से **इनि** प्रत्यय के साथ **कुक्** आगम होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **अतीसारक्+इन्=अतीसारकिन्** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **अतीसारकी** सिद्ध हो जाता है।

'रोगे चायमिष्यते'। नेह- वातवती गुहा। प्रकृत सूत्र से जो विधान किया गया है, वह रोगवाची **वात** और **अतीसार** शब्दों से ही होता है, अन्य अर्थ होने पर नहीं होता। अतः **वायु वाली गुफा** अर्थ में रोगवाची न होने के कारण **वात**-शब्द से इनि-प्रत्यय और कुगागम नहीं हुआ, अपितु मतुप्-प्रत्यय होकर **वातवत्** और स्त्रीप्रत्यय होकर **वातवती** बनता है।

पिशाचाच्च। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- पिशाच-शब्द से भी मत्वर्थ में इनि-प्रत्यय और कुक् ये दो कार्य होते हैं।

पिशाचकी। पिशाचों वाला। **पिशाचाः अस्य सन्ति** विग्रह करके **पिशाच+जस्** इस स्थिति में **पिशाचाच्च** वार्तिक से **इनि** प्रत्यय के साथ **कुक्** आगम होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **पिशाचक्+इन्=पिशाचकिन्** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पिशाचकी** सिद्ध हो जाता है।

१९३६. वयसि पूरणात् ५।२।१३०॥

पूरणप्रत्ययान्तान्मत्वर्थे इनिः स्याद्वयसि द्योत्ये।

मासः संवत्सरो वा पञ्चमोऽस्यास्तीति पञ्चम्युष्ट्रः। ठनादिबाधनार्थमिदम्।

'वयसि' किम् पञ्चमवान् ग्रामः।

वयसि पूरणात्। वयसि सप्तम्यन्तं, पूरणात् पञ्चम्यन्तम्। **द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात् प्राणिस्थादिनिः** से **इनिः** की और **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

प्रथमा-समर्थ पूरण-प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में इनि-प्रत्यय होता है, अवस्था गम्य होने पर।

मासः संवत्सरो वा पञ्चमोऽस्यास्तीति पञ्चम्युष्ट्रः। पाँच मास या पाँच वर्ष वाला ऊँट। **मासः संवत्सरो वा पञ्चमः अस्य अस्ति** विग्रह करके पूरण-प्रत्ययान्त **पञ्चम+सु** इस स्थिति में **वयसि पूरणात्** सूत्र से **इनि** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पञ्चमिन्** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पञ्चमी** सिद्ध हो जाता है। ध्यान रहे कि यहाँ **पञ्चमी** शब्द स्त्रीलिंग नहीं है अपितु इन्नन्त **पञ्चमिन्** शब्द का पुंल्लिंग में प्रथमा-एकवचनान्त रूप है। स्त्रीलिंग में तो ङीप् होकर **पञ्चमिनी** बनेगा।

ठनादिबाधनार्थमिदम्। पूरण-प्रत्ययान्त शब्दों के अदन्त होने के कारण यथाप्राप्त ठन् और मतुप् का बाध करने के लिये प्रकृत सूत्र की सार्थकता है।

'वयसि' किम्? पञ्चमवान् ग्रामः। सूत्र में **वयसि** पद का निवेश होने से अवस्था गम्य होने पर ही इनि-प्रत्यय होता है, अन्यथा नहीं होता। अतः **पञ्चमः स्वरः अस्य अस्ति** (पंचम स्वर है जिसका ऐसा ग्राम-राग) विग्रह वाले पूरण-प्रत्ययान्त **पञ्चम** शब्द से इनि-प्रत्यय नहीं हुआ, अपितु मतुप् प्रत्यय होकर **पञ्चमवान्** सिद्ध हो जाता है।

१९३७. सुखादिभ्यश्च ५।२।१३१॥

इनिर्मत्वर्थे। सुखी। दुःखी।

'माला क्षेपे' (ग.सू.११६)। माली।

सुखादिभ्यश्च। सुखम् आदिर्येषां ते सुखादयस्तेभ्यः सुखादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात् प्राणिस्थादिनिः** से **इनिः** की और **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

प्रथमा-समर्थ सुखादि गणपठित प्रातिपदिकों से भी मत्वर्थ में इनि-प्रत्यय होता है।

अत इनिठनौ से इनि-प्रत्यय सिद्ध होते हुये भी उसी से प्राप्त ठन्-प्रत्यय का बाधन करने के लिये प्रकृत सूत्र की सार्थकता है।

सुखी। सुख वाला। **सुखम् अस्य अस्ति** विग्रह करके सुख+सु इस स्थिति में **सुखादिभ्यश्च** सूत्र से **इनि** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **सुखिन्** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सुखी** सिद्ध हो जाता है।

दुःखी। दुःख वाला। **दुःखम् अस्य अस्ति** विग्रह करके दुःख+सु इस स्थिति में **सुखादिभ्यश्च** सूत्र से **इनि** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **दुःखिन्** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **दुःखी** सिद्ध हो जाता है।

सुखादिगणः- सुख, दुःख, तृप्त, कृच्छ्र, अस्र, (आश्र), आस्र, अलीक, कफिण, सोढ, प्रतीप, शील, हल। **माला क्षेपे**। कृपण, प्रणाय, (प्रणय), दल कक्ष।

'माला क्षेपे'। यह सुखादिगणान्तर्गत का गणसूत्र है। सूत्रार्थः- माला-शब्द से निन्दा अर्थ में इनि-प्रत्यय होता है।

माली। माला धारण करने का अधिकारी न होते हुये भी माला धारण करने वाला। इस तरह सामान्यतया मालावान् अर्थ नहीं है अपितु निन्दार्थ है। अतः **माला अस्य कुत्सितस्य अस्ति** विग्रह करके **माला+सु** इस स्थिति में **माला क्षेपे** गणसूत्र से **इनि** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक आकार का लोप होकर **मालिन्** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **माली** सिद्ध हो जाता है।

१९३८. धर्मशीलवर्णान्ताच्च ५।२।१३२॥

धर्माद्यन्तादिनिर्मत्वर्थे।

ब्राह्मणधर्मी। ब्राह्मणशीली। ब्राह्मणवर्णी।

धर्मशीलवर्णान्ताच्च। धर्मश्च शीलञ्च वर्णश्च धर्मशीलवर्णास्ते अन्ते यस्य स धर्मशीलवर्णान्तस्तस्माद् धर्मशीलवर्णान्तात्, द्वन्द्वगर्भबहुव्रीहिः। द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणत्वाद् धर्मशब्दस्य प्रत्येकं योगः। धर्मशीलवर्णान्तात् पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात् प्राणिस्थादिनिः** से **इनिः** की और **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

प्रथमा-समर्थ धर्म-शब्दान्त, शील-शब्दान्त और वर्ण-शब्दान्त प्रातिपदिकों से भी मत्वर्थ में इनि-प्रत्यय होता है।

ब्राह्मणधर्मी। ब्राह्मण-धर्म वाला। **ब्राह्मणस्य धर्मो ब्राह्मणधर्मः, सोऽस्यास्ति** विग्रह करके **ब्राह्मणधर्म+सु** इस स्थिति में **धर्मशीलवर्णान्ताच्च** सूत्र से इनि-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञा और अकारलोप होकर **ब्राह्मणधर्मिन्** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **ब्राह्मणधर्मी** सिद्ध हो जाता है।

ब्राह्मणशीली। ब्राह्मण के स्वभाव वाला। **ब्राह्मणस्य शीलं ब्राह्मणशीलम् तदस्यास्ति** विग्रह करके **ब्राह्मणशील+सु** इस स्थिति में **धर्मशीलवर्णान्ताच्च** सूत्र से इनि-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञा और अकारलोप होकर **ब्राह्मणशीलिन्** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **ब्राह्मणशीली** सिद्ध हो जाता है।

ब्राह्मणवर्णी। ब्राह्मण-वर्ण वाला। **ब्राह्मणस्य वर्णो ब्राह्मणवर्णः, सोऽस्यास्ति** विग्रह करके **ब्राह्मणवर्ण+सु** इस स्थिति में **धर्मशीलवर्णान्ताच्च** सूत्र से इनि-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञा और अकारलोप होकर **ब्राह्मणवर्णिन्** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **ब्राह्मणवर्णी** सिद्ध हो जाता है।

१९३९. हस्ताज्जातौ ५।२।१३३॥

हस्ती। 'जातौ' किम्? हस्तवान् पुरुषः।

हस्ताज्जातौ। हस्तात् पञ्चम्यन्तं, जातौ सप्तम्यन्तम्। **द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात् प्राणिस्थादिनिः** से **इनिः** की और **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति आती है तथा **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

प्रथमा-समर्थ हस्त इस प्रातिपदिक से मत्वर्थ में इनि-प्रत्यय होता है, जाति वाच्य होने पर।

हस्ती। हस्त=सूँड़ वाला- हाथी। संस्कृत में हाथी के सूँड; को भी **हस्त** कहा जाता है। **हस्तः अस्य अस्ति** विग्रह करके **हस्त+सु** इस स्थिति में **हस्ताज्जातौ** सूत्र से इनि-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञा और अकारलोप होकर **हस्तिन्** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **हस्ती** सिद्ध हो जाता है। यहाँ पर हस्तित्व-जाति का बोध हो रहा है।

'जातौ' किम्? हस्तवान् पुरुषः। प्रकृत सूत्र में **जातौ** पद का निवेश होने से जातिवाच्य होने पर ही यह प्रत्यय होता है, अन्यथा नहीं होता। फलतः पुरुष-व्यक्तिवाची में इनि-प्रत्यय नहीं हुआ, अपितु मतुप् होकर **हस्तवान्** हो जाता है।

१९४०. वर्णाद् ब्रह्मचारिणि ५।२।१३४॥

वर्णी।

वर्णाद् ब्रह्मचारिणि। वर्णात् पञ्चम्यन्तं, ब्रह्मचारिणि सप्तम्यन्तम्। **द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात् प्राणिस्थादिनिः** से **इनिः** की और **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति आती है तथा **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

प्रथमा-समर्थ वर्ण-शब्द से मत्वर्थ में इनि-प्रत्यय होता है, ब्रह्मचारी वाच्य होने पर।

वर्णी। ब्रह्मचर्य से युक्त, ब्रह्मचारी। **वर्णः=ब्रह्मचर्यम् अस्य अस्ति** विग्रह करके **वर्ण+सु** इस स्थिति में **वर्णाद् ब्रह्मचारिणि** सूत्र से इनि-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञा और अकारलोप होकर **वर्णिन्** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वर्णी** सिद्ध हो जाता है।

१९४१. पुष्करादिभ्यो देशे ५।२।१३५॥

पुष्करिणी। पद्मिनी। 'देशे' किम्? पुष्करवान् करी।
'बाहूरुपूर्वपदाद् बलात्' (वा.३२२५)। बाहुबली। ऊरुबली।
'सर्वादेश्च' (वा.३२२६)। सर्वधनी। सर्वबीजी।
'अर्थाच्चासन्निहिते' (वा.३२२७) अर्थी। सन्निहिते तु अर्थवान्।
'तदन्ताच्च' (वा.३२२८)। धान्यार्थी। हिरण्यार्थी।

पुष्करादिभ्यो देशे। पुष्करम् आदिर्येषां ते पुष्करादयस्तेभ्यः पुष्करादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, देशे सप्तम्यन्तम्। **द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात् प्राणिस्थादिनिः** से **इनिः** की और **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

प्रथमा-समर्थ पुष्करादि गणपठित प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में इनि-प्रत्यय होता है, देश वाच्य होने पर।

पुष्करिणी। कमलों वाली भूमि, जलाशय। **पुष्कराणि अस्याः सन्ति** विग्रह करके **पुष्कर+जस्** इस स्थिति में **पुष्करादिभ्यो देशे** सूत्र से इनि-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञा और अकारलोप होकर **पुष्करिन्** शब्द बनता है। स्त्रीत्वविवक्षा में नान्त से ङीप् और णत्व होने पर **पुष्करिणी** बनने के बाद स्वादिकार्य होता है।

पद्मिनी। कमलों वाली भूमि, जलाशय। **पद्मानि अस्याः सन्ति** विग्रह करके

पद्म+जस् इस स्थिति में **पुष्करादिभ्यो देशे** सूत्र से इनि-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञा और अकारलोप होकर **पद्मिन्** शब्द बनता है। स्त्रीत्वविवक्षा में नान्त से ङीप् होने पर **पद्मिनी** बनने के बाद स्वादिकार्य होता है।

'देशे' किम्? पुष्करवान् करी। प्रकृतसूत्र में **देशे** शब्द के निवेश से देश, स्थानविशेष वाच्य होने पर ही इनि-प्रत्यय होता है, अन्यथा नहीं होता। अतः **पुष्करवान् करी** (कमल वाला हाथी) में देशाभिधान न होने से इनि-प्रत्यय नहीं हुआ अपितु मतुप् होकर **पुष्करवान्** प्रयोग बनता है।

पुष्करादिगणः- पुष्कर, पद्म, उत्पल, तमाल, कुमुद, नड, कपित्थ, बिस, मृणाल, कर्दम, शालूक, विगर्ह, करीष, शिरीष, यवास, प्रवाह, हिरण्य, कैरव, कल्लोल, तट, तरङ्ग, पङ्कज, सरोज, राजीव, नालीक, सरोरुह, पुटक, अरविन्द, अम्भोज, अब्ज, कमल, पयस्।

बाहूरुपूर्वपदाद् बलात्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- बाहु और ऊरु शब्द पूर्वपद वाले बलान्त प्रातिपदिक से मत्वर्थ में इनि-प्रत्यय होता है।

बाहुबली। बाहुबल वाला। **बाहुबलम् अस्य अस्ति** विग्रह करके **बाहुबल+सु** इस स्थिति में **बाहूरुपूर्वपदाद् बलात्** वार्तिक से **इनि** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और अकारलोप होकर **बाहुबलिन्** तथा स्वादिकार्य से **बाहुबली** सिद्ध हो जाता है।

ऊरुबली। जाँघ के बल वाला। **ऊरुबलम् अस्य अस्ति** विग्रह करके **ऊरुबल+सु** इस स्थिति में बाहूरुपूर्वपदाद् बलात् वार्तिक से **इनि** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और अकारलोप होकर **ऊरुबलिन्** तथा स्वादिकार्य से **ऊरुबली** सिद्ध हो जाता है।

सर्वादेश्च। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- सर्व-शब्द आदि में हो, ऐसे प्रातिपदिक से मत्वर्थ में इनि-प्रत्यय होता है।

सर्वधनी। सब प्रकार के धन वाला। **सर्वधनम् अस्य अस्ति** विग्रह करके **सर्वधन+सु** इस स्थिति में **सर्वादेश्च** वार्तिक से **इनि** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और अकारलोप होकर **सर्वधनिन्** तथा स्वादिकार्य से **सर्वधनी** सिद्ध हो जाता है।

सर्वबीजी। सब प्रकार के बीज वाला। **सर्वबीजम् अस्य अस्ति** विग्रह करके **सर्वबीज+सु** इस स्थिति में **सर्वादेश्च** वार्तिक से **इनि** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और अकारलोप होकर **सर्वबीजिन्** तथा स्वादिकार्य से **सर्वबीजी** सिद्ध हो जाता है।

अर्थाच्चासन्निहिते। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- असन्निहित अर्थ-विषयक

अर्थ-शब्द से मतुबर्थ में इनि-प्रत्यय होता है। धन के अभाव में धन चाहना असन्निहित-अर्थविषयक है।

अर्थी। धन न होने पर धन चाहने वाला। **असन्निहितः अर्थः अस्य अस्ति** विग्रह करके **अर्थ+सु** इस स्थिति में **अर्थाच्चासन्निहिते** वार्तिक से **इनि** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और अकारलोप होकर **अर्थिन्** तथा स्वादिकार्य से **अर्थी** सिद्ध हो जाता है।

सन्निहिते तु अर्थवान्। धन होते हुए भी अतिरिक्त धन का इच्छुक होने पर उक्त इनि-प्रत्यय नहीं होता, अपितु मतुप्-प्रत्यय होकर **अर्थवान्** बनता है।

तदन्ताच्च। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- अर्थ-शब्दान्त प्रातिपदिक से भी मत्वर्थ इनि-प्रत्यय होता है। तदन्तविधि का निषेध होने के कारण अर्थ-शब्दान्त प्रातिपदिक से **अर्थाच्चासन्निहिते** वार्तिक से प्राप्त न होने के कारण प्रकृत वार्तिक की उपयोगिता सिद्ध होती है।

धान्यार्थी। धान्य चाहने वाला। **धान्येन अर्थः धान्यार्थः, स प्रयोजनमस्य अस्ति** विग्रह करके **धान्यार्थ+सु** इस स्थिति में **तदन्ताच्च** वार्तिक से **इनि** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और अकारलोप होकर **धान्यार्थिन्** तथा स्वादिकार्य से **धान्यार्थी** सिद्ध हो जाता है।

हिरण्यार्थी। सोना चाहने वाला। **हिरण्येन अर्थः हिरण्यार्थः, स प्रयोजनमस्य अस्ति** विग्रह करके **हिरण्यार्थ+सु** इस स्थिति में **तदन्ताच्च** वार्तिक से **इनि** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और अकारलोप होकर **हिरण्यार्थिन्** तथा स्वादिकार्य से **हिरण्यार्थी** सिद्ध हो जाता है।

१९४२. बलादिभ्यो मतुबन्यतरस्याम् ५।२।१३६॥
बलवान्, बली। उत्साहवान्, उत्साही।

बलादिभ्यो मतुबन्यतरस्याम्। बलम् आदिर्येषां ते बलादयस्तेभ्यो बलादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, मतुप् प्रथमान्तम्, अन्यतरस्यां विभक्तिप्रतिरूपकमव्ययम्। **द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात् प्राणिस्थादिनिः** से **इनिः** की और **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

प्रथमा-समर्थ बलादि-गणपठित प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में विकल्प से मतुप्-प्रत्यय होता है और पक्ष में इनि-प्रत्यय होता है।

बलवान्, बली। बल वाला। **बलम् अस्य अस्ति** विग्रह करके **बल+सु** इस स्थिति में **बलादिभ्यो मतुबन्यतरस्याम्** सूत्र के द्वारा **मतुप्** प्रत्यय होने पर मकार को **मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः** सूत्र से वकारादेश होकर **बलवत्** शब्द बनता है। **इनि**

प्रत्यय होने के पक्ष में अकारलोप होकर **बलिन्** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **बलवान्** और **बली** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

उत्साहवान्, उत्साही। उत्साह-सम्पन्न व्यक्ति। **उत्साहः अस्य अस्ति** विग्रह करके **उत्साह+सु** इस स्थिति में **बलादिभ्यो मतुबन्यतरस्याम्** सूत्र के द्वारा **मतुप्** प्रत्यय होने पर मकार को **मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः** सूत्र से वकारादेश होकर **उत्साहवत्** शब्द बनता है। **इनि** प्रत्यय होने के पक्ष में अकारलोप होकर **उत्साहिन्** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **उत्साहवान्** और **उत्साही** प्रयोग सिद्ध होते हैं।

बलादिगणः- बल, उत्साह, उद्भास, उद्वास, उद्दास, शिखा, कुल, चूडा, सूल, कूल, आयाम, व्यायाम, उपयाम, आरोह, अवरोह, परीणाह (परिणाह), युद्ध।

१९४३. सञ्ज्ञायां मन्माभ्याम् ५।२।१३७॥

मन्नन्तान्मान्ताच्चेनिर्मत्वर्थे। मन्- प्रथिमिनी। दामिनी। म- होमिनी। सोमिनी। 'सञ्ज्ञायाम्' किम्? सोमवान्।

सञ्ज्ञायां मन्माभ्याम्। मन् च मश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो मन्मौ, ताभ्यां मन्माभ्यां पञ्चम्यन्तं, संज्ञायां सप्तम्यन्तम्। **द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात् प्राणिस्थादिनिः** से **इनिः** की और **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

प्रथमा-समर्थ मन्-शब्दान्त और म-शब्दान्त प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में इनि-प्रत्यय होता है।

केवल **मन्** औ **म** शब्द का कोई प्रयोजन नहीं है, अतः **मन्नन्त** और **मान्त** का ग्रहण किया गया है। दूसरी बात यह भी है कि मन्नन्त शब्द **पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा** सूत्र से **इमनिच्** प्रत्यय वाला होता है। ऐसी स्थिति में **अनिनस्मन्-ग्रहणान्यर्थवता चानर्थकेन च तदन्तविधिं प्रयोजयन्ति** (अन्, इन्, अस् और मन् अन्त वाले शब्द अर्थवान् और अनर्थक के साथ तदन्तविधि की अनुमति देते हैं) परिभाषा के बल पर भी तदन्तविधि हो जाती है। अतः **मन्**-शब्द से मन्नन्त का ग्रहण होता है।

मन्। मन्नन्त-शब्द का उदाहरण दिया जा रहा है-

प्रथिमिनी। विस्तार वाली। **प्रथिमा अस्ति अस्याः** विग्रह करके **प्रथिमन्+सु** इस स्थिति में **संज्ञायां मन्माभ्याम्** सूत्र के द्वारा **इनि** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञा और **नस्तद्धिते** सूत्र से टिसंज्ञक भाग **अन्** का लोप होकर **प्रथिमिन्** शब्द बनता है। स्त्रीत्वविवक्षा में **ऋन्नेभ्यो ङीप्** सूत्र से ङीप् होकर **प्रथिमिनी** और स्वादिकार्य होकर **प्रथिमिनी** प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

दामिनी। लकीर, डोरी वाली, बिजली। **दाम अस्ति अस्याः** विग्रह करके

दामन्+सु इस स्थिति में **संज्ञायां मन्माभ्याम्** सूत्र के द्वारा **इनि** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञा और **नस्तद्धिते** सूत्र से टिसंज्ञक भाग **अन्** का लोप होकर **दामिन्** शब्द बनता है। स्त्रीत्वविवक्षा में **ऋन्नेभ्यो ङीप्** सूत्र से ङीप् होकर **दामिनी** और स्वादिकार्य होकर **दामिनी** प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

म। म-शब्दान्त प्रातिपदिक का उदाहरण दिया जा रहा है।

होमिनी। होम करने वाली। **होमः अस्ति अस्याः** विग्रह करके **होम+सु** इस स्थिति में **संज्ञायां मन्माभ्याम्** सूत्र के द्वारा **इनि** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञा और अकारलोप होकर **होमिन्** शब्द बनता है। स्त्रीत्व में **ऋन्नेभ्यो ङीप्** सूत्र से ङीप् होकर **होमिनी** और स्वादिकार्य होकर **होमिनी** प्रयोग सिद्ध हो जाता है। पुल्लिंग में **होमी, होमिनौ, होमिनः** आदि रूप बनते हैं।

सोमिनी। सोमयज्ञ करने वाली। **सोमः अस्ति अस्याः** विग्रह करके **सोम+सु** इस स्थिति में **संज्ञायां मन्माभ्याम्** सूत्र के द्वारा **इनि** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, भसंज्ञा और अकारलोप होकर **सोमिन्** शब्द बनता है। स्त्रीत्वविवक्षा में **ऋन्नेभ्यो ङीप्** सूत्र से ङीप् होकर **सोमिनी** और स्वादिकार्य होकर **सोमिनी** प्रयोग सिद्ध हो जाता है। पुल्लिंग में **सोमी, सोमिनौ, सोमिनः** आदि रूप बनते हैं। ये सभी संज्ञा-शब्द हैं।

'सञ्ज्ञायाम्' किम्? सोमवान्। प्रकृतसूत्र में **संज्ञायाम्** पद के निवेश से संज्ञा के विषय में ही इनि-प्रत्यय होता है, संज्ञा न होने पर मतुप् होता है। अतः **सोमवान्** बन जाता है।

१९४४. कंशंभ्यां बभयुस्तितुतयसः ५।२।१३८॥

कम्, शम् इति मान्तौ। 'कम्' इत्युदकसुखयोः। 'शम्' इति सुखे।
आभ्यां सप्त प्रत्ययाः स्युः। युस्यसोः सकारः पदत्वार्थः। कंवः।
कम्भः। कँय्युः। कन्तिः। कन्तुः। कन्तः। कँय्यः। शंवः।
शम्भः। शँय्युः। शन्तिः। शन्तुः। शन्तः। शँय्यः।
अनुस्वारस्य वैकल्पिकः परसवर्णः।
वकारयकारपरस्यानुनासिकौ वयौ।

कंशंभ्यां बभयुस्तितुतयसः। कम् च शम् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः कंशमौ, ताभ्यां कंशंभ्याम्। बश्च भश्च युस् च तिश्च तुश्च तश्च यस् च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो बभयुस्तितुतयसः। कंशंभ्यां पञ्चम्यन्तं, बभयुस्तितुतयसः प्रथमान्तम्। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

मकारान्त कम् और शम् इन प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में व, भ, युस्, ति, तु, त, यस् ये सात प्रत्यय होते हैं।

कम्, शम् इति मान्तौ। अर्थात् **कम्** और **शम्** ये एकाच् मकारान्त शब्द हैं। **'कम्' इत्युदकसुखयोः। 'शम्' इति सुखे।** कम्-शब्द का अर्थ है- जल और सुख तथा शम्-शब्द का अर्थ है- सुख।

युस्यसोः सकारः पदत्वार्थः। अर्थात् **युस्** और **यस्** प्रत्ययों के सकार की इत्संज्ञा होती है। सित्करण **सिति च** सूत्र के द्वारा प्रकृति की पदसंज्ञा के लिये है।

अनुस्वारस्य वैकल्पिकः परसवर्णः। सित् प्रत्यय के परे पदसंज्ञा होने के कारण अनुस्वार को विकल्प से परसवर्ण होता है अर्थात् अपदान्तस्थिति में **कम्** और **शम्** के मकार को **नश्चापदान्तस्य झलि** से अनुस्वार और पदान्तस्थिति में **मोऽनुस्वारः** से अनुस्वार होता है। इसी तरह पदान्तस्थिति में अनुस्वार को **वा पदान्तस्य** सूत्र से विकल्प से परसवर्ण और अपदान्तस्थिति में **अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः** सूत्र से नित्य से परसवर्ण होता है।

वकारयकारपरस्यानुनासिकौ वयौ। अनुस्वार होने पर वकारादि और यकारादि प्रत्यय के परे रहते अनुस्वार के स्थान पर परसवर्ण आदेश के रूप में वकार का अनुनासिक सवर्णी **वँ्** और यकार का अनुनासिक सवर्णी **यँ्** ऐसे आदेश होंगे।

कंवः, कम्भः, कय्ँयुः, कन्तिः, कन्तुः, कन्तः, कय्ँयः। जल वाला या सुख वाला। **कम् अस्य अस्ति** विग्रह करके **कम्**-शब्द से **कंशंभ्यां बभयुस्तितुतयसः** सूत्र से **व** प्रत्यय होने के पक्ष में **कम्** के मकार को अनुस्वार और उसको परसवर्ण होने पर अनुनासिक वँकार होकर **कंव** शब्द बना है। **भ** प्रत्यय होने के पक्ष में भी अनुस्वार-परसवर्ण होकर **कम्भ** शब्द बना है। **युस्** प्रत्यय होने के पक्ष में **सिति च** सूत्र से प्रकृति की पदसंज्ञा होने के कारण पदान्त अनुस्वार को विकल्प से परसवर्ण होकर **कय्ँयु** और **कंयु** दो शब्द बने हैं। **ति** प्रत्यय होने के पक्ष में मकार को अनुस्वार और उसको परसवर्ण नकार होकर **कन्ति** शब्द बना है। **तु** प्रत्यय होने के पक्ष में मकार को अनुस्वारं और उसको परसवर्ण नकार होकर **कन्तु** शब्द बना है। **त** प्रत्यय होने के पक्ष में मकार को अनुस्वार और उसको परसवर्ण नकार होकर **कन्त** शब्द बना है। **यस्** प्रत्यय होने के पक्ष में **सिति च** सूत्र से प्रकृति की पदसंज्ञा होने के कारण पदान्त अनुस्वार को विकल्प से परसवर्ण होकर **कय्ँय** और **कंय** दो शब्द बने हैं। स्वादिकार्य होने पर **कंवः, कम्भः, कय्ँयुः-कंयुः, कन्तिः, कन्तुः, कन्तः कय्ँयः-कंयः** ये रूप सिद्ध हो जाते हैं।

शंवः, शम्भः, शय्ँयुः, शन्तिः, शन्तुः, शन्तः, शय्ँयः। सुख वाला। **शम् अस्य अस्ति** विग्रह करके **शम्**-शब्द से **कंशंभ्यां बभयुस्तितुतयसः** सूत्र से **व** प्रत्यय होने के पक्ष में **शम्** के मकार को अनुस्वार और उसको परसवर्ण होने पर अनुनासिक वँकार होकर **शंव** शब्द बना है। **भ** प्रत्यय होने के पक्ष में भी अनुस्वार-परसवर्ण होकर **शम्भ** शब्द बना है। **युस्** प्रत्यय होने के पक्ष में **सिति च** सूत्र से प्रकृति की पदसंज्ञा होने के

कारण पदान्त अनुस्वार को विकल्प से परसवर्ण होकर **शय्युं** और **शंयु** दो शब्द बने हैं। **ति** प्रत्यय होने के पक्ष में मकार को अनुस्वार और उसको परसवर्ण नकार होकर **शन्ति** शब्द बना है। **तु** प्रत्यय होने के पक्ष में मकार को अनुस्वार और उसको परसवर्ण नकार होकर **शन्तु** शब्द बना है। **त** प्रत्यय होने के पक्ष में मकार को अनुस्वार और उसको परसवर्ण नकार होकर **शन्त** शब्द बना है। **यस्** प्रत्यय होने के पक्ष में **सिति च** सूत्र से प्रकृति की पदसंज्ञा होने के कारण पदान्त अनुस्वार को विकल्प से परसवर्ण होकर **शय्यँ** और **शंय** दो शब्द बने हैं। स्वादिकार्य होने पर **शंवः, शम्भः, शय्युः-शंयुः, शन्तिः, शन्तुः, शन्तः, शय्यँः-शंयः** ये रूप सिद्ध हो जाते हैं।

१९४५. तुन्दिवलिवटेर्भः ५।२।१३९॥

वृद्धा नाभिस्तुन्दिः। 'मूर्धन्योपधोऽयम्' इति माधवः।
तुन्दिभः। वलिभः। वटिभः। पामादित्वाद्वलिनोऽपि।

तुन्दिवलिवटेर्भः। तुन्दिश्च वलिश्च वटिश्च तेषां समाहारद्वन्द्वस्तुन्दिवलिवटि:, तस्मात् तुन्दिवलिवटेः, पुंस्त्वं सौत्रम्। तुन्दिवलिवटेः पञ्चम्यन्तं, भः प्रथमान्तम्। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

प्रथमा-समर्थ तुन्दि, वलि और वटि इन प्रातिपदिकों से मत्वर्थ में भ-प्रत्यय होता है।

वृद्धा नाभिस्तुन्दिः। बढ़ी निकली हुयी नाभि को **तुन्दि** कहते हैं।

'मूर्धन्योपधोऽयम्' इति माधवः। माधवाचार्य **तुन्दि** को मूर्धन्योपध (डकार उपधा वाला) **तुण्डि** मानते हैं।

तुन्दिभः। तोंद वाला। **तुण्डिः अस्य अस्ति** विग्रह करके **तुन्दि+सु** इस स्थिति में **तुन्दिवलिवटेर्भः** सूत्र के द्वारा **भ** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **तुन्दिभ** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य से **तुन्दिभः** सिद्ध हो जाता है। माधवाचार्य के मत में **तुण्डिभः** बनेगा।

वलिभः। पामादित्वाद् वलिनोऽपि। झुर्रियों वाला। **वलिः अस्य अस्ति** विग्रह करके **वलि+सु** इस स्थिति में **तुन्दिवलिवटेर्भः** सूत्र के द्वारा **भ** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **वलिभ** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य से **वलिभः** सिद्ध हो जाता है। **वलि** शब्द का पामादिगण में पाठ होने के कारण **लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः** (१९०७) सूत्र से **न** प्रत्यय होकर **वलिनः** भी बनता है।

वटिभः। मोदक वाला। **वटिः अस्य अस्ति** विग्रह करके **वटि+सु** इस स्थिति में **तुन्दिवलिवटेर्भः** सूत्र के द्वारा **भ** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर

वटिभ शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य से **वटिभः** सिद्ध हो जाता है।

१९४६. अहंशुभमोर्युस् ५।२।१४०॥

अहम् इति मान्तमव्ययमहङ्कारे। 'शुभम्' इति शुभे।
अहंयुः=अहङ्कारवान्। शुभंयुः=शुभान्वितः।
इति तद्धितेषु मत्वर्थीयाः।

अहंशुभमोर्युस्। अहं च शुभं च तयोरितरेतरयोगंद्वन्द्व अहंशुभमौ, तयोः। अहंशुभमोः पञ्चम्यर्थे षष्ठी। युस् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्** से **तद् अस्य अस्ति अस्मिन् इति** इन पदों की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, समर्थानां प्रथमाद्वा** और **तद्धिताः** का अधिकार है।

अहम् और शुभम् इन दो अव्ययों से परे मत्वर्थ में युस् प्रत्यय होता है।

अहम् और **शुभम्** ये प्रथमान्त समान दीखने वाले अव्यय हैं। **सकार** इत्संज्ञक है, **यु** बचता है। **सित्** होने के कारण पूर्व की **सिति च** से पदसंज्ञा हो जाती है, जिससे पदान्तकार्य अनुस्वार-परसवर्ण आदि हो जाते हैं।

अहंयुः। अहंकार वाला, घमंडी। **अहम् अस्यास्तीति। अहम्** इस मकारान्त अव्यय से **अहंशुभमोर्युस्** से **युस्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **अहम्+यु** बना। **सिति च** से **अहम्** की पदसंज्ञा होने के कारण **मकार** को **मोऽनुस्वारः** से अनुस्वार और उसका **वा पदान्तस्य** से विकल्प से परसवर्ण होकर **अहय्यु** बना। इससे स्वादिकार्य करके **अहय्युः, अहय्यू, अहय्यवः** आदि रूप बनते हैं। परसवर्ण न होने के पक्ष में अनुस्वार ही रह जाता है जिससे **अहंयुः, अहंयू, अहंयवः** आदि रूप बनते हैं।

शुभंयुः। शुभता से युक्त, कल्याणवाला। **शुभम् अस्यास्तीति। शुभम्** इस मकारान्त अव्यय से **अहंशुभमोर्युस्** से **युस्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **शुभम्+यु** बना। **सिति च** से **शुभम्** की पदसंज्ञा होने के कारण **मकार** को **मोऽनुस्वारः** से अनुस्वार और उसका वैकल्पिक परसवर्ण होकर **शुभय्यु** बना। इससे स्वादिकार्य करके **शुभय्युः, शुभय्यू, शुभय्यवः** आदि रूप बनते हैं। पक्ष में **शुभंयुः, शुभंयू, शुभंयवः**।

यहाँ तक अष्टाध्यायी के पञ्चमाध्याय-द्वितीयपाद में वर्णित प्रत्ययों का निरूपण पूर्ण हो जाता है।

श्री भट्टोजिदीक्षित द्वारा विरचित वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी की
गोविन्दाचार्य कृत श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी टीका में
तद्धित-मत्वर्थीय-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ प्राग्दिशीयप्रकरणम्

अब **प्राग्दिशीयप्रकरण** का प्रारम्भ होता है। अष्टाध्यायी के पञ्चमाध्यायस्थ तृतीयपाद के प्रत्ययों का निरूपण यहाँ किया गया है। इस प्रकरण के प्रत्यय प्रायः प्रकृति के ही अर्थ में होते हैं और कहीं-कहीं लौकिक विग्रह का अभाव जैसा भी रहता है। अतः ये स्वार्थिक प्रत्यय हैं, क्योंकि तसिल् आदि प्रत्ययों में अर्थ-निर्देश नहीं किया गया है। इनकी विभक्ति संज्ञा भी की गयी है, जिसके कारण **न विभक्तौ तुस्माः, त्यदादीनामः** आदि सूत्रों की प्रवृत्ति होती है। यहाँ से **समर्थानां प्रथमाद्वा** के **समर्थानाम्** और **प्रथमाद्** इन दो पदों की निवृत्ति हो जाती है किन्तु **वा** का अधिकार विद्यमान है। **प्राग्दिशीय** प्रकरण यह सार्थक=अन्वर्थक नाम है, क्योंकि **दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः** (५.३.२७) सूत्र में पठित **दिश्**-शब्द के उच्चारण तक की अवधि वाले प्रत्ययों को प्राग्दिशीय कहा जाता है।

१९४७. प्राग्दिशो विभक्तिः ५।३।१॥

'दिक्छब्देभ्यः' इत्यतः प्राग्वक्ष्यमाणाः प्रत्ययाः विभक्तिसञ्ज्ञाः स्युः।

अथ स्वार्थिकाः प्रत्ययाः।

'समर्थानाम्' इति 'प्रथमात्' इति च निवृत्तम्। 'वा' इति त्वनुवर्तत एव।

प्राग्दिशो विभक्तिः। प्राक् अव्ययपदं, दिशः पञ्चम्यन्तं, विभक्तिः प्रथमान्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्।

'दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः' इस सूत्र से पहले तक जितने प्रत्ययों का कथन होगा, उन सब की विभक्तिसंज्ञा होती है।

उन प्रत्ययों की विभक्तिसंज्ञा होने से विभक्ति को मानकर होने वाले सारे कार्य हो सकते हैं। इस प्रकरण में सिद्ध शब्द स्वरादिगण में आते हैं, अतः **स्वरादिनिपातमव्ययम्** सूत्र से अव्ययसंज्ञक हो जाते हैं।

अथ स्वार्थिकाः प्रत्ययाः। अब अर्थ-विशेष के बिना ही स्वार्थ में प्रत्ययों का निरूपण किया जा रहा है। अर्थात् पाणिनि जी ने इस प्रकरण के प्रत्ययों का अर्थनिर्देश अपने सूत्रों में नहीं किया है।

'समर्थानाम्' इति 'प्रथमात्' इति च निवृत्तम्। 'वा' इति त्वनुवर्तत एव। यहाँ से **समर्थानां प्रथमाद्वा** के **समर्थानाम्** और **प्रथमाद्** इन दो पदों की निवृत्ति हो जाती है किन्तु **वा** का अधिकार विद्यमान है। प्रत्ययों का अर्थनिर्देश न होने के कारण वे प्रकृत्यर्थ (विभक्त्यर्थ) को ही सूचित करते हैं। इस प्रकार समर्थ-विभक्ति की आवश्यकता न होने के कारण **समर्थानाम्** और **प्रथमात्** इन दो पदों का कोई प्रभाव नहीं है।

१९४८. किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः ५।३।२॥

किमः सर्वनाम्नो बहुशब्दाच्चेति प्राग्दिशोऽधिक्रियते।

किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः। किं च सर्वनाम च बहुश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः किंसर्वनामबहवस्तेभ्यः। द्वि-शब्द आदिर्येषां ते द्व्यादयः, न द्व्यादयोऽद्व्यादयस्तेभ्यः। किंसर्वनामबहुभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अद्व्यादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **प्राग्दिशो विभक्तिः** से **प्राक्** और **दिशः** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

द्वि आदि से भिन्न सर्वनामसंज्ञक शब्द, किम्-शब्द और बहु शब्द से परे ही प्राग्दिशीय प्रत्यय होते हैं, यह अधिकार किया जाता है।

सर्वनाम में **द्वि, युष्मत्, अस्मत्, भवतु, किम्** ये शब्द पढ़े गये हैं। इनको छोड़कर सभी सर्वनामसंज्ञक शब्दों से प्राग्दिशीय प्रत्यय होंगे साथ ही **द्वि** आदि में **किम्** को नहीं लिया जायेगा। अतः सूत्र में **किम्** का साक्षात् उच्चारण किया गया। उदाहरण आगे दिये गये हैं।

१९४९. इदम इश् ५।३।३॥

प्राग्दिशीये परे।

इदम इश्। इदमः षष्ठ्यन्तं, इश् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्राग्दिशो विभक्तिः** से **प्राग्दिशः** की अनुवृत्ति आती है।

प्राग्दिशीय प्रत्यय के परे होने पर इदम् के स्थान पर इश् आदेश होता है।

इश् में शकार की इत्संज्ञा होती है और **इ** शेष रहता है। शित् होने के कारण **अनेकाल् शित्सर्वस्य** से सर्वादेश होता है। उदाहरण आगे दिये गये हैं।

१९५०. एतेतौ रथोः ५।३।४॥

इदम्शब्दस्य 'एत' 'इत्' इत्यादेशौ स्तो रेफादौ थकारादौ च प्राग्दिशीये परे। इशोऽपवादः।

एतेतौ रथोः। एतश्च इच्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्व एतेतौ। रश्च थ् च रथौ, तयोः।

एतेतौ प्रथमान्तं, रथोः सप्तम्यन्तं, द्विपदं सूत्रम्। **इदम इश्** से **इदमः** और **प्राग्दिशो विभक्तिः** से **प्राग्दिशः** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः** का वचनविपरिणाम और विभक्तिविपरिणाम करके **प्रत्यययोः** बनाया जाता है। यहाँ पर **रथोः** में **यस्मिन् विधिस्तदादावल्ग्रहणे** से तदादिविधि करके **रादौ** और **थादौ** बन जाता है।

रेफादि और थकारादि प्राग्दिशीय प्रत्यय के परे होने पर इदम् शब्द के स्थान पर 'एत' और 'इत्' ये आदेश होते हैं।

इदम इश् का अपवाद है यह सूत्र। **यथासङ्ख्यनियम** से रेफ के परे होने पर **एत** आदेश और **थकारादि** के परे होने पर **इत्** आदेश होंगे। अनेकाल् होने के कारण दोनों सर्वादेश हैं। उदाहरण आगे दिये जा रहे हैं।

१९५१. एतदोऽन् ५।३।५॥

योगविभागः कर्तव्यः। 'एतदः' एतेतौ स्तो रथोः। 'अन्'। एतदः इत्येव। अनेकाल्त्वात्सर्वादेशः। 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (सू.२३६)।

एतदोऽन्। एतदः षष्ठ्यन्तं, अन् प्रथमान्तमेकपदमिदं सूत्रम्।

योगविभागः कर्तव्यः। इस सूत्र का योगविभाग किया जाता है अर्थात् **एतदः** यह प्रथम सूत्र और **अन्** यह द्वितीय सूत्र होगा।

प्रथमसूत्रार्थः- **प्राग्दिशो विभक्तिः** से **प्राग्दिशः** की और **एतेतौ रथोः** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च** आदि का अधिकार है ही।

प्राग्दिशीय के परे होने पर एतद् के स्थान पर एत और इत ये दो आदेश होते हैं।

द्वितीयसूत्रार्थः- **एतदः** इस सूत्र की तथा **प्राग्दिशो विभक्तिः** से **प्राग्दिशः** की और **एतेतौ रथोः** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च** आदि का अधिकार है ही। सूत्रार्थ इस प्रकार होगा- **एतद्-शब्द के स्थान पर अन् आदेश होता है, प्राग्दिशीय प्रत्यय के परे रहते।**

अन् में **नकार** की इत्संज्ञा नहीं होती है, अतः **नकार** सहित **अन्** होने के कारण अनेकाल् है। फलतः सर्वादेश हो जाता है।

प्रकृत सूत्र के विधान से यह प्रतीत होता है कि प्राग्दिशीय प्रत्यय परे रहते **एतद्** को **अन्** आदेश हो। तब तो **एत** और **इत्** आदेश का विधान ही व्यर्थ हो जायेगा। इस कठिनाई को दूर करने के लिये प्रकृत सूत्र के योगविभाग की कल्पना की गयी है। रेफादि और थकारादि प्रत्यय के परे रहते योगविभक्त में पूर्वांश **एतदः** की और अन्यत्र द्वितीयांश **अन्** की प्रवृत्ति होती है।

१९५२. सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि ५।३।६॥

प्राग्दिशीये दकारादौ प्रत्यये परे सर्वस्य सो वा स्यात्।

सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि। सर्वस्य षष्ठ्यन्तं, सः प्रथमान्तं, अन्यतरस्यां सप्तम्यन्तं, दि सप्तम्यन्तम् अनेकपदमिदं सूत्रम्।

दकारादि प्रत्यय के परे होने पर सर्व के स्थान पर स आदेश होता है।

१९५३. पञ्चम्यास्तसिल् ५।३।७॥

पञ्चम्यन्तेभ्यः किमादिभ्यस्तसिल्वा स्यात्।

पञ्चम्यास्तसिल्। पञ्चम्याः पञ्चम्यन्तं, तसिल् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः** यह पूरा सूत्र अनुवृत्त होता है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

द्वि आदि शब्दों से भिन्न पञ्चम्यन्त किम्, सर्वनाम एवं बहु आदि प्रातिपदिकों से वैकल्पिक तसिल् प्रत्यय होता है।

तसिल् में लकार इत्संज्ञक है और इकार उच्चारणार्थक। **तस्** बचता है।

१९५४. कु तिहोः ७।२।१०४॥

किमः कुः स्यात्तादौ हकारादौ च विभक्तौ परतः। कुतः कस्मात्। यतः। ततः। अतः। इतः। अमुतः। बहुतः। द्व्यादेस्तु द्वाभ्याम्।

कु तिहोः। तिश्च ह् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वस्तिहौ, तयोः। कु प्रथमान्तं, तिहोः सप्तम्यन्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अष्टन आ विभक्तौ** से **विभक्तौ** और **किमः कः** से **किमः** की अनुवृत्ति आती है। **यस्मिन् विधिस्तदादावल्ग्रहणे** से तदादिविधि होकर **तकारादि थकारादि** यह अर्थ बनता है।

तकारादि और हकारादि प्रत्ययों के परे होने पर किम् शब्द के स्थान पर कु सर्वादेश होता है।

यह **किमः कः** का अपवाद है।

कुतः, कस्मात्। कहाँ से? **कस्मात्** लौकिक विग्रह और **किम्+ङसि** अलौकिक विग्रह है। **पञ्चम्यास्तसिल्** से **तसिल्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तस् बचा। **किम्+ङसि+तस्** की प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **किम्+तस्** बना। तस् की **प्राग्दिशो विभक्तिः** से विभक्तिसंज्ञा करके उसके परे होने पर **किमः कः** से क आदेश की प्राप्ति थी, उसे बाधकर **कु तिहोः** से कु आदेश हुआ। **कुतस्** से सु आदि विभक्ति और अव्यय होने के कारण **अव्ययादाप्सुपः** से उसका लुक् हो जाता है एवं सकार का रुत्वविसर्ग करने पर **कुतः** सिद्ध होता है। तसिल् प्रत्यय वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में पञ्चमी में **कस्मात्** तो बनता ही है।

यतः। जहाँ से। **यस्मात्** अर्थ में **यत्+ङसि** इस स्थिति में **पञ्चम्यास्तसिल्** सूत्र से तसिल् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, तस् की विभक्तिसंज्ञा, **त्यदादीनामः** से अत्व, पररूप करके **यतस्** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिप्रत्यय और उसके अव्यय से विहित होने के कारण **अव्ययादाप्सुपः** सूत्र से लुक् और प्रकृति सकार को रुवविसर्ग करने पर **यतः** सिद्ध हो जाता है। तसिल् न होने के पक्ष में **यस्मात्**।

ततः। वहाँ से। **तस्मात्** अर्थ में **तत्+ङसि** इस स्थिति में **पञ्चम्यास्तसिल्** सूत्र से तसिल् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, तस् की विभक्तिसंज्ञा, **त्यदादीनामः** से अत्व, पररूप करके **ततस्** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिप्रत्यय और उसके अव्यय से विहित होने के कारण **अव्ययादाप्सुपः** सूत्र से लुक् और प्रकृति सकार को रुवविसर्ग करने पर **ततः** सिद्ध हो जाता है। तसिल् न होने के पक्ष में **तस्मात्**।

इतः, अस्मात्। यहाँ से। **अस्मात्** लौकिक विग्रह और **इदम् ङसि** अलौकिक विग्रह है। **पञ्चम्यास्तसिल्** से **तसिल्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तस् बचा। **इदम्+ङसि+तस्** की प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **इदम् तस्** बना। इदम् के स्थान पर **इदम इश्** से **इश्** आदेश, अनुबन्धलोप करके **इ+तस्=इतस्** बना। सु आदि विभक्ति और अव्यय होने के कारण **अव्ययादाप्सुपः** से उसका लुक् हो जाता है। सकार का रुत्वविसर्ग करने पर **इतः** सिद्ध हो गया। तसिल् प्रत्यय वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में पञ्चमी में **अस्मात्** तो बनता ही है।

अतः, एतस्मात्। इससे। **एतद् ङसि** इसमें **पञ्चम्यास्तसिल्** से तसिल्प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तस् बचा। **एतद्+ङसि+तस्** की प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अन्** सूत्र से एतद् के स्थान पर **अन्** सर्वादेश करके **अन्+तस्** बना। नकार का **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप हुआ। **अतस्** बना। सु आदि विभक्ति, अव्यय होने के कारण **अव्ययादाप्सुपः** से उसका लुक् हो जाता है और सकार का रुत्वविसर्ग करने पर **अतः** सिद्ध हो जाता है। तसिल् प्रत्यय वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में पञ्चमी में **एतस्मात्** तो बनता ही है।

अमुतः, अमुष्मात्। इससे। **अदस् ङसि** में **पञ्चम्यास्तसिल्** से तसिल्प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तस् बचा। **अदस्+ङसि+तस्** की प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अदस्+तस्** बना। **तस्** की विभक्तिसंज्ञा हुई है, अतः **त्यदादीनामः** से दकार के स्थान पर **अकार** आदेश करके **अद+अ+तस्** बना। **अद+अ** में **अतो गुणे** से पररूप होकर **अद+तस्** बना। **अदसोऽसेर्दादु दो मः** से उत्व-मत्व होकर **अमुतस्** बना। सु आदि विभक्ति, अव्यय होने के कारण **अव्ययादाप्सुपः** से उसका लुक् हो जाता है। सकार का रुत्वविसर्ग करने पर **अमुतः** सिद्ध हो गया। तसिल् आदेश वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में पञ्चमी में **अमुष्मात्** तो बनता ही है।

बहुतः। बहुत से। **बहुभ्यः** अर्थ में **बहु+भ्यस्** ऐसी स्थिति बनाकर **पञ्चम्यास्तसिल्** से तसिल्प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् **बहुतस्** बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिविभक्ति और उसके अव्यय से विहित होने के कारण **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् और प्रकृति के सकार को रुत्व और विसर्ग करके **बहुतः** सिद्ध हो जाता है। पक्ष में पञ्चमी में **बहुभ्यः**।

द्व्यादेस्तु द्वाभ्याम्। अर्थात् **किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः** सूत्र में **अद्व्यादिभ्यः** इस पर्युदास से **द्वि** आदि शब्दों में प्राग्दिशीय प्रत्ययों का निषेध है, अतः **द्वि** शब्द से **द्वाभ्याम्** मात्र ही बनता है, तसिल् आदि नहीं होते।

१९५५. तसेश्च ५।३।८॥

किंसर्वनामबहुभ्यः परस्य तसेस्तसिलादेशः स्यात्।
स्वरार्थं विभक्त्यर्थं च वचनम्।

तसेश्च। तसेः पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **पञ्चम्यास्तसिल्** से **तसिल्** की और **किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः** इस पूरे सूत्र की अनुवृत्ति है तथा **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

किम्, सर्वनामसंज्ञक एवं बहु इन प्रातिपदिकों से विहित तसि-प्रत्यय के स्थान पर तसिल् आदेश होता है।

तसि प्रत्यय के विधायक दो सूत्र हैं- **प्रतियोगे पञ्चम्यास्तसिः** (५.४.४४) और **अपादाने चाहीयरुहोः** (५.४.४५)। उक्त सूत्रों से विहित प्रत्यय के स्थान पर यह **तसिल्** आदेश है। इसके अतिरिक्त **किम्, सर्वनाम** तथा **बहु** शब्द से उत्तरवर्ती **तसि** के स्थान पर **तसिल्** आदेश किया गया है।

अब प्रश्न होता है कि **तसि** के स्थान पर **तसिल्** आदेश की क्या आवश्यकता है? क्योंकि रूप तो समान ही होते हैं। इस प्रश्न का समाधान मूलकार कर रहे हैं-

स्वरार्थं विभक्त्यर्थं च वचनम्। तसिल्-आदेश करने से लित् बन जाता है और **लिति** (६.१.१८७) सूत्र के द्वारा प्रत्यय से पूर्व अच् को उदात्त स्वर हो जाता है। एतदर्थ तसिल् आदेश है। दूसरी बात यह भी है कि **तसि** की विभक्तिसंज्ञा नहीं होती किन्तु **तसिल्** की हो जाती है। विभक्तिसंज्ञा होने से **कु तिहोः** सूत्र से **कु** आदेश और **त्यदादीनामः** सूत्र से अकारादेश सम्भव हो जाता है।

१९५६. पर्यभिभ्यां च ५।३।९॥

आभ्यां तसिल् स्यात्।
'सर्वोभयार्थाभ्यामेव' (वा.३२४०)।
परितः सर्वत इत्यर्थः। अभितः, उभयत इत्यर्थः।

पर्यभिभ्यां च। परिश्च अभिश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः पर्यभी, ताभ्यां पर्यभिभ्यां पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **पञ्चम्यास्तसिल्** से **तसिल्** की और **किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः** इस पूरे सूत्र की अनुवृत्ति है तथा **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

परि, अभि इन शब्दों से भी तसिल् प्रत्यय होता है।

सर्वोभयार्थाभ्यामेव। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- परि और अभि शब्दों के क्रमशः सर्वार्थवाची और उभयार्थवाची होने पर ही तसिल् हो। इस तरह वार्तिक से अर्थ-नियमन किया गया है।

परितः, सर्वत इत्यर्थः। सभी (चारों) ओर से। **परि**-शब्द से **पर्यभिभ्यां च** सूत्र से **तसिल्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप होकर **परितस्** बना है। प्रातिपदिकसंज्ञा, अव्ययसंज्ञा, स्वादिविभक्ति और उसका लुक् तथा सकार को रुत्वविसर्ग होने पर **परितः** सिद्ध हो जाता है।

अभितः, उभयत इत्यर्थः। दोनों ओर से। **अभि**-शब्द से **पर्यभिभ्यां च** सूत्र से **तसिल्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप होकर **अभितस्** बना है। प्रातिपदिकसंज्ञा, अव्ययसंज्ञा, स्वादिविभक्ति और उसका लुक् तथा सकार को रुत्वविसर्ग होने पर **अभितः** सिद्ध हो जाता है।

१९५७. सप्तम्यास्त्रल् ५।३।१०॥

कुत्र। यत्र। तत्र। बहुत्र।

सप्तम्यास्त्रल्। सप्तम्याः पञ्चम्यन्तं, त्रल् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः** यह पूरा सूत्र अनुवृत्त होता है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

द्वि आदि शब्दों से भिन्न किम्, सर्वनाम एवं बहु इन सप्तम्यन्त प्रातिपदिकों से वैकल्पिक त्रल् प्रत्यय होता है।

लकार इत्संज्ञक है। **त्र** शेष रहता है।

कुत्र (कहाँ)। **यत्र** (जहाँ)। **तत्र** (वहाँ)। **सर्वत्र**(सभी जगह)। **बहुत्र**(अनेक जगह)। **कस्मिन्** लौकिक विग्रह और **किम् ङि** अलौकिक विग्रह है। **सप्तम्यास्त्रल्** से **त्रल्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, त्र बचा। **किम्+ङसि+त्र** की प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **कु तिहोः** से किम् के स्थान पर कु सर्वादेश करके **कु+त्र=कुत्र** बना। सु आदि विभक्ति तथा अव्यय होने के कारण **अव्ययादाप्सुपः** से उसका लुक् होकर **कुत्र** सिद्ध हो जाता है।

यत्र (जहाँ)। **यस्मिन्** लौकिक विग्रह और **यत्+ङि** अलौकिक विग्रह है। **सप्तम्यास्त्रल्** से **त्रल्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, त्र बचा। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्,

विभक्तिसंज्ञा करके **त्यदादीनामः** सूत्र से तकार को अकारादेश होने पर **अतो गुणे** से पररूप करके **यत्र** बनता है। इसके अव्यय होने के कारण आगत विभक्तियों का **अव्ययादाप्सुपः** सूत्र से लुक् होकर **यत्र** सिद्ध हो जाता है।

तत्र (वहाँ)। **तस्मिन्** लौकिक विग्रह और **तत्+ङि** अलौकिक विग्रह है। **सप्तम्यास्त्रल्** से **त्रल्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, त्र बचा। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, विभक्तिसंज्ञा करके **त्यदादीनामः** सूत्र से तकार को अकारादेश होने पर **अतो गुणे** से पररूप करके **तत्र** बनता है। इसके अव्यय होने के कारण आगत विभक्तियों का **अव्ययादाप्सुपः** सूत्र से लुक् होकर **तत्र** सिद्ध हो जाता है।

बहुत्र (बहुत जगह)। **बहुषु** अर्थ में **बहु+सुप्** अलौकिक विग्रह में **प्तम्यास्त्रल्** से **त्रल्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **बहुत्र** बनता है। इसके अव्यय होने के कारण आगत विभक्तियों का **अव्ययादाप्सुपः** सूत्र से लुक् होकर **बहुत्र** सिद्ध हो जाता है।

१९५८. इदमो हः ५।३।११॥

त्रलोऽपवादः। इशादेशः। इह।

इदमो हः। इदमः पञ्चम्यन्तं, हः प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **सप्तम्यास्त्रल्** से **सप्तम्याः** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त इदम् शब्द से ह प्रत्यय होता है।

त्रलोऽपवादः। यह **सप्तम्यास्त्रल्** का अपवाद है।

इह। यहाँ। **इदम् ङि** इस अलौकिक विग्रह में **इदमो हः** से **ह** प्रत्यय प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होने पर **इदम इश्** सूत्र से **इश्** आदेश, अनुबन्धलोप करके **इह** बना और सु आदि करके उसका अव्ययत्व के कारण लुक् होने से **इह** सिद्ध हो जाता है।

१९५९. किमोऽत् ५।३।१२॥

वाग्रहणमपकृष्यते। सप्तम्यन्तात् किमोऽद्वा स्यात्। पक्षे त्रल्।

किमोऽत्। किमः पञ्चम्यन्तम्, अत् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त किम् से परे वैकल्पिक अत् प्रत्यय होता है।

वा ह च च्छन्दसि सूत्र से **वा** पद का अपकर्षण किया जाता है। एक वा-शब्द से प्रत्ययाभाव में वाक्य रहता है और दूसरे वा-शब्द से दो प्रत्ययों का विकल्प माना जाता है। अष्टाध्यायीक्रम में पर होने के कारण अपकर्षण हुआ है, पूर्वसूत्र हो तो उससे अनुवृत्ति

होती है। **तकार** इत्संज्ञक है। **अत्** न होने के पक्ष में **सप्तम्यास्त्रल्** सूत्र से **त्रल्** होगा। अतः दो रूप होंगे।

१९६०. क्वाति ७।२।१०५॥

किमः क्वादेशः स्यादति। क्व। कुत्र।

क्वाति। क्व लुप्तप्रथमाकम्, अति सप्तम्यन्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **किमः कः** से **किमः** की और **अष्टन आ विभक्तौ** से **विभक्तौ** की अनुवृत्ति आती है।

अत्-विभक्ति (प्रत्यय) के परे होने पर किम् के स्थान पर क्व आदेश होता है।

क्व, कुत्र। कहाँ। **किम्+ङसि** अलौकिक विग्रह है। त्रल् प्राप्त था, उसे बाधकर **किमोऽत्** सूत्र से **अत्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप होकर **किम्+अ** बना है। **क्वाति** सूत्र से किम् के स्थान पर **क्व** आदेश होकर **क्व+अ** बना है। भसंज्ञक अकार का लोप करके **क्व्+अ=क्व** बना। सु आदि करके अव्ययत्वात् विभक्ति का लुक् करने पर **क्व** सिद्ध हो जाता है। **त्रल्** प्रत्यय होने के पक्ष में **कुत्र** रूप बना चुके हैं।

१९६१. वा ह चच्छन्दसि ५।३।१३॥

'कुह स्थः'। 'कुह जग्मथुः'।

वा ह चच्छन्दसि। वाव्ययं, ह इति लुप्तप्रथमाकं पदं, चाव्ययं, छन्दसि सप्तम्यन्तम्। **किमोऽत्** से **किमः** की अनुवृत्ति आती है।

वेद के विषय में सप्तम्यन्त किम्-शब्द से विकल्प से ह-प्रत्यय होता है।

'कुह स्थः'। तुम दोनों कहाँ हो? **कस्मिन् इति** अर्थ में **किम्+ङि** इस स्थिति में **वा ह चच्छन्दसि** सूत्र से ह प्रत्यय होने पर **कु तिहोः** सूत्र के द्वारा किम्-शब्द के स्थान पर **कु** आदेश होकर **कुह** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होने पर अव्यय से विहित प्रत्यय का लुक् होकर **कुह** सिद्ध हो जाता है।

'कुह जग्मथुः'। तुम दोनों कहाँ थे। यहाँ पर भी पूर्ववत् प्रक्रिया करके **कुह** प्रयोग सिद्ध होता है। यद्यपि इस सूत्र का पाठ वैदिकी-प्रक्रिया में होना चाहिये, तथापि पूर्वसूत्र में **वा** का अपकर्षण दिखाने के के लिये यहाँ पर पाठ किया गया है।

१९६२. एतदस्त्रतसोस्त्रतसौ चानुदात्तौ २।४।३३॥

अन्वादेशविषये एतदोऽश् स्यात् स चानुदात्तस्त्रतसोः परतः, तौ चानुदात्तौ स्तः।

एतस्मिन् ग्रामे सुखं वसामः, अतोऽत्राधीमहे। अतो न गन्तास्मः।

एतदस्त्रतसोस्त्रतसौ चानुदात्तौ। त्रश्च तस् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः- त्रतसौ, तयोस्त्रतसोः। तौ च त्रतसौ। एतदः षष्ठ्यन्तं, त्रतसोः सप्तम्यन्तं, त्रतसौ प्रथमान्तं, चाव्ययम्, अनुदात्तौ प्रथमान्तम्। **इदमोऽन्वादेशेऽशनुदात्तस्तृतीयादौ** (२.४.३२) से **अन्वादेशे, अश्, अनुदात्तः** की अनुवृत्ति आती है।

अन्वादेश के विषय में एतद्-शब्द के स्थान पर अनुदात्त अश् आदेश होता है, त्र और तस् प्रत्ययों के परे रहते और वे त्र और तस् प्रत्यय अनुदात्त भी हो जाते हैं।

अन्वादेश के विषय में हलन्तपुँल्लिङ्गप्रकरण में बताया जा चुका है, फिर भी स्मरणार्थ सामान्य परिचय कराया जा रहा है- **सामान्यतः कथनमादेशः, अनुकथनमन्वादेशः।** अर्थात् सामान्यतः कथन को **आदेश** कहते हैं और अनुकथन को **अन्वादेश।** जिसका एक बार अज्ञात कार्य बताने के लिये ग्रहण हो चुका है, ऐसे उसीका पुनः दूसरे अज्ञात कार्य को बताने के लिये भी उसका ग्रहण किया जाये तो उसे अन्वादेश कहते हैं। अथवा **उक्त वार्ता का पुनः उपादान करना** अन्वादेश कहलाता है। किसी कार्य के सम्बन्ध में पहले कही गयी बात को अन्य वार्ता के प्रसंग में फिर कुछ कहना **अन्वादेश** कहलाता है। **आभ्यां छात्राभ्यां रात्रिरधीता** (इन दो छात्रों के द्वारा रात भर पढ़ा गया) यह कथन सामान्य होने के कारण **आदेश** है। उन्हीं के विषय में कुछ और कहे जाने पर **आभ्यां अहरप्यधीतम्** अर्थात् इन्होंने दिन में भी पढ़ा। यह **अन्वादेश** हुआ। **अनु+आदेश=अन्वादेशः।**

एतस्मिन् ग्रामे सुखं वसामः, अतोऽत्राधीमहे। अतो न गन्तास्मः। हम लोग इस गाँव में सुख से रहते हैं और यहाँ लगकर पढ़ते हैं, अतः (अन्यत्र) नहीं जायेंगे। यहाँ **अतोऽत्र** से लेकर **न गन्तास्मः** तक का अंश अन्वादेश है, क्योंकि **एतस्मिन् ग्रामे सुखं वसामः** इस कथन के बाद पुनः उसी के विषय में पुनः कथन किया गया है। अन्वादेश भाग के दो पद **अत्र** और **अतः** की सिद्धि करनी है। **एतद्+ङि** इस स्थिति में **सप्तम्यास्त्रल्** सूत्र से त्रल् प्रत्यय होने के बाद अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **एतद्+त्र** बना है। **एतदस्त्रतसोस्त्रतसौ चानुदात्तौ** सूत्र से **एतद्** शब्द के स्थान पर **अश्** आदेश हो जाता है और इसके शित् होने के कारण यह सर्वादेश है। इस तरह **अत्र** बना हुआ है। इसी तरह **एतद्+ङसि** इस स्थिति में **पञ्चम्यास्तसिल्** सूत्र से **तसिल्** प्रत्यय होने पर पूर्ववत् **अश्** आदेश होकर **अतस्** बना हुआ है। प्रकृत सूत्र से **त्र** और **तस्** दोनों अनुदात्त भी हो गये हैं। **अत्र** और **अतः** ये अनुदात्त हैं।

१९६३. इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते ५।३।१४॥

पञ्चमीसप्तमीतरविभक्त्यन्तादपि तसिलादयो दृश्यन्ते।
'दृशिग्रहणाद्भवदादियोग एव' (वा.३२४४)। स भवान्, ततो भवान्,
तत्र भवान्। तं भवन्तम्, ततो भवन्तम्, तत्र भवन्तम्।
एवं दीर्घायुः। देवानां प्रियः। आयुष्मान्।

इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते। इतराभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अपि अव्ययपदं, दृश्यन्ते क्रियापदं, त्रिपदं सूत्रम्। **पञ्चम्यास्तसिल्, सप्तम्यास्त्रल्** आदि सूत्रों से **तसिल्, त्रल्** की अनुवृत्ति आती है, उसे यहाँ पर **तसिलादयः** कह दिया गया है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

पञ्चमी और सप्तमी के अतिरिक्त अन्य विभक्त्यन्त किम् आदियों से भी स्वार्थ में तसिल् आदि प्रत्यय देखे जाते हैं।

इतरा-शब्द पञ्चमी और सप्तमी से भिन्न विभक्तियों का सूचक है। **दृश्यन्ते** पद का अर्थ है **देखे जाते हैं।** अतः **सभी विभक्तियों से सर्वत्र होते हैं,** ऐसा अर्थ नहीं है किन्तु जहाँ-जहाँ आप्तों ने अन्य विभक्तियों से प्रयोग किया है, उन-उन विभक्त्यन्तों से ही ये प्रत्यय किये जा सकते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि पञ्चम्यन्त और सप्तम्यन्त से तो क्रमशः **तसिल्** और **त्रल्** प्रत्ययों का विधान होता आया है, अब पुनः इस सूत्र के प्रभाव से पञ्चमी और सप्तमी विभक्तियों से भिन्न अन्य विभक्तियों से भी ये प्रत्यय समीचीन माने जाते हैं।

दृशिग्रहणाद्भवदादियोग एव। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- प्रकृतसूत्र में **दृशि**-पद का ग्रहण करने से **भवत्** आदि शब्दों के योग में यह प्रत्यय होता है। अर्थात् **भवत्** आदि शब्दों के योग में ही अन्य विभक्त्यन्तों से **तसिल्** आदि किये जायें, क्योंकि शिष्टों ने **भवत्, दीर्घायुः, देवानाम्प्रियः, आयुष्मान्** इन शब्दों के योग में इतरविभक्तियों से भी इस प्रत्यय से युक्त रूपों का प्रयोग किया है।

स भवान्, ततो भवान्, तत्र भवान्। माननीय आप। यहाँ पर **भवत्** शब्द का योग है। **तद्** शब्द से तसिल् होने पर **ततः** और **त्रल्** होने पर **तत्र** बना है। ये प्रत्यय स्वार्थ में ही हुए हैं। प्रत्यय के योग से किसी अर्थविशेष की उपस्थिति नहीं हो रही है। केवल वाक्य में सौष्ठव हो रहा है। इसी तरह **तौ भवन्तौ, ततो भवन्तौ, तत्र भवन्तौ, ते भवन्तः, ततो भवन्तः, तत्र भवन्तः** इत्यादि अन्य वचनों में भी समझना चाहिये।

तं भवन्तम्, ततो भवन्तम्, तत्र भवन्तम्। माननीय आपको। द्वितीया, तृतीया आदि में भी इसी तरह तसिल् और त्रल् प्रत्यय होते हैं। **तेन भवता, तत्र भवता, ततो भवता, तस्मै भवते, तत्र भवते, ततो भवते, तस्य भवतः, तत्र भवतः, ततो भवतः, तस्मिन् भवति, तत्र भवति, ततो भवति** इत्यादि।

एवं दीर्घायुः। उपर्युक्त रीति से **स दीर्घायुः, तत्र दीर्घायुः, ततो दीर्घायुः** इत्यादि में भी पञ्चमी और सप्तमी से अन्यत्र भी तसिल् और त्रल् प्रत्यय का प्रयोग देखा जाता है।

देवानां प्रियः। देवताओं का प्रिय। उपर्युक्त रीति से **स देवानां प्रियः, तत्र देवानां प्रियः, ततो देवानां प्रियः** इत्यादि में भी पञ्चमी और सप्तमी से अन्यत्र भी तसिल् और त्रल् प्रत्यय का प्रयोग देखा जाता है।

आयुष्मान्। चिरायु। उपर्युक्त रीति से **स आयुष्मान्, तत्र आयुष्मान्, तत्र आयुष्मान्** इत्यादि में भी पञ्चमी और सप्तमी से अन्यत्र भी तसिल् और त्रल् प्रत्यय का प्रयोग देखा जाता है।

१९६४. सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा ५।३।१५॥

सप्तम्यन्तेभ्यः कालार्थेभ्यः स्वार्थे दा स्यात्।
सर्वस्मिन् काले सदा, सर्वदा। एकदा। अन्यदा। कदा। यदा। तदा।
'काले' किम्? सर्वत्र देशे।

सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा। सर्वश्च एकश्च अन्यच्च किञ्च यच्च तच्च तेषां समाहारद्वन्द्वः सर्वैकान्यकिंयत्तत्, तस्मात्। सर्वैकान्यकिंयत्तदः पञ्चम्यन्तं, काले सप्तम्यन्तं, दा लुप्तप्रथमान्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्। **सप्तम्यास्त्रल्** से **त्रल्** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त कालार्थक सर्व, एक, अन्य, किम्, यत् और तद् शब्द से स्वार्थ में दा-प्रत्यय होता है काल अर्थ गम्यमान होने पर।

सदा, सर्वदा। सब काल में अर्थात् हमेशा। **सर्वस्मिन् काले** यह लौकिक विग्रह है। सर्व ङि इस अलौकिक विग्रह में **सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा** से दा प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, दा के परे रहते **सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि** से सर्व के स्थान पर स आदेश होने पर **स+दा=सदा** बना। सु, उसका लुक् करने पर **सदा** सिद्ध हुआ। दा आदेश न होने के पक्ष में **सर्वदा**।

एकदा (एक दिन), **अन्यदा** (अन्य दिन में), **कदा** (कब), **यदा** (जब), **तदा** (तब)। उपर्युक्त रीति से ही **एक** से **एकदा**, **अन्य** से **अन्यदा**, **किम्** से **क** आदेश होकर **कदा**, **यत्** और **तद्** से अत्व आदि होकर **यदा**, **तदा** आदि रूप बना सकते हैं।

काले इति किम्? सर्वत्र देशे। अर्थात् **सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा** सूत्र में **काले** पद के पढ़े जाने के कारण **देश** अर्थ गम्यमान होने पर **दा** प्रत्यय नहीं होता। जैसे कि- **सर्वत्र देशे**। (सर्वदा देशे नहीं बना।)

१९६५. इदमो र्हिल् ५।३।१६॥

सप्तम्यन्तात् काले इत्येव। हस्यापवादः। अस्मिन् काले एतर्हि।
'काले' किम्? इह देशे।

इदमो र्हिल्। इदमः पञ्चम्यन्तं, र्हिल् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा** से **काले** तथा **सप्तम्यास्त्रल्** से **सप्तम्याः** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

काल अर्थ में वर्तमान सप्तम्यन्त 'इदम्' इस प्रातिपदिक से स्वार्थ में र्हिल् प्रत्यय होता है।

हस्यापवादः। यह **इदमो हः** सूत्र से प्राप्त ह-प्रत्यय का अपवाद तो है ही साथ ही **सप्तम्यास्त्रल्** का भी अपवाद है। **र्हिल्** में **लकार** इत्संज्ञक है, **र्हि** शेष रहता है। ध्यान रहे कि **र्हि** में **रेफ** पहले उच्चारित है, उसके बाद **हकार** का उच्चारण होगा और अन्त में **इकार** का।

अस्मिन् काले- एतर्हि। इस काल में, अब। **इदम्+ङि** इस अलौकिक विग्रह में **सप्तम्यास्त्रल्** को बाधकर **इदमो र्हिल्** से **र्हिल्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्ति का लुक् करके **इदम्+र्हि** बना। रेफादि प्रत्यय परे है **र्हि**, अतः **एतेतौ रथोः** से **इदम्** के स्थान पर **एत** सर्वादेश हुआ- **एतर्हि** बना। **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** से अव्ययसंज्ञक होने के कारण सु आदि विभक्तियों का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हो जाने से **एतर्हि** सिद्ध हो जाता है।

'काले' किम्? इह देशे। प्रकृत सूत्र में **काले** पद की अनुवृत्ति आने से **काल** अर्थ गम्यमान होने पर यह आदेश होता है, अन्यथा नहीं होता। अतः काल अर्थ नहीं होने पर **इह देशे** बनता है, **एतर्हि काले** नहीं बनता।

१९६६. अधुना ५।३।१७॥

इदमः सप्तम्यन्तात् कालवाचिनः स्वार्थे अधुनाप्रत्ययः स्यात्। इश्। 'यस्य-' (सू.३११) इति लोपः। अधुना।

अधुना इत्यव्यमेकपदमिदं सूत्रम्। **इदमः, काले, सप्तम्याः** पदों की अनुवृत्ति और **तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च** आदि का अधिकार है।

सप्तम्यन्त कालवाची इदम्-शब्द से स्वार्थ में अधुना- प्रत्यय होता है।

वृत्तिकार के अनुसार **अधुना** को निपातन भी मान सकते हैं। ऐसी स्थिति में **धुना**-प्रत्यय और अश्-आदेश करके **अधुना** की सिद्धि की जाती है किन्तु मूलकार ने **अधुना** प्रत्यय माना है।

इश्। अधुना-प्रत्यय होने पर **इदम्** शब्द के स्थान पर **इदम इश्** सूत्र से इश् किया जाय।

'यस्य-' इति लोपः। उक्त **इश्** आदेश होने पर अवशिष्ट इकार का **यस्येति च** सूत्र से लोप किया जाय।

अधुना। अब। **अस्मिन् काले** अर्थ में **इदम्+ङि** इस स्थिति में **अधुना** सूत्र के द्वारा **अधुना** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञा होने के बाद **इदम इश्** सूत्र के द्वारा **इदम्** शब्द के स्थान पर **इश्**-सर्वादेश होकर **इ+अधुना** बना है। **यस्येति च** सूत्र से प्रकृतिभूत इकार का लोप करके केवल **अधुना** बन जाता है और

इसकी अव्ययसंज्ञा होने के कारण स्वादि प्रत्यय का लुक् हो जाता है- **अधुना**। इस प्रकार **इयती** की तरह **अधुना** शब्द भी केवल प्रत्यय मात्र ही है, प्रकृतिभाग लुप्त है।

१९६७. दानीं च ५।३।१८॥

इदानीम्।

दानीं च। दानीम् प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **इदमः, काले, सप्तम्याः** पदों की अनुवृत्ति और **तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च** आदि का अधिकार है।

सप्तम्यन्त कालवाची इदम्-शब्द से स्वार्थ में दानीम्-प्रत्यय भी होता है।

प्रत्यय की विभक्ति संज्ञा होने के कारण **न विभक्तौ तुस्माः** के द्वारा निषेध होने से मकार का लोप नहीं होता।

इदानीम्। अब। **अस्मिन् काले** अर्थ में **इदम्+ङि** इस स्थिति में **दानीं च** सूत्र के द्वारा **दानीम्** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञा होने के बाद **इदम इश्** सूत्र के द्वारा **इदम्** शब्द के स्थान पर **इश्**-सर्वादेश होकर **इदानीम्** बना है। इसकी अव्ययसंज्ञा होने के कारण स्वादि प्रत्यय का लुक् हो जाता है- **इदानीम्**।

१९६८. तदो दा च ५।३।१९॥

तदा, तदानीम्।

'तदो दावचनमनर्थकम्, विहितत्वात्' (वा.३२४३)।

तदो दा च। तदः पञ्चम्यन्तं, दा इति लुप्तप्रथमाकं पदं, चाव्ययम्। **दानीम्, इदमः, काले, सप्तम्याः** पदों की अनुवृत्ति और **तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च** आदि का अधिकार है।

सप्तम्यन्त कालवाची तद्-शब्द से स्वार्थ में दा-प्रत्यय और दानीम्-प्रत्यय होते हैं।

तदा, तदानीम्। तब। **तस्मिन् काले** अर्थ में **तद्+ङि** इस स्थिति में **तदो दा च** सूत्र के द्वारा **दा** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और विभक्ति संज्ञा होने पर **त्यदादीनामः** सूत्र से दकार को अकारादेश और पररूप होकर **तदा** शब्द बना है। **दानीम्** प्रत्यय होने के पक्ष में भी अकारादेश और पररूप होकर **तदानीम्** बना है। उभयत्र अव्ययसंज्ञा होने के कारण स्वादि प्रत्यय का लुक् हो जाता है- **तदा, इदानीम्**।

तदो दावचनमनर्थकम्, विहितत्वात्। यह वार्तिक है। इसके द्वारा यह बताया जा रहा है कि **तद्**-शब्द के द्वारा **दा**-प्रत्यय का विधान व्यर्थ है, क्योंकि **सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा** (५.३.१५) सूत्र से दा-प्रत्यय का विधान किया जा चुका है, उसी से यहाँ भी हो जायेगा।

१९६९. अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम् ५।३।२१॥

कर्हि, कदा। यर्हि, यदा। तर्हि, तदा। एतस्मिन्काले एतर्हि।

अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम्। अद्य भवः अद्यतनम्, न अद्यतनम् अनद्यतनं, तस्मिन्। अनद्यतने सप्तम्यन्तं, र्हिल् प्रथमान्तम्, अन्यतरस्यां सप्तम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **सप्तम्यास्त्रल्** से **सप्तम्याः** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है साथ ही **किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः** यह सूत्र भी अधिकृत है।

अनद्यतन काल में वर्तमान किम् आदि सप्तम्यन्त प्रातिपदिकों से तद्धितसंज्ञक र्हिल् प्रत्यय विकल्प से होता है।

कर्हि, कदा। किस अनद्यतन काल में? कब? **कस्मिन् अनद्यतने काले?** यह लौकिक विग्रह है। **किम्** ङि में **अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम्** से **र्हिल्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप होकर **किम्+र्हि** बना। प्राग्दिशीय प्रत्यय विभक्तिसंज्ञक हैं, अतः **किमः कः** से **किम्** के स्थान पर **क** आदेश होकर **कर्हि** बना और अव्ययसंज्ञा, सु, उसका लुक् करके **कर्हि** सिद्ध हुआ। **र्हिल्** न होने के पक्ष में **सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा** से **दा** प्रत्यय होकर **कदा** बन जाता है।

यर्हि, यदा। जिस अनद्यतन काल में, जब। **यस्मिन् अनद्यतने काले** यह लौकिक विग्रह है। **यत्** ङि में **अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम्** से **र्हिल्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप होकर **यत्+र्हि** बना। प्राग्दिशीय प्रत्यय विभक्ति संज्ञक हैं, अतः **त्यदादीनामः** से **अत्व** होकर **यर्हि** बना। अव्ययसंज्ञा, सु, उसका लुक् करके **यर्हि** सिद्ध हुआ। **र्हिल्** न होने के पक्ष में **सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा** से **दा** प्रत्यय होकर **यदा** बन जाता है।

तर्हि, तदा। उस अनद्यतन काल में, तब। **तस्मिन् अनद्यतने काले** यह लौकिक विग्रह है। **तत्** ङि में **अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम्** से **र्हिल्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप होकर **तत्+र्हि** बना। प्राग्दिशीय प्रत्यय विभक्ति संज्ञक हैं, अतः **त्यदादीनामः** से **अत्व** होकर **तर्हि** बना। अव्ययसंज्ञा, सु, उसका लुक् करके **तर्हि** सिद्ध हुआ। **र्हिल्** न होने के पक्ष में **सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा** से **दा** प्रत्यय होकर **तदा** बन जाता है।

एतस्मिन् काले एतर्हि। इस अनद्यतन काल में, अब। **एतत्** ङि में **अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम्** से **र्हिल्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **एतत्+र्हि** बना है। **एतदः** से **एतत्** के स्थान पर **एत** आदेश होने पर **एतर्हि** बन गया। अव्ययसंज्ञा, स्वादिकार्य करने पर **एतर्हि** सिद्ध हो जाता है।

१९७०. सद्यः परुत्परार्यैषमः परेद्यव्यद्यपूर्वेद्युरन्येद्युरन्यतरेद्युरितरेद्युरपरेद्युरधरेद्युरुभयेद्युरुत्तरेद्युः ५।३।२२॥

एते निपात्यन्ते।

'समानस्य सभावो द्यश्चाहनि' (वा.३२४५)। समानेऽहनि सद्यः।
'पूर्वपूर्वतरयोः परादेशः, उदारी च प्रत्ययौ संवत्सरे' वा.३२४६)।
पूर्वस्मिन् वत्सरे परुत्। पूर्वतरे वत्सरे- परारि।
'इदमः इश् समसण् च' (वा.३२४७)। अस्मिन् संवत्सरे ऐषमः।
'परस्मादेद्यव्यहनि' (वा.३२४८)। परस्मिन्नहनि परेद्यवि।
'इदमोऽश्भावो द्यश्च' (वा.३२४९)। अस्मिन्नहनि अद्य।
'पूर्वान्यान्यतरेतरापराधरोभयोत्तरेभ्य एद्युस् च' (वा.३२५०)।
पूर्वस्मिन्नहनि पूर्वेद्युः। अन्यस्मिन्नहनि अन्येद्युः। उभयोरह्नोरुभयेद्युः।
'द्युश्चोभयाद्वक्तव्यः' (वा.३२५१)। उभयद्युः।

सद्यःपरुत्परार्यैषमः०। सद्यः, परुत्, परारि, ऐषमः, परेद्यवि, अद्य, पूर्वेद्युः, अन्येद्युः, अन्यतरेद्युः, इतरेद्युः, अपरेद्युः, अधरेद्युः, उभयेद्युः, उत्तरेद्युः एतानि सर्वाणि अव्ययानि। **काले, सप्तम्याः**, की अनुवृत्ति और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

सद्यः, परुत्, परारि, ऐषमः, परेद्यवि, अद्य, पूर्वेद्युः, अन्येद्युः, अन्यतरेद्युः, इतरेद्युः, अपरेद्युः, अधरेद्युः, उभयेद्युः, उत्तरेद्युः ये शब्द सप्तम्यन्त प्रातिपदिकों से कालविशेष में निपातित होते हैं।

उपर्युक्त शब्दों के निपातन में क्या-क्या कार्य और क्या-क्या अर्थ विशेष है, इसका निरूपण निम्नलिखित वार्तिकों से किया जा रहा है-

समानस्य सभावो द्यश्चाहनि। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- समान-शब्द से दिन-अर्थ अभिधेय होने पर सकारान्त **द्यस्** प्रत्यय और समान-शब्द के स्थान पर **स** आदेश किया जाता है।

समानेऽहनि सद्यः। समान दिन, अभी। **समानेऽहनि** विग्रह करके **समान+ङि** इस स्थिति में **समानस्य सभावो द्यश्चाहनि** वार्तिक की सहायता से **सद्यःपरुत्परार्यैषमः०** सूत्र से द्यस्-प्रत्यय के साथ समान-शब्द के स्थान पर स-आदेश निपातन करके **सद्यस्** शब्द बनता है। प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्तिसंज्ञा और अव्ययसंज्ञा ये तीनों संज्ञायें होती हैं। विभक्तिसंज्ञा होने के कारण सकार का लोप नहीं होता, प्रातिपदिकसंज्ञा होने के कारण स्वादि प्रत्यय आते हैं और अव्ययसंज्ञा होने से स्वादिप्रत्ययों का लुक् होता है। **सद्यस्** के सकार को रुत्व और उसको विसर्ग होकर **सद्यः** सिद्ध हो जाता है।

पूर्वपूर्वतरयोः परादेशः, उदारी च संवत्सरे। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- पूर्व वर्ष अर्थ गम्य होने पर **पूर्व** और **पूर्वतर** शब्दों से क्रमशः **उत्** और **आरि** प्रत्ययों के साथ प्रकृति को **पर** आदेश हो जाता है।

पूर्वस्मिन् वत्सरे परुत्। गत वर्ष में। **पूर्वस्मिन् वत्सरे** विग्रह करके **पूर्व+ङि** इस स्थिति में **पूर्वपूर्वतरयोः परादेशः, उदारी च संवत्सरे** वार्तिक की सहायता से

सद्यःपरुत्परार्यैषमः० सूत्र से उत्-प्रत्यय के साथ पूर्व-शब्द के स्थान पर पर-आदेश का निपातन करके **पर+उत्** बना है। भसंज्ञक अकार का लोप करके **परुत्** शब्द बनता है। प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्तिसंज्ञा और अव्ययसंज्ञा ये तीनों संज्ञायें होती हैं। विभक्तिसंज्ञा होने के कारण तकार का लोप नहीं होता, प्रातिपदिकसंज्ञा होने के कारण स्वादि प्रत्यय आते हैं और अव्ययसंज्ञा होने से स्वादिप्रत्ययों का लुक् होकर **परुत्** प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

पूर्वतरे वत्सरे- परारि। गतवर्ष के पूर्व वर्ष में। **पूर्वतरस्मिन् वत्सरे** विग्रह करके **पूर्वतर+ङि** इस स्थिति में **पूर्वपूर्वतरयोः पराद्देशः, उदारी च संवत्सरे** वार्तिक की सहायता से **सद्यःपरुत्परार्यैषमः०** सूत्र से आरि-प्रत्यय के साथ पूर्वतर-शब्द के स्थान पर पर-आदेश निपातन करके **पर+आरि** बना है। भसंज्ञक अकार का लोप करके **परारि** शब्द बनता है। प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्तिसंज्ञा और अव्ययसंज्ञा ये तीनों संज्ञायें होती हैं। विभक्ति का लुक् करके **परारि** प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

इदमः इश् समसण् च। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- इस वर्ष अर्थ गम्य होने पर इदम्-शब्द से समसण्-प्रत्यय और प्रकृति के स्थान पर इश्-आदेश होता है। **समसण्** में णकार इत्संज्ञक और अन्त्य अकार उच्चारणार्थक है, **समस्** बचता है। णित्करण आदिवृद्धि के लिये है।

अस्मिन् संवत्सरे ऐषमः। इस वर्ष में। **अस्मिन् संवत्सरे** विग्रह करके **इदम्+ङि** इस स्थिति में **इदमः इश् समसण् च** वार्तिक की सहायता से **सद्यःपरुत्परार्यैषमः०** सूत्र से समसण्-प्रत्यय के साथ इदम्-शब्द के स्थान पर इश् (इ) आदेश निपातन करके **इ+समस्** बना है। णित् परे होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** सूत्र से आदिवृद्धि करके **ऐसमस्** बनता है और **आदेशप्रत्यययोः** सूत्र से प्रथम सकार को षत्व होकर **ऐषमस्** शब्द बन जाता। प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्तिसंज्ञा और अव्ययसंज्ञा ये तीनों संज्ञायें होती है। विभक्तिसंज्ञा होने के कारण सकार का लोप नहीं होता, प्रातिपदिकसंज्ञा होने के कारण स्वादि प्रत्यय आते हैं और अव्ययसंज्ञा होने से स्वादिप्रत्ययों का लुक् होता है। सकार को रुत्व और उसको विसर्ग होकर **ऐषमः** प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

परस्मादेद्यव्यहनि। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- दूसरा दिन अर्थ गम्य होने पर पर-शब्द से एद्यवि-प्रत्यय होता है।

परस्मिन्नहनि परेद्यवि। अगले दिन में। **परस्मिन् अहनि** विग्रह करके **पर+ङि** इस स्थिति में **परस्मादेद्यव्यहनि** वार्तिक की सहायता से **सद्यःपरुत्परार्यैषमः०** सूत्र से एद्यवि-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **पर+एद्यवि** बना है। भसंज्ञक अकार का लोप करके **परेद्यवि** शब्द बनता है। अव्ययसंज्ञा होने से स्वादिप्रत्ययों का लुक् होकर **परेद्यवि** प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

इदमोऽश्भावो द्यश्च। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- इसी दिन में अर्थ गम्य होने पर इदम्-शब्द से द्य-प्रत्यय के साथ प्रकृति के स्थान पर अश्-आदेश भी होता है।

अश् में शकार इत्संज्ञक है और शित् होने के कारण इदम्-सम्पूर्ण के स्थान पर सर्वादेश हो जाता है।

अस्मिन्नहनि अद्य। इसी दिन में, आज। **अस्मिन् अहनि** विग्रह करके **इदम्+ङि** इस स्थिति में **इदमोऽश्भावो द्यश्च** वार्तिक की सहायता से **सद्यःपरुत्परार्यैषमः०** सूत्र से द्य-प्रत्यय के साथ इदम्-शब्द के स्थान पर अश् (अ) आदेश निपातन करके **अद्य** शब्द बनता है। प्रातिपदिकसंज्ञा, विभक्तिसंज्ञा और अव्ययसंज्ञा ये तीनों संज्ञायें होती हैं। विभक्तिसंज्ञा होने के कारण सकार का लोप नहीं होता, प्रातिपदिकसंज्ञा होने के कारण स्वादि प्रत्यय आते हैं और अव्ययसंज्ञा होने से स्वादिप्रत्ययों का लुक् होकर **अद्य** प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

पूर्वान्यान्यतरेतरापराधरोभयोत्तरेभ्य एद्युस् च। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- दिन अर्थ अभिधेय होने पर पूर्व, अन्य, अन्यतर, इतर, अपर, अधर, उभय, उत्तर इन शब्दों से एद्युस्-प्रत्यय होता है। एद्युस् की **प्राग्दिशो विभक्तिः** से विभक्ति संज्ञा होने के कारण **न विभक्तौ तुस्माः** सूत्र से निषेध होने से सकार की इत्संज्ञा नहीं होती।

पूर्वस्मिन्नहनि पूर्वेद्युः। पूर्व दिन में। **पूर्वस्मिन् अहनि** विग्रह करके **पूर्व+ङि** इस स्थिति में **पूर्वान्यान्यतरेतरापराधरोभयोत्तरेभ्य एद्युस् च** वार्तिक की सहायता से **सद्यःपरुत्परार्यैषमः०** सूत्र से एद्युस्-प्रत्यय होने पर भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पूर्वेद्युस्** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होने पर विभक्तिलोप और सकार को रुत्व और उसको विसर्ग होकर **पूर्वेद्युः** सिद्ध हो जाता है।

अन्यस्मिन्नहनि अन्येद्युः। दूसरे दिन में। **अन्यस्मिन् अहनि** विग्रह करके **अन्य+ङि** इस स्थिति में **पूर्वान्यान्यतरेतरापराधरोभयोत्तरेभ्य एद्युस् च** वार्तिक की सहायता से **सद्यःपरुत्परार्यैषमः०** सूत्र से एद्युस्-प्रत्यय होने पर भसंज्ञक अकार का लोप होकर **अन्येद्युस्** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होने पर विभक्तिलोप और सकार को रुत्व और उसको विसर्ग होकर **अन्येद्युः** सिद्ध हो जाता है।

अन्यतरस्मिन्नहनि अन्यतरेद्युः। दूसरे दिन में। **अन्यतरस्मिन् अहनि** विग्रह करके **अन्यतर+ङि** इस स्थिति में **पूर्वान्यान्यतरेतरापराधरोभयोत्तरेभ्य एद्युस् च** वार्तिक की सहायता से **सद्यःपरुत्परार्यैषमः०** सूत्र से एद्युस्-प्रत्यय होने पर भसंज्ञक अकार का लोप होकर **अन्यतरेद्युस्** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होने पर विभक्तिलोप और सकार को रुत्व और उसको विसर्ग होकर **अन्यतरेद्युः** सिद्ध हो जाता है।

अपरेद्युः। दूसरे दिन में। **अपरस्मिन् अहनि** विग्रह करके **अपर+ङि** इस स्थिति में **पूर्वान्यान्यतरेतरापराधरोभयोत्तरेभ्य एद्युस् च** वार्तिक की सहायता से **सद्यःपरुत्परार्यैषमः०** सूत्र से एद्युस्-प्रत्यय होने पर भसंज्ञक अकार का लोप होकर **अपरेद्युस्** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होने पर विभक्तिलोप और सकार को रुत्व और उसको विसर्ग होकर **अपरेद्युः** सिद्ध हो जाता है।

अधरेद्युः। दूसरे दिन में। **अधरस्मिन् अहनि** विग्रह करके **अधर+ङि** इस स्थिति में **पूर्वान्यान्यतरेतरापराधरोभयोत्तरेभ्य एद्युस् च** वार्तिक की सहायता से **सद्यःपरुत्परार्यैषमः०** सूत्र से एद्युस्-प्रत्यय होने पर भसंज्ञक अकार का लोप होकर **अधरेद्युस्** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होने पर विभक्तिलोप और सकार को रुत्व और उसको विसर्ग होकर **अधरेद्युः** सिद्ध हो जाता है।

इतरेद्युः। दूसरे दिन में। **इतरस्मिन् अहनि** विग्रह करके **इतर+ङि** इस स्थिति में **पूर्वान्यान्यतरेतरापराधरोभयोत्तरेभ्य एद्युस् च** वार्तिक से एद्युस्-प्रत्यय होने पर भसंज्ञक अकार का लोप होकर **इतरेद्युस्** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होने पर विभक्तिलोप और सकार को रुत्व और उसको विसर्ग होकर **इतरेद्युः** सिद्ध हो जाता है।

उभयोरह्नोरुभयेद्युः। दोनों दिनों में। **उभयोः अह्नोः** विग्रह करके **उभय+ओस्** इस स्थिति में **पूर्वान्यान्यतरेतरापराधरोभयोत्तरेभ्य एद्युस् च** वार्तिक की सहायता से **सद्यःपरुत्परार्यैषमः०** सूत्र से एद्युस्-प्रत्यय होने पर भसंज्ञक अकार का लोप होकर **उभयेद्युस्** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होने पर विभक्तिलोप और सकार को रुत्व और उसको विसर्ग होकर **उभयेद्युः** सिद्ध हो जाता है।

उत्तरेद्युः। उत्तर दिन में। **उत्तरस्मिन् अहनि** विग्रह करके **उत्तर+ङि** इस स्थिति में **पूर्वान्यान्यतरेतरापराधरोभयोत्तरेभ्य एद्युस् च** वार्तिक की सहायता से **सद्यःपरुत्परार्यैषमः०** सूत्र से एद्युस्-प्रत्यय होने पर भसंज्ञक अकार का लोप होकर **उत्तरेद्युस्** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होने पर विभक्तिलोप और सकार को रुत्व और उसको विसर्ग होकर **उत्तरेद्युः** सिद्ध हो जाता है।

द्युश्चोभयाद्वक्तव्यः। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- उभय-शब्द से द्युस्-प्रत्यय भी होता है। पहले एद्युस् प्रत्यय करके **उभयेद्युः** बनाया जा चुका है।

उभयद्युः। दोनों दिनों में। **उभयोः अह्नोः** विग्रह करके **उभय+ओस्** इस स्थिति में **द्युश्चोभयाद्वक्तव्यः च** वार्तिक की सहायता से **सद्यःपरुत्परार्यैषमः०** सूत्र से द्युस्-प्रत्यय होने पर **उभयद्युस्** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होने पर विभक्तिलोप और सकार को रुत्व और उसको विसर्ग होकर **उभयद्युः** सिद्ध हो जाता है।

१९७१. प्रकारवचने थाल् ५।३।२३॥
प्रकारवृत्तिभ्यः किमादिभ्यस्थाल् स्यात् स्वार्थे।
तेन प्रकारेण तथा। यथा।

प्रकारवचने थाल्। प्रकारवचने सप्तम्यन्तं, थाल् प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है साथ ही **किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः** यह सूत्र भी अधिकृत है।

'इस प्रकार से या उस प्रकार से' आदि प्रकारवचन में किम् आदि शब्दों से थाल् प्रत्यय होता है, स्वार्थ में।

लकार इत्संज्ञक है, **था** शेष रहता है। **किम्** शब्द से तो **थाल्** को बाधकर अग्रिम सूत्र **इदमस्थमुः** से **थमु** प्रत्यय हो जाता है। किमादि-शब्दों में किम्, सर्वनामसंज्ञक और बहु शब्द आते हैं। **प्रकार** से यहाँ तात्पर्य सामान्य का भेदक अर्थात् विशिष्ट व्यावर्तक दिखाना है। सादृश्य रूप में यहाँ **प्रकार** विवक्षित नहीं है, क्योंकि **सर्वथा** इत्यादि शब्दों से सादृश्यार्थ की प्रतीति नहीं होती। सब प्रकार से कहने पर संकलित वैशिष्ट्य का बोध होता है।

तेन प्रकारेण तथा। उस प्रकार से। **तेन प्रकारेण** लौकिक विग्रह और **तत्+टा** अलौकिक विग्रह है। **प्रकारवचने थाल्** से **थाल्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **था** की **प्राग्दिशो विभक्तिः** से विभक्तिसंज्ञा, **त्यदादीनामः** से अत्व करके सु, अव्ययत्वात् विभक्ति का लुक् करने पर **तथा** सिद्ध हो जाता है।

यथा। जिस प्रकार से। **येन प्रकारेण** लौकिक विग्रह और **यत्+टा** अलौकिक विग्रह है। **प्रकारवचने थाल्** से **थाल्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **था** की **प्राग्दिशो विभक्तिः** से विभक्तिसंज्ञा, **त्यदादीनामः** से अत्व करके सु, अव्ययत्वात् विभक्ति का लुक् करने पर **यथा** सिद्ध हो जाता है।

१९७२. इदमस्थमुः ५।३।२४॥

थालोऽपवादः।

'एतदो वाच्यः' (वा.३२३५)। अनेन एतेन वा प्रकारेण इत्थम्।

इदमस्थमुः। इदमः पञ्चम्यन्तं, थमुः प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

यदि इदम्-शब्द प्रकारवचन अर्थ में वर्तमान हो तो उससे स्वार्थ में थमु-प्रत्यय होता है।

उकार इत्संज्ञक है, **थम्** शेष रहता है।

थालोऽपवादः। यह **प्रकारवचने थाल्** का अपवाद है।

एतदो वाच्यः। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- एतद् शब्द से भी प्रकारवचन अर्थ में थमु प्रत्यय होता है।

अनेन एतेन वा प्रकारेण इत्थम्। इस प्रकार से। **अनेन प्रकारेण** लौकिक विग्रह और **इदम्+टा** अलौकिक विग्रह है। **इदमस्थमुः** से थमु प्रत्यय होने पर अनुबन्ध लोप ओर **एतेतौ रथोः** से इत् आदेश करके **इत्थम्।** इसी तरह से **एतेन प्रकारेण** विग्रह करके **एतद्+टा** इस स्थिति में **एतदोऽपि वाच्यः** वार्तिक से **थमु** प्रत्यय करके **एतद्** के स्थान पर **इत्** आदेश करने पर भी **इत्थम्** ही बनता है। आगे अव्ययसंज्ञा, सु, उसका लुक् करना तो सामान्य प्रक्रिया ही है।

१९७३. किमश्च ५।३।२५॥

केन प्रकारेण कथम्।

इति तद्धितेषु प्राग्दिशीयप्रकरणम्।

किमश्च। किमः पञ्चम्यन्तं, चाव्ययपदं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रकारवचने थाल्** से विभक्तिविपरिणाम करके **प्रकारवचनात्** की तथा **इदमस्थमुः** से थमु की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, प्राग्दिशो विभक्तिः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्** का अधिकार है।

प्रकारवचन अर्थ में किम्-शब्द से परे थमु प्रत्यय होता है।

कथम्। किस प्रकार से। **केन प्रकारेण** लौकिक विग्रह और **किम्+टा** अलौकिक विग्रह है। **किमश्च** सूत्र से थमु-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप और **किमः कः** सूत्र से **किम्** के स्थान पर **क** आदेश करके **कथम्** सिद्ध हो जाता है।

श्री भट्टोजिदीक्षित द्वारा विरचित वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी की गोविन्दाचार्य कृत श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी टीका में तद्धित-प्राग्दिशीय-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ प्रागिवीय-प्रकरणम्

अब **प्रागिवीयप्रकरण** प्रारम्भ होता है। इस प्रकरण से बाद के प्रकरण में **इवे प्रतिकृतौ** (५.३.९६) सूत्र से **इव** अर्थ में प्रत्ययों का विधान है। अतः **इवार्थ** से पहले के प्रकरण को **प्रागिवीयप्रकरण** कहा गया है। इस प्रकरण में प्रायः अनेकों में किसी एक की विशिष्टता दिखाये जाने पर ही प्रत्ययों का विधान होता है। अस्ताति, असि, अतसुच्, कुछ निपातन, आति, एनप्, आच्, आहि, धमुञ्, पाशप्, रूप्य, तमप्, इष्ठन्, तरप्, ईयसुन्, डतरच्, डतमच्, धा और चरट् आदि प्रत्यय सूत्रों से विहित हैं। इस प्रकरण के बहुत से प्रत्यय **तसिलादिष्वाकृत्वसुचः** के अन्तर्गत आने के कारण इन प्रत्ययान्तों की **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** सूत्र से अव्ययसंज्ञा हो जाती है। इसके फलस्वरूप स्वादिप्रत्ययों का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हो जाता है।

१९७४. दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः ५।३।२७॥

सप्तम्याद्यन्तेभ्यो दिशि रूढेभ्यो दिग्देशकालवृत्तिभ्यस्स्वार्थेऽस्तातिप्रत्ययः स्यात्।

दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः। दिशां शब्दाः दिक्छब्दास्तेभ्यः, षष्ठीतत्पुरुषः। सप्तमी च पञ्चमी च प्रथमा च तासामितरेतरयोगद्वन्द्वः सप्तमीपञ्चमीप्रथमास्ताभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः। दिक् च देशश्च कालश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो दिग्देशकालास्तेषु दिग्देशकालेषु। दिक्छब्देभ्यः पञ्चम्यन्तं, सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः पञ्चम्यन्तं, दिग्देशकालेषु सप्तम्यन्तम्, अस्तातिः प्रथमान्तम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त, पञ्चम्यन्त और प्रथमान्त दिशा अर्थ में रूढ दिशावृत्ति देशवृत्ति और कालवृत्ति प्रातिपदिकों से स्वार्थ में अस्ताति-प्रत्यय होता है।

सूत्र में तीन (सप्तमी, पञ्चमी और प्रथमा) विभक्तियों तथा तीन अर्थों (दिक्, देश और काल) का उल्लेख होने पर भी उनमें यथासंख्य विवक्षित नहीं है। **अस्ताति** में इकार उच्चारणार्थ है, प्रत्यय का स्वरूप तकारान्त **अस्तात्** मात्र है। यहाँ से लेकर **संख्याया विधार्थे धा** (५.३.४२) तक **अस्तातिः** पद को छोड़कर अन्य सभी पदों की अनुवृत्ति होती है। इसके उदाहरण तीसरे सूत्र में दिये गये हैं।

१९७५. पूर्वाधरावराणामसि पुरधवश्चैषाम् ५।३।३९॥

एभ्योऽस्तात्यर्थेऽसिप्रत्ययः स्यात्,
तद्योगे चैषां क्रमात् 'पुर्' 'अध्' 'अव्' इत्यादेशाः स्युः।

पूर्वाधरावराणामसि पुरधवश्चैषाम्। पूर्वश्च अधरश्च अवरश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः पूर्वाधरावरास्तेषां पूर्वाधरावराणाम्। पुर् च अध् च अव् च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः पुरधवः। पूर्वाधरावराणां षष्ठ्यन्तम्, असि लुप्तप्रथमाकं पदं, पुरधवः प्रथमान्तं, चाव्ययम्, एषां षष्ठ्यन्तम्। **दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः** से **दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेषु** की अनुवृत्ति आती है और **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है। प्रत्यय-विधान के अतिरिक्त स्थानी भी तीन और आदेश भी तीन हैं। अतः **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** की उपस्थिति होती है।

सप्तम्यन्त, पञ्चम्यन्त और प्रथमान्त दिशा अर्थ में रूढ दिशावृत्ति देशवृत्ति और कालवृत्ति पूर्व, अधर और अवर इन प्रातिपदिकों से स्वार्थ में असि प्रत्यय होता है और इन प्रकृतियों के स्थान पर क्रमशः पुर्, अध् और अव् आदेश भी होते हैं।

यथासंख्य-नियम से **पूर्व**-शब्द के स्थान पर **पुर्**-आदेश, **अधर**-शब्द के स्थान पर **अध्**-आदेश और **अवर**-शब्द के स्थान पर **अव्** आदेश हो जाते हैं। इसके उदाहरण भी अगले सूत्र में दिये गये हैं। **असि** में इकार उच्चारणार्थ है, प्रत्यय का स्वरूप **अस्** है।

१९७६. अस्ताति च ५।३।४०॥

अस्तातौ परे पूर्वादीनां पुरादयः स्युः।
पूर्वस्याम्, पूर्वस्याः, पूर्वा वा दिक्- पुरः, पुरस्तात्।
अधः, अधस्तात्। अवः।

अस्ताति च। अस्ताति इति लुप्तसप्तमीकं पदम्, अस्तातौ इत्यर्थः। चाव्ययम्। **पूर्वाधरावराणामसि पुरधवश्चैषाम्** से **पूर्वाधरावराणां, पुरधवः** की और **दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः** से **दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेषु** की अनुवृत्ति आती है और **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

अस्ताति प्रत्यय के परे रहने पर भी सप्तम्यन्त, पञ्चम्यन्त और प्रथमान्त दिशा अर्थ में रूढ दिशावृत्ति देशवृत्ति और कालवृत्ति पूर्व, अधर और अवर शब्दों के स्थान पर क्रमशः पुर्, अध् और अव् आदेश होते हैं।

पूर्वस्याम्, पूर्वस्याः, पूर्वा वा दिक्- पुरः, पुरस्तात्। विग्रह की दृष्टि से इनके तीन-तीन विभाग करने होंगे- **पूर्वस्यां दिशि, पूर्वस्याः दिशः, पूर्वा दिक्।** पूर्व दिशा में, पूर्व दिशा से और पूर्व दिशा। इसी तरह **पूर्वस्मिन् देशे, पूर्वस्माद् देशात्** और **पूर्वो देशः** (पूर्वदेश में, पूर्व देश से और पूर्व देश)। एवमेव **पूर्वस्मिन् काले, पूर्वस्मात् कालात्** और **पूर्वः कालः** (पूर्वकाल में, पूर्वकाल से और पूर्वकाल)। विग्रह अनुसार विभक्ति लगाकर **पूर्व**-शब्द से **पूर्वाधरावराणामसि पुरधवश्चैषाम्** सूत्र से **असि** प्रत्यय के साथ **पुर्** आदेश करने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् करने पर **पुर्+अस्=पुरस्** शब्द बना है। दूसरी ओर **दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः** सूत्र से **अस्ताति (अस्तात्)** प्रत्यय होने पर उसके परे रहते **अस्ताति च** सूत्र से **पूर्व**-शब्द के स्थान पर **पुर्** आदेश होकर **पुरस्तात्** बन जाता है। उभयत्र अव्ययसंज्ञा करके स्वादिप्रत्यय के आने पर उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हो जाता है और **पुरस्** के सकार को रुत्व तथा उसको विसर्ग होकर **पुरः** और **पुरस्तात्** ये दो रूप सिद्ध होते हैं।

अधः, अधस्तात्। विग्रह की दृष्टि से यहाँ भी तीन-तीन विभाग करने होंगे- **अधरस्यां, अधरस्याः, अधरा दिक्** इत्यादि। नीचे की ओर, नीचे से और नीचे। विग्रह अनुसार विभक्ति लगाकर **अधर**-शब्द से **पूर्वाधरावराणामसि पुरधवश्चैषाम्** सूत्र से **असि** प्रत्यय के साथ **अध्** आदेश करने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् करने पर **अधस्** शब्द बना है। दूसरी ओर **दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः** सूत्र से **अस्ताति (अस्तात्)** प्रत्यय होने पर उसके परे रहते **अस्ताति च** सूत्र से **अधर**-शब्द के स्थान पर **अध्** आदेश होकर **अधस्तात्** बन जाता है। उभयत्र अव्ययसंज्ञा करके स्वादिप्रत्यय के आने पर उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हो जाता है और **अधस्** के सकार को रुत्व तथा उसको विसर्ग होकर **अधः** और **अधस्तात्** ये दो रूप सिद्ध होते हैं। दिग्वृत्ति के विग्रह बनाये गये हैं। इसी तरह देश और कालवृत्ति के भी विग्रह बनाने होंगे। रूप तीनों में समान ही होते हैं।

अवः। विग्रह की दृष्टि से यहाँ भी तीन-तीन विभाग करने होंगे- **अवरस्यां, अवरस्याः, अवरा दिक्** इत्यादि। बाहर की ओर, बाहर से और बाहर। विग्रह अनुसार विभक्ति लगाकर **अवर**-शब्द से **पूर्वाधरावराणामसि पुरधवश्चैषाम्** सूत्र से **असि** प्रत्यय के साथ **अव्** आदेश करने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् करने पर **अवस्** शब्द बना है। उसकी अव्ययसंज्ञा करके स्वादिप्रत्यय के आने पर उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हो जाता है और **अवस्** के सकार को रुत्व तथा उसको विसर्ग होकर **अवः** रूप सिद्ध होता है। दिग्वृत्ति के विग्रह बनाये गये हैं। इसी तरह देश और कालवृत्ति के भी विग्रह बनाने होंगे। रूप तीनों में समान ही होते हैं।

१९७७. विभाषाऽवरस्य ५।३।४१॥

अवरस्यास्तातौ परेऽव् स्याद्वा।

अवस्तात्, अवरस्तात्। एवं देशे काले च। **'दिशि रूढेभ्यः'** किम्? **ऐन्द्र्यां वसति।** **'सप्तम्याद्यन्तेभ्यः'** किम्? **पूर्वं ग्रामं गतः।**

'दिगादिवृत्तिभ्यः' किम्? **पूर्वस्मिन् गुरौ वसति।**

'अस्ताति च' (सू.१९७६) इति ज्ञापकादसिरस्तातिं न बाधते।

विभाषाऽवरस्य। विभाषा प्रथमान्तम्, अवरस्य षष्ठ्यन्तम्। **अस्ताति च** से **अस्ताति** की और **दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः** से **दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेषु** की अनुवृत्ति आती है साथ ही **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

अस्ताति प्रत्यय के परे रहने पर सप्तम्यन्त, पञ्चम्यन्त और प्रथमान्त दिशा अर्थ में रूढ दिशावृत्ति देशवृत्ति और कालवृत्ति अवर शब्द के स्थान पर विकल्प से अव् आदेश होता है।

अवर शब्द के सम्बन्ध में पूर्वसूत्र से नित्य से प्राप्त **अव्** आदेश प्रकृत सूत्र से विकल्प से किया गया है। पक्ष में **अवर** ही रहता है।

अवस्तात्, अवरस्तात्। बाहर की ओर। **अवरस्याम् दिशि** विग्रह करके **अवरा+ङि** इस स्थिति में **अस्ताति (अस्तात्)** प्रत्यय होने पर उसके परे रहते **विभाषाऽवरस्य** सूत्र से **अवर**-शब्द के स्थान पर **अव्** आदेश होकर **अवस्तात्** बन जाता है। उक्त आदेश न होने के पक्ष में **अवर+अस्तात्** बना हुआ है। भसंज्ञा करके भसंज्ञक अकार का लोप होने पर **अवरस्तात्** बन गया है। उभयत्र अव्ययसंज्ञा करके स्वादिप्रत्यय के आने पर उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् होकर **अवस्तात्** और **अवरस्तात्** ये दो रूप सिद्ध होते हैं।

एवं देशे काले च। इसी तरह देशवृत्ति और कालवृत्ति **अवर** शब्द के सम्बन्ध में भी समझना चाहिये।

'दिशि रूढेभ्यः' किम्? ऐन्द्र्यां वसति। अस्ताति-प्रत्यय के विधान में **दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः** सूत्र में **दिक्छब्देभ्यः** का **दिशि रूढेभ्यः** अर्थ किया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि जो शब्द यौगिक दिशावाची न होकर दिशा अर्थ में रूढ़ हों, ऐसे शब्दों से **अस्ताति** प्रत्यय हो किन्तु यौगिक शब्दों से न हो। अतः **इन्द्रो देवता अस्याः** (जिस दिशा का देवता इन्द्र हो) ऐसा विग्रह करके अण्-प्रत्यय और ङीप् प्रत्यय होकर निष्पन्न यौगिक **ऐन्द्री** शब्द से **अस्ताति** प्रत्यय नहीं होता। अतः **ऐन्द्र्यां वसति** (पूर्व दिशा में रहता है) में उक्त प्रत्यय नहीं हुआ। **ऐन्द्री** शब्द पूर्वदिशा के लिये रूढ़ न होकर यौगिक है।

'सप्तम्याद्यन्तेभ्यः' किम्? पूर्वं ग्रामं गतः। अस्ताति-प्रत्यय के विधान में **दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्ताति:** सूत्र में **सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः** पद का निवेश किया गया है। इसके फलस्वरूप सप्तम्यन्त, पञ्चम्यन्त और प्रथमान्त दिग्देशकालवृत्ति शब्दों से ही **अस्ताति** होता है, अन्य विभक्त्यन्त से नहीं होता। इसके फलस्वरूप **पूर्वं ग्रामं गतः** (पूर्व के ग्राम को गया हुआ) में **अस्ताति** प्रत्यय नहीं हुआ, क्योंकि यहाँ उक्त तीनों विभक्तियों से भिन्न द्वितीया-विभक्ति है। अतः वाक्य ही रह जाता है।

'दिगादिवृत्तिभ्यः' किम्? **पूर्वस्मिन् गुरौ वसति**। अस्ताति-प्रत्यय के विधान में **दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्ताति:** सूत्र में **दिग्देशकालेषु** पद के द्वारा दिग्वृत्ति, देशवृत्ति और कालवृत्ति शब्दों से ही **अस्ताति** होता है, अन्य अर्थ होने पर नहीं होता। इसके फलस्वरूप **पूर्वस्मिन् गुरौ वसति** (पहले के गुरु के यहाँ रहता है) में **अस्ताति** प्रत्यय नहीं हुआ, क्योंकि यहाँ **पूर्व** शब्द दिग्देशकाल में से किसी भी अर्थ में नहीं है। अतः वाक्य ही रह जाता है।

'अस्ताति च' इति ज्ञापकादसिरस्तातिं न बाधते। यहाँ **अस्ताति** सामान्य प्रत्यय है और **पूर्वाधरवर** शब्दों से **असि** प्रत्यय विशेषतया विहित है। अतः अब यहाँ पर यह शंका होती है कि अस्ताति-प्रत्यय के विधायक सूत्र से उत्तरसूत्र होने के कारण कहीं अस्ताति-प्रत्यय को असि-प्रत्यय बाधता तो नहीं है? इसके उत्तर में मूलकार कहते हैं कि अस्ताति च सूत्र से अस्ताति-प्रत्यय के परे भी **पूर्व, अधर, अवर** शब्दों में आदेश-विधान होने के कारण यह ज्ञापन मिलता है कि **असि** प्रत्यय **अस्ताति** को नहीं बाधता, अन्यथा अस्ताति के परे रहते आदेश-विधान ही व्यर्थ हो जाता।

१९७८. दक्षिणोत्तराभ्यामतसुच् ५।३।२८॥

अस्तातेरपवादः। दक्षिणतः। उत्तरतः।

दक्षिणोत्तराभ्यामतसुच्। दक्षिणश्च च उत्तरश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो दक्षिणोत्तरौ, ताभ्यां दक्षिणोत्तराभ्यां पञ्चम्यन्तम्, अतसुच् प्रथमान्तम्। **दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्ताति:** से **दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेषु** की अनुवृत्ति आती है और **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त, पञ्चम्यन्त और प्रथमान्त दिशा अर्थ में रूढ दिशावृत्ति देशवृत्ति और कालवृत्ति दक्षिण और उत्तर शब्दों से स्वार्थ में अतसुच् प्रत्यय होता है।

अस्तातेरपवादः। यह अस्ताति-प्रत्यय का अपवाद है। **अतसुच्** में चकार इत्संज्ञक और अकार उच्चारणार्थक है। प्रत्यय का स्वरूप **अतस्** है।

दक्षिणतः। दक्षिण से। **दक्षिणस्यां दिशि, दक्षिणस्याः दिशः, दक्षिणा दिक्** आदि विग्रह करके **दक्षिणा**-शब्द में विग्रहानुसार यथायोग्य विभक्ति लगाकर **दक्षिणोत्तराभ्यामतसुच्** सूत्र से अतसुच् प्रत्यय होन पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके भसंज्ञक आकार का लोप करने पर **दक्षिणतस्** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादि प्रत्यय आते हैं किन्तु शब्द के अव्ययसंज्ञक होने के कारण प्रत्यय का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हो जाता है और सकार को रुत्व और उसको विसर्ग होकर **दक्षिणतः** सिद्ध हो जाता है।

उत्तरतः। उत्तर से। **उत्तरस्यां दिशि, उत्तरस्याः दिशः, उत्तरा दिक्** आदि विग्रह करके **उत्तरा**-शब्द में विग्रहानुसार यथायोग्य विभक्ति लगाकर **दक्षिणोत्तराभ्यामतसुच्** सूत्र से अतसुच् प्रत्यय होन पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके भसंज्ञक आकार का लोप करने पर **उत्तरतस्** शब्द बनता है। स्वादिकार्य से **उत्तरतः** सिद्ध हो जाता है।

१९७९. विभाषा परावराभ्याम् ५।३।२९॥

परतः। अवरतः। परस्तात्। अवरस्तात्।

विभाषा परावराभ्याम्। परश्च अवरश्च परावरौ ताभ्यां परावराभ्याम्, इतरेतरयोगद्वन्द्वः। विभाषा प्रथमान्तं, परावराभ्यां पञ्चम्यन्तम्। **दक्षिणोत्तराभ्यामतसुच्** से **अतसुच्** की और **दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः.** से **दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेषु** की अनुवृत्ति आती है तथा **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त, पञ्चम्यन्त और प्रथमान्त दिशा अर्थ में रूढ दिशावृत्ति देशवृत्ति और कालवृत्ति पर और अवर इन प्रातिपदिकों से स्वार्थ में विकल्प से अतसुच् प्रत्यय होता है।

पक्ष में **अस्ताति** प्रत्यय होता है।

परतः, परस्तात्। दूर की ओर, दूर से, दूर। **परस्यां दिशि, परस्याः दिशः, परा दिक्** आदि विग्रह करके **परा**-शब्द में विग्रहानुसार यथायोग्य विभक्ति लगाकर **विभाषा परावराभ्याम्** सूत्र से विकल्प से अतसुच् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके भसंज्ञक आकार का लोप करने पर **परतस्** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादि प्रत्यय आते हैं किन्तु शब्द के अव्ययसंज्ञक होने के कारण प्रत्यय का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हो जाता है और सकार को रुत्व और उसको विसर्ग होकर **परतः** सिद्ध हो जाता है। पक्ष में पहले ही **अस्ताति** प्रत्यय लगाकर **परस्तात्** बनाया जा चुका है।

अवरतः, अवरस्तात्। बाहर की ओर, बाहर से, बाहर। **अवरस्यां दिशि,**

अवस्याः दिशः, अवरा दिक् आदि विग्रह करके **अवरा**-शब्द में विग्रहानुसार यथायोग्य विभक्ति लगाकर **विभाषा परावराभ्याम्** सूत्र से विकल्प से अतसुच् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके भसंज्ञक आकार का लोप करने पर **अवरतस्** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादि प्रत्यय आते हैं किन्तु शब्द के अव्ययसंज्ञक होने के कारण प्रत्यय का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हो जाता है और सकार को रुत्व एवं उसको विसर्ग होकर **अवरतः** सिद्ध हो जाता है। पक्ष में पहले ही **अस्ताति** प्रत्यय लगाकर **अवरस्तात्** बनाया जा चुका है।

१९८०. अञ्चेर्लुक् ५।३।३०॥

अञ्चत्यन्ताद् दिक्छब्दादस्तातेर्लुक् स्यात्। 'लुक्तद्धितलुकि' (सू.१४०८)। प्राच्यां प्राच्याः प्राची वा दिक् प्राक्। उदक्। एवं देशे काले च।

अञ्चेर्लुक्। अञ्चेः षष्ठ्यन्तं, लुक् प्रथमान्तम्। **दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमी-प्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः** से **दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेषु** की अनुवृत्ति आती है तथा **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

सप्तम्यन्त, पञ्चम्यन्त और प्रथमान्त दिशा अर्थ में रूढ दिग्देशकाल में विद्यमान अञ्चु-धातु वाले दिशावाची शब्द से उत्तरवर्ती अस्ताति प्रत्यय का लुक् होता है।

अस्ताति-प्रत्यय के सम्बन्ध में विशेष विधान किया गया है। प्रादि पूर्वक **अञ्चु** धातु से **प्राची, अवाची, उदीची, प्रतीची** आदि दिशावाची शब्द निष्पन्न होते हैं, उन्हीं का यहाँ पर ग्रहण है।

'लुक्तद्धितलुकि'। तद्धित-प्रत्यय के लुक् होने पर स्त्रीप्रत्यय का लुक् करने वाले सूत्र का स्मरण कराया गया है।

प्राच्यां प्राच्याः प्राची वा दिक् प्राक्। पूर्व की ओर, पूर्व से, पूर्व। **प्राच्यां दिशि, प्राच्याः दिशः, प्राची दिक्** आदि विग्रह करके **प्राची**-शब्द में विग्रहानुसार यथायोग्य विभक्ति लगाकर **दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः** सूत्र से **अस्ताति** प्रत्यय होने पर उसका **अञ्चेर्लुक्** सूत्र से लुक् हो जाता है। उसके बाद **लुक्तद्धितलुकि** सूत्र के द्वारा स्त्रीप्रत्यय ईकार का भी लुक् हो जाता है। इस तरह **प्राच्** शब्द ही बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादि प्रत्यय आते हैं किन्तु शब्द के अव्ययसंज्ञक होने के कारण प्रत्यय का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हो जाता है और चकार को कुत्व ककार होकर **प्राक्** सिद्ध हो जाता है।

उदक्। उत्तर की ओर, उत्तर से, उत्तर। **उदीच्यां दिशि, उदीच्याः दिशः, उदीची दिक्** आदि विग्रह करके **उदीची**-शब्द में विग्रहानुसार यथायोग्य विभक्ति लगाकर

दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः सूत्र से **अस्ताति** प्रत्यय होने पर उसका **अञ्चेर्लुक्** सूत्र से लुक् हो जाता है। उसके बाद **लुक्तद्धितलुकि** सूत्र के द्वारा स्त्रीप्रत्यय ईकार का भी लुक् हो जाता है। इस तरह **उदीच्** बना हुआ है। ङीप् के हट जाने पर भसंज्ञक निमित्तक **उद ईत्** (६.४.१३९) सूत्र से विहित ईकार भी हट जाता है- **निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः**। इस तरह **उदच्** शब्द बना हुआ है। स्वादि प्रत्यय आते हैं किन्तु शब्द के अव्ययसंज्ञक होने के कारण प्रत्यय का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हो जाता है और चकार को कुत्व ककार होकर **उदक्** सिद्ध हो जाता है।

एवं देशे काले च। ऊपर के दोनों उदाहरणों को **दिग्वृत्ति** मानकर विग्रह किया गया था, उसी प्रकार से देशवृत्ति और कालवृत्ति के भी विग्रह बनाकर समान ही रूप सिद्ध होते हैं।

१९८१. उपर्युपरिष्टात् ५।३।३१॥

अस्तातेर्विषये ऊर्ध्वशब्दस्योपादेशः स्यात्, रिल्, रिष्टातिलौ च प्रत्ययौ। उपरि, उपरिष्टाद्वा वसति, आगतः, रमणीयं वा।

उपर्युपरिष्टात्। उपरि अव्ययम्, उपरिष्टात् अव्ययम्। **दिक्छब्देभ्यः सप्तमी-पञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः** से **दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेषु** की अनुवृत्ति आती है तथा **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

अस्ताति-प्रत्यय के विषय में ऊर्ध्व-शब्द के स्थान पर उप-आदेश और रिल् तथा रिष्टातिल् प्रत्यय का निपातन करके उपरि तथा उपरिष्टात् ये दो शब्द साधु माने जाते हैं।

अस्ताति प्रत्यय सप्तमी-पञ्चमी-प्रथमान्त से दिग्देशकाल अर्थ में होता है, अतः **अस्तात्यर्थ** कहने से उपर्युक्त सभी अर्थ अभिप्रेत हैं। दोनों प्रत्ययों में लकार इत्संज्ञक है और **रिष्टातिल्** में इकार उच्चारणार्थक। इस तरह प्रत्यय का स्वरूप है- **रि** और **रिष्टात्**।

उपरि, उपरिष्टाद्वा वसति। रहने वाला ऊपर के भाग में स्थित है। **ऊर्ध्वायां दिशि वसति** विग्रह करके **ऊर्ध्वा+ङि** इस स्थिति में **उपर्युपरिष्टात्** सूत्र से **ऊर्ध्वा**-शब्द के स्थान पर **उप** आदेश के साथ **रिल्** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **उपरि** शब्द बना है और **रिष्टातिल्** प्रत्यय होने के पक्ष में **उपरिष्टात्** बना है। अव्ययसंज्ञा होने के कारण आगत स्वादिप्रत्यय का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् होकर **उपरि** और **उपरिष्टात्** प्रयोग सिद्ध हो जाते हैं। यह सप्तम्यन्त का उदाहरण है।

उपरि, उपरिष्टाद् आगतः। ऊपर से आया हुआ। **ऊर्ध्वायाः दिशः आगतः** विग्रह करके **ऊर्ध्वा+ङसि** इस स्थिति में पूर्ववत् प्रक्रिया करके **उपरि** और **उपरिष्टात्** प्रयोग सिद्ध हो जाते हैं। यह पञ्चम्यन्त का उदाहरण है।

उपरि, उपरिष्टाद् रमणीयम्। ऊपर का भाग रमणीय है। **ऊर्ध्वं रमणीयम्** विग्रह करके **ऊर्ध्व+सु** इस स्थिति में पूर्ववत् प्रक्रिया करके **उपरि** और **उपरिष्टात्** प्रयोग सिद्ध हो जाते हैं। यह प्रथमान्त का उदाहरण है।

ये तीनों उदाहरण दिग्वाचक के हैं। इसी तरह देशवाचक और कालवाचक के भी प्रयोग समान ही होते हैं।

१९८२. पश्चात् ५।३।३२॥
अपरस्य पश्चभाव आतिश्च प्रत्ययोऽस्तातेर्विषये।

पश्चात्। पश्चादित्यव्ययमेकपदमिदं सूत्रम्। **दिक्छब्देभ्यः सप्तमी-पञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः** से **दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेषु** की अनुवृत्ति आती है तथा **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

अस्ताति-प्रत्यय के विषय में अपर-शब्द के स्थान पर पश्च-आदेश और आति-प्रत्यय का निपातन करके पश्चात्-शब्द साधु माना जाता है।

अस्ताति प्रत्यय सप्तमी-पञ्चमी-प्रथमान्त से दिग्देशकाल अर्थ में होता है, अतः **अस्तात्यर्थ** कहने से उपर्युक्त सभी अर्थ अभिप्रेत हैं। **आति** में अन्त्य इकार उच्चारणार्थ है, प्रत्यय का स्वरूप है- **आत्।**

पश्चात्। पश्चिम (पीछे) की ओर, पश्चिम से आया हुआ और पश्चिम (पीछे)। **अपरस्याम्, अपरस्याः, अपरा** विग्रह करके **अपरा**-शब्द से यथायथ सप्तमी, पञ्चमी और प्रथमा विभक्ति का योजन करके **पश्चात्** सूत्र के द्वारा **अपर**-शब्द के स्थान पर **पश्च** आदेश के साथ **आति** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर और भसंज्ञक अकार का लोप करके **पश्चात्** शब्द बना है।अव्ययसंज्ञक होने के कारण आगत स्वादिप्रत्यय का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् होकर **पश्चात्** प्रयोग सिद्ध हो जाता है। यह उदाहरण दिग्वाचक का है। इसी तरह देशवाचक और कालवाचक के भी प्रयोग समान ही होते हैं।

१९८३. उत्तराधरदक्षिणादातिः ५।३।३४॥
उत्तरात्। अधरात्। दक्षिणात्।

उत्तराधरदक्षिणादातिः। उत्तरश्च अधरश्च दक्षिणश्च तेषां समाहारद्वन्द्वः- उत्तराधरदक्षिणं, तस्माद् उत्तराधरदक्षिणात् पञ्चम्यन्तम्, आतिः प्रथमान्तम्। **दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः** से **दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेषु** की अनुवृत्ति आती है तथा **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

अस्ताति-प्रत्यय के विषय में उत्तर, अधर तथा दक्षिण इन सप्तम्यन्त, पञ्चम्यन्त और प्रथमान्त शब्दों से आति-प्रत्यय होता है।

उत्तरात्। उत्तर की ओर, उत्तर से, उत्तर। **उत्तरस्याम्, उत्तरस्याः, उत्तरा** विग्रह करके **उत्तरा**-शब्द से यथायथ सप्तमी, पञ्चमी और प्रथमा विभक्ति का योजन करके **उत्तराधरदक्षिणादातिः** सूत्र के द्वारा **आति** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक आकार का लोप करके **उत्तरात्** शब्द बना है। अव्ययसंज्ञक होने के कारण आगत स्वादिप्रत्यय का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् होकर **उत्तरात्** प्रयोग सिद्ध हो जाता है। यह उदाहरण दिग्वाचक का है। इसी तरह देशवाचक और कालवाचक के भी प्रयोग समान ही होते हैं।

अधरात्। नीचे की ओर, नीचे से, नीचे। **अधरस्याम्, अधरस्याः, अधरा** विग्रह करके **अधरा**-शब्द से यथायथ सप्तमी, पञ्चमी और प्रथमा विभक्ति का योजन करके **उत्तराधरदक्षिणादातिः** सूत्र के द्वारा **आति** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर भसंज्ञक आकार का लोप करके **अधरात्** शब्द बना है। अव्ययसंज्ञक होने के कारण आगत स्वादिप्रत्यय का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् होकर **अधरात्** प्रयोग सिद्ध हो जाता है। यह उदाहरण दिग्वाचक का है। इसी तरह देशवाचक और कालवाचक के भी प्रयोग समान ही होते हैं।

दक्षिणात्। दक्षिण की ओर, दक्षिण से, दक्षिण। **दक्षिणस्याम्, दक्षिणस्याः, दक्षिणा** विग्रह करंके **दक्षिणा**-शब्द से यथायथ सप्तमी, पञ्चमी और प्रथमा विभक्ति का योजन करके **उत्तराधरदक्षिणादातिः** सूत्र के द्वारा **आति** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक आकार का लोप करके **दक्षिणात्** शब्द बना है। अव्ययसंज्ञक होने के कारण आगत स्वादिप्रत्यय का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् होकर **दक्षिणात्** प्रयोग सिद्ध हो जाता है। यह उदाहरण दिग्वाचक का है। इसी तरह देशवाचक और कालवाचक के भी प्रयोग समान ही होते हैं।

१९८४. एनबन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्याः ५।३।३५॥

उत्तरादिभ्य एनब्वा स्यादवध्यवधिमतोः सामीप्ये पञ्चमीं विना।
उत्तरेण। अधरेण। दक्षिणेन। पक्षे यथास्वं प्रत्ययाः।
इह केचिदुत्तरादीननुवर्त्य दिक्छब्दमात्रादेनपमाहुः।
पूर्वेण ग्रामम्। अपरेण ग्रामम्।

एनबन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्याः। न दूरमदूरं, तस्मिन् अदूरे, नञ्तत्पुरुषः। न पञ्चमी अपञ्चमी, तस्याः अपञ्चम्याः, नञ्तत्पुरुषः। एनप् प्रथमान्तम्, अन्यतरस्यां विभक्तिप्रतिरूपकमव्ययम्, अदूरे सप्तम्यन्तम्, अपञ्चम्याः पञ्चम्यन्तम्। **उत्तराधर-दक्षिणादातिः** से **उत्तराधरदक्षिणात्** की और **दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो**

दिग्देशकालेष्वस्तातिः से **दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेषु** की अनुवृत्ति आती है तथा **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है। **अपञ्चम्याः** पद के कारण अनुवृत्त **पञ्चमी**-शब्द का सम्बन्ध नहीं रहता।

पञ्चम्यन्त को छोड़कर सप्तम्यन्त और प्रथमान्त उत्तर, अधर तथा दक्षिण इन प्रातिपदिकों से अवधि और अवधिमान के बीच अदूरे=निकटता गम्यमान होने पर विकल्प से एनप् प्रत्यय होता है, अस्ताति के विषय में।

विकल्प से एनप्-प्रत्यय होने के कारण पक्ष में यथाप्राप्त प्रत्यय भी होते हैं अर्थात् पूर्वसूत्र से प्राप्त **आति** प्रत्यय एवं उत्तर-दक्षिण शब्दों से **अतसुच्** प्रत्यय भी होंगें। अपर-शब्द से **आति** और **अस्ताति** दोनों प्रत्यय होंगे। **एनप्** में पकार इत्संज्ञक है, **एन** बचता है।

उत्तरेण। समीप ही उत्तर की ओर, उत्तर। **उत्तरस्याम्, उत्तरा** विग्रह करके **उत्तरा**-शब्द से यथायथ सप्तमी और प्रथमा विभक्ति का योजन करके **एनबन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्याः** सूत्र के द्वारा **एनप्** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक आकार का लोप करके **उत्तरेन** और नकार को णत्व होकर **उत्तरेण** शब्द बना है। अव्ययसंज्ञक होने के कारण आगत स्वादिप्रत्यय का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् होकर **उत्तरेण** प्रयोग सिद्ध हो जाता है। यह उदाहरण दिग्वाचक का है। इसी तरह देशवाचक और कालवाचक के भी प्रयोग समान ही होते हैं।

अधरेण। समीप ही नीचे की ओर, नीचे। **अधरस्याम्, अधरा** विग्रह करके **अधरा**-शब्द से यथायथ सप्तमी और प्रथमा विभक्ति का योजन करके **एनबन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्याः** सूत्र के द्वारा **एनप्** प्रत्यय होने पूर्ववत् प्रक्रिया करके **अधरेण** सिद्ध हो जाता है। यह उदाहरण दिग्वाचक का है। इसी तरह देशवाचक और कालवाचक के भी प्रयोग समान ही होते हैं।

दक्षिणेन। समीप ही दक्षिण की ओर, दक्षिण। **दक्षिणस्याम्, दक्षिणा** विग्रह करके **दक्षिणा**-शब्द से यथायथ सप्तमी और प्रथमा विभक्ति का योजन करके **एनबन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्याः** सूत्र के द्वारा **एनप्** प्रत्यय होने पूर्ववत् प्रक्रिया करके **दक्षिणेन** सिद्ध हो जाता है। यह उदाहरण दिग्वाचक का है। इसी तरह देशवाचक और कालवाचक के भी प्रयोग समान ही होते हैं।

ध्यान रहे कि **उत्तरादि** शब्द जब दिशावाची होते हैं तब इनका स्त्रीलिंग में प्रयोग होता है। अतः विग्रह में स्त्रीलिंगयुक्त प्रयोग हुआ है।

पक्षे यथास्वं प्रत्ययाः। प्रकृत सूत्र से एनप्-प्रत्यय विकल्प से हुआ है। एनप्-प्रत्यय न होने के पक्ष में यथाप्राप्त अन्य प्रत्यय भी होते ही हैं।

इह केचिदुत्तरादीननुवर्त्य दिक्छब्दमात्रादेनपमाहुः। कुछ आचार्य इस सूत्र में पूर्वसूत्र से **उत्तराधरदक्षिणात्** पद की अनुवृत्ति नहीं मानते। तदनुसार दिशावाची किसी भी शब्द से एनप्-प्रत्यय हो सकता है। जैसे कि-

पूर्वेण ग्रामम्। गाँव के समीप ही पूर्व की ओर। **पूर्वस्याम्, पूर्वा** विग्रह करके **पूर्वा**-शब्द से यथायथ सप्तमी और प्रथमा विभक्ति का योजन करके **एनगन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्याः** सूत्र के द्वारा **एनप्** प्रत्यय होने पर पूर्ववत् प्रक्रिया करके **पूर्वेण** सिद्ध हो जाता है।

अपरेण ग्रामम्। गाँव के समीप ही पश्चिम की ओर। **अपरस्याम्, अपरा** विग्रह करके **अपर**-शब्द से यथायथ सप्तमी और प्रथमा विभक्ति का योजन करके **एनबन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्याः** सूत्र के द्वारा **एनप्** प्रत्यय होने पर पूर्ववत् प्रक्रिया करके **अपरेण** सिद्ध हो जाता है। ध्यान रहे कि एनप्-प्रत्ययान्त शब्द के योग में **एनपा द्वितीया** सूत्र से द्वितीया विभक्ति होती है- **ग्रामम्।**

१९८५. दक्षिणादाच् ५।३।३६॥

अस्तातेर्विषये। दक्षिणा वसति।

'अपञ्चम्याः' इत्येव। दक्षिणादागतः।

दक्षिणादाच्। दक्षिणात् पञ्चम्यन्तम्, आच् प्रथमान्तम्। **एनबन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्याः** से **अपञ्चम्याः** की और **दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः** से **दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेषु** की अनुवृत्ति आती है तथा **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है। **अपञ्चम्याः** पद के कारण अनुवृत्त **पञ्चमी**-शब्द का सम्बन्ध नहीं रहता।

पञ्चम्यन्त को छोड़कर सप्तम्यन्त और प्रथमान्त दक्षिण शब्द से आच्-प्रत्यय होता है, अस्तात्ति के विषय में।

आच् में चकार इत्संज्ञक है, **आ** बचता है।

दक्षिणा वसति। दक्षिण की ओर रहता है, दक्षिण। **दक्षिणस्याम्, दक्षिणा** विग्रह करके **दक्षिणा**-शब्द से यथायथ सप्तमी और प्रथमा विभक्ति का योजन करके **दक्षिणादाच्** सूत्र के द्वारा **आच्** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक आकार का लोप करके **दक्षिणा** ही बनता है। अव्ययसंज्ञक होने के कारण स्वादिप्रत्यय का लुक् हो जाता है। यह उदाहरण दिग्वाचक का है। इसी तरह देशवाचक और कालवाचक के भी प्रयोग समान ही होते हैं।

'अपञ्चम्याः' इत्येव। दक्षिणादागतः। प्रकृत सूत्र में भी पूर्वसूत्र से **अपञ्चम्याः** की अनुवृत्ति होने के कारण पञ्चम्यन्त से आहि-प्रत्यय नहीं होता। जैसे कि **दक्षिणाद् आगतः** में पञ्चमी है, अतः **दक्षिण+ङसि** से आच् प्रत्यय नहीं हुआ।

१९८६. आहि च दूरे ५।३।३७॥

दक्षिणाद् दूरे आहि स्यात्। चादाच्। दक्षिणाहि, दक्षिणा।

आहि च दूरे। आहि लुप्तप्रथमाकं पदं, चाव्ययं, दूरे सप्तम्यन्तम्। **दक्षिणादाच्** से **दक्षिणात्** की, **एनबन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्याः** से **अपञ्चम्याः** की और **दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः** से **दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेषु** की अनुवृत्ति आती है तथा **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है। **अपञ्चम्याः** पद के कारण अनुवृत्त **पञ्चमी**-शब्द का सम्बन्ध नहीं रहता।

पञ्चम्यन्त को छोड़कर सप्तम्यन्त और प्रथमान्त दक्षिण शब्द से आहि-प्रत्यय भी होता है, दूर अर्थ गम्यमान होने पर, अस्ताति के विषय में।

आहि में किसी भी वर्ण की इत्संज्ञा नहीं होती अर्थात् इकार उच्चारणार्थक भी नहीं है और अनुनासिकत्वप्रतिज्ञा न होने के कारण इत्संज्ञक भी नहीं है।

चादाच्। सूत्र में पठित **च**-शब्द से आच्-प्रत्यय का भी समुच्चय है, साथ ही **आति** और **अतसुच्** प्रत्यय तो होते ही हैं।

दक्षिणाहि, दक्षिणा। दूर दक्षिण की ओर, दूर दक्षिण दिशा। **दक्षिणस्याम्, दक्षिणा** विग्रह करके **दक्षिणा**-शब्द से यथायथ सप्तमी और प्रथमा विभक्ति का योजन करके **आहि च दूरे** सूत्र के द्वारा **आहि** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक आकार का लोप करके **दक्षिणाहि** ही बनता है। अव्ययसंज्ञक होने के कारण स्वादिप्रत्यय का लुक् हो जाता है। इसी तरह **आच्** होने पर **दक्षिणा** तथा **आति** प्रत्यय होने पर **दक्षिणात्** एवं **अतसुच्** प्रत्यय होने पर **दक्षिणतः** रूप बनते हैं। यह उदाहरण दिग्वाचक का है। इसी तरह देशवाचक और कालवाचक के भी प्रयोग समान ही होते हैं।

१९८७. उत्तराच्च ५।३।३८॥
उत्तराहि, उत्तरा।

उत्तराच्च। उत्तरात् पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **आहि च दूरे** से **आहि, दूरे** की, **एनबन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्याः** से **अपञ्चम्याः** की और **दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमी-प्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः** से **दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेषु** की अनुवृत्ति आती है तथा **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है। **अपञ्चम्याः** पद के कारण अनुवृत्त **पञ्चमी**-शब्द का सम्बन्ध नहीं रहता।

पञ्चम्यन्त को छोड़कर सप्तम्यन्त और प्रथमान्त उत्तर शब्द से भी आहि-प्रत्यय होता है, दूर अर्थ गम्यमान होने पर, अस्ताति के विषय में।

उत्तराहि, उत्तरा। दूर उत्तर की ओर, दूर उत्तर दिशा। **उत्तरस्याम्, उत्तरा** विग्रह करके **उत्तरा**-शब्द से यथायथ सप्तमी और प्रथमा विभक्ति का योजन करके **उत्तराच्च** सूत्र के द्वारा **आहि** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक

आकार का लोप करके **उत्तराहि** ही बनता है। अव्ययसंज्ञक होने के कारण स्वादिप्रत्यय का लुक् हो जाता है। इसी तरह **आच्** होने पर **उत्तरा** तथा **आति** प्रत्यय होने पर **उत्तरात्** एवं **अतसुच्** प्रत्यय होने पर **उत्तरतः** रूप बनते हैं। यह उदाहरण दिग्वाचक का है। इसी तरह देशवाचक और कालवाचक के भी प्रयोग समान ही होते हैं।

अब यहाँ आकर **दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेषु** की निवृत्ति हो जाती है।

१९८८. संख्याया विधार्थे धा ५।३।४२॥

क्रियाप्रकारार्थे वर्तमानात् संख्याशब्दात् स्वार्थे धा स्यात्।
चतुर्धा। पञ्चधा।

संख्याया विधार्थे धा। विधायाः अर्थः विधार्थस्तस्मिन् विधार्थे, षष्ठीतत्पुरुषः। संख्यायाः पञ्चम्यन्तं, विधार्थे सप्तम्यन्तं, धा लुप्तप्रथमाकं पदम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

क्रिया के प्रकार अर्थ में विद्यमान संख्यावाची शब्दों से स्वार्थ में धा-प्रत्यय होता है।

विधा-शब्द का अर्थ होता है- **प्रकार**। सामान्य का निवर्तक विशेष होता है, उसी को **प्रकार** रूप में बतलाया गया है। किसका प्रकार बतलाया जाय- इस आकांक्षा को शान्त करने के लिये प्राचीन व्याख्याकारों ने क्रिया-विषयक प्रकार ही स्वीकार किया है। इस अर्थ की अभिव्यक्ति में सूत्रोक्त **अर्थ** पद का निवेश ही कारण है। यादि सामान्यतः **विधा के विषय में** इतना ही अर्थ अभीष्ट होता तो सप्तम्यन्त **विधायाम्** पद का निवेश करते। दूसरा कारण यह भी है कि **धा**-प्रत्यय अव्ययों में परिगणित है। अतः क्रिया के विषय में उसका ग्रहण करने में कोई आपत्ति नहीं है, क्योंकि अव्ययों की तरह क्रिया का भी लिङ्ग-संख्यादि से सम्बन्ध नहीं रहता।

चतुर्धा (भुङ्क्ते)। चार प्रकार से खाता है। **चतुर्भिः प्रकारैः** विग्रह करके **चतुर्+भिस्** इस स्थिति में **संख्याया विधार्थे धा** सूत्र के द्वारा धा-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और रेफ का ऊर्ध्वगमन होकर **चतुर्धा** शब्द बना है। धा-प्रत्ययान्त शब्दों की गणना अव्ययों में है। अतः स्वादिप्रत्यय का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हो जाता है- **चतुर्धा**।

पञ्चधा (भुङ्क्ते)। पाँच प्रकार से खाता है। **पञ्चभिः प्रकारैः** विग्रह करके **पञ्चन्+भिस्** इस स्थिति में **संख्याया विधार्थे धा** सूत्र के द्वारा धा-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और नकार का **नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य** सूत्र से लोप होकर **पञ्चधा** शब्द बना है। अव्यय से विहित स्वादिप्रत्यय का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हो जाता है- **पञ्चधा**। इन उदाहरणों के अर्थ में **खाना** क्रिया के ही विविध प्रकार विदित

होते हैं। इसी तरह **एकधा, द्विधा, त्रिधा, षोढा, सप्तधा, अष्टधा, नवधा, दशधा** आदि प्रयोग समझने चाहिये।

१९८९. अधिकरणविचाले च ५।३।४३॥
द्रव्यस्य संख्यान्तरापादने संख्यायाः धा स्यात्।
एकं राशिं पञ्चधा कुरु।

अधिकरणविचाले च। अधिकरणस्य=द्रव्यस्य विचालः- अधिकरणविचालः, तस्मिन् अधिकरणविचाले, षष्ठीतत्पुरुषः। अधिकरणविचाले सप्तम्यन्तं, चाव्ययम्। **संख्याया विधार्थे धा** से **संख्यायाः, धा** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

यदि द्रव्य का अनेक संख्याओं में बदलना अर्थ अभीष्ट हो तो संख्यावाची प्रातिपदिकों से स्वार्थ में धा-प्रत्यय होता है।

सूत्रस्थ **अधिकरण**-शब्द द्रव्य का वाचक है। उसका जो विचाल अर्थात् अनेक संख्याओं में बदलना- उसे **अधिकरणविचाल** कहते हैं।

एकं राशिं पञ्चधा कुरु। एक ढेर को पाँच भागों में विभाजित करो। **पञ्चन्** शब्द से **अधिकरणविचाले च** सूत्र से धा-प्रत्यय करने पर पूर्ववत् **पञ्चधा** सिद्ध होता है। इसी प्रकार अधिक-संख्या वाले को कम में बदलने पर भी यही स्थिति रहेगी। जैसे कि **अनेकम् एकधा कुरु** (बहुत से ढेरों को एक करो)। इस सूत्र में पूर्वसूत्र के अनुसार क्रियाप्रकार (विधा) अपेक्षित नहीं है अर्थात् पूर्वसूत्र क्रियाप्रकारार्थ में ही धा-प्रत्यय करता है और यह क्रिया-प्रकार की अपेक्षा नहीं करता। अतः इस सूत्र की सार्थकता सिद्ध होती है।

१९९०. एकाद्धो ध्यमुञन्यतरस्याम् ५।३।४४॥
ऐकध्यम्, एकधा।

एकाद्धो ध्यमुञन्यतरस्याम्। एकात् पञ्चम्यन्तं, धः इति धा-शब्दस्य षष्ठ्यन्तं रूपं, ध्यमुञ् प्रथमान्तम्, अन्यतरस्यां विभक्तिप्रतिरूपकमव्ययम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

एक-शब्द से विहित धा-प्रत्यय के स्थान पर विकल्प से ध्यमुञ् आदेश होता है।

धा स्थानी (उद्देश्य) और **ध्यमुञ्** आदेश (विधेय) है। पूर्व सूत्रों से विहित धा-प्रत्यय यदि एक-शब्द से विहित है तो यह आदेश होगा। **ध्यमुञ्** में ञकार इत्संज्ञक और उकार उच्चारणार्थक है। ञित्करण आदिवृद्धि के लिये है।

ऐकध्यम्, एकधा। एक ढेर को पाँच भागों में विभाजित करना अथवा बहुत से ढेरों को एक करना। **एक**-शब्द से **अधिकरणविचाले च** सूत्र से धा-प्रत्यय होने पर उसके स्थान पर **एकाद्धो ध्यमुञन्यतरस्याम्** सूत्र द्वारा विकल्प से **ध्यमुञ्** आदेश होने पर अनुबन्धलोप होकर **एक+ध्यम्** बना है। ञित् परे होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** सूत्र द्वारा आदिवृद्धि होने पर **ऐकध्यम्** बनता है। अव्ययसंज्ञा और सुप् का लुक् पूर्ववत् ही है। पक्ष में **एकधा** बनता है।

यद्यपि एक-शब्द से सीधे **ध्यमुञ्** प्रत्यय का भी विधान हो सकता था, तथापि ऐसी स्थिति में सामीप्य में केवल **विचाल** अर्थ में ही प्रत्यय का विधान न हरे अनितु दूरस्थ **विधा** अर्थ में भी हो, इसलिये। विधार्थ और विचालार्थ दोनों अर्थों में विहित धा-प्रत्यय के स्थान पर यह आदेश किया गया है। इस तरह प्रकृत आदेश की उपयोगिता सिद्ध होती है।

१९९१. द्वित्र्योश्च धमुञ् ५।३।४५॥

आभ्यां 'धा' इत्यस्य धमुञ् स्याद्वा। द्वैधम्, द्विधा। त्रैधम्, त्रिधा। धमुञन्तात् स्वार्थे ड-दर्शनम्' (वा.३२३०)। पथि द्वैधानि।

द्वित्र्योश्च धमुञ्। द्विश्च त्रिश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो द्वित्री, तयोर्द्वित्र्योः। द्वित्र्योः पञ्चम्यर्थे षष्ठी, चाव्ययं, धमुञ् प्रथमान्तम्। **एकाद्धो ध्यमुञन्यतरस्याम्** से **धः**, **अन्यतरस्याम्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

द्वि और त्रि शब्दों से विधार्थ और विचालार्थ में विहित धा-प्रत्यय के स्थान पर विकल्प से धमुञ् आदेश होता है।

धा स्थानी (उद्देश्य) और **धमुञ्** आदेश (विधेय) है। पूर्व के दो सूत्रों से विहित धा-प्रत्यय यदि द्वि या त्रि शब्द से विहित है तो यह आदेश होगा। **धमुञ्** में ञकार इत्संज्ञक और उकार उच्चारणार्थक है। ञित्करण आदिवृद्धि के लिये है।

द्वैधम्, द्विधा। दो प्रकार से। **द्विप्रकारम्** विग्रह करके **द्वि**-शब्द से **संख्याया विधार्थे धा** और **अधिकरणविचाले च** सूत्र से धा-प्रत्यय होने पर उसके स्थान पर **द्वित्र्योश्च धमुञ्** सूत्र द्वारा विकल्प से **धमुञ्** आदेश होने पर अनुबन्धलोप होकर **द्वि+धम्** बना है। ञित् परे होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** सूत्र द्वारा आदिवृद्धि होने पर **द्वैधम्** बनता है। अव्ययसंज्ञा और सुप् का लुक् पूर्ववत् ही है। पक्ष में **द्विधा** बनता है।

त्रैधम्, त्रिधा। तीन प्रकार से। **त्रिभिः प्रकारैः** विग्रह करके **त्रि**-शब्द से **संख्याया विधार्थे धा** और **अधिकरणविचाले च** सूत्र से धा-प्रत्यय होने पर उसके स्थान पर **द्वित्र्योश्च धमुञ्** सूत्र द्वारा विकल्प से **धमुञ्** आदेश होने पर अनुबन्धलोप होकर **त्रि+धम्** बना है। ञित् परे होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** सूत्र द्वारा आदिवृद्धि

होने पर **त्रैधम्** बनता है। अव्ययसंज्ञा और सुप् का लुक् पूर्ववत् ही है। पक्ष में **त्रिधा** बनता है।

धमुञन्तात् स्वार्थे ड-दर्शनम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- धमुञ्-आदेशान्त शब्दों से स्वार्थ में ड-प्रत्यय का भी दर्शन होता है अर्थात् ड-प्रत्यय होता है। डकार इत्संज्ञक है, **अ** बचता है और इसके डित् होने के कारण **टेः** सूत्र से टिलोप किया जाता है। यद्यपि धमुञन्त शब्द **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** सूत्र से अव्ययसंज्ञक होता है किन्तु ड-प्रत्यय होने पर उसे अव्यय नहीं माना गया है। भले ही ड-प्रत्यय भी **तसिलादयः प्राक्पाशपः** के अन्तर्गत ही है, तथापि आचार्य व्यवहार से ज्ञात होता है कि ड-प्रत्ययान्त अव्ययसंज्ञक नहीं होता।

पथि द्वैधानि (तृणानि)। मार्ग में दो प्रकार के घास आदि। पहले उपर्युक्त प्रक्रिया से धा-प्रत्यय और उसको धमुञ् आदेश करके **द्वैधम्** बन जाने के बाद **धमुञन्तात् स्वार्थे ड-दर्शनम्** वार्तिक के द्वारा ड-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप और **टेः** सूत्र से टिसंज्ञक भाग **अम्** का लोप होकर **द्वैध** बन जाता है। स्वादिकार्य होने पर सु-प्रत्यय और नपुंसक में अमादेश होकर पररूप होने पर **द्वैधम्, द्वैधे, द्वैधानि** आदि रूप बनते हैं।

१९९२. एधाच्च ५।३।४६॥

द्वेधा। त्रेधा।

एधाच्च। एधाच् प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **द्वित्र्योश्च धमुञ्** से **द्वित्र्योः** की और **एकाद्धो ध्यमुञन्यतरस्याम्** से **धः, अन्यतरस्याम्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

द्वि और त्रि शब्दों से **विधार्थ और विचालार्थ में विहित धा-प्रत्यय के स्थान पर विकल्प से एधाच् आदेश भी होता है।**

धा स्थानी (उद्देश्य) और **एधाच्** आदेश (विधेय) है। **एधाच्** में चकार इत्संज्ञक है, **एधा** बचता है। इसके अजादि होने के कारण प्रकृति की **यचि भम्** सूत्र से भसंज्ञा होती है और प्रकृति के इकार का **यस्येति च** से लोप हो जाता है।

द्वेधा। दो प्रकार से। **द्वाभ्यां प्रकाराभ्याम्** विग्रह करके **द्वि**-शब्द से **संख्याया विधार्थे धा** और **अधिकरणविचाले च** सूत्र से धा-प्रत्यय होने पर उसके स्थान पर **एधाच्च** सूत्र द्वारा विकल्प से **एधाच्** आदेश होने एवं अनुबन्धलोप होकर **द्वि+एधा** शब्द बना है। भसंज्ञक इकार का लोप होकर **द्वेधा** बन जाता है। अव्ययसंज्ञा होने के कारण आगत विभक्ति का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हो जाता है- **द्वेधा।** इस तरह विधार्थ और विचालार्थ में द्वि-शब्द के **द्विधा, द्वैधम्** और **द्वेधा** ये तीन रूप बन जाते हैं।

त्रेधा। तीन प्रकार से। **त्रिभिः प्रकारैः** आदि विग्रह करके **त्रि**-शब्द से **संख्याया विधार्थे धा** और **अधिकरणविचाले च** सूत्र से धा-प्रत्यय होने पर उसके

स्थान पर **एधाच्च** सूत्र द्वारा विकल्प से **एधाच्** आदेश एवं अनुबन्धलोप होकर **त्रि+एधा** शब्द बना है। भसंज्ञक इकार का लोप होकर **त्रेधा** बन जाता है। अव्ययसंज्ञा होने के कारण आगत विभक्ति का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हो जाता है- **त्रेधा**। इस तरह **त्रिधा, त्रैधम्** और **त्रेधा** ये तीन रूप बन जाते हैं।

विधार्थ और विचालार्थ का प्रकरण पूरा हो गया है। साथ ही अव्ययसंज्ञाविधायक **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** सूत्र में परिगणित **तसिलादयः प्राक्पाशपः** प्रत्यय भी यहीं तक हैं। अतः उपर्युक्त प्रत्ययान्तों की अव्ययसंज्ञा की गयी थी। अब आगे के प्रत्यय उक्त परिगणना में नहीं आते हैं। इसके फलस्वरूप उनकी अव्ययसंज्ञा भी नहीं होगी।

१९९३. याप्ये पाशप् ५।३।४७॥
कुत्सितो भिषग् भिषक्पाशः।

याप्ये पाशप्। याप्ये सप्तम्यन्तं, पाशप् प्रथमान्तम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

याप्ये=निन्दित अर्थ में विद्यमान ङ्यन्त, आबन्त और प्रातिपदिक से परे तद्धितसंज्ञक पाशप् प्रत्यय होता है।

याप्य-शब्द का **निन्दित** अर्थ है। प्रवृत्ति-निमित्त कुत्सा अर्थ में ही इसकी प्रवृत्ति होगी अर्थात् व्यक्ति के द्वारा किसी निन्दित कर्म के करने पर ही पाशप्-प्रत्यय होगा। प्रवृत्तिनिमित्त कुत्सा अर्थ न हो तो आगे **कुत्सिते** (५.३.७४) सूत्र के द्वारा **कन्** प्रत्यय किया जायेगा। **पाशप्** में पकार इत्संज्ञक है, **पाश** बचता है।

कुत्सितो भिषग् भिषक्पाशः। निन्दित कर्म करने वाला चिकित्सक। **कुत्सितः भिषक्** विग्रह करके **भिषज्+सु** इस स्थिति में **याप्ये पाशप्** सूत्र द्वारा **पाशप्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **भिषज्+पाश** बना है। जकार को **खरि च** से चर्त्व होकर चकार और उसको **चोः कुः** सूत्र से कुत्व होकर ककार बन जाता है। इस तरह **भिषक्पाश** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **भिषक्पाशः** सिद्ध हो जाता है। इस तरह किसी भी शब्द से प्रवृत्तिनिमित्त कुत्सार्थ रहने पर याप्य-प्रत्यय किया जा सकता है।

१९९४. पूरणाद्भागे तीयादन् ५।३।४८॥
द्वितीयो भागो द्वितीयः। तृतीयः। स्वरे विशेषः।
'तीयादीनाम् स्वार्थे वा वाच्यः' (वा.२६९१)।
द्वैतीयीकः, द्वितीयः। तार्तीयीकः, तृतीयः।
'न विद्यायाः' (वा.२६९२)। **द्वितीया, तृतीया विद्येत्येव।**

पूरणाद्भागे तीयादन्। पूरणात् पञ्चम्यन्तं, भागे सप्तम्यन्तं, तीयात् पञ्चम्यन्तम्, अन् प्रथमान्तम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

पूरणार्थक तीय-प्रत्ययान्त भागार्थ-सूचक प्रातिपदिकों से स्वार्थ में अन् प्रत्यय होता है।

पूरणार्थक प्रत्ययों के विषय में मत्वर्थीय-प्रकरण के प्रारम्भ भाग का अवलोकन करना चाहिये, जिसमें **तस्य पूरणे डट्, द्वेस्तीयः, त्रेः सम्प्रसारणं च** आदि सूत्रों से डट्, तीय आदि प्रत्यय विहित हैं। उन्हीं में से तीय-प्रत्ययान्तों का यहाँ पर ग्रहण है। यहाँ **अन्** में नकार इत्संज्ञक है, **अ** बचता है। नित्करण स्वरार्थ है।

द्वितीयो भागो द्वितीयः। दूसरा भाग। **द्वितीयो भागः** विग्रह करके **द्वितीय+सु** इस स्थिति में **पूरणाद्भागे तीयादन्** सूत्र से **अन्** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप करके **द्वितीय** बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **द्वितीयः** सिद्ध हो जाता है।

तृतीयः। तीसरा भाग। **तृतीयो भागः** विग्रह करके **तृतीय+सु** इस स्थिति में **पूरणाद्भागे तीयादन्** सूत्र से **अन्** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप तथा स्वादिकार्य होकर **तृतीयः** सिद्ध हो जाता है।

स्वरे विशेषः। स्वरभेद होने के कारण पृथक् विधान की आवश्यकता है। **अन्** प्रत्यय नित् है, अतः **ञ्नित्यादिर्नित्यम्** सूत्र से आद्युदात्त स्वर होगा, अन्यथा **आद्युदात्तश्च** सूत्र का प्रभाव हो जाता।

तीयादीकक् स्वार्थे वा वाच्यः। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- तीय-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से स्वार्थ में विकल्प से ईकक् प्रत्यय होता है। द्वितीय और तृतीय शब्द तीय-प्रत्ययान्त हैं। अन्त्य ककार इत्संज्ञक है और **ईक** शेष रहता है।

द्वैतीयीकः, द्वितीयः। दूसरा भाग। **द्वितीयो भागः** विग्रह करके **द्वितीय+सु** इस स्थिति में **तीयादीकक् स्वार्थे वा वाच्यः** वार्तिक से विकल्प से **ईकक्** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप करके **द्वितीय+ईक** बना है। **किति च** सूत्र से आदिवृद्धि होने पर भसंज्ञक अकार का लोप होकर **द्वैतीयीक** तथा स्वादिकार्य से **द्वैतीयीकः** सिद्ध हो जाता है। ईकक् न होने के पक्ष में **द्वितीयः** पहले बना चुके हैं।

तार्तीयीकः, तृतीयः। तीसरा भाग। **तृतीयो भागः** विग्रह करके **तृतीय+सु** इस स्थिति में **तीयादीकक् स्वार्थे वा वाच्यः** वार्तिक से विकल्प से **ईकक्** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप करके **तृतीय+ईक** बना है। **किति च** सूत्र से आदिवृद्धि होने पर रपर होकर **आर्** होता है और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **तार्तीयीक** तथा स्वादिकार्य से **तार्तीयीकः** सिद्ध हो जाता है। ईकक् न होने के पक्ष में **तृतीयः** पहले बना चुके हैं।

न विद्यायाः। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- विद्या से सम्बन्ध रखने वाले द्वितीय और तृतीय शब्दों से ईकक् प्रत्यय नहीं होता।

द्वितीया, तृतीया विद्येत्येव। दूसरी विद्या, तीसरी विद्या अर्थ विवक्षित होने के कारण यहाँ पर **तीयादीकक् स्वार्थे वा वाच्यः** वार्तिक से प्राप्त ईकक् प्रत्यय का **न विद्यायाः** वार्तिक से निषेध हो गया है। अतः **द्वितीया विद्या, तृतीया विद्या** इस तरह के ही प्रयोग बनते हैं।

१९९५. प्रागेकादशभ्योऽच्छन्दसि ५।३।४९॥

पूरणप्रत्ययान्ताद् भागेऽन्। चतुर्थः। पञ्चमः।

प्रागेकादशभ्योऽच्छन्दसि। न छन्दः- अच्छन्दस्, तस्मिन् अच्छन्दसि। प्राक् अव्ययम्, एकादशभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अच्छन्दसि सप्तम्यन्तम्। **पूरणाद्भागे तीयादन्** से **पूरणात्, भागे, अन्** इन पदों की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

भाग-अर्थ में विद्यमान एकादशन्-शब्द से पूर्व-पूर्व जो संख्याचाची शब्द उनसे स्वार्थ में अन् प्रत्यय होता है, वेद के विषय को छोड़कर।

द्वितीय और तृतीय शब्दों से पूर्वसूत्र द्वारा अन्-प्रत्यय का विधान हो चुका है। इस सूत्र की चतुर्थ-शब्द से दशन्-शब्द तक ही प्रवृत्ति होती है। यद्यपि इन शब्दों का भी पूर्वसूत्र में समावेश किया जा सकता था तथापि पृथक् सूत्र इस लिये बनाया गया कि पूर्वसूत्र वेद और अवेद उभयत्र प्रवृत्त होता है और प्रकृत सूत्र वेद में प्रवृत्त नहीं होता। अतः इस सूत्र का पृथक्करण सार्थक होता है।

चतुर्थः। चौथा भाग। **चतुर्थो भागः** विग्रह करके **चतुर्थ+सु** इस स्थिति में **प्रागेकादशभ्योऽच्छन्दसि** सूत्र से अन्-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **चतुर्थ** तथा स्वादिकार्य से **चतुर्थः** सिद्ध हो जाता है।

पञ्चमः। पाँचवाँ भाग। **पञ्चमो भागः** विग्रह करके **पञ्चम+सु** इस स्थिति में **प्रागेकादशभ्योऽच्छन्दसि** सूत्र से अन्-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पञ्चम** तथा स्वादिकार्य से **पञ्चमः** सिद्ध हो जाता है। ये दोनों शब्द डट्-प्रत्ययान्त हैं।

१९९६. षष्ठाष्टमाभ्यां ञ च ५।३।५०॥

चादन्। षष्ठो भागः षाष्ठः, षष्ठः। आष्टमः, अष्टमः।

षष्ठाष्टमाभ्यां ञ च। षष्ठश्च अष्टमश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः षष्ठाष्टमौ, ताभ्यां षष्ठाष्टमाभ्यां पञ्चम्यन्तं, ञ इति लुप्तप्रथमाकं पदं, चाव्ययम्। **प्रागेकादशभ्योऽच्छन्दसि**

से **अच्छन्दसि** की और **पूरणाद्भागे तीयादन्** से **पूरणात्, भागे, अन्** इन पदों की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

भाग-अर्थ में विद्यमान पूरण-प्रत्ययान्त षष्ठ और अष्टम शब्दों से स्वार्थ में ञ-प्रत्यय होता है और च-शब्द के पाठ से अन् प्रत्यय भी होता है, वेद के विषय को छोड़कर।

ञ में ञकार इत्संज्ञक है, अकार बचता है। ञित्करण आदिवृद्धि और स्वर के लिये है।

षष्ठो भागः षाष्ठः, षष्ठः। छठा भाग। **षष्ठो भागः** विग्रह करके **षष्ठ+सु** इस स्थिति में **षष्ठाष्टमाभ्यां ञ च** सूत्र से ञ-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **षाष्ठ** तथा स्वादिकार्य से **षाष्ठः** सिद्ध हो जाता है। चकारात् पूर्वसूत्र से अन् प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि को छोड़कर शेष प्रक्रिया पूर्ववत् करके **षष्ठः** सिद्ध होता है।

आष्टमः, अष्टमः। आठवाँ भाग। **अष्टमो भागः** विग्रह करके **अष्टम+सु** इस स्थिति में **षष्ठाष्टमाभ्यां ञ च** सूत्र से ञ-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आष्टम** तथा स्वादिकार्य से **आष्टमः** सिद्ध हो जाता है। चकारात् पूर्वसूत्र से अन् प्रत्यय होने पर आदिवृद्धि को छोड़कर शेष प्रक्रिया पूर्ववत् करके **अष्टमः** सिद्ध होता है।

१९९७. मानपश्वङ्गयोः कन्लुकौ च ५।३।५१॥

षष्ठाष्टमशब्दाभ्यां क्रमेण कन्लुकौ स्तो माने पश्वङ्गे च वाच्ये।
षष्ठको भागः मानं चेत्। अष्टमो भागः पश्वङ्गं चेत्। ञस्यानो वा लुक्।
चकाराद्यथाप्राप्तम्। षष्ठः, षाष्ठः। अष्टमः, आष्टमः।
महाविभाषया सिद्धे लुग्वचनं पूर्वत्र ञानौ नित्याविति ज्ञापयति।

मानपश्वङ्गयोः कन्लुकौ च। पशोरङ्गं पश्वङ्गं, मानं च पश्वङ्गं च मानपश्वङ्गे, तयोर्मानपश्वङ्गयोः तत्पुरुषगर्भद्वन्द्वः। कन् च लुक् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः कन्लुकौ। मानपश्वङ्गयोः सप्तम्यन्तं, कन्लुकौ प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **षष्ठाष्टमाभ्यां ञ च** से **षष्ठाष्टमाभ्याम्** की, **पूरणाद्भागे तीयादन्** से **पूरणाद्, भागे** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है। अभिधेय भी दो हैं और विधेय भी दो हैं, अतः **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** की उपस्थिति होती है।

मान=माप और पश्वङ्ग (पशु के अंग) बोधक पूरण-प्रत्ययान्त षष्ठ और अष्टम शब्दों से भाग-अर्थ में यथासंख्य से कन्-प्रत्यय तथा लुक् होते हैं।

प्रकृत सूत्र में **लुक्** शब्द का प्रयोग किया गया है। लुक् प्रत्यय का ही होता है- **प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः**। यह तो सूत्र में निर्देश नहीं है किसका लुक् हो? लुक् विधान

होने के कारण प्रत्यय का ही होगा। अतः यह प्रतीत होता है कि पूर्व सूत्रों से विहित **ञ** अथवा **अन्** का लुक् होगा।

षष्ठको भागः मानं चेत्। किसी परिमाण का छठा भाग। **षष्ठो भागः** विग्रह करके **षष्ठ+सु** इस स्थिति में **मानपश्वङ्गयोः कन्लुकौ च** सूत्र से कन्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् करके **षष्ठक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **षष्ठकः** सिद्ध होता है। परिमाण अर्थ में ही यह प्रत्यय हुआ है, अन्यथा नहीं होता।

अष्टमो भागः पश्वङ्गं चेत्। पशु के अंग का आठवाँ भाग। **अष्टमो भागः** विग्रह करके **अष्टम+सु** इस स्थिति में पूर्वसूत्र से विहित **ञ** प्रत्यय का भी और उससे पूर्वसूत्र से विहित **अन्** प्रत्यय का भी **मानपश्वङ्गयोः कन्लुकौ च** सूत्र से लुक् होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् करके **अष्टम** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **अष्टमः** सिद्ध होता है। पशु का अंग वाच्य होने के कारण ही यह लुक् हुआ है, अन्यथा नहीं होता।

ञस्यानो वा लुक्। प्रकृतसूत्र से जो लुक् का विधान किया गया है, वह **षष्ठाष्टमाभ्यां ञ च** से विहित **ञ** प्रत्यय और **प्रागेकादशभ्योऽच्छन्दसि** से विहित **अन्** प्रत्यय का लुक् समझना चाहिये।

चकाराद्यथाप्राप्तम्। षष्ठः, षाष्ठः। अष्टमः, आष्टमः। प्रकृत सूत्र में पठित च-शब्द से यथाप्राप्त ञ-प्रत्यय और अन्-प्रत्यय होते हैं, जैसा कि पूर्वसूत्र में दिखाया जा चुका है।

महाविभाषया सिद्धे लुग्वचनं पूर्वत्र ञानौ नित्याविति ज्ञापयति। यह बता रहे हैं कि **समर्थानां प्रथमाद्वा** सूत्र से चला आ रहा **समर्थानां प्रथमाद्** का अधिकार प्राग्दिशीय-प्रकरण के प्रारम्भ होने से पहले भले हीं समाप्त हो गया हो किन्तु **वा** का अधिकार अभी भी विद्यमान है तो उससे ही विकल्प सिद्ध हो जाता, लुक्-शब्द का ग्रहण करके उसके अभाव को दिखाने की क्या आवश्यकता है? इसका समाधान यह है कि पाणिनि जी ने ऐसा किया है, इससे यह ज्ञापित होता है कि पूर्व के दो सूत्रों से विहित **ञ**-प्रत्यय और **अन्**-प्रत्यय नित्य से होते हैं।

१९९८. एकादाकिनिच्चासहाये ५।३।५२॥
चात् कन्लुकौ। एकाकी, एककः, एकः।

एकादाकिनिच्चासहाये। एकात् पञ्चम्यन्तम्, आकिनिच् प्रथमान्तम्, असहाये सप्तम्यन्तम्। **मानपश्वङ्गयोः कन्लुकौ च** से **कन्लुकौ** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

असहाय (अकेला) अर्थ में विद्यमान एक-शब्द से स्वार्थ में आकिनिच्-प्रत्यय तथा कन्-प्रत्यय के विधान के साथ पूर्व-प्रत्यय का लुक् भी होता है।

चात् कन्लुकौ। प्रकृतसूत्र में पठित **च**-शब्द से कन् और लुक् का समुच्चय सूचित होता है। यहाँ पर भी अंगुल्या निर्देश किसी प्रत्यय का न होने से प्रकरणप्राप्त प्रत्यय का ही लुक् हो जायेगा। सम्भवतः कन्-प्रत्यय का ही लुक् है। विधानसामर्थ्यात् एक पक्ष में कन् और एक पक्ष में उसका लुक् समझना चाहिये। **आकिनच्** में चकार इत्संज्ञक और अकार उच्चारणार्थक है। प्रत्यय का स्वरूप है- **आकिन्**। चित्करण स्वरार्थ है।

एकाकी, एककः, एकः। अकेला, असहाय। **एक+सु** इस स्थिति में **एकादाकिनिच्चासहाये** सूत्र से **आकिनच्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **एकाकिन्** शब्द बना है। **कन्** प्रत्यय होने के पक्ष में भसंज्ञा न होने के कारण अकारलोप नहीं होता, अतः **एकक** शब्द बना है। कन्-प्रत्यय के लुक्पक्ष में **एक** मात्र बना हुआ है। तीनों जगह एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **एकाकी, एककः** और **एकः** ये तीन रूप सिद्ध होते हैं। एकाकिन्-शब्द के रूप होते हैं- **एकाकी, एकाकिनौ, एकाकिनः** इत्यादि।

१९९९. भूतपूर्वे चरट् ५।३।५३॥

आढ्यो भूतपूर्व आढ्यचरः।

भूतपूर्वे चरट्। भूतपूर्वे सप्तम्यन्तं, चरट् प्रथमान्तम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

भूतपूर्व अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में चरट् प्रत्यय होता है।

जिसका समय बीत गया, उसे **भूतपूर्व** कहते हैं- **पूर्वं भूतः। चरट्** में टकार इत्सज्ञक है, **चर** बचता है। टित्करण स्त्रीत्व में ङीप् के लिये है।

आढ्यो भूतपूर्व आढ्यचरः। भूतपूर्व धनी (जो पहले धनी रहा हो किन्तु वर्तमान में न हो)। **आढ्यः भूतपूर्वः** विग्रह करके **आढ्य+सु** इस स्थिति में **भूतपूर्वे चरट्** सूत्र से **चरट्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **भूतपूर्व** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आढ्यचरः** सिद्ध हो जाता है। स्त्रीलिङ्ग में ङीप् होकर **आढ्यचरी** बनता है। इसी तरह **भूतपूर्वः कुलपतिः कुलपतिचरः, भूतपूर्वो राष्ट्रपतिः राष्ट्रपतिचरः, भूतपूर्वो नेता नेतृचरः** इत्यादि बहुत प्रयोग बनाये जा सकते हैं।

२०००. षष्ठ्या रूप्य च ५।३।५४॥

षष्ठ्यन्ताद् भूतपूर्वेऽर्थे रूप्यः स्याच्चरट् च।

कृष्णस्य भूतपूर्वो गौः कृष्णरूप्यः, कृष्णचरः।

तसिलादिषु रूप्यस्यापरिगणितत्वान्न पुंवत्- शुभ्राया भूतपूर्वः शुभ्ररूप्यः।

षष्ठ्या रूप्य च। षष्ठ्याः पञ्चम्यन्तं, रूप्य इति लुप्तप्रथमाकं पदं, चाव्ययम्। **भूतपूर्वे चरट्** के दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

भूतपूर्व अर्थ में विद्यमान षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से स्वार्थ में रूप्य और चरट् प्रत्यय होते हैं।

च-शब्द का निवेश होने से **चरट्** का भी समुच्चय है। ध्यान रहे कि पूर्वसूत्र प्रथमान्त से चरट् करता है और यह षष्ठ्यन्त से चरट् और रूप्य दोनों प्रत्ययों का विधान करता है।

कृष्णस्य भूतपूर्वो गौः कृष्णरूप्यः, कृष्णचरः। कृष्ण का पहले का बैल। **कृष्णस्य भूतपूर्वो गौः** विग्रह करके **कृष्ण+ङस्** इस स्थिति में **षष्ठ्या रूप्य च** सूत्र से **रूप्य** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **कृष्णरूप्य** शब्द बना है। **चरट्** होने के पक्ष में **कृष्णचर** बन जाता है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कृष्णरूप्यः** और **कृष्णचरः** ये दो प्रयोग सिद्ध हो जाते हैं।

तसिलादिषु रूप्यस्यापरिगणितत्वान्न पुंवत्- शुभ्राया भूतपूर्वः शुभ्रारूप्यः। अर्थात् पुंवद्भावविधायक सूत्र **तसिलादिष्वाकृत्वसुचः** (६.३.३५) में रूप्य-प्रत्यय का परिगणन न होने के कारण स्त्रीलिंगवृत्ति प्रकृति को पुंवद्भाव नहीं होता। जैसे कि **शुभ्रायाः भूतपूर्वः** विग्रह करके **शुभ्रा+ङस्** इस स्थिति में प्रकृत सूत्र से **रूप्य** प्रत्यय होने पर पुंवद्भाव नहीं। अतः **शुभ्रारूप्यः** ही प्रयोग बनता है, न कि **शुभ्ररूप्यः**।

२००१. अतिशायने तमबिष्ठनौ ५।३।५५॥

अतिशयविशिष्टार्थवृत्तेः स्वार्थे एतौ स्तः।
अयमेषामतिशयेनाढ्यः आढ्यतमः। लघुतमो लघिष्ठः।

अतिशायने तमबिष्ठनौ। तमप् च इष्ठन् च तमबिष्ठनौ। अतिशायने सप्तम्यन्तं, तमबिष्ठनौ प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

अतिशय विशिष्ट (अतिशय-कर्तृरूप) अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में तमप् और इष्ठन् प्रत्यय होते हैं।

तमप् में **पकार** इत्संज्ञक है, **तम** बचता है। **इष्ठन्** में **नकार** इत्संज्ञक है, **इष्ठ** बचता है। सूत्रस्थ **अतिशायन**-शब्द **प्रकर्ष** अर्थ का बोधक है। यद्यपि **शीङ्** धातु निद्रार्थक है, तथापि **अति** उपसर्ग के योग से **प्रकर्ष** अर्थ बन जाता है। बहुतों में एक का आधिक्य दिखाने के लिये ये प्रत्यय होते हैं।

आढ्यतमः। इनमें से यह अतिशय सम्पन्न है (सब लोगों में अतिशय सम्पन्न)। **अयमेषामतिशयेनाढ्यः** लौकिक विग्रह और **आढ्य सु** अलौकिक विग्रह है। **अतिशायने तमबिष्ठनौ** से तमप् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **आढ्यतम** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आढ्यतमः** सिद्ध हो जाता है।

लघुतमः, लघिष्ठः। इनमें से यह अतिशय छोटा है। **अयमेषामतिशयेन लघुः** लौकिक विग्रह और **लघु सु** अलौकिक विग्रह है। **अतिशायने तमबिष्ठनौ** से पहले **तमप्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **तम** बचा। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **लघुतमः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **दीर्घतमः, महत्तमः** आदि भी बनते हैं। **इष्ठन्** होने के पक्ष में **लघु+इष्ठ** बनने के बाद **टेः** सूत्र से टिसंज्ञक भाग उकार का लोप करके **लघ्+इष्ठ** बना है। वर्णसम्मेलन, स्वादिकार्य करके **लघिष्ठः** सिद्ध हो जाता है।

दो में से एक का निर्धारण करने पर इसके अपवाद स्वरूप **तरप्** और **ईयसुन्** प्रत्ययों का विधान आगे किया जा रहा है। अतः परिशेषवश बहुतों में से एक का निर्धारण होने पर **तमप्** और **इष्ठन्** प्रत्यय होते हैं।

२००२. तिङश्च ५।३।५६॥
तिङन्तादतिशये द्योत्ये तमप् स्यात्।

तिङश्च। तिङः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **अतिशायने तमबिष्ठनौ** यह पूरा सूत्र अनुवृत्त होता है और **प्रत्ययः, परश्च** आदि का अधिकार है किन्तु **ङ्याप्प्रातिपदिकात्** का अधिकार होते हुये भी उसका सम्बन्ध नहीं होता, क्योंकि तिङन्त पद ङ्यन्त, आबन्त या प्रातिपदिक नहीं होते।

अतिशय अर्थ द्योत्य होने पर तिङन्त से भी तद्धितसंज्ञक तमप् प्रत्यय होता है।

यद्यपि तमप् और इष्ठन् इन दोनों प्रत्ययों का विधान प्राप्त होता है तथापि **तिङन्त** से **इष्ठन्** का प्रयोग नहीं मिलता, क्योंकि इष्ठन्-प्रत्यय गुणवचन प्रातिपदिकों से ही होते हैं, ऐसा नियम है। यह बात आगे **अजादी गुणवचनादेव (५.३.५८)** सूत्र से बतायी जायेगी। तिङन्त प्रयोग क्रियावाचक है, गुणवाची नहीं। अतः मूलकार ने **तमप्** प्रत्यय का ही विधान दिखाया है। इस सूत्र के उदाहरण आगे दिखाये जायेंगे।

२००३. तरप्तमपौ घः १।१।२२॥
एतौ घसञ्ज्ञौ स्तः।

तरप्तमपौ घः। तरप् च तमप् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वस्तरप्तमपौ। तरप्तमपौ प्रथमान्तं, घः प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्।

तरप् और तमप् प्रत्ययों की घ-संज्ञा होती है।

घ संज्ञा है और **तरप्-तमप्** संज्ञी। घ संज्ञा का प्रमुख उपयोग **आमु** आदि प्रत्ययों का विधान है। तमप्-प्रत्यय का विधान ऊपर किया जा चुका है और तरप्-प्रत्यय आगे बताया जायेगा।

२००४. किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे ५।४।११॥

किम एदन्तात् तिङोऽव्ययाच्च यो घस्तदन्तादामुः स्यान्न तु द्रव्यप्रकर्षे।
किंतमाम्। प्राह्णेतमाम्। पचतितमाम्। उच्चैस्तमाम्।
द्रव्यप्रकर्षे तु उच्चैस्तमस्तरुः।

किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे। किम् च एत् च तिङ् च अव्ययं च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः किमेत्तिङव्ययानि, तेभ्यो विहितो यो घः किमेत्तिङव्ययघः, तस्मात्, बहुव्रीहिः। द्रव्यस्य प्रकर्षो द्रव्यप्रकर्षः, न द्रव्यप्रकर्षः- अद्रव्यप्रकर्षस्तस्मिन्। किमेत्तिङव्ययघात् पञ्चम्यन्तम्, आमु लुप्तप्रथमाकं पदम्, अद्रव्यप्रकर्षे सप्तम्यन्तम्। **प्रत्ययः, परश्च** आदि का अधिकार है।

किम्, एदन्त, तिङन्त और अव्यय इन चार से विहित जो घसंज्ञक प्रत्यय, तदन्त प्रातिपदिकों से स्वार्थ में आमु प्रत्यय होता है अद्रव्यप्रकर्ष में।

इस सूत्र की प्रवृत्ति में द्रव्य की प्रकर्षता नहीं होनी चाहिये अर्थात् द्रव्य की प्रकर्षता में आमु-प्रत्यय नहीं होता। विशेषण में **येन विधिस्तदन्तस्य** सूत्र द्वारा तदन्तविधि होकर **एदन्तात्** और **प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणम्** परिभाषा के बल पर **तिङ्** के तदन्तग्रहण होने से **तिङन्तात्** बन गया है। **आमु** में उकार इत्संज्ञक है, **आम्** बचता है। इसे उदित् करने का प्रयोजन यह है कि नुट् आगम न हो। जैसे कि **किन्तम+आम्** इस स्थिति में **ह्रस्वनद्यापो नुट्** सूत्र से नुट् प्राप्त होता है किन्तु **निरनुबन्धकग्रहणे न सानुबन्धकस्य** (अनुबन्धरहित-ग्रहण के विषय में सानुबन्धक का ग्रहण नहीं होता) इस परिभाषा के द्वारा **आम्** के द्वारा **आमु** का ग्रहण न होने से नुट् नहीं होता। इस प्रत्यय के लगने के बाद वह शब्द **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** से **अव्ययसंज्ञक** बन जाता है।

किन्तमाम्। अत्यन्त ही तुच्छ वस्तु। **इदमेषामतिशयेन किम्।** यहाँ पर अतिशय अर्थ में विद्यमान **किम्+सु** से **अतिशायने तमबिष्ठनौ** से **तमप्** प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् आदि होने के बाद **किम्+तम** बना है। **मकार** को **मोऽनुस्वारः** से **अनुस्वार** आदेश और उसके स्थान पर **वा पदान्तस्य** से **परसवर्ण** होकर **किन्तम** बना है। **तरप्तमपौ घः** से **तम** की **घ**संज्ञा होकर **किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे** से **आमु** प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप होने के बाद **किन्तम+आम्** बना। **यस्येति च** से भसंज्ञक **अकार** का लोप हुआ और वर्णसम्मेलन होकर **किन्तमाम्** बना। इसकी अव्ययसंज्ञा, सु, उसका लुक् होकर **किन्तमाम्** सिद्ध हुआ। यह तो **किम्** का उदाहरण है। **एदन्त** का उदाहरण आगे देखिये।

प्राह्णेतमाम्। दिन का अतिशय पूर्वभाग। **अतिशयिते पूर्वाह्णे।** यहाँ पर अतिशय अर्थ में विद्यमान **प्राह्ण ङि** से **अतिशायने तमबिष्ठनौ** से **तमप्** प्रत्यय हुआ। अनुबन्ध लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् प्राप्त था किन्तु **घकालतनेषु कालनाम्नः** से उसका अलुक् हुआ। अतः **प्राह्ण+ङि+तम** बना है। इसमें ङकार की इत्संज्ञा करके **प्राह्ण+इ** में **आद्गुणः** से गुण करके **प्राह्णेतम** बन जाता है। अब **किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे** से **आमु** प्रत्यय हुआ। भसंज्ञक अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **प्राह्णेतमाम्** बना। इसकी अव्ययसंज्ञा, सु, उसका लुक् होकर **प्राह्णेतमाम्** सिद्ध हुआ। यह **एदन्त** का उदाहरण है। **तिङन्त** का उदाहरण आगे देखिये।

पचतितमाम्। अतिशय पकाता है। **अतिशयेन पचति।** यहाँ पर अतिशय अर्थ में **पचति** इस तिङन्त से **तिङश्च** सूत्र के द्वारा **तमप्** प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप करके **पचति+तम** बना है। अब **किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे** से **आमु** प्रत्यय हुआ। भसंज्ञक अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **प्राह्णेतमाम्** बना। इसकी अव्ययसंज्ञा, सु, उसका लुक् होकर **पचतितमाम्** सिद्ध हुआ। इसी तरह **वदतितमाम्** आदि भी बना सकते हैं। यह तो **तिङन्त** का उदाहरण है। **अव्यय** का उदाहरण आगे देखिये।

उच्चैस्तमाम्। अतिशय ऊँचा। **अतिशयेन उच्चैः।** यहाँ पर अतिशय अर्थ में **उच्चैस्** इस अव्यय से **अतिशायने तमबिष्ठनौ** के द्वारा **तमप्** प्रत्यय हुआ। अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **उच्चैस्+तम** बना है। अब **किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे** से **आमु** प्रत्यय हुआ। भसंज्ञक अकार का लोप करके वर्णसम्मेलन करने पर **उच्चैस्तमाम्** बना। इसकी अव्ययसंज्ञा, सु, उसका लुक् होकर **उच्चैस्तमाम्** सिद्ध हुआ। इसी तरह **नीचैस्तमाम्, अतितमाम्, सुतमाम्** आदि बना सकते हैं। **तरप्** होने पर **उच्चैस्तराम्, नीचैस्तराम्, अतितराम्, सुतराम्** भी बनते हैं।

द्रव्यप्रकर्षे तु उच्चैस्तमस्तरुः। जब द्रव्य का प्रकर्ष, उत्कर्ष श्रेष्ठता आदि अर्थ हो तो **आमु** नहीं होता, जिससे **उच्चैस्तमः** ही रह जाता है। **उच्चैस्तमस्तरुः**= सबसे ऊँचा वृक्ष। यहाँ पर द्रव्य है-वृक्ष और उसी का प्रकर्ष बताया गया है।

२००५. द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ ५।३।५७॥
द्वयोरेकस्यातिशये विभक्तव्ये चोपपदे सुप्तिङन्तादेतौ स्तः।
पूर्वयोरपवादः। अयमनयोरतिशयेन लघुः लघुतरः, लघीयान्।
उदीच्याः प्राच्येभ्यः पटुतराः, पटीयांसः।

द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ। उच्यते इति वचनं, द्वयोर्वचनं द्विवचनम्। विभक्तुं योग्यं विभज्यं, द्विवचनं च विभज्यं च तयोः समाहारद्वन्द्वो द्विवचनविभज्यम्। द्विवचनविभज्यं च तद् उपपदम्- द्विवचनविभज्योपपदं, तस्मिन्, कर्मधारयः। द्विवचनविभज्योपपदे

सप्तम्यन्तं, तरबीयसुनौ प्रथमान्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में अतिशायने तमबिष्ठनौ से **अतिशायने** की अनुवृत्ति आती है और **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

दो में एक के अतिशय, उत्कर्ष को बताने के लिए या विभक्तव्य शब्द के उपपद होने पर उत्कर्षविशिष्ट अर्थ में वर्तमान सुबन्त और तिङन्त से तरप् और ईयसुन् प्रत्यय होते हैं।

तरप् में भी पकार इत्संज्ञक है और तर बचता है तथा ईयसुन् में नकार और उकार इत्संज्ञक हैं, **ईयस्** बचता है। उकार की इत्संज्ञा होने से यह उगित् बन जाता है, जिसके फलस्वरूप सर्वनामस्थान प्रत्यय के परे रहते **उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः** सूत्र से नुम् आगम किया जाता है और स्त्रीत्वविवक्षा में **उगितश्च** सूत्र से ङीप्। यहाँ दो प्रकृतियाँ हैं- सुबन्त और तिङन्त तथा दो उपपद हैं- द्विवचन और विभज्य (विभाजन करने योग्य) तथा दो ही प्रत्यय हैं- तरप् और ईयसुन् फिर भी आचार्यों के व्याख्यान से **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** की उपस्थिति नहीं मानी गयी है। अगले सूत्र **अजादी गुणवचनादेव** सूत्र के नियम से **ईयसुन्** प्रत्यय केवल गुणवाची प्रातिपदिक से होगा अर्थात् तिङन्त से **ईयसुन्** नहीं होगा।

यहाँ पर **उपपद** शब्द उपपदसंज्ञक न होकर अन्वर्थ है अर्थात् **उप=समीपे उच्चारितं पदम् उपपदम्** अर्थात् समीप में उच्चारित पद को उपपद माना गया है। यद्यपि **कृत्रिमाकृत्रिमयोः कृत्रिमे कार्यसम्प्रत्ययः** (कृत्रिम और अकृत्रिम दोनों की उपस्थिति में कृत्रिम में ही कार्य होता और अकृत्रिम में कार्य नहीं होता) यह परिभाषा है, तदनुसार **तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्** सूत्र से विहित उपपदसंज्ञा कृत्रिम है और यौगिक (अन्वर्थ) उपपद अकृत्रिम है और कृत्रिम का ही ग्रहण होना चाहिये तथापि तद्धित में कृत्रिम उपपद की सम्भावना न होने के कारण उक्त परिभाषा बाधित हो जाती है, क्योंकि उक्त उपपदसंज्ञा **धातोः** सूत्र के अधिकार में ही होती है।

पूर्वयोरपवादः। यह पूर्व के दो सूत्र **अतिशायने तमबिष्ठनौ** और **तिङश्च** का अपवाद है।

लघुतरः, लघीयान्। दोनों में यह अतिशय छोटा है। **अयमनयोरतिशयेन लघुः** लौकिक विग्रह और **लघु सु** अलौकिक विग्रह है। **द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ** से तरप् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तर बचा। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग, **लघुतरः** सिद्ध हुआ। **ईयसुन्** होने के पक्ष में अनुबन्धलोप होकर **लघु+ईयस्** बना है। **टेः** से टिसंज्ञक उकार का लोप करके **लघीयस्** यह प्रातिपदिक बना। अब सु प्रत्यय, **उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः** से **नुम्** आगम करके **लघीयन्स्+स्** बना। **सान्तमहतः संयोगस्य** से **दीर्घ** करके **लघीयान्स्+स्** बना। सु के सकार का **हल्ङ्यादिलोप** हुआ और प्रकृति के सकार का संयोगान्तस्य लोप हुआ तो **लघीयान्** सिद्ध हुआ। आगे

नकार को अनुस्वार आदि करके **लघीयांसौ, लघीयांसः** आदि भी बनाते जायें। **ईयसुन्** प्रत्यय में उकार की इत्संज्ञा होती है, अतः यह शब्द **उगित्** है जिससे स्त्रीलिङ्ग में **उगितश्च** से **ङीप्** होकर **लघीयसी, लघीयस्यौ, लघीयस्यः** आदि बना सकते हैं। इसी तरह **अयमनयोः पटुः पटुतरः, पटीयान्, पटीयसी। महत्तरः, महीयान्, महीयसी** आदि अनेकों शब्दों से इन प्रत्ययों का योग करके रूप बनायें।

उदीच्याः प्राच्येभ्यः पटुतराः। उत्तर दिशा के लोग पूर्व दिशा के लोगों से ज्यादा चतुर होते हैं। **एते एतेभ्योऽतिशयेन पटवः** लौकिक विग्रह और **पटु जस्** अलौकिक विग्रह है। **द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ** से तरप् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, तर बचा। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, बहुवचन में जस् विभक्ति, दीर्घ, रुत्वविसर्ग करके **पटुतराः** सिद्ध हुआ। **ईयसुन्** होने के पक्ष में **पटीयान्, पटीयांसौ, पटीयांसः।**

२००६. अजादी गुणवचनादेव ५।३।५८॥

इष्ठन्नीयसुनौ गुणवचनादेव स्तः।

प्रथिष्ठः, प्रथीयान्। नेह- पाचकतरः, पाचकतमः।

अजादी गुणवचनादेव। अच् आदिर्ययोस्तौ अजादी, बहुव्रीहिः। गुणमुक्तवान् गुणवचनस्तस्माद् गुणवचनात्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

उपर्युक्त चार प्रत्ययों (तमप्, इष्ठन्, तरप् और ईयसुन्) में अजादि (इष्ठन् और ईयसुन्) प्रत्यय गुणवाची प्रातिपदिक से ही होते हैं।

यह नियमसूत्र है। पूर्वसूत्रों से उक्त दोनों प्रत्ययों के सिद्ध होते हुये भी पुनः विधान किया जाना नियमार्थ ही है- **सिद्धे सत्यारभ्यमाणो विधिर्नियमाय भवति।** नियम अतिव्याप्तिवारण के लिये होता है। जैसे कि **तमप्** और **तरप्** की तरह **इष्ठन्** और **ईयसुन्** भी उक्त दो सूत्रों के विधान से द्रव्यवाची, क्रियावाची और गुणवाची सभी प्रकार के शब्दों से प्राप्त हो रहे थे तो प्रकृत सूत्र से यह नियम किया गया कि अजादि उक्त प्रत्यय केवल गुणवाची प्रातिपदिकों से ही होते हैं, द्रव्यवाची और गुणवाची से नहीं होते।

प्रथिष्ठः, प्रथीयान्। क्रमशः अर्थः- दोनों में से मोटा एक और अनेकों में से मोटा एक। **पृथु**-शब्द गुणवाची है। पहले प्रथम प्रयोग की सिद्धि करते हैं। **अयमनयोरतिशयेन पृथुः** विग्रह करके **पृथु+सु** इस स्थिति में **अतिशायने तमबिष्ठनौ** सूत्र से अजादि प्रत्यय **इष्ठन्** के होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **पृथु+इष्ठ** बना है। **र ऋतोर्हलादेर्लघोः (६.४.१६१)** सूत्र से ऋकार के स्थान पर **र**-भाव होकर **प्रथु+इष्ठ** बन जाता है और **टेः** सूत्र से टिसंज्ञक भाग उकार का लोप होकर **प्रथिष्ठ** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **प्रथिष्ठः** सिद्ध हो जाता है। दूसरे प्रयोग के लिये **अयमेषामतिशयेन पृथुः** विग्रह करके **पृथु+सु** इस स्थिति में **द्विवचनविभज्योपपदे**

तरबीयसुनौ सूत्र से अजादि प्रत्यय **ईयसुन्** के होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **पृथु+ईयस्** बना है। **र ऋतोर्हलादेर्लघोः** (६.४.१६१) सूत्र से ऋकार के स्थान पर **र**-भाव होकर **प्रथु+ईयस्** बन जाता है और **टेः** सूत्र से टिसंज्ञक भाग उकार का लोप होकर **प्रथीयस्** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **प्रथीयान्, प्रथीयांसौ, प्रथीयांसः** आदि रूप सिद्ध हो जाते हैं। यहाँ पर प्रकृत सूत्र की कोई उपयोगिता नहीं है। नियमसूत्र की उपयोगिता खास करके प्रत्युदाहरणों में हुआ करती है, सो आगे बता रहे हैं-

नेह- पाचकतरः, पाचकतमः। अर्थात् **अजादी गुणवचनादेव** सूत्र के नियम से **पाचकतरः** (दोनों में अच्छा पकाने वाला) और **पाचकतमः** (सबों में अच्छा पकाने वाला) में **तरप्** और **तमप्** प्रत्यय तो होते हैं किन्तु अजादि **इष्ठन्** और **ईयसुन्** प्रत्यय नहीं हुये, क्योंकि **पाचक** शब्द गुणवाची न होकर क्रियावाची (क्रियावान्) है। फलतः **तरप्** होकर **पाचकतरः** और **तमप्** होकर **पाचकतमः** ही सिद्ध हुये हैं।

अब प्रश्न होता है कि जब **सिद्धे सत्यारभ्यमाणो विधिर्नियमाय भवति** इस परिभाषा के अनुसार पूर्वसूत्रों से सिद्ध होते हुये भी पुनः इस सूत्र के आरम्भ-मात्र से इस सूत्र की नियमार्थता सिद्ध हो जाती है तो फिर नियमार्थ को दर्शाने के लिये **एव**-शब्द का पाठ किस लिये है? इसका समाधान यह है कि कहीं अनुकूल नियम की जगह प्रतिकूल (विपरीत) नियम न समझा जाय। अनुकूल नियम है- अजादि इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय गुणवाची शब्दों से ही होते हैं। प्रतिकूल नियम है- गुणवचन से ही अजादि प्रत्यय होते हैं। इसमें प्रतिकूलनियम का वारण करने के लिये एवकार लगाया गया है। अब फिर प्रश्न हो सकता है कि एवकार से विपरीतनियम का वारण कैसे होगा? तो इसके विषय में यह कहा जाता है कि सूत्रकार ने ही **गुणवचनादेव** ऐसा पाठ किया है तो एव-शब्द का अन्वय **गुणवचनात्** के साथ ही है, न कि **अजादी** के साथ। इस तरह विपरीत नियम का वारण सम्भव हो जाता है। विपरीत नियम होता तो **पटुतरः, पटुतमः** में गुणवाची पटु-शब्द से अजादि प्रत्यय ही होते, हलादिप्रत्यय न हो पाते। विपरीत-नियम के अभाव में हलादि **तरप्-तमप्** प्रत्यय भी हो जाते हैं।

२००७. तुश्छन्दसि ५।३।५९॥
तृन्तृजन्तादिष्ठन्नीयसुनौ स्तः।

तुश्छन्दसि। तृ-शब्दस्य पञ्चम्यन्तं, रूपं तुः इति। छन्दसि सप्तम्यन्तम्। **अजादी गुणवचनादेव** से **अजादी** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

वेद के विषय में तृन् एवं तृच् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से अजादि (इष्ठन् और ईयसुन्) प्रत्यय होते हैं।

वेद में प्रयुक्त पूर्वोक्त इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्ययों के विधान में कुछ विशेषता बतायी गयी है। **तुः** (**तृ**) पद से **तृन्** और **तृच्** दोनों प्रत्ययों का ग्रहण है। **प्रत्ययग्रहणे तदन्ता ग्राह्याः** के नियम से तृन्प्रत्ययान्त और तृच्प्रत्ययान्त शब्दों का ग्रहण है। पूर्वसूत्र से केवल गुणवाची शब्दों से ही अजादि प्रत्यय प्राप्त थे किन्तु यहाँ **अगुणवाची** शब्द से भी उनका विधान किया गया है, वैदिक प्रयोग के लिये। इस प्रकार पूर्वनियम से व्यावर्तित अजादि के सम्बन्ध में यह प्रतिप्रसव है, न कि अपूर्व विधान। इसके फलस्वरूप **कर्तृ**-शब्द से **इष्ठन्** प्रत्यय होकर **करिष्ठः** और **दोग्धृ**-शब्द से **ईयसुन्** प्रत्यय करके **दोहीयसी** प्रयोग अगले सूत्र में सिद्ध किये गये हैं।

२००८. तुरिष्ठेमेयःसु ६।४।१५४॥

तृशब्दस्य लोपः स्याद् एषु परेषु।

अतिशयेन कर्ता करिष्ठः। दोहीयसी धेनुः।

तुरिष्ठेमेयःसु। तुः षष्ठ्यन्तम्, इष्ठेमेयस्सु सप्तम्यन्तम्। इष्ठश्च इमा (इमनिच्) च ईयान् (ईयसुन्) च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः- इष्ठेमेयांसस्तेषु इष्ठेमेयस्सु। **ढे लोपोऽकद्र्वाः** से **लोपः** की अनुवृत्ति आती है और **भस्य** तथा **अङ्गस्य** का अधिकार है।

भसंज्ञक अंग के तृ-शब्द (भाग) का लोप होता है- इष्ठन्, इमनिच् और ईयसुन् प्रत्ययों के परे रहते।

अतिशयेन कर्ता करिष्ठः। सबसे बढ़कर कार्य करने वाला। **एषु अयमतिशयेन कर्ता** विग्रह करके **कर्तृ+सु** इस स्थिति में **तुश्छन्दसि** सूत्र से इष्ठन्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् करके **कर्तृ+इष्ठ** बना है। **टेः** सूत्र से प्राप्त टिलोप को बाधकर **तुरिष्ठेमेयस्सु** सूत्र से **तृ**-शब्द का लोप होने पर **करिष्ठ** बन गया है और एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **करिष्ठः** सिद्ध हो जाता है। टिलोप होता तो केवल ऋकार का लोप होकर **कर्तिष्ठः** ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता।

दोहीयसी धेनुः। अधिक दूध देने वाली गाय। **दुह्**-धातु से तृच्, **दादेर्धातोर्घः** सूत्र से हकार को घकार आदेश, **झषस्तथोर्धोऽधः** सूत्र से तृच् के तकार को धकार आदेश और घकार को जश्त्व होकर **दोग्धृ** बनने के बाद स्त्रीत्वविवक्षा में **ऋन्नेभ्यो ङीप्** सूत्र से ङीप् प्रत्यय होने के बाद यण् होकर **दोग्ध्री** शब्द बनता है। **अनयोरियमतिशयेन दोग्ध्री** विग्रह करके **दोग्धी+सु** इस स्थिति में **तुश्छन्दसि** सूत्र से ईयसुन्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् करके **दोग्ध्री+ईयस्** बना है। **भस्याढे तद्धिते** वार्तिक से पुंवद्भाव होने के कारण ङीप् की निवृत्ति होने पर **दोग्धृ+ईयस्** बना है। **टेः** सूत्र से प्राप्त टिलोप को बाधकर **तुरिष्ठेमेयस्सु** सूत्र से **तृ**-शब्द (**धृ**) का लोप होने पर **निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः** के नियम से निमित्त धकार की निवृत्ति से

नैमित्तिक घकार (गकार) की भी निवृत्ति होकर **दोह्+ईयस्=दोहीयस्** शब्द बना है। स्त्रीत्वविवक्षा में **उगितश्च** से ङीप् होकर **दोहीयसी** शब्द बन गया है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **दोहीयसी** सिद्ध हो जाता है।

२००९. प्रशस्यस्य श्रः ५।३।६०॥

अस्य श्रादेशः स्यादजाद्योः।

प्रशस्यस्य श्रः। प्रशस्यस्य षष्ठ्यन्तं, श्रः अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **अजादी गुणवचनादेव** से **अजादी** को सप्तम्यन्ततया विपरिणत करके अनुवर्तन करते हैं। **प्रत्ययः** का अधिकार है, उसको भी सप्तम्यन्त बनाते हैं।

अजादि प्रत्यय अर्थात् इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्ययों के परे होने पर प्रशस्य-शब्द के स्थान पर श्र-आदेश होता है।

प्रशस्य-शब्द का अर्थ है- श्रेष्ठ। श्र-आदेश के अनेकाच् होने के कारण **अनेकाल्शित्सर्वस्य** के नियम से सर्वादेश होता है। उदाहरण अगले सूत्र में दिया गया है।

२०१०. प्रकृत्यैकाच् ६।४।१६३॥

इष्ठादिष्वेकाच् प्रकृत्या स्यात्। श्रेष्ठः, श्रेयान्।

प्रकृत्यैकाच्। एकोऽच् यस्मिन् स एकाच्, बहुव्रीहिः। प्रकृत्या तृतीयान्तम्, एकाच् प्रथमान्तम्। **तुरिष्ठेमेयःसु** से **इष्ठेमेयस्सु** की अनुवृत्ति आती है और **भस्य** तथा **अङ्गस्य** का अधिकार है।

एकाच् भसंज्ञक अंग को प्रकृतिभाव होता है- इष्ठन्, इमनिच् और ईयसुन् प्रत्ययों के परे रहते।

टेः सूत्र से प्राप्त टिलोप का अभाव-रूप प्रकृतिभाव किया गया है। **स्वेन रूपेणावस्थानं प्रकृतिभावः** अर्थात् सन्धिकार्य प्राप्त होने पर उसका अभाव होते हुये अपनी पूर्वस्थिति में रहना प्रकृतिभाव है।

श्रेष्ठः, श्रेयान्। जो अतिशय प्रशंसनीय हो, उसे **श्रेष्ठः** या **श्रेयान्** कहा जाता है। **अयम् एषाम् अतिशयेन प्रशस्यः** विग्रह करके **प्रशस्य+सु** इस स्थिति में **अतिशायने तमबिष्ठनौ** सूत्र से **इष्ठन्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **प्रशस्य+इष्ठ** बना हुआ है। **प्रशस्य श्रः** सूत्र से **प्रशस्य**-शब्द के स्थान पर **श्र** आदेश होने पर **श्र+इष्ठ** बना। इस तरह प्रकृति एक अच् वाली है। **टेः** सूत्र से टिलोप प्राप्त होने पर उसे बाधकर **प्रकृत्यैकाच्** सूत्र से प्रकृतिभाव होने के कारण यह अपनी स्थिति में ही रहा अर्थात् टिलोप नहीं हुआ। **श्र+इष्ठ** में गुण होकर **श्रेष्ठ** शब्द बना और स्वादिकार्य से **श्रेष्ठः** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **अयम् अनयोः अतिशयेन प्रशस्यः** विग्रह में **प्रशस्य+सु** इस स्थिति में **द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ** सूत्र से **ईयसुन्**

प्रत्यय होने पर भी श्रादेश और प्रकृतिभाव करके गुण करने पर **श्रेयस्** शब्द बनता है। उभयत्र स्वादिकार्य करने पर **श्रेष्ठः** और **श्रेयान्** ये रूप सिद्ध होते हैं। **श्रेयस्** यह प्रातिपदिक बना। **श्रेयस्** शब्द के रूप **पटीयान्** की तरह **श्रेयान्, श्रेयांसौ, श्रेयांसः** आदि सिद्ध होते हैं। ध्यान रहे कि श्रादेश इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय के परे रहते होता है, न कि तरप् और तमप् परे रहते। अतः **प्रशस्यतमः, प्रशस्यतरः** रूप बनते हैं। हाँ **अयम् अनयोरतिशयेन श्रेष्ठः** और **अयमेषु अतिशयेन श्रेष्ठः** विग्रह करने पर तो **श्रेष्ठतरः, श्रेष्ठतमः** भी बन सकते हैं।

भाष्यकार के अनुसार **अल्लोपोऽनः, नस्तद्धिते, यस्येति च** और **टेः** से प्राप्त कार्यों को रोकने के लिए इससे प्रकृतिभाव किया जाता है।

२०११. ज्य च ५।३।६१॥

प्रशस्यस्य ज्यादेशः स्यादिष्ठेयसोः। ज्येष्ठः।

ज्य च। ज्य इति लुप्तप्रथमाकं पदं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **प्रशस्यस्य श्रः** से **प्रशस्यस्य** और **अजादी गुणवचनादेव** से **अजादी** को सप्तम्यन्ततया विपरिणाम करके अनुवृत्ति की जाती है।

अजादि अर्थात् इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्ययों के परे रहते प्रशस्य के स्थान पर ज्य आदेश भी होता है।

ज्येष्ठः। अतिशय प्रशंसनीय। **अयमेषामतिशयेन प्रशस्यः।** यहाँ पर **अतिशय विशिष्ट** अर्थ में प्रशस्य सु से **अतिशायने तमबिष्ठनौ** से **इष्ठन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **प्रशस्य+इष्ठ** बना है। **ज्य च** से **प्रशस्य** के स्थान पर ज्य आदेश होकर **ज्य+इष्ठ** बना। अब भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** से लोप प्राप्त था, उसे बाधकर के प्रकृत्यैकाच् से प्रकृतिभाव हुआ अर्थात् लोप नहीं हुआ। **ज्य+इष्ठ** में गुण होकर ज्येष्ठ बना, स्वादिकार्य करके **ज्येष्ठः** सिद्ध हुआ। ईयसुन्-प्रत्यय का उदाहरण अगले सूत्र में दिया गया है।

२०१२. ज्यादादीयसः ६।४।१६०॥

'आदेः परस्य'(सू.४४)। ज्यायान्।

ज्यादादीयसः। ज्यात् पञ्चम्यन्तम्, आत् प्रथमान्तम्, ईयसः षष्ठ्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्।

ज्य से परे ईयस् के ईकार के स्थान पर आकार आदेश होता है।

आदेः परस्य। अर्थात् **आदेः परस्य** की सहायता से पर के स्थान पर विहित कार्य उसके आदि वर्ण के स्थान पर हो जाने से केवल **ई** के स्थान पर यह **आकार** आदेश हो जाता है।

ज्येष्ठः, ज्यायान्। अतिशय प्रशंसनीय। **अयमनयोरतिशयेन प्रशस्यः** विग्रह करके **प्रशस्य+सु** इस स्थिति में **द्विवचनविभज्योपपदे तदबीयसुनौ** सूत्र से ईयसुन्-प्रत्यय होने के पक्ष में अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **प्रशस्य+ईयस्** बना है। **ज्य च** सूत्र से **प्रशस्य** के स्थान पर **ज्य** आदेश होकर **ज्य+ईयस्** बना। अब भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** से लोप प्राप्त था, उसे बाधकर के **प्रकृत्यैकाच्** से प्रकृतिभाव हुआ अर्थात् लोप नहीं हुआ। **ज्यादादीयसः** सूत्र से **ईकार** के स्थान पर **आकार** आदेश होकर **ज्या+आयस्** बना। **अकः सवर्णे दीर्घः** से दीर्घ होकर ज्यायस् यह प्रातिपदिक बना। उससे स्वादिकार्य करने पर **श्रेयान्** की तरह **ज्यायान्, ज्यायांसौ, ज्यायांसः** आदि सिद्ध होते हैं।

२०१३. वृद्धस्य च ५।३।६२॥
ज्यादेशः स्यादजाद्योः। ज्येष्ठः, ज्यायान्।

वृद्धस्य च। वृद्धस्य षष्ठ्यन्तं, चाव्ययम्। **ज्य च** से **ज्य** और **अजादी गुणवचनादेव** से **अजादी** को सप्तम्यन्ततया विपरिणाम करके अनुवृत्ति की जाती है।

अजादि अर्थात् इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्ययों के परे रहते वृद्ध-शब्द के स्थान पर भी ज्य-आदेश होता है।

जेष्ठः, ज्यायान्। अतिशय वृद्ध। **अयमेषामतिशयेन वृद्धः** विग्रह करके **वृद्ध+सु** इस स्थिति में **अतिशायने तमबिष्ठनौ** से **इष्ठन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **वृद्ध+इष्ठ** बना है। **वृद्धस्य च** सूत्र से **वृद्ध**-शब्द के स्थान पर **ज्य** आदेश होकर **ज्य+इष्ठ** बना। अब भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** से लोप प्राप्त था, उसे बाधकर के **प्रकृत्यैकाच्** से प्रकृतिभाव हुआ अर्थात् लोप नहीं हुआ। **ज्य+इष्ठ** में गुण होकर **ज्येष्ठ** बना, स्वादिकार्य करके **ज्येष्ठः** सिद्ध हुआ। **अयमनयोरतिशयेन वृद्धः** विग्रह करके **वृद्ध+सु** इस स्थिति में **द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ** सूत्र से ईयसुन्-प्रत्यय होने के पक्ष में अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **वृद्ध+ईयस्** बना है। **वृद्धस्य च** सूत्र से **वृद्ध**-शब्द के स्थान पर **ज्य** आदेश होकर **ज्य+ईयस्** बना। अब भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** से लोप प्राप्त था, उसे बाधकर के **प्रकृत्यैकाच्** से प्रकृतिभाव हुआ अर्थात् लोप नहीं हुआ। **ज्यादादीयसः** सूत्र से **ईकार** के स्थान पर **आकार** आदेश होकर **ज्या+आयस्** बना। **अकः सवर्णे दीर्घः** से दीर्घ होकर **ज्यायस्** यह प्रातिपदिक बना। उससे स्वादिकार्य करने पर **श्रेयान्** की तरह **ज्यायान्, ज्यायांसौ, ज्यायांसः** आदि सिद्ध होते हैं।

२०१४. अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ ५।३।६३॥
अजाद्योः। नेदिष्ठः, नेदीयान्। साधिष्ठः, साधीयान्।

अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ। अन्तिकश्च बाढश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः- अन्तिकबाढौ, तयोरन्तिकबाढयोः। नेदश्च साधश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो नेदसाधौ। **अजादी गुणवचनादेव** से **अजादी** को सप्तम्यन्ततया विपरिणाम करके अनुवृत्ति की जाती है।

अजादि अर्थात् इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्ययों के परे रहते अन्तिक और बाढ शब्दों के स्थान पर क्रमशः नेद और बाढ आदेश होते हैं।

उद्देश्य (स्थानी) **अन्तिक** और **बाढ** ये दो हैं तथा विधेय (आदेश) भी **नेद** और **साध** ये दो हैं। अतः समानसंख्या होने के कारण **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** की उपस्थिति से **अन्तिक** शब्द के स्थान पर **नेद** आदेश और **बाढ** शब्द के स्थान पर **साध** आदेश होंगे।

नेदिष्ठः, नेदीयान्। सबसे अधिक समीप। **अयम् सर्वेषाम् अतिशयेन अन्तिकः** विग्रह करके **अन्तिक+सु** इस स्थिति में **अतिशायने तमबिष्ठनौ** से **इष्ठन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अन्तिक+इष्ठ** बना है। **अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ** सूत्र से **अन्तिक**-शब्द के स्थान पर **नेद** आदेश होने पर भसंज्ञक अकार का लोप होकर **नेदिष्ठ** बना और स्वादिकार्य से **नेदिष्ठः** सिद्ध हो जाता है। **अयमनयोरतिशयेन अन्तिकः** विग्रह करके **अन्तिक+सु** इस स्थिति में **द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ** सूत्र से ईयसुन्-प्रत्यय होने के पक्ष में अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **नेद** आदेश, अकारलोप करके **नेदीयस्** और स्वादिकार्य करके **नेदीयान्** सिद्ध हो जाता है।

साधिष्ठः, साधीयान्। सबसे अधिक दृढ, अच्छा। **अयम् सर्वेषाम् अतिशयेन बाढम्** विग्रह करके **बाढ+सु** इस स्थिति में **अतिशायने तमबिष्ठनौ** से **इष्ठन्** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **बाढ+इष्ठ** बना है। **अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ** सूत्र से **बाढ**-शब्द के स्थान पर **साध** आदेश होने पर भसंज्ञक अकार का लोप होकर **साधिष्ठ** बना और स्वादिकार्य से **साधिष्ठः** सिद्ध हो जाता है। **अयमनयोरतिशयेन बाढः** विग्रह करके **बाढ+सु** इस स्थिति में **द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ** सूत्र से ईयसुन्-प्रत्यय होने के पक्ष में अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **साध** आदेश के बाद **यस्येति च** से अकारलोप करके **साधीयस्** और स्वादिकार्य करके **साधीयान्** सिद्ध हो जाता है।

२०१५. स्थूलदूरयुवह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणां यणादिपरं पूर्वस्य च गुणः ६।४।१५६॥

एषां यणादिपरं लुप्यते, पूर्वस्य च गुणः इष्ठादिषु।
स्थविष्ठः। दविष्ठः। यविष्ठः। ह्रसिष्ठः। क्षेपिष्ठः। क्षोदिष्ठः। एवम् ईयस्।
ह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणां पृथ्वादित्वात्- ह्रसिमा। क्षेपिमा। क्षोदिमा।

स्थूलदूरयुवह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणां यणादिपरं पूर्वस्य च गुणः। स्थूलश्च दूरं च युवा च ह्रस्वं च क्षिप्रं च क्षुद्रश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः स्थूलदूरयुवह्रस्वक्षिप्रक्षुद्रास्तेषां स्थूलदूरयुवह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणाम्। यण् आदिर्यस्य तद् यणादि, यणादि च अदः परं च यणादिपरम्, बहुव्रीहिगर्भकर्मधारयः। स्थूलदूरयुवह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणां षष्ठ्यन्तं, यणादिपरं प्रथमान्तं, पूर्वस्य षष्ठ्यन्तं, चाव्ययं, गुणः प्रथमान्तम्। **तुरिष्ठेमेयःसु** से **इष्ठेमेयस्सु** की और **ढे लोपोऽकद्र्वाः** से **लोपः** की अनुवृत्ति आती है। **भस्य** तथा **अङ्गस्य** का अधिकार है।

स्थूल, दूर, युवन्, ह्रस्व, क्षिप्र और क्षुद्र इन भसंज्ञक अंगों का पर जो यणादि भाग, उसका इष्ठन्, इमनिच् और ईयसुन् प्रत्ययों के परे रहते लोप होता है तथा उस यणादि से पूर्व को गुण भी होता है।

यहाँ **यणादिपर** इस लिये कहा गया कि **युवन्** और **ह्रस्व** शब्दों दो यण् हैं और उसमें पूर्व यण् का लोप न हो। इस तरह **स्थूल** में लकार, **दूर** में रेफ, **युवन्** में वकार, **ह्रस्व** में वकार, **क्षिप्र** में रेफ और **क्षुद्र** में रेफ का लोप होगा और तत्तत् यण् से पूर्ववर्ती इक् को गुण होगा। ध्यान रहे कि जहाँ पर भी **गुण**-शब्द का उच्चारण करके गुण का विधान किया जाता है, वहाँ पर **इको गुणवृद्धी** सूत्र से **इकः** पद की उपस्थिति होती है, जिससे इक् को ही गुण होता है।

स्थविष्ठः। सबसे मोटा। **अयमेषामतिशयेन स्थूलः** विग्रह करके **स्थूल+सु** इस स्थिति में **अतिशायने तमबिष्ठनौ** सूत्र से **इष्ठन्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **स्थूल+इष्ठ** बना है। **स्थूलदूरयुवह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणां यणादिपरं पूर्वस्य च गुणः** सूत्र से **स्थूल** में लकार का लोप और उससे पूर्ववर्ती उकार को गुण ओकार होकर **स्थो+अ+इष्ठ** बना है। अकार का **टेः** सूत्र से लोप और ओकार को **अव्** आदेश होकर **स्थविष्ठ** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **स्थविष्ठः** सिद्ध हो जाता है।

दविष्ठः। सबसे दूर। **अयमेषामतिशयेन दूरः** विग्रह करके **दूर+सु** इस स्थिति में **इष्ठन्** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **दूर** में रेफ का लोप और उससे पूर्ववर्ती ऊकार को गुण ओकार, टिसंज्ञक अकार का लोप, ओकार को **अव्** आदेश होकर **दविष्ठ** और स्वादिकार्य से **दविष्ठः** सिद्ध हो जाता है।

यविष्ठः। सबसे युवा। **अयमेषामतिशयेन युवा** विग्रह करके **युवन्+सु** इस स्थिति में **इष्ठन्** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **युवन्** में पर-यण् वकार का लोप और उससे पूर्ववर्ती उकार को गुण ओकार, टिसंज्ञक भाग **अन्** का लोप, ओकार को **अव्** आदेश होकर **यविष्ठ** और स्वादिकार्य से **यविष्ठः** सिद्ध हो जाता है।

ह्रसिष्ठः। सबसे छोटा। **अयमेषामतिशयेन ह्रस्वः** विग्रह करके **ह्रस्व+सु** इस स्थिति में **इष्ठन्** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **ह्रस्व** में पर-यण् वकार का लोप होता है। यहाँ यण् से पूर्ववर्ती इक् नहीं है, अतः गुण का प्रसंग भी नहीं है। टिसंज्ञक भाग अकार का लोप होकर **ह्रसिष्ठ** और स्वादिकार्य से **ह्रसिष्ठः** सिद्ध हो जाता है।

क्षेपिष्ठः। सबसे शीघ्र। **अयमेषामतिशयेन क्षिप्रः** विग्रह करके **क्षिप्र+सु** इस स्थिति में **इष्ठन्** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **क्षिप्र** में यण् रेफ का लोप और उससे पूर्ववर्ती इकार को गुण एकार, टिसंज्ञक भाग अकार का लोप होकर **क्षेपिष्ठ** और स्वादिकार्य से **क्षेपिष्ठः** सिद्ध हो जाता है।

क्षोदिष्ठः। सबसे क्षुद्र। **अयमेषामतिशयेन क्षुद्रः** विग्रह करके **क्षुद्र+सु** इस स्थिति में **इष्ठन्** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **क्षुद्र** में यण् रेफ का लोप और उससे पूर्ववर्ती उकार को गुण ओकार, टिसंज्ञक भाग अकार का लोप होकर **क्षोदिष्ठ** और स्वादिकार्य से **क्षोदिष्ठः** सिद्ध हो जाता है।

एवम् ईयस्। अर्थात् उपर्युक्त शब्दों में **द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ** सूत्र से **ईयसुन् (ईयस्)** प्रत्यय होने पर उपर्युक्त रीति से ही **स्थूलदूरयुवह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणां यणादिपरं पूर्वस्य च गुणः** सूत्र से परयण् का लोप और उससे पूर्ववर्ती इक् को गुण करके रूप बना लेने चाहिये। स्वादिकार्य के लिये हलन्तपुंल्लिङ्गप्रकरण का स्मरण करना चाहिये। ईयसुन्-प्रत्ययान्त शब्द से स्त्रीलिंग में **उगितश्च** से ङीप् होता है। जैसे कि-

दो में से अधिक मोटा। **अयमनयोरतिशयेन स्थूलः स्थवीयान्। स्थवीयसी।**
दो में से अधिक दूर। **अयमनयोरतिशयेन दूरः दवीयान्। दवीयसी।**
दो में से अधिक युवा। **अयमनयोरतिशयेन युवा यवीयान्। यवीयसी।**
दो में से अधिक छोटा। **अयमनयोरतिशयेन ह्रस्वः- ह्रसीयान्। ह्रसीयसी।**
दो में से अधिक शीघ्र। **अयमनयोरतिशयेन क्षिप्रः क्षेपीयान्। क्षेपीयसी।**
दो में से अधिक क्षुद्र। **अयमनयोरतिशयेन क्षुद्रः क्षोदीयान्। क्षोदीयसी।**

ह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणां पृथ्वादित्वात्- ह्रसिमा। क्षेपिमा। क्षोदिमा। अर्थात् **ह्रस्व, क्षिप्र** और **क्षुद्र** इन शब्दों का पाठ **पृथ्वादिगण** में भी है। अतः **पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा (५.१.१२२)** सूत्र से इमनिच् प्रत्यय भी होता है। तत्पक्ष में भी **स्थूलदूरयुवह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणां यणादिपरं पूर्वस्य च गुणः** सूत्र से परयण् का लोप और उससे पूर्ववर्ती इक् को गुण करके रूप बना लेने चाहिये। जैसे कि-

ह्रस्वस्य भावो ह्रसिमा (छोटेपन का भाव)।
क्षिप्रस्य भावः क्षेपिमा (शीघ्रता का भाव)।
क्षुद्रस्य भावः क्षोदिमा (क्षुद्रता का भाव)।

२०१६. प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुलगुरुवृद्धतृप्रदीर्घवृन्दारकाणां प्रस्थस्फवर्बंहिगर्वर्षिवृन्दारकाः ६।४।१५७॥

प्रियादीनां क्रमात् प्रादयः स्युरिष्ठादिषु।

प्रेष्ठः। स्थेष्ठः। स्फेष्ठः। वरिष्ठः। बंहिष्ठः। गरिष्ठः। वर्षिष्ठः। त्रपिष्ठः। द्राघिष्ठः। वृन्दिष्ठः। एवमीयसुन्। प्रियोरुबहुलगुरुदीर्घाणां पृथ्वादित्वात् प्रेमा इत्यादि।

प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुलगुरुवृद्धतृप्रदीर्घवृन्दारकाणाम्०। प्रियश्च स्थिरश्च स्फिरश्च उरुश्च बहुलश्च गुरुश्च वृद्धश्च तृप्रश्च दीर्घश्च वृन्दारकश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुलगुरुवृद्धतृप्रदीर्घवृन्दारकास्तेषां प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुलगुरुवृद्धतृप्रदीर्घवृन्दारकाणां षष्ठ्यन्तम्। प्रश्च स्थश्च स्फश्च वर् च बंहिश्च गर् च वर्षिश्च त्रप् च द्राघिश्च वृन्दश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः प्रस्थस्फवर्बंहिगर्वर्षित्रब्द्राघिवृन्दाः प्रथमान्तम्। **तुरिष्ठेमेयःसु** से **इष्ठेमेयस्सु** की अनुवृत्ति आती है। **भस्य** तथा **अङ्गस्य** का अधिकार है। सूत्र में दस स्थानी और दस आदेश हैं। अतः **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** की उपस्थिति होगी।

प्रिय, स्थिर, स्फिर, उरु, बहुल, गुरु, वृद्ध, तृप्र, दीर्घ और वृन्दारक इन भसंज्ञक अंगों के स्थान पर क्रम से प्र, स्थ, स्फ, वर्, बंहि, गर्, वर्षि, त्रप्, द्राघि और वृन्द ये आदेश होते हैं- इष्ठन्, इमनिच् और ईयसुन् प्रत्ययों के परे रहते।

इष्ठन्, इमनिच् और ईयसुन् प्रत्ययों के परे रहते वैसे **टेः** सूत्र से टिलोप प्राप्त होता है किन्तु जो प्रकृति एकाच् हो या आदेश के बाद एकाच् हो जाती हो, वहाँ **प्रकृत्यैकाच्** सूत्र से प्रकृतिभाव होने के कारण टिलोप नहीं होता, इस बात का ध्यान रखना चाहिये।

प्रेष्ठः। अतिशय प्रिय। **अयमेषामतिशयेन प्रियः** विग्रह करके **प्रिय+सु** इस स्थिति में **अतिशायने तमबिष्ठनौ** सूत्र से **इष्ठन्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **प्रिय+इष्ठ** बना है। **प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुलगुरुवृद्धतृप्रदीर्घवृन्दारकाणां प्रस्थस्फवर्बंहिगर्वर्षित्रब्द्राघिवृन्दाः** सूत्र से **प्रिय**-शब्द के स्थान पर **प्र** आदेश होने के बाद **टेः** सूत्र से प्राप्त टिलोप का **प्रकृत्यैकाच्** सूत्र से प्रकृतिभाव हो जाने से टिलोप नहीं हुआ किन्तु **आद्गुणः** से गुण होकर **प्रेष्ठ** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **प्रेष्ठः** सिद्ध हो जाता है। **तरप्, तमप्** प्रत्यय होने के पक्ष में तो यह आदेश नहीं होता, अतः **प्रियतरः** और **प्रियतमः** बन जाते हैं।

स्थेष्ठः। अतिशय स्थिर। **अयमेषामतिशयेन स्थिरः** विग्रह करके **स्थिर+सु** इस स्थिति में **इष्ठन्** प्रत्यय, प्रकृतसूत्र से **स्थिर** शब्द के स्थान पर **स्थ** आदेश, प्रकृतिभाव से टिलोप का वारण होने के बाद गुण होकर **स्थेष्ठ** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **स्थेष्ठः** सिद्ध हो जाता है।

स्फेष्ठः। सबसे अधिक। **अयमेषामतिशयेन स्फिरः** विग्रह करके **स्फिर+सु** इस स्थिति में **इष्ठन्** प्रत्यय, प्रकृतसूत्र से **स्फिर** शब्द के स्थान पर **स्फ** आदेश, प्रकृतिभाव से टिलोप का वारण होने के बाद गुण होकर **स्फेष्ठ** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **स्फेष्ठः** सिद्ध हो जाता है।

वरिष्ठः। सबसे श्रेष्ठ। **अयमेषामतिशयेन उरुः** विग्रह करके **उरु+सु** इस स्थिति में **इष्ठन्** प्रत्यय, प्रकृतसूत्र से **उरु** शब्द के स्थान पर **वर्** आदेश, प्रकृतिभाव से

टिलोप का वारण होकर **वरिष्ठ** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वरिष्ठः** सिद्ध हो जाता है।

बंहिष्ठः। सबसे अधिक। **अयमेषामतिशयेन बहुलः** विग्रह करके **बहुल+सु** इस स्थिति में **इष्ठन्** प्रत्यय, प्रकृतसूत्र से **बहुल** शब्द के स्थान पर **बंहि** आदेश होकर **बंहि+इष्ठ** बना है। एकाच् न होने के कारण प्रकृतिभाव नहीं होता किन्तु टिसंज्ञक भाग इकार का **टेः** सूत्र से लोप होकर **बंहिष्ठ** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **बंहिष्ठः** सिद्ध हो जाता है।

गरिष्ठः। सबसे बड़ा, भारी। **अयमेषामतिशयेन गुरुः** विग्रह करके **गुरु+सु** इस स्थिति में **इष्ठन्** प्रत्यय, प्रकृतसूत्र से **गुरु** शब्द के स्थान पर **गर्** आदेश, प्रकृतिभाव से टिलोप का वारण होकर **गरिष्ठ** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **गरिष्ठः** सिद्ध हो जाता है।

वर्षिष्ठः। सबसे अधिक वृद्ध। **अयमेषामतिशयेन वृद्धः** विग्रह करके **वृद्ध+सु** इस स्थिति में **इष्ठन्** प्रत्यय, प्रकृतसूत्र से **वृद्ध** शब्द के स्थान पर **वर्षि** आदेश होकर **वृद्ध+इष्ठ** बना है। एकाच् न होने के कारण प्रकृतिभाव नहीं होता किन्तु टिसंज्ञक भाग इकार का **टेः** सूत्र से लोप होकर **वर्षिष्ठ** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **वर्षिष्ठः** सिद्ध हो जाता है।

त्रपिष्ठः। सबसे शीघ्र। **अयमेषामतिशयेन तृप्रः** विग्रह करके **तृप्र+सु** इस स्थिति में **इष्ठन्** प्रत्यय, प्रकृतसूत्र से **तृप्र** शब्द के स्थान पर **त्रप्** आदेश, प्रकृतिभाव से टिलोप का वारण होकर **त्रपिष्ठ** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **त्रपिष्ठः** सिद्ध हो जाता है।

द्राघिष्ठः। सबसे लम्बा, बड़ा। **अयमेषामतिशयेन दीर्घः** विग्रह करके **दीर्घ+सु** इस स्थिति में **इष्ठन्** प्रत्यय, प्रकृतसूत्र से **दीर्घ** शब्द के स्थान पर **द्राघि** आदेश, एकाच् न होने के कारण प्रकृतिभाव नहीं होता किन्तु टिसंज्ञक भाग इकार का लोप होकर **द्राघिष्ठ** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **द्राघिष्ठः** सिद्ध हो जाता है।

वृन्दिष्ठः। सबसे बड़ा झुण्ड या पूज्य। **अयमेषामतिशयेन वृन्दारकः** विग्रह करके **वृन्दारक+सु** इस स्थिति में **इष्ठन्** प्रत्यय, प्रकृतसूत्र से **वृन्दारक** शब्द के स्थान पर **वृन्द** आदेश, एकाच् न होने के कारण प्रकृतिभाव नहीं होता किन्तु टिसंज्ञक भाग अकार का लोप होकर **वृन्दिष्ठ** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होकर **वृन्दिष्ठः** सिद्ध हो जाता है।

बंहि, वर्षि, द्राघि में अन्त्य इकार को और **वृन्द** के अन्त्य अकार को उच्चारणार्थक मानने पर आदेश एकाच् हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में प्रकृतिभाव होता है, टिलोप नहीं। रूप में कोई अन्तर नहीं आता।

एवमीयसुन्। उपर्युक्त शब्दों से **द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ** सूत्र के द्वारा **ईयसुन्** प्रत्यय होने की स्थिति में भी प्रकृतसूत्र से **प्र, स्थ** आदि आदेश होते हैं। अतः

तदनुरूप विग्रह करके रूप बना लेने चाहिये। जैसे कि-

दो में अधिक प्रिय- **अयमनयोरतिशयेन प्रियः प्रेयान्। प्रेयसी।**
दो में अधिक स्थिर- **अयमनयोरतिशयेन स्थिरः स्थेयान्। स्थेयसी।**
दो में से अधिक- **अयमनयोरतिशयेन स्फिरः स्फेयान्। स्फेयसी।**
दो में अधिक श्रेष्ठ- **अयमनयोरतिशयेन उरुः वरीयान्। वरीयसी।**
दो में से अधिक- **अयमनयोरतिशयेन बहुलः बंहीयान्। बंहीयसी।**
दो में अधिक बड़ा, भारी- **अयमनयोरतिशयेन गुरुः गरीयान्। गरीयसी।**
दो में अधिक वृद्ध- **अयमनयोरतिशयेन वृद्धः वर्षीयान्। वर्षीयसी।**
दो में अधिक शीघ्र- **अयमनयोरतिशयेन तृप्रः त्रपीयान्। त्रपीयसी।**
दो में अधिक दीर्घ- **अयमनयोरतिशयेन दीर्घः द्राघीयान्। द्राघीयसी।**
दो में अधिक पूज्य- **अयमनयोरतिशयेन वृन्दारकः वृन्दीयान्। वृन्दीयसी।**

प्रियोरुबहुलगुरुदीर्घाणां पृथ्वादित्वात् प्रेमा इत्यादि। अर्थात् प्रकृतसूत्र में पढ़े गये **प्रिय, उरु, बहुल, गुरु** और **दीर्घ** इन शब्दों का पाठ पृथ्वादिगण में भी है। अतः भावार्थ में **पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा** (५.१.१२२) सूत्र से **इमनिच्** प्रत्यय भी होता है। तत्पक्ष में भी **प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुलगुरुवृद्धतृप्रदीर्घवृन्दारकाणां प्रस्थस्फवर्बंहिगर्वर्षि-त्रद्राघिवृन्दाः** सूत्र से क्रमशः **प्र, वर्, बंहि, गर्, द्राघि** आदेश होते हैं। जैसे कि-

प्रियस्य भावो प्रेमा (प्रिय का भाव)।
उरोर्भावः वरिमा (बड़े का भाव)।
बहुलस्य भावः बंहिमा (बहुलता का भाव)।
गुरोर्भावः गरिमा (श्रेष्ठता, भारीपन का भाव)।
दीर्घस्य भावः द्राघिमा (दीर्घता का भाव)।

२०१७. बहोर्लोपो भू च बहोः ६।४।१५८॥

बहोः परयोरिमेयसोर्लोपः स्याद्बहोश्च भूरादेशः। भूमा, भूयान्।

बहोर्लोपो भू च बहोः। बहोः षष्ठ्यन्तं, लोपः प्रथमान्तं, भू लुप्तप्रथमाकं पदं, च अव्ययपदं, बहोः षष्ठ्यन्तम्, अनेकपदं सूत्रम्। **तुरिष्ठेमेयस्सु** से **इमेयसोः** की वचनविपरिणामेन अनुवृत्ति आती है और **भस्य** तथा **अङ्गस्य** का अधिकार है।

बहु-शब्द से परे इमनिच् और ईयसुन् प्रत्ययों का लोप होता है और बहु-शब्द के स्थान पर भू-आदेश भी होता है।

आदेः परस्य की सहायता से **इमनिच्** और **ईयसुन्** के केवल आदि वर्ण इकार और ईकार का ही लोप हो जाता है। **भू** आदेश के अनेकाच् होने के कारण **अनेकाल्शित्सर्वस्य** के नियम से सर्वादेश होता है।

भूमा, भूयान्। बहुतायत, अधिकतर। **बहोर्भावः।** बहु डन्स् में **पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा** से **इमनिच्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **बहु+इमन्** बना। **बहोर्लोपो भू च बहोः** से **बहु** के स्थान पर **भू** आदेश और **आदेः परस्य** की सहायता से **इमन्** के **इकार** का लोप करके **भूमन्** बना। स्वादिकार्य करके **राजन्** शब्द की तरह **भूमा, भूमानौ, भूमानः** रूप बन जाते हैं। अब **द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ** से **ईयसुन्** होने पर **बहु+ईयस्** बना है। **बहोर्लोपो भू च बहोः** से **भू** आदेश और **ईयस्** के ईकार का लोप हो जाने पर **भूयस्** बना। अब **श्रेयान्** की तरह **भूयान्, भूयांसौ, भूयांसः** आदि रूप बनाये जा सकते हैं।

२०१८. इष्ठस्य यिट् च ६।४।१५९॥

बहोः परस्य इष्ठस्य लोपः स्याद् यिडागमश्च। भूयिष्ठः।

इष्ठस्य यिट् च। इष्ठस्य षष्ठ्यन्तं, यिट् प्रथमान्तं, च अव्ययपदं, त्रिपदं सूत्रम्। **बहोर्लोपो भू च बहोः** यह पूरा सूत्र आता है।

बहुशब्द से परे इष्ठन् का लोप होता है तथा इष्ठन् को यिट् का आगम भी होता है, साथ ही बहु के स्थान पर भू आदेश भी हो जाता है।

इस सूत्र से तीन काम किये जा रहे हैं- **आदेः परस्य** की सहायता से **इष्ठन्** के इकार का लोप, शेष बचे प्रत्यय को **यिट्** का आगम और तीसरा कार्य **बहु** के स्थान पर भू आदेश। **यिट्** में **टकार** इत्संज्ञक है। **टित्** होने के कारण उसके आदि में बैठेगा। कुछ आचार्य यहाँ पर **इकार** और **टकार** दोनों वर्णों को इत्संज्ञक मानते हैं और **इष्ठ** का लोप नहीं मानते हैं। ऐसा मानने पर भी प्रयोग की सिद्धि में अन्तर नहीं आता है।

भूमा, भूयान्। सबसे अधिक बड़ा। **अयमतिशयेन बहुः।** **बहु सु** में **अतिशायने तमबिष्ठनौ** से **इष्ठन्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **बहु+इष्ठ** बना है। **इष्ठस्य यिट् च** से **बहु** के स्थान पर **भू** आदेश और **आदेः परस्य** की सहायता से **इष्ठ** के इकार का लोप और उसको **यिट्** आगम करके **भूयिष्ठ** बना। अब स्वादिकार्य करने पर **राम** शब्द की तरह **भूयिष्ठः, भूयिष्ठौ, भूयिष्ठाः** रूप बन जाते हैं।

२०१९. युवाल्पयोः कनन्यतरस्याम् ५।३।६४॥

एतयोः कनादेशो वा स्यादिष्ठेयसोः।

कनिष्ठः, कनीयान्। पक्षे यविष्ठः अल्पिष्ठ इत्यादि।

युवाल्पयोः कनन्यतरस्याम्। युवा च अल्पश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो युवाल्पौ, तयोर्युवाल्पयोः। युवाल्पयोः षष्ठीद्विवचनान्तं, कन् प्रथमान्तम्, अन्यतरस्यां विभक्तिप्रतिरूपकमव्ययम्। **अजादी गुणवचनादेव** से **अजादी** की अनुवृत्ति आती है और

उसका सप्तम्यन्त में विपरिणाम करके **अजाद्योः** बना लिया जाता है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

युवन् और अल्प शब्दों के स्थान पर कन्-आदेश होता है, अजादि (इष्ठन् और ईयसुन्) प्रत्ययों के परे रहते।

कनिष्ठः। पक्षे यविष्ठः। सबसे युवा (छोटा)। **अयमेषु अतिशयेन युवा** विग्रह करके **युवन्+सु** इस स्थिति में **अतिशायने तमबिष्ठनौ** सूत्र से विकल्प से **इष्ठन्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **युवन्+इष्ठ** बना है। **युवाल्पयोः कनन्यतरस्याम्** सूत्र से **युवन्** शब्द के स्थान पर **कन्** आदेश होने पर **कन्+इष्ठ** बना। टिलोप प्राप्त होने पर **प्रकृत्यैकाच्** सूत्र से प्रकृतिभाव हो जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कनिष्ठः** सिद्ध हो जाता है। कन् न होने के पक्ष में **युवन्+इष्ठ** बना हुआ है। **स्थूलदूरयुवह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणां यणादिपरं पूर्वस्य च गुणः** सूत्र से **युवन्** में पर-यण् वकार का लोप और उससे पूर्ववर्ती उकार को गुण ओकार तथा उसको अवादेश होकर **यविष्ठ** एवं स्वादिकार्य से **यविष्ठः** सिद्ध हो जाता है।

कनीयान्। पक्षे अल्पिष्ठ इत्यादि। सबसे छोटा। **अयमेषु अतिशयेन अल्पः** विग्रह करके **अल्प+सु** इस स्थिति में **अतिशायने तमबिष्ठनौ** सूत्र से विकल्प से **इष्ठन्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **अल्प+इष्ठ** बना है। **युवाल्पयोः कनन्यतरस्याम्** सूत्र से **युवन्** शब्द के स्थान पर **कन्** आदेश होने पर स्वादिकार्य होकर **कनिष्ठः** सिद्ध हो जाता है। कन् न होने के पक्ष में **अल्प+इष्ठ** बना हुआ है। **टेः** सूत्र से टिसंज्ञक अकार का लोप होकर **अल्पिष्ठ** तथा स्वादिकार्य से **अल्पिष्ठः** सिद्ध हो जाता है।

२०२०. विन्मतोर्लुक् ५।३।६५॥
विनो मतुपश्च लुक् स्यादिष्ठेयसोः।
अतिशयेन स्रग्वी- स्रजिष्ठः, स्रजीयान्।
अतिशयेन त्वग्वान्- त्वचिष्ठः, त्वचीयान्।

विन्मतोर्लुक्। विन् च मत् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो विन्मतौ, तयोः। विन्मतोः षष्ठ्यन्तं, लुक् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अजादी गुणवचनादेव** से **अजादी** को सप्तम्यन्ततया विपरिणाम करके **अजादौ** इस पद का अनुवर्तन किया जाता है।

अजादि प्रत्यय अर्थात् इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्ययों के परे रहते विन् और मतुप् प्रत्ययों का लुक् होता है।

स्रजिष्ठः, स्रजीयान्। सभी माला वालों में अतिशय माला वाला, अतिशय पूज्य। **अतिशयेन स्रग्वी।** पहले **स्रग् अस्यास्ति** इस लौकिक विग्रह और **स्रज् सु**

अलौकिक विग्रह में **अस्मायामेधास्रजो विनिः** से मत्वर्थ **विनि** प्रत्यय होकर **चो कुः** से जकार को कुत्व होकर **स्रग्विन्** बना है। अब **अतिशयेन स्रग्वी** विग्रह करके **स्रग्विन्+सु** इस स्थिति में **अतिशायने तमबिष्ठनौ** से पहले **इष्ठन्** प्रत्यय हुआ, **स्रग्विन्+इष्ठ** बना। **विन्मतोर्लुक्** से **इष्ठ** के परे रहते **विन्** का लुक् हुआ- **स्रग्+इष्ठ** बना। **निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः** के नियमानुसार विन् के अभाव में कुत्व भी नहीं रहा, इस लिए जकार के रूप में आ गया- **स्रज्+इष्ठ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **स्रजिष्ठ** बना और स्वादिकार्य करके **स्रजिष्ठः** सिद्ध हुआ। **द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ** से **ईयसुन्** होने के पक्ष में **स्रज्+विन्+ईयस्** बना है। इस स्थिति में भी **विन्मतोर्लुक्** से **विन्** का लुक् होकर **स्रजीयस्** यह प्रातिपदिक बनता है। उससे स्वादिकार्य करने पर **स्रजीयान्** सिद्ध हो जाता है।

त्वचिष्ठः, त्वचीयान्। सब त्वचा वालों में अतिशय त्वचा वाला, अत्यधिक सुन्दर-कोमल त्वचा वाला। **अतिशयेन त्वग्वान्।** यहाँ पर भी **स्रजिष्ठः** और **स्रजीयान्** की तरह ही **इष्ठन्** या **ईयसुन्** प्रत्यय करके **मतुबर्थ विनि** का **विन्मतोर्लुक्** से लुक् करके **त्वचिष्ठः, त्वचीयान्** बनाया जा सकता है।

२०२१. प्रशंसायां रूपप् ५।३।६६॥

सुबन्तात्तिङन्ताच्च। प्रशस्तः पटुः पटुरूपः।
प्रशस्तं पचति पचतिरूपम्।

प्रशंसायां रूपप्। प्रशंसायां सप्तम्यन्तं, रूपप् प्रथमान्तम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है। **तिङश्च** से **तिङः** पद की मण्डूकप्लुतिन्यायेन अनुवृत्ति मानी जाती है।

प्रशंसा-विशिष्ट अर्थ में विद्यमान सुबन्त और तिङन्त से स्वार्थ में रूपप् प्रत्यय होता है।

रूपप् में पकार इत्संज्ञक है, **रूप** बचता है।

प्रशस्तः पटुः पटुरूपः। प्रशंसनीय पटु। **प्रशस्तः पटुः** विग्रह करके **पटु+सु** इस स्थिति में **प्रशंसायां रूपप्** सूत्र से **रूपप्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **पटुरूप** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पटुरूपः** सिद्ध हो जाता है।

प्रशस्तं पचति पचतिरूपम्। प्रशंसनीय पाचन कार्य करता है। **प्रशस्तं पचति** विग्रह करके **पचति** इस तिङन्त से **प्रशंसायां रूपप्** सूत्र से **रूपप्** प्रत्यय होने पर तद्धितान्त मानकर प्रातिपदिकसंज्ञा होती है और स्वादिकार्य होकर नपुंसकलिंग में **पचतिरूपम्** सिद्ध हो जाता है। इसका अर्थ है- प्रशस्त पाकक्रिया।

उसका सप्तम्यन्त में विपरिणाम करके **अजाद्योः** बना लिया जाता है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

युवन् और अल्प शब्दों के स्थान पर कन्-आदेश होता है, अजादि (इष्ठन् और ईयसुन्) प्रत्ययों के परे रहते।

कनिष्ठः। पक्षे यविष्ठः। सबसे युवा (छोटा)। **अयमेषु अतिशयेन युवा** विग्रह करके **युवन्+सु** इस स्थिति में **अतिशायने तमबिष्ठनौ** सूत्र से विकल्प से **इष्ठन्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **युवन्+इष्ठ** बना है। **युवाल्पयोः कनन्यतरस्याम्** सूत्र से **युवन्** शब्द के स्थान पर **कन्** आदेश होने पर **कन्+इष्ठ** बना। टिलोप प्राप्त होने पर **प्रकृत्यैकाच्** सूत्र से प्रकृतिभाव हो जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कनिष्ठः** सिद्ध हो जाता है। कन् न होने के पक्ष में **युवन्+इष्ठ** बना हुआ है। **स्थूलदूरयुवह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणां यणादिपरं पूर्वस्य च गुणः** सूत्र से **युवन्** में पर-यण् वकार का लोप और उससे पूर्ववर्ती उकार को गुण ओकार तथा उसको अवादेश होकर **यविष्ठ** एवं स्वादिकार्य से **यविष्ठः** सिद्ध हो जाता है।

कनीयान्। पक्षे अल्पिष्ठ इत्यादि। सबसे छोटा। **अयमेषु अतिशयेन अल्पः** विग्रह करके **अल्प+सु** इस स्थिति में **अतिशायने तमबिष्ठनौ** सूत्र से विकल्प से **इष्ठन्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **अल्प+इष्ठ** बना है। **युवाल्पयोः कनन्यतरस्याम्** सूत्र से **युवन्** शब्द के स्थान पर **कन्** आदेश होने पर स्वादिकार्य होकर **कनिष्ठः** सिद्ध हो जाता है। कन् न होने के पक्ष में **अल्प+इष्ठ** बना हुआ है। **टेः** सूत्र से टिसंज्ञक अकार का लोप होकर **अल्पिष्ठ** तथा स्वादिकार्य से **अल्पिष्ठः** सिद्ध हो जाता है।

२०२०. विन्मतोर्लुक् ५।३।६५॥

विनो मतुपश्च लुक् स्यादिष्ठेयसोः।
अतिशयेन स्रग्वी- स्रजिष्ठः, स्रजीयान्।
अतिशयेन त्वग्वान्- त्वचिष्ठः, त्वचीयान्।

विन्मतोर्लुक्। विन् च मत् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो विन्मतौ, तयोः। विन्मतोः षष्ठ्यन्तं, लुक् प्रथमान्तं, द्विपदं सूत्रम्। **अजादी गुणवचनादेव** से **अजादी** को सप्तम्यन्ततया विपरिणाम करके **अजादौ** इस पद का अनुवर्तन किया जाता है।

अजादि प्रत्यय अर्थात् इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्ययों के परे रहते विन् और मतुप् प्रत्ययों का लुक् होता है।

स्रजिष्ठः, स्रजीयान्। सभी माला वालों में अतिशय माला वाला, अतिशय पूज्य। **अतिशयेन स्रग्वी।** पहले **स्रग् अस्यास्ति** इस लौकिक विग्रह और **स्रज् सु**

अलौकिक विग्रह में **अस्मायामेधास्रजो विनिः** से मत्वर्थ **विनि** प्रत्यय होकर **चो कुः** से जकार को कुत्व होकर **स्रग्विन्** बना है। अब **अतिशयेन स्रग्वी** विग्रह करके **स्रग्विन्+सु** इस स्थिति में **अतिशायने तमबिष्ठनौ** से पहले **इष्ठन्** प्रत्यय हुआ, **स्रग्विन्+इष्ठ** बना। **विन्मतोर्लुक्** से **इष्ठ** के परे रहते **विन्** का लुक् हुआ- **स्रग्+इष्ठ** बना। **निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः** के नियमानुसार विन् के अभाव में कुत्व भी नहीं रहा, इस लिए जकार के रूप में आ गया- **स्रज्+इष्ठ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **स्रजिष्ठ** बना और स्वादिकार्य करके **स्रजिष्ठः** सिद्ध हुआ। **द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ** से **ईयसुन्** होने के पक्ष में **स्रज्+विन्+ईयस्** बना है। इस स्थिति में भी **विन्मतोर्लुक्** से **विन्** का लुक् होकर **स्रजीयस्** यह प्रातिपदिक बनता है। उससे स्वादिकार्य करने पर **स्रजीयान्** सिद्ध हो जाता है।

त्वचिष्ठः, त्वचीयान्। सब त्वचा वालों में अतिशय त्वचा वाला, अत्यधिक सुन्दर-कोमल त्वचा वाला। **अतिशयेन त्वग्वान्।** यहाँ पर भी **स्रजिष्ठः** और **स्रजीयान्** की तरह ही **इष्ठन्** या **ईयसुन्** प्रत्यय करके **मतुबर्थ विनि** का **विन्मतोर्लुक्** से लुक् करके **त्वचिष्ठः, त्वचीयान्** बनाया जा सकता है।

२०२१. प्रशंसायां रूपप् ५।३।६६॥

सुबन्तात्तिङन्ताच्च। प्रशस्तः पटुः पटुरूपः।
प्रशस्तं पचति पचतिरूपम्।

प्रशंसायां रूपप्। प्रशंसायां सप्तम्यन्तं, रूपप् प्रथमान्तम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है। **तिङश्च** से **तिङः** पद की मण्डूकप्लुतिन्यायेन अनुवृत्ति मानी जाती है।

प्रशंसा-विशिष्ट अर्थ में विद्यमान सुबन्त और तिङन्त से स्वार्थ में रूपप् प्रत्यय होता है।

रूपप् में पकार इत्संज्ञक है, **रूप** बचता है।

प्रशस्तः पटुः पटुरूपः। प्रशंसनीय पटु। **प्रशस्तः पटुः** विग्रह करके **पटु+सु** इस स्थिति में **प्रशंसायां रूपप्** सूत्र से **रूपप्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **पटुरूप** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पटुरूपः** सिद्ध हो जाता है।

प्रशस्तं पचति पचतिरूपम्। प्रशंसनीय पाचन कार्य करता है। **प्रशस्तं पचति** विग्रह करके **पचति** इस तिङन्त से **प्रशंसायां रूपप्** सूत्र से **रूपप्** प्रत्यय होने पर तद्धितान्त मानकर प्रातिपदिकसंज्ञा होती है और स्वादिकार्य होकर नपुंसकलिंग में **पचतिरूपम्** सिद्ध हो जाता है। इसका अर्थ है- प्रशस्त पाकक्रिया।

२०२२. ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः ५।३।६७॥

ईषदूनो विद्वान् विद्वत्कल्पः। यशस्कल्पम्। यजुष्कल्पम्।
विद्वद्देश्यः। विद्वद्देशीयः। पचतिकल्पम्।

ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः। न समाप्तिः असमाप्तिः, तस्याम्। कल्पप् च देश्यश्च देशीयर् च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः कल्पब्देश्यदेशीयरः। तिङश्च यह सम्पूर्ण सूत्र आता है। **तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्** का अधिकार है।

कुछ न्यूनताविशिष्ट अर्थ में विद्यमान सुबन्त या तिङन्त से स्वार्थ में कल्पप्, देश्य, और देशीयर् प्रत्यय होते हैं।

इन प्रत्ययों में पकार और रेफ इत्संज्ञक हैं। ये इत्संज्ञक वर्ण स्वरार्थ हैं। प्रत्ययों का स्वरूप तो **कल्प, देश्य** और **देशीय** है।

इषदूनो विद्वान् विद्वत्कल्पः, विद्वद्देश्यः, विद्वद्देशीयः। कुछ कम विद्वान् अर्थात् विद्वान् के सदृश, विद्वत्तुल्य। **ईषद् ऊनो विद्वान्** विग्रह करके **विद्वस्+सु** इस स्थिति में **ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः** से क्रमशः तीनों प्रत्यय हुए, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **विद्वस्** के सकार को **वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः** से **दकार** आदेश करके स्वादिकार्य करने पर उक्त तीनों शब्द सिद्ध हो जाते हैं।

यशस्कल्पम्। कुछ कम यश। **ईषद् ऊनं यशः** विग्रह करके **यशस्+सु** इस स्थिति में **ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः** से क्रमशः **कल्पप्** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **यशस्+कल्प** बना है। सकार को रुत्व होने के बाद विसर्ग एवं उसको भी **पाशकल्पककाम्येष्विति वाच्यम्** वार्तिक से सकारादेश होकर **यशस्कल्प** ही बन गया है। स्वादिकार्य करने पर **यशस्कल्पम्** सिद्ध हो जाता है।

यजुष्कल्पम्। कुछ कम यजुर्वेद अर्थात् यजुर्वेद जैसा। **ईषद् ऊनं यजुः** विग्रह करके **यजुस्+सु** इस स्थिति में **ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः** से क्रमशः **कल्पप्** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **यजुस्+कल्प** बना है। सकार को रुत्व होने के बाद विसर्गादेश तथा उसको **इणः षः** सूत्र से षकारादेश होकर **यजुष्कल्प** बन गया है। स्वादिकार्य करने पर **यजुष्कल्पम्** सिद्ध हो जाता है।

ये तो **सुबन्त** के उदाहरण हैं। तिङन्त का आगे देखें।

पचतिकल्पम्, पचतिदेश्यम्, पचतिदेशीयम्। कुछ कम पकाता है। **ईषद् ऊनं पचति।** तिङन्त **पचति** से **ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः** से **कल्पप्, देश्य, देशीयर्** ये तीनों प्रत्यय बारी-बारी से हुए तो उक्त तीनों रूप सिद्ध हुए।

२०२३. विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात्तु ५।३।६८॥

इषदसमाप्तिविशिष्टेऽर्थे सुबन्ताद् बहुच्वा स्यात् स च प्रागेव, न तु परतः।
ईषदूनः पटुः बहुपटुः। पटुकल्पः। 'सुपः' किम्? यजतिकल्पम्।

विभाषा सुपो बहुच्पुरस्तात्तु। विभाषा प्रथमान्तं, सुपः पञ्चम्यन्तं, बहुच् प्रथमान्तं, पुरस्तात् अव्ययं, तु अव्ययम्। **ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः** से **ईषदसमाप्तौ** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, प्रत्ययः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्** का अधिकार है। **पुरस्तात्** पद के कारण **परश्च** का सम्बन्ध नहीं रहता।

'कुछ न्यूनताविशिष्ट' अर्थ में विद्यमान सुबन्त से स्वार्थ में विकल्प से बहुच् प्रत्यय होता है किन्तु वह प्रकृति से पूर्व ही होता है, पर नहीं होता।

सूत्र में **तु** शब्द अवधारण अर्थ में है अर्थात् पूर्व में ही बहुच् होता है, पर में नहीं- यह अवधारण अर्थात् निश्चय है। **बहुच्** में चकार इत्संज्ञक है, **बहु** बचता है।

यहाँ पर यह शंका उत्पन्न होती है कि जब **ङ्याप्प्रातिदिकात्** की अनुवृत्ति आ रही है तो इस सूत्र में **सुपः** लिखने की क्या आवश्यकता है? इसका उत्तर यह है कि यदि **सुपः** न देते तो पूर्वतः आ रही **तिङश्च** की अनुवृत्ति यहाँ पर आती। फलतः **तिङन्त** से बहुच् प्रत्यय होने लगता। ऐसा न हो, इसलिए **सुपः** का पठन किया गया।

समस्त प्रत्यय प्रकृति से परे ही होते हैं किन्तु यही एक प्रत्यय है जो प्रकृति से पूर्व होता है।

ईषदूनः पटुः बहुपटुः। पटुकल्पः। कुछ कम चतुर। **ईषद् ऊनः पटुः** विग्रह करके **पटु+सु** इस स्थिति में **विभाषा सुपो बहुच्पुरस्तात्तु** सूत्र से विकल्प से **बहुच्** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **बहुपटु** शब्द बना है। बहुच् न होने के पक्ष में **ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः** सूत्र से पर में **कल्पप्** प्रत्यय होकर **पटुकल्प** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **बहुपटुः** और **पटुकल्पः** ये रूप सिद्ध हो जाते हैं।

यहाँ बहुपटुः के सन्दर्भ में जिज्ञासा होती है कि **बहु+पटु+सु** इस अवस्था में इसके तद्धितान्त, कृदन्त या समास न होने से प्रातिपदिकसंज्ञा कैसे सम्भव है? इसका समाधान यही है कि यहाँ पर केवल **पटु+सु** तो भले ही प्रत्ययान्त हो पन्तु **बहुपटु** से सु का विधान न होने के कारण **बहु+पटु+सु** यह समुदाय प्रत्ययान्त नहीं है। अतः **अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्** सूत्र से प्रातिपदिकसंज्ञा होती है। यदि कहें कि तब भी समासग्रहण के नियम से समास के अतिरिक्त अन्य समुदाय की प्रातिपदिकसंज्ञा का निषेध किया गया है तो इस **बहुपटुसु** समुदाय की भी प्रातिपदिकसंज्ञा नहीं हो पायेगी? तो यह भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि समासग्रहण से ज्ञापित नियम वहीं प्रवृत्त होता है जहाँ समुदाय में पूर्वभाग पट हो, परन्तु यहाँ **बहु पटु सु** समुदाय का पूर्वभाग **बहु** पद न होकर एक प्रत्यय है। अतः इस समुदाय की प्रातिपदिकसंज्ञा में कोई दिक्कत नहीं है।

'सुपः' किम्? यजतिकल्पम्। प्रकृत सूत्र में **सुपः** पद के निवेश के कारण सुबन्त से ही बहुच् होता है, तिङन्त से नहीं होता। अतः **यजति** से कल्पप् होकर **यजतिकल्पम्** तो बन गया है किन्तु बहुच् नहीं हुआ। यद्यपि **तिङश्च** सूत्र में स्वरितत्व-प्रतिज्ञा की अवधि समाप्त मान लेने पर स्वतः सुबन्त से ही होता, तिङन्त से

नहीं होता, तथापि आगे कुछ सूत्रों में **तिङः** की आवश्यकता होने के कारण स्वरितत्वप्रतिज्ञावधि को समाप्त नहीं कर सकते अर्थात् **तिङः** का धारावाहिकता चल ही रही है और उसको प्रकृतसूत्र के विधान में वारण के लिये **सुपः** का पाठ सार्थक है।

२०२४. प्रकारवचने जातीयर् ५।३।६९॥

प्रकारवति चायम्, थाल् तु प्रकारमात्रे। पटुप्रकारः पटुजातीयः।

प्रकारवचने जातीयर्। प्रकारस्य वचनं प्रकारवचनं, तस्मिन् प्रकारवचने, सप्तम्यन्तं, जातीयर् प्रथमान्तम्। **विभाषा सुपो बहुच्पुरस्तात्तु** से **सुपः** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

प्रकार-विशिष्ट अर्थ में विद्यमान सुबन्त से स्वार्थ में जातीयर् प्रत्यय होता है।

प्रकारवति चायम्, थाल् तु प्रकारमात्रे। अर्थात् **प्रकारवचने थाल्** सूत्र से भी प्रकारवचन में ही **थाल्** प्रत्यय होता है और प्रकृतसूत्र से भी प्रकारवचन में ही **जातीयर्** प्रत्यय होता है किन्तु दोनों की प्रकारवचनता में भेद है। वह यह कि यह प्रकारवचन प्रकार वाला है और थाल् वाला प्रकारवचन केवल प्रकार है। केवल प्रकार की जहाँ प्रतीति होती हो, वहाँ पर **थाल्** प्रत्यय और जहाँ प्रकारवान् अर्थ की प्रतीति होती हो, वहाँ **जातीयर्** प्रत्यय, इस तरह दोनों में भेद समझना चाहिये। **जातीयर्** में रेफ इत्संज्ञक है, **जातीय** बचता है। इसके परे रहते स्त्रीलिंग में **पुंवत्कर्मधारयजातीयदेशीयेषु** सूत्र से पुंवद्भाव होता है।

पटुप्रकारः पटुजातीयः। पटु-सदृश।. **पटु+सु** इस स्थिति में **प्रकारवचने जातीयर्** सूत्र से जातीयर्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **पटुजातीय** और स्वादिकार्य से **पटुजातीयः** सिद्ध हो जाता है।

२०२५. प्रागिवात् कः ५।३।७०॥

'इवे प्रतिकृतौ' (सू.२०५१) इत्यतः प्राक्काधिकारः।

प्रागिवात् कः। प्राक् अव्ययपदम्, इवात् पञ्चम्यन्तं, कः प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **विभाषा सुपो बहुच्पुरस्तात्तु** से **सुपः** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** आदि का अधिकार है।

'इवे प्रतिकृतौ' इस सूत्र से पहले तक क-प्रत्यय का अधिकार है।

इस सूत्र में **इवात्** यह पद **इवे प्रतिकृतौ** (५.३.९६) सूत्र में पठित **इवे** का संकेतक है। उस सूत्र से पहले तक अर्थात् **अवक्षेपणे कन्** (५.३.९५) तक **क** प्रत्यय का अधिकार रहता है किन्तु बीच में कुछ इसके अपवाद प्रत्यय **अकच्** आदि भी होते हैं। उक्त सूत्र स्वार्थिक प्रकरण में है। उदाहरण यथास्थान दिये जायेंगे।

२०२६. अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्टेः ५।३।७१॥
'तिङश्च' (सू.२००२) इत्यनुवर्तते।

अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्टेः। अव्ययानि च सर्वनामानि च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः, अव्ययसर्वनामानि, तेषाम्। अव्ययसर्वनाम्नाम् षष्ठ्यन्तम्, अकच् प्रथमान्तं, प्राक् अव्ययपदं, टेः पञ्चम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **प्रागिवात्कः** से **प्रागिवात्** और **तिङश्च** इस पूरे सूत्र की अनुवृत्ति आती है तथा **प्रत्ययः, तद्धिताः** आदि का अधिकार है। **प्राक्** कहने से **परश्च** का अधिकार रूक जाता है।

'इवे प्रतिकृतौ' से पहले तक 'क' के अपवाद के रूप में अव्यय और सर्वनामसंज्ञक प्रातिपदिकों में टि से पूर्व में अकच् प्रत्यय होता है।

ध्यान रहे कि **अकच्** जिस शब्द से हो रहा है, उसके **टि** के पहले ही होता है। यह सूत्र **क** का अपवाद है। **अकच्** में **चकार** और उससे पूर्व के **अकार** की इत्संज्ञा होती है, **अक्** शेष रहता है। कुछ आचार्य **अकार** की इत्संज्ञा नहीं करते अपितु उसका अगले अकार के साथ में **अतो गुणे** से पररूप कर देते हैं। ऐसा करने पर **तिङन्तों** से अकच् होने पर तो **पचतकि** के स्थान पर **पचतके** ऐसा अनिष्ट रूप बन सकता है। अतः अकार की भी इत्संज्ञा करनी चाहिए। दूसरी बात यह भी है कि प्रकृत सूत्र में **प्रातिपदिकात्** का अधिकार भी है और **सुपः** की अनुवृत्ति भी। इसके फलस्वरूप किन्हीं स्थलों में प्रातिपदिक के टि-भाग से पूर्व अकच् होता है तो और अन्यत्र सुबन्त के टि-भाग से पूर्व भी अकच् होता है। जैसे कि **युवयोः** और **आवयोः** में प्रातिपदिक के टि-भाग अर्थात् **युष्मद्, अस्मद्** के टिभाग **अद्** से पूर्व में अकच् होकर **युवकयोः** और **आवकयोः** रूप बनते हैं। सुबन्त से पहले अकच् होने पर तो **त्वया, मया** में सुबन्त के टिसंज्ञक भाग **आ** से पूर्व अकच् होकर **त्वयका, मयका** रूप बनते हैं। आगे **ओकारसकारभकारादौ सुपि सर्वनाम्नष्टेः प्रागकच्, अन्यत्र तु सुबन्तस्य टेः प्रागकच्** वार्तिक से इसका नियमन किया गया है। तदनुसार सर्वनामसंज्ञक प्रातिपदिक के टिभाग से पूर्व अकच् का विधान निर्दिष्ट विभक्तियों के परे रहते होता है। इस प्रकार उक्त वार्तिक द्वारा सर्वनामवाची शब्दों के सन्दर्भ में व्यवस्था किये जाने के कारण अन्य शब्दों में सुबन्त के टिभाग से ही पूर्व अकच् होगा। यहाँ भाष्यकार ने तो **युष्मद्** और **अस्मद्** शब्द के लिये उक्त वार्तिक की प्रवृत्ति मानी है और अन्य सर्वनामों से सब विभक्तियों के परे उन्हीं के टि के पूर्व अकच् माना है। तदनुसार **सर्वकेण** एवम् **इमकेन** आदि प्रयोग समीचीन माने जाते हैं। वार्तिक अनुसार यदि ओकारादि का निर्धारण न होता तो **त्वयका** एवं **मयका** का स्वरूप विपरीत हो जाता। इस सूत्र के उदाहरण आगे दिये गये हैं।

यहाँ से आगे **इवे प्रतिकृतौ** सूत्र के पूर्व तक इस सूत्र का तथा **प्रागिवात्कः** दोनों का अधिकार होता है। ऐसी स्थिति में अव्यय और सर्वनामवाची तथा तिङन्त शब्दों

से **अकच्** और इनके अतिरिक्त अन्य सभी शब्दों से क प्रत्यय होगा, इस बात का ध्यान रखना चाहिये।

२०२७. कस्य च दः ५।३।७२॥

कान्ताव्ययस्य दकारोऽन्तादेशः स्यादकच्च।

कस्य च दः। कस्य षष्ठ्यन्तं, चाव्ययं, दः प्रथमान्तम्। पूर्वसूत्र से केवल **अव्ययम्** अंश मात्र ही स्वरितत्वप्रतिज्ञा के आधार पर अनुवर्तमान है। **कस्य** पद व्यञ्जनमात्र ककार (क्) का ही बोधक है। **अव्यय** का विशेषण होने के कारण तदन्तविधि होकर **कान्ताव्ययस्य** बन जाता है।

ककारान्त अव्यय से अकच् प्रत्यय के साथ ही दकार आदेश भी होता है।

पूरे ककारान्त अव्यय को दकार आदेश प्राप्त होने पर **अलोऽन्त्यस्य** परिभाषा के द्वारा अन्त्य वर्ण ककार के स्थान पर ही उक्त दकार आदेश हो जाता है। अथवा उक्त परिभाषा सूत्र की विधिसूत्र के साथ एकवाक्यता होकर अर्थ बन जाता है- ककारान्त अव्यय को दकार-अन्तादेश होता है, साथ ही अकच् भी। ध्यान रहे कि अव्यय से अकच् होगा तो टि-संज्ञक भाग से पहले ही होगा।

२०२८. अज्ञाते ५।३।७३॥

कस्यायमश्वोऽश्वकः। उच्चकैः। नीचकैः। सर्वके। विश्वके। 'ओकारसकारभकारादौ सुपि सर्वनाम्नष्टेः प्रागकच्, अन्यत्र तु सुबन्तस्य टेः प्रागकच्।' (वा.३२८४) युवकयोः। आवकयोः। युष्मकासु। अस्मकासु। युष्मकाभिः। अस्मकाभिः। 'ओकार-' इत्यादि किम्? त्वयका। मयका।

'अकच्प्रकरणे तूष्णीमः कां वक्तव्यः' (वा.३२८५)। मित्त्वादन्त्यादचः परः। तूष्णीकामास्ते।

शीले को मलोपश्च' (वा.३२८६)। तूष्णींशीलस्तूष्णीकः। पचतकि। जल्पतकि। धकित्। हिरकुत्।

अज्ञाते। न ज्ञातम् अज्ञातं, तस्मिन्। अज्ञाते सप्तम्यन्तमेकपदं सूत्रम्। **प्रागिवात् कः** और **अकच् प्राक्टेः** ये पूर्वोक्त दोनों सूत्रों से आते हैं साथ ही **तिङश्च** की भी अनुवृत्ति है।

अज्ञातत्वविशिष्ट अर्थ में वर्तमान प्रातिपदिक या तिङन्त से यथाप्राप्त क और अकच् प्रत्यय होते हैं।

वास्तव में यह सूत्र प्रत्ययों का विधान नहीं करता अपितु **अज्ञात होना** यह अर्थ निर्देश मात्र करता है। **अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्टेः** और **प्रागिवात्कः** के अनुसार

अव्यय, सर्वनामवाची और तिङन्त में टिसंज्ञक भाग से पहले **अकच्** होता है और शेष शब्दों से प्रकृति से परे ही **क**-प्रत्यय होता है।

अश्वकः। किसका है यह घोड़ा? जिस घोड़े का स्वामी ज्ञात न हो। **कस्यायम् अश्वः?** अथवा **अज्ञातः अश्वः** ऐसा लौकिक विग्रह है। **अश्व+सु** इस अलौकिक विग्रह में **अज्ञाते** से **क** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **अश्वक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर स्वादिकार्य करने पर **अश्वकः** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **अज्ञातो गर्दभः गर्दभकः, अज्ञात उष्ट्र उष्ट्रकः** आदि भी बनते हैं।

उच्चकैः। ऊँचा। सामान्यतया यह **उच्चैस्** ऐसा अव्यय है। स्वार्थ में **उच्चैस्** में **ऐस्**-रूप **टि** के पहले **अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्टेः** से **अकच्** प्रत्यय हुआ। **चकार** और **अकार** की इत्संज्ञा के बाद लोप होकर **अक्** बचा। **उच्च्+अक्+ऐस्** बना। वर्णसम्मेलन होकर **उच्चकैस्** बना। अव्यय है, अतः इसके बाद प्राप्त सु का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् हो गया- **उच्चकैः।**

नीचकैः। नीचा। उपर्युक्त रीति से ही **नीचैस्** से **नीचकैः** बन जाता है।

सर्वके। सभी। सामान्यतया यह **सर्वनामसंज्ञक** प्रातिपदिक से प्रथमा के बहुवचन में **सर्वे** बनता है। **सर्व जस्** में **टि** है वकारोत्तरवर्ती अकार, उसके पहले **अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्टेः** से **अकच्** प्रत्यय हुआ। **चकार** और **अकार** की इत्संज्ञा के बाद लोप होकर **अक्** बचा। **सर्व्+अक्+अ+जस्** बना। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् हुआ। **सर्व्+अक्+अ** में वर्णसम्मेलन होकर **सर्वक** बना। पुनः जस् विभक्ति के स्थान पर **जसः शी** से **शी**, शकार का लोप, गुण आदि होकर **सर्वके** बना।

विश्वके। सभी। उपर्युक्त रीति से ही **विश्वे** से **विश्वके, उभे** से **उभके** आदि बनते हैं।

ओकारसकारभकारादौ सुपि सर्वनाम्नष्टेः प्रागकच्, अन्यत्र सुबन्तस्य टेः प्रागकंच्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- ओकारादि, सकारादि और भकारादि सुप् विभक्ति के परे रहते मूल सर्वनामशब्द के टि-भाग से पूर्व अकच् होता है परन्तु अन्य सुप् विभक्तियों में सुबन्त सर्वनाम के ही टि-भाग से पूर्व अकच् होता है।

भाष्यकार के अनुसार इस वार्तिक में सर्वनाम से केवल युष्मद् और अस्मद् शब्द को ही लिया गया है, अन्य सर्वनामों को नहीं। अतः इन दो शब्दों से ओकारादि **ओस्**, सकारादि **सुप्** और भकारादि **भ्याम्, भिस्, भ्यस्** के परे होने पर मूल युष्मद्, अस्मद् शब्द अर्थात् प्रत्यय होने के पहले के शब्द के टि के पहले और शेष विभक्तियों में स्वादि प्रत्ययों के लगने के बाद जो रूप बनता है, उसमें टि के पहले **अकच्** होगा।

युवकयोः। अज्ञात तुम दो के या अज्ञात तुम दोनों में। **अज्ञातयोर्युवयोः।** **युष्मद्+ओस्** यह ओकारादि प्रत्यय के परे का उदाहरण है। **ओकारसकारभकारादौ सुपि सर्वनाम्नष्टेः प्रागकच्, अन्यत्र सुबन्तस्य** इस वार्तिक की सहायता से

अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्टेः से मूल **युष्मद्** शब्द के टि-रूप मकारोत्तरवर्ती अकार के पहले ही **अकच्** हुआ। अनुबन्धलोप होकर **युष्म्+अक्+अद्+ओस्** बना। **युवावौ द्विवचने** से मपर्यन्त भाग **युष्म्** के स्थान पर **युव** आदेश होकर **युव+अक्+अद्+ओस्** बना। **योऽचि** से **दकार** को **यकार** आदेश करके **युव+अक्+अ+य्+ओस्** बना। पररूप और वर्णसम्मेलन करके **युवकयोः** सिद्ध हो जाता है।

आवकयोः। अज्ञात हम दो के या अज्ञात हम दोनों में। **अज्ञातयोरावयोः** विग्रह करके **अस्मद्+ओस्** इस स्थिति में **ओकारसकारभकारादौ सुपि सर्वनाम्नष्टेः प्रागकच्, अन्यत्र सुबन्तस्य** इस वार्तिक की सहायता से **अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्टेः** से मूल **अस्मद्** शब्द के टि-रूप मकारोत्तरवर्ती अकार के पहले ही **अकच्** होने पर **युवावौ द्विवचने** सूत्र से मपर्यन्त भाग **अस्म्** के स्थान पर **आव** आदेश होने पर **योऽचि** सूत्र से **दकार** को **यकार** आदेश हो जाता है और पररूप, वर्णसम्मेलन आदि करके **आवकयोः** सिद्ध हो जाता है।

युष्मकासु। यह सकारादि सुप् प्रत्यय का उदाहरण है। **युष्मद्+सु** में टिसंज्ञक भाग **अद्** से पहले ही अकच् होकर यह रूप बनता है।

अस्मकासु। यह भी सकारादि सुप् प्रत्यय का उदाहरण है। **अस्मद्+सु** में टिसंज्ञक भाग **अद्** से पहले ही अकच् होकर यह रूप बनता है।

युष्मकाभिः। अज्ञात तुम लोगों से। **अज्ञातैर्युष्माभिः**। **युष्मद्+भिस्** यह भकारादि प्रत्यय परे का उदाहरण है। **ओकारसकारभकारादौ सुपि सर्वनाम्नष्टेः प्रागकच्, अन्यत्र सुबन्तस्य** इस वार्तिक की सहायता से **अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्टेः** से मूल **युष्मद्** शब्द के टि मकारोत्तरवर्ती अकार के पहले ही **अकच्** हुआ। अनुबन्धलोप होकर **युष्म्+अक्+अद्+भिस्** बना। **युष्मदस्मदोरनादेशे** से **दकार** को **आकार** आदेश करके **युष्म्+अक्+अ+आ+भिस्** बना। सवर्णदीर्घ और वर्णसम्मेलन करके **युष्मकाभिः** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **अस्मद्+भिस्** में भी उपुर्यक्त रीति से **अस्मकाभिः** सिद्ध हो जाता है।

वार्तिक में कथित ओकारादि-सकारादि-भकारादि से भिन्न प्रत्यय के परे होने की स्थिति का उदाहरण दिखाने लिये पदकृत्य रख रहे हैं-

'ओकार-' इत्यादि किम्? त्वयका। मयका। प्रकृत वार्तिक में **ओकारसकारभकारादौ** पद के निवेश से ओकारादि, सकारादि और भकारादि प्रत्ययों के परे ही सर्वनामसंज्ञक शब्द के टि-भाग से पहले अकच् होता है, अन्यत्र सुबन्त के टिभाग को अकच् होगा- जैसे कि **त्वयका** और **मयका**। यहाँ उपर्युक्त वार्तिक के अनुसार सुबन्त शब्द से ही **अकच्** होगा। अतः **युष्मद्** शब्द के तृतीयैकवचन में **त्वया** बन जाने के बाद उसमें विद्यमान टिसंज्ञक वर्ण **आ** से पहले **अकच्** होकर **त्वय्++अक्+आ** बन जाता है और वर्णसम्मेलन होकर **त्वयका** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **मयका** आदि भी बना सकते हैं।

वार्तिक के सम्बन्ध में निरूपण करने के बाद पुनः **अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्टेः** के विषय **अव्यय** के सम्बन्ध में वार्तिक से कुछ विशेष विधान कर रहे हैं-

अकच्प्रकरणे तूष्णीमः कां वक्तव्यः। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- अकच् के प्रकरण में तूष्णीम्-शब्द को **काम्** प्रत्यय (आगम) भी कहना चाहिये। **काम्** में मकार इत्संज्ञक है, **का** बचता है।

मित्त्वादन्त्यादचः परः। काम् में मकार इत्संज्ञक के होने के कारण यह मित् है और **मिदचोऽन्त्यात् परः** सूत्र के नियम से प्रकृति के अन्त्य अच् के बाद इसकी स्थिति होती है।

तूष्णीकामास्ते। चुपचाप बैठा है। **तूणीम्** इस स्थिति में **अकच्प्रकरणे तूष्णीमः कां वक्तव्यः** वार्तिक से **काम्** आगम होने पर मकार की इत्संज्ञा और **का** की अन्त्य अच् ईकार के बाद स्थिति होने पर **तूष्णीकाम्** बन जाता है। यह शब्द पहले भी अव्यय था अभी भी अव्यय ही है।

शीले को मलोपश्च। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- तूष्णीम्-शब्द से शील-अर्थ में क-प्रत्यय होता है और मकार का लोप भी।

तूष्णींशीलस्तूष्णीकः। मौन रहने का स्वभाव वाला। **तूष्णींशीलः** विग्रह करके **तूष्णीम्** शब्द से **शीले को मलोपश्च** वार्तिक के द्वारा **क** प्रत्यय के साथ **तूष्णीम्** में मकार का लोप होकर **तूष्णीक** शब्द बनता है। पर में प्रत्यय होने के बाद अव्यय-शब्द अनव्यय बन जाता है। अतः स्वादिकार्य से **तूष्णीकः** सिद्ध हो जाता है।

अव्ययसर्वनाम्नामकच् **प्राक्टेः** में **तिङश्च** भी आता है। अतः **तिङन्तों** से भी अकच् प्रत्यय किया जाता है। जैसे कि-

पचतकि। यहाँ **पचति** इस तिङन्त में टिसंज्ञक भाग इकार से पहले **अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्टेः** सूत्र से अकच् प्रत्यय होने पर **पचत्+अक्+इ** बना। वर्णसम्मेलन होकर पचतकि सिद्ध हुआ। **पचपतकि**=अज्ञात व्यक्ति बोलता रहता है।

जल्पतकि। यहाँ **जल्पति** इस तिङन्त में टिसंज्ञक भाग इकार से पहले **अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्टेः** सूत्र से अकच् प्रत्यय होने पर **जल्पत्+अक्+इ** बना। वर्णसम्मेलन होकर जल्पतकि सिद्ध हुआ। **जल्पतकि**=अज्ञात व्यक्ति बोलता रहता है।

धकित्। यहाँ **धिक्** इस अव्यय में टिसंज्ञक भाग इकार से पहले और धकार के बाद **अव्ययसर्वनाम्नामकच्प्राक्टेः** सूत्र से **अकच् (अक्)** होने पर **ध्+अक्+इक्=धकिक्** बना है। **कस्य च दः** सूत्र के द्वारा ककार को दकार आदेश होने पर **वावसाने** सूत्र से दकार को चर्त्व तकार होकर **धकित्** सिद्ध हो जाता है।

हिरकुत्। यहाँ **हिरुक्** इस अव्यय में टिसंज्ञक भाग उकार से पहले और रेफ के बाद **अव्ययसर्वनाम्नामकच्प्राक्टेः** सूत्र से **अकच् (अक्)** होने पर **हिर्+अक्+उक्=हिरकुक्** बना है। **कस्य च दः** सूत्र के द्वारा ककार को दकार आदेश होने पर **वावसाने** सूत्र से दकार को चर्त्व तकार होकर **हिरकुत्** सिद्ध हो जाता है।

२०२९. कुत्सिते ५।३।७४॥

कुत्सितोऽश्वोऽश्वकः।

कुत्सिते। कुत्सिते सप्तम्यन्तम् एकपदं सूत्रम्। **कः** और **अकच्** दोनों का अधिकार है। **तिङश्च** की अनुवृत्ति भी है साथ ही तद्धित में **तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है ही।

निन्दा अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक या तिङन्त से स्वार्थ में क और अकच् प्रत्यय होते हैं।

अश्वकः। निन्दित घोड़ा। **कुत्सितोऽश्वः** विग्रह करके **अश्व+सु** इस स्थिति में **कुत्सिते** से **क** प्रत्यय प्रातिपदिकसंज्ञा, सु का लुक्, एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर सु होने के बाद उसको रुत्वविसर्ग करके **अश्वकः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **कुत्सितो गर्दभः गर्दभकः, कुत्सित उष्ट्र उष्ट्रकः** आदि भी बनते हैं।

२०३०. सञ्ज्ञायां कन् ५।३।७५॥

कुत्सिते कन् स्यात् तदन्तेन चेत् सञ्ज्ञा गम्यते।
शूद्रकः। राधकः। स्वरार्थं वचनम्।

सञ्ज्ञायां कन्। संज्ञायां सप्तम्यन्तं, कन् प्रथमान्तम्। **कुत्सिते** की अनुवृत्ति तथा **कः** और **अकच्** दोनों का अधिकार है। **तद्धिताः, प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है ही।

तदन्त=प्रकृति-प्रत्यय के समुदाय से यदि संज्ञा गम्य हो तो निन्दा अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में कन् प्रत्यय होता है।

तिङन्त से संज्ञा गम्यमान न होने के कारण यहाँ **तिङः** की अनुवृत्ति होते हुए पर भी उसका प्रभाव नहीं रहता। **कन्** में नकार इत्संज्ञक है।

शूद्रकः। निन्दित शूद्र की संज्ञा। **कुत्सितः शूद्रः** विग्रह करके **शूद्र+सु** इस स्थिति में **संज्ञायां कन्** सूत्र से **कन्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **शूद्रक** शब्द बना है। स्वादिकार्य से **शूद्रकः** सिद्ध हो जाता है।

राधकः। निन्दित सारथी की संज्ञा। **कुत्सितो राधः** विग्रह करके **राध+सु** इस स्थिति में **संज्ञायां कन्** सूत्र से **कन्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **राधक** शब्द बना है। स्वादिकार्य से **राधकः** सिद्ध हो जाता है।

स्वरार्थं वचनम्। यद्यपि पूर्वसूत्र से क-प्रत्यय होने पर भी उपर्युक्त दोनों रूपों की सिद्धि होती, तथापि नित्स्वर के लिये प्रकृत सूत्र की उपयोगिता है।

२०३१. अनुकम्पायाम् ५।३।७६॥

पुत्रकः। अनुकम्पितः पुत्र इत्यर्थः।

अनुकम्पायाम्। सप्तम्यन्तमेकपदमिदं सूत्रम्। **तिङः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** की अनुवृत्ति तथा अधिकार है।

प्रातिपदिक तथा तिङन्त से अनुकम्पा गम्यमान होने पर यथाविहित (अव्यय, सर्वनाम और तिङन्त से अकच् और अन्य प्रातिपदिकों से क) प्रत्यय होते हैं।

पुत्रकः। अनुकम्पितः पुत्र इत्यर्थः। अनुकम्पित या दयनीय पुत्र। **अनुकम्पितः पुत्रः** विग्रह करके **पुत्र+सु** इस स्थिति में **अनुकम्पायाम्** सूत्र से **क** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **पुत्रक** शब्द बना है। स्वादिकार्य से **पुत्रकः** सिद्ध हो जाता है।

२०३२. नीतौ च तद्युक्तात् ५।३।७७॥

सामदानादिरूपा नीतिस्तस्यां गम्यमानायामनुकम्पायुक्तात्क-प्रत्ययः स्यात्।
हन्त ते धानकाः। गुडकाः। एहकि। अद्धकि।
पूर्वेणानुकम्प्यमानात् प्रत्ययः। अनेन तु परम्परासम्बद्धेऽपीति विशेषः।

नीतौ च तद्युक्तात्। तया=अनुकम्पया युक्तस्तद्युक्तस्तस्मात्तद्युक्तात् पञ्चम्यन्तं, नीतौ सप्तम्यन्तं, चाव्ययम्। **अनुकम्पायाम्, तिङः, तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** की अनुवृत्ति तथा अधिकार है।

साम-दाम आदि नीति गम्यमान हो तो अनुकम्पा से सम्बद्ध प्रातिपदिक तथा तिङन्त से यथाविहित (अव्यय, सर्वनाम और तिङन्त से अकच् और अन्य प्रातिपदिकों से क) प्रत्यय होते हैं।

यद्यपि मूलकार ने क-प्रत्यय का मात्र विधान लिखा है किन्तु उन्होंने ही **एहकि, अद्धकि** उदाहरण देकर अकच् का भी संकेत किया है। अतः सूत्र से केवल क-प्रत्यय का विधान न होकर यथाविहित प्रत्यय (यथायोग्य क और अकच्) का विधान समझना चाहिये। यद्यपि नीति के चार अर्थ हैं- साम, दान, दण्ड और भेद- तथापि **अनुकम्पायाम्** का अन्वय होने के कारण **साम, दाम** ही लिया जाता है।

हन्त ते धानकाः। यहाँ पर किसी दया के पात्र को भूना जौ आदि देकर अनुकम्पा की जा रही है। **धाना+जस्** इस स्थिति में **नीतौ च तद्युक्तात्** सूत्र से **क**-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और **केऽणः** सूत्र से आकार को ह्रस्व होकर **धानक** बन गया है। स्वादिकार्य करने पर बहुवचन में **धानकाः** सिद्ध हो जाता है।

गुडकाः। यहाँ पर किसी दया के पात्र को गुड़ देकर अनुकम्पा की जा रही है। अतः अनुकम्पा अर्थ है। **गुड+जस्** इस स्थिति में **नीतौ च तद्युक्तात्** सूत्र से **क**-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् करके **गुडक** बन गया है। स्वादिकार्य करने पर बहुवचन में **गुडकाः** सिद्ध हो जाता है।

एहकि। बेटा आओ। **हन्त एहि** इस स्थिति में तिङन्त क्रियापद **एहि** से **नीतौ च तद्युक्तात्** सूत्र के द्वारा टिसंज्ञक भाग इकार से पहले **अकच्**-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् करके **एह्+अक्+इ=एहकि** सिद्ध हो जाता है।

अद्धकि। बेटा खाओ। **हन्त अद्धि**। यहाँ **अद्**-धातु के लोट्-मध्यमपुरुष एकवचन का रूप है- **अद्धि**। इस स्थिति में तिङन्त क्रियापद **अद्धि** से **नीतौ च तद्युक्तात्** सूत्र के द्वारा टिसंज्ञक भाग इकार से पहले **अकच्**-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् करके **अद्ध्+अक्+इ=अद्धकि** सिद्ध हो जाता है।

पूर्वेणानुकम्प्यमानात् प्रत्ययः। अनेन तु परम्परासम्बद्धेऽपीति विशेषः। पूर्वसूत्र और प्रकृतसूत्र दोनों अनुकम्पा गम्य होने पर क-प्रत्यय करते हैं किन्तु उनमें भेद यह है कि पूर्वसूत्र साक्षात् अनुकम्पा में प्रत्यय करता है और यह सूत्र वहाँ भी करता है जहाँ वस्तु की परम्परया दानादि के द्वारा अनुकम्पा प्रकट हो। अनुकम्पासूचक शब्द **हन्त** आदि का प्रयोग किया जाता है।

२०३३. बह्वचो मनुष्यनाम्नष्ठञ्वा ५।३।७८॥
पूर्वसूत्रद्वयविषये।

बह्वचो मनुष्यनाम्नष्ठञ्वा। बहवोऽचो यस्मिन् स बह्वच्, तस्माद् बह्वचः, बहुव्रीहिः। **नीतौ च तद्युक्तात्** तथा **अनुकम्पायाम्** की अनुवृत्ति है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

बहुत अच् वाले मनुष्य-नामधेय प्रातिपदिकों से पूर्वसूत्रद्वयविषये=अनुकम्पा और नीतियुक्त अनुकम्पा गम्य होने पर विकल्प से ठच् प्रत्यय होता है।

पक्ष में **क** प्रत्यय होगा। उदाहरण आगे दिये जा रहे हैं।

२०३४. घनिलचौ च ५।३।७९॥
तत्रैव।

घनिलचौ च। घन् च इलच् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो घनिलचौ। **बह्वचो मनुष्यनाम्नष्ठञ्वा** से **बह्वचः, मनुष्यनाम्नः** की, **नीतौ च तद्युक्तात्** तथा **अनुकम्पायाम्** की अनुवृत्ति है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

बहुत अच् वाले मनुष्य-नामधेय प्रातिपदिकों से पूर्वसूत्रद्वयविषये=अनुकम्पा और नीतियुक्त अनुकम्पा गम्य होने पर घन् और इलच् प्रत्यय भी होते हैं।

तत्रैव। अर्थात् यह सूत्र भी पूर्वसूत्रद्वय के विषय में ही कार्य करता है। इसके उदाहरण भी अगले सूत्र में दिये गये हैं।

२०३५. ठाजादावूर्ध्वं द्वितीयादचः ५।३।८३॥

अस्मिन् प्रकरणे यष्ठेऽजादिप्रत्ययश्च तस्मिन्प्रत्यये परे प्रकृतेर्द्वितीयादच ऊर्ध्वं सर्वं लुप्यते। अनुकम्पितो देवदत्तो देविकः, देवियः, देविलः, देवदत्तकः। अनुकम्पितो वायुदत्तो वायुकः। ठग्रहणमुको द्वितीयत्वे कविधानार्थम्। वायुकः। पितृकः।

'चतुर्थादच ऊर्ध्वस्य लोपो वाच्यः' (वा.३२९६)।

अनुकम्पितो बृहस्पतिदत्तो बृहस्पतिकः।

'अनजादौ च विभाषा लोपो वक्तव्यः' (वा.३२९७)। देवदत्तकः, देवकः।

'लोपः पूर्वपदस्य च' (वा.३२९८)। दत्तिकः, दत्तियः, दत्तिलः, दत्तकः।

'विनापि प्रत्ययं पूर्वोत्तरपदयोर्वा लोपो वाच्यः'(वा.३२९९)

देवदत्तः, दत्तः, देवः। सत्यभामा, भामा, सत्या।

'उवर्णाल्ल इलस्य च' (वा.३३०२)। भानुदत्तः, भानुलः।

'ऋवर्णादपि'(वा.५०५४)। सवित्रियः। सवितृलः।

'चतुर्थादनजादौ वा लोपः पूर्वपदस्य च।
अप्रत्यये तथैवेष्ट उवर्णाल्ल इलस्य च॥' (वा.३२९६-३३००)।

ठाजादावूर्ध्वं द्वितीयादचः। अच् आदिर्यस्य स अजादिः, बहुव्रीहिः। ठश्च अजादिश्च ठाजादिः, तस्मिन् ठाजादौ, समाहारद्वन्द्वः, सौत्रं पुंस्त्वम्। ठाजादौ सप्तम्यन्तम्, ऊर्ध्वं प्रथमान्तं, द्वितीयात् पञ्चम्यन्तम्, अचः षष्ठ्यन्तम्। **अजिनान्तस्योत्तरपदलोपश्च** सूत्र से एकांश **लोपः** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

इस प्रकरण में (**अष्टाध्यायीक्रम में इस सूत्र से पूर्व पाँच सूत्रों से विहित प्रत्ययों के प्रकरण में**) जो **ठ-प्रत्यय और अजादि-प्रत्यय विहित हुये, उनके परे रहते प्रकृति के द्वितीय अच् से ऊपर=आगे जितना भी भाग है, उसका लोप हो जाता है।**

अष्टाध्यायी में इस सूत्र से पूर्व के सूत्र हैं- **बह्वचो मनुष्यनाम्नष्ठञ्वा, घनिलचौ च, प्राचामुपादेरडञ्चुचौ च, जातिनाम्नः कन्** और **अजिनान्तस्योत्तर-पदलोपश्च**। इन सूत्रों से ठच्, घन्, इलच्, अडच्, वुच्, और कन् प्रत्ययों का विधान किया गया है। इनमें से कन्-प्रत्यय न तो ठ है और न अजादि किन्तु घन्-प्रत्यय के घकार को इयादेश हो जाने पर और वुच् के वु को अकादेश होने पर ये दोनों अजादि बन जाते हैं। तादृश ठ-प्रत्यय और अजादि-प्रत्ययों के परे रहते प्रकृति के द्वितीय अच् से ऊपर के समस्त भाग का प्रकृत सूत्र से लोप किया जाता है।

प्रकृतसूत्र में **अजिनान्तस्योत्तरपदलोपश्च** सूत्र से अनुवर्तमान **लोपः** पद का कर्मसाधन **लुप्यते** ऐसा अर्थ दीक्षित जी ने किया है।

अनुकम्पितो देवदत्तो देविकः, देवियः, देविलः, देवदत्तकः। अति परिचय के कारण देवदत्त का प्रिय नाम है- **अनुकम्पितः देवदत्तः।** यहाँ देवदत्त इस प्रकृति में चार अच् हैं और द्वितीय अच् से ऊपर के भाग का लोप किया जा रहा है। **अनुकम्पितः देवदत्तः** विग्रह करके **देवदत्त+सु** इस स्थिति में **बह्वचो मनुष्यनाम्नष्ठञ्वा** सूत्र से विकल्प से ठच् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, **ठ** के स्थान पर **इक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **देवदत्त+इक** बना है। **ठाजादावूर्ध्वं द्वितीयादचः** सूत्र से द्वितीय अच् **देव** से आगे **दत्त** इस भाग का लोप होने पर **देव+इक** बना है। भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** से लोप होकर **देविक** शब्द बना है। **देवदत्त+सु** इस स्थिति में ही **घनिलचौ च** सूत्र से **घ**-प्रत्यय होने के पक्ष में घकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र से **इय्** आदेश होने पर प्रकृतसूत्र से द्वितीय अच् से ऊपरी भाग का लोप होने पर **देव+इय** और अकारलोप होकर **देविय** शब्द बना है। **घनिलचौ च** सूत्र से **इलच् (इल)** प्रत्यय होने के पक्ष में अकारलोप होकर **देविल** शब्द बना है। **बह्वचो मनुष्यनाम्नष्ठञ्वा** सूत्र से **ठच्** वैकल्पिक पक्ष में **अनुकम्पायाम्** सूत्र से औत्सर्गिक **कन्** प्रत्यय होने पर **देवदत्तक** शब्द बना है। यहाँ क-प्रत्यय के परे रहते तो लोप प्राप्त नहीं है। उपर्युक्त चारों शब्दों में स्वादिकार्य करने से क्रमशः **देविकः, देवियः, देविलः, देवदत्तकः** ये रूप सिद्ध हो जाते हैं। आगे **अनजादौ च विभाषा लोपो वक्तव्यः** वार्तिक से अनजादि प्रत्यय के परे रहते भी वैकल्पिक लोप किया जा रहा है। अतः **देवकः** भी बनता है। साथ ही आगे **लोपः पूर्वपदस्य च** वार्तिक से पूर्वपद का भी लोप करके **दत्तिकः, दत्तियः, दत्तिलः, दत्तकः** ये रूप भी बनाये जायेंगे।

अनुकम्पितो वायुदत्तो वायुदत्तकः। प्रिय वायुदत्त। **अनुकम्पितो वायुदत्तः** विग्रह करके **वायुदत्त+सु** इस स्थिति में **बह्वचो मनुष्यनाम्नष्ठञ्चा** सूत्र से ठच् प्रत्यय न होने के पक्ष में औत्सर्गिक **क** प्रत्यय होने पर **वायुदत्तक** शब्द बना है। स्वादिकार्य होकर **वायुदत्तकः** सिद्ध हो जाता है। **ठच्** प्रत्यय का रूप आगे दिया जा रहा है।

यहाँ प्रकृतसूत्र के सम्बन्ध में यह प्रश्न उपस्थित होता है कि जब **ठ** प्रत्यय के स्थान पर इकादेश हो जाता है तो उसका ग्रहण **अजादि** से ही हो जाता, फिर **ठ** शब्द का ग्रहण क्यों किया गया? इस प्रश्न का समाधान मूलकार इस तरह कर रहे हैं-

ठग्रहणमुको द्वितीयत्वे कविधानार्थम्। प्रकृतसूत्र में ठ-शब्द का ग्रहण इस लिये है कि यदि द्वितीय अच् उक् हो तो उससे परे ठ-प्रत्यय को **इसुसुक्तान्तात्कः** सूत्र से क-आदेश हो जाय। उक्त सूत्र उगन्त (उ,ऋ,ऌ अन्त वाले) शब्दों से भी कादेश करता है। ऐसी स्थिति में अजादि नहीं बन पाता। अतः क-विधान में भी लोप हो सके, एतदर्थ **ठ** का ग्रहण किया गया है। यद्यपि **ठ** के स्थान पर **क** आदेश हो जाता है, तथापि

स्थानिवद्भावेन ठ-प्रत्यय परे मान कर कार्य किया जा सकता है। जैसे कि आगे **वायुदत्त** से ठच्-प्रत्यय करने पर **वायुकः** रूप बनाया जा रहा है।

वायुकः। अनुकम्पितो वायुदत्तो वायुदत्तकः। प्रिय वायुदत्त। **अनुकम्पितो वायुदत्तः** विग्रह करके **वायुदत्त+सु** इस स्थिति में **बह्वचो मनुष्यनाम्नष्ठञ्चा** सूत्र से ठच् प्रत्यय होने पर ठ के स्थान पर **ठस्येकः** सूत्र से इकादेश प्राप्त था, उसे बाधकर **इसुसुक्तान्तात् कः** सूत्र से **क** आदेश होता है। स्थानिवद्भावेन ठ-प्रत्यय परे मानकर **ठाजादावूर्ध्वं द्वितीयादचः** सूत्र से द्वितीय अच् **वायु** से ऊपरी भाग **दत्त**-शब्द का लोप हो जाता है। इस तरह **वायुक** शब्द बनता है और स्वादिकार्य से **वायुकः** सिद्ध हो जाता है।

पितृकः। प्रिय पितृदत्त। **अनुकम्पितो पितृदत्तः** विग्रह करके **पितृदत्त+सु** इस स्थिति में **बह्वचो मनुष्यनाम्नष्ठञ्चा** सूत्र से ठच् प्रत्यय होने पर ठ के स्थान पर **ठस्येकः** सूत्र से इकादेश प्राप्त था, उसे बाधकर **इसुसुक्तान्तात् कः** सूत्र से **क** आदेश होता है। स्थानिवद्भावेन ठ-प्रत्यय परे मानकर **ठाजादावूर्ध्वं द्वितीयादचः** सूत्र से द्वितीय अच् **पितृ**-भाग से ऊपरी भाग **दत्त**-शब्द का लोप हो जाता है। इस तरह **पितृक** शब्द बनता है और स्वादिकार्य से **पितृकः** सिद्ध हो जाता है।

प्रकृतसूत्र **ठाजादादूर्ध्वं द्वितीयादचः** में **ऊर्ध्वम्** पद का निवेश होने से प्रकृति के द्वितीय अच् के अनन्तर अवशिष्ट समग्र शब्द का लोप होता है। यदि **ऊर्ध्वम्** पद न होता तो **आदेः परस्य** इस परिभाषा की उपस्थिति से द्वितीय अच् से परवर्ती भाग के आदि वर्ण का ही लोप होने लगता।

अब इस सूत्र से सम्बन्धित कुछ वार्तिकों का उल्लेख किया जा रहा है-

चतुर्थादच ऊर्ध्वस्य लोपो वाच्यः। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- ठ और अजादि प्रत्यय के परे रहते प्रकृति के चतुर्थ अच् से ऊपर के भाग का लोप कहना चाहिये। जिस प्रकृति में तीन या चार अच् हों, वहाँ **ठाजादादूर्ध्वं द्वितीयादचः** से लोप किया जाता है किन्तु जिस प्रकृति में चार से अधिक पाँच, छह अच् हों, वहाँ ठाजादि के परे चतुर्थ अच् से ऊपरी भाग का प्रकृत वार्तिक से लोप किया जाता है।

अनुकम्पितो बृहस्पतिदत्तो बृहस्पतिकः। प्रिय बृहस्पतिदत्त। **अनुकम्पितो बृहस्पतिदत्तः** विग्रह करके **बृहस्पतिदत्त+सु** इस स्थिति में **बह्वचो मनुष्यनाम्नष्ठञ्चा** सूत्र से ठच् प्रत्यय होने पर ठ के स्थान पर **ठस्येकः** सूत्र से इकादेश होकर **बृहस्पतिदत्त+इक** बना है। **चतुर्थादच ऊर्ध्वस्य लोपो वाच्यः** वार्तिक से चतुर्थ अच् **बृहस्पति** के इकार से ऊपरी भाग **दत्त**-शब्द का लोप हो जाता है। इस तरह **बृहस्पति+इक** बना है। **यस्येति च** सूत्र से भसंज्ञक इकार का लोप करके **बृहस्पतिक** शब्द बनता है और स्वादिकार्य से **बृहस्पतिकः** सिद्ध हो जाता है।

अनजादौ च विभाषा लोपो वक्तव्यः। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- अजादि-भिन्न प्रत्यय परे हो तो प्रकृति के द्वितीय अच् से ऊपरी भाग का विकल्प से लोप होता है।

देवदत्तकः, देवकः। अनुकम्पायुक्त देवदत्त। **अनुकम्पितो देवदत्तः** विग्रह करके **देवदत्त+सु** इस स्थिति में **अनुकम्पायाम्** सूत्र से **कन्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् करके **देवदत्त+क** बना है। यहाँ अनजादि प्रत्यय है। अतः **अनजादौ च विभाषा लोपो वक्तव्यः** वार्तिक से **दत्त** शब्द का विकल्प से लोप होकर **देवक** शब्द बन जाता है और लोप न होने के पक्ष में देवदत्तक शब्द ही है। उभयत्र स्वादिकार्य से **देवकः** और **देवदत्तकः** ये दो रूप सिद्ध हो जाते हैं।

लोपः पूर्वपदस्य च। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- ठाजादि प्रत्यय के परे रहने पर पूर्वपद का लोप भी होता है।

दत्तिकः, दत्तियः, दत्तिलः, दत्तकः। अनुकम्पायुक्त देवदत्त। **अनुकम्पितो देवदत्तः** विग्रह करके **देवदत्त+सु** इस स्थिति में पूर्वोक्त ठच्, घन्, इलच्, कन् इन चारों प्रत्ययों के परे रहते पूर्वपद **देव**-शब्द का **लोपः पूर्वपदस्य च** वार्तिक से लोप होने पर कन्-प्रत्यय को छोड़कर अन्य प्रत्ययों के परे रहते अकारलोप और स्वादिकार्य होकर **दत्तिकः, दत्तियः, दत्तिलः** और **दत्तकः** ये चार रूप सिद्ध होते हैं।

विनापि प्रत्ययं पूर्वोत्तरपदयोर्वा लोपो वाच्यः। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- ठ, अजादि प्रत्यय के बिना भी चार या चार से अधिक अच् वाले शब्दों में पूर्व और उत्तरपद का लोप कहना चाहिये। अत्यधिक स्नेह प्रकट करने में लोक में भी नाम को छोटा करके सम्बोधन करना प्रचलित है।

देवदत्तः, दत्तः, देवः। अनुकम्पायुक्त देवदत्त। यहाँ पूर्वपद **देव** और उत्तरपद **दत्त** है। यहाँ पर कोई प्रत्यय नहीं हुआ है, फिर भी **विनापि प्रत्ययं पूर्वोत्तरपदयोर्वा लोपो वाच्यः** वार्तिक से बारी-बारी से लोप हो जाता है। पूर्वपद का लोप होने पर **दत्तः** और उत्तरपद का लोप होने पर केवल **देवः** बचता है। यह कार्य वैकल्पिक है। पक्ष में **देवदत्तः** भी बना ही रहता है।

सत्यभामा, भामा, सत्या। अनुकम्पायुक्ता सत्यभामा। यहाँ पूर्वपद **सत्या** और उत्तरपद **भामा** है। यहाँ पर कोई प्रत्यय नहीं हुआ है, फिर भी **विनापि प्रत्ययं पूर्वोत्तरपदयोर्वा लोपो वाच्यः** वार्तिक से बारी-बारी से लोप हो जाता है। पूर्वपद का लोप होने पर **भामा** और उत्तरपद का लोप होने पर केवल **सत्या** बचता है। यह कार्य वैकल्पिक है। पक्ष में **सत्यभामा** भी बना ही रहता है।

उवर्णाल्ल इलस्य च। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- उवर्ण से परे इल-प्रत्यय का लोप होता है। यहाँ पर **आदेः परस्य** परिभाषा सूत्र की उपस्थिति में परभूत इल-प्रत्यय के आदि वर्ण इकार मात्र का लोप होता है। **लः** का अर्थ लोप है। प्राचीनाचार्यों ने लोप

के लिये **ल**-शब्द का प्रयोग किया है और उसका अनुसरण पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि ने भी कहीं-कहीं किया है।

भानुदत्तः, भानुलः। अनुकम्पायुक्त भानुदत्त। यहाँ **घनिलचौ च** सूत्र से इलच्-प्रत्यय होने के पक्ष में **भानुदत्त+इल** बन गया है। **ठाजादावूर्ध्वं द्वितीयादचः** सूत्र से द्वितीय अच् **भानु** के उकार से आगे के भाग **दत्त** का लोप होने पर उवर्णान्त **भानु** शब्द बना है और उससे परे **इल** के इकार **उवर्णाल्ल इलस्य च** वार्तिक से लोप होने पर **भानुल** शब्द बनता है। स्वादिकार्य होने पर **भानुलः** सिद्ध होता है। तद्धित प्रत्यय वैकल्पिक हैं। अतः इलच्-प्रत्यय न होने के पक्ष में **भानुदत्तः** भी बनता ही है।

'**चतुर्थादनजादौ वा लोपः पूर्वपदस्य च।**

अप्रत्यये तथैवेष्ट उवर्णाल्ल इलस्य च।। महाभाष्य में यह श्लोकवार्तिक है। इसी का विभाग करके ऊपर पाँच वार्तिक बनाये गये हैं और उनके अर्थ एवं उदाहरण भी दिये जा चुके हैं। केवल श्लोकवार्तिक का अर्थ इस प्रकार है- १. चतुर्थ अच् से ऊपर के भाग का लोप होता है, २. अनजादि प्रत्यय के परे रहते भी लोप होता है, ३. उत्तरपदलोप के साथ पूर्वपद का भी लोप होता है, ४. कहीं-कहीं प्रत्यय के परे न रहने पर भी लोप होना इष्ट है तथा ५. उवर्ण से परे इल-प्रत्यय का लोप होता है।

ऋवर्णादपि। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- ऋवर्णान्त शब्द से भी इलच् प्रत्यय के आदि वर्ण का लोप होता है साथ ही उत्तरपद का लोप भी होता है। यह वार्तिक महाभाष्य में नहीं है।

सवित्रियः। सवितृलः। अनुकम्पायुक्त सवितृदत्त। **सवितृदत्त** शब्द से घन् और इलच् प्रत्यय होने पर **सवितृदत्त+इय** और **सवितृदत्त+इल** बना है। **ऋवर्णादपि** वार्तिक से उत्तरपद **दत्त**-शब्द के लोप के साथ प्रत्ययों के आदि वर्ण का लोप भी किया जाता है, जिससे **सवितृ+इय** और **सवितृ+ल** बने हैं। प्रथम प्रयोग में ऋकार को यण् होकर **सवित्रिय** शब्द बनता है और द्वितीय प्रयोग में अच् नहीं है, अतः **सवितृल** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सवित्रियः** और **सवितृलः** ये रूप सिद्ध हो जाते हैं।

२०३६. प्राचामुपादेरडज्वुचौ च ५।३।८०।।

उपशब्दपूर्वात् प्रातिपदिकात् पूर्वविषये अडच् वुच् एतौ स्तः। चाद्यथाप्राप्तम्। प्राचां ग्रहणं पूजार्थम्। अनुकम्पित उपेन्द्रदत्त उपडः, उपकः, उपियः, उपिलः, उपिकः, उपेन्द्रदत्तकः। षड्रूपाणि।

प्राचामुपादेरडज्वुचौ च। उप-शब्द आदिर्यस्य स उपादिस्तस्य उपादेः, बहुव्रीहिः। अडच् च वुच् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः- अडज्वुचौ। प्राचां षष्ठ्यन्तम्, उपादेः पञ्चम्यन्तं, अडज्वुचौ प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **घनिलचौ, बह्वचो मनुष्यनाम्नष्ठञ्वा, नीतौ च तद्युक्तात्,**

अनुकम्पायाम् इन पदों की तत्तत् सूत्रों से अनुवृत्ति आती है और **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

उपशब्द-पूर्वक बहुत अचों से युक्त मनुष्य-नामधेय प्रातिपदिक से नीति और अनुकम्पा गम्यमान होने पर अडच् (अड) और वुच् (वु) प्रत्यय विकल्प से होते हैं।

चाद्यथाप्राप्तम्। च-शब्द से तत्तत् सूत्रों से प्राप्त तत्तत् प्रत्ययों का समुच्चय है। अतः पक्ष में घन्, इलच्, कन्, ठच् प्रत्यय भी होंगे। इस तरह छह प्रत्ययों से छह-छह रूप बनेंगे। ध्यान रहे कि द्वितीय अच् से ऊपर के भाग का लोप भी होता है। यह अभिप्राय **च**-शब्द से ही बोधित है।

प्राचां ग्रहणं पूजार्थम्। प्रकृतसूत्र में पठित **प्राचाम्** पद विकल्पार्थक न होकर प्राचीनाचार्यों के सम्मानार्थ है। विकल्पार्थ तो **बह्वचो मनुष्यनाम्नष्ठञ्वा** से अनुवृत्त **वा** पद से ही हो जाता है।

अनुकम्पित उपेन्द्रदत्तः- उपडः, उपकः, उपियः, उपिलः, उपिकः, उपेन्द्रदत्तकः। षड्रूपाणि। अनुकम्पायुक्त उपेन्द्रदत्त। **अनुकम्पितः उपेन्द्रदत्तः** विग्रह करके **उपेन्द्रदत्त+सु** इस स्थिति में **प्राचामुपादेरडञ्चुचौ च** सूत्र से **अडच्** प्रत्यय तथा उत्तरपद **इन्द्रदत्त**-शब्द का लोप होने पर अनुबन्धलोप होकर, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **उपड** शब्द बना है। **वुच्** (**वु**) प्रत्यय होने के पक्ष में **युवोरनाकौ** सूत्र से अकादेश होने पर अकारलोप होकर **उपक** बना है। **घनिलचौ च** सूत्र से **घन्** प्रत्यय होने के पक्ष में घकार को इयादेश और अकारलोप होकर **उपिय** शब्द बना है। **इलच्** प्रत्यय होने के पक्ष में अकारलोप होकर **उपिल** शब्द बना है। **बह्वचो मनुष्यनाम्नष्ठञ्वा** सूत्र से **ठच्** प्रत्यय होने पर इकादेश और अकारलोप होकर **उपिक** शब्द बना है। इन सबों में उत्तरपद **इन्द्रदत्त** शब्द का लोप हुआ है। **अनुकम्पायाम्** सूत्र से कन् प्रत्यय होने के पक्ष में उत्तरपद का लोप नहीं होता और अकारलोप भी प्राप्त नहीं है, अतः **उपेन्द्रदत्तक** शब्द बना है। इन छहों शब्दों में स्वादिकार्य होने पर **उपडः, उपकः, उपियः, उपिलः, उपिकः, उपेन्द्रदत्तकः** ये छह रूप सिद्ध हो जाते हैं।

२०३७. जातिनाम्नः कन् ५।३।८१॥

'मनुष्यनाम्नः' इत्येव। जातिशब्दो यो मनुष्यनामधेयस्तस्मात् कन् स्यादनुकम्पायां नीतौ च। सिंहकः। शरभकः। रासभकः।

'द्वितीयं सन्ध्यक्षरं चेत्तदादेर्लोपो वक्तव्यः' (वा.३३०३)। कहोडः, कहिकः।

'एकाक्षरपूर्वपदानामुत्तरपदलोपो वक्तव्यः' (वा.३३०६)। वागाशीर्दत्तो वाचिकः। कथं षडङ्गुलिदत्तः षडिक इति?

'षष्ठ्याजादिवचनात्सिद्धम्' (वा.३३०७)।

जातिनाम्नः कन्। जातेर्नाम जातिनाम, तस्माज्जातिनाम्नः पञ्चम्यन्तं, कन् प्रथमान्तम्। **मनुष्यनाम्नः, नीतौ च तद्युक्तात्, अनुकम्पायाम्** की अनुवृत्ति आती है और **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

जातिवाची जो मनुष्य-नामधेय, तादृश प्रातिपदिक से नीति और अनुकम्पा गम्यमान होने पर कन् प्रत्यय होता है।

यह ठच्-प्रत्यय का अपवाद है। **सिंह** आदि शब्द **पशु**-जातिवाची हैं किन्तु **वीर, निर्भीक** होने पर किसी मनुष्य की संज्ञा के रूप में भी प्रयुक्त हो सकते हैं। उस स्थिति में प्रकृत सूत्र से कन् प्रत्यय किया जाता है।

सिंहकः। शेर की तरह वीर होने से पुरुष का नाम। **अनुकम्पितः सिंहः** विग्रह करके **सिंह+सु** इस स्थिति में **जातिनाम्नः कन्** सूत्र से **कन् (क)** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **सिंहक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सिंहकः** सिद्ध होता है।

शरभकः। शरभ की तरह होने से किसी पुरुष-विशेष का नाम। **अनुकम्पितः शरभः** विग्रह करके **शरभ+सु** इस स्थिति में **जातिनाम्नः कन्** सूत्र से **कन् (क)** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **शरभक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **शरभकः** सिद्ध होता है।

रासभकः। गदहे की तरह मूर्ख होने से किसी पुरुष का नाम। **अनुकम्पितः रासभः** विग्रह करके **रासभ+सु** इस स्थिति में **जातिनाम्नः कन्** सूत्र से **कन् (क)** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **रासभक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **रासभकः** सिद्ध होता है।

यहाँ महाभाष्य में कुछ वार्तिकों का उल्लेख है-

द्वितीयं सन्ध्यक्षरं चेत्तदादेर्लोपो वक्तव्यः। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- यदि एक पद में दूसरा अक्षर सन्ध्यक्षर हो तो तदादि का लोप होता है। ए, ओ, ऐ, औ ये वर्ण सन्ध्यक्षर माने जाते हैं। प्रथम अच् के बाद द्वितीय के सन्ध्यक्षर होने पर यह वार्तिक लगता है। **तदादि** शब्द से सन्ध्यक्षर जिसके आदि में है, उस अंश के साथ सन्ध्यक्षर का भी लोप होता है। यहाँ पर भी अनुकम्पा का गम्यमान होना आवश्यक है।

कहोडः, कहिकः। किसी ऋषि का नाम **कहोड** है और यहाँ द्वितीय अच् ओकार सन्ध्यक्षर है और तदादिभाग **ओड** हुआ। **अनुकम्पितः कहोडः** विग्रह करके **कहोड+सु** इस स्थिति में **बह्वचो मनुष्यनाम्नष्ठञ्वा** सूत्र से विकल्प से ठच् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, ठ के स्थान पर इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् करके **कहोड+इक** बना है। **द्वितीयं सन्ध्यक्षरं चेत्तदादेर्लोपो वक्तव्यः** वार्तिक से **ओड** शब्द का लोप होने पर **कह्+इक=कहिक** शब्द बना है। स्वादिकार्य से **कहिकः** सिद्ध होता है। ठच् न होने के पक्ष में **कहोडः** ही बनता है।

एकाक्षरपूर्वपदानामुत्तरपदलोपो वक्तव्यः। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- एक अच् वाला पूर्वपद हो तो उत्तरपद का लोप होता है, ठजादि के परे रहते।

वागाशीर्दत्तो वाचिकः। वाणी द्वारा आशीर्वाद से प्रदत्त। **वाचि आशीः- वागाशीः, तेन दत्तो वागाशीर्दत्तः**। यहाँ **वागाशीर्दत्त+सु** इस स्थिति में **बह्वचो मनुष्यनाम्नष्ठञ्चा** सूत्र से ठच्-प्रत्यय होने पर इकादेश आदि होकर **वागाशीर्दत्त+इक** बना है। यहाँ एकाक्षर (एक अच्) पूर्वपद है- **वाक्** और उत्तरपद है- **आशीर्दत्तः**। अतः **एकाक्षरपूर्वपदानामुत्तरपदलोपो वक्तव्यः** वार्तिक से उत्तरपद **आशीर्दत्त** भाग का लोप हो जाने से **वाक्+इक** बना है। **इक** यह अजादिप्रत्यय है, अतः **यचि भम्** से भसंज्ञा होती है, फलतः पदसंज्ञा की निवृत्ति हो जाती है और पदत्वाभाव में पदान्त में होने वाले कुत्व ककार (गकार) की भी निवृत्ति हो जाती है और चकार रूप में आ जाता है। अतः **वाच्+इक=वाचिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वाचिकः** सिद्ध हो जाता है।

यद्यपि **वागाशीर्दत्त** में **ठाजादादूर्ध्वं द्वितीयादचः** सूत्र से ही द्वितीय अच् **वागा** से ऊपरी भाग **शीर्दत्त** का लोप होने पर भी आकार का **यस्येति च** सूत्र से लोप करने के बाद उपर्युक्त रीति से कुत्व और जश्त्व की निवृत्ति हो जाने से **वाचिकः** रूप की सिद्धि हो सकती थी अर्थात् प्रकृतसूत्र की आवश्यकता नहीं थी, तथापि आकारलोप का स्थानिवद्भाव हो जाने से आकारबुद्धि आ जाती है और आकारान्त से पर **इक्** का आश्रयण लेकर भसंज्ञा किये जाने पर आकारान्तनिष्ठ भसंज्ञा से चकारान्तनिष्ठ पदसंज्ञा का व्याघात न हो पाने से कुत्व और जश्त्व होकर के **वागिकः** ऐसा अनिष्ट रूप बनने लगता। उत्तरपद का लोप करने पर तो अच्-हलादेश होने से स्थानिवद्भाव का निषेध हो जाता है और समान अवधिक भसंज्ञा से एकसंज्ञाधिकार के नियमानुसार **सुप्तिङन्तं पदम्** की पदसंज्ञा का परत्वात् बाध हो जाता है।

कथं षडङ्गुलिदत्तः षडिक इति? यह प्रश्न किया जा रहा है कि **षडङ्गुलिदत्तः** में एकाच्-पूर्वपद **षड्** और उत्तरपद **अङ्गुलिदत्त** है। **बह्वचो मनुष्यनाम्नष्ठञ्चा** सूत्र से ठच्-प्रत्यय होने पर इकादेश आदि होकर **अङ्गुलिदत्त** का **एकाक्षरपूर्वपदानामुत्तरपदलोपो वक्तव्यः** वार्तिक से लोप होने पर **षडिक** रूप बनाया जाता है। यहाँ पर उपर्युक्त रीति से पदसंज्ञानिमित्त **षष्** के षकार को जश्त्व होकर जो डकार बना है, उसकी निवृत्ति क्यों नहीं होती? अर्थात् **षषिकः** होना चाहिये तो **षडिकः** रूप को क्यों साधु माना जाता है? इस प्रश्न का समाधान एक वार्तिक का अवतरण करके कर रहे हैं-

षषष्ठाजादिवचनात्सिद्धम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- पूर्वपदस्थ षष्-शब्द के रहते हुये **ठाजादादूर्ध्वं द्वितीयादचः** सूत्र के द्वारा द्वितीय अच् के अनन्तर अंश का ही लोप हो, न कि **एकाक्षरपूर्वपदानाम् उत्तरपदलोपो वक्तव्यः** वार्तिक से उत्तरपद का। इस वार्तिक के अनुसार **षडङ्गुलिदत्तः** में द्वितीय अच् **षड** के ऊपरी भाग **ङ्गुलिदत्त** का लोप होता है, न कि **अङ्गुलिदत्त** का। अतः लोप के बाद **षड** के

अकार का **यस्येति च** सूत्र से लोप करके **षडिकः** की सिद्धि हो जाती है। लुप्त अकार का स्थानिवद्भाव होने के कारण तदन्त भाग (षष) की भसंज्ञा होने पर भी अन्तर्वर्तिनी विभक्ति का आश्रयण कर **षष्** अंश की पदसंज्ञा होने से उसको मानकर षकार को जश्त्व डकार हो जाता है, क्योंकि समानावधिक संज्ञाद्वय में ही बाध्यबाधकभाव होता है, न कि भिन्नावधिक संज्ञाद्वय में। जबकि यहाँ तो भसंज्ञा **षष** की तथा पदसंज्ञा **षष्** हो रही है। अतः यहाँ अकारान्त-स्वरूप में भसंज्ञा तथा षकारान्त स्वरूप में पदसंज्ञा मानकर इष्टसिद्धि में कोई बाधक नहीं है।

२०३८. शेवलसुपरिविशालवरुणार्यमादीनां तृतीयात् ५।३।८४॥

एषां मनुष्यनाम्नां ठाजादौ परे तृतीयादच ऊर्ध्वं लोपः स्यात्। पूर्वस्यापवादः। अनुकम्पितः शेवलदत्तः शेवलिकः, शेवलियः, शेवलिलः। सुपरिकः। विशालिकः। वरुणिकः। अर्यमिकः।

शेवलसुपरिविशालवरुणार्यमादीनां तृतीयात्। शेवलश्च सुपरिश्च विशालश्च वरुणश्च अर्यमा च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः शेवलसुपरिविशालवरुणार्यमाणस्ते आदयो येषां ते शेवलसुपरिविशालवरुणार्यमादयस्तेषां शेवलसुपरिविशालवरुणार्यमादीनां, षष्ठ्यन्तम्। तृतीयात् पञ्चम्यन्तम्। मनुष्यनाम्नः, **नीतौ च तद्युक्तात्, अनुकम्पायाम्** के साथ **अजिनान्तस्योत्तरपदलोपश्च** से लोपः की अनुवृत्ति आती है और **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः,** परश्च का अधिकार है।

शेवल, सुपरि, विशाल, **वरुण, अर्यमन् ये शब्द मनुष्यवाची नामधेय के आदि में हो तो तदुत्तरवर्ती ठ-अजादि प्रत्ययों की स्थिति में तृतीय अच् के बाद प्रकृतिभाग का लोप होता है।**

पूर्वस्यापवादः। यह पूर्वसूत्र से प्राप्त कन् का अपवाद है।

अनुकम्पितः शेवलदत्तः **शेवलिकः, शेवलियः, शेवलिलः।** अनुकम्पायुक्त शेवलदत्त। अनुकम्पितः शेवलदत्तः विग्रह करके **शेवलदत्त+सु** इस स्थिति में **बह्वचो मनुष्यनाम्नष्ठञ्ञा** सूत्र से ठच् प्रत्यय होने पर इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **शेवलदत्त+इक** बना है। यहाँ तृतीय अच् है **शेवल** का अकार और उससे परवर्ती भाग **दत्त** शब्द का **शेवलसुपरिविशालवरुणार्यमादीनां तृतीयात्** सूत्र से लोप हो जाता है और अवशिष्ट **शेवल** में अन्त्य अकार का **यस्येति च** से लोप होकर **शेवलिक** शब्द बना है। **घनिलचौ च** सूत्र से **घन्** प्रत्यय होने के पक्ष में घकार को इयादेश, दत्त-शब्द का लोप और अकारलोप होकर **शेवलिय** शब्द बना है। इसी तरह **इलच्** प्रत्यय होने के पक्ष में भी दत्त-शब्द का लोप और अकारलोप होकर **शेवलिल** शब्द बना है। तीनों जगह एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **शेवलिकः, शेवलियः, शेवलिलः** ये तीन रूप सिद्ध हो जाते हैं।

सुपरिकः। अनुकम्पायुक्त सुपरिदत्त। **अनुकम्पितः सुपरिदत्तः** विग्रह करके **सुपरिदत्त+सु** इस स्थिति में उपर्युक्त रीति से ठच्, घन्, इलच् आदि प्रत्ययों के होने पर तृतीय अच् से आगे के भाग **दत्त** शब्द का **शेवलसुपरिविशालवरुणार्यमादीनां तृतीयात्** सूत्र से लोप होने पर भसंज्ञक अकार का लोप और स्वादिकार्य करके **सुपरिकः, सुपरियः, सुपरिलः** रूप सिद्ध हो जाते हैं।

विशालिकः। अनुकम्पायुक्त विशालदत्त। **अनुकम्पितः विशालदत्तः** विग्रह करके **विशालदत्त+सु** इस स्थिति में उपर्युक्त रीति से ठच्, घन्, इलच् आदि प्रत्ययों के होने पर तृतीय अच् से आगे के भाग **दत्त** शब्द का **शेवलसुपरिविशालवरुणार्यमादीनां तृतीयात्** सूत्र से लोप होने पर भसंज्ञक अकार का लोप और स्वादिकार्य करके **विशालिकः, विशालियः** और **विशालिलः** रूप सिद्ध हो जाते हैं।

वरुणिकः। अनुकम्पायुक्त वरुणदत्त। **अनुकम्पितो वरुणदत्तः** विग्रह करके **वरुणदत्त+सु** इस स्थिति में उपर्युक्त रीति से ठच्, घन्, इलच् आदि प्रत्ययों के होने पर तृतीय अच् से आगे के भाग **दत्त** शब्द का **शेवलसुपरिविशालवरुणार्यमादीनां तृतीयात्** सूत्र से लोप होने पर भसंज्ञक अकार का लोप और स्वादिकार्य करके **वरुणिकः, वरुणियः, वरुणिलः** रूप सिद्ध हो जाते हैं।

अर्यमिकः। अनुकम्पायुक्त अर्यमदत्त। **अनुकम्पितः अर्यमदत्तः** विग्रह करके **अर्यमदत्त+सु** इस स्थिति में उपर्युक्त रीति से ठच्, घन्, इलच् आदि प्रत्ययों के होने पर तृतीय अच् से आगे के भाग **दत्त** शब्द का **शेवलसुपरिविशालवरुणार्यमादीनां तृतीयात्** सूत्र से लोप होने पर **अर्यमन्** शब्द के टिसंज्ञक भाग **अन्** का **नस्तद्धिते** सूत्र से लोप और स्वादिकार्य करके **अर्यमिकः, अर्यमियः, अर्यमिलः** रूप सिद्ध हो जाते हैं।

२०३९. अजिनान्तस्योत्तरपदलोपश्च ५।३।८२॥

अजिनान्तान्मनुष्यनाम्नोऽनुकम्पायां कन्, तस्य चोत्तरपदलोपः।
अनुकम्पितो व्याघ्राजिनो व्याघ्रकः। सिंहकः।

अजिनान्तस्योत्तरपदलोपश्च। अजिन-शब्दोऽन्ते यस्य स अजिनान्तस्तस्य अजिनान्तस्य, बहुव्रीहिः। उत्तरपदस्य लोपः- उत्तरपदलोपः षष्ठीतत्पुरुषः। अजिनान्तस्य षष्ठ्यन्तम्, उत्तरपदलोपः प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **जातिनाम्नः कन्** से **कन्** की, **बह्वचो मनुष्यनाम्नष्ठञ्वा** से **मनुष्यनाम्नः** की और **अनुकम्पायाम्** सूत्र की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

अजिन-शब्द अन्त वाले मनुष्य-नामधेय प्रातिपदिक से अनुकम्पा गम्यमान होने पर कन् प्रत्यय होता है और उस अजिनान्त शब्द के उत्तरपद (अजिन) का लोप भी होता है।

अजिन-शब्द चर्मवाची है।

अनुकम्पितो व्याघ्राजिनो व्याघ्रकः। अनुकम्पायुक्त व्याघ्राजिन नामक व्यक्ति। **व्याघ्राजिन** शब्द अजिनान्त है और अजिन-शब्द ही उत्तरपद है। **अनुकम्पितो व्याघ्राजिनः** विग्रह करके **व्याघ्राजिन+सु** इस स्थिति में **अजिनान्तस्योत्तरपदलोपश्च** सूत्र से **कन्** प्रत्यय के साथ उत्तरपद **अजिन** शब्द का लोप होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **व्याघ्रक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **व्याघ्रकः** सिद्ध हो जाता है।

सिंहकः। अनुकम्पायुक्त सिंहाजिन नामक व्यक्ति। **अनुकम्पितः सिंहाजिनः** विग्रह करके **सिंहाजिन+सु** इस स्थिति में **अजिनान्तस्योत्तरपदलोपश्च** सूत्र से **कन्** प्रत्यय के साथ उत्तरपद **अजिन** शब्द का लोप होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **सिंहक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सिंहकः** सिद्ध हो जाता है।

द्वितीयाच् से ऊपर का लोप या उत्तरपदलोप का प्रसंग यहाँ पूर्ण हो जाता है। अब आगे यथाविहित क-प्रत्यय या अकच् प्रत्यय का प्रसंग है। अतः **तिङश्च** की अनुवृत्ति भी प्रभावी है।

२०४०. अल्पे ५।३।८५॥

अल्पं तैलं तैलकम्।

अल्पे। सप्तम्यन्तमेकपदमिदं सूत्रम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है और **तिङः** की अनुवृत्ति है। **सुपः** का अर्थलाभ **प्रातिपदिकात्** से हो जाता है।

अल्प-अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक तथा तिङन्त से यथाविहित (क अथवा अकच्) प्रत्यय होते हैं।

अल्पं तैलं तैलकम्। थोड़ा तेल। **अल्पं तैलम्** विग्रह करके **तैल+सु** इस स्थिति में **अल्पे** सूत्र से क-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **तैलक** शब्द बना है तथा स्वादिकार्य से **तैलकम्** सिद्ध हो जाता है।

यहाँ मूलकार ने अव्यय, सर्वनाम और तिङन्त का उदाहरण नहीं दिया है किन्तु काशिकाकार ने **सर्वकम्, उच्चकैः, नीचकैः, पचतकि, जल्पतकि** आदि उदाहरण दिये हैं।

उच्चकैः। कम ऊँचा। **अल्पम् उच्चैः** विग्रह करके **उच्चैस्** शब्द से **अल्पे** सूत्र से यथाविहित प्रत्यय के क्रम में **अव्ययसर्वनाम्नामकच्प्राक्टेः** के अनुसार टिसंज्ञक भाग से पहले अकच्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **उच्च्+अक्+ऐस्=उच्चकैस्** शब्द बना है तथा स्वादिकार्य होने पर **अव्ययादाप्सुपः** से सुप् का लुक् और शब्द के सकार को रुत्व एवं उसको विसर्ग होकर **उच्चकैः** सिद्ध हो

पचतकि। कम पकाता है। **अल्पं पचति उच्चैः** विग्रह करके तिङन्त **पचित** शब्द से **अल्पे** सूत्र से यथाविहित प्रत्यय के क्रम में **अव्ययसर्वनाम्नामकच्प्राक्टेः** के अनुसार टिसंज्ञक भाग इकार से पहले अकच्-प्रत्यय होने पर **पचत्+अक्+इ=पचतकि** सिद्ध हो जाता है।

२०४१. ह्रस्वे ५।३।८६॥
ह्रस्वो वृक्षो वृक्षकः।

ह्रस्वे। सप्तम्यन्तमेकपदमिदं सूत्रम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है। ह्रस्वार्थ के साथ **तिङः** का अन्वय न हो पाने के कारण उसकी अनुवृत्ति नहीं है।

ह्रस्व=छोटा अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से यथाविहित (क अथवा अकच्) प्रत्यय होते हैं।

ह्रस्वो वृक्षः वृक्षकः। छोटा वृक्ष। **ह्रस्वो वृक्षः** विग्रह करके **वृक्ष+सु** इस स्थिति में **ह्रस्वे** सूत्र से क-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **वृक्षक** शब्द बना है तथा स्वादिकार्य से **वृक्षकः** सिद्ध हो जाता है।

२०४२. सञ्ज्ञायां कन् ५।३।८७॥
ह्रस्वहेतुका या संज्ञा तस्यां गम्यमानायां कन्। पूर्वस्यापवादः। वंशकः। वेणुकः।

सञ्ज्ञायां कन्। संज्ञायां सप्तम्यन्तं, कन् प्रथमान्तम्। **ह्रस्वे** की अनुवृत्ति आती है और **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

ह्रस्व=छोटा अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय होता है, संज्ञा के विषय में।

छोटा कहने में जो संज्ञा, उसके विषय में यह सूत्र लगता है।

पूर्वस्यापवादः। अर्थात् **ह्रस्वे** सूत्र से प्राप्त क-प्रत्यय का यह अपवाद है।

वंशकः। छोटे-छोटे बाँस के पेड़ों की संज्ञा है- **वंशकः**। यहाँ **ह्रस्वो वंशः** विग्रह करके **वंश+सु** इस स्थिति में **संज्ञायां कन्** सूत्र से कन्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **वंशक** शब्द बना है तथा स्वादिकार्य से **वंशकः** सिद्ध हो जाता है।

वेणुकः। छोटे-छोटे बाँस के पेड़ों की संज्ञा **वेणुक** भी है। यहाँ **ह्रस्वो वेणुः** विग्रह करके **वेणु+सु** इस स्थिति में **संज्ञायां कन्** सूत्र से कन्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **वेणुक** शब्द बना है तथा स्वादिकार्य से **वेणुकः** सिद्ध हो जाता है।

२०४३. कुटीशमीशुण्डाभ्यो रः ५।३।८८॥

ह्रस्वा कुटी कुटीरः। शमीरः। शुण्डारः।

कुटीशमीशुण्डाभ्यो रः। कुटी च शमी च शुण्डा च तासामितरेतरयोगद्वन्द्वः कुटीशमीशुण्डास्ताभ्यः कुटीशमीशुण्डाभ्यः पञ्चम्यन्तं, रः प्रथमान्तम्। **ह्रस्वे** की अनुवृत्ति आती है और **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

ह्रस्व=छोटा अर्थ में विद्यमान कुटी, शमी और शुण्डा इन प्रातिपदिकों से स्वार्थ में र-प्रत्यय होता है।

स्वार्थिक प्रत्ययों को लेकर लिंग और वचन के विषय में महाभाष्य में दो पक्ष हैं-

१. **स्वार्थिका लिङ्गवचनानि नातिवर्तन्ते।** अर्थात् स्वार्थिक प्रत्यय प्रकृति के लिंग और वचन का अतिक्रमण नहीं करते अर्थात् प्रकृति के मौलिक जो लिंग और वचन हैं, प्रत्ययान्त होने पर भी वही लिंग और वहीं वचन रहता है।

२. **स्वार्थिकाः क्वचित् प्रकृतितो लिङ्गवचनान्यतिवर्तते।** अर्थात् कहीं-कहीं स्वार्थिक प्रत्यय प्रकृति के लिंग और वचन का अतिक्रमण करते हैं अर्थात् प्रकृति के जो मौलिक लिंग-वचन हैं, प्रत्ययान्त होने पर उसका लिंग और वचन बदल जाता है।

उक्त दोनों पक्ष यथास्थान स्वीकार्य हैं। यहाँ अगले तीन उदाहरणों में द्वितीयपक्ष का आश्रयण किया जायेगा।

ह्रस्वा कुटी कुटीरः। छोटी कुटी। **ह्रस्वा कुटी** विग्रह करके **कुटी+सु** इस स्थिति में **कुटीशमीशुण्डाभ्यो रः** सूत्र से र-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **कुटीर** शब्द बना है तथा स्वादिकार्य से **कुटीरः** सिद्ध हो जाता है। यहाँ मौलिक स्त्रीलिंग का प्रत्ययान्त में अतिवर्तन हुआ है।

शमीरः। छोटा शमी का वृक्ष। **ह्रस्वा शमी** विग्रह करके **शमी+सु** इस स्थिति में **कुटीशमीशुण्डाभ्यो रः** सूत्र से र-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **शमीर** शब्द बना है तथा स्वादिकार्य से **शमीरः** सिद्ध हो जाता है। यहाँ पर भी मौलिक स्त्रीलिंग का प्रत्ययान्त में अतिवर्तन हुआ है।

शुण्डारः। छोटी सूँड़। **ह्रस्वा शुण्डा** विग्रह करके **शुण्डा+सु** इस स्थिति में **कुटीशमीशुण्डाभ्यो रः** सूत्र से र-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **शुण्डार** शब्द बना है तथा स्वादिकार्य से **शुण्डारः** सिद्ध हो जाता है। यहाँ पर भी मौलिक स्त्रीलिंग का प्रत्ययान्त में अतिवर्तन हुआ है।

२०४४. कुत्वा डुपच् ५।३।८९॥

ह्रस्वा कुतूः कुतुपः।

'कुतूः कृत्तिस्नेहपात्रं ह्रस्वा सा कुतुपः पुमान्।' इत्यमरः।

पचतकि। कम पकाता है। **अल्पं पचति उच्चैः** विग्रह करके तिङन्त **पचित** शब्द से **अल्पे** सूत्र से यथाविहित प्रत्यय के क्रम में **अव्ययसर्वनाम्नामकच्प्राक्टेः** के अनुसार टिसंज्ञक भाग इकार से पहले अकच्-प्रत्यय होने पर **पचत्+अक्+इ=पचतकि** सिद्ध हो जाता है।

२०४१. ह्रस्वे ५।३।८६॥
ह्रस्वो वृक्षो वृक्षकः।

ह्रस्वे। सप्तम्यन्तमेकपदमिदं सूत्रम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है। ह्रस्वार्थ के साथ **तिङः** का अन्वय न हो पाने के कारण उसकी अनुवृत्ति नहीं है।

ह्रस्व=छोटा अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से यथाविहित (क अथवा अकच्) प्रत्यय होते हैं।

ह्रस्वो वृक्षः वृक्षकः। छोटा वृक्ष। **ह्रस्वो वृक्षः** विग्रह करके **वृक्ष+सु** इस स्थिति में **ह्रस्वे** सूत्र से क-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **वृक्षक** शब्द बना है तथा स्वादिकार्य से **वृक्षकः** सिद्ध हो जाता है।

२०४२. सञ्ज्ञायां कन् ५।३।८७॥
ह्रस्वहेतुका या संज्ञा तस्यां गम्यमानायां कन्। पूर्वस्यापवादः। वंशकः। वेणुकः।

सञ्ज्ञायां कन्। संज्ञायां सप्तम्यन्तं, कन् प्रथमान्तम्। **ह्रस्वे** की अनुवृत्ति आती है और **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

ह्रस्व=छोटा अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय होता है, संज्ञा के विषय में।

छोटा कहने में जो संज्ञा, उसके विषय में यह सूत्र लगता है।

पूर्वस्यापवादः। अर्थात् **ह्रस्वे** सूत्र से प्राप्त क-प्रत्यय का यह अपवाद है।

वंशकः। छोटे-छोटे बाँस के पेड़ों की संज्ञा है- **वंशकः**। यहाँ **ह्रस्वो वंशः** विग्रह करके **वंश+सु** इस स्थिति में **संज्ञायां कन्** सूत्र से कन्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **वंशक** शब्द बना है तथा स्वादिकार्य से **वंशकः** सिद्ध हो जाता है।

वेणुकः। छोटे-छोटे बाँस के पेड़ों की संज्ञा **वेणुक** भी है। यहाँ **ह्रस्वो वेणुः** विग्रह करके **वेणु+सु** इस स्थिति में **संज्ञायां कन्** सूत्र से कन्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **वेणुक** शब्द बना है तथा स्वादिकार्य से **वेणुकः** सिद्ध हो जाता है।

२०४३. कुटीशमीशुण्डाभ्यो रः ५।३।८८॥

ह्रस्वा कुटी कुटीरः। शमीरः। शुण्डारः।

कुटीशमीशुण्डाभ्यो रः। कुटी च शमी च शुण्डा च तासामितरेतरयोगद्वन्द्वः कुटीशमीशुण्डास्ताभ्यः कुटीशमीशुण्डाभ्यः पञ्चम्यन्तं, रः प्रथमान्तम्। **ह्रस्वे** की अनुवृत्ति आती है और **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

ह्रस्व=छोटा अर्थ में विद्यमान कुटी, शमी और शुण्डा इन प्रातिपदिकों से स्वार्थ में र-प्रत्यय होता है।

स्वार्थिक प्रत्ययों को लेकर लिंग और वचन के विषय में महाभाष्य में दो पक्ष हैं-

१. **स्वार्थिका लिङ्गवचनानि नातिवर्तन्ते।** अर्थात् स्वार्थिक प्रत्यय प्रकृति के लिंग और वचन का अतिक्रमण नहीं करते अर्थात् प्रकृति के मौलिक जो लिंग और वचन हैं, प्रत्ययान्त होने पर भी वही लिंग और वहीं वचन रहता है।

२. **स्वार्थिकाः क्वचित् प्रकृतितो लिङ्गवचनान्यतिवर्तते।** अर्थात् कहीं-कहीं स्वार्थिक प्रत्यय प्रकृति के लिंग और वचन का अतिक्रमण करते हैं अर्थात् प्रकृति के जो मौलिक लिंग-वचन हैं, प्रत्ययान्त होने पर उसका लिंग और वचन बदल जाता है।

उक्त दोनों पक्ष यथास्थान स्वीकार्य हैं। यहाँ अगले तीन उदाहरणों में द्वितीयपक्ष का आश्रयण किया जायेगा।

ह्रस्वा कुटी कुटीरः। छोटी कुटी। **ह्रस्वा कुटी** विग्रह करके **कुटी+सु** इस स्थिति में **कुटीशमीशुण्डाभ्यो रः** सूत्र से र-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **कुटीर** शब्द बना है तथा स्वादिकार्य से **कुटीरः** सिद्ध हो जाता है। यहाँ मौलिक स्त्रीलिंग का प्रत्ययान्त में अतिवर्तन हुआ है।

शमीरः। छोटा शमी का वृक्ष। **ह्रस्वा शमी** विग्रह करके **शमी+सु** इस स्थिति में **कुटीशमीशुण्डाभ्यो रः** सूत्र से र-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **शमीर** शब्द बना है तथा स्वादिकार्य से **शमीरः** सिद्ध हो जाता है। यहाँ पर भी मौलिक स्त्रीलिंग का प्रत्ययान्त में अतिवर्तन हुआ है।

शुण्डारः। छोटी सूँड़। **ह्रस्वा शुण्डा** विग्रह करके **शुण्डा+सु** इस स्थिति में **कुटीशमीशुण्डाभ्यो रः** सूत्र से र-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **शुण्डार** शब्द बना है तथा स्वादिकार्य से **शुण्डारः** सिद्ध हो जाता है। यहाँ पर भी मौलिक स्त्रीलिंग का प्रत्ययान्त में अतिवर्तन हुआ है।

२०४४. कुत्वा डुपच् ५।३।८९॥

ह्रस्वा कुतूः कुतुपः।

'कुतूः कृत्तिस्नेहपात्रं ह्रस्वा सा कुतुपः पुमान्।' इत्यमरः।

कुत्वा डुपच्। कुतू-शब्दस्य पञ्चम्यन्तं रूपं कुत्वाः, डुपच् प्रथमान्तम्। **ह्रस्वे** की अनुवृत्ति आती है और **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

ह्रस्व=छोटा अर्थ में विद्यमान कुतू इस प्रातिपदिक से स्वार्थ में डुपच्-प्रत्यय होता है।

डुपच् में आदि डकार और अन्त्य चकार इत्संज्ञक हैं, **उप** बचता है। डित् परे रहते **टेः** सूत्र से टिसंज्ञक भाग का लोप होता है। चूँकि **यस्येति च** से इकार और अकार की ही इत्संज्ञा होती है, अतः **कुतू** में उकार की इत्संज्ञा के लिये टिलोप आवश्यक है, एतदर्थ डित्करण की सार्थकता सिद्ध होती है।

ह्रस्वा कुतूः कुतुपः। चमड़े से बना छोटा थैला। **ह्रस्वा कुतूः** विग्रह करके **कुतू+सु** इस स्थिति में **कुत्वा डुपच्** सूत्र से डुपच्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिसंज्ञा, सुप् का लोप और **टेः** सूत्र से टिसंज्ञक भाग ऊकार का लोप होकर **कुतुप** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कुतुपः** सिद्ध होता है। यहाँ पर भी मौलिक स्त्रीलिंग का प्रत्यय से अतिवर्तन हुआ है।

'कुतूः कृत्तिस्नेहपात्रं ह्रस्वा सा कुतुपः पुमान्।' इत्यमरः। अमरकोशकार ने लिखा है कि घी आदि रखने के लिये चमड़े से बने कुप्पा को **कुतूः** कहते हैं और वही छोटा हो तो उसे **कुतुपः** कहा जाता है एवं वह पुंल्लिंग में प्रयुक्त होता है।

२०४५. कासूगोणीभ्यां ष्टरच् ५।३।९०॥

आयुधविशेषः कासूः। ह्रस्वा सा कासूतरी। गोणीतरी।

कासूगोणीभ्यां ष्टरच्। कासूश्च गोणी च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः कासूगोण्यौ, ताभ्यां कासूगोणीभ्यां पञ्चम्यन्तं, ष्टरच् प्रथमान्तम्। **ह्रस्वे** की अनुवृत्ति आती है और **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

ह्रस्व=छोटा अर्थ में विद्यमान कासू और गोणी इन प्रातिपदिकों से स्वार्थ में ष्टरच्-प्रत्यय होता है।

ष्टरच् में आदि षकार की **षः प्रत्ययस्य** से इत्संज्ञा होती है और अन्त्य चकार तो **हलन्त्यम्** सूत्र से इत्संज्ञक है ही। इस तरह **तर** बचता है, क्योंकि षकार के योग में तकार को **ष्टुना ष्टुः** सूत्र से ष्टुत्व होकर टकार बन गया था। अब निमित्त षकार का लोप होने से नैमित्तिक टकार की भी निवृत्ति हो जाती है, जिससे **तर** बन जाता है। षित्करण स्त्रीत्व में **षिद्गौरादिभ्यश्च** से ङीष्-प्रत्यय के लिये है।

आयुधविशेषः कासूः। ह्रस्वा सा कासूतरी। आयुध-विशेष **कासू** है और वही छोटा हो तो उसे **कासूतरी** कहते हैं। लघु-शक्ति वाला अस्त्र-विशेष। **ह्रस्वा कासूः** विग्रह करके **कास्+सु** इस स्थिति में **कासूगोणीभ्यां ष्टरच्** सूत्र से ष्टरच्-प्रत्यय होने

पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **कासूतर** शब्द बना है। स्त्रीत्वविवक्षा में **षिद्गौरादिभ्यश्च** सूत्र से ङीष् होने पर भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** सूत्र से लोप होकर **कासूतरी** शब्द बन गया है। स्वादिकार्य से **कासूतरी** सिद्ध हो जाता है।

गोणीतरी। छोटी बोरी, छोटा थैला। **ह्रस्वा गोणी** विग्रह करके **गोणी+सु** इस स्थिति में **कासूगोणीभ्यां ष्टरच्** सूत्र से ष्टरच्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **गोणीतर** शब्द बना है। स्त्रीत्वविवक्षा में **षिद्गौरादिभ्यश्च** सूत्र से ङीष् होने पर भसंज्ञक अकार का **यस्येति च** सूत्र से लोप होकर **गोणीतरी** शब्द बन गया है। स्वादिकार्य से **गोणीतरी** सिद्ध हो जाता है।

२०४६. वत्सोक्षाश्वर्षभेभ्यश्च तनुत्वे ५।३।९१॥

वत्सतरः। द्वितीयं वयः प्राप्तः। उक्षतरः। अश्वतरः। ऋषभतरः।
प्रवृत्तिनिमित्ततनुत्व एवायम्।

वत्सोक्षाश्वर्षभेभ्यश्च तनुत्वे। वत्सश्च उक्षा (उक्षन्) च, अश्वश्च ऋषभश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो वत्सोक्षाश्वर्षभास्तेभ्यो वत्सोक्षाश्वषभेभ्यः पञ्चम्यन्तं, तनुत्वे सप्तम्यन्तम्। **कासूगोणीभ्यां ष्टरच्** से **ष्टरच्** की अनुवृत्ति आती है और **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

तनुत्वे=अल्पता अर्थ में विद्यमान वत्स, उक्षन्, अश्व और ऋषभ इन प्रातिपदिकों से स्वार्थ में ष्टरच्-प्रत्यय होता है।

जिस शब्द का जिस गुण के कारण प्रयोग होता है, अर्थात् जिस अर्थ के लिये शब्द की प्रवृत्ति होती है वह उसका प्रवृत्तिनिमित्त होता है। यहाँ उसका तनुत्व यहाँ पर विवक्षित है।

वत्सतरः। द्वितीयं वयः प्राप्तः। बछड़े की प्रथम अवस्था (वत्सत्व; का बीत जाना अर्थात् उसकी प्रथम अवस्था में न्यूनता (तनुता) आ चुकी है, अतः उसे **वत्सतर** कहा जाता है। **तनुत्वं प्राप्तो वत्सः** विग्रह करके **वत्स+सु** इस स्थिति में **वत्सोक्षाश्वर्षभेभ्यश्च तनुत्वे** सूत्र से **ष्टरच्** (**तर**) प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **वत्सतर** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वत्सतरः** सिद्ध हो जाता है।

उक्षतरः। युवा बैल को **उक्षा** कहते हैं और उस अवस्था को पार कर जो बैल तृतीय अवस्था में पहुँच गया है, उसे **उक्षतर** कहा जाता है। **तनुत्वं प्राप्त उक्षा** विग्रह करके **उक्षन्+सु** इस स्थिति में **वत्सोक्षाश्वर्षभेभ्यश्च तनुत्वे** सूत्र से **ष्टरच्** (**तर**) प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होने पर नकार का **नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य** सूत्र से लोप होकर **उक्षतर** शब्द बना है। स्वादिकार्य होकर **उक्षतरः** सिद्ध हो जाता है।

अश्वतरः। अश्व से गर्दभी में उत्पन्न को **अश्वतर** कहा जाता है। यहाँ जातिसांकर्य रूप न्यूनता प्रतीत है। **तनुत्वं प्राप्तः अश्वः** विग्रह करके **अश्व+सु** इस स्थिति में **वत्सोक्षाश्वर्षभेभ्यश्च तनुत्वे** सूत्र से **ष्टरच्** (**तर**) प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **अश्वतर** शब्द बना है। स्वादिकार्य होकर **अश्वतरः** सिद्ध हो जाता है।

ऋषभतरः। जिस बैल में भार ढोने में कमजोर हो जाने के कारण न्यूनता प्रतीत हो, उसे **ऋषभतर** कहा गया है। **तनुत्वं प्राप्तः ऋषभः** विग्रह करके **ऋषभ+सु** इस स्थिति में **वत्सोक्षाश्वर्षभेभ्यश्च तनुत्वे** सूत्र से **ष्टरच्** (**तर**) प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **ऋषभतर** शब्द बना है। स्वादिकार्य होकर **ऋषभतरः** सिद्ध हो जाता है।

प्रवृत्तिनिमित्ततनुत्व एवायम्। यहाँ यह प्रश्न आता है कि शारीरिक दुर्बलता (कृशता) भी न्यूनता ही है। अतः **दुर्बल शरीरधारी वत्स** अर्थ को अभिप्रेत कर **वत्स** शब्द से ष्टरच्-प्रत्यय न होने में क्या प्रमाण है? इसके उत्तर में मूलकार ने कहा है कि **प्रवृत्तिनिमित्त तनुत्व में ही प्रकृत सूत्र लगता है।** अर्थात् जिस गुण के विद्यमान होने से जिस शब्द का प्रयोग प्रचलित हो, उसी गुण की न्यूनता अपेक्षित है, न कि सामान्यतः कृशता की। जैसे प्रथम वयोविशेष के रूप में **वत्स** शब्द की सार्थकता है, अतः उस वयोविशिष की न्यूनता में ही प्रकृत सूत्र की प्रवृत्ति होती है।

२०४७. किंयत्तदो निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच् ५।३।९२॥

अनयोः कतरो वैष्णवः। यतरः। ततरः।

महाविभाषया कः। यः। सः।

किंयत्तदो निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच्। किम् च यत् च तत् च(किञ्च, यच्च, तच्च) तेषां समाहारद्वन्द्वः किंयत्तद्. तस्मात्। किंयत्तदः पञ्चम्यन्तं, निर्धारणे सप्तम्यन्तं, द्वयोः षष्ठ्यन्तं, एकस्य षष्ठ्यन्तं, डतरच् प्रथमान्तम् अनेकपदमिदं सूत्रम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

दो में से एक का निर्धारण गम्यमान होने पर किम्, यत्, तत् से डतरच् प्रत्यय होता है।

जाति, गुण, क्रिया और संज्ञाओं के द्वारा समुदाय से एक भाग को अलग करना **निर्धारण** कहलाता है।

डकार की **चुटू** से इत्संज्ञा होती है और चकार भी इत्संज्ञक है। **अतर** बचता है। डित् होने से **टेः** से टि का लोप होता है।

अनयोः कतरो वैष्णवः। इन दोनों में से कौन वैष्णव है? **किम् सु** से **किंयत्तदो निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच्** से डतरच् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अतर बचा।

प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, किम् में **इम्** टि है, उसका लोप होने पर **क्+अतर=कतर** बना और सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **कतरः** सिद्ध हुआ।

यतरः। इन दोनों में से जो विशेष हो। **यत् सु** इस अलौकिक विग्रह में **किंयत्तदो निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच्** से डतरच्प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अतर बचा। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **त्यदादीनामः** से अत्व, पररूप और अ टि है, उसका लोप होने पर **य्+अतर=यतर** बना और सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **यतरः** सिद्ध हुआ। इसी तरह **तद्** से **ततरः** बन जाता है।

महाविभाषया कः। यः। सः। अर्थात् **समर्थानां प्रथमाद्वा** से **वा** पद की अनुवृत्ति होने के कारण उक्त डतरच् प्रत्यय वैकल्पिक है। अतः पक्ष में क्रमशः **कः, यः, सः** रूप भी बने रहते हैं।

२०४८. वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच् ५।३।९३॥

बहूनां मध्ये निर्धारणे डतमच्वा स्यात्।

'जातिपरिप्रश्ने' इति प्रत्याख्यातमाकरे। कतमो भवतां कठः। यतमः। ततमः। वाग्रहणमकजर्थम्। यकः। सकः। महाविभाषया कः, यः, सः। किमोऽस्मिन्विषये डतरजपि। कतरः।

वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच्। वाव्ययपदं, बहूनां षष्ठ्यन्तं, जातिपरिप्रश्ने सप्तम्यन्तं, डतमच् प्रथमान्तम् अनेकपदमिदं सूत्रम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

अनेकों मे से एक के निर्धारण में डतमच् प्रत्यय होता है।

डकार और **चकार** इत्संज्ञक हैं, **अतम** बचता है।

जातिपरिप्रश्ने इति प्रत्याख्यातमाकरे। अर्थात् महाभाष्य में **जातिपरिप्रश्ने** इतने शब्दों का प्रत्याख्यान किया गया है। **प्रत्याख्यान** का अर्थ **खण्डन** भी होता है। **जातिपरिप्रश्ने** इस शब्द की सूत्र में आवश्यकता नहीं है, यह बात महाभाष्यकार पतंजलि ने की है। **प्रत्याख्यान** का अर्थ एकदम खण्डन करना नहीं है अपितु इसका दृष्टफल अर्थात् तात्कालिक फल नहीं है किन्तु वेदांग सूत्रों के पारायण से पुण्यादि की प्राप्ति होती है, यह अदृष्ट फल अवश्य है। अतः इसका पारायण तो यथावत् करना ही चाहिए किन्तु प्रयोगों की सिद्धि के लिए इसको आवश्यक नहीं समझना चाहिए।

कतमो भवतां कठः। इनमें से कौन सा कठ (वेद का भाग) है आपका? **कतमो भवतां कठः** विग्रह करके **किम्+सु** अलौकिक विग्रह में **वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच्** से डतमच् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, **अतम** बचा। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **किम्** में **इम्** टि है, उसका लोप होने पर **क्+अतम=कतम** बना। सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **कतमः** सिद्ध हो जाता है।

यतमः, ततमः। जौन सा, तौन सा। **कतमः** की तरह **यत्**-शब्द से **तमप्** प्रत्यय करके **यतमः** और **तत्** शब्द से **तमप्** प्रत्यय होने पर **ततमः** भी सिद्ध हो जाते हैं।

एषु कतमः पटुः। इनमें से कौन चतुर है? **किम् सु** से **वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच्** से डतमच् प्रत्यय, अनुबन्धलोप, अतम बचा। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, किम् में इम् टि है, उसका लोप होने पर **क्+अतम=कतम** बना। सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **कतमः** सिद्ध हुआ।

वाग्रहणमकजर्थम्। यकः। सकः। अर्थात् **वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच्** में **वा** पठित है, इससे **अकच्** का भी ग्रहण करने का संकेत मिलता है। अतः जैसे **डतमच्** करके **यतमः, ततमः** बनाये गये, वैसे उनसे **अकच्** भी करके **यकः, सकः** भी बनाये जा सकते हैं। अतः **यको भवतां कठः, सको भवतां कठः** आदि प्रयोग होते हैं।

महाविभाषया कः, यः, सः। अर्थात् **वा** पद की अनुवृत्ति से उक्त प्रत्यय वैकल्पिक है, अतः पक्ष में **कः, यः, सः** तो बनते ही हैं।

किमोऽस्मिन्विषये डतरजपि। कतरः। प्रकृत सूत्र के विषय में **किम्** शब्द से **डतरच्** प्रत्यय भी होता है। अतः **कतमः** की तरह **कतरः** भी बनता है।

२०४९. एकाच्च प्राचाम् ५।३।९४॥

डतरच् डतमच्च स्यात्। अनयोरेकतरो मैत्रः। एषामेकतमः।

एकाच्च प्राचाम्। एकात् पञ्चम्यन्तं, चाव्ययं, प्राचां षष्ठ्यन्तम्। **बहूनां डतमच्, निर्धारणे, एकस्य डतरच्** की अनुवृत्ति और **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

एक शब्द से भी प्राचीन आचार्यों के मत में दो में से एक के निर्धारण में डतरच् और बहुतों में से एक के निर्धारण में डतमच् प्रत्यय होता है।

इसका विषय पूर्वसूत्रोक्त दोनों अर्थों से सम्बद्ध है। भाष्यकार ने **प्राचाम्** ग्रहण की उपयोगिता को स्वीकार नहीं किया है। अतः अकच् नहीं होगा। उसका कारण यह है कि महाविभाषा से ही विकल्पार्थ का बोध हो सकता है।

अनयोरेकतरो मैत्रः। इन दोनों में से एक मैत्र है। **अनयोः एकः मैत्रः** विग्रह करके **एक+सु** इस स्थिति में **एकाच्च प्राचाम्** सूत्र से डतरच् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् करने पर टिसंज्ञक भाग अकार का लोप करके **एकतर** शब्द बनता है और स्वादिकार्य से **एकतरः** सिद्ध हो जाता है।

एषामेकतमः। इन सबों में से एक मैत्र है। **एषु एकः मैत्रः** विग्रह करके **एक+सु** इस स्थिति में **एकाच्च प्राचाम्** सूत्र से डतमच् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् करने पर टिसंज्ञक भाग अकार का लोप करके **एकतम** शब्द बनता है और स्वादिकार्य से **एकतमः** सिद्ध हो जाता है।

२०५०. अवक्षेपणे कन् ५।३।९५॥

व्याकरणकेन गर्वितः। येनेतरः कुत्स्यते तदिहोदाहरणम्। स्वतः कुत्सितं तु 'कुत्सिते' (सू.२०२९) इत्यस्य। इति तद्धितेषु प्रागिवीयप्रकरणम्।

अवक्षेपणे कन्। अवक्षेपणे सप्तम्यन्तं, कन् प्रथमान्तम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

अवक्षेपण=दूसरे की निन्दा अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में कन् प्रत्यय होता है।

व्याकरणकेन गर्वितः। व्याकरण-ज्ञान के कारण तू अभिमान में है। **व्याकरण+टा** इस स्थिति में **अवक्षेपणे कन्** सूत्र से कन्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् करके **व्याकरणक** शब्द बनता है और स्वादिकार्य होने पर तृतीयैकवचन में **व्याकरणकेन** प्रयोग सिद्ध हो जाता है।

येनेतरः कुत्स्यते तदिहोदाहरणम्। स्वतः कुत्सितं तु 'कुत्सिते' इत्यस्य। अर्थात् दूसरे की निन्दा के लिये जिस विषय का निर्देश किया जाय, तद्वाचक शब्द से ही यहाँ प्रत्यय किया जाता है और वही उदाहरण बनता है किन्तु जो स्वतः कुत्सित है, उसमें **कुत्सिते** सूत्र से कन् प्रत्यय किया जाता है। इस तरह **अवक्षेपणे कन्** और **कुत्सिते** इन दो सूत्रों में सूक्ष्म अन्तर विद्यमान है। उपर्युक्त उदाहरण में व्याकरण की स्वतः निन्दा नहीं की गयी है किन्तु अध्ययन के कारण अध्येता की निन्दा गम्यमान है। अतः **अवक्षेपण** शब्द करणार्थ में ल्युट्-प्रत्ययान्त माना गया है।

श्री भट्टोजिदीक्षित द्वारा विरचित वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी की गोविन्दाचार्य कृत श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी टीका में तद्धित-प्रागिवीय-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ स्वार्थिकप्रकरणम्

अब स्वार्थिक प्रत्ययों का निरूपण आरम्भ होता है। स्वार्थिक प्रत्ययों में अवयवार्थ के अतिरिक्त अर्थान्तर व्यक्त नहीं होता, अर्थात् प्रकृतिभूत शब्द के अर्थ से भिन्न अर्थ न होने के कारण इस प्रकरण को **स्वार्थिकप्रकरण** कहा जाता है। जहाँ पर प्रकृति का भी वही अर्थ और प्रकृति-प्रत्यय-समुदाय का भी वही अर्थ हो उसे स्वार्थिक कहा जाता है। महावैयाकरण भर्तृहरि के अनुसार स्वार्थिक दो प्रकार के होते हैं- **असत्त्वभूतार्थ** और **सत्त्वभूतार्थ**। इनमें से प्रत्येक वाचक, द्योतक, विशेषक, सहायकाभिधायक, सार्थक और निरर्थक- छह प्रकार के होते हैं।

२०५१. इवे प्रतिकृतौ ५।३।९६॥

कन् स्यात्। अश्व इव प्रतिकृतिः अश्वकः।
'प्रतिकृतौ' किम्? गौरिव गवयः।

इवे प्रतिकृतौ। इवे सप्तम्यन्तं, प्रतिकृतौ सप्तम्यन्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अवक्षेपणे कन्** से **कन्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

इवार्थ=उपमान अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में कन् प्रत्यय होता है, यदि उपमेय प्रतिकृति (प्रतिमा, मूर्ति, चित्र) हो तो।

नकार इत्संज्ञक है, **क** ही शेष रहता है।

अश्वकः। अश्व की तरह प्रतिमा। **अश्वस्य इव प्रतिकृतिः** लौकिक विग्रह और **अश्व+सु** अलौकिक विग्रह है। **इवे प्रतिकृतौ** से कन्, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **अश्वकः** सिद्ध हो जाता है।

उष्ट्रकः। ऊँट की प्रतिमा। **उष्ट्रस्य इव प्रतिकृतिः** लौकिक विग्रह और **उष्ट्र सु** अलौकिक विग्रह है। **इवे प्रतिकृतौ** से कन्, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, सु विभक्ति, रुत्वविसर्ग करके **उष्ट्रकः** सिद्ध हुआ।

'प्रतिकृतौ' किम्? गौरिव गवयः। प्रकृत सूत्र में **प्रतिकृतौ** पद का निवेश होने के कारण प्रतिकृति अर्थ गम्य होने पर ही यह प्रत्यय होता है, अन्यथा नहीं होता।

अतः **गौः इव गवयः** (गाय के समान गवय होता है) इस वाक्य में प्रतिकृति अर्थ का बोध न होने से गो-शब्द से कन्-प्रत्यय नहीं हुआ। मिट्टी आदि निर्मित प्रतिमा आदि को प्रतिकृति कहा जाता है, यहाँ पर तो साक्षात् **गवय** ही प्रत्यक्ष उपस्थित है।

२०५२. सञ्ज्ञायां च ५।३।९७॥

इवार्थे कन् स्यात् समुदायश्चेत्सञ्ज्ञा। अप्रतिकृत्यर्थमारम्भः।
अश्वसदृशस्य सञ्ज्ञा अश्वकः। उष्ट्रकः।

सञ्ज्ञायां च। संज्ञायां सप्तम्यन्तं, चाव्ययम्। **इवे प्रतिकृतौ** से **इवे** की और **अवक्षेपणे कन्** से **कन्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

इवार्थ=उपमान अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में कन् प्रत्यय होता है, यदि प्रकृति-प्रत्यय के समुदाय से संज्ञा का बोध हो रहा हो तो।

अप्रतिकृत्यर्थमारम्भः। पूर्वसूत्र से प्रतिकृति गम्य होने पर कन् का विधान किया गया है और इस सूत्र का आरम्भ अप्रतिकृति के लिये है।

अश्वसदृशस्य सञ्ज्ञा अश्वकः। यह अश्व-सदृश मनुष्यभिन्न किसी प्राणी की संज्ञा है- **अश्वकः।** यहाँ पर **अश्व इव प्रतिकृतिः** विग्रह करके **अश्व+सु** इस स्थिति में **संज्ञायां च** सूत्र से कन्-प्रत्यय करने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् करके **अश्वक** और स्वादिकार्य से **अश्वकः** सिद्ध हो जाता है।

उष्ट्रकः। यह ऊँट के समान मनुष्यभिन्न किसी प्राणी की संज्ञा है- **उष्ट्रकः।** यहाँ पर **उष्ट्र इव प्रतिकृतिः** विग्रह करके **उष्ट्र+सु** इस स्थिति में **संज्ञायां च** सूत्र से कन्-प्रत्यय करने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् करके **उष्ट्रक** और स्वादिकार्य से **उष्ट्रकः** सिद्ध हो जाता है।

२०५३. लुम्मनुष्ये ५।३।९८॥

'सञ्ज्ञायां च' इति विहितस्य कनो लुप् स्यान्मनुष्ये वाच्ये।
'चञ्चा तृणमयः पुमान्'। चञ्चेव मनुष्यश्चञ्चा। वर्ध्रिका।

लुम्मनुष्ये। लुप् प्रथमान्तं, मनुष्ये सप्तम्यन्तम्। **सञ्ज्ञायां च** से **संज्ञायाम्** की, **इवे प्रतिकृतौ** से **इवे** की और **अवक्षेपणे कन्** से **कन्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

संज्ञा के विषय में इवार्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में विहित कन् प्रत्यय का लुक् होता है, यदि मनुष्य वाच्य हो तो।

पूर्वसूत्र **संज्ञायां च** से विहित प्रत्यय का लुप् किया गया है। **लुप्** भी लुक्, श्लु की तरह प्रत्यय का अदर्शन ही है- **प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः।**

'चञ्चा तृणमयः पुमान्'। चञ्चेव मनुष्यश्चञ्चा। तृणों से निर्मित पुरुष को **चञ्चा** कहते हैं और उसका आघात न सहने वाला व्यक्ति भी **चञ्चा** कहलाता है। **चञ्चा इव** विग्रह करके **चञ्चा+सु** इस स्थिति में **संज्ञायां च** सूत्र से कन्-प्रत्यय होने पर उसका **लुम्मनुष्ये** सूत्र से लुप् (लोप) हो जाता है। स्वादिकार्य होकर **चञ्चा** ही सिद्ध हो जाता है। यहाँ पुरुष का वाचक होने के कारण पुंल्लिंग हो जाना चाहिये था किन्तु **लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने (१.२.५१)** सूत्र से युक्तवद्भाव (प्रकृति के समान लिंग और वचन) हो जाने से स्त्रीलिंग ही रहा।

वर्ध्रिका। चर्ममय रज्जु-सदृश मनुष्य। **वर्ध्रिका इव** विग्रह करके **वर्ध्रिका+सु** इस स्थिति में **संज्ञायां च** सूत्र से कन्-प्रत्यय होने पर उसका **लुम्मनुष्ये** सूत्र से लुप् (लोप) हो जाता है। स्वादिकार्य होकर **वर्ध्रिका** ही सिद्ध हो जाता है। यहाँ पर भी **लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने (१.२.५१)** सूत्र से युक्तवद्भाव (प्रकृति के समान लिंग और वचन) हो जाने से स्त्रीलिंग ही रहा।

२०५४. जीविकार्थे चापण्ये ५।३।९९॥

जीविकार्थं यदविक्रीयमाणं तस्मिन् वाच्ये कनो लुप् स्यात्।
वासुदेवः। शिवः। स्कन्दः।
देवलकानां जीविकार्थासु देवप्रतिकृतिष्विदम्।
'अपण्ये' किम्? हस्तिकान् विक्रीणीते।

जीविकार्थे चापण्ये। जीविकायै इदं जीविकार्थम्, तस्मिन् जीविकार्थे, तत्पुरुषः। न पण्यम् अपण्यं तस्मिन् अपण्ये। **लुम्मनुष्ये** से **लुप्, मनुष्ये** की, **इवे प्रतिकृतौ** से **इवे** की और **अवक्षेपणे कन्** से **कन्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

जो प्रतिमा जीविकोपार्जन हेतु बनायी गयी है, परन्तु उसे बेचा न जाय तो तद्वाची प्रातिपदिक से प्रतिकृति अर्थ में विहित कन्-प्रत्यय का लुप् होता है, यदि मनुष्य अर्थ वाच्य हो तो।

मनुष्य अभिधेय होने पर कन्-प्रत्यय के लुप् का ही प्रसंग है। **इवे प्रतिकृतौ** सूत्र से विहित कन् का ही लुप् होगा। पूजा के योग्य वासुदेवादि की प्रतिमाओं को बेचना अपराध है। अतः उन्हें **अपण्य** कहा जाता है। उन्हीं को जीविका के लिये दिखा-दिखाकर घूमने का मार्ग **देवपथ** कहा जाता है। इस प्रकार वे प्रतिकृतियाँ अपण्य होते हुये भी जीविकार्थ हो गयीं। इस दृष्टि से यहाँ उदाहरण दिये जा रहे हैं।

वासुदेवः। जीविकोपार्जन के लिये वासुदेव=श्रीकृष्ण की मूर्ति जो विक्रय के लिये नहीं है। **वासुदेवतुल्या जीविकार्था अविक्रेया प्रतिकृतिः** विग्रह करके **वासुदेव+सु** इस स्थिति में **इवे प्रतिकृतौ** सूत्र से कन्-प्रत्यय होने पर उसका **जीविकार्थे चापण्ये**

सूत्र से लुप् (लोप) हो जाता है। अतः **वासुदेव** ही बना है। स्वादिकार्य से **वासुदेवः** सिद्ध हो जाता है।

शिवः। जीविकोपार्जन के लिये शंकर जी की मूर्ति जो विक्रय के लिये नहीं है। **शिवतुल्या जीविकार्था अविक्रेया प्रतिकृतिः** विग्रह करके **शिव+सु** इस स्थिति में **इवे प्रतिकृतौ** सूत्र से कन्-प्रत्यय होने पर उसका **जीविकार्थे चापण्ये** सूत्र से लुप् (लोप) हो जाता है। अतः **शिव** ही बना है। स्वादिकार्य से **शिवः** सिद्ध हो जाता है।

स्कन्दः। जीविकोपार्जन के लिये कार्तिकेय की मूर्ति जो विक्रय के लिये नहीं है। **स्कन्दतुल्या जीविकार्था अविक्रेया प्रतिकृतिः** विग्रह करके **स्कन्द+सु** इस स्थिति में **इवे प्रतिकृतौ** सूत्र से कन्-प्रत्यय होने पर उसका **जीविकार्थे चापण्ये** सूत्र से लुप् (लोप) हो जाता है। अतः **स्कन्द** ही बना है। स्वादिकार्य से **स्कन्दः** सिद्ध हो जाता है।

देवलकानां जीविकार्थासु देवप्रतिकृतिष्विदम्। देवलकों की जीविका के लिये देवताओं की प्रतिकृति=प्रतिमा के विषय में यह लुग्विधान है। जो अपनी व्यक्तिगत आजीविका के लिये देवताओं की मूर्ति दिखा-दिखाकर द्रव्यार्जन करते हैं, ऐसी प्रतिमाओं के विषय में यहाँ पर कथन है। ऐसे लोगों को **देवलक** कहा जाता है। जो धनार्जन के लिये मन्दिर आदि बनाकर प्रतिमाओं को विराजमान कराते हैं अर्थात् देवमूर्ति के माध्यम से धनार्जन करते हैं, उन्हें भी देवलक कहा जाता है। देवमूर्तियों को बेचते तो नहीं हैं किन्तु उनके नाम पर धनार्जन करते हैं।

'अपण्ये' किम्? हस्तिकान् विक्रीणीते। प्रकृतसूत्र में **अपण्ये** पद के कारण जो पण्य=विक्रय करने योग्य प्रतिकृति है, उस शब्द से लुप् नहीं होता। जैसे कि **हस्तिकान् विक्रीणीते** (हाथियों की प्रतिकृति को बेचता है) में कन् हो गया है। यहाँ कन्-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और नकार का **नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य** से लोप होकर **हस्तिक** शब्द बनता है। इसके बाद स्वादिकार्य किया जाता है। इस तरह लुप् के विषय को नियत कर दिया गया है।

बालमनोरमाकार ने प्रकृतसूत्र के विषय में विद्वानों के लिये चुनौती-भरा एक प्रसिद्ध श्लोक उद्धृत किया है-

रामं सीतां लक्ष्मणं जीविकार्थे विक्रीणीते यो नरस्तं च धिग्धिक्।
अस्मिन् पद्ये योऽपशब्दं न वेत्ति व्यर्थप्रज्ञं पण्डितं तं च धिग्धिक्॥ अर्थात् जीविका के लिये राम, सीता और लक्ष्मण की प्रतिकृति को जो मनुष्य बेचता है, उसे बारम्बार धिक्कार है, इस पद्यार्ध में जो पण्डित अपशब्द को नहीं ढूँढ़ पाता, उस व्यर्थप्रज्ञ को भी बारम्बार धिक्कार है। यह पद्यार्थ है। प्रस्तुत श्लोक में राम, सीता तथा लक्ष्मण शब्द उनकी प्रतिमा के लिये कहे गये हैं। **विक्रीणीते** पद से विक्रय (पण्य) अर्थ सूचित हो रहा है। अतः यहाँ **जीविकार्थे चापण्ये** सूत्र से लुप् (लोप) प्राप्त नहीं होता अर्थात् कन्-प्रत्यय युक्त **रामकम्, सीतकाम्, लक्ष्मणकम्** ऐसे प्रयोग साधु होते हैं। जो

कन्-प्रत्यय रहित **रामम्, सीताम्, लक्ष्मणम्** को ही साधु मानता है, उसकी प्रज्ञा को और उसको भी बारम्बार धिक्कार है।

२०५५. देवपथादिभ्यश्च ५।३।१००॥

कनो लुप् स्यात्। देवपथः। हंसपथः। आकृतिगणोऽयम्।

देवपथादिभ्यश्च। देवपथ आदिर्येषां ते देवपथादयस्तेभ्यो देवपथादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **लुम्मनुष्ये** से **लुप्** की, **इवे प्रतिकृतौ** से **इवे, प्रतिकृतौ** की और **अवक्षेपणे कन्** से **कन्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

देवपथ आदि शब्दों से स्वार्थ प्रतिकृति को बतलाने के अभिप्राय से विहित कन्-प्रत्यय का लुप् होता है।

देवपथः। देवों के मार्ग की आकृति। **देवानां पन्थाः देवपथः। ऋक्पूरधूःपथामानक्षे** से समासान्त अ-प्रत्यय होकर **देवपथः** बना है। उसके बाद **तत्प्रतिकृतिः** अर्थ में **देवपथ+सु** इस स्थिति में **इवे प्रतिकृतौ** से विहित कन् प्रत्यय का **देवपथादिभ्यश्च** सूत्र से लुप् होने पर **देवपथ** और स्वादिकार्य से **देवपथः** सिद्ध हो जाता है।

हंसपथः। हंसों के मार्ग की आकृति। **हंसानां पन्थाः हंसपथः, तत्प्रतिकृतिः। हंसपथ+सु** इस स्थिति में **इवे प्रतिकृतौ** से विहित कन् प्रत्यय का **देवपथादिभ्यश्च** सूत्र से लुप् होने पर **हंसपथ** और स्वादिकार्य से **हंसपथः** सिद्ध हो जाता है।

आकृतिगणोऽयम्। यद्यपि देवपथादि आकृतिगण है, तथापि कुछ शब्द उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं-

देवपथादिगणः- देवपथ, हंसपथ, वारिपथ, रथपथ, स्थलपथ, कारिपथ, अजपथ, शतपथ, शङ्कुपथ, सिन्धुपथ, सिद्धगति, उष्ट्रग्रीव, वामरज्जु, हस्त, इन्द्र, दण्ड, पुष्प, मत्स्य।

काशिका में इस सूत्र के सम्बन्ध में एक पद्य दिया गया है-

अर्चासु पूजनार्थासु चित्रकर्मध्वजेषु च।
इवे प्रतिकृतौ लोपः कनो देवपथादिषु॥ अर्थात् जो पूजनार्थक हैं, जो चित्रकर्म में हैं, जो ध्वज में हैं, उन अर्चा (प्रतिमा) के वाचक शब्दों से **इवे प्रतिकृतौ** सूत्र से विहित कन्-प्रत्यय का लुप् होता है तथा देवपथादिगण में पढ़े गये शब्दों से भी उक्त प्रतिकृति अर्थ में विहित प्रत्यय का लुप् होता है। यह श्लोक **जीविकार्थे चापण्ये** और **देवपथादिभ्यश्च** दोनों के विषय को उद्धृत करता है। देवालयों में पूजनार्थ स्थापित प्रतिमाओं के उदाहरण हैं- **विष्णुः, शिवः** इत्यादि। चित्रकर्म अर्थ में- **अर्जुनः, युधिष्ठिरः** इत्यादि। ध्वजों में- कपि, गरुड, वृषभ इत्यादि।

लुप् का प्रसंग यहाँ पर पूर्ण हो जाता है। आगे फिर उपमानार्थ द्योतित होने पर प्रत्ययों का विधान है।

२०५६. वस्तेर्ढञ् ५।३।१०१॥
'इवे' इत्यनुवर्तत एव। 'प्रतिकृतौ' इति निवृत्तम्। वस्तिरिव वास्तेयम्, वास्तेयी।

वस्तेर्ढञ्। वस्तेः पञ्चम्यन्तं, ढञ् प्रथमान्तम्। **इवे प्रतिकृतौ** से **इवे** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

वस्ति-शब्द से उपमानार्थ द्योतित होने पर ढञ् प्रत्यय होता है।

ढञ् में ञकार इत्संज्ञक है, **ढ** बचता है। ढकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** सूत्र से **एय्** आदेश होकर प्रत्यय स्वरूप **एय** बन जाता है। ञित्करण आदिवृद्धि और स्वर के लिये है। ढञन्त होने से स्त्रीत्वविवक्षा में **टिड्ढाणञ्०** सूत्र से ङीप् प्रत्यय हो जाता है। यह दूसरा प्रयोजन है।

'इवे' इत्यनुवर्तत एव। 'प्रतिकृतौ' इति निवृत्तम्। यहाँ पर **इवे** पद की अनुवृत्ति तो आती है किन्तु **प्रतिकृतौ** की निवृत्ति हो गयी है। अतः अप्रतिकृति अर्थ द्योतित होने पर भी प्रत्यय किया जाता है।

वस्तिरिव वास्तेयम्, वास्तेयी। नाभि के अधोभाग को आच्छादित करने वाले वस्त्र के समान। **वस्तिः इव** विग्रह करके **वस्ति+सु** इस स्थिति में **वस्तेर्ढञ्** से **ढञ्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, एयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक इकार का लोप होकर **वास्तेय** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वास्तेयम्** सिद्ध हो जाता है। स्त्रीत्वविवक्षा में ङीप् होकर **वास्तेयी** बन जाता है।

ओष्ठ्य बकारयुक्त **बस्तेर्ढञ्** ऐसा भी पाठ मिलता है। तदनुसार तो **बस्तिरिव बास्तेयम्, बास्तेयी** रूप समझने चाहिये।

२०५७. शिलाया ढः ५।३।१०२॥
शिलेव शिलेयम्। योगविभागाद् ढञपीत्येके। शैलेयम्।

शिलाया ढः। शिलायाः पञ्चम्यन्तं, ढः प्रथमान्तम्। **इवे प्रतिकृतौ** से **इवे** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

शिला-शब्द से उपमानार्थ द्योतित होने पर ढ-प्रत्यय होता है।

शिलेव शिलेयम्। पत्थर के समान कठोर जमा हुआ दही आदि। **शिला इव** विग्रह करके **शिला+सु** इस स्थिति में **शिलाया ढः** सूत्र से **ढ** प्रत्यय होने पर एयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् भसंज्ञक इकार का लोप होकर **शिलेय** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **शिलेयम्** सिद्ध हो जाता है।

योगविभागाद् ढञपीत्येके। शैलेयम्। कुछ आचार्य शिला-शब्द से ढञ्-प्रत्यय भी चाहते हैं और इसके लिये प्रकृत सूत्र का योगविभाग करते हैं। तदनुसार प्रथमसूत्र **शिलायाः** मात्र है। इसमें पूर्वसूत्र से **ढञ्** का अनुवर्तन करके **शिला** शब्द से ढञ् होने पर एयादेश, आदिवृद्धि आदि करके **शैलेयम्** रूप बनता है और द्वितीय सूत्र **ढः** में **शिलायाः** की अनुवृत्ति करके **शिलेयम्** बन ही जाता है।

२०५८. शाखादिभ्यो यः ५।३।१०३॥

शाखेव शाख्यः। मुख्यः। जघनमिव जघन्यः। अग्र्यः। शरण्यः।

शाखादिभ्यो यः। शाखा आदिर्येषां ते शाखादयस्तेभ्यः शाखादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, यः प्रथमान्तम्। **इवे प्रतिकृतौ** से **इवे** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

शाखादि-गणपठित प्रातिपदिकों से उपमानार्थ द्योतित होने पर य-प्रत्यय होता है।

शाखेव शाख्यः। शाखा के सदृश। **शाखा इव** विग्रह करके **शाखा+सु** इस स्थिति में **शाखादिभ्यो यः** सूत्र से य-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **शाखा+य** बना है। यकारादि तद्धित के परे रहते प्रकृति की **यचि भम्** से भसंज्ञा होती ही है। अतः **यस्येति च** से भसंज्ञक अंग के अकार का लोप करके **शाख्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **शाख्यः** सिद्ध हो जाता है।

मुख्यः। मुख के सदृश, प्रमुख। **मुखम् इव** विग्रह करके **मुख+सु** इस स्थिति में **शाखादिभ्यो यः** सूत्र से य-प्रत्यय होने पर सुब्लुक् और अकारलोप होकर **मुख्य** तथा स्वादिकार्य से **मुख्यः** सिद्ध हो जाता है।

जघनमिव जघन्यः। जंघा के समान, घृणित। **जघनम् इव** विग्रह करके **जघन+सु** इस स्थिति में **शाखादिभ्यो यः** सूत्र से य-प्रत्यय होने पर सुब्लुक् और अकारलोप होकर **जघन्य** तथा स्वादिकार्य से **जघन्यः** सिद्ध हो जाता है।

अग्र्यः। अग्रभाग के सदृश। **अग्र इव** विग्रह करके **अग्र+सु** इस स्थिति में **शाखादिभ्यो यः** सूत्र से य-प्रत्यय होने पर सुब्लुक् और अकारलोप होकर **अग्र्य** तथा स्वादिकार्य से **अग्र्यः** सिद्ध हो जाता है।

शरण्यः। शरण के सदृश। **शरणम् इव** विग्रह करके **शरण+सु** इस स्थिति में **शाखादिभ्यो यः** सूत्र से य-प्रत्यय होने पर सुब्लुक् और अकारलोप होकर **शरण्य** तथा स्वादिकार्य से **शरण्यः** सिद्ध हो जाता है। **शरणे साधुः** अर्थ में भी **शरण्यः** बनता है, वह दूसरा है।

शाखादिगणः- शाखा, मुख, जघन, शृङ्ग, मेघ, अभ्र, चरण, स्कन्ध, स्कन्द, उरस्, शिरस्, अग्र, शरण।

२०५९. द्रव्यं च भव्ये ५।३।१०४॥

द्रव्यम् अयं ब्राह्मणः।

द्रव्यं च भव्ये। द्रव्यं प्रथमान्तं, चाव्ययं, भव्ये सप्तम्यन्तम्। **शाखादिभ्यो यः** से **यः** की और **इवे प्रतिकृतौ** से **इवे** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

भव्य अभिधेय होने पर य-प्रत्ययान्त द्रव्य-शब्द का निपातन किया जाता है।

भव्य शब्द का अर्थ आत्मवत्त्व अर्थात् पात्रता है।

द्रव्यम् अयं ब्राह्मणः। यह ब्राह्मण पात्रता-सम्पन्न उत्तम है। **द्रुः इव** विग्रह करके **द्रु+सु** इस स्थिति में **द्रव्यं च भव्ये** सूत्र से **य**-प्रत्यय का निपातन करके **द्रु+य** बना है। **ओर्गुणः** सूत्र से उकार को गुण ओकार और उसको **वान्तो यि प्रत्यये** सूत्र से अवादेश होकर **द्रव्य** शब्द बनता है। स्वादिकार्य से **द्रव्यम्** सिद्ध हो जाता है।

२०६०. कुशाग्राच्छः ५।३।१०५॥

कुशाग्रमिव कुशाग्रीया बुद्धिः।

कुशाग्राच्छः। कुशाग्रात् पञ्चम्यन्तं, छः प्रथमान्तम्। **इवे प्रतिकृतौ** से **इवे** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

इवार्थ-विशिष्ट कुशाग्र-शब्द से स्वार्थ में छ-प्रत्यय होता है।

कुशाग्रमिव कुशाग्रीया बुद्धिः। कुश का अग्रभाग बहुत तीक्ष्ण=नुकीला होता है। उसके समान तीक्ष्ण बुद्धि को **कुशाग्रीया** कहा जाता है। **कुशाग्रम् इव** विग्रह करके **कुशाग्र+सु** इस स्थिति में **कुशाग्राच्छः** सूत्र से छ-प्रत्यय होने पर छकार के स्थान पर ईय् आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **कुशाग्रीय** शब्द बनता है। बुद्धि का विशेषण होने के कारण स्त्रीत्व में टाप् प्रत्यय होकर **कुशाग्रीया** शब्द बनने के बाद स्वादिकार्य होता है।

२०६१. समासाच्च तद्विषयात् ५।३।१०६॥

इवार्थविषयात् समासाच्छः स्यात्। काकतालीयो देवदत्तस्य वधः। इह काकतालसमागमसदृशश्चोरसमागम इति समासार्थः। तत्प्रयुक्तः काकमरणसदृशस्तु प्रत्ययार्थः। अजाकृपाणीयः। अतर्कितोपनत इति फलितोऽर्थः।

समासाच्च तद्विषयात्। तस्य=इवार्थस्य विषयस्तद्विषयस्तस्मात् तद्विषयात्। समासात् पञ्चम्यन्तं, तद्विषयात् पञ्चम्यन्तम्। **कुशाग्राच्छः** से **छः** की और **इवे प्रतिकृतौ** से **इवे** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

इवार्थ-विषयक समास में वर्तमान प्रातिपदिक से छ-प्रत्यय होता है।

सूत्रस्थ तत्-पद पूर्व अर्थ का परामर्शक है। तदनुसार **इवार्थ** में ही समास को अभिलक्षित करने में इस सूत्र की प्रवृत्ति होगी।

काकतालीयो देवदत्तस्य वधः। देवदत्त का मरण काकतालीय के समान हुआ। यहाँ दो-दो इवार्थ हैं। एक तो **काकागमनम् इव तालपतनम्** इव में इवार्थक समास होकर **काकताल** शब्द बना है। उस काकताल के समान अर्थ में **काकताल+सु** इस स्थिति में **समासाच्च तद्विषयात्** सूत्र से छ-प्रत्यय होने पर उसके स्थान पर **ईय्** आदेश हो जाता है। **काकताल+ईय** बन जाने पर भसंज्ञक अंग के अन्त्य अकार का लोप होकर **काकतालीय** शब्द बनता है। स्वादिकार्य से **काकतालीयः** सिद्ध हो जाता है।

इह काकतालसमागमसदृशश्चोरसमागम इति समासार्थः। तत्प्रयुक्तः काकमरणसदृशस्तु प्रत्ययार्थः। उक्त **काकतालीय वध** की स्पष्टता यह है कि किसी पेड़ के नीचे यों ही उड़ता हुआ एक कौआ आकर बैठ गया, उसके बैठते ही अकस्मात् यों ही ताड़ का पेड़ गिर गया और उसके गिरते ही कौवा दब कर मर गया। यह काकतालीय कार्य हुआ। यह एक इवार्थ=उपमार्थ हुआ। यहाँ पर **काकागमनम् इव तालपतनम् इव** विग्रह में समास हुआ है। अब तद्धितार्थ से दूसरा इवार्थ बनाया जाता है। अकस्मात् कोवे का आगम और अकस्मात् तत्काल तालवृक्ष का पतन होना ऊपर बताया गया। इसी प्रकार से कोई व्यक्ति यों हि अकस्मात् कहीं पहुँच जाय और उसके वहाँ आते ही चोर अकस्मात् पहुँच जायें और उसे वे मार दें तो उक्त व्यक्ति का वहाँ जाना तथा चोरों का आना तथा उसका मारा जाना भी **काकताल-सदृश** ही हुआ। अतः यहाँ प्रकृत में देवदत्त का काकताल के वध के समान वध हुआ। अतः मूलकार ने कहा- काकताल-समागमसदृश चोरसमागम यह समासार्थ है और तत्प्रयुक्त कारमरणसदृश देवदत्तमरण तद्धित (छ) प्रत्ययार्थ है। इस प्रकार देवदत्त का मरण काकतालीय वध कहा जायेगा। वैसे लोक में इसी तरह की स्थिति को दर्शाने के लिये **काकतालीय-न्याय** प्रचलित है।

अजाकृपाणीयः। अतर्कितोपनत इति फलितोऽर्थः। बकरी का अकस्मात् कृपाण के नीचे आना और तलवार का अचानक गिरना, जिससे उसका मरना- इस प्रकार आकस्मिक वध-योग **अजाकृपाणीय वध** कहलाता है। **अजागमनम् इव कृपाणपतनम् इव** में इवार्थक-समास होने के बाद **अजाकृपाण** शब्द बनता है और उससे **समासाच्च तद्विषयात्** सूत्र से छ-प्रत्यय होने पर ईयादेश, अकारलोप आदि करके **अजाकृपाणीय** तथा स्वादिकार्य से **अजाकृपाणीयः** सिद्ध हो जाता है। अचिन्तित कार्य यकायक हो जाने में **अजाकृपाणीय** शब्द का प्रयोग किया जाता है।

२०६२. शर्करादिभ्योऽण् ५।३।१०७॥
शर्करेव शार्करम्।

शर्करादिभ्योऽण्। शर्करा आदिर्येषां ते शर्करादयस्तेभ्यः शर्करादिभ्यः पञ्चम्यन्तम्, अण् प्रथमान्तम्। **इवे प्रतिकृतौ** से **इवे** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

इवार्थ में वर्तमान शर्करादि गणपठित प्रातिपदिकों से अण्-प्रत्यय होता है।

शर्करेव शार्करम्। शर्करा (चीनी, कंकड़) के समान। **शर्करा इव** विग्रह करके **शर्करा+सु** इस स्थिति में **शर्करादिभ्योऽण्** सूत्र से अण्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक आकार का लोप होकर **शार्कर** शब्द बनता है। स्वादिकार्य से नपुंसकलिंग में **शार्करम्** सिद्ध हो जाता है।

शर्करादिगणः- शर्करा, कपालिका, कपाटिका, कपिष्ठिका, (कनिष्ठिका), पुण्डरीक, शतपत्र, गोलोमन्, लोमन्, गोपुच्छ, नराची, नकुल, सिकता।

२०६३. अङ्गुल्यादिभ्यष्ठक् ५।३।१०८॥
अङ्गुलीव आङ्गुलिकः। भरुजेव भारुजिकः।

अङ्गुल्यादिभ्यष्ठक्। अङ्गुली आदिर्येषां ते अङ्गुल्यादयस्तेभ्यः- अङ्गुल्यादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, ठक् प्रथमान्तम्। **इवे प्रतिकृतौ** से **इवे** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

इवार्थ में वर्तमान अङ्गुल्यादि गणपठित प्रातिपदिकों से ठक्-प्रत्यय होता है।

अङ्गुलीव आङ्गुलिकः। उंगुली के समान। **अङ्गुली इव** विग्रह करके **अङ्गुली+सु** इस स्थिति में **अङ्गुल्यादिभ्यष्ठक्** सूत्र से ठक् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, **ठ** के स्थान पर **इक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और **किति च** से आदिवृद्धि करके भसंज्ञक अंग के अन्त्य ईकार का लोप करके **आङ्गुलिक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आङ्गुलिकः** सिद्ध हो जाता है।

भरुजेव भारुजिकः। गीदड़ के समान या भुने हुये जौ की तरह। **भरुजा इव** विग्रह करके **भरुजा+सु** इस स्थिति में **अङ्गुल्यादिभ्यष्ठक्** सूत्र से ठक् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, **ठ** के स्थान पर **इक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, आकारलोप करके **भारुजिक** और स्वादिकार्य होकर **भारुजिकः** सिद्ध हो जाता है।

अङ्गुल्यादिगणः- अङ्गुली, भरुज, बभ्रु, वल्गु, मण्डर, मण्डल, शष्कुली, हरि, कपि, मुनि, रुह, खल, उदश्वित्, गोणी, उरस्, कुलिश।

२०६४. एकशालायाष्ठजन्यतरस्यांम् ५।३।१०९॥

एकशालाशब्दादिवार्थे ठञ्चा। पक्षे ठक्।
एकशालेव एकशालिकः, ऐकशालिकः।

एकशालायाष्ठजन्यतरस्याम्। एकशालायाः पञ्चम्यन्तं, ठच् प्रथमान्तम्, अन्यतरस्यां विभक्तिप्रतिरूपकमव्ययम्। **इवे प्रतिकृतौ** से इवे की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

इवार्थ में वर्तमान एकशाला इस प्रातिपदिक से विकल्प से ठच्-प्रत्यय होता है।

पक्षे ठक्। सूत्रस्थ **अन्यतरस्याम्** पद से पूर्वसूत्र से विहित **ठक्** का भी समुच्चय होता है।

एकशालेव एकशालिकः, ऐकशालिकः। एक कमरे की तरह छोटा घर। **एकशाला इव** विग्रह करके **एकशाला+सु** इस स्थिति में **एकशालाष्ठजन्यतरस्याम्** सूत्र से विकल्प से ठच् होने पर अनुबन्धलोप, **ठ** के स्थान पर **इक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक आकार का लोप होकर **एकशालिक** शब्द बना है। ठक् होने के पक्ष में आदिवृद्धि भी होकर **ऐकशालिक** शब्द बना है। उभयत्र एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **एकशालिकः** और **ऐकशालिकः** सिद्ध हो जाते हैं।

२०६५. कर्कलोहितादीकक् ५।३।११०॥

कर्कः शुक्लोऽश्वः स इव कार्कीकः। लौहितीकः स्फटिकः।

कर्कलोहितादीकक्। कर्कश्च लोहितश्च तयोः समाहारद्वन्द्वः कर्कलोहितं, तस्मात् कर्कलोहितात् पञ्चम्यन्तम्, ईकक् प्रथमान्तम्। **इवे प्रतिकृतौ** से **इवे** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

इवार्थ में वर्तमान कर्क और लोहित इन प्रातिपदिकों से ईकक्-प्रत्यय होता है।

ईकक् में अन्त्य ककार इत्संज्ञक है, **ईक** बचता है। कित्करण आदिवृद्धि के लिये है।

कर्कः शुक्लोऽश्वः स इव कार्कीकः। सफेद घोड़े को **कर्क** कहते हैं। **कर्क इव** विग्रह करके **कर्क+सु** इस स्थिति में **कर्कलोहितादीकक्** सूत्र से **ईकक्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और अकारलोप होकर **कार्कीक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कार्कीकः** सिद्ध हो जाता है।

लौहितीकः स्फटिकः। लाल रंग के मणि के समान स्फटिक। स्फटिक वैसे श्वेत होता है किन्तु जपाकुसुम आदि रक्त पुष्प के सम्पर्क से वह लाल दिखायी देता

है। **लोहित इव** विग्रह करके **लोहित+सु** इस स्थिति में **कर्कलोहितादीकक्** सूत्र से **ईकक्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और अकारलोप होकर **लौहितीक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **लौहितीकः** सिद्ध हो जाता है।

२०६६. पूगाञ्ञ्योऽग्रामणीपूर्वात् ५।३।११२॥

इवार्थो निवृत्तः। नानाजातीया अनियतवृत्तयोऽर्थकामप्रधानाः सङ्घाः पूगाः, तद्वाचकात् स्वार्थे ञ्यः स्यात्। लौहितध्वज्यः। 'व्रातच्फञोरस्त्रियाम्' (सू.११००) व्रातः- कापोतपाक्यः। च्फञ्- कौञ्जायन्यः। ब्राध्नायन्यः।

पूगाञ्ञ्योऽग्रामणीपूर्वात्। ग्रामणी-शब्दः पूर्वो यस्य स ग्रामणीपूर्वः, न ग्रामणीपूर्वः- अग्रामणीपूर्वस्तस्माद् अग्रामणीपूर्वात्। पूगात् पञ्चम्यन्तं, ञ्यः प्रथमान्तम्, अग्रामणीपूर्वात् पञ्चम्यन्तम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

ग्रामणीपूर्व से भिन्न पूग-वाची प्रातिपदिक से स्वार्थ में ञ्य-प्रत्यय होता है।

इवार्थो निवृत्तः। यहाँ पहले से चली आ रही **इवे** की अनुवृत्ति निवृत्त हो जाती है अर्थात् अब इवार्थ में प्रत्यय का विधान नहीं है।

नानाजातीया अनियतवृत्तयोऽर्थकामप्रधानाः सङ्घाः पूगाः। विभिन्न जाति के अनिश्चित व्यवसाय करने वाले अर्थप्रधान और कामप्रधान संघों को **पूग** कहा गया है।

ञ्य में आदि ञकार की इत्संज्ञा होती है, **य** बचता है। ञित्करण आदिवृद्धि और स्वर के लिये है।

लौहितध्वज्यः। लालध्वज वाला अर्थकामप्रधान संघ। **लोहितो ध्वजो यस्य स लोहितध्वजः,** स एव विग्रह करके **लोहितध्वज+सु** इस स्थिति में **पूगाञ्ञ्योऽग्रामणीपूर्वात्** सूत्र से ञ्य प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **लौहितध्वज्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **लौहितध्वज्यः** सिद्ध हो जाता है।

'व्रातच्फञोरस्त्रियाम्'। यह सूत्र अपत्याधिकार के **गोत्रे कुञ्जादिभ्यः** (४.१.९८) के प्रसंग में व्याख्यात है किन्तु वह स्वार्थिक प्रकरण का ही सूत्र है। सूत्रार्थ है- व्रातवाची और च्फञ्प्रत्ययान्त शब्दों से स्त्रीलिंग को छोड़कर स्वार्थ में ञ्य-प्रत्यय होता है। इस तरह स्वार्थ में ञ्य-प्रत्यय करने वाले सूत्र का यहाँ पर स्मरण कराया गया है और इसके उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं।

व्रात। पहले व्रातवाची का उदाहरण दे रहे हैं। जो लोग जीवों को मार-मार कर जीविका करें=शस्त्रोपजीवी हों, उनके संघ को **व्रात** कहते हैं।

कापोतपाक्यः। कबूतर पकाकर जीविका-निर्वाह करने वाले। यहाँ **कपोतं**

पचन्ति विग्रह करके **कपोत+अम्** इस स्थिति में **घञ्** प्रत्यय होने पर उपधावृद्धि और **चजोः कु घिण्ण्यतोः** सूत्र से चकार को कुत्व करके **पाक** शब्द बनता है और उपपदसमास करके **कपोतपाक** शब्द बन जाता है। यह व्रातवाची शब्द है। अतः **व्रातच्फञोरस्त्रियाम्** सूत्र से स्वार्थ में **ञ्य** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करके **कापोतपाक्य** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कापोतपाक्यः** सिद्ध हो जाता है। यह व्रातवाची का उदाहरण है।

च्फञ्। अब च्फञ्प्रत्ययान्त के उदाहरण दिये जा रहे हैं-

कौञ्जायन्यः। कुञ्ज के वंशजों का समूह। **कुञ्जस्य गोत्रापत्यम्** अर्थ में **गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फञ्** सूत्र से **च्फञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, फकार के स्थान पर **आयन्** आदेश, आदिवृद्धि, अकार का लोप करके **कौञ्जायन** शब्द बन चुका है। अब स्वार्थ में **व्रातच्फञोरस्त्रियाम्** सूत्र से **ञ्य** प्रत्यय होने पर **यस्येति च** से अकारलोप करके **कौञ्जायन्य** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कौञ्जायन्यः** सिद्ध हो जाता है।

ब्राध्नायन्यः। ब्रध्न का गोत्रापत्य। **ब्रध्नस्य गोत्रापत्यम्** अर्थ में **गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फञ्** सूत्र से **च्फञ्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, फकार के स्थान पर **आयन्** आदेश, आदिवृद्धि, अकार का लोप करके **ब्राध्नायन** शब्द बन चुका है। अब **व्रातच्फञोरस्त्रियाम्** सूत्र से **ञ्य** प्रत्यय होने पर **यस्येति च** से अकारलोप करके **ब्राध्नायन्य** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **ब्राध्नायन्यः** सिद्ध हो जाता है। ये दोनों **च्फञ्**प्रत्ययान्त के उदाहरण हैं।

२०६७. आयुधजीविसङ्घाञ्ञ्यङ् वाहीकेष्वब्राह्मणराजन्यात् ५।३।११४॥

वाहीकेषु य आयुधजीविसङ्घस्तद्वाचिनः स्वार्थे ञ्यट्। क्षौद्रक्यः। मालव्यः। टित्त्वान्ङीप्। क्षौद्रकी। 'आयुध' इति किम्? मल्लाः। 'सङ्घ' इति किम्? सम्राट्। 'वाहीकेषु' किम्? शबराः। 'अब्राह्मण-' इति किम्? गोपालकाः। शालङ्कायनाः। ब्राह्मणे तद्विशेषग्रहणम्। राजन्ये स्वरूपग्रहणम्।

आयुधजीविसङ्घाञ्ञ्यङ् वाहीकेष्वब्राह्मणराजन्यात्। आयुधजीविनां सङ्घ आयुधजीविसङ्घस्तस्माद् आयुधजीविसङ्घात्, षष्ठीतत्पुरुषः। ब्राह्मणश्च राजन्यश्च तयोः समाहारद्वन्द्वो ब्राह्मण्यराजन्यम्, न ब्राह्मणराजन्यम् अब्राह्मणराजन्यं, तस्माद् अब्राह्मणराजन्यात्, नञ्तत्पुरुषः। आयुधजीविसङ्घात् पञ्चम्यन्तं, ञ्यट् प्रथमान्तं, वाहीकेषु सप्तम्यन्तम्, अब्राह्मणराजन्यात् पञ्चम्यन्तम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

वाहीक-देशवासी ब्राह्मण और राजन्यों (क्षत्रियों) से भिन्न जाति वाले अस्त्रजीवी संघवाची शब्दों से ञ्यट् प्रत्यय होता है।

ञ्यट् में ञकार और टकार इत्संज्ञक हैं, **य** बचता है। ञित्करण आदिवृद्धि और स्वर के लिये है तथा टित्करण स्त्रीत्व में ङीप् के लिये।

क्षौद्रक्यः। वाहीक देश के क्षुद्रक-संज्ञकों का संघ, जो आयुधजीवी हुआ करते थे। **क्षुद्रक एव** विग्रह करके **क्षुद्रक+सु** इस स्थिति में **आयुधजीविसङ्घाञ्ञ्यङ् वाहीकेष्वब्राह्मणराजन्यात्** सूत्र से **ञ्यट्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करके **क्षौद्रक्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **क्षौद्रक्यः** सिद्ध हो जाता है।

मालव्यः। वाहीक देश के मालवों का संघ, जो आयुधजीवी हुआ करते थे। **मालव एव** विग्रह करके **मालव+सु** इस स्थिति में **आयुधजीविसङ्घाञ्ञ्यङ् वाहीकेष्वब्राह्मणराजन्यात्** सूत्र से **ञ्यट्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, पर्जन्यवल्लक्षणन्यायेन आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करके **मालव्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **मालव्यः** सिद्ध हो जाता है।

टित्त्वान्ङीप्। अर्थात् ञ्युट् प्रत्यय में टित्करण का फल **टिड्ढाणञ्०** सूत्र से ङीप् प्रत्यय के लिये है-

क्षौद्रकी। क्षुद्रक नाम वाले वाहीक देशवासी आयुधजीवियों का संघ **क्षौद्रक्य** कहलाता है और स्त्रीलिंग में **क्षौद्रकी** बनता है। **क्षुद्रक एव** विग्रह करके **क्षुद्रक+सु** इस स्थिति में **आयुधजीविसङ्घाञ्ञ्यङ् वाहीकेष्वब्राह्मणराजन्यात्** सूत्र से **ञ्यट्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करके **क्षौद्रक्य** शब्द बनता है। स्त्रीत्व में ङीप् होने पर अकार का **यस्येति च** लोप और यकार का **हलस्तद्धितस्य** से लोप होकर **क्षौद्रकी** बन जाता है। स्वादिकार्य।

'आयुध' इति किम्? मल्लाः। प्रकृतसूत्र में **आयुधजीवि**-शब्द का पाठ होने के कारण आयुधजीविवाची शब्दों से ही **ञ्युट्** प्रत्यय होता है, अन्यों से नहीं होता। अतः **मल्ल एव** विग्रह में उक्त प्रत्यय नहीं हुआ, क्योंकि **मल्ल** (वाहीक देशवासी पहलवानों का समूह) आयुधजीवि नहीं है। अतः **मल्लाः** ही रह गया है।

'सङ्घ' इति किम्? सम्राट्। प्रकृतसूत्र में **सङ्घ**-शब्द का पाठ होने से समूहवाची शब्दों से ही **ञ्युट्** प्रत्यय होता है, अन्यों से नहीं होता। अतः **सम्राट्** में उक्त प्रत्यय नहीं हुआ, क्योंकि **सम्राट्**-शब्द एक ही राजा का वाचक है, न कि समूह का। वाहीक देश का शस्त्रजीवी व्यक्तिगत राजा।

'वाहीकेषु' किम्? शबराः। प्रकृतसूत्र में **वाहीकेषु** पद का पाठ होने से जो वाहीकदेशवासियों के वाचक शब्द हैं, उनसे ही **ञ्युट्** प्रत्यय होता है, अन्यों से नहीं होता। अतः **शबर**-शब्द से उक्त प्रत्यय नहीं हुआ, क्योंकि **शबर** वाहीकदेश से भिन्न अन्य जंगलों में निवास करते रहे हैं।

'अब्राह्मण-' इति किम्? गोपालकाः। प्रकृतसूत्र में **अब्राह्मणराजन्यात्** शब्द से ब्राह्मण और राजन्यवाची शब्दों से निषेध करने का प्रयोजन यह है जो ब्राह्मणसंघ और राजन्यसंघ है, उनसे यह प्रत्यय न हो ताकि **गोपालकाः** ही बने, न कि **गोपालक्यः**। गोपालक सम्भवतः वाहीकदेशवासी ब्राह्मणों का संघ रहा होगा।

शालङ्कायनाः। उक्त निषेध के कारण ही **शालङ्कायन** शब्द से ञ्युट्-प्रत्यय नहीं हुआ। सम्भवतः शालङ्कायन भी वाहीकदेशवाही ब्राह्मणों का संघ रहा होगा।

ब्राह्मणे तद्विशेषग्रहणम्। राजन्ये स्वरूपग्रहणम्। प्रकृतसूत्र में पठित **ब्राह्मण**-शब्द से ब्राह्मणविशेष का और **राजन्य**-शब्द से स्वरूपग्रहण किया जाता है, ऐसा व्याख्याकारों का मत है।

२०६८. वृकाट्टेण्यण् ५।३।११५॥

आयुधजीविसङ्घवाचकात्स्वार्थे। वार्केण्यः।

'आयुध' इति किम्? जातिविशेषान्मा भूत्।

वृकाट्टेण्यण्। वृकात् पञ्चम्यन्तं, टेण्यण् प्रथमान्तम्। **आयुधजीविसङ्घाञ्ञ्यङ् वाहीकेष्वब्राह्मणराजन्यात्** से **आयुधजीविसङ्घात्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

आयुधजीवि-संघवाची वृक-शब्द से स्वार्थ में टेण्यण्-प्रत्यय होता है।

टेण्यण् में आदि टकार और अन्त्य णकार इत्संज्ञक हैं, **एण्य** बचता है। टित्करण ङीबर्थ और णित्करण आदिवृद्धि के लिए है।

वार्केण्यः। आयुधजीवी वृक-संघ ही। **वृक एव** विग्रह करके **वृक+सु** इस स्थिति में **वृकाट्टेण्यण्** सूत्र से **टेण्यण्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, रपर और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **वार्केण्य** बनता है। स्वादिकार्य से **वार्केण्यः** सिद्ध हो जाता है।

'आयुध' इति किम्? जातिविशेषान्मा भूत्। जातिविशेषवाची शब्द से टेण्यण् न हो, एतदर्थ प्रकृतसूत्र में **आयुधजीविसंघवाचकात्** की अनुवृत्ति आवश्यक है।

२०६९. दामन्यादित्रिगर्तषष्ठाच्छः ५।३।११६॥

दामन्यादिभ्यस्त्रिगर्तषष्ठेभ्यश्चायुधजीविसङ्घवाचिभ्यः स्वार्थे छः स्यात्।

त्रिगर्तः षष्ठो वर्गो येषां ते त्रिगर्तषष्ठाः।

'आहुस्त्रिगर्तषष्ठांस्तु कौण्डोपरथदाण्डकी।
क्रोष्टुकिर्जालमानिश्च ब्रह्मगुप्तोऽथ जालकिः॥'

दामनीयः। दामनीयौ। दामनयः। औलपि- औलपीयः।

त्रिगर्त- कौण्डोपरथीयः। दाण्डकीयः।

दामन्यादित्रिगर्तषष्ठाच्छः। दामनिरादिर्येषां ते दामन्यादयः, बहुव्रीहिः। त्रिगर्तः षष्ठो येषां ते त्रिगर्तषष्ठाः। दामन्यादयश्च त्रिगर्तषष्ठाश्च तेषां समाहारद्वन्द्वो दामन्यादित्रिगर्तषष्ठं, तस्माद् दामन्यादित्रिगर्तषष्ठात् पञ्चम्यन्तं, छः प्रथमान्तम्। **आयुधजीविसङ्घाञ्ञ्यङ् वाहीकेष्वब्राह्मणराजन्यात्** से **आयुधजीविसङ्घात्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

आयुधजीवि-संघवाची दामन्यादि एवं त्रिगर्तषष्ठ शब्दों से स्वार्थ में छ-प्रत्यय होता है।

त्रिगर्तः षष्ठो वर्गो येषां ते त्रिगर्तषष्ठाः। त्रिगर्तषष्ठ का समास बताया है। त्रिगर्त छठा वर्ग है जिनका, उन्हें त्रिगर्तषष्ठ कहा जाता है। त्रिगर्तषष्ठ के विषय में मूल में एक कारिका का उल्लेख है-

'**आहुस्त्रिगर्तषष्ठांस्तु कौण्डोपरथदाण्डकी।**

क्रोष्टुकिर्जालमानिश्च ब्रह्मगुप्तोऽथ जालकिः॥' अर्थात् कौण्डोपरथ, दाण्डकि, क्रोष्टकि, जालमानि, ब्रह्मगुप्त तथा जालकि ये त्रिगर्तषष्ठ कहलाते हैं। यद्यपि यहाँ पर छठा शब्द त्रिगर्त दृष्टिगोचर नहीं होता तथापि सम्भवतः **जालकि** को ही त्रिगर्त कहा जाता होगा। उपर्युक्त छहों शब्दों में **कौण्डोपरथ** तथा **ब्राह्मगुप्त** शब्द शिवादिगणपठित होने के कारण अण्-प्रत्ययान्त हैं और अवशिष्ट शब्द इञ्प्रत्ययान्त।

दामन्यादि और त्रिगर्तषष्ठ इन समस्त पदों से दो प्रकार के समुदायवाची शब्दों का बोध होता है। प्रथम दामनि-आदि समुदाय और दूसरा ऐसा समुदाय, जिसका छठा शब्द त्रिगर्त हो।

पहले दामन्यादिगण का उदाहरण दे रहे हैं-

दामनीयः। दामनीयौ। दामनयः। दामनि-नामक शस्त्रजीवियों का संघ। **दामनिः एव** विग्रह करके **दामनि+सु** इस स्थिति में **दामन्यादित्रिगर्तषष्ठाच्छः** सूत्र से छ-प्रत्यय होने पर छकार के स्थान पर ईयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक इकार का लोप होकर **दामनीय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **दामनीयः** सिद्ध हो जाता है। द्विवचन में **दामनीयौ** बनता है। बहुवचन में तो **दामनयः** बनेगा, क्योंकि बहुवचन में **तद्राजाः** सूत्र से तद्राज-संज्ञा होने के बाद प्रत्यय का **तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्** सूत्र से लुक् हो जाता है। अतः **दामनि** शब्द बनता है और उसके बहुवचन में **हरयः** की तरह **दामनयः** सिद्ध हो जाता है।

औलपि- औलपीयः। औलपि-नामक शस्त्रजीवियों का संघ। औलपि-शब्द दामन्यादिगणपठित है। **औलपिः एव** विग्रह करके **औलपि+सु** इस स्थिति में **दामन्यादित्रिगर्तषष्ठाच्छः** सूत्र से छ-प्रत्यय होने पर छकार के स्थान पर ईयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक इकार का लोप होकर **औलपीय** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **औलपीयः** सिद्ध हो जाता है।

का लुक्, पर्जन्यवल्लक्षणन्यायेन आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आभिजित्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आभिजित्यः** सिद्ध हो जाता है।

वैदभृत्यः। विदभृत् का वंशज। **वैदभृत एव** विग्रह करके **वैदभृत+सु** इस स्थिति में प्रकृतसूत्र से यञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **वैदभृत्य** और स्वादिकार्य होकर **वैदभृत्यः** सिद्ध हो जाता है।

शालावत्यः। शालावान् का वंशज। **शालावत एव** विग्रह करके **शालावत+सु** इस स्थिति में प्रकृतसूत्र से यञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **शालावत्य** और स्वादिकार्य होकर **शालावत्यः** सिद्ध हो जाता है।

शैखावत्यः। शिखावान् का वंशज। **शैखावत एव** विग्रह करके **शैखावत+सु** इस स्थिति में प्रकृतसूत्र से यञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **शैखावत्य** और स्वादिकार्य होकर **शैखावत्यः** सिद्ध हो जाता है।

शामीवत्यः। शमीवान् का वंशज। **शामीवत एव** विग्रह करके **शामीवत+सु** इस स्थिति में प्रकृतसूत्र से यञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **शामीवत्य** और स्वादिकार्य होकर **शामीवत्यः** सिद्ध हो जाता है।

और्णावत्यः। ऊर्णावान् का वंशज। **और्णावत एव** विग्रह करके **और्णावत+सु** इस स्थिति में प्रकृतसूत्र से यञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **और्णावत्य** और स्वादिकार्य होकर **और्णावत्यः** सिद्ध हो जाता है।

श्रौमत्यः। श्रुमान् का वंशज। **श्रौमत एव** विग्रह करके **श्रौमत+सु** इस स्थिति में प्रकृतसूत्र से यञ्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि, अकारलोप होकर **श्रौमत्य** और स्वादिकार्य होकर **श्रौमत्यः** सिद्ध हो जाता है।

२०७२. ञ्यादयस्तद्राजाः ५।३।११९॥

'पूगाञ्ञ्यः-' (सू.२०६६) इत्यारभ्य उक्ता एतत्सञ्ज्ञाः स्युः।
तेनास्त्रियां बहुषु लुक्। लोहितध्वजाः, कपोतपाकाः,
कौञ्जायनाः, ब्राध्नायना इत्यादि।

ञ्यादयस्तद्राजाः। ञ्य आदिर्येषां ते ञ्यादयः, बहुव्रीहिः। तद्राजाः प्रथमान्तम्।

पूगाञ्ञ्योऽग्रामणीपूर्वात् (५.३.११२) से लेकर अभी तक ञ्य आदि जो प्रत्यय किये गये, उनकी तद्राज-संज्ञा होती है।

तेनास्त्रियां बहुषु लुक्। तद्राजसंज्ञक प्रत्यय होने पर स्त्रीलिंग से भिन्न स्थलों पर **तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्** (२.४.६२) सूत्र से बहुवचन के विषय में उक्त प्रत्यय का लुक् होता है।

लोहितध्वजाः। यहाँ पर एकवचन में **पूगाञ्ञ्योऽग्रामणीपूर्वात्** सूत्र से ञ्य-प्रत्यय होकर **लौहितध्वज्यः** बनता है और बहुवचन में उक्त तद्राजसंज्ञक ञ्यप्रत्यय का लुक् होकर **लोहितध्वजाः** बनता है।

कपोतपाकाः। यहाँ पर एकवचन में **व्रातच्फञोरस्त्रियाम्** सूत्र से ञ्य-प्रत्यय होकर **कापोतपाक्यः** बनता है और बहुवचन में उक्त तद्राजसंज्ञक ञ्यप्रत्यय का लुक् होकर **कपोतपाकाः** बनता है।

कौञ्जायनाः। यहाँ पर भी एकवचन में **पूगाञ्ञ्योऽग्रामणीपूर्वात्** सूत्र से ञ्य-प्रत्यय होकर **कौञ्जायन्यः** बनता है और बहुवचन में उक्त तद्राजसंज्ञक ञ्यप्रत्यय का लुक् होकर **कौञ्जायनाः** बनता है।

ब्राध्नायना इत्यादि। यहाँ पर एकवचन में **पूगाञ्ञ्योऽग्रामणीपूर्वात्** सूत्र से ञ्य-प्रत्यय होकर **ब्राध्नायन्यः** बनता है और बहुवचन में उक्त तद्राजसंज्ञक ञ्यप्रत्यय का लुक् होकर **ब्राध्नायनाः** बनता है।

यहाँ आकर पञ्चमाध्याय का तृतीयपाद पूर्ण हो जाता है। अब आगे चतुर्थपाद के प्रत्ययों का निरूपण प्रारम्भ होता है।

२०७३. पादशतस्य संख्यादेर्वीप्सायां वुन् लोपश्च ५।४।१॥

लोपवचनमनैमित्तिकत्वार्थम्, अतो न स्थानिवत्। 'पादः पत्' (सू.४१४)। 'तद्धितार्थ-' (सू.७२८) इति समासे कृते प्रत्ययः। वुन्नयं स्त्रियामेव। द्वौ द्वौ पादौ ददाति द्विपदिकाम्। द्विशतिकाम्।
'पादशतग्रहणमनर्थकम्, अन्यत्रापि दर्शनात्' (वा.३३१४)। द्विमोदकिकाम्।

पादशतस्य संख्यादेर्वीप्सायां वुन्लोपश्च। पादश्च शतं च तयोः समाहारद्वन्द्वः पादशतं, तस्य पादशतस्य। संख्या आदिर्यस्य स संख्यादिस्तस्य संख्यादेः, बहुव्रीहिः। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

संख्या-पूर्वक पाद और शत शब्द अन्त वाले प्रातिपदिकों से वीप्सा अर्थ गम्यमान हो तो वुन् प्रत्यय होता है तथा प्रत्यय के साथ पाद-शत का लोप भी।

सूत्र में पठित **पादशतस्य** का अन्वय **वुन्** और **लोपः** के साथ है। प्रत्ययविधि में इसे पञ्चम्यन्त और लोपविधि में षष्ठ्यन्त माना जाता है। **अलोऽन्त्यस्य** परिभाषा सूत्र की उपस्थिति से **पाद** और **शत** शब्दों के अन्त्य वर्ण अकार का ही लोप होता है।

लोपवचनमनैमित्तिकत्वार्थम्, अतो न स्थानिवत्। अर्थात् प्रकृतसूत्र से जो लोप किया जाता है, वह अनैमित्तिक है अर्थात् इस लोप के होने में कोई निमित्त नहीं

है। इस कारण परनिमित्तक अजादेश में स्थानिवद्भाव करने वाले **अचः परस्मिन् पूर्वविधौ** सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हो पाती, फलतः स्थानिवद्भाव नहीं होता।

'पादः पत्'। स्थानिवद्भाव न होने के कारण **पाद** रूप नहीं रहता, अपितु **पाद्** रूप रहता है, जिसके कारण (४१४) **पादः पत्** सूत्र से **पाद्**-शब्द के स्थान पर **पद्** आदेश हो जाता है।

'तद्धितार्थ-' इति समासे कृते प्रत्ययः। पहले तद्धितार्थ-विषय उपस्थित होने पर **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** सूत्र से समास करने के बाद ही प्रकृतसूत्र से प्रत्यय किया जाता है। **वीप्सा** का अर्थ है बार-बार, दो-बार प्रयोग, अतिशय, सम्पूर्णतया व्याप्त होने की इच्छा। अब प्रश्न हो सकता है कि **वीप्सा** अर्थ तो प्रकृत्यर्थ का विशेषण है तथा स्वार्थिक होने के कारण **वुन्** प्रत्यय का कोई अर्थ माना नहीं गया है। ऐसी स्थिति में **तद्धितार्थ** को अभिलक्षित कर समास की कल्पना कैसे हो सकती है? इस पर यह कहा जाता है कि तद्धितप्रकरणस्थ होने के कारण उसका अन्य अर्थ भले ही न माना जाता हो किन्तु वह प्रकृत्यर्थ का द्योतक तो है ही। अतः उसे भी तद्धितार्थ माना ही जा सकता है।

वुन्नयं स्त्रियामेव। प्रकृतसूत्र से किया जाने वाला वुन्-प्रत्यय लोकव्यवहार या उत्सर्गतः स्त्रीलिङ्ग के सम्बन्ध में ही हुआ करता है।

द्वौ द्वौ पादौ ददाति द्विपदिकाम्। कार्षापण के दो दो पाद (चरण, चतुर्थांश) देता है। **द्वौ द्वौ पादौ ददाति** विग्रह करके **द्वि+औ पाद+औ** इस स्थिति में **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** सूत्र से समास होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **द्विपाद** शब्द बना है। उसमें वीप्सार्थ द्योतित होने के कारण **पादशतस्य संख्यादेर्वीप्सायां वुन्लोपश्च** सूत्र से **वुन्** प्रत्यय के साथ **पाद**-शब्द के अन्त्य अकार का लोप होता है। अनुबन्धलोप, **वु** के स्थान पर **अक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **द्विपाद्+अक** बना है। **पादः पत्** सूत्र से **पाद्**-भाग के स्थान पर **पद्** आदेश होकर **द्विपदिक** शब्द बना है। ऊपर कहा जा चुका है कि यह वुन्-प्रत्यय स्त्रीलिंग का विषय है। अतः टाप्-प्रत्यय होकर **द्विपदका** बन जाता है। उसके बाद **प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः** सूत्र से दकारोत्तरवर्ती अकार को इत्त्व होकर **द्विपदिका** शब्द बनता है। प्रकृत में द्वितीयैकवचन में **द्विपदिकाम्** बन गया है।

द्विशतिकाम् (ददाति)। दो-दो सौ देता है। **द्वे द्वे शते ददाति** विग्रह करके **द्वि+औ शत+औ** इस स्थिति में **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** सूत्र से समास होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **द्विशत** शब्द बना है। उसमें वीप्सार्थ द्योतित होने के कारण **पादशतस्य संख्यादेर्वीप्सायां वुन्लोपश्च** सूत्र से **वुन्** प्रत्यय के साथ **शत**-शब्द के अन्त्य अकार का लोप होता है। अनुबन्धलोप, **वु** के स्थान पर **अक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **द्विशतक** बना है। टाप्-प्रत्यय होकर

द्विशतका और तकारोत्तरवर्ती अकार को इत्त्व होकर **द्विशतिका** शब्द बनता है। प्रकृत में द्वितीयैकवचन में **द्विशतिकाम्** बन गया है।

पादशतग्रहणमनर्थकम्, अन्यत्रापि दर्शनात्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- प्रकृतसूत्र में **पादशतस्य** पद का ग्रहण अनर्थक है, क्योंकि जहाँ पाद-शत शब्द नहीं हैं, वहाँ पर भी वुन्-प्रत्यय देखा गया है। इस तरह वार्तिक से **पादशतस्य** का प्रत्याख्यान कर देने से संख्यादि किसी भी शब्द से वुन्-प्रत्यय और अन्त्य वर्ण का लोप हो सकता है। फलतः-

द्विमोदकिकाम्। दो-दो मोदक देता है। **द्वौ द्वौ मोदकौ ददाति** विग्रह करके **द्वि+औ मोदक+औ** इस स्थिति में **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च** सूत्र से समास होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **द्विमोदक** शब्द बना है। वार्तिक के अनुसार **वुन्** प्रत्यय के साथ **मोदक**-शब्द के अन्त्य अकार का लोप होता है। अनुबन्धलोप, **वु** के स्थान पर **अक** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **द्विमोदकक** बना है। टाप्-प्रत्यय होकर **द्विमोदकका** और पूर्व ककार से उत्तरवर्ती अकार को इत्त्व होकर **द्विमोदकिका** शब्द बनता है। प्रकृत में द्वितीयैकवचन में **द्विमोदकिकाम्** बन गया है।

२०७४. दण्डव्यवसर्गयोश्च ५।४।२॥

वुन् स्यात्। अवीप्सार्थमिदम्।

द्वौ पादौ दण्डितः द्विपदिकाम्। द्विशतिकां व्यवसृजति, ददातीत्यर्थः।

दण्डव्यवसर्गयोश्च। दण्डश्च व्यवसर्गश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो दण्डव्यवसर्गौ, तयोर्दण्डव्यवसर्गयोः सप्तम्यन्तं, चाव्ययम्। **पादशतस्य संख्यादेर्वीप्सायां वुन्लोपश्च** सूत्र के सभी पदों की अनुवृत्ति होती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

संख्या-पूर्वक पाद और शत शब्द अन्त वाले प्रातिपदिकों से दण्ड और व्यवसर्ग (दान) गम्यमान हो तो वुन् प्रत्यय होता है तथा प्रत्यय के साथ पाद-शत का लोप भी।

अवीप्सार्थमिदम्। पूर्वसूत्र **वीप्सा** अर्थ में प्रवृत्त होता है और अवीप्सा के लिये प्रकृत सूत्र की सार्थकता है।

द्वौ पादौ दण्डितः द्विपदिकाम्। दो पाद (चतुर्थांश) दण्ड दिया गया। यहाँ वीप्सार्थ नहीं है। **द्वौ पादौ दण्डितः** विग्रह करके **द्वि+औ पाद+औ** में पूर्ववत् समासादि करने के बाद **द्विपाद** शब्द से **दण्डव्यवसर्गयोश्च** सूत्र से वुन्-प्रत्यय के साथ दकारोत्तरवर्ती अकार का लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **पद्** आदेश, टाप्, इत्त्व आदि कार्य करके **द्विपदिका** और द्वितीयैकवचन में **द्विपदिकाम्** सिद्ध हो गया है।

द्विशतिकां व्यवसृजति, ददातीत्यर्थः। दो सो देता है। यहाँ भी वीप्सार्थ नहीं

है। **द्वे शते व्यवसृजति** विग्रह करके **द्वि+औ शत+औ** में पूर्ववत् समासादि करके **द्विशत** शब्द से **दण्डव्यवसर्गयोश्च** सूत्र से वुन्-प्रत्यय के साथ दकारोत्तरवर्ती अकार का लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, टाप्, इत्त्व आदि कार्य करके **द्विशतिका** और द्वितीयैकवचन में **द्विशतिकाम्** सिद्ध हो गया है।

वीप्सा और **अवीप्सा** जानने का तरीका यह भी है कि विग्रह वाक्य में शब्द-विशेष का दो-बार प्रयोग करने से वीप्सा और एक ही बार प्रयोग करने पर अवीप्सा है। जैसे कि पूर्वसूत्र के उदाहरण में **द्वौ द्वौ पादौ ददाति** विग्रह में द्वि-शब्द का दो बार प्रयोग किया गया है और प्रकृत सूत्र के उदाहरणों में एक बार।

२०७५. स्थूलादिभ्यः प्रकारवचने कन् ५।४।३॥

जातीयरोऽपवादः। स्थूलकः। अणुकः।

'चञ्चद्बृहतोरुपसंख्यानम्' (वा.३३१५)। चञ्चत्कः। बृहत्कः।

'सुराया अहौ' (ग.सू.१३०)। सुरावर्णोऽहिः सुरकः।

स्थूलादिभ्यः प्रकारवचने कन्। स्थूल आदिर्येषां ते स्थूलादयस्तेभ्यः स्थूलादिभ्यः, बहुव्रीहिः। स्थूलादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, प्रकारवचने सप्तम्यन्तं, कन् प्रथमान्तम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

प्रकार कथन में विद्यमान स्थूल आदि गणपठित शब्दों से स्वार्थ में कन् प्रत्यय होता है।

जातीयरोऽपवादः। यह प्रत्यय **प्रकारवचने जातीयर्** सूत्र से प्राप्त जातीयर् प्रत्यय का अपवाद है। यहाँ पर **प्रकार** से तात्पर्य भेद या सादृश्य-कथन में है। अतः यहाँ सादृश्य या भेदवान् अर्थ अपेक्षित है। **जातीयर्** का अपवाद कहने से यह प्रतीत होता है कि यह कन् **प्रकारवान्** में होता है, न कि प्रकार-मात्र में।

स्थूलकः। स्थूल के समान बलवान्। **स्थूलप्रकारः** विग्रह करके **स्थूल+सु** इस स्थिति में **स्थूलादिभ्यः प्रकारवचने कन्** सूत्र से **कन्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **स्थूलक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य से **स्थूलकः** सिद्ध हो जाता है।

अणुकः। अणु के समान छोटा। **अणुप्रकारः** विग्रह करके **अणु+सु** इस स्थिति में **स्थूलादिभ्यः प्रकारवचने कन्** सूत्र से **कन्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **अणुक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य से **अणुकः** सिद्ध हो जाता है।

चञ्चद्बृहतोरुपसंख्यानम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- प्रकारवान् अर्थ में विद्यमान चञ्चत् और बहृत् शब्दों से भी कन् प्रत्यय होता है।

चञ्चत्कः। चलता हुआ सा। **चञ्चन्निव** विग्रह करके **चञ्चत्+सु** इस स्थिति में **चञ्चद्बृहतोरुपसंख्यानम्** वार्तिक से कन् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **चञ्चत्क** बनने के बाद स्वादिकार्य से **चञ्चत्कः** सिद्ध हो जाता है।

बृहत्कः। बड़ा सा। **बृहन्निव** विग्रह करके **बृहत्+सु** इस स्थिति में **चञ्चद्बृहतोरुपसंख्यानम्** वार्तिक से **कन्** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **बृहत्क** बनने के बाद स्वादिकार्य से **बृहत्कः** सिद्ध हो जाता है।

स्थूलादिगणः- स्थूल, अणु, माषेषु, (माष इषु), कृष्ण, तिलेषु। यव व्रीहिषु। इक्षु, तिल, पाद्य। **कालवदात सुरायाम्। गोमूत्र आच्छादने। सुरा अहौ। जीर्ण शालिषु।** पत्रमूल समस्तो व्यस्तश्च। कुमारीपुत्र, कुमारीश्वशुर, मणि।

'सुराया अहौ। यह गणसूत्र है। सूत्रार्थः- सुरा-शब्द से प्रकार-कथन होने पर यदि अहि (सर्प) वाच्य हो तो कन्-प्रत्यय होता है।

सुरावर्णोऽहिः सुरकः। सुरा की तरह लाल सर्प। **सुरायाः इव अहिः** विग्रह करके **सुरा+सु** इस स्थिति में **सुराया अहौ** गणसूत्र से **कन्** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **सुरा+क** बना है। **केऽणः** सूत्र से **सुरा** को ह्रस्व होकर **सुरक** शब्द बना है। स्वादिकार्य होकर **सुरकः** सिद्ध हो जाता है।

२०७६. अनत्यन्तगतौ क्तात् ५।४।४॥
छिन्नकम्। भिन्नकम्। अभिन्नकम्।

अनत्यन्तगतौ क्तात्। न अत्यन्तगतिः अनत्यन्तगतिस्तस्याम् अनत्यन्तगतौ, नञ्तत्पुरुषः। अनत्यन्तगतौ सप्तम्यन्तं, क्तात् पञ्चम्यन्तम्। **स्थूलादिभ्यः प्रकारवचने कन्** से **कन्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

क्त-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से निरन्तर-सम्बन्ध गम्यमान न होने पर कन् प्रत्यय होता है।

छिन्नकम्। बीच-बीच में कटा हुआ। यहाँ पर क्तप्रत्ययान्त शब्द है-**छिन्न** और बीच-बीच में कटा होने के कारण अत्यन्त गति=सम्पूर्णतया कटना अर्थ नहीं है। **किञ्चिदवयवावच्छेदेन छिन्नम्** विग्रह करके **छिन्न+सु** इस स्थिति में **अनत्यन्तगतौ क्तात्** से क्त-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **छिन्नक** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **छिन्नकम्** सिद्ध हो जाता है।

भिन्नकम्। बीच-बीच में कुछ टूटा हुआ सा। **किञ्चिदवयवावच्छेदेन भिन्नम्** विग्रह करके भिन्न+सु इस स्थिति में **अनत्यन्तगतौ क्तात्** से क्त-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **भिन्नक** और स्वादिकार्य होकर **भिन्नकम्** सिद्ध हो जाता है।

अभिन्नकम्। बीच-बीच में न कटा हुआ। यहाँ पर भी **अभिन्न**-शब्द से उपर्युक्त रीति से कन् प्रत्यय होकर **अभिन्नकम्** सिद्ध हो जाता है।

२०७७. न सामिवचने ५।४।५॥

सामिपर्याय उपपदे क्तान्तान्न कन्। सामिकृतम्। अर्धकृतम्। अनत्यन्तगतेरिह प्रकृत्यैवाभिधानात् पूर्वेण कन्न प्राप्तः। इदमेव निषेधसूत्रमत्यन्तस्वार्थिकमपि कनं ज्ञापयति। बहुतरकम्।

न सामिवचने। नाव्ययं, सामिवचने सप्तम्यन्तम्। **अनत्यन्तगतौ क्तात्** से **क्तात्** की और **स्थूलादिभ्यः प्रकारवचने कन्** से **कन्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

यदि सामि-शब्द एवं उसका पर्यायवाची शब्द उपपद हो तो क्त-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से कन् प्रत्यय नहीं होता।

सामि इस अव्यय-शब्द का अर्थ है- **आधा।** उसके पर्यायवाची सभी शब्दों एवं सामि-शब्द के भी उपपद रहते क्तप्रत्ययान्त से पूर्वसूत्र से प्राप्त कन् का निषेध किया गया है।

सामिकृतम्। आधा किया गया। **सामिकृत** शब्द के क्त-प्रत्ययान्त और अनत्यन्तगत्यर्थ होने से **अनत्यन्तगतौ क्तात्** सूत्र से कन्-प्रत्यय प्राप्त था, उसका इस सूत्र से निषेध किया गया है। अतः **सामिकृतम्** ही बना रहता है। यहाँ **सामि**-शब्द का **कृत** शब्द के साथ **सामि** (२.१.१७) सूत्र से समास हुआ है। **सामि** शब्द के क्रियाविशेषण होने के कारण कारकत्व की प्रसक्ति होती है। **कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि ग्रहणम्** परिभाषा के बल पर कृत्प्रत्यय के ग्रहण से गतिपूर्वक और कारकपूर्वक का भी ग्रहण होता है। अतः **क्तान्त**-शब्द से **सामिकृत** का भी ग्रहण हो जाता है। **आधा किया** अर्थ में केवल **किये जाने वाले आधे भाग** से ही सम्बन्ध होने के कारण अर्थात् अवशिष्ट आधे भाग से सम्बन्ध न होने से अनन्त्यन्तगति अर्थ वाले पूर्व सूत्र से प्राप्त कन् का निषेध किया गया है।

अर्धकृतम्। आधा किया गया। **अर्धकृत** शब्द के भी क्त-प्रत्ययान्त और अनत्यन्तगत्यर्थ होने से **अनत्यन्तगतौ क्तात्** सूत्र से कन्-प्रत्यय प्राप्त था, उसका इस सूत्र से निषेध किया गया है। अतः **अर्धकृतम्** ही बना रहता है। सूत्र में पठित **वचन** शब्द के कारण पर्यायवाची शब्दों का ग्रहण किया जाता है। अतः **अर्धकृतम्** में भी कन् का निषेध सम्भव हो जाता है।

अनत्यन्तगतेरिह प्रकृत्यैवाभिधानात् पूर्वेण कन्न प्राप्तः। इदमेव निषेधसूत्रमत्यन्तस्वार्थिकमपि कनं ज्ञापयति। यहाँ अर्धार्थक प्रकृति से ही अनत्यन्तगतिरूप अर्थ विहित होने के कारण पूर्वसूत्र से कन्-प्रत्यय प्राप्त नहीं था, क्योंकि **उक्तार्थानामप्रयोगः,**

तथापि निषेध किया गया, उक्त निषेध से यह ज्ञापित होता है कि अत्यन्त स्वार्थिक अर्थ में भी **कन्** प्रत्यय होता है। अर्थात् यहाँ पर अर्धार्थक प्रकृतिवाची शब्द का निरन्तर सम्बन्ध अर्थ गम्यमान न होने से **उक्तार्थानामप्रयोगः** न्याय का आश्रयण कर तदर्थ में **कन्** की प्राप्ति ही नहीं है, अतः निषेध की क्या आवश्यकता है? यह निषेध व्यर्थ होकर यह ज्ञापन करता है कि अत्यन्त स्वार्थिक कन् प्रत्यय भी होता है। जैसे कि-

बहुतरकम्। अधिकतर, बहुतर। **बहुतर**-शब्द से कन्-प्रत्यय होकर **बहुतरक** और स्वादिकार्य से **बहुतरकम्** सिद्ध हो जाता है। यहाँ कन्-प्रत्यय अत्यन्त स्वार्थिक है।

भाष्यकार ने तो इस सूत्र का प्रत्याख्यान कर दिया है। उन्होंने **बहुकतरकम्** की सिद्धि के लिये **तमबाद्यन्तात् स्वार्थे कन् वक्तव्यः** वार्तिक से ही कन् की निष्पत्ति मानी है अर्थात् वक्ष्यमाण **यावादिभ्यः कन्** सूत्र से भी कन् प्रत्यय किया जा सकता है।

२०७८. बृहत्या आच्छादने ५।४।६॥

कन् स्यात्। 'द्वौ प्रावारोत्तरासङ्गौ समौ बृहतिका तथा' इत्यमरः। 'आच्छादने' किम्? बृहती छन्दः।

बृहत्या आच्छादने। बृहत्या इति बृहती-शब्दस्य पञ्चम्यन्तं रूपम्। आच्छादने सप्तम्यन्तम्। **स्थूलादिभ्यः प्रकारवचने कन्** से **कन्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

आच्छादने=ढकना अर्थ में विद्यमान बृहती-शब्द से स्वार्थ में **कन्** प्रत्यय होता है।

'द्वौ प्रावारोत्तरासङ्गौ समौ बृहतिका तथा' इत्यमरः। अमरकोश के अनुसार प्रावार, उत्तरासङ्ग और बृहतिका ये ओढ़नी के नाम हैं।

बृहतिका। स्त्रियों का उत्तरीय वस्त्र। **बृहती एव** विग्रह करके **बृहती+सु** इस स्थिति में बृहत्या आच्छादने सूत्र से कन्-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर बृहती+क बना है। टाप् प्रत्यय होने के बाद **केऽणः** सूत्र से ईकार को ह्रस्व होकर **बृहतिका** शब्द बनता है। इसके बाद स्वादिकार्य किया जाता है। **बृहतिका** के पर्यायवाची शब्द **संख्यान** और **उत्तरीय** भी हैं।

'आच्छादने' किम्? बृहती छन्दः। अर्थात् प्रकृत सूत्र में **आच्छादने** का निवेश इस लिये किया गया है कि यदि **बृहती** शब्द आच्छादन का विषय हो तभी कन् हो, अन्यथा न हो। उसके फलस्वरूप यहाँ **बृहती छन्दः** में वैदिक एक छन्द का विषय हो जाने से कन् नहीं हुआ, अतः **बृहती** ही बना रहा।

२०७९. अषडक्षाशितङ्ग्वलङ्कर्मालम्पुरुषाध्युत्तरपदात् खः ५।४।७॥

स्वार्थे। अषडक्षीणो मन्त्रः। द्वाभ्यामेव कृत इत्यर्थः। आशिता गावोऽस्मिन्निति आशितङ्गवीनमरण्यम्। निपातनात्पूर्वस्य मुम्। अलं कर्मणे

अलङ्कर्मीणः। अलम्पुरुषीणः। ईश्वराधीनः। नित्योऽयं खः। उत्तरसूत्रे विभाषाग्रहणात्। 'अन्येऽपि केचित्स्वार्थिकाः प्रत्यया नित्यमिष्यन्ते'। 'तमबादयः प्राक्तनः। ज्यादयः प्राक्चुनः। आमादयः प्राङ्मयटः। 'बृहतीजात्यन्ताः समासान्ताश्च' इति भाष्यम्।

अषडक्षाशितङ्ग्वलङ्कर्मालम्पुरुषाध्युत्तरपदात् खः। अधि उत्तरपदं यस्य अध्युत्तरपदं, बहुव्रीहिः। अषडक्षश्च आशितङ्गुश्च अलङ्कर्म च अलम्पुरुषश्च अध्युत्तरपदं च तेषां समाहारद्वन्द्वः अषडक्षाशितङ्ग्वलङ्कर्मालम्पुरुषाध्युत्तरपदं, तस्मात् अषडक्षाशितङ्ग्वलङ्कर्मालम्पुरुषाध्युत्तरपदात् पञ्चम्यन्तं, खः प्रथमान्तम्। तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च का अधिकार है।

अषडक्ष, आशितङ्गु, अलङ्कर्म, अलम्पुरुष शब्दों से और अधि-उत्तरपद वाले प्रातिपदिकों से स्वार्थ में ख-प्रत्यय होता है।

अषडक्ष के अन्त में अक्ष शब्द है और वह इन्द्रियवाचक होने के कारण प्रकृत में श्रवणेन्द्रिय का वाचक है।

अषडक्षीणो मन्त्रः। **द्वाभ्यामेव कृत इत्यर्थः**। छह कानों तक न गया हुआ मन्त्र, अर्थात् दो मनुष्यों- जिनका मिलाकर चार ही श्रवणेन्द्रिय होते हैं, छह नहीं- के द्वारा चिन्तित और विचारित मन्त्र। यहाँ पर मन्त्र का अर्थ वैदिक मन्त्र न होकर **मन्त्रणा** अर्थ समझना चाहिये। **अषडक्ष** इस नञ्समासयुक्त शब्द से स्वार्थ में **अषडक्षाशितङ्ग्वलङ्कर्मालम्पुरुषाध्युत्तरपदात् खः** सूत्र से **ख** प्रत्यय होने पर खकार के स्थान पर **ईन्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप करके षकार से से परवर्ती नकार को णत्व होने पर **अषडक्षीण** शब्द बनता है। स्वादिकार्य से **अषडक्षीणः** सिद्ध हो जाता है। अथवा **न विद्यन्ते षड् अक्षीणि**=श्रवणेन्द्रियाणि **यस्मिन्** विग्रह करके भी **अषडक्ष** शब्द बनता है और उससे भी ख-प्रत्यय करके **अषडक्षीणः** बनाया जा सकता है।

आशिता गावोऽस्मिन्निति आशितङ्गवीनमरण्यम्। निपातनात्पूर्वस्य भुम्। वह जंगल, जहाँ पहले गायें चर चुकी हों। आशिताः गावः यस्मिन् विग्रह करके समासादि करने के बाद ओकार को ह्रस्व होकर **आशित+गु** शब्द बनता है। प्रकृत सूत्र में **आशितङ्गवीन** शब्द का पाठ होने से निपातनात् **आशित** शब्द को मुम् का आगम मान लिया जाता है। मुम्-आगम् होने पर मकार को अनुस्वार और परसवर्ण करके **आशितङ्गु** शब्द बन जाने के बाद प्रकृतसूत्र से ख-प्रत्यय करके ईनादेश, गु के उकार को **ओर्गुणः** सूत्र से गुण ओकार और उसको अवादेश होकर **आशितङ्गवीन** शब्द बन जाता है। स्वादिकार्य से **आशितङ्गवीनः** सिद्ध हो जाता है। आशित-शब्द णयन्त **अश्** धातु से क्त-प्रत्यय करके निष्पन्न हुआ है।

अलं कर्मणे अलङ्कर्मीणः। कार्य करने में समर्थ। **अलं कर्मणे** विग्रह करके अलम्+कर्मन्+ङे इस स्थिति में पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या वार्तिक से तत्पुरुषसमास होकर **अलङ्कर्मन्** शब्द बना है। अलङ्कर्मा एव विग्रह करके **अलङ्कर्मन्+सु** इस स्थिति में **अषडक्षाशितङ्ग्वलङ्कर्मालम्पुरुषाध्युत्तरपदात्खः** सूत्र से **ख** प्रत्यय होने पर ईनादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और नस्तद्धिते सूत्र से टिसंज्ञक भाग **अन्** का लोप करके **अलङ्कर्मीन** और नकार को णत्व करके अलङ्कर्मीण स्वादिकार्य से **अलङ्कर्मीणः** सिद्ध हो जाता है।

अलम्पुरुषीणः। किसी मनुष्य के लिये योग्य। **अलं पुरुषाय** विग्रह करके अलम्+पुरुष+ङे इस स्थिति में पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे **चतुर्थ्या** वार्तिक से तत्पुरुषसमास होकर **अलम्पुरुष** शब्द बना है। अलम्पुरुष एव विग्रह करके **अलम्पुरुष+सु** इस स्थिति में **अषडक्षाशितङ्ग्वलङ्कर्मालम्पुरुषाध्युत्तरपदात्खः** सूत्र से **ख** प्रत्यय होने पर ईनादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप तथा नकार को णत्व करके अलम्पुरुषीण बन जाता है। स्वादिकार्य से **अलम्पुरुषीणः** सिद्ध हो जाता है।

ईश्वराधीनः। ईश्वर के अधीन में। **ईश्वरे अधि** विग्रह करके शौण्डादिगण में अधि-शब्द का पाठ होने के कारण सप्तमी **शौण्डैः** सूत्र से समासादि होकर **ईश्वराधि** शब्द बना है। यह अध्युत्तरपद है। अतः **ईश्वराधिरेव** विग्रह करके ईश्वराधि++सु इस स्थिति में **अषडक्षाशितङ्ग्वलङ्कर्मालम्पुरुषाध्युत्तरपदात्खः** सूत्र से **ख** प्रत्यय होने पर ईनादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक इकार का लोप करके **ईश्वराधीन** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिदिकत्वात् स्वादिकार्य से **ईश्वराधीनः** सिद्ध हो जाता है।

नित्योऽयं खः। उत्तरसूत्रे विभाषाग्रहणात्। अर्थात् प्रकृतसूत्र से ख-प्रत्यय का विधान नित्य से माना जाय, क्योंकि यदि **समर्थानां प्रथमाद्वा** से **अधिकृत वा** पद के कारण इस सूत्र से विकल्प से माना जाता है तो अगले सूत्र में **विभाषा** पद व्यर्थ हो जायेगा। सूत्रकार ने अग्रिम सूत्र में विभाषा पद का ग्रहण किया है, इससे ज्ञापित होता है कि प्रकृतसूत्र से नित्य से ही ख-प्रत्यय होता है।

अब वक्ष्यमाण सूत्र के विभाषा पद के कारण किस-किस सूत्र का विधान नित्य माना जाय? यह आकांक्षा होती है। इस पर इसी सूत्र में भाष्यकार ने नित्य-प्रत्ययों का परिगणन कर दिया है-

'अन्येऽपि केचित्स्वार्थिकाः प्रत्यया नित्यमिष्यन्ते'। **'तमबादयः प्राक्तनः**। ज्यादयः प्रारबुन्। आमादयः प्राङ्मयटः। **'बृहतीजात्यन्ताः समासान्ताश्च'** इति भाष्यम्। इन वाक्यसमुदाय में पहला वाक्य दीक्षित जी का है और शेष चार वाक्य भाष्यकार के हैं। मूलकार कहते हैं कि भाष्यकार को अन्य कुछ स्वार्थिक प्रत्यय भी नित्य से इष्ट हैं। तदनुसार-

अलङ्कर्मीणः। अलम्पुरुषीणः। ईश्वराधीनः। नित्योऽयं खः। उत्तरसूत्रे विभाषाग्रहणात्। 'अन्येऽपि केचित्स्वार्थिकाः प्रत्यया नित्यमिष्यन्ते'। 'तमबादयः प्राक्तनः। ज्यादयः प्राग्वुनः। आमादयः प्राङ्मयटः। 'बृहतीजात्यन्ताः समासान्ताश्च' **इति भाष्यम्**।

अषडक्षाशितङ्ग्वलङ्कर्मालम्पुरुषाध्युत्तरपदात् खः। अधि उत्तरपदं यस्य अध्युत्तरपदं, बहुव्रीहिः। अषडक्षश्च आशितङ्गुश्च अलङ्कर्म च अलम्पुरुषश्च अध्युत्तरपदं च तेषां समाहारद्वन्द्वः अषडक्षाशितङ्ग्वलङ्कर्मालम्पुरुषाध्युत्तरपदं, तस्मात् अषडक्षाशितङ्ग्वलङ्कर्मालम्पुरुषाध्युत्तरपदात् पञ्चम्यन्तं, खः प्रथमान्तम्। तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च का अधिकार है।

अषडक्ष, आशितङ्गु, अलङ्कर्म, अलम्पुरुष शब्दों से और अधि-उत्तरपद वाले प्रातिपदिकों से स्वार्थ में ख-प्रत्यय होता है।

अषडक्ष के अन्त में अक्ष शब्द है और वह इन्द्रियवाचक होने के कारण प्रकृत में श्रवणेन्द्रिय का वाचक है।

अषडक्षीणो मन्त्रः। **द्वाभ्यामेव कृत इत्यर्थः**। छह कानों तक न गया हुआ मन्त्र, अर्थात् दो मनुष्यों- जिनका मिलाकर चार ही श्रवणेन्द्रिय होते हैं, छह नहीं- के द्वारा चिन्तित और विचारित मन्त्र। यहाँ पर मन्त्र का अर्थ वैदिक मन्त्र न होकर **मन्त्रणा** अर्थ समझना चाहिये। **अषडक्ष** इस नञ्समासयुक्त शब्द से स्वार्थ में **अषडक्षाशितङ्ग्वलङ्कर्मालम्पुरुषाध्युत्तरपदात् खः** सूत्र से **ख** प्रत्यय होने पर खकार के स्थान पर **ईन्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप करके षकार से से परवर्ती नकार को णत्व होने पर **अषडक्षीण** शब्द बनता है। स्वादिकार्य से **अषडक्षीणः** सिद्ध हो जाता है। अथवा **न विद्यन्ते षड् अक्षीणि=श्रवणेन्द्रियाणि यस्मिन्** विग्रह करके भी **अषडक्ष** शब्द बनता है और उससे भी ख-प्रत्यय करके **अषडक्षीणः** बनाया जा सकता है।

आशिता गावोऽस्मिन्निति आशितङ्गवीनमरण्यम्। निपातनात्पूर्वस्य मुम्। वह जंगल, जहाँ पहले गायें चर चुकी हों। आशिताः गावः यस्मिन् विग्रह करके समासादि करने के बाद ओकार को ह्रस्व होकर **आशित+गु** शब्द बनता है। प्रकृत सूत्र में **आशितङ्गवीन** शब्द का पाठ होने से निपातनात् **आशित** शब्द को मुम् का आगम मान लिया जाता है। मुम्-आगम् होने पर मकार को अनुस्वार और परसवर्ण करके **आशितङ्गु** शब्द बन जाने के बाद प्रकृतसूत्र से ख-प्रत्यय करके ईनादेश, गु के उकार को **ओर्गुणः** सूत्र से गुण ओकार और उसको अवादेश होकर **आशितङ्गवीन** शब्द बन जाता है। स्वादिकार्य से **आशितङ्गवीनः** सिद्ध हो जाता है। आशित-शब्द णयन्त **अश्** धातु से क्त-प्रत्यय करके निष्पन्न हुआ है।

अलं कर्मणे अलङ्कर्मीणः। कार्य करने में समर्थ। **अलं कर्मणे** विग्रह करके अलम्+**कर्मन्**+ङे इस स्थिति में पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या वार्तिक से तत्पुरुषसमास होकर **अलङ्कर्मन्** शब्द बना है। अलङ्कर्मा एव विग्रह करके **अलङ्कर्मन्+सु** इस स्थिति में **अषडक्षाशितङ्ग्वलङ्कर्मालम्पुरुषाध्युत्तरपदात्खः** सूत्र से **ख** प्रत्यय होने पर ईनादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और नस्तद्धिते सूत्र से टिसंज्ञक भाग **अन्** का लोप करके **अलङ्कर्मीन** और नकार को णत्व करके अलङ्कर्मीण स्वादिकार्य से **अलङ्कर्मीणः** सिद्ध हो जाता है।

अलम्पुरुषीणः। किसी मनुष्य के लिये योग्य। **अलं पुरुषाय** विग्रह करके अलम्+**पुरुष**+ङे इस स्थिति में पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे **चतुर्थ्या** वार्तिक से तत्पुरुषसमास होकर **अलम्पुरुष** शब्द बना है। अलम्पुरुष एव विग्रह करके **अलम्पुरुष+सु** इस स्थिति में **अषडक्षाशितङ्ग्वलङ्कर्मालम्पुरुषाध्युत्तरपदात्खः** सूत्र से **ख** प्रत्यय होने पर ईनादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप तथा नकार को णत्व करके **अलम्पुरुषीण** बन जाता है। स्वादिकार्य से **अलम्पुरुषीणः** सिद्ध हो जाता है।

ईश्वराधीनः। ईश्वर के अधीन में। **ईश्वरे अधि** विग्रह करके शौण्डादिगण में अधि-शब्द का पाठ होने के कारण सप्तमी शौण्डैः सूत्र से समासादि होकर **ईश्वराधि** शब्द बना है। यह अध्युत्तरपद है। अतः **ईश्वराधिरेव** विग्रह करके ईश्वराधि++सु इस स्थिति में **अषडक्षाशितङ्ग्वलङ्कर्मालम्पुरुषाध्युत्तरपदात्खः** सूत्र से **ख** प्रत्यय होने पर ईनादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक इकार का लोप करके **ईश्वराधीन** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिदिकत्वात् स्वादिकार्य से **ईश्वराधीनः** सिद्ध हो जाता है।

नित्योऽयं खः। उत्तरसूत्रे विभाषाग्रहणात्। अर्थात् प्रकृतसूत्र से ख-प्रत्यय का विधान नित्य से माना जाय, क्योंकि यदि समर्थानां **प्रथमाद्वा** से अधिकृत **वा** पद के कारण इस सूत्र से विकल्प से माना जाता है तो अगले सूत्र में **विभाषा** पद व्यर्थ हो जायेगा। सूत्रकार ने अग्रिम सूत्र मे विभाषा पद का ग्रहण किया है, इससे ज्ञापित होता है कि प्रकृतसूत्र से नित्य से ही ख-प्रत्यय होता है।

अब वक्ष्यमाण सूत्र के विभाषा पद के कारण किस-किस सूत्र का विधान नित्य माना जाय? यह आकांक्षा होती है। इस पर इसी सूत्र में भाष्यकार ने नित्य-प्रत्ययों का परिगणन कर दिया है-

'अन्येऽपि केचित्स्वार्थिकाः प्रत्यया नित्यमिष्यन्ते'। **'तमबादयः प्राक्तनः। ज्यादयः प्राग्वृत्तः। आमादयः प्राङ्मयटः। 'बृहतीजात्यन्ताः समासान्ताश्च' इति भाष्यम्।** इन वाक्यसमुदाय में पहला वाक्य दीक्षित जी का है और शेष चार वाक्य भाष्यकार के हैं। मूलकार कहते हैं कि भाष्यकार को अन्य कुछ स्वार्थिक प्रत्यय भी नित्य से इष्ट हैं। तदनुसार-

१. **तमबादयः प्राक्कनः**। अर्थात् तमप्-प्रत्यय से लेकर कन्-प्रत्यय के पहले तक के प्रत्यय नित्य हैं। ये हैं- **अतिशायने तमबिष्ठनौ** (५.३.५५) से लेकर **अवक्षेपणे कन्** (५.३.९५) से पहले तक।

२. **ञ्यादयः प्राग्वुनः**। अर्थात् ञ्य-प्रत्यय से लेकर वुन्-प्रत्यय के पहले तक के प्रत्यय नित्य हैं। ये हैं- **पूगाञ्ञ्योऽग्रामणीपूर्वात्** (५.३.१११) से लेकर **शादशतस्य संख्यादेर्वीप्सायां वुन् लोपश्च** (५.४.१) से पहले तक।

३. **आमादयः प्राङ्मयटः**। अर्थात् आमु-प्रत्यय से लेकर मयट्-प्रत्यय के पहले तक के प्रत्यय नित्य हैं। ये हैं- **किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे** (५.४.११) से लेकर **तत्प्रकृतवचने मयट्** (५.४.२१) से पहले तक। और-

४. **बृहतीजात्यन्ताः समासान्ताश्च**। अर्थात् **बृहत्या आच्छादने** (५.४.६) से विहित **कन्** प्रत्यय तथा **जात्यन्ताच्छ बन्धुनि** (५.४.९) सूत्र से विहित छ-प्रत्यय।

उक्त भाष्यवचन से उपर्युक्त चारों परिधियों में **समर्थानां प्रथमाद्वा** सूत्र से आगत महाविभाषा **वा** का प्रभाव नहीं होता। इसमें ज्ञापक वक्ष्यमाण सूत्र **विभाषाञ्चेरदिक् स्त्रियाम्** में पठित **विभाषा** पद है। अन्यथा **विभाषा** पद के बिना भी वहाँ महाविभाषा के प्रभाव से ही विकल्प सिद्ध होता।

२०८०. विभाषाञ्चेरदिक्स्त्रियाम् ५।४।८॥

अदिक्स्त्रीवृत्तेरञ्चत्यन्तात् प्रातिपदिकात् खः स्याद्वा स्वार्थे।

प्राक्, प्राचीनम्। प्रत्यक्, प्रतीचीनम्। अवाक्, अवाचीनम्। 'निकृष्टप्रतिकृष्टावरेफयाप्यावमाधमाः' इत्यमरः। अर्वन्तमञ्चतीति अर्वाक्, अर्वाचीनम्। 'अदिक्स्त्रियाम्' किम्? प्राची दिक्, उदीची दिक्। 'दिग्ग्रहणम्' किम्? प्राचीना ब्राह्मणी। 'स्त्रीग्रहणम्' किम्? प्राचीनं ग्रामादाग्राः।

विभाषाञ्चेरदिक्स्त्रियाम्। दिक् चासौ स्त्री दिक्स्त्री, न दिक्स्त्री अदिक्स्त्री, तस्यां अदिक्स्त्रियाम्, कर्मधारयगर्भो नञ्तत्पुरुषः। विभाषा प्रथमान्तम्, अञ्चेः पञ्चम्यन्तम्, अदिक्स्त्रियां सप्तम्यन्तम्। **अषडक्षाशितङ्ग्वलङ्कर्मालम्पुरुषाध्युत्तरपदात् खः** से **खः** की अनुवृत्ति आती है तथा **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

अञ्च्-उत्तरपदक दिशावाचक प्रातिपदिक यदि स्त्रीलिंगवाची न हो तो, उससे स्वार्थ में विकल्प से ख-प्रत्यय होता है।

ध्यान रहे कि **प्र, प्रति, उत्, सम्** उपसर्ग के योग में **अञ्च्** धातु से स्त्रीलिंग में दिशावाची **प्राची, प्रतीची, उदीची, समीची** आदि शब्द बनते हैं, उनका यहाँ पर **अदिक्स्त्रियाम्** पद से निषेध किया गया है अर्थात् उनसे प्रकृतसूत्र से विधीयमान ख-प्रत्यय नहीं होता। यद्यपि सूत्र में **अञ्चेः** इस पद से पुंल्लिंग का ग्रहण है तथापि

प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम् परिभाषा के बल पर स्त्रीलिंग में भी प्राप्ति होती है, एतदर्थ उक्त निषेध सार्थक हो जाता है।

प्राक्, प्राचीनम्। पुराना। **प्राक् एव** विग्रह करके लुप्त-अस्ताति-प्रत्ययान्त **प्राच्** शब्द से **विभाषाञ्चेरदिक्स्त्रियाम्** सूत्र से विकल्प से ख-प्रत्यय होने पर खकार के स्थान पर **ईन्** आदेश होकर **प्राचीन** शब्द बनता है। स्वादिकार्य से **प्राचीनम्** सिद्ध हो जाता है। ख-प्रत्यय न होने के पक्ष में **प्राक्** बनता ही है।

प्रत्यक्, प्रतीचीनम्। विरुद्ध, पीछे। **प्रत्यक् एव** विग्रह करके लुप्त-अस्ताति-प्रत्ययान्त **प्रतीच्** शब्द से **विभाषाञ्चेरदिक्स्त्रियाम्** सूत्र से विकल्प से ख-प्रत्यय होने पर खकार के स्थान पर **ईन्** आदेश होकर **प्रतीचीन** शब्द बनता है। स्वादिकार्य से **प्रतीचीनम्** सिद्ध हो जाता है। ख-प्रत्यय न होने के पक्ष में **प्रत्यक्** बनता ही है।

अवाक्, अवाचीनम्। नीचे। **अवाक् एव** विग्रह करके लुप्त-अस्ताति-प्रत्ययान्त **अवाच्** शब्द से **विभाषाञ्चेरदिक्स्त्रियाम्** सूत्र से विकल्प से ख-प्रत्यय होने पर खकार के स्थान पर **ईन्** आदेश होकर **अवाचीन** शब्द बनता है। स्वादिकार्य से **अवाचीनम्** सिद्ध हो जाता है। ख-प्रत्यय न होने के पक्ष में **अवाक्** बनता ही है।

'निकृष्टप्रतिकृष्टावरेफयाप्यावमाधमाः' इत्यमरः। अमरकोश के अनुसार **निकृष्ट, प्रतिकृष्ट, अर्वन्, रेफ, याप्य, अवम** तथा **अधम** शब्द पर्यायवाची हैं। इस लिये ऊपर अवाक्, अवाचीनम् का नीचा, नीचे आदि अर्थ किये गये हैं और आगे **अर्वाक्** का अर्थ भी यही किया जा रहा है।

अर्वन्तमञ्चतीति अर्वाक्, अर्वाचीनम्। नीचे की ओर गमनशील। **अर्वन्तम्** अञ्चति विग्रह करके **अर्वन्+अम्+अञ्च्** से **अर्वाच्** शब्द निष्पन्न होता है। उक्त **अर्वाच्** शब्द से **विभाषाञ्चेरदिक्स्त्रियाम्** सूत्र से विकल्प से ख-प्रत्यय होने पर खकार के स्थान पर **ईन्** आदेश होकर **अर्वाचीन** शब्द बनता है। स्वादिकार्य से **अर्वाचीनम्** सिद्ध हो जाता है। ख-प्रत्यय न होने के पक्ष में **अर्वाक्** बनता है।

उपर्युक्त प्राचीनम्, प्रतीचीनम्, **अवाचीनम्, अर्वाचीनम्** आदि में **सामान्ये नपुंसकम्** के अनुसार नपुंसकलिङ्ग और एकवचन कर प्रयोग किया गया है। यह तो पदसंस्कारपक्ष की बात हुयी। वाक्यसंस्कारपक्ष में **प्राक् (प्राच्)** आदि शब्दों से ही तत्समभिव्याहृत देश-कालस्थ वृक्षादि बोधक शब्दों से ख-प्रत्यय होने पर तत्तत् लिङ्ग अर्थात् विशेष्य के अनुसार पुंल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग यथायथ होते हैं। जैसे **प्राचीनाः आम्राः, प्राचीना वाटिका** इत्यादि।

'अदिक्स्त्रियाम्' किम्? प्राची दिक्, उदीची दिक्। प्रकृतसूत्र में **अदिक्स्त्रियाम्** पद का निवेश होने से स्त्रीत्वबोधक दिग्वाचक का परित्याग किया गया है। अतः **प्राची दिक्** (पूर्व दिशा), **उदीची दिक्** (उत्तर दिशा) इत्यादि स्थलों पर दिशावाची होते हुये स्त्रीलिंग में भी होने के कारण उक्त ख-प्रत्यय नहीं हुआ है।

'दिग्ग्रहणम्' किम्? प्राचीना ब्राह्मणी। प्रकृतसूत्र में दिक् शब्द का ग्रहण होने से दिग्वाची शब्दों से ख-प्रत्यय नहीं होगा, किन्तु अदिग्वाची शब्दों से ख-प्रत्यय होता है। जैसे कि **प्राचीना ब्राह्मणी** (पुरानी ब्राह्मणी) में **प्राच्**-शब्द से ख-प्रत्यय हो जाता है। जो शब्द दिशावाची होते हुये वर्तमान में दिशावाची न हो, उसका ग्रहण समझना चाहिये।

'स्त्रीग्रहणम्' किम्? प्राचीनं ग्रामादाम्राः। प्रकृतसूत्र में **स्त्रियाम्** पद का ग्रहण होने से स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त शब्दों से ही ख-प्रत्यय का निषेध होता है किन्तु प्रयोगावस्था में वह शब्द स्त्रीलिंग में नहीं है तो ख-प्रत्यय का निषेध नहीं होता अपितु हो जाता है। जैसे कि **प्राचीनं ग्रामाद् आम्राः** (आम के पेड़ ग्राम से पूर्व दिशा में हैं) में स्त्रीलिंग का प्रयोग नहीं है, फलतः ,ख-प्रत्यय हो गया है।

२०८१. जात्यन्ताच्छ बन्धुनि ५।४।९॥

ब्राह्मणजातीयः।

'बन्धुनि' किम्? ब्राह्मणजातिः शोभना। जातेर्व्यञ्जकं द्रव्यं बन्धु।

जात्यन्ताच्छ बन्धुनि। जाति-शब्द अन्ते यस्य स जात्यन्तस्तस्माज्जात्यन्तात् पञ्चम्यन्तं, छ इति लुप्तप्रथमाकं पदं, बन्धुनि सप्तम्यन्तम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

जाति-शब्दान्त प्रातिपदिक से स्वार्थ में **छ-प्रत्यय होता है, बन्धु=व्यक्ति, द्रव्य गम्यमान** होने पर।

बध्यते ब्राह्मणत्वादिजातिर्व्यज्यतेऽस्मिन् (जाति जिसमें बद्ध या व्यक्त हो) विग्रह करने पर बन्धु-शब्द का अर्थ द्रव्य, व्यक्ति बन जाता है। उसी अर्थ में इस प्रत्यय का विधान है। इस तरह सूत्रस्थ बन्धु शब्द जाति के अभिव्यंजक द्रव्य (व्यक्ति) के रूप में अपेक्षित है- **जातेर्व्यञ्जकं द्रव्यं बन्धु।**

ब्राह्मणजातीयः। ब्राह्मणत्व-जात्याश्रय व्यक्तिविशेष। **ब्राह्मणजातिः एव** विग्रह करके **ब्राह्मणजाति+सु** इस स्थिति में **जात्यन्ताच्छ बन्धुनि** सूत्र से छ-प्रत्यय होने पर छकार के स्थान पर **ईय्** आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक इकार का लोप होकर **ब्राह्मणजातीय** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **ब्राह्मणजातीयः** सिद्ध हो जाता है।

'बन्धुनि' किम्? ब्राह्मणजातिः शोभना। जातेर्व्यञ्जकं द्रव्यं बन्धु। प्रकृत सूत्र में **बन्धुनि** पद का निवेश होने से **ब्राह्मणजातिः शोभना** (ब्राह्मण जाति सुन्दर जाति है) में छ-प्रत्यय नहीं हुआ, क्योंकि वहाँ पर प्रकृति-प्रत्यय के समुदाय से **बन्धु** अर्थ की अभिव्यक्ति नहीं होती। जाति के व्यंजक द्रव्य को बन्धु कहते हैं।

२०८२. स्थानान्ताद्विभाषा सस्थानेनेति चेत् ५।४।१०॥

सस्थानेन=तुल्येन चेत् स्थानान्तमर्थवदित्यर्थः। पित्रा तुल्यः पितृस्थानीयः, पितृस्थानः। 'सस्थानेन' किम्? गोः स्थानम्।

स्थानान्ताद्विभाषा सस्थानेनेति चेत्। स्थान-शब्दः अन्ते यस्य स स्थानान्तस्तस्मात् स्थानान्तात्। समानं स्थानं यस्य तत् सस्थानं, तेन सस्थानेन। स्थानान्तात् पञ्चम्यन्तं, विभाषा प्रथमान्तं; सस्थानेन तृतीयान्तम्, इत्यव्ययं, चेदव्ययम्। **जात्यन्ताच्छ बन्धुनि** से **छ** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः**, **ङ्याप्प्रातिपदिकात्**, **प्रत्ययः**, **परश्च** का अधिकार है।

स्थान-शब्दान्त प्रातिपदिक से स्वार्थ में विकल्प से छ-प्रत्यय होता है, यदि सस्थान (स्थानान्त) से तुल्य अर्थ में स्थानान्त शब्द हो तो।

सस्थानेन का अर्थ है- **तुल्येन** और **इति** शब्द का अर्थ है- **अर्थवान्।**

पित्रा तुल्यः पितृस्थानीयः, पितृस्थानः। पिता के समान स्थान का अधिकारी। **पितुः इव स्थानम् अस्य** विग्रह करके समासादि होने के बाद **पितृस्थान** शब्द बना है। **पितृस्थान एव** विग्रह करके **पितृस्थान+सु** इस स्थिति में **स्थानान्ताद्विभाषा सस्थानेनेति चेत्** सूत्र से विकल्प से **छ**-प्रत्यय होने पर छकार के स्थान पर ईयादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पितृस्थानीय** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पितृस्थानीयः** सिद्ध हो जाता है। छ-प्रत्यय न होने के पक्ष में **पितृस्थानः** ही रहता है।

'सस्थानेन' किम्? गोः स्थानम्। प्रकृतसूत्र में **सस्थानेन** पद का निवेश होने के कारण तुल्यार्थक स्थान होने पर ही छ-प्रत्यय होगा। अतः **गोः स्थानम्** में छ-प्रत्यय नहीं हुआ, क्योंकि यहाँ पर प्रयुक्त स्थान-शब्द तुल्यार्थक नहीं है। अतः वाक्य ही रह जाता है।

२०८३. अनुगादिनठक् ५।४।११॥

अनुगदतीत्यनुगादी। स एव आनुगादिकः।

अनुगादिनठक्। अनुगादिनः पञ्चम्यन्तं, ठक् प्रथमान्तम्। **तद्धिताः**, **ङ्याप्प्रातिपदिकात्**, **प्रत्ययः**, **परश्च** का अधिकार है।

अनुगादिन्-शब्द से स्वार्थ में ठक् प्रत्यय होता है।

अनुगदतीत्यनुगादी। स एव आनुगादिकः। जो पीछे बोलने वाला है, उसे **अनुगादी** कहते हैं और **अनुगादी** ही **आनुगादिकः** कहलाता है। **अनुगादी एव** लौकिक विग्रह करके इन्नन्त **अनुगादिन्+सु** इस स्थिति में **अनुगादिनठक्** सूत्र से **ठक्** प्रत्यय होने पर **अनुबन्धलोप**, **ठ के स्थान पर ठस्येकः** सूत्र से इक आदेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और **आदिवृद्धि** होकर **आनुगादिन्+इक** बना है। **नस्तद्धिते** सूत्र से टिसंज्ञक भाग

इन् का लोप होकर **आनुगादिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आनुगादिकः** सिद्ध हो जाता है।

२०८४. विसारिणो मत्स्ये ५।४।१६॥

अण् स्यात्। वैसारिणः।

'मत्स्ये' इति किम्? विसारी देवदत्तः।

विसारिणो मत्स्ये। विसारिन्-शब्दस्य पञ्चम्यन्तं रूपं विसारिणः। मत्स्ये सप्तम्यन्तम्। अष्टाध्यायीक्रम के अनुसार पूर्वसूत्र **अणिनुणः** (५.४.१५) से **अण्** की अनुवृत्ति आती है और **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

मत्स्य (मछली) अभिधेय होने पर विसारिन्-शब्द से स्वार्थ में अण् प्रत्यय होता है।

वैसारिणः। विचरण करने वाली मछली। **विसारी एव** विग्रह करके **विसारिन्+सु** इस स्थिति में **विसारिणो मत्स्ये** सूत्र से अण्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और आदिवृद्धि करके **वैसारिन्+अ** बना है। यहाँ पर **नस्तद्धिते** सूत्र से प्राप्त टिलोप का **इनण्यनपत्ये** (६.४.१६४) सूत्र से प्रकृतिभाव हो जाने से लोप नहीं होता, अतः वर्णसम्मेलन होकर **वैसारिन** और णत्व होकर **वैसारिण** तथा स्वादिकार्य से **वैसारिणः** सिद्ध हो जाता है।

'मत्स्ये' इति किम्? विसारी देवदत्तः। प्रकृत सूत्र में **मत्स्ये** पद से यह सूचित किया गया है कि मत्स्य अभिधेय होने पर ही अण् प्रत्यय हो, अन्यथा न हो। अतः **विसारी देवदत्तः** (धीरे-धीरे खिसकने वाला देवदत्त) में देवदत्त (मनुष्य) के अभिधेय होने के कारण अण्-प्रत्यय नहीं हुआ।

२०८५. संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच् ५।४।१७॥

अभ्यावृत्तिर्जन्म। क्रियाजन्मगणनवृत्तेः संख्याशब्दात् स्वार्थे कृत्वसुच् स्यात्। पञ्चकृत्वो भुङ्क्ते। 'संख्यायाः' किम्? भूरिवारान् भुङ्क्ते।

संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच्। वर्तनं वृत्तिः, अभितः=आसमन्ताद् वर्तनम् अभ्यावृत्तिः (पौनःपुन्यमित्यर्थः), गतिसमासः। क्रियाया अभ्यावृत्तिः क्रियाभ्यावृत्तिः, षष्ठीतत्पुरुषः। क्रियाभ्यावृत्तेः गणनं क्रियाभ्यावृत्तिगणनम्, तस्मिन् क्रियाभ्यावृत्तिगणने। संख्यायाः पञ्चम्यन्तं, क्रियाभ्यावृत्तिगणने सप्तम्यन्तं, कृत्वसुच् प्रथमान्तम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

क्रिया की बार-बार आवृत्ति की गणना होने में वर्तमान संख्यावाची शब्द से स्वार्थ में कृत्वसुच् प्रत्यय होता है।

अभ्यावृत्तिर्जन्म। **अभ्यावृत्ति** का अर्थ है- जन्म। बार-बार होना। **क्रियायाः अभ्यावृत्तिः** कहने पर क्रिया का बार-बार होने का सूचक (बोधक) जो गणनार्थक संख्यावाची शब्द है, उससे यह प्रत्यय किया गया है। **कृत्वसुच्** में अन्त्य चकार इत्संज्ञक है और उससे पूर्ववर्ती उकार उच्चारणार्थक है। इस तरह **कृत्वस्** बचता है। अव्ययसंज्ञाविधायक **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** सूत्र के तसिलादि में कृत्वसुच् का भी पाठ है, अतः कृत्वसुजन्त शब्द अव्ययसंज्ञक होता है। ध्यान रहे कि क्रिया की आवृत्ति की गणना में ही यह प्रत्यय होता है।

पञ्चकृत्वो भुङ्क्ते। पाँच बार खाता है। **पञ्च वारान् भुङ्क्ते** अर्थ में **पञ्चन्+शस्** इस स्थिति में **क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच्** सूत्र से **कृत्वसुच् (कृत्वस्)** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **पञ्चन्+कृत्वस्** बना है। **नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य** सूत्र से नकार का लोप होकर **पञ्चकृत्वस्** बना। इसकी **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** सूत्र से अव्ययसंज्ञा होती है और एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् सु आदि प्रत्यय आते हैं किन्तु अव्यय से विहित होने के कारण उनका **अव्ययादाप्सुपः** सूत्र से लुक् हो जाता है। फलतः **पञ्चकृत्वस्** ही बचा है। सकार को रुत्व और उसको विसर्ग होकर **पञ्चकृत्वः** सिद्ध होता है।

'संख्यायाः' किम्? भूरिवारान् भुङ्क्ते। प्रकृत सूत्र में **संख्यायाः** शब्द के कारण संख्यावाची शब्द से ही यह प्रत्यय होता है अतः **भूरिवारान् भुङ्क्ते** (बहुत बार खाता है) में क्रिया की अभ्यावृत्ति होने पर भी **भूरि** शब्द के संख्यावाची शब्द न होने के कारण कृत्वसुच् नहीं हुआ अर्थात् **भूरिवारान्** ही रह जाता है।

२०८६.द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच् ५।४।१८॥

कृत्वसुचोऽपवादः। द्विर्भुङ्क्ते। त्रिः।
'रात्सस्य' (सू.२८०)। चतुः।

द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच्। द्वौ च त्रयश्च चत्वारश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो द्वित्रिचत्वारस्तेभ्यो द्वित्रिचतुर्भ्यः पञ्चम्यन्तं, सुच् प्रथमान्तम्। **संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच्** से **संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने** की अनुवृत्ति आती है और **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

क्रिया की बार-बार आवृत्ति की गणना होने में वर्तमान संख्यावाची द्वि, त्रि और चतुर् इन प्रातिपदिकों से स्वार्थ में सुच् प्रत्यय होता है।

सुच् में अन्त्य चकार इत्संज्ञक है और उससे पूर्ववर्ती उकार उच्चारणार्थक है। इस तरह **स्** मात्र बचता है। अव्ययसंज्ञाविधायक **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** सूत्र के तसिलादि में कृत्वसुच् का भी पाठ है, अतः सुजन्त शब्द अव्ययसंज्ञक होता है। ध्यान रहे कि यह प्रत्यय भी क्रिया की आवृत्ति की गणना में ही होता है।

कृत्वसुचोऽपवादः। यह पूर्वसूत्र का अपवाद है। क्रियाभ्यावृत्तिगणन में अन्य शब्दों से कृत्वसुच् होगा, किन्तु द्वि, त्रि, चतुर् शब्दों से कृत्वसुच् को बाधकर सुच् प्रत्यय होगा।

द्विर्भुङ्क्ते। दो बार खाता है। **द्विवारं भुङ्क्ते** अर्थ में **द्वि+औ** इस स्थिति में **द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच्** सूत्र से **सुच् (स्)** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **द्विस्** शब्द बना है। इसकी **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** सूत्र से अव्ययसंज्ञा होती है और एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् सु आदि प्रत्यय आते हैं किन्तु अव्यय से विहित होने के कारण उनका **अव्ययादाप्सुपः** सूत्र से लुक् हो जाता है। फलतः द्विस् ही बचा है। सकार को रुत्व और उसको विसर्ग होकर **द्विः** सिद्ध होता है। अव्यय होने के कारण इसके रूप नहीं चलते।

त्रिः (भुङ्क्ते)। तीन बार खाता है। **त्रिवारं भुङ्क्ते** अर्थ में **त्रि+शस्** इस स्थिति में **द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच्** सूत्र से **सुच् (स्)** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **त्रिस्** शब्द बना है। इसकी **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** सूत्र से अव्ययसंज्ञा होती है और एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् सु आदि प्रत्यय आते हैं किन्तु अव्यय से विहित होने के कारण उनका **अव्ययादाप्सुपः** सूत्र से लुक् हो जाता है। फलतः **त्रिस्** ही बचा है। सकार को रुत्व और उसको विसर्ग होकर **त्रिः** सिद्ध होता है।

'**रात्सस्य**'। चतुर्-शब्द से सुच् प्रत्यय के सकारलोपार्थ **रात्सस्य** सूत्र की प्रवृत्ति होती है।

चतुः। चार बार (खाता है)। **चतुर्वारं भुङ्क्ते** अर्थ में **चतुर्+शस्** इस स्थिति में **द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच्** सूत्र से **सुच् (स्)** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **चतुर्+स्** बना। **रात्सस्य** सूत्र के नियम से अन्त्य सकार का लोप होने पर **चतुर्** ही बना है। सकार का लोप हो गया है तथापि शब्द सुजन्त ही कहलायेगा, अतः इसकी **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** सूत्र से अव्ययसंज्ञा होती है और एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् सु आदि प्रत्यय आते हैं किन्तु अव्यय से विहित होने के कारण उनका **अव्ययादाप्सुपः** सूत्र से लुक् हो जाता है। फलतः चतुर् ही बचा है। रेफ को विसर्ग होकर **चतुः** सिद्ध होता है।

२०८७. एकस्य सकृच्च ५।४।१९॥

'सकृत्' इत्यादेशः स्यात्, चात् सुच्।

सकृद्भुङ्क्ते। **'संयोगान्तस्य-' (सू.५४) इति सुचो लोपः, न तु 'हल्ङ्याप्' (सू.२५२) इति, अभैत्सीदित्यत्र सिच इव सुचोऽपि तदयोगात्।**

एकस्य सकृच्च। एकस्य षष्ठ्यन्तं, सकृत् प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **संख्या...**

क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच् से **संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने** की अनुवृत्ति आती तो है किन्तु **अभ्यावृत्ति** अंश का अर्थ के साथ सम्बन्ध नहीं होता, क्योंकि संख्यावाची एक शब्द के साथ **अभ्यावृत्ति=पौनःपुन्य** सम्भव नहीं है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

क्रिया की गणना होने में वर्तमान संख्यावाची एक-शब्द से स्वार्थ में सुच् प्रत्यय होता है और साथ ही एक-शब्द के स्थान पर सकृत् आदेश भी होता है।

यह भी **कृत्वसुच्** का अपवाद है।

सकृद्भुङ्क्ते। एक बार खाता है। **एकवारम्** विग्रह करके **एक+सु** इस स्थिति में **एकस्य सकृच्च** सूत्र से सुच् प्रत्यय के साथ **एक**-शब्द के स्थान पर **सकृत्** आदेश होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **सकृत्+स्** बना है। अव्ययसंज्ञा और सु आदि प्रत्यय होने पर अव्यय से विहित होने के कारण स्वादिप्रत्यय का लुक् हो जाता है और सकार का **संयोगान्तस्य लोपः** सूत्र से लोप होकर **सकृत्** यह शब्द सिद्ध हो जाता है।

'संयोगान्तस्य-' इति सुचो लोपः, न तु 'हल्ङ्याप्- ' इति, अभैत्सीदित्यत्र सिच इव सुचोऽपि **तदयोगात्**। अर्थात् सुच् के सकार का **संयोगान्तस्य लोपः** सूत्र से लोप होता है, न कि **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल्** से, क्योंकि उक्त सूत्र में जिस प्रकार **सि** शब्द से **सहचरितासहचरितयोः सहचरितस्यैव ग्रहणम्** परिभाषा के बल पर **तिप्** के साथ सहचरित **सिप्** का ग्रहण होता है, न कि **सिच्** वाले सि का। अतः **अभैत्सीत्** में सिच् के सकार का लोप नहीं होता, उसी प्रकार से **सु** से सुच् का ग्रहण नहीं अपितु **सु, औ, जस्** वाले सु का ही ग्रहण होता है। तात्पर्य यह है कि कुछ प्राचीन वृत्तिकारों ने यहाँ **सकृत्+स्** में हल्ङ्यादिसूत्र से सुच् के सकार का लोप करने की सम्मति दी है। उनके मतमें संयोगान्तलोप असिद्ध है। यह वस्तुतः ठीक नहीं है, क्योंकि विभक्तिसंज्ञकों (सु, ति, सि) के साहचर्य से विभक्ति-घटक स्, त्, स् का ही उक्त लोपविधायक सूत्र में ग्रहण है। इसी लिये **अभैत्सीत्** में सिच्-सम्बन्धी सकार का ग्रहण न होने से उसका लोप नहीं हुआ। तदनुसार यहाँ पर भी **सु** से सुच् के सकार का लोप नहीं होगा, क्योंकि यह विभक्तिसंज्ञक सु का सकार नहीं है।

२०८८. विभाषा बहोर्धाऽविप्रकृष्टकाले ५।४।२०॥

अविप्रकृष्ट आसन्नः। बहुधा बहुकृत्वो वा दिवसस्य भुङ्क्ते।
'आसन्नकाले' किम्? बहुकृत्वो मासस्य भुङ्क्ते।

विभाषा बहोर्धाऽविप्रकृष्टकाले। न विप्रकृष्टः- अविप्रकृष्टः, अविप्रकृष्टः कालो यस्य तद् अविप्रकृष्टकालं, तस्मिन् अविप्रकृष्टकाले, नञ्तत्पुरुषगर्भो बहुव्रीहिः। विभाषा प्रथमान्तं, बहोः पञ्चम्यन्तं, धा प्रथमान्तम्, अविप्रकृष्टकाले सप्तम्यन्तम्। **संख्यायाः**

क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच् से **संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

अविप्रकृष्टकालिक=आसन्नकालिक (शीघ्र होने वाली) क्रिया की अभ्यावृत्ति (पौनःपुन्य) गिनती करना अर्थ में वर्तमान बहु-शब्द से विकल्प से धा-प्रत्यय होता है। पक्ष में कृत्वसुच् प्रत्यय होता है।

अविप्रकृष्ट आसन्नः। सूत्रस्थ **अविप्रकृष्ट**-शब्द का अर्थ है- आसन्न, समीपवर्ती।

बहुधा बहुकृत्वो वा दिवसस्य भुङ्क्ते। दिन में बहुत बार भोजन करता है। यहाँ पर **बहु**-शब्द से **विभाषा बहोर्धाऽविप्रकृष्टकाले** सूत्र से **धा**-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **बहुधा** शब्द बन जाता है। धा-प्रत्यय न होने के पक्ष में **क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच्** सूत्र से कृत्वसुच् प्रत्यय होकर **बहुकृत्वस्** शब्द बनता है। दोनों शब्दों की **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** सूत्र से अव्ययसंज्ञा होती है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिक मानकर स्वादिकार्य होता है अर्थात् सु आदि प्रत्ययों के आने पर **अव्ययादाप्सुपः** सूत्र से उनका लुक् हो जाता है।- **बहुधा, बहुकृत्वः**।

'आसन्नकाले' किम्? बहुकृत्वो मासस्य भुङ्क्ते। पूर्व दो सूत्रों से विहित **कृत्वसुच्** प्रत्यय विप्रकृष्ट क्रिया (दो क्रिया की अभ्यावृत्ति) के गणनर में भी होता है किन्तु **धा**-प्रत्यय केवल समीपवर्ती क्रिया की अभ्यावृत्ति के गणना में ही होता है। अतः **बहुकृत्वः मासस्य भुङ्क्ते** (महीने में अनेक बार भोजन करता है, प्रतिदिन नहीं) में प्रकृतसूत्र से धा-प्रत्यय नहीं हुआ, क्योंकि यहाँ क्रिया की सन्निकटता अर्थात् अविप्रकृष्टता नहीं है। अतः पूर्वसूत्र से कृत्वसुच् होकर **बहुकृत्वः** बन जाता है।

२०८९. तत्प्रकृतवचने मयट् ५।४।२१॥

प्राचुर्येण प्रस्तुतं प्रकृतम्, तस्य वचनं प्रतिपादनम्। भावेऽधिकरणे वा ल्युट्। आद्ये प्रकृतमन्नमन्नमयम्। अपूपमयः। यवागूमयी। द्वितीयेऽन्नमयो यज्ञः। अपूपमयं पर्व।

तत्प्रकृतवचने मयट्। प्राचुर्येण प्रस्तुतं प्रकृतं, प्रकृतस्य वचनं प्रकृतवचनं, तस्मिन्। तत् प्रथमान्तानुकरणं लुप्तपञ्चमीकं, प्रकृतवचने सप्तम्यन्तं, मयट् प्रथमान्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

प्राचुर्य, अधिकता से युक्त वस्तु के वाचक प्रातिपदिकों से स्वार्थ में या भाव और अधिकरण की वाच्यता में मयट् प्रत्यय होता है।

प्राचुर्येण प्रस्तुतं प्रकृतम्। तस्य वचनं प्रतिपादनम्। भावेऽधिकरणे वा ल्युट्। सूत्रस्थ **प्रकृत**-शब्द का अर्थ है- प्रचुरता से प्रस्तुत। सूत्र में **वचन** शब्द पठित है। इसकी दो तरह की व्युत्पत्ति है- एक भाव अर्थ में व्युत्पत्ति है- **कथनं प्रतिपादनमेव वचनम्** और दूसरी अधिकरण अर्थ में व्युत्पत्ति- **उच्यतेऽस्मिन् इति वचनम्**। सूत्र में

पठित **प्रकृत** शब्द का अर्थ है **प्रचुरता, अधिकता।** **तत्** यह प्रथमान्त का सूचक है, अतः प्रथमान्त प्रातिपदिकों से यह प्रत्यय होगा। **मयट्** में **टकार** इत्संज्ञक है, **मय** बचता है।

आद्ये- अर्थात् भावार्थक व्युत्पत्ति के अनुसार उदाहरण देखें-

अन्नमयम्। अधिकता से विद्यमान अन्न। **प्राचुर्येण प्रस्तुतम् अन्नम्। अन्न सु** से **तत्प्रकृतवचने मयट्** सूत्र के द्वारा **मयट्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अन्नमय** बना। स्वादिकार्य करके **अन्नमयम्** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **प्राचुर्येण प्रस्तुतम् अपूपम्** में **अपूपमयम्** बना सकते हैं। ये तो **वचन** में भावव्युत्पत्ति के उदाहरण हैं, अधिकरणव्युत्पत्ति के उदाहरण आगे देखें।

द्वितीये- अर्थात् अधिकरणार्थक व्युत्पत्ति का उदाहरण दिया जा रहा है-

अन्नमयम्। अन्न की अधिकता होती है जिसमें, ऐसे यज्ञ आदि। **प्राचुर्येण प्रस्तुतम् अन्नं यस्मिन्।** यहाँ पर अधिकरण अर्थ है। **अन्न सु** में **तत्प्रकृतवचने मयट्** से **मयट्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अन्नमय** बना। स्वादिकार्य करके **अन्नमयम्** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **प्राचुर्येण प्रस्तुताः अपूपा यस्मिन् पर्वणि** में **अपूपमयम्** बना सकते हैं। मालपुए ही मालपुए जिसमें खूब होते हैं, ऐसा पर्व।

२०९०. समूहवच्च बहुषु ५।४।२२॥

सामूहिकाः प्रत्यया: अतिदिश्यन्ते, चान्मयट्। मोदकाः प्रकृताः मौदकिकम्, मोदकमयम्। शाष्कुलिकम्, शष्कुलीमयम्। द्वितीयेऽर्थे मौदकिको यज्ञः, मोदकमयः।

समूहवच्च बहुषु। समूहवत् अव्ययं, चाव्ययं, बहुषु सप्तम्यन्तम्। **तत्प्रकृतवचने मयट्** से **तत्प्रकृतवचने** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

बहुषु=प्रभूत अर्थ को कहने में समर्थ प्रातिपदिक से समूहवत्=समूह अर्थों के अधिकार में जो-जो प्रत्यय कहे गये हैं, वे यहाँ भी अतिदिष्ट होते हैं, च-शब्द के कारण मयट् प्रत्यय भी होता है।

समूहार्थ में **तस्य समूहः (४.२.३६)** सूत्र से **इनि त्रकट्यचश्च (४.२.५०)** तक जिन-जिन प्रकृतियों से जो-जो प्रत्यय कहे गये हैं, उनका यहाँ स्वार्थ में यथावत् अतिदेश किया गया है। साथ में पक्ष में मयट्-प्रत्यय का भी समावेश है। यहाँ पर भी पूर्व सूत्र की तरह **भाव** और **अधिकरण** दोनों अर्थ प्रभावी होंगे। दूसरा अर्थ यह होगा- **प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से प्रभूत अर्थ अभिधेय हो तो समूहार्थ में कहे हुए के समान ही यहाँ भी प्रत्यय हो जाते हैं।**

मोदकाः प्रकृता मौदकिकम्, मोदकमयम्। जिस भोजन में मोदकों का

प्राचुर्य हो। मोदक+जस् इस स्थिति में समूहवच्च बहुषु सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय होगा, क्योंकि वहाँ समूहार्थ में अचित्तहस्तिधेनोष्ठक् (४.२.४६) सूत्र से ठक् प्रत्यय का विधान करके मौदकिकम् बनाया गया है। पक्ष में प्रकृतसूत्र से मयट् भी होता है। अतः मोदकमयम् भी बन जाता है।

शाष्कुलिकम्, शष्कुलीमयम्। जिस भोजन में पूड़ियों का प्राचुर्य हो। शष्कुली+जस् इस स्थिति में समूहवच्च बहुषु सूत्र के द्वारा ठक् प्रत्यय होगा, क्योंकि वहाँ समूहार्थ में अचित्तहस्तिधेनोष्ठक् (४.२.४६) सूत्र से ठक् प्रत्यय का विधान करके शाष्कुलिकम् बनाया गया है। पक्ष में प्रकृतसूत्र से मयट् भी होता है। अतः शष्कुलीमयम् भी बन जाता है।

द्वितीयेऽर्थे मौदकिको यज्ञः, मोदकमयः। अर्थात् द्वितीय अर्थ अधिकरण में भी उसी तरह से ठक् और मयट् दोनों प्रत्यय होतें हैं, जिससे मौदकिको यज्ञः और मोदकमयो यज्ञः ये रूप बनते हैं।

२०९१. अनन्तावसथेतिहभेषजाञ्ञ्यः ।५।४।२३॥

अनन्त एव आनन्त्यम्। आवसथ एव आवसथ्यम्।
इतिह इति निपातसमुदायः। ऐतिह्यम्। भेषजमेव भैषज्यम्।

अनन्तावसथेतिहभेषजाञ्ञ्यः। अनन्तश्च आवसथश्च इतिहश्च भेषजञ्च तेषां समाहारद्वन्द्वः- अनन्तावसथेतिहभेषजम्, तस्माद् अनन्तावसथेतिहभेषजात् पञ्चम्यन्तं, ञ्यः प्रथमान्तम्। तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च का अधिकार है।

अनन्त, आवसथ, इतिह और भेषज इन प्रातिपदिकों से स्वार्थ में ञ्य-प्रत्यय होता है।

ञकार इत्संज्ञक है, य् बचता है। ञित्करण आदिवृद्धि और स्वर के लिये है।

सूत्रोक्त अनन्त शब्द में नञ्तत्पुरुष समास मानना चाहिये। अन्तः=नाशः, न अन्तः=अनन्तः। अर्थाभाव अर्थ में अव्ययीभाव समास भी हो सकता है, किन्तु वह वैकल्पिक है। क्वचित् स्वार्थिका लिङ्गवचनान्यतिवर्तन्ते के अनुसार यहाँ लिङ्ग का व्यत्यय होकर आनन्त्यम् बनता है। आवसथ यद्यपि गृह का वाचक है और आवसन्ति एतम् विग्रह करके आ+वस् धातु से औणादिक अथ प्रत्यय होकर आवसथ शब्द बनता है। इति+इ इन दो निपातों का समुदाय इतिह है और यह उपदेश-परम्परा अर्थ का सूचक है। इति=एवं ह=किल=इतिह।

अनन्त एव आनन्त्यम्। बहुतायत, अनन्तता। अनन्त एव लौकिक विग्रह एवं अनन्त+सु अलौकिक विग्रह करके अनन्तावसथेतिहभेषजाञ्ञ्यः सूत्र से ञ्य-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करके आनन्त्य शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन स्वादिकार्य होकर आनन्त्यम् सिद्ध होता है।

आवसथ एव आवसथ्यम्। आहवनीय अग्नि का स्थान। **आवसथ एव** लौकिक विग्रह एवं **आवसथ+सु** अलौकिक विग्रह करके **अनन्तावसथेतिहभेषजाञ्ञ्यः** सूत्र से ञ्य-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करके **आवसथ्य** तथा स्वादिकार्य से **आवसथ्यम्** सिद्ध होता है।

इतिह इति निपातसमुदायः। ऐतिह्यम्। इतिहास। **इति+ह** यह निपातों का समूह है। **इतिह एव** लौकिक विग्रह करके **इतिह**-शब्द से **अनन्तावसथेतिहभेषजाञ्ञ्यः** सूत्र से ञ्य-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करके **ऐतिह्य** तथा स्वादिकार्य से **ऐतिह्यम्** सिद्ध होता है।

भेषजमेव भैषज्यम्। औषध। **भेषजम् एव** लौकिक विग्रह एवं **भेषज+सु** अलौकिक विग्रह करके **अनन्तावसथेतिहभेषजाञ्ञ्यः** सूत्र से ञ्य-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप करके **भैषज्य** तथा स्वादिकार्य से **भैषज्यम्** सिद्ध होता है।

२०९२. देवतान्तात्तादर्थ्ये यत् ५।४।२४॥
तदर्थ एव तादर्थ्यम्। स्वार्थे ष्यञ्।
अग्निदेवतायै इदमग्निदेवत्यम्। पितृदेवत्यम्।

देवतान्तात्तादर्थ्ये यत्। देवता अन्ते यस्य स देवतान्तस्तस्माद् देवतान्तात्, बहुव्रीहिः। तदर्थ एव तादर्थ्यं, तस्मिन् तादर्थ्ये। देवतान्तात् पञ्चम्यन्तं, तादर्थ्ये सप्तम्यन्तं, यत् प्रथमान्तम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

चतुर्थी-समर्थ देवता-शब्दान्त प्रातिपदिक से तादर्थ्य वाच्य होने पर यत् प्रत्यय होता है।

तदर्थ एव तादर्थ्यम्। स्वार्थे ष्यञ्। सूत्र के **तादर्थ्य** शब्द का अर्थ है-तदर्थ=उसके लिये। तदर्थ-शब्द से स्वार्थ में ष्यञ् प्रत्यय होकर **तादर्थ्य**-शब्द की निष्पत्ति हुयी है।

अग्निदेवतायै इदमग्निदेवत्यम्। अग्निदेवता के लिये यह हविः। **अग्निश्चासौ देवता च** विग्रह में पहले कर्मधारय समास करके **अग्निदेवता** शब्द बनता है। उसके बाद **अग्निदेवतायै इदम्** विग्रह करके **अग्निदेवता+ङे** इस स्थिति में **देवतान्तात्तादर्थ्ये यत्** सूत्र से यत्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अंग के अन्त्य आकार का लोप होकर **अग्निदेवत्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **अग्निदेवत्यम्** सिद्ध हो जाता है।

पितृदेवत्यम्। पितृदेवता के लिये यह कव्य। **पितरश्च ता देवताः** विग्रह में पहले कर्मधारयसमास करके **पितृदेवता** शब्द बनने के बाद **पितृदेवताभ्यः इदम्** विग्रह करके **पितृदेवता+भ्यस्** इस स्थिति में **देवतान्तात्तादर्थ्ये यत्** सूत्र से यत्-प्रत्यय होने पर

अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अंग के अन्त्य आकार का लोप होकर **पितृदेवत्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पितृदेवत्यम्** सिद्ध हो जाता है।

२०९३. पादार्घाभ्यां च ५।४।२५॥

पादार्थमुदकं पाद्यम्। अर्घ्यम्।

'नवस्य नू आदेशो लप्तनप्खाश्च प्रत्यया वक्तव्याः'(वा. ३३२७)।

नूत्नम्, नूतनम्, नवीनम्।

'नश्च पुराणे प्रात्' (वा.३३२८)।

पुराणार्थे वर्तमानात्प्रशब्दान्नो वक्तव्यः, चात्पूर्वोक्ताः।

प्रणम्, प्रत्नम्, प्रतनम्, प्रीणम्।

'भागरूपनामभ्यो धेयः' (वा.३३३०)।

भागधेयम्। रूपधेयम्। नामधेयम्।

'आग्नीध्रसाधारणादञ्' (वा३३३४)।

आग्नीध्रम्। साधारणम्।

स्त्रियां ङीप्। आग्नीध्री। साधारणी।

पादार्घाभ्यां च। पादश्च अर्घश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः पादार्घौ, ताभ्यां पादार्घाभ्यां पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्। **देवतान्तात्तादर्थ्ये यत्** से **तादर्थ्ये** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

चतुर्थी-समर्थ पाद और अर्घ शब्दों से तादर्थ्य वाच्य होने पर स्वार्थ में यत् प्रत्यय होता है।

पादार्थमुदकं पाद्यम्। पैर धोने के लिये जल। **पादार्थम् उदकम्** विग्रह करके **पाद+ङे (भ्याम्)** इस स्थिति में **पादार्घाभ्यां च** सूत्र से यत् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **पाद्य** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **पाद्यम्** सिद्ध हो जाता है।

अर्घ्यम्। पूजा के लिये जल। **अर्घार्थम् उदकम्** विग्रह करके **अर्घ+ङे** इस स्थिति में **पादार्घाभ्यां च** सूत्र से यत् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **अर्घ्य** तथा स्वादिकार्य होकर **अर्घ्यम्** सिद्ध हो जाता है।

नवस्य नू आदेशो लप्तनप्खाश्च प्रत्यया वक्तव्याः। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- नव-शब्द से स्वार्थ में **लप्, तनप्** और **ख** ये प्रत्यय होते हैं साथ ही नव-शब्द के स्थान पर **नू** आदेश भी होता है। ख-प्रत्यय के पक्ष में खकार के स्थान पर **आयनेयीनीयियः**

फढखछघां प्रत्ययादीनाम् सूत्र से **ईन्** आदेश होकर प्रत्यय का स्वरूप **ईन** बन जाता है। **त्नप्** और **तनप्** में पकार इत्संज्ञक हैं।

नूत्नम्, नूतनम्, नवीनम्। नया। **नवम् एव** विग्रह करके **नव+सु** इस स्थिति में **नवस्य नू आदेशो त्नप्तनप्खाश्च प्रत्यया वक्तव्याः** वार्तिक से **त्नप्** प्रत्यय और **नू** आदेश होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **नूत्न** शब्द बना है। इसी प्रकार **तनप्** प्रत्यय होने के पक्ष में **नूतन** शब्द बना है। एवमेव **ख** प्रत्यय होने के पक्ष में **ईन्** आदेश होकर **नू+ईन** और ऊकार को **ओर्गुणः** सूत्र से गुण ओकार तथा उसको अवादेश होने पर **नवीन** शब्द बना है। तीनों जगह एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **नूत्नम्, नूतनम्** और **नवीनम्** ये रूप सिद्ध हो जाते हैं।

नश्च पुराणे प्रात्। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- प्राचीन-अर्थ में विद्यमान **प्र**-शब्द से स्वार्थ में **न, त्नप्, तनप्** और **ख** प्रत्यय होते हैं।

पुराणार्थे वर्तमानात्प्रशब्दान्नो वक्तव्यः, चात्पूर्वोक्ताः। मूलकार ने उपर्युक्त वार्तिक का अर्थ दिया है। पुराणार्थ में वर्तमान प्र-शब्द से न-प्रत्यय होता है और च-शब्द से पूर्वोक्त वार्तिक के भी तीनों प्रत्यय होते हैं।

प्रणम्, प्रत्नम्, प्रतनम्, प्रीणम्। प्राचीन, पुराना। **प्राचीनम् एव** विग्रह करके **प्र**-शब्द से **नश्च पुराणे प्रात्** वार्तिक से **न** प्रत्यय होने पर नकार को णत्व होकर **प्रण** शब्द बना है। **त्नप्** प्रत्यय होने के पक्ष में **प्रत्न** शब्द बना है। इसी प्रकार **तनप्** प्रत्यय होने के पक्ष में **प्रतन** शब्द बना है। एवमेव **ख** प्रत्यय होने के पक्ष में **ईन्** आदेश और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **प्रीन** तथा णत्व होकर **प्रीण** शब्द बना है। चारों जगह एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **प्रणम्, प्रत्नम्, प्रतनम्** और **प्रीणम्** ये रूप सिद्ध हो जाते हैं।

भागरूपनामभ्यो धेयः। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- भाग, रूप, नाम इन प्रातिपदिकों से स्वार्थ में धेय-प्रत्यय होता है।

भागधेयम्। भाग, भाग्य। **भाग एव** विग्रह करके **भाग+सु** इस स्थिति में **भागरूपनामभ्यो धेयः** वार्तिक से धेय-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् करके **भागधेय** शब्द बनता है तथा स्वादिकार्य से **भागधेयम्** सिद्ध हो जाता है।

रूपधेयम्। रूप। **रूपम् एव** विग्रह करके **रूप+सु** इस स्थिति में **भागरूपनामभ्यो धेयः** वार्तिक से धेय-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् करके **रूपधेय** शब्द बनता है तथा स्वादिकार्य से **रूपधेयम्** सिद्ध हो जाता है।

नामधेयम्। नाम। **नाम एव** विग्रह करके **नामन्+सु** इस स्थिति में **भागरूपनामभ्यो धेयः** वार्तिक से धेय-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् करके **नामन्+धेय** बनने पर नकार का **नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य** सूत्र से लोप होकर **नामधेय** शब्द बनता है तथा स्वादिकार्य से **नामधेयम्** सिद्ध हो जाता है।

आग्नीध्रसाधारणादञ्। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- आग्नीध्र और साधारण इन शब्दों से स्वार्थ में अञ् प्रत्यय होता है।

आग्नीध्रम्। स्त्रियां ङीप् आग्नीध्री। यज्ञ में अग्निस्थापन का स्थान। **आग्नीध्र एव** विग्रह करके **आग्नीध्र+सु** इस स्थिति में **आग्नीध्रसाधारणादञ्** वार्तिक के द्वारा अञ् प्रत्यय होने पर भसंज्ञक अकार का लोप होकर **आग्नीध्र** ही बनता है और स्वादिकार्य होकर **आग्नीध्रम्** सिद्ध हो जाता है। अञन्त होने के कारण स्त्रीत्वविवक्षा में **टिड्ढाणञ्०** सूत्र से ङीप् प्रत्यय होकर **आग्नीध्री** शब्द बनता है। **आग्नीध्र**-शब्द तो शैषिक में **अग्नीधः शरणं रणं भं च** वार्तिक से निष्पन्न है।

साधारणम्। स्त्रियां ङीप् साधारणी। साधारण। **साधारण एव** विग्रह करके **साधारण+सु** इस स्थिति में **आग्नीध्रसाधारणादञ्** वार्तिक के द्वारा अञ् प्रत्यय होने पर भसंज्ञक अकार का लोप होकर **साधारण** ही बनता है और स्वादिकार्य होकर **साधारणम्** सिद्ध हो जाता है। अञन्त होने के कारण स्त्रीत्वविवक्षा में **टिड्ढाणञ्०** सूत्र से ङीप् प्रत्यय होकर **साधारणी** शब्द बनता है।

२०९४. अतिथेर्ञ्यः ५।४।२६॥

'तादर्थ्ये' इत्येव। अतिथये इदमातिथ्यम्।

अतिथेर्ञ्यः। अतिथेः पञ्चम्यन्तं, ञ्यः प्रथमान्तम्। **देवतान्तात्तादर्थ्ये यत्** से **तादर्थ्ये** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

चतुर्थी-समर्थ अतिथि-शब्द से तादर्थ्य वाच्य होने पर स्वार्थ में ञ्य प्रत्यय होता है।

'तादर्थ्ये' इत्येव। अर्थात् **तादर्थ्ये** की अनुवृत्ति आने के कारण तादर्थ्य वाच्य होने पर ही यह प्रत्यय होता है।

अतिथये इदमातिथ्यम्। अतिथि के लिये (अतिथि-सत्कार के लिये वस्तु या किया जाने वाला कार्य)। **अतिथये इदम्** विग्रह करके **अतिथि+ङे** इस स्थिति में **अतिथेर्ञ्यः** सूत्र से ञ्य-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक इकार का लोप होकर **आतिथ्य** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **आतिथ्यम्** सिद्ध हो जाता है।

२०९५. देवात्तल् ५।४।२७॥

देव एव देवता।

देवात्तल्। देवात् पञ्चम्यन्तं, तल् प्रथमान्तम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

देव इस प्रातिपदिक से स्वार्थ में तल् प्रत्यय होता है।

अन्यत्र तल्-प्रत्यय भावार्थ में होता था किन्तु देव-शब्द से स्वार्थ में भी होता है। **तलन्तं स्त्रियाम्** इस लिङ्गाधिकारस्थ सूत्र के अनुसार तल्-प्रत्ययान्त शब्द का प्रयोग स्त्रीलिंग में होता है, भले ही वह पुंल्लिंग का वाचक क्यों न हो।

देव एव देवता। देव ही। **देव एव** विग्रह करके **देव+सु** इस स्थिति में **देवात्तल्** सूत्र से तल्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **देवत** तथा टाप् होकर **देवता** एवं स्वादिकार्य से **देवता** सिद्ध हो जाता है।

२०९६. अवेः कः ५।४।२८॥

अविरेवाविकः।

अवेः कः। अवेः पञ्चम्यन्तं, कः प्रथमान्तम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

'अवि' इस प्रातिपदिक से स्वार्थ में क-प्रत्यय होता है।

अविरेवाविकः। भेंड़। **अविः एव** विग्रह करके **अवि+सु** इस स्थिति में **अवेः कः** सूत्र से क-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **अविक** तथा स्वादिकार्य से **अविकः** सिद्ध हो जाता है।

२०९७. यावादिभ्यः कन् ५।४।२९॥

याव एव यावकः। मणिकः।

यावादिभ्यः कन्। याव आदिर्येषां ते यावादयस्तेभ्यो यावादिभ्यः, बहुव्रीहिः। यावादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, कन् प्रथमान्तम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

यावादि गणपठित प्रातिपदिकों से स्वार्थ में कन्-प्रत्यय होता है।

याव एव यावकः। जौ से निर्मित, भुने हुये जौ। **याव एव** विग्रह करके **याव+सु** इस स्थिति में **यावादिभ्यः कन्** सूत्र से कन्-प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **यावक** तथा स्वादिकार्य से **यावकः** सिद्ध हो जाता है।

मणिकः। मणि। **मणिः एव** विग्रह करके **मणि+सु** इस स्थिति में **यावादिभ्यः कन्** सूत्र से कन्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **मणिक** तथा स्वादिकार्य से **मणिकः** सिद्ध हो जाता है।

यावादिगणः- याव, मणि, अस्थि, तालु, जानु, सान्द्र, पीत, स्तम्ब। **ऋतावुष्णशीते। पशौ लूनविपाते। अणु निपुणे। पुत्र कृत्रिमे। स्नात वेदसमाप्तौ। शून्य रिक्ते। दान कुत्सिते। तनु सूत्रे। ईयसश्च।** ज्ञात अज्ञात। **कुमारीक्रीडनकानि च (कुमारक्रीडनकानि च)।**

२०९८. लोहितान्मणौ ५।४।३०॥

लोहित एव लोहितको मणिः।

लोहितान्मणौ। लोहितात् पञ्चम्यन्तं, मणौ सप्तम्यन्तम्। **यावादिभ्यः कन्** से **कन्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

मणि-विशेष वाच्य होने पर लोहित-शब्द से स्वार्थ में कन्-प्रत्यय होता है।

लोहित एव लोहितको मणिः। लाल मणि। **लोहित एव** विग्रह करके **लोहित+सु** इस स्थिति में **लोहितान्मणौ** सूत्र से कन्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **लोहितक** तथा स्वादिकार्य से **लोहितकः** सिद्ध हो जाता है।

२०९९. वर्णे चानित्ये ५।४।३१॥

लोहितकः कोपेन।

'लोहितालिङ्गबाधनं वा' (वा.३३२२)।

लोहितिका, लोहिनिका कोपेन।

वर्णे चानित्ये। वर्णे सप्तम्यन्तं, चाव्ययम्, अनित्ये सप्तम्यन्तम्। **लोहितान्मणौ** से **लोहितात्** की और **यावादिभ्यः कन्** से **कन्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

क्षणिक वर्ण (रंग-विशेष) में विद्यमान लोहित-शब्द से स्वार्थ में कन्-प्रत्यय होता है।

क्रोध से या थोड़ा पीड़ा (दबाव) देने से किसी का मुख लाल हो जाना क्षणिक अर्थात् अस्थायी होता है, तादृश विषय को सूत्र में **अनित्य** शब्द से कहा गया है।

लोहितकः कोपेन। कोप के कारण अस्थायी रूप से लाल हुआ। **लोहित एव** विग्रह करके **लोहित+सु** इस स्थिति में **वर्णे चानित्ये** सूत्र से कन्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **लोहितक** तथा स्वादिकार्य से **लोहितकः** सिद्ध हो जाता है।

लोहितालिङ्गबाधनं वा। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- लोहित-शब्द में स्त्रीलिङ्गबोधक प्रत्यय का कन्-प्रत्यय के द्वारा विकल्प से बाध होता है। यहाँ **लोहित** शब्द से स्त्रीत्वविवक्षा में **वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः** (४.१.३९) सूत्र से ङीप् प्रत्यय तथा तकार को नकारादेश प्राप्त था, उसका प्रकृत वार्तिक से विकल्प से बाध किया जाता है। इसके फलस्वरूप टाप् होता है। यह कार्य वैकल्पिक है, अतः पक्ष में ङीप् और नत्व भी होता है।

लोहितिका, लोहिनिका कोपेन। क्रोध से लाल हुयी स्त्री। **लोहिता एव** विग्रह करके **लोहिता+सु** इस स्थिति में कन्-प्रत्यय प्राप्त है ही, साथ ही उसी अवस्था में **वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः** सूत्र से ङीप् और नत्व प्राप्त था, उसका **लोहितात्लिङ्गबाधनं वा** वार्तिक के अनुसार कन्-प्रत्यय के द्वारा विकल्प से बाध हो जाने से **अजाद्यतष्टाप्** सूत्र से टाप् प्रत्यय होकर **लोहिता+का** बना है। **केऽणः** सूत्र से ह्रस्व होने पर **लोहित+का** बना है। **प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः** सूत्र से तकारोत्तरवर्ती अकार को इकारादेश होकर **लोहितिका** शब्द बनता है। लिङ्गबाधन कार्य वैकल्पिक है, अतः पक्ष में ङीप् और नत्व भी होता है। इस पक्ष में **लोहिनी** और कन्-प्रत्यय होने पर पूर्व को ह्रस्व और बाद में टाप् प्रत्यय और इत्त्व होकर **लोहिनिका** शब्द भी सिद्ध हो जाता है। इस तरह दो रूप बनते हैं।

यहाँ पर प्रश्न यह उपस्थित होता है कि **ङ्याप्प्रातिपदिकात्** में ज्ञापित **लिङ्गविशिष्टपरिभाषैव सिद्धे ङ्याब्ग्रहणं तद्धितोत्पत्तिर्यथा स्यात्, ङ्याब्भ्यां प्राङ् मा भूत्** के नियमानुसार ङीप् से पूर्व कन् की प्राप्ति ही न होने से दोनों में बाध्यबाधकता नहीं है। फिर इस वार्तिक का क्या औचित्य है? इस पर व्याख्याकारों का समाधान है कि प्रकृत वार्तिक **लोहितात्लिङ्गबाधनं वा** ही यहाँ व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि स्वार्थिक तद्धित प्रत्ययों का सम्बन्ध **ङ्याब्ग्रहण** से ज्ञापित परिभाषा से नहीं है। इस प्रकार प्रकृत वार्तिक की सार्थकता सिद्ध होती है। इसके बाद पुनः प्रश्न आता है कि **कुत्सिते** सूत्र में भाष्यकार ने स्पष्ट किया है कि **स्वार्थ-द्रव्य-लिङ्ग-सङ्ख्या-कारक-कुत्सादिप्रयुक्त** कार्य इसी क्रम से होते हैं। इसके अनुसार सुबुत्पत्ति ङ्याबन्त से ही होगी। उसके बाद कन्-प्रत्यय करके **लोहिनिका-लोहितिका** दोनों रूप सिद्ध हो जायेंगे। फिर इस वार्तिक की क्या आवश्यकता है? इस पर बालमनोरमाकार कहते हैं कि कार्य के स्वतः सिद्ध होते हुए भी इस वार्तिक का पाठ किया गया, अतः तत्सामर्थ्यात् स्वार्थिक तद्धितों की प्रवृत्ति प्रातिपदिक से ही होती है, यह गतार्थ होता है।

२१००. रक्ते ५।४।३२॥

लाक्षादिना रक्ते यो लोहितशब्दस्तस्मात् कन् स्यात्।
'लिङ्गबाधनं वा' इत्येव। लोहितिका, लोहिनिका शाटी।

रक्ते। सप्तम्यन्तमेकपदमिदं सूत्रम्। **लोहितान्मणौ** से **लोहितात्** की और **यावादिभ्यः कन्** से **कन्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

लाक्ष आदि से रंगे हुये अर्थ में विद्यमान लोहित-शब्द से स्वार्थ में कन्-प्रत्यय होता है।

लिङ्गबाधनं वा इत्येव। अर्थात् पूर्वसूत्र में पठित वार्तिक का सम्बन्ध इस सूत्र

में भी रहता है। अतः लोहित-शब्द में स्त्रीलिङ्गबोधक प्रत्यय का कन्-प्रत्यय के द्वारा विकल्प से बाध होता है।

लोहितिका, लोहिनिका शाटी। लाल रंग से रंगी साड़ी। **लोहिता एव** विग्रह करके **लोहिता+सु** इस स्थिति में **रक्ते** सूत्र से कन्-प्रत्यय तो होता ही है साथ ही **लोहितात्लिङ्गबाधनं वा** वार्तिक के अनुसार स्त्रीलिंगप्रत्यय ङीप् और नत्व को बाधकर के **रक्ते** सूत्र से कन्-प्रत्यय होकर पूर्ववत् **लोहितिका** और **लोहिनिका** ये दो रूप बनते हैं।

२१०१. कालाच्च ५।४।३३॥

'वर्णे चानित्ये' (सू.२०९९) 'रक्ते' (सू.२१००) इति सूत्रद्वयमनुवर्तते।
कालकं मुखं वैलक्ष्येण। कालकः पटः। कालिका शाटी।

कालाच्च। कालात् पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्।

'वर्णे चानित्ये' 'रक्ते' इति सूत्रद्वयमनुवर्तते। अर्थात् इससे पूर्व के **वर्णे चानित्ये** और **रक्ते** की अनुवृत्ति आती है साथ ही **यावादिभ्यः कन्** से **कन्** की भी अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

सूत्रार्थः- **'अनित्य वर्ण में' तथा 'रंगा हुआ' अर्थ में विद्यमान काल-शब्द से स्वार्थ में कन्-प्रत्यय होता है।**

कालकं मुखं वैलक्ष्येण। लज्जा, ईर्ष्या आदि से काला हुआ मुख। **काल एव** विग्रह करके **काल+सु** इस स्थिति में **कालाच्च** सूत्र से कन् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **कालक** शब्द बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कालकम्** सिद्ध हो जाता है।

कालकः पटः। काले रंग से रंगा हुआ वस्त्र। यहाँ भी पूर्ववत् काल-शब्द से कन् प्रत्यय होकर **कालकः** सिद्ध हो जाता है।

कालिका शाटी। काले रंग से रंगी हुयी साड़ी। यहाँ भी पूर्ववत् काल-शब्द से कन् प्रत्यय होकर **कालक** शब्द बनता है और स्त्रीत्वविवक्षा में टाप् प्रत्यय होने के बाद **प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः** से लकारोत्तरवर्ती अकार को इकारादेश होकर **कालिका** सिद्ध हो जाता है।

२१०२. विनयादिभ्यष्ठक् ५।४।३४॥

विनय एव वैनयिकः। सामयिकः।
'उपायाद्ध्रस्वत्वं च' (ग.सू.१४४)। औपयिकः।

विनयादिभ्यष्ठक्। विनय आदिर्येषां ते विनयादयस्तेभ्यो विनयादिभ्यः, बहुव्रीहिः।

विनयादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, ठक् प्रथमान्तम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

विनयादि गणपठित प्रातिपदिकों से स्वार्थ में ठक् प्रत्यय होता है।

ठक् में ककार इत्संज्ञक है और अवशिष्ट **ठ** के स्थान पर **ठस्येकः** सूत्र से **इक** आदेश हो जाता है। कित्करण आदिवृद्धि के लिये है।

विनय एव वैनयिकः। नम्रता। **विनयः एव** विग्रह करके **विनय+सु** इस स्थिति में **विनयादिभ्यष्ठक्** सूत्र से ठक् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **वैनयिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वैनयिकः** सिद्ध हो जाता है।

सामयिकः। समय। **समयः एव** विग्रह करके **समय+सु** इस स्थिति में **विनयादिभ्यष्ठक्** सूत्र से ठक् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **सामयिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **सामयिकः** सिद्ध हो जाता है।

विनयादिगणः- विनय, समय। **उपायो ह्रस्वत्वं च।** सम्प्रति, सङ्गति, कथञ्चित्, अकस्मात्, समाचार, उपचार, समाय, (समयाचार), व्यवहार, सम्प्रदान, समुत्कर्ष, समूह, विशेष, अत्यय।

उपायाद्ध्रस्वत्वं च। यह विनयादिगण का गणसूत्र है। सूत्रार्थ- उपाय-शब्द से स्वार्थ में ठक् प्रत्यय होता है और उपाय-शब्द में विद्यमान दीर्घ अच् को ह्रस्व भी होता है।

औपयिकः। उपाय। **उपायः एव** विग्रह करके **उपाय+सु** इस स्थिति में **विनयादिभ्यष्ठक्** सूत्र में पठित गणसूत्र **उपायाद्ध्रस्वत्वं च** से ठक् प्रत्यय के साथ पकारोत्तरवर्ती आकार को ह्रस्व होने पर अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **औपयिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **औपयिकः** सिद्ध हो जाता है।

२१०३. वाचो व्याहृतार्थायाम् ५।४।३५॥

सन्दिष्टार्थायां वाचि विद्यमानाद्वाक्छब्दात् स्वार्थे ठक् स्यात्।
'सन्देशवाग्वाचिकं स्यात्' इत्यमरः।

वाचो व्याहृतार्थायाम्। व्याहृतः=प्रकाशितोऽर्थो यस्याः सा व्याहृतार्था=वाक्, तस्यां व्याहृतार्थायाम्, बहुव्रीहिः। वाचः पञ्चम्यन्तं, व्याहृतार्थायां सप्तम्यन्तम्। **विनयादिभ्यष्ठक्** से **ठक्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

व्याहृतार्थायाम्=सन्दिष्टार्थ वाणी अर्थ में विद्यमान वाच्-शब्द से स्वार्थ में ठक् प्रत्यय होता है।

'सन्देशवाग्वाचिकं स्यात्' इत्यमरः। पहले किसी से कुछ सन्देश कहा गया, उस बात को उस सन्देशवाहक दूत ने जाकर कहा, इसी को व्याहृतार्थ वाणी कहते हैं, ऐसा अमरकोशकार लिखते हैं।

वाचिकम्। सन्देश रूप वाणी। **वाग् एव** विग्रह करके **वाच्+सु** इस स्थिति में **वाचो व्याहृतार्थायाम्** सूत्र से ठक् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, इकादेश, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, पर्जन्यवल्लक्षणन्यायेन आदिवृद्धि होकर **वाचिक** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **वाचिकम्** सिद्ध हो जाता है।

२१०४. तद्युक्तात् कर्मणोऽण् ५।४।३६॥

कर्मैव कार्मणम्। वाचिकं श्रुत्वा क्रियमाणं कर्मेत्यर्थः।

तद्युक्तात् कर्मणोऽण्। तया=सन्देशवाचा युक्तस्तद्युक्तस्तस्मात् तद्युक्तात्, तृतीयातत्पुरुषः। तद्युक्तात् पञ्चम्यन्तं, कर्मणः पञ्चम्यन्तम्, अण् प्रथमान्तम्। **वाचो व्याहृतार्थायाम्** से **व्याहृतार्थायाम्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

उक्त 'प्रकाशित सन्दिष्टार्थ वाणी' से युक्त जो कर्म, उस अर्थ में विद्यमान कर्मन्-शब्द से स्वार्थ में अण् प्रत्यय होता है।

कर्मैव कार्मणम्। वाचिकं श्रुत्वा क्रियमाणं कर्मेत्यर्थः। सन्देश रूप वाणी को सुनकर जो कार्य किया जाता है, उस कार्य को **कार्मणम्** कहा जाता है। **कर्म एव** विग्रह करके **कर्मन्+सु** इस स्थिति में **तद्युक्तात्कर्मणोऽण्** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् और आदिवृद्धि होकर **कार्मन्+अ** बना है। **नस्तद्धिते** सूत्र से प्राप्त टिलोप का **अन्** (६.४.१६७) सूत्र से प्रकृतिभाव हो जाता है और नकार को णत्व होकर **कार्मण** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **कार्मणम्** सिद्ध हो जाता है।

२१०५. ओषधेरजातौ ५।४।३७॥

स्वार्थेऽण्। औषधं पिबति।
'अजातौ' किम्? ओषधयः क्षेत्रे रूढाः।

ओषधेरजातौ। न जातिरजातिस्तस्यामजातौ, नञ्तत्पुरुषः। ओषधेः पञ्चम्यन्तम्, अजातौ सप्तम्यन्तम्। **तद्युक्तात् कर्मणोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

जाति अर्थ में वर्तमान न होने पर ओषधि-शब्द से स्वार्थ में अण् प्रत्यय होता है।

औषधं पिबति। ओषधि पीता है। **ओषधिः एव** विग्रह करके **ओषधि+सु** इस स्थिति में **ओषधेरजातौ** सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, आदिवृद्धि और भसंज्ञक इकार का लोप होकर **औषध** शब्द बनता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **औषधम्** सिद्ध हो जाता है। यहाँ पर **ओषधि** शब्द द्रव्यरूप है अर्थात् किसी एक दवा का ग्रहण करना है, न कि ओषधि-जाति का।

'अजातौ' किम्? ओषधयः क्षेत्रे रूढाः। प्रकृत सूत्र में **अजातौ** पद के निवेश से जाति अर्थ होने पर अण् प्रत्यय नहीं होता। जैसे कि **ओषधयः क्षेत्रे रूढाः** (ओषधियाँ खेत में उगी हुयी हैं) इस वाक्य से ओषधि-जाति का बोध हो रहा है, अतः अण् प्रत्यय नहीं हुआ। ओषधि-शब्द के प्रथमा-बहुवचन का रूप है- **ओषधयः।**

२१०६. प्रज्ञादिभ्यश्च ५।४।३८॥

प्रज्ञ एव प्राज्ञः। प्राज्ञी स्त्री। दैवतः। बान्धवः।

प्रज्ञादिभ्यश्च। प्रज्ञ आदिर्येषां ते प्रज्ञादयस्तेभ्यः प्रज्ञादिभ्यः। प्रज्ञादिभ्यः पञ्चम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदं सूत्रम्। **तद्युक्तात् कर्मणोऽण्** से **अण्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

प्रज्ञ आदि गणपठित शब्दों से स्वार्थ में अण् प्रत्यय होता है।

प्रज्ञादिगण में प्रज्ञ, वणिज्, उशिज्, मनस्, प्रत्यक्ष, विदन्, चोर, बन्धु, देवता, असुर, पिशाच आदि अनेक शब्द आते हैं।

प्रज्ञ एव प्राज्ञः। जानकार, बुद्धिमान्। **प्रज्ञ एव प्राज्ञः।** सामान्यतया यह **प्रज्ञ** ऐसा प्रातिपदिक है। इससे स्वार्थ में **प्रज्ञादिभ्यश्च** से **अण्** प्रत्यय हुआ। **णकार** की इत्संज्ञा के बाद लोप होकर **अ** बचा। **प्रज्ञ+अ** बना। णित् होने के कारण **तद्धितेष्वचामादेः** से आदिवृद्धि होकर **प्राज्ञ+अ** बना। अन्त्य अकार का **यस्येति च** से लोप होकर **प्राज्ञ्+अ** बना। वर्णसम्मेलन होकर **प्राज्ञ** बना। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् सु, रुत्वविसर्ग होकर **प्राज्ञः** सिद्ध हुआ।

प्राज्ञी स्त्री। स्वयं जानकार स्त्री। उक्त अणन्त **प्राज्ञ**-शब्द से स्त्रीलिङ्ग में **टिड्ढाणञ्०** से ङीप् होकर **प्राज्ञी** बनता है।

दैवतः। देवता। **देवता एव दैवतः।** सामान्यतया यह **देवता** ऐसा प्रातिपदिक है। **प्रज्ञादिगण** में होने के कारण **देवता** से स्वार्थ में **प्रज्ञादिभ्यश्च** से **अण्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होने पर आदिवृद्धि और भसंज्ञक अकार का लोप होकर **दैवत** बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् सु, रुत्वविसर्ग होकर **दैवतः** सिद्ध हुआ।

बान्धवः। बन्धु, सम्बन्धी। **बन्धुरेव बान्धवः**। सामान्यतया यह **बन्धु** ऐसा प्रातिपदिक है। इसके **प्रज्ञादिगण** में पाठ होने के कारण **बन्धु** से स्वार्थ में **प्रज्ञादिभ्यश्च** सूत्र से **अण्** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होने पर आदिवृद्धि और उकार को **ओर्गुणः** सूत्र से गुण ओकार और उसको अवादेश होकर **बान्धव** शब्द बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् सु, रुत्वविसर्ग होकर **बान्धवः** सिद्ध हो जाता है।

२१०७. मृदस्तिकन् ५।४।३९॥
मृदेव मृत्तिका।

मृदस्तिकन्। मृदः पञ्चम्यन्तं, तिकन् प्रथमान्तम्। **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

मृद्-शब्द से स्वार्थ में तिकन्-प्रत्यय होता है।

तिकन् में नकार इत्संज्ञक है।

मृदेव मृत्तिका। मिट्टी। **मृद् एव** विग्रह करके **मृद्+सु** इस स्थिति में **मृदस्तिकन्** सूत्र से **तिकन्** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **मृद्+तिक** बना है। दकार को **खरि च** सूत्र से चर्त्व होकर तकार हो जाता है। उसके बाद टाप् प्रत्यय होकर **मृत्तिका** शब्द बनता है। इसके बाद स्वादिकार्य होता है। यद्यपि यहाँ पर **तकन्** प्रत्यय करने पर भी **प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः** सूत्र से इत्त्व होकर भी **मृत्तिका** शब्द बन सकता था तथापि **पञ्च मृत्तिका यस्मिन् स पञ्चमृत्तिकः** में इकार के श्रवणार्थ इकारोच्चारण सार्थक है।

२१०८. सस्नौ प्रशंसायाम् ५।४।४०॥
रूपपोऽपवादः। प्रशस्ता मृत् मृत्सा मृत्स्ना।
उत्तरसूत्रे अन्यतरस्यां ग्रहणान्नित्योऽयम्।

सस्नौ प्रशंसायाम्। सश्च स्नश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः सस्नौ। सस्नौ प्रथमाद्विवचनं, प्रशंसायां सप्तम्यन्तम्। **मृदस्तिकन्** से **मृदः** की अनुवृत्ति आती है और **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

प्रशंसार्थ में विद्यमान मृद्-शब्द से स्वार्थ में स और स्न प्रत्यय होते हैं।

रूपपोऽपवादः। अर्थात् **प्रशंसायां रूपप्** (५.३.६६) से प्राप्त रूपप्-प्रत्यय का यह अपवाद है।

प्रशस्ता मृत् मृत्सा मृत्स्ना। अच्छी मिट्टी। **प्रशस्ता मृद् एव** विग्रह करके **मृद्+सु** इस स्थिति में **सस्नौ प्रशंसायाम्** सूत्र से **स** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक्, दकार को चर्त्व होकर तकार तथा टाप् प्रत्यय होकर **मृत्सा** शब्द बना है।

इसी तरह **स्न** प्रत्यय होने पर **मृत्स्ना** शब्द बना है। उभयत्र स्वादिकार्य होकर **मृत्सा** और **मृत्स्ना** ये दो रूप बनते हैं।

उत्तरसूत्रे अन्यतरस्यां ग्रहणान्नित्योऽयम्। अगले सूत्र में विकल्पार्थक **अन्यतरस्याम्** पद के ग्रहण से प्रतीत होता है कि प्रकृत सूत्र से नित्य से प्रत्यय होता है।

२१०९. बह्वल्पार्थाच्छस्कारकादन्यतरस्याम् ५।४।४२॥

बहूनि ददाति बहुशः। अल्पानि अल्पशः।

'बह्वल्पार्थान्मङ्गलामङ्गलवचनम्' (वा.३३३८)।

नेह- बहूनि ददात्यनिष्टेषु, अल्पं ददात्याभ्युदयिकेषु।

बह्वल्पार्थाच्छस् कारकादन्यतरस्याम्। बहुश्च अल्पश्च बह्वल्पौ, तौ अर्थौ यस्य तद् बह्वल्पार्थं, तस्मात्। बह्वल्पार्थात् पञ्चम्यन्तं, शस् प्रथमान्तं, कारकात् पञ्चम्यन्तम्, अन्यतरस्याम् सप्तम्यन्तम्, अनेकपदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

बह्वर्थ और अल्पार्थ कारकवाची प्रातिपदिकों से स्वार्थ में विकल्प से शस् प्रत्यय होता है।

शस् के तद्धित होने के कारण **शकार** की **लशक्वतद्धिते** से इत्संज्ञा नहीं होती है और **सकार** की भी **हलन्त्यम्** से इत्संज्ञा इसलिए नहीं होती क्योंकि इत्संज्ञा करके **सित्** बनाने का कोई भी प्रयोजन नहीं है। अतः सित् के लिए सकार नहीं पढ़ा गया है, अपितु यथावत् बने रहने के लिए पढ़ा गया है। इस प्रकार प्रयोजनाभावात् उसकी इत्संज्ञा नहीं होगी। **शस्** प्रत्ययान्त की **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** से अव्ययसंज्ञा हो जाती है।

प्रथमा और षष्ठी को छोड़कर शेष विभक्ति प्रायः कारक कहलाती हैं।

बहूनि ददाति बहुशः। बहुत देता है। **बहूनि ददाति** और **बहुशो ददाति** इन दोनों वाक्यों के अर्थ में कोई अन्तर नहीं है। एक **शस्** प्रत्यय वाला है तो एक में वह प्रत्यय नहीं है। शस् प्रत्यय के लगने के बाद भी अर्थ में कोई बदलाव नहीं है। अतः यह प्रत्यय स्वार्थिक कहलाया। इसकी प्रक्रिया देखें- **बहु जस्** में **बह्वल्पार्थाच्छस् कारकादन्यतरस्याम्** से **शस्** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **बहुशस्** बना। **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** से अव्ययसंज्ञा, सु, उसका **अव्ययादाप्सुपः** से **लुक्** करके **बहुशस्** ही बना। सकार को रुत्व और उसको विसर्ग करने पर **बहुशः** सिद्ध हो जाता है। यहाँ पर **बहूनि** की जगह **बहुशः** का प्रयोग हुआ है। **बहुशो ददाति।** यह प्रत्यय वैकल्पिक है, अतः **बहूनि ददाति** भी बन जाता है।

अल्पानि अल्पशः। कम देता है। **अल्पानि ददाति** और **अल्पशो ददाति** इन दोनों वाक्यों के अर्थ में कोई अन्तर नहीं है। एक **शस्** प्रत्यय वाला है तो एक में वह प्रत्यय नहीं है। शस् प्रत्यय के लगने के बाद भी अर्थ में कोई बदलाव नहीं है। अतः यह

प्रत्यय स्वार्थिक कहलाया। इसकी प्रक्रिया देखें- **अल्प सु** में **बह्वल्पार्थाच्छस् कारकादन्यतरस्याम्** से **शस्** प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अल्पशस्** बना। **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** से अव्ययसंज्ञा, सु, उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् करके **अल्पशस्** ही बना। सकार को रुत्व और उसको विसर्ग करने पर **अल्पशः** सिद्ध हो जाता है। यहाँ पर **अल्पम्** की जगह **अल्पशः** का प्रयोग हुआ है। **अल्पशो ददाति।** यह प्रत्यय वैकल्पिक है, अतः **अल्पं ददाति** भी रह जाता है।

बह्वल्पार्थान्मङ्गलामङ्गलवचनम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- अधिकार्थवाची शब्दों से मङ्गल अर्थ गम्य होने पर तथा अल्पार्थवाची शब्दों से अमंगल=अकल्याण अर्थ गम्य होने पर ही उक्त शस्-प्रत्यय होता है, इससे विपरीत स्थिति में नहीं।

नेह- बहूनि ददात्यनिष्टेषु, अल्पं ददात्याभ्युदयिकेषु। उपर्युक्त वार्तिक के अनुसार **बहूनि ददाति अनिष्टेषु** (अनिष्ट के समय बहुत देता है) और **अल्पं ददाति आभ्युदयिकेषु** (कल्याण के समय कम देता हे) में विपरीत होने के कारण शस् प्रत्यय नहीं हुआ- **बहूनि, अल्पम्।**

२११०. संख्यैकवचनाच्च वीप्सायाम् ५।४।४३॥

द्वौ द्वौ ददाति द्विशः। माषं माषं माषशः। प्रस्थशः। परिमाणशब्दा वृत्तावेकार्था एव। 'संख्यैकवचनात्' किम्? घटं घटं ददाति। 'वीप्सायाम्' किम्? द्वौ ददाति। 'कारकात्' इत्येव। द्वयोर्द्वयोः स्वामी।

संख्यैकवचनाच्च वीप्सायाम्। उच्यते इति वचनम्, एकस्य वचनम् एकवचनं, षष्ठीतत्पुरुषः। संख्या च एकवचनं च तयोः समाहारद्वन्द्वः संख्यैकवचनं, तस्मात् संख्यैकवचनात्। संख्यैकवचनात् पञ्चम्यन्तं, चाव्ययं, वीप्सायां सप्तम्यन्तम्। **बह्वल्पार्थाच्छस् कारकादन्यतरस्याम्** से **शस्, अन्यतरस्याम्** की अनुवृत्ति आती है और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

संख्यावाची प्रातिपदिक और एकवचन अर्थात् एक अर्थ को कहने वाले प्रातिपदिक से भी वीप्सा द्योतित हो रही हो तो विकल्प से शस् प्रत्यय होता है।

द्वौ द्वौ ददाति द्विशः। दो दो देता है। यहाँ पर वीप्सार्थ की प्रतीति भी है और संख्यावाची शब्द भी। अतः **द्वौ द्वौ ददाति** विग्रह करके **द्वि+औ** इस स्थिति में **संख्यैकवचनाच्च वीप्सायाम्** सूत्र से शस् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, अव्ययसंज्ञा, स्वादिप्रत्यय और उसका लुक् होने पर **द्विशस्** बना है। सकार को रुत्व और उसको विसर्ग होकर **द्विशः** सिद्ध हो जाता है। **शस्** प्रत्यय वीप्सा में होने के कारण यहाँ विग्रह में **द्वौ द्वौ** प्रयोग किया गया है। चूँकि वीप्सार्थ शस्-प्रत्यय से ही गम्य है। अतः **द्विशः** को द्वित्व नहीं होता।

माषं माषं माषशः। एक एक माशा। यहाँ पर भी वीप्सार्थ की प्रतीति है और एकवचन भी। अतः **माषं माषं ददाति** विग्रह करके **माष+अम्** इस स्थिति में **संख्यैकवचनाच्च वीप्सायाम्** सूत्र से शस् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, अव्ययसंज्ञा, स्वादिप्रत्यय और उसका लुक् होने पर **माषशस्** बना है। सकार को रुत्व और उसको विसर्ग होकर **माषशः** सिद्ध हो जाता है। **शस्** प्रत्यय वीप्सा में होने के कारण यहाँ विग्रह में **माषं माषम्** प्रयोग किया गया है किन्तु वीप्सार्थ शस्-प्रत्यय से ही गम्य होने के कारण **माषशः** को द्वित्व नहीं होता।

प्रस्थशः। एक एक प्रस्थ देता है। यहाँ पर भी वीप्सार्थ की प्रतीति है और एकवचन भी। अतः **प्रस्थं प्रस्थं ददाति** विग्रह करके **प्रस्थ+अम्** इस स्थिति में पूर्ववत् शस् प्रत्यय, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, अव्ययसंज्ञा, स्वादिप्रत्यय, उसका लुक्, सकार को रुत्व और उसको विसर्ग होकर **प्रस्थशः** सिद्ध हो जाता है।

परिमाणशब्दा वृत्तावेकार्था एव। समास-तद्धितादि वृत्ति में परिमाण के बहुत्व होने पर भी परिमाणत्व में एक ही अर्थ के बोधक होते हैं। अतः **माषं माषम्, प्रस्थं प्रस्थम्** करके एकवचन का विग्रह सम्भव हो सकता है।

'संख्यैकवचनात्' किम्? घटं घटं ददाति। प्रकृतसूत्र में **संख्यैकवचनात्** पद का निवेश होने के कारण संख्यावाची और एकत्वबोधक के रहते ही शस् प्रत्यय होता है, अन्यथा नहीं होता। अतः **घटं घटं ददाति** में नहीं हुआ, क्योंकि घट-शब्द के जातिबोधक होने से **अनेक घटों का दाता घड़े घड़े भर देता है** ऐसा अर्थ हो सकता है। इस प्रकार यहाँ पर **घट**-शब्द संख्यावाची भी नहीं है और जातिवाचक होने के कारण एकत्वबोधक भी नहीं है।

'वीप्सायाम्' किम्? द्वौ ददाति। प्रकृतसूत्र में **वीप्सायाम्** पद के कारण वीप्सार्थ द्योत्य होने पर ही शस् प्रत्यय होता है, अन्यथा नहीं होता। यहाँ **द्वौ ददाति** में वीप्सार्थ नहीं है, अतः शस् नहीं हुआ। **द्वौ द्वौ ददाति** होता तो वीप्सार्थ माना जाता।

'कारकात्' इत्येव। द्वयोर्द्वयोः स्वामी। पूर्वसूत्र की तरह यह सूत्र भी कारकवाची शब्दों से ही शस् प्रत्यय का विधान करता है। अतः **द्वयोः द्वयोः स्वामी** (दो-दो का मालिक) में वीप्सार्थ और संख्यावाची होते हुये भी कारकवाची न होने से शस् प्रत्यय नहीं हुआ, क्योंकि सम्बन्ध को कारक नहीं माना जाता।

२१११. प्रतियोगे पञ्चम्यास्तसिः ५।४।४४॥

प्रतिना कर्मप्रवचनीयेन योगे या पञ्चमी विहिता तदन्तात्तसिः स्यात्।

प्रद्युम्नः कृष्णतः प्रति।

'आद्यादिभ्य उपसंख्यानम्' (वा.३३३९)। आदौ आदितः। मध्यतः। अन्ततः। पृष्ठतः। पार्श्वतः। आकृतिगणोऽयम्। स्वरेण स्वरतः। वर्णतः।

प्रतियोगे पञ्चम्यास्तसिः। प्रतिना योगः प्रतियोगस्तस्मिन् प्रतियोगे, तृतीयातत्पुरुषः। **बह्वल्पार्थाच्छस् कारकादन्यतरस्याम्** से **अन्यतरस्याम्** की अनुवृत्ति आती है और **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

कर्मप्रवचनीयसंज्ञक प्रति-शब्द के योग में जो पञ्चमी विभक्ति है, तदन्त (तादृश पञ्चम्यन्त) से विकल्प से तसि-प्रत्यय होता है।

कारक-प्रकरण में **प्रति** शब्द की **प्रतिः प्रतिनिधिप्रतिदानयोः** (१.४.९१) सूत्र से कर्मप्रवचनीयसंज्ञा करके उसके योग वाले शब्द से **प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात्** (२.३.११) सूत्र से पञ्चमी विभक्ति का विधान किया गया है। तादृश पञ्चम्यन्त से ही यह **तसि** प्रत्यय किया जाता है। इकार इत्संज्ञक है, **तस्** बचता है और तसन्त शब्द की **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** सूत्र से अव्ययसंज्ञा की जाती है।

प्रद्युम्नः कृष्णतः प्रति। प्रद्युम्न कृष्ण के प्रतिनिधि हैं। **प्रद्युम्नः कृष्णात् प्रति** विग्रह करके पञ्चम्यन्त **कृष्ण+ङसि** इस स्थिति में **प्रतियोगे पञ्चम्यास्तसिः** सूत्र से तसि-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् करके **कृष्णतस्** शब्द बना है। इसकी अव्ययसंज्ञा होती है और एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादि प्रत्ययों के आने पर उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् होता है और अन्त्य सकार को रुत्व और उसको विसर्ग करके **कृष्णतः** रूप सिद्ध हो जाता है। यह प्रत्यय वैकल्पिक है। अतः पक्ष में **प्रद्युम्नः कृष्णात् प्रति** भी बनता है।

आद्यादिभ्य उपसंख्यानम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- 'आदि' इत्यादि गणपठित शब्दों से स्वार्थ में विकल्प से तसि प्रत्यय का विधान करना चाहिए। यह प्रत्यय भी स्वार्थिक है।

आद्यादि आकृतिगण है, अतः इसमें कितने शब्द हैं? कोई सीमा नहीं। **तसि** में **इकार** इत्संज्ञक है, **तस्** बचता है। इस प्रत्यय के लगने के बाद **तसिप्रत्ययान्त** की **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** से **अव्ययसंज्ञा** हो जाती है। किसी विभक्ति की अपेक्षा नहीं है, अतः सभी विभक्त्यन्तों से यह प्रत्यय हो जाता है।

आदौ आदितः। आदि से या आदि में। **आदि ङि** में **आद्यादिभ्यस्तसेरुपसङ्ख्यानम्** वार्तिक से **तसि** प्रत्यय, अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **आदितस्** बना। इसकी अव्ययसंज्ञा, सु, उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् करके **आदितस्** ही बना। सकार को रुत्वविसर्ग होकर **आदितः** सिद्ध हुआ। यह वैकल्पिक है, अतः पक्ष में **आदौ** भी बना रहेगा।

मध्ये मध्यतः (मध्य से, मध्य में), **अन्ते अन्ततः** (अन्त से या अन्त में), **पृष्ठे पृष्ठतः** (पीछे से और पीछे), **पार्श्वे, पार्श्वतः** (बगल से या बगल में) आदि भी उपर्युक्त रीति से बनाये जा सकते हैं।

आकृतिगणोऽयम्। स्वरेण स्वरतः। वर्णतः। यह आकृतिगण है, अतः **स्वरेण-स्वरतः** (स्वर से, स्वर में), **वर्णेन वर्णतः** (वर्ण से या वर्ण में) आदि भी इसी तरह सिद्ध होते हैं।

२११२. अपादाने चाहीयरुहोः ५।४।४५॥

अपादाने या पञ्चमी तदन्तात्तसिः स्यात्। ग्रामादागच्छति, ग्रामतः। 'अहीयरुहोः' किम्? स्वर्गाद्धीयते। पर्वतादवरोहति।

अपादाने चाहीयरुहोः। हीयश्च रुह् च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो हीयरुहौ, न हीयरुहौ अहीयरुहौ, तयोरहीयरुहोः, नञ्तत्पुरुषः। अपादाने पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्, अहीयरुहोः षष्ठ्यन्तम्। **प्रतियोगे पञ्चम्यास्तसिः** से **पञ्चम्याः**, **तसि** की और **बह्वल्पार्थाच्छस्कारकादन्यतरस्याम्** से **अन्यतरस्याम्** की अनुवृत्ति आती है साथ ही **तद्धिताः**, **ङ्याप्प्रातिपदिकात्**, **प्रत्ययः**, **परश्च** का अधिकार है।

अपादान-कारक में जो पञ्चमी विभक्ति है, तदन्त (तादृश पञ्चम्यन्त) से विकल्प से तसि-प्रत्यय होता है, यदि वह अपादान कारक हीय-शब्द और रुह्-शब्द से सम्बन्धित न हो।

हीय शब्द यक्प्रत्ययान्त हा-धातु से निष्पन्न **हीयते** का एकदेश है और **रुह बीजजन्मनि** धातु का एकदेश **रुह्** है।

ग्रामादागच्छति, ग्रामतः। गाँव से आता है। यहाँ **ग्रामाद् आगच्छति** वाक्य के **ग्रामाद्** में **अपादाने पञ्चमी** सूत्र से पञ्चमी विभक्ति हुयी है। अतः **ग्राम+ङसि** इस स्थिति में **अपादाने चाहीयरुहोः** सूत्र से विकल्प से **तसि** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **ग्रामतस्** बना है। इसकी अव्ययसंज्ञा, सु, उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् करके **ग्रामतस्** ही बना। सकार को रुत्वविसर्ग होकर **ग्रामतः** सिद्ध हुआ। यह कार्य वैकल्पिक है, अतः पक्ष में **ग्रामाद्** भी बना रहेगा।

'अहीयरुहोः' किम्? स्वर्गाद्धीयते। पर्वतादवरोहति। प्रकृत सूत्र में **अहीयरुहोः** पद का निवेश करके **हीय** और **रुह्** के योग में पञ्चम्यन्त से तसि-प्रत्यय का प्रतिषेध किया गया है। उसके फलस्वरूप **स्वर्गाद् हीयते** (स्वर्ग से पृथक् होता है) और **पर्वताद् अवरोहति** (पर्वत से उतरता है) में **हीय** तथा **रुह्** का योग होने के कारण क्रमशः **ग्रामाद्** और **पर्वताद्** में तसि-प्रत्यय नहीं हुआ।

२११३. अतिग्रहाव्यथनक्षेपेष्वकर्तरि तृतीयायाः ५।४।४६॥

अकर्तरि तृतीयान्ताद् वा तसिः स्यात्।

अतिक्रम्य ग्रहोऽतिग्रहः। चारित्रेणातिगृह्यते, चारित्रतोऽतिगृह्यते। चारित्रेणान्यानतिक्रम्य वर्तत इत्यर्थः। अव्यथनमचलनम्। वृत्तेन न व्यथते, वृत्ततो न व्यथते। वृत्तेन न चलतीत्यर्थः। क्षेपे- वृत्तेन क्षिप्तः, वृत्ततः क्षिप्तः। वृत्तेन निन्दित इत्यर्थः। 'अकर्तरि' इति किम्? देवदत्तेन क्षिप्तः।

अतिग्रहाव्यथनक्षेपेष्वकर्तरि तृतीयायाः। अतिग्रहश्च अव्यथनं च क्षेपश्च

तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः- अतिग्रहाव्यथनक्षेपास्तेषु अतिग्रहाव्यथनक्षेपेषु। न कर्ता अकर्ता, तस्मिन् अकर्तरि, नञ्तत्पुरुषः। अतिग्रहाव्यथनक्षेपेषु सप्तम्यन्तम्, अकर्तरि सप्तम्यन्तं तृतीयायाः पञ्चम्यन्तम्। **प्रतियोगे पञ्चम्यास्तसिः** से **तसि** की और **बह्वल्पार्थाच्छस् कारकादन्यतरस्याम्** से **अन्यतरस्याम्** की अनुवृत्ति आती है साथ ही **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

अतिग्रह, अव्यथन और क्षेप अर्थों में वर्तमान जो तृतीया विभक्ति, तदन्त शब्द से विकल्प से तसि प्रत्यय होता है, यदि वह तृतीया कर्ता में न हुयी हो तो।

अकर्तरि-शब्द से कर्ता में तृतीया का निषेध होने से **करण** में जो तृतीया हुयी होगी, तदन्त से **तसि** होगा। स्मरण रहे कि **कर्तृकरणयोस्तृतीया** सूत्र से कर्ता और करण में तृतीया विभक्ति होती है। विकल्प होने से पक्ष में तृतीयान्तता भी बनी रहेगी।

अतिक्रम्य ग्रहोऽतिग्रहः। यहाँ पर **अतिग्रह**-शब्द का अर्थ है- अन्यों को चरित्रादि के द्वारा प्रभावित कर गृहीत होना।

चारित्रेण अतिगृह्यते, चारित्रतः अतिगृह्यते। चारित्रेण अन्यानतिक्रम्य वर्तत इत्यर्थः। अपने सदाचार के कारण दूसरों से बढ़कर रहता है। यहाँ पर **चारित्रेण** में **करण** में तृतीया है। अतः **चारित्र+टा** इस स्थिति में **अतिग्रहाव्यथनक्षेपेष्वकर्तरि तृतीयायाः** सूत्र से विकल्प से **तसि** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **चारित्रतस्** बना है। अव्ययसंज्ञा, स्वादिकार्य (सुप् का लुक्) और सकार को रुत्व एवं उसको विसर्ग होकर **चारित्रतः** सिद्ध हो जाता है। पक्ष में **चारित्रेण** भी बनेगा।

अव्यथनमचलनम्। चलायमान न होना अव्यथन है। अब अव्यथन का उदाहरण दिया जा रहा है-

वृत्तेन न व्यथते, वृत्ततो न व्यथते। वृत्तेन न चलतीत्यर्थः। अपने वृत्त (सदाचार, सच्चरित्रता) से विचलित नहीं होता। यहाँ पर **वृत्तेन** में **करण** में तृतीया है। अतः **वृत्त+टा** इस स्थिति में **अतिग्रहाव्यथनक्षेपेष्वकर्तरि तृतीयायाः** सूत्र से विकल्प से **तसि** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **वृत्ततस्** बना है। अव्ययसंज्ञा, स्वादिकार्य (सुप् का लुक्) और सकार को रुत्व और उसको विसर्ग होकर **वृत्ततः** सिद्ध हो जाता है। पक्ष में **वृत्तेन** भी बनेगा।

क्षेपे। क्षेप-शब्द का अर्थ है- निन्दा। अब उसका उदाहरण दिया जा रहा है-

वृत्तेन क्षिप्तः, वृत्ततः क्षिप्तः। वृत्तेन निन्दित इत्यर्थः। अपने वृत्त (चरित्र, आचार, दुराचार) के कारण निन्दित, बहिष्कृत। यहाँ पर भी **वृत्तेन** में **करण** में तृतीया है। अतः **वृत्त+टा** इस स्थिति में **अतिग्रहाव्यथनक्षेपेष्वकर्तरि तृतीयायाः** सूत्र से विकल्प से **तसि** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **वृत्ततस्** बना है। अव्ययसंज्ञा, स्वादिकार्य (सुप् का लुक्) और सकार को रुत्व व उसको विसर्ग होकर **वृत्ततः** सिद्ध हो जाता है। पक्ष में **वृत्तेन** भी बनेगा।

'अकर्तरि' इति किम्? देवदत्तेन क्षिप्तः। प्रकृत सूत्र में **अकर्तरि** पद का निवेश करके कर्ता में विहित तृतीयान्त से तसि-प्रत्यय का निषेध किया गया है। इसके फलस्वरूप **देवदत्तेन क्षिप्तः** (देवदत्त से निन्दित, बहिष्कृत) में देवदत्त-शब्द से तसि-प्रत्यय नहीं हुआ, क्योंकि यहाँ कर्ता में ही तृतीया विभक्ति हुयी है।

२११४. हीयमानपापयोगाच्च ५।४।४७॥

हीयमानपापयुक्तादकर्तरि तृतीयान्ताद् वा तसिः।
वृत्तेन हीयते। वृत्तेन पापः। वृत्ततः। क्षेपस्याविवक्षायामिदम्।
क्षेपे तु पूर्वेण सिद्धम्। 'अकर्तरि' इति किम्? देवदत्तेन हीयते।

हीयमानपापयोगाच्च। हीयमानं च पापं च हीयमानपापे, तयोर्योगो हीयमानपापयोगस्तस्माद् हीयमानपापयोगात्, द्वन्द्वगर्भषष्ठीतत्पुरुषः। **अतिग्रहाव्यथनक्षेपेष्वकर्तरि तृतीयायाः** से **अकर्तरि तृतीयायाः** की, **प्रतियोगे पञ्चम्यास्तसिः** से **तसि** की और **बह्वल्पार्थाच्छस् कारकादन्यतरस्याम्** से **अन्यतरस्याम्** की अनुवृत्ति आती है साथ ही **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

हीयमान (रहित होने वाला) शब्द के साथ और पाप-शब्द के साथ जिसका योग है, उससे परे जो तृतीया विभक्ति, तदन्त शब्द से विकल्प से तसि प्रत्यय होता है, यदि वह तृतीया कर्ता में न हुयी हो तो।

वृत्तेन हीयते, वृत्ततः। चरित्र से रहित होता है। यहाँ पर चरित्रवाची वृत्त-शब्द का हीयमान व्यक्ति से सम्बन्ध होने के कारण **वृत्त+टा** इस स्थिति में **हीयमानपापयोगाच्च** सूत्र से विकल्प से तसि-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, अव्ययसंज्ञा, स्वादिप्रत्यय, उसका लुक् और सकार को रुत्व तथा उसको विसर्ग होकर **वृत्ततः** बन गया है। पक्ष में **वृत्तेन** भी बना रहता है।

वृत्तेन पापः, वृत्ततः। चरित्र से पापी। यहाँ पर भी चरित्रवाची वृत्त-शब्द का पाप वाले व्यक्ति से सम्बन्ध होने के कारण **वृत्त+टा** इस स्थिति में पूर्ववत् **वृत्ततः** और **वृत्तेन** बनते हैं।

क्षेपस्याविवक्षायामिदम्। क्षेपे तु पूर्वेण सिद्धम्। यह सूत्र निन्दा की अविवक्षा अर्थात् यथार्थ-कथन के लिये है, क्योंकि निन्दा में तो पूर्वसूत्र से ही तसि-प्रत्यय सिद्ध रहा।

'अकर्तरि' इति किम्? देवदत्तेन हीयते। प्रकृत सूत्र में **अकर्तरि** पद की अनुवृत्ति के कारण कर्ता में विहित तृतीयान्त शब्द से तसि-प्रत्यय नहीं होगा। अतः **देवदत्तेन हीयते** (देवदत्त से रहित हो जाता है) में **देवदत्त+टा** से तसि-प्रत्यय नहीं हुआ, क्योंकि यहाँ कर्ता में ही तृतीया है।

२११५. षष्ठ्या व्याश्रये ५।४।४८॥

षष्ठ्यन्ताद् वा तसिः स्यान्नानापक्षसमाश्रयणे।
देवा अर्जुनतोऽभवन्। आदित्याः कर्णतोऽभवन्।
अर्जुनस्य कर्णस्य पक्षे इत्यर्थः। 'व्याश्रये' किम्? वृक्षस्य शाखा।

षष्ठ्या व्याश्रये। षष्ठ्याः पञ्चम्यन्तं, व्याश्रये सप्तम्यन्तम्। प्रतियोगे पञ्चम्यास्तसिः से **तसि** की और **बह्वल्पार्थाच्छस् कारकादन्यतरस्याम्** से **अन्यतरस्याम्** की अनुवृत्ति आती है साथ ही **तद्धिताः**, **ङ्याप्प्रातिपदिकात्**, **प्रत्ययः**, **परश्च** का अधिकार है।

व्याश्रय=भिन्न पक्षों का अवलम्बन अर्थ गम्यमान हो तो षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से विकल्प से तसि प्रत्यय होता है।

यहाँ **व्याश्रय** पद का तात्पर्य यह हुआ कि सर्वसाधारण पक्ष को छोड़कर किसी भिन्न नूतन पदों का आश्रयण करना।

देवा अर्जुनतोऽभवन्। अर्जुनस्य पक्षे इत्यर्थः। देवता लोग अर्जुन के पक्ष में हो गये, अर्थात् अन्य पक्ष होते हुये एक पक्ष का ग्रहण किया। यहाँ **अर्जुनस्य** यह षष्ठी है। **अर्जुन+ङस्** इस स्थिति में **षष्ठ्या व्याश्रये** सूत्र से विकल्प से तसि-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अर्जुनतस्** बना। अव्ययसंज्ञा, स्वादि प्रत्यय होने पर उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् और सकार को रुत्व एवं उसको विसर्ग होकर **अर्जुनतः** सिद्ध हो जाता है। पक्ष में षष्ठी ही रहती है- **अर्जुनस्य।**

आदित्याः कर्णतोऽभवन्। कर्णस्य पक्षे इत्यर्थः। आदित्यगण कर्ण के पक्ष में हो गये, अर्थात् अन्य पक्ष होते हुये एक पक्ष का ग्रहण किया। यहाँ **कर्णस्य** यह षष्ठी है। **कर्ण+ङस्** इस स्थिति में **षष्ठ्या व्याश्रये** सूत्र से विकल्प से तसि-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **कर्णतस्** बना। अव्ययसंज्ञा, स्वादि प्रत्यय होने पर उसका लुक् और रुत्वविसर्ग होकर **कर्णतः** सिद्ध हो जाता है। पक्ष में षष्ठी ही रहती है- **कर्णस्य।**

'व्याश्रये' किम्? वृक्षस्य शाखा। सूत्र में **व्याश्रये** पद के निवेश से अनेक पक्षों में से एक पक्ष का आश्रयण करना अर्थ गम्य होने पर ही यह प्रत्यय होता है, अन्यथा नहीं होता। अतः **वृक्षस्य शाखा** (वृक्ष की शाखा) में यद्यपि षष्ठी है तथापि व्याश्रय अर्थ गम्य नहीं है, अतः तसि-प्रत्यय नहीं हुआ।

२११६. रोगाच्चापनयने ५।४।४९॥

रोगवाचिनः षष्ठ्यन्ताद् वा तसिश्चिकित्सायाम्। प्रवाहिकातः कुरु।
प्रतीकारमस्याः कुर्वित्यर्थः। 'अपनयने' किम्? प्रवाहिकायाः प्रकोपनं करोति।

रोगाच्चापनयने। रोगात् पञ्चम्यन्तं, चाव्ययम्, अपनयने सप्तम्यन्तम्। **षष्ठ्या व्याश्रये** से **षष्ठ्याः** की, **प्रतियोगे पञ्चम्यास्तसिः** से **तसि** की और **बह्वल्पार्थाच्छस् कारकादन्यतरस्याम्** से **अन्यतरस्याम्** की अनुवृत्ति आती है साथ ही **तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च** का अधिकार है।

अपनयने=रोग को हटाना (चिकित्सा करना) अर्थ गम्यमान होने पर षष्ठ्यन्त रोगवाची प्रातिपदिक से विकल्प से तसि प्रत्यय होता है।

प्रवाहिकातः कुरु। प्रतीकारमस्याः कुर्वित्यर्थः। हैजे की चिकित्सा करो अर्थात् प्रवाहिका-रोग का प्रतीकार करो, हटाओ। यहाँ पर चिकित्सा गम्यमान है। **प्रवाहिका** रोगवाची है। **प्रवाहिका+ङस्** इस स्थिति में **रोगाच्चापनयने** सूत्र से विकल्प से तसि-प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **प्रवाहिकातस्** बना। अव्ययसंज्ञा, स्वादि प्रत्यय होने पर उसका **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् और सकार को रुत्व एवं उसको विसर्ग होकर **प्रवाहिकातः** सिद्ध हो जाता है। पक्ष में षष्ठी ही रहती है- **प्रवाहिकायाः**।

'अपनयने' किम्? प्रवाहिकायाः प्रकोपनं करोति। सूत्र में **अपनयने** शब्द के निवेश से प्रतीकार करना, चिकित्सा करना अर्थ गम्य होने पर ही **तसि** प्रत्यय होता है, अन्यथा नहीं होता। इसके फलस्वरूप **प्रवाहिकायाः प्रकोपनं करोति** (हैजे को कुपित करता है) में तसि-प्रत्यय नहीं हुआ, क्योंकि यहाँ चिकित्सा गम्य न होकर प्रकोपन अर्थात् उसको और बढ़ाना अर्थ है।

२११७. कृभ्वस्तियोगे संपद्यकर्तरि च्विः ५।४।५०॥

'अभूततद्भाव इति वक्तव्यम्' (वा.३३४०)। विकारात्मतां प्राप्नुवत्यां प्रकृतौ वर्तमानाद् विकारशब्दात् स्वार्थे च्विर्वा स्यात् करोत्यादिभिर्योगे।

कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः। कृश्च भूश्च अस्तिश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः कृभ्वस्तयः, तेषां कृभ्वस्तीनाम्, तेषां योगः कृभ्वस्तियोगस्तस्मिन्, कृभ्वस्तियोगे। सम्पदनं सम्पद्यः, तस्य कर्ता, सम्पद्यकर्ता, तस्मिन् सम्पद्यकर्तरि। कृभ्वस्तियोगे सप्तम्यन्तं, सम्पद्यकर्तरि सप्तम्यन्तं, च्विः प्रथमान्तं त्रिपदमिदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है। इस सूत्र के अर्थ में निम्नलिखित वार्तिक पढ़ना आवश्यक है।

अभूततद्भाव इति वक्तव्यम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- **कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः** इस सूत्र में **अभूततद्भावे** इतना और जोड़ना चाहिए। जो वस्तु पहले जिस रूप में न हो और बाद में वह उस रूप को प्राप्त कर ले तो इसे **अभूततद्भाव** कहते हैं।

अब सूत्रार्थ करते हैं- **अभूततद्भाव गम्य होने पर अर्थात् विकार को प्राप्त हो रही प्रकृति के अर्थ में वर्तमान जो विकारवाचक शब्द, उससे परे स्वार्थ में**

विकल्प से च्वि प्रत्यय हो, यदि कृ, भू और अस् धातु के साथ योग हो तो।

च्वि में **चकार** की चुटू से इत्संज्ञा होती है और **इकार** की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** से तथा **वकार** की **वेरपृक्तस्य** से इत्संज्ञा होती है। इस तरह सर्वापहार लोप हो जाता है। **च्वि** प्रत्ययान्त शब्द की **ऊर्यादिच्विडाचश्च** से निपातसंज्ञा होने के बाद **स्वरादिनिपातमव्ययम्** से अव्ययसंज्ञक है, अतः इसके बाद की विभक्ति का लुक् होता है। उदाहरण अगले सूत्र में दिये गये हैं।

२११८. अस्य च्वौ ७।४।३२॥

अवर्णस्य ईत् स्यात् च्वौ। वेर्लोपः। च्व्यन्तत्वादव्ययत्वम्। अकृष्णः कृष्णः संपद्यते, तं करोति, कृष्णीकरोति। ब्रह्मीभवती। गङ्गीस्यात्। 'अव्ययस्य च्वावीत्वं नेति वाच्यम्' (वा.५०५२)। दोषाभूतम् अहः। दिवाभूता रात्रिः। एतच्च 'अव्ययीभावश्च' (सू.४५१)। इति सूत्रे भाष्ये उक्तम्।

अस्य च्वौ। अस्य षष्ठ्यन्तं, च्वौ सप्तम्यन्तं द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **ई घ्राध्मोः** से **ई** की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** का अधिकार है। **अलोऽन्त्यस्य** परिभाषा सूत्र की उपस्थिति होती है।

च्वि-प्रत्यय के परे होने पर अङ्ग के अन्त्य अकार के स्थान पर (दीर्घ) ईकार आदेश होता है।

च्वि प्रत्यय का सर्वापहार लोप हो जाने पर भी **प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्** की सहायता से प्रत्यय को परे मानकर के **ईकारादेश** आदि कार्य होते हैं।

वेर्लोपः। च्वि-प्रत्यय में अनुबन्धलोप के बाद अवशिष्ट वकार का **वेरपृक्तस्य** से लोप हो जाता है।

च्व्यन्तत्वादव्ययत्वम्। अर्थात् **च्वि** प्रत्यय का परिगणन **ऊर्यादिच्विडाचश्च** सूत्र में है। अतः निपातसंज्ञा के बाद **स्वरादिनिपातमव्ययम्** से च्व्यन्त की अव्ययसंज्ञा होती है। अतः इसके बाद की विभक्ति का लुक् होता है।

अकृष्णः कृष्णः सम्पद्यते, तं करोति कृष्णीकरोति। जो काला नहीं है उसे काला करता है या होता है। **अकृष्णः कृष्णः सम्पद्यते तं करोति** लौकिक विग्रह और **कृष्ण सु** अलौकिक विग्रह में **कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः** से च्वि, सर्वापहारलोप। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **कृष्ण+करोति** बना। **अस्य च्वौ** से णकारोत्तरवर्ती **अकार** के स्थान पर **ईकार** आदेश करके **कृष्णी** बना। आगे **करोति** या **भवति** है, **कृष्णीकरोति, कृष्णीभवति।**

ब्रह्मीभवति। जो ब्रह्मभाव का अनुभव नहीं कर रहा था, वह ब्रह्मभाव को प्राप्त हो रहा है। **अब्रह्म ब्रह्म भवति** लौकिक विग्रह और **ब्रह्मन् सु** अलौकिक विग्रह में **कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः** से च्वि, सर्वापहारलोप। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्,

नकारलोप करके **ब्रह्म** बना। **अस्य च्वौ** से णकारोत्तरवर्ती अकार के स्थान पर ईकार आदेश करके **ब्रह्मी** बना। आगे भवति है, **ब्रह्मीभवति।**

अव्ययस्य च्वावीत्वं नेति वाच्यम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- च्वि प्रत्यय के परे रहते अव्यय के अवर्ण के स्थान पर ईकारादेश नहीं होता है, ऐसा कहना चाहिए।

दोषाभूतमहः। अदोषा दोषा सम्पद्यमानं भूतम् अर्थात् जो रात्रि न था किन्तु रात्रि हो गया, ऐसा दिन। **दोषा भूतम्** में **कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः** से **च्वि,** सर्वापहार लोप, **दोषा+भूतम्** में **अस्य च्वौ** से **दोषा** के **आकार** को **ईकारादेश** प्राप्त था, उसका **अव्ययस्य च्वावीत्वं नेति वाच्यम्** इस वार्तिक से निषेध हो जाने के कारण **दोषा भूतम्** ही रह गया। **दोषा+भूतम्** में **कुगतिप्रादयः** से समास होता है।

दिवाभूता रात्रिः। अदिवा दिवा सम्पद्यमाना भूता अर्थात् जो दिन न थी किन्तु दिन बन गई, ऐसी रात्रि। **दिवा भूता** में **कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः** से **च्वि,** सर्वापहार लोप, **दिवा+भूता** में **अस्य च्वौ** से **दिवा** के **आकार** को **ईकारादेश** प्राप्त था, उसका **अव्ययस्य च्वावीत्वं नेति वाच्यम्** इस वार्तिक से निषेध हो जाने के कारण **दिवा भूता** ही रह गया। **दिवा+भूतम्** में **कुगतिप्रादयः** से समास होता है।

एतच्च 'अव्ययीभावश्च' इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टम्। उपर्युक्त वार्तिक की व्यवस्था **अव्ययीभावश्च** सूत्र के भाष्य में स्पष्टतया वर्णित है।

२११९. क्यच्च्योश्च ६।४।१५२॥

हलः परस्यापत्य-यकारस्य लोपः स्यात् क्ये च्वौ च परतः।

गार्गीभवति।

क्यच्च्योश्च। क्यश्च च्विश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः क्यच्वी, तयोः क्यच्च्योः, सप्तम्यन्तं, चाव्ययम्। **आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति** से **आपत्यस्य** की, **हलस्तद्धितस्य** से **हलः** की, **सूर्यतिष्यागस्त्यमत्स्यानां य उपधायाः** से **यः** की और **ढे लोपोऽकद्र्वाः** से **लोपः** की अनुवृत्ति आती है। **अङ्गस्य** का अधिकार है।

अङ्ग के अवयव हल् से परवर्ती अपत्यार्थ में विहित यकार का लोप होता है, क्य और च्वि के परे रहते।

गार्गीभवति। गर्ग का वंशज हो रहा है। **अगार्ग्यः गार्ग्यः सम्पद्यमानः भवति** विग्रह है। यहाँ गर्ग-शब्द से अपत्यार्थ में यञ्-प्रत्यय होकर **गार्ग्य** शब्द बना है। अतः आपत्य-यकार विद्यमान है। **गार्ग्य+सु** इस स्थिति में **कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः** से च्वि, सर्वापहारलोप। प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **गार्ग्य+करोति** बना है। **अस्य च्वौ** से यकारोत्तरवर्ती **अकार** के स्थान पर **ईकार** आदेश करके **गार्ग्यई+भवति** में हल् रेफ् से परे आपत्य-यकार का **क्यच्च्योश्च** सूत्र से लोप होने पर **गार्गीभवति** बन गया है।

यद्यपि प्रत्ययलक्षणेन आगत च्वि-प्रत्यय और यकार के बीच में **अस्य च्वौ** वाले ईकार से व्यवधान है, तथापि सूत्रकरणसामर्थ्य से यकार का लोप हो जाता है।

२११२०. च्वौ च ७।४।२६॥

च्वौ परे पूर्वस्य दीर्घः स्यात्।

शुचीभवती। पटूस्यात्। 'अव्ययस्य दीर्घत्वं न' इति केचित्, तन्निर्मूलम्। 'स्वस्ति स्यात्' इति तु महाविभाषया च्वेरभावात् सिद्धम्। 'स्वस्तीस्यात्' इत्यपि पक्षे स्यादिति चेदस्तु। यदि नेष्यते तर्ह्यनभिधानात् च्विरेव नोत्पद्यत इत्यस्तु। 'रीङृतः' (सू.१२३४)। मात्री करोति।

च्वौ च। च्वौ सप्तम्यन्तं, च अव्ययपदं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अङ्गस्य** का अधिकार है और **अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः** से **दीर्घः** की अनुवृत्ति आती है।

च्वि के परे होने पर पूर्व के अङ्ग को दीर्घ होता है।

शुचीभवति। जो शुचि (पवित्र) नहीं है वह शुचि बनता है। **अशुचिः शुचिर्भवति** लौकिक विग्रह और **शुचि+सु** अलौकिक विग्रह में **कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः** से च्वि, सर्वापहारलोप होकर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **शुचि+भवति** बना। **च्वौ च** से इकार को दीर्घ होकर **शुचीभवति** सिद्ध हो जाता है।

पटूस्यात्। जो पटु (चतुर) नहीं है वह पटु बनता है। **अपटुः पटुर्भवति** लौकिक विग्रह और **पटु+सु** अलौकिक विग्रह में **कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः** से च्वि, सर्वापहारलोप होकर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, **पटु+भवति** बना। **च्वौ च** से उकार को दीर्घ होकर **पटूभवति** सिद्ध हो जाता है।

'अव्ययस्य दीर्घत्वं न' इति केचित्, तन्निर्मूलम्। किन्हीं आचार्यों का मत है कि **च्वौ च** सूत्र अव्यय में दीर्घ नहीं करता, किन्तु वह कथन निर्मूल=प्रमाणहीन है, क्योंकि भाष्य आदि में ऐसा कथन प्राप्त नहीं होता।

अब प्रश्न आता है कि यदि **च्वौ च** सूत्र अव्यय को भी दीर्घ करता है तो **स्वस्ति स्यात्** प्रयोग नहीं बन पायेगा, क्योंकि अव्यय **स्वस्ति** शब्द को च्वि प्रत्यय के परे दीर्घ हो जायेगा। इस प्रश्न का समाधान मूलकार इस तरह कर रहे हैं-

'स्वस्ति स्यात्' इति तु महाविभाषया च्वेरभावात् सिद्धम्। क्योंकि **च्वि**-प्रत्ययविधायक सूत्र **समर्थानां प्रथमाद्वा** से आगत **वा** इस महाविभाषा के अधिकार के अन्तर्गत आता है। अतः एक पक्ष में च्वि-प्रत्यय से रहित **स्वस्ति स्यात्** प्रयोग भी बन जाता है। तात्पर्य यह है कि च्वि-प्रत्यय के पक्ष में तो दीर्घ होकर **स्वस्ती स्यात्** बनता है और च्वि-प्रत्यय न होने के पक्ष में दीर्घ का प्रसंग ही नहीं है, अतः **स्वस्ति स्यात्** बन जाता है।

'स्वस्तीस्यात्' इत्यपि पक्षे स्यादिति चेदस्तु। यदि नेष्यते तर्ह्यनभिधानात् च्विरेव नोत्पद्यत इत्यस्तु। यदि आप **स्वस्ती स्यात्** इस पक्ष को स्वीकार करनां चाहते हैं तो करें, अन्यथा नहीं चाहते हैं तो **स्वस्ति**-शब्द से च्वि प्रत्यय का अनभिधान होने से उक्त प्रत्यय होता नहीं, ऐसा ही मान लें। तात्पर्य यह है कि सूत्रों से प्राप्त होने के कारण **स्वस्ति स्यात्** और **स्वस्ती स्यात्** इन दोनों रूपों का आदर करना चाहिये। यदि यह मानते हैं कि **स्वस्ती स्यात्** का प्रयोग शिष्टों ने कहीं नहीं किया है तो हम कैसे करें? इस पर यही व्यवस्था है कि शिष्टों के द्वारा अप्रयुक्त रूप को अनभिधान मान कर प्रयोग न करें।

'रीङृतः'। ऋकार के स्थान पर **रीङ्** आदेश करने वाले सूत्र का स्मरण कराया गया है।

मात्री करोति। जो माता नहीं है, उसे बनाता है अर्थात मानता है। **अमातरं मातरं करोति** लौकिक विग्रह और **मातृ+सु** अलौकिक विग्रह में **कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः** से च्वि, सर्वापहारलोप होकर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **मातृ+करोति** बना है। **रीङृतः** सूत्र से ऋकार को **रीङ्** (री) आदेश होने पर **मात्रीकरोति** सिद्ध हो जाता है।

२१२१. अरुर्मनश्चक्षुश्चेतोरहोरजसां लोपश्च ५।४।५१॥

एषां लोपः स्यात् च्विश्च। अरूकरोति। उन्मनीस्यात्। उच्चक्षूकरोति। उच्चेतीकरोति। विरहीकरोति। विरजीकरोति।

अरुर्मनश्चक्षुश्चेतोरहोरजसां **लोपश्च**। अरुस् च मनस् च चक्षुष् च चेतस् च रजस् च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः- अरुर्मनश्चक्षुश्चेतोरहोरजांसिस्तेषाम् अरुर्मनश्चक्षुश्चेतो-रहोरजसां षष्ठ्यन्तम्। ये शब्द प्रायः नपुंसकलिंग के हैं और इनके रूप भिन्न होते हैं तथापि शब्दनिर्देश के सौकर्यार्थ यथावत् रूप रखकर विग्रह किया है। लोपः प्रथमान्तं, चाव्ययम्। कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः यह पूरा सूत्र अनुवृत्त होता है और तद्धिताः, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, प्रत्ययः, परश्च का अधिकार है।

सम्पद्यते के कर्ता के रूप में वर्तमान अरुष्, मनस्, चक्षुष्, चेतस्, रहस् और रजस् शब्दों का लोप होता है तथा इन शब्दों से च्वि प्रत्यय भी होता है, यदि कृ, भू और अस् का योग हो तो।

अलोऽन्त्यस्य की उपस्थिति से उक्त शब्दों के अन्त्य सकार का ही लोप होता है।

अरूकरोति। घाव करता है। **अनरुः अरुः सम्पद्यते तं करोति** विग्रह करके **अरुस्+सु करोति** इस स्थिति में **अरुर्मनश्चक्षुश्चेतोरहोरजसां लोपश्च** सूत्र से च्वि-प्रत्यय के साथ प्रकृति के सकार का लोप होने पर प्रत्यय का सर्वापहारलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा,

सुप् का लुक् करके **अरु+करोति** बना है। **च्वौ च** सूत्र से उकार को दीर्घ होकर **अरूकरोति** सिद्ध हो जाता है।

उन्मनीस्यात्। उदास होवे। **अनुन्मनाः उन्मनाः सम्पद्यते तत् स्यात्** विग्रह करके **उन्मनस्+सु स्यात्** इस स्थिति में **अरुर्मनश्चक्षुश्चेतोरहोरजसां लोपश्च** सूत्र से च्वि-प्रत्यय के साथ प्रकृति के सकार का लोप होने पर प्रत्यय का सर्वापहारलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **उन्मन+स्यात्** बना है। **अस्य च्वौ** सूत्र से अकार को ईकारादेश होकर **उन्मनीस्यात्** सिद्ध हो जाता है।

उच्चक्षूकरोति। आँख ऊपर करता है। **अनुच्चक्षुः उच्चक्षुः सम्पद्यते तत् करोति** विग्रह करके **उच्चक्षुष्+सु करोति** इस स्थिति में **अरुर्मनश्चक्षुश्चेतोरहोरजसां लोपश्च** सूत्र से च्वि-प्रत्यय के साथ प्रकृति के षकार (सकार) का लोप होने पर प्रत्यय का सर्वापहारलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **उच्चक्षु+करोति** बना है। **च्वौ च** सूत्र से उकार को दीर्घ होकर **उच्चक्षूकरोति** सिद्ध हो जाता है।

उच्चेतीकरोति। सचेत होता है। **अनुच्चेताः उच्चेताः सम्पद्यते तत् करोति** विग्रह करके **उच्चेतस्+सु करोति** इस स्थिति में **अरुर्मनश्चक्षुश्चेतोरहोरजसां लोपश्च** सूत्र से च्वि-प्रत्यय के साथ प्रकृति के सकार का लोप होने पर प्रत्यय का सर्वापहारलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **उच्चेत+करोति** बना है। **अस्य च्वौ** सूत्र से अकार को ईकारादेश होकर **उच्चेतीकरोति** सिद्ध हो जाता है।

विरहीकरोति। विरह (अलग) करता है। **अविरहो विरहः सम्पद्यते तं करोति** विग्रह करके **विरहस्+सु करोति** इस स्थिति में **अरुर्मनश्चक्षुश्चेतोरहोरजसां लोपश्च** सूत्र से च्वि-प्रत्यय के साथ प्रकृति के सकार का लोप होने पर प्रत्यय का सर्वापहारलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **विरह+करोति** बना है। **अस्य च्वौ** सूत्र से अकार को ईकारादेश होकर **विरहीकरोति** सिद्ध हो जाता है।

विरजीकरोति। धूल रहित करता है अथवा तमोगुण से रहित करता है। **अविरजाः विरजाः सम्पद्यते तत् करोति** विग्रह करके **विरजस्+सु करोति** इस स्थिति में **अरुर्मनश्चक्षुश्चेतोरहोरजसां लोपश्च** सूत्र से च्वि-प्रत्यय के साथ प्रकृति के सकार का लोप होने पर प्रत्यय का सर्वापहारलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **विरज+करोति** बना है। **अस्य च्वौ** सूत्र से अकार को ईकारादेश होकर **विरजीकरोति** सिद्ध हो जाता है।

२१२२. विभाषा साति कात्स्न्र्ये ५।४।५२॥
च्विविषये सातिर्वा स्यात् साकल्ये।

विभाषा साति कात्स्न्र्ये। विभाषा प्रथमान्तं, साति लुप्तप्रथमाकं पदं, कात्स्न्र्ये सप्तम्यन्तं, त्रिपदं सूत्रम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है। **अभूततद्भावे कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि** की अनुवृत्ति आ रही है।

च्वि के विषय में विकल्प से साति प्रत्यय होता है यदि सम्पूर्णता अर्थ गम्यमान हो तो।

कृत्स्नं=सम्पूर्णम्, तस्य भावः कार्त्स्न्यम्। उक्त सूत्र से विहित **साति** में इकार की इत्संज्ञा होती है, **सात्** बचता है। **सातिप्रत्ययान्त** शब्द की **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** से **अव्ययसंज्ञा** होती है। यह प्रत्यय भी वैकल्पिक है, पक्ष में यथाप्राप्त च्वि-प्रत्यय भी होता है।

अब अष्टमाध्यायस्थ सूत्रों से प्राप्त षत्व का निषेध किया जा रहा है-

२१२३. सात्पदाद्योः ८।३।१११॥

सस्य षत्वं न स्यात्। दधि सिञ्चति। कृत्स्नं शस्त्रमग्निः सम्पद्यतेऽग्निसाद्भवति। अग्नीभवति। महाविभाषया वाक्यमपि। 'कार्त्स्न्ये' किम्? एकदेशेन शुक्लीभवति पटः।

सात्पदाद्योः। पदस्यादिः पदादिः। सात् च पदादिश्च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वः सात्पदादी, तयोः सात्पदाद्योः। सात्पदाद्योः षष्ठ्यन्तमेकपदं सूत्रम्। **सहेः साडः सः** से **सः** और **अपदान्तस्य मूर्धन्यः** से **मूर्धन्यः** तथा **न रपरसृपिसृजिस्पृशिस्पृहिसवनादीनाम्** से **न** की अनुवृत्ति आती है।

साति प्रत्यय के सकार और पदादि में स्थित सकार को मूर्धन्य षकार आदेश नहीं होता है।

दधि सिञ्चति। दही छिड़कता है। यह **साति** प्रत्यय का विषय नहीं है अपितु षत्व के निषेध में **पदादि** का उदाहरण है। **दधि** में विद्यमान इण् वर्ण इकार से परे **सिञ्चति** के सकार को **आदेशप्रत्यययोः** से षकारादेश प्राप्त था, उसका निषेध **सात्पदाद्योः** से किया गया है। **साति** प्रत्यय के विधान एवं उसके सकार को षत्वनिषेध के विषय में आगे देखें।

कृत्स्नं शस्त्रमग्निः सम्पद्यतेऽग्निसाद्भवति, अग्नीभवति। महाविभाषया वाक्यमपि। सम्पूर्ण शस्त्र जो अग्नि नहीं है, वह आग हो जाता है अर्थात् जल जाता है। यहाँ पर **सम्पूर्ण** अर्थ होने के कारण **कार्त्स्न्य** है। अभूततद्भाव भी है। जैसे कि जो आग नहीं वह आग हो गया। अतः **अग्नि+सु भवति** इस स्थिति में **विभाषा साति कार्त्स्न्ये** से **साति** प्रत्यय, इकार का लोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **अग्नि+सात्** बना। यहाँ पर इवर्ण से परे होने के कारण सात्-प्रत्यय के सकार के स्थान पर **आदेशप्रत्यययोः** से **षत्व** प्राप्त था, उसका **सात्पदाद्योः** से निषेध हो गया। अतः **अग्निसात्** ही रह गया। **सातिप्रत्ययान्त** अव्यय होता ही है, अतः उससे बाद की विभक्ति का लुक् होकर **अग्निसात्** सिद्ध हो जाता है। आगे **भवति** है, अतः **तकार** को **झलां जशोऽन्ते** से जश्त्व होकर **अग्निसाद् भवति** हो जाता है।

'कात्स्न्यें' किम्? एकदेशेन शुक्लीभवति पटः। अर्थात् **विभाषा साति कात्स्न्यें** सूत्र में **कात्स्न्यें** पद का निवेश होने से सम्पूर्णतया व्याप्त होने पर ही **साति** प्रत्यय होता है, अन्यथा नहीं होता। अतः **एकदेशेन शुक्लभवति पटः** (वस्त्र का एक भाग सफेद होता है) में साति-प्रत्यय नहीं हुआ, क्योंकि यहाँ सम्पूर्णतया शुक्ल होना अर्थ नहीं है।

२१२४. अभिविधौ सम्पदा च ५।४।५३॥

सम्पदा कृभ्वस्तिभिश्च योगे सातिर्वा स्याद् व्याप्तौ। पक्षे कृभ्वस्तियोगे च्विः। सम्पदा तु वाक्यमेव। अग्निसात्संपद्यते, अग्निसाद्भवति शस्त्रम्, अग्नीभवति। जलसात् सम्पद्यते, जलीभवती लवणम्।

एकस्या व्यक्तेः सर्वावयवावच्छेदेनान्यथाभावः कात्स्न्यम्।
बहूनां व्यक्तीनां किञ्चिदवयवावच्छेदेनान्यथात्वं त्वभिविधिः।

अभिविधौ सम्पदा च। अभिविधौ सप्तम्यन्तं, सम्पदा सम्पद् इत्यस्य तृतीयान्तं रूपं, चाव्ययम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है। **अभूततद्भावे कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि** की और **विभाषा साति कात्स्न्यें** से **साति** की अनुवृत्ति आ रही है।

अभिविधि=अभिव्याप्ति गम्यमान हो तो कृ, भू, अस् के योग में तथा सम्-पूर्वक पद्-धातु के योग में भी विकल्प से साति प्रत्यय होता है, अभूततद्भाव रहने पर।

पक्षे कृभ्वस्तियोगे च्विः। सम्पदा तु वाक्यमेव। पक्ष में कृ, भू, अस् का योग रहने पर यथाप्राप्त च्वि-प्रत्यय होता है किन्तु **सम्पद्** के योग में तो पक्ष में च्वि-प्रत्यय नहीं होता अपितु वाक्य ही रहता है।

पूर्वसूत्र से **कात्स्न्यं** में प्रत्ययं किया गया था और इस सूत्र से **अभिविधि** अर्थ में किया जा रहा है। **कात्स्न्यं** और **अभिविधि** का अन्तर आगे बताने वाले हैं।

अग्निसात्संपद्यते, अग्निसाद्भवति शस्त्रम्, अग्नीभवति। सब कुछ जलकर राख हो जाता है। पहले प्रयोग में **सम्पद्** का योग है और दूसरे तथा तीसरे उदाहरणों में भू-धातु का योग है। पहले और दूसरे उदाहरणों में **साति** प्रत्यय हुआ है और तीसरे उदाहरण में च्वि-प्रत्यय।

जलसात् सम्पद्यते, जलीभवति लवणम्। नमक पूरा का पूरा गलकर जल रूप में परिणत होता है। **जल+सु सम्पद्यते** और **जल+सु भवति** इस स्थिति में क्रमशः **साति** और **च्वि** प्रत्यय होकर **जलसात् सम्पद्यते** तथा **जलीभवति** सिद्ध हुये हैं।

एकस्या व्यक्तेः सर्वावयवावच्छेदेनान्यथाभावः कात्स्न्यम्। एक ही व्यक्ति (द्रव्य, पदार्थ, वस्तु) का सम्पूर्ण अवयवों के साथ अन्यथाभाव (विकृत, परिवर्तित) होना **कात्स्न्यं** है। और-

बहूनां व्यक्तीनां किञ्चिदवयवावच्छेदेनान्यथात्वं त्वभिविधिः। जहाँ बहुत व्यक्ति (द्रव्य, पदार्थ, वस्तु) का किञ्चत् अवयवों के साथ अन्यथाभाव (विकृत, परिवर्तित) होना **अभिविधि**।

२१२५. तदधीनवचने ५।४।५४॥

सातिः स्यात् कृभ्वस्तिभिः सम्पदा च योगे।
राजसात्करोति, राजसात् सम्पद्यते। राजाधीनमित्यर्थः।

तदधीनवचने। तस्याधीनं तदधीनं, षष्ठीतत्पुरुषः। तदधीनस्य वचनं तदधीनवचनं, षष्ठीतत्पुरुषः। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है। **अभिविधौ सम्पदा च** से **सम्पदा** की, **विभाषा साति कात्स्न्र्ये** से **साति** की तथा **कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि** की अनुवृत्ति आ रही है। यहाँ पर **अभूततद्भावे** का सम्बन्ध नहीं है।

स्वामिविशेषवाची प्रातिपदिक से ईशितव्य अभिधेय होने पर कृ, भू, अस् और सम्पद् के योग में साति प्रत्यय होता है।

सूत्रस्थ **तत्** शब्द से स्वामिविशेष का ग्रहण है।

राजसात्करोति, राजसात् सम्पद्यते। राजाधीनमित्यर्थः। सब कुछ राजा के अधीन करता है। यहाँ क्रमशः **कृ** और **सम्पद्** का योग है। अतः **राजन्** शब्द से **तदधीनवचने च** सूत्र से **साति** प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके **राजन्+सात्+करोति** बना है। नकार का **नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य** सूत्र से लोप करके **राजसात् करोति** सिद्ध हो जाता है। इसी तरह **सम्पद्यते** के योग में भी समझना चाहिये।

२१२६. देये त्रा च ५।४।५५॥

तदधीने देये त्रा स्यात् सातिश्च कृभ्वादियोगे।
विप्राधीनं देयं करोति- विप्रत्रा करोति। विप्रत्रा सम्पद्यते।
पक्षे विप्रसात्करोति। 'देये' किम्? राजसाद्भवति राष्ट्रम्।

देये त्रा च। देये सप्तम्यन्तं, त्रा इति लुप्तप्रथमाकं पदं, चाव्ययम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है। **तदधीनवचने** सूत्र से **तदधीनवचने** की, **अभिविधौ सम्पदा च** से **सम्पदा** की, **विभाषा साति कात्स्न्र्ये** से **साति** की तथा **कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि** की अनुवृत्ति आ रही है। यहाँ पर भी **अभूततद्भावे** का सम्बन्ध नहीं है। अब आगे भी नहीं होगा।

यदि देय वस्तु तदधीन=दिये जाने वाले व्यक्ति के अधीन की जाय तो तद्वाचक शब्द से कृ, भू, अस् और सम्पद् का योग होने पर त्रा और साति प्रत्यय होते हैं।

देने योग्य जो वस्तु, वह **देय** कहलाती है। यहाँ पर **देये** पद **तदधीनवचने** का विशेषण है।

विप्राधीनं देयं करोति- विप्रत्रा करोति। विप्रत्रा सम्पद्यते। पक्षे विप्रसात्करोति। देने योग्य वस्तु विप्र के अधीन करता है। **विप्राधीनं देयं करोति** अर्थ में **विप्र+सु+करोति** इस स्थिति में **देये त्रा च** सूत्र से **त्रा** प्रत्यय होने के पक्ष में **विप्रत्राकरोति** बनता है। इसी तरह **सम्पद्यते** के योग में **विप्रत्रा सम्पद्यते** बन जाता है। पक्ष में **सात्** प्रत्यय भी होगा। अतः **विप्रसात्करोति, विप्रसात्सम्पद्यते** भी बनेंगे।

'देये' किम्? राजसाद्भवति राष्ट्रम्। सूत्र में **देये** पद होने के कारण देय-वस्तु का सम्बन्ध होने पर ही **त्रा** प्रत्यय होता है, अन्यथा केवल **सात्** प्रत्यय होगा। यहाँ **राजसाद्भवति राष्ट्रम्** (पूरा राष्ट्र राजा के अधीन होता है) में देय वस्तु नहीं है अपितु राजा स्वयं स्वामी है, अतः **त्रा** प्रत्यय नहीं हुआ किन्तु **सात्** प्रत्यय होकर **राजसात्** बन जाता है।

अब आगे **कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि** का सम्बन्ध नहीं है।

२१२७. देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्त्येभ्यो द्वितीयासप्तम्योर्बहुलम् ५।४।५६॥

एभ्यो द्वितीयान्तेभ्यः सप्तम्यन्तेभ्यश्च त्रा स्यात्।
देवत्रा वन्दे रमे वा। बहुलोक्तेरन्यत्रापि। बहुत्रा जीवतो मनः।

देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्त्येभ्यो द्वितीयासप्तम्योर्बहुलम्। देवश्च मनुष्यश्च पुरुषश्च पुरुश्च मर्त्यश्च तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वो देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्त्यास्तेभ्यो देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्त्येभ्यः। द्वितीया च सप्तमी च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो द्वितीयासप्तम्यौ, तयोर्द्वितीयासप्तम्योः। देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्त्येभ्यः पञ्चम्यन्तं, द्वितीयासप्तम्योः पञ्चम्यर्थे षष्ठी, बहुलं प्रथमान्तम्। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है। **देये त्रा च** से **त्रा** की अनुवृत्ति आ रही है।

द्वितीया और सप्तमी विभक्त्यन्त देव, मनुष्य, पुरुष, पुरु तथा मर्त्य इन प्रातिपदिकों से बहुलतया त्रा-प्रत्यय होता है।

देवत्रा वन्दे रमे वा। देवताओं को प्रणाम करता हूँ उनमें रमता हूँ। **वन्दे** और **रमे** क्रियापद हैं। **वन्दे** के योग में **देव**-शब्द कर्म और **रमे** के योग में अधिकरण बनता है। अतः **देवान् वन्दे** तथा **देवेषु रमे** ऐसे लौकिक विग्रह होंगे। **देव+शस्** और **देव+सुप्** इन अलौकिक विग्रह में **देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्त्येभ्यो द्वितीयासप्तम्योर्बहुलम्** सूत्र से **त्रा** प्रत्यय होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर उभयत्र **देवत्रा** शब्द बनता है। इस प्रत्यय का परिगणन **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** में किया गया है, अतः उक्त सूत्र से अव्ययसंज्ञा होती है। फलतः आगत सुप् प्रत्यय का लुक् हो जाता है।

इसी तरह से सूत्रोक्त अन्य शब्दों से भी त्रा-प्रत्यय करके रूप बना लेने चाहिये। जैसे कि-

मनुष्यान् गच्छति, मनुष्येषु वसति मनुष्यत्रा।
पुरुषान् गच्छति, पुरुषेषु वसति पुरुषत्रा।
पुरून् गच्छति पुरुषु वसति पुरुत्रा।
मर्त्यान् गच्छति, मर्त्येषु वसति मर्त्यत्रा। इत्यादि।

बहुलोक्तेरन्यत्रापि। बहुत्रा जीवतो मनः। प्रकृतसूत्र में **बहुलम्** का निवेश किया गया है। इससे यह अर्थ निकाला जाता है कि जो शब्द सूत्र में उच्चारित नहीं हैं, उनसे भी कहीं-कहीं त्रा-प्रत्यय होता है। अतः **बहु**-शब्द से त्रा-प्रत्यय होकर **बहुत्रा** बन सकता है। **बहुत्रा जीवतो मनः**=जीवित व्यक्ति का मन बहुत जगह रमता है।

२१२८. अव्यक्तानुकरणाद् द्व्यजवरार्धादनितौ डाच् ५।४।५७॥

द्व्यच् अवरं न्यूनम्, न तु ततो न्यूनम्, 'अनेकाच्' इति यावत्।
तादृशमर्धं यस्य तस्माड्डाच् स्यात् कृभ्वस्तिभिर्योगे।
'डाचि विवक्षिते द्वे बहुलम्' (वा.४६९७)।
'नित्यमाम्रेडिते डाचीति वक्तव्यम्' (वा.३६३८)। डाच्परं यदाम्रेडितं तस्मिन्परे पूर्वपरयोर्वर्णयोः पररूपं स्यात्। इति तकारपकारयोः पकारः। पटपटाकरोति। 'अव्यक्तानुकरणात्' किम्? ईषत्करोति। 'द्व्यजवरार्धात्' किम्? श्रत्करोति। 'अवर' इति किम्? घरटघरटा करोति। त्रपटत्रपटाकरोति 'अनेकाचः' इत्येव सूत्रयितुमुचितम्। एवं हि डाचीति परसप्तम्येव द्वित्वे सुवचेत्यवधेयम्। 'अनितौ' किम्? पटिति करोति।

अव्यक्तानुकरणाद्द्व्यजवरार्धादनितौ डाच्। यत्र ध्वनौ अकारादयो वर्णा न व्यज्यन्ते सोऽव्यक्तो ध्वनिः। अव्यक्तध्वनेरनुकरणम् अव्यक्तानुकरणं, तस्मात्। द्वयोरचोः समाहारः द्व्यच्, द्व्यच् एव अवरं न्यूनं, द्व्यजवरं, तस्मात्। न इतिः अनितिः, तस्मिन्, अनितौ। **मण्डूकप्लुति** से **कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः** से **कृभ्वस्तियोगे** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

जिसके आधे भाग में कम से कम दो अच् हों, ऐसे अव्यक्तानुकरण अर्थात् स्पष्टतया अकारादि वर्णों की ध्वनि जहाँ पर न हो ऐसे शब्द क अनुकरण होने पर तद्वाची शब्द से डाच् प्रत्यय होता है यदि कृ, भू, अस् का योग हो तो किन्तु इति शब्द पर में नहीं होना चाहिए।

इस सूत्र के लगने में प्रथमतः

१. अव्यक्त ध्वनि की नकल होनी चाहिए,

२. जिस शब्द से डाच् किया जा रहा है, उस शब्द के आधे भाग में कम से कम दो अच् होने चाहिए, अर्थात् अनेक अच् होना चाहिये।

३. कृ, भू, अस् का योग होना चाहिए, और

४. इति शब्द परे नहीं होना चाहिए।

डाच् में डकार और चकार इत्संज्ञक हैं, **आ** बचता है। **डित्** होने के कारण **टेः** से **प्रकृति** के टि का लोप किया जाता है।

इस सूत्र के सम्बन्ध में निम्नलिखित वार्तिक पढ़े गये हैं-

डाचि विवक्षिते द्वे बहुलम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- डाच् प्रत्यय करने की विवक्षा हो तो पहले मूल शब्द को बहुल से द्वित्व होता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि यदि डाच्-प्रत्यय करने की तैयारी हो तो उससे पहले प्रकृति को द्वित्व हो जाता है।

नित्यमाम्रेडिते डाचीति वक्तव्यम्। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- डाच् परे है जिसके ऐसा जो आम्रेडित, उसके परे होने पर पूर्व और पर के स्थान पर पररूप एक आदेश होता है। स्मरण रहे कि द्वित्व होने पर द्वितीय की **तस्य परमाम्रेडितम्** से **आम्रेडितसंज्ञा** होती है।

डाच्परं यदाम्रेडितं तस्मिन्परे पूर्वपरयोर्वर्णयोः पररूपं स्यात्। यह उपर्युक्त वार्तिक का अर्थ मूलकार ने दिया है।

इति तकारपकारयोः पकारः। इस वार्तिक से पररूप होने पर तकार और पकार के स्थान पर एकादेश पकार ही होता है।

पटपटा करोति। **पटत्** ऐसा शब्द करता है। **पटत् इति शब्दं करोति।** यहाँ लगभग **पटत्** इस तरह का शब्द करना, यह अव्यक्त शब्द का अनुकरण है, क्योंकि जो आवाज हुई वह **पटत्** ऐसे व्यक्त शब्द के रूप में न होकर उसके अनुकरण में जैसे ठक् ठक् करता है आदि में अनुकरण किया जाता है, उसी तरह का यह भी अनुकरण ही है। **पटत्** इससे **अव्यक्तानुकरणाद्द्व्यजवरार्धादनितौ डाच्** सूत्र से **डाच्** प्रत्यय की विवक्षा है। उसके पहले ही **डाचि विवक्षिते द्वे बहुलम्** से उसको द्वित्व हुआ- **पटत् पटत् (करोति)** बना। अब यहाँ पर आधा भाग भी दो अच् वाला है ही- **पटत्**। अतः **डाच्** प्रत्यय हो गया, अनुबन्धलोप होने के बाद **पटत्+पटत्+आ करोति** बना। प्रथम **पटत्** के तकार और द्वितीय **पटत्** के आदि वर्ण **पकार** के स्थान पर **नित्यमाम्रेडिते डाचीति वक्तव्यम्** वार्तिक से पररूप होकर **पकार** ही बना। **पट+प्+अटत्+आ करोति** बना। **अटत्** में **अत्** टि है, इसका **टेः** से लोप होकर **पट+प्+अट्+आ करोति** बना। वर्णसम्मेलन होकर **पटपटा करोति** बना। **डाजन्त** भी **तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** से अव्यय बन जाता है। अतः उसके बाद आए हुए सुप् का **अव्ययादाप्सुपः** से लुक् होकर **पटपटा** बना। आगे **करोति** है। इस तरह **पटपटा-करोति** सिद्ध हो जाता है।

अव्यक्तानुकरणात् किम्? ईषत्करोति। यदि **अव्यक्तानुकरणाद्द्व्यजवरार्धादनितौ डाच्** इस सूत्र में **अव्यक्तानुकरणात्** न कहते तो **व्यक्तानुकरण** में भी **डाच्** होने लगाता, जिससे **ईषत्करोति** नहीं बन पाता।

द्व्यजवरार्धात् किम्? श्रत्करोति। अर्थात् **अव्यक्तानुकरणाद्द्व्यजवरार्धादनितौ डाच्** इस सूत्र में **द्व्यजवरार्धात्** न कहते तो एक अच् वाले में भी उक्त सूत्र प्रवृत्त होता, जिससे **श्रत्करोति** न बन पाता।

अवरेति किम्? खरटखरटाकरोति। अर्थात् **अव्यक्तानुकरणाद्द्व्यजवरार्धादनितौ डाच्** इस सूत्र में **कम से कम** अर्थ का सूचक **अवर** शब्द न होता तो दो अच् में तो डाच् हो जाता किन्तु दो से अधिक अच् होने पर भी **डाच्** नहीं हो पाता जिससे **खरटखरटा करोति** (खरटत्-खरटत् शब्द करता है) नहीं बन पाता। **खरटखरट** के आधे भाग में तीन अच् हैं।

त्रपटत्रपटा करोति। यहाँ पर भी **अवर**-शब्द के कारण आधे भाग में तीन अच् होने पर भी डाच् प्रत्यय हो गया है। इस तरह **अवर** शब्द के यह सूचित होता है कि आधे भाग में कम से कम दो अच् होने चाहिये किन्तु दो से अधिक अच् हों, तो भी कोई हानि नहीं है।

'अनेकाचः' इत्येव सूत्रयितुमुचितम्। एवं हि डाचीति परसप्तम्येव द्वित्वे सुवचेत्यवधेयम्। दीक्षित जी यह परामर्श दे रहे हैं कि प्रकृतसूत्र के **द्व्यजवरार्धात्** पद को हटाकर **अनेकाचः** पाठ करना उचित होगा। इस तरह सूत्र का स्वरूप होगा- अव्यक्तानुकरणादनेकाचोऽनितौ। इसी प्रकार **डाचि** को परसप्तमी ही मानना चाहिये। इससे पटत् आदि शब्दों में द्वित्व होने से पहले ही अनेकाच्त्व सम्भव हो सकेगा और डाच् के परे रहते ही द्वित्व हो जायेगा।

अनितौ किम्? पटिति करोति। प्रकृत **अव्यक्तानुकरणाद्द्व्यजवरार्धादनितौ डाच्** इस सूत्र में अनिति नहीं कहते तो **इति** के परे होने पर भी **डाच्** होने लगता, जिससे **पटिति करोति** न बन पाता।

२१२९. कृञो द्वितीयतृतीयशम्बबीजात् कृषौ ५।४।५८॥

द्वितीयादिभ्यो डाच् स्यात् कृञ एव योगे कर्षणेऽर्थे।

बहुलोक्तेरव्यक्तानुकरणादन्यस्य डाचि न द्वित्वम्। द्वितीयं तृतीयं कर्षणं करोति- द्वितीयाकरोति, तृतीयाकरोति। शम्बशब्दः प्रतिलोमे। अनुलोमं कृष्टं क्षेत्रं पुनः प्रतिलोमं कर्षति, शम्बाकरोति। बीजेन सह कर्षति, बीजा करोति।

कृञो द्वितीयतृतीयशम्बबीजात् कृषौ। द्वितीयश्च तृतीयश्च शम्बश्च बीजं च, तेषां समाहारद्वन्द्वो द्विमीयतृतीयशम्बबीजम्, तस्माद् द्वितीयतृतीयशम्बबीजात्। कृञः पञ्चम्यन्तं, द्वितीयतृतीयशम्बबीजात् पञ्चम्यन्तं, कृषि-शब्दस्य सप्तम्यन्तं रूपं कृषौ।

अव्यक्तानुकरणाद्द्व्यजवरार्धादनितौ डाच् से **डाच्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

द्वितीय, तृतीय, शम्ब, बीज इन प्रातिपदिकों से कृ-धातु के योग में कृषि=कर्षण अभिधेय हो तो डाच् प्रत्यय होता है।

बहुलोक्तेरव्यक्तानुकरणादन्यस्य डाचि नं द्वित्वम्। पूर्व वार्तिक **डाचि विवक्षिते द्वे बहुलम्** में **बहुलम्** पद के कारण अव्यक्तानुकरण से भिन्न विषय में प्रयुक्त शब्दों से डाच् प्रत्यय की विवक्षा में द्वित्व नहीं होता। बहुल शब्द के अनेक अर्थ होते हैं, उनमें **क्वचिदन्यदेव** अर्थ का आश्रय लेकर यह तात्पर्य निकाला जाता है।

द्वितीयं कर्षणं करोति- द्वितीयाकरोति। दूसरी बार जोतता है। **द्वितीयं कर्षणं करोति** विग्रह करके **द्वितीय+अम् करोति** इस स्थिति में **कृञो द्वितीयतृतीयशम्बबीजात् कृषौ** सूत्र से डाच्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके डित् के परे रहते टिसंज्ञक भाग अकार का लोप होकर **द्वितीयाकरोति** सिद्ध हो जाता है।

तृतीयं कर्षणं तृतीयाकरोति। तीसरी बार जोतता है। **तृतीयं कर्षणं करोति** विग्रह करके **तृतीय+अम् करोति** इस स्थिति में **कृञो द्वितीयतृतीयशम्बबीजात् कृषौ** सूत्र से डाच्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके डित् के परे रहते टिसंज्ञक भाग अकार का लोप होकर **तृतीयाकरोति** सिद्ध हो जाता है।

शम्बशब्दः प्रतिलोमे। सूत्रोक्त **शम्ब**-शब्द का अर्थ है- प्रतिलोम, उलटा।

अनुलोमं कृष्टं क्षेत्रं पुनः प्रतिलोमं कर्षति, शम्बाकरोति। सीधे जोते गये खेत को पुनः उलटा जोतता है। **शम्बं करोति** विग्रह करके **शम्ब+अम् करोति** इस स्थिति में **कृञो द्वितीयतृतीयशम्बबीजात् कृषौ** सूत्र से डाच्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके डित् के परे रहते टिसंज्ञक भाग अकार का लोप होकर **शम्बाकरोति** सिद्ध हो जाता है।

बीजेन सह कर्षति, बीजा करोति। बीज बोते हुये जोतता है। **बीजेन सह कर्षति** विग्रह करके **बीज+टा करोति** इस स्थिति में **कृञो द्वितीयतृतीयशम्बबीजात् कृषौ** सूत्र से डाच्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके डित् के परे रहते टिसंज्ञक भाग अकार का लोप होकर **बीजाकरोति** सिद्ध हो जाता है।

२१३०. संख्यायाश्च गुणान्तायाः ५।४।५९॥

कृञो योगे कृषौ डाच् स्यात्।

द्विगुणाकरोति क्षेत्रम्। क्षेत्रकर्मकं द्विगुणं कर्षणं करोतीत्यर्थः।

संख्यायाश्च गुणान्तायाः। गुण-शब्दोऽन्ते यस्याः सा गुणान्ता, तस्याः गुणान्तायाः। संख्यायाः पञ्चम्यन्तं, चाव्ययं, गुणान्तायाः पञ्चम्यन्तम्। **कृञो द्वितीयतृतीयशम्बबीजात्**

कृषौ से **कृञः**, **कृषौ** की और **अव्यक्तानुकरणाद्द्व्यजवरार्धादनितौ डाच्** से **डाच्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

संख्या-पूर्वक गुण-शब्दान्त प्रातिपदिक से कृ-धातु के योग में कृषि=कर्षण अभिधेय हो तो डाच् प्रत्यय होता है।

द्विगुणाकरोति क्षेत्रम्। क्षेत्रकर्मकं द्विगुणं कर्षणं करोतीत्यर्थः। खेत की द्विगुणित जुताई करता है अर्थात् क्षेत्र-कर्मक द्विगुणित कर्षण कार्य करता है। **द्विगुणं कर्षणं करोति** विग्रह करके **द्विगुण+अम् करोति** इस स्थिति में **संख्यायाश्च गुणान्तायाः** सूत्र से डाच्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके डित् के परे रहते टिसंज्ञक भाग अकार का लोप होकर **द्विगुणाकरोति** सिद्ध हो जाता है।

२१३१. समयाच्च यापनायाम् ५।४।६०॥

'कृषौ' इति निवृत्तम्। कृञो योगे डाच् स्यात्।
समयाकरोति। कालं यापयतीत्यर्थः।

समयाच्च यापनायाम्। समयात् पञ्चम्यन्तं, यापनायां सप्तम्यन्तम्। **कृञो द्वितीयतृतीयशम्बबीजात् कृषौ** से केवल **कृञः** की और **अव्यक्तानुकरणाद्द्व्यजवरार्धादनितौ डाच्** से **डाच्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है। यहाँ **कृषौ** पद की अनुवृत्ति नहीं है।

यापन करना (बिताना) करना अर्थ गम्यमान हो तो समय-शब्द से कृ-धातु के योग में डाच् प्रत्यय होता है।

समयाकरोति। कालं यापयतीत्यर्थः। यों ही समय नष्ट करता है, केवल कालयापन कर रहा है। **समयं यापयति** विग्रह करके **समय+अम् करोति** इस स्थिति में **समयाच्च यापनायाम्** सूत्र से डाच्-प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् करके डित् के परे रहते टिसंज्ञक भाग अकार का लोप होकर **समयाकरोति** सिद्ध हो जाता है।

२१३२. सपत्रनिष्पत्रादतिव्यथने ५।४।६१॥

सपत्राकरोति मृगम्। सपुङ्खशरप्रवेशनेन सपत्रं करोतीत्यर्थः। निष्पत्राकरोति। सपुङ्खस्य शरस्यापरपार्श्वे निर्गमनान्निष्पत्रं करोतीत्यर्थः। 'अतिव्यथने' किम्? सपत्रं निष्पत्रं वा करोति भूतलम्।

सपत्रनिष्पत्रादतिव्यधने। सपत्रं निष्पत्रं च तयोः समाहारद्वन्द्वः सपत्रनिष्पत्रं, तस्मात् सपत्रनिष्पत्रात् पञ्चम्यन्तम्, अतिव्यथने सप्तम्यन्तम्। **कृञो द्वितीयतृतीयशम्बबीजात् कृषौ** से **कृञः** की और **अव्यक्तानुकरणाद्द्व्यजवरार्धादनितौ डाच्** से **डाच्** की अनुवृत्ति और **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

अतिपीडन अर्थ गम्यमान हो तो सपत्र और निष्पत्र शब्दों से कृ-धातु के योग में डाच् प्रत्यय होता है।

सपत्रा करोति मृगम्। सपुङ्खशरप्रवेशनेन सपत्रं करोतीत्यर्थः। बाण को पूँछ पर लगे परों सहित मृग के शरीर में प्रविष्ट कराकर अतिपीडित करता है। **सपत्रं करोति** विग्रह करके **सपत्र+अम्+करोति** में **सपत्रनिष्पत्रादतिव्यथने** सूत्र से डाच् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोपादि होकर **सपत्राकरोति** सिद्ध होता है।

निष्पत्राकरोति। सपुङ्खस्य शरस्यापरपार्श्वे निर्गमनान्निष्पत्रं करोतीत्यर्थः। मृग को इतने वेग से बाण मारता है (अतिपीड़ित करता है) कि बाण-पंखों के साथ दूसरी ओर निकल जाता है। **निष्पत्रं करोति** विग्रह करके **निष्पत्र+अम्+करोति** में **सपत्रनिष्पत्रादतिव्यथने** सूत्र से डाच् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोपादि होकर **निष्पत्राकरोति** सिद्ध होता है।

'अतिव्यधने' किम्? सपत्रं निष्पत्रं वा करोति भूतलम्। प्रकृत सूत्र में **अतिव्यधने** पद के निवेश से यह बताया गया है कि जहाँ पर अत्यन्त पीड़ित करना अर्थ गम्य हो, वहीं पर डाच् हो, अन्यथा न हो। अतः **सपत्रं करोति भूतलम्** और **निष्पत्रं करोति भूतलम्** में सपत्र-शब्द और निष्पत्र शब्दों से डाच् नहीं हुआ, क्योंकि यहाँ पर अतिपीड़न अर्थ गम्य नहीं है।

२१३३. निष्कुलान्निष्कोषणे ५।४।६२॥

निष्कुला करोति दाडिमम्।

निर्गतं कुलमन्तरवयवानां समूहो यस्मादिति बहुव्रीहेर्डाच्।

निष्कुलान्निष्कोषणे। निष्कुलात् पञ्चम्यन्तं, निष्कोषणे सप्तम्यन्तम्। कृञो द्वितीयतृतीयशम्बबीजात् **कृषौ** से केवल कृञः की और **अव्यक्तानुकरणाद्द्व्यजवरार्धादनितौ डाच्** से **डाच्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

निष्कोषण अर्थ में वर्तमान निष्कुल-शब्द से कृ-धातु के योग में डाच् प्रत्यय होता है।

निष्कोषण-शब्द का अर्थ है- भीतर के अवयवों को कुदेर कर के बाहर निकालना

निष्कुला करोति दाडिमम्। दाडिम (अनार) को इस तरह छीलता है कि उसके भीतर के दाने सब बाहर आ जाते हैं। **निष्कुलं करोति** विग्रह करके **निष्कुल+अम् करोति** इस स्थिति में **निष्कुलान्निष्कोषणे** सूत्र के द्वारा डाच् प्रत्यय होने पर अनुबन्ध लोपादि होकर **निष्कुलाकरोति** सिद्ध हो जाता है।

निर्गतं कुलमन्तरवयवानां समूहो यस्मादिति बहुव्रीहेर्डाच्। यहाँ पर

निष्कुल-शब्द की व्युत्पत्ति बताते हुये कहते हैं कि निकल गये हैं कुल=अन्दर के सभी अवयव जिससे, उसे निष्कुल कहा जाता है, तादृश निष्कुल-शब्द से डाच् प्रत्यय करके निष्कुलाकरोति बनाया गया है।

२१३४. सुखप्रियदानुलोम्ये ५।४।६३॥

सुखाकरोति। प्रियाकरोति गुरुम्। अनुकूलाचरणेनानन्दयतीत्यर्थः।

सुखप्रियदानुलोम्ये। सुखं च प्रियं च तयोः समाहारद्वन्द्वः सुखप्रियं, तस्मात् सुखप्रियात् पञ्चम्यन्तम्, आनुलोम्ये सप्तम्यन्तम्। कृञो द्वितीयतृतीयशम्बबीजात् कृषौ से केवल कृञः की और अव्यक्तानुकरणाद्द्व्यजवरार्धादनितौ डाच् से डाच् की अनुवृत्ति आती है। प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः का अधिकार है।

आनुलोम्ये=अनुकूलता अर्थ में वर्तमान सुख-शब्द और प्रिय शब्द से कृ-धातु के योग में डाच् प्रत्यय होता है।

सुखाकरोति। अनुकूलाचरणेनानन्दयतीत्यर्थः। अनुकूल आचरण से सुख, आनन्द करता है। सुखं करोति विग्रह करके सुख+अम् करोति इस स्थिति में सुखप्रियादानुलोम्ये सूत्र के द्वारा डाच् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोपादि होकर सुखाकरोति सिद्ध हो जाता है।

प्रियाकरोति गुरुम्। अनुकूलाचरणेनानन्दयतीत्यर्थः। अनुकूल आचरण से गुरु को प्रिय, आनन्द करता है। प्रियं करोति विग्रह करके प्रिय+अम् करोति इस स्थिति में सुखप्रियादानुलोम्ये सूत्र के द्वारा डाच् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोपादि होकर प्रियाकरोति सिद्ध हो जाता है।

२१३५. दुःखात् प्रातिलोम्ये ५।४।६४॥

दुःखाकरोति स्वामिनम्। पीडयतीत्यर्थः।

दुःखात् प्रातिलोम्ये। दुःखात् पञ्चम्यन्तं, प्रातिलोम्ये सप्तम्यन्तम्। कृञो द्वितीयतृतीयशम्बबीजात् कृषौ से केवल कृञः की और अव्यक्तानुकरणाद्द्व्यजवरार्धादनितौ डाच् से डाच् की अनुवृत्ति आती है। प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः का अधिकार है।

प्रातिलोम्ये=प्रतिकूलता अर्थ में वर्तमान दुःख-शब्द से कृ-धातु के योग में डाच् प्रत्यय होता है।

दुःखाकरोति स्वामिनम्। पीडयतीत्यर्थः। विपरीत आचरण से स्वामी को पीड़ित करता है। दुःखं करोति विग्रह करके दुःख+अम् करोति इस स्थिति में दुःखात्प्रातिलोम्ये सूत्र के द्वारा डाच् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोपादि होकर दुःखाकरोति सिद्ध हो जाता है।

२१३६. शूलात् पाके ५।४।६५॥

शूलाकरोति मांसम्। शूलेन पचतीत्यर्थः।

शूलात् पाके। शूलात् पञ्चम्यन्तं, पाके सप्तम्यन्तम्। **कृञो द्वितीयतृतीयशम्बबीजात् कृषौ** से केवल **कृञः** की और **अव्यक्तानुकरणाद्द्व्यजवरार्धादनितौ डाच्** से **डाच्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

पाके=पकाना अर्थ गम्य होने पर में वर्तमान शूल-शब्द से कृ-धातु के योग में डाच् प्रत्यय होता है।

शूलाकरोति मांसम्। शूलेन पचतीत्यर्थः। लोहे की सलाई में लगाकर मांस पकाता है। **शूलेन पचति** अर्थ में **शूल+टा करोति** इस स्थिति में **शूलात् पाके** सूत्र के द्वारा डाच् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोपादि होकर **शूलाकरोति** सिद्ध हो जाता है।

२१३७. सत्यादशपथे ५।४।६६॥

सत्याकरोति भाण्डं वणिक्। क्रेतव्यमिति तथ्यं करोतीत्यर्थः।
शपथे तु सत्यं करोति विप्रः।

सत्यादशपथे। न शपथम् अशपथं, तस्मिन् अशपथे, नञ्तत्पुरुषः। सत्यात् पञ्चम्यन्तम्, अशपथे सप्तम्यन्तम्। **कृञो द्वितीयतृतीयशम्बबीजात् कृषौ** से केवल **कृञः** की और **अव्यक्तानुकरणाद्द्व्यजवरार्धादनितौ डाच्** से **डाच्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

अशपथे=शपथ अर्थ गम्य न हो तो सत्य-शब्द से कृ-धातु के योग में डाच् प्रत्यय होता है।

सत्य-शब्द शपथ का भी वाचक है। वैसी स्थिति में यह सूत्र नहीं लगता।

सत्याकरोति भाण्डं वणिक्। क्रेतव्यमिति तथ्यं करोतीत्यर्थः। बर्तन आदि इतने में ही खरीदता है, इस तरह व्यापारी तथ्यांकन करता है। **क्रेतव्यमिति तथ्यं करोति** अर्थ में **सत्य+अम्** इस स्थिति में **सत्यादशपथे** सूत्र से डाच् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोपादि कार्य करके **सत्याकरोति** सिद्ध हो जाता है।

शपथे तु सत्यं करोति विप्रः। शपथ करना अर्थ होने पर तो डाच् नहीं होता, अतः **सत्यं करोति** ही रह जाता है। **सत्यं करोति विप्रः**=ब्राह्मण शपथ लेता है।

२१३८. मद्रात् परिवापणे ५।४।६७॥

मद्रशब्दो मङ्गलार्थः। परिवापणं मुण्डनम्।
मद्राकरोति। माङ्गल्यमुण्डनेन संस्करोतीत्यर्थः।
'भद्राच्चेति वक्तव्यम्' (वा.३३४४)।
भद्राकरोति। अर्थः प्राग्वत्। 'परिवापणे' किम्? भद्रं करोति।
इति स्वार्थिकप्रकरणम्। इति तद्धिताः॥

मद्रात् परिवापणे। मद्रात् पञ्चम्यन्तं, परिवापणे सप्तम्यन्तम्। **कृञो द्वितीयतृतीयशम्बबीजात् कृषौ** से केवल **कृञः** की और **अव्यक्तानुकरणाद्द्व्यज-वरार्धादनितौ डाच्** से **डाच्** की अनुवृत्ति आती है। **प्रत्ययः, परश्च, ङ्याप्प्रातिपदिकात्, तद्धिताः** का अधिकार है।

परिवापणे=मुण्डन अर्थ गम्य होने पर मंगलार्थक मद्र-शब्द से कृ-धातु के योग में डाच् प्रत्यय होता है।

मद्रशब्दो मङ्गलार्थः। परिवापणं मुण्डनम्। सूत्रस्थ **मद्र**-शब्द का मांगल्य अर्थ है और **परिवापण**-शब्द का अर्थ है- मुण्डन।

मद्राकरोति। माङ्गल्यमुण्डनेन संस्करोतीत्यर्थः। मंगलार्थ चौल संस्कार करता है। **माङ्गल्यमुण्डनेन संस्करोति** अर्थ में **मद्र+अम्** इस स्थिति में **मद्रात्परिवापणे** सूत्र से डाच् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोपादि कार्य करके **मद्राकरोति** सिद्ध हो जाता है।

भद्राच्चेति वक्तव्यम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- परिवापणे=मुण्डन अर्थ गम्य होने पर मंगलार्थक भद्र-शब्द से भी कृ-धातु के योग में डाच् प्रत्यय होता है।

भद्राकरोति। अर्थः प्राग्वत्। अर्थात् **भद्राकरोति** का भी अर्थ है- मंगलार्थ चौल संस्कार करता है। **माङ्गल्यमुण्डनेन संस्करोति** अर्थ में ही **भद्र+अम्** इस स्थिति में **भद्राच्चेति वक्तव्यम्** वार्तिक से डाच् प्रत्यय होने पर अनुबन्धलोपादि कार्य करके **भद्राकरोति** सिद्ध हो जाता है।

'परिवापणे' किम्? भद्रं करोति। प्रकृत सूत्र में **परिवापणे** पद का निवेश होने से मंगलार्थ चौलकर्म अर्थ गम्य होने पर ही यह डाच् प्रत्यय होता है, अन्यथा नहीं होता। अतः **भद्रं करोति** में डाच् प्रत्यय नहीं हुआ, क्योंकि यहाँ **भद्र**-शब्द से केवल मंगलार्थ का बोध तो हो रहा है किन्तु उससे परिवापण=मांगलिक चौलकर्म (क्षौरकर्म) विवक्षित नहीं है।

इति तद्धिताः। यहाँ **तद्धिताः** सूत्र के अधिकार में विहित प्रत्ययों में समासान्त कुछ प्रत्ययों को छोड़कर अन्य सभी प्रत्ययों का विवेचन पूर्ण हो जाता है। यद्यपि सूत्रकार ने समासान्त प्रत्ययों को भी तद्धित माना है तथापि कौमुदीकार ने तत्तत् समासप्रकरणों के अन्तर्गत बहुत से प्रत्ययों का समावेश कर दिया है और एक अलग समासान्तप्रकरण

बनाकर शेष समासान्त प्रत्ययों का विवेचन कर चुके हैं। अष्टाध्यायीक्रम में **मद्रात् परिवापणे** (५.४.६७) के बाद **समासान्ताः** (५.४.६८) सूत्र आता है। यहाँ से प्रारम्भ करके चतुर्थ पाद की समाप्ति तक डच्, अ, अच्, टच्, षच्, अप्, असिच्, अनिच्, इच् ये प्रत्यय और अनङादेश, निङादेश, इकारान्तादेश, अन्त्यलोप, दतृ-आदेश, कुछ निपातन तथा कप् प्रत्यय ये कार्य होते हैं।

श्री भट्टोजिदीक्षित द्वारा विरचित वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी की
गोविन्दाचार्य कृत श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी टीका में
तद्धित-स्वार्थिक-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ द्विरुक्तप्रकरणम्

अब अष्टाध्यायीस्थ अष्टमाध्याय का द्वित्व-प्रकरण प्रारम्भ होता है। छठे अध्याय में भी द्वित्व-प्रकरण है, किन्तु उसका निरूपण इस प्रकरण में नहीं है।

२१३९. सर्वस्य द्वे ८।१।१॥

इत्यधिकृत्य।

सर्वस्य द्वे। सर्वस्य षष्ठ्यन्तं, द्वे प्रथमान्तम्। यह अधिकार सूत्र है।

यहाँ से लेकर पदस्य (८.१.१६) तक जो विधान होता है, वह सबके स्थान पर द्वित्व होता है।

इत्यधिकृत्य। यह अधिकार सूत्र है और आगे के सूत्रों में इसके अधिकार से अर्थ बनाया जाता है। अर्थात् आगे के सूत्रों में **सर्वस्य द्वे** की उपस्थिति से सब का द्वित्व होता जायेगा। जैसे कि अगले सूत्र **नित्यवीप्सयोः** सूत्र का अर्थ होगा- नित्यता तथा वीप्सा अर्थ में सबको अर्थात् पूरे शब्द को द्वित्व होता है। नित्यार्थ में द्वित्व होने पर- **पचति पचति** (सदा पकाता रहता है) में **पचति** का दो बार प्रयोग किया गया। इसी तरह वीप्सार्थ में द्वित्व होने पर **ग्रामो ग्रामो रमणीयः** (प्रत्येक गाँव सुन्दर है) में **ग्रामः** को द्वित्व हुआ है। दो बार उच्चारण करने को द्वित्व कहते हैं। द्वित्वयुक्त समुदाय में स्थानिवद्भाव से पदत्व बना रहता है। अतः **अग्रेऽग्रे** में पदत्व के कारण **एङः पदान्तादति** सूत्र से पूर्वरूप हो जाता है और **वृक्षान् वृक्षान्** में णत्व का निषेध हो जाता है।

२१४०. नित्यवीप्सयोः ८।१।४॥

आभीक्ष्ण्ये वीप्सायां च द्योत्ये पदस्य द्विर्वचनं स्यात्। आभीक्ष्ण्यं तिङन्तेष्वव्ययसञ्ज्ञककृदन्तेषु च। पचति पचति। भुक्त्वा भुक्त्वा। वीप्सायाम्- वृक्षं वृक्षं सिञ्चति। ग्रामो ग्रामो रमणीयः।

नित्यवीप्सयोः। नित्यं च वीप्सा च तयोरितरेतरयोगद्वन्द्वो नित्यवीप्से, तयोः नित्यवीप्सयोः सप्तम्यन्तम्। **सर्वस्य द्वे** का अधिकार है।

नित्यता=आभीक्ष्ण्य और वीप्सा अर्थ द्योत्य होने पर पद को द्वित्व होता है।

यहाँ **नित्यता** का तात्पर्य **आभीक्ष्य** अर्थात् **पौनःपुन्य** से है। यद्यपि सूत्रकार ने यहाँ पर **नित्य** शब्द का व्यवहार **आभीक्ष्ण्य** अर्थ में किया है, फिर भी इन अर्थों में यत्किञ्चित् अन्तर विद्यमान है। **आभीक्ष्ण्य** से **क्रिया की आवृत्ति** प्रतीत होती है तो **नित्यता में क्रिया के अविच्छेद** की प्रतीति है। **वीप्सा** का अर्थ है **व्याप्ति** अर्थात् सम्पूर्णतया सम्बन्ध। इस तरह सूत्र का स्वारस्य होगा- पौनःपुन्य और सम्पूर्णतया सम्बन्ध अर्थों में एक पद के स्थान पर उसी अर्थ वाले और स्वरूप वाले दो पदों का समुदाय रूप आदेश होता है।

आभीक्ष्ण्यं तिङन्तेष्वव्ययसञ्ज्ञककृदन्तेषु च। यहाँ आभीक्ष्ण्य अर्थात् नित्यता तिङन्त और अव्ययसंज्ञक कृदन्तों में होगी।

पचति पचति। बार-बार पकाता है अर्थात् जब तक ठीक से पक न जाय, तब तक पकाता ही रहता है। **पचति** तिङन्त पद है। यहाँ आभीक्ष्ण्य रूप नित्यता द्योतित होने के कारण सम्पूर्ण पद का **नित्यवीप्सयोः** सूत्र से द्वित्व होकर **पचति पचति** बन गया है और द्वित्व होने के बाद भी दोनों में पदत्व विद्यमान रहता है। यह तिङन्त का उदाहरण है।

भुक्त्वा भुक्त्वा। खा-खा कर। यहाँ **भुज पालनाभ्यवहारयोः** (भुज्) धातु से **आभीक्ष्ण्ये णमुल्च** (३.४.२२) सूत्र से **क्त्वा** प्रत्यय होने के बाद जकार को कुत्व और उसको चर्त्व ककार होकर **भुक्त्वा** बना है। इसकी **क्त्वातोसुन्कसुनः** (१.१.३९) सूत्र से अव्ययसंज्ञा होती है। **कृदतिङ्** सूत्र से कृत्संज्ञक तो है ही। अतः **भुक्त्वा** यह कृत्संज्ञक अव्यय है। यहाँ आभीक्ष्ण्य रूप नित्यता द्योतित होने के कारण सम्पूर्ण पद का **नित्यवीप्सयोः** सूत्र से द्वित्व होकर **भुक्त्वा भुक्त्वा** बन गया है। यह कृदन्त अव्यय का उदाहरण है।

वीप्सायाम्। अब वीप्सार्थ के उदाहरण दिये जा रहे हैं। विद्यमान सभी पदार्थों में क्रिया तथा गुण की व्याप्ति कहने की इच्छा को एक साथ कहने की इच्छा **वीप्सा** कही जाती है।

वृक्षं वृक्षं सिञ्चति। प्रत्येक वृक्ष को सींचता है। यहाँ पर सभी वृक्षों को सींचने की क्रिया बतायी गयी। अतः **वृक्षम्** इस सुबन्त पद का **नित्यवीप्सयोः** सूत्र से द्वित्व होकर **वृक्षं वृक्षं सिञ्चति** बन जाता है।

वीप्सा का पर्याय व्याप्ति है तथा व्याप्ति प्रतिपादन करने वाले कर्ता की इच्छा-स्वरूप है। यह इच्छा भी सापेक्ष है। अतः **वृक्षं वृक्षं सिञ्चति** से संसार-भर के वृक्षों का सेचन असम्भव होने के कारण उक्त अर्थ बोधित न होकर अपेक्षित वाटिका, खेत आदि के समस्त वृक्षों का सेचन अभीष्ट होता है। प्रतिवृक्षगत एकत्व भासित होने

से बहुवचन के प्रयोग की आशंका भी नहीं की जा सकती। दो-बार उच्चरित **वृक्षम्-वृक्षम्** समुदायात्मक शब्द की प्रातिपदिकसंज्ञा की भी सम्भावना का निवारण **कृत्तद्धितसमासाश्च** की व्याख्या में किया जा चुका है। उक्त सूत्र में **समास**-पद का ग्रहण नियमार्थ माना गया है अर्थात् जिस पद-समूह का पूर्वभाग पद हो और तादृश पदसमुदाय की प्रातिपदिकसंज्ञा हो तो केवल समास में ही हो, अन्यत्र न हो, यह उक्त नियम का स्वरूप है। इसके फलस्वरूप **वृक्षं वृक्षम्** इस समुदाय की प्रातिपदिक संज्ञा नहीं होती, अन्यथा प्रथम-पद की विभक्ति का **सुपो धातुप्रातिपकयोः** से लुक् हो जाता।

ग्रामो ग्रामो रमणीयः। प्रत्येक गाँव रमणीय है। यहाँ पर भिन्न-भिन्न गाँवों के रमणीयता-गुण को एक साथ कहा गया है। अतः **ग्रामः** इस सुबन्त पद का **नित्यवीप्सयोः** सूत्र से द्वित्व होकर **ग्रामो ग्रामो रमणीयः** बन जाता है।

२१४१. परेर्वर्जने ८।१।५॥

परि परि वङ्गेभ्यो वृष्टो देवः। वङ्गान् परिहृत्येत्यर्थः।
'परेर्वर्जने वावचनम्' (वा.४६८३)। परि वङ्गेभ्यः।

परेर्वर्जने। परेः षष्ठ्यन्तं, वर्जने सप्तम्यन्तम्। **सर्वस्य द्वे** का अधिकार है।

वर्जन=छोड़ना अर्थ में विद्यमान परि-शब्द का द्वित्व होता है।

परि परि वङ्गेभ्यो वृष्टो देवः। वङ्गान् परिहृत्येत्यर्थः। बंगाल को छोड़कर चारों ओर वर्षा हुयी। यहाँ पर **परि** शब्द छोड़कर अर्थ में विद्यमान है। अतः **परेर्वर्जने** सूत्र से द्वित्व होकर **परि परि वङ्गेभ्यः वृष्टो देवः** वाक्य बन गया है। यहाँ **परि** शब्द की **अपपरी वर्जने** (१.४.८७) सूत्र से कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है और उसके योग में **वङ्ग**-शब्द से **पञ्चम्यपाङ्परिभिः** (२.३.१०) सूत्र से पञ्चमी विभक्ति हो जाती है।

परेर्वर्जने वावचनम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- वर्जनार्थ में विद्यमान परि-शब्द को जो द्वित्व किया जाता है, उसे वैकल्पिक मानना चाहिये।

परि वङ्गेभ्यः। उपर्युक्त वार्तिक से द्वित्व को वैकल्पिक कर दिये जाने के फलस्वरूप एक पक्ष में द्वित्व नहीं भी होता- **परि वङ्गेभ्यो वृष्टो देवः**। अर्थ पूर्ववत् ही है।

२१४२. उपर्यध्यधसः सामीप्ये ८।१।७॥

उपर्युपरि ग्रामम्। ग्रामस्योपरिष्टात् समीपे देशे इत्यर्थः।
अध्यधि सुखम्। सुखस्योपरिष्टात्समीपकाले दुःखमित्यर्थः।
अधोऽधो लोकम्। लोकस्याधस्तात् समीपे देशे इत्यर्थः।

उपर्यध्यधसः सामीप्ये। उपरिश्च अधिश्च अधस् च तेषां समाहारद्वन्द्वः- उपर्यध्यधस्, तस्य उपर्यध्यधसः षष्ठ्यन्तं, सामीप्ये सप्तम्यन्तम्। **सर्वस्य द्वे** अधिकृत है।

सामीप्य अर्थ द्योतित होने पर उपरि, अधि और अधस् को द्वित्व होता है।

उपरि, अधि, अधस् ये तीनों शब्द अव्यय हैं।

उपर्युपरि ग्रामम्। ग्रामस्योपरिष्टात् समीपे देशे इत्यर्थः। गाँव के ऊपर समीप का प्रदेश। यहाँ **उपरि** शब्द ऊपरी समीपवर्ती प्रदेश का द्योतक है। अतः **उपरि** शब्द का **उपर्यध्यधसः सामीप्ये** सूत्र से द्वित्व होने पर उपरि+उपरि बना। यण् होकर **उपर्युपरि** बन गया है। इसके योग में ग्राम-शब्द में **उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु। द्वितीयाम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते।।** इस वार्तिक से द्वितीया विभक्ति हुयी है। उक्त वार्तिक में **उपर्यादिषु त्रिषु** अंश से प्रकृत सूत्रोक्त उपरि, अधि, अधस् का ही ग्रहण है।

अध्यधि सुखम्। सुखस्योपरिष्टात्समीपकाले दुःखमित्यर्थः। सुख के बाद समीप काल में ही दुःख है। यहाँ **अधि** शब्द समीपवर्ती काल का द्योतक है। अतः **अधि** शब्द की **उपर्यध्यधसः सामीप्ये** सूत्र से द्वित्व होने पर अधि+अधि बना। यण् होकर **अध्यधि** बन गया है। यहाँ पर भी पूर्ववत् वार्तिक से सुख-शब्द में द्वितीया विभक्ति हुयी है।

अधोऽधो लोकम्। लोकस्याधस्तात् समीपे देशे इत्यर्थः। लोक के नीचे समीपवर्ती देश में। यहाँ **अधस्** शब्द समीपवर्ती देश का द्योतक है। अतः **अधस्**-शब्द की **उपर्यध्यधसः सामीप्ये** सूत्र से द्वित्व होने पर अधस्+अधस् बना है। पूर्वसकार को रुत्व और उसको **हशि च** सूत्र से उत्त्व होने पर गुण होकर अधो+अधस् बन जाता है। **एङः पदान्तादति** से पूर्वरूप और द्वितीय पद के सकार को रुत्व तथा उसको विसर्ग होकर **अध्यधः** सिद्ध हो जाता है। यहाँ पर भी पूर्ववत् वार्तिक से लोक-शब्द में द्वितीया विभक्ति हुयी है।

उपर्युक्त उदाहरणों में प्रथम और तृतीय में देशतः सामीप्य है और द्वितीय में कालतः सामीप्य।

२१४३. वाक्यादेरामन्त्रितस्यासूयासम्मतिकोपकुत्सनभर्त्सनेषु ८।१।८।।

असूयायाम्- सुन्दर सुन्दर वृथा ते सौन्दर्यम्।
सम्मतौ- देव देव वन्द्योऽसि।
कोपे- दुर्विनीत दुर्विनीत इदानीं ज्ञास्यसि।
कुत्सने- धानुष्क धानुष्क वृथा ते धनुः।
भर्त्सने- चोर चोर घातयिष्यामि त्वाम्।

वाक्यादेरामन्त्रितस्यासूयासम्मतिकोपकुत्सनभर्त्सनेषु। वाक्यस्यादिर्वाक्यादिस्तस्य वाक्यादेः, षष्ठीतत्पुरुषः। असूया च सम्मतिश्च कोपश्च कुत्सनं च भर्त्सनञ्च

तेषामितरेतरयोगद्वन्द्वः- असूयासम्मतिकोपकुत्सनभर्त्सनानि, तेषु असूयासम्मतिकोपकुत्सनभर्त्सनेषु। वाक्यादेः षष्ठ्यन्तम्, आमन्त्रितस्य षष्ठ्यन्तम्, असूयासम्मतिकोपकुत्सनभर्त्सनेषु सप्तम्यन्तम्। सर्वस्य द्वे का अधिकार है।

वाक्य के आदि में जो आमन्त्रित पद है, उसको द्वित्व होता है, यदि वाक्य से असूया, सम्मति, कोप, कुत्सन और भर्त्सन अर्थ गम्यमान हो तो।

सामन्त्रितम् (२.३.४८) सूत्र से सम्बोधनान्त पद की आमन्त्रित संज्ञा होती है।

असूयायाम्। पहले असूयार्थ का उदाहरण दिया जा रहा है। गुणों में दोषों का अन्वेषण करना असूया है अर्थात् दूसरे गुणों को न सह पाने की स्थिति असूया है।

सुन्दर सुन्दर वृथा ते सौन्दर्यम्। हे सुन्दर! तुम्हारा सौन्दर्य बेकार है। यहाँ असूया अर्थ द्योतित होने के कारण आमन्त्रितसंज्ञक **सुन्दर** शब्द का द्वित्व हुआ है।

सम्मतौ। अब सम्मति अर्थ का उदाहरण दिया जा रहा है। यहाँ पर सम्मति-शब्द से सत्कार अभिप्रेत है।

देव देव वन्द्योऽसि। हे देव! आप वन्दनीय हैं। यहाँ सम्मति=सत्कार अर्थ द्योतित होने के कारण आमन्त्रितसंज्ञक देव शब्द का द्वित्व हुआ है।

कोपे। अब कोपार्थ का उदाहरण दिया जा रहा है। क्रोध ही कोप है।

दुर्विनीत दुर्विनीत इदानीं ज्ञास्यसि। हे दुर्विनीत (दुष्ट)! अभी तू जानेगा। यहाँ कोप अर्थ द्योतित होने के कारण आमन्त्रितसंज्ञक **दुर्विनीत** शब्द का द्वित्व हुआ है।

कुत्सने। अब कुत्सनार्थ का उदाहरण दिया जा रहा है। निन्दा को कुत्सन कहते हैं।

धानुष्क धानुष्क वृथा ते धनुः। अरे धनुर्धर! तुम्हारा धनु बेकार है। यहाँ निन्दा अर्थ द्योतित होने के कारण आमन्त्रितसंज्ञक **धानुष्क** शब्द का द्वित्व हुआ है।

भर्त्सने। अब भर्त्सनार्थ का उदाहरण दिया जा रहा है। डराने-धमकाने को भर्त्सन कहा गया है।

चोर चोर घातयिष्यामि त्वाम्। अरे चोर! अभी तुझे मार डालूँगा। यहाँ भर्त्सन अर्थ द्योतित होने के कारण आमन्त्रितसंज्ञक **चोर** शब्द का द्वित्व हुआ है।

उपर्युक्त सभी उदाहरणों में आमन्त्रितसंज्ञक पद वाक्य के आदि में स्थित है। अतः शब्दों का द्वित्व हो गया है। सर्वत्र असूयादि अर्थों में द्वित्व किये गये पूर्व वाले पद को **स्वरितमाम्रेडितेऽसूयासम्मतिकोपकुत्सनेषु** (८.२.१०३) सूत्र से प्लुत स्वर होता है। केवल भर्त्सन अर्थ में **आम्रेडितं भर्त्सने** (८.२.९५) सूत्र से द्वितीय आमन्त्रित (आम्रेडित) को प्लुत उदात्त होता है।

२१४४. एकं बहुव्रीहिवत् ८।१।९॥

द्विरुक्त एकशब्दो बहुव्रीहिवत् स्यात्।

तेन सुब्लोपपुंवद्भावौ। एकैकमक्षरम्। इह द्वयोरपि सुपोर्लुकि कृते बहुव्रीहिवद्भावादेव प्रातिपदिकत्वात् समुदायात् सुप्। एकैकया आहुत्या। इह पूर्वभागे पुंवद्भावादवग्रहे विशेषः। 'न बहुव्रीहौ' (सू.२२२) इत्यत्र पुनर्बहुव्रीहिग्रहणं मुख्यबहुव्रीहिलाभार्थम्। तेनातिदिष्टबहुव्रीहौ सर्वनामतास्त्येवेति प्राञ्चः। वस्तुतस्तु भाष्यमते प्रत्याख्यातमेतत्। सूत्रमतेऽपि बहुव्रीह्यर्थेऽलौकिके विग्रहे निषेधकम्, न तु बहुव्रीहावितीहातिदेशशङ्कैव नास्ति। एकैकस्मै देहि।

एकं बहुव्रीहिवत्। बहुव्रीहेरिव बहुव्रीहिवत्। एकं प्रथमान्तं, बहुव्रीहिवत् अव्ययम्।

द्वित्व किये हुये एक-शब्द को बहुव्रीहि के समान कार्य होता है।

यह अतिदेश सूत्र है। अतः **बहुव्रीहि**-शब्द से इवार्थ में **वति** प्रत्यय हुआ है। द्वित्व हो जाने पर एक शब्द को बहुव्रीहिवद्भाव होता है और उसे बहुव्रीहि के समान मानकर कार्य किया जाता है। यह केवल **एक**-शब्द के लिये है।

तेन सुब्लोपपुंवद्भावौ। बहुव्रीहिवद्भाव हो जाने के कारण समासप्रयुक्त प्रातिपदिकसंज्ञा होकर **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** सूत्र से सुप् का लुक् और बहुव्रीहिप्रयुक्त पुंवद्भाव भी किया जाता है। बहुव्रीहिसमास में स्त्रीलिंग को पुंवद्भाव करने वाला सूत्र है- **स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु (६.३.३२)।**

एकैकमक्षरम्। इह द्वयोरपि सुपोर्लुकि कृते बहुव्रीहिवद्भावादेव प्रातिपदिकत्वात् समुदायात् सुप्। एक एक अक्षर, प्रत्येक अक्षर। यहाँ पर **एकम्** शब्द का **नित्यवीप्सयोः** सूत्र से वीप्सार्थ में द्वित्व होकर **एकम्+एकम्** बना है। **एकं बहुव्रीहिवत्** सूत्र से बहुव्रीहिवद्भाव हो जाने पर उक्त समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** सूत्र से प्रातिपदिकसंज्ञा हो जाती है और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** सूत्र से दोनों सुपों का लुक् होकर **एक+एक** बन जाता है। वृद्धि एकादेश होकर **एकैक** शब्द बन गया है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **एकैकम्** सिद्ध हो जाता है। यहाँ यह शंका हो सकती है कि **कृत्तद्धितसमासाश्च** का **समास**-शब्द नियमार्थ है और उसके अनुसार **यत्र संघाते पूर्वो भागः पदं तस्य चेद्भवति तर्हि समासस्यैव** (जिस पद-समुदाय में पूर्वभाग पद हो, उस समुदाय की प्रातिपदिकसंज्ञा होती है तो केवल समास की ही हो, अन्य की न हो) के अनुसार यहाँ **एकैक** शब्द प्रातिपदिक तो है नहीं, क्योंकि **एकम्+एकम्** में समास तो हुआ नहीं है? इस प्रश्न का समाधान करते हुये मूलकार कहते हैं कि- **एकैक** शब्द को बहुव्रीहिवद्भाव हो जाने के कारण ही **एकैक** शब्द में प्रातिपदिकत्व रहता है। अतः उक्त **एकैक** समुदाय से दुबारा सुप् प्रत्यय होता है, न कि प्रत्येक शब्द से।

एकैकया आहुत्या। इह पूर्वभागे पुंवद्भावादवग्रहे विशेषः। एक एक आहुति के द्वारा। यहाँ पर **एका** शब्द को **नित्यवीप्सयोः** सूत्र से वीप्सार्थ में द्वित्व होकर **एक+एका** बना है। इसका **एकं बहुव्रीहिवत्** सूत्र से बहुव्रीहिवद्भाव हो जाने पर उक्त समुदाय की **कृत्तद्धितसमासाश्च** सूत्र से प्रातिपदिकसंज्ञा हो जाती है और **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** सूत्र से दोनों सुपों का लुक् होकर **एका+एका** बन जाता है। बहुव्रीहिवद्भाव हो जाने से वृद्धि एकादेश होने के पूर्व ही **एका+एक** के पूर्वशब्द को **स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु** सूत्र के द्वारा **पुंवद्भाव** होकर **एक+एका** बनता है, उसके बाद वृद्धि एकादेश होकर **एकैका** शब्द बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **एकैका** सिद्ध हो जाता है। उसके तृतीयैकवचन में **एकैकया** बनता है। यहाँ यह शंका हो सकती है कि **एका+एका** और **एक+एका** दोनों जगह वृद्धि होकर **एकैका** ही बनता है तो पुंवद्भाव करने का प्रयोजन क्या है? इस प्रश्न का समाधान करते हुये मूलकार कहते हैं कि- यद्यपि पुंवद्भाव होने और न होने में रूप में कोई भेद नहीं आता तथापि वैदिक पद-क्रम आदि पाठों में अवग्रह की स्थिति में पूर्वभाग **एक-एकया** होना चाहिये, वह **एका-एकया** होने लगेगा, जो अनिष्ट है। इस तरह इस अतिदेश के दो फल दिखाये गये- एक तो सुप् का लुक् और दूसरा पुंवद्भाव। एक तीसरा भी फल है, वह यह कि बहुव्रीहिवद्भाव होने से पूर्वपद-प्रकृतिस्वर हो जाता है।

'न बहुव्रीहौ' इत्यत्र पुनर्बहुव्रीहिग्रहणं मुख्यबहुव्रीहिलाभार्थम्। तेनातिदिष्ट-बहुव्रीहौ सर्वनामतास्त्येवेति प्राञ्चः। बहुव्रीहिसमास होने पर सर्वनामसंज्ञा-निषेधक सूत्र है- **न बहुव्रीहौ** (१.१.२९)। वहाँ यह कहा गया है कि **विभाषा दिक्समासे बहुव्रीहौ** सूत्र से बहुव्रीहौ की अनुवृत्ति सम्भव होने पर भी पुनः **न बहुव्रीहौ** सूत्र में जो **बहुव्रीहौ** पद का निवेश किया गया है, उसका विशेष प्रयोजन है। वह प्रयोजन यह है कि जहाँ साक्षात् बहुव्रीहिसमासविधायक सूत्र से बहुव्रीहिसमास (मुख्यबहुव्रीहिसमास) हुआ हो, वहीं पर ही सर्वनामसंज्ञा का निषेध हो, किन्तु जहाँ बहुव्रीहिवद्भाव के अतिदेश से बहुव्रीहि मान लिया गया है, वहाँ सर्वनामसंज्ञा का निषेध न हो। तात्पर्य यह है कि प्रधान बहुव्रीहि में ही सर्वनामसंज्ञा का निषेध होगा, न कि आरोपित बहुव्रीहि में। अतः अतिदिष्ट बहुव्रीहि में सर्वनामता रहती है अर्थात् **न बहुव्रीहौ** सूत्र से निषेध नहीं होता। यह प्राचीन आचार्यों का मत है।

वस्तुतस्तु भाष्यमते प्रत्याख्यातमेतत्। वास्तव में भाष्यकार ने तो **न बहुव्रीहौ** सूत्र का ही प्रत्याख्यान (खण्डन) कर दिया है। तदनुसार यहाँ सर्वनामसंज्ञा के निषेध की आशंका ही नहीं उठती।

सूत्रमतेऽपि बहुव्रीह्यर्थेऽलौकिके विग्रहे निषेधकम्, न तु बहुव्रीहाविती-हातिदेशशङ्कैव नास्ति। सूत्रकार के मत में यद्यपि सर्वनामसंज्ञा का निषेध होना माना गया

है, तथापि वह निषेध विशेष स्थिति में होता है। तदनुसार बहुव्रीहि-समासार्थ जो अलौकिक विग्रहवाक्य है, तद्घटक सर्वादि की सर्वनामसंज्ञा नहीं होती, न कि बहुव्रीहिसमास होने के बाद समस्त पद की, क्योंकि समास होने पर तो समास-घटक सर्व आदि का अर्थ विशेषण के रूप में बदल जाता है। अतः उपसर्जनीभूत होने से वे स्वतः सर्वनाम नहीं माने जाते- **संज्ञोपसर्जनीभूतास्तु न सर्वादयः**। तब तो सूत्र ही व्यर्थ हो जायेगा। अतः यहाँ पर बहुव्रीहिपद तादर्थ्य में माना जाता है, अर्थात् बहुव्रीहिपद समास-घटक अलौकिक-विग्रह-परक है। अतः अतिदेश के विषय में निषेध की शंका का अवसर ही नहीं है। अतः-

एकैकस्मै देहि। एक-एक को दो। यहाँ **एकः** को द्वित्व होकर बहुव्रीहिवद्भाव होने के बाद प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक्, वृद्धि होकर एकैक बनने के बाद सर्वनामता स्वीकार करके चतुर्थी एकवचन ङे के स्थान पर **सर्वनाम्नः स्मै** सूत्र से स्मै आदेश होकर **एकैकस्मै** सिद्ध हो जाता है।

२१४५. आबाधे च ८।१।१०॥

पीडायां द्योत्यायां द्वे स्तो बहुव्रीहिवच्च।

गतगतः। विरहात् पीड्यमानस्येयमुक्तिः। बहुव्रीहिवद्भावात् सुब्लुक्। गतगता। इह पुंवद्भावः।

आबाधे च। आबाधे सप्तम्यन्तं, चाव्ययम्। **एकं बहुव्रीहिवत्** से **बहुव्रीहिवत्** की अनुवृत्ति आती है और **सर्वस्य द्वे** का अधिकार है।

पीडा अर्थ द्योत्य होने पर पद को द्वित्व होता है और उसको बहुव्रीहिवद्भाव भी होता है।

गतगतः। विरहात् पीड्यमानस्येयमुक्तिः। बहुव्रीहिवद्भावात् सुब्लुक्। चला गया, वह चला गया (समय बीत गया)। यह किसी प्रिय व्यक्ति के विरह में पीड़ित व्यक्ति की उक्ति है। यहाँ प्रयोक्ता के कथन में **आबाध**=पीड़ा द्योतित हो रहा है। अतः **गतः** शब्द को **आबाधे च** सूत्र से द्वित्व हो जाता है और द्वित्वावस्थापन्न स्थिति में बहुव्रीहिवद्भाव भी हो जाता है। उसके कारण प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **गतगत** बन गया है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **गतगतः** सिद्ध हो जाता है।

गतगता। इह पुंवद्भावः। दुःख है कि वह चली गयी। यह किसी प्रिया व्यक्ति के विरह में पीड़ित व्यक्ति की उक्ति होने के कारण **आबाध**=पीड़ा द्योतित हो रहा है। अतः स्त्रीलिंग **गता** शब्द को **आबाधे च** सूत्र से द्वित्व हो जाता है और द्वित्वावस्थापन्न स्थिति में बहुव्रीहिवद्भाव भी हो जाता है। उसके कारण प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् तो होता ही है साथ ही **स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे**

स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु सूत्र से पुंवद्भाव होकर **गतगता** बन गया है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्य होकर **गतगता** सिद्ध हो जाता है।

२१४६. कर्मधारयवदुत्तरेषु ८।१।११॥

इह उत्तरेषु द्विर्वचनेषु कर्मधारयवत् कार्यम्।

'प्रयोजनं सुब्लोपपुंवद्भावान्तोदात्तत्वानि' (वा.४६८९)।

कर्मधारयवदुत्तरेषु। कर्मधारयस्य इव कर्मधारयवत् अव्ययम्, उत्तरेषु सप्तम्यन्तम्।

यहाँ से आगे द्विर्वचन करने में कर्मधारय समास के समान कार्य होता है, ऐसा जानना चाहियें।

यह भी अतिदेश सूत्र है। इसे कार्यातिदेश मानना चाहिये। कर्मधारयवद्भाव के प्रयोजन अगले वार्तिक के द्वारा बताये जा रहे हैं।

प्रयोजनं सुब्लोपपुंवद्भावान्तोदात्तत्वानि। यह भाष्यवार्तिक है। वार्तिकार्थः- कर्मधारयवद्भाव का प्रयोजन है- सुप् का लोप, पुंवद्भाव और अन्तोदात्तत्व। **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** से सुप् का लुक् होता है, **पुंवत्कर्मधारयजातीयदेशीयेषु** सूत्र से स्त्रीलिंग को पुंवद्भाव होता है और **समासस्य** सूत्र से समास में विधीयमान अन्तोदात्त होता है। इसके उदाहरण आगे दिये जा रहे हैं।

२१४७. प्रकारे गुणवचनस्य ८।१।१२॥

सादृश्ये द्योत्ये गुणवचनस्य द्वे स्तस्तच्च कर्मधारयवत्।

'कर्मधारयवदुत्तरेषु-' (सू.२१४६) इत्यधिकारात्। तेन पूर्वभागस्य पुंवद्भावः 'समासस्य'(सू.३७३४) इत्यन्तोदात्तत्वं च। पटुपट्वी। पटुपटुः। पटुसदृशः, ईषत्पटुरिति यावत्। गुणोपसर्जनद्रव्यवाचिनः केवलगुणवाचिनश्चेह गृह्यन्ते। शुक्लशुक्लं रूपम्। शुक्लशुक्लः पटः।

'आनुपूर्व्ये द्वे वाच्ये'(वा.४६९२)। मूले मूले स्थूलः।

'संभ्रमेण प्रवृत्तौ यथेष्टमनेकधा प्रयोगो न्यायसिद्धः'(वा.५०५६)।

सर्पः सर्पः बुध्यस्व बुध्यस्व। सर्पः सर्पः सर्पः, बुध्यस्व बुध्यस्व बुध्यस्व।

'क्रियासमभिहारे च' (वा.४६९५)। लुनीहि लुनीहीत्येवायं लुनाति।

'नित्यवीप्सयोः' (सू.२१४०) इति सिद्धे भृशार्थे द्वित्वार्थमिदम्।

पौनःपुन्येऽपि लोटा सह समुच्चित्य द्योतकतां लब्धुं वा।

'कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे वाच्ये, समासवच्च बहुलम्' (वा.४७००)।

बहुलग्रहणादन्यपरयोर्न समासवत्। इतरशब्दस्य तु नित्यम्।

'असमासवद्भावे पूर्वपदस्थस्य सुपः सुर्वक्तव्यः।' (वा.४७००)।

अन्योन्यं विप्रा नमन्ति। अन्योन्यौ अन्योन्यान्। अन्योन्येन कृतम्। अन्योन्यस्मै दत्तमित्यादि। 'अन्योन्येषां पुष्करैरामृशन्तः' इति माघः। एवं परस्परम्। अत्र कस्कादित्वाद्विसर्गस्य सः। इतरेतरम्। इतरेतरेणेत्यादि।

'स्त्रीनपुंसकयोरुत्तरपदस्थाया विभक्तेराम्भावो वा वक्तव्यः'(वा.४७०१)। अन्योन्याम्, अन्योन्यम्। परस्पराम्, परस्परम्। इतरेतराम्, इतरेतरं वा इमे ब्राह्मण्यौ कुले वा भोजयतः। अत्र केचित्- आमादेशो द्वितीयाया एव, भाष्यादौ तथैवोदाहृतत्वात्। तेन स्त्रीनपुंसकयोरपि तृतीयादिषु पुंवदेव रूपमित्याहुः। अन्ये तूदाहरणस्य दिङ्मात्रत्वात्सर्वविभक्तीनामामादेशमाहुः।

''दलद्वये टाबभावः क्लीबे चाद्ङ्विरहः स्वमोः।
समासे सोरलुक्चेति सिद्धं बाहुलकात्त्रयम्।।''

तथाहि- अन्योन्यं परस्परमित्यत्र दलद्वयेऽपि टाप्प्राप्तः। न च 'सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे-'(वा.) इति पुंवद्भावः, अन्यपरयोरसमासवद्भावात्। न च द्विर्वचनमेव वृत्तिः। 'यां यां प्रियः प्रैक्षत कातराक्षी सा सा' इत्यादावतिप्रसङ्गात्। अन्योन्यमितरेतरम् इत्यत्र च 'अद्ङ्डतरादिभ्यः-' (सू.३१५) इत्यद्ङ् प्राप्तः। 'अन्योन्यसंसक्तमहस्त्रियामम्' अन्योन्याश्रयः' 'परस्पराक्षिसादृश्यम्' 'अपरस्परैः' इत्यादौ सोर्लुक्च प्राप्तः सर्वं बाहुलकबलेन समाधेयम्।

प्रकृतवार्तिकभाष्योदाहरणम्- 'स्त्रियाम्' (सू.४५३) इति सूत्रे 'अन्योन्यसंश्रयम् त्वेतद्' इति भाष्यं चात्र प्रमाणमिति।

प्रकारे गुणवचनस्य। प्रकारे सप्तम्यन्तं, गुणवचनस्य षष्ठ्यन्तम्। **सर्वस्य द्वे** का अधिकार है और **कर्मधारयवदुत्तरेषु** से **कर्मधारयवत्** की अनुवृत्ति आती है।

सादृश्य-रूप प्रकारार्थ द्योत्य होने पर गुणवाची शब्द को द्वित्व होता है तथा उक्त द्विरुक्त को कर्मधारयवद्भाव भी होता है।

'कर्मधारयवदुत्तरेषु-' इत्यधिकारात्। प्रकृत सूत्र में पूर्वसूत्र से **कर्मधारयवत्** का अधिकार आने से यह सूत्र कर्मधारयवद्भाव के साथ द्वित्व भी करता है। सूत्र में **प्रकार**-शब्द सादृश्यार्थ में प्रयुक्त हुआ है।

तेन पूर्वभागस्य पुंवद्भावः 'समासस्य' इत्यन्तोदात्तत्वं च। प्रकृतसूत्र से कर्मधारयवद्भाव हो जाने पर **पुंवत् कर्मधारयजातीयदेशीयेषु** सूत्र से स्त्रीलिंग को पुंवद्भाव होता है और **समासस्य** सूत्र के द्वारा समस्त पद को अन्तोदात्त भी।

पटुपट्वी। स्त्री पटु सदृश स्त्री। **पट्वी** यह ङीबन्त शब्द है। इसको **प्रकारे गुणवचनस्य** सूत्र से द्वित्व के साथ कर्मधारयवद्भाव हो जाता है। इसके फलस्वरूप प्रातिपदिकसंज्ञा होकर सुप् की निवृत्ति तो हो ही जाती है, साथ ही पूर्व **पट्वी** को **पुंवत्**

कर्मधारयजातीयदेशीयेषु सूत्र से पुंवद्भाव हो जाता है, जिससे ङीप् की निवृत्ति होकर **पटुपट्वी** शब्द बनता है। पुंल्लिंग में तो-

पटुपटुः। पटुसदृशः, ईषत्पटुरिति यावत्। पटु के समान अर्थात् थोड़ा पटु। **पटुः** को द्वित्व होने पर कर्मधारयवद्भाव होने से सुप् का लुक् होकर **पटुपटु** शब्द बनता है। पुनः **पटुपटु** इस समुदाय में स्वादिकार्य से **पटुपटुः** सिद्ध हो जाता है।

गुणोपसर्जनद्रव्यवाचिनः केवलगुणवाचिनश्चेह गृह्यन्ते। सूत्रोक्त **गुणवचन** शब्द से गुणविशिष्ट गुणी (द्रव्यवाची) और केवल गुणवाची दोनों का ग्रहण किया गया है। जैसे कि **सफेद वस्त्र** कहने पर सफेद गुण वाले गुणी वस्त्र का ग्रहण होता है तो **सफेद** मात्र कहने से केवल गुण मात्र का ग्रहण होता है।

शुक्लशुक्लं रूपम्। शुक्लशुक्लः पटः। यहाँ पर दो वाक्य हैं। पहले वाक्य का अर्थ है- थोड़ा सफेद रूप और दूसरे वाक्य का अर्थ है- कुछ कुछ सफेद वस्त्र। पहले वाक्य में **शुक्ल** शब्द केवल गुणवाची है तो दूसरे वाक्य में गुण से युक्त गुणी वस्त्र का वाचक शुक्ल-शब्द है। अतः उभयत्र **प्रकारे गुणवचनस्य** सूत्र से द्वित्व के साथ कर्मधारयवद्भाव होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा, सुप् का लुक् होकर **शुक्लशुक्ल** बना है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्व के अक्षुण्ण रहने के कारण स्वादिकार्य होता है। **रूपम्** विशेष्य होने पर नपुंसक होकर **शुक्लशुक्लम्** और **पटः** विशेष्य होने पर पुंल्लिंग में शुक्लशुक्लः बने हैं।

आनुपूर्व्ये द्वे वाच्ये। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- आनुपूर्व्य=क्रमशः होना अर्थ होने पर तद्वाचक शब्द को द्वित्व होता है।

मूले मूले स्थूलः। क्रमशः प्रत्येक जड़ मोटी होती गयी है। यहाँ जड़ के वाचक सप्तम्यन्त **मूले** पद का **आनुपूर्व्ये द्वे वाच्ये** वार्तिक से द्वित्व हो गया है- **मूले मूले स्थूलः।** द्वित्व होने पर भी एकपद बने रहना यह संकेत है कि वार्तिक में **कर्मधारयवत्** का सम्बन्ध नहीं है, अन्यथा प्रातिपदिकसंज्ञा होकर विभक्ति का लोप होता और **मूलमूले** ऐसा बन जाता। दूसरी बात यह भी है कि यहाँ **वीप्सा** आदि अर्थ न होने के कारण **नित्यवीप्सयोः** से द्वित्व प्राप्त नहीं था, अतः प्रकृत वार्तिक की सार्थकता होती है।

सम्भ्रमेण प्रवृत्तौ यथेष्टमनेकधा प्रयोगो न्यायसिद्धः। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- सम्भ्रम=घबराहट से प्रवृत्ति अर्थ बोध्य होने पर शब्द का यथेष्टद्वित्व=पर्याप्त द्वित्व अर्थात् दो बार, तीन बार, चार बार प्रयोग होता है, यह न्याय=लौकिक व्यवहार से सिद्ध है।

सर्पः सर्पः बुध्यस्व बुध्यस्व। अरे! सर्प, सर्प है- जागो, जागो। यहाँ पर सर्प देख कर घबराया हुआ व्यक्ति दूसरे को सावधान कर रहा है। अतः सम्भ्रमेण प्रवृत्ति है। फलतः **सर्पः** का भी और **बुध्यस्व** पद का भी **सम्भ्रमेण प्रवृत्तौ यथेष्टमनेकधा प्रयोगो न्यायसिद्धः** वार्तिक से द्वित्व हो गया है।

सर्पः सर्पः सर्पः, बुध्यस्व बुध्यस्व बुध्यस्व। अरे! सर्प, सर्प सर्प- जागो, जागो, जागो। यहाँ पर भी सर्प देख कर घबराया हुआ व्यक्ति दूसरे को सावधान कर रहा है। अतः सम्भ्रमेण प्रवृत्ति है। फलतः **सर्पः** का भी और **बुध्यस्व** पद का भी **सम्भ्रमेण प्रवृत्तौ यथेष्टमनेकधा प्रयोगो न्यायसिद्धः** वार्तिक से दो-दो आर द्वित्व हो गया है अर्थात् त्रित्व हो गया है। इसी प्रकार अनेक बार भी प्रयोग करना साधु ही माना जाता है। भाषा भावबोध के लिये होती है। अतः सर्पादि के दिखायी पड़ने के कारण उत्पन्न घबराहट में जितनी बार कहने से श्रोता को बोध हो और उसकी प्राणरक्षा हो, उतनी बार उच्चरित शब्दों की आवृत्ति करना व्याकरणसंगत ही माना गया है। उपर्युक्त दोनों उदाहरणों में यह दिखाया गया है कि यहाँ **कर्मधारयवत्** का सम्बन्ध नहीं है। अतः **सर्पः सर्पः सर्पः** में सुप् का लुक् नहीं हुआ है।

क्रियासमभिहारे च। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- क्रियासमभिहार में भी क्रियापद को द्वित्व होता है। समभिहार के दो अर्थ हैं- पौनःपुन्य (बार-बार) और भृश (अत्यधिक, अतिशय)। पौनःपुन्य (आभीक्ष्ण्य) अर्थ में तो **नित्यवीप्सयोः** सूत्र से द्वित्व का विधान किया जा चुका है किन्तु प्रकृत वार्तिक केवल **भृश** अर्थ में ही क्रियापद को द्वित्व करता है।

लुनीहि लुनीहीत्येवायं लुनाति। काटो-काटो कहकर अधिक काटता है। यहाँ पर क्रिया की भृशता द्योतित हो रही है। **लुनीहि** यह लोडन्त क्रियापद है। **लूञ् छेदने** (**लू**) धातु से **क्रियासमभिहारे लोट् लोटो हिस्वौ वा च तध्वमोः** (३.४.२) सूत्र से लोट्-लकार और उसके स्थान पर **हि** आदेश होने पर **क्र्यादिभ्यः श्ना** सूत्र से **श्ना** विकरण होकर **लू+ना+हि** बना है। **प्वादीनां ह्रस्वः** (७.३.८०) सूत्र से **लू** के ऊकार को ह्रस्व और **ई हल्यघोः** (६.४.११३) सूत्र से **ना** के आकार को ईकार आदेश होकर **लुनीहि** रूप बना है। उसी का **क्रियासमभिहारे च** वार्तिक से द्वित्व होकर **लुनीहि-लुनीहि** बना है। आगे **इति एव अयं लुनाति** भाग को जोड़ा गया है।

'नित्यवीप्सयोः' इति सिद्धे भृशार्थे द्वित्वार्थमिदम्। उसमें भी **लोट्** लकार के साथ ही क्रियासमभिहार-द्योतकता प्राप्त करने के लिये प्रकृत वार्तिक आवश्यक है। अथवा-

पौनःपुन्येऽपि लोटा सह समुच्चित्य द्योतकतां लब्धुं वा। पौनःपुन्य अर्थ में भी लोट्-लकार के साथ समुच्चय दिखाने के लिये अर्थात् पौनःपुन्य में लोट् का भी द्वित्व होता है, यह दिखाने के लिये भी यह वार्तिक सार्थक माना जा सकता है।

कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे वाच्ये, समासवच्च बहुलम्। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- कर्मव्यतिहार=क्रियाविनिमय द्योत्य रहने पर सर्वनामसंज्ञक शब्दों को द्वित्व होता है और बहुल से समासवद्भाव भी होता है। समासवद्भाव हो जाने से प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् हो जाता है। **बहुलम्** का अन्वय **समासवत्** के साथ है। द्वित्व तो नित्य ही होता है।

बहुलग्रहणादन्यपरयोर्न समासवत्। इतरशब्दस्य तु नित्यम्। प्रकृत वार्तिक में **बहुलम्** पद अभीष्टसिद्धि के लिये है। अतः इष्टप्रयोगानुसार **अन्य** और **पर** शब्दों में समासवद्भाव नहीं होता। जबकि **इतर** शब्द का तो नित्य से ही समासवद्भाव और द्वित्व होता है। इसके उदाहरण अगले वार्तिक में दिखाये गये हैं।

उपर्युक्त वार्तिक में **बहुल**-शब्द का तात्पर्य यह हुआ कि **अन्य** और **पर** शब्द को नित्य से द्वित्व होता है किन्तु समासवद्भाव नहीं होता।

असमासवद्भावे पूर्वपदस्थस्य सुपः सुर्वक्तव्यः। यह भी वार्तिक है। समासवद्भाव न होने के पक्ष में पूर्वपदस्थ सुप्=सातों विभक्तियों के स्थान पर **सु** (प्रथमा-विभक्ति का एकवचन) आदेश होता है।

यह द्वित्वादि विधान प्रथमा-एकवचन के लिये ही है, ऐसा कुछ लोगों का मानना है किन्तु यह मत ठीक नहीं है, क्योंकि वह भाष्यविरुद्ध है। महाभाष्य में द्वितीयादि विभक्तियों के उदाहरण दिये गये हैं। जैसे कि-

अन्योन्यं विप्रा नमन्ति। ब्राह्मण लोग एक-दूसरे को प्रणाम करते हैं। यहाँ क्रियासमभिहार अर्थ का द्योतन हो रहा है। अतः **अन्यम्** इस द्वितीयैकवचनान्त पद का **कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे वाच्ये, समासवच्च बहुलम्** से नित्य से द्वित्व होता है। अन्य-शब्द को समासवद्भाव नहीं होता, यह बात पहले बतायी जा चुकी है। इस तरह अन्यम्+अन्यम् बन जाने के बाद पूर्वपद **अन्यम्** में विद्यमान द्वितीयैकवचन **अम्** के स्थान पर असमासवद्भावे पूर्वपदस्थस्य सुपः सुर्वक्तव्यः वार्तिक से **सु** आदेश होने पर उकार की इत्संज्ञा होकर अन्यस्+अन्यम् बना है। सकार को **ससजुषो रुः** से रुत्व होने पर रेफ के स्थान पर **अतो रोरप्लुतादप्लुते** सूत्र से उत्व होने पर **आद्गुणः** सूत्र से गुण होकर अन्यो+अन्यम् बन जाता है और **एङः पदान्तादति** सूत्र से पूर्वरूप होकर **अन्योन्यम्** प्रयोग बन गया है।

अन्योन्यौ विप्रा नमन्ति। ब्राह्मण लोग एक-दूसरे को प्रणाम करते हैं। **अन्यौ** इस द्वितीया-द्विवचनान्त पद का **कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे वाच्ये, समासवच्च बहुलम्** से नित्य से द्वित्व होता है। इस तरह **अन्यौ+अन्यौ** बन जाने के बाद पूर्वपद **अन्यौ** में विद्यमान द्वितीया-द्विवचन **औ** के स्थान पर **असमासवद्भावे पूर्वपदस्थस्य सुपः सुर्वक्तव्यः** वार्तिक से **सु** आदेश होने पर उकार की इत्संज्ञा होकर **अन्यस्+अन्यौ** बना है। शेषकार्य पूर्ववत् करके **अन्योन्यौ** प्रयोग बन गया है।

अन्योन्यान् विप्रा नमन्ति। ब्राह्मण लोग एक-दूसरे को प्रणाम करते हैं। **अन्यान्** इस द्वितीया-बहुवचनान्त पद का **कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे वाच्ये, समासवच्च बहुलम्** से नित्य से द्वित्व होता है। इस तरह **अन्यान्+अन्यान्** बन जाने के बाद पूर्वपद **अन्यान्** में विद्यमान द्वितीया-बहुवचन **शस्** के स्थान पर **असमासवद्भावे पूर्वपदस्थस्य सुपः सुर्वक्तव्यः** वार्तिक से **सु** आदेश होने पर उकार की इत्संज्ञा होकर **अन्यस्+अन्यान्** बना है। शेषकार्य पूर्ववत् करके **अन्योन्यान्** प्रयोग बन गया है।

उपर्युक्त तीनों उदाहरण द्वितीया के हैं। प्रथमा में इसी तरह प्रयोग बनते हैं। **अन्योन्यो गच्छति, अन्योन्यौ गच्छतः, अन्योन्याः गच्छन्ति** इत्यादि। अब तृतीयान्त और चतुर्थ्यन्त का उदाहरण दे रहे हैं। यह ध्यान रहे कि 'द्वित्वादि कार्य केवल प्रथमा एकवचन का ही विषय है' ऐसा मानने वालों का खण्डन करते हुये मूलकार अन्य विभक्तियों का उदाहरण यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं।

अन्योन्येन कृतम्। एक दूसरे के द्वारा किया गया। **अन्येन** इस तृतीया-एकवचनान्त पद का **कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे वाच्ये, समासवच्च** बहुलम् से नित्य से द्वित्व होता है। इस तरह **अन्येन+अन्येन** बन जाने के बाद पूर्वपद **अन्येन** में विद्यमान तृतीया-एकवचन **टा** के स्थान पर **असमासवद्भावे पूर्वपदस्थस्य सुपः सुर्वक्तव्यः** वार्तिक से **सु** आदेश होने पर उकार की इत्संज्ञा होकर **अन्यस्+अन्येन** बना है। शेषकार्य पूर्ववत् करके **अन्योन्येन** प्रयोग बन गया है।

अन्योन्यस्मै दत्तमित्यादि। एक दूसरे को दिया गया। **अन्यस्मै** इस चतुर्थी-एकवचनान्त पद का **कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे वाच्ये, समासवच्च बहुलम्** से नित्य से द्वित्व होता है। इस तरह **अन्यस्मै+अन्यस्मै** बन जाने के बाद पूर्वपद **अन्यस्मै** में विद्यमान चतुर्थी-एकवचन **स्मै** (**ङे**) के स्थान पर **असमासवद्भावे पूर्वपदस्थस्य सुपः सुर्वक्तव्यः** वार्तिक से **सु** आदेश होने पर उकार की इत्संज्ञा होकर **अन्यस्+अन्यस्मै** बना है। शेषकार्य पूर्ववत् करके **अन्योन्यस्मै** प्रयोग बन गया है। **इत्यादि** पद से **अन्योन्यस्मात् भीतः, अन्योन्यस्य कार्यम्, अन्योन्यस्मिन् विश्वासः** इत्यादि प्रयोग भी समझने चाहिये।

अब आगे षष्ठी में द्वित्वादिकार्य तथा सु-आदेश के प्रमाण में महाकवि माघ का प्रयोग दिखा रहे हैं-

'अन्योन्येषां पुष्करैरामृशन्तः' इति माघः। एक दूसरे की सूँड़ से एक दूसरे को सहलाते हुये। यह महाकवि माघ के काव्य का प्रयोग है। यहाँ **अन्येषाम्** इस षष्ठी-बहुवचनान्त पद का **कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे वाच्ये, समासवच्च बहुलम्** से नित्य से द्वित्व होता है। इस तरह **अन्येषाम्+अन्येषाम्** बन जाने के बाद पूर्वपद **अन्येषाम्** में विद्यमान षष्ठीबहुवचन **आम्** के स्थान पर **असमासवद्भावे पूर्वपदस्थस्य सुपः सुर्वक्तव्यः** वार्तिक से **सु** आदेश होने पर **अन्यस्+अन्येषाम्** बना है। शेषकार्य पूर्ववत् करके **अन्योन्येषाम्** प्रयोग बन गया है।

यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि **अन्योन्यम्** इत्यादि में समासवद्भाव न होने के कारण एक पद न होकर पृथक्-पृथक पद हैं। प्रथम-पद **अन्यो** और द्वितीयपद **अन्यम्, अन्येन** इत्यादि समझना चाहिये।

एवं परस्परम्। अत्र कस्कादित्वाद्विसर्गस्य सः। जिस तरह से **अन्योन्य** शब्द की सिद्धि ऊपर दिखायी गयी है, उसी तरह से **परस्पर** शब्द की भी सिद्धि करनी चाहिये। जैसे कि **परस्परं विप्रा नमन्ति।** ब्राह्मण लोग एक-दूसरे को प्रणाम करते हैं। यहाँ

क्रियासमभिहार अर्थ का द्योतन हो रहा है। अतः **परम्** इस द्वितीयैकवचनान्त पद का **कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे वाच्ये, समासवच्च बहुलम्** से नित्य से द्वित्व होता है। पर-शब्द को भी समासवद्भाव नहीं होता, यह बात पहले बतायी जा चुकी है। इस तरह **परम्+परम्** बन जाने के बाद पूर्वपद **परम्** में विद्यमान द्वितीयैकवचन **अम्** के स्थान पर **असमासवद्भावे पूर्वपदस्थस्य सुपः सुर्वक्तव्यः** वार्तिक से **सु** आदेश होने पर **परस्+परम्** बना है। सकार को रुत्व और उसको विसर्ग होकर **परः+परम्** बन जाने के बाद इस शब्द का कस्कादिगण में पाठ होने के कारण विसर्ग के स्थान पर **कस्कादिषु च** सूत्र से सकार आदेश होकर **परस्परम्** प्रयोग बन जाता है। इसी तरह **परस्परः, परस्परेण, परस्परस्मै, परस्परस्मात्, परस्परस्य, परस्परेषाम्, परस्परस्मिन्** इत्यादि अन्य विभक्तियों और द्विवचन तथा बहुवचन में भी समझना चाहिये।

इतरेतरम् (विप्रा नमन्ति)। इतरेतरेणेत्यादि। ब्राह्मण लोग एक-दूसरे को प्रणाम करते हैं। यहाँ क्रियासमभिहार अर्थ का द्योतन हो रहा है। अतः **इतरम्** इस द्वितीयैकवचनान्त पद का **कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे वाच्ये, समासवच्च बहुलम्** से नित्य से द्वित्व भी होता है और समासवद्भाव भी। इतर-शब्द को नित्य से समासवद्भाव होता है, यह बात पहले बतायी जा चुकी है। समासवद्भाव होने पर प्रातिपदिकसंज्ञा और दोनों सुपों का लुक् होकर **इतर+इतर** बन जाता है। समासवद्भाव होने के फलस्वरूप **असमासवद्भावे पूर्वपदस्थस्य सुपः सुर्वक्तव्यः** वार्तिक से **सु** आदेश नहीं हो पायेगा। इसके बाद **इरत+इतर** में गुण होकर **इतरेतर** बन गया है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्व को अक्षुण्ण मानकर स्वादिकार्य होते हैं और सातों विभक्तियों के सभी वचन आते हैं। मूलकार ने द्वितीयैकवचन का रूप दिया है- **इतरेतरम्** और तृतीयैकवचन का रूप दिया है- **इतरेतरेण।**

स्त्रीनपुंसकयोरुत्तरपदस्थाया विभक्तेराम्भावो वा वक्तव्यः। यह भी वार्तिक है। वार्तिकार्थः- क्रियाविनिमय द्योत्य होने पर स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग में विद्यमान **अन्य, पर, इतर** शब्दों में उत्तरपदस्थ सभी विभक्तियों के स्थान पर **आम्** आदेश विकल्प से होता है।

उपर्युक्त वार्तिक के उदाहरण के रूप में मूलकार जो वाक्य दिये हैं, उसके छह वाक्य बनते हैं। तदनुसार नीचे रूपसिद्धि दिखायी जा रही है।

अन्योन्याम्, अन्योन्यम् इमे ब्राह्मण्यौ भोजयतः। ये दोनों ब्राह्मणियाँ एक दूसरे को भोजन कराती हैं। यहाँ **अन्य** शब्द के स्त्रीलिंग में द्वितीयैकवचन **अन्याम्** पद का **कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे वाच्ये, समासवच्च बहुलम्** से नित्य से द्वित्व होता है। अन्य-शब्द को समासवद्भाव नहीं होता, यह बात पहले बतायी जा चुकी है। इस तरह **अन्याम्+अन्याम्** बन जाने के बाद पूर्वपद **अन्याम्** में विद्यमान द्वितीयैकवचन **अम्** के स्थान पर **असमासवद्भावे पूर्वपदस्थस्य सुपः सुर्वक्तव्यः** वार्तिक से **सु** आदेश होकर **अन्यास्+अन्याम्** बना है। आगे **दलद्वये टाबभावः** कहा जा रहा है। उसके अनुसार

प्रकृतवार्तिक के उदाहरणों में स्त्रीलिंग में टाप् का अभाव होता है अर्थात् पहले ही विहित टाप् की निवृत्ति हो जाती है, जिससे **अन्यस्+अन्य+अम्** बन जाता है। पूर्वपद के सकार को रुत्व होने पर उसको उत्त्व और गुण होकर **अन्योन्य+अम्** बन जाता है। रेफ के स्थान पर **अतो रोरप्लुतादप्लुते** सूत्र से उत्व होने पर **आद्गुणः** सूत्र से गुण होकर **अन्यो+अन्यम्** बन जाता है और **एङः पदान्तादति** सूत्र से पूर्वरूप होकर **अन्योन्यम्** बन गया है। **स्त्रीनपुंसकयोरुत्तरपदस्थाया विभक्तेराम्भावो वा वक्तव्यः** वार्तिक से **अम्** के स्थान पर विकल्प से **आम्** आदेश होने पर सवर्णदीर्घ होकर **अन्योन्याम्** प्रयोग बन गया है। आम्-आदेश न होने के पक्ष में **अन्योन्यम्** बनता है। इस तरह **अन्योन्याम्** और **अन्योन्यम्** ये दो प्रयोग स्त्रीलिंग में बन गये हैं।

अन्योन्याम्, अन्योन्यम् इमे कुले भोजयतः। ये दोनों कुल एक दूसरे को भोजन कराते हैं। यहाँ नपुंसकलिंग का उदाहरण दिया जा रहा है। नपुंसकलिंग के **अन्य**-शब्द से विहित **सु** और **अम्** के स्थान पर **अद्ड्डतरादिभ्यः पञ्चभ्यः** सूत्र से **अद्ड्** आदेश होने के कारण प्रथमैकवचन और द्वितीयैकवचन में **अन्यत्** ऐसा पद बन जाता है। यहाँ उक्त द्वितीयैकवचनान्त **अन्यत्** पद का **कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे वाच्ये, समासवच्च बहुलम्** से नित्य से द्वित्व होता है। इस तरह **अन्यत्+अन्यत्** बन जाने के बाद पूर्वपद **अन्यत्** में विद्यमान द्वितीयैकवचन **अम्** (**अद्**) के स्थान पर **असमासवद्भावे पूर्वपदस्थस्य सुपः सुर्वक्तव्यः** वार्तिक से **सु** आदेश होकर **अन्यस्+अन्यत्** बना है। पूर्वपद के सकार को रुत्वादि होकर **अन्योन्यत्** बन गया है। **स्त्रीनपुंसकयोरुत्तरपदस्थाया विभक्तेराम्भावो वा वक्तव्यः** वार्तिक से **अम्** (**अद्**) के स्थान पर विकल्प से **आम्** आदेश होने पर सवर्णदीर्घ होकर **अन्योन्याम्** प्रयोग बन गया है। आम्-आदेश न होने के पक्ष में आगे बताये जाने वाले **दलद्वये टाबभावः क्लीबे चाद्ड्विरहः स्वमोः** के अनुसार **अद्ड्** आदेश की निवृत्ति हो जाने के कारण **अन्योन्यम्** बनता है। इस तरह **अन्योन्याम्** और **अन्योन्यम्** ये दो प्रयोग नपुंसकलिंग में बन गये हैं।

परस्पराम्, परस्परम् इमे ब्राह्मण्यौ भोजयतः। ये दोनों ब्राह्मणियाँ एक दूसरे को भोजन कराती हैं। यहाँ **पर** शब्द के स्त्रीलिंग में द्वितीयैकवचन **पराम्** पद का पूर्ववत् द्वित्व, सु आदेश, विकल्प से अमादेश आदि करके **परस्पराम्** और **परस्परम्** रूप बन जाते हैं।

परस्पराम्, परस्परम् इमे कुले भोजयतः। ये दोनों कुल एक दूसरे को भोजन कराते हैं। यहाँ **पर** शब्द के नपुंसकलिंग में द्वितीयैकवचन **परम्** पद का पूर्ववत् द्वित्व, सु आदेश, विकल्प से आमादेश आदि करके **परस्पराम्** और **परस्परम्** रूप बन जाते हैं।

इतरेतराम्, इतरेतरं इमे ब्राह्मण्यौ भोजयतः। ये दोनों ब्राह्मणियाँ एक दूसरे को भोजन कराती हैं। यहाँ **इतर** शब्द के स्त्रीलिंग में द्वितीयैकवचन **इतराम्** पद का पूर्ववत्

द्वित्व, सु आदेश का अभाव, विकल्प से आमादेश आदि करके **इतरेतराम्** और **इतरेतरम्** रूप बन जाते हैं।

इतरेतराम्, इतरेतरं इमे कुले भोजयतः। ये दोनों कुल एक दूसरो के भोजन कराते हैं। यहाँ **इतर** शब्द के नपुंसकलिंग में द्वितीयैकवचन **इतरत्** पद का पूर्ववत् द्वित्व, सु आदेश का अभाव, विकल्प से आमादेश आदि करके **इतरेतराम्** और **इतरेतरम्** रूप बन जाते हैं।

अत्र केचित्- आमादेशो द्वितीयाया एव, भाष्यादौ तथैवोदाहृतत्वात्। तेन स्त्रीनपुंसकयोरपि तृतीयादिषु पुंवदेव रूपमित्याहुः। यहाँ कुछ आचार्य आमादेशविधायक उपर्युक्त वार्तिक के सम्बन्ध में कहते हैं कि यह केवल द्वितीया का ही विषय है, अन्य विभक्तियों के स्थान पर आमादेश नहीं होता, क्योंकि भाष्य में केवल द्वितीया के उदाहरण दिये गये हैं। अतः स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग में भी तृतीयादि-विभक्तियों में पुंवत् ही रूप होते हैं।

अन्ये तूदाहरणस्य दिङ्मात्रत्वात्सर्वविभक्तीनामामादेशमाहुः। उनसे भिन्न आचार्यों का तो मत है कि भाष्य में जो केवल द्वितीया का उदाहरण दिया गया है, वह निर्देश (दिग्दर्शन) मात्र है अर्थात् उदाहरण मात्र है। वास्तव में सभी विभक्तियों के स्थान पर उपर्युक्त वार्तिक से आमादेश होता है।

उपर्युक्त **बाहुल्य** के प्रभाव को समष्टि रूप में एक कारिका के द्वारा संकलित किया गया है-

दलद्वये टाबभावः क्लीबे चाद्ङ्विरहः स्वमोः।

समासे सोरलुक्चेति सिद्धं बाहुलकात्त्रयम्।। अर्थात् दोनों दल=पूर्वखण्ड और उत्तरखण्ड में टाप्-प्रत्यय का अभाव, नपुंसकलिंग में भी सु और अम् के स्थान पर **अद्ङ्** आदेश का न होना तथा समासवद्भाव होने पर भी प्रत्यय का लुक् न होना ये तीनों कार्य बाहुलक से सिद्ध होते हैं।

तथाहि। अन्योन्यं परस्परमित्यत्र दलद्वयेऽपि टाप्प्राप्तः। जैसे कि प्रकृत कारिका के द्वारा उपर्युक्त उदाहरणों की संगति दिखाते हुए कह रहे हैं- **अन्योन्यम्** और **परस्परम्** इन प्रयोगों के स्त्रीलिंग में **अन्याम्+अन्याम्** तथा **पराम्+पराम्** में टाप् है और उसका श्रवण भी प्राप्त हो रहा था, सो **कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे वाच्ये समासवच्च बहुलम्** वार्तिक के **बहुलम्** पद के कारण टाप् की निवृत्ति हो जाती है।

न च 'सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे-'इति पुंवद्भावः, अन्यपरयोरसमासवद्भावात्। यहाँ पर यह भी नहीं कहा जा सकता कि **सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः** से पुंवद्भाव हो जाने से टाप् की निवृत्ति हो जायेगी, क्योंकि **अन्य** और **पर** शब्द के विषय में समासवद्भाव नहीं होता, यह बात बतायी गयी है। समासवद्भाव न होने से वृत्ति नहीं मानी जायेगी। समासादि को ही वृत्ति कहते हैं और समास न होने के कारण वृत्ति भी नहीं है। फलतः वृत्तिमात्र में होने वाला पुंवद्भाव भी नहीं होगा।

न च द्विर्वचनमेव वृत्तिः। 'यां यां प्रियः प्रैक्षत कातराक्षी सा सा' इत्यादावतिप्रसङ्गात्। अर्थात् द्वित्व को ही वृत्ति नहीं मानी जा सकती, क्योंकि **अकथितं च (१.४.५१)** सूत्र के भाष्य में प्रयुक्त **कारकं चेद् विजानीयाद् यां यां मन्येत सा भवेत्** इस वाक्य में भाष्यकार ने **यां याम्** प्रयोग में पुंवद्भाव नहीं किया है। भाष्यकार के इस व्यवहार से द्वित्व को वृत्ति नहीं मान सकते। अतः महाकवि माघ ने भी अपने काव्य में **यां यां प्रियः प्रैक्षत कातराक्षी सा सा ह्रिया नम्रमुखी बभूव** प्रयोग किया है अर्थात् पुंवद्भाव से रहित **याम् याम्** का प्रयोग किया है। इस तरह उपर्युक्त कारिका के **दलद्वये टाबभावः** का विवेचन हुआ। अब **क्लीबे चाद्ङ्विरहः स्वमोः** का विवेचन कर रहे हैं-

अन्योन्यमितरेतरम् इत्यत्र च 'अद्ङतरादिभ्यः-' इत्यद्ङ् प्राप्तः। अर्थात् नपुंसकलिंग में सु और अम् के स्थान पर **अद्ङ्डतरादिभ्यः पञ्चभ्यः** सूत्र से जो अद्ङ् आदेश होता है, वह **आमादेशाभावपक्ष** में भी प्राप्त था, उसकी भी **कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे वाच्ये समासवच्च बहुलम्** वार्तिक के **बहुलम्** पद के कारण निवृत्ति हो जाती है।

अब कारिका के उत्तरार्ध का विवेचन कर रहे हैं-

'अन्योन्यसंसक्तमहस्त्रियामम्' अन्योन्याश्रयः' 'परस्पराक्षिसादृश्यम्' 'अपरस्परैः' इत्यादौ सोर्लुक्च प्राप्तः। अर्थात् उपर्युक्त शिष्ट-प्रयोगों के **अन्योन्य. अन्योन्याश्रय, परस्पर, अपस्परैः** इत्यादि में समास होने पर सु का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** सूत्र से लुक् प्राप्त था, उसका भी **कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे वाच्ये समासवच्च बहुलम्** वार्तिक के **बहुलम्** पद के कारण अभाव हो जाता है।

सर्वं बाहुलकबलेन समाधेयम्। अर्थात् उपर्युक्त तीनों जगहों पर (टाप् की निवृत्ति, नपुंसकलिंग में अद्ङ् आदेश की निवृत्ति और समास में सु के लोप की निवृत्ति) **कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे वाच्ये समासवच्च बहुलम्** वार्तिक के **बहुलम्** पद से ही समाधान करना चाहिये।

प्रकृतवार्तिकभाष्योदाहरणम्, 'स्त्रियाम्' इति सूत्रे 'अन्योन्यसंश्रयम् त्वेतद्' इति भाष्यं चात्र प्रमाणमिति। अर्थात् प्रकृत **कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे वाच्ये समासवच्च बहुलम्** वार्तिक का उदाहरण **स्त्रियाम्** सूत्र के भाष्य में **अन्योन्यसंश्रयं त्वेतद्** इस रूप में मिलता है अर्थात् भाष्यकार ने द्वित्व, सु आदेश आदि से युक्त **अन्योन्य** शब्द का प्रयोग किया है, वही उक्त वार्तिक के प्रमाण के रूप में समझना चाहिये।

२१४८. अकृच्छ्रे प्रियसुखयोरन्यतरस्याम् ८।१।१३॥

प्रियप्रियेण ददाति। प्रियेण वा। सुखसुखेन ददाति। सुखेन वा। द्विर्वचने कर्मधारयवद्भावात् सुपि लुकि तदेव वचनम्। अतिप्रियमपि वस्त्वनायासेन ददातीत्यर्थः।

अकृच्छ्रे प्रियसुखयोरन्यतरस्याम्। न कृच्छ्रम् अकृच्छ्रं, तस्मिन् अकृच्छ्रे। प्रियं च सुखं च प्रियसुखे तयोः प्रियसुखयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः। अकृच्छ्रे सप्तम्यन्तं, प्रियसुखयोः षष्ठ्यन्तम्, अन्यतरस्यां विभक्तिप्रतिरूपकमव्ययम्। **कर्मधारयवदुत्तरेषु** सूत्र से **कर्मधारयवत्** की अनुवृत्ति आती है और **सर्वस्य द्वे** का अधिकार है।

अकृच्छ्र=दुःख न होना अर्थ गम्यमान होने पर प्रिय और सुख शब्दों को विकल्प से द्वित्व होता है और उक्त द्विरुक्त स्वरूप में कर्मधारयवद्भाव भी होता है।

अन्यतरस्याम् का सम्बन्ध द्वित्व के साथ है, क्योंकि द्विरुक्त न होने पर तो कर्मधारयवद्भाव की कोई आवश्यकता ही नहीं है, अतः विकल्प का सम्बन्ध भी नहीं है।

प्रियप्रियेण ददाति। प्रियेण वा। अत्यन्त निर्धन होने पर भी कोई वस्तु अनायास (आसानी) से देता है। यहाँ अनायास ही देना अर्थ गम्य होने के कारण यही अकृच्छ्र माना जाता है। **प्रियेण** इस पद का **अकृच्छ्रे प्रियसुखयोरन्यतरस्याम्** सूत्र से विकल्प से द्वित्व होने पर उसका कर्मधारयवद्भाव भी इसी सूत्र से हो जाता है। कर्मधारयवद्भाव होने के कारण समास मानकर प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **प्रियप्रिय** बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्व को अक्षुण्ण मानकर स्वादिकार्य करने से तृतीया के एकवचन में **प्रियप्रियेण** सिद्ध होता है। द्वित्व न होने के पक्ष में **प्रियेण ददाति।**

सुखसुखेन ददाति। सुखेन वा। अत्यन्त निर्धन होने पर भी कोई वस्तु अनायास (आसानी) से देता है। यहाँ अनायास ही देना अर्थ गम्य होने के कारण यही अकृच्छ्र माना जाता है। **सुखेन** इस पद का **अकृच्छ्रे प्रियसुखयोरन्यतरस्याम्** सूत्र से विकल्प से द्वित्व होने पर उसको कर्मधारयवद्भाव भी इसी सूत्र से हो जाता है। कर्मधारयवद्भाव होने के कारण समास मानकर प्रातिपदिकसंज्ञा और सुप् का लुक् होकर **सुखसुख** बन जाता है। एकदेशविकृतन्यायेन प्रातिपदिकत्व को अक्षुण्ण मानकर स्वादिकार्य करने से तृतीया के एकवचन में **सुखसुखेन** सिद्ध होता है। द्वित्व न होने के पक्ष में **सुखेन ददाति।**

द्विर्वचने कर्मधारयवद्भावात् सुपि लुकि तदेव वचनम्। अतिप्रियमपि वस्त्वनायासेन ददातीत्यर्थः। द्वित्व होने पर कर्मधारयवद्भाव होने से सुप् का लुक् होकर **प्रियप्रियेण** और **सुखसुखेन** बने हैं। अतिशय प्रिय वस्तु भी आसानी से दे-देता है, अर्थात् उसे कष्ट नहीं मानता, यह तात्पर्य है।

२१४९. यथास्वे यथायथम् ८।१।१४॥

यथास्वम् इति वीप्सायामव्ययीभावः। योऽयमात्मा यच्चात्मीयं तद्यथास्वम्। तस्मिन् यथाशब्दस्य द्वे क्लीबत्वं च निपात्यते। यथायथं ज्ञाता। यथास्वभावमित्यर्थः। यथात्मीयमिति वा।

यथास्वे यथायथम्। यो॰ यः स्वः यथास्वं, तस्मिन् यथास्वे। यथायथं प्रथमान्तम्। **कर्मधारयवदुत्तरेषु** सूत्र से **कर्मधारयवत्** की अनुवृत्ति आती है और **सर्वस्य द्वे** का अधिकार है।

यथास्वम् अर्थ में यथा-शब्द को द्वित्व और कर्मधारयवद्भाव इन दो कार्यों से यथायथ-शब्द का निपातन किया जाता है।

यथास्वम् इति वीप्सायामव्ययीभावः। अर्थात् यथास्वम् यह शब्द **यथासादृश्ये** (२.१.७) सूत्र से वीप्सार्थ में अव्ययीभाव समास होकर निष्पन्न हुआ है। **कृत्स्नश्चासौ स्वः** ऐसा अस्वपदविग्रह है। **कार्त्स्न्येन व्याप्तुमिच्छा वीप्सा।**

योऽयमात्मा यच्चात्मीयं तद्यथास्वम्। स्व-शब्द आत्मा (वस्तु का अपना स्वभाव) अथवा आत्मीय (वस्तु की अपनी स्वाभाविकता) अर्थ का वाचक है। इस तरह **यथास्वम्** का अर्थ हुआ- वस्तु का अपना सम्पूर्ण स्वभाव और वस्तु की अपनी सम्पूर्ण स्वाभाविकता। तादृश अर्थ में **यथायथम्** पद का निपातन प्रकृत सूत्र से किया जाता है।

यथायथं ज्ञाता। यथास्वभावमित्यर्थः। यथात्मीयमिति वा। जिस वस्तु का जैसा स्वभाव और स्वाभाविकता है, उसको उसी तरह ठीक से जानने वाला। **यथा** इस अव्यय पद का यथास्व अर्थ में **यथास्वे यथायथम्** सूत्र के द्वारा निपातनात् द्वित्व हो जाने पर उसको कर्मधारयवद्भाव भी हो जाता है, जिससे ऐकपद्य बन जाता है- **यथायथा।** साथ ही इस सूत्र से नपुंसकलिंगता का भी निपातन किया जाता है, जिसके कारण द्वितीय यथा-शब्द के आकार को **ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य** सूत्र से ह्रस्व होकर **यथायथ** शब्द बन जाता है। कर्मधारयवद्भाव के कारण प्रातिपदिकत्व तो है ही, अतः सु आदि प्रत्यय आते हैं। फलतः नपुंसकलिंग में **सु, अम्** के स्थान में **अतोऽम्** सूत्र से अमादेश होने पर पूर्वरूप होकर **यथायथम्** सिद्ध हो जाता है।

२१५०. द्वन्द्वं रहस्यमर्यादावचनव्युत्क्रमणयज्ञपात्रप्रयोगाभिव्यक्तिषु ८।१।१५॥

द्विशब्दस्य द्विर्वचनं पूर्वपदस्य अम्भावोऽत्वं चोत्तरपदस्य नपुंसकत्वं च निपात्यते एष्वर्थेषु। तत्र रहस्यं द्वन्द्वशब्दस्य वाच्यम्। इतरे विषयभूताः। द्वन्द्वं मन्त्रयते। रहस्यमित्यर्थः। मर्यादा स्थित्यनतिक्रमः। आचतुरं हीमे पशवो द्वन्द्वं मिथुनीयन्ति। माता पुत्रेण मिथुनं गच्छति, पौत्रेण प्रपौत्रेणापीति मर्यादार्थः। व्युत्क्रमणं पृथगवस्थानम्। द्वन्द्वं व्युत्क्रान्ताः। द्विवर्गसम्बन्धेन पृथगवस्थिताः। द्वन्द्वं यज्ञपात्राणि प्रयुनक्ति। द्वन्द्वं सङ्कर्षणवासुदेवौ। अभिव्यक्तौ साहचर्येणेत्यर्थः। योगविभागादन्यत्रापि द्वन्द्वम् इष्यते।

॥ इति द्विरुक्तप्रकरणम्॥

इति श्रीभट्टोजिदीक्षितविरचितायां सिद्धान्तकौमुद्यां पूर्वार्धं समाप्तम्।

द्वन्द्वं रहस्यमर्यादावचनव्युत्क्रमणयज्ञपात्रप्रयोगाभिव्यक्तिषु। मर्यादायाः वचनं मर्यादावचनं, षष्ठीतत्पुरुषः। यज्ञस्य पात्राणि यज्ञपात्राणि, षष्ठीतत्पुरुषः। यज्ञपात्राणां प्रयोगो यज्ञपात्रप्रयोगः, षष्ठीतत्पुरुषः। रहस्यं च मर्यादावचनं च व्युत्क्रमणं च यज्ञपात्रप्रयोगश्च च अभिव्यक्तिश्च तासामितरेतरयोगद्वन्द्वो रहस्यमर्यादावचनव्युत्क्रमण-यज्ञपात्रप्रयोगाभिव्यक्तयस्तासु रहस्यमर्यादावचनव्युत्क्रमणयज्ञपात्रप्रयोगाभिव्यक्तिषु सप्तम्यन्तं, द्वन्द्वं प्रथमान्तम्। **कर्मधारयवदुत्तरेषु** सूत्र से **कर्मधारयवत्** की अनुवृत्ति आती है और **सर्वस्य द्वे** का अधिकार है।

रहस्य, मर्यादावचन, व्युत्क्रमण, यज्ञपात्रप्रयोग और अभिव्यक्ति इन अर्थों में द्वन्द्वम् इस शब्द का निपातन किया जाता है।

द्विशब्दस्य द्विर्वचनं पूर्वपदस्य अम्भावोऽत्वं चोत्तरपदस्य नपुंसकत्वं च निपात्यते एष्वर्थेषु। अर्थात् **द्वन्द्व**-शब्द के निपातन में **द्वि** शब्द को द्वित्व, पूर्वपद के अन्त्य इकार के स्थान पर **अम्** आदेश, उत्तरपद **द्वि** के इकार के स्थान पर अकारादेश और **द्वन्द्व** बन जाने पर इसको नपुंसकत्व इतने कार्य किये जाते हैं। **द्वि+औ** इस स्थिति में **द्वन्द्वं रहस्यमर्यादावचनव्युत्क्रमणयज्ञपात्रप्रयोगाभिव्यक्तिषु** सूत्र से पद को द्वित्व करने पर **द्वि+औ द्वि+औ** बना है। कर्मधारयवद्भाव करने के कारण प्रातिपदिकसंज्ञा होकर दोनों विभक्तियों का **सुपो धातुप्रातिपदिकयोः** सूत्र से लुक् हो जाता है। इस तरह **द्वि+द्वि** बना है। पूर्वपद **द्वि** के इकार के स्थान पर **अम्** आदेश करने पर **द्वम्+द्वि** बना है। उत्तरपद द्वि के इकार को अकार आदेश करने पर **द्वम्+द्व** बना है। मकार को अनुस्वार और उसको परसवर्ण नकार होकर **द्वन्द्व** शब्द बना है। प्रकृतसूत्र के द्वारा ही इस शब्द की नपुंसकता की जाती है। प्रातिपदिकत्व को अक्षुण्ण मानकर सु प्रत्यय के आने पर नपुंसक होने के कारण **अतोऽम्** सूत्र से सु के स्थान पर अमादेश होने पर पूर्वरूप होकर **द्वन्द्वम्** सिद्ध हो जाता है। कर्मधारयवद्भाव होने के कारण अन्तोदात्तत्व भी होगा।

तत्र रहस्यं द्वन्द्वशब्दस्य वाच्यम्। इतरे विषयभूताः। सूत्र में दिये गये पाँच अर्थों में से रहस्य तो द्वन्द्व-शब्द का अर्थ ही है किन्तु अन्य चार विषय हैं अर्थात् रहस्यार्थ में और मर्यादावचन, व्युत्क्रमण, यज्ञपात्रप्रयोग और अभिव्यक्ति ये विषयभूत होने पर **द्वन्द्वम्** का निपातन होता है।

द्वन्द्वं मन्त्रयते। रहस्यमित्यर्थः। दो-दो मिलकर परस्पर मन्त्रणा करते हैं। यहाँ पर **रहस्य** शब्द एकान्त का बोधक है और मन्त्रणा एकान्त में ही होती है। रहस्यार्थ में **द्वन्द्वम्** शब्द का प्रयोग हुआ है।

मर्यादा स्थित्यनतिक्रमः। मर्यादा-शब्द का अर्थ है- स्थिति का उल्लंघन न करना। अब मर्यादा विषय बनने पर निष्पन्न द्वन्द्व-शब्द का उदाहरण दिया जा रहा है।

आचतुरं हीमे पशवो द्वन्द्वं मिथुनीयन्ति। माता पुत्रेण मिथुनं गच्छति, पौत्रेण प्रपौत्रेणापीति मर्यादार्थः। चौथी पीढ़ी तक ये पशु परस्पर सहवास करते हैं।

माता पुत्र, पौत्र तथा प्रपौत्र से संयुक्त होती है। यहाँ **आचतुरम्**=चौथी पीढ़ी तक- यह कथन मर्यादा (अवधि) का सूचक है। मर्यादावचन विषय बनने पर **द्वन्द्वम्** का प्रयोग हुआ है।

व्युत्क्रमणं पृथगवस्थानम्। व्युत्क्रमण का अर्थ है पृथक् स्थिति।

द्वन्द्वं व्युत्क्रान्ताः। द्विवर्गसम्बन्धेन पृथगवस्थिताः। दो-दो का वर्ग बना कर पृथक्-पृथक् अवस्थित हो गये। यहाँ पर व्युत्क्रमण विषय बनने पर द्वन्द्वम् का प्रयोग हुआ है।

द्वन्द्वं यज्ञपात्राणि प्रयुनक्ति। दो-दो यज्ञपात्रों का प्रयोग करता है। यहाँ यज्ञपात्र को विषय बनाकर **द्वन्द्वम्** का प्रयोग किया गया है।

द्वन्द्वं सङ्कर्षणवासुदेवौ। अभिव्यक्तौ साहचर्येणेत्यर्थः। बलराम और कृष्ण- उन दोनों का साहचर्य। यहाँ **अभिव्यक्ति** को विषय बनाकर द्वन्द्वम् का प्रयोग हुआ है। यहाँ पर अभिव्यक्ति-शब्द का साहचर्य अर्थ है।

योगविभागादन्यत्रापि द्वन्द्वम् इष्यते। कुछ अन्य अभीष्ट अर्थों में **द्वन्द्वम्** की सिद्धि के लिये प्रकृत सूत्र का योगविभाग करते हैं। यद्यपि यह योगविभाग महाभाष्य में नहीं है तथापि कुछ वृत्तिकारों ने ऐसा किया है। जैसे कि एकभाग होगा- **द्वन्द्वम्** और दूसरा भाग होगा- **रहस्यमर्यादावचनव्युत्क्रमणयज्ञपात्रप्रयोगाभिव्यक्तिषु।** द्वितीयभाग में प्रथम भाग से **द्वन्द्वम्** की अनुवृत्ति करके उपर्युक्त पाँचों अर्थों में **द्वन्द्वम्** की सिद्धि होगी किन्तु प्रथमभाग से निम्नलिखित अर्थों में बालमनोरमाकार ने **द्वन्द्वम्** का प्रयोग समीचीन माना है-

शीतमुष्णं च द्वन्द्वं सहते। ठण्डी गर्मी रूप द्वन्द्व को सहता है।

सुखं दुःखं च द्वन्द्वं सहते। सुख-दुःख रूप द्वन्द्व को सहता है।

क्षुत्तृष्णे च द्वन्द्वं सहते। भूख और प्यास रूप द्वन्द्व को सहता है। इन सबों में स्वार्थ में द्वन्द्व समझना चाहिये।

शीतोष्णसुखदुःखक्षुत्तृषां द्वन्द्वानि सहते ऐसा प्रयोग मिलता है। तदनुसार **द्वि** शब्द का स्वार्थ में द्वित्व तथा एकशेष होने के कारण बहुवचनान्त प्रयोग किया जाता है।

सूत्रकार ने **चार्थे द्वन्द्वः** सूत्र का पाठ किया है। तदनुसार **द्वन्द्वः** प्रयोग में स्वार्थ में द्वित्व एवं सौत्रात् पुंस्त्व समझना चाहिये।

श्री भट्टोजिदीक्षित द्वारा विरचित वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी की गोविन्दाचार्य कृत श्रीधरमुखोल्लासिनी हिन्दी टीका में द्विरुक्त-प्रकरण पूर्ण हुआ।

अकारादिक्रमेण तद्धितस्थसूत्रानुक्रमणिका

पृष्ठाङ्कः	सूत्राणि	अध्यायादिः
८३२	अंशं हारी	५।२।६९
११००	अकृच्छ्रे प्रियसुख०	८।१।१३
५८९	अगारान्ताट् ठन्	४।४।७०
२१३	अग्नेर्ढक्	४।२।३३
१०१३	अङ्गुल्यादिभ्यष्ठक्	५।३।१०८
३९४	अ च	४।३।३१
२३५	अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्	४।२।४७
४६२	अचित्तादेशकाला०	४।३।९६
९५९	अजादी गुणवचनादेव	५।३।५८
६३०	अजाविभ्यां थ्यन्	५।१।८
९९४	अजिनान्तस्योत्तरपद०	५।३।८२
९७८	अज्ञाते	५।३।७३
९३७	अञ्चेर्लुक्	५।३।३०
३९५	अणञौ च	४।३।३३
१४३	अणो द्व्यचः	४।१।१५६
५४८	अण् कुटिलिकायाः	४।४।१८
८६९	अण् च	५।२।१०३
१६७	अणिञोरनार्षयोर्गुरू०	४।१।७८
४४१	अणृगयनादिभ्यः	४।३।७३
५७३	अण् महिष्यादिभ्यः	४।४।४८
०४५	अत इञ्	४।१।९५
८८१	अत इनिठनौ	५।२।११५
१६२	अतश्च	४।१।१७७
१०५९	अतिग्रहाव्यथनक्षेपे०	५।४।४६
१०४६	अतिथेर्ञ्यः	५।४।२६
२५४	अतिशायने तमबिष्ठनौ	५।३।५५
१०७	अत्रिभृगुकुत्सवसिष्ठ०	२।४।६५
२७०	अदूरभवश्च	४।२।७०
७८५	अद्यश्वीनावष्टब्धे	५।२।१३
८३५	अधिकम्	५।२।७३
९४५	अधिकरणविचाले च	५।३।४३

पृष्ठाङ्कः	सूत्राणि	अध्यायादिः
४५४	अधिकृत्य कृते ग्रन्थे	४।३।८७
९२२	अधुना	५।३।१७
६५८	अध्यर्धपूर्वद्विगोर्लुग०	५।१।२८
८२६	अध्यायानुवाकयोर्लुक्	५।२।६०
५९०	अध्यायिन्यदेशकालात्	४।४।७१
४३६	अध्यायेष्वेवर्षेः	४।३।६९
७८७	अध्वनो यत्खौ	५।२।१६
११७	अन्	६।४।१६७
१०२७	अनत्यन्तगतौ क्तात्	५।४।४
९२४	अनद्यतने र्हिलन्य०	५।३।२१
१०४२	अनन्तावसथेतिहभे०	५।४।२३
९८२	अनुकम्पायाम्	५।३।७६
८३६	अनुकाभिकाभीकः०	५।२।७४
१०३५	अनुगादिनष्ठक्	५।४।१३
७८६	अनुग्वलङ्गामी	५।२।१५
२३३	अनुदात्तादेरञ्	४।२।४४
५०३	अनुदात्तादेश्च	४।३।१४०
७८०	अनुपदसर्वान्नायानयं०	५।२।९
८४७	अनुपद्यन्वेष्टा	५।२।९०
७३९	अनुप्रवचनादिभ्यश्छः	५।१।१११
२७८	अनुब्राह्मणादिनिः	४।२।६२
४२५	अनुशतिकादीनां च	७।३।२०
०५९	अनृष्यानन्तर्ये बिदा०	४।१।१०४
४२४	अन्तःपूर्वपदाट्ठञ्	४।३।६०
९६४	अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ	५।३।६३
६०२	अन्नाण्णः	४।४।८५
०३५	अपत्यं पौत्रप्रभृति०	४।१।१६२
३५२	अपदादौ साल्वात्	४।२।१३५
५५०	अपमित्ययाचिताभ्यां०	४।४।२१
१०५९	अपादाने चाहीयरुहोः	५।४।४५
१२६	अपूर्वपदादन्यतरस्यां०	४।१।१४०

२०६ अपोनप्त्रपांनप्तृभ्यां घः ४।२।२७
४५७ अभिजनश्च ४।३।९०
१०२१ अभिजिद्विदभृच्छा० ५।३।११८
४५३ अभिनिष्क्रामति द्वारम् ४।३।८६
१०७० अभिविधौ संपदा च ५।४।५३
७८८ अभ्यमित्राच्छ च ५।२।१७
३८४ अमावस्याया वा ४।३।३०
८३७ अयः शूलदण्डाजिना० ५।२।७६
३४७ अरण्यान्मनुष्ये ४।२।१२९
१०६७ अरुर्मनश्चक्षुश्चेतोर० ५।४।५१
६४९ अर्धात्परिमाणस्य पू० ७।३।२६
३६६ अर्धाद्यत् ४।३।४
८९४ अर्शआदिभ्योऽच् ५।२।१२७
९९५ अल्पे ५।३।८५
५७४ अवक्रयः ४।४।५०
१००३ अवक्षेपणे कन् ५।३।९५
३८७ अवयवाद्तोः ७।३।११
५०० अवयवे च प्राण्यौष० ४।३।१३५
७१६ अवयसि ठंश्च ५।१।८४
७९९ अवात्कुटारच्च ५।२।३०
७८२ अवारपारात्यन्तानुक० ५।२।११
३४३ अवृद्धादपि बहुवचन० ४।२।१२५
०७३ अवृद्धाभ्यो नदीमा० ४।१।११३
१०४७ अवेः कः ५।४।२८
१०७३ अव्यक्तानुकरणाद्० ५।४।५७
९७७ अव्ययसर्वनाम्नामक० ५।३।०७१
३१८ अव्ययात्त्यप् ४।२।१०४
४२३ अव्ययीभावाच्च ४।३।५९
४३१ अशब्दे यत्खावन्यतर० ४।३।६४
००४ अश्वपत्यादिभ्यश्च ४।१।८४
७८९ अश्वस्यैकाहगमः ५।२।१९
०६९ अश्वादिभ्यः फञ् ४।१।११०
१०२९ अषडक्षाशितंग्वलङ्क० ५।४।७
५१० असञ्ज्ञायां तिलयवा० ४।३।१४९
६४६ असमासे निष्कादिभ्यः ५।१।२०
३७० अ सांप्रतिके ४।३।९
९३२ अस्ताति च ५।३।४०
५८० अस्तिनास्तिदिष्टं मतिः ४।४।६०
८८७ अस्मायामेधास्रजो वि० ५।२।१२१
१०६४ अस्य च्वौ ७।४।३२
९०९ अहंशुभमोर्युस् ५।२।१४०

आ

५३९ आकर्षात् ष्ठल् ४।४।९
८२९ आकर्षादिभ्यः कन् ५।२।६४
७४० आकालिकडाद्यन्तव० ५।१।११४
५६५ आक्रन्दाट्ठञ् च ४।४।३८
७८७ आगवीनः ५।२।१४
११४ आगस्त्यकौण्डिन्य० २।४।७०
२०० आग्रहायण्यश्वत्था० ४।२।२२
७४५ आ च त्वात् ५।१।१२०
६८७ आढकाचितपात्रात्खो० ५।१।५३
६३१ आत्मन्विश्वजनभोगो० ५।१।९
६३२ आत्माध्वानौ खे ६।४।१६९
४९६ आथर्वणिकस्येकलो० ४।३।१३३
०२० आपत्यस्य च त० ६।४।१५१
७७९ आप्रपदं प्राप्नोति ५।२।८
१०९० आबाधे च ८।१।१०
४५८ आयुधजीविभ्यश्छः० ४।३।९१
१०१६ आयुधजीविसंघाञ्ञ्य० ५।३।११४
५४५ आयुधाच्छ च ४।४।१४
०९७ आरगुदीचाम् ४।१।१३०
८९३ आलजाटचौ बहुभा० ५।२।१२५
५९३ आवसथात् ष्ठल् ४।४।७४
४१० आश्वयुज्या वुञ् ४।३।४५
८५७ आसन्दीवष्ठीवच्चक्री० ८।२।१२
९४२ आहि च दूरे ५।३।३७

इ

७६५ इगन्ताच्च लघुपूर्वात् ५।१।१३१
०२४ इञः प्राचाम् २।४।६०
३२८ इञश्च ४।२।११२
९१९ इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते ५।३।१४
०८६ इतश्चानिञः ४।१।१२२

९११	इदम इश्	५।३।३
१०९	इदमस्थमुः	५।३।२४
९२१	इदमो र्हिल्	५।३।१६
९१७	इदमो हः	५।३।११
६६८	इद् वृद्धौ	६।३।९८
८००	इनच्यिटच् चिकचि०	५।२।३३
२२३	इनण्यनपत्ये	६।४।१६४
२३८	इनित्रकट्यचश्च	४।२।५१
८४८	इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गमि०	५।२।९३
१००४	इवे प्रतिकृतौ	५।३।९६
८४५	इष्टादिभ्यश्च	५।२।८८
९७०	इष्ठस्य यिट् च	६।४।१५९
१९६	इसुसुक्तान्तात् कः	७।३।५१

ई

९७४	ईषदसमाप्तौ कल्प०	५।३।६७

उ

६२२	उगवादिभ्यो यत्	५।१।२
५५९	उञ्छति	४।४।३२
८४०	उत्क उन्मनाः	५।२।८०
३००	उत्करादिभ्यश्छः	४।२।९०
७११	उत्तरपथेनाहृतं च	५।१।७७
३८६	उत्तरपदस्य	७।३।१०
९४१	उत्तराच्च	५।३।३८
९३९	उत्तराधरदक्षिणादा०	५।३।३४
०१३	उत्सादिभ्योऽञ्	४।१।८६
२७३	उदक् च विपाशः	४।२।७४
८५९	उदन्वानुदधौ च	८।२।१३
८३१	उदराट्ठगाद्यूने	५।२।६७
११६	उदश्वितोऽन्यतरस्याम्	४।२।११
१४४	उदीचां वृद्धादगोत्रात्	४।१।१५७
१३९	उदीचामिञ्	४।१।१५३
३२६	उदीच्यग्रामाच्च बह्व०	४।२।१०९
११२	उपकादिभ्योऽन्य०	२।४।६९
४०६	उपजानूपकर्णोपनीवे०	४।३।४०
४७९	उपज्ञाते	४।३।११५
१०८५	उपर्यध्यधसः०	८।१।७
९३८	उपर्युपरिष्टात्	५।३।३१
८०२	उपाधिभ्यां त्यकन्ना०	५।२।३४
४०९	उप्ते च	४।३।४४
८१२	उभादुदात्तो नित्यम्	५।२।४४
५१८	उमोर्णयोर्वा	४।३।१५८
६०९	उरसोऽण् च	४।४।९४
४७९	उरसो यच्च	४।३।११४
५१७	उष्ट्राद्वञ्	४।३।१५७

ऊ

८९२	ऊर्णाया युस्	५।२।१२३
८७२	ऊषशुषिमुष्कमधोरः	५।२।१०७

ऋ

४४५	ऋतष्ठञ्	४।३।७८
५७३	ऋतोऽञ्	४।४।४९
७३५	ऋतोरण्	५।१।१०५
७५०	ऋतो हलादेर्लघोः	६।४।१६१
६३९	ऋषभोपानहोर्ञ्यः	५।१।१४
०७५	ऋष्यन्धकवृष्णिकुरु०	४।१।११४

ए

८८५	एकगोपूर्वाट्ठञ् नि०	५।२।११८
५९९	एकधुराल्लुक् च	४।४।७९
१०८८	एकं बहुव्रीहिवत्	८।१।९
१०१५	एकशालायाष्ठजन्यतर०	५।३।१०९
१०३८	एकस्य सकृच्च	५।४।१९
१००२	एकाच्च प्राचाम्	५।३।९४
९५२	एकादाकिनिच्चासहा०	५।३।५२
९४५	एकाद्धो ध्यमुञन्यतर०	५।३।४४
०४०	एको गोत्रे	४।१।९३
३३२	एङ् प्राचां देशे	१।१।७५
५१९	एण्या ढञ्	४।३।१५९
९१२	एतदोऽन्	५।३।५
९११	एतेतौ रथोः	५।३।४
९१८	एतदस्त्रतसोस्त्रतसौ	२।४।३३
९४७	एधाच्च	५।३।४६
९४०	एनबन्यतरस्यामदूरेऽप०	५।३।३५

ऐ

७४० ऐकागारिकट् चौरे ५।१।११३
३२१ ऐषमोह्यःश्वसोऽन्यत० ४।२।१०५

ओ

५५३ ओजःसहोऽम्भसा० ४।४।२७
२७१ ओरञ् ४।२।७१
५०३ ओरञ् ४।३।१३९
३३८ ओर्देशे ठञ् ४।२।११९
१०५२ ओषधेरजातौ ५।४।३७

औ

१२२ औक्षमनपत्ये ६।४।१७३

क

९०६ कंशंभ्यां बभयुस्ति० ५।२।१३८
६५५ कंसाटिट्ठन् ५।१।२५
५२७ कंसीयपरशव्ययोर्यञञ० ४।३।१६८
३४५ कच्छाग्निवक्त्रवर्तो० ४।२।१२६
३५० कच्छादिभ्यश्च ४।२।१३३
४६३ कठचरकाल्लुक् ४।३।१०७
५९१ कठिनान्तप्रस्तारसंस्था० ४।४।७२
७०३ कडंकरदक्षिणाच्छ च ५।१।६९
३२७ कण्वादिभ्यो गोत्रे ४।२।१११
३१० कत्र्यादिभ्यो ढकञ् ४।२।९५
६१५ कथादिभ्यष्ठक् ४।४।१०२
३५९ कन्थापलदनगरग्रामह्र० ४।२।१४२
३१६ कन्थायाष्ठक् ४।२।१०२
०८० कन्यायाः कनीन च ४।१।११६
७६० कपिज्ञात्योर्ढक् ५।१।१२७
०६७ कपिबोधादाङ्गिरसे ४।१।१०७
६२४ कम्बलाच्च सञ्ज्ञा० ५।१।३
१५९ कम्बोजाल्लुक् ४।१।१७५
१०१४ कर्कलोहितादीकक् ५।३।११०
४३२ कर्णललाटात् कनल० ४।३।६५
७३४ कर्मण उकञ् ५।१।१०३
८०३ कर्मणि घटोऽठच् ५।२।३५
१०९१ कर्मधारयवदुत्तरेषु ८।१।११
४७६ कर्मन्दकृशाश्वादिनिः ४।३।१११
७३२ कर्मवेषाद्यत् ५।१।१००
५८४ कर्माध्ययने वृत्तम् ४।४।६३
४७४ कलापिनोऽण् ४।३।१०८
४७० कलापिवैशम्पायनान्ते० ४।३।१०४
४१२ कलाप्यश्वत्थयवबुसा० ४।३।४८
१८६ कलेर्ढक् ४।२।८
०९२ कल्याण्यादीनामिनङ्० ४।१।१२६
९७८ कस्य च दः ५।३।७२
२०४ कस्येत् ४।२।२५
८७७ काण्डाण्डादीरन्नीरचौ ५।२।१११
३१४ कापिश्याः ष्फक् ४।२।९९
५८३ कार्मस्ताच्छील्ये ६।४।१७२
८४० कालप्रयोजनाद्रोगे ५।२।८१
१०५० कालाच्च ५।४।३३
३७१ कालाट्ठञ् ४।३।११
७१२ कालात् ५।१।७८
४०८ कालात्साधुपुष्यत्प० ४।३।४३
७३६ कालाद्यत् ५।१।१०७
२१४ कालेभ्यो भववत् ४।२।३४
२९० कालोपसर्जने च० १।२।५७
४६९ काश्यपकौशिकाभ्यां० ४।३।१०३
३३४ काश्यादिभ्यष्ठञ्ञिठौ ४।२।११६
९९८ कासूगोणीभ्यां ष्टरच् ५।३।९०
१००० किंयत्तदो निर्धारणे० ५।३।९२
९११ किं सर्वनामबहुभ्योऽद्व०५।३।२
००६ किति च ७।२।११८
८१० किमः संख्यापरिमा० ५।२।४१
९३० किमश्च ५।३।२५
८०९ किमिदभ्यां वो घः ५।२।४०
९५६ किमेत्तिङव्ययघादा० ५।४।११
९१७ किमोऽत् ५।३।१२
५७६ किसरादिभ्यः ष्ठन् ४।४।५३
९९७ कुटीशमीशुण्डाभ्यो रः ५।३।८८
९१३ कुति होः ७।२।१०४
९९७ कुत्वा डुपच् ५।३।८९
९८२ कुत्सिते ५।३।७४

२९६ कुमुदनडवेतसेभ्यो० ४।२।८७
१५४ कुरुनादिभ्यो ण्यः ४।१।१७२
१३६ कुर्वादिभ्यो ण्यः ४।१।१५१
२११ कुलकुक्षिग्रीवाभ्यः० ४।२।९६
०९३ कुलटाया वा ५।१।१२७
५३५ कुलत्थकोपधादण् ४।४।४
१२५ कुलात् खः ४।१।१३९
४८१ कुलालादिभ्यो वुञ् ४।३।११८
६८९ कुलिजाल्लुक्खौ च ५।१।५५
८४२ कुल्माषादञ् ५।२।८३
१०११ कुशाग्राच्छः ५।३।१०५
५५८ कुसीददशैकादशा० ४।४।३१
३६१ कृकणपर्णाद्भारद्वाजे ४।२।१४५
१०७५ कृञो द्वितीयतृतीय० ५।४।५८
४०५ कृतलब्धक्रीतकुशलाः ४।३।३८
४८० कृते ग्रन्थे ४।३।११६
१०६३ कृभ्वस्तियोगे संपद्य० ५।४।५०
१०२ केकयमित्रयुप्रलयानां० ७।३।२
२२८ केदाराद्यञ्च ४।२।४०
८७५ केशाद्वोऽन्यतरस्याम् ५।२।१०९
२३६ केशाश्वाभ्यां यञ्छा० ४।२।४८
२७८ कोपधाच्च ४।२।७९
५०१ कोपधाच्च ४।३।१३७
३५० कोपधादण् ४।२।१३२
४०८ कोशाड्ढञ् ४।३।४२
४९५ कौपिञ्जलहास्तिप० ४।३।१३२
१९१ कौमारापूर्ववचने ४।२।१३
१४१ कौशल्यकार्मार्याभ्यां० ४।१।१५५
५४९ क्त्रेर्मन्नित्यम् ४।४।२०
१०६५ क्यच्व्योश्च ६।४।१५२
४३४ क्रतुयज्ञेभ्यश्च ४।३।६८
२४९ क्रतूक्थादिसूत्रान्ता० ४।२।६०
२४७ क्रमादिभ्यो वुन् ४।२।६१
५१६ क्रीतवत्परिमाणात् ४।३।१५६
१७१ क्रौड्यादिभ्यश्च ४।१।८०
९१८ क्वाति ७।२।१०५
१२४ क्षत्राद् घः ४।१।१३८
१९७ क्षीराड् ढञ् ४।२।२०
०९८ क्षुद्राभ्यो वा ४।१।१३१
४८२ क्षुद्राभ्रमरवटरपादपा० ४।३।११९
८४८ क्षेत्रियच्परक्षेत्रे चिकि० ५।२।९२

ख

५९८ खः सर्वधुरात् ४।४।७८
२३३ खण्डिकादिभ्यश्च ४।२।४५
२३७ खलगोरथात् ४।२।५०
६२९ खलयवमाषतिलवृषब्र० ५।१।७
६६३ खार्या ईकन् ५।१।३३

ग

४२३ गम्भीराञ्ञः ४।३।५८
०६१ गर्गादिभ्यो यञ् ४।१।१०५
३५३ गर्तोत्तरपदाच्छः ४।२।१३७
३५४ गहादिभ्यश्च ४।२।१३८
८७६ गाण्ड्यजगात् संज्ञा० ५।२।११०
२६० गाधिवदथिकेशि० ६।४।१६५
६१६ गुडादिभ्यष्ठञ् ४।४।१०३
१०२ गृष्ट्यादिभ्यश्च ४।१।१३६
६०५ गृहपतिना संयुक्ते ञ्यः ४।४।९०
४६५ गोत्रक्षत्रियाख्येभ्यो ब० ४।३।९९
७६८ गोत्रचरणाच्छ्लाघा० ५।१।१३४
४८९ गोत्रचरणाद् वुञ् ४।३।१२६
१३२ गोत्रस्त्रियाः कुत्सने ण ४।१।१४७
४४७ गोत्रादङ्कवत् ४।३।८०
९४४ गोत्राद्यून्यस्त्रियाम् ४।१।९४
१७० गोत्रावयवात् ४।१।७९
०५१ गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फ ४।१।९८
०१३ गोत्रेऽलुगचि ४।१।८९
२२४ गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्राजराज० ४।२।३९
६७१ गोद्व्यचोऽसंख्यापरि० ५।१।३९
०९६ गोधाया ढ्रक् ४।१।१२९
५१९ गोपयसोर्यत् ४।३।१६०
५३६ गोपुच्छाट्ठञ् ४।४।६
३५२ गोयवाग्वोश्च ४।२।१३६

५०८ गोश्च पुरीषे ४।३।१४५
८२८ गोषदादिभ्यो वुन् ५।२।६२
७८८ गोष्ठात् खञ् भूतपूर्वे ५।२।१८
३६८ ग्रामजनपदैकदेशादञ्ठ ४।३।७
२३० ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल् ४।२।४३
४२९ ग्रामात् पर्यनुपूर्वात् ४।३।६१
३१० ग्रामाद्यखञौ ४।२।९४
४२२ ग्रीवाभ्योऽण् च ४।३।५७
४१० ग्रीष्मावरसमाद् वुञ् ४।३।४९
४१३ ग्रो यङि ८।२।२०

घ

२४५ घञः सास्यां क्रियेति० ४।२।५८
९८४ घनिलचौ च ५।३।७९

च

१०१ चतुष्याद्भ्यो ढञ् ४।१।१३५
२३४ चरणेभ्यो धर्मवत् ४।२।४६
५३८ चरति ४।४।८
६४० चर्मणोऽञ् ५।१।१५
७२३ चित्तवति नित्यम् ५।१।८९
५५१ चूर्णादिनिः ४।४।१२३
१०६६ च्वौ च ७।४।२६

छ

४७५ छगलिनो ढिनुक् ४।३।१०९
२०७ छ च ४।२।२८
५८२ छत्रादिभ्यो णः ४।४।६२
६३८ छदिरुपधिबलेर्ढञ् ५।१।१३
४३८ छन्दसि यदणौ ४।३।७१
८४६ छन्दसि परिपन्थि० ५।२।८९
६०९ छन्दसो निर्मिते ४।४।९३
४९२ छन्दोगौक्थिकयाज्ञि० ४।३।१२९
२६६ छन्दोब्राह्मणानि च० ३।२।६६
७०० छेदादिभ्यो नित्यम् ५।१।६४

ज

४१९ जङ्गलधेनुवलजान्तस्य० ७।३।२५
३४३ जनपदतदवध्योश्च ४।२।१२४
१४८ जनपदशब्दात् क्ष० ४।१।१६८
४६६ जनपदिनां जनपद० ४।३।१००
२८५ जनपदे लुप् ४।२।८१
५२३ जम्ब्वा वा ४।३।१६५
५१२ जातरूपेभ्यः परिमाणे ४।३।१५३
९९० जातिनाम्नः कन् ५।३।८१
१०३४ जात्यन्ताच्छ बन्धुनि ५।४।९
४३० जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः ४।३।६२
०३५ जीवति तु वंश्ये युवा ४।१।१६३
१००६ जीविकार्थे चापण्ये ५।३।९९
४०० जे प्रोष्ठपदानाम् ७।३।१८
९६३ ज्य च ५।३।६१
९६३ ज्यादादीयसः ६।४।१६०
८८० ज्योत्स्नातमिस्राशृङ्गि० ५।२।११४

झ

८५६ झयः ५।४।१११

ञ

५१४ ञितश्च तप्रत्ययात् ४।३।१५५
१०२२ ञ्यादयस्तद्राजाः ५।३।११९

ट

६५० टेः ६।४।१५५

ठ

२९३ ठक्छौ च ४।३।८४
४४३ ठगायस्थानेभ्यः ४।३।७५
२२८ ठञ् कवचिनश्च ४।२।४१
१३१ ठस्येकः ७।३।५०
९८५ ठाजादावूर्ध्वं द्वितीया० ५।३।८३

ढ

९९ ढकि लोपः ४।१।१३३
०८२ ढक् च मण्डूकात् ४।१।११९
१०१ ढे लोपोऽकद्र्वाः ६।४।१४७

ण

२६१ ण्यक्षत्रियार्षञितो यू० २।४।५८

त

४४२ तत आगतः ४।३।७४
१०४० तत्प्रकृतवचने मयट् ५।४।२१
५५४ तत् प्रत्यनुपूर्वमीपलोम० ४।४।२८

०९१	तत्प्रत्ययस्य च	७।३।२९	१५७	तद्राजस्य बहुषु तेनै०	२।४।६२
८२९	तत्र कुशलः पथः	५।२।६३	५९६	तद्वहति रथयुगप्रास०	४।४।७६
७२९	तत्र च दीयते कार्यं०	५।१।९६	८३३	तन्त्रादचिरापहृते	५।२।७०
३८४	तत्र जातः	४।३।२५	८६८	तपःसहस्राभ्यां वि०	५।२।१०२
७४३	तत्र तस्येव	५।१।११६	७१३	तमधीष्टो भृतो भूतो०	५।१।८०
३८४	तत्र जातः	४।३।२५	५३६	तरति	४।४।५
५८९	तत्र नियुक्तः	४।४।६९	९५५	तरप्तमपौ घः	१।१।२२
४१६	तत्र भवः	४।३।५३	३६४	तवकममकावेकवचने	४।३।३
६७६	तत्र विदित इति च	५।१।४३	४७८	तसिश्च	४।३।११३
६१२	तत्र साधुः	४।४।९८	९१४	तसेश्च	५।३।८
१९२	तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः	४।२।१४	८५२	तसौ मत्वर्थे	१।४।१९
७७९	तत्सर्वादेः पथ्यङ्गकर्म०	५।२।७	३६३	तस्मिन्नणि च युष्मा०	४।३।२
२४७	तदधीते तद्वेद	४।२।५९	७३३	तस्मै प्रभवति सन्ता०	५।१।१०१
१०७१	तदधीनवचने	५।४।५४	६२६	तस्मै हितम्	५।१।५
६३७	तदर्थं विकृतेः प्रकृतौ	५।१।१२	७२८	तस्य च दक्षिणा य०	५।१।९५
६९९	तदर्हति	५।१।६३	५७२	तस्य धर्म्यम्	४।४।४७
७४३	तदर्हम्	५।१।११७	६६९	तस्य निमित्तं संयोगो०	५।१।३८
२८७	तदशिष्यं संज्ञाप्रमा०	१।२।५३	२७०	तस्य निवासः	४।२।६९
८१४	तदस्मिन्नधिकमिति द०	५।२।४५	७९२	तस्य पाकमूले पील्वा०	५।२।२४
८४२	तदस्मिन्नन्नं प्राये स०	५।२।८२	८१७	तस्य पूरणे डट्	५।२।४८
२६८	तदस्मिन्नस्तीति देशे०	४।२।६७	७४४	तस्य भावस्त्वतलौ	५।१।११९
६७९	तदस्मिन् वृद्ध्यायला०	५।१।४७	६७७	तस्य वापः	५।१।४५
५८७	तदस्मै दीयते नियु०	४।४।६६	४९८	तस्य विकारः	४।३।१३४
६४१	तदस्य तदस्मिन् स्या०	५।१।१६	४३२	तस्य व्याख्यान इति०	४।३।६६
६९१	तदस्य परिमाणम्	५।१।५७	२२१	तस्य समूहः	४।२।३७
५७५	तदस्य पण्यम्	४।४।५१	०२८	तस्यापत्यम्	४।१।९२
७२५	तदस्य ब्रह्मचर्यम्	५।१।९४	४८३	तस्येदम्	४।३।१२०
८०३	तदस्य सञ्जातं तार०	५।२।३६	६७५	तस्येश्वरः	५।१।४२
४१५	तदस्य सोढम्	४।३।५२	५११	तालादिभ्योऽण्	४।३।१५२
२४४	तदस्यां प्रहरणमिति०	४।२।५७	८३८	तावतिथं ग्रहणमिति०	५।२।७७
८५०	तदस्यास्त्यस्मिन्निति म०	५।२।९४	१११	तिककितवादिभ्यो द्व०	२।४।६८
९२३	तदो दा च	५।३।१९	१४०	तिकादिभ्यः फिञ्	४।१।१५४
४५३	तद् गच्छति पथिदूत०	४।३।८५	९५५	तिङश्च	५।३।५६
६८३	तद्धरति वहत्यावहति०	५।१।५०	४६८	तित्तिरिवरतन्तुखण्डि०	४।३।१०२
००५	तद्धितेष्वचामादेः	७।२।११७	३२२	तीररूप्योत्तरपदादञञौ	४।२।१०६
१०५२	तद्युक्तात् कर्मणोऽण्	५।४।३६	८८३	तुन्दादिभ्य इलच्	५।२।११७

९०८ तुन्दिबलिवटेर्भः ५।२।१३९
९६१ तुरिष्ठेमेयःसु ६।४।१५४
९६० तुश्छन्दसि ५।३।५९
४६० तूदीशलातुरवर्मतीकूच० ४।३।९४
१५७ ते तद्राजाः ४।१।१७४
६६४ तेन क्रीतम् ५।१।३७
७४२ तेन तुल्यं क्रिया चे० ५।१।११५
५३४ तेन दीव्यति खनति० ४।४।२
२६९ तेन निर्वृत्तम् ४।२।६८
७१२ तेन निर्वृत्तम् ५।१।७९
७२५ तेन परिजय्यलभ्यका० ५।१।९३
४६७ तेन प्रोक्तम् ४।३।१०१
७३१ तेन यथाकथाचहस्ता० ५।१।९८
१७५ तेन रक्तं रागात् ४।२।१
७९४ तेन वित्तश्चुञ्चुप्चण० ५।२।२६
४७७ तेनैकदिक् ४।३।११२
३३१ त्यदादीनि च १।१।७४
५०२ त्रपुजतुनोः षुक् ४।३।१३८
६९८ त्रिंशच्चत्वारिंशतोर्ब्रा० ५।१।६२
८२३ त्रेः सम्प्रसारणं च ५।२।५५

द

९४२ दक्षिणादाच् ५।३।३६
३१३ दक्षिणापश्चात्पुरस० ४।२।९८
९३५ दक्षिणोत्तराभ्यामतसुच् ५।३।२८
१०२५ दण्डव्यवसर्गयोश्च ५।४।२
७०२ दण्डादिभ्यो यत् ५।१।६६
१९५ दध्नष्ठक् ४।२।१८
८७१ दन्त उन्नत उरच् ५।२।१०६
८७९ दन्तशिखात् सञ्ज्ञा० ५।२।११३
१०३ दाण्डिनायनहास्ति० ६।४।१७४
९२३ दानीं च ५।३।१८
१०१८ दामन्यादित्रिगर्तषष्ठा० ५।३।११६
९३१ दिक्शब्देभ्यः सप्त० ५।३।२७
३६८ दिक्पूर्वपदाट्ठञ्च ४।३।६
३२४ दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां० ४।२।१०७
४१७ दिगादिभ्यो यत् ४।३।५४
००७ दित्यदित्यादित्यपत्त्यु० ४।१।८५
३८९ दिशोऽमद्राणाम् ७।३।१३
२१७ दीर्घाच्च वरुणस्य ७।३।२३
१०७९ दुःखात्प्रातिलोम्ये ५।४।६४
१२८ दुष्कुलाड्ढक् ४।१।१४२
४२१ दृतिकुक्षिकलशिवस्० ४।३।५६
१८५ दृष्टं साम २।३।४७
४११ देयमृणे ४।३।४७
१०७१ देये त्रा च ५।४।५५
२१५ देवताद्वन्द्वे च ७।३।२१
१०४३ देवातान्तात्तादर्थ्ये यत् ५।४।२४
१०४६ देवात्तल् ५।४।२७
१००८ देवपथादिभ्यश्च ५।३।१००
१०७२ देवमनुष्यपुरुषपुरुम० ५।४।५६
४२७ देविकाशिंशपादित्य० ७।३।१
८७१ देशे लुबिलचौ च ५।२।१०५
१७३ दैवयज्ञिशौचिवृक्षिसा० ४।१।८१
७११ द्यावापृथिवीशुनासीर० ४।२।३२
८७४ द्युद्भ्यां मः ५।२।१०८
३१५ द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो० ४।२।१०१
१०११ द्रव्यं च भव्ये ५।३।१०४
०५७ द्रोणपर्वतजीवन्ताद० ४।१।१०३
५२० द्रोश्च ४।३।१६१
११०२ द्वन्द्वं रहस्यमर्यादाव० ८।१।१५
७६७ द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च ५।१।१३३
१८४ द्वन्द्वाच्छः ४।२।६
४८७ द्वन्द्वाद् वुन् वैरमैथुनि० ४।३।१२५
८९५ द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात् प्राणि० ५।२।१२८
३७५ द्वारादीनां च ७।३।४
६८८ द्विगोः ष्ठंश्च ५।१।५४
७१४ द्विगोर्यप् ५।१।८२
०१७ द्विगोर्लुगनपत्ये ४।१।८८
७१७ द्विगोर्वा ५।१।८६
१०३७ द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच् ५।४।१८
६६६ द्वित्रिपूर्वादण् च ५।१।३६
६६० द्वित्रिपूर्वान्निष्कात् ५।१।३०

८११ द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा ५।२।४३
९४६ द्वित्र्योश्च धमुञ् ५।३।४५
९५७ द्विवचनविभज्योपपदे० ५।३।५७
३७० द्वीपादनुसमुद्रं यञ् ४।३।१०
६२१ द्वैस्तीयः ५।२।५४
१९० द्वैपवैयाघ्रादञ् ४।२।१२
०८५ द्व्यचः ४।१।१२१
४३८ द्व्यजृद्ब्राह्मणकर्ग्रथ० ४।३।७२
१५१ द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूर० ४।१।१७०

ध

६०१ धनगणं लब्धा ४।४।८४
८३० धनहिरण्यात् कामे ५।२।६५
३४० धन्वयोपधाद् वुञ् ४।२।१२१
५६८ धर्मं चरति ४।४।४१
६०८ धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते ४।४।९२
९०० धर्मशीलवर्णान्ताच्च ५।२।१३२
७७२ धान्यानां भवने क्षेत्रे० ५।२।१
५९७ धुरो यड्ढकौ ४।४।७७
३४६ धूमादिभ्यश्च ४।२।१२७

न

१७९ नक्षत्रे च लुपि २।३।४५
१७९ नक्षत्रेण युक्तः कालः ४।२।३
४०४ नक्षत्रेभ्यो बहुलम् ४।३।३७
३४७ नगरात् कुत्सनप्रावी० ४।२।१२८
११० न गोपवनादिभ्यः २।४।६७
४४८ नञः शुचीश्वरक्षेत्रज्ञ० ७।३।१०
२९८ नडशादाड्ड्वलच् ४।२।८८
०५३ नडादिभ्यः फक् ४।१।९९
३०० नडादीनां कुक्च ४।२।९१
७९९ नते नासिकायाः० ५।२।३१
०२५ न तौल्वलिभ्यः २।४।६१
४९४ न दण्डमाणवान्तेवा० ४।३।१३०
३१२ नद्यादिभ्यो ढक् ४।२।९७
२९५ नद्यां मतुप् ४।२।८५
३२७ नद्यृचः प्राच्यभरतेषु ४।२।११३
७४७ न नञ्पूर्वात्तत्पुरुषाद० ५।१।१२१
१६४ न प्राच्यभर्गादियौधे० ४।१।१७८
५९७ न भकुर्छुराम् ८।२।७९
०४८ न ष्वाभ्यां पदान्ता० ७।३।३
११८ न मत्पूर्वोऽपत्ये ६।४।१७०
१०२८ न सामिवचने ५।४।५
६५० नातः परस्य ७।३।२७
८१७ नान्तादसंख्यादेर्मट् ५।२।४९
५९२ निकटे वसति ४।४।७३
५०७ नित्यं वृद्धशरादिभ्यः ४।३।१४४
१०८३ नित्यवीप्सयोः ८।१।४
८२३ नित्यं शतादिमासा० ५।२।५७
५४८ निर्वृत्तेऽक्षद्यूतादिभ्यः ४।४।१९
३७४ निशाप्रदोषाभ्यां च ४।३।१४
१०३८ निष्कुलान्निष्कोषणे ५।४।६२
९८३ नीतौ च तद्युक्तात् ५।३।७७
२१६ नेन्द्रस्य परस्य ७।३।२२
८०० नेर्बिडज्बिरीसचौ ५।२।३२
५३७ नौद्व्यचष्ठन् ४।४।७
६०६ नौवयोधर्मविषमूलमू ४।४।९१
५२२ न्यग्रोधस्य च केवलस्य ७।३।५

प

७९३ पक्षात्तिः ५।२।२५
५६१ पक्षिमत्स्यमृगान् हन्ति ४।४।३५
६९६ पङ्क्तिविंशतित्रिश० ५।१।५९
६९८ पञ्चद्दशतौ वर्गे वा ५।१।६०
९१३ पञ्चम्यास्तसिल् ५।३।७
६६४ पणपादमाषशताद्यत् ५।१।३४
७६० पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो० ५।१।१२८
४८६ पत्रपूर्वादञ् ४।३।१२२
४८६ पत्राध्वर्युपरिषदश्च ४।३।१२३
३८३ पथः पन्थ च ४।३।२९
७१० पथः ष्कन् ५।१।७५
६१८ पथ्यतिथिवसतिस्वप० ४।४।१०४
६०३ पदमस्मिन् दृश्यम् ४।४।८७
५४३ पदान्तस्यान्यतरस्याम् ७।३।९
५६६ पदोत्तरपदं गृह्णाति ४।४।३९

७११ पन्थो ण नित्यम् ५।१।७६
५७९ परश्वधाट्ठञ्च ४।४।५८
३६७ परावराधमोत्तमपूर्वाच्च ४।३।५
६४२ परिखाया ढञ् ५।१।१७
५६३ परिपन्थं च तिष्ठति ४।४।३६
६४६ परिमाणान्तस्यासञ्ज्ञा० ७।३।१७
५५६ परिमुखं च ४।४।२९
१८८ परिवृतो रथः ४।२।१०
६१५ परिषदो ण्यः ४।४।४४
५७० परिषदो ण्यः ४।४।१०१
१०८५ परेर्वर्जने ८।१।५
७८१ परोवरपंरपरपुत्रपौत्र० ५।२।१०
५४० पर्पादिभ्यः ष्ठन् ४।४।१०
९१५ पर्यभिभ्यां च ५।३।९
३६० पर्वताच्च ४।२।१४३
१०२० पश्वादियौधेयादिभ्यो० ५।३।११७
५०४ पलाशादिभ्यो वा ४।३।१४१
९३९ पश्चात् ५।३।३२
१८९ पाण्डुकम्बलादिनिः ४।२।११
६७८ पात्रात् ष्ठन् ५।१।४६
७०२ पात्राद् घंश्च ५।१।६८
१०२३ पादशतस्य संख्यादे० ५।४।१
१०४६ पादार्घाभ्यां च ५।४।२५
७०७ पारायणतुरायणचा० ५।१।७२
४७६ पाराशर्यशिलालिभ्यां० ४।३।११०
८३६ पार्श्वेनान्विच्छति ५।२।७५
२३७ पाशादिभ्यो यः ४।२।४९
४४६ पितुर्यच्च ४।३।७९
२१९ पितृव्यमातुलमातामह० ४।२।३६
०९९ पितृष्वसुश्छण् ४।१।१३२
५०९ पिष्टाच्च ४।३।१४६
०८२ पीलाया वा ४।१।११८
६७३ पुत्राच्छ च ५।१।४०
१४५ पुत्रान्तादन्यतरस्याम् ४।१।१५९
४७१ पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मण० ४।३।१०५
८०७ पुरुषहस्तिभ्यामण्च ५।२।३८
९०२ पुष्करादिभ्यो देशे ५।२।१३५
१०१५ पूगाञ्ज्योऽग्रामणीपू० ५।३।११२
९४८ पूरणाद्भागे तीयादन् ५।३।४८
६८१ पूरणार्धाट्ठन् ५।१।४८
८४४ पूर्वादिनिः ५।२।८६
९३२ पूर्वाधरावराणामसि० ५।३।३९
३९२ पूर्वाह्णापराह्णार्द्रामूलप्र० ४।३।२८
७४९ पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा ५।१।१२२
०२३ पैलादिभ्यश्च २।४।४९
४३७ पौरोडाशपुरोडाशात्० ४।३।७०
९७६ प्रकारवचने जातीयर् ५।३।६९
९२८ प्रकारवचने थाल् ५।३।२३
९६२ प्रकृत्यैकाच् ६।४।१६३
७३६ प्रकृष्टे ठञ् ५।१।१०८
१०५३ प्रज्ञादिभ्यश्च ५।४।३८
८६७ प्रज्ञाश्रद्धार्चाभ्यो णः ५।२।१०१
५६७ प्रतिकण्ठार्थललामं च ४।४।४०
६१३ प्रतिजनादिभ्यः खञ् ४।४।९९
५६८ प्रतिपथमेति ठंश्च ४।४।४२
१०५७ प्रतियोगे पञ्चम्यास्त० ५।४।४४
३६५ प्रत्ययोत्तरपदयोश्च ७।२।९८
२८९ प्रधानप्रत्ययार्थवचन० १।२।५६
४५२ प्रभवति ४।३।८३
८०५ प्रमाणे द्वयसज्दघ्न० ५।२।३७
१०९१ प्रकारे गुणवचनस्य ८।१।१२
५५७ प्रयच्छति गर्ह्यम् ४।४।३०
७३७ प्रयोजनम् ५।१।१०९
०९० प्रवाहणस्य ढे ७।३।२८
९७३ प्रशंसायां रूपप् ५।३।६६
९६२ प्रशस्यस्य श्रः ५।३।६०
३४१ प्रस्थपुरवहान्ताच्च ४।२।१२२
३२६ प्रस्थोत्तरपदपलद्यादि० ४।२।११०
५७९ प्रहरणम् ४।४।५७
६२१ प्राक् क्रीताच्छः ५।१।१
९७६ प्रागिवात् कः ५।३।७०
९५० प्रागेकादशभ्योऽछन्द० ५।३।४९

५९५ प्राग्घिताद्यत् ४।४।७५
९१० प्राग्दिशो विभक्तिः ५।३।१
००३ प्राग्दीव्यतोऽण् ४।१।८३
६४४ प्राग्वतेष्ठञ् ५।१।१८
५२९ प्राग्वहतेष्ठक् ४।४।१
३५६ प्राचां कटादेः ४।२।१३९
३९१ प्राचां ग्रामनगराणाम् ७।३।१४
४१८ प्राचां ग्रामनगरान्ते ७।३।२४
१४६ प्राचामवृद्धात् फिन् ४।१।१६०
९८९ प्राचामुपादेरडज्वुचौ० ५।३।८०
७६२ प्राणभृज्जातिवयोव० ५।१।१२९
५१३ प्राणिरजतादिभ्योऽञ् ४।३।१५४
८६० प्राणिस्थादातो लज० ५।२।९६
४०६ प्रायभवः ४।३।३९
३७७ प्रावृष एण्यः ४।३।१७
३८५ प्रावृषष्ठप् ४।३।२६
९६७ प्रियस्थिरफिरो० ६।४।१५७
२५९ प्रोक्ताल्लुक् ४।२।६४
५२१ प्लक्षादिभ्योऽण् ४।३।१६४

फ

०२६ फक्फिञोरन्यतरस्याम् ४।१।९१
५२१ फले लुक् ४।३।१६३
१३५ फाण्टाहृतिमिमताभ्यां० ४।१।१५०
८६४ फेनादिलच्च ५।२।९९
१३४ फेश्छ च ४।१।१४९

ब

६११ बन्धने चर्षौ ४।४।९६
९०४ बलादिभ्यो मतुबन्य० ५।२।१३६
१००९ बस्तेर्ढञ् ५।३।१०१
८२० बहुपूगगणसंघस्य ति० ५।२।५२
९७० बहोर्लोपो भू च बहो ६।४।१५८
२७३ बह्वचः कूपेषु ४।२।७३
१०९ बह्वच इञः० २।४।६६
४३४ बह्वचोऽन्तोदात्ताट्ठ० ४।३।६७
९८४ बह्वचो मनुष्यनाम्नष्ठ० ५।३।७८
५८५ बह्वचपूर्वपदाट्ठञ् ४।४।६४
१०५५ बह्वल्पार्थाच्छस्कार० ५।४।४२
०४६ बाह्वादिभ्यश्च ४।१।९६
३०२ बिल्वकादिभ्यश्छस्य ६।४।१५३
५०१ बिल्वादिभ्योऽण् ४।३।१३६
६६२ बिस्ताच्च ५।१।३१
१०२९ बृहत्या आच्छादने ५।४।६
७७० ब्रह्मणस्त्वः ५।१।१३६
८३४ ब्राह्मणकोष्णिके स० ५।२।७१
२२९ ब्राह्मणमाणववाडवा० ४।२।४२
१२० ब्राह्मो जातौ ६।४।१७१

भ

६१४ भक्ताण्णः ४।४।१००
५८८ भक्तादणन्यतरस्याम् ४।४।६८
४६१ भक्तिः ४।३।९५
०७० भर्गात्त्रैगर्ते ४।१।१११
३३४ भवतष्ठक्छसौ ४।२।११५
५४६ भस्त्रादिभ्यः ष्ठन् ४।४।१६
६८२ भागाद्यच्च ५।१।४९
२२२ भिक्षादिभ्योऽण् ४।२।३८
९५३ भूतपूर्वे चरट् ५।३।५३
२४२ भौरिक्याद्यैषुकार्यादि० ४।२।५४
०३६ भ्रातरि च ज्यायसि ४।१।१६४
१२९ भ्रातुर्व्यच्च ४।१।१४४
०८९ भ्रुवो वुक्च ४।१।१२५

म

५७८ मड्डुकझर्झरादणन्य० ४।४।५६
६११ मतजनहलात् करण० ४।४।९७
२७२ मतोश्च बह्वजङ्गात् ४।२।७२
८२५ मतौ छः सूक्तसाम्नोः ५।२।६९
३४९ मद्रवृज्योः कन् ४।२।१३१
१०८१ मद्रात्परिवापणे ५।४।६७
३२५ मद्रेभ्योऽञ् ४।२।१०८
०६५ मधुबभ्रवोर्ब्राह्मणकौ० ४।१।१०६
३६९ मध्यान्मः ४।३।८
२९५ मध्वादिभ्यश्च ४।२।८६
३५१ मनुष्यतत्स्थयोर्वुञ् ४।२।१३४

१४७	मनोर्जातावञ्यतौ षु०	४।१।१६१
४५१	मयट् च	४।३।८२
५०६	मयड्वैतयोर्भाषाया०	४।३।१४३
१२७	महाकुलादञ्खञौ	४।१।१४१
२१५	महाराजप्रोष्ठपदाट्ठञ्	४।२।३५
४६३	महाराजाट्ठञ्	४।३।९७
२०९	महेन्द्राद् घाणौ च	४।२।२९
६३६	माणवचरकाभ्यां ख०	५।१।११
०७८	मातुरुत्संख्यासंभद्रपू०	४।१।११५
१००	मातृष्वसुश्च	४।१।१३४
५६४	माथोत्तरपदपदव्यनु०	४।४।३७
८५४	मादुपधायाश्च मतो०	८।२।९
९५१	मानपश्वङ्गयोः कन्०	५।३।५१
५२०	माने वयः	४।३।१६२
७१४	मासाद्वयसि यत्खञौ	५।१।८१
५५२	मुद्गादण्	४।४।२५
६०४	मूलमस्याबर्हि	४।४।८८
१०५४	मृदस्तिकन्	५।४।३९

य

७०५	यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ	५।१।७१
०६२	यञञोश्च	२।४।६४
०५५	यञिञोश्च	४।१।१०१
८०८	यत्तदेतेभ्यः परिमाणे०	५।२।३९
७५५	यथातथायथापुरयोः	७।३।३१
७७६	यथामुखसम्मुखस्य द०	५।२।६
११०१	यथास्वे यथायथम्	८।१।१४
७७४	यवयवकषष्टिकाद्यत्	५।२।३
१०६	यस्कादिभ्यो गोत्रे	२।४।६३
९४८	याप्ये पाशप्	५।३।४७
१०४७	यावादिभ्यः कन्	५।४।२९
९७१	युवाल्पयोः कनन्यतर०	५।३।६४
२२५	युवोरनाकौ	७।१।१
३६२	युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां०	४।३।१
०२१	यूनि लुक्	४।१।९०
६२८	ये च तद्धिते	६।१।६१
११६	ये चाभावकर्मणोः	६।४।१६८
२८८	योगप्रमाणे च०	१।२।५५
७३४	योगाद्यच्च	५।१।१०२
७०९	योजनं गच्छति	५।१।७४
७६६	योपधाद् गुरूपोत्त०	५।१।१३२

र

१०४९	रक्ते	५।४।३२
५६०	रक्षति	४।४।३३
३१५	रङ्कोरमनुष्येऽण्च	४।२।१००
८७८	रजःकृष्यासुतिपरिष०	५।२।११२
४८५	रथाद्यत्	४।३।१२१
८५१	रसादिभ्यश्च	५।२।९५
२४०	राजन्यादिभ्यो वुञ्	४।२।५३
८६०	राजन्वान् सौराज्ये	८।२।१४
११५	राजश्वशुराद्यत्	४।१।१३७
३५७	राज्ञःक च	४।२।१४०
७१८	राज्यहःसंवत्सराच्च	५।१।८७
३०८	राष्ट्रावारपाराद्घखौ	४।२।९३
२११	रीङृतः	७।४।२६
८८६	रूपादाहतप्रशंसयोर्यप्	५।२।१२०
१३१	रेवत्यादिभ्यष्ठक्	४।१।१४६
४९४	रैवतिकादिभ्यश्छः	४।३।१३१
१०६२	रोगाच्चापनयने	५।४।४९
२७७	रोणी	४।२।७८
३४२	रोपधेतोः प्राचाम्	४।२।१२३

ल

५७५	लवणाट्ठञ्	४।४।५२
५५२	लवणाल्लुक्	४।४।२४
१७७	लाक्षारोचनाट्ठक्	४।२।२
३९७	लुक् तद्धितलुकि	१।२।४९
०६८	लुक् स्त्रियाम्	४।१।१०९
२८६	लुपि युक्तवद् व्य०	१।२।५१
५२४	लुप् च	४।३।१६६
१८०	लुबविशेषे	४।२।४
२८८	लुब्योगाप्रख्यानात्	१।२।५४
१००५	लुम्मनुष्ये	५।३।९८
६७७	लोकसर्वलोकाट्ठञ्	५।१।४४

८६४ लोमादिपामादिपि० ५।२।१०० ६६२ विंशतिकात् खः ५।१।३२
१०४८ लोहितान्मणौ ५।४।३० ६५४ विंशतित्रिंशद्भ्यां० ५।१।२४
व ८२२ विंशत्यादिभ्यस्तमड० ५।२।५६
०६८ वतण्डाच्च ४।१।१०८ ०८८ विकर्णकुषीतकात्० ४।१।१२४
६५३ वतोरिड् वा ५।१।२३ ०८१ विकर्णशुङ्गच्छगलाद्व० ४।१।११७
८२१ वतोरिथुक् ५।२।५३ ४५२ विदूराञ्ञ्यः ४।३।८४
४०३ वत्सशालाभिजिद० ४।३।३६ ४४४ विद्यायोनिसम्बन्धे० ४।३।७७
८६३ वत्सांसाभ्यां कामबले ५।२।९८ ६०१ विध्यत्यधनुषा ४।४।८३
९९९ वत्सोक्षाश्वर्षभेभ्यश्० ५।३।९१ ७९४ विनञ्भ्यां नानाञौ० ५।२।२७
८९९ वयसि पूरणात् ५।२।१३० १०५० विनयादिभ्यष्ठक् ५।४।३४
२९३ वरणादिभ्यश्च ४।२।८२ ९७२ विन्मतोर्लुक् ५।३।६५
४३० वर्गान्ताच्च ४।३।६३ ६५९ विभाषा कार्षापणसह०५।१।२९
७५१ वर्णदृढादिभ्यः ष्य० ५।१।१२३ ३४८ विभाषा कुरुयुगन्धरा० ४।२।१३०
९०२ वर्णाद्ब्रह्मचारिणि ५।२।१३४ १०३२ विभाषाञ्चेरदिक्स्त्रि० ५।४।८
१०४८ वर्णे चानित्ये ५।४।३१ ७७४ विभाषा तिलमाषोमा०५।२।४
३१७ वर्णौ वुक् ४।२।१०३ ९३६ विभाषा परावरा० ५।३।२९
७२१ वर्षस्याभविष्यति ७।३।१६ ३८२ विभाषा पूर्वाह्णापरा० ४।३।२४
३७८ वर्षाभ्यष्ठक् ४।३।१८ २०१ विभाषा फाल्गुनी० ४।२।२३
७२० वर्षाल्लुक् च ५।१।८८ १०३९ विभाषा बहोर्धाऽवि० ५।४।२०
६०३ वशं गतः ४।४।८६ ३६० विभाषाऽमनुष्ये ४।२।१४४
२५८ वसन्तादिभ्यष्ठक् ४।२।६३ ३७३ विभाषा रोगातपयोः ४।३।१३
१००९ वस्तेर्ढञ् ५।३।१०१ ९३४ विभाषाऽवरस्य ५।३।४१
५४४ वस्नक्रयविक्रया० ४।४।१३ ५४७ विभाषा विवधात् ४।४।१७
६८५ वस्नद्रव्याभ्यां ठन्० ५।१।५१ १०६८ विभाषा साति का० ५।४।५२
१४४ वाकिनादीनां कुक्० ५।१।१५८ ९७४ विभाषा सुपो बहुच्० ५।३।६८
१०८६ वाक्यादेरामन्त्रित० ८।१।८ ६२५ विभाषा हविरपूपा० ५।१।४
८९२ वाचो ग्मिनिः ५।२।१२४ ३३७ विभाषोशीनरेषु ४।२।११८
१०५१ वाचो व्याहृतार्थायाम् ५।४।३५ ८२७ विमुक्तादिभ्योऽण् ५।२।६१
८९७ वाताती साराभ्यां कु० ५।२।१२९ ७३८ विशाखाषाढादण्० ५।१।११०
०३७ वाऽन्यस्मिन्सपिण्डे० ४।१।१६५ २९० विशेषणानां चाजातेः १।२।५२
१००१ वा बहूनां जातिपरि० ५।३।९३ २४० विषयो देशे ४।२।५२
१८६ वामदेवाड्ड्यड्ड्यौ ४।२।९ १०३६ विसारिणो मत्स्ये ५।४।१६
२१० वाय्वृतुपित्रुषसो यत् ४।२।३१ २७९ वुञ्छण्कठजिलसेनि० ४।२।८०
४६३ वासुदेवार्जुनाभ्यां वु० ४।३।९८ १०१८ वृकाट्टेण्यण् ५।३।११५
९१८ वा ह चच्छन्दसि ५।३।१३ ९६४ वृद्धस्य च ५।३।६२
३३६ वाहीकग्रामेभ्यश्च ४।२।११७ ३३१ वृद्धाच्छः ४।२।११४

३३९ वृद्धात्प्राचाम् ४।२।१२०
१३३ वृद्धाट्ठक् सौवी० ४।१।१४८
३५८ वृद्धादकेकान्तखोप० ४।२।१४१
३३० वृद्धिर्यस्याचामादि० १।१।७३
१५३ वृद्धेत्कोसलाजादा० ४।१।१७१
७९५ वेः शालच्छङ्कटचौ ५।२।२८
५४३ वेतनादिभ्यो जीवति ४।४।१२
५५३ व्यञ्जनैरुपसिक्ते ४।४।२६
१३० व्यन्सपत्ले ४।१।१४५
४१५ व्याहरति मृगः ४।३।५१
७३० व्युष्टादिभ्योऽण् ५।१।९७
०५१ व्रातच्फञोरस्त्रियाम् ५।३।११३
७९० व्रातेन जीवति ५।२।२१
७७३ व्रीहिशाल्योर्ढक् ५।२।२
५१० व्रीहेः पुरोडाशे ४।३।१४८
८८२ व्रीह्यादिभ्यश्च ५।२।११६

श

५९९ शकटादण् ४।४।८०
५८० शक्तियष्ट्योरीकक् ४।४।५९
४५९ शण्डिकादिभ्यो ञ्यः ४।३।९२
६५७ शतमानविंशतिकसह० ५।१।२७
८८७ शतसहस्रान्ताच्च नि० ५।२।११९
६५१ शताच्च ठन्यतावशते ५।१।२१
८१५ शदन्तविंशतेश्च ५।२।४६
५६० शब्ददर्दुरं करोति ४।४।३४
५०६ शम्याः ष्लञ् ४।३।१४२
०५६ शरद्वच्छुनकदर्भाद्० ४।१।१०२
४१७ शरीरावयवाच्च ४।३।५५
६०७ शरीरावयवाद्यत् ५।१।६
१०१२ शर्करादिभ्योऽण् ५।३।१०७
२९३ शर्कराया वा ४।२।८३
५५६ शलालुनोऽन्यतर० ४।४।५४
४९२ शाकलाद्वा ४।३।१२८
१०१० शाखादिभ्यो यः ५।३।१०३
६६५ शाणाद्वा ५।१।३५
७८९ शालीनकौपीने अधृ० ५।२।२०
२९९ शिखाया वलच् ४।२।८९
१००९ शिलाया ढः ५।३।१०२
५७७ शिल्पम् ४।४।५५
०७१ शिवादिभ्योऽण् ४।१।११२
४५५ शिशुक्रन्दयमसभ० ४।३।८८
८३४ शीतोष्णाभ्यां का० ५।२।७२
७०१ शीर्षच्छेदाद्यच्च ५।१।६५
५८१ शीलम् ४।४।६१
२०५ शुक्राद् घन् ४।२।२६
४४३ शुण्डिकादिभ्योऽण् ४।३।७६
०८७ शुभ्रादिभ्यश्च ४।१।१२३
६५६ शूर्पादञन्यतरस्याम् ५।१।२६
१०८० शूलात् पाके ५।४।६५
१९४ शूलोखाद्यत् ४।२।१७
८४० शृङ्खलमस्य बन्धनं० ५।२।७९
९९३ शेवलसुपरिविशाल० ५।३।८४
३०४ शेषे ४।२।९२
४७३ शौनकादिभ्यश्छन्दसि ४।३।१०६
२४६ श्येनतिलस्य पाते ञे ६।३।७१
३९६ श्रविष्ठाफल्गुन्यनुराधा० ४।३।३४
५८६ श्राणामांसौदनाट्टि० ४।४।६७
८४३ श्राद्धमनेन भुक्त० ५।२।८५
३७३ श्राद्धे शरदः ४।३।१२
८४३ श्रोत्रियंश्छन्दोऽधीते ५।२।८४
५४१ श्वगणाट्ठञ्च ४।४।११
३७५ श्वसस्तुट् च ४।३।१५
५४१ श्वादेरिञि ७।३।८

ष

८१९ षट्कतिकतिपय० ५।२।५१
७१५ षण्मासाण्ण्यच्च ५।१।८३
१२२ षपूर्वहन्धृतराज्ञामणि ६।४।१३५
७२४ षष्टिकाः षष्टिरात्रेण० ५।१।९०
८२४ षष्ट्यादेश्चासंख्यादेः ५।२।५८
९५० षष्ठाष्टमाभ्यां ञ च ५।३।५०
९५३ षष्ठ्या रूप्य च ५।३।५४
१०६२ षष्ठ्या व्याश्रये ५।४।४८

	स	
८३९	स एषां ग्रामणीः	५।२।७८
४१४	संवत्सराग्रहायणी०	४।३।५०
७०८	संशयमापन्नः	५।१।७३
५५१	संसृष्टे	४।४।२२
५३२	संस्कृतम्	४।४।३
१९३	संस्कृतं भक्षाः	४।२।१६
७५९	सख्युर्यः	५।१।१२६
२७४	सङ्कलादिभ्यश्च	४।२।७५
६५२	संख्याया अतिशद०	५।१।२२
८११	संख्याया अवयवे०	५।२।४२
१०३६	संख्यायाः क्रिया०	५।४।१७
६९२	संख्यायाः सञ्ज्ञासंघ०	५।१।५८
८१६	संख्याया गुणस्य०	५।२।४७
९४४	संख्याया विधार्थे धा	५।३।४२
७१७	संख्यायाः संवत्सर०	७।३।१५
१०७६	संख्यायाश्च गुणा०	५।४।५९
१०५६	संख्यैकवचनाच्च०	५।४।४३
२४४	संग्रामे प्रयोजनयो०	४।२।५६
४९०	संघांकलक्षणेष्व०	४।३।१२७
११७	संयोगादिश्च	६।४।१६६
८५७	संज्ञायाम्	८।२।११
४८०	सञ्ज्ञायाम्	४।३।११७
५७१	सञ्ज्ञायां ललाट०	४।४।४६
३८६	सञ्ज्ञायां शरदो वुञ्	४।३।२७
१८३	सञ्ज्ञायां श्रवणा०	४।२।५
५०९	सञ्ज्ञायां कन्	४।३।१४७
९८२	सञ्ज्ञायां कन्	५।३।७५
९९६	सञ्ज्ञायां कन्	५।३।८७
१००५	सञ्ज्ञायां च	५।३।९७
६००	सञ्ज्ञायां जन्याः	४।४।८२
६०५	सञ्ज्ञायां धेनुष्या	४।४।८९
९०५	सञ्ज्ञायां मन्माभ्याम्	५।२।१३७
१०८०	सत्यादशपथे	५।४।६६
९२४	सद्यः परुत्परार्यैषमः०	५।३।२२
३७६	सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रे०	४।३।१६
१०७७	सपत्त्रनिष्पत्त्रादति०	५।४।६१
८४४	सपूर्वाच्च	५।२।८७
९१६	सप्तम्यास्त्रल्	५।३।१०
६१७	सभाया यः	४।४।१०५
७३५	समयस्तदस्य प्राप्तम्	५।१।१०४
१०७७	समयाच्च यापनायाम्	५।४।६०
००१	समर्थानां प्रथमाद्वा	४।१।८२
०६९	समवायान् समवैति	४।४।४३
७८६	समांसमां विजायते	५।२।१२
६१८	समानतीर्थे वासी	४।४।१०७
६१९	समानोदरे शयित०	४।४।१०८
६३९	समापनात्सपूर्वपदात्	५।१।११२
७१६	समायाः खः	५।१।८५
१०११	समासाच्च तद्विष०	५।३।१०६
१०४१	समूहवच्च बहुषु	५।४।२२
७३२	सम्पादिनि	५।१।९९
७९६	सम्प्रोदश्च कटच्	५।२।२९
६८६	सम्भवत्यवहरति०	५।१।५२
४०७	सम्भूते	४।३।४१
७७६	सर्वचर्मणः कृतः०	५।२।५
३७८	सर्वत्राण् च त०	४।३।२२
६३४	सर्वपुरुषाभ्यां ण०	५।१।१०
६७४	सर्वभूमिपृथिव्या०	५।१।४१
१०८३	सर्वस्य द्वे	८।१।१
९१३	सर्वस्य सोऽन्यत०	५।३।६
९२१	सर्वैकान्यकिंयत्तदः०	५।३।१५
१०५४	सस्नौ प्रशंसायाम्	५।४।४०
८३२	सस्येन पारिजातः	५।२।६८
८४७	साक्षाद्द्रष्टरि सञ्ज्ञा०	५।२।९१
१०६९	सात्पदाद्योः	८।३।१११
७९१	साप्तपदीनं सख्यम्	५।२।२२
३७९	सायंचिरंप्राह्णेप्रगेव्ययेऽ०	४।३।२३
१५५	साल्वावयवप्रत्य०	४।१।१७३
१५१	साल्वेयगान्धारिभ्यां०	४।१।१६९
१९८	सास्मिन् पौर्णमासीति	४।२।२१
२०२	सास्य देवता	४।२।२४

८७० सिकताशर्कराभ्यां० ५।२।१०४
२३२ सिति च १।४।४६
८६२ सिध्मादिभ्यश्च ५।२।९७
४५९ सिन्धुतक्षशिलादि० ४।३।९३
३९५ सिन्ध्वपकाराभ्यां० ४।३।३२
१०७९ सुखप्रियादानुलोम्ये ५।४।६३
८९९ सुखादिभ्यश्च ५।२।१३१
०४८ सुधातुरकङ् च ४।१।९७
२७६ सुवास्त्वादिभ्योऽण् ४।२।७७
३८८ सुसर्वार्धाज्जनपदस्य ७।३।१२
२६४ सूत्राच्च कोपधात् ४।२।६५
१३८ सेनान्तलक्षणकारि० ४।१।१५२
५७० सेनाया वा ४।४।४५
६१९ सोदराद्यः ४।४।१०९
२०९ सोमाट्ट्यण् ४।२।३०
४५७ सोऽस्य निवासः ४।३।८९
६९० सोऽस्यांशवस्नभृतयः ५।१।५६
२४२ सोऽस्यादिरिति० ४।२।५५
७५८ स्तेनाद्यन्नलोपश्च ५।१।१२५
१६१ स्त्रियामवन्तिकुन्ति० ४।१।१७६
०१५ स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ० ४।१।८७
०८३ स्त्रीभ्यो ढक् ४।१।१२०
२७५ स्त्रीषु सौवीरसाल्व० ४।२।७६
१९३ स्थण्डिलाच्छयितरि० ४।२।१५
४०१ स्थानान्तगोशाला० ४।३।३५
१०३५ स्थानान्ताद्विभाषा० ५।४।१०
७०४ स्थालीबिलात् ५।१।७०
९६५ स्थूलदूरयुवक्षिप्राणां० ६।४।१५६
१०२६ स्थूलादिभ्यः प्रकार० ५।४।३
१२९ स्वसुश्छः ४।१।१४३
५३१ स्वागतादीनां च ७।३।७
८३० स्वाङ्गेभ्यः प्रसिते ५।२।६६
८९४ स्वामिन्नैश्वर्ये ५।२।१२६

ह

५४६ हरत्युत्सङ्गादिभ्यः ४।४।१५
०५४ हरितादिभ्योऽञः ४।१।१००
५२६ हरीतक्यादिभ्यश्च ४।३।१६७
४८७ हलसीराट्ठक् ४।३।१२४
६०० हलसीराट्ठक् ४।४।८१
९०१ हस्ताज्जातौ ५।२।१३३
७६३ हायनान्तयुवादि० ५।१।१३०
५८६ हितं भक्षाः ४।४।६५
१०६० हीयमानपापयोगाच्च ५।४।४७
६१० हृदयस्य प्रियः ४।४।९५
०९४ हृद्भगसिध्वन्ते० ७।१।१९
४५० हेतुमनुष्येभ्योऽन्य० ४।३।८१
७९१ हैयङ्गवीनं सञ्ज्ञायाम् ५।२।२३
७६९ होत्राभ्यश्छः ५।१।१३५
३२० ह्रस्वात्तादौ तद्धिते ८।३।१०१
९९६ ह्रस्वे ५।३।८६

अकारादिक्रमेण तद्धितस्थवार्तिकानुक्रमणिका

वार्तिकानि	पुटसंख्या
अकच्प्रकरणे तूष्णीमः०	९७८
अग्निकलिभ्यां ढग्वक्तव्यः	०१३
अग्निपदादिभ्य उपसंख्यानम्	७३०
अग्नीध्रः शरणे रण् भत्वं०	४८३
अग्रादिपश्चाड् डिमच्	३७९
अङ्गक्षत्रधर्मत्रिपूर्वात्०	२४९
अचि शीर्ष इति वाच्यम्	६२८
अण् संज्ञायाम्	७२६
अधर्माच्चेति वक्तव्यम्	५६८
अध्यात्मादेष्ठञिष्यते	४२४
अनजादौ च विभाषा०	९८५
अन्ताच्च	३७९
अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते	८७५
अन्येभ्योऽपि दृश्यते	८७८
अन्येभ्योऽपि दृश्यते	८८७
अप्रत्यये तथैवेष्टः	९८५
अभूततद्भाव इति वाच्यम्	१०६३
अरण्याण्णः	३२०
अरण्याण्णः	३४७
अर्णसो लोपश्च	८७५
अर्थात्सासन्निहिते	९०२
अर्धाच्चेति वक्तव्यम्	६५५
अलाबुतिलोमाभङ्गाभ्यो०	७९६
अवारपाराद्विगृहीतादपि०	३०८
अवेर्दुग्धे सोढदूसमरी०	२१९
अव्ययस्य च्वादीत्वं नेति०	१०६४
अव्ययानां भमात्रे टिलोपः	३१८
अश्मनो विकारे टिलोपो०	४९८
असमासवद्भावे पूर्वपद०	१०९१
अस्मिन्नर्थे डिद्वा वक्तव्यः	१८५
आकालाट् ठंश्च	७४०
आख्यानाख्यायिकेतिहास०	२४९
आग्नीध्रसाधारणादञ्	१०४४
आचार्यादणत्वं च	६३२
आनुपूर्वे द्वे वाच्ये	१०९१
आद्यादिभ्य उपसंख्यानम्	१०५७
आमयस्योपसंख्यानम्०	८८८
आवसथात् किसरादेः०	५९३
आहौ प्रभूतादिभ्यः	५३१
आहृतप्रकरणे वारिजङ्गल०	७११
इकन्यदोत्तरपदाच्छतषष्टे०	२४९
इकारादाविति वाच्यम्	५४१
इदम इश् समसण् च	९२४
इदमोऽश्भावो द्यश्च	९२४
ईकक् च	००७
उत्तरादाहञ्	३२०
उपवस्त्रादिभ्य उपसंख्यानम्	७३५
उवर्णाल्ल इलस्य च	९८५
ऋतोर्वृद्धिमद्विधावयवानाम्	३८७
ऋवर्णादपि	९८५
एकाचो नित्यम्	५०७
एकाक्षरपूर्वपदानामुत्तरपद०	९९०
एतदो वाच्यः	९२९
ओकारसकारभकारादौ०	९७८
कप्रत्ययचिकादेशौ च०	८००
कछ्वा ह्रस्वत्वं च	८७२
कम्बोजादिभ्य इति वक्तव्यम्	१५९
कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो०	१०९१
कार्षापणाट् टिठन् वक्तव्यः	६५५

कुग्जनस्य परस्य च	३५४	तक्ष्णोऽण उपसंख्यानम्	१३९
कुत्सित इति वक्तव्यम्	८९३	ततोऽभिगमनमर्हतीति च०	७०९
कुपिञ्जलस्यापत्यम्	४९५	तत्पचतीति द्रोणादण् च	६८६
केवलायाश्चेति वक्तव्यम्	६६३	तदन्ताच्च	९०२
क्रियासमभिहारे च	१०९१	तदस्मिन् वर्तत०	२१७
क्रोशशतयोजनशतयो०	७०९	तदाहेति माशब्दादिभ्यः०	५२९
क्लिन्नस्य चिल् पिल्०	८५२	तदो दावचनमनर्थकम्	९२३
क्षत्रियसमानशब्दात्०	१४८	तप्पर्वमरुद्भ्याम्	८८८
खप्रत्ययानुत्पत्तौ यलोपो०	७८४	तस्येदमिदमपत्येऽपि०	०२८
खलतिकादिषु वचनम्	२९०	तावतिथेन गृह्णातीति०	८३८
खलादिभ्य इनिर्वक्तव्यः	२३८	तिलान्निष्फलात् पिञ्ज०	२१७
गच्छतौ परदारादिभ्यः	५३१	तीयादीकक् स्वार्थे वा०	९४८
गजसहायाभ्यां चेति वक्त०	२३०	त्यदादीनां फिञ् वा	१४३
गणिकाया यञिति वक्त०	२२८	त्यब्नेर्ध्रुव इति वाच्यम्	३१८
गुणवचनेभ्यो मतुपो०	८५२	दूरादेत्यः	३२०
घोषग्रहणमपि कर्तव्यम्	४९०	दृशिग्रहणद्भवदादियोगे०	९१९
चञ्चदबृहतोरुपसंख्यानम्	१०२६	देवस्य च	३५४
चटकादिति वाच्यम्	०९५	देवाद्यञञौ	००७
चरणाद्धर्माम्नाययोरिति	४८९	दोष उपसंख्यानम्	१९६
चतुरछयतावाद्यक्षरलोपश्च	८१९	द्युश्चोभयाद्वक्तव्यः	९२४
चतुर्मासाण्णो यज्ञे	७२६	द्विगोर्नित्यम्	८०५
चतुर्थादच ऊर्ध्वस्य लोपो	९५८	द्वितीयं सन्ध्यक्षरं चेत्०	९९०
चतुर्थ्यर्थे उपसंख्यानम्	६७९	द्वित्वे गोयुगच्	७९६
चतुर्वर्णादीनां स्वार्थे	७५५	धमुञन्तात् स्वार्थे०	९४६
चतुर्वेदस्योभयपदवृद्धिश्च	७५५	नगपांसुपाण्डुभ्यश्च	८७२
चित्रारेवतीरोहिणीभ्यः०	३९७	नराच्चेति वक्तव्यम्	५७३
चिरपरुत्परादिभ्यस्त्लो०	३७९	नवस्य नू आदेशो त्लप्त०	१०४४
चुल् च	८००	न विद्यायाः	९४८
चूडादिभ्य उपसंख्यानम्	७३८	नश्च पुराणे प्रात्	१०४४
छप्रकरणे पैङ्गाक्षी०	२०७	नान्तस्य टिलोपे सब्र०	४७४
छागवृषयोरपि	१४१	नित्यमाम्रेडिते डाचीति०	१०७३
जातार्थे प्रतिप्रसूतो०	४०३	निसो गते	३१८
ज्योत्स्नादिभ्य उपसंख्यानम्	८६९	नील्या अन्	१७७
डाचि विवक्षिते द्वे बहुलम्	१०७३		

पञ्चजनादुपसंख्यानम्	४२३	फल्गुन्यषाढाभ्यां ट़ानौ	३९७
पञ्चजनादुपसंख्यानम्	६३२	बहिषष्टिलोपो०	००७
पत्त्राद् बाह्ये	४६८	बहुपूर्वाच्चेति वक्तव्यम्	६६१
पथ्यध्यायन्यायविहार०	३४७	बह्वल्पार्थान्मङ्गला०	१०५५
परस्मादेद्यव्यहनि०	९२४	बातात्समूहे च	८८८
परस्य च	३५४	बाहूरुपूर्वपदाद् बलात्०	९०२
परिमुखादिभ्य एवेष्यते	४२३	ब्रह्मवर्चसादुपसंख्यानम्	६७१
परेर्वर्जने वावचनम्	१०८५	भद्राच्चेति वक्तव्यम्	१०८१
पर्श्वा णस् वक्तव्यः	२३०	भवने क्षेत्रे शाकटशालिनौ	७९६
पाण्डोड्र्यण्	१४८	भवार्थे तु लुग्वाच्यः	००८
पादशतस्य ग्रहणमनर्थकम्	१०२३	भागरूपनामभ्यो धेयः	१०४४
पिञ्जश्छन्दसि डिच्च	२१९	भावप्रत्ययान्तादिमब्बक्तव्यः	५४९
पितुर्भ्रातरि व्यच्च	२१९	भूमनिन्दाप्रशंसासु०	८५०
पिशाचाच्च	८९७	मनुष्यलुपि प्रतिषेधः	२९०
पीतात्कन्	१७७	महानाम्न्यादिभ्यः०	७२५
पुरुषाद्वधविकारसमूह०	६३४	महाराजाट् ठञ्	६३२
पुष्पमूलेषु बहुलम्	५२४	महिषाच्चेति वक्तव्यम्	२९६
पूरोरण् वक्तव्यः	१४८	मातरि षिच्च	२१९
पूर्णमासादण्वक्तव्यः	२१७	मातुर्डुलच्च	२१९
पूर्वपूर्वतरयोः परादेशः०	९२४	मातृपितृभ्यां पितरि०	२१९
पूर्वान्न्यान्यतरेतरापदा०	९२४	मुखपार्श्वतसोर्लोपश्च	३५४
पृच्छतौ सुस्नातादिभ्यः	५३१	रप्रकरणे खमुखकुञ्जेभ्यः	८७२
पृथिव्या ञाञौ	००७	राज्ञो जातावेवेति	११५
पृथुमृदुभुशकृशदृढ०	७५१	रोगे चायमिष्यते	८९७
पृष्ठादुपसंख्यानम्	२२९	लोम्नोऽपत्येषु बहुष्वकारः	००८
प्रकृतिप्रत्ययार्थयोः समान०	८१४	लोहितात्लिङ्गबाधनं वा	१०४८
प्रकृत्याके राजन्य०	२२५	वस्त्वन्तात् स्वार्थे०	८०५
प्रमाणपरिमाणाभ्याम्०	८०५	वहेस्तुरणिट् च	४८३
प्रमाणे लः	८०५	वटकेभ्य इनिर्वाच्यः	८४२
प्रयोजनं सुब्लोप०	१०९१	वसोः सम्प्रसारणम्	८५२
प्राण्यङ्गादेव	८६०	वा केशेषु	६२८
फलपाकशुषामुपसंख्यानम्	५२४	वा गोमयेषु	३४७
फलबर्हाभ्यामिनच्	८८८	वातपित्तश्लेश्मभ्यः शम०	६६९

वातात्समूहे च	८८८	संघाते कटच्	७९६
वा नामधेयस्य वृद्धसंज्ञा०	३३२	संज्ञायां स्वार्थे प्रत्ययो वाच्यः	६९२
वा हितनाम्न इति वा०	११८	संवत्सरात्फलपर्वणोः	३७६
विराग विरङ्गं च	७००	सन्निपाताच्चेति वक्तव्यम्	६६९
विद्यालक्षणकल्पान्ताच्चे०	२४९	समानस्य सभावो०	९२५
विनापि प्रत्ययं पूर्वो०	९८५	समिधामाधाने षेण्यण्	४८३
विभाजयितुर्णिलोपश्चा०	५७३	सम्भ्रमेण प्रवृत्तौ यथेष्ट०	१०९१
विशशितुरिड्लोपश्चा०	५७३	सर्वजनाट् ठञ् खश्च	६३२
विष्वगित्युत्तरपदलोपश्चा०	८६४	सर्वत्र गोरजादिप्रसङ्गे यत्	००८
विस्तारे पटच्	७९६	सर्वाण्णो वेति वक्तव्यम्	६३४
वृत्तेश्च वा	८६७	सर्वादेः सादेश्च लुक्०	२४९
वृद्धाच्चेति वक्तव्यम्	२२५	सर्वादेश्च	९०२
वृद्धेर्वृधुषिभावो वक्तव्यः	५५७	सर्वोभयार्थाभ्यामेव	९१५
वेणुकादिभ्यश्छण्वक्तव्यः	३५७	सहायाद्वा	७६६
वैरे देवासुरादिभ्यः०	४८७	सुसर्वार्धदिक्छब्देभ्यो जन०	३८८
व्यासवरुडनिषाद०	०४८	सूत्रान्तात्त्वकल्पादेरेवेष्यते	२४९
शतरुद्राद् घश्च	२०७	स्तोमे डविधिः	६९२
शतसहस्रयोरेवेष्यते	८१४	स्त्रियामपत्ये लुग्वक्तव्यः	०९५
शीतोष्णतृप्रेभ्यस्तदसहने	८८८	स्थाम्नोऽकारः	००७
शीले को मलोपश्च	९७८	स्नेहे तैलच्	७९६
शृङ्गवृन्दाभ्यामारकन्	८८८	स्वरूपस्य पर्यायाणां०	५६१
श्रविष्ठाषाढाभ्यां छण्	३९७	स्वार्थ उपसंख्यानम्	२४२
श्रोत्रियस्य यलोपश्च	७६३	हरिद्रामहारजनाभ्यां०	१७७
षट्त्वे षड्गवच्	७९६	हरीतकादिषु व्यक्तिः	२९०
षषष्ठाजादिवचनात् सि०	९९०	हिमाच्चेलुः	८८८
संख्याप्रकृतिकादिति०	२६४	हृदयाच्चालुरन्यतरस्याम्	८८८

वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी

श्रीमज्ज्ञानेन्द्रभिक्षुविरचितया प्रौढोपकारिण्या **तत्त्वबोधिनी**टीकया,
श्रीवासुदेवभट्टदीक्षितविरचितया छात्रोपकारिण्या **बालमनोरमा**-
टीकया, महामहोपाध्यायश्रीनागेश(नागोजि)भट्टविरचितया-
विद्वत्प्रियेण **लघुशब्देन्दुशेखर**ाख्येन तिलकेन, स्वर-
वैदिकभागे श्रीजयकृष्णमौनीविरचितया **सुबोधिनी**-
टीकया, लिङ्गानुशासनभागे श्रीभैरवमिश्रकृतया-
चन्द्रकलाटीकया अन्ते च गणपाङ्ग-
सूचीपत्रादिना परिशिष्टेन
च विराजिता

सम्पादकाः
श्रीगुरुप्रसाद शास्त्री, श्रीसीताराम शास्त्री
एवं
श्रीबालशास्त्री

ISBN : 978-93-80326-08-5 (Set) **Rs. 2500 (1-2 Vols.)**

लघुशब्देन्दुशेखरः

श्रीविश्वनाथ**दण्डि**भट्टविरचितयाऽभिनव-
चन्द्रिकाटीकया, श्री**वैद्यनाथपायगुण्डे**विरचितया
चिदस्थिमालाटीकया, श्री**सदाशिव**भट्टविरचितेन तिलकेन,
श्रीमद्भट्टोदयङ्करपाठकविरचितया **ज्योत्स्ना**टीकया, श्री**राघवेन्द्राचार्य**-
कृतया **विषमपदविवृत्त्या**, कारकप्रकरणेश्री**शिवनारायणशास्त्रि**-
विरचितया विजयाटीकया, श्री**गुरुप्रसादशास्त्रि**विरचितया
न्यासपरिष्कारपूर्णया **वरवर्णिन्या**,
किञ्च**टिप्पण्या** च विराजितः

समलङ्कर्त्ता-वरवर्णिनीकारः च
श्रीगुरुप्रसादशास्त्री
सम्पादकः
प्रो. बालशास्त्री

ISBN : 978-93-81484-96-8 **Rs. 2000 (Complete in 2 Vols.)**

महामहोपाध्यायश्रीभट्टोजिदीक्षितविरचिता

प्रौढमनोरमा

अव्ययीभावान्ता

महामहोपाध्यायहरिदीक्षितकृतलघुशब्दरत्नं-
महामहोपाध्यायभैरवमिश्रकृतशब्दरत्नप्रकाशिका(भैरवी)-
सभापतिशर्मोपाध्यायकृतरत्नप्रभाटिप्पण्यलङ्कृता

Rs. 800/-

वैयाकरणभूषणसारः

श्रीहरिशास्त्रीकृत 'काशिका' एवं
श्री हरिवल्लभकृत 'दर्पण' टीका एवं
श्री गुरुप्रसादशास्त्रीविरचित टिप्पणी सहित
सम्पादक
पं. नन्दकिशोर शास्त्री एवं श्री बालशास्त्री

Rs. 600/-

श्रीमदन्नम्भट्टविरचितः

तर्कसंग्रहः

स्वोपज्ञतर्कसंग्रहदीपिका-गोवर्द्धनमिश्रकृतन्यायबोधिनी-चन्द्रजसिंहकृतपदकृत्य-
गोविन्दाचार्यकृतश्रीनिवासमुखोल्लासिनी-(संस्कृत)श्रीधरमुखोल्लासिनी(हिन्दी)व्याख्यासंवलितः
कारिकावली-न्यायपदार्थकोश-लघूत्तरीयप्रश्नोत्तर-वस्तुनिष्ठप्रश्नात्मकपरिशिष्टसमलङ्कृतश्च

सम्पादकः गोविन्दाचार्यः

तर्कसंग्रह न्यायशास्त्र और वैशेषिकशास्त्र में प्रवेश के लिए प्रारम्भिक ग्रन्थ है। इसकी भाषा अत्यन्त सरल है और विषयवस्तु की प्रस्तुति धाराप्रवाह रूप से की गयी है। ग्रन्थकार की व्याख्या 'तर्कसंग्रह-दीपिका', चन्द्रजसिंह द्वारा विरचित 'पदकृत्य' तथा गोवर्द्धनमिश्रकृत 'न्याय-बोधिनी' टीका को नैयायिक समाज में बहुत ही आदर की दृष्टि से देखा जाता है। इन तीनों टीकाओं के साथ तर्कसंग्रह का अध्ययन करने पर व्यक्ति न्यायवैशेषिक शास्त्रों में सरलता से प्रवेश कर सकता है। प्रस्तुत संस्करण में उपर्युक्त तीन टीकाओं के अतिरिक्त 'श्रीनिवासमुखोल्लासिनी' (संस्कृत) व 'श्रीधरमुखोल्लासिनी' (हिन्दी) इन दो आधुनिकतम टीकाओं का भी समावेश किया गया है। ये दोनों टीकाएँ अत्यन्त सरल-भाषा व सरल शैली में उपनिबद्ध हैं। इसके अतिरिक्त अभ्यास के लिए तर्कसंग्रहप्रश्नोत्तरी (लघूत्तरीय प्रश्न) दी गयी है जो सम्पूर्ण मूलभाग का प्रश्न बनाकर उत्तर बनाये गये हैं। न्यायपदार्थकोष और हिन्दी अर्थ सहित कारिकावली के समावेश से इस संस्करण की महत्ता बढ़ गयी है। कुल मिलाकर तर्कसंग्रह के अध्येताओं के लिए आज तक प्रकाशित पुस्तकों में यह संस्करण सर्वोत्तम होगा ऐसा विश्वास है।

ISBN : 978-93-80326-44-3 **Rs. 600/-**

प्रथम प्रकाशित विस्तृत हिन्दी व्याख्या

श्रीभट्टोजिदीक्षितविरचित

वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी

'श्रीधरमुखोल्लासिनी' विस्तृत हिन्दी व्याख्या

(प्रत्येक सूत्रों में पदप्रदर्शन, समास, अनुवृत्तिक्रम, सूत्रार्थ, भाष्य-मनोरमा-शेखर के अनुसार विस्तृत एवं सुगम व्याख्या, प्रयोगसिद्धि, सभी धातुओं के प्रत्येक लकारों के रूप, क्लिष्ट रूपों की सिद्धि एवं धातुपाठ सहित धातुप्रकरण का विशिष्ट विवेचन)

व्याख्याकार : श्रीगोविन्दाचार्य

प्रस्तुत व्याख्याग्रन्थ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि 30 वर्षों से छात्रों को अध्यापन कराते समय ग्रन्थस्थ कठिन विषयों को सरलता से समझाने की जो प्रयोगात्मक शैली अपनायी गयी है उसी शैली को लेखक ने यहाँ लिखित रूप में परिणित किया है। तात्पर्य यह है कि आज के इस वैज्ञानिक युग में प्रत्येक विषयों को वैज्ञानिक ढ़ंग से समझाने से ही कठिन से कठिन विषय भी छात्र शीघ्र ग्रहण कर सकता है। अतः परम्परा से कठिन रूप में ग्रहण किए जाने वाले इस संस्कृत-व्याकरण को युगसापेक्ष अत्यन्त सरल एवं सुबोध बनाया है।

प्रस्तुत टीका में सूत्रों की व्याख्या करते समय सबसे पहले समास, उसके बाद विभक्ति, तदनन्तर अनुवृत्ति और अधिकार, उसके बाद बोल्ड अक्षरों में सूत्रार्थ दिये गये हैं। आवश्यक स्थलों पर सूत्रों का विशेष विवरण दिया गया है एवम् उसके बाद रूप-सिद्धि दिखाई गई है।

प्रस्तुत संस्करण के प्रारम्भ में क्रिया के सम्बन्ध में अवश्यज्ञातव्य विषयों का विस्तारपूर्वक निरूपण किया गया है। जैसे कि सकर्मक और अकर्मक की व्यवस्था, फल और व्यापार का स्पष्टीकरण, कर्त्ता, कर्म, काल, परस्मैपद और आत्मनेपद आदि।

अधिक से अधिक प्रयोगसिद्धि के साथ विशेष प्रचलित धातुओं के सभी रूप और शेष धातुओं के प्रत्येक लकारों में कम से कम एक-एक रूप अवश्य दिये गये हैं।

सम्पूर्ण सात भाग में

◆ **प्रथम भाग** (प्रारम्भ से अव्ययान्त प्रकरण) ◆ **द्वितीय भाग** (स्त्रीप्रत्यय, कारक एवं समास प्रकरण) ◆ **तृतीय भाग** (सम्पूर्ण तद्धित प्रकरण) ◆ **चतुर्थ भाग** (दशगणी-भ्वादि से चुरादि प्रकरण) ◆ **पंचम भाग** (णिच्प्रकरण से लकारार्थ प्रकरण) ◆ **षष्ठ भाग** (उणादि सहित कृदन्त प्रकरण) ◆ **सप्तम भाग** (स्वरवैदिकी एवं लिङ्गानुशासन प्रकरण)

वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी

अष्टाध्यायीसूत्रपाठ-वार्तिकपाठ-गणपाठ-धातुपाठ-पाणिनीयशिक्षा-लिङ्गानुशासन-परिभाषापाठ-सूत्रवार्तिकगणसूत्रधातुपरिभाषोणादि-सूत्रानुक्रमणिकासंवलिता

(मूलमात्रम्)

सम्पादकः श्रीगोविन्दाचार्यः

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी